स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

(उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा निर्गत अधिनियम संख्या 10, 1999 द्वारा स्थापित)

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

UGHI-02

हिन्दी काव्य

प्रथम खण्ड : आदि काव्य

द्वितीय खण्ड : भक्ति काव्य (पहला भाग)

द्वितीय खण्ड : भक्ति काव्य (दूसरा भाग)

तृतीय खण्ड : हिन्दी रीति काव्य

...न्निपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, इलाहाबाद - 211013

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

यू०जी०एच०आई०-02
हिन्दी में ऐच्छिक पाठ्यक्रम

खण्ड

1

हिन्दी काव्य

इकाई 1

हिन्दी काव्य की पृष्ठभूमि (अपभ्रंश काव्य का परिचय) 7

इकाई 2

हिन्दी का आदिकाव्य : स्वरूप एवं विकास 23

पाठ्यक्रम परिचय

साहित्य के अध्ययन से मनुष्य के भावों-विचारों का परिष्कार और उन्नयन होता है। वास्तव में, साहित्य एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है जिससे हमें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक वास्तविकताओं, मानवीय चिंताओं, समस्याओं और युग विशेष के संघर्षों और परिवर्तनों को समझने में सहायता मिलती है। साहित्य में चिंतन परम्पराएँ सुदीर्घ अतीत से प्रवाहित होकर वर्तमान तक आती हैं। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि वर्तमान में अतीत के गतिशील तत्व लगातार सक्रिय रहते हैं। किन्तु अतीत ही वर्तमान को प्रभावित नहीं करता वर्तमान भी अतीत को समझने के लिए नवीन दृष्टिकोणों की स्थापना करता रहता है। इसी मूल विचार को ध्यान में रखते हुए ऐच्छिक 'पाठ्यक्रम-2 हिन्दी काव्य' से अध्येताओं को परिचित कराया जाएगा।

आपने स्कूल या कॉलेज में या सामान्य रूप से स्वाध्याय के दौरान हिन्दी कविता या हिन्दी कवियों के काव्य का अध्ययन-मनन किया होगा। आपने ऐसा भी अनुभव किया होगा कि एक कवि की कविता दूसरे कवि की कविता से अनुभूति, अभिव्यक्ति और उद्देश्य के स्तर पर भिन्नता रखती है। एक ही कविता की व्याख्या दो व्यक्ति एक-सी नहीं करते। क्यों नहीं करते? इसका उत्तर है कि काव्य में अर्थ की संभावनाओं का क्षेत्र व्यापक होता है। इसीलिए एक ही कविता का हर नया पाठक एक नया अर्थ करता है या कर सकता है। कविताओं में प्रत्येक कवि की विशिष्ट काव्य-संवेदन की बनावट और बुनावट के तत्व मौजूद रहते हैं जिसे वह काव्य-भाषा के नूतन वक्र-प्रयोगों, प्रतीकों, बिंबों, छन्दों, लयों, शैलियों आदि से व्यक्त करता है। एक जागरूक अध्येता ऐसे अनुभवों से प्रतिदिन गुजरता भी है। अगर आप इस पाठ्यक्रम में निर्धारित हिंदी कवियों और उनकी काव्य प्रवृत्तियों को युग विशेष के संदर्भ से जोड़कर पढ़ेंगे तो पाएँगे कि काव्य में मानव की चित्तवृत्तियों के बदलाव और परिवर्तन कैसे घटित होते हैं। कविता कैसे अपने युग-परिवेश का यथार्थ चित्र सामने लाती है। साथ ही आप एक काल विशेष की कविता से दूसरे काल विशेष की कविता की भिन्नता एवं समानता को समझने की दृष्टि विकसित कर सकेंगे। उदाहरण के लिए, आप आदिकाल के काव्य और भक्तिकालीन काव्य के बुनियादी दृष्टि-भेद को भी पकड़ सकेंगे।

साहित्य के स्वरूप-विश्लेषण एवं मूल्यांकन का अध्ययन इस दृष्टि से भी अनिवार्य है कि साहित्य एक प्रकार से मानव सत्ता का अध्ययन है। वस्तुतः मानव-चेतना, मानव-संबंधों से निर्मित होती है। समाज के विकास के साथ-साथ मानव-संबंध परिवर्तित होते रहते हैं। स्थितियों के बदलते ही दृष्टि बदलती है। अभिव्यक्ति की पद्धतियाँ, काव्यरूपों की दृष्टियाँ बदल जाती हैं। बात यह है कि रचनाकार उन्हीं मनोदृष्टियों का संचय या भण्डार होता है जो उसे समाज से प्राप्त होती है। प्रश्न उठता है कि समाज या युग का अर्थ क्या है ? वास्तव में इसे हम सामाजिक-ऐतिहासिक विकास की स्थिति-परिस्थिति कह सकते हैं। उदाहरणार्थ, हिंदी के रीतिकाल का साहित्य तत्कालीन जनता की चित्तवृत्तियों को सूचित नहीं करता बल्कि एक गहरे स्तर पर वह सामन्त-वर्ग की शृंगारिकता के चित्र सामने लाता है। अतएव, युग-स्थिति का अर्थ हुआ वह विशेष स्थिति जो सांस्कृतिक-साहित्यिक क्षेत्र का नेतृत्व कर रही है। इन नेतृत्व करने वालों में राजनीतिक शासन का माहौल आता है। इस नेतृत्व की शक्ति से हम समझ लेते हैं कि रीतिकाव्य का शृंगार आधुनिक काव्य के शृंगार से किस अर्थ में भिन्न है। कहना न होगा कि रचनाकार हमें युग के चरित्र का साक्षात्कार कराता है। उसके भाव, विचार, कल्पना, संवेदन, भाषा, बिंब, प्रतीक, रूप आदि सभी पर युग की स्थिति पारिस्थितिकी की छाया दृष्टिगत होती है। साहित्य के विषय में विशिष्ट विषय क्षेत्र खुलते हैं—और उनके प्रति कविगण जो दृष्टि विकसित करते हैं उनमें बहुत-सी समानताएँ होती हैं।

हिंदी का आधुनिक काव्य स्वाधीनता संग्राम की मुक्ति चेतना, एशिया के नवजागरण, ज्ञान के नवीन क्षेत्रों के प्रचार-प्रसार से प्रभावित होकर लिखा गया है। पश्चिमी काव्य-चिंतन, वादों, साहित्यिक आंदोलनों, विचारधाराओं के हिंदी साहित्य ने समय-समय पर झटके भी महसूस किए हैं। किन्तु वह पश्चिम की अनुकृति या नकल नहीं हैं। इसमें भारतीय परम्परा की नवीन दृष्टियाँ, भाव-भंगिमाएँ और चिंतन मुद्राएँ ही गहराई से बोल रहीं हैं। हमें भारतेन्दु-युग, द्विवेदी-युग, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता के युग तक काव्य-विकास की एक मौलिक और समृद्ध परम्परा दृष्टिगत होती है। इस काव्य परम्परा से आपका गहरा आत्मसाक्षात्कार कराना भी हमारा उद्देश्य रहा है।

यह सम्पूर्ण पाठ्यक्रम आठ खण्डों में विभक्त है। लेकिन इस विभाजन में यह ध्यान बराबर

रखा गया है कि काव्यविकास-परम्परा की अन्तर्योजना कहीं भी खंडित न होने पाए। खण्डों में प्रवेश करते ही आप महसूस करेंगे कि हिंदी काव्य की परम्परा और प्रवृत्तियों से आप तार्किक ढंग से आत्मीय संवाद कर रहे हैं। खण्ड-1 में हमारा प्रयास रहा है कि अपभ्रंश काव्य और आदिकाल के काव्य के व्यापक परिप्रेक्ष्य से आधुनिक जानकारी के साथ आपका संबंध स्थापित हो सके।

खण्ड-2 की सात इकाइयों में भक्ति-परम्परा और भक्ति-आंदोलन की लोकजागरण दृष्टि को वैचारिक धरातल पर प्रस्तुत किया गया है। कबीर, जायसी, मीरा, सूरदास, तुलसीदास और रहीम के संतकाव्य पर की गई चर्चा से जाहिर है कि भक्ति काव्य लोक-भाषाओं, लोक काव्यरूपों, जन-आस्थाओं और रूढ़िवाद के विरोध में लोक मंगलकारी प्रवृत्तियों के विकास की कविता है।

खण्ड-3 में रीतिकाव्य की दरबारी काव्य-परम्परा और रीतिमुक्त स्वच्छन्द काव्य धारा का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। रीतिकाव्य के स्वरूप एवं विकास को स्पष्ट करते हुए रीतिबद्ध काव्य (देव और पदमाकर), रीतिसिद्ध काव्य (बिहारी), रीतिमुक्त काव्य (घनानंद) पर चार स्वतंत्र इकाइयों में विचार किया गया है।

खण्ड-4,5,6, और 7 में आधुनिक काव्य की विकासयात्रा के प्रवृत्ति मूलक और मूल्यपरक अध्ययन से आपका सीधा संवाद स्थापित करने का प्रयास किया गया है। यहाँ भारतेन्दु-युग का काव्य, द्विवेदी युग का काव्य, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता और समसामयिक कविता की विकास-यात्रा को ठीक से रेखांकित करने का प्रयास भी रहा है। रीतिवादी परम्पराओं को पीछे धकेल कर लोकजागरणवादी चिंतन दृष्टियाँ आधुनिक काव्य में कैसे, कब और क्यों सक्रिय रही हैं इन विचार बिंदुओं पर भी चर्चा मिलेगी।

खण्ड-8 में रामधारी सिंह दिनकर रचित प्रबंध काव्य 'कुरूक्षेत्र' पर विस्तार से पाँच इकाइयों में (विवेचन-मूल्यांकन पर भी) आपका ध्यान जा सकेगा। साथ ही यह भी स्पष्ट हो सकेगा कि "कुरूक्षेत्र" को राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य धारा की एक महत्वपूर्ण वैचारिक उपलब्धि क्यों माना जाता है।

इस पाठ्यक्रम को प्रभावी ढंग से स्पष्ट करने के लिए ऑडियो और वीडियो भी तैयार किए जा रहे हैं। आप उन्हें देखें और सुनें। इन्हें हमारे विश्वविद्यालय के अध्ययन केन्द्रों से प्राप्त किया जा सकेगा। स्मरण रहे प्रत्येक खण्ड की इकाई के साथ महत्वपूर्ण पुस्तकों की सूची भी रहेगी। इन पुस्तकों के अध्ययन से आपके ज्ञान में व्यापकता और गहराई दोनों का समावेश हो सकेगा।

खण्ड परिचय

हिंदी ऐच्छिक पाठ्यक्रम-II का यह पहला खण्ड है। इसमें दो इकाइयाँ हैं: 1) हिंदी काव्य की पृष्ठभूमि (अपभ्रंश काव्य का परिचय) 2) हिंदी का आदिकाव्य : स्वरूप एवं विकास।

इस खण्ड की दोनों इकाइयों में क्रमशः अपभ्रंश काव्य और हिंदी के आदिकाव्य से आपको परिचित कराया जाएगा। पहली इकाई अपभ्रंश काव्य से संबंधित है। अपभ्रंश आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की जननी है। हिंदी भी इसमें से एक है। इसलिए हिंदी कविता का अध्ययन करने से पहले अपभ्रंश काव्य का परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। अपभ्रंश काव्य की बहुत सी प्रवृत्तियाँ और काव्यरूप हिंदी काव्य में मौजूद हैं। इन प्रवृत्तियों और काव्य-रूपों के विकास को जाने बिना हिंदी कविता को समझना मुश्किल है। इसी दृष्टि से इस खण्ड में हम अपभ्रंश काव्य का अध्ययन करेंगे।

दूसरी इकाई में हिंदी के आदिकाव्य का अध्ययन किया जाएगा। इस इकाई का अध्ययन भी हम पृष्ठभूमि के रूप में करेंगे। इस काल में हिंदी कविता का स्वरूप पूरी तरह स्पष्ट नहीं हुआ था और विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियाँ अपने शैशव काल में थीं। इन पर अपभ्रंश का गहरा प्रभाव था, पर अपभ्रंश से मुक्त होने की आकांक्षा भी दृष्टिगत हो रही थी। अतः हिंदी भाषा और साहित्य के स्वरूप में अभी धुंधलापन था। आदिकाव्य की इस इकाई में दसवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी के बीच लिखी गयीं कुछ हिंदी रचनाओं का अध्ययन करेंगे और उन साहित्यिक और भाषिक प्रवृत्तियों को पहचानने की कोशिश करेंगे, जिनका विकास भक्तिकाल के दौरान और उसके बाद हुआ।

इस खण्ड की इकाइयों में प्रमुख रचनाओं के काव्यांश उद्धृत हैं। इससे आप अपभ्रंश काव्य और हिंदी के आदिकाव्य की झलक पा सकेंगे। पर इस खण्ड में हमारा उद्देश्य इस काल का काव्य पढ़ाना नहीं है, बल्कि मोटी-मोटी बातों को रेखांकित करना है। इसलिए इस खण्ड की इकाइयों में उद्धृत काव्यांशों से परीक्षा में प्रश्न नहीं पूछे जाएँगे।

दोनों इकाइयों के अंत में कुछ उपयोगी पुस्तकों के नाम दिए जा रहे हैं। अपनी जानकारी बढ़ाने के लिए आप इन पुस्तकों का उपयोग कर सकते हैं।

इकाई 1 : हिंदी काव्य की पृष्ठभूमि (अपभ्रंश काव्य का परिचय)

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 अपभ्रंश : अर्थ और स्वरूप
  1.2.1 साहित्यिक भाषा के रूप में अपभ्रंश का विकास
1.3 अपभ्रंश काव्य
  1.3.1 प्रबंधात्मक काव्य धारा
  1.3.2 मुक्तक काव्य धारा
  1.3.3 वीर और शृंगार काव्य
1.4 अपभ्रंश और हिंदी काव्य का संबंध
  1.4.1 अपभ्रंश और हिंदी का वीर काव्य
  1.4.2 अपभ्रंश और हिंदी का भक्ति काव्य
  1.4.3 अपभ्रंश और हिंदी का शृंगार काव्य
  1.4.4 कविता की पद्धति
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 उपयोगी पुस्तकें
1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई में आपका परिचय अपभ्रंश काव्य से कराया जाएगा। इसे पढ़ने के बाद आ :

- ''अपभ्रंश शब्द का अर्थ बता सकेंगे,
- भाषा के रूप में इसके विकास का उल्लेख कर सकेंगे,
- अपभ्रंश और हिंदी भाषा के बीच संबंधों की व्याख्या कर सकेंगे,
- अपभ्रंश काव्य की प्रवृत्ति को समझा सकेंगे,
- अपभ्रंश और हिंदी काव्य के संबंधों का विश्लेषण कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

यह इकाई अपभ्रंश काव्य से संबंधित है। इसमें आपका परिचय अपभ्रंश काव्य से कराया जा रहा है। पहले भाग में अपभ्रंश के अर्थ, प्रकार, क्षेत्र-विस्तार और ऐतिहासिक विकास पर विचार किया जाएगा। अपभ्रंश भाषा आठवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी तक साहित्य का वाहक रही। इसके अनेक रूप सामने आये और इसका विस्तार उत्तर से दक्षिण भारत और पूर्व से पश्चिम भारत तक हुआ। क्षेत्रीय विशेषताओं के कारण अपभ्रंश के कई रूप भी सामने आये, जैसे पश्चिमी अपभ्रंश और पूर्वी अपभ्रंश। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में फैली इस भाषा में रचित काव्य का अध्ययन इस इकाई का प्रधान उद्देश्य है। अध्ययन की सुविधा के लिए रचनाओं को प्रबंधात्मक काव्य धारा और मुक्तक काव्यधारा में बाँट दिया गया है। प्रबंधात्मक काव्यधारा के अन्तर्गत स्वयंभू और पुष्पदंत्त की रचना तथा धनपाल के ''भविस्सत कहा'' के काव्यांशों से आपको परिचित कराया जाएगा। इसी प्रकार मुक्तक काव्यधारा के अन्तर्गत रामसिंह के ''पाहुड़दोहा'' और बौद्ध-सिद्ध काव्य के अंश उद्धृत किए गए हैं। हेमचंद्र के व्याकरण में उद्धृत अपभ्रंश के दोहों और अद्दहमाण की रचना ''संदेश रासक'' पर अलग से विचार किया जा रहा है, क्योंकि इनकी प्रवृत्ति उपर्युक्त उल्लिखित काव्यों से बिल्कुल अलग है। जो काव्यांश इस इकाई में उद्धृत किए जा रहे हैं, परीक्षा में

उनमें प्रश्न नहीं पूछे जाएँगे। अपभ्रंश काव्य को सही ढंग से समझने के लिए ये काव्यांश दिए जा रहे हैं।

अपभ्रंश आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की जननी है। अतः इसकी भाषिक और साहित्यिक प्रवृत्तियों का हिन्दी के आदिकाव्य या प्रारंभिक काव्य पर स्पष्ट प्रभाव है। इस पक्ष पर संक्षेप में विचार किया जाएगा। इससे अपभ्रंश और हिंदी काव्य के संबंध को समझाने में मदद मिलेगी।

1.2 अपभ्रंश : अर्थ और स्वरूप

अपभ्रंश का अर्थ है—भ्रष्ट, विकृत अथवा अशुद्ध। इस नाम का प्रयोग पहले पहल उस शब्द के लिए होता था, जो भाषा के सामान्य मानदंड से गिरा होता था। धीरे-धीरे इस नाम का अर्थविस्तार हुआ और यह भाषा विशेष के लिए प्रयुक्त होने लगा। भारतीय आर्यभाषा के विकास में अपभ्रंश प्राकृत के बाद की अवस्था है। इस भाषा में आठवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी के बीच साहित्य का सृजन हुआ।

अपभ्रंश भाषा को समझने के लिए भारतीय आर्यभाषा के विकास को जानना जरूरी है। प्रत्येक युग में एक साहित्यिक भाषा होती है और इसके समानान्तर अनेक जन भाषाएँ बोली के रूप में जीवित रहती हैं। यही जन भाषाएँ उस साहित्यिक भाषा को नया जीवन प्रदान कर विकसित करती रहती हैं। वेदों की भाषा छन्दस् ने तत्कालीन देशी भाषा से शक्ति अर्जित करके संस्कृत का रूप लिया। इसी प्रकार पालि, प्राकृत और अपभ्रंश अवस्था का जन्म हुआ। इसे आप एक चार्ट द्वारा अच्छी तरह समझ सकते हैं:

छन्दस्
|
संस्कृत — प्राचीन भारतीय आर्यभाषा (1500 ई.पू.-500 ई.पू.)
|
पालि
|
प्राकृत — मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा (500 ई.पू.-1000 ई.)
|
अपभ्रंश
|

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ (सिंधी, गुजराती, पंजाबी, ब्रज, अवधी आदि) (1000 ई. से वर्तमान समय तक)।

अपभ्रंश मध्य भारतीय आर्यभाषा की अंतिम कड़ी और **आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं** की जननी है। हिंदी भी उनमें से एक है। इसीलिए हिंदी काव्य को समझने के लिए अपभ्रंश काव्य को समझना जरूरी है।

1.2.1 साहित्यिक भाषा के रूप में अपभ्रंश का विकास

कुछ विद्वान छन्दस् से अपभ्रंश तक की विकास प्रक्रिया को नहीं मानते हैं। उनके अनुसार, यह प्रदेश विशेष की बोली थी, जिसका अस्तित्व प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के युग में भी था। हम इस विवाद में पड़े बिना उन ऐतिहासिक कारणों की खोज करेंगे जिनके कारण अपभ्रंश व्यापक साहित्यिक भाषा के रूप में सामने आयी।

जिस समय (आठवीं-नवीं शताब्दी) अपभ्रंश साहित्यिक भाषा के रूप में सामने आ रही थी, उस समय बंगाल के पालों और मान्यखेट के राष्ट्रकूटों की शक्ति मजबूत थी। पाल और राष्ट्रकूट राजाओं ने अपभ्रंश के कवियों को संरक्षण दिया। सरह, कण्ह आदि चौरासी सिद्ध कवि पालों के शासन में हुए। पुष्पदंत और स्वयंभू जैसे अपभ्रंश कवि राष्ट्रकूटों की छत्रछाया में काव्य रचना प्रस्तुत कर रहे थे। दसवीं शताब्दी में राष्ट्रकूटों की शक्ति क्षीण पड़ने लगी

और गुजरात में सोलंकी चालुक्यों का प्रभाव बढ़ने लगा। सोलंकी चालुक्यों ने भी अपभ्रंश काव्य को प्रोत्साहित किया।

इन कारणों से अपभ्रंश साहित्य का निर्माण विस्तृत भूभाग में शुरू हुआ। एक ओर बंगाल में सरह और कण्ह इसी भाषा में दोहों का निर्माण कर रहे थे, और मिथिला में ज्योतिरीश्वर और विद्यापति अपनी रचना प्रस्तुत कर रहे थे; दूसरी ओर मुलतान में अद्दहमाण ने इसी भाषा को अपने काव्य का माध्यम बनाया था। पुष्पदंत और स्वयंभू ने इसी भाषा को काव्य के लिए चुना। पर इन सभी कवियों की भाषा में भेद था। इसका कारण था स्थानीय बोली का प्रभाव। कवि जिस प्रदेश में रचना कर्म कर रहा था, वहीं की स्थानीय बोली का प्रभाव उसकी रचना पर था। इस प्रकार अपभ्रंश के कई रूप स्थान भेद के कारण सामने आते हैं। स्थान भेद के आधार पर अपभ्रंश को पश्चिमी और पूर्वी दो भागों में बाँटा जा सकता है। पश्चिमी अपभ्रंश के अंतर्गत जैन कवियों की रचनाएँ और पूर्वी अपभ्रंश के अंतर्गत नाथ-सिद्धों की रचनाओं को रखा जा सकता है।

काल भेद के आधार पर भी अपभ्रंश के दो भेद किए जा सकते हैं—पूर्ववर्ती अपभ्रंश और परवर्ती अपभ्रंश। परवर्ती अपभ्रंश का काल दसवीं शताब्दी के बाद माना जाता है। परवर्ती अपभ्रंश को 'अवहट्ठ' या 'देश्य भाषा मिश्रित अपभ्रंश' भी कहते हैं। इसी परवर्ती अपभ्रंश से आधुनिक बोलियों का स्वतंत्र रूप प्रकट हुआ। परवर्ती अपभ्रंश की रचनाओं में 'संदेशरासक' दामोदर पंडित का 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण', ज्योतिरीश्कर ठाकुर का 'वर्णरत्नाकर' और विद्यापति की 'कीर्तिलता' और 'कीर्ति पताका' प्रमुख हैं।

बोध प्रश्न 1

1 निम्नलिखित कथन में से सही और गलत का चुनाव करें। (सही कथन के सामने (✓) का और गलत कथन के सामने (×) का चिन्ह लगाएँ।

क) अपभ्रंश संस्कृत भाषा की बोली है। ( )

ख) अपभ्रंश का तात्पर्य भाषा के सामान्य मापदंड के विकृत रूप से है। ( )

ग) अपभ्रंश हिंदी और प्राकृत के बीच की कड़ी है। ( )

घ) परवर्ती अपभ्रंश को अवहट्ठ भी कहते हैं। ( )

2 स्थान भेद के आधार अपभ्रंश के दो भेदों का उल्लेख करें।

क) ....

ख) ....

3 भारतीय आर्यभाषा के विकास का संक्षिप्त परिचय दें।
(दस पंक्तियों में उत्तर दें)

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

1.3 अपभ्रंश काव्य

अब तक आप समझ गये होंगे कि आठवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी तक जो भाषा साहित्य जगत पर छाई रही, उसे हम अपभ्रंश के रूप में जानते हैं। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि सुदूर दक्षिण को छोड़कर समस्त भारत में इस काल में अपभ्रंश काव्य की रचना हुई। जिन प्रमुख कवियों ने इस भाषा को साहित्यिक गरिमा प्रदान की उनमें स्वयंभू और पुष्पदंत प्रमुख हैं। स्वयंभू को अपभ्रंश का पहला कवि माना जाता है। स्वयंभू की "रामायण" और पुष्पदंत का "महापुराण" भारतीय साहित्य के अनुपम ग्रंथ हैं। अन्य कवियों में जोइन्दु, रामसिंह, हेमचन्द्र, सोमप्रभ, जिनप्रभ, जिनदत्त, राजशेखर, शालिभद्र, अब्दुल रहमान (अद्दहमाण) सरह और कण्ह आदि उल्लेखनीय हैं। इन कवियों ने चरित काव्य, गीति काव्य, विरह काव्य, रहस्य प्रधान कविता तथा कथा काव्य लिखे हैं।

हम इस भाग में अपभ्रंश काव्य का सामान्य परिचय देने जा रहे हैं। हमारा उद्देश्य आपको यह बताना भर है कि हिंदी के साहित्यिक भाषा के रूप में सामने आने के ठीक पहले किस प्रकार का काव्य किस प्रकार की भाषा में लिखा जा रहा था। आज उपलब्ध अपभ्रंश साहित्य का बहुत बड़ा भाग जैन कवियों द्वारा रचित धार्मिक साहित्य के रूप में मिलता है। जैन कवियों ने पौराणिक कथाप्रबंध, रहस्य और नीतियों पर रचनाएं की हैं। जैन अपभ्रंश साहित्य की भाँति ही बौद्धों की अपभ्रंश रचनाएँ भी धार्मिक दृष्टिकोण से लिखी गई हैं। जैन-बौद्ध ग्रंथों के अतिरिक्त अपभ्रंश साहित्य की एक लौकिक धारा भी है जिसमें शृंगार प्रधान प्रबंध एवं मुक्तक दोनों प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं। आइए, हम इनका अवलोकन करें।

1.3.1 प्रबंधात्मक काव्य धारा

पौराणिक कथानकों को लेकर जैन कवियों ने अपभ्रंश में काफी मात्रा में प्रबंधात्मक साहित्य लिखा है। इन रचनाओं में धर्म, उपदेश तथा साहित्यिकता तीनों का मिश्रण मिलता है।

स्वयंभू का काव्य

इस धारा के प्राचीन और श्रेष्ठ कवि स्वयंभू है। स्वयंभू ने राम और कृष्ण से सम्बन्धिद्व चरितकाव्य परम्परा का विस्तार और विकास किया है। राम को लेकर "पउमचरिउ" (पद्मचरितम्) तथा कृष्ण को लेकर "रिट्ठणेमिचरिउ" (अरिष्टनेमिचरित) की रचना की है स्वयंभू (अनुमानतः 8वीं शताब्दी) अपभ्रंश के पहले प्रमुख कवि हैं। मूलतः स्वयंभू उत्तर के निवासी थे पर बाद में वे अपने संरक्षक रयडा धनंजय के साथ दक्षिण के राष्ट्रकूट राज्य में चले गये। स्वयंभू ने चार ग्रंथ लिखे--
1) पउम चरिउ (पद्म चरित अथवा रामचरित) 2) रिट्ठणेमि चरिउ (अरिष्टनेमि चरित या हरिवंश पुराण), 3) पंचमि चरिउ (नागकुमार चरित) और 4) स्वयंभू छंद। पर स्वयंभू की प्रसिद्धि का आधार उनका रामकाव्य अर्थात् पउम चरिउ है।

पउम चरिउ पाँच काण्ड और तिरासी संधियों (सर्गो) वाला एक विशाल महाकाव्य है। राम काव्य लिखने से पूर्व स्वयंभू अपना उद्देश्य स्पष्ट कर देते हैं। वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि मैं जनता की भाषा में जनता के लिए काव्य का निर्माण कर रहा हूँ। राम का चरित्रांकन करते समय न तो उन्होंने आदर्श का दामन पकड़ा और न ही उसमें किसी प्रकार की अलौकिकता का समावेश किया है। उन्होंने अपने मुख्य चरित्र राम को एक साधारण मनुष्य के रूप में प्रस्तुत किया है, जो आपदाओं के खिलाफ लड़ता है और जिसमें सहज मानवीय दुर्बलताएँ भी हैं। तुलसीदास के राम और स्वयंभू के राम में बड़ा फर्क है। तुलसी के राम भगवान के अवतार है, पूज्य हैं, स्वयंभू के राम साधारण मनुष्य हैं, जो सीता को पाने के लिए रोते हैं, रावण जैसे पराक्रमी राजा से संघर्ष कर उसे वापस प्राप्त करते हैं। वही राम सीता की प्राप्ति पर उसे संदेह की नजर से देखते हैं और उसे अग्नि परीक्षा देने को विवश करते हैं। इस

> पुक्क-विमाणे[1] चडिए अणुराएँ[2]
> परिमिय[3] विज्जाहर[4]-संघाएँ[5]
> कोशल-ण्यरि[6] पराइय[7] जावहिं
> दिणमणि[8] गउ अत्थ[9] वणहोतावहिं
> जत्थहो[10] पिययमेण[11] णिटवासिय[12]

1 पुष्पक विमान 2 अनुराग 3 घेरना 4 विद्याधर (विद्वान) 5 समुदाय, 6 नगरी 7 पगाई 8 दिनमान (सूर्य) 9 अस्त
10 जहाँ 11 पिया 12 निवास करते हैं

प्रसंग का बड़ा ही मार्मिक चित्रण स्वयंभू ने किया है, जो उस समाज में नारी और पुरुष की स्थिति को स्पष्ट कर देता है। पिछले पृष्ठ पर प्रसंग को पढ़ें और समझें–

सीता पुष्पक विमान पर चढ़कर बड़े अनुराग से आती है : विद्वानों का समूह उन्हें घेरे हुए है। सीता को कोशल नगरी पराई लगने लगती है, क्योंकि सूर्य के अस्त होने के बाद भी उन्हें महल में जगह नहीं दी जाती है। पति आराम से महल में निवास कर रहा है और सीता पत्नी होकर भी उपवन में रात गुज़ार रही है। सुबह होने पर राम सीता को देखते हैं।

> कंतहि[1] तणिय कंति[2] पक्खप्पिणु[3]
> पभणइ पोम णाहु बिहसेप्पिण[4]
> जेइ वि कुलग्गयाउ णिरवज्जउ[5]
> महिलउ होंति असुद्ध णिलज्जउ

सीता अग्नि परीक्षा के लिए वरासन पर बैठती हैं। इसी समय राम सीता को और सीता राम को देखती हैं। दोनों की आँखों में मिलन की आकांक्षा है, वैसे ही जैसे समुद्र शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन में चाँद को देखकर विचलित हो जाता है। पर इसी समय राम व्यंग्य से मुस्कुराते हैं और सोचते हैं कि ऐसी पत्नी को कैसे स्वीकार किया जाए जो बारह वर्षों तक दूसरे पुरुष के अधीन थी। राम धिक्कारते हुए कहते हैं कि नारी अशुद्ध होती है, निर्लज्ज होती है और मलिनमति होती है। त्रिभुवन में अपने-अपने कुल को मलिन कर अयश फैलाती है।

इस भाग के आरंभ में आपको बताया गया है कि स्वयंभू के राम और सीता साधारण स्त्री-पुरुष के रूप में आते हैं। स्वयंभू को इनका स्वाभाविक चित्र खींचने में अपूर्व सफलता मिली है। स्वयंभू के रामकाव्य में अनेक मार्मिक प्रसंग हैं, जिन्हें पढ़कर पाठक भावुक हुए बिना नहीं रह पाता। इसमें आहत लक्ष्मण के लिए राम का विलाप और मृत रावण के लिए विभीषण का विलाप प्रमुख हैं।

''रिट्ठणेमिचरिउ'' या हरिवंशपुराण में स्वयंभू ने जैन परम्परा के बाइसवें अवतार तीर्थंकर अरिष्टनेमि, कृष्ण और कौरव-पांडवों की कथा का वर्णन किया है। कथा कहने की शैली तथा कवित्व शक्ति ''पउमचरिउ'' से मिलती है। इन कृतियों में स्वयंभू संगीत, कला तथा काव्यशास्त्र के गहरे अध्ययन और चिंतन का संकेत देते हैं।

पुष्पदंत का काव्य

पुष्पदंत अपभ्रंश के दूसरे बड़े कवि हैं। वे ब्राह्मण थे और उनका जन्म बरार में हुआ था। उनका काल 10वीं शताब्दी ई० है। उनका अधिकांश समय राष्ट्रकूट की राजधानी मान्यखेट में बीता। पुष्पदंत शुरू में शैव थे पर बाद में जैन हो गये। वे स्वभाव से अक्खड़ और स्वाभिमानी थे।

पुष्पदंत की प्रसिद्धि का आधार उनकी प्रमुख रचना ''महापुराण'' है। इसमें उन्होंने राम-कथा, कृष्णकथा और जैन तीर्थंकरों की जीवन गाथाओं को शामिल किया है। कट्टर जैन धर्मावलंबी होने के कारण उन्होंने स्वभावतः राम और कृष्ण कथा की अपेक्षा ऋषभदेव को अधिक स्थान और महत्व दिया है। पुष्पदंत का काव्य कौशल रामकाव्य में प्रकट नहीं हो सका है। पर कृष्ण की बाललीला का वर्णन उन्होंने बड़ी कुशलता से किया है। पुष्पदंत के कृष्ण काफी नटखट हैं।
एक झांकी देखिए :

> धूलि धूसरेण[6] वर-मुक्क[7] सरेण तिणा मुरारिणा[8]
> कीला[9] रस वसेण गोवालय-गोवी[10] हियय-हारिणा
> रंगतेण[11] रमत रमंते
> मंथउ[12] धरिउ भमंत अणंते
> मंदीरउ[13] तोडिवि आ-वट्टिउं
> अद्ध-विरोलिउ[14] दहिउं पलोट्टिउ[15]
> कवि गोवि गोविंदहु लग्गी
> एण महारी मंथणि भग्गी[16]

धूल से सना वह मुरारी ब्रज की गोपियों के हृदय को हरनेवाला है। वह क्रीड़ा करता है और गोपियां उसकी क्रीड़ा को देख-देखकर मुग्ध होती हैं। आँगन में बाल-कृष्ण दौड़ा फिर रहा है: कभी मथनी को लेकर दौड़ता है, तो कभी दही की हाँडी तोड़ देता है, कभी आधा बिलोया

---

1 कांता (पत्नी) 2 कांति (शोभा) 3 देखना। 4 विहँसना 5 निर्लज्ज 6 धूल से सने हुए 7 मुक्त 8 कृष्ण 9 क्रीड़ा 10 गोपी 11 आँगन 12 मथनी 13 मथानी 14 आधा बिलोया हुआ 15 पलटना 16 तोड़ना

हुआ दही पलट देता है। गोपियाँ कृष्ण की इस क्रीड़ा से नाराज नहीं होती, बल्कि उन्हें सुख मिलता है।

इस भाग के आरंभ में आपने पढ़ा है कि पुष्पदंत ने रामकाव्य और कृष्णकाव्य की अपेक्षा तीर्थंकर ऋषभदेव की कथा को अधिक महत्व दिया। रामकाव्य और कृष्णकाव्य का वर्णन जहाँ उन्होंने क्रमशः 11 और 12 संधियों में किया है वहीं ऋषभदेव की कथा का वर्णन उन्होंने 37 संधियों में किया है। आदिपुराण में ऋषभदेव के जन्म से लेकर महानिर्वाण तक की कथा वर्णित है। इसके अतिरिक्त ऋषभदेव के दो पुत्रों भरत और बाहुबलि की कथा का भी समावेश किया गया है।

स्वयंभू और पुष्पदंत अपभ्रंश के प्रमुख कवि हैं। इन्होंने अपभ्रंश की भाषा को साहित्यिक गरिमा प्रदान की। डॉ. नामवर सिंह के शब्दों में "इस तरह स्वयंभू और पुष्पदंत दोनों ही कवि अपभ्रंश-साहित्य के सिरमौर हैं। यदि स्वयंभू में भावों का सहज सौन्दर्य है तो पुष्पदंत में बंकिम भंगिमा है; स्वयंभू की भाषा में प्रच्छन्न प्रवाह है तो पुष्पदंत की भाषा में अर्थगौरव की अलंकृत झांकी। एक सादगी का अवतार है तो दूसरा अलंकरण का उदाहरण।"*

चरित काव्य

जैन कवियों ने पौराणिक पात्रों और लोकप्रिय व्यक्तियों को केंद्र में रखकर अनेक काव्य लिखे है। इसमें हरिभद्र सूरि (1159 ई.) का "नेमिनाथ चरिउ", विनयचन्द्र सूरि (1200 ई.) का नेमिनाथ चउपइ" पुष्पदंत का "नागकुमार चरित" अथवा "णायकुमार चरिउ" और "जसहर चरिउ" प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त अपभ्रंश में ऐसे चरित काव्य भी लिखे गये, जिसका मुख्य पात्र या तो कवि की कल्पना की उपज होता था या फिर चरित्र लोक कथाओं से लिया गया होता था। इस प्रकार के काव्य को "कथाकाव्य" कहने का भी प्रचलन था। इस दृष्टि से धनपाल (10वीं शताब्दी ई.) रचित "भविस्सत कहा" अथवा "भविष्यदत्त कथा" उल्लेखनीय है।

"भविस्सत कहा" लोकप्रचलित प्रेमकथा पर आधारित है, जिसमें वणिकपुत्र भविष्यदत्त की करूण गाथा है। वह अपने सौतेले भाई द्वारा कई बार छला जाता है और अंत में जैन धर्म को स्वीकार कर सुखी जीवन व्यतीत करता है।

इस काव्य में कई ऐसे मार्मिक स्थल हैं, जहाँ धनपाल की काव्य-प्रतिभा अपनी पूर्ण गरिमा के साथ सामने आती है। भविष्यदत्त को द्वीप में अकेला छोड़कर जब उनका सौतेला भाई बंधुदत्त भाग जाता है, तो दुखी भविष्यदत्त अकेला पड़ा-पड़ा सोचता है –

गयं णिफफलं[1] ताम सव्वं वणिज्जं[2]।
हुवं अम्ह गोतम्मि लज्जा-वणिज्जं।।
ण जत्ता[3] ण वित्तं[4] मित्रं[5] ण गेहं[6]।
ण धम्मं ण कम्मं, ण जीयं, ण देहं।
ण पुतं कलतं ण इट्ठं ण दिट्ठं[7]।
गयं गयउरे दूर-देसे पइट्ठं।।

व्यापार के उद्देश्य से घर से निकला था, पर सब निष्फल रहा। मैं व्यापार में तो असफल रहा ही; न यश मिला न धन की प्राप्ति हुई, न मित्र बनाया न ही कोई घर बनाया। न धर्म की प्राप्ति की, न कोई कर्म किया। शरीर और प्राण भी आहत हो चुके हैं। न पुत्र की प्राप्ति हुई। मैं न यहाँ का रह गया न वहाँ का रह गया। और तो और अपने घर से इतनी दूर आ गया हूँ जहाँ कोई रहता भी नहीं है।

कहना न होगा कि अपभ्रंश चरित काव्यधारा लम्बे समय तक गतिशील रही है। अपभ्रंश चरित काव्य की परम्परा को आधुनिक बोलियों के साहित्य ने पीछे धकेल कर ठप्प कर दिया लेकिन इस परम्परा के काव्यरूप, कथानक रूढ़ियाँ, छन्द-शैली आदि हिंदी साहित्य में गहरे प्रभाव के साथ प्रकट होते रहे हैं।

1.3.2 मुक्तक काव्य धारा

मुक्तक काव्य-धारा में दो तरह की भाव-धाराएँ देखने को मिलती हैं–1) एक प्रकार की

*. हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग, डॉ. नामवर सिंह, पृ 206 1 निष्फल 2 व्यापार, 3 यश 4 धन 5 मित्र 6 घर 7 न यहाँ के रहे न वहाँ के रहे

रचनाएँ देह में बसने वाले देव का ध्यान करके लिखी गई हैं। 2) जैन गृहस्थों (श्रावकों) को संबोधित करके लिखी गई हैं और इसमें तीर्थ, व्रत, उपवास तथा अन्य कर्मों का उपदेश है। प्रायः इन रचनाओं में कवित्व का अभाव है।

जैन कवियों का रहस्यवादी काव्य

जैन कवियों ने प्रबंधकाव्य तो लिखे ही साथ ही साथ उन्होंने दोहों के माध्यम से मुक्तक काव्य की रचना भी की। इस प्रकार के काव्य में रहस्यवादी साधना का स्वर सुनाई पड़ता है। पर इन कवियों का स्वर साम्प्रदायिक नहीं है। इन्होंने अपनी कविता के माध्यम से जैन और ब्राह्मण धर्म की रूढ़ियों और बाह्याडम्बरों का विरोध किया है। भाषा, भाव और शैली की दृष्टि से ये दोहे निर्गुण काव्य के अन्तर्गत आते हैं।

अपभ्रंश में निर्गुण काव्य लिखने वाले कवियों में जोइन्दु (10वीं शताब्दी ईस्वी-परमात्मा प्रकाश और योगसार) और रामसिंह (1100 ई. के आसपास, पाहुड़होहा) प्रमुख हैं।

"पाहुड़दोहा" "परमात्मा प्रकाश" और "योगसार", से श्रेष्ठ रचना है। इसमें लोकजीवन की घटनाओं के माध्यम से तत्व ज्ञान की बात आसानी से रख दी गयी है। "पाहुड़दोहा" का शाब्दिक अर्थ है "दोहों का उपहार"। पाहुड़ का संस्कृत रूपांतर 'प्रभृत' है, जिसका अर्थ होता है उपहार।

"पाहुड़दोहा" में रामसिंह ने पुराण-पंथी रूढ़िवादी प्रवृत्ति का विरोध किया है। उन्होंने उस "षड्दर्शन" का विरोध किया है, जो एक ही ईश्वर के छह भेद कर देता है :

छह-दंसण[1] धधइ पडिय, मणहँ[2] ण फिट्टिव भँति[3]।
एक्कु देउ[4] छह भेउ[5] किउ, तेणँ ण मोक्खहं[6] जंति।।

षट् दर्शन के धंधे में पड़कर मन की भ्रांति नहीं टूटी। एक देव के छह भेद किए, इसी कारण मोक्ष नहीं मिला।

यह शास्त्र विरोध वस्तुतः पुरोहितों और पंडितों पर सीधा प्रहार था। इन्होंने कोरे अक्षर ज्ञान का भी विरोध किया :

बहुयइँ[7] पढियइँ मूढ़, पर तालू सुक्कई[8] जेंण।
एक्कुजि[9] अक्खरू[10] तं पढ़ुहु, सिवपुरी गम्मई[11] जेण।।

मूर्ख, तूने बहुत पढ़ाई कर ली है, इसी से तुम्हारा तालु सूखता है। एक ही अक्षर पढ़ो जिससे शिवपुरी पहुँचा जा सकता है। तात्पर्य यह कि शास्त्रज्ञान से अनुभव ज्ञान बड़ा है।

रामसिंह अपने "पाहुड़दोहा" में धार्मिक बह्याडम्बरों का विरोध करते हुए लिखते हैं कि जो इनमें फँस गया वह मूल तक कभी नहीं पहुँच सकता है। मनुष्य पवित्र रहकर ही परमपद प्राप्त कर सकता है। पूजा-पाठ, तीर्थयात्रा आदि को पकड़ना तो उसी प्रकार है, जैसे जड़ को छोड़कर डाल को पकड़ा जाए। इसी उद्देश्य से यह दोहा रामसिंह ने रचा है :

मूलु छंडि[12] जो डाल चडि, कहँ तह जोयाभायसि[13]।
चीरूणु[14] वुणणहँ[15] जाइ बढ़, विणु उट्टिटई कपासि।।

जड़ को छोड़कर जो डाल पर जा बैठता है, उसके लिए योगभ्यास कहाँ? क्या रूई को ओटे बिना कपड़ा बुना जा सकता है? इस दोहे में रामसिंह ने स्पष्ट शब्दों में उन रूढ़ियों और आचरणों पर प्रहार किया है, जो वास्तविक ज्ञान तक लोगों को नहीं पहुँचने देते। अनुभव से प्राप्त ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है। जीवन से ही मनुष्य असली ज्ञान प्राप्त करता है। यह अनुभव शरीर के माध्यम से ही प्राप्त होता है। इसी कारण जैन मुनियों ने शरीर को मन्दिर भी कहा है। इस शरीर में ही परमात्मा का निवास होता है।

बौद्ध सिद्ध काव्य

जैन कवियों के समानान्तर पूर्वी प्रदेशों में सिद्ध कवि भी साहित्यिक अपभ्रंश में कविता लिख रहे थे। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि मगध में रहने के कारण इनकी भाषा में पूर्वी प्रयोग देखने को मिलता है। इसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल "देशभाषा मिश्रित अपभ्रंश" अर्थात् पुरानी हिन्दी की काव्य भाषा मानते हैं।

सिद्धों की संख्या 84 थी। पर इनमें सरहपा अथवा "सरोरूह ब्रज"। (8वीं शताब्दी ई.) और कण्हपा या कृष्ण पाद आचार्य (10वीं शताब्दी ई.) उल्लेखनीय हैं।

---

1 दर्शन 2 मन 3 भ्रांति 4 देव 5 भेद 6 मोक्ष 7 बहुत 8 सूखना 9 एक ही 10 अक्षर 11 पहुँचना 12 छोड़कर 13 योगाभ्यास 14 कपड़ा 15 बुनना

इन सिद्ध कवियों का जीवन के प्रति दृष्टिकोण सकारात्मक था। जैन कवियों के समान इन सिद्ध कवियों ने बाह्य आडम्बरों का विरोध किया और अन्तस्साधना पर बल दिया। अंतस्साधना पर जोर देते हुए और पंडितों को फटकारते हुए सरहपा लिखते हैं :

> पंडिअ[1] सअल[2] सत्त[3] बक्खाणइ। देहहिं बुद्ध[4] बसंत न जाणइ।
> अमणागमण[5] ण तेन बिखंडिअ। तोवि णिलज्ज भणइ हउँ पंडिअ।

पंडित लोग हमेशा सत्य ही बोलते हैं, जबकि उन्हें शरीर और बुद्धि का महत्व नहीं मालूम। वे आवागमन को तो समाप्त नहीं कर सकें, तो भी ये निर्लज्ज अपने को पंडित कहते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण अपने को विद्वान मानते हैं, पर इतना भी नहीं जानते कि अन्तस्साधना से परम सुख प्राप्त किया जा सकता है। वे जीवन में व्याप्त सुख-दुःख में ही फँसे हैं और फिर भी अपने को ज्ञानी मानते हैं।

सरहपाद के इस दोहे को देखने पर मालूम होता हैं कि इनकी वाणी जैन कवियों की वाणी से अधिक कठोर है। लेकिन इनका दृष्टिकोण नकारात्मक न होकर सकारात्मक है। सरहपा ने कुछ ''रहस्यात्मक'' शब्दों का इस्तेमाल बार-बार किया है, पर इनकी भाषा स्पष्ट है। सरहपा बड़े साधारण लहजे में कहते हैं :

> जहि मण पवण ण संचरइ, रवि ससि णाह पवेस।
> तहि बढ़ चित्त विसाम करू, सरहें कहिउ उएस।।

अर्थात् जहाँ मन और पवन भी नहीं पुहँच सकते, जहाँ सूर्य और चंद्रमा का प्रवेश नहीं है, वहीं अपने मन को ले जाओ; सरह ने यही उपदेश दिया है।

सिद्ध परम्परा में गुरु-शिष्य संबंध को बहुत महत्व दिया गया है। लेकिन सरहपा का कहना है कि शिष्य और गुरु दोनों को ही ज्ञानी होना चाहिए। अगर एक अंधा कुँए में गिरा हो तो दोनों कुँए में गिर पड़ेंगे :

> जाव ण आप जणिज्जइ, ताव ण सिस्स करेइ।
> अन्धाँ अन्ध कढव तिम, वेण्ण वि कूव पडेइ।।

जब तक आप ठीक से जान न लें, तब तक किसी को शिष्य न बनाएँ। अंधा अगर दूसरे अंधे को कुँए से निकालने का प्रयत्न करेगा, तो दोनों कुँए में गिर पड़ेंगे।

सिद्ध कवियों ने शास्त्र ज्ञान को उस सीमा तक ही महत्वपूर्ण माना है, जिससे शास्त्र ज्ञान का खंडन किया जा सके:

> अक्खर बाढ़ा सअल जगु, णाहि निरक्खर कोइ।
> ताव से अक्खर घोलिया, जाव निरक्खर होइ।।

सकल जग अक्षर (शास्त्र ज्ञान) से बाधित है। निरक्षर कोई नहीं है। इसलिए उतना ही अक्षर घोलो (उतना ही शास्त्र ज्ञान प्राप्त करो) जिससे निरक्षरता प्राप्त हो (शास्त्र ज्ञान का खंडन किया जा सके)।

सरहपा की तरह कण्हपा भी वेद और पुराण के ज्ञान की आलोचना करते हैं:

> आगम-वेअ-पुणेहि, पण्डिअ माण वहन्ति।
> पक्क-सिरीफले अलिअ जिम, बाहेरीअ भमन्ति।।

आगम, वेद, पुराण को ही सब कुछ मान कर विद्वद्जन उन्हें ढोते फिरते हैं, उसी प्रकार जिस प्रकार श्रीफल के बाहर ही भौंरें घूमते रहते हैं।

जाति-पाँति का खण्डन, झूठे शास्त्र ज्ञान की निन्दा, सद्गुरु की महिमा का बखान इनके काव्य की विशेष प्रवृत्ति रही है। नाथ-पंथ के जोगियों ने नागर अपभ्रंश या ब्रज का ढाँचा लिया। इसमें खड़ी बोली और राजस्थानी मिश्रित भाषा की झलक मिलती है।

1.3.3 वीर और श्रृंगार काव्य

अब तक आपने अपभ्रंश काव्य के जिस हिस्से का परिचय प्राप्त किया, उसमें काव्य का केंद्रीय विषय पौराणिक-ऐतिहासिक चरित्र, घटना और धर्म आदि था। अब जिस काव्य का परिचय आप प्राप्त करने जा रहे हैं, उनमें वीर रस और श्रृंगार रस की कविताओं का वर्चस्व है। इस सिलसिले में हम दो ग्रंथों की चर्चा करेंगे। हेमचन्द्र का ''प्राकृत व्याकरण'' और

1 पंडित 2 सारे 3 सत्य 4 बुद्धि 5 आवागमन

अद्दहमाण का "सन्देश रासक"। सबसे पहले आइए, हम हेमचन्द्र रचित "प्राकृत-व्याकरण" में संकलित दोहों का मूल्यांकन करें।

हेमचंद्र-प्राकृत-व्याकरण के दोहे

हेमचन्द्र ने 10वीं शताब्दी में "सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन" नामक एक व्याकरण ग्रंथ लिखा। इसमें उन्होंने संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीनों का समावेश किया। किंतु विशेष बात यह है कि अपभ्रंश का उदाहरण देते समय उन्होंने पूरा का पूरा दोहा उद्धृत किया है। उन्होंने अपभ्रंश के जिन दोहों को उद्धृत किया है उनके रचयिताओं के बारे में ठीक से कुछ मालूम नहीं हो सका है। विद्वानों का अनुमान है कि ये रचनाएँ हेमचन्द्र के व्याकरण से पहले की हैं।

हेमचन्द्र के व्याकरण में जो अपभ्रंश दोहे संकलित हैं, उनमें अपभ्रंश के श्रृंगार और वीर काव्य का परिचय मिलता है। नायिका कभी यह नहीं चाहती कि उसका पति लड़ाई के मैदान से जान बचाकर भाग आए और उसे सखियों के सामने लज्जित होना पड़े। वह तो यह चाहती है कि इससे तो अच्छा है कि उनका पति युद्ध में वीरगति को प्राप्त हो, ताकि वह समाज में गर्व से जी सके:

भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि म्हारा कंतु[1]।
लज्जेजं तु वयंसिअहु[2] जइ भग्गा घरू एंतु[3]।।

अर्थात् भला हुआ जो मेरा पति युद्ध में मारा गया, हे बहिन! यदि वह भागा हुआ घर आता तो मैं अपनी समवयस्काओं के सम्मुख लज्जित होती।

हेमचंद्र के अपभ्रंश के उदाहरण इस प्रकार की लोक-भावनाओं से भरे पड़े हैं। नायिका वीर पति की कामना करती हैं; ऐसे वीर पति की, जो मतवाले हाथी से जूझने में भी न हिचके। देखिए एक दोहा :

आयहि जम्महि[4] अन्नहि वि गोरि सु दिज्जहि कंतु।
गय मत्तहँ चंतकुसंह[5] जो अब्भिडई[6] हसंतु।।

नायिका पार्वती से प्रार्थना कर रही है कि हे गोरी, इस जन्म में और दूसरे जन्म में भी ऐसा पति दीजिए, जो मतवाले, निरंकुश हाथियों से हँसता हुआ जा भिड़े।

जिस समय अपभ्रंश काव्य लिखा जा रहा था, उस समय भारतीय रजवाड़े सामंतवाद की विकृतियों से ग्रस्त थे तथा देश बाहरी आक्रमणों को झेल रहा था। स्थिति में इतनी गिरावट आ गयी थी कि नायिका अपने प्रिय से कहती है कि उस देश में चलें जहाँ तलवार का व्यवसाय मिले, अगर हम यहाँ रहें तो हमारे अंग शिथिल पड़ जाएँगे, हम अस्वस्थ हो जाएँगे।

खग्ग[7]-विसहिउ[8] जहि लहहुं पिय तहिदेसहि जाहुँ।
रण दुब्भिक्खें[9] भग्गाई विणु जुज्झें न बलाहुँ।।

अर्थात् हे प्रिय, जहाँ खड्ग का व्यवसाय मिले उसी देश में चलें; रण-दुर्भिक्ष में हम भग्न (क्षीण) हो गये हैं। बिना युद्ध के नहीं सँभलेंगे (स्वस्थ होंगे)।

नायिकाएँ वीर पति की कामना करती हैं। युद्ध से उन्हें प्रेम है, पर प्रिय का वियोग उन्हें भी सताता है और वे प्रिय को आता देखकर खुशी से इतनी मोटी हो जाती हैं कि उनकी चूड़ियाँ टूट जाती हैं। देखिए, ऐसी ही नायिका का एक चित्र :

वायसु[10] उडावंतिअए पिउ दिट्ठउ सहसत्ति।
अद्धा बल्ला[11] महिहि[12] गय अद्धा फुट तडत्ति।

नायिका कौआ उड़ा रही है, तभी प्रिय दीख पड़ता है। उसकी आधी चूड़ी तो ज़मीन पर गिर जाती है और आधी फूट जाती है।

प्रेमिका सोचती है कि जब प्रिय मुझसे मिलेंगे तब मैं उसमें उसी तरह समा जाऊँगी, जिस तरह नये पुरवे (मिट्टी का बना पानी पीने का पात्र) में जल समा जाता है। इसमें प्रेमिका के पूर्ण आत्मसमर्पण की झलक मिलती है। आइए आप भी इसकी एक बानगी देखिए :

---

1 पति 2 समवयस्क, सहेली 3 आता 4 जन्म में 5 व्यातांकुश (निरंकुश) 6 भिड़ना 7 खड्ग (तलवार) 8 व्यवसाय 9 दुर्भिक्ष (अकाल) 10 कौआ 11 चूड़ी 12 जमीन पर

जइ केवँइ पावीसु पिउ अकिअ[1] कुड्डु[2] करीसु।
पाणिउ नवइ सराबि[3] जिवं सब्बंगें पइसीसु।।

नायिका सोचती है कि यदि किसी प्रकार प्रिय को पा लूँगी तो अकृत (अपूर्व) कौतुक करूँगी। जिस प्रकार पानी नये पुरवा में समा जाता हैं, उसी प्रकार मैं भी प्रिय में सर्वांग प्रवेश कर जाऊँगी।

लेकिन जब प्रिय नहीं आता, तो प्रेमिका निराश हो जाती है और अपनी तुलना उस पपीहे से करती है, जो जल के वियोग में पी-पी की रट लगाता रहता है :

बप्पीहा[4] पिउ पिउ भणंवि[5] कित्तउ रूअहि हयास[6]।
तुह जलि महु पुणु बल्लहइ[7] बिहुँ विन पूरिअ आस।।

हे पपीहा, पी-पी बोलकर हताश होकर कितना रोएगा। तेरी और मेरी स्थिति एक जैसी ही है। तू जल की रट लगा रहा है और मैं अपने प्रिय की रट लगा रही हूँ। पर हम दोनों में किसी की भी आशा पूरी नहीं होगी।

प्रिय बड़ा धोखेबाज है। वह कहकर गया कि मैं थोड़े दिनों में वापस आ जाऊँगा, पर वह अब तक आया नहीं। दिन गिनते-गिनते प्रेमिका की अंगुलियाँ घिस गयी हैं :

जे महु दिण्णा दिअहडा[8]दइएँ पवसन्तेण[9]।
ताण गणन्तिए[10] अंगुलिउ जंज्जरिआउ[11] नहेण[12]।।

मुझे छोड़कर जाते समय प्रिय ने लौटने का जो दिन बताया था, उस दिन नहीं लौटा। उसके बाद दिन गिनते-गिनते नख से मेरी अंगुलियाँ जर्जरित हो गयी है।

ऊपर जिन दोहों को आपने पढ़ा, उनसे आप यह समझ गये होंगे कि अपभ्रंश भाषा में किस प्रकार का वीर काव्य और शृंगार काव्य लिखा जा रहा था। इसमें ऐसी नायिकाओं का वर्णन है, जो युद्ध में अपने प्रिय के वीरगति प्राप्त करने पर आँसू नहीं बहातीं, बल्कि इसे अपना सौभाग्य मानती हैं। उनका मन उस देश में नहीं रमता, जहाँ का वातावरण युद्ध विहीन हो। दूसरी तरफ ये प्रेमिकाएँ अपने प्रिय के वियोग में दुबली भी होती हैं, प्रिय के आने पर खुशी उन्हें भी होती है और उनमें सर्वांग समा जाने की बात करती हैं, पर प्रिय के न आने पर अपनी तुलना उस पपीहे से करती हैं, जो पी-पी की रट लगाता हुआ अन्ततः प्यासा ही रहता है। प्रिय के आने का दिन बीत जाता है, वह नहीं आता। प्रेमिका की अँगुलियाँ दिन गिनते-गिनते जर्जरित हो जाती हैं।

अभी आपने हेमचंद्र के "प्राकृत व्याकरण" में आए दोहों को पढ़ा और उनका अर्थ समझा। आइए, अब "संदेश रासक" को पढ़ें और समझने की कोशिश करें।

संदेश रासक

संदेश रासक एक संदेश काव्य है जिसके रचयिता अब्दुररहमान या अद्दहमाण (12वीं शताब्दी ईसवी) हैं। इसमें बीच-बीच में प्राकृत गाथाएँ हैं। इसमें विजय नगर की विरहिण नायिका एक पथिक से पति को संदेश भेजती है। इसमें दो सौ तेईस छंद हैं। हालांकि कवि ने इसमें एक कथा कही है, पर इसका प्रत्येक छंद अपने आप में स्वतंत्र है। कवि का उद्देश्य कथा कहना नहीं है, उसका एक ही उद्देश्य है—नायिका का विरह वर्णन। नायिका एक पथिक को रोककर अपने हृदय की व्यथा सुनाती है।

विरह परिग्गह[13] छावडइ,[14] पहराविउ[15] निरवक्खि[16]।
तुट्टी देह ण हउ[17] हियउ, तुअ संमाणिय पिक्खि।।

विरह के परिग्रह (सैन्य बल आदि) ने छावड़ी (शरीर) पर निरपेक्ष भाव से (अनदेखे ही) प्रहार कर दिया, जिससे देह तो टूट गयी परंतु तुमसे सम्मानित(युक्त) देखकर हृदय घायल नहीं हुआ। तात्पर्य यह कि विरह के कारण नायिका का शरीर बहुत कमजोर हो गया है, पर प्रिय के प्रति उसका प्रेम इतना गहरा है कि उसके हृदय पर इस विरह का आक्रमण नहीं हो पाता है।

नायिका पथिक से कहती है कि मैं अपनी व्यथा सविस्तार नहीं सुना सकती। क्योंकि मैं बहुत कमजोर हो गयी हूँ :

---

1 अकृत (अपूर्व) 2 कौतुक 3 शराव का पुरवा 4 पपीहा 5 रटना 6 हताश 7 बल्लभ, पति, प्रिय 8 दिन 9 प्रवास करते समय 10 गिनते गिनते 11 जर्जरित 12 नख 13 परिग्रह 14 छावड़ी (बेंत की बनी टोकरी : शरीर के लिए प्रयुक्त) 15 पहरा 16 निरपेक्ष 17 हत (घायल)

संदेसडउ[1] सवित्थरउ[2] पर मइ कहणु न जाइ।
जो कालंगुलि[3] मूँदडउ[4] नो बाहडी[5] समाइ।।

संदेशा विस्तार में है, अर्थात् मुझे प्रिय के पास अपनी व्यथा का पूरा ब्यौरा भेजना है, पर मुझमें इतनी ताकत नहीं कि विस्तार से पूरा वर्णन कर सकूँ। बस यही समझो कि जो कनगुरिया की अँगूठी थी, वह अब मेरी बाँह में समा जाती है।

इस प्रकार पूरा संदेश रासक विरह-वर्णन से भरा पड़ा है। इसमें ऋतुओं का वर्णन विस्तार से हुआ है। इस कवि के सामने वस्तुओं के नाम गिनाने की कवि-परिपाटी थी। फलतः कवि ने वनस्पतियों की नामावली दी है। दीपावली, होली, आदि उत्सवों का तन्मयता से वर्णन किया है। कृति में अनेक छन्दों का प्रयोग है पर सर्वाधिक रासक छंद का प्रयोग मिलता है। इसे पढ़ते समय कालिदास के "मेघदूत" का विरह वर्णन याद आ जाता है। हिंदी में भी इसी प्रकार का एक ग्रंथ लिखा गया है "बीसलदेव रासो" जिसकी चर्चा अगली इकाई में की जाएगी।

बोध प्रश्न 2

4 अपभ्रंश के पाँच कवियों के नाम बताएँ।

क)
ख)
ग)
घ)
ङ)

5 "पाहुड़दोहा" के रचयिता कौन हैं? (सही नाम के आगे (✓) का निशान लगाएँ)

क) स्वयंभू ( )
ख) पुष्पदंत ( )
ग) रामसिंह ( )
घ) सरहपा ( )

6 "जहि मण पवण ण संचरइ, रवि ससि णाह पवेस। ताहि बढ़ चित्त विसाम करू, सरहें कहिउ उएस" का अर्थ बताएँ।

....
....
....
....
....

1.4 अपभ्रंश और हिंदी काव्य का संबंध

पिछले भाग में आपने अपभ्रंश काव्य का परिचय प्राप्त किया और उसकी विशेष प्रवृत्तियों से अवगत हुए। अपभ्रंश काव्य का अध्ययन करते समय आपने पाया कि जिन विषयों को कवि ने अपनी कविता का माध्यम बनाया है उनमें पौराणिक कथाएँ (राम काव्य, कृष्ण काव्य, तीर्थंकरों के जीवन पर आधारित काव्य), धार्मिक रूढ़ियों और बाह्याडम्बरों का विरोध, ऐतिहासिक या लोक नायक का चरित्र (चरित काव्य), शौर्य और श्रृंगार प्रमुख हैं। इस परम्परा को हिंदी काव्य परम्परा ने और आगे बढ़ाया। हिंदी में वीर गाथात्मक काव्य लिखे गये, जिनमें अपभ्रंश के चरित काव्यों की झलक मिलती है। इसी प्रकार सिद्ध-नाथ कवियों की वाणी संत काव्य की पूर्व पीठिका मालूम पडती है। हिंदी के काव्य "बीसलदेव रासो" और "ढोला मारू-रा-दूहा" 'संदेश रासक' की परम्परा में ही आते हैं। इसके अतिरिक्त रीतिकाव्य

1 संदेश 2 सविस्तार 3 कनगुरिया (कानी अंगुली) 4 मुँदरी (अंगूठी) 5 बाँह में।

में जिन चमत्कार की प्रवृत्ति की तरफ विद्वानों ने इशारा किया है, वह प्रवृत्ति अपभ्रंश के शृंगारिक दोहों में मौजूद है।

1.4.1 अपभ्रंश और हिंदी का वीर काव्य

अपभ्रंश में चरित काव्यों की रचना हुई है। इन चरित काव्यों में पुष्पदंत का **णायकुमार चरिउ और जसहर चरिउ** प्रमुख हैं। इनमें प्रमुख पात्रों की वीरता और शौर्य का बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन किया गया है। लेकिन इन पात्रों को ऐतिहासिक नहीं मान सकते, क्योंकि इतिहास में इनका कहीं भी उल्लेख नहीं है। ये मुख्यतः काल्पनिक पात्र हैं।

दूसरी तरफ, हिंदी में भी चरित काव्य लिखे गये हैं, जो रासो-काव्य के नाम से प्रसिद्ध हैं, जैसे पृथ्वीराज रासो, हम्मीर रासो, खुम्मान रासो, परमाल रासो आदि। इनमें राजाओं के धन-वैभव, शौर्य, विवाह-शादी आदि का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन हुआ है। पर अपभ्रंश में लिखे चरित काव्य और हिंदी में लिखे चरित काव्य में एक अन्तर यह है कि अपभ्रंश में जहाँ पौराणिक और अनैतिहासिक पात्रों की कीर्तिगाथा गायी गयी है, वहीं हिंदी में ऐतिहासिक पात्रों को केंद्र में रखा गया है। लेकिन यह भी सच है कि हिन्दी के कवियों ने भी ऐतिहासिकता का ध्यान नहीं रखा है और अपनी कल्पना शक्ति का ज्यादा इस्तेमाल किया है। अपभ्रंश के चरित काव्य में भी कवि की कल्पना शक्ति ही प्रमुख है।

1.4.2 अपभ्रंश और हिन्दी का भक्ति काव्य

अपभ्रंश में एक तरफ जैन कवियों ने राम और कृष्ण काव्य लिखे तो दूसरी ओर सिद्ध-नाथ कवियों ने धार्मिक रूढ़ियों और बाह्याडम्बरों का विरोध करते हुए **अंतस्साधना** पर जोर दिया है। जहाँ तक अपभ्रंश में लिखे राम काव्य और कृष्ण काव्य का सवाल है, उसके बारे में स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि हिंदी के राम काव्य और कृष्ण काव्य पर उसका प्रभाव कम पड़ा। भक्तिकाल की मूल चेतना "भक्ति" थी, जिससे इस युग का राम काव्य और कृष्ण काव्य ओत-प्रोत है। राम और कृष्ण ईश्वर के अवतार हैं। जैन काव्य में राम और कृष्ण साधारण पौराणिक पात्र के रूप में सामने आते हैं, इस काव्य में "भक्ति" नहीं है, राम और कृष्ण अवतार नहीं हैं।

पर कबीर आदि निर्गुण कवियों के काव्य सिद्ध-नाथ काव्य से प्रभावित है। इस संदर्भ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह मत द्रष्टव्य है : "यदि कबीर निर्गुण मतवादी सन्तों की वाणियों की बाहरी रूपरेखा पर विचार किया जाए तो मालूम होगा कि यह सम्पूर्णतः भारतीय है और बौद्ध धर्म के अन्तिम सिद्धों और नाथपंथी योगियों के पदादि से उसका सीधा सम्बन्ध है। वे ही पद, वे ही राग-रागिनियाँ, वे ही दोहे, वे ही चौपाइयाँ कबीर आदि ने व्यवहार की थीं जो उक्त मत मानने वाले उनके पूर्ववर्ती सन्तों ने की थीं। क्या भाव, क्या भाषा, क्या अलंकार, क्या छंद, क्या पारिभाषिक शब्द सर्वत्र वे ही कबीरदास के मार्गदर्शक हैं। कबीर की भाँति ये साधक नाना मतों का खंडन करते थे, सहज और शून्य में समाधि लगाने को कहते थे, दोहों में गुरु के प्रति भक्ति का उपदेश देते थे।[1]

सरहपा का एक पद आपने पिछले भाग में पढ़ा है। वह इस प्रकार है :

> जहि मण पवण ण संचरइ, रवि ससि णांह पवेस।
> तहि बढ़! चित्त विसाम करू, सरहें कहिउ उएस।।

कबीर ने भी इसी प्रकार की एक साखी लिखी है :

> जिहि बन सीह न संचरै, पंखि उड़े नहिं जाय।
> रैनि दिवस का गम नहीं, तहँ कबीर रहा लौ लाइ।।

यह सही है कि कबीर आदि साधकों ने नाथपंथियों और सहजयानियों के बहुत से पद थोड़े फेर बदल के साथ स्वीकार कर लिए हैं, पर इसका मतलब यह नहीं है कि कबीर आदि साधकों ने नाथपंथियों की नकल की है। इनके काव्य में भक्ति का रस मिला हुआ है, जो सिद्ध-नाथ कवियों में उपस्थित नहीं है।

1.4.3 अपभ्रंश और हिंदी का शृंगार काव्य

काव्य का परिचय प्राप्त करने के क्रम में हमने हेमचंद्र के व्याकरण में उद्धृत अपभ्रंश के

1 हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारी प्रसाद द्विवेदी, सं० 1969, पृ० 28

कुछ दोहे पढ़े, साथ ही साथ हमने ''संदेश रासक'' का भी परिचय प्राप्त किया है। ''संदेश रासक'' के ढर्रे पर हिंदी में भी दो विरह काव्य मिलते हैं। ये हैं: बीसल देव रासो (14वीं शताब्दी ईस्वी) और ''ढोला मारू-रा-दूहा (15वीं शताब्दी ईस्वी)

''संदेश रासक'' की तरह ''बीसलदेव रासो'' भी मूलत: विरह काव्य है और दोनों की मुख्य भावधारा एक है, लेकिन ''बीसल देव रासो'' पर ''संदेश रासक'' की अपेक्षा लोक-जीवन का प्रभाव अधिक है। इसके छंद लोकगीत से मिलते-जुलते हैं। इस प्रकार से ''बीसल देव रासो'' शिल्प की दृष्टि से ''संदेश रासक'' का अनुकरण नहीं करता। ''ढोला मारू रा दूहा'' भी एक विरहगीत है। अन्तर केवल यह है कि इसे कथा-काव्य (जिसमें कथा की प्रधानता होती है) के रूप में प्रस्तुत करने की कोशिश की गयी है। ढोला-मारू-रा-दूहा- ''संदेश रासक'' और ''बीसलदेव रासो'' से इस अर्थ में भी भिन्न है कि इसमें संदेश भेजने के लिए क्रौंच पक्षी को चुना गया है। ''संदेश रासक'' में नायिका एक पथिक को रोककर अपनी विरह व्यथा सुनाती है, और ''बीसलदेव रासो'' में राज्य के पंडित को संदेश वाहक बनाया गया है। 'ढोला-मारू-रा-दूहा' इस दृष्टि से थोड़ा भिन्न है। शैली की दृष्टि से 'ढोला-मारू-रा-दूहा' **लोक-गीत** के निकट है।

''संदेश रासक'' मुल्तान में लिखा गया, ''बीसलदेव रासो'' और 'ढोला-मारू-रा-दूहा' की रचना मारवाड़ प्रदेश में हुई। यह काव्य पश्चिमी भारत के लोक जीवन के प्रमाण हैं।

हेमचंद्र द्वारा उद्धृत दोहों में शृंगार काव्य के कुछ ऐसे नमूने मिल जाते हैं, जिनमें चमत्कार की प्रधानता है। चमत्कार की यह प्रवृत्ति रीति काल में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँची है। प्रिय के वियोग में नायिका इतनी दुबली हो गयी है कि उसकी चूड़ी जमीन पर गिर जाती है और प्रिय को देखते ही वह इतनी मोटी हो जाती है कि उसकी चूड़ियाँ टूट जाती हैं। काव्य में इस प्रकार के चमत्कार का समावेश रीतिकाव्य की पंक्तियों की याद दिलाता है।

1.4.4 कविता की पद्धति

अब आप समझ गये होंगे कि अपभ्रंश में लिखा जाने वाला काव्य हिंदी में लिखे जाने वाले काव्य की पूर्व पीठिका है। हिंदी भाषा ने अपभ्रंश भाषा को अपनाते हुए अपनी प्रकृति के अनुसार उसका विकास किया है। यहाँ भाषागत गहराइयों में जाने का न तो अवसर है और न ही उसकी जरूरत। हम यहाँ केवल इतना जान लें कि दोनों भाषाओं में बहुत सी समानताओं-असमानताओं के बावजूद इन भाषाओं में लिखे गये साहित्य में काफी समानता है। इसकी चर्चा हम पिछले भागों में कर चुके हैं। लेकिन हिंदी ने अपभ्रंश के जिस गुण का सबसे ज्यादा निर्वाह किया है वह है काव्य पद्धति या काव्य शिल्प। काव्य शिल्प कविता रचने की पद्धति को कहते हैं। काव्य शिल्प के अन्तर्गत हम उन छंदों और कथानक रूढ़ियों की चर्चा करेंगे, जिनका प्रयोग अपभ्रंशों के साथ-साथ हिंदी में भी हुआ है।

सबसे पहले हम छंद को लेते हैं। अपभ्रंश में सबसे ज्यादा जिस छंद का प्रयोग हुआ है वह है दोहा। इसके अतिरिक्त चौपाई का उपयोग भी अपभ्रंश के कवियों ने किया है। इसके साथ ही साथ ''काव्य'' अथवा ''रोला'' ''छप्पय'' आदि छंदों का प्रयोग भी अपभ्रंश की कविता में हुआ है। इनमें से अधिकांश छंदों का प्रयोग हिंदी में हुआ है। जायसी के ''पद्मावत'' और तुलसीदास के ''राम चरित मानस'' में चौपाई और दोहे का प्रयोग अपभ्रंश के छंदों की स्मृति को ताजा कर देता है।

हिंदी के समृद्ध गेय काव्य की जड़ें अपभ्रंश काव्य में निहित हैं। इस क्षेत्र का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण जगनिक द्वारा रचित ''परमाल रासो'' या आल्हखण्ड है।

रास, फाग, चाँचर आदि अपभ्रंश भाषा के प्रमुख गेय काव्य हैं। ''रास काव्य'' गेय काव्य था जिसमें रासा या रास छंद का प्रयोग होता था, पर एकरसता भंग करने के लिये बीच-बीच में दूसरे छंद भी दिये जाते थे। पर आगे चलकर ''रास काव्य'' उस काव्य रूप का नाम हो गया जिसमें गेय छंदों की प्रधानता हो। हिंदी का ''बीसलदेव रासो'' ऐसा ही ''रासो काव्य है। यह काव्य रूप मूलत: कोमल भावों (प्रेम प्रसंग, शृंगार वर्णन आदि) का वाहक था, किन्तु वीर गाथाओं के लिये भी उस काव्य रूप का उपयोग होने लगा, जैसे ''पृथ्वीराज रासो''।

''फाग'' एक लोकगीत है जिसे बसंत में गाया जाता हैं। जैन कवियों के लिये फागों में धार्मिक विचारधारा साफ झलकती थी। जिनपद्म सूरि का लिखा एक फाग थूलिभद्द फागु उपलब्ध है। हिंदी में कबीरदास के नाम से कुछ ''फाग'' मिलते हैं। फाग गाने की यह परंपरा आज तक गाँवों में जीवित है। होली के अवसर पर गाँव के लोग अब भी ''फाग'' गाते हैं।

हिंदी में गेय पद्यों की लम्बी परंपरा है। सूरदास का सम्पूर्ण ''सूर सागर'', तुलसी की ''गीतावली'' तथा ''विनय पत्रिका'' गेय पदों में ही रचित है। संभवतः इस गेय परंपरा पर अपभ्रंश का प्रभाव है। अपभ्रंश में भी गेय पदों में कविता लिखी जाती थी। सिद्धों के ''चर्यापद'' वस्तुतः गेय पद ही हैं।

कथानक रूढ़ियाँ

अभी हमने उन छंदों और काव्य पद्धतियों की बात की, जो अपभ्रंश में भी मिलते हैं और हिंदी में भी। अब हम कुछ ऐसी ही कथानक रूढ़ियों की चर्चा करेंगे। काव्य में कथानक रूढ़ियाँ लोक-विश्वासों पर आधारित होती हैं जो बार-बार प्रयुक्त होने के कारण रूढ़ि बन जाती हैं। भारतीय साहित्य में कथानक रूढ़ियों की भरमार है। कथानक रूढ़ियों के अन्तर्गत काव्य-शिल्प और काव्य में प्रयुक्त प्रतीकों की चर्चा की जाएगी। मसलन, प्रबन्ध काव्य लिखने का एक अनुशासन बना दिया गया। जैसे,आरम्भ , मंगलाचरण, आत्मनिवेदन, दुर्जन निन्दा, सज्जन प्रशंसा। अपभ्रंश में इस पद्धति पर प्रबन्ध काव्य लिखने की प्रवृत्ति बढ़ी और हिंदी के महत्वपूर्ण कवि तुलसीदास ने इस नियम का पालन किया। इसी प्रकार मुक्तक काव्य में कवि का नाम रखने की प्रथा थी। अपभ्रंश में तो केवल सरह की रचनाओं में यह प्रवृत्ति देखने को मिलती है, पर हिंदी में अधिकांश मुक्तक कवियों (बिहारी को छोड़कर) ने इस परिपाटी का निर्वाह किया है। इसी प्रकार नख-शिख वर्णन, संध्या-ऊषा वर्णन तथा फूलों का वर्णन आदि भी बिल्कुल नियमानुसार होता है। नख-शिख वर्णन सम्बन्धी इन रूढ़ियों की स्वयंभू और पुष्पदंत के काव्य में मिलती है। ''पृथ्वीराज रासो'' में इस परिपाटी का पूर्ण पालन हुआ है। अपभ्रंश के काव्यों में विशेष रूप से कथानक : रूढ़ियाँ प्रयुक्त हुई हैं– 1 उजाड़ नगर का मिलना, कुमारी दर्शन तथा उससे विवाह (भविसयत्तकहा) 2 प्रथम दर्शन गुण श्रवण या चित्र दर्शन से प्रेम (करकडुं चरिउ, णाय कुमार चरउ) 3 दीपान्तर, विशेष कर सिंहल देश की यात्रा और जहाज डूबना (भविसयत्तकहा) काव्यों की बाह्य प्रबन्ध रूढ़िय भी परवर्ती साहित्य में पाई जाती हैं।

क) अपभ्रंश के सभी प्रबन्ध काव्य सन्धियों में विभक्त हैं। स्वयंभू के दोनों महाकाव्य काण्डों में विभक्त है पर सन्धियों को भी स्थान मिला है। अपभ्रंश की शेष सभी प्रबन्ध कृतियाँ सन्धियों में विभक्त हैं। वस्तुतः 15 से 38 कडवकों की एक संधि होती है। कुछ छंदों के बाद धत्ता जोड़कर कडवक बनाये जाते हैं। वस्तुतः कडवक तो पदों (स्टेन्जाज) के समान होता है।

ख) अपभ्रंश के प्रायः सभी प्रबन्ध काव्य कडवक योजना के रूप में मिलते हैं। केवल ''णेमिणाह चरिउ'', ''सुन्दसंण चरिउ'' और ''संदेश रासक'' इसके अपवाद हैं। पुष्पदंत के काव्यों में नाना छन्दों का प्रयोग हुआ है पर वे कडवक बद्ध हैं। यद्यपि अपभ्रंश का प्रिय छन्द दोहा है, पर प्रबंध काव्यों में अधिकतर पद्धाड़िया, अडिल्ल, रड्डा आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है। इनमें प्रधानता पद्धड़िया की है जो चौपाई से मिलती है। हिंदी में यह पद्धति ''परमाल रासो'', ''पद्मावत'' तथा ''रामचरित मानस'' में बार-बार अपनायी गयी है।

ग) अपभ्रंश में मंगलाचरण, काव्य लिखने का कारण, विषयवस्तु की महत्ता, कवि की विनम्रता-प्रदर्शन, पूर्व कवियों की प्रशस्ति, नायक के देश और नगर का वर्णन करने की प्रथा प्रचलित रही है। यह अपभ्रंश काव्यों की निजी विशेषता थी जिसे हिंदी काव्य परम्परा ने भी अपनाया है।

घ) अधिकांश अपभ्रंश काव्यों में कथा का आरंभ दो व्यक्तियों के प्रश्नोत्तर के रूप में हुआ है। कथा शैली के लिए यह पद्धति अनुकूल भी थी। प्राकृत तथा अपभ्रंश के सभी काव्य प्रश्नोत्तर या संवाद रूप में हैं। हिंदी में ''पृथ्वीराजरासो'' और ''रामचरित मानस'' इसी प्रश्नोत्तर शैली को अपनाते हैं।

बोध प्रश्न 3

7 निम्नलिखित हिंदी के काव्यों में कौन अपभ्रंश काव्य से बिलकुल भिन्न हैं :
(सही उत्तर के सामने (✓) का निशान लगाएँ)

क)	रामकाव्य	( )
ख)	संतकाव्य	( )
ग)	वीर काव्य	( )
घ)	श्रृंगार काव्य	( )

8 "संदेश रासक" से मिलती-जुलती हिंदी के दो रचनाओं का नाम बताए:

क) ....

ख) ....

9 नीचे दिए गये विकल्पों में से चुनकर रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए:
हिंदी के रीतिकाव्य की प्रमुख प्रवृत्ति .... के बीज .... काव्य में मिल जाते हैं।
(हिंदी, अपभ्रंश, चमत्कार, लौकिकता)

10 अपभ्रंश के कौन-कौन से छंद हिंदी में प्रयुक्त हुए ? किन्हीं दो के नाम लिखिए:

क) ....

ख) ....

1.5 सारांश

इस इकाई में आपने अपभ्रंश काव्य का अध्ययन किया।

"अपभ्रंश" का मतलब समझने के क्रम में आप जान गये होंगे कि अपभ्रंश संज्ञा का प्रयोग पहले शब्द विशेष के लिए होता था, बाद में भाषा विशेष के लिए होने लगा। आठवीं शताब्दी ई. से लेकर 14वीं शताब्दी तक यह काव्य-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित रही और इसमें विशाल साहित्य का सृजन हुआ।

आप यह समझ चुके होंगे कि अपभ्रंश के कई रूप हैं, जिनमें प्रमुख है पश्चिमी अर्थात् शौरसेनी अपभ्रंश और पूर्वी अर्थात् मागधी अपभ्रंश।

अब आप यह बेहिचक कह सकते हैं कि स्वयंभू और पुष्पदंत के काव्य और संदेश रासक आदि **पश्चिमी अपभ्रंश** और सरहपा तथा कण्हपा की रचना **पूर्वी अपभ्रंश** का उदाहरण है। इनकी काव्यगत विशेषताओं से भी आप परिचित हो गये होंगे।

आप अब कह सकते हैं कि अपभ्रंश काव्य और हिंदी काव्य में अटूट रिश्ता है और हिंदी ने अपभ्रंश की जीवंत परम्परा को आगे बढ़ाया है।

1.6 शब्दावली

अंतस्साधना: सिद्धों और नाथों द्वारा अपनायी गयी साधना की पद्धति, जिसमें हृदय और मन द्वारा ईश्वर को प्राप्त करने की बात की जाती है

अर्थगौरव: अर्थ की गंभीरता

आगम: वेद

ऋषभदेव: जैनों के तीर्थंकर

देशीभाषा: लोकभाषा, जनता द्वारा बोली जानेवाली भाषा

परिग्रह: स्वीकार करना

प्रच्छन्न प्रवाह: छिपा हुआ प्रवाह

पद्धड़िया: एक प्रकार का छंद

वरासन: उत्तम आसन

रेवा नदी: पुराण कथाओं में मिलने वाली एक नदी।

1.7 उपयोगी पुस्तकें

गुलेरी, चंद्रधर शर्मा, *पुरानी हिंदी*, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

द्विवेदी, हजारी प्रसाद, *हिंदी साहित्य का आदिकाल*, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना।

द्विवेदी, हजारी प्रसाद *हिंदी साहित्य की भूमिका*, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली।

सिंह, नामवर, *हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

शुक्ल, रामचंद्र, *हिंदी साहित्य का इतिहास*, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 क) गलत
  ख) सही
  ग) सही
  घ) सही

2 क) पश्चिमी अपभ्रंश
  ख) पूर्वी अपभ्रंश

3 भारतीय आर्यभाषा के विकास को मोटे तौर पर तीन चरणों में विभक्त किया जाता है। प्राचीन भारतीय आर्यभाषा (1500 ई०पू०–500 ई०पू०) मध्य कालीन भारतीय आर्यभाषा (500 ई०पू०-1000 ई०पू०), और आधुनिक भारतीय आर्यभाषा (1000 ई० से)। प्राचीन भारतीय आर्यभाषा में संस्कृत, मध्य कालीन भारतीय आर्यभाषा में पालि, प्राकृति और अपभ्रंश तथा आधुनिक भारतीय आर्यभाषा में हिंदी, गुजराती, मराठी, बंगला, असमिया आदि शामिल किए जाते हैं। इनका विकास इस प्रकार हुआ छंदस् संस्कृत पालि प्राकृत, अपभ्रंश, आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ।

बोध प्रश्न 2

4 स्वयंभू, पुष्पदंत, सरहपा, कण्हपा, रामसिंह

5 ग) रामसिंह

6 जहाँ मन और वायु भी नहीं पहुँच सकते हैं, जहाँ सूर्य और चन्द्रमा का भी प्रवेश नहीं है, वहीं अपने मन को ले जाओ, सरह ने यही उपदेश दिया है।

बोध प्रश्न 3

7 रामकाव्य

8 क) ढोला-मारू-रा-दूहा
  ख) बीसलदेव रासो

9 चमत्कार, अपभ्रंश

10 दोहा, चौपाई

इकाई 2 : हिंदी का आदिकाव्य : स्वरूप एवं विकास

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 आदिकाव्य : अर्थ और स्वरूप
 2.2.1 आदिकालीन परिस्थितियाँ
 2.2.2 आदिकालीन काव्य का स्वरूप
2.3 आदिकाव्य की प्रतिनिधि रचनाएँ
 2.3.1 पृथ्वीराज रासो
 2.3.2 बीसलदेव रासो
 2.3.3. ढोला मारू रा दूहा
 2.3.4 विद्यापति की कविता
 2.3.5 अमीर खुसरो की कविता
2.4 आदिकाव्य की साहित्यिक प्रवृत्ति
 2.4.1 ऐतिहासिक काव्य
 2.4.2 शृंगारिक काव्य
 2.4.3 लौकिक काव्य
2.5 आदिकाव्य की शिल्पगत विशेषताएँ
 2.5.1 कथात्मक शैली और कथानक रूढ़ियाँ
 2.5.2 गेयता
 2.5.3 काव्य रूप
 2.5.4 भाषा
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 उपयोगी पुस्तकें
2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

इकाई 1 में हमने अपभ्रंश काव्य का अध्ययन किया। अब हम हिन्दी "आदिकाव्य" का अध्ययन करने जा रहे हैं। इसे पढ़ने के बाद आप :

- बता सकेंगे कि हिंदी का आदिकाव्य किसे कहते हैं,
- तत्कालीन परिस्थितियों से परिचित हो सकेंगे,
- इस तथ्य को सामने रख सकेंगे कि आदिकाल में हिंदी भाषा और साहित्य के निर्माण में कौन-कौन सी प्रवृत्तियाँ काम कर रही थीं,
- आदिकाव्य की प्रतिनिधि रचनाओं का परिचय प्राप्त कर सकेंगे और उनकी काव्यगत विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे,
- आदिकाव्य की प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्तियों को पहचान सकेंगे,
- और यह व्याख्यायित कर सकेंगे कि आदिकाव्य में कौन-कौन सी शिल्पगत और भाषागत प्रवृत्तियाँ सक्रिय थीं।

2.1 प्रस्तावना

पूर्ववर्ती इकाई में दसवीं शताब्दी के पहले की साहित्यिक गतिविधियों की चर्चा की गयी है। प्रस्तुत इकाई में दसवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी तक के साहित्यिक प्रयत्नों की एक रूपरेखा प्रस्तुत की जा रही है। इसे हिंदी का आदिकाव्य या आरंभिक काल माना जाता है। इस इकाई को पढ़ते समय आप महसूस करेंगे कि दसवीं शताब्दी के बाद जो प्रवृत्तियाँ सामने उभर कर आयीं, उनमें से अधिकांश का बीज अपभ्रंश काव्य में पड़ चुका था।

इस इकाई में सर्वप्रथम इस प्रश्न पर विचार किया जाएगा कि आदिकाव्य से क्या तात्पर्य है? आदिकाव्य का मतलब है हिंदी साहित्य का आदिकाव्य या आरंभिक काव्य। साहित्य अपने समय की उपज होता है। आदिकाव्य भी तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित हुआ। इन परिस्थितियों की चर्चा संक्षेप में की जाएगी। भारतीय सामंतों के आपसी युद्धों और बाहर से होने वाले तुर्की आक्रमण के कारण एक राजनीतिक अस्थिरता आ गयी थी। युद्ध में भारतीय सामंतों का अधिक समय बीतता था। कवि अपने आश्रयदाता राजाओं की प्रशस्ति किया करते थे और उनकी वीरता का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन कर उन्हें उत्साहित किया करते थे। इस कारण इस युग में वीरगाथात्मक काव्य अधिक लिखे गये। इसके अतिरिक्त इस काल में विरह गीत भी लिखे गये, लोक कथाओं को आधार बना कर काव्यों की रचना हुई, शृंगारिक रचनाएँ सामने आयीं और पहेलियों-मुकरियों का निर्माण हुआ। इन सभी प्रवृत्तियों की एक-एक प्रतिनिधि रचना के काव्यांशों का अध्ययन आप इस इकाई में करेंगे। ये रचनाएँ हैं पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो, ढोला मारू रा दूहा, विद्यापति की कविता और खुसरो की कविता। ये काव्यांश आपकी जानकारी के लिए दिए जा रहे हैं। परीक्षा में इन काव्यांशों से प्रश्न नहीं पूछे जाएँगे।

अंत में इन रचनाओं के आधार पर आदिकाव्य की कथ्यगत और शिल्पगत विशेषताओं की चर्चा की जाएगी। तीन प्रकार की रचनाएँ इस काल में सामने आती हैं – वीरगाथात्मक, शृंगारपरक और लोक कथाओं पर आधारित काव्य। आदिकाव्य में नये शिल्पगत प्रयोग हुए और परंपरा का भी निर्वाह हुआ। अपभ्रंश की बहुत सी विशेषताओं (जैसे कथा काव्य, चरित काव्य) का निर्वाह हिन्दी के आरंभिक काव्य में हुआ और नयी कथानक रूढ़ियों का भी समावेश हुआ। इसकी चर्चा भी इस इकाई में की जाएगी।

2.2 आदिकाव्य : अर्थ और स्वरूप

यहाँ आदिकाव्य हिंदी के आरंभिक काव्य के पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुआ है। हिंदी साहित्य के प्रारंभिक चरण को आदिकाल (10वीं श. को 14वी श.) कहा गया है। इसी कारण इस काल में रचे काव्य को 'आदिकाव्य' की संज्ञा दी गयी है। 'आदिकाव्य' को 'वीरगाथात्मक काव्य' भी कहा गया है, क्योंकि इस काल में वीररस से ओतप्रोत काव्य रचने की प्रवृत्ति प्रबल रही है। लेकिन इस युग में केवल वीर काव्य ही नहीं लिखे गये, बल्कि शृंगार परक रचनाएँ भी सामने आयीं और लोक कथाओं पर आधारित काव्य भी लिखे गये। इसके अतिरिक्त सिद्ध-नाथों का रहस्यात्मक काव्य भी इस युग में रचा जा रहा था। वस्तुतः हिंदी साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियाँ की शुरूआत इस युग में हुई। उनका विकास परवर्ती युगों में हुआ। यही कारण है कि इस युग को आदिकाल और इस युग के काव्य को आदिकाव्य कहा गया है।

2.2.1 आदिकालीन परिस्थितियाँ

साहित्य के निर्माण में समकालीन परिस्थितियों का व्यापक योगदान होता है। आदिकालीन साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। आदिकालीन साहित्य या आदिकाव्य की प्रवृत्तियाँ काफी हद तक तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित हुई। यह राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अस्थिरता का युग था। आइए, इन परिस्थितियों पर अलग से विचार करें।

राजनीतिक परिस्थिति

इस काल तक केंद्रीय सत्ता कमजोर हो चुकी थी। सन् 647 ई. में हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद भारत में केंद्रीय शासन समाप्त हो गया था और छोटे-छोटे राज्यों का जन्म हो गया था। ये राजा आपस में लड़ते रहते थे। हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद पूर्वी भारत के पालवंश, राजस्थान के गुर्जर प्रतिहार तथा महाराष्ट्र-कर्नाटक के राष्ट्रकूट राजाओं में आपसी संघर्ष बढ़ने लगा। इस संघर्ष से मिहिर भोज (836 ई. गुर्जर प्रतिहार) की शक्ति उभरती गई और 10वीं सदी के मध्य भाग तक कायम रही। 916 ई. में दक्षिणी राष्ट्रकूट राजा इन्द्रनित्य वर्मा ने उत्तरी भारत पर आक्रमण किया और उत्तरी भारत को अस्त-व्यस्त कर दिया। मध्य देश (हिंदी प्रदेश) एक बार फिर टूटकर अनेक छोटे राज्यों और लालची सामंतों का गढ़ बन गया। मध्य देश पर चंदेलवंश, कालचूरिवंश, चौहान वंश, परमाल वंश और चालुक्य वंश का शासन हो गया। ये राजवंश निरंतर आपस में युद्ध करते रहे। राजनीतिक एकता की कमी के इसी वातावरण में तुर्कों के आक्रमण हुए। गजनी के जिन तुर्क सुलतानों ने भारत पर आक्रमण किए उनमें

महमूद गजनवी (997-1030 ई.) प्रमुख था। भारत पर उसने कई बार आक्रमण किए तथा मध्यदेश के राजाओं को परास्त किया। कन्नौज के गहलवार वंश तथा दिल्ली–अजमेर के चौहान वंश की शक्ति को जयचंद तथा पृथ्वीराज चौहान कायम न रख सके। तुर्क-अफगान शासक मुहम्मद गोरी ने इस देश को रौंद डाला और सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक को भारत में नियुक्त कर दिया। इधर देश में गुलाम वंश (1206-1290 ई.), खलजी वंश (1290-1320 ई.) तुगलक वंश (1320-1414 ई.) सैयद वंश (1414-1451 ई.) आदि उभरे और अस्त होते गये। घोर अराजकता, मार काट का यह काल हिंदी साहित्य का आदिकाल कहलाता है। इस काल में अनेक अन्तर्विरोधी धाराएँ–वीर और श्रृंगार, कर्मकाण्ड और कर्म, जाति-पाँति और धर्म, अवतार और ऐतिहासिकता–आपस में टकरा रही थीं।

सांस्कृतिक-धार्मिक परिस्थिति

सांस्कृतिक-धार्मिक परिवेश में धर्म-सम्प्रदाय की चेतना और दार्शनिक धाराएँ उमड़-घुमड़ रही थीं। वेदांत, बौद्ध, जैन मत की भिन्न-भिन्न प्रांतों में विभिन्न शाखाएँ दिखाई देने लगीं। बौद्ध मत महायान और हीनयान में विभाजित हो गया था। कालांतर में इन्हीं से सहजयान, मंत्रयान, वज्रयान आदि उभरे। स्त्री-सम्भोग और स्वर्ग की धारणा में तंत्र, मंत्र और हठयोग तीनों ने मैथुन को या महासुखवाद को बढ़ावा दिया। अवसर पाकर शैव, शाक्त और वैष्णव आचार्यों ने अनेक मतो-सिद्धांतों का प्रचार किया। शाक्त मत में बुद्ध को शिव के रूप में योगी बना लिया गया। शाक्तों ने शैव और तंत्र मत को मिलाकर ब्रह्म् और शक्ति को एक कर लिया। फलतः नारी का शक्ति रूप यहाँ प्रमुख हो गया। इस काल का साहित्य इन्हीं प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करता है।

पूजा, स्वर्ग, देवता, स्त्री-पुरुष, शरीर स्थित चक्र, शास्त्र, धर्म, मंत्र, मुद्रा, साधना, उपासना, जादू, ध्यान-योग आदि सभी पर बौद्धों–शाक्तों के चिंतन की अमिट छाप पड़ी थी। आदिकाल के साहित्य में इस छाप के अनगिनत उदाहरण मिलते हैं।

सामाजिक परिस्थिति

इस काल का सामाजिक संगठन धर्म से प्रभावित था। इसमें वर्ण-व्यवस्था को पुनः स्थापित किया गया। ब्राह्मणों का शिक्षा पर एकाधिकार हो गया। भोग, युद्ध, लूटपाट का यह युग सामंतवाद का विकृत स्वरूप लेकर खड़ा हुआ। इस कारण इस युग में वीरता और श्रृंगार को आधार बनाकर अधिकांश काव्य रचे गये।

2.2.2 आदिकालीन काव्य का स्वरूप

राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अस्थिरता के वातावरण में हिंदी साहित्य का निर्माण हो रहा था। आदिकालीन राजनीतिक अस्थिरता का सीधा प्रतिफलन वीरगाथात्मक काव्य है। भारतीय राजा आपस में लड़ते रहते थे। तुर्कों का भी आक्रमण हो रहा था। राजाओं का ज्यादा समय लड़ाई के मैदान में बीतता था। वे अपनी प्रशंसा सुनना चाहते थे। कवि अपने आश्रयदाता राजाओं की बढ़ा चढ़ा कर प्रशंसा करते थे और उनका उत्साह बढ़ाते थे। इस प्रकार वीरगाथात्मक काव्यों की रचना हुई। कवियों ने राजा की वीरता के साथ-साथ उनकी केलि-क्रीड़ाओं का भी वर्णन किया। युद्ध और प्रेम से युक्त ऐसे काव्यों को "रासो काव्य" कहा गया है। रासो काव्य की सबसे प्रमुख कृति **पृथ्वीराज रासो** है।

'**बीसलदेव रासो**'' रासो काव्यों में अपवाद है। इस में युद्ध और प्रेम की कथा नहीं है। बल्कि यह एक **विरह गीत** है, जिसे संदेश काव्य के रूप में रचा गया है। यह कालिदास के 'मेघदूत'' और अब्दुर्रहमान के "संदेश रासक'' की परम्परा की एक प्रतिनिधि रचना है।

इस युग में लोक कथाओं को आधार बनाकर लोक गीतों की रचना हुई। 'ढोला मारू रा दूहा' इस क्षेत्र की प्रतिनिधि रचना है।

रासो काव्य और 'ढोला मारू रा दूहा' पर राजस्थानी का प्रभाव स्पष्ट है। इनमें ब्रजभाषा का भी पुट है। यह भाषा आदिकालीन पश्चिमी हिंदी का प्रतिनिधित्व करती है। आदिकाल में पूर्वी हिंदी का प्रतिनिधित्व "मैथिली'' करती है। इस भाषा के प्रमुख कवि विद्यापति हैं।

आदिकाल में खड़ी बोली हिंदी में भी रचना हो रही थी। यह दिल्ली के आसपास की हिंदी थी, जिसपर अरबी-फारसी का प्रभाव स्पष्ट था। अमीर खुसरो की काव्य-भाषा इसका प्रमाण है।

इस युग में एक तरफ हिंदी भाषा का निर्माण हो रहा था और दूसरी तरफ जैन, नाथ और सिद्ध अपभ्रंश भाषा में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कर रहे थे । अतः इस काल की हिंदी पर अपभ्रंश का प्रभाव देखा जा सकता है।

बोध प्रश्न 1

1 निम्नलिखित विकल्पों में से सही उत्तर चुनकर (✓) का निशान लगाएँ।
आदिकाव्य का रचना काल कब से कब तक है :

क) 12वीं शताब्दी से 15वीं शताब्दी ( )
ख) 10वीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी ( )
ग) 8वीं शताब्दी से 11वीं शताब्दी ( )
घ) तीसरी शताब्दी से 7वीं शताब्दी ( )

2 आदिकाव्य से आप क्या समझते हैं? (दो पंक्तियों में उत्तर दें)

....

....

3 आदिकाल में किस प्रकार के काव्य का निर्माण हो रहा था?

i)

ii)

2.3 आदिकाव्य की प्रतिनिधि रचनाएँ

इकाई के इस भाग में आप प्रमुख आदिकालीन रचनाओं का परिचय प्राप्त करेंगे। इस युग में अनेक प्रवृत्तियाँ एक साथ उभरी हैं। फलस्वरूप वीर रस से ओतप्रोत काव्य भी लिखे गये और शृंगार रस से युक्त रचनाओं का भी आविर्भाव हुआ। लोक कथाओं पर आधारित प्रेम कथाएँ भी लिखी गयीं। लौकिक काव्य (जैसी पहेली) की भी रचना हुई। ब्रजभाषा और राजस्थानी का मिला-जुला रूप भी काव्य का वाहक बना और मैथिली में भी साहित्य रचित हुआ। यहाँ तक कि खड़ी बोली भी साहित्य का माध्यम बनी। जिन रचनाओं का परिचय इस भाग में प्रस्तुत किया जा रहा है, वे इन प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। ऐसी रचनाएँ हैं – पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो, ढोला मारू रा दूहा, विद्यापति और अमीर खुसरो की कविता।

''पृथ्वीराज रासो'' आदिकालीन हिंदी साहित्य की प्रमुख रचना है। इसलिए इसकी चर्चा सबसे पहले की जा रही है। पर इस रचना को समझने के लिए रासोकाव्य परंपरा को जानना आवश्यक है।

रासोकाव्य परंपरा : हिंदी साहित्य में रासो काव्य की दो भिन्न ढंग की परंपराएँ अपभ्रंश काल से ही मिलने लगती हैं। (1) नृत्य-गीत परक रासो काव्य परम्परा (2) छंद वैविध्यपरक रासो काव्य परम्परा। ध्यान में रखने की बात यह है कि रासक एक प्राचीन नृत्य है। बाद में यह नाट्य रूपक में बदल गया।

(क) **गीत–**नृत्यपरक रासो परंपरा में सैकड़ों रचनाएँ मिलती हैं। किंतु ''बीसलदेव रासो'' को छोड़कर शेष रचनाएँ प्रायः एक ही ढंग से लिखी गई हैं। इस परंपरा की कृतियों में सबसे प्राचीन जिनदत्त सूरि की रचना ''उपदेश रसायन'' मानी जाती है। इस कृति का रचनाकाल तो अज्ञात है किंतु अनुमान यह है कि यह कृति सन् 1143 ई. के आसपास की होगी। यह रचना चउपई छंद में है और 32 छंदों में समाप्त हो जाती है। कवि ने इसे ''रसायन'' कहा है। दूसरी रचना शालिभद्र सूरि की ''भरतेश्वर बाहुबली रास'' है। इसकी रचना तिथि सन् 1184 ई. दी गई हैं। इसी परंपरा में शालिभद्र सूरि की ''बुद्धिरास'' । श्री आसगु की ''जीवदयारास'' ''चंदनबालारास'' धर्मसूरि की ''जंबूस्वामी रासा'' मण्डलिक की ''पंथड रास'' आदि का उल्लेखनीय स्थान है।

(ख) **छंद–**वैविध्यपरक रासो परंपरा के अंतर्गत ''मुंजरास'' प्रथम रचना है। इसके रचयिता का नाम अज्ञात है। यह प्रेम और युद्ध कथा पर आधारित रचना है। इसी परंपरा में ''संदेशरासक'', चन्दवरदाई कृत ''पृथ्वीराज रासो'' शार्ङ्गधर कृत ''हम्मीर रासो'', जल्ह कवि कृत ''बुद्धिरासो'' , जगनिक कृत ''परमाल रासो'' आदि काव्यों की गणना की जाती है।

1.3.1 पृथ्वीराज रासो

आदिकाल की प्रतिनिधि कृतियों में कवि चन्दवरदाई रचित "पृथ्वीराज रासो" का महत्व सर्वोपरि है। चंद नामक भट्ट (भाट) पृथ्वीराज चौहान का दरबारी कवि था। पूरी कृति दरबारी काव्य-परम्परा की प्रशस्तिमूलक रूढ़ियों से भरी पड़ी है। पृथ्वीराज अपने शौर्य पराक्रम के कारण तथा विदेशी आक्रमणकारियों से टकराने के कारण अपनी मृत्यु के बाद एक जातीय पुरुष के रूप में मान्य हो गया और चन्द का काव्य पृथ्वीराज रासो धीरे-धीरे चारण भाटों की सम्पत्ति बनता गया। चारण भाट विभिन्न दरबारों में जीविका कमाने के लिए इसका गायन-वादन करने लगे। ये भाट लोग अपनी कल्पना से नई-नई घटनाओं और कथानकों का वर्णन भी जोड़कर गाते रहे। परिणाम यह हुआ कि इस ग्रंथ की घटनाओं और भाषा में भारी परिवर्तन होता रहा। आदिकाल का यह प्रथम महाकाव्य ऐतिहासिक काल्पनिक घटनाओं, विवरणों, वर्णनों का ढेर बनता गया। विद्वानों का अनुमान है कि सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी तक इस कृति ने एक विशाल काव्य का रूप धारण कर लिया।

वास्तव में, रासो एक प्रशस्तिकाव्य है। कवि चन्दवरदाई ने अपने आश्रयदाता की कीर्ति का वर्णन उसे ईश्वर कहकर अतिशयोक्ति पूर्ण ढंग से किया है। चन्द ने अध्यात्म, राजनीति, धर्म, योगशास्त्र, कामशास्त्र, शकुन, नगर, युद्ध, सेना की सज्जा, विवाह, संगीत-नृत्य, फल-फूल, पशु-पक्षी, ऋतु-वर्णन, संयोग-वियोग शृंगार, वसंतोत्सव, शास्त्रार्थ सभी का वर्णन किया है। फलतः यह कृति साहित्य और तत्कालीन समाज दोनों की ही चित्तवृत्तियों का प्रतिविंब है। अपभ्रंश के प्रबंधकाव्यों की सभी काव्य रूढ़ियाँ इसमें मिलती हैं।

'पृथ्वीराज रासो' के वर्ण्य-विषय पर विचार करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं "पृथ्वीराज रासो ऐसी ही रसमय सालंकार युद्धबद्ध कथा थी जिसका मुख्य विषय नायक की प्रेमलीला, कन्याहरण और शत्रुपराजय था।"[1] वस्तुतः 'पृथ्वीराज रासो' का मुख्य विषय यही है। इसमें युद्ध की पृष्ठभूमि में रोमांस का चित्रण किया गया है। चाहे वह इंछिनी विवाह का प्रसंग हो या शशिव्रता से या संयोगिता से संबंधित प्रसंग; तीनों ही अवसरों पर राजा युद्ध करके अपनी प्रिया को जीतता है या हरता है।

कवि की कुशलता इस बात में है कि उसने युद्ध का प्रसंग लाकर प्रेम के प्रसंग को और भी गहरा और मार्मिक बना दिया है।

तलवार चमक रही है, घोड़े और हाथियों की सेना आपस में लड़ रही है। कन्नौज में भयंकर युद्ध चल रहा है और पृथ्वीराज संयोगिता के महल के नीचे मछलियों को मोती चुगा रहे हैं।

> भूलउँ नृप तिहि रंग तहि जुद्ध विरुद्ध सहु।
> मूँगति मीनन्‌ मुत्ति लहंति जु लष्ष दह।।

नृप (पृथ्वीराज) उस रंग (क्रीड़ा) में अपने को और उसी प्रकार जयचंद से विरोध और युद्ध को भूल जाता है। मछलियों (मीननु) के लिए जब वह जल में मोती छोड़ता है तो दस लाख (लष्ष दह) मछलियाँ उनको खाने के लिए दौड़ती हैं।

इधर पृथ्वीराज मछलियों को मोती खिला रहे हैं और जयचंद युद्ध की तैयारी कर रहा है :

> भुल्लउ रंग नृपति इहि पंग चढ़ो दय पुट्ठि।
> सुनि सुंदरि वर वज्जने चढ़ी अवासह उट्ठि।

नृपति (पृथ्वीराज) इधर इस खिलवाड़ में डूबा हुआ था, उधर पंग (जयचंद) घोड़े की पीठ पर चढ़ा और वह सुंदरी (संयोगिता) वाद्यों को सुनकर उठकर आवास (महल) की छत पर चढ़ गयी।

संयोगिता और पृथ्वीराज की आँखें मिलती हैं और प्रथम दर्शन में ही दोनों सुध-बुध खो बैठते हैं। संयोगिता सोचती है :

> जो जंपो तौ चित हर अनजंपै विहरंत।
> अहि उट्ठे धुच्छुन्दरी हियै विल्लगी वंति।

अगर मैं उसका (प्रिय का अर्थात पृथ्वीराज का) नाम जपूँ अर्थात उससे कुछ बात करूँ तो मेरे हृदय का हरण हो जाएगा। और अगर उससे बातें न करूँ तो विरह में जलती रहूँगी। मेरी गति तो उस साँप (अहि) के समान हो गयी है जो छछूंदर को पकड़ तो लेता है पर न उसे निगलते बनता है न उगलते बनता है।

1 हिन्दी साहित्य का आदिकाल हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 67।

प्रेम का समाँ बाँधने के बाद कवि रणभूमि की ओर मुड़ जाता है और युद्ध की भीषणता और पृथ्वीराज की वीरता का वर्णन करने लगता है :

> मोरियंराज प्रथीराज वग्गं।
> उठिठयं रोस आयास लग्गं।
> पथ्थ भारिथ्थ भरि होम जग्ग।
> बुल्लियं षग्ग षंडु वन लग्गं।

राजा पृथ्वीराज ने जब बाग (लगाम, घोड़े की लगाम) मोड़ी तो, उनका रोष जाग उठा: उसी प्रकार जिस प्रकार महाभारत में पार्थ (अर्जुन) का रोष जाग उठा था और उनकी तलवार खांडव वन को दग्ध करने लगी थी।

'पृथ्वीराज रासो' के काव्य-सौंदर्य पर टिप्पणी करते हुए डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं : "आगे चलकर घोर संग्राम में लड़ते हुए अश्वारोही दम्पति की शोभा मन को रोमांचित कर देती है। दाम्पत्य प्रणय का प्रस्फुटन कर्मक्षेत्र में ही होता है, जहाँ युगल हृदय एक दूसरे को सहयोग देते हुए परस्पर श्रमसिक्त मुख देखते चलते हैं।"[1] इस प्रकार युद्ध और प्रेम का सुंदर समन्वय पृथ्वीराज रासो में हुआ है।

'पृथ्वीराज रासो' की भाषा ब्रजभाषा और राजस्थानी का मिला जुला रूप है, पर राजस्थानी का प्रभाव ज्यादा है। चंदवरदाई ने छप्पय छंद का सुंदर उपयोग इस महाकाव्य में किया है।

2.3.2 बीसलदेव रासो

'पृथ्वीराज रासो' में जहाँ वीर और श्रृंगार दोनों ही पक्षों का बड़ा ही सुंदर समन्वय किया गया है, वहीं 'बीसलदेव रासो' में श्रृंगार पक्ष की प्रधानता है और खासकर वियोग श्रृंगार की।

"बीसलदेव रासो" नरपति नाल्ह की रचना है। इसका रचनाकाल 1155 ई. माना जाता है। यह एक विरह काव्य है जिसमें बीसलदेव की रानी का विरह वर्णन प्रस्तुत किया गया है। संक्षेप में, इसकी कथा इस प्रकार है। भोज परमार की पुत्री राजमती का विवाह अजमेर के चौहान बीसलदेव तृतीय से सम्पन्न होता है। विवाह के तुरंत बाद ही राजा बीसलदेव राजमती की बातों से दुखी होकर उड़ीसा चला जाता है। बारह वर्ष तक राजमती वियोग की ज्वाला में जलती रहती है। बारह वर्षों के बाद राजमती एक पुरोहित से अपने पति के पास संदेशा भिजवाती है। जब तक राजा लौटता है तब तक राजमती अपने पिता के घर जा चुकी होती है। बीसलदेव वहाँ जाकर अपनी पत्नी को घर ले आता है। वस्तुतः, कथा का मुख्य अंश राजमती का विरह वर्णन है। इसके आगे और पीछे की कथा इस विरह वर्णन के पूरक के रूप में सामने आयी है।

"बीसलदेव रासो" का विरह वर्णन अपने आप में अनूठा है। नायिका राजमती अपने पति के वियोग से दुखी हो रही है, प्रत्येक ऋतु में अपने पति की प्रतीक्षा करती है, पर उसका पति नहीं आता।

> फागुण फरहर्या कंपिया रूष। चमकियउ निसि नीद न भूष।
> दिन राया कितु पालटी
> म्हांकउ मूरष राउ न देषई आई।
> जीवउं तउ जोवन सषी।
> फरहरइ चिंहु दिसि बाजइ छइ बाइ।।

फाल्गुन में जोरों की हवा चल रही है। वृक्ष (रुष>रूख)काँप रहे हैं। नायिका का चित्त बिजली के समान चमक रहा है, अर्थात चित्त चंचल है। न रात में नींद आती है न भूख लगती है। दिन रंगीन हो गया है, ऋतु परिबर्तित हो गयी है; पर मेरा राजा मुझे देखने नहीं आया। विरहिणी का चित्त स्थिर नहीं है, अतः उसके मन में एकाएक विचार आता है और वह अपनी सखि से कह बैठती है, कि सखि जब तक यौवन है, तभी तक मैं जीवित हूँ। क्योंकि वह जानती है कि अगर उसका सौन्दर्य न रहा तो पति के लौटने या न लौटने का कोई अर्थ नहीं रह जाता। नायिका पुरुष मनोविज्ञान की जानकार है और वह पुरुषों की मनोवृत्ति को भली भाँति पहचानती है।

आरंभ में "बीसलदेव रासो" पर आलोचनात्मक टिप्पणी करते हुए हमने बताया कि "बीसलदेव रासो" का विरह वर्णन अपने आप में अनूठा है। उसका यह अनूठापन उस पद में व्यक्त होता है जिसमें नायिका विलाप करती हुई कहती है कि तुम नहीं जानते कि इस यौवन

1 संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, सं. हजारी प्रसाद द्विवेदी, नामवर सिंह पृ. 193

और इस शील को बचाए रखने के लिए मुझे कितना संयम रखना पड़ता है और यह केवल इसलिए कि मैं उच्च कुल में पैदा हुई हूँ। इसी उच्च कुल की मर्यादा का मान रखने के लिए मैं अपने यौवन को, शील को बचाकर रख रही हूँ। नायिका का विद्रोही भाव इस पद में अंकित हुआ है। वह अपने प्रिय को श्राप देती है कि तुमने मुझे इस जन्म में बहुत सताया है अगले जन्म में तुम काले साँप होंगे। पद इस प्रकार है :

जाणियउ हो राजा याकउ जाण
दहुं रे काया मिलउ एक पराण।
मा क्यउं दुरि थी मेल्हियइ।
कुल की रे वेटीय मील जंजीर।
जोवन राषउं मइं चोर जिउं।
पगि पगि तो नइ पहुँच रे पाप।
इणि भाव उलगाणउ हूबउ।
अबर भव होयउ कालउ साँप।

यह सही है कि यह भाव नायिका की खीझ का प्रतिफल है। पर विरह में नायिकाएँ खीझकर प्रिय को उलाहना देती हैं, श्राप नहीं देतीं। यहाँ कवि ने नारी के दुख का सही अन्दाजा लगाया है। यहाँ नायिका का श्राप पुरूष समाज के अत्याचार के विरोध के रूप में सामने आया है।

कवि यहीं नहीं रूक जाता है। यह नायिका के मुख से यह भी कहलवाता है कि स्त्री जन्म श्राप का जीवन है। वह ईश्वर को संबोधित करके कहती है कि मुझे नारी के रूप में क्यों पैदा किया? देखिए यह पद :

आस्त्रीय जन्म काइं दीघउ महेस।
अपइ जनम धारूइ घणा रै नरेस।
रानि न सिरजीय रोझडी।
धणह न सिरजीय धउलीउ गाइ।
बनषंड काली कोइली।
दउं बरसती अंबा नइ चंपा की डाल।
भषती द्राष बिजोरडी
इणि दुष झुरइ अबला सी बाल।

हे महेश! मुझे स्त्री जन्म क्यों दिया? नरेश तुम्हारे पास तो और भी जन्म थे। तुम मुझे रानी न बनाकर नीलगाय बना देते ताकि स्वतंत्र होकर मैं घूम सकती। धन्या न बनाकर मुझे उजली गाय बना देते; वन की काली कोयल बना देते। मैं एक डाल से दूसरी डाल पर फुदकती फिरती और कभी अंगूर खाती कभी अनार का स्वाद चखती। यहाँ तो अबला बाला के समान पराधीन रहकर मैं सूख रही हूँ।

इस पद में हम ध्यान दें तो पाएँगे कि रानी उन रूपों मे जन्म लेने की कामना करती है, जो बंधनमुक्त हैं; जैसे नीलगाय, कोयल आदि। इस प्रकार इस पद में नारी की पराधीनता और परवशता का चित्रण हुआ है और उसकी पराधीनता से मुक्ति की आकांक्षा भी व्यक्त हुई है।

इस दृष्टि से 'बीसलदेव रासो' का विरह वर्णन अपने काल की सीमाओं का अतिक्रमण करता हुआ प्रतीत होता है। इसमें हमें परंपरागत नायिका से अलग एक ऐसी नारी के दर्शन होते हैं, जो पति के रूठ कर चलने जाने से दुखी तो है, परंतु पुरूष समाज की बनाई बेड़ियों से मुक्ति की आकांक्षा भी रखती है। 'बीसलदेव रासो' में नारी की मुक्ति का स्वर प्रस्फुटित हुआ है। इन दृष्टियों से 'बीसलदेव रासो' अपने समय की अकेली रचना है।

2.3.3. ढोला मारू रा दूहा

"ढोला मारू रा दूहा" राजस्थान की प्रसिद्ध गेय लोक कथा है जिसका मुख्य विषय शृंगार है। ग्यारहवीं शताब्दी में रचित यह काव्य लोक कथा पर आधारित है। इसमें ढोला नाम के राजकुमार और मारवणी नाम की राजकुमारी की प्रेमकथा वर्णित है। कछवाहा वंश के राजा नल के पुत्र ढोला का विवाह पूगल के राजा पिंगल की लड़की मारवणी से होता है। विवाह के समय ढोला की उम्र तीन वर्ष और मारवणी की उम्र डेढ़ वर्ष थी। जब ढोला बड़ा होता है तब उसकी शादी मालवा की राजकुमारी मालवणी से हो जाती है। मारवणी को जब यह खबर मिलती है तो वह बहुत दुखी होती है। वह ढोला के पास अपना विरह संदेश भेजती है। मारवणी के कारण लंबे समय तक ढोला को वह संदेश नहीं मिल पाता है, किंतु अंत में

मारवणी अपने उद्देश्य में सफल हो जाती है और दोनों का मिलन होता है। आइए, 'ढोला मारू रा दूहा'' के दोहों के माध्यम से इस काव्य की विशेषताओं को समझें।

कवि ने मारवणी के सौन्दर्य का चित्रण करते हुए एक उच्च आदर्श का सहारा लिया है। रीतिकालीन नायिकाओं के रूपवर्णन और मारवणी के रूप वर्णन में आसमान जमीन का फर्क है। ''ढोला मारू रा दूहा'' के नायिका-वर्णन की तुलना 'रामचरित मानस' के सीता-वर्णन से की जा सकती है। तुलसीदास ने सीता के सौन्दर्य का चित्रण करते समय जिस मर्यादा का ख्याल रखा है, वही मर्यादा मारवणी के सौन्दर्य चित्रण में भी दृष्टिगोचर होती है। एक उदाहरण देखिए :

गति गंगा, मति सरसती, सीता सील सुभाइ।
महिलाँ सरहर मारूई अवर न दूजी काइ।
नमणी, खमणी, बहुगुणी, सुकोमलो जुसुकच्छ।
गोरी गंगा-नीर ज्यूँ, मन गरवी, तन अच्छ।
रूप अनूपम मारूवी, सुगुणी नयण सुचंग।
सा धण इण परि राखि जइ, जिन सिव-मस तक गंग।

अर्थात्, जिसकी पतितपावनी गंगा के समान गति है; सरस्वती के समान निर्मल मति और सीता के समान शील स्वभाव हैं; जो विनयशील, क्षमाशील, कोमल स्वभाव की और आत्म गौरवशालिनी है--ऐसी श्रेष्ठ रमणी को पुरूष यदि, (गंगा को शिव की तरह) आदर सहित मस्तक पर स्थान दे तो उसे अपना सौभाग्य ही समझना चाहिए।

नारी का यह सौन्दर्य वर्णन उस कलुषित रीतिकालीन सौन्दर्य वर्णन से कहीं श्रेष्ठ है जिसमें स्त्री सौन्दर्य को पुरूष के विलास और वासना तृप्ति का साधन मात्र बना दिया गया है।

इस सौन्दर्य चित्रण के बाद कवि ने मारवणी के विरह का मार्मिक वर्णन किया है। यह विरह वर्णन स्वाभाविक है। बादल उमड़ आये हैं। मारवणी के हृदय में इसी समय ढोला का चित्र बस जाता है। अपनी तुलना बादल से करती हुई मारवणी कहती है कि बादल तो अपनी ऋतु में ही बरसता है, परंतु हमारे नेत्र नित्य बरसते रहते हैं।

उनमि आई बद्दली, दोलउ आयउ चित्त।
यो बरसइ रितु आपणी, नइण हमारे नित्त।।

मारवणी के हृदय की स्थिति निम्नलिखित दोहे में भी व्यंजित है।

चहुँ दिस दामिनि सघन घन, पीउ तजी तिण बार।
मारू मर चातग भए, पिउ पिउ करत पुकार।।

चारों दिशाओं में बादलों के बीच घनी विजली चमक रही है। ऐसे समय में प्रियतम ने मारवणी को छोड़ दिया है। वही मारवणी मानो मरकर चातक हो जाती है और अब पिउ पिउ की पुकार कर रही है।

इन दोहों को पढ़ते हुए आपने महसूस किया होगा कि इनमें कहीं भी विरह बनावटी नहीं दीख पड़ता है। यहां न नायिका विरह में इतनी दुबली हो गयी है कि उसे ढूँढने के लिए बिस्तर को झाड़ना पड़ता है, न ही नायिका विरह में इतनी तप रही है कि उसके घर के बगल से गुजरते समय गीले कपड़े पहनकर निकलना पड़ता है। इस प्रकार के चमत्कारपूर्ण दोहे विरह को हास्यास्पद बना देते हैं। ''ढोला मारू रा दूहा'' का विरह इस दोष से मुक्त है। इसका विरह वर्णन स्वाभाविक है, जो इसका बहुत बड़ा गुण है।

विरह के बाद मिलन का अवसर आता है। अंततः ढोला पूगल पहुँचता है। मारवणी का हृदय अपने आप में नहीं है। मारवणी अपने आंतरिक सुख और हर्षोल्लास की सीमाओं को प्रकट करती है :

साहिब आया, हे सखी कज्जा सहु सरियाहँ
पूनिम-केरे चंद ज्यूँ दिसि प्यारे फलियाहँ
सखिए, साहब आविया, जाँह की हूँती जाइ।
हियडउ हेमाँगिर भयउ तन पंजर न माइ।

मारवणी के पवित्र और मर्यादाविहित प्रेम का विकास उसके हृदय की सीमा को व्याप्त कर चारों ओर पूर्णिमा की चंद्रिका के समान छिटक गया है। उसका विरह से व्याकुल हृदय अब हिमालय की तरह शीतल हो गया है। मानसिक प्रफुल्लता इतनी बढ़ गयी है कि शरीर पंजर में नहीं समाता।

इसके बाद बिछड़े दम्पति का मिलन होता है। उनका मन मिल जाता है और उनका दुर्भाग्य समाप्त हो जाता है।

मन मिलिया, तन गड्डिया, दोहग दूरि गयाह।
सज्जण पाणी-खीर ज्यूँ खिल्लोखिल्ल थयाह।

कवि कहता है कि प्रेमी प्रेमिका के मन मिल गये, तन गड़ गये और दुर्भाग्य दूर हो गये; प्रेमी दंपति पानी और दूध की तरह मिलकर एक हो गये।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि "ढोला मारू रा दूहा" का शृंगार वर्णन पूर्ववर्ती और परवर्ती शृंगार वर्णनों से बिल्कुल अलग है। इसमें नारी के उस सौन्दर्य की चर्चा की गयी है, जिससे उसका व्यक्तित्व उभर कर सामने आता है।

इसकी भाषा राजस्थानी है। इसमें दोहा छंद का उपयोग किया गया है। इसलिए एक कथा होने के बावजूद इसका प्रत्येक छंद अपने आप में स्वतंत्र है। यह मुक्तक काव्य का श्रेष्ठ उदाहरण है।

2.3.4 विद्यापति की कविता

विद्यापति हिंदी के प्रमुख कवि हैं। इनका जन्म 1368 ई. में हुआ था और पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक वे जीवित रहे। ये तिरहुत के राजा कीर्तिसिंह के दरबार में रहा करते थे। कीर्तिसिंह की वीरता का बखान विद्यापति ने "कीर्तिलता" में किया है।

विद्यापति की भाषा के दो नमूने हमें मिलते हैं। एक भाषा वह है जिसमें "कीर्तिलता" और "कीर्तिपताका" लिखी गयी। इसे विद्यापति "अवहट्ठ" कहते हैं। अपनी भाषा की ओर संकेत करते हुए विद्यापति कहते हैं।

देसिल बअना सब जन मिठ्ठा।
तें तैसन जंपओ अवहट्ठा।।

अर्थात् देशी भाषा सबको मीठी लगती है, इससे वैसे ही अवहट्ठ (देशी मिश्रित अपभ्रंश) में अपनी रचना प्रस्तुत करता हूँ। विद्यापति की एक भाषा वह है, जो अपभ्रंश और पूर्वी बोली (मैथिली) के मिलने से बनी है। जैसे "कीर्तिलता" और "कीर्तिपताका" की भाषा। इसकी एक बानगी देखिए :

अनेक वाजि तेज़ि तजि साजि साजि आनिआ
पएकमेंहि जासु नाम दीप-दीपे जानिआ
विसाल कंध चारू बन्ध सति रूअ सोहणा
तलप्प हाथि लाँघि जाधि सत्तु सेण खोहणा।

बहुत से तेज ताजी जाति के घोड़े (बाजि) सजाकर लाए गये। पराक्रम में जिनका नाम द्वीप द्वीपान्तर में विदित था। विशाल कंधे, सुन्दर बन्ध (पिछला भाग) वे शक्ति स्वरूप और शोभन थे। तड़पकर हाथी को लाँघ जाते। शत्रु सेना को क्षुब्ध कर देते। पर विद्यापति अपने जिस काव्य के लिए "मैथिल कोकिल" कहलाए वह उनकी 'पदावली' है। इसकी भाषा मैथिली है। विद्यापति की पदावली का मुख्य विषय शृंगार है। हालाँकि उन्होंने बार-बार कृष्ण और राधा का नाम लिया है पर उनके कृष्ण और राधा भक्ति के आधार नहीं हैं, शृंगार के आधार हैं। विद्यापति ने शृंगार के दोनों पक्षों—संयोग और वियोग का वर्णन किया है। संयोग पक्ष में कवि ने कृष्ण एवं राधा की चेष्टाओं और कार्य व्यापारों की सम्यक योजना की है। वियोग में कृष्ण और राधा की स्मृति, अभिलाषा, उद्वेग आदि की अभिव्यक्ति की है। अभी जो पंक्तियाँ आप पढ़ेंगे उनमें काफी खूबसूरती से नायिका के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है।

आध बदन ससि विहँसि देखावलि
आध पिहलि निज बाहू।
कछु एक भाग बलाहक झाँपल
किछुक गरासल राहू।

नायिका ने अपना चेहरा हाथ से छिपा रखा है। कवि कहता है कि उसका चंद्रमुख आधा छिपा है और आधा दीख रहा है। ऐसा लगता है कि मानो चंद्रमा के एक भाग को बादल ने ढँक रखा है और एक भाग को राहू ने ग्रस लिया है।

इन पंक्तियों के माध्यम से कवि एक चित्र उपस्थित करता है। नायिका के चेहरे का एक भाग नहीं दीख रहा है, यहाँ कवि की कल्पना उड़ान भरती है और वह उसकी तुलना उस चाँद से करता है, जिसका आधा भाग ही दीख रहा होता है। यहाँ कवि की कुशलता इस बात में निहित है कि उसने चित्र को बिल्कुल मूर्तमान कर दिया है, आँखों के सामने सारा दृश्य ला खड़ा किया है। ऐसी दृश्य योजना में विद्यापति अपने समय के अकेले कवि हैं।

इसी प्रकार जब कवि ऐसी नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करता है, जिसका यौवन पूरी तरह प्रस्फुटित नहीं हुआ है, तो कवि की शक्ति का लोहा मानना पड़ता है।

> आध आँचर खसि आध बदन हँसि आधहि नयन तरंग।
> आध उरज हेरि आध आँचर भरि तब धरि दगध अनंग।

यहाँ कवि ने उस नायिका का वर्णन किया है, जो अभी किशोरावस्था में ही है। नायिका ने थोड़ा सा आँचल खोंस रखा है, उसकी मुस्कराहट में एक शर्म है, झिझक है, अतः वह पूरी तरह हँस नहीं पा रही है। वह अपनी हँसी को रोकने की कोशिश कर रही है, पर रोक भी नहीं पा रही है। अभी नयनों का तरंग भी पूर्ण रूप से उद्वेलित नहीं हुआ है। उसका बदन (मुख) भी आधा ही आँचल से ढका हुआ है। अर्थात् वह यौवनावस्था में अभी कदम रख रही है। अतः उसमें अल्हड़पन है। इसके बावजूद वह अनंग अर्थात् कामदेव को दग्ध (जला) कर रही है।

जिस तन्मयता से विद्यापति ने नायिका की चेष्टाओं और कार्य व्यापारों का चित्र खींचा है, उसी लगन से विरह की पीड़ा को भी दर्शाया है। विद्यापति की विरहिणी अधिकांशतः गृहिणी के रूप में आयी है। वह अपने पति पर किसी प्रकार का कोई आरोप नहीं लगाती। उसे चिंता इस बात की है कि कहीं प्रिय के आते-आते यौवन समाप्त न हो जाए। आपको याद होगा कि ऐसी चिंता 'बीसलदेव रासो' की नायिका को भी है। पर यह चिंता नायिका को बिल्कुल निराश नहीं करती।

> चानन भेल विषम सर रे भूषन भेल भारी।
> सपनहुँ नहि हरि आएल रे गोकुल गिरिधारी।।
> एकसरि ठाढ़ि कदम-तर रे पथ हेरथि मुरारी।
> हरि बिनु देह दगध भेल रे झामर भेल सारी।
> जाह जाह तोहें ऊधव हे तोहें मधुपुर जाहे।
> चन्द्र बदनि नहि जीउति रे बध लागत काहे।।
> भनई विद्यापति मन दए रे सुनु गुनमति नारी।
> आज आओत हरि गोकुल रे पथ चलु झटझारी।

चन्दन (चानन) उसके लिए बुझा तीर (सर) साबित हुआ। गहने (भूषण) उसके लिए सिल-सरीखे भारी पड़े। ऊधो, गिरधारी तो सपने में उसके पास नहीं फटका। कदंब की छाँह में अकेली खड़ी रहती है। बेचारी हमेशा कान्हा की राह देखती है। कृष्ण के बिना देह झुलस (दग्ध) गयी। साडी का रंग फीका पड़ गया। जाओ, उधो तुम मथुरा चले जाओ। जल्दी निकल जाओ। शशिमुखी (जिसका मुख चंद्रमा के समान हो) जिएगी नहीं, नाहक तुम्हें वध का दोष लगेगा। तुम आहिस्ते से निकल जाओ। इस पर विद्यापति कहते हैं– ओ गुणवती, ध्यान से सुनो आज कान्हा गोकुल आने वाला है। चलो, जल्दी चलो। झटकार के चलो, राधा के कानों तक यह खुशखबरी पहुँचा दो।

विद्यापति की नायिका विरह में अपना संतुलन नहीं खोती। वह विवेकी है, संयमी है, प्रेम के रहस्यों को जानती है। विद्यापति ने विरह वर्णन में कहीं भी चमत्कार या ऊहात्मकता का सहारा नहीं लिया है। नायिका के विरह का इतना सुंदर और संयमित चित्रण हिंदी का दूसरा कवि नहीं कर सका है। विद्यापति लोकगीतों की परम्परा के महत्वपूर्ण कवि हैं। उनके गीत अपनी मार्मिकता के लिए प्रसिद्ध हैं। विद्यापति के गीतों में लोग जीवन का रस मिला हुआ है। ये गीत गेयता के गुण से सम्पन्न हैं। इनके गीतों की दूसरी विशेषता है, सहजता और स्वाभाविकता। बाद में भक्तिकाल के कवियों ने गीतिकाव्य की इस परम्परा को आगे बढ़ाया है।

2.3.5 अमीर खुसरो की कविता

अमीर खुसरो आदिकाल के प्रमुख कवि हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार अमीर खुसरो ने

1293 ई. के आसपास रचना आरंभ की। उन्होंने दिल्ली के आसपास की जुबान में कविता लिखी। 13वीं शताब्दी में काव्य की भाषा ब्रजभाषा से प्रभावित थी, पर बोलचाल में खड़ी बोली का प्रयोग होता था। खुसरो ने ब्रजभाषा में भी कविता लिखी और खड़ी बोली में भी। उनकी ब्रजभाषा पर खड़ी बोली का प्रभाव स्पष्ट है। एक उदाहरण है :

उज्जवल बरन, अधीन तन, **एक चित्त दो ध्यान।**
देखत में साधु **है**, निपट पाप **की खान।**
खुसरो रैन सुहाग **की**, जेगी पी के संगा।
तन मेरो मन पीउ **को**, दोउ भए एकरंग।
गोरी सौवे सेज **पर** मुख **पर** डारे केस।।
चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहुँ देस।।

मोटे अक्षरों में छपे शब्द खड़ी बोली के शब्द हैं, ब्रजभाषा के नहीं।

अमीर खुसरो द्वारा रचित पहेलियों को देखने से ऐसा नहीं लगता कि वे आज से सात सौ वर्ष पूर्व लिखी हुई हैं। देखिए कुछ उदाहरण :

एक थाल मोती से **भरा**। सबके सिर पर औंधा **धरा**।
चारों ओर वह थाली फिरे, मोती उससे एक न गिरे।

(आकाश)

अरथ जो **इसका बूझेगा**।
मुंह देखो तो **सूझेगा**।।

(दर्पण)

ऊपर मोटे टाइप में जो शब्द दिए गए हैं, वे खड़ी बोली के निखरे हुए रूप हैं।

पहेली रचना की इस शैली का विकास हिंदी काव्य में नहीं हुआ। किंतु इसमें चमत्कार और कुतूहल की जो प्रवृत्ति देखने को मिलती है, उसका प्रभाव रीतिकालीन कवियों पर किसी न किसी रूप में अवश्य पड़ा होगा।

बोध प्रश्न 2

1. 'पृथ्वीराज रासो' के काव्य सौन्दर्य पर टिप्पणी करें।
   (आपका उत्तर दस पंक्तियों से ज्यादा नहीं होना चाहिए)

   ....
   ....
   ....
   ....
   ....
   ....
   ....
   ....
   ....
   ....

2. खंड ''क'' में रचनाओं या रचनाकार का नाम दिया गया है खंड ''ख'' में काव्य के प्रकार दिये गये हैं। सही रचना का मिलान काव्य के प्रकार से करें।

खंड ''क''	खंड ''ख''
पृथ्वीराज रासो	विरह काव्य
बीसलदेव रासो	लौकिक काव्य
विद्यापति पदावली	वीर काव्य
ढोला मारू रा दूहा	पहेलियाँ
अमीर खुसरो	शृंगार

6 रिक्त स्थान की पूर्ति करें :

क) पृथ्वीराज रासो में .... और .... रस का सुंदर समन्वय हुआ है।

ख) बीसलदेव रासो का रचनाकार .... है।

ग) 'ढोला मारू रा दूहा' का नायक .... और नायिका .... है।

घ) विद्यापति के आश्रयदाता राजा का नाम .... था।

7 अमीर खुसरो की भाषागत विशेषताओं का उल्लेख पाँच पंक्तियों में करें।

....

....

....

....

....

....

....

....

2.4 आदिकाव्य की साहित्यिक प्रवृत्ति

इस प्रकार आदिकालीन हिंदी काव्य में तीन प्रकार की रचनाएँ देखने को मिलती हैं—वीरगाथात्मक, श्रृंगारपरक और लौकिक कथाओं पर आधारित काव्य। आइए, इन साहित्यिक प्रवृत्तियों पर अलग-अलग विचार करें।

2.4.1 ऐतिहासिक काव्य

आदिकाव्य की एक प्रमुख विशेषता है—ऐतिहासिक काव्यों की रचना। नवीं-दसवीं शताब्दी में से लेकर चौदहवीं शताब्दी तक ऐतिहासिक पुरुषों को केन्द्र में रखकर काव्य लिखने की प्रवृत्ति पायी जाती है। इनमें किसी राजा की वीरता का वर्णन होता था और उसके द्वारा लड़ी गयी लड़ाइयों का विस्तार से चित्रण किया जाता था। इसलिए इसे वीरगाथात्मक काव्य की संज्ञा दी भी जाती है। इस काल के अधिकांश कवियों ने "रासो" नाम से वीरगाथात्मक काव्य लिखे; मसलन 'पृथ्वीराज रासो', 'परमाल रासो' आदि।

आदिकालीन हिंदी ऐतिहासिक काव्यों की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इनमें ऐतिहासिक तथ्यों की ओर कवि ने ध्यान नहीं दिया। कल्पना का उसने अधिक सहारा लिया और काव्य निर्माण पर विशेष ध्यान दिया। इस संदर्भ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह कथन महत्वपूर्ण है : "ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम पर काव्य लिखने की प्रथा बाद में खूब चली... परन्तु भारतीय कवियों ने ऐतिहासिक नाम भर लिया, शैली उनकी वही पुरानी रही जिसमें काव्य निर्माण की ओर अधिक ध्यान था विवरण संग्रह की ओर कम, कल्पनाविलास का अधिक नाम था, तथ्य निरूपण का कम; संभावनाओं की ओर अधिक रुचि थी, घटनाओं की ओर कम, उल्लसित आनंद की ओर अधिक झुकाव था, विलसित तथ्यावली की ओर कम।"[1] वस्तुतः इन कवियों ने इतिहास को अपनी कल्पना की उड़ान का आधार बनाया। उसका मुख्य ध्यान राजा के विवाह, शत्रु विजय, जल क्रीड़ा आदि प्रसंगों के निर्माण में रहा। "पृथ्वीराज रासो" में चंदवरदाई ने कल्पना और तथ्य का सुंदर सामंजस्य उपस्थित किया है। पर इसमें भी कल्पना तथ्य पर हावी हो गयी है।

2.4.2 श्रृंगारिक काव्य

आदिकाल में जो काव्य लिखा गया, उसमें श्रृंगार वर्णन दो तरीके से सामने आया है। वीरगाथात्मक काव्यों में प्रेम और युद्ध का साथ-साथ चित्रण किया गया है। 'पृथ्वीराज रासो' इसका उत्तम उदाहरण है। 'पृथ्वीराज रासो' पर विचार करते समय हमने पाया कि इसमें प्रेम का वर्णन युद्ध के फलक पर हुआ है। लेकिन आदिकालीन कविता के कुछ ऐसे भी उदाहरण हैं, जिनमें अलग से नायक और नायिका के प्रेम और विरह का चित्रण किया गया है। 'बीसलदेव रासो', 'विद्यापति की पदावली', 'ढोला मारू रा दूहा' और अमीर खुसरो का काव्य इसका प्रमाण है।

1 हिंदी साहित्य का आदिकाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 70.

2.4.3 लौकिक काव्य

लोक कथाओं को आधार बनाकर भी इस काल में अनेक काव्य लिखे गये। इनमें ''ढोला मारू रा दूहा'' और खुसरो की पहेलियों के बारे में आप पढ़ चुके हैं। इसके अतिरिक्त 'वसंत विलास', 'जयचंद्र प्रकाश' और 'जयमयंक' 'जयस चंद्रिका' का केन्द्रीय विषय भी लोक कथा पर ही आधारित है। 'जयचंद प्रकाश' और 'जयमंयक जसचंद्रिका' का उल्लेख मात्र मिलता है, ये रचनाएँ अभी तक उपलब्ध नहीं हो पायी हैं।

इन लौकिक काव्यों में शृंगार की प्रधानता है। ''ढोला मारू रा दूहा'' प्रेम काव्य है, 'वसंत विलास' में वसंत और स्त्रियों पर उसके विलासपूर्ण प्रभाव का मनोहारी चित्रण किया गया है। एक शृंगार वर्णन देखिए :

इणि परि कोइलि कूजइ, पूजइ यूवति मणोर।
विधुर वियोगिनि धूजइ, कूजइ मयण किसोर।।

एक ओर कोयल का कूकना, दूसरी ओर पति युक्ता युवतियों का विलास, इसे देखकर विधुर जन तथा वियोगिनि नारियाँ किशोर मदन (कामदेव) का कूजन मन में अनुभव करती हुई काँपने लगती हैं।

यह रचना भी रीतिकालीन काव्य परंपरा की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। इससे यह प्रमाणित होता है कि रीतिकाल में शृंगार भावना एकाएक नहीं प्रकट हुई बल्कि आदिकाल से इस प्रकार की कविताएं लिखी जा रही थीं।

2.5 आदिकाव्य की शिल्पगत विशेषताएँ

आदिकाल हिंदी साहित्य का निर्माण काल है। इस समय हिंदी भाषा और काव्य का निर्माण हो रहा था। इस समय की भाषा अपभ्रंश के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकी है, पर मुक्त होने की आकांक्षा उसमें दीख पड़ती है। इसी प्रकार शिल्प का प्रयोग करते समय रचनाकार परंपरा से प्राप्त तकनीकों को भी अपनाता है और कुछ नये प्रयोग भी करता है। इससे एक नया शिल्प विकसित होता है। भाषा और शिल्प के इन पक्षों पर आगे विस्तार से चर्चा की जा रही है।

2.5.1 कथात्मक शैली और कथानक रूढ़ियाँ

आदिकाव्य के अधिकांश काव्यों की रचना कथात्मक शैली में हुई है। काव्यों की शैली पर विचार करने के पूर्व हम आपके सामने ''कथा'' का अर्थ स्पष्ट करना चाहते हैं। संस्कृत के आचार्य ''कथा'' शब्द का प्रयोग एक निश्चित काव्य रूप के लिए करते हैं। एक महत्वपूर्ण बात यह समझने की है कि संस्कृत में ''कथा'' गद्य में लिखी जाती थी, जबकि संस्कृत से अलग दूसरी भाषाओं (जैसे प्राकृत, अपभ्रंश) आदि में पद्य में लिखी जाती थी। प्राकृत और अपभ्रंश में ऐसे काव्य लिखे गये जिन्हें 'कथा' कहा जाता था। इस काल में 'कथा' की पहली विशेषता यह हुई कि यह पद्यात्मक होती है।

कथा प्रधानरूप से ऐसी कहानी है, जिसमें कहानीपन अधिक रहता है। कथा में कवि कहानी सीधे नहीं कहता है, बल्कि दो पात्रों के माध्यम से कहता है। हिंदी के आदिकाल में इसी प्रकार की कथा का प्रचलन था। आदिकाव्य की प्रमुख रचनाएँ श्रोता-वक्ता की शैली में ही लिखी गयी हैं। 'पृथ्वीराज रासो' और 'कीर्तिलता' में कहानी क्रमशः शुक और शुकी तथा भृंग और भृंगी के रूप में है। विद्यापति ने अपनी रचना 'कीर्तिलता' को कहानी या कथानिका कहा है। प्रत्येक अध्याय के आरंभ में भृंगी भृंग से प्रश्न करती है और फिर भृंग कहानी शुरू करता है। 'पृथ्वीराज रासो' पर टिप्पणी करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं और सच पूछिए तो मैं यह बात आपसे छिपाना नहीं चाहता कि यह बात मेरे मन में समाई है कि चंद का मूल ग्रंथ शुक-शुकी संवाद के रूप में लिखा गया था।'' एक उदाहरण देखिए :

> कहै सुकी सुक संभलौ। नींद न आवे मोहि।
> सुकी सरिस सुक उच्चरयो धरयो नारि सिर चित्र।।

इसके बाद विस्तार से कवि इच्छिनी विवाह का वर्णन करता है। प्रायः नयी कथा शुरू करते या पुरानी को समाप्त करते समय शुक और शुकी का संवाद अवश्य आता है।

आदिकाव्य की साहित्यिक प्रवृत्ति पर विचार करते समय हमने देखा था कि आदिकाव्य के रचनाकार संभावनाओं और कल्पना पर अधिक बल देते हैं। इस कल्पना को यथार्थ बनाने के लिये कवियों ने कथा कहने की कुछ रूढ़ियाँ बना लीं जिन्हें कथानक रूढ़ि कहा जाता है। मसलन,

1) कहानी कहने वाला सुग्गा
2) i) स्वप्न में प्रिय का दर्शन
   ii) चित्र देखकर किसी पर मोहित हो जाना
   iii) भिक्षुकों या बंदियों के मुख से कीर्ति वर्णन सुनकर प्रेमासक्त होना
3) आकाशवाणी
4) षड् ऋतु और बारहमासा के माध्यम से विरह वेदना
5) हंस-कपोत आदि से संदेश भेजना
6) युद्ध करके या मस्त हाथी के आक्रमण से, या कापालिक की बलिदेवी से स्त्री का उद्धार और प्रेम आदि-आदि।

2.5.2 गेयता

आदिकाव्य कथाकाव्य होने के साथ-साथ गीतिकाव्य भी है। राजा की कीर्ति का वर्णन हो या किसी लोक प्रचलित प्रेम कथा को कवि ने अपने काव्य का आधार बनाया हो, कवि अपनी रचना गाकर सुनाया करता था। न राजा को कविता पढ़ने का अवसर था न जनता पढ़ी-लिखी और प्रबुद्ध थी कि वह कविता पढ़ सकती थी। अतः दोनों ही स्थितियों मे कवि गाकर अपनी रचना सुनाता था। इस गाने की प्रवृत्ति के कारण ही आदिकाव्य की रचनाओं में गेयात्मक सौन्दर्य देखने को मिलता है। चाहे रासो-काव्य परम्परा की कोई रचना हो या विद्यापति की पदावली हो, सभी गेयता की विशेषता से युक्त हैं।

'पृथ्वीराज रासो' चरित काव्य होने के साथ-साथ गेय काव्य भी है। रासक या रासो एक प्रकार के गेय रूपक को कहते थे। इसमें बहुत सी नर्तकियाँ ताल-लय के साथ नृत्य करती थीं। सिद्ध-नाथ कवियों ने भी गेय पदों का इस्तेमाल किया है। यह गेय पद परम्परा सूरदास, तुलसीदास, और दादू आदि संत कवियों में भी पायी जाती है। इसके अतिरिक्त 'ढोला मारू रा दूहा' और 'विद्यापति पदावली' भी गेय काव्य है। केवल आदिकालीन काव्य में ही नहीं, भक्तिकालीन काव्य में भी गेयता कविता के प्रस्तुतीकरण की एक प्रमुख विशेषता थी। बहुत से भक्तिकालीन कवियों ने आदिकालीन कविता से गीत सीधे उठा लिए हैं। इसका एक प्रमुख उदाहरण है, 'ढोला मारू रा दूहा' के दोहों का कबीर के नाम से थोड़ा परिवर्तन के साथ पाया जाना।

ढोला : यह तन जारो मसि करूँ, धूआँ जाहि सरग्गि।
मुझ प्रिय बद्दल होइ करि वरसि बुझावैं आग्गि।
कबीर : यह तन जालौं मसी करौं जसु धूआँ जाय सरग्गि।
मति वे रांम दया करै बरसि बुझावै अग्गि

वस्तुतः भक्तिकालीन संत ने जन साधारण में प्रचलित काव्यरूपों को अपने मत प्रचार का साधन बनाया है।

2.5.3 काव्यरूप

मुख्य रूप से काव्य के दो रूप होते हैं—प्रबन्ध काव्य और मुक्तक काव्य। प्रबन्ध काव्य में एक कथा होती है और इसका एक छंद दूसरे छंद से जुड़ा होता है। मुक्तक काव्य में कोई लगातार चलने वाली कथा नहीं होती है, उसका प्रत्येक छंद अपने आप में पूर्ण होता है। आदिकाल में प्रबंध और मुक्तक दोनों प्रकार के काव्यों की रचना हुई है।

"आदिकाल" में चरित काव्यों की प्रधानता है। अधिकांश चरित काव्य "रासो" के रूप में लिखे गये हैं। मसलन, पृथ्वीराज रासो, खुमाण रासो, परमाल रासो, बीसलदेव रासो आदि। इसके अतिरिक्त विद्यापति की "कीर्तिलता" भी चरित काव्य है। इनमें एक कथा लगातार चलती रहती है। इन चरित काव्यों के लिए कवि ने प्रबंधात्मक काव्यरूप चुना।

इन प्रबंध काव्यों में कवि ने मुख्यतः दोहा और चौपाई छंद का सहारा लिया है। चंदवरदाई ने ज्यादातर छप्पय का प्रयोग किया है। आदिकालीन काव्य में कवित्त और सवैया का प्रचलन भी हो गया था। ये ब्रजभाषा के अपने जातीय छंद हैं। रासो में कवित्त का अर्थ है छप्पय। चंद की कविता में कुछ कवित्त मिलते हैं जिसमें पृथ्वीराज की कीर्ति गायी गयी है।

इस काल का कवि जब प्रबंध काव्य की रचना करता था, तब तो वह दोहा और चौपाई का उपयोग करता था, पर मुक्तक की रचना केवल दोहों में होती थी। 'ढोला मारू रा दूहा' में एक कथा है पर उसमें दोहा छंद का प्रयोग हुआ है। दोहा में छंदों को जोड़ने की क्षमता नहीं होती। यह गुण चौपाई में होता है। इसीलिए इसे कथानक छंद भी कहते हैं। "ढोला मारू रा दूहा" में एक कथा होने के बावजूद उनके छंद अपने आप में स्वतंत्र हैं। पर यह अपवाद है। परवर्ती भक्तिकालीन और रीतिकालीन कवियों ने भी मुक्तक काव्य के लिए दोहा और प्रबंध काव्य के लिए दोहा और चौपाई का प्रयोग किया है। कवित्त और सवैया का प्रयोग अधिकांशतः ब्रजभाषा में हुआ है। 'पृथ्वीराज रासो' में छप्पय, रासा या रासक, चउपई, चर्चरी, दूहा आदि विभिन्न प्रकार के छंदों का प्रयोग विस्तार से हुआ है। कभी-कभी चंदवरदाई, सोरठा, रोला, कुंडलियाँ, गाथा आदि छंदों का प्रयोग भी करते हैं।

2.5.4 भाषा

आदिकाव्य के शिल्प, काव्यरूप आदि पर विचार करने के बाद आइए हम विवेच्य काव्य की भाषा पर विचार करें। इस काल की काव्य-भाषा अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय आर्य भाषा हिंदी की ड्योढ़ी पर खड़ी है। एक तरफ उस पर अपभ्रंश का प्रभाव है और दूसरी तरफ तत्सम शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति बढ़ रही है। इसके अतिरिक्त स्थानीय बोलचाल की भाषा का योगदान भी नयी भाषा (हिन्दी) के निर्माण में कम नहीं है। इस प्रकार हिंदी के तीन भाषा रूप हमें इस काल में मिलते हैं। i) पिंगल या पश्चिमी हिंदी ii) खड़ी बोली iii) पूर्वी हिंदी। पिंगल पश्चिमी हिंदी है, जिसमें राजस्थानी और ब्रजभाषा का समिश्रण है। पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो और ढोला मारू रा दूहा इसकी प्रतिनिधि रचनाएँ हैं। इस काल में खड़ी बोली हिंदी का प्रतिनिधित्व अमीर खुसरो की भाषा करती है। अमीर खुसरो ने ब्रजभाषा में भी अपनी कविताएँ रची हैं। विद्यापति की रचना पूर्वी हिन्दी का उदाहरण है, जिसमें लोकभाषा मैथिली का पुट है। इस संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन दृष्टव्य है : "खड़ी बोली, बाँगड़, ब्रज, राजस्थानी, कन्नौजी, बैसवारी, अवधी इत्यादि रूपों और प्रत्ययों का परस्पर इतना भेद होते हुए भी सब हिंदी के अंतर्गत मानी जाती हैं। अतः जिस प्रकार हिंदी साहित्य बीसलदेव रासो पर अपना अधिकार रखता है उसी प्रकार विद्यापति की पदावली पर भी।"[1]

बोध प्रश्न 3

8) आदिकालीन ऐतिहासिक काव्य की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख पाँच पंक्तियों में करें।

....

....

....

....

....

9) आदिकालीन काव्य की तीन प्रमुख शिल्पगत और भाषागत विशेषताओं का उल्लेख करें।

....

....

....

....

10) रिक्त स्थान की पूर्ति करें।

मुक्तक काव्य में .... छंद अधिक सार्थक होता है।

1 हिंदी साहित्य का इतिहास रामचंद्र शुक्ल, पृ. 49-50

2.6 सारांश

इस इकाई में आपने आदिकाव्य के विभिन्न पहलुओं की जानकारी प्राप्त की।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप बता सकते हैं कि आदिकाव्य का तात्पर्य हिंदी के आरम्भिक काव्य से है, जिसका रचना काल दसवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक फैला हुआ है।

आदिकालीन हिंदी साहित्य का निर्माण जिस काल में हो रहा था, वह राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अस्थिरता का काल था। इस कारण इस काल में अनेक प्रवृत्तियाँ एक साथ उभरीं। वीर काव्य भी लिखे गये, शृंगारपरक रचनाएँ भी सामने आयीं और अध्यात्मपरक और रहस्यात्मक काव्य का भी निर्माण हुआ। भाषा और शिल्प के क्षेत्र में भी अनेक प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर हुईं। अपभ्रंश में भी काव्य लिखा जाता रहा और देशी भाषा भी काव्य का माध्यम बनी। इन देशी भाषाओं (जैसे राजस्थानी, मैथिली) पर अपभ्रंश का प्रभाव स्पष्ट था। भाषा के साथ-साथ इस काल में शिल्प के क्षेत्र में पुरानी परंपराओं का पालन हुआ और नये प्रयोग भी सामने आये।

आदिकाव्य की इन विशेषताओं का परिचय आपने पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो, ढोला मारू रा दूहा, विद्यापति और ख़ुसरो के काव्य के माध्यम से प्राप्त किया।

2.7 शब्दावली

चरित काव्य : ऐसा काव्य जिसमें किसी व्यक्ति का चित्रण ही मुख्य विषय हो।

पदावली : पद शैली में रचित काव्य को पदावली कहते हैं। पद शैली का मूल स्रोत लोकगीत है। प्रायः पदों के साथ किसी न किसी राग का निर्देश मिलता है।

रासक शैली : रासक एक प्रकार के गेय रूपक को कहते हैं। इसमें बहुत सी नर्तकियाँ ताललय के साथ नृत्य करती हैं।

धन्या : पुण्यवान, शीलवान स्त्री

2.8 उपयोगी पुस्तकें

द्विवेदी, हजारी प्रसाद, *हिंदी साहित्य का आदिकाल,* बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।

द्विवेदी, हजारी प्रसाद; सिंह, नामवर, (सं.) *संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो* साहित्य भवन प्रा. लि., इलाहाबाद।

शुक्ल, रामचंद्र, *हिंदी साहित्य का इतिहास,* काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 ख)

2 10वीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी के बीच हिंदी में लिखे गये काव्य को आदिकाव्य कहते हैं। यह हिंदी का प्रारंभिक काव्य है।

3 i) **वीर काव्य** ii) **शृंगार काव्य**

बोध प्रश्न 2

4 'पृथ्वीराज रासो' आदिकालीन वीर काव्य है। इसमें पृथ्वीराज चौहान की वीरता का वर्णन किया गया है। पर इस काव्य का सौन्दर्य इस तथ्य में निहित है कि इसमें युद्ध और प्रेम का चित्रण एक साथ किया गया है। युद्ध की विभीषिका के बीच प्रेम का कोमल पौधा फूटा है।

'पृथ्वीराज रासो' एक गेय चरित काव्य है। राजा की स्तुति गाकर सुनाने की परंपरा के अनुरूप ही 'पृथ्वीराज रासो' की रचना हुई है। अतः इसमें एक गेय कथा है, जिसमें गीतिकाव्य के भी गुण हैं।

इस काव्य में वीर और शृंगार रस का सम्मिश्रण है। इसकी भाषा राजस्थानी है जिसमें ब्रज का पुट है। कवि ने अनेक छंदों का उपयोग किया है पर छप्पय उसका प्रिय छंद है।

5

खंड "क"	खंड "ख"
पृथ्वीराज रासो	वीर काव्य
बीसलदेव रासो	विरह काव्य
विद्यापति पदावली	शृंगार
ढोला मारू रा दूहा	लौकिक
अमीर खुसरो	पहेलियाँ

6 क) वीर, शृंगार
ख) नरपति नाल्ह
ग) ढोला, मारवणी
घ) कीर्तिसिंह

7 अमीर खसरो ने खड़ी बोली हिंदी में अपनी पहेलियां और मुकरियाँ लिखीं। उनकी हिंदी आज की परिनिष्ठित हिंदी के करीब है। अमीर खुसरो की भाषा में अरबी और फारसी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। खड़ी बोली के साथ-साथ अमीर खुसरो ने ब्रजभाषा में भी कविता लिखी है। ब्रजभाषा में लिखते समय कवि देशी शब्दों का खूब प्रयोग करता है। वह ठेठ ब्रजभाषा का कवि लगता है।

बोध प्रश्न 3

8 आदिकाल में जो ऐतिहासिक काव्य लिखे गये हैं उनमें तथ्य की अपेक्षा कल्पना पर अधिक बल दिया गया है। घटनाएँ कवि की कल्पना का आधार मात्र हैं। प्रायः इन कवियों ने इतिहास की उपेक्षा की है।

9 क) कथा शैली
ख) गेयता
ग) तत्सम शब्दों का बढ़ता प्रयोग।

10 दोहा

Notes

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

यू०जी०एच०आई०-02

हिन्दी में ऐच्छिक पाठ्यक्रम

खंड

2

भक्तिकाव्य (पहला भाग)

इकाई 3

भक्ति काव्य का स्वरूप और विकास 5

इकाई 4

कबीर का काव्य 30

इकाई 5

जायसी का काव्य 53

इकाई 6

मीराबाई 78

इकाई 7

(दूसरा भाग)

सूरदास 101

इकाई 8

गोस्वामी तुलसीदास 127

इकाई 9

रहीम का काव्य 151

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

डॉ. भ.ह. राजूरकर
मराठवाड़ा विश्वविद्यालय
औरंगाबाद

डॉ. राम सिंह तोमर
28, पूर्वपल्ली
विश्वभारती विश्वविद्यालय
शांतिनिकेतन
पं. बंगाल

प्रो. भीमसेन निर्मल
उस्मानिया विश्वविद्यालय
हैदराबाद

डॉ. संसार चन्द्र
अवकाश प्राप्त आचार्य एवं
अध्यक्ष (हिन्दी विभाग)
जम्मू विश्वविद्यालय
जम्मू

डॉ. अंबाशंकर नागर
गुजरात विद्यापीठ
अहमदाबाद

डॉ. रमानाथ सहाय
आगरा

डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा
हिन्दी विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय
चण्डीगढ़

डॉ. बख्शीश सिंह
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

प्रो. डॉ. वी.रा. जगन्नाथन (संयोजक)
निदेशक, मानविकी
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

डॉ. पूर्णमासी राय
मगध विश्वविद्यालय
बोध गया (बिहार)

डॉ. कल्याण सिंह शेखावत
अध्यक्ष, राजस्थानी विभाग
जोधपुर विश्वविद्यालय
राजस्थान

डॉ. लक्ष्मी नारायण शर्मा
रीडर, हिन्दी विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय
चंडीगढ़

संकाय सदस्य
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

प्रो. डॉ. वी.रा. जगन्नाथन
प्रो. डॉ. आनन्द प्रकाश दीक्षित
डॉ. जवरीमल पारख
डॉ. शत्रुघ्न कुमार
श्रीमती स्मिता चतुर्वेदी
डॉ. पूरन चन्द टंडन
डॉ. कृष्ण दत्त पालीवाल
(प्रस्तुत खंड का संयोजन एवं सम्पादन)

सामग्री निर्माण

श्री बालकृष्ण सेल्वराज
कुलसचिव
मुद्रण एवं प्रकाशन प्रभाग
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

जनवरी, 1991 पुनः मुद्रित

© इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 1989

ISBN-81-7091-431-1

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में, मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के अनुमति से पुनः मुद्रित। उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की ओर से डॉ. ए. के. सिंह, कुलसचिव द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित, जुलाई 2014
मुद्रक : नितिन प्रिन्टर्स, 1 पुराना कटरा, इलाहाबाद।

खंड 2 का परिचय

हिंदी साहित्य में भक्तिकाल देश व्यापी भक्ति-आंदोलन की देन है। हिंदी के भक्तिकाव्य की विशेषताओं को समझने के लिए भक्ति-आंदोलन को समझना जरूरी है। साथ ही इस धारणा से भी मुक्त होना होगा कि मुस्लिम शासन की प्रतिक्रिया के रूप में भक्ति-आंदोलन का प्रसार हुआ। क्योंकि भक्ति-आंदोलन का सूत्रपात यहाँ तुर्कों-पठानों के आक्रमण से बहुत पहले हो गया था। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि भक्ति-आंदोलन का प्रसार उत्तरी भारत से पहले दक्षिण भारत में हुआ और वहाँ मुसलमानों का शासन नहीं था। दक्षिण भारत के भक्ति-आंदोलन की व्यापक शक्ति को लेकर दक्षिण के आचार्यगण उत्तरी भारत में आए और उन्होंने उत्तरी भारत में नवीन लोक-जागरण किया। मूलतः यह भक्ति-आंदोलन पुरोहितवाद, शास्त्रज्ञान के दम्भ, अंधविश्वासों के प्रति विद्रोही, लोकभाषाओं के उदय तथा तत्कालीन समाज व्यवस्था में जनता का सामंतवाद-विरोधी सांस्कृतिक आंदोलन था। इस आंदोलन ने पहली बार समाज को दिशा दृष्टि देने वाले अपने संत कवि पैदा किए। यहाँ इन संतों, भक्तों, सूफ़ियों तथा कवियों को अलग करके न देखना चाहिए। ये सभी रूढ़िवाद-विरोधी हैं तथा प्रेमतत्व इन सभी का आधार है। निर्गुण ज्ञानमार्गी, निर्गुण प्रेममार्गी, सगुण कृष्णभक्ति धारा और सगुण रामभक्ति धारा के सभी हिंदू-मुसलमान कवियों ने एक साथ मिलकर अंधपरंपरावाद, धार्मिक कट्टरता तथा सामंतवाद का विरोध किया। भक्तिकाव्य को इस लोकजागरणवादी धारा से अलग करके देखने पर उसका जनता में व्यापक प्रसार उसकी गरिमा, उसका ऐतिहासिक-सांस्कृतिक महत्व आंखों से ओझल हो जाता है। प्रश्न उठता है कि संत कौन थे? संत और भक्त एक ही थे—या अलग? निर्गुण-सगुण धारा का उद्देश्य क्या था? भक्तों की सामाजिक भूमिका लोकहितकारी थी या जन विरोधी? इस तरह के अनेक प्रश्न भक्तिकाव्य और भक्ति-आंदोलन से जुड़े संत कवियों पर एक साथ उठ खड़े होते हैं। "संत" शब्द से निर्गुण कवियों का अर्थ लेना ठीक नहीं है—कारण सगुण कवि भी संत थे। कबीर संत हैं तो मीरा और रहीम भी संत हैं। जाहिर है कि संतों में स्त्री और पुरुष, संन्यासी और गृहस्थ, हिंदू और मुसलमान, शूद्र और द्विज, सगुणवादी और निर्गुणवादी दोनों ही हैं। ये सभी संत व्यापक लोक-मंगल दृष्टि के संस्थापक और रक्षक हैं। कर्मकांड, धर्मशास्त्र, पुराणवाद कट्टर-आचार-विचार, अंधविश्वास-आडंबर की रीति-नीति के विरुद्ध मूलतः प्रेम की शक्ति से मानव मुक्ति के पक्षधर हैं। पुरोहितों तथा मौलवियों की धार्मिक भाषाओं संस्कृत और अरबी के बदले ये सभी जन-भाषाओं में अपनी बात कहते हैं। कबीर, जायसी, सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई और रहीम का काव्य इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। जनता की समस्याओं-चुनौतियों को जनता के सामने जनता की भाषा में रचना-शक्ति के साथ रख देना इन भक्त कवियों को इष्ट रहा है।

इस खंड की इकाई 3 "भक्ति काव्य : स्वरूप-विकास" में उन कारणों पर विचार किया गया है जिसके परिणामस्वरूप भक्तिकाव्य का आविर्भाव हुआ। इकाई 4-5 में निर्गुण धारा के प्रमुख कवियों में कबीर दास और जायसी के काव्य का विवेचन एवं मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। इकाई 6,7,8 में मीराबाई सूरदास और तुलसीदास के काव्य-सौंदर्य का संक्षिप्त और सारगर्भित ढंग से निरीक्षण-परीक्षण किया गया है। इकाई 9 में रहीम की भक्ति-नीति परंपरा के काव्य का अध्ययन विचार के केन्द्र में रहा है। रहीम की कविता का विवेचन करते समय उनकी तुलना तुलसीदास से की गई है। यहाँ निर्गुण-सगुण जैसा भेद-अध्ययन की सुविधा के लिए ही किया गया है। अन्यथा हमारी दृष्टि यही रही है कि हिंदी के इन प्रमुख भक्त कवियों ने सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से भारतीय जन-जीवन को कहाँ, क्यों और कैसे प्रभावित किया है। उन कारणों की खोजबीन करते हुए उनके काव्य का विश्लेषण करना ही हमारा उद्देश्य रहा है।

इस खंड में संदर्भ, प्रसंग सहित व्याख्या के साथ जो पद्य दिए गए हैं। उन्हीं के भीतर से आपको परीक्षा के लिए व्याख्या की तैयारी करनी है।

इस खंड से संबंधित ऑडियो-वीडियो पाठ भी तैयार किए गए हैं। यह पाठ आपको विश्वविद्यालय के विभिन्न अध्ययन केन्द्रों में उपलब्ध होंगे।

इकाई 3 : भक्ति काव्य का स्वरूप और विकास

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 भक्ति काव्य की पूर्व परंपरा
3.3 भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि
3.4 भक्ति का स्वरूप
  3.4.1 भक्ति का अर्थ
  3.4.2 भक्ति का स्वरूप
3.5 भक्ति काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
  3.5.1 भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताएँ
  3.5.2 निर्गुण भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताएँ
  3.5.3 सगुण भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताएँ
3.6 भक्ति काव्य का शिल्प-विधान
  3.6.1 काव्य भाषा
  3.6.2 काव्य रूप
  3.6.3 छंद विधान
  3.6.4 अलंकार
  3.6.5 काव्य रस
3.7 भक्ति काव्य का विकास
  3.7.1 ज्ञानाश्रयी शाखा
  3.7.2 प्रेममार्गी (सूफी) शाखा
  3.7.3 कृष्ण भक्ति शाखा
  3.7.4 राम भक्ति शाखा
3.8 सारांश
3.9 शब्दावली
3.10 उपयोगी पुस्तकें
3.11 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

यह 'हिन्दी काव्य' के दूसरे खंड की पहली इकाई है। इस इकाई में आप भक्ति काव्य के स्वरूप और हिन्दी में उसके विकास का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- भक्ति शब्द का अर्थ बता सकेंगे;
- हिन्दी के भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे;
- भक्ति काव्य की विभिन्न प्रवृत्तियों की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- भक्ति काव्य की भाषा और शिल्प पक्ष की विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे; तथा
- भक्ति काव्य के विकास का वर्णन कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

हिन्दी का ऐच्छिक पाठ्यक्रम-2 हिन्दी काव्य से संबंधित है। इस पाठ्यक्रम के पहले खंड में आपने हिंदी काव्य की आरंभिक पृष्ठभूमि और आदि काव्य का परिचय प्राप्त किया था। दूसरे खंड का संबंध भक्ति काव्य से है। इस खंड की यह पहली इकाई है तथा इस पाठ्यक्रम की तीसरी इकाई है। इस इकाई में आपको हिंदी भक्ति काव्य के स्वरूप और विकास के संबंध में जानकारी दी जाएगी। बाद की इकाइयों में आप भक्ति काव्य धारा से जुड़े कुछ प्रतिनिधि कवियों के काव्य का अध्ययन भी करेंगे।

भक्ति काल हिंदी साहित्य के इतिहास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण काल माना जाता है। इसी काल के दौरान कबीर, जायसी, सूर, मीरा, तुलसी, रहीम जैसे महान् कवि हुए जिनकी रचनाओं ने लाखों नर-नारियों को प्रभावित और प्रेरित किया। इस युग के उक्त रचनाकारों की काव्य रचनाओं का

अध्ययन करने से पहले यह ज़रूरी है कि आप इस युग की विशेषताओं को ठीक से समझें। भक्ति काव्य का लेखन क्यों आरंभ हुआ? भक्ति क्या है? उस युग की परिस्थितियाँ क्या थीं? भक्ति काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ कौन-कौन-सी हैं? इन प्रवृत्तियों की कौन-सी प्रमुख विशेषताएँ हैं? भक्ति काव्य का विकास कैसे हुआ? इन सभी प्रश्नों का उत्तर जानना आपके लिए ज़रूरी है। भक्ति काव्य के स्वरूप और विकास का पर्याप्त परिचय प्राप्त कर लेने से आपको इस खंड में सम्मिलित कवियों को समझने में मदद मिलेगी।

भक्ति काव्य पर विचार करें तो हम इस बात को आसानी से पहचान सकते हैं कि सामान्यतः सभी भक्त कवियों का काव्य भक्ति भावना से प्रेरित है। लेकिन इन कवियों के काव्य की अपनी अलग-अलग पहचान भी है। उदाहरण के लिए, कबीर और तुलसी या जायसी और सूर के काव्य में काफी भिन्नताएँ हैं। ये भिन्नताएँ कौन-कौन-सी हैं और इनका आधार क्या है, इन पर हम इस इकाई में विचार करेंगे। इसी संदर्भ में भक्ति के भेदों और उनसे संबंधित काव्य रूपों, निर्गुण भक्ति, सगुण भक्ति, कृष्ण भक्ति, राम भक्ति, सूफी मत, प्रबंध काव्य, मुक्तक काव्य आदि को लेकर कई प्रश्न हमारे सामने उपस्थित होंगे। हम इन पर विचार-विमर्श करेंगे ताकि आगे की इकाइयों को समझने में हमें सहायता मिले।

3.2 भक्ति काव्य की पूर्व परंपरा

धर्म के क्षेत्र में ईश्वर की प्राप्ति के तीन मार्ग बताए गये हैं: ज्ञान, भक्ति और कर्म। ज्ञान का संबंध ईश्वर संबंधी तत्वचिंतन से है। जबकि भक्ति का संबंध ईश्वर के प्रति निष्ठा और प्रेम द्वारा उसकी प्राप्ति से है। कर्म का संबंध उन आचार-विचारों से है, जिनका पालन करके व्यक्ति अपने को ईश्वर की प्राप्ति के योग्य बनाता है। एक अन्य मार्ग योग है जिनमें कठोर साधना और तप पर बल दिया गया है।.

विद्वानों ने भक्ति का उद्‌गम वेदों से माना है। वेदों में ऐसे बहुत से सूक्त और मंत्र हैं जिनमें कष्टों और दुखों से मुक्त करने की प्रार्थना ईश्वर से की गयी है तथा यह कामना की गयी है कि ईश्वर बल, ओज और सहनशक्ति प्रदान करे। ईश्वर या विभिन्न देवताओं के प्रति आराधक की इस तरह की प्रार्थनाओं में हम भक्ति का मूल तत्व पा सकते हैं। भक्ति के इस तत्व को हम उपनिषदों में भी पाते हैं, लेकिन इसका वास्तविक विकास 'भगवद्‌गीता' में मिलता है जो प्रख्यात महाकाव्य 'महाभारत' का एक अंग है। 'भगवद्‌गीता' में ईश्वर के प्रति गहरी निष्ठा को जीवन का लक्ष्य बताया गया है। गीता में ईश्वर प्राप्ति के तीन मार्ग बताये गये हैं—कर्म, ज्ञान और भक्ति। गीता के अनुसार ये सभी मार्ग समान रूप से फलदायक हैं। भक्ति के क्षेत्र में भी गीता का आदर्श यही है कि जो ईश्वर को जिस रूप में भजता है, ईश्वर उसे उसी रूप में प्राप्त होते हैं। भक्ति के स्वरूप की विस्तृत चर्चा बाद में कई पुराण ग्रंथों में भी मिलती है जिनमें 'श्रीमद्‌भागवत पुराण' का विशेष महत्व है।

दक्षिण भारत में भक्ति साहित्य : भक्ति साहित्य का उदय सबसे पहले दक्षिण में हुआ। दक्षिण में भक्ति का प्रभाव ईसा की दूसरी-तीसरी शताब्दी से दिखाई देने लगता है। इससे पूर्व वहाँ बौद्ध और जैन धर्म का प्रभाव था। किंतु बाद में वैष्णव और शैव धर्म का प्रभाव बढ़ने लगा। इन दोनों के बढ़ते प्रभाव ने भक्ति के प्रसार में योग दिया। तमिल साहित्य में अडियारों तथा आलवारों की परंपराओं का संबंध भक्ति साहित्य से है। आलवार संतों की परंपरा ईसा से 100-200 वर्ष पूर्व से आरंभ होकर बारहवीं शताब्दी तक दिखाई देती हैं। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार, "ये भक्त कवि अधिकतर निम्न वर्ग के व्यक्ति थे और उनमें से अधिकांश अशिक्षित भी थे, किंतु इन्होंने ही भक्ति को सर्वप्रथम सामान्य जन-जीवन के भी स्तर तक ला दिया। भक्ति के द्वारा अनुप्राणित हो इन्होंने अपने हृदय के सच्चे एवं भावपूर्ण उद्‌गार प्रकट किये और उनके कारण ये अपने परवर्ती कवियों के लिए पथ-प्रदर्शक भी बन गए। अडियारों के इष्टदेव शिव थे और आलवारों के विष्णु अथवा राम एवं कृष्ण थे। किंतु इस प्रकार की विभिन्नताओं के होते हुए भी उनकी भक्ति-साधना में विशेष अंतर नहीं था। उनका लक्ष्य एक समान था, उनके भावों में अपूर्व सादृश्य था।" (भारतीय साहित्य में भक्ति-धारा पृ. 10) इन भक्त कवियों में महिलाएँ भी शामिल थीं।

भक्ति साहित्य केवल तमिल भाषा तक ही सीमित नहीं था बल्कि मलयालम, तेलुगु में भी इसका प्रणयन हुआ। कन्नड़ भाषा में भी भक्ति साहित्य की रचना हुई। दक्षिण में विद्यमान भक्ति की परंपरा ही 13वीं-14वीं सदी में अखिल भारतीय आंदोलन के रूप में विकसित हुई।

भक्ति साहित्य पर अन्य प्रभाव : भक्ति साहित्य की परंपरा में बौद्ध, सिद्ध और नाथ साहित्य का भी योगदान रहा है, विशेष रूप से भक्ति की निर्गुणवादी परंपरा पर सिद्धों और नाथों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। धर्म की ब्राह्मणवादी परंपरा से अलग बौद्ध साहित्य में धर्म की लोकवादी परंपरा दिखाई देती है। इसमें धार्मिक रूढ़ियों और कर्मकांडों का विरोध किया गया है तथा वर्णाश्रम व्यवस्था को भी अस्वीकार किया गया है। नाथों और सिद्धों ने अपने साहित्य म इस परंपरा को आगे बढ़ाया और बाह्य धार्मिक आचारों की तुलना में ईश्वर के प्रति हृदयगत निष्ठा को अधिक महत्व दिया।

13वीं-14वीं सदी के इस भक्ति आंदोलन पर इस्लाम के एकेश्वरवाद का प्रभाव भ. था। इस्लाम की एक शाखा सूफी मत में निहित प्रेम तत्व और उदारतावाद ने भक्ति आंदोलन को और अधिक व्यापक तथा लोकप्रिय बनाया। कई सूफी कवियों ने प्रबंध काव्यों की रचना कर इस युग के काव्य को और अधिक समृद्ध किया। इनके प्रबंध काव्यों में फारसी और भारतीय परंपरा का सुंदर संयोग दिखाई देता है।

3.3 भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रंथ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में भक्तिकाल का समय वि.सं. 1375 (सन् 1318) से वि.सं. 1700 (सन् 1643) तक माना है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हिंदी भक्ति काव्य का आरंभ विक्रम की पंद्रहवीं शताब्दी से मानते हैं लेकिन वे भी इसका विस्तार 1700 तक ही स्वीकार करते हैं। शुक्लजी के काल-विभाजन को ही स्वीकार कर लिया गया है इसलिए हम भी भक्ति काल का समय विक्रम की चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से सत्रहवीं शताब्दी तक मान सकते हैं।

प्रश्न यह है कि ऐसी कौन-सी परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं जिनके कारण भक्ति आदोलन का उद्भव हुआ। इस प्रश्न पर विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रस्तुत किये हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मानना है कि मुस्लिम शासकों का राज्य स्थापित होने के कारण हिंदू जनता में जो हताशा फैल गयी थी, उसी के कारण भक्ति साहित्य का उदय हुआ। उन्हीं के शब्दों में, "देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उसके देवमंदिर गिराए जाते थे, देवमूर्तियाँ तोड़ी जाती थीं और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो गा ही सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन ही सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लड़ने वाले स्वतंत्र राज्य भी नहीं रह गए। इतने भारी राजनीतिक उलटफेर के पीछे हिंदू जनसमुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी छाई रही। अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?" (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 43)

हम पहले बता चुके हैं कि भक्ति और भक्ति साहित्य दोनों की भारत में लंबी परंपरा रही है। अगर हम राजनीतिक स्थिति से स्वतंत्र सामाजिक सांस्कृतिक और धार्मिक परिस्थितियों का अवलोकन करें तो भक्ति साहित्य के उदय के कारण को ज्यादा बेहतर ढंग से समझ सकते हैं।

दक्षिण में उत्पन्न हुए शंकराचार्य (आठवीं सदी) के अद्वैतवाद का देशव्यापी असर पड़ा था। अद्वैतवाद के अनुसार ईश्वर की सत्ता ही सत्य है, यह जगत् मिथ्या है। माया के वशीभूत होने के कारण ही हम जगत को सत्य समझ लेते हैं। शंकराचार्य के मत ने ईश्वरीय भक्ति के मार्ग को अवरूद्ध कर दिया। इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। रामानुज, निम्बार्क, मध्व, वल्लभ आदि आचार्यों ने ईश्वर, जीव और जगत के पारस्परिक संबंधों की नये ढंग से व्याख्या की और भक्ति के महत्व की पुनः स्थापना की। शंकराचार्य का समय आठवीं शताब्दी माना जाता है और रामानुज का समय ग्यारहवीं शताब्दी। रामानुज ने भक्ति को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आलवार संतों की लंबी परंपरा तो पहले से ही विद्यमान थी, इसलिए यह कहना बहुत उचित नहीं लगता कि जनता राजनीतिक पराजय से हताश होकर ईश्वर की ओर उन्मुख हुई थी। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का स्पष्ट मत है कि "अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी साहित्य का बारह आना वैसा ही होता, जैसा आज है।" (हिंदी साहित्य की भूमिका, पृ. 1) भक्ति आंदोलन अखिल भारतीय आंदोलन था। मध्य भाग में कबीर, नानक, जायसी, रैदास, सूरदास, तुलसीदास, दादूदयाल तो पश्चिम में नामदेव, नरसी, मीरा, बंगाल में चैतन्य महाप्रभु, चंडीदास और दक्षिण में आलवार आदि नायनार संत कवि हुए। इस भक्ति आंदोलन में समाज के निम्न

समझे जाने वाले तबके भी शामिल थे। संपूर्ण भक्ति साहित्य में करुणा और अनुरक्ति का स्वर तो है, लेकिन अवसाद और पराजय का स्वर कहीं नहीं है। दूसरे इस भक्ति आंदोलन में हिंदू तथा मुस्लिम दोनों ही शामिल थे और नामदेव, नानक, कबीर, रैदास, चैतन्य, जायसी आदि ने हिंदू मुस्लिम एकता पर विशेष बल दिया। इसलिए यह कहना बहुत उचित नहीं लगता कि भक्ति साहित्य मुस्लिम शासकों के अत्याचारों की प्रतिक्रिया से उत्पन्न हुआ।

इसका अर्थ यह भी नहीं है कि भक्ति साहित्य में जनता के सांसारिक कष्टों के तत्व नहीं हैं। गरीब हिंदू और मुस्लिम जनता राजनीतिक उत्पीड़न, धार्मिक कट्टरता, सामाजिक भेदभाव और रूढ़िबद्धता से परेशान थी। भक्ति आंदोलन उनके इन्हीं कष्टों और दुःखों को अभिव्यक्ति दे रहा था। 12वीं-13वीं सदी के राजनीतिक-आर्थिक परिवर्तनों ने निम्न समझी जाने वाली कारीगर जातियों की स्थिति में सुधार को संभव बनाया। इससे इन जातियों में आत्मसम्मान का भाव उत्पन्न हुआ।

इन्हीं परिस्थितियों में भक्ति के प्रचार ने इन वर्गों को अपनी ओर आकृष्ट किया क्योंकि भक्ति के क्षेत्र में हृदयगत निष्ठा को अधिक प्रधानता दी गयी थी। धार्मिक कर्मकांडों और सामाजिक रूढ़ियों को भक्ति के मार्ग की बाधा माना गया था। भक्ति वस्तुतः धार्मिक उपासना के क्षेत्र में समानता और उदारता को स्वीकारती है और इसी विशेषता ने भक्ति को लोकप्रिय बनाया और कवियों ने इसे अपने काव्य का विषय बनाया।

3.4 भक्ति का स्वरूप

भक्ति साहित्य ईश्वर के प्रति भक्त की निष्ठा और भावना का ही प्रतिफलन नहीं है, फिर भी भक्ति वह केन्द्रीय तत्व अवश्य है जो उनके काव्य में अंतः धारा की तरह सर्वत्र प्रवाहित दिखाई देता है। भक्त कवि पहले भक्त थे बाद में कवि। उन्होंने कविता के लिए कविता नहीं की थी बल्कि सभी भक्त कवियों ने ईश्वर के प्रति अपने हृदय के उद्गारों को ही वाणी दी थी, इसलिए उनके शब्दों में सच्ची निष्ठा, गहरा अनुराग और तीव्र भावनात्मक उद्वेग स्पष्ट परिलक्षित होता है। कबीर, जायसी, सूर, मीरा, तुलसी आदि सभी भक्त और कवि दोनों थे, लेकिन उनके काव्य में भक्ति के अतिरिक्त अन्य बातों में एकरूपता नहीं है। भक्ति के स्वरूप में भी इनके यहाँ कुछ न कुछ भेद अवश्य है जैसे सूरदास की भक्ति संख्य भाव की है, तुलसी की हास्य भाव की और कबीर तथा जायसी की दाम्पत्य भाव की। भक्ति के ऊपरी भेदों की व्याख्या हम यथावसर करेंगे, इससे पहले हम भक्ति के अर्थ को समझने का प्रयास करें।

3.4.1 भक्ति का अर्थ

'भक्ति' शब्द की निष्पति 'भज्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है--सेवा करना। लेकिन इसका अर्थ सिर्फ 'सेवा' शब्द तक ही सीमित नहीं है। भक्ति में ईश्वर का भजन, पूजा, प्रीति और अर्पण सभी शामिल हैं। दूसरे शब्दों में, भक्ति ईश्वर के प्रति भक्त के प्रेम की अभिव्यक्ति है। 'भक्ति' की परिभाषा नारद ने अपने 'भक्ति सूत्र' में की है। उनके अनुसार, 'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा। अमृतस्वरूपा च।' अर्थात् भक्ति भगवान के प्रति परम प्रेमरूपा है और अमृतस्वरूपा है। नारद ने अपने इस सूत्र की व्याख्या करते हुए कहा है कि इस भक्ति को प्राप्त करके मनुष्य अमर हो जाता है अर्थात् वह जन्म-मृत्यु के बंधन के पार हो जाता है और हर तरह के अभाव से मुक्त हो जाता है। भक्ति की उपर्युक्त परिभाषा से यह स्पष्ट है कि भक्ति में ईश्वर के प्रति गहरी अनुरक्ति (प्रेम) पर विशेष बल दिया गया है। भक्ति का यह केंद्रीय भाव है और ईश्वर के प्रति इसी उत्कट प्रेम को हम सभी भक्त कवियों में समान रूप से देख सकते हैं। आचार्य शुक्ल के अनुसार, "श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है।" (चिंतामणि, भाग 1 पृ. 56) शुक्लजी की इस परिभाषा में प्रेम के साथ श्रद्धा का संयोग किया गया है। श्रद्धा ईश्वर के प्रति पूज्य भाव की अभिव्यक्ति है। भक्त ईश्वर के प्रति गहरा प्रेम ही महसूस नहीं करता वरन् उसे अपना उद्धारक, पालनकर्त्ता और मार्गदर्शक भी मानता है।

3.4.2 भक्ति का स्वरूप

भक्ति को ईश्वर की प्राप्ति का सबसे सुगम साधन माना जाता है। भागवत पुराण में भक्ति के नौ प्रकार के साधनों का उल्लेख है :

। श्रवण (ईश्वर के रूप-गुण-लीला को सुनना)

2 कीर्तन (ईश्वर के नाम-रूप-लीला आदि का गुणगान करना)
3 स्मरण (ईश्वर के नाम-रूप आदि को याद करना)
4 पादसेवन (ईश्वर के चरणों की सेवा करना)
5 अर्चना (ईश्वर की पूजा करना)
6 वंदना (ईश्वर की वंदना करना)
7 दास्य (ईश्वर को अपना स्वामी मानकर दास भाव से उनकी सेवा-अर्चना करना)
8 सख्य (ईश्वर को अपना सखा, बंधु और मित्र मानना)
9 आत्मनिवेदन (ईश्वर के चरणों में सर्वस्व अर्पित करना)

भागवत पुराण में भक्ति के दो भेदों की चर्चा की गई है। जब भक्त किसी इच्छा से प्रेरित होकर ईश्वर की पूजा-अर्चना करता है तो ऐसी भक्ति 'सगुणा' या 'गौणी' भक्ति कहलाती है।

जब भक्त मोक्ष की कामना भी त्याग देता है तथा ईश्वर का प्रेम और उसकी कृपा प्राप्त करना ही उसका लक्ष्य रह जाता है तो ऐसी भक्ति "निर्गुणा" या "अहैतुकी" भक्ति कहलाती है।

भक्ति काव्य में हम अहैतुकी भक्ति का प्रभाव अधिक देखते हैं। भक्ति के जिन नौ साधनों की चर्चा ऊपर की गई है, उसे देखने से स्पष्ट है कि इसमें मुख्य बल ईश्वर के स्मरण और पूजा को दिया गया है। ईश्वर की पूजा की कोई बाह्य विधि नहीं बताई गई है तथा जोर ईश्वर के नाम-रूप-गुण और लीला के स्मरण और कीर्तन पर है। भक्ति काव्य में भी इसीलिए नाम-स्मरण और ईश्वरीय लीला के गुणगान को इतना अधिक महत्व दिया गया है।

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर रिक्त स्थानों में लिखिए और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइए।

1 जब भक्त हर तरह की कामना से रहित होकर ईश्वर की भक्ति करता है तो उस भक्ति को कहते हैं:
क) सगुणा भक्ति
ख) सात्विक भक्ति
ग) अहैतुकी भक्ति
घ) दास्य भक्ति ( )

2 ईश्वर प्राप्ति के निम्नलिखित मार्गों का सही नाम बताइए।
क) कठोर तप और साधना द्वारा।
ख) ईश्वर संबंधी तत्व चिंतन द्वारा।
ग) विधि-निषेधों के पालन द्वारा।
घ) ईश्वर की प्रति उत्कट प्रेम द्वारा। ( )

3 भक्ति काव्य के संबंध में आचार्य शुक्ल के मत को अपने शब्दों में लिखिए।

....
....
....
....
....

4 भक्ति साहित्य का सबसे पहले उद्भव कहाँ हुआ और उसकी क्या विशिष्टता थी? तीन-चार पंक्तियों में अपना उत्तर लिखिए।

....
....
....
....

3.5 भक्ति काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

जार्ज ग्रियर्सन ने भक्ति आंदोलन पर विचार करते हुए लिखा था कि इसका आगमन "बिजली की चमक के समान अचानक" हुआ था। लेकिन हम बता चुके हैं कि भक्ति आंदोलन का आरंभ कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। 14वीं-15वीं सदी में भक्ति आंदोलन के जन्म से पहले ही दक्षिण में भक्ति का व्यापक प्रसार हो चुका था। यह सही है कि भक्ति आंदोलन का उदय तत्कालीन परिस्थितियों की देन था, लेकिन इस पर विभिन्न धार्मिक मतों के प्रभाव से भी इंकार नहीं किया जा सकता। भक्ति आंदोलन 14वीं से 17वीं सदी के बीच विद्यमान रहा है। इसमें कई धाराएँ और उप-धाराएँ रही हैं। हम इनका अध्ययन आगे करेंगे। इससे पहले हमें भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताओं का अध्ययन अवश्य कर लेना चाहिए ताकि हम इस बात को अच्छी तरह समझ सकें कि भक्ति काव्य की सामान्य आधारभूमि क्या है।

3.5.1 भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताएँ

भक्ति के स्वरूप पर विचार करते हुए हमने बताया था कि ईश्वर की उपासना के क्षेत्र में भक्ति का क्या महत्व है। भक्ति आंदोलन पर विचार करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने निम्नलिखित सामान्य विशेषताओं का उल्लेख किया है:

1 प्रेम ही परम पुरुषार्थ है, मोक्ष नहीं।
2 भगवान के प्रति प्रेम कौलीन्य से बड़ी चीज है।
3 भक्त भगवान से भी बड़ा है।
4 भक्ति के बिना शास्त्र-ज्ञान और पांडित्य व्यर्थ है।
5 नाम रूप से भी बढ़कर है।

अगर भक्ति की इन विशेषताओं पर विचार करें तो हम समझ सकते हैं कि भक्ति के मार्ग में जाति-पाँति, शास्त्र ज्ञान, आचार-विचार आदि का कोई महत्व नहीं था। ईश्वर के प्रति उत्कट प्रेम और उसके नाम का स्मरण यही सबसे महत्वपूर्ण तत्व थे, जो भक्ति काव्य के आधार बने। सगुण-निर्गुण तथा राम और कृष्ण का लीला गान आदि बातें इसी के बाद आती हैं। उपर्युक्त बातों के आधार पर हम भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताएँ बता सकते हैं, जो संपूर्ण भक्ति काव्य पर लागू की जा सकती हैं।

1 ईश्वर के प्रति उत्कट प्रेम : ईश्वर के प्रति तीव्र प्रेम का अनुभव करना ही भक्त की पहचान है। हम सभी भक्त कवियों में इस विशेषता को समान रूप से पा सकते हैं। चाहे वे निर्गुण को मानते हों या सगुण को, चाहे वे राम की उपासना करते हों या कृष्ण की। अपने आराध्य के प्रति गहरी अनुरक्ति और उसको पाने की लालसा, उनमें समान रूप से मिलती हैं। कबीर कहते हैं:

आँखड़ियाँ झाँई पड़ी, पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पड़्या, राम पुकारि पुकारि।।

इसी तरह मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' में प्रेम तत्व को ही प्रधानता दी है। मीराँ तो अपने को प्रेम दिवानी कहती ही हैं। सूर और तुलसी का संपूर्ण साहित्य ईश्वर के प्रति उत्कट प्रेम का ही परिणाम है। तुलसी कहते हैं:

एक भरोसो एक बल एक आस विश्वास।
एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास।।

2 समानता का भाव : भक्ति के मार्ग में सांसारिक भेदभाव का कोई स्थान नहीं है। इस बात को सभी भक्त कवियों ने स्वीकार किया है। तुलसीदास जो वर्णाश्रम धर्म का समर्थन करते हैं, भक्ति के क्षेत्र में किसी तरह के भेदभाव को स्वीकार नहीं करते इसीलिए उनके राम शबरी के झूठे बेर खा लेते हैं और निषादराज को अपने भाई भरत के समान प्रिय बताते हैं। सूरदास की गोपियाँ भी प्रेम के मार्ग में विधि-निषेधों को स्वीकार नहीं करतीं? कबीर आदि निर्गुण कवियों ने तो जाति-पाँति का विरोध दृढ़तापूर्वक किया है।

3 गुरु महिमा : ईश्वर के प्रति उत्कट प्रेम भक्ति की केन्द्रीय विशेषता है लेकिन भक्त कवियों ने ईश्वर से भी बड़ा उस गुरु को माना है जिसने ईश्वर के साक्षात् रूप से उनका परिचय कराया है। इसीलिए कबीर गुरु को गोविंद से बड़ा मानते हैं। वे कहते हैं:

"गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागों पाँव।
बलिहारी वा गुरु की जिन गोविंद दिया दिखाय।।

जायसी के 'पद्मावत' में भी सुआ राजा रत्नसेन को पद्मावती के रूप सौंदर्य से परिचित कराता है। रत्नसेन आत्मा, पद्मावती परमात्मा और सुआ गुरु का प्रतीक है। तुलसीदास ने "मानस" के

आरंभ में ही गुरु की वंदना करते हुए कहा है: बंदौ गुरु पद कंज, कृपा सिंधु नर रूप हरि"। कहने का तात्पर्य यही है कि प्रायः सभी भक्त कवि गुरु के महत्व को स्वीकार करते हैं।

4 शास्त्र-ज्ञान की अनावश्यकता : भक्त कवियों ने शास्त्र ज्ञान और पांडित्य को भक्त के लिए आवश्यक नहीं माना है बल्कि कभी-कभी तो इन्हें भक्ति के मार्ग की बाधा ही स्वीकार किया है। कबीर इसीलिए कहते हैं कि "पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ पंडित भया न कोई।" सूरदास की गोपियाँ उद्धव के शास्त्र-ज्ञान का मजाक उड़ाती हैं "आयो घोष बड़ों व्योपारी/लादि खेप गुन ज्ञान-जोग की ब्रज में आय उतारी।" तुलसीदास ने भी बार-बार इस बात को दोहराया है कि शास्त्रीय ज्ञान की अपेक्षा ईश्वर की कृपा अधिक महत्वपूर्ण है। उसी की कृपा से अज्ञानी और पापी भी भवसागर पार हो जाते हैं।

5 नाम-महिमा : भक्ति के जिन नौ साधनों का ऊपर वर्णन किया गया है उनमें स्मरण, कीर्तन और श्रवण का संबंध नाम-महिमा से ही है। भक्त कवियों ने राम के नाम को राम से भी बढ़कर माना है। कबीर कहते हैं "राम नाँव ततसार है"। वे यह भी कहते हैं कि "कबीर सुमिरण सार है और सकल जंजाल" इसी प्रकार तुलसीदास ने 'विनय पत्रिका' के कई पदों में ऐसे भक्तों का बार-बार उदाहरण दिया है जिन्होंने नाम स्मरण के बल पर प्रभु की कृपा प्राप्त की। "रामचरित मानस" में उन्होंने कलिकाल में कल्याण का सबसे बड़ा साधन राम से भी बढ़कर उनके नाम को माना है।

6 अहंकार का त्याग : भक्त कवियों में यह विशेषता भी समान रूप से पाई जाती है। कबीरदास इसीलिए कहते हैं कि मैं तो राम का कुत्ता हूँ और मोती मेरा नाम है। मेरे गले में राम नाम का पट्टा बंधा है, वह जिधर खींचता है, मैं उधर ही जाता हूँ। सूरदास के विनय संबंधी पदों में भी हम ऐसा ही समर्पण और दैन्य भाव पाते हैं। तुलसी ने तो बार-बार कहा है कि

राम सो बड़ो है कौन, मोसों कौन छोटो?
राम सो खरो है कौन, मोसों कौन खोटो?

7 लोक जीवन से जुड़ाव : भक्त कवि किसी राजा या बादशाह के दरबारी कवि नहीं थे। इनमें से कई तो कोई न कोई व्यवसाय करते थे।

कबीर पेशे से जुलाहा थे, रैदास चर्मकार। तुलसीदास कथावाचक थे। तुलसीदास ने तो स्पष्ट रूप से लिखा था कि जो कवि प्राकृत जनों राजा-महाराजा का गुणगान करता है उसकी कविता पर सरस्वती अपना सिर धुनकर पछताती है। वस्तुतः भक्त कवियों ने राम को ही अपना राजा समझा और सामान्य जनता के बीच ही अपनी कविता ले गये। इस तरह उनकी कविता में लोक जीवन का समावेश हुआ।

इस प्रकार हम पाते हैं कि भक्त कवियों में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो सभी में समान रूप से मिलती हैं। भक्ति का मार्ग ईश्वर की आराधना का सरल, सहज और सर्वसुलभ मार्ग था। इस मार्ग में छोटे-बड़े और ऊँच-नीच का कोई भेद नहीं था।

यहाँ शास्त्रीय ज्ञान और कठोर साधना की आवश्यकता नहीं थी केवल प्रभु के प्रति गहरा प्रेम और आत्मसमर्पण ही पर्याप्त था। इसलिए इस काव्य को इतनी लोकप्रियता प्राप्त हुई। लेकिन इस काव्य में कई धाराएँ अंतर्निहित थीं। भक्ति काव्य की अब तक बतायी गयी सामान्य विशेषताओं के अतिरिक्त धाराओं की अपनी विशेषताएं थीं, जिनके कारण उनकी अपनी अलग पहचान बनी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्त कवियों को दो श्रेणियों में विभाजित किया है। एक हैं निर्गुण भक्त कवि और दूसरे हैं सगुण भक्त कवि। इसी आधार पर उन्होंने भक्ति काव्य को भी निर्गुण भक्ति काव्य और सगुण भक्ति काव्य नामक भेदों में विभाजित किया। कबीर, जायसी, रैदास, नानक, दादूदयाल आदि को निर्गुण काव्य धारा में और सूरदास, नंददास, तुलसीदास आदि को सगुण काव्य धारा में सम्मिलित किया है। निर्गुण काव्य धारा और सगुण काव्य धारा में मूलभूत अंतर यह है कि निर्गुण कवि ईश्वर को निर्गुण (यानी सांसारिक गुणों से रहित या उनसे ऊपर), निराकार (रूप और आकार से रहित अर्थात् वह कोई रूप धारण नहीं करता) मानते हैं जबकि सगुण कवि ईश्वर को सगुण (अर्थात् सभी गुणों से युक्त परंतु उनसे परे भी), साकार (अर्थात् ईश्वर कोई भी रूप धारण करने में सक्षम और इस नाम रूपात्मक जगत में रूप धारण करके अवतरित होता है)। ईश्वर की परिकल्पना का यह अंतर मामूली बात नहीं है। इसी कारण इन दोनों के काव्य की विषय वस्तु में अंतर आया है और जीवन और जगत संबंधी उनके दृष्टिकोण में भी अंतर दिखाई देता है। आगे के पृष्ठों में हम इन दोनों प्रवृत्तियों का किंचित् विस्तार से उल्लेख करेंगे।

3.5.2 निर्गुण भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताएँ

निर्गुण निराकार ईश्वर में विश्वास : ईश्वर को निर्गुण निराकार मानना निर्गुण भक्ति काव्य की आधारभूत विशेषता है। निर्गुणपंथी अवतारवाद में विश्वास नहीं करते। उनका दृढ़ मत है कि ईश्वर निर्गुण और निराकार है। वह समस्त सृष्टि में व्याप्त है, लेकिन वह मनुष्य या अन्य प्राणी का रूप धारण नहीं करता। ईश्वर निर्गुण निराकार है, इसलिए उसकी मूर्ति बनाकर पूजा करना गलत है। समस्त सृष्टि उसी की रचना है इसलिए भी उसकी मूर्ति बनाना या मंदिर बनाना व्यर्थ है।

लौकिक प्रेम द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की अभिव्यक्ति : निर्गुण पंथी भक्त कवियों ने ईश्वर को निर्गुण निराकार तो माना, किंतु उसकी उपासना का भी एक मार्ग ढूँढ लिया। उन्होंने भक्ति की उपासना का मार्ग योग और गुह्य साधना-पद्धति में खोजा था। नाथ और सिद्ध इसी परंपरा में आते हैं। साधना का यह मार्ग सामान्य जनता को आकृष्ट नहीं कर सका। कबीर आदि संतों ने ईश्वर के प्रति अपने प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए लौकिक संबंधों को आधार बनाया। कबीर ने ईश्वर को अपना 'भरतार' और स्वयं को उसकी 'दुलहिन' माना। इसी प्रकार सूफी कवियों ने लौकिक प्रेम कथाओं के माध्यम से ईश्वर के प्रति अपने प्रेम को अभिव्यक्ति दी।

धार्मिक रूढ़ियों और सामाजिक कुरीतियों का विरोध : निर्गुणपंथी केवल ईश्वर प्रेम में लीन रहने वाले भक्त नहीं थे। उन्हें ईश्वर की बनाई इस सृष्टि से भी उतना ही प्रेम था। इसीलिए उन्होंने इसमें व्याप्त बुराइयों और अनाचारों का विरोध किया। उन्होंने धार्मिक रूढ़ियों और कर्मकांडों को माया कहा। उनके अनुसार यह विश्वास करना कि काशी में मरने से स्वर्ग मिलेगा, या गंगा में नहाने से पुण्य होता है, केवल मन का भ्रम है। ईश्वर और जीव तो जल और बर्फ की तरह है, दोनों में कोई मूलभूत अंतर नहीं है।

पांणी ही तैं हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कछू कह्या न जाइ।।

जाति प्रथा का विरोध एवं हिंदू-मुस्लिम एकता का समर्थन : जीव और ईश्वर की एकता के कारण ही निर्गुण पंथी जाति-पाँति और ऊँच-नीच के भेद में विश्वास नहीं करते थे। कबीर और अन्य संत कवियों ने बार-बार इस बात को दोहराया है कि ब्राह्मण और शूद्र एक ही ईश्वर की संतान है और उनमें भेद करना गलत है। "एक जोति थैं सब उपजा कौन ब्राह्मन कौन सूदा"। निर्गुण पंथी जाति के भेद को तो अस्वीकार करते ही थे, हिंदू और मुस्लिम के बीच भी कोई फर्क नहीं करते थे। कबीर, नानक आदि ने हिंदू मुस्लिम एकता पर विशेष रूप से बल दिया। कबीर ने हिंदू और इस्लाम दोनों धर्मों में व्याप्त अंधविश्वासों पर चोट की। दूसरी ओर मलिक मुहम्मद जायसी, मंझन, कुतुबन आदि सूफी कवियों ने हिंदू लोक कथाओं को अपनाकर अपनी सहिष्णुता और उदारता का परिचय दिया।

रहस्यवाद का प्रभाव : निर्गुण काव्य धारा की एक महत्वपूर्ण विशेषता है, उसका रहस्यवाद। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में ईश्वर की परोक्ष सत्ता का आभास पाना, उनसे अपना संबंध जोड़ना और उस सत्ता के साथ अपने को एकाकार महसूस करना ही रहस्यवाद है। शुक्लजी ने रहस्यवाद को दो प्रकार का बताया है– भावात्मक रहस्यवाद और साधनात्मक रहस्यवाद। भावात्मक रहस्यवाद में जीव ईश्वर के प्रति गहन प्रेमानुभूति महसूस करता है। जायसी के यहाँ इसी भावात्मक रहस्यवाद को देखा जा सकता है। कबीर भी जब अपने को "राम की बहुरिया" मानकर ईश्वर के प्रति गहरी विरह भावना को व्यक्त करते हैं तो यह भावात्मक रहस्यवाद ही है। लेकिन साधनात्मक रहस्यवाद में योग की साधना पद्धति का सहारा लिया जाता है। कबीर के यहाँ इस साधनात्मक रहस्यवाद का प्रभाव अधिक दिखाई देता है।

निर्गुण भक्ति काव्यधारा पर नाथों-सिद्धों, सूफीमत, अद्वैतवाद और वैष्णव भक्ति का प्रभाव था। निर्गुण काव्यधारा ने इन सभी को अपनाया और इन्हीं में से अपना रास्ता निकाला। नाथों और सिद्धों की परंपरा से उन्होंने धार्मिक पाखंड का खंडन और जाति-पाँति का विरोध लिया। उन्होंने योग-साधना की पद्धति का प्रभाव भी इन्हीं से ग्रहण किया। सूफी मत से उन्होंने प्रेम तत्व प्राप्त किया। सूफी काव्य का तो यह आधार था ही। उन पर ईश्वर के स्वरूप और माया के सिद्धांत का प्रभाव अद्वैतवाद के कारण था। वैष्णव परंपरा से उन्होंने अहंकार का त्याग, ईश्वर के प्रति उत्कट प्रेम और "राम" नाम का आधार लिया। इस प्रकार निर्गुण काव्य धारा विभिन्न परंपराओं का समागम है।

निर्गुण काव्य धारा को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने दो शाखाओं में विभाजित किया है–कबीर आदि संतों की ज्ञानाश्रयी शाखा और जायसी आदि सूफी कवियों की प्रेममार्गी शाखा। इनका अध्ययन क्रम आगे करेंगे।

3.5.3 सगुण भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताएँ

ईश्वर के सगुण और साकार रूप में विश्वास करने वाले भक्त कवियों के काव्य को सगुण काव्यधारा नाम दिया गया। हमने पहले इस बात पर विचार किया था कि आद्यशंकराचार्य के मत ने उपासना के क्षेत्र में भक्ति के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया था। शंकराचार्य के सिद्धांत 'अद्वैतवाद' के अनुसार "ईश्वर ही सत्य है, जगत मिथ्या है"। माया के कारण ही मनुष्य संसार को सच मानता है। शंकराचार्य के अनुसार केवल ब्रह्म ही सत्य है इसलिए आत्मा भी ब्रह्म ही है। ऐसी स्थिति में भक्ति संभव नहीं है क्योंकि भक्ति के लिए भक्त और भगवान के बीच किसी न किसी रूप में भेद की चेतना होना आवश्यक है। यही कारण है कि रामानुजाचार्य ने जीव, जगत और ईश्वर के संबंधों को लेकर एक नया दार्शनिक मत प्रस्तुत किया।

रामानुज (11वीं शती) के अनुसार जीव, जगत और ईश्वर के बीच उसी तरह का संबंध है जिस तरह का संबंध शरीर और उसके अंगों के बीच होता है। जिस प्रकार शरीर के अंग शरीर से भिन्न भी हैं और शरीर से एकाकार भी, उसी तरह जीव भी ईश्वर से अलग भी है और उसका अंग भी। इस प्रकार, रामानुज भी जीव और ईश्वर के बीच अद्वैतता (दो का निषेध) मानते हैं लेकिन यह विशिष्ट किस्म की अद्वैतता है। इसीलिए रामानुज के सिद्धांत को "विशिष्टाद्वैत" कहा जाता है। रामानुज माया की सत्ता को भी स्वीकार नहीं करते।

रामानुज का मानना है कि जीव ब्रह्म से उत्पन्न होकर उसी में लीन हो जाता है। जीव अपने अंगी रूप ब्रह्म को प्राप्त करना चाहता है। भक्ति उसकी इसी इच्छा की पूर्ति का मार्ग है। इस सिद्धांत में ईश्वर की सगुण रूप में कल्पना की गयी है। दास्य भाव की भक्ति को आदर्श भक्ति माना गया है। कबीर के गुरु रामानंद रामानुज की ही परंपरा से संबद्ध थे।

मध्वाचार्य (1188-1276) का सिद्धांत "द्वैतवाद" कहलाता है। इसमें जीव और ईश्वर को भिन्न-भिन्न माना गया है। ईश्वर को इस सृष्टि का कर्त्ता माना गया है। संसार के प्रत्येक जीव एक दूसरे से अलग हैं। मोक्ष प्राप्ति के बाद भी भेद बना रहता है। मध्वाचार्य जगत को भी पूर्णतः सत्य मानते हैं। चैतन्य महाप्रभु का सिद्धांत इसी मत की एक शाखा है।

वल्लभाचार्य (1478-1530) का दार्शनिक मत शुद्धाद्वैत है। शंकराचार्य ने माया का अस्तित्व माना था। वल्लभाचार्य ने माया रहित शुद्ध ब्रह्म को जगत का कारण बताया। उनके अनुसार कृष्ण ही परमब्रह्म हैं। वे आत्मा में भी वास करते हैं और बाह्य रूप में लीला भी करते हैं। कृष्ण का अनुग्रह प्राप्त करना ही भक्त का परम लक्ष्य है। यह "अनुग्रह" ही पुष्टि है इसलिए वल्लभाचार्य के सिद्धांत को पुष्टि मार्ग भी कहते हैं। राधा और कृष्ण की उपासना यहाँ भी स्वीकार की गयी है।

सगुण भक्ति धारा पर इन्हीं दार्शनिक मतों का प्रभाव रहा है। उपर्युक्त मतों का अध्ययन करने से हम कुछ निष्कर्षों तक पहुँच सकते हैं। ईश्वर और जीव की सत्ता चाहे अभिन्न हो लेकिन भक्ति के लिए उनकी स्वतंत्र सत्ता मानना आवश्यक है। दूसरे, जीव का चरम लक्ष्य ईश्वर की कृपा प्राप्त करना है, यही भक्ति का लक्ष्य है। तीसरे,समस्त सृष्टि ईश्वर की लीला है। ईश्वर की लीला का ध्यान करना, उनका गायन करना भक्ति का अंग है। कृष्ण, राम आदि अवतार इसी ईश्वर के सगुण रूप हैं। राधा कृष्ण की शक्ति है और इन दोनों की आराधना करना आवश्यक है। इस प्रकार सगुण भक्ति काव्यधारा में ईश्वर को सगुण साकार ही माना गया है।

अवतारवाद में विश्वास : भगवद्गीता में कृष्ण कहते हैं कि जब-जब धर्म की ग्लानि होती है और अधर्म का उत्थान होता है, तब-तब मैं दुष्टों का दलन करने और साधुओं का परित्राण करने के लिए अवतार लेता हूँ। गोस्वामी तुलसीदास भी गीता के इस मत में विश्वास करते हैं और 'रामचरित मानस' में वे इस बात को दोहराते हैं। अवतारवाद के सिद्धांत के पीछे गीता की इसी धारणा का प्रभाव है। इसीलिए सगुण कवियों ने अपनी भक्ति का आलंबन किसी न किसी अवतार (राम और कृष्ण) को बनाया है।

अवतार के पीछे एक और कारण माना गया है। प्रभु द्वारा अपने भक्तों पर अनुग्रह करना। भक्तों के लिए ईश्वर अपनी लीला का विस्तार करता है। समस्त सृष्टि ईश्वर की लीला है, परंतु ईश्वर भक्तों के लिए अवतार लेकर भी लीला करता है। राम और कृष्ण का चरित्र ईश्वर के ऐसे ही लीला रूप हैं।

ईश्वर की लीलाओं का गायन : सगुण भक्त कवियों ने ईश्वर की लीलाओं का गायन किया है। सगुण कृष्ण भक्त कवि तो यह भी मानते हैं कि वृंदावन में भगवान् कृष्ण गोपियों के साथ नित्यलीला में रत हैं। तुलसीदास भी मानते हैं कि प्रत्येक कल्प में राम बार-बार जन्म लेते हैं और बार-बार राम-कथा दोहराई जाती है। सगुण भक्त कवि ईश्वर की लीला के गायन को भक्ति का

आधार मानते हैं। उनका विश्वास है कि यह भक्ति ईश्वर की कृपा से ही प्राप्त होती है। जिस व्यक्ति को ईश्वर की भक्ति प्राप्त हो जाती है उसके कर्म चाहे कितने ही बुरे क्यों न रहे हों उसकी ओर भगवान् अपने आप खींचे चले आते हैं।

भक्ति का विशिष्ट रूप: सगुण भक्ति दो प्रकार की होती है—1 रागानुगा भक्ति और 2 वैधी भक्ति। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, "कर्त्तव्य बुद्धि से जो नियम स्थिर किये जाते हैं, उसे विधि कहते हैं और स्वाभाविक रुचि से जो वृत्ति उत्तेजित होती है, उसे राग कहते हैं।" रागानुगा भक्ति में ईश्वर के प्रति तन्मयता और अनुराग का आधिक्य होता है जबकि वैधी भक्ति में शास्त्रों के विधि निषेध का पालन करना होता है।

कृष्ण भक्त कवि मानते थे कि ब्रज के लोगों की कृष्ण के प्रति रागात्मिका भक्ति थी, लेकिन अब यह भक्ति संभव नहीं है। हम केवल उनका अनुसरण कर सकते हैं। रागात्मिका भक्ति का अनुकरण होने के कारण ही इसे रागानुगा भक्ति कहते हैं।

तुलसीदास की भक्ति वैधी भक्ति है। वैधी भक्ति ईश्वर के ऐश्वर्य रूप का गायन करती है अर्थात् उसके स्वामी होने या श्रेष्ठत्व के भाव को व्यक्त किया जाता है। तुलसीदास अपने इष्ट को अपना स्वामी मानते हैं स्वयं को उनका दास। इसीलिए तुलसी की भक्ति दास्यभाव की भक्ति कही जाती है।

रागानुगा भक्ति में ईश्वर की भक्ति सख्यभाव से की जाती है। सूरदास आदि कृष्ण भक्त कवियों की भक्ति इसी कोटि में आती है। वे ईश्वर के माधुर्य रूप का गायन करते हैं। कृष्ण के बाल रूप, गोपियों के साथ रासलीला आदि का गायन करना इस भक्ति की विशिष्टता है।

सगुण भक्ति काव्यधारा को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने दो शाखाओं में विभाजित किया है: राम भक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा।
सगुण काव्य धारा की इन उपर्युक्त शाखाओं का विस्तृत अध्ययन हम आगे करेंगे।

अभ्यास

1 सगुण भक्ति काव्य और निर्गुण भक्ति काव्य में मुख्य अंतर क्या-क्या हैं? कोई पांच अंतर बताइए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

बोध प्रश्न

5 निम्नलिखित कथनों में से कौन-से सही हैं और कौन-से गलत। सही कथन पर (√) और गलत कथन पर (×) का निशान लगाइए।

क) सगुण भक्त कवि अवतारवाद में विश्वास करते हैं। ( )

ख) ईश्वर की लीलाओं का गायन निर्गुण काव्य की विशेषता है। ( )

ग) निर्गुण काव्य धारा में धार्मिक अंधविश्वासों का खंडन मिलता है। ( )

घ) रागानुगा भक्ति में शास्त्र सम्मत विधि-निषेधों का पालन आवश्यक है। ( )

ङ) ज्ञानाश्रयी कवियों ने लौकिक प्रेम गाथाओं को काव्य का विषय बनाया है। ( )

6 'अद्वैतवाद' मत के संस्थापक थे:

क) वल्लभाचार्य

ख) शंकराचार्य
ग) मध्वाचार्य
घ) रामानुजाचार्य ( )

7 निम्नलिखित में से कौन-सी विशेषताएँ संपूर्ण भक्ति काव्य पर समान रूप से लागू होती है :

क) अहंकार का त्याग
ख) ईश्वरीय लीलाओं का गायन
ग) नाम-महिमा
घ) भक्ति के क्षेत्र में जाति प्रथा का निषेध
ङ) रहस्यवाद

8 अवतारवाद से क्या तात्पर्य है? लगभग पाँच पंक्तियों में उत्तर लिखिए।

....
....
....
....
....

9 सगुण भक्ति काव्य की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख लगभग पाँच पंक्तियों में कीजिए।

....
....
....
....
....

3.6 भक्ति काव्य का शिल्प विधान

भक्ति काव्य विषय-वस्तु की दृष्टि से ही नहीं, वरन् काव्य-कला की दृष्टि से भी अत्यंत समृद्ध है। भक्त कवियों ने काव्य की रचना यश या अर्थ कमाने या काव्य कला के प्रदर्शन के लिए नहीं की थी। वे तो कविताओं द्वारा ईश्वर के प्रति अपनी अनन्य भक्ति को ही व्यक्त कर रहे थे। उनके काव्य में रस, छंद, अलंकार आदि का प्रयोग मिलेगा, लेकिन कवियों का प्रयोजन इन्हीं तक सीमित नहीं था। भक्त कवि तो यह चाहते थे कि अपनी भावनाओं को ऐसे काव्य रूप में प्रस्तुत करें जो सभी को सहज ही समझ में आ जाए। वे दरबारी कवि नहीं थे। उन्होंने किसी राजा के मनोरंजन के लिए काव्य की रचना नहीं की थी। उनका उद्देश्य अपनी भक्ति भावनाओं को प्रस्तुत करना और ईश्वरीय लीलाओं का गायन करना था। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं था कि ये कवि काव्य कला से अनभिज्ञ थे। इन कवियों के काव्य की विविधता यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि कबीर जैसे कुछ अपवादों को छोड़कर प्रायः सभी भक्त कवि न केवल अपने समय में प्रचलित काव्य रूपों और काव्य उपकरणों से परिचित थे, बल्कि यथावसर उनका उपयोग करने में भी सिद्धहस्त थे। भक्त कवियों ने प्रबंध काव्य भी लिखे हैं और मुक्तक भी। उन्होंने दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया, छप्पय आदि अनगिनत छंदों का प्रयोग किया है। भाषा की दृष्टि से अवधी और ब्रज जो उस समय हिन्दी क्षेत्र में प्रचलित साहित्यिक भाषाएँ थीं, का प्रयोग तो मिलता ही है, कबीर आदि संत कवियों ने एक मिली-जुली सधुक्कड़ी भाषा का भी प्रयोग किया।

3.6.1 काव्य भाषा

भक्त कवियों ने सामान्य जनता में प्रचलित लोकभाषाओं का प्रयोग किया। कबीर आदि संत कवियों ने जिस भाषा का प्रयोग किया उसमें किसी एक बोली का ही प्रभाव नहीं था। कबीर की भाषा को सधुक्कड़ी कहा जाता है। सधुक्कड़ी अर्थात साधुओं के बीच प्रचलित भाषा।

इस भाषा के अतिरिक्त ब्रज और अवधी भक्ति काल की अन्य प्रमुख भाषाएँ हैं। सूफी काव्य और सगुण भक्ति काव्य इन्हीं भाषाओं में रचा गया है। अवधी का प्रयोग प्रायः प्रबंध काव्यों की रचना के लिए किया गया। मलिक मोहम्मद जायसी का 'पद्मावत' तथा अन्य सूफी कवियों के प्रबंध काव्य अवधी भाषा में है। गोस्वामी तुलसीदास विरचित 'रामचरित मानस' अवधी भाषा में है। सूफी कवियों में अवधी का ठेठ रूप मिलता है। उनमें लोक में प्रचलित अवधी का अधिक प्रभाव है जबकि तुलसीदास के यहाँ अवधी अधिक परिष्कृत और संस्कृतनिष्ठ है।

ब्रज भाषा का प्रयोग प्रायः मुक्तकों और गीतों की रचना के लिए किया गया है। इस युग में प्रायः संपूर्ण कृष्ण भक्ति काव्य ब्रज भाषा में ही लिखा गया है। इसका प्रयोग सूरदास, नंददास आदि कृष्ण भक्त कवियों के यहाँ तो मिलता ही है, तुलसीदास ने भी गीतों और मुक्तकों के लिए ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। गीतावली, कृष्ण गीतावली जैसे ग्रंथ इसी भाषा में रचे गये हैं।

भक्त कवियों ने इन भाषाओं को परिनिष्ठित रूप तो दिया, लेकिन इनमें निहित लोक तत्व को नष्ट नहीं होने दिया। भक्त कवियों की भाषा में लोक जीवन से लिये गये उपमान, मुहावरे और शब्द प्रयोग मिलते हैं। इन्हीं के बीच संस्कृत परंपरा के शब्द प्रयोग भी आ जाते हैं। भाषा के संबंध में इन भक्त कवियों की दृष्टि उदार थी। जहाँ आवश्यक हुआ, वहाँ उन्होंने अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग भी किया। इन कवियों ने अपनी भाषा को विषय के अनुरूप ढाला। भक्त कवियों की भाषा में माधुर्य, ओज और प्रसाद तीनों गुण मिलते हैं। भाषा पर कवियों का जबर्दस्त अधिकार था। भाषा उनके भावों और विचारों की अनुगामिनी थी। उन्होंने आवश्यकतानुसार तीनों शब्द शक्तियों, अभिधा, लक्षणा और व्यंजना का प्रयोग किया।

3.6.2 काव्य रूप

भक्त कवियों ने काव्य रचना के लिए प्रबंध और मुक्तक दोनों तरह के काव्य रूपों का प्रयोग किया है। महाकाव्य प्रबंध काव्य का एक रूप है भक्तिकाव्य के अंतर्गत कई महाकाव्य लिखे गये जिनमें जायसी द्वारा रचित 'पद्मावत' और तुलसीदास कृत 'रामचरित मानस' उल्लेखनीय हैं। भक्ति काव्य का एक बड़ा हिस्सा मुक्तक काव्य के रूप में रचा गया है। एक तरह के मुक्तक काव्य में कवि ने ईश्वर के प्रति अनन्य भक्ति को वाणी दी है। कबीर के विरह संबंधी पद, तुलसी के विनय संबंधी पद तथा मीराँ के पद इसी श्रेणी में आते हैं। दूसरी तरह के मुक्तकों में कवि ने ईश्वरीय लीलाओं का वर्णन किया है। सूरदास की रचनाएँ तथा गीतावली, कवितावली आदि काव्य ग्रंथों में तुलसीदास ने इसी तरह के पद रचे हैं। तीसरी तरह के मुक्तक पदों में कवि के विचार पक्ष को अभिव्यक्ति मिली है। कबीर के पदों में धर्म और समाज की आलोचना इसी श्रेणी में आती है।

3.6.3 छंद विधान

भक्ति काव्य में प्रायः उन सभी छंदों का प्रयोग किया गया जो उस समय प्रचलित थे। महाकाव्य के लिए दोहा और चौपाई छंदों का प्रयोग किया गया। 'पद्मावत' में सात चौपाई के बाद एक दोहा प्रयुक्त हुआ है जबकि 'रामचरित मानस' में आठ चौपाई के बाद एक दोहे का प्रयोग किया गया है। 'मानस' में तुलसीदास ने सोरठा, छप्पय आदि छंदों का भी प्रयोग किया है।

मुक्तक काव्य के लिए प्रयुक्त छंदों में अधिक विविधता पाई जाती है। कबीरदास ने दोहा-चौपाई तथा गेय पदों का प्रयोग किया है। सूरदास ने 'सूरसागर' में गेय पदों का ही अधिक प्रयोग किया है। इन गेय पदों में दोहा, चौपाई, रोला, छप्पय, सवैया, घनाक्षरी, हरिगीतिका आदि छंदों का प्रयोग मिलता है। तुलसीदास ने पद, कवित्त, सवैया, छप्पय, सोरठा तथा अन्य कई छंदों का प्रयोग किया है। इस प्रकार, हम पाते हैं कि भक्ति काव्य में छंद की दृष्टि से अधिक विविधता और व्यापकता पाई जाती है।

भक्ति काव्य की एक प्रमुख विशेषता है, उसकी गेयता। प्रायः सभी भक्त कवियों ने गेय पदों की रचना की हैं, जो विभिन्न राग-रागनियों पर आधारित हैं। कबीर, सूर, तुलसी, मीरा आदि भक्त कवियों के पद अपनी गेयता के कारण जन-जन के कंठहार बन गये थे और आज भी वे उतने ही लोकप्रिय हैं।

3.6.4 अलंकार

भक्त कवियों ने अलंकारों का प्रयोग काव्य का अर्थगत सौंदर्य बढ़ाने के लिए किया है। उनके यहाँ अलंकार सहज ही चले आते हैं। प्रायः उन्होंने सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग किया है। कबीर की रचनाओं में उपमा और रूपक अलंकार का अधिक प्रयोग हुआ है। कबीर ने इनका प्रयोग

अपने भावों को और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए किया है। जायसी के यहाँ भी सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग अधिक हुआ है। इनमें भी उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा का व्यवहार अधिक मिलता है। सूरदास के यहाँ भी उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा का अधिक प्रयोग हुआ है। सांगरूपक में तो सूरदास और तुलसीदास विशेष सिद्धहस्त हैं। कृष्ण की लीलाओं से संबंधित कई पदों में स्वाभवोक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ है। तुलसीदास ने भी सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग अधिक किया है।

3.6.5 काव्य-रस

भक्ति काव्य का केंद्रीय भाव ईश्वर के प्रति उत्कट प्रेम भावना है। प्रेम भाव जब लौकिक होता है तो शृंगार रस की उत्पत्ति होती है। लेकिन यही प्रेम जब ईश्वर की ओर उन्मुख होता है तो उसे भक्ति कहते हैं। इसलिए भक्ति को भी रस की संज्ञा दी गयी है। वस्तुतः ईश्वर के प्रति प्रेम में भी व्यक्ति "प्रेम" का ही अनुभव करता है। कई भक्त कवियों ने ईश्वरीय प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए लौकिक प्रेम को आधार बनाया है। कबीर ने अपने को "राम की बहुरिया" मानकर विरह भावना को अभिव्यक्ति दी है जो शृंगार का ही अंग है। जायसी आदि सूफी कवियों ने लौकिक प्रेम कथाओं को अपने प्रबंध काव्यों का आधार बनाया है। इन काव्यों में संयोग और वियोग दोनों तरह के शृंगार की अभिव्यक्ति हुई है। तुलसीदास के 'मानस' में जीवन का व्यापक चित्रण है इसलिए उनके यहाँ प्रायः सभी काव्य रसों की अभिव्यक्ति हुई है। 'सूरसागर' में वात्सल्य रस तथा संयोग और वियोग शृंगार को प्रमुखता मिली है। वात्सल्य और वियोग (भ्रमरगीत के रूप में) के चित्रण में सूरदास अप्रतिम हैं। मीराबाई ने भी अपने को कृष्ण की प्रिया मानकर उनके प्रति अपनी विरह भावना की अभिव्यक्ति दी है।

भक्ति काव्य में शांत रस की अभिव्यक्ति भी सर्वत्र दिखाई देती है। कबीर के साधना संबंधी पदों में तथा सूर और तुलसी के यहाँ विनय संबंधी पदों में, इसे देखा जा सकता है।

बोध प्रश्न

10 कबीरदास ने किस भाषा में काव्य-रचना की?

क) अवधी
ख) ब्रज
ग) सधुक्कड़ी
घ) भोजपुरी ( )

11 भक्ति काव्य में प्रबंध रचना के लिए निम्नलिखित छंदों का प्रयोग किया गया।

क) कवित्त-सवैया
ख) गेय पद
ग) दोहा-छप्पय
घ) दोहा-चौपाई ( )

12 निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत? सही पर (√) का और गलत पर (×) का निशान लगाइए।

क) भक्ति काव्य में सादृश्यमूलक अलंकारों का अधिक प्रयोग मिलता है। ( )
ख) 'पद्मावत' मुक्तक रचना है। ( )
ग) तुलसीदास ने उस समय प्रचलित सभी छंदों का प्रयोग किया। ( )
घ) सूरदास ने अवधी भाषा में काव्य-रचना की। ( )
ङ) भक्त कवियों ने अलंकारों का प्रयोग काव्य चमत्कार उत्पन्न करने के लिए किया। ( )

13 भक्ति काव्य की भाषा की तीन प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

अभ्यास

2 भक्ति काव्य के रूप विधान और छंदों के प्रयोग पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

3.7 भक्ति काव्य का विकास

इकाई के आरंभ में हम आपको भक्ति काव्य की दो प्रमुख धाराओं से परिचित करा चुके हैं। इन धाराओं को निर्गुण काव्यधारा और सगुण काव्यधारा कहा जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इन को दो-दो शाखाओं में विभाजित किया था। निर्गुण काव्यधारा को ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेममार्गी शाखा में तथा सगुण काव्यधारा को राम भक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा में ।

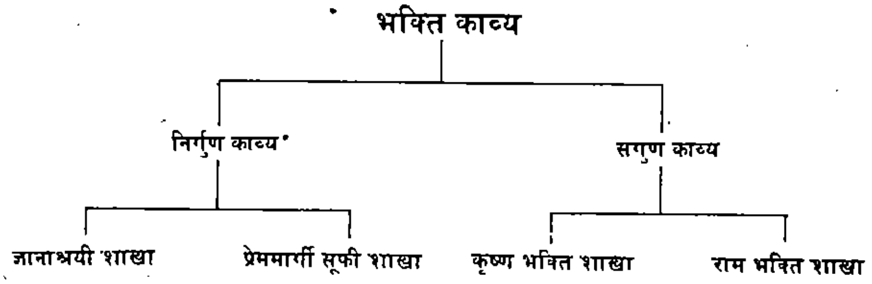

इस भाग में हम इन चारों शाखाओं में काव्य के विकास का अलग-अलग अध्ययन करेंगे ताकि यह जान सकें कि भक्ति काव्य का विकास किस रूप में हुआ।

3.7.1 ज्ञानाश्रयी शाखा

निर्गुण भक्ति काव्य की ज्ञानाश्रयी शाखा को संत काव्य भी कहा जाता है। इसका कारण संभवत: यह है कि निर्गुणपंथी कवियों को संत कहने की एक लंबी परंपरा रही है। भक्ति की जो लहर दक्षिण से आई थी, उसका सबसे पहला प्रभाव महाराष्ट्र के संत कवियों पर पड़ा था। नामदेव को हम हिंदी का पहला संत कवि कह सकते हैं। नामदेव (1270-1350) ने मराठी और हिंदी दोनों भाषाओं में काव्य रचना की। उन्होंने अपने काव्य में हिंदू-मुसलमान दोनों के लिए सामान्य भक्ति का मार्ग प्रशस्त किया।

उत्तर भारत में भक्ति को लोकप्रिय बनाने में रामानंद का नाम विशेष उल्लेखनीय है। रामानंद रामानुज की शिष्य परंपरा से संबद्ध थे। इनका समय 14वीं शती माना जाता है। रामानंद भक्ति मार्ग में उदारता के पक्षधर थे। उन्होंने भक्ति पथ पर चलने वाले व्यक्ति के लिए वर्णाश्रम के बंधन को व्यर्थ माना। रामानंद खान-पान में छूआछूत मानने के भी विरोधी थे। वे स्वयं यद्यपि ब्राह्मण थे, लेकिन उदार दृष्टिकोण के कारण उनके कई शिष्य छोटी समझी जाने वाली जातियो के थे। इनमें रैदास, कबीर, धन्ना, सेना और पीपा विशेष उल्लेखनीय हैं। रैदास चमार, कबीर जुलाहा, धन्ना जाट, सेना नाई और पीपा राजपूत जाति के थे। ज्ञानाश्रयी शाखा से संबद्ध अन्य महत्वपूर्ण कवियों में सिख धर्म के प्रवर्त्तक गुरु नानक, दादू दयाल, मलूकदास, सुंदरदास आदि के नाम प्रमुख हैं। यह आकस्मिक नहीं है कि ज्ञानाश्रयी शाखा के अधिकांश कवि निम्न समझी जाने वाली जातियों से आये थे। भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि पर विचार करते हुए हमने बताया था कि 12वीं-13वीं शताब्दी में आर्थिक विकास ने उन जातियों की स्थिति में सुधार किया जो विभिन्न व्यवसायों या कृषि से जुड़ी थीं। आर्थिक स्थिति में सुधार ने इन्हें अपनी सामाजिक स्थिति मजबूत करने का अवसर दिया। लेकिन यह काम सरल नहीं था। जातिप्रथा के रहते यह संभव नहीं था। भारत में वर्णाश्रम धर्म के विरोध की भी एक लंबी परंपरा रही है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, "सहजयान और नाथपंथ के अधिकांश साधक तथाकथित नीच जातियों में उत्पन्न हुए थे" उन्होंने भी जातिप्रथा का उतनी ही उग्रता और तीव्रता से विरोध किया, जैसा हम कबीरदास के यहाँ पाते हैं।

वर्णाश्रम व्यवस्था केवल सामाजिक आचार-विचार तक ही सीमित नहीं थी। धार्मिक क्षेत्र में भी इसका वैसा ही दखल था। निम्न जातियों का मंदिर में प्रवेश निषिद्ध था। वे वेदों का अध्ययन नहीं कर सकते थे, न ही उनका यज्ञोपवीत संस्कार हो सकता था। ऐसी स्थिति में निम्न जातियों का ईश्वरीय उपासना की शास्त्र-सम्मत पद्धतियों में कैसे विश्वास उत्पन्न होता। भक्ति मार्ग की ओर निम्न जातियाँ इसीलिए आकृष्ट हुईं क्योंकि इस मार्ग में न मंदिर जाना आवश्यक था, न ही वेदों का अध्ययन। इसने यह समझ भी दी कि ईश्वर की उपासना के लिए केवल गहरी अनुरक्ति आवश्यक है इसलिए उन्होंने धर्म से संबद्ध ऐसे अंधविश्वासों का विरोध किया जिनका भक्त की हृदयगत अनुरक्ति से कोई संबंध नहीं था। कबीरदास ने इसीलिए सिर मुंडाने, गंगा में नहाने, मंदिर-मस्जिद जाने तथा अजान देने जैसे विश्वासों का दृढ़तापूर्वक विरोध किया।

भक्ति मार्ग ने इन्हें यह समझ भी दी कि सभी धर्म एक ही सत्य को व्यक्त करने के विभिन्न मार्ग हैं। अगर ईश्वर एक है तो मंदिर-मस्जिद का भेद, नमाज और पूजा का भेद व्यर्थ है। इस भावना ने जहाँ एक ओर उन्हें हिंदुओं और मुसलमानों में एकता के लिए काम करने को प्रेरित किया, वहीं दूसरी ओर उन्हें दोनों धर्मों में व्याप्त बुराइयों से समान रूप से संघर्ष करने की प्रेरणा भी दी। नामदेव, कबीर, नानक, रैदास, दादूदयाल आदि सभी संत कवियों ने समान रूप से हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रयास किया। संत कवियों के इस सांप्रदायिक सौहार्द का ऐतिहासिक महत्व यह है कि कम-से-कम धर्म के क्षेत्र में पूरे मध्ययुग के दौरान हिंदू और मुस्लिम जनता में सौहार्द और एकता बनी रही।

बाह्याचारों और सामाजिक कुरीतियों के इस विरोध का यह तात्पर्य नहीं है कि कबीर आदि संतों में सच्ची भक्ति भावना नहीं थी। उनके मानवीय दृष्टिकोण का ईश्वरीय आस्था से गहरा संबंध है। कबीर आदि संतों ने ईश्वर के उस रूप को अवश्य अस्वीकार किया जो सगुण पंथ की विशेषता है। हम बता चुके हैं कि कबीर आदि निर्गुण पंथी निर्गुण-निराकार ईश्वर में विश्वास करते थे। उन्होंने अवतारवाद का दृढ़तापूर्वक खंडन किया। कबीर ने तो यहाँ तक कहा था कि "दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना/राम नाम का मरम है आना।" अर्थात् जो राम को दशरथ पुत्र राम समझते हैं, वे राम शब्द के मर्म को जानते ही नहीं। यही कारण है कि संत मत में ईश्वर के नाम को ईश्वर से बढ़कर माना गया है।

संत मत में सृष्टि का कारण परब्रह्म को ही माना गया है। वह समस्त सृष्टि का कारण भी है और उसमें व्याप्त भी है इसलिए ब्रह्म सर्वत्र विद्यमान है। वह हमारे हृदय में भी है। माया के कारण हम उसे पहचान नहीं पाते। लेकिन गुरु की कृपा से हमें आत्मज्ञान हो जाता है तो हम ब्रह्म के साक्षात् रूप को पहचान जाते हैं। इस आत्मज्ञान के बाद भक्त ब्रह्म को पाने के लिए तड़प उठता है। संत काव्य में यहीं पर प्रेम तत्व का प्रवेश होता है।

समस्त सृष्टि में ईश्वरीय सत्ता का अनुभव करना और उसे पाने के लिए तड़पना यही रहस्य भावना है। जो संत काव्य की विशेषता है। ईश्वर और आत्मा (जीव) के संबंध को व्यक्त करने के लिए कबीर योग साधना की पद्धति का सहारा भी लेते हैं और उलटबांसी का भी। उलटबांसी में विपरीत कथन द्वारा आध्यात्मिक अर्थ की अभिव्यक्ति की गई है। जैसे "नैया बिच नदिया डूबति जाय।" या "बरसै कंबल भीगे पानी"। योग साधना से संबंधित सांकेतिक शब्दों, चांद, सूर्य, नाद, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, आदि का प्रयोग करके उन्होंने अद्भुत रूपक बांधे हैं।

संत काव्य की भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है। नामदेव, कबीर, रैदास आदि संत कवियों ने इसी भाषा का प्रयोग किया है। इन कवियों का उद्देश्य अपनी बात सरल भाषा में संप्रेषित करना था। इसके लिए उन्होंने एक ऐसी भाषा का प्रयोग किया जो सामान्य जन की समझ में आ सके। उनकी काव्य भाषा में लोक प्रचलित शब्दों का प्रयोग तो मिलता ही है, साथ में ऐसे शब्दों का प्रयोग भी मिलता है, जिनका अर्थ योग साधना की परंपरा से परिचित होने पर ही जाना जा सकता है। फिर भी, उनके काव्य में भावों की सच्चाई और तीव्रता का बराबर अनुभव होता है। संत कवियों ने मुक्तक काव्य की ही रचना की है। उन्होंने दोहा, चौपाई आदि छंदों का भी प्रयोग किया है। काव्यकला के मानदंड पर भले ही यह काव्य खरा न उतरता हो लेकिन भावों और विचारों की दृष्टि से इसकी श्रेष्ठता असंदिग्ध है।

ज्ञानाश्रयी शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि कबीर ही हैं जिनके काव्य का विस्तृत अध्ययन हम अगली इकाई में करेंगे। कबीर के अतिरिक्त गुरुनानक, रैदास, दादू दयाल, सुंदरदास आदि इस धारा के प्रमुख कवि हैं।

3.7.2 प्रेममार्गी (सूफी) शाखा

भारत में सूफी मत का आगमन 12वीं शताब्दी से माना जाता है। सूफी मत इस्लाम का ही एक अंग है, लेकिन इसमें धार्मिक कट्टरता और असहिष्णुता नहीं है। सूफी उन संतों को कहा जाता था जो अपने जीवन को ईश्वर के चरणों में अर्पित कर देते थे तथा बड़े कष्ट और दरिद्रता में जीवन व्यतीत करते थे। सूफी मानते हैं कि विषय भोग से संघर्ष करके साधक को आत्मा द्वारा साधना करनी चाहिए। शुक्लजी के अनुसार सूफी मत में साधना की चार अवस्थाएँ बताई गयी हैं:

1 **शरीअत**–अर्थात् धर्म ग्रंथों के विधि निषेध का पालन करना।

2 **तरीक़त**–अर्थात् बाहरी क्रिया-कलाप से परे होकर केवल हृदय की शुद्धता द्वारा भगवान का ध्यान करना।

3 **हक़ीक़त**–अर्थात् भक्ति और उपासना के द्वारा सत्य का बोध करना। इससे साधक तत्वदृष्टि से संपन्न और तीनों कालों (भूत, भविष्य और वर्तमान) का जानने वाला हो जाता है

4 **मारफत**–अर्थात् सिद्धावस्था। इस अवस्था में साधक की आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है और वे प्रभु से एकमेक हो जाता है।

सूफी कवि दो प्रकार के प्रेम का वर्णन करते हैं–इश्क मजाज़ी और इश्क हक़ीकी। इश्क मजाज़ी लौकिक प्रेम है जो स्त्री-पुरुष के बीच होता है। इश्क हक़ीक़ी वास्तविक प्रेम है जो ईश्वर और जीव के बीच होता है। सूफी कवि मानते हैं कि इश्क मजाज़ी द्वारा इश्क हक़ीक़ी को पाया जा सकता है। इसलिए वे अपने प्रबंध काव्यों के लिए लौकिक प्रेम कथाओं को आधार बनाते हैं और उनके माध्यम से आध्यात्मिक विचारों को व्यक्त करते हैं। सूफी कवियों ने पुरुष को आत्मा का प्रतीक और प्रियतमा को परमात्मा का प्रतीक माना है। प्रेम ही प्रियतमा को प्राप्त करने का साधन है। लेकिन प्रियतमा के रूप का सच्चा ज्ञान गुरु की कृपा से होता है। प्रेम का मार्ग कांटों से भरा है। प्रेमी इस मार्ग की कठिनाइयों की चिंता किये बिना लगातार आगे बढ़ता जाता है। माया या शैतान भी प्रेमी के मार्ग में बाधा उत्पन्न करता है, गुरु की सहायता से प्रेमी उन बाधाओं को दूर हटाता है। सूफी काव्य का यही आध्यात्मिक सार है जिन पर उनके प्रबंध काव्य आधारित हैं।

सूफी कवियों ने लोक में प्रचलित प्रेम कथाओं को अपने काव्य का विषय बनाया है। इनके चरित्र इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति भी हो सकते हैं और काल्पनिक भी। लेकिन कथा का विकास प्रायः लोक विश्वासों के अनुसार होता है या कवि की कल्पना के अनुसार। इनका इतिहास से प्रायः संबंध नहीं होता। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, "कथानक को गति देने के लिए सूफी कवियों में प्रायः उन सभी कथानक रूढ़ियों का व्यवहार किया है जो परंपरा से भारतीय कथाओं में व्यवहृत होती रही हैं, जैसे–चित्र दर्शन, स्वप्न द्वारा अथवा शुक-सारिका आदि द्वारा नायिका का रूप देख या सुनकर उस पर आसक्त होना, पशु-पक्षियों की बातचीत से भावी घटना का संकेत पाना, मंदिर या चित्रशाला में प्रिय युगल का मिलन होना, इत्यादि। कुछ नई कथानक रूढ़ियाँ ईरानी साहित्य से आ गई हैं, जैसे प्रेम व्यापार में परियों और देवों का सहयोग, उड़ने वाली राजकुमारियाँ, राजकुमार का प्रेमी को गिरफ्तार करा लेना, इत्यादि। परंतु इन नई कथानक शैलियों को भी कवियों ने पूर्ण रूप से भारतीय वातावरण के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया है। अधिकांश सूफी कवियों के काव्यों का मूल आधार भारतीय लोक-कथाएँ हैं।" (हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, पृ. 163) सूफी कवियों ने अपने प्रबंध काव्यों की रचना फारसी की मसनवी शैली में की है। इस शैली में कवि आरंभ में ईश्वर और मुहम्मद साहब की स्तुति करते हैं। अपने गुरु का स्मरण करते हैं, ग्रंथ के रचनाकाल का उल्लेख भी करते हैं। तथा उस समय के राजा या बादशाह का उल्लेख भी करते हैं। मसनवी शैली की इस परंपरा का पालन करने के बावजूद सूफी काव्य अपनी अंतःप्रकृति में भारतीय ही है। सूफी कवियों ने न केवल भारत में प्रचलित काव्य रूढ़ियों का प्रयोग किया बल्कि भारतीय दर्शन और योग साधना का उन पर गहरा प्रभाव था। 'पद्मावत' में नाथपंथ की योग साधना का विस्तार से उल्लेख है।

सूफी कवियों ने प्रायः एक ही काव्य पद्धति का प्रयोग किया है। प्रबंध काव्य के लिए उन्होंने दोहा-चौपाई छंदों का प्रयोग किया है। सूफी काव्यों की भाषा अवधी है तथा इनकी भाषा में लोकतत्व का प्रभाव अधिक है। सूफी कवि लौकिक प्रेम द्वारा आध्यात्मिक प्रेम का आभास देना चाहते थे इसलिए उन्होंने ऐसे अलंकारों का अधिक प्रयोग किया है जिसमें प्रस्तुत (लौकिक भाव) के द्वारा अप्रस्तुत (अलौकिक भाव) की व्यंजना हो सके।

सूफी कवियों विशेषतः जायसी पर रहस्यवाद का भी प्रभाव है, लेकिन उनका रहस्यवाद भावात्मक रहस्यवाद है। सूफी कवियों के रहस्यवाद की व्याख्या करते हुए आचार्य द्विवेदी कहते

हैं, "सूफियों का रहस्यवाद अद्वैतवाद भावना पर आश्रित है। रहस्यवादी भक्त परमात्मा को अपने प्रिय के रूप में देखता है और उससे मिलने के लिए व्याकुल रहता है। जिस प्रकार मेघ और समुद्र के पानी में कोई भेद नहीं है, दोनों एक ही हैं, उसी प्रकार भक्त और भगवान में कोई भेद नहीं है। फिर भी मेघ का पानी नदी का रूप धारण करके समुद्र के पानी में मिल जाने को आतुर रहता है। उसी श्रेणी की आतुरता भक्त में भी होती है। सूफी कवियों ने अपने प्रेम कथानकों की प्रेमिका को भगवान का प्रतीक माना है। जायसी भी सूफियों की इस भक्ति भावना के अनुसार अपने काव्य में परमात्मा को प्रिया के रूप में देखते हैं, और जगत् के समस्त रूपों को उसकी छाया से उद्भाषित बताते हैं। उनके काव्य में प्रकृति उसी परम प्रिय के समागम के लिए उत्कंठित और व्याकुलता पाई जाती है।" (हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, पृ..167)

सूफी काव्य को अगर हम आध्यात्मिक अर्थ में न भी ग्रहण करें तो उसमें व्यक्त लोक जीवन का चित्रण अत्यंत मर्मस्पर्शी और प्रभावशाली है। जायसी का नागमती विरह वर्णन इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। मुसलमान होते हुए भी सूफी कवियों ने हिंदू जीवन पद्धति और धार्मिकदार्शनिक मतों का जिस विश्वास और लगाव से चित्रण किया है वह सिर्फ उनकी उदारता का ही परिचायक नहीं है बल्कि भारतीय जीवन से उनके आत्मिक लगाव को भी व्यक्त करता है। सूफी काव्य परंपरा में मलिक मुहम्मद जायसी का नाम सर्वाधिक उल्लेखनीय है। इनके काव्य का अध्ययन हम इकाई पाँच में करेंगे। अन्य सूफी कवियों में मुलादाऊद, कुतुबन, मंझन, उसमान आदि सूफी कवि प्रसिद्ध हैं।

3.7.3 कृष्ण भक्ति शाखा

विष्णु के अवतार के रूप में कृष्ण की उपासना का इतिहास कितना पुराना है, यह कहना मुश्किल है। लेकिन कृष्ण के माधुर्य रूप का प्रकाशन सर्वाधिक महत्वपूर्ण ढंग से भागवत पुराण में हुआ है। भागवत पुराण की रचना छठी और 9वीं शताब्दी के बीच मानी जाती है। भागवत पुराण मध्यकालीन कृष्ण भक्ति साहित्य का प्रेरणा स्रोत रहा है। इसमें कृष्ण की बाल और कैशोर वय की लीलाओं का मार्मिक चित्रण किया गया है। इसमें कृष्ण और गोपियों के प्रेम तथा रासलीला का विशद और मनोहारी चित्रण किया गया है। भागवत पुराण में राधा का उल्लेख नहीं मिलता। राधा कृष्ण की नायिका के रूप में संस्कृत कवि जयदेव के 'गीतगोविंद' में हैं। 'गीत गोविंद' 12वीं शताब्दी की रचना है। 'गीत गोविंद' में रास बसंत ऋतु में होता है, जबकि भागवत पुराण में रास शरद ऋतु में होता है। जयदेव के बाद बंगाल के कवि चंडीदास और मैथिली कवि विद्यापति ने भी राधा-कृष्ण के प्रेम को काव्य का विषय बनाया। चंडीदास और विद्यापति ने भी कृष्ण भक्ति काव्य की प्रेरणा दी है। यह अवश्य है कि विद्यापति के यहाँ राधा-कृष्ण के प्रेम चित्रण में अधिक मांसलता और श्रृंगारिकता पाई जाती है।

भक्ति आंदोलन के दौरान कृष्ण लीलाओं के गान की ओर कवियों को प्रेरित करने का श्रेय शुद्धाद्वैतवाद के प्रवर्तक वल्लभाचार्य को है। सूरदास वल्लभाचार्य के ही शिष्य माने जाते हैं। वल्लभाचार्य ने भक्ति के जिस सिद्धांत को प्रस्तुत किया उसे पुष्टि मार्ग कहा जाता है। ईश्वर के अनुग्रह या कृपा को पुष्टि कहा जाता है। पुष्टि चार प्रकार की मानी गयी है:

1 **मर्यादा पुष्टि :** भगवान के गुणों का ज्ञान प्राप्त करते हुए और सामाजिक विधि निषेध तथा लोक मर्यादा का पालन करते हुए भक्ति करना "मर्यादा पुष्टि" है।

2 **प्रवाह पुष्टि :** सांसारिक जीवन में रुचि रखते हुए भी भगवान के प्रति विशेष रुचि रखना "प्रवाह पुष्टि" है।

3 **पुष्टिपुष्टि :** भगवान का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर उसी के स्नेह में मग्न रहना "पुष्टिपुष्टि" है।

4 **शुद्ध पुष्टि :** एकांत प्रेम-पूर्वक तथा आत्म-समर्पण के भाव से भगवान के अनुग्रह पर जीवित रहते हुए उसकी लीला, गुण आदि में मग्न रहना "शुद्ध पुष्टि" है।

वल्लभाचार्य ने "शुद्ध पुष्टि" को ही भक्ति का श्रेष्ठ मार्ग स्वीकार किया है। शुद्ध पुष्टि में केवल प्रेम के द्वारा भगवान कृष्ण की कृपा प्राप्त की जाती है। इसी से हृदय में भक्ति की उत्पत्ति होती है।

पुष्टि मार्ग की भक्ति रागानुगा भक्ति है। इस भक्ति मार्ग में सांसारिक विधि निषेधों का पालन आवश्यक नहीं रह जाता। ईश्वर की कृपा स्वयं उसे कर्मों के फल से मुक्त कर देती है। वल्लभाचार्य के अनुसार कृष्ण ही सत्, चित और आनंद स्वरूप तथा परब्रह्म है। कृष्ण की लीलाएँ किसी बाह्य कारण से नहीं है। कृष्ण की तरह कृष्ण की लीलाएँ भी नित्य हैं। कृष्ण भक्त का कर्त्तव्य है कि वह कृष्ण के रूप-सौंदर्य और उनकी लीलाओं का ध्यान, स्मरण और कीर्तन

करे। कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण की लीलाओं का गायन सख्य भाव से कि । यानी उन्होंने कृष्ण को अपना सखा और बंधु माना जिसके कारण लीला के वर्णन में अधिक भाविकता और सौंदर्य आ सका है।

वल्लभाचार्य के मत को आगे बढ़ाने का श्रेय उनके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ को है। इन्होंने पुष्टिमार्ग को स्वीकार करने वाले आठ भक्त कवियों को अष्टछाप की संज्ञा दी है। ये हैं: कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास, कृष्णदास, गोविंदस्वामी, नंददास, छीतस्वामी और चतुर्भुदास। इनमें से पहले चार वल्लभाचार्य के शिष्य थे और शेष चार गोस्वामी विट्ठलनाथ के शिष्य थे। अष्टछाप के सभी कवियों ने कृष्ण की लीलाओं का गान किया और उनके रूप-माधुर्य के वर्णन की ओर प्रवृत्त हुए।

कृष्ण भक्ति काव्य में कृष्ण की लीलाओं को ही प्रमुखता दी गयी। ये भक्त कवि भगवान की लीलाओं का उससे बाहर कोई प्रयोजन नहीं मानते थे इसलिए इनके काव्य में सामाजिक पक्ष प्रायः उपेक्षित ही रहा। कृष्ण भक्ति काव्य की इस सीमा पर टिप्पणी करते हुए शुक्ल जी ने लिखा है कि "सब संप्रदायों के कृष्ण भक्त भागवत में वर्णित कृष्ण की ब्रजलीला को ही लेकर चले क्योंकि उन्होंने अपनी प्रेम लक्षणा भक्ति के लिए कृष्ण का मधुर रूप ही पर्याप्त समझा। महत्व की भावना से उत्पन्न श्रद्धा या पूज्यबुद्धि का अवयव छोड़ देने के कारण कृष्ण के लोकरक्षक और धर्म संस्थापक स्वरूप को सामने रखने की आवश्यकता उन्होंने न समझी।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 109)

कृष्ण के माधुर्य रूप की उपासना का यह लाभ अवश्य हुआ कि इसमें कृष्ण का लोकरंजक रूप उभरा। कृष्ण भक्ति काव्य में कृष्ण का एक ऐसा रूप व्यक्त हुआ है जो अपनी मनोहारी लीलाओं द्वारा लोक को आनंद पहुँचाता है। कृष्ण की बाल लीलाएँ—उनका माखन चुराना, गोपियों की मटकियाँ फोड़ देना, गाएँ चराना, ग्वाल-बालों के साथ जंगल में घूमना और गोपियों के साथ रास रचाना वस्तुतः लोकरंजन के लिए ही है। यह अवश्य है कि राधा-कृष्ण या कृष्ण गोपियों के प्रेम वर्णन में लोक मर्यादा की पूर्ण अवहेलना है। गोपियाँ सामाजिक मर्यादाओं का त्याग कर कृष्ण के प्रेम में निमग्न रहती हैं। कृष्ण की लीलाओं की व्यंजना करते हुए भक्त कवियों ने ऐसी मनोदशाओं का चित्रण भी किया है जो सामान्य जन को अधिक आकृष्ट करती हैं। जैसे कृष्ण का रोना, खीझना, नटखटपन, गोपियों का यशोदा से उपालंभ, यशोदा का बाल कृष्ण को डाँटना-फटकारना आदि। इन मनोदशाओं में जीवन की स्वाभाविकता और सहजता के दर्शन होते हैं।

कृष्ण काव्य के माध्यम से शृंगार का भी विशद चित्रण हुआ है—विशेष रूप से विरह का। कृष्ण काव्य का शृंगार पक्ष उतना मांसल और विलासमय नहीं है जितना कि बाद में रीतिकालीन काव्य हो गया था। सूरदास ने "भागवत" की परंपरा के अनुसार विरह वर्णन में भ्रमर गीतों की रचना भी की है। लेकिन सूर की यह विशेषता है कि उन्होंने भ्रमर गीतों को दार्शनिक आयाम भी दिया है। उन्होंने निर्गुण मत के खंडन के लिए भी भ्रमर गीतों का इस्तेमाल किया है।

कृष्ण भक्त कवियों की प्रवृत्ति मुक्तक रचना की ओर ही रही। उन्होंने कृष्ण के जीवन का संपूर्ण चित्र प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि उनकी बाल और कैशोर्य जीवन से संबंधित लीलाओं तक ही अपने काव्य को सीमित रखा। इन लीलाओं के चित्रण में भी उनकी रुचि कथा कहने की ओर नहीं थी। इन कवियों ने कृष्ण के विभिन्न रूपों और लीलाओं में निहित सौंदर्य के उद्घाटन में ही अधिक रुचि ली, विशेषतः लीलाओं के चित्रण में विभिन्न मनोदशाओं का चित्रण तो अत्यंत मार्मिक और चमत्कारपूर्ण रूप से व्यक्त हुआ है। कृष्ण भक्ति काव्य प्रमुखतः गेय पदों में हैं जो विभिन्न राग-रागनियों पर आधारित हैं। अपने समृद्ध संगीत पक्ष के कारण ही सूरदास की अमर रचना 'सूरसागर' को संगीत सागर भी कहा जाता है। कृष्ण भक्ति काव्य की रचना ब्रज भाषा में हुई हैं। इन कवियों ने ब्रज भाषा को साहित्यिक उत्कर्षता और कलात्मक सौंदर्य प्रदान किया। ब्रज भाषा के इस उत्कर्ष रूप ने बाद में उसे साहित्य की प्रमुख भाषा बना दिया।

इस काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि सूरदास हैं। मीराँ भी इस धारा की महत्वपूर्ण कवयित्री हैं। इस खंड में आप इन कवियों का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

3.7.4 राम भक्ति शाखा

राम का चरित्र काव्य लिखने की प्रेरणा बराबर देता रहा है। राम के चरित्र को केंद्र में रखकर वाल्मीकि ने संस्कृत में "रामायण" की रचना की थी। वाल्मीकि भारतीय परंपरा में आदि कवि माने जाते हैं। "रामायण" की रचना का समय ईसा से पाँचवी-छठी शताब्दी पूर्व से पहले का

माना जाता है। वाल्मीकि के बाद भी रामकथा को आधार बनाकर काव्य रचना होती रही। इनमें संस्कृत कवियों के अतिरिक्त प्राकृत और अपभ्रंश में रचना करने वाले बौद्ध और जैन कवि भी शामिल हैं।

मध्यकाल में रामानुज ने राम की उपासना को लोक में प्रचारित किया। स्वामी रामानंद ने भी राम के नाम को परब्रह्म का प्रतीक बताया। रामानंद का आग्रह निर्गुण निराकार राम के प्रति नहीं था, लेकिन वे इतने उदार थे कि उन्होंने निर्गुण राम (परब्रह्म) और सगुण राम दोनों की भक्ति को प्रोत्साहित किया।

रामकाव्य की लंबी परंपरा के बावजूद रामकथा को लोकप्रियता तुलसीदास के कारण ही मिली। तुलसीदास की 'रामचरित मानस' हिंदू परिवारों में धार्मिक ग्रंथ की तरह पूज्य हो गई। लेकिन तुलसीदास की भक्ति कृष्ण भक्त कवियों से कई अर्थों में भिन्न थी। हम बता चुके हैं कि कृष्ण भक्त कवि लीला गायन पर जोर देते थे और ईश्वर की लीला का कोई बाह्य उद्देश्य नहीं मानते थे। इसके विपरीत तुलसीदास आदि राम भक्त कवि यह मानते थे कि भगवान दुष्टों का दलन करने और साधुओं की रक्षा करने के लिए अवतार लेते हैं। राम भक्त कवियों की इस मान्यता के कारण उनके काव्य में राम एक ऐसे ईश्वर के रूप में चित्रित हुए हैं जिसने लोक कल्याण की भावना से प्रेरित होकर अवतार लिया है। यही कारण है कि राम भक्त कवि के समक्ष राम का ऐसा रूप रहता है जिसका उद्देश्य अपनी लीलाओं द्वारा लोक को आनंद पहुँचाना ही नहीं है वरन् उन्हें कष्टों और पीड़ाओं से मुक्त करना भी है। तुलसीदास की भक्ति रागानुगा भक्ति की अपेक्षा वैधी भक्ति के अधिक नजदीक है। उनके यहाँ शास्त्र सम्मत विधि-निषेधों का पालन अनिवार्य है। यहाँ तक कि राम भी मर्यादा से बंधे हैं और इसीलिए वे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। तुलसीदास ने राम की आराधना दास्यभाव से की है। इसलिए उनके यहाँ राम के ऐश्वर्य और प्रभुता के चित्रण पर अधिक बल है।

रामभक्त काव्यों के सामने आदर्श लोकमंगल का रहा इसलिए उन्होंने ईश्वर के एक ऐसे आदर्श रूप को सामने रखा जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रेरणा दे। यही कारण है कि राम भक्ति काव्य में लोकजीवन की उपेक्षा नहीं है बल्कि जीवन के संघर्षों के बीच ही उनके चरित्र का उज्ज्वल रूप हमारे सामने आता है। राम के शील और सौंदर्य का दर्शन हम जीवन संग्राम के बीच ही पाते हैं। सीता का त्याग और पातिव्रत्य, भरत और लक्ष्मण का राम के प्रति भ्रातृत्व प्रेम तथा हनुमान की स्वामी भक्ति जीवन संघर्षों के बीच ही निखार पाते हैं।

राम भक्त कवियों के सामने समाज की मर्यादा की रक्षा करना हमेशा उद्देश्य रहा, इसलिए उन्होंने विरोधी प्रवृत्तियों के बीच समन्वय का प्रयास किया। तुलसीदास ने शैव और वैष्णव, निर्गुण और सगुण, ज्ञान और भक्ति, लोक और शास्त्र, वैराग्य और गार्हस्थ्य आदि विरोधी प्रवृत्तियों के बीच समन्वय का प्रयास किया।

राम भक्त कवियों में अपनी दीनता का भाव भी गहरे तक समाया हुआ है। अपनी दीनता का बोध और ईश्वर से अपनी मुक्ति की कामना, उसके समक्ष अनुनय-विनय भी इस काव्य की एक अन्य प्रमुख विशेषता है।

राम भक्त कवियों ने राम के जीवन को आधार बनाकर प्रबंध काव्य भी लिखे और मुक्तकों की रचना भी की। उन्होंने अवधी भाषा को भी अपनाया और ब्रजभाषा को भी। काव्य रचना के लिए उन्होंने दोहा, चौपाई, सोरठा, कवित्त, सवैया, छप्पय आदि विभिन्न छंदों का प्रयोग किया। उन्होंने विभिन्न राग-रागनियों से आबद्ध गेय पदों की भी रचना की। उनके काव्य में काव्यकला की पराकाष्ठा दिखाई देती है। प्रबंध काव्य में "रामचरित मानस" गीतों में "गीतावाली", गेय पदों में 'विनय पत्रिका' के पदों की श्रेष्ठता असंदिग्ध हैं। राम भक्ति काव्य में जो स्थान गोस्वामी तुलसीदास का है, वह किसी अन्य को प्राप्त नहीं है। इनके काव्य के संबंध में आप इसी खंड में आगे विस्तृत अध्ययन करेंगे। तुलसीदास के अतिरिक्त अन्य उल्लेखनीय कवि हैं : अग्रदास, ईश्वरदास, नाभादास, केशवदास आदि। राम भक्तिशाखा में बाद में कृष्ण भक्ति की तरह माधुर्य भाव की भक्ति का समावेश हो गया और राम का चरित्र भी कृष्ण की तरह प्रस्तुत किया जाने लगा। राम काव्य की इस धारा ने कोई उल्लेखनीय कवि नहीं दिया।

बोध प्रश्न

14 निम्नलिखित कथनों में से कौन-से सही हैं, कौन से गलत? सही कथन पर (✓) का और गलत पर (×) का निशान लगाइए?

क) तुलसीदास की भक्ति वैधी भक्ति थी। ( )

ख) मसनवी शैली में आरंभ में ईश्वर की वंदना, पैगम्बर की स्तुति और शाहेवक्त (तत्कालीन राजा) की प्रशंसा की जाती है। ( )

ग) अष्टछाप के कवियों ने रामकाव्य की रचना की। ( )

घ) ज्ञानाश्रयी शाखा में शास्त्रीय ज्ञान को विशेष महत्व दिया गया है। ( )

ङ) रैदास सगुण भक्ति काव्यधारा के कवि थे। ( )

15 निम्नलिखित भक्त कवि भक्ति काव्य की किस शाखा का प्रतिनिधित्व करते हैं:

क) दादू दयाल ....

ख) नाभादास ....

ग) गोविंद स्वामी ....

घ) नंददास ....

ङ) उसमान ....

16 ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों का जातिप्रथा के बारे में क्या विचार था? लगभग पाँच पंक्तियों में उत्तर लिखिए।

....

....

....

....

....

17 सूफ़ी साधक को किन चार अवस्थाओं में से गुजरना होता है, केवल नाम बताइए।

i) .... ii) ....

iii) .... iv) ....

18 "शुद्ध पुष्टि" से क्या तात्पर्य है? दो पंक्तियों में उत्तर लिखिए।

....

....

19 राम भक्ति शाखा के कवि ईश्वर के अवतार का क्या कारण मानते हैं? दो पंक्तियों में अपना उत्तर लिखिए।

....

....

अभ्यास

3 भक्ति, उपासना, लोक दृष्टि, काव्य रूप और भाषा की दृष्टि से कृष्ण भक्ति काव्य और राम भक्ति काव्य में अंतर बताइए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

4 सूफी प्रबंध काव्य से संबद्ध कोई पाँच विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

....

....

....

3.8 सारांश

- ईश्वर की उपासना का सहज और सुगम मार्ग है—भक्ति। भक्ति साहित्य का सर्वप्रथम प्रणयन दक्षिण के आलवार संतों द्वारा हुआ। प्रसिद्ध दार्शनिक रामानुज, निंबार्क, मध्व, वल्लभ आदि ने भक्ति का सैद्धांतिक पक्ष प्रस्तुत किया तो संत ज्ञानेश्वर, चैतन्य महाप्रभु, नामदेव ने इसे जन-जन में लोकप्रिय बनाया। 12-13वीं शताब्दी की बदलती परिस्थितियों ने भक्ति आंदोलन के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी थीं। इस भक्ति आंदोलन को वैचारिक आधार देने में नाथों और सिद्धों की परंपरा और सूफी मत का योगदान रहा। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि की व्याख्या कर सकते हैं।

- ईश्वर के प्रति गहरी अनुरक्ति का नाम है, भक्ति। भक्ति के लिए न तो कठोर साधना की आवश्यकता है और न ही शास्त्रसम्मत विधि-निषेधों के पालन की। भक्ति के लिए तो ईश्वर का स्मरण, कीर्तन, उनकी पूजा-अर्चना और आत्मनिवेदन ही पर्याप्त है। भक्ति दो तरह की होती है—सगुणा और अहैतुकी। इच्छा से रहित होकर की गई भक्ति अहैतुकी कहलाती है। इस भक्ति को ही श्रेष्ठ माना गया है। अब आप "भक्ति" के अर्थ और स्वरूप की व्याख्या कर सकते हैं।

- भक्ति के लिए आवश्यक है, केवल प्रेम। गुरु की कृपा से यह भक्ति प्राप्त होती है। ईश्वर का केवल नाम स्मरण ही भक्ति के लिए पर्याप्त है। अपने अहंकार को त्याग कर ईश्वर की लीला-गान में लीन रहना ही भक्त की पहचान है। ईश्वर के रूप के आधार पर भक्ति काव्य के दो भेद किये गये हैं, निर्गुण भक्ति काव्य और सगुण भक्ति काव्य। निर्गुण भक्त कवि ईश्वर को निर्गुण निराकार मानते हैं। वे अवतारवाद में विश्वास नहीं करते। न ही वे जातिप्रथा, धार्मिक बाह्याचार और सामाजिक कुरीतियों को मानते हैं। ये भक्त कवि सभी धर्मों में एकता के पक्षधर हैं इसलिए इन्होंने हिंदू मुस्लिम एकता पर विशेष जोर दिया है। सगुण भक्त कवि ईश्वर के सगुण साकार रूप में विश्वास करते हैं। अवतारवाद में भी विश्वास करते हैं और अवतारों के लीला गान को भक्ति का मार्ग समझते हैं। अब आप इन दोनों काव्य धाराओं की विशेषताओं का विवेचन कर सकते हैं।

- भक्ति काव्य में अवधी और ब्रज भाषा में काव्य रचा गया। ज्ञानाश्रयी कवियों ने सधुक्कड़ी भाषा में काव्य रचना की। इस युग में प्रबंध काव्य और मुक्तक दोनों की रचना हुई। विभिन्न छंदों का प्रयोग किया गया। वात्सल्य, शृंगार और शांत इस काव्य के प्रमुख रस हैं। अलंकारों का प्रयोग काव्य के अर्थगत सौंदर्य को बढ़ाने के लिये किया गया। अब आप भक्ति काव्य के शिल्प पक्ष की विशेषताएँ बता सकते हैं।

- आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने निर्गुण काव्यधारा को ज्ञानाश्रयी और प्रेममार्गी शाखा में और सगुण काव्यधारा को कृष्ण भक्ति और राम भक्ति शाखा में विभाजित किया है। ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों ने सामाजिक विद्रोह से युक्त भक्ति काव्य की रचना की, तो प्रेममार्गी सूफी कवियों ने लोक प्रचलित प्रेम कथाओं के प्रणयन द्वारा अलौकिक प्रेम की व्यंजना की। कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण के लोकरंजन रूप का लीलागान किया, तो रामभक्त कवियों ने राम के लोकमंगल रूप को प्रतिष्ठा दी। आप इन चारों शाखाओं के काव्य की विशेषताएँ बताते हुए भक्ति काव्य के विकास का वर्णन कर सकते हैं।

3.9 शब्दावली

इस इकाई से संबंधित कुछ कठिन शब्द, नामों और पारिभाषिक पदों के अर्थ नीचे दिये गये हैं। इनसे आपको इकाई में कही गयी बातों को समझने में मदद मिलेगी।

तत्व चिंतन : तत्व का अर्थ है यथार्थता या सार। तत्व चिंतन का अर्थ है ब्रह्म, आत्मा और जगत से संबंधित ज्ञान।

वेद : प्राचीनतम हिंदू धर्म ग्रंथ। वेद चार हैं–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद।

उपनिषद : वेद के एक भाग। उपनिषद् उन हिंदू धर्म ग्रंथों को कहते हैं जिनमें ईश्वर, जगत, जीव आदि के संबंध में विचार किया गया है। कुछ प्रमुख उपनिषद् हैं–बृहदारण्यक उपनिषद्, छांदोग्य उपनिषद्, कठोपनिषद् आदि।

पुराण : हिंदू धर्म ग्रंथ जिनमें हिंदू अवतारों और देवी-देवताओं तथा सृष्टि की उत्पत्ति से प्रलय तक की कथाएँ हैं। प्रमुख पुराणों की संख्या 18 हैं। विष्णु पुराण, पद्म पुराण, अग्नि पुराण आदि कुछ प्रमुख पुराण हैं।

वैष्णव धर्म : हिंदू धर्म की शाखा जिसमें विष्णु की उपासना की जाती है।

शैव धर्म : शैव अर्थात् शिव से संबंध रखने वाला। एक धार्मिक शाखा जिसमें शिव की उपासना की जाती है।

सिद्ध : साधना में प्रवीण, अलौकिक सिद्धियों से संपन्न, चमत्कारपूर्ण और दैवीय शक्तियों से युक्त व्यक्ति को सिद्ध कहा जाता है। यहाँ सिद्ध शब्द बौद्ध परंपरा के सिद्धों से संबंधित है।

नाथ : गोरखपंथी (गोरखनाथ द्वारा स्थापित संप्रदाय) साधुओं की एक उपाधि।

वर्णाश्रम व्यवस्था : हिंदू शास्त्रों के अनुसार समाज में चार वर्ण हैं : ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को चार आश्रमों से गुजरना होता है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। वर्ण और आश्रम की इस व्यवस्था को ही वर्णाश्रम व्यवस्था कहते हैं।

नारद मुनि : ब्रह्मा के पुत्र एवं देवर्षि। पौराणिक चरित्र। भक्ति सूत्र के रचयिता भी माने जाते हैं।

कौलीन्य : कुलीनता का भाव अर्थात् अपने को उच्च वर्ण का समझना।

लीला : शब्दिक अर्थ क्रीड़ा (खेल)। ईश्वर के अवतारों द्वारा किये गये कार्य लीला माने जाते हैं।

कर्मकांड : धर्म का वह पक्ष जिसमें शास्त्रीय विधि-निषेधों के अनुसार कर्म करने को प्रमुखता दी जाती है।

माया : वह शक्ति जो मनुष्य को ईश्वर से विमुख करती है और सांसारिक बंधनों में बांधती है।

हठयोग : अपने अंगों और श्वास पर अधिकार प्राप्त कर उनका उचित संचालन करते हुए जो साधना की जाती है, उसे हठयोग कहते हैं।

दोहा : दोहा मात्रिक छंद है अर्थात् इसमें मात्राओं की संख्या निश्चित होती है। दोहा में चार चरण होते हैं। पहले और तीसरे चरण में 13-13 और दूसरे तथा चौथे चरण में 11-11 मात्राएँ होती हैं।

चौपाई : मात्रिक छंद का एक प्रकार जिसके प्रत्येक चरण में 16 मात्राएँ होती हैं तथा एक चौपाई में दो चरण होते हैं।

सोरठा : मात्रिक छंद। पहले और तीसरे चरण में 11-11 मात्राएँ और दूसरे तथा चौथे चरण में 13-13 मात्राएँ। तुक पहले और तीसरे चरण की मिलती हैं।

साधर्म्य और सादृश्य मूलक अलंकार : इन अलंकारों का आधार सादृश्य, या साधर्म्य होता है अर्थात् इनके मूल में किसी-न-किसी प्रकार की समानता होती है।

उपमा : उपमा में किसी वस्तु को दूसरी के समान बताया जाता है। दोनों वस्तुओं में कोई साधारण धर्म या गुण ऐसा होता है जो दोनों में पाया जाता है।

उत्प्रेक्षा : जब एक वस्तु में दूसरी वस्तु की संभावना की जाय जैसे 'नेत्र मानो कमल हैं'। नेत्र कमल नहीं है परंतु कल्पना की गयी है कि कमल है।

रूपक : जब एक वस्तु पर दूसरी वस्तु का आरोप किया जाये, अर्थात् जब एक वस्तु को दूसरी वस्तु का रूप दिया जाये। जैसे मुख कमल है। यहाँ मुख को कमल मान लिया गया है।

शब्दालंकार : जब शब्द में अलंकार हो तो उसे शब्दालंकार कहते हैं। शब्दालंकार की पहचान यह है कि शब्द बदलने से अलंकार समाप्त हो जाता है।

रस : कहानी, कविता, उपन्यास आदि पढ़ने-सुनने अथवा नाटक आदि देखने से जो आनंद प्राप्त होता है उसे रस कहते हैं।

शृंगार रस : रस का एक प्रकार। शृंगार रस का विषय प्रेम होता है। पुरुष के प्रति स्त्री के हृदय में या स्त्री के प्रति पुरुष के हृदय में जो प्रेम जाग्रत होता है उसी की व्यंजना शृंगार में होती है।

शांत रस : शांत का विषय वैराग्य होता है। संसार की अनित्यता, दुखमयता आदि देखकर सांसारिक वस्तुओं से वैराग्य हो जाता है। शांत रस की कविता में ऐसे वैराग्य की व्यंजना होती है। भक्ति की रचना भी प्रायः शांत रस में ही सम्मिलित की जाती है।

सहजयान : बौद्ध तंत्र साधना की एक धारा "सहजयान" कहलाती है। इसका मूल तत्व है, सहज। इसके माध्यम से विश्व को अत्यंत सहज रूप से देखने का उपक्रम किया गया है। यह सहज अवस्था ही इसके साधकों की साधनावस्था है।

उपालंभ : शिकायत करना।

3.10 उपयोगी पुस्तकें

शुक्ल रामचंद्र : *हिंदी साहित्य का इतिहास,* नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस।
दामोदरन के. : *भारतीय चिंतन परंपरा,* पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।
द्विवेदी हजारी प्रसाद : *हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
द्विवेदी हजारी प्रसाद : *हिंदी साहित्य की भूमिका,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
मिश्र विश्वनाथ प्रसाद : *हिंदी साहित्य का अतीत* (प्रथम भाग), वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
चतुर्वेदी परशुराम : *भारतीय साहित्य में भक्ति धारा,* भारती भंडार, इलाहाबाद।
वार्ष्णेय लक्ष्मी सागर : *हिंदी साहित्य का इतिहास,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
चतुर्वेदी परशुराम : *मध्यकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियाँ,* भारती भंडार, इलाहाबाद।
डॉ. नगेंद्र (संपादक) : *हिंदी साहित्य का इतिहास,* नेशनल पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
शर्मा, रामविलास : *परंपरा का मूल्यांकन,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
मिश्र, शिवकुमार : *भक्ति काव्य और लोक जीवन,* पीपुल्स लिटरेसी, नयी दिल्ली।

3.11 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1 ग
2 क) योग मार्ग, ख) ज्ञान मार्ग, ग) कर्म मार्ग, घ) भक्ति मार्ग
3 शुक्लजी का मानना है कि भक्ति का उदय मुस्लिम शासकों के उत्पीड़न से हताश हिंदू जाति के ईश्वर की ओर उन्मुख होने से हुई क्योंकि मनुष्य पराजय और पस्तहिम्मती में ईश्वर को ही याद करता है।
4 भक्ति साहित्य का सबसे पहले उदय दक्षिण में आलवार और अडियार संतों द्वारा हुआ। ये भक्त कवि अधिकतर निम्नवर्ग के थे। इन्होंने भक्ति को शास्त्र के बंधन से मुक्त कर सामान्य जन तक पहुँचाया। इन्होंने अपने हृदय के सच्चे एवं भावपूर्ण उद्गार प्रकट किये। इन भक्त कवियों में नारीभक्त भी शामिल थीं।
5 क) √ ख) × ग) √ घ) √ ङ) ×
6 ख
7 क, ग, घ,
8 हिंदू परंपरा में जो लोग ईश्वर के सगुण रूप में विश्वास करते हैं वे यह भी मानते हैं कि ईश्वर मनुष्य रूप भी धारण करता है। ईश्वर का मनुष्य (या अन्य प्राणी) के रूप में जन्म लेना ही ईश्वर का अवतार लेना है। हिंदू पुराणों के अनुसार परब्रह्म के पालनकर्त्ता रूप विष्णु ने कुल 24 अवतार लिये हैं। राम और कृष्ण भी विष्णु के अवतार हैं। अवतार के इस सिद्धांत में विश्वास करना ही अवतारवाद है।
9 सगुण भक्ति काव्य की प्रमुख विशेषताएं हैं :
1 सगुण-साकार ईश्वर में विश्वास.

2 अवतारवाद में विश्वास
3 भगवान की लीलाओं का गायन
4 रागानुगा और वैधी भक्ति की व्यंजना
5 राम और कृष्ण से संबंधित काव्य की रचना

10 ग 11 घ

12 क ✓ ख × ग ✓ घ × ङ ×

13 1 भाषा में लोक तत्व का प्रभाव।
2 विषयानुकूल भाषा।
3 विभिन्न मनोदशाओं और स्थितियों के चित्रण में सक्षम।

14 क ✓ ख ✓ ग × घ × ङ ×

15 क) ज्ञानाश्रयी शाखा, ख) राम भक्ति शाखा, ग) कृष्ण भक्ति शाखा, घ) कृष्ण भक्ति शाखा, ङ) प्रेममार्गी शाखा

16 ज्ञानाश्रयी कवि जातिप्रथा में विश्वास नहीं करते थे। उनका मानना था कि सृष्टि की रचना ईश्वर ने की है तथा सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में ईश्वर व्याप्त है। वह प्रत्येक मनुष्य की आत्मा में है। तब ब्राह्मण और शूद्र का अंतर क्यों? ब्राह्मण और शूद्र दोनों एक ही तरह से उत्पन्न होते हैं। जन्मना उनमें कोई भेद नहीं होता, तब धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में जाति के अनुसार भेदभाव क्यों किया जाता है?

17 i) शरीअत, ii) तरीकत, iii) हकीकत और iv) मारफत

18 एकांत प्रेम-पूर्वक तथा आत्म समर्पण के भाव से भगवान के अनुग्रह पर जीवित रहते हुए उनकी लीला, गुण आदि में लीन रहना "शुद्ध पुष्टि" है।

19 रामभक्त कवियों के अनुसार जब-जब समाज में अधर्म बढ़ता है और सज्जन कष्ट पाते हैं तब-तब ईश्वर मनुष्य रूप धारण कर धर्म की पुनः स्थापना करता है।

अभ्यास

1 i) सगुण भक्ति काव्य में सगुण-साकार ईश्वर की उपासना की जाती है, निर्गुण भक्ति काव्य में निर्गुण निराकार ईश्वर की उपासना की जाती है।
ii) सगुण भक्त अवतारवाद में विश्वास करते हैं, निर्गुण भक्त अवतारवाद में विश्वास नहीं करते।
iii) सगुण भक्ति काव्य में रहस्य भावना का अभाव है, जबकि निर्गुण भक्ति काव्य में रहस्यवाद की अभिव्यक्ति हुई है।
iv) निर्गुण भक्त कवियों ने लौकिक प्रेम द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की अभिव्यक्ति की, जबकि सगुण भक्त कवियों ने राम और कृष्ण की लीलाओं का गायन किया।
v) सगुण भक्त कवियों ने वर्णाश्रम धर्म का विरोध नहीं किया जबकि निर्गुण कवियों ने इसका विरोध किया।

2 भक्ति काव्य में प्रबंध काव्य और मुक्तक काव्य दोनों लिखे गये। सूफी कवियों और राम भक्ति काव्य के अंतर्गत प्रबंध काव्य लिखे गये। सूफी कवियों ने लौकिक प्रेम को आधार बनाकर प्रबंध काव्यों की रचना की। इसकी भाषा अवधी थी और दोहा-चौपाई छंदों का प्रयोग किया गया था। तुलसीदास ने भी अपना प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरित मानस' अवधी भाषा में लिखा था और उसमें उन्होंने भी दोहा-चौपाई छंदों का प्रयोग किया था।

भक्ति काव्य में मुक्तक की भी रचना प्रचुर मात्रा में हुई। ज्ञानाश्रयी शाखा और कृष्ण भक्ति काव्य के कवियों ने तो मुक्तकों की भी रचना की जबकि रामभक्ति काव्य में प्रबंध और मुक्तक दोनों लिखे गये। मुक्तकों के लिये गेय पदों के अतिरिक्त दोहा, चौपाई, सोरठा, सवैया, कवित्त, छप्पय आदि छंदों का प्रयोग किया गया। गेय पद विभिन्न राग-रागनियों पर आधारित हैं।

3 **भक्ति :** कृष्ण काव्य में रागानुगा भक्ति और राम भक्ति काव्य में वैधी भक्ति का प्रभाव है।
उपासना : रामभक्ति में दास्य भाव की उपासना और कृष्ण भक्ति में माधुर्य भाव की उपासना की प्रधानता है।

लोकदृष्टि : कृष्ण भक्ति काव्य में लोकरंजन और राम भक्ति काव्य में लोकमंगल की भावना व्यक्त हुई है।

काव्य रूप : कृष्ण भक्ति काव्य केवल मुक्तकों में रचा गया जबकि राम भक्ति काव्य में मुक्तक और प्रबंध दोनों लिखे गये।

भाषा : कृष्ण भक्ति काव्य की भाषा ब्रज है, जबकि राम भक्ति काव्य में अवधी और ब्रज दोनों का प्रयोग हुआ है।

4 1 लोक प्रचलित भारतीय प्रेमकथाओं के आधार पर प्रबंध काव्यों की रचना,
2 लौकिक प्रेम द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की अभिव्यक्ति;
3 लोकजीवन का मर्मस्पर्शी चित्रण;
4 अवधी भाषा का प्रयोग; तथा
5 दोहा-चौपाई छंद का प्रयोग।

इकाई 4 कबीर का काव्य

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 कबीर का रचना-व्यक्तित्व
4.2.1 कबीर का जीवन परिचय
4.2.2 कबीर की रचनाएँ
4.3 कबीर काव्य का ज्ञान पक्ष
4.3.1 निर्गुण-निराकार ईश्वर
4.3.2 अवतारवाद का खंडन
4.3.3 शास्त्र-ज्ञान को चुनौती
4.4 कबीर काव्य का सामाजिक पक्ष
4.4.1 धार्मिक बाह्याचार का खंडन
4.4.2 जातिप्रथा का विरोध
4.4.3 हिन्दू मुस्लिम समन्वय
4.4.4 नारी संबंधी दृष्टिकोण
4.5 कबीर की भक्ति-भावना
4.5.1 नाम-महिमा
4.5.2 गुरु की महिमा
4.5.3 प्रेम तत्व
4.6 कबीर काव्य में रहस्यवाद
4.6.1 कबीर का रहस्यवाद
4.6.2 हठयोग की साधना
4.7 कबीर काव्य का शिल्प-पक्ष
4.7.1 काव्य भाषा
4.7.2 काव्य रूप
4.7.3 उलटबाँसी
4.8 कबीर काव्य का मूल्यांकन
4.9 संदर्भ सहित व्याख्या
4.10 सारांश
4.11 शब्दावली
4.12 उपयोगी पुस्तकें
4.13 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप कबीर के काव्य का अध्ययन करेंगे। यह दूसरे खंड की दूसरी इकाई और इस पाठ्यक्रम की चौथी इकाई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- कबीर के जीवन और उनकी रचनाओं के बारे में बता सकेंगे;
- कबीर काव्य में व्यक्त ज्ञानपक्ष की व्याख्या कर सकेंगे;
- कबीर काव्य के सामाजिक पक्ष की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- कबीर की भक्ति भावना का वर्णन कर सकेंगे;
- कबीर के रहस्यवाद की व्याख्या कर सकेंगे;
- कबीर के काव्य की भाषा और शिल्प की विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे;
- कबीर काव्य के महत्व और प्रासंगिकता का वर्णन कर सकेंगे; तथा
- कबीर काव्य के पठित अंशों की व्याख्या कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप कबीर के काव्य का अध्ययन करेंगे। हमने इकाई 3 में बताया था कि कबीरदास निर्गुण काव्यधारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। भक्ति आंदोलन में

कबीरदास का क्या महत्व है तथा निर्गुण काव्य धारा और ज्ञानाश्रयी काव्य की विशेषताएँ कौन-कौन सी हैं, इनसे आप इकाई 3 में परिचित हो चुके हैं। हमने उस इकाई में बताया था कि भक्ति आंदोलन की निर्गुण काव्यधारा के अधिकांश कवि समाज के निम्नवर्ग से आये थे। स्वयं कबीर जाति के जुलाहे थे। रैदास चर्मकार थे। गुरु नानकदेव यद्यपि छोटी जाति के नहीं थे लेकिन वे भी ब्राह्मण नहीं थे। इस बात का महत्व यह है कि भक्ति आंदोलन के आरंभिक चरण में ऐसे कवि अधिक सक्रिय हुए जिनको धार्मिक और सामाजिक उत्पीड़न का सामना करना पड़ता था। निम्न समझी जाने वाली जातियों के साथ छुआछूत बरता जाता था। उनका मंदिर में प्रवेश निषिद्ध था। वेद पढ़ने की आज्ञा नहीं थी। इनकी सामाजिक स्थिति अत्यंत दयनीय थी हिन्दू धर्म में वर्णाश्रम के विरुद्ध निम्न समझी जाने वाली जातियों ने हमेशा आवाज उठाई है। कबीर से पहले नाथ और सिद्ध संप्रदाय के संतों ने जातिप्रथा का विरोध किया था। भक्ति मत धर्म के क्षेत्र में समानता के व्यवहार को लेकर आया। आरंभिक संतों जैसे ज्ञानेश्वर, नामदेव आदि ने भक्ति का प्रचार करते हुए इंसानी भाईचारे पर बल दिया। भक्ति में केवल ईश्वर के प्रति गहन अनुरक्ति को पर्याप्त समझा गया। इसमें न वेदाध्ययन आवश्यक था, न कर्मकांड, न व्रत उपवास और न मंदिर प्रवेश। भक्ति की इस विशिष्टता ने सामान्य जन को अपनी ओर आकृष्ट किया, विशेष रूप से निम्न समझे जाने वाले विशाल जनसमुदाय को। भक्ति ने सदियों से पददलित इस वर्ग में आस्था और विश्वास का संचार किया। उन्हें भी अपने इंसान होने का बोध हुआ। स्वयं उनके वर्ग से भक्त कवियों का समूह उभर कर सामने आया। जिसने कि समाज में भक्ति द्वारा जन-जागृति फैलाने का महान कार्य किया। लोगों में आत्मगौरव का संचार किया। चूंकि ये कवि ऐसे समाज से आये थे जो उच्च वर्गों द्वारा उत्पीड़ित था, इन कवियों में सामाजिक भेदभाव और धार्मिक बाह्याचार के प्रति गहरी कटुता का भाव था। इन्होंने धार्मिक अंधविश्वासों और सामाजिक रूढ़ियों का दृढ़तापूर्वक विरोध किया। इन कवियों ने जब इस सत्य को महसूस किया कि सब मनुष्य एक ईश्वर की संतान हैं—न कोई ब्राह्मण है, न कोई शूद्र, तो उन्हें यह भी बोध हुआ कि हिन्दू और मुसलमान का भेद भी कृत्रिम है और नमाज पढ़ने या मंदिर में आरती करने में कोई मौलिक भेद नहीं है। सच्चा धर्म इनमें नहीं है। सच्चा धर्म तो अपने हृदय में स्थित ईश्वर को पहचानता है। इस प्रकार निर्गुण काव्यधारा के ज्ञानाश्रयी कवियों ने भक्तिकाव्य को केवल ईश्वरीय उपासना तक सीमित न रखकर उसे व्यापक सामाजिक प्रश्नों से जोड़ा। कबीरदास का काव्य इस धारा की श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति है। आइए, हम कबीर के काव्य का विस्तार से अध्ययन करें।

4.2 कबीर का रचना-व्यक्तित्व

कबीरदास के महत्व को रेखांकित करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा था कि "हिन्दी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। मस्ती, फक्कड़ाना स्वभाव और सब कुछ को झाड़-फटकार कर चल देने वाले तेज ने कबीर को हिन्दी साहित्य का अद्वितीय व्यक्तित्व बना दिया है।" (कबीर, पृ. 222) कबीर की चर्चा जब होती है तो हमारे सामने एक ऐसे कवि-व्यक्तित्व का चित्र उभरता है जो स्वभाव से विद्रोही प्रकृति का है, क्रांतिकारी है, समाज-सुधारक है, रहस्यवादी साधक है और इन सबसे ऊपर एक सरल हृदय भक्त है। लेकिन इस युग प्रवर्त्तक महान कवि के जीवन का कोई प्रमाणिक लेख आज भी उपलब्ध नहीं है। कबीर के जीवन के संबंध में तरह-तरह की दंतकथाएँ प्रचलित हैं, लेकिन उनसे उनके वास्तविक जीवन की कम ही जानकारी मिलती है। हम यहाँ केवल उन बातों को प्रस्तुत कर रहे हैं, जो कबीर के विषय में सबसे कम विवादास्पद हैं।

4.2.1 कबीर का जीवन परिचय

कबीरदास का जन्म कब हुआ, यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है। बाबू श्यामसुंदरदास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर का जन्म सवत् 1456 अर्थात् सन् 1399 ई माना है, जबकि डा. पीतांबरदत्त बड़थ्वाल कबीर का जन्म संवत् 1427 अर्थात् सन् 1370 मानते हैं। इतना निश्चित है कि कबीर 15वीं शती के आरंभ में विद्यमान थे।

ऐसी मान्यता है कि कबीर का जन्म काशी में हुआ था जबकि कुछ विद्वान कबीर को मगहर का वासी भी मानते हैं। कबीर लंबे समय तक काशी में रहे थे और स्वयं वे काशी को ही अपना घर मानते थे। कबीर ने अपने को "काशी का जुलाहा" कहा है। कहा जाता है कि कबीर का जन्म एक विधवा ब्राह्मणी से हुआ था, जिसने सामाजिक अपवाद से बचने के लिए नवजात शिशु को लहरतारा तालाब की सीढ़ियों पर छोड़ दिया था। इस शिशु का नीरू और नीमा नामक मुस्लिम

जुलाहे दंपति ने लालन-पालन किया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार यह जुलाहा परिवार हाल ही में मुसलमान हुआ था लेकिन इसके विश्वास और संस्कार पर नाथपंथी योगियों का प्रभाव विद्यमान था।

कबीरदास को प्रसिद्ध संत रामानंद का शिष्य माना जाता है। यह भी कहा जाता है कि सूफी फकीर शेख तकी उनके गुरु थे, लेकिन कबीर ने अपने पदों में शेख तकी का उल्लेख श्रद्धा और सम्मान के साथ नहीं किया है। इससे यही जाहिर होता है कि कबीर शेख तकी के शिष्य नहीं थे।

कबीर विवाहित थे या नहीं, यह कहना भी कठिन है। कबीर के साहित्य में "लोई" का उल्लेख कई बार आया है जो उनकी पत्नी का नाम माना जाता है। यह भी कहा जाता है कि कबीर की दो संतानें थीं–पुत्र कमाल और पुत्री कमाली। कबीर जुलाहे का काम करते थे और उसी की कमाई से अपना और अपने परिवार का भरण-पोषण करते थे। अपने विद्रोही विचारों के कारण उन्हें राजसत्ता के कोप का भी शिकार होना पड़ा। कहा जाता है कि कबीर को तत्कालीन बादशाह सिकंदर लोदी ने काफी सताया था।
कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे। स्वयं कबीर ने कहा है :

मसि कागद छूयो नहिं, कलम गही नहिं हाथ।
चारिउ जुग की महातम, मुखहिं जनाई बात।।

लेकिन कबीर बहुश्रुत व्यक्ति थे। उन्होंने लंबी-लंबी यात्राएँ की थीं, विभिन्न धर्मों और मतों के संतों और फकीरों का सत्संग किया था। अपने जीवनाभुवों को चिंतन-मनन का आधार बनाया था। इसीलिए कबीर कहते हैं कि "मैं कहता आँखिन की देखी तू कहता कागद की लेखी" कबीर के काव्य में जो जीवन की सहजता, धड़कन और अनुभव की तीव्रता दिखाई देती है, उसका कारण यही है।

कबीर हिन्दू-मुस्लिम एकता के पक्षधर थे। उनका पालन पोषण मुस्लिम परिवार में हुआ था। उन्होंने अपना गुरु रामानंद को बनाया था। आरंभ से ही उन्होंने हिन्दू मुसलमानों के बीच एक सामान्य मानव धर्म का प्रचार किया। उन्होंने अंधविश्वासों और रूढ़ियों का विरोध किया। यह विश्वास किया जाता था कि काशी में मरने से स्वर्ग मिलता है और मगहर में मरने से नरक। कबीर इस अंधविश्वास को तोड़ने के लिए अंत समय में मगहर चले गये और वहीं उनकी मृत्यु हुई। श्यामसुंदर दास व शुक्लजी उनकी मृत्यु संवत् 1575 अर्थात् 1518 ई. मानते हैं जबकि डा. पीतांबरदत्त बड़थ्वाल सन् 1448 ई. मानते हैं।

4.2.2 कबीर की रचनाएँ

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कबीर पढ़े लिखे नहीं थे। उन्होंने जिन पदों की रचना की उनके शिष्यों ने उन्हें लिपिबद्ध किया। कबीरदास के नाम से कई दर्जन पुस्तकों का उल्लेख मिलता है, लेकिन उनमें से कितनी प्रामाणिक हैं और कितनी अप्रामाणिक कह सकना कठिन है। कबीर के कई पद सिख धर्म के आदि ग्रंथ "गुरु ग्रंथ साहब" में संग्रहीत हैं। कई पदों का संग्रह उनके शिष्यों ने किया। उनके पदों को संग्रहीत करने की परंपरा बराबर चलती रही। इन संग्रहों में सैंकड़ों ऐसे पद भी शामिल हो गये हैं, जो स्वयं कबीर द्वारा रचित नहीं है। कबीर के पदों को संपादित कर उन्हें प्रकाशित करने का गुरूत्तर कार्य बाबू श्यामसुंदर दास, श्री आयोध्यासिंह उपाध्याय, डा. रामकुमार वर्मा आदि ने किया है। बाबू श्यामसुंदर दास द्वारा संपादित "कबीर ग्रंथावली" इस दृष्टि से अत्यंत समादृत पुस्तक मानी जाती है। इस इकाई में वाचन के लिए पद उसी पुस्तक से उद्धृत किये गये हैं।

प्रसिद्ध है कि कबीर के प्रमुख शिष्य धर्मदास ने सबसे पहले उनकी वानियों का संग्रह "बीजक" के नाम से तैयार किया। "बीजक" का अर्थ है–गुप्त धन बताने वाली सूची। कबीर ने कहा है:

बीजक बित्त बतावई, जो बित गुप्ता होय।
सबद बतावै जीव को, बूझे विरला कोय।।

जो वित्त या गुप्त धन होता है उसका पता केवल उसके बीजक से ही लगता है। उसी प्रकार जीव के गुप्त धन को अर्थात् वास्तविक स्वरूप को शब्द रूपी बीजक (गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान) बतलाता है।

इस बीजक के तीन भाग हैं–साखी, सबद और रमैनी। "साखी" शब्द संस्कृत के "साक्षी" शब्द का तद्भव रूप है। साक्षी वह है जिसने स्वयं अपनी आँखों से तथ्य देखा हो। कबीर ने अपनी इन उक्तियों का शीर्षक "साखी" इसलिए दिया क्योंकि उन्होंने इसमें वर्णित तथ्यों का स्वयं

साक्षात्कार किया है। साखियों में दोहा छंद का प्रयोग किया गया है। सबद या "शब्द" गाये जाने योग्य पद हैं। इनमें प्रेम और बिरह का गंभीर भाव प्रदर्शित किया गया है। कबीर ने "सबद" का प्रयोग दो भावों को ध्यान में रखकर किया है। एक तो परम तत्व के अर्थ में और दूसरे "पद" के अर्थ में।

"रमैनी" चौपाई और दोहे का मिश्रित काव्य रूप है।

"रमैनी" शब्द का प्रयोग तीन शब्दों में हुआ है :

i) जिसमें संसार के जीवों के रमण का विवेचन हुआ है;

ii) परम तत्व में रमण करने वाली; और

iii) एक छंद विशेष जिसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती हैं।

4.3 कबीर काव्य का ज्ञान पक्ष

कबीरदास का पालन-पोषण एक गरीब जुलाहे परिवार में हुआ था। सामाजिक दृष्टि से जुलाहा भारतीय समाज में निम्न समझा जाता है। कबीर का संवेदनशील मन इस भेदभाव को स्वीकार करने के लिए कभी तैयार नहीं हुआ। गरीब होने के कारण उन्हें शिक्षा प्राप्त करने का भी अवसर नहीं मिला। लेकिन जीवन के अनुभवों ने उन्हें यह जरूर सिखा दिया कि केवल शास्त्र-प्रधान शिक्षा मनुष्य को महान नहीं बनाती अन्यथा शास्त्रों का अध्ययन करने वाले पंडित लोग गरीबों से इतनी घृणा और नफरत क्यों करते? कबीर को जो समाज मिला था,वह आदर्श समाज नहीं था। उसमें भेदभाव था। ऐसे समाज में कबीर ने ऐसे सत्य का प्रचार किया, जिसमें भेदभाव न हो, ऊँच-नीच की भावना न हो, धर्म, जाति और वर्ण को लेकर आपस में घृणा न हो।

4.3.1 निर्गुण-निराकार ईश्वर

कबीरदास ईश्वर को निर्गुण और निराकार मानते थे। यानी कि एक ऐसा ईश्वर जो सभी तरह के गुणों से परे हे, जिसका न कोई रूप हो, न आकार। "निरगुण राम, निरगुण राम जपहु रे भाई, अविगति की गति लखी न जाई।" अर्थात् हे भाई निर्गुण राम का जप करो। 'अविगति की गति को जानना सहज नहीं है।" लेकिन यह निर्गुण राम कौन है? कबीर एक ओर ईश्वर को निर्गुण कहते हैं,दूसरी ओर उसे राम कहकर भी पुकारते है। क्या उनका "राम" वही है जो विष्णु के अवतार माने जाते हैं तथा जिन्होंने राजा दशरथ के पुत्र के रूप में अवतार लिया था? कबीर के राम दशरथ पुत्र राम नहीं थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से घोषणा की थी कि "दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम का भरम है माना।" अर्थात् जो राम का अर्थ दशरथ पुत्र राम से लेते हैं, वे राम नाम के वास्तविक अर्थ को जानते ही नहीं। उनके राम तो वही निर्गुण निराकार परब्रह्म है। जो सारी सृष्टि में व्याप्त है तथा सारी सृष्टि जिसमें व्याप्त है। जो पिंड में भी है और ब्रह्माण्ड में भी और इन दोनों से परे भी है। कबीर के ईश्वर की यह परिकल्पना अद्वैतवाद के परब्रह्म के अधिक नजदीक है। कबीरदास ब्रह्म के नाम को लेकर विवाद को व्यर्थ समझते थे, इसलिए वे इस अरूप और अगोचर ईश्वर को व्यक्त करने के लिए विभिन्न नामों का प्रयोग करते है। वे उसे राम भी कहते हैं, रहीम भी, अल्लाह भी कहते हैं, गोविंद भी। उनका आग्रह नाम पर नहीं है, बल्कि भावना पर है।

कबीरदास ब्रह्म और जगत को एक ही रूप में देखते हैं, जैसे पानी से ही बर्फ बनता है और बर्फ़ ही पिघल कर पानी बन जाता है उसी प्रकार यह सृष्टि ही ईश्वर है और ईश्वर ही सृष्टि है। वह जगत उस घड़े की तरह है जो पानी में डूबा हुआ है। इस घड़े के भीतर भी पानी है और बाहर भी। जब घड़ा फूट जाता है अर्थात् जब मनुष्य को आत्मज्ञान हो जाता है तो वह यह पहचान लेता है कि अंदर और बाहर वही परब्रह्म व्याप्त है। स्वयं उसकी आत्मा में भी वहीं ईश्वर विराजमान है। कबीरदास यह भी मानते हैं कि सृष्टि का सारा प्रपंच उसी ईश्वर की अभिव्यक्ति है। राजा हो या प्रजा, पंडित हो या योगी,वैद्य हो या रोगी, सभी में वहीं निर्गुण राम व्याप्त है। केवल भाषा के वशीभूत होकर जीव ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचान पाता। भाषा तो "महाठगिनी" है उसी के कारण मनुष्य भुलावे में पड़ा रहता है।

4.3.2 अवतारवाद का खंडन

कबीरदास इस बात में विश्वास नहीं करते थे कि ईश्वर मनुष्य रूप में अवतार लेता है। उन्होंने अपनी रचनाओं मेंराम,हरि, माधव, केशव जैसे पौराणिक नामों का परब्रह्म के लिए इस्तेमाल किया है, लेकिन इनका अर्थ वही नहीं है जो सगुण ईश्वर में विश्वास करने-वाले लोग समझते है।

बोध प्रश्न 1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिये गए उत्तरों से मिलाइये।

1 बीजक के तीन भाग कौन-कौन से हैं, केवल नाम बताइए।

i) ....

ii) ....

iii) ....

2 "साखी" का क्या अर्थ है और कबीर ने साखी के लिए कौन से छंद का प्रयोग किया है?

....

....

....

3 कबीर के राम कौन थे?

क) दशरथ पुत्र राम

ख) विष्णु के अवतार राम

ग) निर्गुण निराकार ईश्वर

घ) उपर्युक्त तीनों ( )

4 कबीरदास ने शास्त्र ज्ञान की आलोचना क्यों की? पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

अभ्यास

1 ईश्वर संबंधी कबीरदास के विचारों पर लगभग 100 शब्दों में एक टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

4.4 कबीर काव्य का सामाजिक पक्ष

कबीरदास के समय भारत में तरह-तरह के धर्म और मत प्रचलित थे। सबसे अधिक प्रभाव पौराणिक धर्म का था। पौराणिक हिन्दू धर्म में कर्मकांड का जोर था। व्रत, उपासना, तीर्थ, यज्ञ, दान-पुण्य आदि का ऐसा जंजाल था कि सामान्य व्यक्ति जीवन भर इनसे मुक्त नहीं हो पाता था। कबीरदास को इनमें सच्चे धर्म के दर्शन नहीं होते थे। इससे बहुत अधिक भिन्न स्थिति मुसलमानों की नहीं थी। वहाँ भी बाह्याचार का ही बोलबाला अधिक था। इन सबके ऊपर जातिवाद ने समाज को बाँट रखा था। निम्न समझी जाने वाली जातियों को उच्च जाति के लोग घृणा की दृष्टि से देखते थे। उनका स्पर्श भी पाप समझा जाता था। पत्थर को पूजा जाता था, लेकिन मनुष्य को दुत्कारा जाता था।

कबीरदास अत्यंत जागरूक व्यक्ति थे। वह अपनी आँखें और बुद्धि खुली रखते थे। जब सारा संसार केवल भोग में लिप्त रहकर सुख की नींद सोता था, तब भी कबीर इस संसार के हालात को लेकर दुखी और बेचैन रहते थे। कबीर ने कहा है :

सुखिया सब संसार है, खावे और सोवे।
दुखिया दास कबीर है, जागे और रोवे।।

किसी भी दृष्टि से कबीर को यह आदर्श समाज नहीं लगा। उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों और अंधविश्वासों का दृढ़तापूर्वक विरोध किया। इसके लिए उन्होंने गूढ़ दार्शनिक तर्क प्रस्तुत नहीं किये। उन्होंने सहज विवेक-बुद्धि से उत्पन्न तर्कों से ही उनका खंडन किया।

4.4.1 धार्मिक बाह्याचार का खंडन

कबीरदास ने विभिन्न धर्मों में प्रचलित कर्मकांडों का विरोध इसलिए नहीं किया था कि वे उन धर्मों को हीन बताना चाहते थे। उनका विचार था कि ये कर्मकांड मनुष्य को ईश्वर से विमुख करते हैं। इनमें उन्हें किसी सत्य का दर्शन नहीं हुआ। उन्होंने हिन्दू धर्म में व्याप्त मूर्तिपूजा, यज्ञोपवीत, तीर्थ-स्नान, व्रत-उपवास; दान-पुण्य आदि का विरोध किया। उन्होंने मूर्तिपूजा का विरोध करते हुए कहा कि अगर पत्थर को पूजने से भगवान मिलते हैं, तो मैं पहाड़ की पूजा करने को तैयार हूँ। उन्होंने पत्थर की मूर्ति से उस चक्की को श्रेष्ठ माना, जिसमें अनाज पीसा जाता है, और जिससे संसार का पेट भरता है। माला फेरने की निंदा करते हुए वे कहते हैं कि हाथ में तो माला चलती रहती है और मन कहीं और डोलता रहता है, ऐसी माला फेरने से क्या लाभ? सिर मुंडाने की आलोचना करते हुए कहते हैं कि अगर सिर मुंडाने से हरि मिलते हैं तो हर किसी को सिर मुंडा लेना चाहिए। फिर भेड़ तो कई बार मुंडी जाती है, फिर उसे बैकुंठ क्यों नहीं मिलता।

कबीर ने जिस तीखे ढंग से हिन्दुओं के आडंबरों पर चोट की है वैसी ही चोट उन्होंने मुसलमानों पर भी की है। कबीर कहते हैं कि :—

कांकर पत्थर जोरि कै, मस्जिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय।।

वे कहते हैं कि मुसलमान दिन भर तो रोजा रखता है, रात को पशु-हत्या करता है। उसका एक कर्म तो "बंदगी" है और दूसरा कर्म "हिंसा" है तो इससे ईश्वर कैसे प्रसन्न होगा?

इस प्रकार कबीर ने उस समय प्रचलित प्रायः सभी मत-मतांतरों के बाह्याचारों की निंदा की है। धर्म के नाम पर प्रचलित अनेक प्रकार के बाह्याचारों और खोखली मान्यताओं और विश्वासों की कमजोरी और निरर्थकता को उन्होंने सहज तर्कों, मर्मस्पर्शी उक्तियों और तीखे व्यंग्यों से प्रकट किया है।

4.4.2 जातिप्रथा का विरोध

धार्मिक बाह्याचार की तरह कबीर ने जातिप्रथा और वर्ण-व्यवस्था पर भी चोट की। कबीरदास जातिप्रथा में विश्वास नहीं करते थे। वे यह मानने को तैयार नहीं थे कि मनुष्य जन्म से ही छोटा-बड़ा होता है। न ही वे इस बात में विश्वास करते थे कि भगवान ने ही मनुष्य को जन्म से ब्राह्मण और जन्म से ही शूद्र बनाया है। जातिप्रथा के खिलाफ उनके तर्क बहुत सीधे-सादे हैं। कबीरदास ब्राह्मण से पूछते हैं कि अगर तू जन्मना ब्राह्मण है तो फिर तेरा जन्म भी उस तरह क्यों हुआ, जैसे एक शूद्र का होता है। इस प्रकार वे मुसलमान से पूछते हैं कि अगर तू जन्म से मुसलमान हैं तो तूने सुन्नत माँ के पेट में ही क्यों न करा ली। वे कहते हैं कि काली गाय और सफेद गाय के दूध को आपस में मिला दिया जाये तो क्या उन्हें अलग-अलग किया जा सकता है। फिर मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद क्यों?

उनका विश्वास है कि प्रत्येक मनुष्य उसी एक ईश्वर की संतान है : "एक बूंद एकै मल मूतर, एक चाम एक गूदा/एक जोति मैं सब उतपना, कौन बामहन कौन सूदा।" इसलिए किसी को ब्राह्मण और किसी को शूद्र मानने का क्या मतलब? छुआछूत का खंडन करते हुए वे कहते हैं कि इस छुआछूत ने ही शूद्र को उत्पन्न किया है अन्यथा कौन शूद्र और कौन ब्राह्मण।

4.4.3 हिन्दू-मुस्लिम समन्वय

कबीरदास जन्म से हिन्दू थे या मुसलमान, कह सकना कठिन है। उनका पालन-पोषण मुस्लिम परिवार में हुआ था और गुरु उन्होंने रामानंद को बनाया था। वे एक साथ हिन्दू भी थे और मुसलमान भी। वे न हिन्दू धर्म से बंधे और न इस्लाम से। दोनों से ही उन्हें संतोष नहीं था। उन्हें

दोनों अधूरे और भटके हुए लगते थे। उन्होंने अपनी रचनाओं में दोनों धर्मों के मिथ्याचारों की कड़ी आलोचना की है। मूर्तिपूजा, व्रत-उपवास, दान-पुण्य, तीर्थ-स्नान आदि के लिए उन्होंने हिन्दुओं को फटकारा, तो नमाज़, रोजा, पशु-हिंसा आदि के लिए मुसलमानों को। कबीरदास कहते हैं कि एक निरंजन (परब्रह्म) ही मेरा अल्लाह है, जिसे न तो हिन्दू जानता है, न मुसलमान। इसे जानने के बाद न व्रत रखने की जरूरत है न मोहर्रम को जानने की। न पूजा आवश्यक है, न नमाज़। न हज करने की जरूरत है और न तीरथ करने की। एक निरंजन को जानने के बाद तो सारे भ्रम अपने आप भाग जाते हैं।

इस प्रकार कबीर ने सिर्फ हिन्दुओं और मुसलमानों के धार्मिक बाह्याचार का ही विरोध नहीं किया था, बल्कि धर्म के वास्तविक स्वरूप का दर्शन करते हुए सभी धर्मों की मूल एकता को भी रेखांकित किया था। उन्होंने अपना संबंध इसी मूल तत्व से जोड़ा था।

कबीर ने हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच वास्तविक एकता लाने का प्रयास किया था। उन्होंने समन्वय के नाम पर दोनों संप्रदायों की कमजोरियों को ढकने का प्रयास नहीं किया था। उन्हें अपने दृष्टिकोण पर इतना विश्वास था कि वे दृढ़तापूर्वक दोनों संप्रदायों के धार्मिक और सामाजिक आडंबरों की आलोचना कर सके थे।

4.4.4 नारी संबंधी दृष्टिकोण

नारी संबंधी कबीर का दृष्टिकोण उनके युग की सीमाओं से आगे न जा सका। कबीरदास ने कई साखियों में नारी की निंदा की है। "नारी काली नागिन है जो तीनो लोकों का नाश कर देती है।" "नारी बुद्धि और विवेक हरने वाली है।" "नारी धतूरे के समान जहरीली है।" "नारी नरक का कुंड है।" "सुंदर स्त्री से तो सूली ही अच्छी है।"

नारी संबंधी कबीर की इतनी कटु उक्तियाँ संभवतः उस नारी के प्रति है जो अपने सौंदर्य से पराये पुरुषों को आकृष्ट करती है। अन्यथा कबीरदास जब ईश्वर के प्रति अपने प्रेम की व्यंजना करते हैं तो स्वयं को 'राम की बहुरिया' मानते हैं। अपने प्रेम को उन्होंने उस स्त्री के प्रेम के रूप में अभिव्यक्त किया है जो अपने पति के विरह में तड़प रही है।

उदाहरण

साखी

पाहन[1] पूजै हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहार।
ताते यह चक्की भली, पीस खाय संसार।।
मन मथुरा दिल द्वारिका काया कासी जाणि।
दसवां द्वार देहुरा[2] तामै जोति पिछांणि।।

पद

ऐसा भेद बिगूचन[3] भारी।
बेद कतेब[4] दीन अरु दुनिया, कौन पुरिष कौन नारी।।
एक बूंद एकै मल मूतर, एक चाम एक गूदा।
एक जोति[5] थैं सब उतपना, कौन बाम्हन कौन सूदा।।
माटी का प्यंड[6] सहजि उतपना, नाद रु ब्यंद[7] समांना।
बिनसि[8] गयां थै का नांव[9] धरिहौ, पढि गुनि भ्रम जाना।।
रज गुन ब्रह्मा तम गुन संकर, सत गुन हरि है सोई[10]।
कहै कबीर एक राम जपहु रे, हिन्दू तुरक न कोई।।

1 पत्थर 2 मंदिर 3 उलझन 4 किताब, यहाँ कुरान से तात्पर्य है 5 ज्योति ईश्वर 6 पिंड, मनुष्य की देह 7 नाद और बिंदु, कुंडलिनी जब जाग्रत होकर ऊपर उठती है तो उससे स्फोट होता है जिसे नाद कहते हैं। नाद से प्रकाश उत्पन्न होता है और प्रकाश का व्यक्त रूप ही बिंदु है 8 नष्ट होना 9 नाम 10 यहाँ कबीर ने ब्रह्मा, विष्णु और शिव को क्रमशः तमगुण, सतगुण और रजगुण कहा है और केवल राम के नाम का स्मरण करने को ही उचित माना है जो न हिन्दू है न मुसलमान।

4.5 कबीर की भक्ति भावना

कबीर निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। निर्गुण ब्रह्म के संबंध में अपने मत के लिए उन्होंने तर्क और बुद्धि का सहारा लिया था। लेकिन उपासना के क्षेत्र में वे ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण और अहैतुक भक्ति के पक्षधर थे। निर्गुण ईश्वर जो आत्म रूप में जीव में स्थित है और ब्रह्म रूप में सारी सृष्टि में और उससे परे भी है, उसे व्यक्त करने के लिए कबीर "नाम" का सहारा लेते हैं। राम का नाम ही उस परमसत्ता की अभिव्यक्ति है।

4.5.1 नाम-महिमा

कबीरदास अपने गुरु के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहते हैं कि "उन्होंने राम नाम का मंत्र दिया है, राम नाम में जो आनंद है, वह किसी और वस्तु में नहीं। केवल हरि नाम का स्मरण ही भक्ति है, शेष सब कुछ अपार दुख है। हरि के नाम की चिंता ही एक मात्र सच्ची चिंता ह। शेष सब चिंताएँ व्यर्थ हैं क्योंकि उन चिंताओं से हम काल के पाश अर्थात् मौत के बंधन से मुक्त नहीं हो सकते। कबीरदास राम और राम के नाम को एक दूसरे से अभिन्न मानते हैं। नाम स्मरण के आगे न वे वेद और कुरान को आवश्यक समझते हैं, न नमाज और पूजा को। न व्रत-उपवास जरूरी है न ही रोज़ा। नाम ही ब्रह्म है और नाम ही भ्रम से मुक्ति प्रदान करने वाला। लेकिन इस नाम की महिमा बिना गुरु के प्राप्त नहीं होती।"

4.5.2 गुरु की महिमा

कबीरदास ने अपनी एक साखी में कहा है कि मैं भी अब तक पत्थर की पूजा कर रहा होता, यह तो सतगुरु की कृपा से ही संभव हुआ कि मैं इस बोझ से मुक्त हो सका। एक अन्य साखी में वे कहते हैं कि सतगुरु की महिमा अनंत है, उन्होंने मेरे पर अनंत उपकार किये हैं। उन्होंने ही अनंत के दर्शन कराने के लिए मेरी अनंत दृष्टि खोल दी। यह अनंत क्या है? यह अनंत हैं "निर्गुण राम" निर्गुण राम का नाम। संक्षेप में "राम नाम"। "मेरे लिए तो गुरु गोविंद से भी बड़े हैं क्योंकि उन्हीं की कृपा से मेरा गोविंद से साक्षात्कार हुआ है।" कबीरदास ने गुरु की महिमा का बार-बार गुणगान किया है। इससे यह प्रकट होता है कि कबीरदास को सचमुच किसी गुरु से ही सत्य का ज्ञान हुआ, जिसे उन्होंने अपनी वाणियों में व्यक्त किया है।

परंपरा से माना जाता है कि रामानंद कबीर के गुरु थे, लेकिन स्वयं कबीरदास की कोई ऐसी प्रामाणिक वाणी नहीं मिलती जिसमें उन्होंने गुरु के नाम का उल्लेख किया हो। कुछ जगह उन्होंने अपने विवेक को गुरु कहा है, तो कुछ जगह वे ईश्वर को ही गुरु मानते नजर आते हैं। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का विचार है कि "अपने गुरु और परमात्मा में वे मूलतः कोई भेद नहीं मानते थे। क्योंकि बहुत से स्थलों पर जो-जो उद्‌गार उन्होंने गुरु के प्रति प्रकट किये हैं उनमें से अनेक राम, गोविंद केशव, हरि आदि के संबंध में भी व्यक्त हुए हैं।" (कबीर साहित्य चिंतामणि, पृ. 119) निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि कबीर के यहाँ गुरु चाहे कोई भी क्यों न हो, लेकिन गुरु का महत्व बहुत है क्योंकि वह अंधकार में "दीपक" के समान है।

4.5.3 प्रेम तत्व

ऐसा प्रतीत होता है कि कबीरदास ने नारद द्वारा प्रस्तुत भक्ति के सूत्र को पूरी तरह आत्मसात् कर लिया था। उन्होंने भक्ति का इसके सिवा कोई अर्थ ग्रहण नहीं किया कि भक्ति का अर्थ है प्रेम, इच्छा रहित प्रेमपूर्ण आत्मसमर्पण। कबीरदास को इस प्रेम तत्व का परिचय सतगुरु से मिला था। कबीर कहते हैं, "प्रेम का बादल मुझ पर इतना बरसा कि उसके कारण मेरी आत्मा तक सराबोर हो गई और बाह्य सृष्टि सारी रसमयी बन गई।" "यह प्रेम न तो खेत में उगता है और न ही बाजार में बिकता है। इसे तो राजा भी प्राप्त कर सकता है और प्रजा भी। शर्त सिर्फ इतनी है कि उसे अपना सिर सौंपना होता है।" सिर सौंपना अर्थात् पूरी तरह से आत्म समर्पण। प्रेम की स्थिति में व्यक्ति अपने होने का बोध भी भूल जाता है।

ईश्वर के प्रति इस गहरी अनुरक्ति की अभिव्यक्ति कबीर ने विरहिणी नारी के रूप में की है। विरह प्रेम की पराकाष्ठा है। विरह की स्थिति में विरहणी केवल प्रिय (ईश्वर) के बारे में सोचती है। उसमें प्रिय से मिलने की लालसा ही शेष रहती है। विरह ही जीवन की गति बन जाता है।

कबीर के यहाँ केवल विरह ही नहीं है प्रिय मिलन भी है। एक पद में वे बारात का रूपक बाँधकर राम से मिलन की कल्पना करते हैं। कबीर कहते हैं, "हे, सौभाग्यवती बहुओं। तुम विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले मंगल गीत गाओ। मेरे घर राजा राम पति के रूप में पधारे हैं।"

कबीर के लिए भक्ति ही प्रेम है और प्रेम ही भक्ति है। प्रेम के आगे वे अन्य किसी बात को महत्व नहीं देते। न वेद, न शास्त्र, न कुरान, न जप, न माला, न मंदिर, न मस्जिद, न हज, न तीरथ, न अवतार, न पैगंबर।

कबीर का भगवद् प्रेम अहैतुक प्रेम है। उन्हें न मोक्ष की कामना है और न ही श्री और संपन्नता की। उनका प्रेम सहज और सरल है। उसमें उनके हृदय की निर्मलता व्यक्त हुई है। मिथ्याचारों के विरुद्ध कबीर का जो आक्रामक और कठोर व्यक्तित्व दिखाई देता है, उसके विपरीत यहाँ कबीर एक विह्वल प्रेम रस में सराबोर, विरह की ज्वाला से दग्ध, निर्मल हृदय भक्त के रूप से हमारे सामने आते हैं। इन दोनों रूपों से मिलकर ही कबीर का समग्र व्यक्तित्व बना है।

उदाहरण

साखी

चयंता[1] तौ हरि नाँव की, और न चिंता दास।
जे कुछ चितवैं राम बिन, सोइ काल[2] की पास[3]।

सतगुरु की महिमा अनंत[4], अनंत किया उपगार।
लोचन[5] अनंत उघाड़िया, अनंत[6] दिखा वणहार।

यह तन जालौ मसि[7] करौ, लिखौ राम का नाउँ।
लेखणि करुं करंक[8] की, लिखि लिखि राम पठाऊँ[9]।

कै बिरहणि कूँ मींच[10] दे, कै आपा[11] दिखलाइ।
आठ पहर का दाझणा[12], मोपैं, सह्या न जाइ।।

बोध प्रश्न

5 मूर्तिपूजा के बारे में कबीरदास के क्या विचार थे? तीन पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

6 कबीरदास निम्नलिखित में से किन बातों में विश्वास करते थे? हाँ या नहीं में उत्तर दीजिए

i) राम और रहीम एक है, उनमें कोई भेद नहीं है (हाँ/नहीं)
ii) ईश्वर मंदिर और मस्जिद में ही रहता है। (हाँ/नहीं)
iii) मनुष्य जन्म से ब्राह्मण और जन्म से ही शूद्र होता है। (हाँ/नहीं)
iv) भक्ति के लिए प्रेम ही आवश्यक है। (हाँ/नहीं)
v) कबीरदास ने नारी के कामिनी रूप की निंदा की है। (हाँ/नहीं)

7 किन कारणों से कबीरदास ने सतगुरु के महत्व को स्वीकार किया था? अपना उत्तर लगभग तीन-चार पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

8 कबीरदास के प्रेम तत्व की कोई तीन विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

....

....

1 चिंता, 2 मौत, 3 पाश अर्थात् बंधन, 4 जिसका न आदि हो न अंत, 5 आँख यहाँ अर्थ है, दृष्टि, 6 ईश्वर, 7 स्याही, 8 कंकाल, हड्डी, 9 भेजना, 10 मृत्यु, 11 आत्मभाव (ईश्वर का आत्मभाव), 12 जलना

9 कबीरदास द्वारा व्यक्त विरहणी की मनोदशा का लगभग पाँच पंक्तियों में वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

अभ्यास

2 जातिप्रथा के संबंध में कबीरदास के विचारों की विवेचना कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

3 कबीरदास ने किस दृष्टिकोण से धार्मिक मिथ्याचारों की आलोचना की?

....

....

....

....

4.6 कबीर काव्य में रहस्यवाद

डा. रामकुमार वर्मा ने रहस्यवाद की परिभाषा देते हुए लिखा है कि "रहस्यवाद जीवात्मा की अंतर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शांत और निश्छल संबंध जोड़ना चाहती है और यह संबंध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अंतर नहीं रह जाता।" (कबीर का रहस्यवाद, पृ. 6) डा. वर्मा की उक्त परिभाषा पर विचार करें तो हम समझ सकते हैं कि रहस्यवाद उस अज्ञात शक्ति के प्रति जीवात्मा का आकर्षण है, जिसे हम ईश्वर या परब्रह्म कहते हैं। जीवात्मा के मन में सबसे पहले ईश्वर या अज्ञात सत्ता के प्रति जिज्ञासा का भाव उत्पन्न होता है, फिर वह उसके प्रेम में बंध जाती है और उससे मिलन के लिए व्याकुल रहती है और अंत में जीवात्मा परमात्मा के साथ एकाकार हो जाती है। वह अपनी स्वतंत्र सत्ता भूल जाती है और ईश्वर में ही अपने को लीन कर लेती है।

4.6.1 कबीर का रहस्यवाद

कबीरदास के रहस्यवाद पर अद्वैतवाद, सूफीमत और योग साधना का प्रभाव है। शंकराचार्य के अद्वैतवाद के अनुसार केवल ईश्वर ही सत्य है। माया के कारण ही आत्मा ईश्वर से अपने को अलग समझती है। माया से छुटकारा पाकर ही आत्मा पुन: परमात्मा की सत्ता को स्थापित कर पाती है। कबीरदास ने इस "माया" का बार-बार जिक्र किया है। माया "पापिनी" है, माया "महाठगिनी" है। माया "मोहिनी" है। शरीर मर जाता है, लेकिन यह माया नहीं मरती। इस माया से मुक्ति आवश्यक है। लेकिन यह मुक्ति ज्ञान की आँधी से ही मिल सकती है। जब ज्ञान की आंधी आती है तो माया का बंधन टूट जाता है। माया तो पानी में डूबे घड़े की तरह है। उस घड़े में भी पानी है और घड़े के बाहर भी पानी है। जब घड़ा फूट जाता है, तो घड़े का पानी और बाहर का पानी मिलकर एक हो जाते हैं। आत्मा और परमात्मा भी पानी की तरह हैं, जिसे माया रूपी घड़ा अलग किये हुए हैं। यही अद्वैतवाद है। कबीरदास के रहस्यवाद पर इस अद्वैतवाद का प्रभाव स्पष्ट है। कबीरदास के रहस्यवाद पर दूसरा प्रभाव सूफी मत का है। सूफी मत में प्रेम का स्थान बहुत ऊँचा है। प्रेम से अधिक प्रेम के नशे का। प्रेम की भावना में अपने आपको भूल जाने

का नशा। सूफी मत में ईश्वर की कल्पना स्त्री रूप में की गयी है और साधक की पुरुष रूप में। कबीरदास ने सूफी मत से प्रेम की दांपत्य भावना तो ग्रहण की, लेकिन ईश्वर की कल्पना उन्होंने पुरुष रूप में की और साधक की कल्पना स्त्री रूप में। कबीर ने प्रेम की व्याकुलता, उसकी गहराई और विह्वलता का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है। हरि मेरे प्रिय हैं और मैं राम की बहुरिया हूँ। हरी के बिना मेरा जीवन संभव नहीं। हरी के लिए यही तड़प अंततः साधक को परमात्मा से मिला देती है और साधक अपने को भी ईश्वर की तरह अजर, अमर और नित्य समझने लगता है। रहस्यवादी कवि अपनी भावनाओं की अद्वितीयता और अलौकिकता को व्यक्त करने में हमेशा कठिनाई महसूस करता है। डा. रामकुमार वर्मा के अनुसार, "इसके लिए कवि रूपकों का सहारा लेता है।" उनके शब्दों में रहस्यवादी कवि "स्पष्ट रूप से अपने भाव कहने में असमर्थ हो जाते हैं क्योंकि अनुभूत भाव-सौंदर्य इतना अधिक होता है कि वे साधारण शब्दों में उसे व्यक्त नहीं कर सकते। उनका भावोन्माद इतना अधिक होता है कि बोलचाल के साधारण शब्द उनका बोझ नहीं सम्हाल सकते। इसलिए उन्हें अपने भावों को प्रकट करने के लिए रूपकों की शरण लेनी पड़ती है।" (कबीर का रहस्यवाद, पृ. 25)।

कबीरदास ने रूपक प्रायः अपने आसपास के जीवन से लिये हैं या फिर हठयोग से। लेकिन रूपकों का प्रयोग सहज नहीं है, उसमें जटिलता है। उदाहरण के लिए कबीर ने चरखे का रूपक जीव परमात्मा और गुरु के संबंधों को बताने के लिये किया। लेकिन यह रूपक उलटबाँसी के रूप में है। इसके अर्थ को तभी समझा जा सकता है जब रूपक में प्रयुक्त प्रतीकों के वास्तविक अर्थों को पहचान लिया जाये। कबीर के काव्य की इस विशेषता का विवेचन हम "शिल्प पक्ष" के अंतर्गत करेंगे।

4.6.2 हठयोग की साधना

कबीर ने अपनी रचनाओं में हठयोग के कुछ सिद्धांतों का भी प्रयोग किया है। "हठयोग" का प्रभाव कबीर पर नाथपंथ के कारण था। योग का अर्थ है जुड़ना। यहाँ तात्पर्य है आत्मा का परमात्मा से जुड़ना। आत्मा परमात्मा से जिस विधि से जुड़े वही योग है। योग के कई रूप हैं—ज्ञानयोग, कर्मयोग, राजयोग, हठयोग आदि। डा. रामकुमार वर्मा के अनुसार, "अपने अंगों और श्वास पर अधिकार प्राप्त कर उनका उचित संचालन करते हुए जो साधना की जाती है वह हठयोग है। इस विधि से मन को एकाग्र कर, परमात्मा के दिव्य स्वरूप का मनन करते हुए आत्मा समाधिस्थ हो ईश्वर से मिल जाती है" यही मिलना "राजयोग" है।

उदाहरण

पद

संतौ भाई आई ग्यान की आंधी रे।
भ्रम की टाटी[1] सबै उडाणी, माया रहै न बांधी।।
हिति चत की द्वै, थूनी[2] गिरानी, मोह बलीडा[3] तूटा।
त्रिस्नां[4] छानि[5] परी धर ऊपरि, कुबधि का भांडा फूटा।।
जोग जुगति करि संतौ बांधी, निरचू चुवै न पांणी।
कूड़ कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जाणी।।
आंधी पीछै जौ जल बूढ़ा[6] प्रेम हरी जन भीना।
कहै कबीर भान[7] के प्रगटे, उदित भया तम षीना।।

पद

अवधू मेरा मन मतिवारा।
उन्मनि चढ़्या मगर रस पीवै, त्रिभुवन[8] भया उजियारा।।
गुड़ करि ग्यान ध्यान कर महुवा, भव भाठी[9] करि भारा।
सुषमन नारी सहजि समांनी, पीवै पीवनहारा।।
दोइ पुड़[10] जोड़ि चिगाई[11] भाठी, चुया महा रस भारी।
काम क्रोध दोइ किया बलीता, छूटि गई संसारी।।
सुनि मंडल मैं मंदला[12] बाजै, तहां मेरा मन नाचे।
गुरु प्रसादि अमृत फल पाया, सहजि सुषमनां काछै।।
पूरा मिलया तबै सुष उपज्यौ, तन की तपति बुझानी।
कहै कबीर भवबंधन छूटे, जोति ही जोति समाना।।

1 टट्टी या पल्ला 2 खम्बा 3 बल्ली 4 तृष्णा (इच्छा) 5 छप्पर 6 बरसा 7 भानू (सूर्य) उन्मुख अर्थात् मन का परमात्मा की ओर उन्मुख होना 8 (तीनों लोक) 9 भट्टी 10 पुट 11 जलाई 12 मादक (वाद्ययंत्र)।

4.7 कबीर काव्य का शिल्प पक्ष

कबीर मूलतः भक्त थे। उन्होंने कविता के लिए कविता नहीं की थी। न ही उन्होंने काव्यशास्त्र का अध्ययन किया था। छंद, अलंकार, प्रतीक का शास्त्रीय ज्ञान उन्हें नहीं था। वे तो अपनी भावनाओं और विचारों को शब्दों में बाँध देना चाहते थे। उनके पास प्रतिभा थी, हृदय था और थे भाव और विचार। इसी के बल पर उन्होंने एक ऐसा काव्य प्रस्तुत किया है जो न सिर्फ भाव और विचार की दृष्टि से श्रेष्ठ है वरन् काव्य सौंदर्य की दृष्टि से भी अद्वितीय है। कबीर अपनी बात को प्रभावशाली ढंग से कहना जानते थे। उनके पास व्यापक जीवन अनुभव था, मौलिक चिंतन की क्षमता थी, भाषा पर जबर्दस्त अधिकार था और अपनी बातों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त रूपक, प्रतीक और छंद का इस्तेमाल करने की समझ थी, चाहे उन्हें वे पूरी तरह से शास्त्रीय नियमों में न प्रस्तुत करते हों।

4.7.1 काव्य भाषा

कबीर की भाषा को "सधुक्कड़ी" नाम दिया गया है। उनकी भाषा में ठीक-ठीक किसी एक बोली का प्रभाव नहीं है। उनकी बानियों में हिन्दी, उर्दू के साथ-साथ पंजाबी, राजस्थानी, अवधी, भोजपुरी आदि भाषाओं और बोलियों का असर देखा जा सकता है। कबीर की भाषा में भोजपुरी का भी काफी प्रभाव है। एक जगह कबीर ने अपनी मातृभाषा को पूर्वी हिन्दी कहा है। कबीर की भाषा में खड़ी बोली के भी उदाहरण मिलते हैं। जैसे "जब मैं था तब हरि नहीं" या "आऊँगा न जाऊँगा, मरूंगा न जीऊँगा" या "भारी कहूं तो बहु डरू, हलका कहूं तो झूठ" खड़ी बोली के वाक्य प्रयोग हैं। कबीर के यहां भाषा का प्रयोग विषय और भाव के अनुकूल है। उदाहरण के लिए जब कबीर मिथ्याचारों और आडंबरों पर प्रहार करते हैं तो उनकी भाषा में व्यंग्य और तीखापन आ जाता है, जैसे; सिर मुंडाने की धार्मिक रूढ़ि पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं :

केसौं कहा बिगाड़िया, जे मूंडै सौ बार।
मन कौं काहे न मूंडिए, जामै विषै विकार।।

यहाँ बाह्य आचार और आंतरिक शुद्धता के अंतर को भी कबीर ने अत्यंत प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया है। मूर्तिपूजा पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं, "पाहन पूजै हरि मिले तो मैं पूजूं पहार" और उसके बाद जब वे चक्की की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हैं तो सिर्फ मूर्तिपूजा पर व्यंग्य ही नहीं उभरता, उनके तर्क की शक्ति का प्रमाण भी मिलता है। कबीर की भाषा का दूसरा रूप उनकी भक्ति संबंधी वाणियों में मिलता है। वहाँ न तो आक्रमण है, न व्यंग्य, न कठोरता। वहाँ तो भक्त के हृदय की सरलता और निर्मलता के दर्शन होते हैं जैसे निम्नलिखित साखी देखिए :

तूं तूं करता तू भया, मुझ में रही न हूं।
वारी फेरी बलि गई, जित देखो तित तूं।।

या निम्नलिखित साखी में विरह की तीव्रता देखिए:

हौं विरह की लकड़ी, समझि समझि धूंधाऊँ।
छूटि पड़ौं या बिरह तैं, जे सारीही जलि जाऊँ।।

"मैं तो विरह रूपी लकड़ी हूँ, यही समझ कर धुँधआती हूँ। जब पूरी तरह जल जाऊँगी तभी मुझे विरह से मुक्ति मिलेगी।" कबीर की भाषा का एक अन्य रूप उलटबाँसियों में मिलता है। उलटबाँसी में कबीर बातों को इतने उलट-पुलट ढंग से रखते हैं कि उनको साधारण अर्थ में ग्रहण करने पर समझा ही नहीं जा सकता। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पदांश को देखिए :

एक अचंभा देखा रे भाई, ठाढा सिंघ चरावै गाई।
पहले पूत पीछे भाई माइ, चेला कै गुर लागै पाई।
जल की मछली तरवर ब्याई, पकड़ि बिलाई मुरगैं खाई।

उपर्युक्त पंक्तियों में प्रयुक्त प्रतीकों के अर्थ जानने पर ही भावार्थ समझा जा सकता है। कबीर की काव्य भाषा की विशेषता का अध्ययन हम "उलटबाँसी" शीर्षक से अलग से करेंगे।

कबीर की भाषा सरल और सीधी तो है ही, वह आध्यात्मिक अर्थों को व्यक्त करने के लिए रूपकों, संकेतों और प्रतीकों का भी इस्तेमाल करते हैं। इनका अर्थ उनके विशेष संदर्भ में ही समझा जा सकता है। भाषा के इस जटिल रूप को छोड़ दें तो कबीर की भाषा की शक्ति और सौंदर्य अनुपम है। उसमें अभिव्यक्ति की जो स्वाभाविकता है वह विशेष रूप से आकृष्ट करती

है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, "भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया। बन गया है तो सीधे सीधे, नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार-सी नजर आती है। उसमें मानो ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइश को नाहीं कर सके। और अकह कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की तो जैसी ताकत कबीर की भाषा में है वैसी बहुत कम लेखकों में पाई जाती है।" कबीर, (पृ. 222)।

4.7.2 काव्य रूप

कबीरदास ने मुक्तकों की ही रचना की है। इसके लिए काव्यरूप उन्हें लोक-परंपरा से प्राप्त हुए थे। कबीर के काव्य को साखी, सबद और रमैनी के रूप में पहचाना जाता है। साखी के लिए कबीर ने दोहा छंद का प्रयोग किया है। लेकिन कबीर के दोहों में मात्राओं की संख्या हर कहीं एक-सी नहीं है। रमैनी में चौपाई और दोहा छंद का प्रयोग है। कुछ चौपाइयों के बाद एक दोहे का प्रयोग किया गया है। चौपाइयों की संख्या निश्चित नहीं है। "सबद" वस्तुतः गेय पद हैं जो विभिन्न राग रागनियों पर आधारित हैं। कबीर के इन पदों में भी कोई शास्त्रीय नियम लागू नहीं होता। मुख्य बात है उनकी गीतात्मकता और उनमें निहित लय। कबीर ने कुछ और छंदों का भी प्रयोग किया है लेकिन उनका प्रयोग भी काफी स्वतंत्र रूप से किया गया है।

4.7.3 उलटबाँसी

कबीर ने अपने काव्य में अपनी भक्ति भावना को दो रूपों में व्यक्त किया है। एक दांपत्य प्रेम के रूप में, दूसरे हठयोग की पद्धति में। पहले रूप में जो प्रतीक और रूपक प्रयुक्त हुए हैं, उनमें सहजता और स्पष्टता है। यहाँ मुख्य वस्तु है भावों की तीव्रता। कबीर के दांपत्य प्रेम की अभिव्यक्ति में कहीं वासना या हल्कापन नहीं है। उनका प्रेम भी पति-पत्नी के रूप में व्यक्त हुआ है। "दुलहिन गावहु मंगलाचार" पद में कबीर ने राम के साथ अपने विवाह की परिकल्पना की है। यह आत्मा और परमात्मा का अलौकिक विवाह है। अभिव्यक्ति में भावावेग, विह्वलता और प्रेम की उत्कटता के दर्शन होते हैं। इस पद में विवाह का पूरा रूपक खड़ा किया गया है।

कबीर के काव्य में हठयोग के प्रतीकों का भी इस्तेमाल काफी है। कबीर ने इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, गगनमंडल, शून्य, नाद आदि शब्दों का इस्तेमाल किया है जिनका सांकेतिक अर्थ जानकर ही हम पद का भाव समझ सकते हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पदांश देखिए :

अवधू गगन मंडल धर कीजै।
अमृत झरै सदा सुख उपजै बंकनालि रस पीवै।।

उपर्युक्त पंक्तियों में अवधू, गगन मंडल, अमृत, बंकनालि आदि हठयोग से संबंधित सांकेतिक शब्द है। अवधू वस्तुतः अवधूत शब्द है। इस शब्द का अर्थ है, "जो संसार से वैराग्य लेकर संसार के बंधन से अपने को अलग कर लेता है।" (रामकुमार वर्मा) गगन मंडल को शून्य भी कहा गया है। कुंडलिनी जाग्रत होकर जब सहस्रदल कमल तक पहुँचती है तो योगी को सिद्धि प्राप्त होती है यही "गगनमंडल" या "शून्य" है। "अमृत" ब्रह्मरंध्र में स्थित सहस्त्रदल कमल के मध्य में स्थित योनि के मध्य भाग में प्रवाहित रस है। जिससे शरीर को शक्ति प्राप्त होती है। यह इड़ा नाड़ी द्वारा बहता है। योगी प्राणायाम द्वारा इस अमृत को नष्ट होने से बचाता है। "बंकनालि" को नागिनी भी कहा गया है। यही वस्तुतः कुंडलिनी है जिसके जागृत होने से योगी को सिद्धि प्राप्त होती है।

उपर्युक्त पदांश उलटबाँसी का उदाहरण नहीं है। यहाँ जटिलता पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग में है जबकि उलटबाँसी में पारिभाषिक शब्द की जटिलता तो है ही, साथ ही उसके प्रयोग के ढंग में भी जटिलता है।

कबीरदास ने अपने विचारों को उलटबाँसियों के रूप में भी प्रकट किया है। जैसे एक पद में वे कहते हैं—"एक अचंभा देखिया, बिटिया जायौ बाप"। बेटी ने पिता उत्पन्न किया या पहले पुत्र उत्पन्न हुआ और बाद में माता या गुरु ने शिष्य के पाँव छुए"। ये सभी बातें असंभव हैं क्योंकि ये यथार्थ के विपरीत हैं। पुत्री अपना पिता उत्पन्न नहीं कर सकती या माँ से पहले उसका बेटा पैदा नहीं होगा। तब इन पंक्तियों का अर्थ क्या है? निश्चय ही इनका अर्थ वही नहीं है जो इनमें कहा गया है। यहाँ पुत्री, पिता, बेटा, माता, गुरु चेला सभी किसी और अर्थ को व्यक्त कर रहे हैं। उन्हें जानकर ही हम इन पंक्तियों के निहितार्थ को समझ सकते हैं। यहाँ पुत्री आत्मा, पिता परमात्मा, [illegible] और [illegible] इंद्रियों के प्रतीक हैं।

कबीर के काव्य में केवल उलटबाँसियाँ ही नहीं हैं। जहाँ उन्होंने उलटबाँसी का प्रयोग नहीं किया है, वहाँ भी उन्होंने अलंकारों और प्रतीकों का अत्यंत सुंदर प्रयोग किया है। कबीर का उद्देश्य काव्य चमत्कार उत्पन्न करना नहीं था। साम्यमूलक अलंकारों का उपयोग उन्होंने अपने भावों को अधिक प्रभावशाली रूप में व्यक्त करने के लिए किया है। उनके यहाँ विभिन्न परंपराओं से प्राप्त उपमानों और प्रतीकों का प्रयोग भी मिलता है और नये प्रयोग भी मिलते हैं। खास बात यह है कि कबीर के यहाँ जीवन के दैनंदिन अनुभवों से भी रूपक, उपमान और प्रतीक ग्रहण किये गए हैं। कबीरदास को भले ही काव्यशास्त्र का ज्ञान न रहा हो, लेकिन उनका काव्य किसी काव्यशास्त्र का मोहताज नहीं है।

4.8 कबीर काव्य का मूल्यांकन

कबीरदास भक्तिकाव्य की निर्गुणधारा के प्रतिनिधि कवि थे। उन्होंने रामानंद से "रामनाम" का मन्त्र लिया था। यह "राम" का नाम कबीर के लिए वही नहीं था जो तुलसीदास या अन्य सगुण कवियों के लिए था। कबीर के राम निर्गुण और निराकार ब्रह्म थे। कबीर ने धर्म के बाह्याचार रूप को पूरी तरह अस्वीकार कर दिया। उन्होंने वेद, कुरान, नमाज, प्रार्थना, हज, तीरथ, व्रत; रोजा सभी को अस्वीकार करते हुए केवल ईश्वर के प्रति गहरी अनुरक्ति को ही आवश्यक माना। कबीर ने केवल धर्म के बाह्याचारों का ही विरोध नहीं किया बल्कि सामाजिक भेदभाव और ऊँच-नीच को भी अस्वीकार कर दिया।

कबीर ने जातिप्रथा के विरुद्ध आवाज उठाई। उन्होंने ब्राह्मण और शूद्र के बीच भेदभाव की निंदा की। वे हिन्दू और मुसलमान के भेद को नहीं मानते थे। तिलक, मूंडन, सुन्नत, जैसे बाह्य संस्कारों को अविवेकपूर्ण मानते थे। कबीर को इनमें न तर्क नजर आता था, न धर्म। उनकी दृष्टि में यह अज्ञान था। माया थी। कबीर ने इनके विरुद्ध आवाज उठाई। यह कोई आसान काम नहीं था। कबीर ने जिन मान्यताओं का विरोध किया था उन्हें राज्य और समाज के उच्च वर्गों का संरक्षण प्राप्त था। कबीर को मालूम था कि उनका रास्ता कठिनाइयों और खतरों से भरा है। इसीलिए उन्होंने कहा था :

कबीरा खड़ा बाजार में लिए लुकाठी हाथ
जो घर जारे आपना चले हमारे साथ।।

कबीरदास का विद्रोही और फक्कड़ व्यक्तित्व अनायास ही नहीं बन गया था। उन्होंने अपना हृदय और अपनी आँखें खुली रखी थीं। उन्होंने ईश्वर पर विश्वास किया था, लेकिन अपनी बुद्धि और विवेक को त्यागकर नहीं। उनके मन में एक संवेदनशील हृदय था। वह समाज की दशा देखकर रोता था।

सुखिया सब संसार, खावै और सोवै।
दुखिया दास कबीर, जागे और रोवे।।

कबीरदास ने अपना व्यक्तित्व ऐसा अवश्य बना लिया जो दूसरों से बिल्कुल अलग था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उनके व्यक्तित्व की अद्वितीयता को व्यक्त करते हुए लिखा है : "वे मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे, हिन्दू होकर भी हिन्दू नहीं थे, वे साधु होकर भी साधु नहीं थे, वे वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे। योगी होकर भी योगी नहीं थे। वे कुछ भगवान् की ओर से ही सबसे न्यारे बनाकर भेजे गये थे। वे भगवान की नृसिंहावतार की मानव प्रतिमूर्ति थे। नृसिंह की भांति वे नाना असंभव समझी जाने वाली परिस्थितियों के मिलनबिंदु पर अवतीर्ण हुए थे। जहाँ से एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर मुसलमानत्व, जहाँ एक ओर ज्ञान निकल जाता है, दूसरी ओर अशिक्षा, जहाँ पर एक ओर योगमार्ग निकल जाता है। दूसरी ओर भक्तिमार्ग, जहाँ से एक तरफ निर्गुण भावना निकल जाती है दूसरी ओर सगुण साधना – उसी प्रशस्त चौरास्ते पर वे खड़े थे। वे दोनों ओर देख सकते थे और परस्पर विरुद्ध दिशा में गए हुए मार्गों के गुण-दोष उन्हें स्पष्ट दिखाई दे जाते थे।" (कबीर, पृ. 189)।

कई अर्थों में कबीर अपने समय से आगे थे। आज भी हम जिन मानव सत्यों को पहचान सके हैं और उन्हें मानव-मूल्यों के रूप में स्वीकार कर चुके हैं, उन्हें कबीर ने नितांत विरोधी परिस्थितियों में खोज लिया था। कबीर के समय की सीमा भी उनमें प्रतिबिंबित हुई है जैसे नारी के संबंध में उनका दृष्टिकोण। कबीर ने एक ऐसे मानव धर्म की स्थापना करने का प्रयास किया जिसकी सत्यता उनकी मृत्यु के कई शताब्दियों बाद पहचानी गयी। उन्होंने धर्म, जाति, संप्रदाय

वर्ण सभी के बंधन छिन्न-भिन्न कर डाले। उन्होंने स्वर्ग और नरक का डर उखाड़ फेंका। जो आदमी जिंदगी भर काशी में रहा और मरने के समय केवल इसलिए मगहर चला गया क्योंकि मगहर में मरने वाला नरक जाता है, उसके साहस और चुनौती को समझना आज भी सरल नहीं है। जब वे कहते है "जो कासी तन तजै कबीरा, तौ रामहि कहाँ निहोरा रे।" तो वे सिर्फ राम को ही चुनौती नहीं दे रहे होते हैं बल्कि सारे धार्मिक कर्मकांडों के खोखलेपन को भी उजागर कर डालते हैं। जैसे वे पूछ रहे हों कि अगर स्वर्ग और नरक है तो क्या कबीर जैसा व्यक्ति भी नरक में जायेगा, सिर्फ इसलिए क्योंकि वह मगहर में प्राण तज रहा है। ऐसे समय जब हम कबीर की पूरी शिक्षा को सामने रखते हैं तो हम समझ पाते हैं कि कबीर केवल वाग्वीर ही नहीं थे, कर्मवीर भी थे। उन्होंने बाहरी सत्ता को ही चुनौती नहीं दी, अपने संस्कारों को भी चुनौती दी थी।

कबीर के काव्य के महत्व को हम आज कहीं अधिक समझ सकते हैं। धर्म के नाम पर हमारे देश में सांप्रदायिकता का जो दावानल फैला हुआ है, उससे हमारा देश जल रहा है। धर्म, संप्रदाय, जाति और वर्ण के नाम पर लोगों में कबीर के समय से कहीं अधिक भेदभाव और घृणा है। इस वैज्ञानिक युग में भी लोग अंधविश्वासों और कर्मकांडों के पीछे भाग रहे हैं। ऐसे समय इस देश को सचमुच एक कबीर की जरूरत है। एक ऐसे क्रांतिकारी की जो हमें यह एहसास करा सके कि इस दुनिया में कुछ भी सत्य नहीं है सिवाय प्रेम के। कबीर की जरूरत का एहसास ही कबीर काव्य की प्रासंगिकता का सबसे बड़ा प्रमाण है।

बोध प्रश्न

10 कबीरदास के मत में और अद्वैतवाद के मत में क्या समानता है? अपना उत्तर लगभग तीन पंक्तियों में दीजिए।

....

....

....

11 कबीर को समाज सुधारक क्यों कहा जाता है? लगभग 4-5 पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

अभ्यास

4 कबीर काव्य की भाषा पर लगभग 100 शब्दों में एक टिप्पणी लिखिए?

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

5 सांप्रदायिकता की समस्या के संदर्भ में कबीर काव्य की प्रासंगिकता पर अपने विचार लगभग 100 शब्दों में प्रस्तुत कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

4.9 संदर्भ सहित व्याख्या

आपने कबीर काव्य का अब तक जो अध्ययन किया है, उससे उनके काव्य की विशेषताओं को भलीभाँति समझ गये होंगे। कबीर काव्य के उपर्युक्त विवेचन के साथ हमने कबीर की रचनाओं के कुछ उदाहरण भी वाचन के लिए दिए हैं। इन रचनाओं में प्रयुक्त कठिन शब्दों के अर्थ भी साथ ही दे दिये गये हैं। फिर भी, कुछ रचनाओं को समझने में कठिनाई आ सकती है। आप ध्यान से दोबारा इकाई को पढ़िए आपको कबीर की रचनाओं को समझने में काफी मदद मिलेगी।

हम यहाँ कबीर के एक पद और एक साखी की संदर्भ सहित व्याख्या प्रस्तुत कर रहे हैं। आप इन्हें ध्यान से पढ़िए और अन्य पदों और साखियों की व्याख्या स्वयं करने का प्रयास कीजिए।

पद

अवधू मेरे मन मतिवारा।
उनमनि चढ़्या मगन रस पीवै, त्रिभुवन भया उजियारा।।
गुड़ करि ग्यान ध्यान कर महुवा, भव भाठी करि भारा।
सुषमन नारी सहजि समानी, पीवै पीवनहारा।।
दोइ पुड़ जोड़ि चिगाइ भाठी, चुया महारस भारी।
काम क्रोध दोई किया बलीता, छूटि गई संसारी।।
सुनि मंडल मैं मंदला बाजै, तहाँ मेरा मन नाचै।
गुर प्रसादि अमृत फल पाया, सहजि सुषमना काछै।।
कहै कबीर भवबंधन छूटै, जोतिही जोति समाना।।

कबीरदास का यह पद बताता है कि आंतरिक ज्ञान से ही ईश्वर की प्राप्ति का पूर्ण आनंद पाया जा सकता है। कबीरदास इसके लिए मदिरा (शराब) बनाने की विधि का रूपक इस्तेमाल करते हैं हठयोग से संबंधित पारिभाषिक शब्दों का भी प्रयोग करते हैं। इस पद के अर्थ को समझने के लिए यह जरूरी है कि हम मदिरा के रूपक को पहचानें। दूसरे, हठयोग से संबंधित पारिभाषिक शब्दों के अर्थों से भी परिचित हों। तीसरे, हमें यह भी जानना चाहिए कि आत्मा और परमात्मा के संबंध में कबीरदास के क्या विचार हैं।

व्याख्या के पूर्व संदर्भ लिखिए। संदर्भ में कवि का नाम, पुस्तक का नाम (अगर मालूम हो) तथा रचना के विषय का उल्लेख किया जाता है। उपर्युक्त पद का संदर्भ देखिए।

संदर्भ : उपर्युक्त पद कबीरदास द्वारा रचित है। इस पद में कबीर ने बताया है कि ज्ञान और ध्यान के द्वारा सहज रूप से भगवान का जो परिचय प्राप्त होता है वही सच्चा सुख है। आंतरिक ज्ञान से भगवान की प्राप्ति का आनंद मिलता है।

(संदर्भ के बाद "पद" की व्याख्या कीजिए। व्याख्या के लिए केवल शाब्दिक अर्थ पर्याप्त नहीं है। पूरे पद में निहित कवि के भावों को समझने का प्रयास कीजिए और उसी के अनुरूप व्याख्या कीजिए)।

व्याख्या : कबीरदास कहते हैं कि हे अवधूत! मेरा मन मतवाला हो गया है। मेरा मन परमात्मा की ओर उन्मुख होकर शून्य चक्र से प्राप्त आनंद का पान कर रहा है। मैं ऐसी मुक्त अवस्था में पहुँच गया हूँ कि सारी सृष्टि में प्रकाश व्याप्त हो गया है।

मैंने इस मदिरा को बनाने के लिए ज्ञान रूपी गुड़ और ध्यान रूपी महुआ का प्रयोग किया है। संसार रूपी भट्टी में इन्हें गर्म कर मैंने इस आनंद की मदिरा चुआई है। सुषुम्ना नाड़ी रूपी नारी सहज में समाकर इस रस को पिला रही है और पीने वाला मस्त होकर पी रहा है। दोनों लोक रूपी दो पुटों को जोड़कर यह महारस चुआया गया है। इस भट्टी को जलाने के लिए काम और

क्रोधरूपी पलीतों का प्रयोग किया गया है। इसे पीने से संसार के बंधन छूट जाते हैं। शून्य मंडल में मादल बज रहा है अर्थात् आत्मा आनंद का अनुभव कर रही है और मन मतवाला होकर नाच रहा है। गुरु के प्रसाद अर्थात् उनकी कृपा से ही मैंने इस अमृतरूपी फल को प्राप्त किया है। मुझे सहज समाधि की अवस्था प्राप्त हो गई है जिससे "पूर्ण" मिलता है। पूरे के मिलने से सुख उत्पन्न होता है। तपस्या अर्थात् साधना का ताप दूर होता है, कबीरदास कहते हैं कि इससे भवबंधन छूट जाता है और आत्मा रूपी ज्योति परमात्मा रूपी ज्योति में लीन हो जाती है।

(पद के भावार्थ के बाद उस पद के काव्य सौंदर्य, भाषा अथवा कथ्य के बारे में उल्लेखनीय बात हो तो अवश्य लिखिए। इसे "विशेष" शीर्षक से लिख सकते हैं।)

विशेष : 1 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार इस पद में कबीर ने बताया है कि "ज्ञान और ध्यान के द्वारा ही सहज भगवान् का जो परिचय मिलता है वही वास्तविक सुख का कारण होता है। कृच्छ्र तपों से केवल ताप ही बढ़ता है। अंतर के ज्ञान से ही भगवत्-प्राप्ति का परिपूर्ण आनंद मिलता है और परम ज्योति में आत्मज्योति मिल जाती है।"

2 अपने भाव को समझाने के लिए कबीर ने मदिरा बनाने के रूपक का प्रयोग किया है। चूंकि इसमें रूपक के सभी अंगों का इस्तेमाल हुआ है, इसलिए इसे हम सांगरूपक कहेंगे।

3 इस पद में हठयोग की साधना से संबंधित पारिभाषिक शब्दों जैसे गगन सुषुम्ना नाड़ी, शून्य मंडल, सहज, अमृत आदि का इस्तेमाल किया गया है।

इसके बाद हम निम्नलिखित साखी की संदर्भ सहित व्याख्या करेंगे।

साखी

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाँहि।
सब अँधियारा मिटि गया, जब दीपक देख्या माँहि।।

संदर्भ : उपर्युक्त "साखी" कबीरदास द्वारा रचित है। इसमें कबीरदास ने आत्मज्ञान के बाद की स्थिति का वर्णन किया गया है।

व्याख्या : कबीरदास कहते हैं कि जब तक मुझे अपनी स्वतंत्र सत्ता का बोध था अर्थात् जब मैं अपने को ईश्वर से अलग समझता था, तब वस्तुतः मैं ईश्वर को नहीं पहचान पाया था। लेकिन अब जब मैंने अपने अंदर की ज्योति को अर्थात् आत्मज्ञान के दर्शन कर लिये हैं तब अज्ञान रूपी अंधकार भी समाप्त हो गया है। अब मेरे लिए सिर्फ ईश्वर ही सत्य है, मैं अपने आप को ईश्वर में लीन कर चुका हूँ। मेरी स्वतंत्र सत्ता समाप्त हो गई है।

विशेष : 1 कबीरदास का यह पद रहस्यवाद की उस स्थिति को व्यक्त करता है जब आत्मा परमात्मा से एकाकार हो जाती है और अपनी स्वतंत्र सत्ता के बोध को त्याग देती है।

2 इस साखी में दोहा छंद का प्रयोग हुआ है।

अब हम आपको अभ्यास के लिए एक पद और एक साखी दे रहे हैं. आप स्वयं व्याख्या करने का प्रयास कीजिए। अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइए। आप अपने उत्तर और इकाई में दिए गये उत्तर के भावार्थ को मिलाइए, न कि भाषा को।

अभ्यास

6 निम्नलिखित पद की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।

संतों भाई आइ ग्यान की आंधी रे।
भ्रम की टाटी सबै उडाणी माया रहै न बांधी।।
हिति चत की द्वै थूनी गिरानी, मोह बलीडा तूटा।
त्रिस्नां छानि परी धर ऊपर, कुबधि का भांडा फूटा।।
जोग जुगति करि संतौ बांधी, निरचू चुवै न पांणी।
कूड़ कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जांणी।।
आंधी पीछै जौ जल बूठा, प्रेम हरी जन भीना।
कहै कबीर भान क प्रगटें, उदित भया तम षीना।।

संदर्भ :

....

....

....

....

व्याख्या :

....

विशेष :

....

साखी

यहु तन जालौ मसि करौं, लिखौं राम का नाउँ।
लेखणि करूँ करंक की, लिखि लिखि राम पठाऊँ।।

संदर्भ :

....

व्याख्या :

....

विशेष :

....

4.10 सारांश

- कबीरदास जाति के जुलाहे थे और मुस्लिम परिवार में उनका पालन-पोषण हुआ था। वे अशिक्षित थे। परन्तु जीवन के अनुभवों से उन्होंने बहुत कुछ सीखा था। उनके रचे पदों को

सबद और रमैनी। अब आप कबीर के रचना व्यक्तित्व का परिचय दे सकते हैं।

- कबीर निर्गुण ईश्वर में विश्वास करते थे। उन्होंने अवतारवाद का खंडन किया और पुस्तकीय ज्ञान (शास्त्र ज्ञान) को सर्वोपरि नहीं माना। अब आप कबीर के विचारों की व्याख्या कर सकते हैं।
- कबीरदास धार्मिक कर्मकांडों और मिथ्याचारों में विश्वास नहीं करते थे। उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के धर्म से संबंधित मिथ्याचारों की कड़ी आलोचना की। कबीरदास वर्णव्यवस्था और जातिप्रथा के भी विरुद्ध थे। वे सांप्रदायिक भेदभाव को भी उचित नहीं समझते थे। नारी संबंधी उनका दृष्टिकोण परंपरागत था। अब आप कबीर काव्य के सामाजिक पक्ष की विशेषताएँ बता सकते हैं।
- कबीर मूलतः भक्त थे। वे ईश्वर के प्रति गहरी अनुरक्ति (प्रेम) को ही भक्ति के लिए पर्याप्त समझते थे। राम का नाम ही उनकी भक्ति का मूल मंत्र था। यह मूल मंत्र उन्हें गुरु से मिला था। इसीलिए उनके यहाँ गुरु का विशेष स्थान है। अब आप कबीर की भक्ति भावना का वर्णन कर सकते हैं।
- कबीर रहस्यवादी कवि थे। उनका रहस्यावाद भावात्मक भी है और साधनात्मक भी। कबीर ने हठयोग की साधना का भी काव्य में इस्तेमाल किया है। अब आप कबीर के रहस्यवाद की विशेषताएँ बता सकते हैं।
- कबीर का भाषा पर जबर्दस्त अधिकार था। वे अपने भावों और विचारों के अनुकूल भाषा को ढाल लेते थे। अपनी भक्ति भावना के लिए वे रूपकों और प्रतीकों का भी प्रयोग करते हैं। उनके काव्य में उलटवाँसी का भी प्रयोग हुआ है। कबीर ने केवल मुक्तकों की रचना की है। अब आप कबीर के काव्य की भाषा और शैली की विशेषताएँ बता सकते हैं।
- कबीर महान् समाज सुधारक थे, क्रांतिकारी दृष्टा थे, हिन्दू मुस्लिम एकता के पक्षधर थे, सहृदय भक्त थे। उनके काव्य का महत्व आज भी कम नहीं हुआ है। सांप्रदायिकता और जातिप्रथा के विरुद्ध संघर्ष में हमें कबीर जैसे व्यक्तित्व की ही आवश्यकता है। अब आप कबीर काव्य के महत्व और प्रासंगिकता का विवेचन कर सकते हैं।

4.11 शब्दावली

दंतकथा : किसी व्यक्ति, स्थान आदि के बारे में जनता में प्रचलित कहानी। दंतकथाओं के वास्तविक होने का कोई प्रमाण नहीं होता।

जुलाहा : कपड़ा बुनने वालों को जुलाहा कहा जाता है। जुलाहों का बड़ा हिस्सा मुसलमान है।

बहुश्रुत : जिसने अनेक ग्रंथों और ज्ञान की बातें सुनी हों।

कतेब : किताब, कबीर साहब का अर्थ कुरान से है।

यज्ञोपवीत संस्कार : यज्ञोपवीत का अर्थ है यज्ञ द्वारा संस्कारित किया हुआ उपवीत (जनेऊ) यज्ञोपवीत संस्कार जनेऊ पहनाने के संस्कार को कहते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णों का यज्ञोपवीत संस्कार होने को द्विज (दूसरा जन्म) होना कहते हैं। हिन्दू शास्त्रों में शूद्रों को यज्ञोपवीत संस्कार का निषेध किया गया है।

पैगंबर : मनुष्यों के पास ईश्वर का संदेश पहुँचाने वाला ईश्वर का दूत।

अजर : जर रहित अर्थात् जो हमेशा जवान रहे। यहाँ परब्रह्म से तात्पर्य है जो न जवान होता है न वृद्ध।

अनहद नाद : हठयोग के अनुसार कुंडलिनी जब जाग्रत होकर ऊपर को उठती है तो उससे स्फोट होता है जिसे नाद कहते हैं। नाद अखिल ब्रह्मांड में व्याप्त अनाहत (अनहद) नाद का व्यष्टि रूप है अर्थात् जो व्यष्टि रूप में नाद है, वही पूर्ण सृष्टि में अनाहत नाद के रूप में परिव्याप्त है।

प्रशस्त : लंबा चौड़ा या विस्तृत।

एकात्मकता : अभिन्नता या एक होने का भाव।

वाग्वीर : बातों का धनी, जो बहुत बढ़चढ़कर बोलता हो।

दावानल : वन की आग जो बाँस की रगड़ आदि से अपने आप लग जाती है और तेजी से फैल जाती है।

4.12 उपयोगी पुस्तकें

शुक्ल, पं. रामचंद्र : *हिन्दी साहित्य का इतिहास*, नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस।
श्याम सुंदर दास (संपादक) : *कबीर ग्रंथावली*, नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस।
द्विवेदी, हजारी प्रसाद : *कबीर*, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
द्विवेदी, हजारी प्रसाद : *हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास*, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
द्विवेदी हजारी प्रसाद : *हिन्दी साहित्य की भूमिका*, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
मिश्र विश्वनाथ प्रसाद : *हिन्दी साहित्य का अतीत (भाग-1)*, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
चतुर्वेदी परशुराम : *कबीर साहित्य चिंतामणि*, भारती भंडार, इलाहाबाद।
स्नातक, विजयेंद्र (संपादक) : *कबीर*, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली।
मिश्र, शिवकुमार : *भक्ति काव्य और लोक जीवन*, पीपुल्स लिटरेसी, नयी दिल्ली।

4.13 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1 i) साखी ii) सबद iii) रमैनी

2 साखी संस्कृत के साक्षी शब्द का तद्भव रूप है। कबीर ने अपनी उक्तियों का शीर्षक साखी इसलिए दिया क्योंकि उन्होंने इसमें वर्णित तथ्यों का स्वयं साक्षात्कार किया है। साखी के लिए दोहा छंद का प्रयोग किया गया है।

3 ग.

4 कबीरदास का विचार था कि शास्त्र-ज्ञान से धर्म के वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचाना जा सकता। शास्त्र-ज्ञान लोगों को मिथ्या आचरणों और कुरीतियों में बाँध देता है और ईश्वर के वास्तविक रूप से दूर कर देता है। शास्त्र ज्ञान से ज्यादा महत्वपूर्ण है प्रेम। प्रेम को पहचानकर ही व्यक्ति सच्चा ज्ञानी बनता है।

5 कबीरदास निर्गुण निराकार ईश्वर में विश्वास करते थे। उनका विचार था कि ईश्वर सारी सृष्टि में व्याप्त है। लेकिन वह निराकार है इसलिए उसकी मूर्ति बनाकर पूजना मिथ्या कर्मकांड है क्योंकि तब यह मान लिया जाता है कि ईश्वर केवल उस मूर्ति में ही है।

6 i) हाँ ii) नहीं iii) नहीं iv) हाँ v) हाँ

7 कबीरदास ने सतगुरु के महत्व को इसलिए स्वीकार किया क्योंकि गुरु ने ही उन्हें रामनाम का मंत्र दिया था। गुरु ने ही उन्हें मूर्तिपूजा जैसे धार्मिक आडंबर से मुक्ति दिलाई थी और गुरु की कृपा से ही उन्होंने ईश्वर के सच्चे स्वरूप का परिचय पाया था।

8 i) कबीरदास ने ईश्वर को अपना पति और स्वयं को उनकी बहुरिया मानकर भक्ति की।
ii) उन्होंने ईश्वर के प्रति अपने गहरे प्रेम को व्यक्त करने के लिए विरह भावना का सहारा लिया।
iii) कबीर ने किसी कामना से प्रेरित होकर प्रेम (भक्ति) नहीं किया अर्थात् उनका प्रेम अहैतुक प्रेम था।
iv) प्रेम के आगे उन्होंने बाह्य कर्मकांड को महत्व नहीं दिया।

9 कबीरदास अपने को विरहणी नायिका के रूप में देखते हुए कहते हैं कि मैं पथ में खड़ी अपने प्रिय का इंतजार कर रही हूँ। इंतजार करते-करते मेरी आँखों में झाँई पड़ गयी है और राम पुकारते-पुकारते जीभ पर छाले पड़ गये हैं फिर भी प्रिय नहीं आए हैं। वह कहती हैं कि हे प्रिय या तो तुम आकर दर्शन दो नहीं तो मुझे मृत्यु दे दो ताकि इस कष्ट से तो मुक्ति मिले।

10 कबीरदास भी केवल निर्गुण परब्रह्म की सत्ता को ही सत्य मानते थे। वे भी माया की सत्ता में विश्वास करते थे और यह मानते थे कि माया के कारण ही जीवात्मा अज्ञान के पाश में फंसी रहती है।

11 कबीर ने समाज में व्याप्त कुरीतियों और अंधविश्वासों का विरोध किया था। उन्होंने उन बुराइयों पर प्रहार किया जो मनुष्य-मनुष्य में भेद करती है। जैसे उन्होंने जातिप्रथा का विरोध किया। उन्होंने यह नहीं माना कि ब्राह्मण जन्म से श्रेष्ठ होता है और शूद्र निम्न। इसी प्रकार वे हिन्दू मुसलमान में भी कोई फर्क नहीं करते थे।

अभ्यास

1 कबीरदास ईश्वर को निर्गुण और निराकार मानते थे। उनका विचार था कि ईश्वर सभी तरह के गुणों से परे है। उसका न कोई रूप है न आकार। उसकी मूर्ति बनाकर पूजना भी गलत है। कबीरदास यह भी मानते हैं कि भगवान अवतार नहीं लेता। इसलिए दशरथ पुत्र राम या देवकीनंदन कृष्ण को ईश्वर का अवतार मानना मिथ्या है। ईश्वर तो सारी सृष्टि में व्याप्त है तथा सारी सृष्टि ईश्वर में व्याप्त है। वह इनसे परे भी है। ईश्वर हमारे अंदर भी है और बाहर भी। उस ईश्वर को राम, रहीम, अल्लाह, माधव, हरी, खुदा कुछ भी कहा जा सकता है। ईश्वर और जगत में कोई भेद नहीं है। उनमें भेद माया के कारण है। माया का पर्दा जब हट जाता है तो ईश्वर और जगत का अंतर भी मिट जाता है। जब मनुष्य ईश्वर के वास्तविक रूप से परिचित हो जाता है तो जीव और ईश्वर एक हो जाते हैं।

2 कबीरदास जातिप्रथा में विश्वास नहीं करते थे। वे यह मानने को तैयार नहीं थे कि मनुष्य जन्म से ही छोटा या बड़ा होता है। वे इस बात में भी विश्वास नहीं करते थे कि भगवान ने ही मनुष्य को जन्म से ब्राह्मण और जन्म से शूद्र बनाया है। उनका विश्वास है कि प्रत्येक मनुष्य उसी एक ईश्वर की संतान है। वे छुआछूत में भी विश्वास नहीं करते थे। वे जाति भेद, छुआछूत आदि को ऐसा बंधन मानते थे, जो मनुष्य को ईश्वर के वास्तविक रूप से दूर हटाते हैं। कबीरदास किसी कार्य को छोटा या बड़ा नहीं मानते थे। उन्होंने अपने जुलाहा होने को कभी हीन दृष्टि से नहीं देखा।

3 कबीरदास ने विभिन्न धर्मों में प्रचलित कर्मकांडों और मिथ्याचारों का विरोध इसलिए नहीं किया था कि वे उन धर्मों को हीन बताना चाहते थे। उनका विचार था कि ये कर्मकांड मनुष्य को ईश्वर के वास्तविक रूप से विमुख करते हैं। इनमें उन्हें किसी सत्य के दर्शन नहीं हुए।

4 उपभाग 4.7.1 देखिए।

5 सांप्रदायिकता आज के भारत की ज्वलंत समस्या है। आये दिन हिन्दुस्तान के किसी-न-किसी भाग में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच दंगा फसाद होता है। इन दंगों में निर्दोष लोग मारे जाते हैं। भारत में कई धर्मों और जातियों के लोग रहते हैं। इसलिए यह जरूरी है कि लोगों में एकता और भाईचारा बना रहे। जब तक हम अपने को इंसान के रूप में न सोचकर हिन्दू और मुसलमान के रूप में सोचेंगे तब तक हमारे बीच वास्तविक एकता स्थापित नहीं हो सकती। कबीरदास अपने काव्य में इसी बात पर बल देते हैं। मनुष्य न हिन्दू होता है न मुसलमान। अगर वह ऐसा होता तो भगवान उसे जन्म से ही हिन्दू या मुसलमान बना देते। हर व्यक्ति सिर्फ मानव के रूप में जन्म लेता है। हिन्दू और मुसलमान तो वह बाद में बनाया जाता है। कबीरदास का यह भी मानना है कि ईश्वर एक है और हिन्दू और मुसलमान कबीर का दृष्टिकोण स्वीकार करके हम सांप्रदायिक विद्वेष से ऊपर उठ सकते हैं।

6 **संदर्भ** : यह पद कबीरदास द्वारा रचित है। इसमें उन्होंने ज्ञान के उदित होने पर भ्रम और माया के समाप्त होने का वर्णन किया है।

व्याख्या : कबीरदास जी कहते हैं कि हे संतों ज्ञान रूपी आंधी आ गयी है जिससे भ्रम की सभी टट्टियाँ (पल्ले) उड़ गयी हैं। इस भ्रम से जो माया बंधी थी, वह भी उसके साथ उड़ गयी है। अर्थात् ज्ञान के उदित होने से भ्रम और माया का लोप हो गया है।

ज्ञान की आँधी के आने से हित और चित्त रूपी खंभे गिर गये हैं और मोह की बल्ली भी टूट गयी है। परिणाम यह हुआ है कि तृष्णा मर गयी है और तृष्णा के मरने से कुबुद्धि का भी नाश हो गया है। संतों ने इस अज्ञान की टाटी को बाँधा था। इससे राम रूपी प्रेम अंदर नहीं जा सकता था। लेकिन अब जब हरि की गति को जान गया हूँ इस ज्ञान से शरीर में से कपट रूपी कूड़ा निकल गया है। ज्ञान की आँधी के बाद ईश्वर के प्रेम रूपी जल की वर्षा हुई, उसने मुझे सराबोर कर दिया है। कबीरदास कहते हैं सूर्य (ज्ञान) उदित होने से अंधकार (अज्ञान) का नाश हो गया है।

विशेष : आँधी और झोंपड़ी के रूपक द्वारा ज्ञान के महत्व का सुंदर प्रतिपादन किया गया है।

7 **संदर्भ** : उपर्युक्त साखी संत कबीरदास द्वारा रचित है। इसमें कबीरदास जी ने ईश्वर से मिलन की तीव्र इच्छा को व्यक्त किया है।

व्याख्या : कबीरदास जी कहते हैं कि राम तक अपना संदेश पहुँचाने के लिए इस शरीर को (विरह में) जलाकर उसकी स्याही बना लूँ फिर अपनी हड्डियों की कलम बनाऊँ और तब

राम का नाम लिख-लिख राम के पास भेजो अर्थात् राम से मिलने की इच्छा के संदेश को पहुँचाने के लिए मैं अपने शरीर का त्याग करने को भी तैयार हूँ।

विशेष : 1 इस साखी में कबीरदास ने तीव्र भक्ति भावना और ईश्वर से मिलने की गहरी चाह को व्यक्त किया है।

2 कबीर ने पत्र लिखने के रूपक का अत्यंत सुंदर प्रयोग किया है।

इकाई 5 जायसी का काव्य

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 जायसी का रचना व्यक्तित्व
5.2.1 जायसी का जीवन परिचय
5.2.2 जायसी की रचनाएँ
5.3. सूफी मत
5.4 पद्मावत : वस्तु वर्णन
5.4.1 पद्मावत की कथावस्तु
5.4.2 पद्मावत की ऐतिहासिकता
5.5 पद्मावत में प्रेम-तत्व
5.5.1 पद्मावत की प्रेम-पद्धति
5.5.2 रूप वर्णन
5.5.3 वियोग वर्णन
5.6 जायसी का रहस्यवाद
5.6.1 भावात्मक रहस्यवाद
5.6.2 साधनात्मक रहस्यवाद
5.7 पद्मावत का शिल्प पक्ष
5.7.1 प्रबंध काव्य के रूप में पद्मावत
5.7.2 काव्य भाषा
5.7.3 छंद एवं अलंकार
5.8 जायसी काव्य का मूल्यांकन
5.9 संदर्भ सहित व्याख्या
5.10 सारांश
5.11 शब्दावली
5.12 उपयोगी पुस्तकें
5.13 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी के काव्य का अध्ययन करेंगे। यह दूसरे खंड की तीसरी इकाई और इस पाठयक्रम की पाँचवी इकाई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- जायसी के जीवन और उनकी रचनाओं के बारे में बता सकेंगे;
- सूफी मत का विवेचन कर सकेंगे;
- 'पद्मावत' काव्य की कथावस्तु का वर्णन कर सकेंगे और उसकी विशेषताएँ बता सकेंगे;
- 'पद्मावत' काव्य में व्यक्त प्रेम तत्व की व्याख्या कर सकेंगे;
- जायसी के काव्य में व्यक्त रहस्यवाद का विश्लेषण कर सकेंगे;
- प्रबंध काव्य के रूप में "पद्मावत" की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- "पद्मावत" की भाषा और शिल्प संबंधी विशेषताएँ बता सकेंगे;
- जायसी के काव्य के महत्व का प्रतिपादन कर सकेंगे; और
- 'पद्मावत' के पठित पद्यांशों की व्याख्या कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी के काव्य का अध्ययन करेंगे। हमने इकाई 3 में बताया था कि जायसी निर्गुण काव्यधारा की प्रेममार्गी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। भक्ति आंदोलन में प्रेममार्गी शाखा का क्या महत्व है तथा सूफी मत ने भक्ति काव्य को किस रूप में और कहाँ तक प्रभावित किया है, इनसे आप इकाई 3 में परिचित हो चुके हैं। हमने इकाई 3 में बताया था कि सूफी कवियों ने लौकिक प्रेम कथाओं के द्वारा ईश्वरीय प्रेम की अभिव्यक्ति का

मार्ग अपनाया था। सूफी मत इस्लाम की एक उदार शाखा है, जिसमें ईश्वर की प्राप्ति प्रेम के द्वारा बतायी गयी है।

सूफी कवियों में भारतीय परंपराओं के प्रति गहरा लगाव था। उन्होंने अपने प्रबंध काव्यों के लिए लोक में प्रचलित प्रेम कथाओं को आधार बनाया। इन प्रबंध काव्यों की भाषा अवधी है, दोहा और चौपाई छंद का प्रयोग किया गया है और काव्य के वस्तु वर्णन और शिल्प पक्ष का अधिकांश भाग भारतीय परंपरा से लिया गया है। यह अवश्य है कि कुछ प्रभाव फारसी परंपरा का भी है। मुख्य बात यह है कि इन प्रबंध काव्यों में सूफी कवियों की भारतीय लोक जीवन के प्रति गहरी अनुरक्ति के दर्शन होते हैं।

सूफी कवियों ने भक्ति आंदोलन को कई दृष्टियों से समृद्ध किया। सूफियों की उदारता से हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए सामान्य भूमि तैयार करने में मदद मिली। दूसरे, सूफी मत ने भक्ति के लिए प्रेम की तीव्रता पर जो बल दिया, उससे भक्ति का भाव पक्ष समृद्ध हुआ। तीसरे, सूफी कवियों ने प्रबंध काव्य रचना की परंपरा को विकसित किया।

जासयी का "पद्मावत" कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण महाकाव्य है। प्रेममार्गी सूफी काव्यधारा के अंतर्गत परिगणित प्रबंध काव्यों में यह सर्वश्रेष्ठ है। इस महाकाव्य में जायसी ने उस युग की प्रसिद्ध प्रेमकथा को आधार बनाया है। जायसी का वस्तु वर्णन, विरह वर्णन, आध्यात्मिक संकेत, लोक जीवन की अभिव्यक्ति, भाषा का निर्वाह सभी कुछ अत्यंत प्रभावशाली और हृदयस्पर्शी है। हमने इस इकाई में अपने विवेचन का आधार "पद्मावत" को ही बनाया है। "पद्मावत" के अतिरिक्त भी उन्होंने कई ग्रंथों की रचना की है। "पद्मावत" के कुछ अंश इस इकाई में काव्य वाचन में वर्णित मुख्य कथ्य को उसके विवेचन के साथ ही प्रस्तुत किया गया है ताकि प्रस्तुत पद्यांशों के भावार्थ को समझने में कठिनाई न हो। "पद्मावत" के सभी अंश डा. वासुदेव शरण अग्रवाल द्वारा संपादित "पद्मावत" से लिए गए हैं।

5.2 जायसी का रचना व्यक्तित्व

मलिक मुहम्मद जायसी और अन्य सूफी कवियों के साहित्यिक अवदान पर टिप्पणी करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा था : "कुतुबन, जायसी आदि इन प्रेम कहानी के कवियों ने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए उन सामान्य जीवन दशाओं को सामने रखा जिनका मनुष्य मात्र के हृदय पर एक-सा प्रभाव दिखाई पड़ता है। हिन्दू हृदय और मुसलमान हृदय आमने सामने करके जनजीवन मिटाने वालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा। इन्होंने मुसलमान होकर हिन्दुओं की कहानियाँ हिन्दुओं की ही बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया। (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 71) जायसी एक ऐसे कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं जिन्हें हम सच्चे अर्थों में "लोक जीवन का गायक" कह सकते हैं। जायसी भक्त कवि थे। उनके काव्य में आध्यात्म भी है परंतु महत्वपूर्ण है भारतीय लोक मानस के साथ उनका गहरा लगाव। ऐसे महान कवि के जीवन के बारे में हमारी जानकारी बहुत कम है। उनके जीवन के बार में जो भी तथ्य उपलब्ध हैं वे उनकी रचनाओं में स्वयं जायसी द्वारा दिये गये हैं।

5.2.1 जायसी का जीवन परिचय

मलिक मुहम्मद जायसी का जन्म 900 हिजरी अर्थात् सन् 1494 ई. के लगभग माना गया है। जायसी उत्तर प्रदेश के जायस नामक स्थान के रहने वाले थे, इसलिए वे "जायसी" के नाम से प्रसिद्ध हुए। "मलिक" उनकी पारिवारिक उपाधि थी और "मुहम्मद" उनका नाम था। इस तरह जायसी का पूरा नाम मलिक मुहम्मद जायसी प्रसिद्ध हुआ। जायसी जायस के रहने वाले थे या बाहर से आकर जायस में बसे थे, यह स्पष्ट नहीं है। जायसी ने कहा है, "जायस नगर धरम अस्थानू। तहाँ आय कवि कीन्ह बसानू।" इस कथन से यह भी आभास होता है कि जायसी जायस के मूल वासी नहीं थे, कहीं बाहर से आकर बसे थे। जायसी प्रख्यात सूफी संत निजामुद्दीन औलिया की शिष्य परंपरा से थे और अपने समय में अत्यंत सम्मानित संत और फकीर माने जाते थे। जायसी देखने में सुंदर नहीं थे। उनकी एक आँख ज्योतिहीन थी और एक कान से सुनाई भी नहीं देता था लेकिन उनमें व्यवहार की निर्मलता और हृदयगत उदारता की कोई कमी नहीं थी। जायसी विवाहित थे या नहीं, कह सकना कठिन है। जायसी को गाजीपुर और भोजपुर के राजा जगद्देव का आश्रय मिला था, बाद में वे अमेठी के राजा के आश्रय में भी रहे। जायसी ने लंबी यात्राएँ की थीं तथा हिन्दू और मुसलमान संतों और फकीरों की सत्संग भी की।

जायसी ने हिन्दू धर्म और उसके विभिन्न मत-मतांतरों की जानकारी हासिल की। इसका प्रभाव उनके लेखन पर पड़ा। सन् 1542 ई. (हिजरी सन् 949) में जायसी का देहावसान हुआ।

5.2.2 जायसी की रचनाएँ

मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा रचित रचनाओं को संपादित कर प्रकाशित कराने का महत्वपूर्ण काम पं. रामचंद्र शुक्ल ने किया था। शुक्लजी के समय तक जायसी की तीन रचनाओं का पता चल चुका था। ''पद्मावत'', ''आखिरी कलाम'' और ''अखरावट'' का संपादन शुक्लजी ने किया था। बाद में श्री माता प्रसाद गुप्त ने जायसी की एक और रचना ''महरी बाईसी'' नाम से प्रकाशित कराई। इनके अतिरिक्त भी जायसी के नाम से निम्नलिखित ग्रंथों का उल्लेख मिलता है : सखरावत, चंपावत, चित्रावत, कहरवानामा (सुर्वानामा), कन्हावत, मोराई नामा, मुकहरानामा, होलीनामा आदि। ये सभी पुस्तकें जायसी द्वारा रचित हैं, यह विश्वासपूर्वक कहना कठिन है। जायसी की सभी पुस्तकें अभी प्रकाश में आई भी नहीं हैं। ''पद्मावत'', ''अखरावट'' और ''आखिरी कलाम'' ही ऐसी पुस्तकें हैं जो निर्विवाद रूप से जायसी द्वारा रचित मानी जाती हैं। हम यहाँ इन पुस्तकों का संक्षिप्त परिचय दे रहे हैं।

आखिरी कलाम : इस पुस्तक की रचना हिजरी सन् 936 अर्थात् 1530 ई. में हुई थी। जायसी ने स्वयं लिखा है ''नौ सौ बरस छतीस जो भये। तब एहि कथा के आखर कहे।'' इस पुस्तक में जायसी ने उस समय के बादशाह बाबर की प्रशंसा की है। बाबर ने सन् 1526 से 1530 ई. तक दिल्ली पर शासन किया था। इसलिए इस पुस्तक का रचनाकाल 1530 ई. मानना उचित ही है।

इस पुस्तक में जायसी ने सबसे पहले ईश्वर की स्तुति की है। इसके बाद अपने जन्म के समय आये भयंकर भूकंप का उल्लेख है। इसके आगे गुरु की वंदना, जायस नगर का वर्णन, बाबर की प्रशंसा आदि विषयों का वर्णन मिलता है। ग्रंथ का मुख्य विषय आखरत का वर्णन है इसे हम कयामत या प्रलय का वर्णन कह सकते हैं। यह इस्लामी परंपरा के अनुसार है यद्यपि इस पर हिन्दू विचारधारा का प्रभाव भी दिखाई देता है।

अखरावट : ''अखरावट'' की रचना कब हुई यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है। अनुमान किया जाता है कि इसकी रचना ''पद्मावत'' के बाद हुई होगी। पद्मावत की रचना 1520-1540 के बीच मानी जाती है। शुक्लजी के अनुसार ''अखरावट'' में वर्णमाला के एक-एक अक्षर को लेकर सिद्धांत संबंधी तत्वों से भरी चौपाइयाँ कही गई हैं। इस छोटी-सी पुस्तक में ईश्वर, सृष्टि, जीव, ईश्वर प्रेम आदि विषयों पर विचार प्रकट किये गये हैं।''

पद्मावत : जायसी जिस ग्रंथ के कारण लोक प्रसिद्ध हुए और जिसके कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उन्हें कबीर, सूर, तुलसी आदि के साथ परिगणित किया वह रचना ''पद्मावत'' है। ''पद्मावत'' में जायसी ने ग्रंथ का रचनाकाल इस प्रकार दिया है ''सन नौ सै सत्ताइस अहा। कथा अरंभ बैन कवि कहा'' इस पंक्ति का अर्थ शुक्लजी ने यों किया है ''पद्मावत की कथा के प्रारंभिक वचन कवि ने 927 हिजरी (सन् 1520 ई. के लगभग) कहे थे।'' इसी ग्रंथ में शाहेवक्त के रूप में जायसी ने शेरशाह का उल्लेख किया है। जबकि शेरशाह ने दिल्ली पर शासन 947 हिजरी अर्थात् 1540 के आसपास किया था। शुक्लजी का अनुमान है कि ''पद्मावत'' की रचना का आरंभ तो 1520 ई. के लगभग हुआ होगा लेकिन यह पूरा शेरशाह के समय में हुआ होगा। बहरहाल यह तय है कि 1540 ई. के लगभग यह रचना पूरी हो चुकी थी।

''पद्मावत'' प्रबंध काव्य है जिसमें चितौड़ के राजा रत्नसेन और सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती की प्रेम कथा कही गयी है। इस प्रबंध काव्य में दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन के साथ रत्नसेन के संघर्ष का उल्लेख है जो ऐतिहासिक तथ्य है परंतु यह प्रबंध काव्य मात्र इतिहास की घटनाओं पर आधारित नहीं है।

जायसी के उपर्युक्त तीनों ग्रंथ अवधी भाषा में लिखे गये हैं तथा इनमें दोहा-चौपाई छंदों का प्रयोग किया गया है। ''आखिरी कलाम'' और ''अखरावट'' महत्वपूर्ण रचनाएँ होते हुए भी मूलतः धार्मिक ग्रंथ हैं, आगे हमारे विवेचन में ''पद्मावत'' पर ही विचार होगा।

5.3 सूफी मत

मलिक मुहम्मद जायसी सूफी संत थे। सूफी मत इस्लाम धर्म की एक शाखा है जिसका उदय इस्लाम के अस्तित्व में आने के लगभग 250 वर्ष बाद हुआ। सूफी मत का भारत में आगमन

12वीं शताब्दी में माना जाता है। सूफी मत में धार्मिक कट्टरता और असहिष्णुता नहीं है।

"सूफी" शब्द की व्युत्पत्ति कैसे हुई, यह तय नहीं है। कुछ लोग सूफी शब्द को "सफ" से निकला मानते हैं जिसका अर्थ है पंक्ति। उनके अनुसार ईश्वर के प्रिय होने के कारण जो लोग कयामत के दिन सबसे पहली पंक्ति में खड़े होंगे, उन्हें सूफी कहते हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार मुहम्मद साहब द्वारा बनवाई हुई मस्जिद के सूफ अर्थात् चबूतरे पर सोकर जो फकीर अपनी रात गुजारते थे उन्हें सूफी कहा जाने लगा। एक मत यह भी है कि सूफी शब्द सूफ से बना है जिसका अर्थ है ऊन। जो साधक ऊन का चोगा पहनते थे, उन्हें सूफी कहते थे। कुछ के अनुसार "सूफी" ग्रीक शब्द सोफिया से बना है जिसका अर्थ है, ज्ञान अर्थात् जो ज्ञानी संत होते थे उन्हें सूफी कहते थे। इस प्रकार सूफी शब्द की अनेक व्याख्याएँ की गयी हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, "प्रारंभ में सूफी एक प्रकार के फकीर या दरवेश थे जो खुदा की राह पर अपना जीवन ले चलते थे, दीनता और नम्रता के साथ बड़ी फटी हालत में दिन बिताते थे, ऊन के कंबल लपेटे रहते थे, भूख-प्यास सहते थे और ईश्वर के प्रेम में लीन रहते थे।" ("जायसी ग्रंथावली" की भूमिका, पृ. 168) ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि सूफी शब्द की चाहे जो व्युत्पत्ति हो लेकिन यह शब्द उन मुस्लिम फकीरों के लिए इस्तेमाल होता था जो स्वयं सादगी और सरल जीवन में विश्वास करते थे और ईश्वर के प्रेम में लीन रहते थे।

सूफी मत यद्यपि इस्लाम का ही एक अंग है लेकिन ईश्वर संबंधी उनकी परिकल्पना इस्लाम के एकेश्वरवाद की अपेक्षा "अद्वैतवाद" के अधिक नजदीक है। एकेश्वरवाद में एक ईश्वर की सत्ता को सर्वोपरि और सर्वशक्तिमान माना जाता है जो इस सृष्टि का निर्माता, पालन कर्ता और संहारक तीनों है। इसके विपरीत अद्वैतवाद के अनुसार इस जगत में ही ब्रह्मा या ईश्वर सूक्ष्म रूप में व्याप्त है। यह सृष्टि उसी ईश्वर का अभिव्यक्त रूप है। अद्वैतवाद में सृष्टि और स्रष्टा का भेद नहीं है जबकि एकेश्वरवाद में सृष्टि और स्रष्टा अलग-अलग है।

सूफी मत में साधना की चार अवस्थाएँ बताई गयी हैं;

1 **शरीअत :** धर्म ग्रंथों के विधि-निषेध का पालन करना। यह साधना की पहली अवस्था है।

2 **तरीकत :** इस दूसरी अवस्था में साधक बाह्य कर्मकांड से ऊपर उठ जाता है और केवल हृदय की शुद्धता के बल पर ईश्वर का ध्यान करता है।

3 **हकीकत :** इस तीसरी अवस्था में साधक भक्ति के द्वारा सत्य का बोध कर लेता है। इस स्थिति में साधक "तत्व दृष्टि संपन्न और त्रिकालज्ञ" हो जाता है।

4 **मारफत :** यह सिद्धावस्था है। इसमें साधक की आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है। वह प्रेममय हो जाता है।

प्रेम तत्व सूफी मत का आधार है। सूफी साधक मानता है कि परमात्मा के प्रेम ने मुझे उन्मत्त बना दिया है। ईश्वर स्वयं प्रेम स्वरूप है। प्रेम तो गगन से ऊँचा है। वह ध्रुव नक्षत्र से भी ऊँचा है। जो प्रेम रूपी परमात्मा का भक्त नहीं हो सकता उसका जन्म व्यर्थ है। इस परमात्मा के दर्शन साधक हृदय में स्थित प्रेम ज्योति से कर सकता है। यह प्रेम ज्योति ही ईश्वर का सौंदर्य है। जायसी ने पद्मावती के रूप-सौंदर्य का जो वर्णन किया है, वह परमात्मा के नूर अथवा सौंदर्य का वर्णन है।

सूफी कवि दो प्रकार के प्रेम का वर्णन करते हैं। इश्क मज़ाज़ी और इश्क हकीकी। इश्क मज़ाज़ी लौकिक प्रेम है जो स्त्री और पुरुष के बीच होता है। यह काल्पनिक प्रेम है। ईश्वर और साधक के बीच जो प्रेम है, वही वास्तविक प्रेम है। इसीलिए उसे "इश्क हकीकी" कहा जाता है। सूफी कवि मानते हैं कि इश्क मज़ाज़ी द्वारा इश्क हकीकी को पाया जा सकता है। इसीलिए वे लौकिक प्रेम कथाओं को अपने काव्य का आधार बनाते हैं और उनके माध्यम से आध्यात्मिक विचारों को व्यक्त करते हैं। सूफी कवियों ने पुरुष को आत्मा का प्रतीक और प्रियतमा को परमात्मा का प्रतीक माना है। प्रेम ही प्रियतमा को प्राप्त करने का साधन है। लेकिन प्रियतमा के रूप का सच्चा ज्ञान गुरु की कृपा से प्राप्त होता है। प्रेमी को इस मार्ग की कठिनाइयों की चिंता किये बिना लगातार आगे बढ़ता जाता है। माया के कारण या शैतान की दखलंदाजी से भी इस मिलन में बाधाएँ उत्पन्न होती हैं, जिन्हें गुरु की सहायता से प्रेमी दूर हटाता है। सूफी काव्यों में गुरु, माया आदि का प्रवेश भारतीय प्रभाव कहे जा सकते हैं।

जायसी के काव्य पर सूफी मत का तो प्रभाव है ही, इसके अतिरिक्त भी कई अन्य प्रभाव देखे जा सकते हैं। जायसी पर बौद्धतंत्र साधना, नाथपंथ की योग साधना तथा अद्वैतवाद के ब्रह्म निरूपण

और मायावाद का भी प्रभाव देखा जा सकता है। जायसी को इन भारतीय मत-मतांतरों की पर्याप्त जानकारी थी और ये इस्लामी विचार तथा सूफी मत के साथ में घुल मिल गये हैं।

उदाहरण के लिए सिंहलद्वीप वर्णन खंड में सिंहलद्वीप का वर्णन करते हुए जायसी सूफी साधना की विभिन्न अवस्थाओं तथा हठयोग की साधना का वर्णन करने लगते हैं। इस प्रकार के कई प्रसंग "पद्मावत" में आते हैं जो भारतीय साधना पद्धतियों की उनकी जानकारी को तो प्रकट करते ही हैं बल्कि उनके उदार दृष्टिकोण का परिचय भी देते हैं।

5.4 पद्मावत : वस्तु वर्णन

जायसी का प्रसिद्ध रचना "पद्मावत" मसनवी शैली पर लिखा गया प्रबंध काव्य है। इसमें सर्गबद्धता नहीं है किंतु कथा वस्तु-वर्णनों एवं घटनाओं के आधार पर खंडों में विभाजित हैं जैसे सिंहलद्वीप वर्णन खंड, मानसरोदक खंड, देश यात्रा खंड, पद्मावती रूपचर्चा खंड आदि। इस प्रकार इसकी संपूर्ण कथा 58 सर्गों में विभक्त है। मसनवी शैली की इस कथा के आरम्भ में एकेश्वरवाद, शाहेवक्त की प्रशंसा, मुहम्मद साहब की स्तुति तथा अपने गुरुओं की वंदना की गयी है।

5.4.1 पद्मावत की कथावस्तु

जायसी ने "पद्मावत" के दूसरे खंड "सिंहलद्वीप वर्णन खंड" से रत्नसेन और पद्मावती की कथा का आरंभ किया है। कवि सिंहलद्वीप, उसके राजा गंधर्वसेन आदि का वर्णन करने के बाद पद्मावती के जन्म की कथा कहता है। पद्मावती के पास हीरामन नाम का एक सुआ था जो पद्मावती से बहुत प्रेम करता था। एक दिन पद्मावती सखियों के साथ मानसरोवर में स्नान करने गयी हुई थी। पीछे से सुआ वहाँ से उड़ गया। उसे एक बहेलिया ने पकड़ लिया। बहेलिये ने हीरामन को एक ब्राह्मण के हाथ बेच दिया। उस ब्राह्मण ने सुए को चित्तौड़ के राजा रत्नसेन के हाथ बेच दिया। हीरामन के मुख से पद्मावती के रूप-सौंदर्य का वर्णन सुनकर राजा अचेत हो जाता है। उसके मन में पद्मावती से मिलने की ऐसी उत्कंठा जागृत होती है कि वह जोगी वेष में घर से निकल जाता है। उसके साथ सोलह हजार कुँवर भी जोगी बनकर जाते हैं।

रास्ते की विघ्नबाधाओं और सात समुद्रों को पार करते हुए रत्नसेन अपने साथियों के साथ सिंहलद्वीप पहुँचता है। वह अपने साथियों के साथ महादेव के मंदिर में बैठकर तप करने लगता है और सुआ पद्मावती के पास पहुँच जाता है। हीरामन अपना सारा वृतांत सुनाने के बाद राजा रत्नसेन के रूप, कुल, ऐश्वर्य आदि की प्रशंसा करता है और कहता है कि वह तुम्हारे लिए योग्य वर है और तुम्हारे प्रेम में जोगी होकर सिंहलद्वीप तक पहुँच गया है। हीरामन की बातें सुनकर पद्मावती भी रत्नसेन से प्रेम करने लगती है।

राजा रत्नसेन को राजा गंधर्वसेन गिरफ्तार कर लेता है। काफी कठिनाइयों के बाद शिव-पार्वती की सहायता से रत्नसेन और पद्मावती का विवाह संपन्न हो जाता है।

चित्तौड़ में राजा की अनुपस्थिति में रानी नागमति विरहाकुल रहती है। उसकी विकलता देख एक पक्षी उसका संदेश लेकर सिंहलद्वीप जाता है और रत्नसेन तक वह संदेश पहुँचाता है। रत्नसेन पद्मावती और बहुत सा धन आदि लेकर चित्तौड़ की ओर रवाना हो जाता है। रास्ते में राजा को फिर से कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। समुद्र की कन्या लक्ष्मी से राजा को अमृत, हंस, राजपक्षी, शार्दूल और पारस नामक पाँच वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। इनको लेकर राजा चित्तौड़ पहुँचता है। नागमती और पद्मावती के साथ राजा रत्नसेन सुख-चैन से जीवन व्यतीत करता है। राजा के दो पुत्र भी उत्पन्न होते हैं—पद्मावती से कमलसेन और नागमती से नागसेन।

चित्तौड़ की राजसभा में राघवचेतन नामक एक पंडित था जिसे यक्षिणी सिद्ध थी। राजा द्वारा देश निकाला दिये जाने पर वह रत्नसेन से बदला लेने के लिए पद्मावती से प्राप्त एक कंगन लेकर दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन सरजा नामक एक दूत के साथ रत्नसेन के पास एक पत्र भेजता है। पत्र में राजा को पद्मावती बादशाह को भेंट करने को कहा जाता है। रत्नसेन इस प्रस्ताव को ठुकरा देता है। बादशाह अलाउद्दीन चित्तौड़ पर हमला कर देता है। वह किले का आठ वर्ष तक घेरा डाले पड़ा रहता है। उधर दिल्ली पर बाहरी हमले का खतरा देखकर अलाउद्दीन रत्नसेन के पास संधि का प्रस्ताव भेजता है कि, उसे पद्मिनी नहीं चाहिए बल्कि समुद्र से प्राप्त पाँच अमूल्य वस्तुएँ चाहिए। राजा अलाउद्दीन के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है। चित्तौड़ के किले में

अलाउद्दीन का शानदार स्वागत किया जाता है। वहाँ एक बार बादशाह को दर्पण में पद्मावती का प्रतिबिंब देखने का मौका मिलता है। पद्मावती के सौंदर्य को देखकर बादशाह बेहोश हो जाता है।

बादशाह को विदा करने के लिए रत्नसेन अंतिम फाटक तक आता है। वहाँ बादशाह धोखे से राजा को कैद कर लेता है और बंदी बनाकर दिल्ली ले जाता है। चित्तौड़ में इस घटना में हाहाकार मच जाता है। पद्मावती गोरा और बादल की सहायता से रत्नसेन को कैद से मुक्त कराती है।

चित्तौड़ पहुँचने पर राजा रत्नसेन की कुंभलनेर के राजा देवपाल से युद्ध होता है। इस युद्ध में राज रत्नसेन मारा जाता है। राजा के हाथ से देवपाल भी मारा जाता है। राजा के शव के साथ पद्मावती और नागमती सती हो जाती हैं। चित्तौड़ पर अलाउद्दीन खिलजी की फौज का अधिकार हो जाता है। बादशाह को किले में धूल और राख के सिवा कुछ नहीं मिलता। अंत में, जायसी कहानी खत्म करते हुए कहते हैं कि अब न तो राजा रत्नसेन हैं, न हीरामन तोता, न अलाउद्दीन, न रानी पद्मावती। संसार में कहानी ही शेष रह जाती है। यश ही शेष रह जाता है। फूल मर जाता है पर उसकी गंध नहीं मरती।

5.4.2 पद्मावत की ऐतिहासिकता

"पद्मावत" की इस कथा को हम दो भागों में बाँट सकते हैं। पहले भाग में राजा रत्नसेन और पद्मावती का प्रेम, रत्नसेन द्वारा पद्मावती को प्राप्त करने का प्रयत्न और अन्त में पद्मावती से राजा के विवाह का वर्णन है। दूसरे भाग में राघवचेतन का देश निकाला, अलाउद्दीन खिलजी का चित्तौड़ पर हमला, रत्नसेन का बंदी बनाया जाना, गोरा-बादल का बलिदान, देवपाल के साथ युद्ध में राजा का मारा जाना और पद्मावती और नागमती का राजा के साथ सती होना आदि का वर्णन है। कथा का पूर्व भाग पूर्णतः काल्पनिक है जबकि उत्तर भाग में इतिहास सम्मत कई घटनाओं का उल्लेख है।

अलाउद्दीन खिलजी जिस समय दिल्ली का बादशाह था, उस समय चित्तौड़गढ़ पर भीमसिंह नाम का राजा राज्य करता था। "आइने अकबरी" में इस राजा का नाम "रतनसीं" दिया गया है। कर्नल टॉड जिन्होंने राजपूताने (राजस्थान राज्य का पुराना नाम) का इतिहास लिखा था, के अनुसार राजा का नाम भीमसिंह था। आइने अकबरी के अनुसार, राजा रत्नसेन के पद्मनी नाम की सुंदर रानी थी। अलाउद्दीन ने पद्मनी को हासिल करने के लिए चित्तौड़गढ़ पर आक्रमण किया। पहले आक्रमण में अलाउद्दीन की पराजय हुई, उसे वापस लौटना पड़ा। दूसरी बार फिर आक्रमण किया गया, लेकिन उसे फिर मुँह की खानी पड़ी। हारकर, उसने संधि का प्रस्ताव भेजा। राजा संधि के लिए तैयार हो गया। लेकिन इस बार अलाउद्दीन के हाथों धोखे से मारा गया। रतनसीं की मृत्यु के बाद अरसी नामक उसके संबंधी को गद्दी पर बैठाया गया। युद्ध में वह भी मारा गया तथा पद्मनी आदि रानियों ने जौहर कर लिया। "आइने अकबरी" के इस वृतांत से कर्नल टॉड के इतिहास का वृतांत थोड़ा ही भिन्न है।

कर्नल टॉड का वृतांत और "आइने अकबरी" के वृतांत में काफी समानता है। मुख्य फर्क राजा के नाम का है। लेकिन इससे यह जरूर प्रमाणित होता है कि जायसी ने रत्नसेन नाम कल्पना से नहीं लिया था। टॉड का विवरण चारणों के विवरणों से लिया गया है जो अतिरंजित हो सकते हैं। मुख्य बातें जो ऐतिहासिक तथ्य हैं और जिनका जायसी ने इस्तेमाल किया वे निम्नलिखित हैं :

1 जायसी ने रत्नसेन नाम गढ़ा नहीं था यह नाम लोकप्रसिद्ध था।
2 चित्तौड़ पर पद्मनी को प्राप्त करने के लिए अलाउद्दीन ने हमला किया। इतिहास के अनुसार बादशाह ने पद्मनी को दर्पण की शर्त रखी जबकि जायसी ने समुद्र से प्राप्त पाँच वस्तुओं की शर्त रखी। शुक्ल जी के अनुसार, "दर्पण में प्रतिबिंब देखने की बात का जायसी ने आकस्मिक घटना के रूप में वर्णन किया है। इतना परिवर्तन कर देने से नायक रत्नसेन के गौरव की पूर्ण रूप से रक्षा हुई है। पद्मनी की छाया भी दूसरे को दिखाने पर सम्मत होना रत्नसेन ऐसे पुरुषार्थी के लिए कवि ने अच्छा नहीं समझा।" (जायसी ग्रंथावली, पृ. 28)।
3 अलाउद्दीन द्वारा धोखे से रत्नसेन को गिरफ्तार करना भी इतिहास प्रसिद्ध घटना है। फर्क यह है कि बंदी रत्नसेन को अलाउद्दीन दिल्ली न ले जाकर (जैसाकि "पद्मावत" में वर्णित है) शिविर में ले जाता है।
4 जौहर की कथा भी इतिहास सम्मत है किन्तु जायसी ने जौहर को "सती" होने में बदल दिया है। राजा के युद्ध में जाते ही पद्मनी अन्य राजपूत स्त्रियों के साथ आग में कूद कर आत्महत्या कर लेती हैं, यही जौहर कहलाता था। जबकि अपने मृत पति के शव के साथ जिंदा जलना "सती" होना कहलाता है। जायसी ने पद्मावती की मृत्यु ऐसे ही दिखलाई है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि जायसी को रत्नसेन और अलाउद्दीन के बीच के संघर्ष की कथा का पूरा ज्ञान था, लेकिन जायसी का उद्देश्य इतिहास की रचना करना नहीं था, इसलिए उन्होंने इस कथा को अपने काव्य की आवश्यकताओं के अनुरूप इस्तेमाल किया। इसके लिए उन्होंने कई परिवर्तन किये। सबसे पहले उन्होंने राघवचेतन की कथा का समावेश किया। यह काल्पनिक पात्र है। दूसरे, उन्होंने राजा को दिल्ली में नजरबंद करवाया। इसका लाभ यह हुआ कि पद्मावती द्वारा राजा को छुड़ाने की कोशिश, रानियों का विरह, अलाउद्दीन और देवपाल के दूती प्रसंग को शामिल करना संभव हो सका। जायसी के यहाँ अलाउद्दीन, रत्नसेन, पद्मिनी, गोरा, बादल आदि नामों को छोड़कर अधिकांश नाम कल्पित हैं। यहां तक कि रत्नसेन के पिता और पुत्रों के नाम भी कल्पित हैं।

जायसी को रत्नसेन और पद्मिनी की कथा कहने की प्रेरणा निश्चय ही इतिहास से नहीं मिली होगी। रत्नसेन और पद्मिनी के प्रेम की कथा और अलाउद्दीन द्वारा पद्मिनी को प्राप्त करने की कोशिश को लेकर लोककथाएँ जायसी के पहले से ही विद्यमान रही होंगी, ऐसा शुक्लजी का अनुमान है। गोरा-बादल की कथा भी लोकथाओं और लोकगीतों का प्रिय विषय रहा है। निश्चय ही जायसी को यह विषय लोक कथाओं से ही प्राप्त हुआ होगा, जिसे इतिहास की अपनी जानकारी के बल पर और काव्य के अनुरूप नया रूप दिया होगा।

जहाँ तक "पदमावत" के प्रथम भाग का प्रश्न है, उसके बारे में दो बातें कही जा सकती हैं। "पद्मावती" संस्कृत साहित्य और लोक कथाओं का परिचित नाम है। जायसी ने पद्मिनी को सिंहलद्वीप की निवासी बताया है। यह भी इतिहास-सम्मत नहीं है। वस्तुतः यह नाम, जैसा कि आचार्य शुक्ल का विचार है, जायसी ने नाथ परंपरा से लिया है। शुक्लजी के अनुसार गोरखपंथी साधु "सिंहलद्वीप को एक सिद्धपीठ मानते हैं। उनका कहना है कि योगियों को पूर्ण सिद्धि प्राप्त करने के लिए सिंहलद्वीप जाना पड़ता है जहाँ साक्षात शिव परीक्षा के पीछे सिद्धि प्रदान करते हैं। पर वहाँ जाने वाले योगियों के शम, दम की पूरी परीक्षा होती है। वहाँ सुवर्ण और रत्नों की अतुल राशि सामने आती है तथा पद्मिनी स्त्रियाँ अनेक प्रकार से लुभाती हैं। "(जायसी ग्रंथावली, भूमिका पृ. 29)" ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जायसी ने "पद्मावत" की रचना में इतिहास, नाथपंथ, लोक परंपरा सभी का सहारा लिया है और इन सबसे ऊपर अपनी काव्य प्रतिभा का इस्तेमाल करते हुए उसे नया रूप प्रदान किया है। स्वयं शुक्लजी के शब्दों में "हमारा अनुमान है कि जायसी ने प्रचलित कहानी को ही लेकर, सूक्ष्म ब्यौरों की मनोहर कल्पना करके उसे काव्य का सुंदर रूप दिया है।" इसलिए "पद्मावत" में इतिहास को ढूँढना व्यर्थ है वस्तुतः वह एक काव्य है और इस काव्य की रचना के लिए कवि ने इतिहास की घटनाओं का अपने ढंग से इस्तेमाल किया है।

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइए।

1 एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद में मुख्य अंतर है :
   क) एकेश्वरवाद जीव और ईश्वर को एक ही मानता है जबकि अद्वैतवाद दोनों में भेद करता है।
   ख) एकेश्वरवाद एक ईश्वर को सत्य मानता है जो सृष्टि से परे है जबकि अद्वैतवाद ब्रह्म में विश्वास करता है जो सृष्टि से परे भी है और उसमें व्याप्त भी है।
   ग) एकेश्वारवाद एक ईश्वर में विश्वास करता है, अद्वैतवाद बहुदेववाद में विश्वास करता है।
   घ) एकेश्वरवाद में ईश्वर को सगुण-साकार माना जाता है और अद्वैतवाद में निर्गुण निराकार ईश्वर में विश्वास किया जाता है। ( )

2 मारफत की अवस्था में :
   क) साधक धर्म ग्रंथों के विधि-निषेधों का पालन करता है।
   ख) हृदय की शुद्धता के बल पर ईश्वर का ध्यान करता है।
   ग) साधक को सत्य का बोध हो जाता है।
   घ) साधक की आत्मा परमात्मा से एकाकार हो जाती है। ( )

3 "पद्मावत" में निम्नलिखित में से कौन सा चरित्र काल्पनिक है:
   क) राघवचेतन

ख) रत्नसेन
ग) अलाउद्दीन
घ) बादल ( )

4 सूफी मत में इश्क मजाज़ी और इश्क हक़ीकी का क्या संबंध बताया गया है? तीन-चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

5 "सिंहलद्वीप" की परिकल्पना जायसी ने कहाँ से ली है? स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

अभ्यास

1 "पद्मावत" को ऐतिहासिक काव्य नहीं मानने के संबंध में कुछ ठोस कारण बताइए? अपना उत्तर लगभग 10 पंक्तियों में दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

5.5 पद्मावत में प्रेम तत्व

"पद्मावत" प्रेम कथात्मक प्रबंध काव्य है। स्त्री-पुरुष के प्रेम के माध्यम से ईश्वरीय प्रेम की अभिव्यक्ति भी इसमें की गयी है। प्रेम की विभिन्न भावदशाओं और स्थितियों का चित्रण किया गया है।

5.5.1 पद्मावत की प्रेम-पद्धति

जायसी के "पद्मावत" में रत्नसेन और पद्मावती के प्रेम की शुरुआत एक दूसरे के रूप वर्णन को सुनकर होती है। हीरामन तोता जब रत्नसेन के सामने पद्मिनी के रूप का वर्णन करता है तो उसे सुनकर राजा मूर्छित हो जाता है और होश आने पर वह पद्मावती को देखने की लालसा में जोगी बनकर निकल पड़ता है। इसी प्रकार सुए के मुख से राजा के रूप और ऐश्वर्य को सुनकर पद्मिनी के मन में भी रत्नसेन के प्रति प्रेम का उदय होता है। स्त्री या पुरुष के रूप-सौंदर्य का वर्णन सुनकर या उनका चित्र देख कर या उन्हें सपने में देखकर प्रेम का उदित होना प्राचीन प्रेम कथाओं का विषय रहा है। जायसी ने भी सुए का प्रसंग इसी भारतीय परंपरा से लिया है। जायसी एक सूफी कवि थे और उन्होंने लौकिक प्रेम में अलौकिक आभा भर दी है। उदाहरण के लिए पद्मावती का रूप वर्णन केवल एक सुंदर स्त्री का रूप वर्णन नहीं है, उसका एक आध्यात्मिक पक्ष भी है, जिस का विवेचन हम आगे करेंगे।

जायसी के प्रेम वर्णन में फारसी परंपरा का भी प्रभाव है और भारतीय परंपरा का भी। फारसी प्रेम पद्धति में प्रेम में विरहाग्नि में जलना, सूखकर काँटा हो जाना, प्रेम के लिए तरह-तरह के कष्ट उठाना प्रेमियों के हिस्से में आया है जबकि भारतीय परंपरा में प्रेम की ज्वाला में स्त्रियाँ ही जलती हैं, उन्हें ही विरह की वेदना सहनी पड़ती है, सूखकर ठठरी बन जाना पड़ता है। जायसी में इन दोनों पद्धतियों का संयोग मिलता है।

राजा पद्मावती के लिए घरबार छोड़ देता है, सात समुद्र पार करता है, रोता कलपता है यहाँ तक कि अग्नि में जल मरने के लिए भी तैयार हो जाता है। भारतीय परंपरा में प्रायः पुरुष प्रेमियों को इस तरह की विरह-वेदना नहीं सहन करनी पड़ती।

दूसरी ओर, जायसी ने नागमती और पद्मावती की विरह दशाओं का भी विस्तार से चित्रण किया है। जब पद्मावती की तलाश में रत्नसेन के घर छोड़कर चले जाने पर जायसी ने नागमति के विरह का अत्यंत मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। इसी प्रकार जब अलाउद्दीन राजा रत्नसेन को बंदी बनाकर ले जाता है तो इस दुख में दुखी पद्मावती विलाप करने लगती है। इस प्रकार, जायसी ने इस काव्य में फारसी और भारतीय दोनों परंपराओं का समावेश किया है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जायसी के प्रेम-वर्णन की एक और विशेषता का उल्लेख किया है। शुक्लजी ने लिखा है कि फारसी शैली का प्रेम समाज से निरपेक्ष और आदर्शवादी होता है, ऐसा प्रेम संसार की वास्तविक परिस्थितियों के बीच नहीं दिखाया जाता, न ही सांसारिक व्यवहार का उससे कोई संबंध होता है। जायसी, ने पद्मिनी और रत्नसेन का विवाह पूर्व का प्रेम इसी पद्धति से प्रस्तुत किया है, लेकिन विवाह के बाद प्रेम को सामाजिक और पारिवारिक परिस्थितियों के बीच विकसित किया गया है। जब पद्मिनी को राजा रत्नसेन के बंदी बना लिये जाने का समाचार मिलता है तो वह सिर्फ रोती-बिलखती नहीं बल्कि राजा को छुड़ाने का प्रयत्न भी करती है। इसी प्रकार वह उस कष्ट की घड़ी में अपने एक निष्ठ प्रेम का भी प्रमाण देती है। वह कंचन के लालच में अलाउद्दीन और देवपाल के चंगुल में नहीं फँसती। जायसी ने नागमती के प्रेम को भी वाणी दी है। नागमती के चरित्र में गृहस्थ नारी का रूप अधिक निखरा है।

पद्मावत में जायसी ने प्रेम का जो स्वरूप चित्रित किया है, उसके विवेचन से स्पष्ट है कि उन्होंने भारतीय और फारसी दोनों प्रेम पद्धतियों का अनुकरण किया है। इसके साथ ही प्रेम को लोक व्यवहार के बीच निखारा गया है। इसी प्रेम के कारण रत्नसेन मारा जाता है और यही प्रेम पद्मावती और नागमती को सती होने के लिए प्रेरित करता है।

5.5.2 रूप वर्णन

नायक के मन में नायिका के प्रति प्रेम की उत्पत्ति का एक कारण उसका रूप भी होता है। पद्मावती के प्रति रत्नसेन के आकर्षण का कारण हीरामन द्वारा पद्मावती का रूप वर्णन ही है। जायसी ने पद्मावती के सौंदर्य का कई जगह वर्णन किया है। सबसे पहले, "मानसरोदक खंड" में जब पद्मावती अपनी सखियों के साथ मानसरोवर में नहाने जाती है। दूसरी बार, जायसी ने पद्मावती के रूप का वर्णन हीरामन के मुख से करवाया है। यह नख-शिख पद्धति में है। स्त्री के सौंदर्य वर्णन की पद्धति पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव है जिसमें स्त्री के केशों से लेकर पैर के नाखून तक प्रत्येक अंग का अलग-अलग वर्णन किया जाता है। कवि उन अंगों के सौंदर्य को अभिव्यक्त करने के लिए विभिन्न उपमानों का प्रयोग करता है। तीसरी बार अलाउद्दीन के सामने राघव चेतन पद्मावती के सौंदर्य का वर्णन करता है। यह वर्णन यद्यपि नख-शिख पद्धति में ही है, लेकिन इसके साथ जायसी ने काम-विषयक ग्रंथों में वर्णित स्त्रियों के भेदों का भी वर्णन किया है।

जायसी ने पद्मावती का सौंदर्य यद्यपि परंपरागत पद्धति में नख-शिख वर्णन (जायसी ने शिख से नख की ओर वर्णन किया है) के रूप में किया है, लेकिन जहाँ संभव हुआ है उन्होंने इस सौंदर्य को ईश्वरीय सौंदर्य में रूपांतरित कर दिया है। उदाहरण के लिए "मानसरोदक खंड" में कवि ने पद्मावती के सौंदर्य में ईश्वरीय सौंदर्य की झांकी प्रस्तुत की है। पद्मावती के रूप को मानसरोवर "पारस रूप" कहता है। वह अनुभव करता है :

भा निरमर तिन्ह पायन्ह परसें। पावा रूप रूप के दरसें।

अर्थात् "उसके चरण छूकर मैं निर्मल हो गया, उसके रूप का दर्शन करके मैंने भी रूप पाया"।

जायसी ने यहाँ पद्मावती के सौंदर्य को "पारस रूप" कहा है। पारस रूप अर्थात् ऐसा सौंदर्य जिसके स्पर्श से अन्य वस्तुओं में भी सौंदर्य उत्पन्न हो जाता है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि, "इनमें बिंब-प्रतिबिंब भाव का उल्लेख है। पद्मावती बिंब

है, उसी का प्रतिबिंब जगत् है अर्थात् उसी की परछाई से संसार के अन्य सब रूप बने हैं।" (पद्मावत् पृ. 75)।

जायसी ने नख-शिख वर्णन में भी अनेक बार अलौकिक और दिव्य सौंदर्य की व्यंजना की है। पद्मावती के केशों का वर्णन करते हुए कवि लिखता है कि जब पद्मावती वेणी खोलकर केशों को झाड़ती है तो आकाश से पाताल तक अँधेरा छा जाता है।

बेनी छोरि झारु जौं बारा। सरग पतार होइ अँधियारा।

जायसी के नख-शिख वर्णन की विशेषता यह है कि उन्होंने पद्मिनी के अंग-प्रत्यंग में विराट प्रकृति की लीला को ही समाहित कर दिया है।

जायसी के रूप वर्णन का यह अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष है क्योंकि हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि सूफी काव्य होने के कारण पद्मावती एक लौकिक नारी ही नहीं ईश्वर का प्रतीक भी है। इसलिए उसके सौंदर्य में दिव्यता और अलौकिकता के गुण आना स्वाभाविक है।

जायसी ने रूप वर्णन में प्राय: भारतीय परंपरा का ही निर्वाह किया है। उन्होंने प्राय: उन उपमानों का प्रयोग किया है जो परंपरा से व्यवहृत होते आ रहे हैं लेकिन उनको नवीन रूप देने का प्रयत्न भी बराबर दिखाई देता है। उनमें काव्य-चमत्कार और सौंदर्य अभिव्यक्ति दोनों का समन्वय है।

5.5.3 वियोग वर्णन

जायसी के "पद्मावत" में शृंगार के दोनों पक्षों का चित्रण मिलता है – संयोग शृंगार और वियोग शृंगार। संयोग शृंगार का वर्णन राजा रत्नसेन और पद्मावती के विवाह और मिलन के रूप में चित्रित किया गया है। रत्नसेन और पद्मावती के संयोग वर्णन में जायसी ने काव्य परंपराओं का ही अनुपालन किया है। रत्नसेन और पद्मावती के मिलन की विभिन्न स्थितियों का चित्रण किया गया है। इस चित्रण में जायसी ने "प्रेम के भावात्मक रूप" को ही प्रधान रखा है। शारीरिक भोग-विलास का वर्णन भी मिलता है लेकिन कवि की रुचि भावात्मक चित्रण की ओर ही अधिक है। जायसी को संयोग वर्णन में अधिक सफलता नहीं मिली है। वस्तुत: जायसी वियोग के कवि हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने तो जायसी द्वारा वर्णित नागमती के विरह को "हिन्दी साहित्य में एक अद्वितीय वस्तु" कहा है। शुक्ल जी के इस कथन में पूर्ण सच्चाई है।

जायसी ने "पद्मावत" के तीनों प्रमुख पात्रों – रत्नसेन, पद्मावती और नागमती के वियोग का चित्रण किया है। नागमती के वियोग वर्णन का चित्रण तब किया गया है जब राजा रत्नसेन जोगी बनकर घर से निकलते हैं और एक वर्ष तक नहीं लौटते। राजा रत्नसेन के विरह वर्णन का चित्रण तब किया जाता है जब सिंहलद्वीप में पद्मिनी को देखकर राजा मूर्छित हो जाता है और होश में आने पर पद्मिनी को न पाकर वह "विलाप" करने लगता है। पद्मावती का वियोग वर्णन तब किया गया है जब राजा के सिंहलद्वीप पहुँचने पर योग के प्रभाव से पद्मावती विरह अनुभव करने लगती है तथा बाद में जब अलाउद्दीन राजा रत्नसेन को नजरबंद करके ले जाता है।

जायसी का भावक कवि हृदय सबसे अधिक नागमती के वियोग वर्णन में प्रकट हुआ है। विरह वर्णन में कवि नायिका की शारीरिक और मानसिक दशा का चित्रण करते हुए अतिरंजना का सहारा लेता है।

जायसी का वियोग वर्णन अत्यंत मर्मस्पर्शी और स्वाभाविक कहा जा सकता है। उनका उद्देश्य विरह की वेदना की विशद व्यंजना करना रहा है। इसके लिए उन्होंने अतिशयोक्ति (बढ़ा चढ़ा कर कहना) का सहारा लिया है, लेकिन इसका उद्देश्य संवेदना जाग्रत करना है, चमत्कार उत्पन्न करना नहीं।

जायसी ने नागमती के विरह को केवल उस तक ही सीमित नहीं रखा है वरन् उसे सारी सृष्टि में व्याप्त कर दिया है। नागमती के आँसुओं में जैसे सारा संसार डूब गया है।

नागमती के विरह वर्णन की एक और विशेषता यह है कि नागमती अपने दुख में सबको शामिल कर लेना चाहती है। वह वन-उपवन में घूम-घूमकर अपने दुख का बयान करती है। पक्षियों से प्रार्थना करती है कि कोई उसका संदेश लेकर प्रिय तक पहुँचा दे।

पिय सौं कहेहु सँदेसरा ऐ भँवरा ऐ काग।
को धनि बिरहें जरि गई तेहिक धुँआ हम लाग।।

अर्थात्, "ऐ भौंरे और ऐ काग, प्रिय से मेरा यह संदेश कह देना कि जो स्त्री विरह की आग में जल गयी हमें उसी का धुँआ लगा है।"

नागमती के विरह वर्णन का सबसे प्रभावशाली रूप है, बारहमासा। जायसी ने साल के बारह महीनों की अलग-अलग दशाओं के अनुसार नागमती के विरह का वर्णन किया है। शुक्लजी ने इस "बारहमासा" की प्रशंसा करते हुए लिखा है, "इसी नागमती के विरह वर्णन के अंतर्गत वह प्रसिद्ध बारहमासा है जिसमें वेदना का अत्यंत निर्मल और कोमल स्वरूप, हिन्दू दांपत्य जीवन का ...यंत मर्मस्पर्शी माधुर्य, अपने चारों ओर की प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों के साथ विशुद्ध भारतीय हृदय की साहचर्य-भावना तथा विषय के अनुरूप भाषा का अत्यंत स्निग्ध, सरल, मृदुल और अकृत्रिम प्रवाह देखने योग्य है।" (जायसी ग्रंथावली, भूमिका पृ. 53)।

नागमती के इस बारहमासा की विशेषता सिर्फ यह नहीं है कि नागमती के विरह की व्यंजना में उसकी मानसिक और शारीरिक दशा का मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है नागमती अपने विरह की मानसिकता में प्रिय मिलन को इच्छुक कामातुर नारी के रूप में सामने नहीं आती बल्कि एक सामान्य, गृहस्थ नारी के रूप में सामने आती है। यही इस विरह वर्णन की विशिष्टता है। शुक्लजी ने जायसी के विरह वर्णन की इस विशेषता को अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना है। यह उनके काव्य पर लोकजीवन का प्रभाव है।

जायसी ने नागमती के विरह वर्णन में प्रकृति के दुखद और सुखद दोनों रूपों का वर्णन किया है, लेकिन ये दोनों रूप नागमती को कोई सांत्वना नहीं देते। दुख प्रदान करने वाली वस्तुएँ और दुख देती हैं और सुख प्रदान करने वाली वस्तुएँ भी दुख को बढ़ाती हैं। जैसे, फागुन में सर्दी और बढ़ जाती है। इस भयावह सर्दी में नागमती का शरीर पीले पत्ते जैसा हो गया है। इसी फागुन में वनस्पति हुलसित होने लगी है, लेकिन नायिका का संसार तो दुगुना उदास हो गया है। चैत के महीने में वनस्पति सहस्त्रों रूपों में फूली है। लेकिन नागमती को तो फूल काँटे की तरह लगते हैं।

सहस भाव फूली बनफती। मधुकर फिर सँवरि मालती।।
मो कहँ फूल भए जस काँटे। दिस्टि परत तन लागहिं चाँटे।।

इस प्रकार अप्रयुक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि जायसी ने विरह वर्णन में केवल परंपरा का अनुगमन नहीं किया है बल्कि अपने भावुक हृदय, लोक जीवन से अपनी संपृक्ति तथा हृदय के उद्गारों की मर्मस्पर्शी व्यंजना कर सकने की क्षमता का परिचय दिया है। जायसी के विरह वर्णन में अतिरंजना है, अलंकारों का प्रयोग है, लेकिन इनका उद्देश्य विरही हृदय की वेदना से साक्षात्कार कराना है, न कि काव्य चमत्कार उत्पन्न करना। जायसी इस वेदना से सभी को द्रवित करने में सफल रहे हैं।

उदाहरण

मानसरोवक खंड

कहा मानसर[1] चहा सो पाई। पारस रूप इहाँ लगि आई।।
भा[2] निरभर तेन्ह[3] पायन परसें। पावा रूप रूप के दरसें।।
मलै समीर बास तन आई। भा सीतल गै तपन बुझाई।
न जनौं कौनु पौन लै आवा। पुन्नि[4] दसा भै पाप गँवावा।।
ततखन [5] हार बेगि उतिराना[6]। पावा सखिन्ह चंद बिहँसाना।।
बिगसे कुमुद देखि ससि रेखा। भै तेहिं रूप जहाँ जो देखा।।
पाए रूप रूप जस चहे। ससि मुख सब दरपन होइ रहे।।
नैन जो देखे कँवल भए निरमर नीर सरीर।
हँसत जो देखे हँस भए दसन जोति नग हीर।।

नख-शिख खंड

नैन बाँक सरि पूज[7] न कोऊ। मानं समुँद[8] अस उलथहिं[9] दोऊ।
राते[10] कँवल करहिं अलि [11] भवाँ। घूमहिं माँति[12] चहहिं उपसवाँ[13]।।

1 मान सरोवर 2 हुआ 3 उसके 4 पुण्य, पवित्र 5 उसी क्षण 6 ऊपर आना 7 तुलनीय 8 मान का समुद्र (मानिनी नायिका जैसा भाव आँखों से प्रकट हो रहा है 9 उलीचना 10 लाल 11 भँवरा 12 मस्त होकर 13 उपसवना अर्थात् हट जाना या भाग जाना।

उठहिं तुरंग[1] लेहिं नहिं बागा[2]। जानहिं उलथि[3] गगन कहँ लागा।
पवन झकोरहिं देहिं हिलोरा। सरग[4] लाइ भुइँ[5] लाइ बहोरा।।
जग डोले डोलत नैनाहाँ। उलटि अड़ार[6] जाइ पल माहाँ।
जबहिं फिराव गँगन गहि[7] बोरा[8]। अस वै भँवर चक्र के जोरा।
समुँद हिंडोर करहि जनु[9] झूले। खंजन लुरहिं[10] मिरिग जनु भूले।।

सुभर समुँद[11] अस नैन दुई मानिक भरे तरंग।
आवत तीर जाहिं फिरि काल भंवर तेन्ह संग।।

नागमती वियोग खंड

पिय सौं कहेहु सँदेसरा ऐ भँवरा ऐ काग।
सो धनि[12] बिरहें जरि गई तेहिक[13] धुआँ हम लाग।।

रकत ढरा माँसू गरा हाड़ भए सब संख[14]।।
धनि सारस होई ररि[15] मुई आइ समेटहु पंख।।

यह तन जारौं छार[16] कै कहौं कि पवन उड़ाउ।
मकु तेहि मारग होइ परौं कंत धरै जहँ पाउ।।

तपै लाग अब जेठ असाढ़ी। भै मोकहँ यह छाजनि गाढ़ी।
तन तिनुवर भा झूरौं खरी। मैं बिरहा आगरि सिर परी।।
साँठि नाहिं लगि बात को पूँछा। बिनु जिय भएउ मूँज तन छूँछा।।
बंध नाहिं और कंध न कोई। बाक न आव कहौं केहि रोई।
ररि दूबरि भई टेक बिहूनी। थंभ नाहिं उठि सकै न थूनी।।
बरसहिं नैन चुअहिं घर माहाँ। तुम्ह बिनु कंत न छाजन छाँहाँ।
कोरे कहाँ ठाट नव साजा। तुम्ह बिनु कंत न छाजन छाजा।

अबहूँ बिरिछ मया करु छान्हिन तजु घर आउ।
मंदिर उजार होत है, नव कै आनि बसाउ।।

बोध प्रश्न

6 रत्नसेन के मन में पद्मावती के प्रति प्रेम की उत्पत्ति :
   क) चित्र देखकर होती है।
   ख) स्वप्न देखकर होती है।
   ग) रूप-वर्णन सुनकर होती है।
   घ) पद्मावती को देखकर होती है। ( )

7 नागमती के विरह वर्णन की निम्नलिखित विशेषताओं में से कौन सी विशेषता नागमती के विरह वर्णन पर लागू होती है :
   क) भावनापूर्ण चित्रण।
   ख) लोकजीवन का समावेश।
   ग) विरही हृदय की वेदना का स्वाभाविक चित्रण।
   घ) उपर्युक्त तीनों। ( )

8 नागमती वियोग वर्णन में प्रयुक्त बारहमासा की कम-से-कम तीन विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

....

1 घोड़े 2 बाग न लेना अर्थात्, लगाम का अंकुश न मानना, 3 उल्टे होकर 4 आकाश 5 भूमि 6 भरा हुआ भंडार 7 पकड़कर 8 डुबो देना 9 मानो 10 लोटना 11 लहरों से भरा समुद्र 12 धन्या (स्त्री) 13 उसका 14 शंख 15 रटकर 16 रास

9 प्रेम वर्णन में भारतीय और फारसी परंपरा का अंतर लगभग पाँच पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

....

अभ्यास

2 पद्मावती के सौंदर्य-वर्णन पर लगभग 50 शब्दों में संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

....

....

5.6 जायसी का रहस्यवाद

इकाई 4 में 'रहस्यवाद' पर विचार करते हुए हमने बताया था कि रहस्यवाद उस अज्ञात शक्ति के प्रति जीवात्मा का आकर्षण है, जिसे हम ईश्वर या परब्रह्म कह सकते हैं। जीवात्मा के मन में सबसे पहले ईश्वर या अज्ञात सत्ता के प्रति जिज्ञासा का भाव उत्पन्न होता है, फिर वह उसके प्रेम में बँध जाती है और उससे मिलने के लिए व्याकुल रहती है और अंत में जीवात्मा परमात्मा के साथ एकाकार हो जाती है। वह अपनी स्वतंत्र सत्ता भूल जाती है और ईश्वर में ही अपने को लीन कर लेती है।

रहस्यवाद का प्रभाव मलिक मुहम्मद जायसी पर भी था। हमने कबीर के काव्य पर रहस्यवाद के प्रभाव की विवेचना की थी, अब हम जायसी के काव्य पर रहस्यवाद के प्रभाव का विश्लेषण करेंगे। जायसी सूफी कवि थे और सूफी काव्य में प्रेम तत्व की प्रधानता होती है, यह हम बता चुके हैं। इसलिए जायसी के रहस्यवाद की प्रकृति पर विचार करते हुए इस बात को ध्यान में रखना होगा। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जायसी के रहस्यवाद पर टिप्पणी करते हुए लिखा है, "हिन्दी के कवियों में यदि कहीं रमणीय और अद्वैती रहस्यवाद है तो जायसी में, जिनकी भावुकता बहुत ही ऊँची कोटि की है। वे सूफियों की भक्ति भावना के अनुसार कहीं तो परमात्मा को प्रियतम के रूप में देखकर जगत् के नाना रूपों में उस प्रियतम के रूप माधुर्य की छाया देखते हैं और कहीं सारे प्राकृतिक रूपों और व्यापारों को "पुरुष" के समागम के हेतु प्रकृति के शृंगार, उत्कंठा या विरह विकलता के रूप में अनुभव करते हैं।" (जायसी ग्रंथावली, भूमिका, पृ. 199)।

आचार्य शुक्ल के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि जायसी के यहाँ भावात्मक रहस्यवाद का प्रभाव अधिक है। अर्थात् उन्होंने जीवात्मा और परमात्मा के बीच के संबंधों को भावनापूर्ण पद्धति में प्रस्तुत किया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि जायसी के यहाँ साधनात्मक रहस्यवाद का प्रभाव नहीं है। सिंहलद्वीप वर्णन में या रत्नसेन के सिंहलद्वीप पहुँचने के बाद की घटनाओं के चित्रण में जायसी ने हठयोग की साधना पद्धति का प्रयोग किया है और ऐसे प्रसंगों में हम साधनात्मक रहस्यवाद के प्रभाव को भी देख सकते हैं।

5.6.1 भावात्मक रहस्यवाद

सूफी मत में ईश्वर को प्रियतमा के रूप में मानकर साधक उसके प्रति अपनी तीव्र प्रेम भावना को व्यक्त करता है। जायसी ने इसी प्रेम भावना को व्यक्त करने के लिए रत्नसेन और पद्मावती की लौकिक प्रेमकथा को माध्यम बनाया है। प्रश्न यह है कि इस प्रेम कहानी को पूर्णतः लौकिक माना जाये या पूर्णतः अलौकिक। जायसी ने पद्मावत के अंत में रत्नसेन, पद्मावती, नागमती, हीरामन तोता, राघवचेतन, अलाउद्दीन आदि चरित्रों के प्रतीकात्मक अर्थ दिये हैं। जायसी के अनुसार

चित्तौड़ तन है, राजा मन है। सिंहलद्वीप हृदय है और पद्मावती ईश्वर से मिलाने वाली बुद्धि है अथवा ईश्वर ही है। इस ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग बताने वाला गुरु सुआ (हीरामन) है। नागमती सांसारिक जाल है जो मन को परमात्मा की ओर जाने से रोकती है। राघवचेतन शैतान है जो प्रेम मार्ग से भटकाता है और सुलतान अलाउद्दीन माया रूप है।

तन चितउर, मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पदमिनि चीन्हा।
गुरु सुआ जेइ पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।
नागमति यह दुनिया-धंधा। बाँचा सोइ न ऐहि चित बंधा।
राघव दूत सोइ सैतानू। माया अलाउद्दीन सुलतानू।
प्रेम कथा एहि भाँति बिचारहु। बूझि लेहु जौ बूझे पारहु।।

अगर हम जायसी के उपर्युक्त प्रतीकार्थों को स्वीकार करें तो हमें मानना पड़ेगा कि "पद्मावत" की कथा पूर्णतः अलौकिक अर्थ रखती है और पद्मावत को इसी अलौकिक या आध्यात्मिक संदर्भ में ही समझना चाहिए। लेकिन इससे पहले हम "प्रेम तत्व" अध्ययन के दौरान देख चुके हैं कि जायसी ने, सौंदर्य वर्णन हो या वियोग वर्णन सदैव आध्यात्मिक अर्थ में ही अपनी बात को व्यंजित नहीं किया है। उन्होंने जहाँ संभव हुआ है वहाँ आध्यात्मिक अर्थ की व्यंजना की है। अलौकिक सौंदर्य की आभा के बारे में हम बता चुके हैं। मानसरोदक खंड में समुद्र द्वारा पद्मावती के सौंदर्य को "पारस रूप" समझना इसी अलौकिकता के कारण है। जायसी पद्मावती के सौंदर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं उसके दृष्टि कोण से सारा संसार बिंधा है। आकाश के सारे नक्षत्र उससे बिंधे हैं। सारी पृथ्वी उससे बिंधी है। वृक्षों की शाखाएँ इसकी गवाह हैं।

उन्ह बानन्ह अस को को न मारा। बेधि रहा सगरौं संसारा।।
गँगन नखत जस जाहिं न गने। हैं सब बान ओहि के हने।।
धरती बान बेधि सब राखी। साख ठाढ़ि देहिं सब साखी।

पद्मावती का सौंदर्य ही है जो सारी सृष्टि में प्रतिबिंबित हो रहा है। सृष्टि के सब अंग उसी परम तत्व के दर्शन पाने की लालसा में भटक रहे हैं। पद्मावती का दिव्य और अलौकिक सौंदर्य ही जीवात्मा को अपनी ओर आकृष्ट करता है। रत्नसेन तोते रूपी गुरु के मुख से जब पद्मावती का रूप वर्णन सुनता है तो उसे अनुभव होता है कि तीन लोक चौदह खंडों में प्रेम से अधिक मधुर वस्तु कोई नहीं है। प्रेम के नीर के भीतर ही आनंद का मधु रखा है। जो दुख और मृत्यु को सह सकता है वही प्रेम का रसपान कर सकता है। यह रास्ता काँटों भरा है। इस रास्ते पर चलने के लिए समस्त सुखों का त्याग करना पड़ता है। विरह के घात को सहना पड़ता है। विरह आध्यात्मिक प्रेम का चरम सौंदर्य है। जिसका प्रेम जितना तीव्र होता है उसकी विरहानुभूति उतनी ही गहरी होती है। जायसी के विरह वर्णन में गहन अनुभूति और भावनाओं की तीव्रता इसीलिए है।

जायसी ने नागमती के वियोग को इतना व्यापक बना दिया है कि विरह की आग से कोई नहीं बचा है। उसका दुख अपार है। उसकी ज्वाला से धरती और स्वर्ग जल रहे हैं। समस्त ब्रह्मांड उसी विरहाग्नि में जल रहा है। जायसी ने प्रेमपंथ के मार्ग की कठिनाइयों का विस्तार से वर्णन किया है। इस वर्णन में उन्होंने हठयोग की साधना पद्धति का प्रयोग किया है। जायसी के यहाँ साधनात्मक रहस्यवाद का प्रभाव ऐसे ही स्थलों पर है। खास बात यह है कि जायसी ऐसे स्थलों पर भी प्रेम की व्यंजना अवश्य करते हैं।

5.6.2 साधनात्मक रहस्यवाद

हम 'कबीर' से संबंधित इकाई में हठयोग की साधना पद्धति की चर्चा कर चुके हैं। हठयोग में साधक शरीर के अंगों और श्वास-प्रक्रिया पर अधिकार प्राप्त करता है और अपने मन को एकाग्र चित्त करना सीखता है। इस विधि से साधना करना ही हठयोग है। 'सिंहलद्वीप वर्णन खंड' में जायसी ने सिंहल द्वीप का वर्णन करते हुए लिखा है कि सिंहल द्वीप के किले में नौ खंडों पर नौ द्वार हैं और उन नौ द्वारों पर पाँच कोतवाल पहरा देते हुए घूमते हैं। इन नौ खंडों पर चार पड़ाव देकर चढ़ना चाहिए। इन नौ द्वारों के बाद दसवाँ द्वार आता है। इस किले पर नीर और खीर की दो नदियाँ बहती हैं। वहाँ एक कुंड है जिसमें अमृत भरा है। उस अमृत का जो भी पान कर ले वह कभी बूढ़ा नहीं होता।

हठयोग की साधना पद्धति के अनुसार अगर उपर्युक्त वर्णन की व्याख्या करें तो हम इसका साधनापरक अर्थ समझ सकते हैं। यहाँ सिंहलद्वीप का किला मनुष्य का शरीर है जिसमें नाक, कान, मुँह आदि नौ द्वार हैं। दसवाँ द्वार ब्रह्मरंध्र हैं। पाँच कोतवाल काम, क्रोध, मद, लोभ, माया नामक विकार हैं। चार पड़ाव सूफी मत के अनुसार साधना की चार अवस्थाएँ हैं जिन्हें शरीअत,

तरीकत, हकीकत और मारफत करते हैं और जिनके बारे में हम इस इकाई के आरंभ में पढ़ चुके हैं। नीर और खीर नामक दो नदियाँ वस्तुतः इड़ा और पिंगला नाड़ियाँ हैं। कुंड सुषम्ना है जहाँ कुंडलिनी जाग्रत होती है। इसी में अमृत भरा है। यह अमृत वह आनंद है जो साधक को समाधि की अवस्था में ईश्वर के मिलन से प्राप्त होता है और जिसे प्राप्त करने के बाद और कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रहता।

जायसी के रहस्यवाद का साधनात्मक रूप भी प्रस्तुत प्रेम भावना को ही व्यक्त करने का साधन है। जायसी का उद्देश्य योग साधना की कठिनाइयों का वर्णन करना नहीं है बल्कि हठयोग की साधना की कठिनाइयों का वर्णन करके वे प्रेमपंथ की कठिनाइयों को व्यंजित करना चाहते हैं ताकि ईश्वरीय प्रेम की तीव्रता को व्यक्त किया जा सके। जायसी के रहस्यवाद की यह पहली विशेषता है।

जायसी के रहस्यवाद की दूसरी विशेषता यह है कि उन्होंने ईश्वरीय सत्ता की ही अभिव्यक्ति सारी सृष्टि में मानी है। सृष्टि और ईश्वर में बिंब और प्रतिबिंब संबंध है। ईश्वर का रूप ही इस जगत में व्यक्त हो रहा है। इसे हम पद्मिनी के पारस रूप की व्याख्या द्वारा समझ सकते हैं।

जायसी के रहस्यवाद की तीसरी विशेषता यह है कि वहाँ लौकिक भावनाओं को ही अलौकिक रूप दे दिया गया है। रत्नसेन का प्रेम, नागमती का विरह, पद्मिनी का विलाप ही एक धरातल पर आध्यात्मिक अर्थ को संकेतित करने लगते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि केवल लौकिक अ॰ की दृष्टि से भी वे अर्थ अत्यंत प्राणवान् और उदात् हो गये हैं।

जायसी के रहस्यवाद की चौथी विशेषता यह है कि उन्होंने अपनी आध्यात्मिक भावनाओं में धार्मिक उदारता और सहिष्णुता का परिचय दिया है। उनकी रहस्य भावना पर सूफी मत, अद्वैत सिद्धांत और नाथपंथ का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। परब्रह्म संबंधी अवधारणा पर द्वैतमत का प्रभाव है। ईश्वरीय प्रेम का भावनात्मक स्वरूप सूफी मत के अनुकूल है और साधनात्मक स्वरूप पर नाथपंथ का प्रभाव है।

उदाहरण

पार्वती महेश खंड

गढ़ तस बाँक[1] जैसि तोरि काया। परखि देखु तैं ओहि[2] की छाया।।
पाइअ नाहिं जूझि हठि कीन्हे। जेइँ पावा तेइँ आपुहि चीन्हे।।
नौ पौरी[3] तेहि गढ़ मँझिआरा[4]। औ तहँ फिरहिं पाँच कोटवारा[5]।।
दसवँ दुआर गुपुत एक नाँकी[6]।। अगम चढ़ाव बाट[7] सुठि बाँकी।।
भेदी[8] कोइ जाइ ओहि घाटी। जौं लै भेद चढ़ै होइ चाँटी[9]।।
गढ़ तर[10] सुरंग कुंड अवगाहा[11]। तेहि महँ पँथ कहौं तोहि पाहाँ।।
चोर पैठि जस सेंधि सँवारी। जुआ पैंत[12] जेउँ लाव जुआरी।
जस मरजिया[13] समुँद धँसि मारै हाथ आव तब सीप।
ढूँढि लेहि ओहि सरग दुवारी और चढ़ सिंघलदीप।।

बोध प्रश्न

10 जायसी के रहस्यवाद पर मुख्य रूप से किन मतों का प्रभाव है? केवल नामों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

11 निम्नलिखित शब्दों के प्रतीकार्थ लिखिए।

i) सिंहलगढ़ : ....

ii) नौ पौरी : ....

iii) दसवां द्वार : ....

iv) पाँच कोतवाल ....

v) चार प्रडाव : ....

1 बाँका 2 उसी का 3 ड्योढ़ी 4 भीतर 5 कोतवाल 6 नाका 7 मार्ग 8 भेदिया (भेद लेने वाला) 9 चींटी (सूक्ष्म रूप में) 10 नीचे 11 होगा 12 दाँव 13 गोताखोर

12 पद्मावती के रूप वर्णन में जायसी ने किस रूप में रहस्य भावना को व्यक्त किया है? लगभग पाँच पंक्तियों में उत्तर लिखिए।

अभ्यास

3 भावात्मक रहस्यवाद और साधनात्मक रहस्यवाद में मुख्य अंतर क्या है? लगभग दस पंक्तियों में समझाइए।

5.7 पद्मावत का शिल्प पक्ष

मलिक मुहम्मद जायसी के प्रबंध काव्य पद्मावत को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने "हिन्दी काव्य क्षेत्र में एक अद्भुत रत्न" की संज्ञा दी है। प्रेममार्गी सूफी काव्य परंपरा में पद्मावत सबसे "सरस" और "प्रौढ़" रचना मानी जाती है। जायसी के इस प्रबंध काव्य की कथा वस्तु, प्रेम तत्व तथा आध्यात्मिक पक्ष पर हम विस्तार से चर्चा कर चुके हैं। अब हम एक प्रबंध काव्य के रूप में "पद्मावत" की विशेषताओं का परिचय प्राप्त करेंगे।

5.7.1 प्रबंध काव्य के रूप में पद्मावत

पद्मावत प्रबंध काव्य है। प्रबंध काव्य का अर्थ है, ऐसी काव्य रचना जिसमें विस्तृत कथा वर्णन हो। इस के दो भेद किये जाते हैं। महाकाव्य और खंड काव्य। खंड काव्य, कहानी की तरह लघु कथात्मक प्रबंध काव्य होता है जबकि महाकाव्य में कथा विस्तृत होती है, उसमें व्यापक जीवन-संघर्ष की अभिव्यक्ति होती है। पद्मावत महाकाव्य है। पद्मावत के महाकाव्यत्व पर विचार करते हुए यह प्रश्न उठाया गया है कि यह संस्कृत पद्धति का महाकाव्य है या फारसी की मसनवी शैली का महाकाव्य। शुक्लजी ने इसकी रचना को मसनवी शैली माना है, जिस पर भारतीय पद्धति का प्रभाव भी परिलक्षित होता है।

संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुसार महाकाव्य सर्गबद्ध होना चाहिए। सर्गों की संख्या आठ से अधिक और तीस से कम होनी चाहिए। सर्गों का नामकरण होना चाहिए। महाकाव्य की कथावस्तु इतिहास या पौराणिक आधार वाली होनी चाहिए। ग्रंथ के आरंभ में दुष्टों की निंदा और सज्जनों की प्रशंसा तथा मंगलाचरण होना चाहिए। महाकाव्य का नायक चतुर और उदार तथा उच्चकुल का होना चाहिए। शृंगार, वीर और शांत में से किसी एक रस की प्रधानता होनी चाहिए। महाकाव्य में एक ही छंद का प्रयोग किया जाना चाहिए।

मसनवी शैली के महाकाव्य की कथावस्तु तो लौकिक होती है परंतु व्यंजना अलौकिक प्रेम की होती है। कथा कई खंडों में लिखी जाती है तथा प्रत्येक खंड का नामकरण उसकी प्रमुख घटना या पात्र पर होता है। इसका नायक कोई महान प्रेमी होता है जो अपनी प्रियतमा को प्राप्त करने के लिए भयावह कष्ट उठाता है। और अंत में उसका अपनी प्रियतमा से मिलन हो जाता है। महाकाव्य के आरंभ में ईश्वर वंदना होती है और तत्कालीन बादशाह की प्रशंसा की जाती है। कथा के बीच-बीच में आध्यात्मिक संकेत रहते हैं।

पद्मावत की रचना का परीक्षण करें तो हम देख सकते हैं कि इस पर दोनों पद्धतियों का प्रभाव है। इसकी रचना सर्गबद्ध पद्धति में नहीं हुई है बल्कि खंडों के आधार पर हुई है। खंडों का नामकरण उनमें वर्णित प्रमुख घटना अथवा पात्र के आधार पर हुआ है। जैसे "नागमती वियोग खंड" "रत्नसेन पद्मावती विवाह खंड", "देशयात्रा खंड" आदि। पद्मावत में कुल 58 खंड है। पद्मावत की कथा लौकिक है लेकिन इसके माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना की गयी है। इसका नायक रत्नसेन मूलतः प्रेमी है और पद्मिनी (प्रियतमा) को पाने के लिए भयंकर कष्टों को सहता है। अंत में, वह अपनी प्रियतमा को प्राप्त करने में सफल रहता है।पदमावत की कथा इस बिंदु पर समाप्त नहीं होती। पद्मावत के आरंभ में अल्लाह का गुणगान है। शाहेवक्त शेरशाह सूरी का स्तुतिगान है। यह हम विस्तार से बता चुके हैं। अतः यह मानने में कोई कठिनाई नहीं है कि पद्मावत की रचना मसनवी शैली में हुई है। भारतीय शैली की दृष्टि से विचार करें तो इसकी रचना भले ही सर्ग पद्धति में न हुई हो लेकिन इसकी कथावस्तु इतिहास प्रेरित है और इतिहास के साथ कल्पना का समन्वय है। आरंभ में दुष्टों की निंदा और सज्जनों की प्रशंसा नहीं की गयी है परन्तु इसका नायक रत्नसेन भी चतुर और उदार है। तथा उच्चकुल का है। इसमें शृंगार रस की प्रधानता है तथा वीर और शांत रस की व्यंजना भी हुई है। पूरे महाकाव्य में दोहा-चौपाई छंद का प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार इस पर भारतीय शैली का भी प्रभाव दिखाई देता है। सच्चाई तो यह है कि जायसी ने अपनी समन्वयकारी दृष्टि के अनुसार भारतीय और फारसी दोनों पद्धतियों का समन्वय किया है।

5.7.2 काव्य भाषा

जायसी ने पद्मावत की रचना अवधी में की है। अवधी भक्ति काल के अंतर्गत लिखे गए प्रबंध काव्यों की प्रमुख भाषा है। तुलसीदास का "रामचरित मानस" तथा सूफी प्रेमाख्यानक काव्य इसी भाषा में लिखे गये हैं। पद्मावत में अवधी का ठेठ देशी रूप मिलता है। उसमें लोक भाषा की प्रधानता है। तुलसीदास के यहाँ पूरबी अवधी में शब्दों का प्रयोग अधिक मिलता है। लेकिन जायसी में कहीं-कहीं पश्चिमी भाषा की विशेषताएँ भी मिल जाती हैं। जायसी की भाषा का रूप भले ही तुलसीदास की तरह संस्कृतनिष्ठ न हो परंतु भाषा उनकी स्वच्छ और प्रवाहमय है। भाषा में शिथिलता और अव्यवस्था कम है। उनकी भाषा में सहजता है। कहीं-कहीं बोलचाल की रंगत भी मिलती है। जायसी ने मुहावरों का प्रयोग भी किया है। लेकिन ऐसे प्रयोग कथन के सहज प्रवाह में आ गये हैं। कवि ने काव्य चमत्कार के लिए उनका प्रयोग नहीं किया है। यही बात लोकोक्तियों पर भी लागू होती है।

जायसी की भाषा में मिठास है। यह मिठास वह नहीं है जो हम तुलसी की भाषा में देखते हैं। तुलसीदास की भाषा में संस्कृत शब्दों और पदों का माधुर्य है जबकि जायसी के यहाँ यह माधुर्य अवधी की अपनी रंगत का है।

5.7.3 छंद एवं अलंकार

छंद : पद्मावत की रचना जायसी ने दोहा-चौपाई छंदों में की है। जायसी से पहले के सूफी कवियों ने अपने प्रबंध काव्यों में पाँच-पाँच चौपाइयों के बाद दोहे का प्रयोग किया है जबकि जायसी ने सात-सात चौपाइयों के बाद एक-एक दोहे का प्रयोग किया है। जायसी ने पूरे "पद्मावत" में यही पद्धति अपनाई है। जायसी की चौपाइयों और दोहों में मात्राओं का अनुशासन ढीला-ढाला है। प्रत्येक चौपाई और दोहे में मात्राओं की संख्या बराबर नहीं है।

अलंकार : प्राचीन काव्य में अलंकारों का महत्वपूर्ण स्थान रहता था। अलंकारों का उद्देश्य होता है काव्य का सौंदर्य बढ़ाना। लेकिन जब कविता में काव्य के अर्थ की अपेक्षा शब्द-सौंदर्य महत्वपूर्ण हो जाता है तो कविता के वास्तविक उद्देश्य को क्षति पहुँचती है। जायसी के यहाँ अलंकारों का प्रयोग अत्यंत स्वाभाविक रूप से किया गया है। वे ऊपर से थोपे हुए नहीं लगते बल्कि कविता की रचना में अत्यंत सहज रूप से आ गये हैं। जायसी ने प्रायः सादृश्यमूलक अलंकारों का उपयोग किया है।

जायसी के यहाँ सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग जैसा भाव को तीव्र करने के लिए किया गया है वैसे ही अदृश्य और अगोचर वस्तुओं का स्वरूप बोध कराने के लिए भी किया गया है। उदाहरण के लिए जायसी सृष्टि और ईश्वर के संबंधों का बोध कराने के लिए पद्मिनी के सौंदर्य को "पारस रूप" की संज्ञा देते हैं। इसी प्रकार साधक के मार्ग की कठिनाइयों का वर्णन सिंहलगढ़ के वर्णन द्वारा किया गया है। इससे साधना का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

जायसी के अलंकार प्रायः परंपरामूलक हैं। जायसी ने मौलिक और नये उपमानों का प्रयोग कम ही किया है, लेकिन इन उपमानों के प्रयोग में जायसी की कवि प्रतिभा का परिचय अवश्य मिलता है। जायसी ने सादृश्यमूलक अलंकारों में उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा का प्रयोग अधिक किया है। उत्प्रेक्षा में भी उनके यहाँ हेतूत्प्रेक्षा का प्रयोग अधिक है। हेतूत्प्रेक्षा वहाँ होती है जहाँ अहेतु में हेतु की संभावना की जाती है। अर्थात् जो कारण न हो उसे कारण मान लिया जाता है। उदाहरण के लिए पद्मिनी के रूप-वर्णन में जायसी ने पद्मिनी के दाँतों की सुंदरता का वर्णन करते हुए लिखा है कि "उसी ने (दाँतों ने) सूर्य, चंद्र और नक्षत्रों को ज्योति दी है। उसी ने हीरे, रत्न और माणिक्य को ज्योति दी है।"

रवि ससि नखत दीन्ह ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती।।

यहाँ रवि, शशि, नक्षत्र आदि की ज्योति का कारण पद्मिनी के सौंदर्य को मान लिया गया है।

5.8 जायसी के काव्य का मूल्यांकन

जिस समय जायसी ने पद्मावत की रचना की थी उस समय भारत की केंद्रीय सत्ता तुर्क शासकों के अधीन थी। इन शासकों में कई कट्टरतावादी थे तो कई उदार भी थे। लेकिन हिन्दू और मुस्लिम जनता के बीच निरंतर संपर्क और सद्भाव बढ़ रहा था। सूफी संतों और फकीरों ने इस प्रक्रिया को तेज करने में मदद की। सूफी संत मानते थे कि धर्म की भिन्नता के बावजूद ईश्वर एक है और इस ईश्वर को प्रेम के द्वारा पाया जा सकता है। उनके इस मत ने उन्हें अन्य धर्मावलंबियों के प्रति भी सहिष्णु और उदार बनाया। यही कारण था कि जायसी जैसे सूफी कवियों ने इश्क हकीकी को व्यक्त करने के लिए जिन लौकिक प्रेम कथाओं को आधार बनाया, वे भारतीय थीं और हिन्दू तथा मुस्लिम जनता विशेषतः ग्रामीण जनता के बीच लोककथाओं के रूप में प्रसिद्ध थीं। कबीर आदि संत कवियों ने अपने काव्य द्वारा हिन्दुओं और मुसलमानों के धार्मिक कट्टरपन का विरोध किया था और यह बताया था कि सच्ची धार्मिक आस्था ईश्वर के प्रति सच्चे प्रेम में हैं, न कि बाहरी कर्मकांड में। कबीर का तरीका उग्र, कठोर और क्रांतिकारी था। जायसी ने "मनुष्य की सामान्य भावभूमि को प्रेमकथा के माध्यम से व्यक्त किया और यह बताया कि सभी मनुष्य एक हैं।" शुक्लजी ने जायसी आदि सूफी कवियों की इस विशेषता को रेखांकित करते हुए लिखा है कि, "जिस प्रकार दूसरी जाति या मत वाले के हृदय है उसी प्रकार हमारे भी है जिस प्रकार दूसरे के हृदय में प्रेम की तरंगे उठती है उसी प्रकार हमारे हृदय में भी, प्रिय का वियोग जैसे दूसरे को व्याकुल करता है, वैसे ही हमें भी, माता का जो हृदय दूसरे के यहाँ है वही हमारे यहाँ भी, जिन बातों से दूसरे को सुख-दुख होता है उन्हीं बातों से हमें भी। इस तथ्य का प्रत्यक्षीकरण कुतुबन, जायसी आदि प्रेम कहानी के कवियों द्वारा हुआ। अपनी कहानियों द्वारा इन्होंने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए उन सामान्य जीवन-दशाओं को सामने रखा जिनका मनुष्य मात्र के हृदय पर एक सा प्रभाव दिखाई पड़ता है। हिन्दू-हृदय और मुसलमान हृदय आमने-सामने करके अजनबीपन मिटाने वालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा। इन्होंने मुसलमान होकर हिन्दुओं की कहानियाँ हिन्दुओं की ही बोली में पूरी सहृदयता से कह कर उनके जीवन की मर्मस्पर्शी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया।" (जायसी ग्रंथावली, भूमिका, पृ. 2)।

जायसी मूलतः प्रेम के कवि हैं। आध्यात्मिक व्यंजना के धरातल पर न देखकर अगर हम इस प्रेमकथा को लौकिक और मानवीय भूमि पर देखें तो भी हम पहचान सकते हैं कि जायसी ने मन को शीतल करने वाले, मनुष्य को सोने की तरह उज्जवल रूप में निखारने वाले तथा आत्मा की पवित्र आभा को उजागर करने वाले प्रेम का चित्रण किया है। जायसी की प्रेमकथा में फारसी परंपरा के अनुसार भावों की तीव्रता और आवेश भी है तथा भारतीय जीवन की विभिन्न दशाओं और स्थितियों का मार्मिक चित्रण भी है।

जायसी ने रत्नसेन और पद्मावती के प्रेम को एकांतिक और लोकनिरपेक्ष रूप में प्रस्तुत नहीं

किया है। उन्होंने प्रेम को गृहस्थ जीवन के सुख-दुख के बीच रखकर चित्रित किया है। इस प्रेम में त्याग का ताप है और बलिदान के लिए तत्पर हृदय है।

जायसी के "पद्मावत" का एक महत्वपूर्ण पक्ष है लोकजीवन का चित्रण। जायसी ने कथा तो राजा-रानियों की कही है लेकिन इस के पीछे जायसी का ग्रामीण मन, लोकजीवन से उनका गहरा लगाव भी कदम-कदम पर व्यक्त हुआ है। रत्नसेन, पद्मावती, नागमती का पारिवारिक जीवन, गोरा-बादल की कथा, नागमती का विरह ये सभी ऐसे पक्ष हैं जिनमें जायसी की लोक जीवन में गहरी पैठ का प्रमाण मिलता है। लोकजीवन के हर्ष-उल्लास, अवसाद तथा विषाद के उनके द्वारा दिये गये अनेक चित्र न केवल अत्यंत मर्मस्पर्शी हैं, उनकी पैनी दृष्टि तथा संवेदनशील हृदय का अनोखा प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। नागमती के विरह वर्णन में जायसी भूल जाते हैं कि वे एक रानी के दुख का वर्णन कर रहे हैं। नागमती सामान्य ग्रामीण नारी के हृदय की ही मर्म व्यथा को अपने दुख में व्यंजित करती है।

जायसी के हृदय की उदारता और धर्मनिरपेक्ष मानसिकता का प्रमाण हमें गोरा-बादल की बलिदान कथा और नागमती-पद्मावती के सती होने की घटना से भी मिलता है। ध्यान देने की बात यह है कि अलाउद्दीन खिलजी जो एक मुस्लिम शासक था, इस प्रबंध काव्य में खलनायक की तरह प्रस्तुत किया गया है। दूसरी ओर जायसी ने गोरा और बादल के साहस और बलिदान को तथा नागमती और पद्मावती के आत्म बलिदान को जिस गौरव और गरिमा के साथ प्रस्तुत किया है वह जायसी को एक उदार मुसलमान ही नहीं एक संवेदनशील मनुष्य के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

आज अगर जायसी हमारे लिए प्रासंगिक हैं तो इन्हीं संदर्भों में। डॉ. शिव कुमार मिश्र के शब्दों में, "जायसी सच्चे अर्थों में लोकजीवन के गायक हैं। उनकी कथा भी लोकमानस में परंपरा से व्याप्त कथा है, जिसे उन्होंने बड़ी तन्मयता तथा बड़ी मस्ती के साथ कहा है। उनकी भाषा, उनकी कल्पना, उनकी अभिव्यक्ति शैली, इन सबका लोकजीवन से सीधा संबंध है। वे बड़ी सहजता के साथ, एक आत्मीय रूप में हिन्दू परिवारों में प्रवेश कर गए हैं, और उनके एक-एक विश्वास, मान्यता, रीति-रिवाज, तिथि-त्यौहार आदि को बड़ी विश्वसनीयता के साथ उनके समक्ष प्रस्तुत किया है। उनके ऋतु वर्णन तथा बारहमासा में अवध के सामान्य जन के जीवन से सीधा साक्षात्कार किया जा सकता है।" (भक्तिकाव्य और लोक जीवन)।

बोध प्रश्न

13 निम्नलिखित विशेषताओं में से जो विशेषताएँ मसनवी शैली के महाकाव्य पर तथा जो संस्कृत-पद्धति के महाकाव्य पर लागू होती हों, उन्हें अलग-अलग कीजिए।

i) सर्गबद्ध पद्धति
ii) खंडों में विभाजन
iii) उदात्त चरित नायक
iv) शाहेवक्त की प्रशंसा
v) दुष्टों की निंदा और सज्जनों की प्रशंसा
vi) कथावस्तु इतिहास सम्मत या पौराणिक

14 निम्नलिखित में से कौन-सी विशेषताएँ "पद्मावत" पर लागू नहीं होती।

क) खंडों में विभाजन
ख) शाहेवक्त की प्रशंसा
ग) सज्जनों की प्रशंसा और दुष्टों की निंदा
घ) लौकिक प्रेम कथा द्वारा अलौकिक प्रेम की व्यंजना ( )

15 जायसी की काव्य भाषा की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

....

5.9 संदर्भ सहित व्याख्या

आपने पद्मावत के संबंध में अब तक जो अध्ययन किया है, उससे उसकी विशेषताओं से भली-भांति परिचित हो गये होंगे। जायसी का काव्य के उपर्युक्त विवेचन के साथ हमने "पद्मावत" के कुछ अंशों को वाचन के लिए भी प्रस्तुत किया है। इन अंशों के साथ कठिन शब्दों के अर्थ भी दे दिये गये हैं। लेकिन कई बार शब्दों का अर्थ जानने पर भी हम काव्य के भावार्थ को नहीं समझ पाते। पठित अंशों के भावार्थ को समझने में आपको उपर्युक्त विश्लेषण मदद करेगा। हम यहाँ "पद्मावत" की कुछ चौपाइयों और एक दोहे की व्याख्या प्रस्तुत कर रहे हैं। आप इन्हें ध्यान से पढ़िए और अन्य अंशों की स्वयं व्याख्या करने की कोशिश कीजिए।

काव्यांश

तपै लाग अब जेठ असाढ़ी। भै मोकहँ यह छाजनि गाढ़ी।।
तन तिनुवर या झूरों खरी। मैं विरहा आगरि सिर परी।।
सौंठि नाहिं लगि बात को पूँछा। बिनु जिय भए मूँज तन छूँछा।।
बंध नाहिं और कंध न कोई। बाक न आव कहौं केहि रोई।।
ररि दूबरि भई टेक बिहूनी। थंभ नाहिं उठि सकै न थूनी।।
बरसहिं नैन चुअहिं घर माहाँ।। तुम्ह बिनु कंत न छाजन छाँहाँ।।
कोरे कहाँ ठाठ नव साजा। तुम्ह बिनु कंत न छाजन छाजा।।

(उपर्युक्त काव्यांश मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा लिखित "पद्मावत" प्रबंध काव्य के "नागमती वियोग खंड" में से लिया गया है। इसका वाचन आप भाग 5.5 कर चुके हैं। राजा रत्नसेन जोगी बनकर सिंहलद्वीप गये हुए हैं और लगभग एक साल बीत चुका है। उनकी पत्नी नागमती उनके वियोग में अपनी भावनाओं को बारहमासा के रूप में व्यक्त करती हैं। "बारहमासा" की शुरुआत आषाढ़ माह से होती है और यह जेठ-आषाढ़ पर ही समाप्त होता है। हमने आपको बताया था कि जायसी ने नागमती के विरह वर्णन में सामान्य नारी की विरह वेदना को वाणी दी है। उपर्युक्त चौपाइयाँ इसका सबसे उपयुक्त प्रमाण है। इन चौपाइयों के दो अर्थ किये जाते हैं। एक अर्थ अनुसार जेठ-आषाढ़ की तपती धूप में विरह से दग्ध होकर नागमती किस तरह रोगग्रस्त हो गयी है, इसका मार्मिक चित्रण है। दूसरे अर्थ के अनुसार नागमती अपने घर के छप्पर की दुर्दशा का वर्णन करती है। और अपने पति से प्रार्थना करती है कि वह आये और घर के छप्पर को ठीक कराये। यहाँ विरोधाभास यह है कि जायसी यह भूल गये हैं कि नागमती मामूली ग्रामीण स्त्री नहीं है वरन् इतिहास प्रसिद्ध चित्तौड़गढ़ की रानी है। वह झोपड़ी में नहीं महलों में रहती है। लेकिन जायसी ने अगर ऐसा वर्णन किया तो इसका कारण यह था कि उनके जीवानानुभव में तो ग्रामीण स्त्री की पीड़ा ही थी। जायसी ने नागमती के बहाने सामान्य नारी हृदय की पीड़ा को वाणी देकर लोक जीवन के साथ अपनी गहरी संपृक्ति को व्यक्त किया है। उपर्युक्त चौपाइयों की व्याख्या करते हुए हमें इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखना होगा। चौपाइयों के दो अर्थों का आधार क्या है। आधार है कवि द्वारा प्रयुक्त द्विअर्थी शब्द। उदाहरण के लिए पहली चौपाई में प्रयुक्त "छाजनि" का अर्थ छाजन नामक रोग भी है और छप्पर भी है। दूसरी चौपाई में "तन" शरीर के अर्थ में है और "तान" के अर्थ में भी "आगरि" का अर्थ खान से भी है और अर्गला से भी। "सौंठि" पूंजी को भी कहते हैं और सरकंडे को भी इस प्रकार दोहरे अर्थ वाले शब्दों का प्रयोग करके जायसी ने उपर्युक्त चौपाइयों को दो अर्थों में प्रस्तुत किया है। हम यहाँ दोनों अर्थों को प्रस्तुत कर रहे हैं। (इन पंक्तियों का संदर्भ उपर्युक्त विवेचन के आधार पर आप स्वयं लिखिए।)

व्याख्या 1 : नागमती जेठ-आषाढ़ के माह में अपनी दशा का वर्णन करते हुए कहती है कि अब मेरे शरीर में विरह की जेठ-असाढ़ी तपने लगी है अर्थात् विरह की ज्वाला में शरीर दग्ध हो रहा है। यह तपन मेरे लिए गहन या सघन छाजन रोग हो गयी है। इस रोग से शरीर कमजोर हो गया है और सूखता जा रहा है। मेरे सिर पर विरह की खान आ पड़ी है। मेरे पास कोई पूँजी तो है नहीं इसलिए अब स्नेह से कौन मेरी बात पूछेगा? बिना प्राण के मेरा शरीर मूँज की तरह छूँछा हो गया है। बिना पति के मेरा कोई बंधु है न कोई सहारा देने वाला है। मुहँ से कोई बात नहीं निकलती। मैं किससे रो-रोकर अपनी दुखद कथा सुनाउँ? मैं रो-रोकर दुबली हो गयी हूँ और बिल्कुल बेसहारा भी हूँ। जब थंभ ही नहीं रहा तो थूनी कहाँ उठ सकती है अर्थात् बिना पति के सहारे के मैं भी आधारहीन हो गयी हूँ। मेरी आँखें आँसू बरसाती रहती हैं, सारा घर आँसुओं से भर गया है। हे कंत, तुम्हारे बिना न शोभा है, न छाँह है। तुम्हारे न होने से हे कंत, अब कौन नया साज सजाएगा? तुम्हारी अनुपस्थिति में तो वस्त्र भी शोभा नहीं देते।

व्याख्या 2 : नागमती जेठ असाढ़ के माह में अपने घर की दीन-हीन दशा का वर्णन करते हुए कहती है कि अब जेठ-असाढ़ की गर्मी पड़ने लगी है। मेरे लिए फूस का छप्पर दुखदायी हो गया है। इसका तान सिमटकर फूस का ढेर मात्र रह गया है। मैं उसके नीचे खड़ी सूखती जा रही हूँ। छप्पर में लगी अर्गला निकल गई है और दरवाजा खोलने वालों के सिर पर आ गिरती है। छप्पर के नीचे उसके अगले सिरे पर मजबूती के लिए बाँधा जाने वाला सरकंडे के बत्ते का तो कहना ही क्या जबकि सरकंडा ही गिर चुका है। डोरी के खुल जाने से गूँज भी कमजोर पड़ गयी है। बंधन भी नहीं रहा और छप्पर जिस पर टिका रहता है वह दीवार भी नहीं है। सहारे के लिए छोटी आड़ी लगी हुई बाक भी नहीं है। ऐसे में रो-रोकर अपनी व्यथा किसे कहूँ। यह दुपल्ली की छान भी अपनी जगह से खिसक गयी है। उसमें जो खंभा लगा था वह भी नहीं रहा। इससे सहारे के लिए लगाई जाने वाली बल्ली (थूनी) भी नहीं लग सकती। छप्पर भी धुआँ निकालने के लिए जो धूमनेत्र (नैन) बने थे, उनमें से अब पानी घर में टपकता है। हे कंत, तुम्हारे बिना यह छप्पर अब छाँह नहीं करता। पूरे बाँस (कोरे) भी नहीं है जिससे कि छप्पर का नया ठाठ बनाया जा सके। हे कंत, तुम्हारे बिना छाजन नहीं छाई जा सकती।

(उपर्युक्त दोनों अर्थों में से दूसरे अर्थ केवल विरह की भावात्मक वेदना को ही व्यक्त नहीं करता बल्कि पति के न रहने से ग्रामीण स्त्री की दीन-हीन दशा का भी अत्यंत मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करता है। व्याख्या के बाद "विशेष" के अंतर्गत उपर्युक्त काव्यांश की भाव और शिल्प संबंधी विशेषताओं का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।)

विशेष : 1 उपर्युक्त चौपाइयों में जायसी का काव्य पर लोक जीवन के प्रभाव की अभिव्यजंना हुई है।
2 उपर्युक्त चौपाइयों में श्लेष अलंकार के द्वारा दो अर्थों को व्यक्त किया गया है। (जब वाक्य में एक से अधिक अर्थ वाले शब्द या शब्दों का प्रयोग किया जाए और उनके द्वारा एक से अधिक अर्थों को व्यक्त किया जाए तो वहाँ श्लेष अलंकार होता है) जैसे "यै मोकहँ यह छाजनि गाढी" में 'छाजनि' के दो अर्थ हैं। इससे इस पंक्ति के दो भिन्न अर्थ प्रकट होते हैं।
3 उपर्युक्त पंक्तियों की भाषा अवधी है और इनमें भी देशज शब्दों का अधिक प्रयोग है जैसे छाजनि, सांठि, छूँछा आदि।

काव्यांश

सुभर समुद अस नैन दुइ मानिक भरे तरंग।
आवत तीर जाहिं फिरि काल भँवर तेन्ह संग।।

संदर्भ : उपर्युक्त दोहा "पद्मावत' के नखशिख खंड में से लिया गया है। इसमें कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने हीरामन तोता द्वारा पद्मावती की आँखों के सौंदर्य का वर्णन किया है। हीरामन राजा रत्नसेन के सम्मुख पद्मावती के नेत्रों की उपमा समुद्र से देते हुए कहता है।

व्याख्या : पद्मावती के दोनों नेत्र जल से भरे समुद्र की तरह हैं जिनकी लहरों में माणिक्य भरे हैं। काली पुतलियाँ रूपी काल भँवर उन लहरों के साथ किनारे तक आते हैं और लौट जाते हैं।

विशेष : 1 जायसी ने नेत्रों की उपमा समुद्र से और काली पुतलियों को काल भँवर बताकर पद्मिनी के सौंदर्य में विराटता की व्यंजना की है।
2 इस दोहे में कवि ने प्रथम पंक्ति में उपमा अलंकार का प्रयोग किया है और काल भँवर में रूपक का। समुद्र और काल-भँवर दोनों में जो विराटता का बोध होता है वह पद्मिनी के सौंदर्य को दिव्य और अलौकिक बनाता है।

अभ्यास

4 निम्नलिखित काव्यांश की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।

गढ़ तस बाँक जैसि तोरि काया। परखि देखु तैं ओहि की छाया।।
पाइअ नाहिं जूझि हठि कीन्हे। जेइँ पावा तेइँ आपुहि चीन्हे।।
नौ पौरी तेहि गढ़ मँझिआरा। औ तहँ फिरहिं पाँच कोटवारा।
दसवँ दुआर गुपुत एक नाँकी। अगम चढ़ाव बाट सुठि बाँकी।।
भेदी कोई जाइ ओहि घाटी। जौ लै भेव चढ़ै होइ चाँटी।

संदर्भ :

....

....

....

....

व्याख्या :

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

विशेष :

....

....

....

....

....

....

5 **पिय सौं कहेहु सँदेसरा ऐ भँवरा ऐ काग।**
सो धनि बिरहें जरि गई तेहिक धुआँ हम लाग।।

संदर्भ :

....

....

....

....

व्याख्या :

....

....

....

....

....

विशेष :

....

....

....

....

5.10 सारांश

- "पद्मावत" के रचयिता मलिक मुहम्मद जायसी सूफी फकीर थे। वे जायस के रहने वाले थे और उनका जन्म सन् 1494 के आसपास माना जाता है। जायसी अत्यंत उदार और प्रतिभा संपन्न व्यक्ति थे। देखने में सुंदर न थे लेकिन उनका हृदय अत्यंत कोमल और भावप्रवण था जिसका परिचय "पद्मावत" में मिलता है। जायसी के तीन ग्रंथ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—आखिरी कलाम, अखरावट और पद्मावत। इकाई को पढ़ने के बाद आप अब आप जायसी की रचना व्यक्तित्व का परिचय दे सकते हैं।
- जायसी सूफी मत में विश्वास करते थे। सूफी मत के अनुसार ईश्वर एक है जो सारी सृष्टि में व्याप्त है तथा जिसे केवल प्रेम द्वारा पाया जा सकता है। ईश्वरीय प्रेम ही सच्चा प्रेम है। लौकिक प्रेम द्वारा इस अलौकिक प्रेम को अभिव्यक्त किया जा सकता है। अब आप जायसी के विचारों की व्याख्या कर सकते हैं।
- जायसी का पद्मावत प्रबंध काव्य है जिससे चित्तौड़गढ़ के राजा रत्नसेन और पद्मिनी की प्रेम और बलिदान की कथा को काव्य का विषय बनाया गया है। इस कथा का आधार इतिहास और कल्पना दोनों है। रत्नसेन और अलाउद्दीन के बीच संघर्ष की ऐतिहासिक घटना को "सिंहलद्वीप" की काल्पनिक कथा के साथ जोड़ा गया है। अब आप "पद्मावत" की कथा की ऐतिहासिकता पर विचार कर सकते हैं।
- जायसी मूलतः "प्रेम की पीर" के कवि हैं। उन्होंने लौकिक प्रेम के द्वारा अलौकिक प्रेम की व्यंजना भी की है। पद्मावती के रूप में ईश्वरीय नूर है तो पद्मावती को पाने के लिए रत्नसेन द्वारा सिंहलद्वीप की यात्रा साधक की कठिन साधना का प्रतीक है। इस आध्यामिक व्यंजना के साथ जायसी में लोकजीवन का माधुर्य भी है। जिसका प्रभाव हम नागमती के वियोग में देख सकते हैं। नागमती का वियोग एक रानी का वियोग न रह कर सामान्य नारी का वियोग बनकर उभरा है। अब आप पद्मावत के प्रेम तत्व का विवेचन कर सकते हैं।
- कबीर की तरह जायसी भी रहस्यवादी कवि थे। उन पर भावात्मक रहस्यवाद का प्रभाव अधिक था। सिंहलद्वीप वर्णन आदि में साधनात्मक रहस्यवाद का प्रभाव भी दिखाई देता है। अब आप जायसी के रहस्यवाद की विशेषताएँ बता सकते हैं।
- जायसी का "पद्मावत" अवधी भाषा में लिखा प्रबंध काव्य है। इनकी भाषा में ठेठ अवधी का माधुर्य है। जायसी ने यह प्रबंध फारसी की मसनवी शैली में लिखा है लेकिन इस पर भारतीय महाकाव्य की विशेषताओं का भी प्रभाव दिखाई देता है। जायसी ने अपने ग्रंथों की रचना दोहा-चौपाई छंद में की है। "पद्मावत" की कथा पूर्णतः अलौकिक है या लौकिक, इस प्रश्न पर भी विचार किया गया है और यह बताया गया है कि पद्मावत की कथा यद्यपि लौकिक है परंतु इसमें आध्यात्मिक अर्थ की व्यंजना भी हुई है। जायसी ने काव्य में साम्यमूलक अलंकारों विशेषतः उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा का अधिक प्रयोग मिलता है। उनके काव्य में शृंगार रस की प्रधानता है लेकिन वीर और शांत रस की भी व्यंजना मिलती है। अब आप जायसी के काव्य के शिल्प कक्ष की विशेषताएँ बता सकते हैं।
- जायसी ने धार्मिक और सांप्रदायिक संकीर्णता से ऊपर उठकर जिन मानवीय भावनाओं को अपने काव्य का विषय बनाया वे उनकी उदारता और मानवता का प्रमाण है। जायसी लोक जीवन के कुशल चितेरे हैं। अपने मानवीय और धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण के कारण उनका काव्य आज भी हमारे लिए प्रासंगिक और महत्वपूर्ण है। आप जायसी के काव्य की प्रासंगिकता पर अपने विचार प्रस्तुत कर सकते हैं।

5.11 शब्दावली

कयामत : इस्लाम धर्म की मान्यता के अनुसार सृष्टि के अंत में अल्लाह जब मनुष्य के कर्मों का फैसला करेंगे, वह दिन कयामत का दिन होगा।

शेरशाह सूरी : मुगल बादशाह हुमायूँ को हटाकर दिल्ली का बादशाह बनने वाले शेरशाह सूरी के समय जायसी ने "पद्मावत" की रचना की थी। शेरशाह ने दिल्ली पर 1540 से 1545 ई. तक शासन किया।

शरीअत : कुरान में बताये गये विधि-निषेध जिनका पालन प्रत्येक मुसलमान का कर्त्तव्य माना गया है।

शार्दूल : सिंह की एक विशेष जाति।

आइने अकबरी : अकबर के दरबार के विद्वान अबुल फजल द्वारा लिखित रचना जिसमें अकबर युगीन कानून, संस्थाओं भौगोलिक क्षेत्रों तथा आर्थिक और राजस्व आँकड़ों का वर्णन मिलता है। इसकी रचना सोलहवीं शती के अंतिम दशक में हुई।

घुँघची : आधा काला तथा आधा लाल होता है। घुँघची एक प्रकार की वनैली लता से पैदा होती है।

5.12 उपयोगी पुस्तकें

शुक्ल, रामचंद्र (संपादक) : *जायसी ग्रंथावली*, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

अग्रवाल, वासुदेवशरण : *पद्मावत*, साहित्य सदन, चिरगाँव (झांसी)।
त्रिगुणायत, डॉ गोविंद : *जायसी का पद्मावत : काव्य और दर्शन*, साहित्य निकेतन, कानपुर।

अमरेश, अमरबहादुर सिंह : *जायसी : एक नव्यबोध*, साहित्य कुटीर, लखनऊ।

5.13 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1 ख 2 घ 3 क

4 सूफी मत के अनुसार इश्क मज़ाज़ी अर्थात् लौकिक प्रेम के द्वारा इश्क हकीकी अर्थात् वास्तविक प्रेम (ईश्वरीय प्रेम) को प्राप्त किया जा सकता है। लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना की जा सकती है।

5 सिंहलद्वीप की कल्पना जायसी ने संभवतः नाथ पंथ से ली है। शुक्लजी के अनुसार गोरखपंथी साधु सिंहलद्वीप को एक सिद्धपीठ मानते हैं। उनका मानना है कि योगियों को सिद्धि के लिए सिंहलद्वीप जाना होता है जहाँ शिव साधक की परीक्षा लेते हैं और पद्मिनी स्त्रियाँ साधक को लुभाती हैं।

6 ग 7 घ

8 i) लोकजीवन का चित्रण।
ii) भारतीय नारी हृदय की भावना का चित्रण।
iii) व्यष्टि (व्यक्ति) वेदना को समस्त सृष्टि में व्याप्त बताता।

9 भारतीय परंपरा में प्रेम की ज्वाला में स्त्रियाँ ही जलती हैं, उन्हें ही विरह की वेदना सहनी पड़ती है जबकि फारसी परंपरा में विरहाग्नि में जलना प्रेम के लिए कष्ट उठाना प्रेमियों के हिस्से में आता है। फारसी शैली का प्रेम एकांतिक व लोक बाह्य होता है जब कि भारत में प्रेम सामाजिक पारिवारिक परिस्थितियों के बीच विकसित होता है। जायसी के यहाँ इन दोनों परंपराओं का संयोग मिलता है।

10 i) सूफी मत
ii) अद्वैतवाद
iii) नाथपंथ

11 i) सिंहलगढ़ : मनुष्य का शरीर
ii) नौ पोरी : नाक, कान आदि नौ इंद्रिया
iii) दसवाँ द्वार : ब्रह्मरंध्र
iv) पाँच कोतवाल : काम, क्रोध, मद, लोभ और माया नामक विकार
v) चार पड़ाव : सूफी साधना की चार अवस्थाएँ : शरीअत, तरीकत, हकीकत, और मारफत।

12 जायसी ने पद्मावती के सौंदर्य में ईश्वरीय नूर या सौंदर्य की कल्पना की है। उदाहरण के लिए "पद्मावत" के 'मानसरोदक खंड' में वे पद्मावती के रूप को पारस रूप की संज्ञा देते हैं अर्थात् ऐसा रूप जिसके संपर्क में आने वाली वस्तु में भी वही रूप प्रतिबिंबित होने लगता है। तात्पर्य यह है कि इस सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में ईश्वरीय सौंदर्य की अभिव्यक्ति हो रही है

13 मसनवी शैली : ii), एवं iv)
संस्कृत शैली : i), iii) v) और vi)

14 ग

15 i) अवधी का ठेठ रूप
ii) लोक भाषा का माधुर्य
iii) सहजता और स्वाभाविकता

अभ्यास

1 "पद्मावत" की कथा के दो भाग हैं। पहले भाग में चित्तौड़गढ़ के राजा रत्नसेन और सिहलद्वीप की रानी पद्मिनी की प्रेमकथा का वर्णन है। कथा के इस भाग में रत्नसेन और पद्मिनी के नाम के अतिरिक्त कुछ भी इतिहास सम्मत नहीं है। दूसरे भाग में रत्नसेन और अलाउद्दीन की संघर्ष कथा तथा गोरा-बादल की बलिदान कथा इतिहास सम्मत है लेकिन काव्य का रूप प्रदान करने के लिए जायसी ने उसमें काफी परिवर्तन किये हैं। जैसे राघवचेतन एक काल्पनिक पात्र हैं। जायसी ने राजा को छुड़वाने, अलाउद्दीन द्वारा पद्मिनी को देखने, पद्मिनी के जौहर की बजाय सती होने जैसे कई छोटे-बड़े परिवर्तन किये हैं। जायसी का उद्देश्य भी इतिहास कहना नहीं है। इतिहास की कथा का प्रयोग संभवतः इसलिए किया क्योंकि लोककथाओं और लोकगीतों में रत्नसेन पद्मिनी की कथा पहले से लोकप्रिय थी। इन सब कारणों से पद्मावत को ऐतिहासिक प्रबंध काव्य नहीं माना जा सकता।

2 उपभाग 5.5.2 पढ़िए और उत्तर लिखिए।

3 रहस्यवाद सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में ईश्वर की परोक्ष सत्ता का आभास पाना, उससे अपना संबंध जोड़ना और ईश्वरीय सत्ता के साथ अपने को एकाकार महसूस करना रहस्यवाद है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रहस्यवाद के दो भेद किये हैं – भावात्मक रहस्यवाद और साधनात्मक रहस्यवाद। भावात्मक रहस्यवाद में जीव ईश्वर के प्रति गहन प्रेमानुभूति महसूस करता है। जायसी के यहाँ प्रेम की वह तीव्रता ही प्रबंध काव्य का आधार है इसलिए उनके यहाँ भावात्मक रहस्यवाद का प्रभाव अधिक है। साधनात्मक रहस्यवाद में हठयोग की साधना पद्धति का सहारा लिया जाता है। हठयोग की साधना द्वारा साधक सुषुम्ना नाड़ी द्वारा कुंडलिनी जाग्रत करता है जिससे साधक की आत्मा परमात्मा से एकाकार हो जाती है। यही सिद्धावस्था है जहाँ तक पहुँचना साधक का लक्ष्य होता है। जायसी ने हठयोग की इस साधना का प्रयोग अपने काव्य में किया है लेकिन इसका उद्देश्य प्रेम मार्ग की कठिनाइयों को व्यक्त करना है।

4 **संदर्भ :** उपर्युक्त चौपाइयाँ जायसी द्वारा रचित पद्मावत के पार्वती-महेश खंड से उद्धृत की गयी हैं। उपर्युक्त पंक्तियों में महादेव राजा रत्नसेन से सिहलगढ़ का वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्या : महादेव कहते हैं कि राजन जैसा तेरा शरीर बाँका है वैसा ही यह सिहलगढ़ भी है। तू अगर परीक्षा करके देखे तो तुझे मालूम हो जाएगा कि तू उसी की छाया है। इस किले की विजय हठ करके युद्ध से नहीं पाई जा सकती। उसे वही पा सकता है जिसने अपने आप को पहचान लिया है। इस किले के अंदर नौ द्वार है, जहाँ पाँच कोतवाल घूम कर पहरा देते हैं। यहाँ एक दसवाँ द्वार भी है जिसका रास्ता गुप्त है। उसकी चढ़ाई अत्यंत कठिन है और रास्ता भी टेढ़ा-मेढ़ा है। कोई भेदिया ही उस घाटी तक पहुँच सकता है जो रास्ते का भेद पा लेता है वह चींटी अर्थात् सूक्ष्म रूप धारण कर उपर्युक्त अर्थ सिहलगढ़ के रास्ते का वर्णन करता है।

योगपरक अर्थ : गढ़ वैसा बाँका है जैसा शरीर है। परीक्षा करके देखो दोनों में रूप-प्रतिरूप भाव है। बलपूर्वक प्राण से जूझकर उसे वश में करना कठिन है। जिसने आत्मा को पहचान लिया वह प्राण सिद्धि भी पा लेता है। शरीर में नौ इन्द्रिय द्वार है और पाँच प्राण उसकी रक्षा करते हैं। ब्रह्मरंध्र नामक दसवाँ द्वार गुरु स्थान है। वहाँ तक पहुँचने का मार्ग अगम्य और टेढ़ा-तिरछा है। गुरु से रहस्य जान लेने पर शिष्य उस कठिन स्थान तक पहुँच जाता है और एक-एक चक्र को वश में करता हुआ पिपीलिका (चींटी) गति से आगे बढ़ता है।

विशेष : 1 उपर्युक्त पद्यांश में जायसी ने हठयोग की साधना का वर्णन किया है।
2 यहाँ समासोक्ति अलंकार का प्रयोग है क्योंकि काव्य का प्रस्तुत अर्थ तो सिहलगढ़ का वर्णन ही है लेकिन इस प्रस्तुत से योगपरक अप्रस्तुत अर्थ की भी व्यंजना की गयी है।
3 हठयोग साधना में ज्ञान के मार्ग की एक गति चक्र भेदन पिपीलिका गति कही जाती है, यहाँ उसी की ओर संकेत है।

5 व्याख्या के लिए इकाई ध्यान से पढ़ें।

इकाई 6 मीराबाई

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 मीराबाई का परिचय
6.2.1 रचनाकार व्यक्तित्व
6.2.2 जीवन-परिचय
6.2.3 रचनाएं
6.3 विभिन्न सम्प्रदायों का प्रभाव
6.4 भक्ति-भावना
6.4.1 मीरा और आंडाल की भक्ति भावना की तुलना
6.4.2 वेदनानुभूति बनाम प्रेमानुभूति
6.5 गीतिकाव्य धारा
6.6 अभिव्यंजना शिल्प
6.6.1 काव्य-भाषा
6.6.2 प्रतीक योजना
6.6.3 अलंकार योजना
6.6.4 छंद-विधान
6.7 काव्य-वाचन एवं व्याख्या
6.8 मूल्यांकन
6.9 सारांश
6.10 शब्दावली
6.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें
6.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप :

- भक्ति-आंदोलन की सगुण भक्ति-धारा से मीरा का संबंध समझा सकेंगे
- मीरा के व्यक्तित्व, जीवन एवं रचनाओं के बारे में बता सकेंगे
- मीरा की भक्ति-भावना का विश्लेषण कर सकेंगे
- गीतिकाव्य-धारा में मीरा के योगदान की चर्चा कर सकेंगे
- मीरा काव्य के अभिव्यंजना शिल्प की विशिष्टताओं को बता सकेंगे
- मीरा के कुछ पदों की व्याख्या कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आपने भक्तिकाव्य के स्वरूप और विकास के बारे में पढ़ा है। आप जान चुके हैं कि भक्तिकाव्य की दो प्रमुख धाराएँ हैं– निर्गुण भक्तिधारा और सगुण भक्तिधारा। निर्गुण भक्तिधारा की दोनों शाखाओं ज्ञानाश्रणी और प्रेममार्गी के प्रमुख कवि कबीर और जायसी के विषय में आपने इकाई चार और पाँच में पढ़ा है। सगुण भक्ति-धारा की दो शाखाएँ हैं–कृष्ण भक्तिशाखा और राम भक्तिशाखा। इस इकाई में आप प्रमुख कृष्ण भक्त कवयित्री मीरा के काव्य-सौंदर्य का अध्ययन-आस्वादन करेंगे।

6.2 मीराबाई का परिचय

6.2.1 रचनाकार-व्यक्तित्व

मीराबाई के रचनाकार व्यक्तित्व का निर्माण दो विरोधी भावों के सामंजस्य से होता है। एक ओर तो उनमें युग और जीवन-संघर्ष की कठोरता के दर्शन होते हैं तो दूसरी ओर भक्तिधारा की

कोमल निर्मलता को गिरधर गोपाल के प्रेम की तन्मयता, अनन्यता में उनका मन एकाकार होता दिखाई देता है। मीरां में विदग्ध प्रेमिका का प्रणय निवेदन, मधुर आकर्षण, और समर्पण का साकार स्वरूप मिलता है। यदि जीवन-संघर्ष से शक्ति पाना ही रचनाशीलता की कसौटी मानी जाय तो मीरा के व्यक्तित्व के समकक्ष हिंदी के भक्तिकाल में दूसरा व्यक्तित्व खोज निकालना कठिन है। मीरा राजसत्ता को ठुकरातीं हैं, पुरुष-अत्याचार को पराजित करतीं हैं और भक्तिपथ की घोर साधिका बन जाती हैं। यह सच है कि उन्होंने निर्गुण भक्तिधारा के ज्ञानियों और योगियों से भी बहुत कुछ सीखा था—पर योगवाद के दर्शन में उनकी आस्था न थी। वैष्णव भक्ति धारा के प्रवाह में अपने व्यक्तित्व को निमग्न कर लेना ही उन्हें भाता था।

6.2.2 जीवन परिचय

मीरा के जीवनवृत को लेकर विद्वानों में भारी मतभेद रहा है। कुछ जनश्रुतियों का आधार लेकर इन्हें महाराणा कुंभा की पत्नी और जयमल राठौर की पुत्री कहा गया है। कर्नल टण्ड ने मीराबाई को विद्यापति का समकालीन माना है। सर्वप्रथम मीरा को विद्यापति का समकालीन मानने का मत डॉ. ग्रियर्सन ने व्यक्त किया था। किन्तु गौरी शंकर हीराचंद ओझा ने इस मत का खण्डन किया है। इधर की खोजों से भी विद्वानों ने सिद्ध किया है कि मीरा को विद्यापति का समकालीन मानना उचित नहीं है। इसी प्रकार उन्हें जयमल राठौर की पुत्री भी नहीं माना जा सकता है। वास्तविकता यह है कि जयमल मीरा के पिता न होकर चचेरे भाई थे। मीरा के पिता का नाम रत्नसिंह था और वे उन्हीं की इकलौती पुत्री थीं। इस आधार से अनुमान लगाया गया है कि मीराबाई का जन्म सन् 1498 ई. के आस-पास हुआ होगा। कुछ ऐसे भी विद्वान हैं जो मीरा का जन्म 1504 ई. मानते हैं। किन्तु इस मत को अधिक समर्थन नहीं मिला है।

मीरा का जन्म स्थान जोधपुर से 35 मील दूर कुड़की नामक गाँव है। मीरा अपने पदों में कई बार "मेड़तणी" होने का उल्लेख करतीं हैं। यह भी लोक प्रचलित मत है कि मीरा का बचपन से ही 'गिरधर गोपाल' के प्रति विशेष अनुराग था। एक साधु से प्राप्त कृष्ण की मूर्ति को वे अपने साथ ससुराल ले गई थीं—इस घटना से संबंधित अनेक लोककथाएँ प्रचलित हैं। कुछ भी हो मीरा के व्यक्तित्व पर उनके पितामह रावदूदा की गहरी छाप पड़ी। मीरा की माता का बचपन में देहांत हो जाने के कारण और पिता का युद्ध में व्यस्त रहने के कारण पालन-पोषण ठीक से न हो सका। वे रावदूदा के पास कुड़की से मेड़ता लाई गईं और उनका विवाह बाल्यावस्था में ही महाराणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र कुंवर भोजराज के साथ सन् 1516 ई. में हुआ। विवाहोपरांत वे अपनी ससुराल मेवाड़ गईं। थोड़े ही समय के बाद उनके पति का देहांत हो गया। इस प्रकार मीरा अपनी युवावस्था में ही विधवा हो गईं। पति के न रहने पर मीरा ने गिरधरनागर की ओर एक निष्ठभाव से चित्त को लगा दिया। साधु संतों की संगति की ओर भी झुक गईं। राजमहल त्यागकर मंदिरों में गिरधर की मूर्ति के आगे तन्मयभाव से नृत्य करने का उल्लेख भी कई पदों में मिलता है। ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि मीरा का तुलसीदास से पत्र-व्यवहार हुआ था और तुलसी ने "जाके प्रिय न राम वैदे ही" जैसा पद उन्हीं को सांत्वना देने के लिए लिखा था। किन्तु समय के हिसाब से यह पत्र-व्यवहार असम्भव है। एक अनुमान यह भी है कि मीरा के तन्मय संगीत को सुनने अकबर और तानसेन रूप बदल कर आते थे। प्रियदास ने लिखा है 'रूप की निकाई भूप अकबर भाई दृष्टि लिए संग तानसेन देखिने को आयौ है।' किन्तु यह घटना भी कपोल कल्पित ही है। सच बात यह है कि मीरा लोक-लाज तज कर कृष्ण भक्ति में रम गईं। उनका उल्लेख इसी दृष्टि से भक्तिकाल के भक्तिसाहित्य में आदर से मिलता है। मीरा के भक्त-रूप की ख्याति को देखकर बल्लभ सम्प्रदाय के मानने वालों ने इन्हें अपने सम्प्रदाय में दीक्षित करना चाहा—पर मीरां ने अपनी असहमति व्यक्त की। चैतन्य सम्प्रदाय से मीरा का थोड़ा बहुत संबंध रहा था। चैतन्य महा प्रभु राधाकृष्ण के उपासक थे और राजस्थान यात्रा के दौरान मीरा से भेंट हुई थी। किन्तु यह भेंट भी असम्भव लगती है। सच बात यह है कि मीरा राजस्थान छोड़कर वृंदावन में रही थीं और जीवगोस्वामी से भेंट हुई थी। कहते हैं कि जीवगोस्वामी का दम्भ उन्होंने यह कहकर तोड़ा था कि ब्रज में एक मात्र पुरुष कृष्ण है—शेष सभी स्त्रियाँ हैं। किंवदंती प्रसिद्ध है कि वृंदावन में चैतन्य सम्प्रदाय के जीवगोस्वामी रहा करते थे एवं वहाँ के संतसमाज में उनकी बड़ी ख्याति थी। मीरां उनसे मिलने गईं तो उन्होंने पहले तो मिलना स्वीकार नहीं किया। मीरां ने इस अवसर पर कहा—"मैं तो अब तक समझती थी कि वृंदावन में भगवान श्रीकृष्ण ही एकमात्र पुरुष हैं और अन्य सभी लोग गोपी या स्त्री हैं, पर मुझे अब ज्ञात हुआ है कि भगवान के अतिरिक्त अपने को पुरुष समझने वाले यहाँ पर और भी विद्यमान हैं।" इस कथन से जीवगोस्वामी जी अत्यंत प्रभावित हुए और प्रेमावेश में नंगे पांव मीरा से मिलने भाग कर बाहर आये। मीरा उनके साथ रूकीं तथा सत्संग किया। किंतु कुछ समय बाद ही वृंदावन त्यागकर मीरा द्वारिका गईं—"राना की मलिन मति देखी बसी द्वाराबली"। मीरा के घरवालों ने यहाँ भी सताया-जहर पिलाया पर मीरा ने द्वारिका न छोड़ी और वे एक किंवदंती के अनुसार रणछोड़ जी (कृष्ण) की मूर्ति में समा गईं।

6.2.3 मीराबाई की रचनाएँ

मीराबाई के नाम से कुल सात-आठ कृतियों का उल्लेख मिलता है। जिनमें "मीराबाई की पदावली" को छोड़कर शेष सभी कृतियाँ अन्य कवियों द्वारा ही लिखी मानी जाती हैं। जिन कृतियों का भ्रमवश मीरा के नाम से संबंध जोड़ा जाता है–वे हैं–'नरसी जरी रो माहेरो,' 'गीतगोविंद की टीका,' 'रागगोविंद,' 'सोरठ के पद,' 'मीराबाई का मलार', 'गर्वागीत,' 'राग-विहाग' और 'फुटकल पद'।

मीराबाई की एकमात्र प्रामाणिक और उल्लेखनीय कृति "पदावली" है। इसके विद्वानों ने अनेक संशोधित सम्पादित संस्करण निकाले हैं। इनमें "मीराबाई के भजन" लखनऊ 1898 ई. नवल किशोर प्रेस, "मीराबाई की शब्दावली" बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद 1910 ई. "मीराबाई की पदावली" साहित्य सम्मेलन प्रयाग 1932 ई. "मीराबाई की प्रेम साधना" अजंता प्रेस पटना 1947 ई. "मीरा स्मृतिग्रंथ" बंगीय परिषद् कलकत्ता 1950 ई. "मीरा बृहत पद संग्रह" लोक सेवक प्रकाशन, काशी और "मीरा सुधा सिंधु" मीरा प्रकाशन समिति, भीलवाड़ा, राजस्थान 1957 ई. प्रमुख हैं। मीरा के पदों में अन्य संतों के पद भी मिल गए हैं। ऐसी स्थिति के कारण मीरा के मूल पदों को छाँटकर उनका प्रामाणिक पाठ तैयार करना सरल कार्य नहीं है। यहाँ पर "मीराबाई की पदावली" पर थोड़ा विचार करना अपेक्षित है।

मीरा की पदावली

वास्तविकता यह है कि मीराबाई की प्रामाणिक रचनाएँ उनके पद ही हैं। इन पदों की संख्या 25 से लेकर 500 तक घोषित की गई है। मीरा के पदों के आज लगभग पचास संग्रह मौजूद हैं। जिनमें "मीराबाई की पदावली" परशुराम चतुर्वेदी को सर्वाधिक प्रामाणिक माना जाता है। इस पदावली में कुल 202 पद दिए गए हैं। इन सभी पदों में मीरा का भक्त हृदय मधुराभक्ति रस की भावना से छलकता मिलता है। मीरा (प्रकृति) कृष्ण (पुरूष) के सामने आत्म समर्पण का भाव लेकर उपस्थित मिलती हैं। मीरा के जीवन-संघर्षों का इन पदों में जगह-जगह वर्णन मिलता है। गिरधर को मीरा ने सर्वत्र "कांता भाव" से देखा है और उनका हृदय विरह में लोक की सीमाओं का स्वच्छन्द रूप से अतिक्रमण करता है। इन पदों पर विभिन्न संत-सम्प्रदाओं का प्रभाव भी साफ दिखाई देता है। दक्षिण भारत की भक्त कवयित्री आंडाल (आठवीं शताब्दी) की भांति मीरा में कृष्ण के प्रति अखण्ड अनुसक्ति का भाव मिलता है। वैष्णव रस की पद परम्परा में अंण्डाल की भांति मीरा का नाम भी प्रातः स्मरणीय कहा जा सकता है।

"मीराबाई की पदावली" का वर्णन विषय काफी सीमित कहा जा सकता है कुछ पदों में मीरा के व्यक्तिगत जीवन की ओर संकेत है और शेष पदों में आराध्यदेव कृष्ण की भक्ति के पद हैं। इन भक्ति के पदों में विनय, सतुति प्रेमानुभूति, विरह, लीला-गान, रहस्यवाद, आत्म-समर्पण और भाव के रूप सौंदर्य के पद हैं। यह सभी पद गेय-परम्परा की उपलब्धि हैं और हृदय के सहज भाव ही इनका सौंदर्य है।

बोध प्रश्न

1 क) मीराबाई के रचनाकार व्यक्तित्व का निर्माण किन दो विरोधी भावों के मेल से हुआ?

....

....

ख) मीराबाई को किस सम्प्रदाय के लोगों ने अपने सम्प्रदाय में शामिल करना चाहा था और मीरा की इस पर क्या प्रतिक्रिया थी?

....

....

....

ग) मीरा ने जीवगोस्वामी का दम्भ किस तरह तोड़ा?

....

....

....

....

घ) मीरा को जहर पिलाने की किवदंती की चर्चा चार पंक्तियों में कीजिए?

....

....

....

....

ङ) मीरा के पदों का सार्वाधिक प्रामाणिक संग्रह किस नाम से और किसके द्वारा किया गया?

....

....

च) मीरा के पदों का प्रामाणिक पाठ तैयार करने में आज क्या कठिनाई है?

....

6.3 विभिन्न सम्प्रदायों का प्रभाव

मीरा का सम्पूर्ण सृजन सम्प्रदायवाद की छाप से मुक्त है जबकि अपने युग की विचारधाराओं से वे बेखबर नहीं हैं। यह प्रश्न विवाद का विषय रहा है कि मीरा किस सम्प्रदाय में दीक्षित हुई थीं? मीरा पर निर्गुण-सगुण सम्प्रदायों के प्रभाव एक साथ सक्रिय हैं—पर वे किसी से भी बद्ध नहीं हैं। हठयोग का असर है—पर गोरखनाथ के दर्शन से वे दूर हैं। मीरा में हठयोग का सीधा ग्रहण नहीं मिलता। "जोगी और "जोगिन" जैसे शब्दों का ही प्रयोग पाया जाता है। जैसे :

जोगी मत जा, मत जा पाई परू मैं तेरी चेरी हो।
एक स्थान पर मीरां जोगिन बनने को भी तैयार है
तेरे खातिर जोगण हूँगी करवट लूँगी कासी।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवल की दासी।
योगियों के ध्यानयोग से मीरां परिचित हैं—यथा
तेरो मरम नहि पायो रे जोगी।
आसन मारि-गुफा में बैठी, ध्यान हरी को लगायो।

योगासन की मुद्रा में गुफा ध्यान करने का संकेत नाथ—सम्प्रदाय का प्रभाव है।

संत शक्ति से मीरा ने कुछ विधानों को माना है और कुछ का निषेध। उदारता, शील, धैर्य, क्षमा आदि विधेय कर्म हैं और क्रोध, अहंकार, काम, लोभ आदि निषिद्धकर्म। यथा—

राजनाम रस पीजै मनुआँ, राम नाम रस पीजै।
तज कुसंग सत्सग बैठ नित हरि चरचा सुन लीजै।
काम, क्रोध, मद, लोभ मोह कूँ, बहा चित से दीजे।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर ताही के रंग भीजै।

अर्थात् मन तू राम रस का पान कर और बुरी संगति को छोड़कर सत्संग में प्रवृत हो। काम, क्रोध आदि विकारों का नाश करने के लिए हरि की चर्चा आवश्यक है—वही इन बुराइयों से बचा सकता है। चित्त यदि भगवान के आनंद में—रस में मग्न हो जाय—तो जीवन धन्य हो सकता है। इसीलिए मीरा गिरधर नागर अर्थात् लोकरक्षक ब्रह्म की शरण में गई है।

संतों की भांति मीरा सत गुरू महिमा का बखान करतीं हैं। आत्मा और परमात्मा के अद्वैत की भावना भी उन्हें मान्य हैं। वे कहती हैं कि आत्मा परमात्मा में ऐसे ही अंतर नहीं है—जैसे सूर्य और धूप में अंतर नहीं है। मीरां को और कोई नहीं भाता है वे केवल सुंदर श्याम की रट में मगन हैं—

तुम बिच हम बच अंतर नहीं, जैसे सूरज धामा।
मीरा के मन अवर न भावै, चाहे सुंदर श्यामा।

संत भाव से मीरा ने जगह-जगह अपने पदों में संसार के चमकीले वैभव की असारता का संकेत दिया है— यथा—

भज मन चरण कँवल अवणासी।
तेजाई दीसाँ धरणा गगन माँ, तेताई उठ जासी।
तीरथ बरतां ग्यान कथता, कहा लिया करवट कासी।
या देही को गरब करणा, माटी माँ मिल जासी।
यो संसार चहर री बाजी, सांझ पडयां उठ जासी।
कहा भयां या भावा पहरयां, घर तज लयां सन्यासी।
जोगी होयां जुगत णां जाणा, उलट जन्म फिर फाँसी।
अरज करा अबला कर जोरया, श्याम तुम्हारी दासी।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, कात्याँ म्हारो गाँसी।

शब्दार्थ :

अवणासी—अविनाशी। जेताई जितना। दीसाँ दिखाई
देता है। तेताई उतनी ही. उठझण्सी—नष्ट हो जायेगा।
चहर री बाजी—चिड़ियों को खेल। तुगत युक्ति। गाँसी—बंधन।

मीरा के इस पद का अर्थ है कि हे मन। उस अविनाशी कृष्ण के चरण कमलों का स्मरण कर। ब्रहम के चरणों की महिमा अपार है—यह ही रक्षा करेंगे। इस धरती और आसमान के बीच जो कुछ दिखाई देता है वह सब नष्ट हो जायेगा। तीर्थ यात्रा, व्रत, ज्ञान की बातें, काशी निवास से स्वर्ग आदि सभी बातें, झूठी हैं। इस शरीर का घमण्ड नहीं करना चाहिए—शरीर तो नाशवान है। मिट्टी में मिल जायेगा। यह संसार चिड़ियों का खेल है जो संध्याकाल में खत्म हो जाता है। ऐसी स्थिति में साधुओं के वस्त्र या भगवा वस्त्र पहनने से क्या लाभ? और गृह त्यागकर सन्यासी होने में भी क्या अर्थ? यदि योगी होकर मुक्ति को नहीं पाया तो सब कुछ व्यर्थ है। केवल दिखावा करने से आवागमन की फाँसी समाप्त नहीं होती है। मीरां—हाथ जोड़कर विनय कर रही है कि गिरधर नागर अर्थात् लोकरक्षक कृष्ण! मेरी सांसारिक बाधाओं को नष्ट कर दीजिए। इस पद में संत मत की सभी विशेषताएँ एक साथ दिखाई देती हैं। यह संत संगति का मीरा पर सीधा प्रभाव है।

संत कवि कबीर, दादू आदि बाहरी आडंबरों का कठोरता से खंडन करते रहे हैं। यह संत स्वभाव मीरा में भी मौजूद है पर वे कुछ प्रवृत्तियों की घोर निंदा करने में चूक नहीं करतीं हैं। मीरा की भक्ति में हृदय का वेग अधिक है— यह उनके नारी-मन का एक पक्ष भी है। वैष्णव-संप्रदायों के बाल-लीला, रामलीला, नागलीला वर्णन भी मीरां के पदों में मिलते हैं। सच बात यह है कि वैष्णवभाव चिंतन का यह पक्ष मीरा को संतोष देता है कि पूर्ण ब्रह्म, पूर्णावतार कृष्ण वृंदावन में नित्य लीला करते हैं। राधा-भाव से मीरा कृष्ण को अपनी गलियों में आते पातीं हैं—

आवत मोरी गलियन में गिर धारी
मैं तो छुप गई लाज की मारी।

"गिरधर" "जोगिया" या "रमैया" से लजाने वाली मीरा की अनुभूतियों में दर्शन की खोज व्यर्थ है। वे स्वयं प्रेम रूपाभक्ति हैं— प्रेम दीवानी हैं और शांत चित्त संत हैं।

6.4 भक्ति-भावना

भारतीय परंपरा में भक्ति को प्रेमरूप एवं अमृतस्वरूप कहा गया है। इसी प्रेमा-भक्ति की निष्ठा को लेकर मीरा भक्तिकाव्य में उभरती हैं। मीरा का सीधा संबंध किसी वैष्णव-सम्प्रदाय से नहीं रहा— पर गिरधरनागर, वृंदावन बिहारी को अपना आराध्य मानकर उन्होंने भक्ति की जो मंदाकिनी अपने गीतों से प्रवाहित की, उसने सम्पूर्ण उत्तरी भारत के मुरझाये मनों को सींचकर हरा-भरा कर दिया। विशेष बात यह भी है कि मीरा में अन्य कृष्ण भक्त कवियों की भांति भक्त एवं कवि दोनों का मेल दिखाई देता है। किन्तु उनका कवि रूप उनके भक्त के रूप के सामने कम उभर पाया है। वैष्णव-परम्परा के बाल्यकालीन संस्कारों से भी मीरां में भक्ति प्रसूत तीव्र विरहानुभूति, भावप्रवणता, तन्मयता आदि की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है।

मीरा की भक्ति में भावान के प्रति विनय की भावना प्रबल है। संसार की कोई भी आंधी मीरा को भक्ति की इसी शक्ति के कारण उखाड़ने में समर्थ नहीं है। घर-परिवार के लोगों के उपालम्भ, व्यंग्य, कष्ट, मीरा को और ताकत देते हैं। मानना होगा कि मीरा की भक्ति में अबला की दयनीयता नहीं है— झेलने का साहस है।

मीरा की भक्तिभावना में बचपन से ही जिस माधुर्यभाव के बीज थे– उनका अंकुरण ही आगे चलकर हुआ। विवाह के बाद मीरा ने अपने पति भोजराज को नटवर कृष्ण के रूप में ही देखा और विधवा हो जाने पर तो कृष्ण के विरह में वे निरंतर बेचैन रहीं हैं। साथ ही गोपीभाव या ब्रज गोपियों के भक्ति-भाव को ही मीरा ने अपना आदर्श माना। फलतः उनके पदों में माधुर्य भाव की भक्ति का साकार सागर उमड़ पड़ा। कृष्णप्रेम, कृष्ण सौंदर्य, कृष्ण लीला आदि विषयों को अपने पदों में प्रधानता देकर मीरा ने मधुर-रस और मधुरभक्ति की मनोरम व्यंजना की है। गिरधर या लोकरक्षक ब्रह्म को अपने पति (रक्षक) के रूप में देखा :

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।

मीरा में हृदय की इतनी अधिक विशालता है कि वे राम और कृष्ण में कोई भेद नहीं मानती हैं। साम्प्रदायिक दृष्टि का संकीर्ण संघर्ष उनमें कहीं नहीं है। राम का रत्न पाकर तो मीरां का भक्त मन सब कुछ पा जाने का अनुभव करता है। यथा;

पायो जी मैंने रामरतन धन पायो टेक।।
वस्तु अमोलक दी म्हारे सतगुरू किरपा करि अपनायो।
जनमजनम की पूंजी पाई, जग में सबै खोलायो।
खरचै नहि कोई चोर न लेवै, दिन-दिन बढ़त सवायो।
सत की नाव खेवाहिया सतगुरू, भवसागर तर आयो।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, हरख-हरख जस गायो।।

हमें रामरूपी रत्न मिल गया है। यह बहुमूल्य रत्न गुरु ने कृपा करके दिया है। यह वह वैभव है—जिसे मैंने हरजन्म में पाना चाहा था और वह अब मिल गया है। यह सम्पत्ति प्राप्त कर संसार के सब कष्ट कट गए हैं। यह ऐसी पूँजी है जो खर्च करने पर कम न होकर बढ़ती है। इसे चोर चुरा नहीं सकता—बल्कि प्रतिदिन सवाई होती रहती है। सत्य की मेरी इस नाव का खेवन हर भगवान है। इसलिए मैं भव सागर पार हो गई हूँ। मेरे स्वामी वे गिरधर हैं जो इन्द्र जैसे तानाशाह का गर्व चूर करते हुए सभी जीवों की रक्षा करते हैं। मैं इसी विश्वास में उनके गणगान करती हुई थकती नहीं हूँ।

मीरा का प्रियतम सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों में दिखाई देता है। किन्तु यह अजर-अमर, निरंजन, अविनाशी ब्रह्म है जो चन्द्रमा—सूर्य—धरती के नष्ट हो जाने पर भी रहेगा। यथा :

चन्दा जायगा, सूरज जायगा, जायगी धरणि अकासी।
पवन पाणी दोनु ही जायंगे, अटल रहे अविनाशी।

यह जोगी ब्रह्म गगन मण्डल में रहता है– मुक्त विचरता है। किन्तु मीरा को ब्रह्म का सगुण—साकार रूप ही ज्यादा भाता है। "बसो मेरे नैनन में नंदलाल।" "मोहनी मूरत, सांवरी सूरत नैना बनें हैं विशाल" की मूर्ति ही वे हृदय में धारण करती हैं। बल्लभ सम्प्रदाय के भक्तों की कीर्तन-भजन पद्धति का रंग मीरा पर पूरा चढ़ा हुआ है। चैतन्य महाप्रभु की तन्मयता की भाँति "पग घुंघरू बांध नाच नाच पिब रसिक रिझाने" की तैयारी भी मीरा में कम नहीं है। किन्तु अनुभतियों को मुक्त अभिव्यक्ति देने की प्रबल लालसा उन्हें स्वच्छंद-मार्ग का धीर पथिक बना देती है। राह के हर अड़े रोड़े को पैर से हटाकर वे स्वयं अपना मार्ग निर्मित कर लेतीं हैं। मीरा अच्छी तरह जानती हैं कि इष्ट या आराध्य के प्रति श्रद्धा मिश्रित अनुराग ही भक्ति है। भक्ति के तीन उपादान हैं—भक्त, भावना और भक्ति। भक्त आश्रय है—भगवान आलंबन और भावना दोनों के बीच संबंध शक्ति है। भक्त अपने ईश्वर को दास्य, वात्सल्य, सखा, दाम्पत्य, आदि भावों से भजता है। मीरा नवधा-भक्ति की ओर जातीं हैं—पर उनका मन रागानुगा, भक्ति या माधुर्य भाव की भक्ति में ही अधिक आनंद पाता है। श्रद्धा, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास, सखा और आत्मनिवेदन भाव की भक्ति को नवधा भक्ति कहते हैं—इस भक्ति के सभी गुण प्रायः मीरा में मिल जाते हैं। भक्ति में राग-विकास के लिए पूर्वराग, प्रेम, विरह और मिलन की जो स्थितियाँ हैं—वे मीरां की उज्जवला—भक्ति में—निरंतर रही हैं। मीरा का भक्ति भाव गोपी भाव का है। दक्षिण भारत की भक्तिन आंडाल में कृष्ण भक्ति भाव की मीरा से गहरी समानता हैं। कहा जाता है कि मीरा अपने को ललिता नाम की गोपी का अवतार भी समझती थीं। ध्यान रखना होगा कि मीरा में माधुर्य भक्ति का पोषण दास्य-भक्ति में प्राप्त विनय-निवेदन आदि भाव में से हुआ है। पर सूर, तुलसी की भाँति उन्होंने दीनता के भाव को नहीं अपनाया है। वे अजामिल, गणिका, सदना, कसाई आदि भक्तों का संकेत भर करातीं हैं दास्य-भाव में रमती नहीं है।

मीरा की भक्ति-भावना में दाम्पत्य प्रेम की स्थापना दृढ़ता से मिलती है। प्रेम के विविध रूपों में पति-पत्नी भाव का प्रेम अधिक स्थिर अधिक उजला होता है। पति-पत्नी भाव की यह प्रीति ही मधुर रस का आधार है। मोहन के रूप लुभानी मीरां के चित में माधुरी मूरत उर बिच आन पड़ी है। इस भक्ति में कामुकता या अतृप्ति नहीं है– अलौकिक प्रिय के साथ लीला रचने की उमंग है। इसी उमंग में मीरां अपनी समस्त भावनाएँ कृष्ण को अर्पित कर देती हैं। आत्मसमर्पण ही मीरा की भक्ति का सच्चा रंग बनता रहा है। अतः मीरा के भक्ति-भाव की मूल धुरी में प्रेम का समर्पण है। एक उदाहरण लीजिए :

मण थे परस हरि के चरण ।।टेक।।
सुभग सीतल कँवल कोमल जगत ज्वाला हरण।।
इण चरण प्रहलाद परस्यॉं, इन्द्र पदवी धरण।
इण चरण ध्रुव अटल करस्यॉं, सरण असरण सरण।
इण चरण ब्रह्माण्ड भेटयॉं, नरवसिखॉं सिरी भरण।
इण चरण कालियॉं नाथ्या, गोपलीला, करण।
इण चरण गोवरधन धारयॉं, गरब मधवा हरण।
दासि मीरा लाल गिरधर, अगम तारा तरण।

शब्दार्थ :

ये–तुझ आप। परस–स्पर्श। सुभग–सुंदर। कँवल–कमल। जगत–ज्वाला–तीन तरह के दैहिक, दैविक, भौतिक ताप। दैहिक ताप जैसे–खाँसी, ज्वर के रोग, दैविक ताप जैसे–आंधी, अतिवर्षा, अकाल आदि, भौतिक ताप जैसे–प्राणियों द्वारा दिए जाने वाले दुःख आदि। अशरण–अनाथ। सिर–श्री शोभा। कालियॉं–कालीनाग। नाथ्या–वश में किया। मघवा–इन्द्र। तारण–उतारने में। तरण–नौका, तरणी।

इस पद का भावार्थ यह है कि हे मन। तू निरंतर कष्टों का हरण करने वाले ब्रह्म के चरणों का स्पर्श कर। विष्णु के इन चरणों की महिमा अनंत है। ये चरण सुंदर शीतल तथा कमल की तरह कोमल हैं और संसार के तापों से मुक्ति देते हैं। इन चरणों का स्पर्श करके ही भक्त प्रहलाद को इन्द्र के समान ऊँचा पद प्राप्त हुआ। इन चरणों की शक्ति ने ही भक्त ध्रुव की भक्ति को अमरता प्रदान की। भगवान के चरण अनाथों को शरण देने वाले हैं। इन्हीं चरणों ने संसार की सृष्टि की है एवं उसे शोभा श्री दी है। इन चरणों ने ही काली नाग को वश में करके जन-मन को भय मुक्त किया है। यही चरण गोपियों के साथ रास लीला करते हैं–यही चरण तानाशाहों के गर्व को चूर करने के लिए गोवर्धन पर्वत छगुनी पर उठा लेते हैं। यह चरण ही भक्त के लिए नौका हैं–इन्ही चरणों की दासता में जीवन है।

मीरा की भक्ति में विश्वास का स्वर पूरी तरह है। कहीं भी उनके मन में संशय या द्वन्द्व नहीं है। यह भक्तिभावना कठिन से कठिन समय में मानव को धैर्य का संदेश देती है।

6.4.1 मीरा और आंडाल की भक्ति-भावना की तुलना

मीरा और आंडाल दोनों ही कृष्ण भक्त कवयित्रियाँ हैं। दक्षिण भारत की आलवार भक्ति-धारा का कोमल प्रवाह आंडाल (हवीं शताब्दी) के हृदय से प्रवाहित होता है और उत्तरी भारत की भक्ति-धारा को मीरां रस सिक्त कर देती हैं। दोनों ही कृष्ण के प्रेम-सौंदर्य संसार में एकाकार हो गई हैं। मीरा के गिरधर नागर और आंडाल के "रंगनाथ" छबीले मुरलीधर कृष्ण ही हैं। दोनों ही अपार्थिव आलौकिक विराट प्रेम भूमि पर खड़ी है और दोनों ही "गोपी-भाव" से माधुर्य-भक्ति में तल्लीन हैं। दोनों की तन्मयता ने गीति परम्परा से भारतीय भक्ति साहित्य को समृद्ध किया है।

आंडाल की विचारधारा पर वैष्णव चिंतन की गहरी छाप है और मीरा पर भी। फिर मीरा के आविर्भावकाल तक रामानुजाचार्य की वैष्णव विचारधारा का प्रसार हो चुका था। आंडाल के पदों में (तिरूप्पावै संग्रह में) मीरा की भाँति ही दास्य-भाव की अभिव्यक्ति हुई है। यही दास्यभाव दोनों में आत्मदान प्रेरित एकाग्रता को जन्म देता है। दोनों ही कृष्ण लीला के रस को मोक्ष के रस से अधिक महत्वपूर्ण मानतीं हैं। आंडाल की भावना तो वृंदावन में लता-गुल्म बनने की है यथा "वृंदावन ने किमपि गुल्म लता तौषधी नाम"। वे गोपियों के चरणों की रौंदी हुई धूल बनने के लिए भी प्रार्थना करतीं हैं। मीरा और आंडाल के पदों का तात्विक विश्लेषण किया जाये तो हम, दोनों में प्रेम की अटूट केन्द्रीयता और आनंद भाव की तन्मय शक्ति पाते हैं। भक्ति का प्रपत्ति मार्ग दोनों ने अपनाया हैं। प्रश्न उठता है कि प्रपत्ति मार्ग क्या है? आत्मनिवेदन को ही प्रपत्ति कहते हैं। भक्ति-मार्ग में इस शब्द का प्रयोग शरणागति के अर्थ में होता है। समस्त वैभव का

परित्याग करके भगवान की शरण में जाना ही प्रपत्ति है। इसके लक्षण हैं—भगवान के गुणों का वर्णन, पूर्ण समर्पण, दीनता के भाव से स्तुति, भगवान के रक्षक रूप पर दृढ़ विश्वास। मीरा और आंडाल में इन सभी भावनाओं के एक समान लक्षण मिलते हैं। संक्षेप में, कह सकते हैं कि मीरा तथा आंडाल में अद्भुत समानताएँ हैं और दोनों ही भक्ति आंदोलन की सांस्कृतिक शक्ति की अखण्डता को सामने लातीं हैं।

6.4.2 वेदनानुभूति बनाम प्रेमानुभूति

मीरा की प्रेमानुभूति उनके भक्तिभाव का ही एक प्रबल रूप है। लेकिन यहाँ स्पष्ट रूप से यह जान लेना भी आवश्यक है—कि मीरा का प्रेम-अनुभव लौकिक और अलौकिक दोनों तरह के प्रभाव लिए हुए हैं। यह प्रेम कहीं भी वासना का पर्याय नहीं है इसमें, आत्मा-परमात्मा के मिलन का रहस्यवाद है। भावना के क्षेत्र की रहस्य साधना मीरा के गोपी भाव का एक अपना ही लोक है। कृष्ण के अनेक रूपों के दर्शन मीरा बराबर करती हैं। भागवत धर्म में भक्त का जो रूप प्रकट होता है—उसी रूप में विरहिणी मीरा दिखाई देती हैं। मीरा कहीं तो कृष्ण के प्रेम की चातकी हैं, कहीं विरह कोकिला, कहीं होली खेलने को व्याकुल गोपी, कहीं प्रेमोन्माद में नृत्य करती हुई प्रेयसी। मीरा का प्रेम इन्द्रियों से परे अतीन्द्रिय का स्पर्श करता है। सूफी प्रेम का दर्द भी कहीं-कहीं झलकता मिलता है।

हेरी मैं तो प्रेम दिवाणी मेरा दरद न जाणै कोय।
घायल की गति घायल जाणै को जिण लाइं होय।

मीरा के घायल हृदय में प्रेम का घाव गहरा है। इतना गहरा घाव न कबीर में है, न सूर में है, न तुलसी में। प्रेमघाव से घायल मीरा चिर सुहागिनी है। प्रियतम की प्रतीक्षा में पूरी रात जाग कर व्यतीत कर देती हैं—कृष्ण के बिना "सखी मेरी नींद नसाणी हो" तक ही स्थिति नहीं है—उनसे आगे हैं—यथा :

हेरी महासूँ हरि बिनि रह्स्यो न जाय।।टेक।।
सास लड़ै मेरी ननद खिजावै, राणा रहया रिसाय।
पहरों भी राख्यो, चौकी बिठारयो, ताला दियो जड़ाय।
पूर्व जनम की प्रीत पुराशी सौ क्यूं छोड़ी—जाय।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, अवरून आवै म्हारीदाय।।

भावार्थ यह है कि सखि मैं कृष्ण के बिना नहीं रह सकती। कृष्ण प्रेम की दीवानी देखकर सास लड़ती है, ननद खिजाती है, राणा क्रोध करता है, तालों में बंद करवा देता है, चौकी बिठाता है पहरा लगवाता है। पर कुछ भी हो पुरानी प्रीत टूट नहीं सकती है। मुझे तो केवल कृष्ण चाहिए और कोई नहीं। इस प्रकार यह पद अनन्य प्रेम भाव का है। मीरा कृष्ण के संयोग से ज्यादा वियोग की पीड़ा का अनुभव करती हैं। वियोग दशा में संपूर्ण प्रकृति उनके साथ होती है। कौआ के द्वारा वे प्रियतम को संदेश भेजती हैं—

प्रीतम कूं पतियां लिखूं कौआ तू ले जाई।
जाइ प्रीतमजू सूं यूं कहै, रे थांरी बिरहणी धान न खाई।

प्रिय से कहना कि विरहिणी अन्न नहीं खा रही है—प्राण देने पर आमदा है। उससे हृदय की बात लिखी नहीं जाती—पत्र में लिखते हाथ कांपता है, आँखों से आँसु बरसते हैं—बात नहीं की जाती, तड़प बढ़ जाती है। फलतः भावावेगों की तीव्रता ही मीरा के विरह की अनुपम विशिष्टता है। इस अंतर्व्यथा में वियोगिनी की आह है एवं प्रिय मिलन की लालसा। मतवारे बादलों को देखकर वे फड़क उठती हैं और पपीहा से प्रिय की कणीन बोलने का निवेदन करती हैं। "दादुर मोर पीपहा बोल्या, कोइल मधुरां साज", से पूरी प्रकृति मीरा के मन की बात कह रही है। प्रकृति के उद्दीपन रूप को मीरा बार-बार सामने लाती हैं—"बादल देखि डरी हो श्याम"। झांझ, मृदंग, इकतारा, मुरली का संगीत प्रिय के बिना व्यर्थ है—

बाज्या झांझ मृदंग मुरलिया बाज्या कर करतारी।
आयां बसंत पिया घर जारो म्हारी पीड़ा भारी।

मीरा प्रेम के दुःख का नगर ढिढोंरा पीटने को व्याकुल हैं—परिताप भाव की यह भावदशा आंडाल में भी मीरां से कम नहीं है। नारी हृदय की वियोग-पीड़ा का संसार पुरुष कवियों द्वारा वर्णित विरह वर्णन से ज्यादा प्रभावकारी है। धड़कते हुए रमणी हृदय पर हाथ रखकर यहाँ प्रकृति रागिनी बजती है। मीरा की वेदना में उनके जीवन की वैयक्तिक वेदना भी घुली हुई है—जिसे

भाववेग ने प्रेम की निर्वैयक्तिक भूमि प्रदान की है। सारांश यह है कि मीरा की प्रेमानुभूति में अखण्ड और एकाकर होने की ध्वनि ही अधिक है। विरह ताप में हृदय ही पिघलकर गीत बन गया है।

बोध प्रश्न 2

क) मीरा पर किन-किन सम्प्रदायों का प्रभाव है? लगभग चार पंक्तियों में उत्तर लिखिए।

....

....

....

....

ख) मीराबाई की भक्ति-भावना पर अपने विचार दस पंक्तियों में लिखिए?

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

ग) मीरा तथा आंडाल की तीन समानताएँ बताइए?

....

....

....

....

घ) सही (✓) या गलत (×) का चिह्न लगाकर उत्तर दीजिए? मीरा की भक्ति में

तमन्यता है ( )

अक्खड़ता है ( )

नीरसता है ( )

वेदना है ( )

6.5 गीतिकाव्य–धारा

अनादिकाल से मनुष्य सुख-दुःख के चरम क्षणों की अभिव्यक्ति गीतों में करता आया है। गीत की शक्ति शब्दितगानयोः जैसी प्राचीन परिभाषा मिलती है। पर आज हम गीतिकाव्य को परिभाषित करना चाहते हैं तो कहते हैं कि हृदय के प्रबलतम भावों की प्रवलतम सहज अभिव्यक्ति का नाम गीत है। जाहिर है कि गीत में सहज आत्माभिव्यक्ति, प्रबल वैयक्तिक अनुभव, संगीतात्मकता, भावस्फूर्त शब्द और शैली जैसे तत्व रिले-मिले रहते हैं। मूलतः गीत मानवीय वृत्तियों को सहज स्थिति के साथ अभिव्यक्ति देता है। फलतः उसमें हृदय का सौंदर्य, आंतरिक भावावेग की तरलता, निश्छलता और लयात्मक गति रहती है। गीत के लिए बौद्धिकता का बोझ उठा पाना कठिन होता है– उसे तो हृदय की आकुलता एवं वेदना से ही सींचना पड़ता है। आज चाहे गेयता गीतिकाव्य का लक्षण न माना जाए पर हिन्दी के मध्यकाल में गेयता गीत का अनिवार्य धर्म था। विद्यापति के पद, सिद्धों नाथों के चर्या गीत, कबीर, सूरदास, तुलसीदास जैसे संत भक्तकवियों के गीतों की गेयता शक्ति से हम सभी परिचित हैं।

अन्य काव्यरूपों से गीतिकाव्य की एक अलग पहचान का रूप है—उसका अन्तर्मुखी भावपरक दृष्टिकोण। गीतिकार एक सीमित दायरे में वैयक्तिक और आत्मनिष्ठ हो जाता है। इस दृष्टि से गीत कवि की निजी भावनाओं का गिने-चुने शब्दों में प्रकाशन है। गीत में मुक्त भाव और स्वच्छंद कल्पना लयात्मक संगीत में फूट पड़ती है। यही कारण है कि गीतिकाव्य का रचनाकार अपनी भावानुकूल लयों में अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है। गीतिकाव्य में आत्माभिव्यक्ति एवं वैयक्तिकता से तात्पर्य है—तीव्र भावावेग का उठना। फलतः गीत में सबल भावों का स्वतः प्रवर्तित प्रवाह रहता है। इस दृष्टि से गीतिकाव्य के तात्विक लक्षण हैं—अनुभूतियों का आवेग और संगीतात्मकता। संक्षेप में, गीतिकाव्य की विशेषताएँ हैं— (1) आत्माभिव्यक्ति (2) गेयता या संगीतात्मकता (3) भाव का तीव्र-प्रभाव एवं अन्विति (4) सहज प्रेरणा (5) कोमल शिल्प विधान (6) आकार की संक्षिप्तता।

गीतिकाव्य की इस कसौटी पर हम मीरा के गीतों को कसते हैं तो उनके गीतों का खरापन हमें चकित कर देता है। यह भी कहा जा सकता है कि प्राचीन काल से विद्यमान गीत परम्परा का मीरा ने सफल उपयोग किया है। प्राचीन लोकगीतों की शैली को मीरा ने अपने पदों में सार्थक ढंग से अपनाया है। जैसे 'हेरी मैं तो प्रेम दिवानी मेरा दरद न जाने कोय' गीत वस्तुतः गीतिकाव्य का वह सर्वश्रेष्ठ रूप है जो संस्कृत में जयदेव के "गीतगोविंद" में मिलता है—जिसमें एक ओर रागों का प्रबल विधान है—तो दूसरी ओर राधा कृष्ण लीला का मधुर गान। यही परम्परा समय के साथ मैथिल कोकिक विद्यापति में फूटती है और मानव-मन सौंदर्य से भर जाता है। यही गीतिकाव्य धारा हिन्दी के भक्तिकाल—निर्गुण और सगुण कवियों में वेग से प्रवाहित होती है। आगे चल कर वैष्णव—भक्त संगीत की राम और कृष्ण भक्ति धारा इस गीति परम्परा में प्रेम, आनंद और माधुर्य घोल देती है। मीरा इसी युग युगांतर से चली हुई परम्परा की उत्तराधिकारी बनी हैं और इसी परम्परा को उनसे नवजीवन प्राप्त हुआ है। वैष्णव भाव की पदपरम्परा का जो रूप दक्षिण भारत के आलवार भक्तों में—विशेषकर भक्ति न आंडाल में मिलता है—कुछ-कुछ वैसा ही भाव जगत मीरां के पदों का भी है। आत्माभिव्यक्ति का वेग और संगीतात्मकता दोनों ही दृष्टियों से आंडाल एवं मीरा गीतिकाव्य-परम्परा की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धियाँ हैं। मीरा का अनुभूति-पक्ष बहुत सशक्त है। कबीर राम की बहुरिया बनकर गाते हैं—पर उनका दम्भ गल नहीं पाता। सूरदास गीत गाते हैं—उनके गीतों में भक्त की तन्मयता भी है पर मीरा के गीतों से सूर के गीतों की तुलना करते हैं तो कहना पड़ता है कि मीरा के गीतों में हृदय के आवेगों की तीव्रता सूर से ज्यादा है। मीरा की वैयक्तिक वेदना में सूर की गोपियों की वेदना से कसक, तड़प और दर्द अधिक है। सच्चाई यह है कि हिन्दी की वैष्णव भावधारा का कोई भी हिन्दी कवि मीरा के गीतिकाव्य की सहज आत्माभिव्यक्ति और तरल संगीतात्मकता का मुकाबला नहीं कर सकता है।

मीरा के सभी पद गीतों के रूप में हैं और अधिकांश एक टेक देकर (चार से दस) चरणों से जोड़ दिए गए हैं। यह पूरा का पूरा पद शास्त्रीय संगीत की राग रागनियों के अंतर्गत रखा जाता है। मीरा के समय तक रामानन्द, कबीर, नरसी मेहता, चैतन्य महाप्रभु तथा निर्गुण-सगुण भक्तों की राग-रागनियों का एक विराट संसार सामने आ चुका था। इस परिवेश का प्रभाव भी मीरा पर पड़ा होगा। लोक-संगीत की छाप लेकर कबीर, सूरदास, कुम्भनदास, कृष्णदास, रैदास, दादू सभी के पद आ रहे थे। फलतः गायन, वादन, नृत्य, भाव-प्रदर्शन चारों का संगीत-समुच्चय एक धारा के रूप में मीरा की पदावली में प्रवाहित है—यथा

> गायन—माई म्हां गोविंद के गुण गाणा।
> वादन—नृत्य ताल पर बावेण मिरदंग बाजां, साधां आगे नाचां।
> नृत्य—पग बांध घूंघरयां बाजा रही।
> भाव—प्रदर्शन i) हेरी मैं तो प्रेम दिवाणी मेरा दरद न जानै कोय।
> ii) चलो रे माणा गंगा-जमुना तीर।

कहना न होगा कि गीतों की यह परम्परा लंबे काल से अबाध चली आ रही थी। बौद्ध सिद्धों के चर्या-गीतों, नाथों के गीत-पदों में यही परम्परा दिखाई देती है। सिद्धों के गीतों में रागों की अव्यवस्था विषय की कठिनता के कारण वे जनता के कंठहार न बन सके। साथ ही सिद्धों के गीतों का साम्प्रदायिक रंग भी प्रचार-प्रसार में बाधा थी। लेकिन मीरा ने साम्प्रदायिक रंग से मुक्त होकर सरल-सहज लोक की भाषा में अपने हृदय की अनुभूतियों को व्यक्त किया। इसी ढंग की आत्माभिव्यक्ति ने उनके गीतों को सरलता, रमणीयता, प्रभावोत्पादकता तथा सहज लय-योजना प्रदान की है। मीरा के दुःख सुख के भाव-भक्तिभावना से ओत-प्रोत होकर आए जिनमें भक्त-हृदय का दिव्य संगीत भी गूंज रहा था।

पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी में विद्यापति, नरसी मेहता, चण्डीदास की रचनाएँ जिस गीत-पद्धति

पर हुई थीं—मीरा ने उसी का लोक विस्तार किया है। यही पद्धति मीरा के समकालीन अथवा परवर्ती भक्त सूरदास, नंददास, कृष्णदास, चतुर्भुजदास गदाधर भट, हरिदास, हितहरिवंश आदि में विकसित होती रही। जैसे मीरा के प्रत्येक पद में आराध्य देव कृष्ण के नाम, रूप, गुण, चरण, लीला आदि का वर्णन रहता है—वैसे ही अन्य वैष्णव भक्तों के पदों में भी।

विशेष बात यह है कि मीरा के गीतों में मुख्य विषय उनका अपना जीवन है। इन गीतों पर उनके व्यक्तित्व की गहरी छाप है और घटनाओं की तड़प का दर्द भी अंकित है। गिरधर की छवि ही मीरां के भौतिक जीवन के कष्टों का हरण करती है। आज भी इन गीतों में मानव को शांति देने की शक्ति है। इसी शक्ति के कारण ये गीत-दीन के लिए संजीवनी औषधि हैं और गायकों की अक्षय निधि।

बोध प्रश्न 3

क) गीतिकाव्य की परिभाषा तथा विशेषताएँ दस पंक्तियों में बताइए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

ख) अन्य काव्यरूपों से गीतिकाव्य की पहचान का अलग कारण चार पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

ग) मीरा ने अपने गीतों में किस शैली का उपयोग किया है—सही (√) तथा गलत (×) का निशान लगाइये।

1) कला गीतों की शैली
2) लोक गीतों की शैली
3) दरबारी प्रेम गीतों की शैली

घ) मीरा के गीतों में वह ऐसी कौन सी विशेषता है जो उन्हें कबीर, सूर, आदि भक्त कवियों से ज्यादा सफल गीतिकार सिद्ध करती है। दो पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

6.6 अभिव्यंजना शिल्प

मीराबाई के गीतों में अनुभूति और अभिव्यंजना के तत्वों का एकाकार रूप ऐसा है कि इनके बीच पार्थक्य की रेखा आसानी से नहीं खींची जा सकती। अनुभूति प्रधान उनके पदों का विश्लेषण तो और भी कठिन कार्य है, क्योंकि चरम भावावेश के क्षणों में निकली सहज उक्तियाँ प्रकृत कला के जीवंत प्रयोग हैं। सच बात यह है कि मीरा के काव्य में भाव-पक्ष की प्रधानता है और कला-पक्ष उसी का सहयोगी-बन कर आया है। ऐसी स्थिति के कारण मीरा ने चमत्कार प्रदर्शन वाली अभिव्यंजना को नहीं अपनाया है। कला और उसके भड़कीले रूपों से उन्हें मतलब नहीं था—वे तो आराध्य के प्रति भावना की भाषा में अपना आत्मनिवेदन कर रहीं थीं। मीरा की आत्म-विस्मृति में भक्त उभर पड़ा है कलाकार दब गया है। आलौकिक-अपार्थिव आलंबन कृष्ण के प्रति लौकिक या पार्थिव भावनाओं के फलस्वरूप मीरा का दृष्टिकोण रचनाकार और

रहस्यवादी के दृष्टिकोणों का मिश्रण हो गया। मीरा के भक्ति-भावों में रहस्य स्थायी वृत्ति नहीं है। यहाँ स्थायी वृत्ति हैं—कृष्ण का रूप-सौंदर्य वर्णन, भजन, लीला-गान।

मीरा की रचनाओं की प्रामाणिकता का निर्णय करना कठिन है। उनके पद वाचिक परम्परा की गेयपद्धति में रहने के कारण काव्य-भाषा की दृष्टि से बदलते रहे हैं। जैसे "कहै कबीर सुनो भाई साधों" को लगाकर अनेक पद लोकजीवन में बनाये जाते रहे हैं वैसे ही "मीरां के प्रभु गिरधर नागर" को जोड़कर भी लोक में अनेक पद बनते रहे हैं। दरअसल मीरांभाव और कबीरभाव ने जनता के हृदय में कितने सम्मान का स्थान पाया है—यह सब उसी का लोकप्रमाण है।

6.6.1 काव्य-भाषा

वास्तविकता यह है कि कबीर की भांति मीराबाई की काव्यभाषा के आधार में कई बोली रूप मिश्रित हैं। "मीरांबाई की पदावली" की भूमिका (पृष्ठ 65) में श्री परशुराम चतुर्वेदी ने दिखाया है कि मीरा में चार भाषा स्तरों का प्रयोग है

1) **राजस्थानी**
   थे तो पलक उघाड़ों दीनानाथ
   मैं हाजिर नाजिर कब की खड़ी।
   साजनियाँ दुसमण होय बैठया, सबनें लगूँ कड़ी (पद-118)

2) **ब्रजभाषा**
   यहि विधि भक्ति कैसे होय
   मण की मैल हियतें न छूटी, दियो तिलक सिर धोय। (पद-158)

3) **पंजाबी**
   ही कांनां किन गुंथी जुल्फाँ कारियाँ (पद-162)

4) **गुजराती**
   प्रेमनी प्रेमनी प्रेमनी रे, मने लागी कटारी प्रेमनी
   जल तमुना माँ भरवाँ गयांतां, हतीगागर माथी हेमनीरे। (पद-173)

डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने "मध्यकालीन हिन्दी काव्य-भाषा" नामक अपने शोधग्रंथ में डॉ. ग्रियर्सन का यह मत दिया है कि "जिस प्रकार पंजाबी उत्तर पश्चिम में मध्य प्रदेश की प्रसरित भाषा का प्रतिनिधित्व करती है, उसी प्रकार राजस्थानी उसके दक्षिण-पश्चिम में प्रसरित भाषा का प्रतिनिधित्व करती है। इस अंतिम प्रसार कार्य में मध्यदेश की भाषा राजस्थानी क्षेत्र से होती हुई गुजरात के समुद्र तट तक पहुँच गई है। यहाँ यह गुजराती का रूप धारण कर लेती है। (भाषा सर्वेक्षण-1-1- पृष्ठ 314) मीराबाई की काव्य-भाषा के ऊपर चर्चित विविध आधार मानो ग्रियर्सन के इस भाषा वैज्ञानिक पर्यवेक्षण को व्यावहारिक रूप में संयुक्त करते हैं। और ब्रज भाषा राजस्थानी—पंजाबी—गुजराती की तात्विक एकता को प्रदर्शित करते हैं। ब्रज से द्वारिका तक चलने वाली कृष्ण भक्ति की काव्य-यात्रा इसी के समानांतर है। यहाँ यह स्मरणीय है कि मीरा ने अपने पूरे के पूरे पद इन अलग-अलग बोली रूपों में नहीं लिखे हैं, वरन् अधिकतर उनकी आधार भाषा में इन कई भाषिक तत्वों का मिश्रण हो गया है, प्रधानता ब्रज एवं राजस्थानी की है। (पृष्ठ 110) मीरा की भाषा में सर्जनात्मक क्षमता अपेक्षतया कम है। सूर या तुलसी जैसा भाषा का कुशल प्रयोग नहीं दिखाई देता। यहाँ लोकगीतों की तरह सीधी अभिव्यक्ति पर बल है, लाक्षणिक प्रयोग बीच-बीच में जहाँ-जहाँ भले ही मिल जाएँ। नारी होने के कारण मीरा की तन्मयता और विरह भावना कुछ अपने आपमें प्रमाणिक लगती है, पर उनके पदों का भाविक गठन उतना सशक्त नहीं है। उदाहरण के लिए लोकगीत जैसे सीधे-वर्णन देखने के योग्य हैं :

1 कारी अँधियारी विजली चमकै, बिरहिणी अति डर पायेरे।
2 गाजै बाजै पवन मधुरिया, मेहा अति झड़ लाये रे।

यह सीधा परम्परित वर्णन है, भाषिक प्रयोग से कोई विशिष्ट अर्थक्षमता उत्पन्न नहीं होती। मीरा में भाव की तन्मयता अधिक है—पर भाषा का वैसा ही सावधान सम्प्रेषण नहीं है।

मीरा की मूल काव्य-भाषा का निर्णय करना इसलिए भी कठिन है कि प्राय: सभी मीरा-पदावलियों के पद मौखिक परम्परा, संदिग्ध तथा अशुद्ध हस्तलिखित गुटकों से लिए गए हैं। भाव-भाषा के बदलाव के कारण इन पदों में ब्रज मिश्रित राजस्थानी की प्रधानता है। सुनीति कुमार चटर्जी जैसे विद्वानों का मत है कि मीरा की मूल भाषा तो राजस्थानी ही थी पर लोक प्रचलित होने पर उसका रूप परिवर्तित होता गया। मोतीलाल मेनारिया उसमें राजस्थानी के साथ ब्रजी और गुजराती का मिश्रण भी मानते हैं। मीरा के आज जो पदसंग्रह उपलब्ध हैं—उनमें राजस्थानी, ब्रजी, गुजराती,

पंजाबी, खड़ी बोली और पूरबी आदि कई भाषाओं का मिश्रण मिलता है। मीरा की पदावली की भाषा-परिवर्तन के कारण निम्नलिखित हो सकते हैं–

1 लिपि भेद से भाषा भेद–लिपि परिवर्तन से शब्द की ध्वनि, अर्थ-गूँज में परिवर्तन आ जाता है–जैसे

1) जाणं रे मोहणा जागां री प्रीत

राजस्थानी में इसी पद का लिपि भेद–
जावो नर मौहीया जी, झीणी तेरी प्रीतड़ी।

2 संगीतकारों द्वारा गेय पदों में परिवर्तन–मूल पद राग दरबारी में था–
प्रभुजी थे कठयां गया नेहड़ा लगाया।

यहीं पर राग सोरठ में गाया गया तो शब्द-विन्यास, ताल-लय और गति में परिवर्तित हो गया–
–होजी हरिकित गए नेह लगाय।

3 सम्पादकों–संग्रह-कर्त्ताओं द्वारा भाषा परिवर्तन

प्राचीन रचनाओं को सम्पादित करते समय सम्पादकीय प्रतिभा भी परिवर्तन कर देती है। मीरा की मूल पदावली के 103 पदों के साथ 295 पद परवर्ती गायकों और साधु संतों की देन हैं। साधुओं ने ब्रज में पद को ब्रज भाषा में ढाल लिया।

मूल पद–मुरलिया बाजां जमणा तीर
मीरां बृहत पद संग्रह की गेय–परम्परा में
मुरलिया बाजै जमुना तीर।

भ्रमणशील साधुओं, कीर्त्तन-मंडलियों, भजन गायकों ने मीरा के पदों की भाषा में व्यापक परिवर्तन किए हैं। विद्वानों का विचार है कि मीरा की मूल भाषा राजस्थानी है जो पश्चिमी हिन्दी की एक प्रधान शाखा है। मीरा गुजरात तथा ब्रज प्रदेश में रहीं–इन प्रदेशों की भाषा का प्रभाव भी आया। साथ ही लोक में प्रचलित नाथ-पंथियों-हठयोगियों की शब्दावली भी स्वतः ही गा गई जैसे–"त्रिकुटी महल" का पद में प्रयोग। संगीत और भाव प्रवाह की गति भी लोकस्पंदन लेकर आई है जिसमें लोकगीतों, लोककथाओं, लोकोक्तियों-मुहावरों का सहज ढंग से प्रयोग हुआ है–यथा

माई री म्हा लिया गोविंदा मोल!
ये कहयां छाणे म्हां का चोजड़े, लिया बजंता ढोल
ये कहचां मुहोधो म्हाँ कहयां सस्तों, लियां रीतराजं तोल।

इस एक पद में ही मोल लेना, ढोल बजाकर लेना, तराजू में तोलना आदि मुहावरों का एक साथ प्रयोग हुआ है और इन मुहावरों ने मीरां की काव्य भाषा को प्रभावशाली बनाया है।

6.6.2 प्रतीक योजना

मानव प्रतीक सृष्टा प्राणी हैं वह आदि काल से ही भाषा में प्रतीकों की भावाभिव्यक्ति के लिए सृष्टि करता आया है। दार्शनिक एवं भावात्मक स्थितियों को प्रकट करने के लिए वेदों, उपनिषदों, रामायण–महाभारत, भागवत की परम्पराओं ने नए प्रतीकों का ढाँचा तैयार किया है। आलवार, नायनमार तथा अन्य भक्तों ने दक्षिण भारत में ब्रह्म चिंतन के लिए सूर्य-चन्द्र के प्रतीक लिए हैं। मीरा तथा आंडाल दोनों ने कल्पना से ज्यादा यथार्थ के प्रतीक चुने हैं। ये प्रतीक धार्मिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिदृश्य के भीतरी सच या रहस्य को अभिव्यक्त करते हैं। आंडाल की भाँति मीरा का नारी-मन दाम्पत्य प्रेम अथवा कांता भाव के प्रतीकों से अपनी बात कहने में सुविधा महसूस करता है। मीरां प्रतीकों से ही भक्ति रसायन का मर्म प्रस्तुत करने में बड़ी दक्ष है–यथा

बड़े घर तालो लागां री, पुर बला पुन्न जगा बारी।
झीलरयां री कामण म्हारो, डावरां कुण जावांरी।
गंगा जमणा कामणा म्हारे, म्हां जावां दयिवारी।
हेल्या मेल्या कामणा म्हारे, पेढया मिल सरदारां री।
कामदारां सूं कामणा म्हारे, जोवा म्हा दरबारां री।
काय कयोरसूं कमणा म्हारे, हीरा रो वौपारारी।
भाग हमारो जाग्या रे, रतनाकर म्हारो सीयां री।
अमूत प्यालो छाडयां रे, कुण पीवां नीरा री।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, मनरथ करस्यां पूरचारी।

(मीरांबाई की पदावल पद 84. परशुराम चतुर्वेदी)

शब्दार्थ—ताला लागां—लगन लग गई। पुरबला पुन्न—पूर्व जंम का पुण्य। झीलरयां—झील, जलाशय। डाबरा—छोटा तालाब। दरियाव—सागर। हेल्या-मेल्या—हेल-मेल। कामदारां—सेवक प्रहरी। काय—काँच। कयोर—रांग। सीरयां—संबंध।

बड़े घर से लगन लग गई है अवश्य ही पूर्व जन्म के पुण्य उदित हुए हैं। मेरा झील तालाब, गंगा-जमुना से अब कोई संबंध नहीं है, मैं तो (कृष्ण) सागर से मिल गई हूँ। छोटे-छोटे देवताओं की आराधना से मेरा काम नहीं चला है या उस विराट के दरबार में पहुँचने के लिए किसी अन्य से मेल-जोल करने की जरूरत नहीं है क्योंकि मैं प्रमुख (सरदारों) अगुआ लोगों में स्थान पा चुकी हूँ। मेरा कामदारों से मतलब नहीं रहा—मैं सीधे विराट ब्रह्म (कृष्ण) के दरबार में जाती हूँ। मैं लोहे की घन पर चढ़ चुकी हूँ अब मेरा राँगे और काँच से कोई लगाव नहीं है। क्योंकि मैं तो घन से ही चकनाचूर हो जाती हूँ। अब मुझे न सोने से काम है न चाँदी से मैं तो हीरों का व्यापार करती हूँ। मेरा भाग्य उदित हो गया है कि रत्नों की राशि से मेरा प्रत्यक्ष संबंध है। ठीक बात है कि अमृत के प्याले को छोड़कर गंदला पानी भला कौन पीना पसंद करेगा। गिरधर मेरी सभी इच्छाओं को पूरा करेंगे।

उपर्युक्त पूरे पद में प्रतीकों की भरमार है। धन देने पर बड़े घर ताला लागा। "गंगा जमुणा कामणा म्हारे" "सोना रूपां सूं कामणा म्हारे" "दरिया" "चांदी" "हीरा" आदि तमाम प्रतीकात्मक शब्द विराट ब्रह्म की अनन्य भक्ति को व्यक्त करने के लिए आये हैं। मीरा में "म्हा गिरधर के रंग रातीख सैयां म्हा। पचरंग चोला पहरया सखी म्हा, झिरमिर खलेण जाती" जैसे पदों में रहस्यवाद के प्रतीकों की गहरी अर्थ ध्वनि मिलती है। "कोकिला" "बादल" "जोगिया" "गिरधर" "धूतारा जोगी" "कंवल अविनासी" "पपीहा" "दादुर" "झांझर" आदि जीवन के हर क्षेत्र से मीरा ने प्रतीक लिए हैं। इन प्रतीकों ने मीरा के भावों को व्यक्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

6.6.3 अलंकार योजना

अलंकारों का प्रधान कार्य भाव का उत्कर्ष करना, रूप, क्रिया और गुण के अनुभव को चित्ररूप में स्पष्टता से प्रस्तुत कर देना है। अलंकार काव्यशोभा का सृजन नहीं कर सकते। केवल शोभा में वृद्धि कर सकते हैं। इसलिए काव्य के बाहरी उपादान हैं—आंतरिक गुण नहीं। कवि यदि केवल चमत्कारी कला के लिए अलंकारों का प्रयोग हिन्दी के रीतिकालीन कवियों की भांति करता है—तो वे अस्वाभाविक एवं भद्दे लगते हैं। किन्तु यदि सहजरूप में अलंकार का प्रयोग होता है तो वह भाव को स्पष्टता, प्रभाव वृद्धि, बिबात्मकता (चित्र रूप) देता है।

मीरा का ध्यान अराध्य के रूप और क्रिया पक्ष पर केन्द्रित रहा है—चमत्कार पक्ष पर उनका ध्यान न था—उनके पदों में अलंकार एकदम सहजभाव से हृदय सौंदर्य का प्रकाश लेकर आये हैं। मीरा के उपमान, अप्रस्तुत विधान का कार्य भावों की तीव्रता को व्यक्त करना है—कलात्मक शिल्प की उन्हें परवाह नहीं है। मीरां परम्परागत उपमानों के प्रयोग में अधिक सक्षम है। "कुण्डल अलका" "तज सखर ज्यो मकर मिल धाई" "जैसे सूरज घामा" आदि परम्परागत उपमान हैं शब्दालंकार—अनुप्रास मीरां में बार-बार आता है, वर्णों की आवृत्ति होने पर अनुप्रास अलंकार होता है जैसे—कुंडल।

मोर मुकुट माथ्या तिलक विराज्यां. कुंडल अलकां कारी हो।

अर्थालंकारों में मीरां को रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि बहुत प्रिय हैं—जैसे

रूपक—अंसुवाँ जल सींच सींच प्रेम बेलि श्यां।

उपमा—ज्यूं चातक घट कू रटै, मछरी ज्यू पाणी हो।

उत्प्रेक्षा—कुण्डल झलकां कपोल अलकां लहराई।
मीणा तज सखर ज्यो मकर मिलन आई।

इन उदाहरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि मीरां का अलंकार—विधान उनके भावों के उत्कर्ष में सहायक रहा है।

6.6.4 छन्द-विधान

मीरा के छन्द-विधान पर चर्चा करने से पहले आपके लिए यह समझना उपयोगी होगा कि छन्द क्या है या किसे कहते हैं। अक्षरों की संख्या एवं क्रम आदि से संबंधित विशिष्ट नियमों में

अनुशासित पद्य-रचना छंद कहलाती हैं। छंद शब्द का अर्थ है—रक्षित करने के साथ प्रसन्न करना। अर्थात् छंद भाव को आकार में बांध कर आगे बढ़ाता है। भाव के गति की व्यवस्था ही छंद मात्र का आधार है। छंद में लय, गति का विशेष प्रवाह तथा काल का बोध कराने वाली नैसर्गिक शक्ति है। वह गति, प्रवाह एवं विराम के क्रमिक संघात से जन्म लेती है तथा उसके लिए आकृति या भाव को पुनः पुनः दुहराना अनिवार्य है। अरस्तू ने काव्य की दो मूल प्रेरणाएँ मानी हैं—अनुकरण की प्रवृत्ति तथा संगीतात्मक लय। उनके अनुसार अनुकरण की भाँति ही संगीतात्मक लय भी मानव में जन्मजात होती है और छंद तो स्पष्ट रूप से लय का ही रूप विधायक अंग है। लय अपने आप में इन्द्रियों का अनुभव है—जो शब्दबद्ध होकर छंद का रूप धारण कर लेती है। मन के अव्यवस्थित भावों को व्यवस्था देने वाली लय ही शब्दबद्ध हो छंद रूप में परिणत हो जाती है। अतएव काव्य का अनिवार्य एवं सहज माध्यम लय और छंद ही है। काव्य और छंद के अतरंग संबंध को समझाते हुए हिन्दी के छायावादी कवि सुमित्रानंद पंत ने कहा है कि "कविता हमारे प्राणों का संगीत है छंद हृदय कम्पन"। कविता का स्वभाव ही छंद में लय मान होता है। जिस प्रकार नदी के तट अपने बंधन से धारा की गति को सुरक्षित रखते—जिनके बिना वह अपनी बंधन हीनता में अपना प्रवाह खो बैठती है—उसी प्रकार छंद भी अपने नियंत्रण से राग को स्पंदन, कम्पन तथा वेग प्रदान कर निर्जीव शब्दों के रोडों में एक कोमल, सजल, कलरव-भर उन्हें सजीव बना देते हैं। (पल्लव—पृष्ठ 30) इस कथन से स्पष्ट है कि भाव की मूल लय को ही छंद शब्दों में जीवित कर देता है।

इस दृष्टि से मीरा के पदों को देखने पर आप पाते हैं कि मीरा ने लोक जीवन में मौजूद छंदों का प्रयोग किया है। यही कारण है कि आज तक मीरां के नाम से प्रचलित जितने भी पद मिलते हैं—वे प्रायः पिंगल शास्त्र या छंद शास्त्र की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। एक प्रधान कारण यह भी है कि इन पदों की रचना पिंगल को दृष्टि में रख कर नहीं की गई। विशेष रूप से ये पद गायन के लिए ही रचे गए और पीछे से गायकों, वादकों, नर्तकों, भजन कीर्तन मंडिलियों ने उनमें सुविधानुसार परिवर्तन कर लिए हैं। श्री परशुराम चतुर्वेदी का यह कथन स्मरण रखने योग्य है कि "पिंगल की दृष्टि से नापजोख करने पर पदावली का कदाचित कोई भी पद नियमानुसार बना हुआ प्रतीत नहीं होता। किसी में मात्राएँ बढ़ती हैं तो किसी में घट जाती हैं, किसी में तो तीन शब्द तक बढ़ जाते हैं तो कहीं यति भंग का दोष आ जाता है और कहीं-कहीं नियमादि की उपेक्षा के कारण यह कहना कठिन हो जाता है कि किसी पंक्ति या किन्हीं पंक्तियों की किन लक्षणों को दृष्टि में रखकर परीक्षा की जाए। तो भी पदावली के अंतर्गत कम से कम 15 प्रकार के छंद आए हैं।" (मीराबाई की पदावली पृ. 52) इन छंदों के नाम सार छंद, विष्णु पद, दोहा छंद उपमान छंद, सवैया छंद, शोभन छंद, त्राटक छंद, कुण्डल छद तथा चान्द्रायण छंद आदि विद्वानों ने गिनाए हैं।

सार छंद का प्रयोग "पदावली" के लगभग एक तिहाई पदों में हुआ है। यह एक मात्रिक छंद है जिसमें 16 और 12 पर विश्राम से 28 मात्राएँ होती हैं तथा अंत में दो गुरु आते हैं--जैसे—

पग घुंघरी बांध मीरां नाची रे।
मैं तो अपने नारायण की आपइ हो गई दासी रे।
लोग कहें मीरां भई बावरी, न्यात कहैं कुल नासी रे।

इस पद में सार छंद है पर शब्दों के बढ़ने से दोष आ गया है।

मीरा ने सरसी छंद का प्रयोग भी प्रायः किया है। यह भी 16 और 11 के विश्राम से 27 मात्राओं का मात्रिक छंद है। मीरां ने इस छंद के प्रयोग में सार छंद की भाँति ही त्रुटियाँ की हैं। देखिए यह पद "री" शब्द के बढ़ जाने से दोष युक्त हो गया है :

मैं जाणयों नाही प्रभु को मिलन कैसे होई री।
आए मेरे सजना फिर गए अगना मैं अभागिन रही सोय री।

विष्णु पद छंद का प्रयोग कम हुआ है। यह भी 16 और 10 के विराम से 26 मात्राओं का छंद है। मीरां ने इस छंद में या गायकों ने उस छंद में बड़ी फ़ेरफार की है। ऐसा एक उदाहरण लीजिए—

कुण बाचै पाती, बिना प्रभु कुण बाचै पाती।
कागद ले उधों जी आयो, कहाँ रहच साथी।।

इसी प्रकार दोहा, नाटक आदि छंदों का प्रयोग तो हुआ है—पर दोष से पद भर गए हैं। "पदावली" में बरवै, सखी आदि कुछ छंद खोज कर और गिनाए गए हैं, किन्तु इनके एक दो ही उदाहरण मुश्किल से मिलते हैं। वर्णिक छंदों में दो उदाहरण कवित्त और मनहर छंद के मिलते हैं—जिनमें प्रायः 31 वर्णों का प्रयोग होता है। मनहर का एक सदोष उदाहरण देखिए—

अली सांवरो की दृष्टि मानो प्रेम की कटारी है
लागत बेहाल भई तन की सुधि बुद्धि गई
तन मन व्यापी पेम. मोनो मतकारी है।

दिलचस्प बात यह है कि मीरा ने एक ही पद में एक से अधिक छंदों का एकत्र प्रयोग भी किया है। किन्तु ऐसा करना पद-परम्परा में कोई दोष नहीं माना जाता। विभिन्न राग-रागनियों के प्रयोग में भी मीरा काफी स्वच्छंदता से काम लेती हैं। निष्कर्ष यह है कि मीरा की छंद-योजना गेय परम्परा के अनुकूल होने पर भी शुद्ध या दोष रहित नहीं है। मीरा और अन्य भक्तों ने इस पदों को इतनी तल्लीनता से गाया है कि छंद की ओर उनका ध्यान तक नहीं गया है। डॉ. राम कुमार वर्मा ने लिखा है—मीराबाई के पदों में छंदों का कम ध्यान है। पर राग-रागनियों में रचना का रूप रहने के कारण गान भी लय मात्रा की विषमता को ठीक कर देता है। मीरां में छंदशास्त्र न देखकर उनकी उस भक्ति भावना की ओर ध्यान देना चाहिए जिसने उन्हें कृष्णकाव्य के कवियों में महत्वपूर्ण स्थान दिलाया है।

काव्य-भाषा, प्रतीक, अलंकार, तथा छंद की इस चर्चा से स्पष्ट हो जाता है कि मीरा का अभिव्यक्ति पक्ष उनके अनुभूति पक्ष के सम्प्रेषण में सक्षम बनकर आया है। उनकी काव्यकला में शब्द-चित्रों की भरमार है और अनुभूति तथा कल्पना का रंग हृदय प्रेरित है। सहज आडंबरहीन भाषा, अलंकार, छंदयोजना के कारण उनमें न तो कोरा चमत्कार प्रदर्शन है न झूठे अलंकरण का मोह ही। गेय परम्परा की उपलब्धि के रूप में मीरां का काव्य भारतीय भक्त हृदय का श्रेष्ठतम सहज काव्य है।

बोध प्रश्न 4

क) मीरा की काव्य भाषा को प्रभावित करने वाली चार भाषाएँ कौन-सी हैं?

....

....

ख) मीरा की मूल भाषा के निर्णय करने में कौन-सी कठिनाइयाँ सामने आती हैं?

....

....

....

....

....

....

....

....

ग) मीरा के पदों में किस भाषा की प्रधानता है?

....

....

घ) निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कोष्ठक में दिए गए शब्दों में से सही शब्द चुनकर कीजिए—

i) मीरा की कविता में .... की प्रधानता है (काल्पनिकता/यथार्थ)
ii) मीरा की कविता में .... अधिक प्रबल है। (भाव पक्ष/कला पक्ष)
iii) मीरा का अलंकार विधान उनके .... में सहायक रहा है। (भावों के उत्कर्ष/काव्य में चमत्कार की सृष्टि)

ङ) मीरां के छंद विधान की विशेषताओं पर चार पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

6.7 काव्य वाचन एवं व्याख्या

किसी भी पद्यांश या गद्यांश की व्याख्या करने का एक खास तरीका है। संदर्भ सहित व्याख्या से तात्पर्य है कि दिए गए पद्यांश का सन्दर्भ और प्रसंग बताते हुए उसकी व्याख्या की जाए तथा उसके भावपक्ष एवं कलापक्ष की प्रमुख विशेषताओं की ओर संकेत किया जाए। पिछली इकाइयों में भी आप इस ढंग से व्याख्या कर चुके हैं। यहाँ हम मीरां के कुछ पद लेंगे उन पदों में आए कठिन शब्दों का अर्थ भी देंगे। दो पदों की व्याख्या हम करके बताऐंगे शेष की व्याख्या आप स्वयं करने का अभ्यास करें।

पद–(1)

बस्यां म्हारे णेणण माँ नंदलाल।।टेक।।
मोर मुकुट मकराक्रत कुण्डल अरूण तिलक सोहाँ भाल।
मोहन मूरत सांवरां सूरत णेणा बणणा बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजां उर बैजंती माल।
मीरां प्रभु सतां सुखदायां, भक्त बछल गोपाल।

बस्यां–बसो। णेणंणमां–आंखों में। मकराक्रत–मछली के आकार का। मोहण–मोह लेने वाली। बण्या–बने हुए। अधर–नीचे का ओठ। राजा–विराजमान। बैजंसी माला–घुटनों तक लंबी। मोतियों की पचरंगी माला। बछल–वत्सल।

संदर्भ–

कृति का नाम
रचनाकार का नाम

प्रसंग–किसका कथन
रचनाकार की विशेषताएँ
मीरांबाई किस प्रकार की भक्त कवि हैं

....

....

उनके आराध्य देव कौन हैं

....

....

उनकी भक्ति का स्वरूप कैसा है

....

....

उनकी कविता में किस पक्ष की प्रधानता है

....

....

आराध्य में अगाध विश्वास

....

....

व्याख्या

मीरा अनन्य भक्तिभाव से निवेदन कर रहीं हैं कि हे कृष्ण। मेरी आंखों में हमेशा निवास करो। कभी भी एक पल के लिए भी आंखों से ओट न हो। तुम्हारे रूप सौन्दर्य को बढ़ाने वाला मोर पंखो

का मुकुट, कानों में मछली के आकार के कुण्डल और माथे पर लाल तिलक लगा हुआ है। तुम्हारा यह अनुपम सौन्दर्य मन को मोह लेने वाला है। तुम्हारी सांवली सलोनी देह अत्यंत कांतिशाली है और तुम्हारी आंखों की भंगिमा अद्भुत है। तुम्हारे अधर पर अमृत रस का पान करने वाली और अमृत रस का ही पान कराने वाली मुरली और हृदय पर वैजयंती माल शोभित है। मीरा कहती है कि हे प्रभु तुम संतों को सुख देने वाले हो—तुम्हारा भक्त वत्सल रूप भक्त हृदयों का अडिग विश्वास है।

विशेष

1 रूप सौन्दर्य के वर्णन के माध्यम से अनन्य भाव की भक्ति का संकेत।
2 कृष्ण की यह छवि लगभग सभी कृष्ण भक्तों के काव्य में मिलती है—सूरदास, रसखान आदि में।
3 चित्रात्मक भाषा में रूप चित्रण है।
4 ब्रज भाषा मिश्रित राजस्थानी हैं।
5 मकराक्रत कुण्डल आदि में कृष्ण का बिंब—वैश्णवभाव योजना का रूप है।

पद (2)

राणा जी थे जहर दियों म्हे जाणी।।टेक।।
जैसे कंचन रहत अगिनि में, निकसत बाराबाणी।
लोक लाज कुल काण जगत की, दह बहाय जस बाणी।
अपने घर का परदा कर ले, मैं अबला बैराणी।
तरकस तीर लग्यों मेरे हियरे, गरक गयो सनकाणी।
सब संतन पर तन मन बारों, चरण कंवल लपराणी।
मीरां के प्रभु राखिलई है, दासी अपनी जाणी।।

म्हे—मैं। कंचन—सोना। दहत—जलता। बाराबाणी—अत्यंत दमकने वाला। कुल काण—कुल की मर्यादा। अबला—असहाय स्त्री। बौराणी—बाग लवन। हियरे—हृदय में। गरब गयो—भीतर गहरे गया। सनकाणी—पागल हो गई। बारें—न्यौछावर करना।

संदर्भ—रचना का नाम
रचनाकार का नाम
(पिछले पद की भाँति)

....

....

प्रसंग—

(पिछले पद की भाँति)

....

....

....

....

....

....

....

....

व्याख्या

मीरा ने अपने जीवन के कष्टों का संकेत जगह-जगह अपने पदों में दिया है। प्रस्तुत पद एक ऐसा ही ऐतिहासिक पद है। राणा जी (ससुराल की ओर से मीरा को सताने वाला राणा) तुमने जहर पिलाया है—मैं जानती हूँ। लेकिन मैं जहर पीकर भी मरुंगी नहीं। क्योंकि मैंने प्रेम का अमृत पी रखा है। मेरी कृष्ण के प्रति अनुराग भावना ऐसे ही चमक उठी है जैसे आग में तपकर सोना दमक उठता है। मैंने लोकलाज, कुल मर्यादा को स्वच्छंदभाव से चुनौती देकर ऐसे बहा दिया है जैसे

पानी को। राणा तू अपने घर का परदा कर ले अर्थात् अपने परिवार की हालत को देख मैं तो बंधनों से मुक्त अबला और पागल स्त्री हूँ। मेरे हृदय में तो कृष्ण के तरकस से निकला प्रेम-बाण गहरा घुस गया है जिसकी चोट और कसक से मैं बेचैन हूँ। मैंने संत-जनों को अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया है और कृष्ण के चरण कमलों में लिपट गई हूँ। मुझे विश्वास है कि वे कृष्ण अपनी दासी मीरा की रक्षा अवश्य करेंगे।

विशेष

1. मीरा के जीवन की एक ऐतिहासिक घटना :
   राणा का जहर देना और मीरा का प्रेम-मार्ग से न डिगना।
2. स्वच्छंदभाव धारा के भक्त का जीवन-दर्शन मीरा ने अपनाया था। उसकी इस पद में प्रबल अभिव्यक्ति मिलती है।
3. प्रेमानुभूति की तीव्रता—'तरकस तीर' से व्यक्त की गई है जिसमें अनुभव से बना बिंब मौजूद है।
4. संत काव्य की उज्ज्वलता का भाव।
5. दास्य भक्ति—'चरण कमल लपटानी' से स्पष्ट है।
6. आत्माभिव्यक्ति की प्रधानता।
7. भाषा की राजस्थानी चमक का रंग।

यहाँ उपर्युक्त पदों की विशेषताओं का संकेत आपको मिल गया है। इन पदों की अन्य विशेषताएँ जैसे अन्य भक्त कवियों से भाव-साम्य, संगीत-योजना, अलंकार योजना, प्रतीक और बिंब-योजना, काव्य-भाषा आदि का संकेत भी आप व्याख्या के बाद "विशेष" में दे सकते हैं। पाठ को ध्यान से पढ़ने पर आप में यह आत्मविश्वास उत्पन्न होगा कि आप मीरा के पदों की विशिष्टताओं को स्वयं ही बता सकेंगे।

अभ्यास

कविता की व्याख्या करना आप सीख चुके हैं—नीचे हम दो पद दे रहे हैं जिनकी व्याख्या आप स्वयं कीजिए।

पद (1)

हेरी म्हा दरद दिवाणी म्हारां दरद न जाणयाँ कोय।
घायल की गति घाइल जाणै, कितिणा घाण होय।
जौहरी की गति जौहरी जाणै, क्या जाण्या जिण खोय।
दरद की मारयां दर-दर ढोल्यां बैद मिलणाना कोय।
मीरां री प्रभु पीरमिटांगा जब बैद सांवरिया होय।

दरद दिवाणी—विरह के दुःख से पागल। म्हारां—मेरा। गति—हालत। जिण—घायण—जिसके घाव हो। बैद-वैद्य। संखरिया—कृष्ण।

संदर्भ—रचना का नाम
रचनाकार का नाम

....
....
....
....

प्रसंग—किसका कथन
किस से कथन

....
....
....
....
....

व्याख्या

....

....

....

....

....

....

....

विशेष

....

....

....

....

....

पद (2)

तनक हरि चितवाँ म्हारी ओर।
हम चितवां ये चित वो णाहरि, द्विवणो बड़ो कठोर।
म्हारी आसा चितवनि थारी, और णा दूजां दोर।
ऊभ्यां ठाढ़ी अरज करुँ छुँ, करतां करतां भोर।
मीरां रे प्रभु हरि अविनासी, देस्यू प्राण अंकोर।।

चितवां—ध्यान देना—देखना। थे—तुम, आप। द्रिवद्री—हृदय। दोर—दौड़, स्थान। ऊभ्या ठाड़ी—आशा में खड़ी-खड़ी। भोर—प्रातः काल। अंकोर—न्यौछावार

संदर्भ—रचना का नाम
रचनाकार का नाम

....

....

प्रसंग—किसका कथन
किससे कथन

....

....

....

....

....

....

व्याख्या

....

....

....

....

....

....

....
....
....

विशेष

....
....
....
....
....

6.8 मूल्यांकन

भक्ति-साधना की तन्मयता और भक्तिरस की उज्जवलता की दृष्टि से कृष्ण भक्ति-परम्परा में मीरा का नाम अद्वितीय है। कृष्ण के अनुराग में समर्पित मीरां में भक्ति का अबाध प्रवाह है। यह प्रवाह मुरझाये मनों को आज भी सींच कर हरा-भरा कर सकता है। दक्षिण भारत की भक्तिन आंडाल से मीरा के भाव-विधान की गहरी समानता है। दोनों में ही कृष्ण के प्रति अगाध प्रेम है दोनों ही कांता-भाव एवं दास्य भाव से भक्ति करतीं हैं।

मीरा ने राजकुल में जन्म लेकर भी सामंतवाद की रूढ़ियों को चुनौती के स्तर पर तोड़ा है। वैष्णवभाव की स्वच्छंद परम्परा में मीरा अपने को मग्न रखती हैं। वे किसी भी सम्प्रदाय में अपने को नहीं बांधती। किन्तु अपने समय के सभी सम्प्रदायों का थोड़ा बहुत प्रभाव उन पर अवश्य है। पूरी लगन से मीरा ने राधाभाव या प्रेमभाव का विकास किया है। नवधाभक्ति और रागानुगा भक्ति से कृष्ण की उपासना करने वाली मीरा में आत्मसमर्पण का भाव बहुत है। वे भौतिक जगत के संघर्षों का डटकर मुकाबला करतीं हैं और उनसे मुक्ति पाने का उपाय भी खोजती हैं। विशेष बात यह है कि मीरां के काव्य में उनके सहज हृदय उद्गार हैं। उनमें कृत्रिमता नहीं है—न भाव की, न भाषा की , न प्रतीक योजना की, न अलंकार की न छंद की। उनका काव्य लोकशैली और लोक-परम्परा, संगीत और गीतिकला का समृद्ध सौन्दर्य प्रस्तुत करता है।

6.9 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा है कि भारतीय भक्ति आंदोलन में मीरा के आगमन से नवीन चेतना का प्रसार होता है। उत्तरी भारत उनकी तन्मय रससिक्त वाणी से आत्मविभोर होकर आनंदमग्न हो जाता है। मीराबाई के माध्यम से भक्ति आंदोलन की सम्भावनाओं पर विचार किया गया है।

- मीरा में कृष्ण-भक्ति के बीज बचपन से ही विद्यमान थे। अवसर पाने पर मीरा के उन्हीं भक्तसंस्कारों का विकास-परिष्कार हुआ है।
- आप जान गए हैं कि मीरा पर सगुण-निर्गुण भक्त धाराओं का प्रभाव है पर वे किसी भी सम्प्रदाय में बद्ध कवयित्री नहीं हैं।
- मीरा काव्य में भाव पक्ष की प्रधानता है। उनकी अनुभूतियों में भावावेश भावतरलता तथा भावशक्ति है।
- उनकी भक्ति माधुर्य भाव की है जिस में कांताभाव को प्रधानता दी गई है।
- अब आप यह बता सकते हैं कि गीतिकाव्य परम्परा में मीरा का भारी योगदान क्यों है।
- आप मीरा तथा आंडाल की तुलना के द्वारा भी दोनों कवयित्रियों की समानताएँ बता सकते हैं।

- मीरा के प्रतीक-विधान की विशिष्टताओं का विश्लेषण भी कर सकते हैं।
- मीरा के काव्य भाषा, अलंकार, छंद योजना की विशेषताओं को भी आप समझा सकते हैं।

6.10 शब्दावली

छंद शास्त्र : छंदों की उत्पत्ति, परम्परा, वर्गीकरण, रचना विधि आदि छंद संबंधी विविध पक्षों का निरूपण करने वाला शास्त्र छंद शास्त्र कहलाता है। इसे ही पिंगलशास्त्र भी कहते हैं।

गोपी भाव : कृष्ण की सखी के रूप में भक्ति का भाव।

राधा भाव : कृष्ण मे अनन्य भक्ति का भाव राधा भाव है। इसमें नारी हृदय का प्रेम और समर्पण चरम सीमा पर मिलता है।

राणा : राणा विक्रमादित्य (1517-1536 ई) मेवाड़ के शासक। इन्होंने मीरा को घोर कष्ट दिए।

मधुर रस : प्रिय अथवा ईश्वर की पति रूप में या सर्वस्व रूप में उपासना वैष्णव भाव की भक्ति में मधुर रस का आदर।

नवधा भक्ति : श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवा, अर्चना, वंदना, दास्य, संख्या, आत्म निवेदन। इस साधना-भक्ति को नवधा भक्ति कहते हैं।

रामानुगा भक्ति : प्रेम समर्पण पर आधारित भक्ति। इसे साध्य रूपा भक्ति या प्रेमा भक्ति या उज्ज्वला भक्ति भी कहते हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभु : बंगाल के भक्त संत (1414-1533) इन्होंने प्रेमाभक्ति के प्रचार-प्रसार के लिए रूप गोस्वामी एवं जीवगोस्वामी को वृंदावन भेजा। जीवगोस्वामी से मीरा की भेंट होना प्रसिद्ध है।

आश्रय : जिसके हृदय में भाव उत्पन्न होता है उसे आश्रय कहते हैं।

आलंबन : जिस आधार से भाव उत्पन्न है उसे आलंबन कहते हैं।

6.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

चतुर्वेदी–आचार्य परशुराम : *मीरांबाई की पदावली*, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

सुंदरम–डॉ. ना. : *मीरां और आंडाल का तुलनात्मक अध्ययन*, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

तिवारी–भगवानदास : *मीरां की भक्ति और उनकी काव्य साधना का अनुशीन*, साहित्य भवन (प्रा.) लिमिटेड, इलाहाबाद।

चतुर्वेदी–रामस्वरूप : *मध्य कालीन हिन्दी काव्यभाषा*, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

6.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

क) देखिए भाग 6.2.1
ख) देखिए भाग 6.2.2
ग) देखिए भाग 6.2.2
घ) देखिए भाग 6.3.2
ङ) देखिए भाग 6.2.3
च) देखिए भाग 6.2.3

बोध प्रश्न 2

क) देखिए भाग 6.3
ख) देखिए भाग 6.4

ग) देखिए भाग 6.4.1
घ) i) ✓ ii) × iii) × iv) ✓

बोध प्रश्न 3

क) देखिए भाग 6.5
ख) पढ़िए भाग 6.5
ग) i) × ii) ✓ iii) ×
घ) देखिए भाग 6.5

बोध प्रश्न 4

क) देखिए भाग 6.6.1
ख) देखिए भाग 6.6.1
ग) राजस्थानी
घ) i) यथार्थ ii) भाव पक्ष iii) उत्कर्ष
ङ) देखिए भाग 6.6.4

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

यू०जी०एच०आई०-02
हिन्दी में ऐच्छिक पाठ्यक्रम

खंड
2

भक्तिकाव्य (दूसरा भाग)

इकाई 7

सूरदास 101

इकाई 8

गोस्वामी तुलसीदास 127

इकाई 9

रहीम का काव्य 151

खंड 2 का परिचय

हिंदी साहित्य में भक्तिकाल देश व्यापी भक्ति-आंदोलन की देन है। हिंदी के भक्तिकाव्य की विशेषताओं को समझने के लिए भक्ति-आंदोलन को समझना जरूरी है। साथ ही इस धारणा से भी मुक्त होना होगा कि मुस्लिम शासन की प्रतिक्रिया के रूप में भक्ति-आंदोलन का प्रसार हुआ। क्योंकि भक्ति-आंदोलन का सूत्रपात यहाँ तुर्कों-पठानों के आक्रमण से बहुत पहले हो गया था। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि भक्ति-आंदोलन का प्रसार उत्तरी भारत से पहले दक्षिण भारत में हुआ और वहाँ मुसलमानों का शासन नहीं था। दक्षिण भारत के भक्ति-आंदोलन की व्यापक शक्ति को लेकर दक्षिण के आचार्यगण उत्तरी भारत में आए और उन्होंने उत्तरी भारत में नवीन लोक-जागरण किया। मूलतः यह भक्ति-आंदोलन पुरोहितवाद, शास्त्रज्ञान के दम्भ, अंधविश्वासों के प्रति विद्रोही, लोकभाषाओं के उदय तथा तत्कालीन समाज व्यवस्था में जनता का सामंतवाद-विरोधी सांस्कृतिक आंदोलन था। इस आंदोलन ने पहली बार समाज को दिशा दृष्टि देने वाले अपने संत कवि पैदा किए। यहाँ इन संतों, भक्तों, सूफ़ियों तथा कवियों को अलग करके न देखना चाहिए। ये सभी रूढिवाद-विरोधी हैं तथा प्रेमतत्व इन सभी का आधार हैं। निर्गुण ज्ञानमार्गी, निर्गुण प्रेममार्गी, सगुण कृष्णभक्ति धारा और सगुण रामभक्ति धारा के सभी हिंदू-मुसलमान कवियों ने एक साथ मिलकर अंधपरंपरावाद, धार्मिक कट्टरता तथा सामंतवाद का विरोध किया। भक्तिकाव्य को इस लोकजागरणवादी धारा से अलग करके देखने पर उसका जनता में व्यापक प्रसार उसकी गरिमा, उसका ऐतिहासिक-सांस्कृतिक महत्व आंखों से ओझल हो जाता है। प्रश्न उठता है कि संत कौन थे? संत और भक्त एक ही थे—या अलग? निर्गुण-सगुण धारा का उद्देश्य क्या था? भक्तों की सामाजिक भूमिका लोकहितकारी थी या जन विरोधी? इस तरह के अनेक प्रश्न भक्तिकाव्य और भक्ति-आंदोलन से जुड़े संत कवियों पर एक साथ उठ खड़े होते हैं। "संत" शब्द से निर्गुण कवियों का अर्थ लेना ठीक नहीं है—कारण सगुण कवि भी संत थे। कबीर संत हैं तो मीरा और रहीम भी संत हैं। जाहिर है कि संतों में स्त्री और पुरुष, संन्यासी और गृहस्थ, हिंदू और मुसलमान, शूद्र और द्विज, सगुणवादी और निर्गुणवादी दोनों ही हैं। ये सभी संत व्यापक लोक-मंगल दृष्टि के संस्थापक और रक्षक हैं। कर्मकांड, धर्मशास्त्र, पुराणवाद कट्टर-आचार-विचार, अंधविश्वास-आडंबर की रीति-नीति के विरुद्ध मूलतः प्रेम की शक्ति से मानव मुक्ति के पक्षधर हैं। पुरोहितों तथा मौलवियों की धार्मिक भाषाओं संस्कृत और अरबी के बदले ये सभी जन-भाषाओं में अपनी बात कहते हैं। कबीर, जायसी, सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई और रहीम का काव्य इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। जनता की समस्याओं-चुनौतियों को जनता के सामने जनता की भाषा में रचना-शक्ति के साथ रख देना इन भक्त कवियों का इष्ट रहा है।

इस खंड की इकाई 3 "भक्ति काव्य : स्वरूप-विकास" में उन कारणों पर विचार किया गया है जिसके परिणामस्वरूप भक्तिकाव्य का आविर्भाव हुआ। इकाई 4-5 में निर्गुण धारा के प्रमुख कवियों में कबीर दास और जायसी के काव्य का विवेचन एवं मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। इकाई 6,7,8 में मीराबाई सूरदास और तुलसीदास के काव्य-सौंदर्य का संक्षिप्त और सारगर्भित ढंग से निरीक्षण-परीक्षण किया गया है। इकाई 9 में रहीम की भक्ति-नीति परंपरा के काव्य का अध्ययन विचार के केन्द्र में रहा है। रहीम की कविता का विवेचन करते समय उनकी तुलना तुलसीदास से की गई है। यहाँ निर्गुण-सगुण जैसा भेद-अध्ययन की सुविधा के लिए ही किया गया है। अन्यथा हमारी दृष्टि यही रही है कि हिंदी के इन प्रमुख भक्त कवियों ने सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से भारतीय जन-जीवन को कहाँ, क्यों और कैसे प्रभावित किया है। उन कारणों की खोजबीन करते हुए उनके काव्य का विश्लेषण करना ही हमारा उद्देश्य रहा है।

इस खंड में संदर्भ, प्रसंग सहित व्याख्या के साथ जो पद्य दिए गए हैं। उन्हीं के भीतर से आपको परीक्षा के लिए व्याख्या की तैयारी करनी है।

इस खंड से संबंधित ऑडियो-वीडियो पाठ भी तैयार किए गए हैं। यह पाठ आपके विश्वविद्यालय के विभिन्न अध्ययन केन्द्रों में उपलब्ध होंगे।

इकाई 7 सूरदास

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 युग-परिवेश
7.3 जीवन परिचय तथा रचनाएँ
7.4 भक्ति-भावना एवं दार्शनिक विचारधारा
7.5 सूर का भावपक्ष
- 7.5.1 वात्सल्य
- 7.5.2 शृंगार

7.6 अभिव्यंजना पक्ष
- 7.6.1 काव्यरूप
- 7.6.2 काव्यभाषा
- 7.6.3 अलंकारयोजना
- 7.6.4 छन्दविधान

7.7 वाचन एवं व्याख्या
7.8 मूल्यांकन
7.9 सारांश
7.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें
7.11 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

इस इकाई में सगुणधारा के कृष्ण भक्त कवि सूरदास को भक्ति आन्दोलन की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया गया है। साथ ही यह प्रयत्न भी किया गया है कि आप सूरदास के काव्य सौन्दर्य का आस्वादन कर सकें। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- सूरदास के युग परिवेश को समझ सकेंगे;
- सूर के जीवन एवं कृतियों से परिचित हो सकेंगे;
- सूर की भक्ति पद्धति तथा दार्शनिक विचारों को जान सकेंगे;
- सूर के भाव पक्ष की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- सूर के काव्य के शिल्पगत सौन्दर्य को बता सकेंगे;
- भक्तिकाल के सन्दर्भ में सूर का महत्व बता सकेंगे;
- सूर के विशिष्ट पदों की व्याख्या कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

आपने इकाई 6 में मीराबाई तथा उनके साहित्य से संबंधित जानकारी प्राप्त की है। इस इकाई में हम महाकवि सूरदास तथा उनके साहित्य की विशेषताओं की चर्चा करेंगे। सूरदास सगुण भक्तिधारा की कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख भक्त कवि थे। इस पाठ में हम आपको सूर के जीवन उनकी कृतियों तथा काव्य के विविध पक्षों की जानकारी देंगे। सूर ने अपने आराध्य कृष्ण को मीरा की भांति स्वामी या पति न मानकर सखा के रूप में अंकित किया है। वल्लभ के पुष्टि संप्रदाय में दीक्षित होने के कारण उन्होंने पुष्टिमार्ग के पोषणं तदनुग्रहः के सिद्धांत को अपनाया। प्रस्तुत पाठ में इस सिद्धांत के आधार पर सूर की भक्तिभावना एवं दार्शनिक विचारधारा का विवेचन किया गया है। साथ ही इस पाठ का अध्ययन करने से आपको सूर के वात्सल्य एवं शृंगार चित्रण तथा काव्य भाषा के विविध पक्षों की जानकारी भी प्राप्त होगी। सूर साहित्य के कुछ विशिष्ट पदों का वाचन एवं व्याख्या भी इस उद्देश्य से दी गई है कि आप पदों के अर्थ एवं व्याख्या करना जान सकें। आइए अब हम महाकवि सूरदास तथा उनके साहित्य पर विस्तार से चर्चा करें।

7.2 युग-परिवेश

सूर का साहित्य भक्ति-आंदोलन की सांस्कृतिक उपलब्धि है। विभिन्न सिद्धांतों के सार रूपी अमृत ने उनके काव्य सागर को भर दिया है। दक्षिण भारत की भक्ति धारा का मधुर प्रवाह उत्तरी भारत में नव जीवन उत्पन्न कर उठा। दक्षिण भारत के आचार्यों ने भक्ति आंदोलन को दिशा दृष्टि दी तथा पन्द्रहवीं शताब्दी में यह प्रवाह ब्रज प्रदेश में तेज हो गया। 15वीं और 16वीं शताब्दी में जो वैष्णव भक्ति प्रवाह उमड़ा उसमें वल्लभाचार्य की भूमिका प्रधान थी। वल्लभाचार्य तथा अन्य वैष्णव आचार्यों के लिए भक्ति मात्र भजन से मन बहलावा नहीं थी। वह जीवन मूल्य थी और इस मूल्य को पाने एवं रक्षित रखने के लिए इन आचार्यों ने हर संभव प्रयास भी किया। भक्ति को एक धक्का शंकर के मायावाद ने दिया है। फलतः रामानुजाचार्य से लेकर वल्लभाचार्य तक जितने भी भक्त आचार्य हुए—सभी ने शंकर के मायावाद का खंडन किया। सभी का प्रयास जीवन जगत के कर्म-सौंदर्य को महत्व देने का रहा। सभी ने कहा कि भक्ति न तो अविद्या है और न यह जगत् झूठा है। यह संसार सत्य है इसका संघर्ष सत्य है और मानव में भक्त की शक्ति ही उसे दिव्यता प्राप्त करा सकती है।

सारा जगत् ब्रह्म की लीला भूमि है। ब्रह्म अवतार धारण कर मानव लीला करता है और अपने "पुरुषोत्तम" पूर्ण रूप को प्रकाशित भी। भक्ति-आंदोलन की एक बड़ी विशेषता यह भी रही है कि इसने मनुष्य की महिमा का बखान किया। धरती को वैकुंठ से श्रेष्ठ सिद्ध किया और कहा कि वैकुंठ में जाकर क्या करेंगे—वहाँ न यमुना है न ब्रज है, न गोप-ग्वाले हैं न रासलीला है।

सूर ने राजनीतिक सामाजिक परिस्थितियों पर टिप्पणी तुलसी की भाँति स्पष्टता से नहीं की है। वे अपने भाव में मग्न रहने वाले थे—भक्त थे और कबीर की तरह उनमें समाज सुधार का जोश न था। शैवों-शाक्तों, नाथों, सिद्धों की भक्ति विरोधी करतूतों को समझते थे और निर्गुण हठयोग साधना को लोक-विरोधी मानते हुए तर्कों से खंडित करते थे। तंत्र-यंत्रवाद से भक्ति आंदोलन का विरोध कितना प्रबल था इसका ठीक-ठीक अनुमान सूर के काव्य से लगता है। सूर ने सगुण भक्ति के आधार पर खड़े होकर कहा—"हमारी पति गति कमल नयन ते जोग सिखै ते राड़े।" हमारा रक्षक कृष्ण है—जोग का निराश वैधव्य हमें नहीं चाहिए। अपने समय के वैष्णव सम्प्रदाय तथा सूफ़ियों के प्रेमवाद का प्रभाव सूर ने ग्रहण किया। यह प्रेम सिद्धांत ही सूर के काव्य-सृजन की प्रेरणा है।

लोकभाषाओं का जागरण और उनकी महिमा से सूर की ब्रजभाषा हमारा साक्षात्कार कराती है। अकबर का "दीन इलाही" भक्ति की भावना और संत भावना में ढल जाता है। ललित कलाओं मे संगीत कला की परंपरा का प्रवाह भी तेज हो जाता है और लोक गीतों का ग्राम्य सौन्दर्य सूर की वाणी में चमक उठता है। सूर हिंदू-इस्लाम धर्म की कट्टरता, झूठे धर्मशास्त्र से दूर रहकर मूलतः मानव प्रेम पर दृष्टि केन्द्रित करते हैं—मानव का भाव-परिष्कार ही उनके सृजन का उद्देश्य बन जाता है। संत-साहित्य के सामाजिक आधार में किसानों, व्यापारियों का भौतिक जीवन है। इसीलिए सूर की भक्ति प्रेरणा के स्रोत भक्ति आंदोलन के लोक हितकारी-स्वरूप में ही खोजना चाहिए। क्रूर सामंती ढाँचा इस काल में कमजोर हो जाता है और जनता भक्ति में अपनी इच्छाओं का निकास खोजती दिखाई देती है। सूर का काव्य इस बात का प्रमाण है कि भक्ति-आंदोलन हमारी ही सामाजिक सांस्कृतिक स्थितियों की रूढ़िवाद विरोधी अभिव्यक्ति है। इसमें बाहरी आक्रान्ताओं, तुर्कों, पठानों, अरबों का प्रत्यक्ष रूप से कोई हाथ नहीं है। पंडित-पंडिय की सूरदास बार-बार आलोचना करते हैं—जाहिर है सूर को शास्त्र का नहीं लोक-चेतना का बल प्राप्त है। सूर के समय आगरा व्यापार का केन्द्र था और अनेक प्रदेशों के व्यापारी यहाँ आते थे। इनकी भाषा के अनेक शब्द ब्रजी में खप गए और उनका ब्रजीकरण हो गया। स्पष्ट है कि धार्मिक कारणों की छानबीन से सूर काव्य की पृष्ठभूमि स्पष्ट नहीं की जा सकती है उसके लिए हमें भारत के सामंती ढाँचे वाले समाज का विश्लेषण भी करना होगा। यह विश्लेषण हमें बताता है कि लोक-भाषा में काव्य-सर्जन की प्रेरणा का कारण जन साधारण की बढ़ती हुई शक्ति है। सूर ने योगमार्ग तथा निराकार ब्रह्म का जोरदार शब्दों में खंडन किया है।

सारांश यह है कि सूर काव्य की पृष्ठभूमि में जनता का प्रेम है तथा जनता की मधुर-कोमल भावनाओं का प्रतिबिंब भी। सूर का बाल कृष्ण का सौंदर्य वर्णन भारतीय जनता की अपनी मनोहर थाती है। सूर ने भारतीय जनता के श्रेष्ठ संस्कारों को निखारा तथा सामंती गायकों की नखशिख परंपरा से जनता को दूर रखने का सजग प्रयास किया।

7.3 जीवन-परिचय

सूर के जीवन के संबंध में प्राप्त सामग्री के दो रूप हो सकते हैं—(1) बाह्य साक्ष्य के रूप में, (2) अंतः साक्ष्य के रूप में। बाह्य साक्ष्य के रूप में सूर के समसामयिक लेखकों, वार्ता साहित्य, भक्तों का साहित्य तथा तत्कालीन इतिहास ग्रन्थ आते हैं। अंतः साक्ष्य के रूप में सूर के आत्म कथन यत्र-तत्र बिखरे मिलते हैं। सूरदास के जीवन के बाह्य साक्ष्य "चौरासी वैष्णवन की वार्ता", हरिराम कृत "भाव प्रकाश", वल्लभ दिग्विजय, भक्तमाल (नामादास) भक्त नामावली (ध्रुवदास) आइने अकबरी तथा मुंशियात अबुल फजल आते हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथ एवं रिपोर्टों में भी सामग्री मिल जाती है। "सूरसागर", "साहित्य-लहरी" और "सूर सारावली" को आधार बनाकर अंतः साक्ष्य सामग्री देने की विद्वानों ने चेष्टा की है।

महाकवि सूरदास के वास्तविक नाम पर विवाद है। सूर के पदों में सूर, सूरजदास, सूरज, सूरश्याम, सूरदास, ये पाँच नाम आते हैं, किन्तु अधिकांश विद्वान इस पक्ष में रहे कि सूरदास ही उनका वास्तविक नाम था।

सूरदास की जन्मभूमि के संबंध में भी चार स्थानों की प्रसिद्धि है: 1) गोपाचल, 2) मथुरा प्रान्त में कोई ग्राम, 3) रुनक्ता, 4) सीही। "साहित्यलहरी" में सूर के पिता का निवास स्थान गोपाचल माना गया है। डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल गोपाचल को ही सूर की जन्मभूमि मानते हैं। पं. रामचन्द्र शुक्ल ने सूर का जन्म स्थान रुनक्ता लिखा है। रुनक्ता को जन्मस्थान मानने का कारण यह है कि सूर गोघाट पर रहते थे। वार्ता साहित्य के अनुसार सूर का जन्मस्थान सीही ग्राम है। यह ग्राम दिल्ली से चार कोस की दूरी पर बताया गया है किन्तु अब इस ग्राम का कहीं पता नहीं है। फिर भी विश्वास किया जाता है कि यह ग्राम दिल्ली के पास रहा होगा जहाँ सूर जन्मे थे।

पुष्टिमार्गीय मान्यता के अनुसार सूरदास वल्लभाचार्य से केवल 10 दिन छोटे थे। आचार्य वल्लभ का जन्म सन् 1478 ई. (सं. 1535) निश्चित है तो सूरदास की जन्मतिथि भी सन् 1478 (सं. 1535) सिद्ध होती है। इस तिथि की पुष्टि सूर से संबंधित अन्य सामग्री से भी होती है। यद्यपि आ. रामचन्द्र शुक्ल सूर का जन्म सं. 1540 तथा देहावसान 1620 के लगभग (1482-1573 ई.) मानते हैं।

सूरदास की जाति तथा वंश पर भी विवाद है। आ. मुंशीराम शर्मा ने लिखा है कि "पं. हरप्रसाद शास्त्री ने सूर के पिता का नाम रामचन्द्र लिखा है जो वैष्णव भक्ति के अनुसार रामदास बन जाता है।" इस मत के अनुसार सूर के पिता का नाम रामदास ही रहा होगा। सूर को विद्वानों ने भट्ट चंदवरदाई की वंश-परंपरा में रखा है और सूर को भाट माना है। इस मत से वे भट्ट ब्राह्मण थे। सूर के परिवार को लेकर भी अनेक किंवदन्तियाँ मिलती हैं। डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा तो सूर को विवाहित मानते हैं। यह भी कहा जाता है कि युवावस्था में वे किसी के प्रेमपाश में भी बँधे थे और प्रेम में सफल नहीं हो पाए।

सूर की जन्मांधता को लेकर पर्याप्त विवाद रहा है। विद्वानों का एक वर्ग उन्हें जन्मांध मानता है किन्तु दूसरे वर्ग के विद्वान आ. शुक्ल आदि उन्हें जन्मांध नहीं मानते। आ. शुक्ल का तर्क है कि सूर के पदों में रंगों, फूलों, वृक्षों तथा बाल-चेष्टाओं के आधार ऐसे हैं कि कोई उन्हें जन्मांध न कहेगा। परन्तु "सूरसागर" में ऐसे बहुत से पद हैं जो अंधेपन की शिकायत से भरे हैं—

"सूरदास सो बहुत निनिठुरता, नैननि हूँ की हानि।" तथा "सूर की बिरियाँ निठुर होइ बैठे, जनम-अंध करयो।" स्पष्ट है कि इन पदों की रचना के समय वे नेत्रविहीन थे। परन्तु सशक्त रूप वर्णन का कवि होने के कारण उन्हें जन्मांध मानने में संकोच होता है।

जन्म से ही सूरदास वैराग्य लेकर रहे और मथुरा के निकट गोघाट पर निवास किया। यहीं पर उनका साक्षात्कार, वल्लभाचार्य से हुआ। आ. वल्लभ काशी से मायावाद का खंडन करने के पश्चात् ब्रज आये थे। इस प्रकार सं. 1526 (सन् 1505) में उन्होंने सूर को दीक्षा दी। आ. शुक्ल ने सूर का आ. वल्लभ से दीक्षित होना सं. 1580 (सन् 1523 ई.) के लगभग माना है। इस कथन का कारण कदाचित श्रीनाथ जी के मंदिर का स. 1576 (सन् 1519 ई.) में पूर्ण होना है। आचार्य वल्लभ से दीक्षा लेकर वे गोवर्धन पर जीवन व्यतीत करने लगे और श्रीनाथ जी की सेवा में ही जीवन बिताया। वे प्रतिदिन श्रीनाथ के मन्दिर में कीर्तन-सेवा हेतु जाते थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य के जीवन काल में ही उनके चार शिष्य मंदिर में पद-रचना कर उनका कीर्तन करते थे। ये चारों शिष्य कुम्भनदास, सूरदास, परमानंददास और कृष्णदास थे। आ. वल्लभ के देहांत के बाद कार्य-

भार उनके पुत्र विट्ठलनाथ जी पर आया। उन्होंने कीर्तन कर्म में विस्तार देने के लिए अपने चार शिष्यों छीतस्वामी, गोविन्द स्वामी, नन्ददास और चतुर्भुज दास को भी जोड़ा। श्रीनाथ जी की आठ समय की झांकियों के कीर्तन के लिए "अष्टछापन" की स्थापना हुई जिनमें चार वल्लभ के तथा चार विट्ठलदास के शिष्य मिलकर आठ भक्त हो गए। ये सभी पुष्टिमार्ग में दीक्षित थे। इस प्रकार सूरदास आरंभ से लेकर अंत तक पुष्टिसम्प्रदाय की सेवा करते रहे।

सूर को लेकर यह जनश्रुति भी है कि उनकी सम्राट अकबर से भेंट हुई थी। चौरासी वैष्णवन की वार्ता के अनुसार दिल्ली से आगरा जाते समय अकबर सूरदास से मिले थे। यह भी कहा जाता है कि अकबर भेष बदलकर तानसेन के साथ सूर के पद सुनने जाते थे। इन कथनों से यही निष्कर्ष निकलता है कि उस युग में सूरदास के भक्ति संगीत की प्रसिद्धि हो गई थी।

सूर का स्वर्गवास कब हुआ निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता। आचार्य शुक्ल ने उनकी आयु 80-82 तक मानी है तथा मृत्यु संवत् 1620 (सन् 1573 ई.) में किन्तु विवाद के कारण यह मत सभी को मान्य नहीं है। सूर का देहावसान पारसौली में सं. 1640 (सन् 1583 ई.) के लगभग मानना ही समीचीन है।

रचनाएँ

सूरदास के जीवन वृत के समान ही उनकी रचनाओं की प्रामाणिकता के संबंध में भी मतभेद है। काशी नागरी प्रचारिणी की खोज रिपोर्ट, इतिहास ग्रन्थ तथा विभिन्न पुस्तकालयों से प्राप्त कृतियों के आधार पर ये 25 ग्रंथ सूरकृत बताए जाते हैं—सूर सारावली, सूरसागर, साहित्य लहरी, गोवर्धन लीला, भंवर लीला, प्राणप्यारी, सूरसाठी, विनय के स्फुट पद, एकादशी महात्म्य, भागवत् भाषा, दशम स्कन्ध भाषा, सूर सागर सार, सूर रामायण, मान, लीला, राधा रसकेलि कौतूहल, दान लीला, नाग लीला, ब्याह लो, दृष्टिकूट के पद, सूर शतक, सूर पचीसी, सेवा फल, हरिवंश टीका (संस्कृत), नल दमयन्ती तथा रामजन्म। इनमें से कुछ कृतियों में तो सूर सागर के ही पद दिए गए हैं तथा कुछ केवल लय एवं गति के कारण ही सूर की कृतियों के रूप में मान्य हो गए हैं।

आधुनिक विद्वानों ने छानबीन के आधार पर सूर की तीन रचनाओं को ही प्रामाणिक माना है। ये हैं—सूर सारावली, सूरसागर एवं साहित्य लहरी। अब हम इन तीन रचनाओं के विषय में विचार करेंगे।

सूर सारावली

कुछ विद्वानों ने इस कृति के नाम से आभास लगाया कि यह ग्रंथ सूरसागर की भूमिका तथा सारांश के रूप में प्रस्तुत हुआ है। वस्तुतः यह न तो सूरसागर की भूमिका है न सारांश। इसमें कुल 1107 पद हैं। सम्पूर्ण ग्रंथ में होली के खेल का रूपक है। वसंत से लेकर होली तक के ब्रज उल्लास को यह रचना प्रस्तुत करती है। होली के रूप में सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है। यह सृष्टि वर्णन पुराणों तथा श्रीमद्भागवत के आधार पर किया गया है। यहाँ ऐसे पद हैं जिनमें नारायण की नाभि से कमल और कमल से ब्रह्मा के उत्पन्न होने का उल्लेख है। बीच-बीच में ध्रुव, हिरण्यकश्यप एवं प्रह्लाद आदि की कथा भी आती है। इस कृति का रचनाकाल सं. 1602 मान्य है। मूलतः यह एक स्वतंत्र सैद्धांतिक रचना है।

सूरसागर

यह ग्रंथ ही सूरदास की प्रामाणिक कृति के रूप में मान्य है। सूरसागर के बारह स्कन्धों में सवा लाख पद होने की बात लोक प्रसिद्ध है। परन्तु अभी तक विद्वानों को दस हजार पद ही प्राप्त हो सके हैं। सूरसागर भागवत् के अनुसरण पर रचा गया है। इस बात की पुष्टि "सूर रह्यो भागवत् अनुसार" से होती है। किन्तु सूरसागर भागवत् का भाषानुवाद मात्र नहीं है। इस कृति में भागवत् की कथाओं का वर्णनात्मक रूप नहीं मिलता। वस्तुतः सूरसागर कृष्ण के कार्यों की अद्भुत लीलाओं का गीतसागर है। भागवत् का दृष्टिकोण अध्यात्मपरक है, सूरदास का लीला परक। अतः सूरसागर सूर की मौलिक सर्जनात्मक उपलब्धि है।

साहित्य लहरी

यह ग्रंथ सूरदास के दृष्टिकूट पदों का संग्रह है। इसमें रस अलंकार एवं नायिका भेद की शैली अपनाई गई है। इस कृति में 118 पद हैं। विद्वानों के लिए यह विचारणीय विषय रहा है कि यह एक स्वतंत्र कृति है या सूरसागर में आए दृष्टिकूट के पदों का संकलन मात्र। सूरसागर में दृष्टिकूट शैली के कुछ पद अवश्य हैं, पर साहित्य लहरी के पदों से उनका गहरा साम्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह दृष्टिकूट के पदों की स्वतंत्र कृति है।

इस कृति में नायिका के मध्या, स्वकीया, अज्ञात यौवना, धीरा, आभिसारिका आदि अनेक रूपों का वर्णन है। श्रृंगार, हास्य, रौद्र, वीर, अद्भुत, भयानक, वीभत्स तथा शांत रसों का सुंदर एवं अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग है।

बोध प्रश्न क

सही उत्तर पर निशान लगाइये:

1 सूरदास का जन्म निम्नलिखित में से किस स्थान पर हुआ।
   अ) मथुरा
   ब) सीही
   स) रुनक्ता
   द) बल्लभगढ़

2 सूर की जन्मांधता पर चार पंक्तियों में विचार कीजिए।

....

....

....

....

3 सूरदास के दीक्षागुरु के नाम पर (✓) का निशान लगाइये।
   क) वल्लभाचार्य
   ख) विट्ठलनाथ
   ग) मध्वाचार्य

4 अष्टछाप से आप क्या समझते हैं? इसके अंतर्गत कौन-कौन से कवि आते हैं?

....

....

....

....

....

7.4 भक्ति-भावना

सूर की भक्ति भावना के सर्वप्रथम दर्शन इनके विनय के पदों में होते हैं। इन विनय के पदों से पता चलता है कि वल्लभाचार्य से दीक्षा प्राप्त करने के पूर्व का यह भक्ति-रूप है जिसमें वे अन्य भक्ति-पद्धतियों से प्रभावित हैं। फलतः कुछ पद हठयोग एवं शैव साधना से प्रभावित हैं और कुछ पद निर्गुण भक्ति धारा से। इन पदों में वेद शास्त्र की निंदा, ज्ञान एवं वैराग्य की महिमा, सतगुरु कृपा, जाति-पाति का खण्डन एवं मूर्ति पूजा का विरोध वाला संत भाव प्रबल है। वे यहाँ "अपनपौ आपनि ही बिसर्यो" तथा "शब्दहिं शब्द भयो उजियारो सतगुरु भेद बतायो" कह कर कबीर की अंतः साधना की बात करते मिलते हैं। सूर के ऐसे पर्याप्त पद हैं–जिन पर, रामानुजाचार्य एवं रामानंद का असर दिखाई देता है। इन सभी पदों में विनय की प्रधानता के साथ नवधा भक्ति का रंग चढ़ा हुआ है। सूरदास की भक्ति का यह दास्यभाव है जिसमें दास्यभक्ति के सात प्रकार दीनता, मानमर्षता, भय, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य और चिंतन विद्यमान है तथा वैष्णव परंपरा का पूर्ण परिपालन मिलता है। इन सभी पदों का निष्कर्ष यही है कि वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व सूरदास एक संत थे।

वल्लभाचार्य के सम्पर्क में आते ही सूर "घिघियाना" छोड़कर पुष्टिमार्गीय भक्त हो जाते हैं। भक्ति क्षेत्र में वल्लभ सम्प्रदाय की साधना का मार्ग "पुष्टिमार्ग" कहा जाता है। इस मार्ग में श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कंध में मौजूद दशम अध्याय के चौथे श्लोक "पोषणं तदनुग्रहः" के आधार पर भगवान की अनुग्रह कृपा को जीवन का वास्तविक पोषण कहते हैं। इस पुष्टिमार्ग की स्थापना है कि प्रेम लक्षण, भक्ति के द्वारा ही जीव की मुक्ति संभव है। सामान्य रूप से तीन प्रकार के जीव होते हैं (1) पुष्टि जीव–जो भगवान के अनुग्रह का भरोसा रखते हैं, (2) मर्यादा-जीव – जो वेद विधियों का अनुसरण करते हैं, (3) प्रवाह-जीव–जो संसार-प्रवाह में पड़कर संसार के सुखों में लिप्त रहते हैं। इन तीनों प्रकार के जीवों में पुष्टिमार्ग पुष्टिजीव को ही सर्वोपरि

मानता है। कर्म, ज्ञान एवं भक्ति में भक्तिमार्ग ही उत्तम है— क्योंकि इस मार्ग में जीव दम्भ त्यागकर भगवान के अनुग्रह पर रहता है तथा भगवान की नित्य लीला में निमग्न इस सिद्धांत दृष्टि के कारण ही गोपियों की प्रेमा भक्ति को ही पुष्टिमार्गीय भक्ति में सर्वोत्तम भक्ति भावना का रूप माना जाता है। कारण, पुष्टिमार्ग में सेवा का महत्व है और सेवा भी दो प्रकार की है--नाम सेवा और स्वरूप सेवा। पुनः आचार्यों ने स्वरूप सेवा के तीन भेद किए हैं--तनुजा, वित्तजा एवं मानसी सेवा। शारीरिक सेवा "तनुजा" है, धन से सेवा "वित्तजा" है और सम्पूर्ण मन से की गई सेवा मानसी या "मनजा सेवा" है। मनजा सेवा के भी दो भेद हैं— मर्यादामार्गी तथा पुष्टिमार्गी। मर्यादामार्गी सेवा के लिए शास्त्र ज्ञान आवश्यक है और पुष्टिमार्गीय सेवा में भक्त को भगवान के अनुग्रह की ही कामना रहती है। यह शुद्ध प्रेम सेवा का पवित्र रूप है। खूब चिंतन मनन के बाद सूरदास ने पुष्टिमार्गीय प्रेम भक्ति को ही अपनाया है। इस भक्ति मार्ग में भक्त अपना सर्वस्व कृष्ण के चरणों में अर्पण कर देता है।

सूरदास के काव्य में प्रेम के विविध रूप वात्सल्य, माधुर्य शृंगार, वियोग शृंगार आदि की मनोरम झांकी मिलती है। कृष्ण प्रेम के वशीभूत होकर ही ब्रज में अवतार लेते हैं। सूर के शब्दों में "प्रेम प्रेमते होय प्रेमते पारै पइये" तथा "प्रीतिवश नटवर रूप धर्यो" में प्रेम सिद्धांत का सीधा समर्थन है। वात्सल्य और विरह इसी प्रेम के प्रत्यक्ष दर्शन हैं।

वैष्णव परंपरा में सामान्य रूप से पाँच प्रकार की भक्ति प्रचलित है। (1) शांत भाव की भक्ति--जिसमें पूज्य पूजक भाव रहता है अर्थात् ब्रह्म पूज्य है और भक्त पूजक, (2) वात्सल्य भाव की भक्ति—इसमें भगवान के साथ जन्यजनक संबंध रहता है। भगवान पिता है भक्त बालक है, (3) दाम्पत्य भाव की भक्ति—इसे माधुर्य भक्ति भी कहा जाता है—इसमें ईश्वर के साथ पतिभाव की भक्ति फूटती है, (4) संख्य भाव की भक्ति जिसमें भगवान के साथ सखाभाव रहता है, (5) दास्यभाव की भक्ति-भगवान सेव्य एवं भक्त सेवक भाव रखता है। प्रधान रूप से सूर की भक्ति सखाभाव की है। सूर ने कृष्ण को अपना सखा मानकर भक्ति-भावना की है और पुष्टिमार्ग के सेवाभाव का श्रेष्ठ उदाहरण भी प्रस्तुत किया है।

पुष्टिमार्ग की भक्ति में तीन आसक्तियाँ मिलती हैं--लीलासक्ति, रूपासक्ति एवं भावासक्ति। सूरदास ने लीलासक्ति को प्रधान स्थान देने के साथ कृष्ण रूपासक्ति को भी स्थान दिया है। सूर ने "सगुणलीला पद गावै" कहकर मानो यही संकेत दिया था। इतना ही नहीं सूर ने भक्त हृदय की चरम तन्मयता के साथ गोकुल से लेकर मथुरा तक की सभी कृष्ण लीलाओं का गान किया है। कहना न होगा कि सूर की भक्ति भावना में सखाभाव की भक्ति को प्रधानता मिलने पर भी यशोदा नंद का वात्सल्य भाव, ब्रज मंडल का प्रेमभाव, राधागोपियों का माधुर्य और दाम्पत्यभाव की सरस और सहज अभिव्यक्ति हुई है।

सूर के अनुसार इस माया से भ्रमित संसार को राह दिखाने वाला एक मात्र मार्ग हरि भक्ति है। यह भक्ति मार्ग जाति-पाँति की क्षुद्र परिधि से ऊपर है इसमें सभी को स्थान है। सूरदास के विनय पद और तुलसी की विनय पत्रिका में दैन्य भाव की पराकाष्ठा है। दोनों ही कवि संसार की असारता दिखाकर भक्ति मार्ग का प्रतिपादन करते हैं। सूर के प्रभु के सामने ऊँच-नीच नहीं है सभी बराबर हैं। सूर कहते हैं कि "जात-पाँति कोऊ पूछत नाही श्री पति के दरबार।" वह हिंदू-धर्म जो स्त्री को भक्ति का अधिकार नहीं देता उसका सूर विरोध करते हैं।

सूर ने भक्ति के साथ वैराग्य की आवश्यकता को रेखांकित किया है। सूर ने निर्गुण भक्ति का खण्डन करते हुए "भ्रमरगीत" के पदों में सगुण भक्ति की दृढ़ता से स्थापना की है। जगह-जगह तंत्र-मंत्र एवं हठयोग साधना का विरोध किया है। निर्गुण के खण्डन की प्रतिज्ञा ही लेकर चले हैं कि जिसके रूप नहीं हैं, रंग नहीं है, गुण नहीं है, पहचान नहीं—उसकी भक्ति से लाभ नहीं है। भारी विचार मंथन के बाद वे सगुण लीलावतारी की भक्ति का सिद्धांत सामने लाते हैं:

> रूप, रेख, गुन, जाति जुगति बिनु, निरालंब मन चक्रत धावै।
> सबविधि अगम विचारै ताते सूर सगुन लीला पद गावै।।

सगुण ब्रह्म की लीलाओं का पदों में गान ही सूर की भक्ति का साध्य और साधन दोनों हैं। गोपियों को प्रेमाभक्ति का आदर्श मानकर सूर ने निर्गुण पंथ का खण्डन किया है। सूर की गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि सगुण के राजमार्ग पर निर्गुण के कांटे बिछाने का अर्थ क्या है?

1) काहे को रोकत मारग सूधो।
   सुनहू मधुप निर्गुण कंटक ते राजमार्ग क्यों रूधों
2) निर्गुण कौन देस को बासी।

मधुकर हंसि समुझाय सौह दै बूझत सांचन हासी।

3) रहुरे मधुकर मध्यु मतवारे।
कहा करहु निर्गुण लै के चिरजीवहु स्याम हमारे।

निर्गुण और योगमार्ग को खंडित करने के न जाने कितने ढंग सूरदास को मालूम थे। उनं जैसी वचन वक्रता का उस काल में कोई दूसरा कवि नहीं है।

ध्यान देने की बात है कि तुलसी की उपासना सेव्य-सेवक भाव की है और सूरदास की सखाभाव की। भक्तों में यह मान्यता रही है कि सूरदास श्री कृष्ण के सखा उद्धव के अवतार थे। सूर ने वात्सल्य और श्रृंगार को चुना है तथा इन दोनों विषयों का वे कोना-कोना झाँक आए थे। आ. रामचन्द्र शुक्ल का यह मत सही है कि वात्सल्य और श्रृंगार का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने किया उतना किसी अन्य कवि ने नहीं। वे इन दोनों ही क्षेत्रों में अद्वितीय हैं। पर तुलसी की तुलना में सूर पर साम्प्रदायिक छाप अधिक है। वे अष्टछाप में जाहिर तौर पर थे। "उन्होंने अनन्य उपासना के अनुसार कृष्ण या हरि को छोड़ और देवताओं की स्तुति नहीं की है। ग्रंथारम्भ में भी प्रथानुसार गणेश या सरस्वती को याद नहीं किया पर तुलसीदास जी की वंदना कितनी विस्तृत है यह रामचरित मानस और विनय पत्रिका के पढ़ने वाले मात्र जानते हैं। उनमें लोक संग्रह का भाव पूरा-पूरा था। उनकी दृष्टि लोक विस्तृत थी।" (भ्रमरगीत सार पृ. 37) जाहिर है कि तुलसीदास की तुलना में सूरदास में लोक संग्रह और लोकमंगल का भाव न था। जबकि मानव जीवन को सफल बनाने के लिए एक मूल्य के रूप में सूर भक्ति को तुलसी की भाँति महत्व देते हैं।

ज्ञानमार्ग की कठोरता और भक्तिमार्ग की सहजता-सरसता के लिए सूर ने "भ्रमरगीत" के पदों में ज्ञानदम्भी उद्धव का पर्व भक्ति-शक्ति की प्रतीक गोपियों के द्वारा खंडित कराया है। कृष्ण ने गोपियों के पास उद्धव को भेजा ही इसलिए था कि वे भक्ति-मार्ग की प्रेम-शक्ति की गूढ़ता, मधुरता और तन्मयता को देखकर शिक्षा ग्रहण करें और सगुण भक्तिमार्ग की सरसता और सुगमता के सामने उनका ज्ञान गर्व दूर हो। गोपियाँ "यहि अंतर मधुकर इक आयो" भ्रमर के व्याज से उद्धव को खरी-खोटी सुनाती हैं इसी से इस प्रसंग का नाम "भ्रमरगीत" पड़ा है। काला भ्रमर काले उद्धव, खूब समानता रही। गोपियाँ कहती हैं इसे कुब्जा ने लिखा पढ़ाकर भेजा है। यह गोपियों का कृष्ण प्रेम और उद्धव के प्रति वचन वक्रता का एक दस्तावेज ही भ्रमरगीत बन गया है। सूर काव्य में "भ्रमरगीत" भक्तिमार्ग की चरम-तन्मयता और विदग्धता का सर्वश्रेष्ठ रूप है। ध्यान रहे कि सूर ज्ञान विरोधी नहीं है—भक्ति-विरोधी ज्ञान के विरोधी हैं जो मानव को दम्भी बनाता है।

गोपियाँ प्रेम या भक्ति की सगुण ब्रह्म कला के सामने निर्गुण को तिनका तथा सगुण को सुमेरू कहती हैं:

सुनि है कथा कौन निर्गुण की, रचि रचि बात बनावत।
सगुण सुमेरू प्रगट देखियत, तुम तृन की ओर दुरावत।।

इस दृष्टि से यही कहना उचित है कि "ज्ञान की कोरी वचनावली और योग की थोथी साधनावली" का खण्डन करते हुए सूर ने सगुण भक्ति का रसमय मार्ग निकाला है। इस भक्ति मार्ग ने लोक-चित्त से निराशा को उखाड़ फेंका और जीवन जीने की नई चाह पैदा की है। उद्धव के योग एवं ज्ञान का जो प्रतिकार गोपियों ने सूरसागर में किया उसमें सूर की पूरी भक्तिमार्ग साधना और योजना दिखाई दे जाती है। श्रीमद्‌भागवत की कथा ही सूर ने ली है—पर उसका विधान अपने ढंग से किया है तथा इसी में भक्तिमार्ग के विशाल, सरल एवं सरस रूप को प्रस्तुत किया।

भगवान की भक्त वत्सलता का वर्णन सूर का प्रिय विषय है। सूर कहते रहे हैं कि भक्तों के लिए भगवान पैदल दौड़े आते हैं। भक्ति-महिमा का बखान करते हुए सूर के कथन का सार यही है कि हरि भक्ति ही सर्वस्व है। नवधा भक्ति ही प्रेमारूपा भक्ति का साधन है। श्रवण, स्मरण, कीर्तन में नाम-महिमा का प्रतिपादन है—"को को न तर्‌यौ हरिनाम लिये"। लीला कीर्तन के लिए उनका मत है—"जो यह लीला सुनै सुनावै, सो हरि भक्ति पाइ सुख पावै।"—पादसेवन, वंदन और अर्चन पुष्टिमार्ग की सेवा के अंग हैं यथा "जो सुख होत गोपालहि गाएं", वह सुख वैकुंठ में भी नहीं है। यह धरती वैकुंठ से श्रेष्ठ है। इसी पर हरि अवतार धारण कर लीला करता है— "चरन कमल वंदौ हरिराइ" इसी दृष्टि से श्रेष्ठ है। दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन में भक्ति-रस का मूलाधार निहित है।

सखाभाव की भक्ति में सूर बेजोड़ हैं। आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—"अगर हमसे कोई पूछे कि 'सूरसागर' का 'सेन्ट्रल थीम' क्या है तो बिना किसी हिचकिचाहट के चिल्ला

उठेंगे– 'छबीले मुरली नेकु बजाउ' निःसंदेह सखाओं के व्याज से सूर ने स्वयं अपने मनोभाव को प्रकट किया है।" (सूर साहित्य पृ. 129) सख्य-भक्ति के साथ सूर की वात्सल्य भक्ति भी बड़ी महिमापूर्ण है। कारण "जसोदा के वात्सल्य में वह सबकुछ है जो माता शब्द को इतना महिमाशाली बनाए हुए है।" सूर में नंद का वात्सल्य भाव, ब्रजवासियों का वात्सल्य भाव है—पर सघनता यशोदा के मातृ हृदय भाव में ही ज्यादा है। यहाँ पर वात्सल्य भाव शक्ति रस तक पहुँचा है।

सूर के भक्ति-भाव की पूर्णता राधा और गोपियों के विरह में दिखाई देती है। यहाँ पर मधुरा-भक्ति की चरण तन्मयता के दर्शन होते हैं। वास्तविकता यह है कि सूर के लिए भक्ति एक सर्वोच्च जीवन मूल्य हैं।

दार्शनिक विचार

वल्लभाचार्य के दार्शनिक विचारों का सूरदास पर गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। ध्यान देने की बात है कि मध्य युग के प्रायः सभी भक्त प्रवर्त्तक आचार्यों ने शंकराचार्य के अद्वैतवाद एवं मायावाद का खंडन किया है। स्वयं वल्लभाचार्य ने शंकर के अद्वैत के स्थान पर दार्शनिक दृष्टि से "शुद्धाद्वैतवाद" का सिद्धांत प्रतिपादित किया तथा शंकर के अद्वैत में माया के साथ जगत के मिथ्यात्व की जो बात थी उसे खंडित करने के लिए सच्चिदानंद ब्रह्म की अद्वैतता के शुद्ध रूप की तार्किक एवं लोकमान्य व्याख्या की। वल्लभ ने कहा कि सत्, चित् और आनंद स्वरूप ब्रह्म अपनी इच्छानुसार इन तीनों रूपों का आविर्भाव एवं तिरोभाव करता है। जड़ जगत भी ब्रह्म है, पर अपने चित् एवं आनंद रूपों का तिरोभाव तथा सत् स्वरूप का आविर्भाव किए रहता है। चेतन जगत भी ब्रह्म है इसी में सत्, चित् एवं आनंद का तिरोभाव एवं आविर्भाव चलता रहता है। इस दृष्टि से आचार्य वल्लभ ने जगत को मिथ्या नहीं माना और माया को ब्रह्म की ही शक्ति स्वीकार किया।

वल्लभ से प्रेरित प्रभावित सूरदास ने श्रीकृष्ण को सगुण, लीलावतार, पुरुषोत्तम, पूर्ण पुरुष अन्तर्यामी, अविनाशी एवं घट-घटवासी माना है। इसी पूर्णावतार कृष्ण की ज्योति, जगत में व्याप्त है, यहीं त्रिगुणातीत सच्चिदानंद स्वरूप है और यही ब्रजधाम में नित्य लीला करता है। इसी दृष्टि से सूर ने कृष्ण लीलाओं का तन्मयता से चित्रण वर्णन किया है। वे बार-बार कहते हैं कि शेषशायी विष्णु भगवान ही लीलानंद के लिए लीला कर रहे हैं। सूर के कृष्ण पूर्ण ब्रह्म हैं, ब्रज ही उनका गोलोकलीला धाम है। ब्रज के गोप, गोपी, गो-वत्स, वृक्ष, नदी सभी कृष्ण के आनंद रूप के अंश हैं—इसमें राधा का स्थान सर्वोपरि हैं। कहना होगा कि यहाँ राधा आदि प्रकृति है और कृष्ण आदि पुरुष। वैसे दोनों ही अभिन्न हैं, किन्तु लीलाभाव के आनंद के लिए प्रकृति पुरुष की अभिन्नता को विस्मृत करते हैं। कृष्ण अजन्मा, अविनाशी होकर भी भक्त वत्सलता, प्रेम के लिए अवतार धारण करते हैं तथा लीला के लिए गोप-ग्वाल, ब्रजमण्डल के साथ अवतरित होते हैं। कृष्ण विष्णु है और पूर्णावतार है।

सूर ने जीव को ब्रह्म का अंश माना है तथा ब्रह्म को अंशी। जीव तथा ब्रहम में अंश-अंशी का अभिन्न संबंध है। वल्लभाचार्य की भाँति सूर ने जीवों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है—शुद्ध जीव, मुक्त जीव, संसारी जीव। सूर ने शुद्ध अवस्था वाले जीवों का वर्णन कृष्ण की नित्य लीला के संबंध में किया है एवं संसारी जीवों का वर्णन विनय के पदों में किया है। संसारी जीव विषयासक्ति के कारण संसार की दुर्गति भोगते हैं। जीव की दुर्गति का कारण है माया। सूर ने 'मायावधु नेकु हटकौ गाय" या "माधौजू मन मायावश कीन्हों" का वर्णन अनेक पदों में किया है। ध्यान में यह कि अविद्या माया ही नाश का कारण है।

वल्लभाचार्य की भाँति ही सूर ने जगत और संसार को अलग-अलग माना है। उनके अनुसार जगत नित्य है और संसार असत्य, भ्रामक एवं अनित्य है। जगत ईश्वर की इच्छा से सत् अंश का विस्तार है एवं संसार अविद्या के कारण नश्वर है। सृष्टि का सत्य प्रवाह जगत् है और ज्ञान के उदय से ही अविद्या माया का नाश होता है। जगत् तो ब्रह्म ही है और अभेद रूप से उसी में स्थित है। जगत ईश्वर कृत है और संसार जीवकृत। सूर ने संसार की उपमा पानी के बुलबुले सेंमल के फूल से दी है। संसार के सभी रिश्ते—पुत्र-पति-पत्नी आदि के झूठे हैं और अविद्या माया ही इस दुर्गति को कराती है।

दार्शनिक निरूपण में श्रीकृष्ण, मुरली तथा गोपियाँ क्रमशः ब्रह्म, माया और जीव के प्रतीक हैं। माया के दोरूप हैं—विद्या माया और अविद्या माया। विद्या माया ज्ञानरूप है और जीव को ब्रह्म से मिलाने का कार्य करती है—श्रीकृष्ण की "मुरली" यही विद्या माया है। अविद्या माया जीव एवं ब्रह्म के बीच सांसारिक विकृतियों की भ्रांति उत्पन्न करती है। सूर ने इसी अविद्या माया को "माधव जू मेरी इक यह गाय" कह कर प्रस्तुत किया है।

पुष्टिमार्ग की सिद्धांत दृष्टि से सूर ने सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य एवं सायुज्य नामक चारों प्रकारों की मुक्ति का वर्णन किया है। श्रीकृष्ण के लीला धाम में स्थान पा जाना ही "सालोक्य" मुक्ति है और उनके चरणों का सान्निध्य "सामीप्य" मुक्ति। कृष्ण के साथ उन्हीं के समान आचरण करना "सारूप्य" मुक्ति है तथा ब्रह्म के साथ पूर्ण रूप से एकाकार हो जाना "सायुज्य" मुक्ति। इन सभी में सूर ने सायुज्य मुक्ति पर ही अपने को केन्द्रित किया है। सायुज्य मुक्ति के दो रूप हैं—संसार के दुःखों से मुक्ति तथा नित्य सुख की प्राप्ति। पर दोनों ही अवस्थाओं में जीव ब्रह्म अंश नहीं बनता। केवल लय सायुज्य की अवस्था में ही जीव ब्रह्म का अंग बन जाता है। लय सायुज्य मुक्ति का वर्णन सूर ने भक्ति तथा शृंगार के अन्तर्गत किया है। फलतः सूर के "भ्रमरगीत" एवं "रस-लीला वर्णन" में लयात्मक सायुज्य के सीधे दर्शन होते हैं।

संक्षेप में, सूर ने ब्रह्म, जीव, जगत, माया एंव मुक्ति का निरूपण पुष्टिमार्ग के अनुसार किया है। भगवान की सेवा भजन से ही जीव मायाजन्य संसार के प्रपंच से छूटकर ब्रह्म का अनुग्रह पा सकता है। ब्रह्म की लीला सृष्टि में निमग्न जीव ही लयात्मक सायुज्य का अनुभव एवं प्राप्ति कर सकता है। कहना न होगा कि सूर की दार्शनिकता में भी भक्ति-भावना का ही प्राधान्य है। कारण, सूर भक्त कवि हैं--दार्शनिक आचार्य नहीं। फलतः उनकी भक्ति में तन्मयता ही रस है, आनंद है, शक्ति है।

7.5 सूर का भाव-पक्ष

भक्ति-आंदोलन की सगुण कृष्ण भक्ति-धारा का लोक प्रवाह सूरदास के भाव विधान का सौंदर्य है। वास्तव में, सूर का समस्त काव्य राधा-कृष्ण की लीला रस से आप्लावित है। सूर ने आनंद रूप ब्रह्म को ब्रज वृंदावन में नित्य लीलारत देखा है। नंदनंदन गोपाल कृष्ण ही उनके आराध्य देव हैं एवं उन्हीं के वर्णन में सूर की तन्मयता और रसात्मकता के दर्शन भक्ति रस में होते हैं। सूर काव्य में वात्सल्य और शृंगार दोनों ही इसी भक्ति रस में पूर्णता पाते हैं। भाव भूमि पर कृष्ण राधा, ब्रज, वंशी, लता विटप आदि सूर की अपूर्व सृष्टि हैं। राधा की रूप-माधुरी को कृष्ण निहारते रह जाते हैं और कृष्ण की रूप-माधुरी को भक्त हृदय सूर। प्रेम का उदात्त, उज्ज्वल, व्यापक और विशद् चित्रण सूर ने किया है— पर इसमें चंचल वासनाएँ फटक तक नहीं पातीं हैं। सूर "काम" और प्रेम के मूल अभेद की स्पष्ट पहचान कराते हैं। ब्रज वासियों का प्रेम ही ब्रज में काम हैं—यही रागानुगा भक्ति का आधार है। गोपियों की रागानुगा भक्ति का स्वरूप इसीलिए सूर ने काम रूपा रखा है। प्रभुदास भाव, सखाभाव, पिता-पुत्र भाव और दाम्पत्य भाव इस तरह के चार संबंध ही रागात्मिका भक्ति कहलाते हैं। प्रेम की इसी अवस्था में सूर का भक्त हृदय राग-निर्झरों में फूट पड़ता है। प्रेम से ही रस या गोपाल को पाया जा सकता है--संसार की निराशा, पीड़ा, भटकाव से बचा जा सकता है।

सूर के काव्य में कृष्ण पूर्णावतार ब्रह्म हैं और राधा उनकी आह्लादिनी शक्ति हैं। राधा मालिनी हैं—ब्रजरानी हैं, शृंगार उनका दास है पर वे विरह में "अतिमलीन" हो जाती हैं। फलतः सूर के राधा-कृष्ण भाव भूमि पर हीन लोक से परे हैं—अपूर्व अनुपम। राधा परकीया नायिका नहीं है—कृष्ण के साथ उनका विवाह हुआ है। राधा ही वह प्रेम सागर है जिसमें गहराई, पर चंचलता नहीं है। विरह में उद्धव से गोपियों ने सब कुछ कहा पर राधा मौन रहीं कुछ न कहा। कुरूक्षेत्र में मिलने पर भी यह "राधा नैन नीर भर आए" की अथाह वेदना ही झेलती रही है। और फिर "राधा माधव भेंट भई" के अवसर पर दोनों तन्मय हो गए। राधा माधव बन गई और माधव राधा। हिन्दी के किसी भी कवि ने राधा-कृष्ण का इस पूर्णता के साथ वर्णन नहीं किया है। शृंगार का रस राजत्व भी यदि कहीं पूर्ण हुआ है तो सूर के काव्य में ही। अनेक भावों-रसों का सूरसागर अनोखा सागर है।

7.5.1 वात्सल्य वर्णन

वात्सल्य का मूलाधार पुत्र विषयक रति या प्रेम है। वह प्रेम पुत्र-पुत्री आदि अपने से छोटे व्यक्ति के प्रति वात्सल्य भाव के रूप में दिखाई देता है। इस दृष्टि से वात्सल्यभाव प्रेम का एक प्रकार है जिसमें निश्छल हृदय की अनुभूतियाँ अभिव्यक्ति पातीं हैं। वात्सल्य भाव हृदय की पवित्र एवं निष्कपट स्थिति है, इसमें बालक की स्वाभाविक क्रीड़ाओ, एवं कार्यों की प्रधानता रहती है। इस प्रकृत या नैसर्गिक प्रेम में माता-पिता, परिवार के अन्य लोग, समाज आदि सभी बाल-क्रीड़ाओं में आनंद का अनुभव करते हैं।

हिन्दी साहित्य में सूर का वात्सल्य वर्णन अनुपम है। इस भाव की मार्मिकता, सजीवता, मधुरता आदि को सूर ने रसानुभूति के स्तर पर पहुँचाकर दम लिया है। सूर के वात्सल्य वर्णन के सामने तुलसी का वात्सल्य वर्णन फीका जान पड़ता है या सूर का अनुकरण। इसी बात को गहराई से रेखांकित करते हुए आ. रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है–"बाल्यकाल और यौवनकाल कितने मनोहर हैं। उनके बीच नाना मनोरम परिस्थितियों में विशद चित्रण द्वारा सूरदास जी ने जीवन की जो रमणीयता सामने रखी, उससे गिरे हुए हृदय नाच उठे। वात्सल्य और शृंगार के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बंद आंखों से किया, उतना किसी और कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का कोना-कोना वे झाँक आए। उक्त दोनों रसों के प्रवर्तक रतिभाव के भीतर की जितनी मानसिक वृत्तियों और दशाओं का प्रत्यक्षीकरण सूर कर सके, उतना और कोई नहीं।" (भ्रमरगीत सार पृ. 2) पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन के बीच सूर के बालकृष्ण का सौंदर्य निखरता है। कृष्ण की बाल-क्रीड़ाओं का प्रभाव नंद, यशोदा के साथ पड़ोसियों पर भी पड़ता है। कृष्ण के छोटे-छोटे पैरों से चलने, माखन खाकर भागने, रूठने, माँ से नटखटी करने के भीतर एक आनंद धारा बहती रहती है। "उस बाल लीला में कृष्ण चरित्र का लोक पक्ष चमक उठा है। सूर काव्य में कृष्ण जन्म की आनंद बधाई के बाद ही बाल लीला का आरंभ हो जाता है। "जितने विस्तृत और विशद रूप में बाल्य जीवन का चित्रण इन्होंने किया है, उतने विस्तृत रूप में और किसी कवि ने नहीं किया। शैशव से लेकर कौमार अवस्था तक के क्रम में लगे हुए न जाने कितने चित्र मौजूद हैं। उनमें केवल बाहरी रूपों और चेष्टाओं का ही विस्तृत और सूक्ष्म वर्णन नहीं है, कवि ने बालकों की अंतः प्रकृति में भी प्रवेश किया है और अनेक भावों की सुंदर स्वाभाविक व्यंजना की है। देखिए "स्पर्द्धा" का भाव जो बालकों में स्वाभाविक होती है–इस वाक्यों में किस प्रकार व्यंजित है

मैया कबहि बढ़ैगी चोटी?
किती नार मोहि दूध पियति भई, यह अजहूँ है छोटी।

बाल क्रीड़ा के स्वाभाविक मनोहर चित्रों का इतना बड़ा भंडार और कहीं नहीं है जितना बड़ा सूरसागर में है। दो-तीन चित्र देखिए :

1) शोभित कर नवनीत लिए।
   घुटुरून चलत रेनु तन मंडित मुख दधि लेप किए।
2) सिखवत चलत जसोदा मैया।
   अरबराय करि पानि गहावत डगमगाय धरनी धरैपैयां।
3) जसोदा हरि पालना झुलावै।

इस वात्सल्य रस में बालक कृष्ण आलंबन है और यशोदा नंद आश्रय। कृष्ण की बाल चेष्टाएँ अनुभाव के अन्तर्गत आती हैं और आलंबन चेष्टाएँ उद्दीपन के भीतर हैं।

बाल लीला के आगे गोचारण लीला है वृंदावन में गोपियों के साथ क्रीड़ा है। यही बाल क्रीड़ा यौवन क्रीड़ा में बदल कर नया रूप ले लेती है। मातृ हृदय के प्रेम में सूर का मन रमता है। आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है "यशोदा के बहाने सूरदास ने मातृ हृदय का ऐसा स्वाभाविक सरल और हृदय ग्राहीचित्र खींचा है कि आश्चर्य होता है। (सूर साहित्य पृ. 129) आश्चर्य इसलिए होता है कि इन चित्रों में माँ का सामूहिक बिंब है, विविधता है, रमणीयता है–स्वाभाविकता है।

सूर का वात्सल्य वर्णन दो भागों में विभक्त मिलता है 1) वात्सल्य का संयोग पक्ष 2) वात्सल्य का वियोग पक्ष। बाल-वर्णन का संयोग पक्ष काफी विशद एवं गंभीर है। इसके पाँच भाग हैं 1) बालकों की वेशभूषा का वर्णन 2) बाल चेष्टाओं क्रीड़ाओं का चित्रण 3) बालकों की अंतः प्रकृति का ज्ञान 4) बालकों के संस्कारों, उत्सवों का चित्रण 5) गो दोहन एवं गोचारण लीलाओं का सहज वर्णन। इसी भाँति वात्सल्य वियोग के मोटे रूप में तीन पक्ष हैं (क) कृष्ण का मथुरा गमन (ख) मथुरा से नंद का अकेला आना (ग) कृष्ण का मथुरा निवास।

सूर के संयोग वात्सल्य का हम यहाँ उदाहरणों के साथ संक्षिप्त विवेचन कर रहे हैं :

1 वात्सल्य का संयोग पक्ष–यह पक्ष कृष्ण की रूप-माधुरी, दिव्यता का साक्षात्कार कराता है–जैसे

- किलकत कान्ह घुटुरूवनि आवत।
- सखी नंदनंदन देखु।
- हरि जू की बाल छबि कहौं बरनि।
  सकल सुख की सींव कोटि मनोज सोभा हरति

कृष्ण की इस छवि के सामने सैंकड़ों कामदेव लज्जित हैं, कोई इस छवि सागर की थाह नहीं पाता है।

2 बाल चेष्टाओं-क्रीड़ाओं का वर्णन सूर काव्य की मनो मुग्धकारी भाव भूमि है। कृष्ण घुटनों के बल आँगन में चल रहे हैं, कभी पैर का अंगूठा पी रहे हैं, कभी दर्पण में छवि देखकर किलकारी भर रहे हैं। सूर ने लिखा है–

क) किलकत कान्ह घुटरूवनि आवत।
मनिमय कनक नंद के आंगन बिंब पकरिबे धावत।

ख) कर पग गहि अगूठा मुख पेलत।
हरि पौढ़ पालने अकेले, हरखि हरखि अपने रंग खेलत।

इस तरह के पदों में बाल क्रीड़ाओं की अनेक छवियाँ मिलती हैं। इन्हें पढ़कर हृदय में वात्सल्य भाव उमड़ पड़ता है।

3 बालकों की अंत: प्रकृति का ज्ञान सूर को अद्भुत गति से है। कृष्ण माँ से माखन चोरी करने पर बहाना बनाते हैं :

मैया मैं नहि माखन खायो।
'ख्याल' परे सब सखा संग मिली मेरे मुख लपटायो।

कभी कभार कृष्ण खीझ कर कहते हैं कि मुझे बलराम चिढ़ाते हैं कि तू नंद जसोदा का पुत्र नहीं है तुझे तो मोल खरीदा है :

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो।
मोसो कहत मोल को लीन्हो तोहि जसुमति कब जायो।

4 बालकों के संस्कारों,उत्सवों का चित्रण भी सूर मनोयोग पूर्वक करते हैं। बालकों के अन्न प्राशन, कन छेदन संस्कारों का चित्रण वात्सल्य-भाव की शोभा है :

- अजु कान्ह करि है अन प्रासन।
- अरी मेरे लालन की आजु बरष गाँठि सबै
  सखिन को बुलाइ मंगल गान करावौं।

5 गो दोहन एवं गोचारण लीलाओं का वर्णन सूर ने जगह-जगह किया है। कृष्ण का गो दोहन के लिए रूठना, गाय दुहना, प्यारी पर धार छोड़ना, गाय चराने जाना, वन में राक्षसों का वध, दावानल पान करना आदि मनोहर चित्र हैं :

- तनक तनक मोहि दोहिनी दै देरी मैया।
- मैया हौं गाय चरावन जै हौं।

सूर का संयोग वात्सल्य भाव जब वियोग वात्सल्य में बदलता है तब हृदय की तड़प के स्वाभाविक चित्र मिलते हैं–कृष्ण के मथुरा गमन पर यशोदा के हृदय से सूर अपना हृदय मिला देते हैं। यहाँ वात्सल्य का सागर उमड़ पड़ता है :

जसोदा बार बार यों भाखै।
है कोई ब्रज में हितू हमारो चलत गोपालहि राखै।

कृष्ण को कोई रोक नहीं पाता है तो जसोदा जमीन पर गिरकर बेहोश हो जाती हैं "यह सुनि गिरी धरनि झुकि माता" उसी स्थिति का चित्र है। कृष्ण को जब मथुरा में अकेला छोड़कर नंद लौटते हैं–तब तो जसोदा पागल सी दिखाई देती हैं–जसोदा कान्ह कान्ह कै बूझैं। फूटि न गई तुम्हारी चारौ कैसे मारग सूझै।"

कृष्ण के मथुरा वास करने पर तो माता के साथ गोपी ग्वाल, ब्रज सभी व्याकुल हो उठते हैं। जसोदा संदेश भेजती है :

संदेसो देवकी सो कहियो।
हौं तो धाय तिहारे सुत की दया करत ही रहियो।।

इस प्रकार वात्सल्य का बड़ा ही मर्मस्पर्शी चित्रण सूर ने किया है।

बाल मनोविज्ञान के पारखी सूर ने बाल क्रीड़ाओं चेष्टाओं के साथ मातृ हृदय का मनोहर चित्रण किया है। वात्सल्य भाव को वात्सल्य रस की कोटि तक तो सूर पहुँचाते ही हैं–उसे वात्सल्य भाव की भक्ति तन्मयता से भी जोड़ देते हैं। मूलत: इस वात्सल्य भाव में वात्सल्य भक्ति के दर्शन होते हैं। इस वात्सल्य वर्णन के तीन गुण बहुत प्रभावित करते हैं–तन्मयता, बालक की अंत: प्रकृति का ज्ञान तथा बाल्य-जीवन की उमंगभरी छवियाँ।

7.5.2 शृंगार

शृंगार रस की व्यापकता एवं विविध अंतर्दशाओं के कारण ही इसे रसराज कहते हैं। सूर के काव्य में शृंगार के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों तथा विप्रलंभ शृंगार के अंतर्गत वियोग की दशाओं का वर्णन मिलता है। सूर का प्रिय विषय प्रेम है। वात्सल्य वर्णन में माता-पुत्र, पिता-पुत्र तथा शृंगार वर्णन में प्रिय-प्रिया, गोप-गोपियों एवं राधा-कृष्ण के प्रेम का अंकन कवि ने किया है। कृष्ण का अप्रतिम सौन्दर्य प्रेम की उत्पत्ति में पूरा योगदान देता है। कृष्ण तथा गोपियों का साथ बालपन से ही है। गोपियाँ बालपन के प्रेम को कैसे त्याग सकती हैं :

लरिकाई का प्रेम कहो अलि कैसे छूटै।

वृंदावन में कृष्ण-गोपियों एवं राधा की प्रेम-क्रीड़ा संयोग पक्ष के अंतर्गत आती हैं। यहाँ कृष्ण आलंबन है। कृष्ण के जन्म के समय से ही गोपियाँ उनके निकट रही हैं। अतः उनका बाल प्रेम धीरे-धीरे यौवन प्रेम में परिणत हुआ है। वे कृष्ण को बाल्यावस्था की माखन चोरी के दिनों का स्मरण कराती रहती हैं–

"नन्द सुवन यह बात कहावत।
वे दिन भूलि गए हरि तुमको, चोरी-चोरी माखन खावत।

रूपसौन्दर्य का आकर्षण ही शृंगार के रति भाव को जाग्रत करता है। राधा एवं कृष्ण का रूप सौन्दर्य परस्पर एक दूसरे को आकृष्ट करता है तथा उनके हृदय में प्रेम की उत्पत्ति हो जाती है। ब्रज की गलियों में क्रीड़ा हेतु निकले कृष्ण का साक्षात्कार यमुना के तट पर राधा से होता है। यहाँ सूर ने राधा के उस अल्हड़ एवं सरल रूपसौन्दर्य का वर्णन किया है जिसने कृष्ण को आकर्षित किया :

औचक ही देखी तहँ राधा, नैन बिसाल, भाल दिए रोरी।
नील वसन फरिया कटि पहिरे, बेनी पीठि रुलति झकझोरी।

अर्थात् राधा विशाल नैनों वाली थी तथा उसने माथे पर रोली का टीका लगा रखा था। उसने नीले वस्त्र की फरिया कमर में पहन रखी थी और उसकी लंबी चोटी पीठ पर हिल डुल रही थी।

हृदय में प्रेम जाग्रत होते ही प्रिय का परिचय जानने की ... उत्सुकता होना स्वाभाविक है। प्रथम दर्शन में ही राधा के प्रति प्रेम जाग्रत होने पर कृष्ण उसका परिचय पूछने की चेष्टा करते हैं–

बूझत स्याम कौन तू गौरी।
कहां रहति, काकी है बेटी, देखी नहीं कहुं ब्रज खोरी।

कृष्ण का अप्रतिम सौन्दर्य भी ब्रज की युवतियों में प्रेमाभक्ति का विषय बन गया। यह रूपसौन्दर्य का आकर्षण प्रेम उत्पन्न करने वाला है। गोपियां कृष्ण के प्रेम में इतनी लीन हो गई कि उन्हें घर-बार तक की सुधि नहीं रही। यहाँ सूर ने भक्त के उस अनन्य प्रेम को इंगित किया है जहाँ प्रेमी के लिए परमात्मा ही सर्वस्व है।

सूर ने शृंगार के संयोग पक्ष के अंतर्गत राधा-कृष्ण के स्वच्छन्द प्रेम, संकेतों द्वारा वार्तालाप, नेत्रव्यापार, रासलीला, दानलीला, मानलीला एवं राधा-कृष्ण के विवाह का भी अंकन किया है। आ. रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार सूर का संयोगवर्णन एक क्षणिक घटना नहीं है प्रेम-संगीतमय जीवन की एक गहरी चलती धारा है, जिसमें अवगाहन करने वाले को दिव्यमाधुर्य के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं पड़ता। राधा-कृष्ण के रंग-रहस्य के इतने प्रकार के चित्र सामने आते हैं कि सूर का हृदय प्रेम की नाना उमंगों का अक्षय भंडार प्रतीत होता है। (भ्रमरगीत सार पृ. 10)

वियोग पक्ष

सूर का विरहवर्णन यशोदा, राधा एवं ब्रजवासियों के हृदय से निःसृत करुणा की धारा है। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर ब्रजवासियों की जो कारुणिक दशा हुई उसका हृदयग्राही अंकन शृंगार के वियोग पक्ष के अंतर्गत हुआ है। यशोदा एवं नन्द के वात्सल्यवियोग का उल्लेख हम वात्सल्यवर्णन के वियोग पक्ष के अन्तर्गत कर चुके हैं। नंद को कृष्ण के रहने पर अकेले ब्रज आना पड़ा। यशोदा पुत्र के वियोग में पहले ही व्याकुल हो रही थी। नंद को अकेला आता देखकर वह तिरस्कार एवं अधीरता से भर कर कह उठीं–

i) नंद ब्रज लीजै ठोंकि बजाय।
ii) जसोदा कान्ह कान्ह कै बूझै।

कि, अब इस ब्रज में मेरा कुछ नहीं रह गया। तुम्हीं अपने ब्रज को अच्छी तरह संभालो। कहना न होगा कि मातृहृदय की इस प्रेम धारा का प्रबल प्रवाह सूर में अद्भुत गति से दृष्टिगत होता है। यहाँ साहित्य में श्रृंगार के वियोग पक्ष को अधिक महत्व दिया गया है क्योंकि संयोग में प्रेम का ठंडापन रहता किन्तु वियोग की ऊष्मा में उसके हृदय के भावों का प्रसार समस्त विश्व में हो जाता है। विरही को समस्त संसार विरह में व्याकुल होता प्रतीत होता है। "श्रृंगार को रसराजत्व प्रदान करने वाला तत्व वियोग ही है क्योंकि इसमें संयोग जन्य सुख के सदृश उथलापन नहीं रहता अपितु अनुभूति की गहनता रहती है।" (डॉ. हरवंश लाल शर्मा—सूर और उनका साहित्य, पृ. 493)

सूरदास ने गोपियों के विरह के माध्यम से विरही के मन की व्याकुलता तथा प्रिय मिलन की लालसा का स्वाभाविक चित्रण किया है। सूर की गोपियां इतनी विरह व्याकुल हो उठती हैं कि उन्हें समस्त प्रकृति में अपने दुःख का प्रसार दिखाई देता है। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर विरह की ज्वाला में जल कर यमुना भी श्याम वर्णी हो गई है। जाहिर है कि सूर का विरह वर्णन मानव एवं प्रकृति दोनों में समान भाव से व्याप्त मिलता है।

> लखियत कालिन्दी अति कारी।
> अहौ पथिक कहिय उन हरि सौ, भई विरह जुर कारी।

गोपियों को मधुबन का हराभरापन भा नहीं रहा है। जब कृष्ण की क्रीड़ाओं की सहचरी यमुना विरहविदग्धा हो रही है तब कृष्ण की अनेक लीलाओं का साक्षी मधुबन क्यों नहीं खड़ा-खड़ा जल कर भस्म हो जाता है :

> "मधुबन तुम कह रहत हरे?
> बिरह बियोग स्यामसुन्दर के ठाड़े क्यों न जरे।

गोपियों की विरह-व्याकुल दशा का अंकन "भ्रमरगीत" में हुआ है। "सूरसागर" में भ्रमरगीत एक महत्वपूर्ण अंश है। कृष्ण के मथुरा गमन तथा ब्रज न लौटने पर ब्रजवासियों की दशा कृष्ण के वियोग में अत्यंत कारुणिक हो गई। कृष्ण ने "ज्ञानयोग" के अहंकार में चूर अपने मित्र उद्धव को ब्रजवासियों को ज्ञान का मार्ग समझाने के लिए ब्रज भेजा। उद्धव ने ब्रज पहुँचकर वहाँ के निवासियों को कृष्ण का संदेश दिया तथा गोपियों को निर्गुण ब्रह्म की आराधना करने की सलाह दी। 'भ्रमरगीत' में गोपियों ने भ्रमर के व्याज से उद्धव को उपालम्भ दिए हैं। गोपियाँ उद्धव से स्पष्ट कह देती हैं कि उनका मन तो कृष्ण के साथ चला गया है अब वे किस मन से निर्गुण की आराधना करें :

> "अधो मन नाहीं दस बीस।
> एक हुतो सो गयो स्याम संग को आराधै ईस।

गोपियों के प्रेमभाव की गंभीरता आगे चलकर उद्धव का ज्ञान गर्व चूर करती हुई दिखाई पड़ती है।" (भ्रमरगीत सार, पृ. 5) गोपियाँ उद्धव से संदेश भेजती हैं कि हम मीन एवं चातक की भांति हो गई हैं, कृष्ण के दर्शनों के जल से ही हमारा जीवन बच सकता है—

> तलफत रहति मीन चातक ज्यौ, जल बिनु तृषा न छीजें।
> अंखियाँ हरि दरसन की भूखीं।

विरह की ग्यारह दशाओं का उल्लेख आचार्यों ने किया है। ये दशाएँ हैं—अभिलाषा, चिंता, स्मरण, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मूर्छा और मरण। प्रिय से मिलने की अभिलाषा गोपियों ने प्रकट की है "उधो स्यामहि यहां लै आवौ" गोपियों को प्रिय से मिलने की आशा है। चिंता से उनका हृदय फटा जा रहा है— "इकटक मग जोवतिं, अरू रोवतिं, भूलेहुं पलक न लगी।" उनमें अतीत की बातों की स्मृति तड़प पैदा करती है तथा कृष्ण के लीला सौन्दर्य में मग्न वे कहतीं हैं—

> ऊधो। वै सुख अबै कहां?
> छन छन नयनन निरखति जो मुख, फिरि मन जात तहां।

अपने प्रिय के गुणों का कथन कर गोपियाँ अपने हृदय को क्षणिक सुख देती हैं—"इतने में धन गरजि दृष्टि करी, तनु भीज्यौ मो भई जुड़ाई।"

उद्वेग के अंतर्गत गोपियों की विरह में उद्वेग की अवस्था का दर्शन है—

> "तुम्हारी प्रीति किधौ तरवारि।
> दृष्टि धार होती जु पहिलै. घायल सब ब्रजनारि।

वे विरह में अत्यंत व्याकुल होकर प्रलाप कर उठती हैं कि–
"सखि मिलि करौ कछुक उपाउ

व्याधि

अवस्था प्रलाप के बाद की दशा है। इसमें विरही को शारीरिक बीमारी तो नहीं होती परन्तु उसका चित्त ठीक नहीं रहता। इस अवस्था में गोपियों को वे सब वस्तुएँ दग्ध करने वाली प्रतीत होती हैं जो संयोग के दिनों में शीतल प्रतीत होती थीं–

बिनु गुपाल बैरानि भई कुंजैं।
तब वै लता लगति अति सीतल, अब भइं विषम ज्वाल की पुंजैं।

वियोग का दुःख विरही को जड़ बना देता है। उसे कुछ भी नहीं सुहाता। राधा की दशा भी कृष्ण के वियोग में जड़ता की हो गई है। वह सिर नीचा किए ही बैठी रहती है–

अति मलीन वृषभानुकुमारी।
अधमुख रहति अनत नहि चितवति, ज्यौं गथ हारे चकित जुआरी।

कृष्ण का संदेश उद्धव के मुख से सुनते ही गोपियों को मूर्च्छा आ गई–

जब तै हरि संदेस तुम्हारो, सुनत तांवरौ आयो।

और अंत में विरह से व्याकुल गोपियाँ विरह की इन दशाओं से होती हुई मरण की अवस्था में पहुँच जाती है–

सूरदास अब मरन बन्यो है, पाप तिहारे माथे।

इस प्रकार सूर के काव्य में विरह की ग्यारह अंतर्दशाओं का वर्णन मिलता है। उन्होंने विरह की एक-एक दशा का मार्मिक चित्रण किया है। आ. रामचन्द्र शुक्ल ने सूर के विरह वर्णन पर आक्षेप लगाया है कि "सूर का वियोग वर्णन, वियोग के लिए है, परिस्थिति के अनुरोध से नहीं।" गोपियों का विरह उन्हें खाली बैठे व्यक्ति का तमाशा दिखाई देता है। आगे चलकर वे स्पष्ट करते हैं कि "सूरसागर प्रबन्ध काव्य नहीं है जिसमें वर्णन की उपयुक्तता या अनुपयुक्तता के निर्णय में घटना या परिस्थिति के विचार का बहुत कुछ योग रहता है।" (भ्रमरगीत सार पृ. 4) यदि इस विरह वर्णन के छोटे-मोटे आक्षेपों पर ध्यान न दें तो कह सकते हैं कि सूर के विरह-वर्णन में मानव हृदय के मार्मिक भावों की अभि भक्ति हुई है।

बोध प्रश्न ख

5 सही उत्तर पर निशान (✓) लगाइये

क) सूर के दार्शनिक सिद्धांत किस मत पर आधारित हैं
1) अद्वैतवाद
2) विशिष्टा द्वैतवाद
3) शुद्धाद्वैतवाद

ख) सूर की नवधा भक्ति किस कोटि के अंतर्गत आती है तथा उसकी विशेषता कौन सी है? पाँच पंक्तियों में लिखिए।

....
....
....
....
....

6 सूर के भावपक्ष का विश्लेषण चार पंक्तियों में कीजिए।

....
....
....
....

7 सूर की भक्ति-भावना पर दस पंक्तियां लिखिए।

....

....
....
....
....
....
....
....
....
....

7 सूर की भक्ति पर सही (✓) गलत (×) का निशान लगाइए
   i) सखा भाव
   ii). दास्य भाव
   iii) मधुर भाव

8 सूर के वात्सल्य वर्णन की चार विशेषताएँ लिखिए
....
....
....
....

9 सूर के शृंगार पक्ष की विशेषताएँ पाँच पंक्तियों में लिखिए
....
....
....
....
....

7.6 अभिव्यंजना शिल्प

सूरदास के काव्य में कथ्य और कथन के बीच की दूरी का निषेध मिलता है। अनुभूति और अभिव्यक्ति की अखंडता ही इस काव्य में मोती के पानी सी भीतर बाहर से दमकती है। भावमयी अभिव्यक्ति की लावण्यमयी छवि इस काव्य का एक प्रबल आकर्षण है। भारतीय चिंतनधारा के अलंकारवादी, रीति एवं वक्रोक्तिवादी सम्प्रदाय जो रचना को कौशल के आश्रित मानते हैं—उनका सूरदास मानो सीधा निषेध करते हैं। अनुभूति एवं अभिव्यक्ति के अभिन्न संबंध को सूरदास जल और उसकी लहर की भाँति स्वीकार करते हैं। इसीलिए संगीतमय पदावली का सौन्दर्य सूर में अद्भुत तत्व की सृष्टि करता है। अनुभूति की रमणीयता, विदग्धता एवं तीव्रता को सूर का अभिव्यजंना शिल्प पाठक में भरोसे की भाषा से सम्प्रेषित करता है। उनके अभिव्यजंना शिल्प में भाषा, प्रतीक, मिथक, बिंब, रूप, उपमान योजना, छंद और लय जैसे उपकरण एक दूसरे में नथे हुए हैं। कारण यह है कि सूर कोरे चमत्कारी रीतिवादी कवि नहीं हैं। रस और ध्वनि-सौंदर्य पर केन्द्रित उनकी अभिव्यंजना शक्ति हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि का उदाहरण है। सूर के काव्य ने जैसे सिद्ध कर दिया है कि वचन की जो वक्रता भाव प्रेरित होती है, वह ही काव्य है। भावोद्रेक से सूरदास कथन या उक्ति में बांकापन पैदा करते हैं और इसी से रमणीयता काव्य के भीतर से झलक उठती है। भाव की रागात्मक दशा की पहचान उन्हें पूरी है और वे वचन विदग्धता में माहिर कवि रहे हैं।

अभिव्यजना शिल्प में विदग्धता एवं व्यंजना की दृष्टि से सूरदास वैष्णव पद परंपरा के अग्रदूत हैं। सूर के मन में प्रेम की जितनी विराट भावभूमि है उतनी ही प्रेम कथन की नवीन शैलियों की प्रसार

शक्ति है। इस शक्ति के कारण सबसे बड़ी विशेषता सूरदास की यह है उन्होंने उनमें पत्र काव्य में अप्रयुक्त भाषा को इतना सुंदर, मधुर और आकर्षक बना दिया कि लगभग चार सौ वर्षों तक उत्तर पश्चिम भारत की कविता का सारा राग-विराग, प्रेम-प्रतीति, भजन-भाव उसी भाषा के द्वारा अभिव्यक्त हुआ।" सूर के भाव, शिल्प में ढलकर लोक हृदय से तादात्म्य की ऐसी शक्ति रखते हैं कि भारतीय जनता उन्हें भूल नहीं सकती है।

7.6.1 काव्य-रूप

अभिव्यंजना शिल्प का सर्वाधिक व्यापक उपकरण है काव्यरूप। मूलतः यह संपूर्ण काव्य शिल्प का परिधान है—क्योंकि पूरा काव्य कौशल इसी के भीतर या इसी पर निर्भर रहता है। काव्य-रूप का महत्व यह है कि वह रचना पद्धति के साथ रचना दृष्टि का भी संकेत देता है। फिर कोई भी काव्य रूप रचना की भीतरी जरूरत से पैदा होता है।

सूरदास ने मुक्तक पद परंपरा की गेय-शैली को अपनाया है। वे तुलसीदास के "रामचरित मानस" की प्रबंध परंपरा के स्वभाव के कवि नहीं है। श्रीमद्भागवत की कथा को वे क्रमबद्ध रूप में नहीं कहते हैं--मन की तरंग में आकर वे मौज से संगीतात्मक पद रचते हैं। इस दृष्टि से वे जयदेव, चण्डीदास, विद्यापति की पद परंपरा में आते हैं। आ. रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि "जयदेव की देव वाणी की स्निग्ध पीयूषधारा, जो काल की कठोरता में दब गई थी, अवकाश पाते ही लोक भाषा की सरसता में परिणत होकर मिथिला की अमराइयों में विद्यापति के कोकिल कंठ से प्रकट हुई और आगे चलकर ब्रज के करील कुंजों के बीच फैले मुरझाए मनों को सींचने लगी। आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्रीकृष्ण की प्रेमलीला का कीर्तन करने उठीं, जिनमें सबसे ऊँची सुरीली और मधुर झनकार अंधे कवि सूरदास की वीणा की थी। ये भक्त कवि सगुण उपासना का रास्ता साफ करने लगे।" (भ्रमरगीत सार पृ. 2) भगवान के प्रेममय रूप की हृदयग्राही लीला सूर ने गीतिकाव्य में गाई है। "सूर सगुन लीला पद गावै" उनकी उसी संकल्प भावनाओं की उद्घोषणा थी। हृदय की कोमल भाव वृत्तियों को सूर ने गीतों में प्रस्तुत किया। ध्यान रखना होगा कि सूरसागर प्रबंधकाव्य नहीं है जिसमें वर्णन की उपयुक्तता या अनुपयुक्तता के निर्णय में घटना या परिस्थिति के विचार का बहुत कुछ योग रहता है।" सूर का मन आनंद बधाई, बालक्रीड़ा, मुरली की मोहिनी तान, रास-नृत्य, यमुना-ब्रज-कुंज,प्रेम के रंग रहस्य, वियोग की भाव दशा में रमता है। वे मुक्त आत्मभिव्यक्ति से हृदय के संगीत को रचते हैं। किसी भी बात को कहने के बहुत से ढंग उन्हें ज्ञात है और इस कला के लिए मुक्तक पद परंपरा की उपयुक्तता वे समझते थे।

दरअसल बात यह है कि इनकी रचना गीतकाव्य है"जिसमें मधुर ध्वनि प्रवाह के बीच कुछ चुने हुए पदार्थों और व्यापारों की झलक भर काफी होती है। गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस के समान सूरसागर प्रबंधकाव्य नहीं है। जिसमें कथाक्रम के अनेक पदार्थों और व्यापारों की शृंखला जुड़ी चलती है। सूरदास ने प्रत्येक लीला या प्रसंग पर फुटकल पद कहे हैं; एक पद दूसरे पद से संबद्ध नहीं है। प्रत्येक पद स्वतंत्र है। इसी से किसी एक प्रसंग पर कहे हुए पदों को यदि हम लेते हैं तो एक ही घटना से संबंध रखने वाली एक ही बात भिन्न-भिन्न राग-रागनियों में कुछ हेरफेर के साथ बहुत से पदों में मिलती है—जिससे पढ़ने वाले का जी कभी-कभी ऊब सा जाता है। यह बात प्रकृत प्रबंध में नहीं होती।"

सूर ने दृष्टि कूट के पद भी गेय शैली में गाए हैं, इसमें चमत्कारिकता और दुरूहता अधिक है। "साहित्यलहरी" तो दृष्टि कूट के मुक्तक पदों के लिए प्रसिद्ध ही है। भक्त कवि भक्तभाव के लिए साधारण गेय शैली अपनाते हैं और रहस्यात्मक भावों के लिए दृष्टि कूट शैली। दृष्टि कूट की यह शैली सिद्धों, नाथों तथा कबीर पंथियों में चली आ रही थी। पर सूर ने इसे विद्यापति की भाँति विरह के पदों में अपनाया। सूर ने राधा-कृष्ण की रति-क्रीड़ाओं का वर्णन भी दृष्टि कूट शैली में किया है। सूर इन पदों को "सहज समाधि" के पद कहते हैं पर साधारण पाठक अश्लील कहता है।

सूर की लोक प्रसिद्धि "सूरसागर" पर टिकी रही है और सूरसागर गीतात्मक रचना है। "सूरदास ने भागवत की अत्यंत परिचित कथा के उन प्रसंगों को चुना है जो सहृदय के हृदय को छूती हैं। सूरसागर कोई सुनियोजित कथा नहीं है, यद्यपि उसकी संघटना महाकाव्यात्मक है पर उसके प्रेरक भाव गीति काव्यात्मक हैं।" सूर की राधा, गोपियाँ, कृष्ण के चरित्र गीति काव्यात्मक हैं। यहाँ पूरी प्रकृति मानो मुरली की ध्वनि में गा रही है रूप माधुरी ही सूर की सच्ची कविता है। मुरली में राधा-राधा की रट है :

1) **जब जब मुरली कान्ह बजावत।**
तब तब राधा नाम उचारत बारंबार रिझावत।

2) छबीले मुरली नेकु बजाउ।
बलि बलि जात सखा यह कहि कहि अधर सुधारस प्याउ।
दुरलभ जनम लहब वृंदावन दुर्लभ प्रेम तरंग।
ना जानिए बहुरि कबहै है स्याम तिहारो संग।

सूर ने भगवान की लीला को प्रेम-तरंग में गाया है। भक्ति-भाव की चरम तन्मयता ने तीव्र भावानुभूतियों को सहज संगीत में रंग कर उजागर कर दिया है। अतः सूर का काव्य मुक्तक पद परंपरा की मूल्यवान धरोहर है।

7.6.2 काव्य-भाषा

सूरदास ने अपने भावों को अभिव्यक्ति देने के लिए काव्य भाषा के रूप में ब्रज भाषा को अपनाया है। ब्रज भाषा के लोक प्रचलित रूप को लेकर उन्होंने अपनी कवि-शक्ति से उसमें इतनी सर्जनात्मकता उत्पन्न कर दी है कि साहित्यिक ब्रज भाषा के प्रथम समर्थ कवि सूरदास ही दिखाई देते हैं। सूर से पहले ब्रजभाषा काव्य की कोई समर्थ-परंपरा नहीं मिलती है। अचानक ब्रजभाषा में समर्थ साहित्यिकता को पाकर आ. रामचन्द्र शुक्ल अनुमान लगाते हैं कि सूरदास का सूरसागर किसी चली आती हुई परंपरा का परिणाम दिखाई देता है चाहे वह परंपरा मौखिक ही क्यों न रही हो। इस विचार में यह ध्वनि भी मौजूद है कि सूर पूर्व ब्रजभाषा में काव्य सृजन की कोई परंपरा को सूर ने निखारकर साहित्यिक रूप दिया होगा। कुछ भी रहा हो सच्चाई आज यही है कि सूर के हाथों में पड़कर ही ब्रजभाषा की काव्यात्मकता में सर्जनात्मकता की शक्ति पैदा हुई है। भावानुकूल शब्द चयन, शब्द संगीत महिमा, भाव-चित्र की सजीवता तथा वचन वक्रोक्ति की निराली कला को देखकर यही कहना पड़ता है कि सूर ने ही ब्रजभाषा को साहित्यिकता प्रदान की है।

सूर केवल ब्रजभाषा के प्रति ही पूरी तरह समर्पित हैं। वे तुलसी की भाँति ब्रज और अवधी दोनों पर अधिकार नहीं रखते हैं। इसलिए तुलसी की तुलना में उनका भाषा ज्ञान क्षेत्र सीमित ही कहा जायेगा। किन्तु ब्रजभाषा पर सूर का पूरा अधिकार है वे इस भाषा की संगीतात्मकता को हर संभव तरीके से खींचकर कविता में लाते हैं। कहना होगा कि ब्रज प्रदेश की बोली की संभावनाओं को वे एक साथ अपने कवि कर्म में उजागर कर देते हैं।

आ. रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन महत्वपूर्ण है कि "ध्यान देने की सबसे पहली बात यह है कि चलती हुई ब्रजभाषा में सबसे पहली साहित्यिक कृति इन्हीं की मिलती है जो पूर्णता के कारण आश्चर्य में डाल देती है। पहली साहित्यिक रचना और इतनी प्रचुर प्रगल्भ और काव्यांगपूर्ण कि अगले कवियों की शृंगार और वात्सल्य की उक्तियाँ इनकी जूठी जान पड़ती हैं। यह बात हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने वालों को उलझन में डालने वाली होगी। सूरसागर किसी पहले से चली आती हुई परंपरा का चाहे वह मौखिक ही रही हो–पूर्ण विकास–सा जान पड़ता है, चलने वाली परंपरा का मूलरूप नहीं।" (भ्रमरगीत सार पृ. 8) इतना ही नहीं "यदि भाषा को लेकर चलते हैं तो वह ब्रज की चलती बोली होने पर भी एक साहित्यिक भाषा के रूप में मिलती है जो और प्रांतों से कुछ प्रचलित शब्दों और प्रत्ययों के साथ ही पुरानी काव्य भाषा अपभ्रंश के शब्दों को लिए हुए है। सूर की भाषा बिल्कुल बोलचाल की भाषा नहीं है।" उसमें सूर की अपनी कला भी विद्यमान हैं। इस साहित्यिक भाषा के शब्द चयन में लोक-लय का सहज प्रवाह है पर कोरा कौशल कहीं नहीं मिलता है। ब्रज भाषा व्याकरण की कसौटी पर सूर की भाषा को नहीं कसना चाहिए। कारण, सूर ने कवि दृष्टि से शब्दों को खूब तोड़ा-मरोड़ा है और अपने समय में प्रचलित अन्य भाषाओं के शब्दों को मुक्त भाव से ग्रहण किया है।

सूर की काव्य-भाषा का महत्वपूर्ण गुण है–उसका चित्रमय होना। साधारण मानव जिस बात को भाव-भंगिमाओं, व्याख्याओं का सहारा लेकर स्पष्ट नहीं कर पाता, सूरदास उसे एक ही वचन भंगिमा में स्पष्ट करने की शक्ति रखते हैं। चित्रमयता और स्पष्टता इनकी भाषा के ऐसे दो गुण हैं कि उनसे प्रभावित होकर आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तो यहाँ तक कह दिया है कि न सूरदास में ये दोनों गुण विद्यमान हैं। दूसरे गुण में सूरदास की समता संसार के कुछ ही कवि कर सकते हैं।" (हजारी प्रसाद ग्रंथावली पृ. 126) चित्रमय भाषा का एक उदाहरण लीजिए–

नटवर वेष धरे ब्रज आवत
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल कटिल अलक मुख पर छवि छावत।

सूरदास शास्त्रीय वैष्णव भक्तिशास्त्र से प्रेरणा अवश्य लेते हैं पर अभिव्यक्ति के स्तर पर वे लोक-भाषा और लोक-लय के अधिक निकट हैं। पुरानी लोक परंपरा के गीतों की ध्वनियाँ उनके पदों में मोहक छवि लेकर मौजूद रहती हैं। ब्रजभाषा की लोक-गीत शैली का प्रसार-विस्तार सूर

की रचनात्मक-भाषा ने ही करीने से किया है। सूर के लोक समर्पित चित्र ने भाषा को राग के रस से संगीतात्मक बना दिया। भाषा के नाद-सौंदर्य ने उसका प्रभाव बढ़ाया और श्याम-श्यामा का चित्र हृदय पर वे अंकित करते गए। यथा

> नृत्यत स्याम नाना रंग।
> मुकुट लटकनि, भृकुटि मटकनि, धरे नटवर अंग।

सूर में चमकीले रंग, वर्णच्छरा, जगमगाते आभूषण, सृजटित लहंगे, चटकदार अंगियाँ, फूलों वनों की रंग-गंध, यमुना की तरंग-तड़प का वर्णन है और प्रसिद्ध यह बात है कि वे जन्मांध थे। व्रत, उपवास, तीज-त्योहार, खेल, मेला, लंगुरिया, होली, रास-लीला आदि सभी को भाषा अपनी बारीकी से चित्रवत अंक देती है, नृत्य की भंगिमाओं में भाषा थिरक रही है और बोली की मिठास अद्भुत है। समूचा लोकजीवन उनकी भाषा में जीवंत है। तेल, उबटन, बिंदी, महावर, गहरे, जड़ाऊ अंगियाँ, पचरंग साड़ी, नीली फरिया की चर्चा है तो सरकारी कारिंदों, पटवारी, मुसाहिब, अमीन, मुहर्रिर आदि की बात भी मौजूद है। मुगलकालीन दरबारों और लोक समारोहों के अनेक देशज, विदेशी शब्द उनकी भाषा में हिले-मिले हैं। संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों को ब्रजभाषा की क्रियाओं में ढालना उन्हें प्रिय है। कहना न होगा कि सूरदास की काव्य-भाषा में एक समाज का सांस्कृतिक-सामाजिक सांचा भी मौजूद मिलता है। मूलतः यह ग्राम व्यवस्था का कृषि जीवी समाज है—राधा और कृष्ण उसी जाति के या अहीर जाति के प्रतिनिधि देवी-देवता हैं। साथ ही यह दोनों ही चरित्र गीतात्मक हैं और इनके साथ मुरली की मधुर तान है। सूर में दृश्य और श्रुति बिंब बहुतायत से हैं—लोक-जीवन के छंद ही भाषा में ढले हैं और भाषा श्रुति मधुर, मनोभावों के वेग से भरी हुई है। लोक जीवन के अनुभव से भरी लोकोक्तियाँ और मुहावरे सूर की भाषा में प्राण डालते हैं। पूरा "सूरसागर" लोकोक्ति मुहावरों का एक अक्षय भण्डार है। सूर ने "परमगंग को छाड़ि दुरमति कूप खनावै", "विष कीरा विषखात", "छेरी कौन दुहावै", "गाढ़े दिन के मीत", "गाँठि दै राखत" जैसे अनगिनत लोकोक्ति मुहावरों के प्रयोग मिलते हैं। इन मुहावरों ने भाषा की सजीवता एवं प्रभावोत्पादकता को बढ़ाया है। "कारोकृतहि न मानै", "सूर सिक्त हठि नाव चलावत यह सरिता है सूखी", "सूरदास खलकारी कामरि चढ़ै न दूजो रंग" जैसी लोकोक्तियाँ तो जनता की जीभ पर आज भी निवास कर रही हैं।

प्रायः सूर कथात्मक पदों में अभिधा शब्द शक्ति का प्रयोग करते हैं किंतु व्यंग्य वक्रोक्ति की लक्षण-व्यंजना भाषा में वे बड़े उस्ताद हैं। "भ्रमरगीत" के पद व्यंग्य वक्रोक्ति की श्रेष्ठ भाषा को सामने लाते हैं।

संस्कृत पदावली के प्रति कबीर-जायसी को जितना अधिक विराग है, सूर-तुलसी को उतना ही ज्यादा अनुराग। संस्कृत परंपरा के प्रति सूर तुलसी का यह अनुराग भाव परंपरा के प्रति गहरा झुकाव सिद्ध करता है। सूर में संस्कृत की तत्सम तद्भव पदावली है पर ठेठ ब्रज भाषा के प्रति उनका रुझान पूरा-पूरा है। सारांश यह है कि सूर के हाथों से बजभाषा का व्यापक स्तर पर साहित्यिक संस्कार होता है। ब्रजभाषा की रचना शक्ति के प्रकाशन में उनके भाषा प्रयोग ऐतिहासिक महत्व रखते हैं।

7.6.3 अलंकार-योजना

सूरदास रस और ध्वनि के सिद्ध कवि हैं। वे कभी अलंकारवाद या रीतिवाद का समर्थन नहीं करते हैं। अलंकार उनकी कविता में झूठे चमत्कार प्रदर्शन के लिए नहीं आए हैं अपितु भाव की प्रभाववृद्धि के रूप में ही अलंकार का प्रयोग हुआ है। सूरदास रूप-माधुर्य के सौन्दर्य को मूर्त करने के लिए अलंकार का सहारा लेते हैं। फलतः सूर के अलंकार प्रयोग में भाव-प्रवणता है—कथन की भंगिमा है—अलंकार का ज्ञान प्रदर्शन नहीं। प्रायः सूर ने अपने अलंकारों के उपमान प्रकृति से लिए हैं—मानव और मानवेतर दोनों व्यापारों को वे प्राकृतिक उपमानों से ही सामने लाते हैं। भाव को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने के लिए सूर ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, रूपकातिशयोक्ति जैसे अलंकारों का अधिक प्रयोग किया है। डॉ. हरवंश लाल शर्मा ने लिखा है "सूर के काव्यों में शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों का ही प्रयोग अधिक हुआ है, क्योंकि शब्दालंकार तो वर्ण-सौन्दर्य को ही विशेष रूप से प्रस्फुटित करते हैं। रूप सौन्दर्य के लिए उनका इतना महत्व नहीं, जबकि सूर का उद्देश्य रूप सौन्दर्य चित्रण और उसके द्वारा भाव-सौन्दर्य का पोषण करना था।" (सूर और उनका साहित्य पृ. 297) "साहित्य लहरी" में सूर ने शब्दालंकारों का प्रचूर प्रयोग किया पर श्लेष और यमक दृष्टिकूट के पदों में ज्यादा हैं। "सूरसागर" में अनुप्रास भाव के साथ ध्वनि सौन्दर्य की वृद्धि करता मिलता है और वीप्सा सूर की भक्ति तन्मयता का परिचायक अलंकार। वक्रोक्ति का प्रयोग "भ्रमरगीत" की वचन-विदग्धता का सौन्दर्य बन गया है। व्यंग्य सूर की कथन-महिमा का प्रतीक है।

सांगरूपक अलंकार के नए और कुशल प्रयोग सूरदास में मिलते हैं। विस्तृत सांगरूपक बाँध कर वे बात कहते हैं। यह अलंकार की काव्य-भाषा का वैभव बढ़ाता है–जैसे

लखियति कालिंदी अति कारी।

उमड़ती हुई यमुना का सन्निपात में विक्षिप्त युवती के द्वारा सांगरूपक बाँध कर वे कहते हैं:

सूरदास प्रभु जो जमुना गति, सो गति भई हमारी।

यहाँ पहले यमुना प्रस्तुत है और ज्वरग्रस्त युवती अप्रस्तुत। पर अंत तक आते-आते विरहिणी गोपी प्रस्तुत हो जाती है और यमुना अप्रस्तुत। प्रस्तुत-अप्रस्तुत की इस मिलावट में यमुना, विक्षिप्त युवती अभेद हो जाते हैं और सांगरूपक का आलंकारिक चमत्कार काव्य भाषा को संशिलष्ट अर्थ की धार दे देता है। दोनों की अर्थगत टकराहट में एक नया अर्थस्फोट हो जाता है। कहना न होगा कि ऐसे सांगरूपक उनकी भाव भाषा की रचनात्मकता को बढ़ाते हैं। एक ओर तो अलंकारों से भाषा की सर्जनात्मकता को बढ़ाते हैं और दूसरी ओर अलंकारों की वर्षा करने पर विकृति भी लाते हैं। बहुत जगह वे परंपरागत अलंकारों को जस का तस दुहरा देते हैं "और तब अनुभव होता है कि रीतिकाल के बहुअलंकृत और चमत्कार प्रधान कृष्ण-काव्य का मूल स्रोत शायद सूर के ऐसे पद ही हैं। इस दृष्टि से "अद्भुत एक अनुपम बाग" वाला पद कुख्यात है।" (रामस्वरूप चतुर्वेदी मध्यकालीन काव्य भाषा पृ. 94) स्वयं आ. शुक्ल ने सूर की इस प्रवृत्ति पर लिखा है "साहित्य प्रसिद्ध उपमानों को लेकर सूर ने बड़ी-बड़ी क्रीड़ाएँ की हैं। कहीं उनको लेकर रूपकातिशयोक्ति द्वारा "अद्भुत एक अनूपम बाग" लगाया है, कहीं जब जैसा जी चाहा है उन्हें संगत सिद्ध करके दिखा दिया है, कहीं असंगत।"

दोषों के होने पर भी सूर की अलंकार योजना की सबसे बड़ी विशेषता है–चमत्कार प्रियता में सहृदयता का छौंक। इसीलिए वचन भंगिमा में रस प्रवाह बराबर मिलता है। एक बात यह भी ध्यान देने की है कि एक ही बात को कहने के लिए वे विभिन्न अलंकारों का एक साथ आश्रय ग्रहण करते हैं। रूप-सौन्दर्य का यह पद देखिए–

देखि सखी अधरन की लाली।
मनि मरकत तै सुभग कलेवर ऐसे हैं वनमाली।
मनो प्रांत की घटा सांवरी तापै अरुन प्रकाश।
ज्यों दामिनि बिच दमकि रहत हैं कहरत पीत सुवास।

रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक एक साथ दौड़े आते हैं।

सारांश यह है कि सूर की अलंकार योजना भाव एवं भाषा के प्रभाव को बढ़ाने वाली है। नाद-सौन्दर्य के लिए यहाँ अनुप्रास नाचते आते हैं। इस अलंकार योजना ने सूर के काव्य सौन्दर्य की शोभा में वृद्धि की है। भगवान के गुण कथन में अतिशयोक्ति रूपकातिशयोक्ति, स्वभावोक्ति आदि अलंकारों की झड़ी लग गई है किन्तु ऐसे प्रयोग भी कृत्रिम नहीं है।

7.6.4 छंद-विधान

छंद, काव्य में भावों को गति, आकार एवं लय से सम्पन्न बनाते हैं। इस दृष्टि से छंदों का काव्य की कलात्मकता में विशेष योगदान है। सूरदास के काव्य में छंद विधान पर विचार करते समय इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है कि उन्होंने काव्य-रचना गेय पद शैली में की है। उनके पद कीर्तन के रूप में हैं और इसी पद्धति के अनुकूल उन्होंने छंद रचना की है। कहना होगा कि पिंगल शास्त्रीय छंदों की अपेक्षा संगीत शास्त्रीय राग-रागनियाँ ही उनके काव्य में प्रधान रूप से पाई जाती हैं। पर राग-रागनियों में पद रचना करते हुए भी सूरदास छंदों को छोड़ न सके हैं। उन्होंने पूर्व प्रचलित छंदों को अपने काव्य में ऐसे पचा लिया है कि ध्यान ही जाता कि सूर ने छंदों को भी अपने काव्य में स्थान दिया है। जबकि सत्य यह है कि उन्होंने राग-रागनियों के भीतर ही अनेक छंदों का सफल प्रयोग किया है। पदों के ऊपर गीत का स्वरूप है किन्तु भीतर दोहे मौजूद हैं। सूरदास का यह प्रसिद्ध पद देखिए–

मना रे माधव सों करि प्रीति।
काम क्रोध मद लोभ तू छांड़ि सबै विपरीति।।
भौं रा भोगी वन भ्रमै रे मोद न माने ताप।
सब कुसुमिन मिली रस करे पै कमल बधावे आय।

इस पद में प्रथम दो पंक्तियाँ तो राग की टेक का निर्वाह है और बाद की दो पंक्तियाँ दोहे की हैं। केवल "रे" तथा "पै" से दोहे की तेज गति मंद पड़ती है। इस ढंग के मंद गति दोहों से "सूरसागर" भरा पड़ा है। कहना न होगा कि दोहे के अनेक रूप सूरसागर में दिखाई देते हैं, सूर ने रोला का भी प्रचुर प्रयोग किया है और कई बार तो वे दोहा एवं रोला को मिलाकर एक नया ही छंद निर्मित कर देते हैं।

चौपाई एवं चौपई जैसे छंद भी सूरसागर में कम नहीं हैं। यह अवश्य है कि संगीत में बँधने के कारण उनकी शास्त्रीय मात्राओं का साँचा गड़बड़ा गया है। सूर ने 14 से लेकर 16 मात्राओं तक की चौपाइयाँ लिखी हैं। प्राय: कथात्मक प्रसंगों में चौपाई छंद का ही प्रयोग हुआ है। चौपाई के अतिरिक्त वे सार, सरसी, लवनी, समान सवैया, कुंडल घनाक्षरी, छप्पय, झूलना आदि छंदों का प्रयोग भी करते हैं। परंपरागत छंदों को मिलाकर वे नए छंद बनाने में बड़े ही सिद्धहस्त हैं। प्राय: तेरह मात्राओं के चरण में अर्धाली जोड़ देते हैं जैसे–

> आज हो बधाई बाजे, मंदिर महर के।
> फूले फिरैं गोपी ग्वाल, ठहर ठहर के।

यहां 13 मात्रा के चरण के साथ 8 मात्रा की अर्धाली जोड़कर नया छंद बना दिया है। इसी प्रकार–

> धनि धनि नंद जसोमति धनि जग पावन रे।
> धनि हरि लियो अवतार, सुधनि दिन अवतरे।

इसमें 11 मात्रा के चरण में 10 मात्रा की अर्धाली जोड़ी गई है। मूल बात यह है कि सूर ने केवल गीतों की ही रचना नहीं की है, बल्कि अनेक मात्रिक और वार्णिक छंदों का भी मुक्त भाव से प्रयोग किया है। छंदों में थोड़ा हेर-फेर करने के बाद उन्हें रागों में ढालने की दक्षता में भी उनका मुकाबला नहीं है। सूर ने संगीत की धारा में आए छंदों को विकृत नहीं होने दिया उनमें नया अर्थ चमत्कार ही उत्पन्न किया है। अत: निश्चित रूप से सूर ने छंदों के क्षेत्र में परवर्ती कवियों को नयी दिशा दी है। फलत: दोहा-रोला के मेल से बने छंद सूर के बाद-कवियों में लोकप्रिय रहे हैं।

बोध प्रश्न ग

8 निम्नलिखित में से सही (✓) और गलत (×) का निशान लगाइये।
सूरसागर का काव्यरूप
i) खण्डकाव्य
ii) महाकाव्य
iii) गीतिकाव्य

9 सूरदास की काव्य भाषा पर दस पंक्तियों में प्रकाश डालिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

10 सूर काव्य के अलंकारों की विशेषताएँ पाँच पंक्तियों में लिखिए।

....
....
....
....
....

11 सूरदास के छंद विधान पर पाँच पंक्तियों में विचार कीजिए।

....
....

7.7 सूरदास के पदों का वाचन एवं व्याख्या

विनय का पद:

अबिगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यौ गूंगै मीठे फल को रस अन्तरगत हीं भावै।
परम स्वाद सबही तु निरंतर अमित तोष उपजावै।
मन-बानी कौं अगम-अगोचर, सो जानै जो पावै।
रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति-बिनु निरालंब कित धावै।
सब विधि अगम बिचारहिं तातैं सूर सगुन लीला-पद-गावै।

शब्दार्थ : अविगत–निर्गुण, अव्यक्त। अंतरगत–हृदय। अमित–अपार। तोष–संतोष। अगम–जहाँ तक पहुँचा न जा सके। जुगति–युक्ति। निरालंब–आधार रहित।

संदर्भ : प्रस्तुत पद "सूरसागर" में से लिया गया है। इसके रचयिता महाकवि सूरदास जी हैं।

प्रसंग : सूरदास सगुणोपासक कृष्ण भक्त कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। इस पद में उन्होंने निर्गुण ब्रह्म की साधना का खंडन एवं सगुण ब्रह्म की भक्ति की स्थापना के कारणों पर अपना मत व्यक्त किया है। सगुण ब्रह्म की लीला के पदों का गायन करना ही उन्हें अभीष्ठ है।

व्याख्या : सूरदास जी कहते हैं कि निर्गुण ब्रह्म अव्यक्त एवं अजन्मा है। उसके मूर्त रूप का शब्दों के माध्यम से वर्णन नहीं किया जा सकता। ऐसे निराकार ब्रह्म को ज्ञान योग; हठयोग से साधना प्राप्त कर लेने वाले साधन की स्थिति उसे गूंगे व्यक्ति की भाँति ही है जो मीठा फल चखने के पश्चात् उसकी मिठास की अनुभूति तो अपने हृदय के भीतर ही कर सकता है। पर दूसरों के समक्ष उस अनुभूति के अनुभव का वर्णन नहीं कर सकता। निर्गुण ब्रह्म की अनुभूति का परम सुख साधन के हृदय में अपार संतोष एवं आनंद उत्पन्न करता है, परन्तु साधक उस आनंद की अनुभूति एवं ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन किसी से नहीं कर सकता। वह वाणी के माध्यम से यह व्यक्त करने में असमर्थ रहता है कि उसे ब्रह्म के कौन-से स्वरूप की अनुभूति हुई है किन्तु सगुण भक्त अपने ईश्वर के रूप, गुण, सौन्दर्य एवं लीलाओं का वर्णन अन्य भक्तों के समक्ष कर सकता है।

सूरदास जी निराकार ब्रह्म को अगम्य बताते हुए कहते हैं कि न तो उसका कोई रूप है न गुण है न रेखा है न जाति है तथा न ही उसे प्राप्त करने की कोई युक्ति है। बिना किसी सहारे के ऐसे ब्रह्म का साक्षात्कार करना अत्यंत दुष्कर है। अंत में सूर सगुण की भक्ति की प्रतिष्ठा करते हुए कहते हैं कि सभी प्रकारों से विचार करके देख लेने के बाद ही इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूं कि निर्गुण की उपासना कठिन है। इसलिए सगुण भगवान की लीला को पदों में गायन के लिए ही प्रस्तुत करना उचित है।

विशेष

1. प्रस्तुत पद एक प्रकार से सगुण भक्ति की ओर जाने के कारणों का आशय स्पष्ट करता है।
2. निर्गुण ब्रह्म निराकार-अगोचर एवं अव्यक्त है। उसका स्वरूप पूर्ण एवं सगुण नहीं है। ऐसी स्थिति के कारण उसे लोक हृदय में स्थान मिल पाना कठिन है।
3. सूर काव्य की चारों विशेषताओं का उल्लेख इस पद में मिलता है– 1 सगुण, 2 लीला-वर्णन, 3 मुक्तक पद परंपरा, 4 संगीत परंपरा का पालन-गायन।
4. "ज्यों गूंगै पीठे फल" की उत्प्रेक्षा के द्वारा सूर ने भाव को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है।
5. वैष्णव परंपरा की सगुण भकित में लीला वर्णन से आनंद का जो स्रोत फूटता है– वह जनता के मन को स्पर्श करता है। इसी स्थिति के कारण सगुण भकित ही श्रेष्ठ है।
6. बोलचाल की ब्रजभाषा में शब्दों का लयात्मक क्रम है।

उद्धरण 2

मैया मोरी मैं नहिं माखन खायौ।
ख्याल परैं ये सखा सबै मिलि, मेरैं मुख लपटायौ।
देखि तुही सींके पर भाजन ऊँचैं धरि लटकायौ।
हौं जु कहत नान्हे कर अपने, छीका केहि विधि पायौ।
मुख दधि पोंछि, बुद्धि इक कीन्ही, दोना पीठि दुरायौ।
डारि साँटि, मुसुकाइ जसोदा, स्यामहिं कंठ लगायौ।
बाल-बिनोद मोद मन मोह्यो, भक्ति-प्रताप दिखायौ।
सूरदास जसुमत कौ यह सुख, सिव बिरंचि नहिं पायौ।

शब्दार्थ : ख्याल–खेलने। भाजन–बर्तन। नान्हे–नन्हें, छोटे। दुरायो–छिपाया। सींके–छींका। कर–हाथ। साँटि–छड़ी। बिरंचि–ब्रह्मा। मोद–आनंद क्रीड़ा।

संदर्भ : प्रस्तुत पद महाकवि सूरदास द्वारा रचित सूरसागर के दशम स्कन्ध से लिया गया है।

प्रसंग : सूर के बालकृष्ण अत्यंत नटखट हैं। मक्खन उन्हें अत्यंत रुचिकर लगता है। स्वयं खाने एवं मित्रों को खिलाने हेतु उन्हें चोरी भी करनी पड़ती है। एक दिन कृष्ण एक ग्वालिन के घर माखन चोरी करने गए। कृष्ण को चोरी से मक्खन खाते देख ग्वालिन क्रोध में आ गई। मुंह में मक्खन लिपटे हुए कृष्ण को पकड़ कर यशोदा के समक्ष ले जाकर उनकी शिकायत करने लगी। यशोदा को कृष्ण के इन कार्यों के कारण अनेक बार लज्जित होना पड़ा था। आज जब मुँह पर मक्खन लपेटे और हाथ में दोना पकड़े कृष्ण को देखा तो अत्यंत क्रोधित हुई एवं कृष्ण को मारने के लिए छड़ी उठायी। अपने बचाव हेतु कोई रास्ता न देखकर कृष्ण अपनी सफाई देने लगे।

व्याख्या : कृष्ण अत्यंत दुलार भरे शब्दों में माँ से अनुनय-विनय करने लगे कि माता मैंने मक्खन की चोरी नहीं की और न ही मक्खन खाया। मेरे साथ मेरे सखा खेलते हैं उनमें बड़े लड़के मक्खन की चोरी करते हैं और मुझ जैसे छोटे बच्चे के मुख पर पकड़े जाने के भय से रगड़ देते हैं।

मैं ऊँचे पर लटके छींके के बर्तन तक कैसे पहुँच सकता हूँ। अब तू ही बता कि मैं छोटी बाँहों वाला बच्चा हूँ प्रयास करने पर भी छींके तक नहीं पहुँच सकता।

इतनी सफाई देने पर भी जब माँ का क्रोध शांत न हुआ, तब कृष्ण का ध्यान अपनी शारीरिक स्थिति पर गया। सूर के चतुर कृष्ण को एक युक्ति सूझी। उन्होंने शीघ्रता से मुँह पर लिपटा मक्खन पोंछा और हाथ में पकड़ा हुआ मक्खन से भरा दोना पीठ के पीछे छिपा लिया। कृष्ण के इस बाल सुलभ भोले नटखट रूप का कौतुक देख कर यशोदा हृदय में पुत्र के प्रति स्नेह से भर गई। सारा क्रोध विस्मृत कर उन्होंने कृष्ण को गले लगा लिया। कृष्ण ने बाल क्रीड़ाओं के आनंद से माँ का मन मोह लिया और भक्ति के प्रताप का यशोदा को दर्शन कराया।

अंत में सूर कहते हैं कि बाल लीला का जो सुख यशोदा को प्राप्त हुआ वह वात्सल्य सुख ब्रह्मा और शिव भी नहीं पा सकते। यह सुख तो अवर्णनीय और हृदय से अनुभूत करने वाला है।

विशेष

1 प्रस्तुत पद में वात्सल्य रस के दर्शन होते हैं। कृष्ण आलंबन यशोदा आश्रय, उनकी क्रीड़ाएँ उद्दीपन विभाव है।
2 इस पद में सूर ने कृष्ण की बाल लीला के मक्खन चोरी प्रसंग का सहृदयता एवं विदग्धता से बिंब या भाव-चित्र उपस्थित किया है।
3 मैया मोरी मैं ········ में अनुप्रास अलंकार है।
4 बालकों की अन्तर्वृत्तियों के प्रकृत निरूपण में सूर अद्वितीय हैं। यह पद इस तथ्य का प्रकाशन करता है।
5 ब्रह्म इस लोक में बाल लीला करता है–आनंद देता है। यह सुख धरती पर ही सशरीर पाया जा सकता है।
6 ब्रज-संस्कृति का प्रतीक "सींका" है जिसमें सूर बराबर लोक-चेतना का संकेत देते हैं।
7 वैष्णव परंपरा और भक्ति आंदोलन में सगुण भक्तों ने बाल-ब्रह्म की उपासना पद्धति को विशेष महत्व दिया है।
8 ब्रजभाषा की लोक-संगीत परंपरा का प्रभाव भी इस पद में देखा जा सकता है।

उद्धरण 3

बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति काकी है बेटी, देखी नहीं कहूं ब्रज-खोरी।।

काहे कौं हम ब्रज-तन आवतिं, खेलति रहहिं आपनी पौरी।
सुनत रहतिं स्रवननि नंद ढोटा, करत फिरत माखनदधि चोरी।।
तुम्हरौ कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलौ संग मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक (–) सिरोमनि बातनि भुरइ राधिका भोरी।।

शब्दार्थ : ब्रज खोरी–ब्रज की गलियों में। ब्रजतन–ब्रज में। स्रवननि–कानों में। बूझत–पूछना। काकी–किसकी। पौरी–ड्योढ़ी। ढोटा–पुत्र। भुरइ–भुला दिया।

संदर्भ : पूर्व की भाँति।

प्रसंग : सूर के कृष्ण पूर्णावतार हैं एवं राधा उनकी शक्ति है। कृष्ण एवं राधा प्रथम परिचय में ही एक दूसरे के प्रति अनुरक्त हो जाते हैं। राधा एवं कृष्ण का यह प्रथम मिलन ब्रज में होता है। इससे पहले कृष्ण ने राधा को कभी देखा न था। अतः उसके प्रति सहज उत्सुक होना स्वाभाविक था।

व्याख्या : अपनी उत्सुकता का शमन करने के लिए कृष्ण राधा से पूछते हैं कि हे सुंदरी! तेरा परिचय क्या है। तू कौन है, कहाँ रहती है तथा किसकी पुत्री है। आज से पहले ब्रज की गलियों में तुम्हें कभी नहीं देखा। कृष्ण के इतना पूछने पर राधा उत्तर देने को तत्पर होती है। सूर की राधा में भोलापन होने के साथ-साथ वाक्चातुर्य भी है। वह व्यंग्य करती है कि ब्रज में वह क्यों आए? ब्रज में उसके लिए कोई आकर्षण नहीं। वह तो अपने घर की चौखट के भीतर ही क्रीड़ा करती थी। परंतु एक बात वह अवश्य सुनती रहती थी कि ब्रज में नंद का पुत्र अत्यंत नटखट है जो मक्खन और दही की चोरी करता फिरता है। राधा का यह सीधा और निष्कपट उत्तर सुनकर कृष्ण राधा पर और रीझ जाते हैं। वे उसके सभी उलाहने एवं व्यंग्य सहने को तत्पर हैं। चोर तो वे नहीं, पर राधा के कहने पर स्वयं को चोर कहलाने को भी तैयार हैं। राधा को अपनी रसीली बातों में भुलाकर वे उससे साथ मिलकर खेलने की अनुनय विनय करते हैं।

अंत में सूरदास कहते हैं कि उनके प्रभु श्री कृष्ण तो रसिकों के शिरोमणि एवं लीला नायक हैं। वे सब को अपनी प्रेम लीला शक्ति से मोह लेते हैं। राधा को भी उन्होंने मोहित कर लिया और दोनों के हृदय में प्रेम जागृत हो गया।

विशेष

1 इस पद में शृंगार रस के संयोग पक्ष का अंकन हुआ है।
2 राधा की अपार-रूप-माधुरी को देखकर स्वयं कृष्ण आश्चर्यचकित हो जाते हैं। विस्मय, आश्चर्य का यह रमणीय भाव कथन भंगिमा से उभारा गया है।
3 राधा कृष्ण की आल्हादिनी शक्ति हैं। किन्तु लीला भाव के लिए उसे एक विशेष छवि के साथ प्रस्तुत किया गया है।
4 किशोर-किशोरी के सहज अनुभावों का इस पद में मूर्त रूप से अकन हुआ है।
5 सूरदास के काव्य का केन्द्रीय भाव है–प्रेम। इस प्रेम की व्यापक छवियों का सरस उक्तियों से वर्णन करने में वे कितने सिद्धहस्त कवि हैं यह पद उनकी कवि शक्ति का सच्चा प्रमाण है।
6 कथ्य और कथन की स्वाभाविकता में यह पद अनुपम है।

उद्धरण 4

निसिदिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहति पावस ऋतु हम पै जब तें स्याम सिधारे।
दृग अंजन लागत नहिं कबहूँ, उर कपोल भए कारे।
कंचुकि नहिं सूखत सुनु सजनी! उर-बिच बहत पनारे।
"सूरदास" प्रभु अंबु बढ्यौ है, गोकुल लेहु उबारे।
कहँ लौं कहौं स्यामघन सुन्दर बिकल होत अति भारे।

शब्दार्थ : निसिदिन–दिन-रात। पावस–वर्षा ऋतु। सिधारे–चले गए। दृग–नेत्र। कारे–काले। पनारे–छोटे नाले। अंबु–जल। बिकल–व्याकुल

संदर्भ : प्रस्तुत पद महाकवि सूरदास द्वारा रचित "सूरसागर" के "भ्रमरगीत" प्रसंग से लिया गया है।

प्रसंग : कृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियाँ रात-दिन उनकी वियोग व्यथा में घुलती रहती हैं। कृष्ण ने अपने परम मित्र उद्धव को अपना दूत बनाकर गोपियों के पास भेजा। उद्धव को अपने ज्ञान योग पर अत्यंत गर्व था। उद्धव ने गोकुल जाकर गोपियों को समझाया कि वे कृष्ण का ध्यान

त्यागकर उस निर्गुण ब्रह्म की साधना करें जो घट-घट में व्याप्त है। गोपियों का प्रेम तो कृष्ण के प्रति अनन्य था ही, वे उनके अतिरिक्त अन्य किसी का ध्यान कैसे करतीं। कृष्ण का वियोग उनके हृदय को व्यथित कर ही रहा था। हृदय की व्यथा अश्रु बनकर नेत्रों से प्रवाहित होती रहती थी। उनकी इसी प्रेम दशा का वर्णन प्रस्तुत पद में सूरदास ने गोपियों के माध्यम से किया है।

व्याख्या : गोपियों ने अपनी वियोग व्यथा का वर्णन करते हुए पावस ऋतु की वर्षा से अपने नेत्रों की अश्रुधारा की तुलना की है। वर्षा ऋतु में सदैव बादलें छाए रहते हैं तथा बीच-बीच में वर्षा की झड़ी लग जाती है। एक बार वर्षा प्रारंभ होने पर कुछ समय तक लगातार होती रहती है।

इसी प्रकार कृष्ण की स्मृति ही वे बादल हैं जो उमड़-घुमड़ कर गोपियों के हृदय पर छाते हैं तथा उनके नेत्रों से अश्रु वर्षा प्रारंभ होने लगती है। यह अश्रु धारा वर्षा ऋतु की झड़ी के समान ही अनवरत प्रवाहित होती रहती है। नेत्रों के अविरल प्रवाह के कारण गोपियों के नेत्रों का काजल नेत्रों में नहीं रह पाता अपितु वह बह कर उनके गालों तथा वक्षस्थल तक को काला कर देता है। जिस प्रकार वर्षा का जल छोटे-छोटे नालों का रूप धारण करके पृथ्वी पर बहने लगता है उसी प्रकार गोपियों के नेत्रों से होने वाली अश्रु वर्षा की झड़ी पनालों की भाँति वक्षस्थल से प्रवाहित होती रहती है। इस प्रवाह के कारण गोपियों की चोली कभी सूख ही नहीं पाती। जिस प्रकार अधिक वर्षा होने पर जल बह कर बाढ़ का रूप धारण कर लेता है उसी प्रकार गोपियाँ अपने प्रिय को आगाह कर रही हैं कि उनके नेत्रों से बहता जल इतना बढ़ गया है कि पूरे गोकुल को डुबा सकता है। अतः हे कृष्ण! हमें दर्शन देकर हृदय में घुमड़ने वाले बादलों को शांत करो जिससे निरंतर होने वाली अश्रु वर्षा रुक सके।

अंत में सूर कहते हैं कि गोपियों ने इतना कुछ तो कह दिया है अब कहाँ तक कहें। हे घनश्याम! केवल गोपियाँ ही नहीं अपितु पूरे गोकुल के निवासी तुम्हारे वियोग में व्याकुल हो रहे हैं।

विशेष :

1 सूर के विरह वर्णन में हृदय-पक्ष की प्रधानता है। यह पद उसी सच्चाई को पुष्ट करता है।
2 "सदा रहति पावस ऋतु हम पै" में रूपक अलंकार है। अश्रु रूपी वर्षा गोपियों के नेत्रों से प्रवाहित होती रहती है।
3 शृंगार पक्ष के अंतर्गत इस पद में विप्रलभ शृंगार का चित्रण है।
4 "सूखत सुनु सजनी" में अनुप्रास अलंकार का प्रयोग है।
5 "दृग कपोल भए कारे तथा उर बिच बहत पनारे" में ऐसा बिंब है जो पूरी स्थिति की व्यथा को व्यक्त कर देता है।
6 सूरदास की ब्रजभाषा में "बिच" जैसी पंजाबी की क्रिया यह सिद्ध करती है कि ब्रजभाषा का गहरा संपर्क अपनी आस-पास की भाषाओं से था।

7.8 सूर काव्य का मूल्यांकन

भक्ति आंदोलन अखिल भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक आंदोलन था और इस आंदोलन की श्रेष्ठ देन थे–सूरदास। सूरदास ने कृष्ण-राधा को आराध्य मानकर अपनी सगुण भक्ति का सागर लहराया। उनके काव्य ने यह सिद्ध किया कि भक्ति-साहित्य निराशाजन्य साहित्य नहीं है–उसमें जनता की आशाओं-आकांक्षाओं की सच्ची और स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है। जो लोग भक्ति को शक्ति और आस्था मानते हैं–उनके लिए सूर का काव्य भक्ति की अमृतधारा है–जो आज भी मुरझाए मनों से निराशा, विषाद, क्षोभ को उखाड़ फेंकने की शक्ति रखती है।

सूर के काव्य में प्रेम-तत्व की प्रधानता है वात्सल्य एवं शृंगार दोनों ही प्रेम के पोषक भाव बनकर आए हैं और पुष्टिमार्ग का शुद्धाद्वैतवाद कर्म प्रेरणा की संजीवनी का रूप। सूर में प्रेम प्रवाह उमड़ता है। यह प्रेम ही कबीर, जायसी और तुलसी को एक सामान्य भाव भूमि पर प्रतिष्ठित कर देता है। यहाँ धर्मशास्त्रियों का रूढ़िवादी कर्म-विधान नहीं है–प्रेम की अखंड सत्ता है। यह प्रेम मानव मात्र के हृदय को अलगाववाद, जातिवाद से दूर करने वाला है। इस प्रेमजल में भक्ति रस का मीठा स्वाद है। सगुण भक्ति आंदोलन ने जनता में जो भावात्मक एकता स्थापित की थी उसमें हृदय तत्व की गहराई ज्यादा थी।

सूरदास की सगुण कृष्ण भक्ति धारा में लोक-संस्कृति का सौन्दर्य भारतीय जनता की धरोहर है। लोकगीत परंपरा, लोक-भाषा और मुक्तक पद शैली का ब्रजी में सही उपयोग करने वाले सूरदास महाकवि कहलाने के सच्चे अधिकारी हैं।

सूरदास के युग में सबसे प्रबल मतवाद नाथपंथी योगियों का था। ये योगी चमत्कारवाद से जनता को बहकाते थे। मुद्रा, भस्म, मृगचर्म धारणकर, आँख मूंद कर ध्यान करने का उपदेश देते थे। नाथपंथी योगियों के पथ को लोक-विरोधी पाकर सूर ने उसका तार्किकता से खंडन किया तथा सगुण भक्ति का राज मार्ग खोल दिया। निर्गुण मार्ग जिस ज्ञान योग पर मिथ्या दम्भ करता था—उसका भी सूरदास भक्ति योग साधना से प्रतिवाद करते हैं।

बाल-लीला वर्णन, मातृ हृदय के चित्रण में सूर अद्वितीय हैं। "कहा गया है कि सूरदास प्रेम के स्वरूप के अपूर्व पारखी थे—मैं कहता हूँ प्रेमिका के हृदय का तटस्थ भाव से चित्रण करने में सूरदास के साथ संसार के कुछ ही कवियों की गणना हो सकती है। सूरसागर के दो चित्र संसार के साहित्य में बेजोड़ हैं—यशोदा और राधिका। यशोदा के वात्सल्य में वह सब कुछ है जो माता शब्द को इतना महिमाशाली बनाये है। राधिका के चित्र में "प्रेम" का अथ से इति तक सर्वस्व निहित है।" (हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली-4 पृ. 100) इस काव्य में रास-लीला की केलि के साथ एक ध्वनि लगातार उठती रहती है—"छबीले मुरली नेकु बजाउ"। यह मुरली ही कृष्ण की नाद-शक्ति है, रसमयी माया है।

सूर का राधा-भाव "सूरसागर" की महत्तम उपलब्धि है। यह राधा-भाव लोक जागरण के साथ आया है। इसमें निवृतियों को स्थान नहीं है—भाव परिष्कार का सीधा अवसर है। सूरदास रीतिवाद की नायिका भेदी, नखशिख वाली विकृत सामंतवादी परंपरा के रचनाकार नहीं हैं—उनमें संत काव्य की विशिष्टताओं का आलोक चमक रहा है।

सूर ने जनसाधारण में आत्म-विश्वास पैदा करने के लिए कृष्ण काव्य की रचना की। वे किसी काल्पनिक स्वर्ग की रचना नहीं करते। कृष्ण तक पहुँचने के लिए गृह त्याग करने, वैरागी बनने, कृष्ण नाम जपने की आवश्यकता नहीं है। दुःख दूर करना है तो इसी संसार में भजन-कीर्तन, स्मरण से कृष्ण कृपा प्राप्ति की जा सकती है। भक्ति आंदोलन का संबंध लोक-पीड़ा और लोक-करुणा से रहा है। सूर का युगांतरकारी महत्व इसी बात से प्रकट है कि वे हिंदी भाषा के श्रेष्ठ कवि रूप में विख्यात हैं। उन्होंने हिंदी भाषियों के हृदय का स्पर्श करके उन्हें मानसिक शांति प्रदान की और जनता का जीवन उन्नत बनाया। एक विराट मानवीय सहानुभूति सूर की भक्ति का अभिन्न अंग है।

7.9 सारांश

इस इकाई में आपने भक्ति-आंदोलन की विशाल पृष्ठभूमि पर ध्यान केन्द्रित करते हुए सगुण भक्ति-धारा के कृष्ण भक्त कवि सूरदास के काव्य सौन्दर्य का आस्वादन किया है। सूरदास के युग-परिवेश से परिचित होने के साथ ही उनकी जीवनी तथा रचनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त की है। आपने यह भी जान लिया है कि सूर की भक्ति-भावना की मूल विशेषताएँ कौन-कौन सी हैं तथा भक्ति उनके काव्य का प्रधान मूल्य क्यों है। भक्ति के प्रेरणास्रोतों को सही संदर्भों में ग्रहण करने की दृष्टि से सूर की दार्शनिक विचारधारा से भी साक्षात्कार कर चुके हैं।

सूर का भाव-सौन्दर्य एक विस्तृत सागर है—जिसमें वात्सल्य और शृंगार की व्यापकता एवं गहराई है। वात्सल्य और शृंगार का सूर ने पूरे मनोयोग से अंकन किया है और इन दोनों की आंतरिक विशिष्टताओं से आप गुज़र चुके हैं। सूर के अभिव्यंजना शिल्प के उपकरण—काव्य-रूप, काव्य-भाषा, अलंकार योजना, छंद-योजना का अध्ययन भी यह सिद्ध करता है कि सूर के काव्य का सौन्दर्य अनुपम है। लोक-परंपराओं की शक्ति तथा लोक भाषा ब्रजभाषा को साहित्यिक भाषा बनाकर निखारने वाले सूर पहले कवि हैं। निष्कर्ष यह कि सूरदास भारतीय भक्ति आंदोलन की महत्वपूर्ण उपलब्धि हैं।

7.10 उपयोगी पुस्तकें

शुक्ल आचार्य रामचन्द्र, *भ्रमरगीत सार*, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
द्विवेदी आचार्य हजारी प्रसाद, *हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली भाग-4*, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
चतुर्वेदी रामस्वरूप, *मध्यकालीन काव्य भाषा*, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
शर्मा हरवंश लाल, *सूर और उनका साहित्य*, भरत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़

गुप्त दीनदयालु, *अष्ट छाप और बल्लभ सम्प्रदाय,* हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
शर्मा ब्रजेश्वर, *सूरदास हिंदी परिषद्,* प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग

7.11 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न क

1 सीही
2 देखिए 7.3
3 दीक्षागुरु वल्लभाचार्य
4 देखिए 7.3

बोध प्रश्न ख

5 शुद्धाद्वैतवाद
6 देखिए 7.4
7 सखा भाव
8 देखिए 7.5.1
9 देखिए 7.5.2

बोध प्रश्न ग

8 सूरसागर का काव्य रूप-गीतिकाव्य
9 देखिए 7.6.2
10 देखिए 7.6.3
11 देखिए 7.6.4

इकाई 8 गोस्वामी तुलसीदास

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 तुलसी पूर्व रामकाव्य परम्परा
8.3 पृष्ठभूमि
8.4 तुलसीदास का परिचय
 8.4.1 रचनाकार व्यक्तित्व
 8.4.2 जीवन परिचय
 8.4.3 रचनाएँ
8.5 तुलसी का भाव-पक्ष
 8.5.1 सामंतवाद-विरोधी मूल्य
 8.5.2 मानवीय सहानुभूति का आधार सामाजिक यथार्थ
 8.5.3 समन्वय भावना का लोक विस्तार
8.6 दार्शनिक विचार
8.7 भक्ति पद्धति
 8.7.1 सूर और तुलसी की भक्ति पद्धति की तुलना
8.8 अभिव्यंजना शिल्प
 8.8.1 काव्य रूप
 8.8.2 काव्य शैलियों का प्रयोग और पालन
 8.8.3 काव्य-भाषा
 8.8.4 छंदयोजना
 8.8.5 अलंकार-योजना
8.9 मूल्यांकन
8.10 संदर्भ सहित व्याख्या
8.11 सारांश
8.12 शब्दावली
8.13 उपयोगी पुस्तकें
8.14 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भक्ति आंदोलन में तुलसीदास की लोकमंगलवादी भूमिका को समझा सकेंगे;
- रामकाव्य-परम्परा में तुलसी का स्थान बता सकेंगे;
- उनका जीवन परिचय एवं काव्य कृतियों के बारे में सप्रमाण तर्क दे सकेंगे;
- तुलसी की भक्ति-पद्धति पर विस्तार से विचार कर सकेंगे;
- उनके भावपक्ष का निरूपण करने के साथ उनके काव्य में निहित समन्वयवाद की चर्चा कर सकेंगे;
- उनके काव्य के सामंत-विरोधी मूल्यों को समझा सकेंगे तथा उनकी दार्शनिक विचारधारा को स्पष्ट कर सकेंगे;
- उनके अभिव्यंजनाशिल्प की विशेषताओं को सप्रमाण प्रस्तुत कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

तुलसीदास भारतीय भक्ति-आंदोलन के निर्माता तथा इस भक्ति-आंदोलन की महान् उपलब्धि हैं। उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सांस्कृतिक-सामाजिक महत्व भक्ति-आंदोलन की इसी क्रांतिकारी भूमिका के संदर्भ में आंका जा सकता है। भक्ति की वह धारा जो वेदों-उपनिषदों से उमड़ी थी और जिसने तीसरी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक तमिल में भक्ति-आंदोलन को तीव्र किया। देश भर में कश्मीर में ललदेद, तमिल में आंडाल, बंगाल में चण्डीदास, चैतन्य,

पंजाब में नानक, गुजरात में नरसीमेहता आदि विभिन्न प्रदेशों में भक्त कवि पैदा किए। इन भक्त कवियों ने सांस्कृतिक-सामाजिक एकता के सूत्र पैदा किए और भावात्मक रूप से जनता को एक किया। इस भावात्मक एकता का आधार था भक्ति या प्रेम। तुलसीदास ने भक्ति की निर्गुण-सगुण परंपराओं को वैचारिक स्तर पर एकता के सूत्र में बाँध दिया। रामानुजाचार्य की लोक-चिंतन धारा ने रामानंद को जन्म दिया। रामानंद ने लोक-भाषाओं में काव्य लिखने की प्रेरणा देकर हिंदी के भक्ति-काव्य को दिशा और दृष्टि दी। रामानंद की इसी चिंतन-परंपरा में कबीर और तुलसीदास का आविर्भाव हुआ है। तुलसीदास ने भक्ति-आंदोलन को इतना व्यापक रूप दिया है कि हिंदीभाषी जनता के वे जातीय संस्कार ही बन गए हैं।

8.2 तुलसी पूर्व रामकाव्य-परम्परा

रामकाव्य परम्परा का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ वाल्मीकि कृत "रामायण" है। यद्यपि रामायण से पूर्व रामकथा पर छोटे-छोटे आरव्यक काव्य या कथाकाव्य लिखे जाने के उल्लेख मिलते हैं–पर वे काव्य आज अप्राप्त हैं। विद्वान वाल्मीकि रामायण की रचना चौथी दशाब्दी ई.प. मानते हैं। बहुत समय तक रामायण मौखिक रूप से प्रचलित रही उसमें परिवर्तन और प्रक्षिप्त अंश जुड़ते रहे। "महाभारत" के वनपर्व, शांतिपर्व एवं सभापर्व में रामकथा मिलती है। वनपर्व का "रामोव्याख्यान" प्रसिद्ध है। इसके उपरांत बौद्ध जातकों में "दशरथ जातक" रामकथा का वर्णन करता है। बौद्धों के अतिरिक्त जैनग्रंथों में विमलसूरि कृत "पउप चरिउ" तथा गुणभद्र कृत "उत्तर रामायण" में भी रामकाव्य के दर्शन होते हैं। इसके अतिरिक्त पद्मपुराण, विष्णुपुराण आदि पुराणें रामकथा से भरी पड़ी हैं। "अध्यात्मरामायण" "महाभारत" "आनंद रामायण" "भुशुण्डि रामायण" "अद्भुत रामायण" जैसे पौराणिक ढंग के रामकाव्य भी लिखे गए हैं।

संस्कृत-पालि-प्राकृत-अपभ्रंश के प्राचीन ग्रंथों के अलावा संस्कृत के प्रबंधकाव्यों एवं नाटकों में भी रामकाव्य का सौंदर्य बिखरा मिलता है। कालिदास रचित "रघुवंश" कुमारदास रचित "जानकी हरण" क्षेमेन्द्र कृत "रामायण मंजरी" मल्लिनाथ रचित "रघुवीर चरित" आदि प्रसिद्ध काव्य हैं। नाटकों में भवभूति का "उत्तररामचरित" राजशेखर का 'बालरामायण' मधुसूदन और दामोदर कृत "हनुमन्नाटक" जयदेव का "प्रसन्नराघव" इस दिशा में उल्लेखनीय हैं।

वाल्मीकि रामायण को मुलाधार बनाकर भारतीय भाषाओं के साहित्य में व्यापक स्तर पर रामकाव्य की रचना हुई है। इन रामकाव्यों में मराठी में एकनाथ द्वारा रचित "भावार्थ रामायण" बंगला में कृतिवास कृत "रामायण" 15वीं शताब्दी असमिया में शंकर देव कृत 'उत्तरकांड' उड़िया में "जगन्मोहन रामायण" तमिल में कंबन कृत "रामायण" (11 वीं शताब्दी) तेलुगु में "रंगनाथ रामायण" (12वीं शताब्दी) आदि का नाम महत्वपूर्ण है।

हिंदी में सन् 1286 ई. के आसपास कवि भूपति रचित "राम चरित रामायण" का संकेत मिलता है। पर यह कृति उपलब्ध नहीं है। ऐसी स्थिति के कारण तुलसीदास ही रामकाव्य परम्परा में हिंदी के पहले प्रतिनिधि कवि कहे जा सकते हैं। तुलसी ने "नानापुराण निगमागम रघुनाथ गाथा" का जो उल्लेख "रामचरित मानस" के आरंभ में किया है उसका एक अर्थ यह है कि तुलसी ने अपने से पूर्व की रामकाव्य परंपरा का मनोयोगपूर्वक मंथन किया था। यह मंथन इसलिए भी सम्भव हुआ कि तुलसी के सामने परम्परा से प्राप्त एक विशाल और समृद्ध रामकाव्य था। अपने मूल रूप में रामकथा एक ऐसी आदर्श कथा थी जिसमें भारतीय जीवन के नैतिक-सामाजिक मूल्य निहित थे। तुलसीदास ने प्राय: स्मरण दिलाया है कि राम की गुणगाथा का गान वेद करते हैं। उन्होंने "रामचरित मानस" के उत्तरकांड में वेदों से राम की स्तुति कराई है। वेदों में राम का नाम तो है – किन्तु यह नाम ईश्वर के लिए नहीं है। वैदिक साहित्य में सीता शब्द का प्रयोग भी हल से जोतने पर बनी हुई रेखा के लिए हुआ है। यहाँ सीता कृषि की अधिष्ठात्री देवी है ऐसा प्रतीत होता है कि राम-सीता पर दिव्य रूप का आरोपण परवर्ती युगों में किया गया है। वाल्मीकि रामायण में राम का रूप अवतारी दिव्य नायक का नहीं है एक महामानव का है। बहुत से विद्वानों ने यह मत भी व्यक्त किया है कि राम-रावण युद्ध आर्य-अनार्य संघर्ष की गाथा है। किन्तु तुलसीदास ने रामकथा को भारतीय संस्कृति की मूल्य चेतना के रूप में ग्रहण किया और रामकथा का दिव्य, अवतारवादी, लीलामय रूप प्रस्तुत किया है। तुलसीदास ने रामकथा के इस दिव्य रूप को जन-मन में रचा-पचा दिया। रामानंद (सन् 1343 ई.) ने रामकाव्य को भक्ति-आंदोलन की लोकशक्ति से जोड़ दिया था। उनकी हिंदी में रचित रचना "राम रक्षा स्रोत" की परंपरा को तुलसीदास ने आगे बढ़ाया। भक्तिकाल में राम कथा उभर रही थी – इसका प्रमाण सूरदास देते हैं। बल्लभाचार्य के पुष्टि मार्ग में होने पर भी इस उदार भक्तिकवि ने अनेक पदों में रामकथा का

गान किया है। जैसे तुलसी राम के साथ कृष्ण को अपनाते हैं वैसे ही सूरदास कृष्ण के साथ राम को। वैष्णव परंपरा के भक्तों का यह उदार राजमार्ग सगुण धारा में संकीर्णताओं से मुक्ति की चाह का संकेत भी देता है।

8.3 पृष्ठभूमि

यह तथ्य आपके सामने स्पष्टता से आ चुका है कि भक्तिआंदोलन की विशाल एवं समृद्ध पृष्ठभूमि में तुलसीदास का आविर्भाव हुआ। भक्तिआंदोलन की पूरी पृष्ठभूमि साधारण जनता को कष्ट और पीड़ा से मुक्ति दिलाने के लिए संकल्पबद्ध दिखाई देती है। भारतीय चिंताधारा का स्वाभाविक विकास भी यह सिद्ध करता है कि भक्ति वेदों-उपनिषदों के भीतर से मार्ग बनाकर निरंतर प्रवाहित रही है।

भक्तिआंदोलन दक्षिण-भारत में तीसरी शताब्दी से नवीं शताब्दी तक जोरों से चलता रहा। आलवार वैष्णवों तथा नायनमार शैवों ने दक्षिण में इसे निम्न वर्गों से जोड़ दिया। यहाँ पददलित-पिछड़ी जातियों ने संत पैदा किए तथा सगुण-निर्गुण-भक्तिधारा का प्रवाह तेज किया।

दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी में महाराष्ट्र-गुजरात की कष्ट भोगती जनता ने भक्तिआंदोलन को बढ़ाया। ज्ञानेश्वर, तुकाराम, महाराष्ट्र में तथा नरसी मेहता गुजरात में मानवतावादी वाणी बोलते मिलते हैं। इधर उत्तरी भारत में सिद्धों-नाथों की चमत्कारवादी करतूतों को भक्तिआंदोलन ने पनपने न दिया। कहना न होगा कि तन्त्रवाद के विरोध में ही भक्तिआंदोलन की सच्ची शक्ति का पता चलता है।

उत्तरी-भारत में निर्गुण भक्ति-आंदोलन को शोषित जनता का पूरा सहयोग मिला। कबीर, दादू, रज्जव, पीपा, रैदास, सुंदरदास की बानियों का संदेश बड़ा ही सुधारवादी और क्रांतिकारी था। सगुणमत निम्न-वर्ग के साथ उच्च-वर्ग को भी साथ लेकर चला। इसे रामानुजाचार्य से लेकर रामानंद और बल्लभाचार्य से लेकर मध्वाचार्य तक का चिंतन और समर्थन प्राप्त हुआ। फलतः उत्तरी भारत में कृष्ण-भक्ति और राम-भक्ति धाराओं का प्रसार और विकास हुआ। आरंभ में सगुण-मत की विजय कृष्ण-भक्ति के रूप में हुई। इनमें निम्न-वर्ग से भी बहुत से भक्त कवि आए जैसे अष्ट छाप के कवि कृष्णदास अधिकारी निचली जाति से थे। कृष्ण-भक्ति धारा में मीरा ने चैतन्य महाप्रभु के साथ अन्य आचार्यों के विचारों का प्रेम-रस प्रवाहित किया।

सगुण रामभक्ति धारा में रामानंद ने लोकभाषा में लिखने की प्रेरणा देने के साथ जातिवाद विरोधी रुख अपनाया। रामानंद के विचारों का प्रभाव तुलसीदास पर सीधा पड़ा। वे जाति-पाँति विरोधी स्वर तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता का विचार लेकर उठे। तुलसीदास की भक्तिभावना का स्वर सामंतवाद विरोधी पुरातनतावाद विरोधी है यह न भूलना चाहिए। अचानक संस्कृत का प्रभुत्व हिंदी के भक्तिकाव्य में समाप्त हो गया और जनता की वह संस्कृति जिसे पुरोहितवाद ने दबा रखा था– फूलने फलने लगी। 16वीं शताब्दी–शेरशाह और अकबर के शासनकाल में उत्तरी भारत की सामंतवादी व्यवस्था कमजोर हुई। हिंदीभाषी जनता हिन्दू-मुसलमान दोनों एक जाति के रूप में संगठित होने लगी। भक्तिआंदोलन इसी जातीय संगठन का सांस्कृतिक दर्पण है। वर्णाश्रम धर्म के समर्थकों ने तुलसीदास को सताया तुलसी ने कहा "धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जुलहा कहौ कोऊ" यह पुरोहितवाद पर ही सीधा प्रहार था। जो लोग यह समझते हैं कि तुलसीदास शूद्रों पर ब्राह्मणों के प्रभुत्व का समर्थन करते हैं – वे भूल जाते है कि उन्होंने स्वयं इस प्रभुत्व का कटु अनुभव किया था और वे बराबर इस प्रभुत्व को चुनौती देते हैं – "कौन धौं सोमयागी अजामिल अधम कौन गजराज धधौं बाजपेयी" ऐसे ही जो लोग समझते हैं कि तुलसीदास ने इस्लाम से हिन्दू धर्म की रक्षा की वे भी भूल करते हैं। तुलसीदास "मांग के खाइवों मसीद में सोइवो" अर्थात् मांग कर खाने और मस्जिद में सोने की बात साफ कहते हैं। असल बात यह है कि मुसलमान संत भी कट्टर पंथियों के उतना ही खिलाफ था जितना कि भक्तिमार्ग। दोनों एक दूसरे से प्रभावित थे। अतः भक्तिकाव्य या तुलसीदास के काव्य को मुस्लिम आक्रमणों की "प्रतिक्रिया" समझने वाली धारणा गलत है। भक्तिआंदोलन को सम्प्रदायवादी इतिहास दृष्टि से देखने की जरूरत नहीं है। यह संदेश भी तुलसीदास का युग और काव्य दोनों देते हैं।

8.4 तुलसीदास का परिचय

तुलसीदास भारतीय भक्तिआंदोलन के निर्माता और श्रेष्ठ भक्त कवि हैं। आज भी भारतीय समाज

पर उनका इतना गहरा प्रभाव है कि उसकी ठीक-ठाक कल्पना करना कठिन है। उन्होंने लोकप्रचलित रूढ़ियों को समाप्त करने और जनता के जागरण के लिए साहित्य सृजन किया है। तुलसीदास एक ऐसा नाम है जो सम्पूर्ण भारतीय परम्परा के उच्चतम मल्यों का रक्षक है।

8.4.1 रचनाकार व्यक्तित्व

तुलसीदास का रचनाकार व्यक्तित्व भक्तिकाल के कवियों में एकदम विशिष्ट है। वे निर्गुणपंथियों और सगुणमतवाद का समर्थन करने वाली शक्तियों को एक करते हैं। वैष्णवों और शाक्तों को मिलाकर उनका रचनाकार राष्ट्रीय भावात्मक एकता का द्वार खोलता है। तुलसी के रचनाकार व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यही रही है कि भक्ति को उन्होंने जन-जन की सम्पत्ति बना दिया। वे हिंदीभाषी जनता के सबसे बड़े कवि भी इसी अर्थ में हैं। तुलसीदास जैसे रचनाकार के लिए रवीन्द्रनाथ का यह कथन सटीक बैठता है कि एक प्रकार के बड़े कवि वे हैं जिनकी रचना में भीतर से एक सारा देश, एक सारा युग बोलता है इन कवियों की उक्तियाँ देश मात्र और जाति मात्र को मान्य होती हैं उनकी रचना उस बड़े छतनार वृक्ष सी मालूम होती है जो देश के हृदय रूपी भूतल से उत्पन्न होकर उस देश भर को आश्रय रूपी छाया देता हुआ खड़ा हो। (प्राचीन भारत—पृष्ठ 1-2)कहना न होगा कि "रामचरित मानस" इस मानदंड पर एकदम खरा उतरता है। स्मरणीय यह बात भी है कि तुलसीदास मानवीय करुणा के कवि हैं – उनके राम दीनबंधु हैं। वे "आमीर जवन किरात खस" सभी को नामस्मरण से मोक्ष दिलाते हैं। इस रचनाकार व्यक्तित्व में निराशा नहीं है – आस्था विश्वास पूर्ण भक्ति का रक्षाभाव है। यह भक्ति समाज के लिए अफीम नहीं थी – जनसाधारण को जागृत करने का साधन थी। तुलसीदास के रचनाकार व्यक्तित्व की महत्ता वास्तविक सामाजिक संबंधों के चित्रण में है – इन संबंधों का मूल संदेश है – त्याग तथा मानवप्रेम। इनके रचनाकार से यह सीखने की चीज है कि कैसे ज्ञान की सहजता में ढली वाणी जनता के हृदय को गहराई तक प्रभावित करती है। हमारे जातीय संगठन के मार्ग में ऊँच-नीच के भेदभाव, साम्प्रदायिकता आदि अनेक शत्रु हैं। तुलसी का साहित्य हमें उनसे संघर्ष करने की शिक्षा देता है आ. रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है – "यद्यपि स्वामी रामानंद की शिष्य परंपरा के द्वारा देश के बड़े भाग में रामभक्ति की पुष्टि निरंतर होती आ रही थी – पर हिंदी साहित्य के क्षेत्र में रामभक्ति का परमोज्वल प्रकाश विक्रम की 17वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में गोस्वामी तुलसीदास की वाणी द्वारा स्फुरित हुआ। उनकी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा ने भाषाकाव्य की सारी प्रचलित पद्धतियों के बीच अपना चमत्कार दिखाया। सारांश यह है कि रामभक्ति का वह परम विशद साहित्यिक संदर्भ हिंदी भक्त शिरोमणि द्वारा संघटित हुआ जिससे हिंदी साहित्य की प्रौढ़ता के युग का आरंभ हुआ।" (हिंदी साहित्य का इतिहास पृष्ठ 120)

8.4.2 जीवन-परिचय

तुलसीदास का जीवनवृत विवाद के घेरे में घिरा हुआ है। हमें उनके जीवन की कुछ जानकारी बाहरी प्रमाणों जैसे गो. गोकुलदास ज़ी की "दो सौबावन वैष्णवन वार्ता" भक्तमाल पर प्रियादास की टीका तथा जनश्रुतियों – किवंदंतियों से मिलती हैं। कुछ प्रामाणिक जानकारी स्वयं तुलसीदास की कृतियों के भीतर से मिल जाती है। ऐसी कृतियों में "कवितावली" "गीतावली" "रामचरित मानस" तथा "विनयपत्रिका" का विशेष महत्व है। इन्हीं को आधार मानकर उनके जीवन वृत पर हम विचार करेंगे।

तुलसीदास का जन्म प्रायः सन् 1532 ई. (संवत् 1589 वि) में माना जाता है। इनका जन्म कहाँ हुआ था – यह अभी तक अनिश्चित है। कुछ विद्वान राजापुर जिला बांदा उत्तर प्रदेश तथा कुछ विद्वान सोरो, जिला एटा, उ.प्र. को उनका जन्म स्थान मानते हैं। इधर खोजों से पता चला है कि वे राजापुर में पैदा हुए थे। अनुमान से उनके पिता का नाम आत्माराम तथा माँ का नाम हुलसी था। माता के नाम प्रमाण में रहीम का यह दोहा कहा जाता है :

सुरतिय, नरतिय, नागतिय, सबचाहति, असहोय।
गोद लिए हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय।

तुलसीदास ने "कवितावली" में कहा है कि "मात-पिता जगजाइ तज्यों विधि हूँ न लिख्यों, कुछ भाग भलाई" तथा "विनयपत्रिका" का यह कथन "कुटिल कीटज्यों, तज्यो मातु पिता हूँ"। इन कथनों से निष्कर्ष यह निकलता है कि वे अमुक्तमूल अशुभ नक्षत्र में पैदा हुए थे जन्मते ही राम शब्द मुख से निकला "राम बोला नाम हो गुलाम रामसाहि को"। राम बोला बालक को मात-पिता ने त्याग दिया। उन्हें दासी मुनिया ने पाला। पर पाँच वर्ष के बालक को छोड़कर वह भी चल बसी। यह बालक भटकता-भटकता रामभक्त नरहरिदास के आश्रम में पहुँचा। तुलसीदास के गुरु का नाम नरहरिदास है और इन्हीं ने उन्हें शिक्षा-दीक्षा दी। बचपन से ही

रामकथा सुनाई।

मैं पुनि निज गुरुसन सुनी, कथा सौ सूकर खेत।
समुझो नहि तसि बालपन, तब अति रहे उठाअचेत।
तदपि कही गुरु बारहि बारा। समुझि परी कुछ मति अनुसारा।

अपने वैवाहिक जीवन के विषय में भी तुलसी ने स्पष्ट नहीं लिखा। जनश्रुति है कि उनका विवाह रत्नावली से हुआ था।

एक जनश्रुति के अनुसार वे पत्नी से निराश होकर काशी गए और वहाँ परम विद्वान् शेष सनातन जी से वेद, वेदांग, दर्शन, इतिहास-पुराण में प्रवीणता प्राप्त की।

तुलसीदास का बचपन बड़े कष्ट में बीता – "बारे ते लाल विललात द्वार-द्वार दीन" यह संकेत मिलता है।

हनुमान पूजा मध्ययुग की सगुण रामोपासना का अनिवार्य अंग थी। कदाचित तुलसीदास किसी हनुमान मंदिर में रहे भी। काशी, अयोध्या, जगन्नाथपुरी, रामेश्वर, द्वारिका होते हुए बदरिकाश्रम गए। वहाँ से कैलाश और मानसरोवर भी गए। अंत में चित्रकूट आकर बस गए एवं संतसत्संग किया। फिर अयोध्या जाकर "रामचरित मानस" रचना शुरू किया – (संवत् 1631) सन् 1574 ई. में 'मानस की रचना से उन्हें प्रतिष्ठा जीवन काल में ही मिली कि वे वालमीकि के अवतार माने जाने लगे।' नामादास में "भक्तकाल" में कहा" कालि कुटिल जीव निस्तार हित वालमीक तुलसी भयो।" तुलसीदास के जीवन के अंतिम बीस-पचीस वर्ष काशी में व्यतीत हुए और कष्ट में बीते। रोग और महामारी का वर्णन उन्होंने किया है। संभवतः उनका देहांत सन् 1623 ई. (सं 1680) में हुआ किन्तु दिन तथा तिथि विवादग्रस्त है।

8.4.3 रचनाएँ

तुलसीदास के नाम से निम्न लिखित रचनाएँ मिलती हैं :
1) रामलला नहछू 2) रामाज्ञाप्रश्न 3) जानकीमंगल 4) रामचरित मानस 5) पार्वती मंगल 6) गीतावली 7) कृष्ण गीतावली 8) विनय पत्रिका 9) बरबै 10) दोहावली 11) कवितावली 12) हनुमान बाहुक 13) वैराग्य संदीपनी 14) सतसई 15) कुंडलिया रामायण 16) अंकावली 17) बजरंगवाण 18) बजरंग साठिका 19) भरत मिलाप 20) विजय दोहावली 21) वृहस्पतिकांड 22) छंदावली रामायण 23) छप्पय रामायण 24) धर्मराज की गीता 25) ध्रुव रत्नावली 26) गीता भाषा 27) हनुमान स्रोत 28) हनुमान चालीसा 29) हनुमान पंचक 30) ज्ञान दीपिका 31) राममुक्तावली

इनमें से प्रथम बारह रचनाएँ प्रामाणिक रूप से तुलसीदास जी की मानी जा सकती है शेष समस्त रचनाएँ संदिग्ध हैं। इनमें से प्रमुख रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :

रामलला नहछू : राम का नहछू राम-विवाह के अवसर का गीत है। इसमें **40 द्विपदियाँ हैं।** विवाह के अवसर पर आई हुई प्रजाजनों की स्त्रियों के हाव भाव कटाक्ष का इसमें सजीव वर्णन है।

रामाज्ञा प्रश्न : सात सर्गों की इस रचना में 343 दोहे हैं। इसमें पूरी रामकथा कही गई है। इसमें सीता-अवनि (धरती) प्रवेश की कथा भी मिलती है।

पार्वती मंगल : इसमें शिव पार्वती विवाह का वर्णन् है जो "मानस" के शिव पार्वती विवाह से थोड़ा भिन्न है। इस कृति का आधार- 'कालिदास का कुमारसंभव' है। जबकि "मानस" में शिव-पार्वती कथा का आधार "शिव पुराण" है।

गीतावली : यह रामकथा संबंधी पदावली है। यह पदावली कांड क्रम से संकलित है। गीतों में कथा की प्रायः पुनरावृत्ति हुई है। इसकी रचना कदाचित सूरदास के "सूरसागर" के अनुकरण पर हुई है। पर गीति-कला "विनय पत्रिका" जैसी विकसित नहीं है।

विनय पत्रिका : "विनय पत्रिका" के दो पाठ उसकी प्रतियों में मिलते हैं "रामगीतावली" और "विनय पत्रिका"। "रामगीतावली" में 175 पद हैं जबकि "विनय पत्रिका" में 279 पद। "विनय पत्रिका" राम के चरणों में भेजी जाने वाली गीतात्मक अर्जी है। इसमें कवि तुलसी की भावनाओं एवं कला का सहज सौंदर्य मिलता है। "मानस" उनकी साधना का आदर्श है तो "विनय पत्रिका" उनके अपने जीवन की साधना है। मूलतः यह रचना श्रेष्ठ आत्मनिवेदनात्मक साहित्य का रूप है।

कृष्ण गीतावली : इसमें कृष्ण-चरित से संबंधित 61 पद हैं। रचना सूरदास के "सूरसागर" के अनुकरण पर की गई है।

कवितावली : यह कृति कवि के जीवन तथा युग को समझने के लिए महत्वपूर्ण दस्तावेज है। इसमें महामारी, शरीर पीड़ा, बरतोड़ के फोड़े तथा मृत्यु से पहले के कष्ट वर्णन के प्रसंग हैं। इसमें रामकथा कविता-सवैया शैली में वर्णित है। प्रसंग अत्यंत मार्मिक तथा सजीव हैं। "कवितावली"का लंकाकांड युद्ध वर्णन के लिए आदर्श माना जाता है।

रामचरित मानस : लोक जीवन में तुलसी की कीर्ति का विमल आधार दोहा चौपाई शैली में रचित अवधी भाषा की शक्ति से सम्पन्न यही महाकाव्य है। इसकी रचना 1574 ई. में अयोध्या में आरम्भ हुई तथा इसका अंतिम भाग काशी में पूरा हुआ। "सप्त प्रबंध सुभग सोपाना" से स्पष्ट है कि यह सात कांडों का प्रबंधकाव्य है। अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक उपलब्धियों के कारण मध्ययुग का यह अकेला महाकाव्य है जिसने समूचे समाज के दृष्टिकोण को संस्कार देने एवं बदलने का काम किया है। उत्तरी भारत में यह ग्रंथ वाल्मीकि रामायण तथा महाभारत से भी ज्यादा पढ़ा जाता है। इसमें जनता अपने जीवन का प्रतिबिंब पाती है। इस ग्रंथ का प्रतिपाद्य विषय राम को लीलावतारी परमब्रह्म सिद्ध करना और राम भक्ति का प्रसार करना है। इसमें रामकथा की प्राचीन परम्परा का वर्णन है तथा उपदेशात्मक नीतिपरक संवाद हैं। कथा श्रोता-वक्ता जैसे शिव पार्वती आदि के संवाद रूप में चलती है। प्राकृत-अपभ्रंश के काव्यों की कथानक रूढ़ियों की इसमें भरमार है तथा चमत्कारी-अलौकिक तत्व बहुत हैं। संक्षेप में, यह रचना भारतीय परंपरा, संस्कृति एवं जीवन-मूल्यों का आदर्श भण्डार है।

बोध प्रश्न क

1 भक्ति आंदोलन में तुलसीदास के योगदान का पांच पंक्तियों में निरूपण कीजिए।

....

....

....

....

....

2 राम-काव्य परंपरा में तुलसी के स्थान की तीन पंक्तियों में चर्चा कीजिए

....

....

....

3 तुलसीदास के रचनाकार व्यक्तित्व की विशेषताओं पर चार पंक्तियाँ लिखिए—

....

....

....

....

4 तुलसीदास का जन्म कहाँ हुआ था—सही (√) तथा गलत (X) का निशान लगाकर उत्तर दीजिए :
सोरों, राजापुर, अयोध्या

5 तुलसीदास के गुरु का नाम बताइये? सही (√) तथा गलत (X) का निशान लगाकर उत्तर दीजिए :
रामानंद, शेष सनातन, नरहरि दास

6 तुलसीदास के बचपन के नाम पर सही (√) गलत (X) का निशान लगाइये :
रामबोला, रामसेवक, रामकिंकर

7 तुलसीदास की प्रामाणिक रचनाओं के नाम लिखिए :

....

....

....

8 "कवितावली" पर पाँच वाक्यों की टिप्पणी कीजिए–

....

....

....

....

....

8.5 तुलसीदास का भाव-पक्ष

तुलसी के भाव-विधान में शास्त्र-परम्परा और लोक-परम्परा दोनों का सामंजस्य मिलता है। राममय तुलसी में सभी देवी-देवताओं की स्तुति, गुरु महिमा तथा पहले के कवियों की वंदना, वस्तुनिर्देश की प्राचीन पद्धति का अनुसरण मिलता है। ऐसा करने के कारण प्रायः यह भ्रम होता है कि तुलसी पुराणवाद और चरितकाव्य परम्परा की ओर झुक रहे हैं। पर तुलसी उस समय लोक-संस्कृति की ओर झुक रहे होते हैं। वे पुराणवाद तथा चरित काव्य की लोकों का समर्थन कभी नहीं करते हैं। एक रामकथा के भीतर ही तुलसी कभी शिवकथा, कभी नारदकथा आदि अनेक अवांतर कथाएँ लाते रहते हैं जिससे भाव-विधान में कथा की एकरसता टूटती है और विविधता का संचार होता है। कथा को श्रोता वक्ता परंपरा से कहलाकर भी तुलसी नयापन उत्पन्न कर देते हैं। वे कहते हैं–

1) सम्भु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपाकरि उमहि सुनाता।
2) सोई सिव काग भुसुंडिहि दींहां। राम भगति अधिकारी चींहा।
3) तेहिसन जाग बलिक पुनि पावा। तिह पुनि भारद्वाज प्रति गावा।
4) ते श्रोता बकता समसीला। समदरसी जानहि हरिलीला।।

शिव पार्वती को, काकभुशुंडि जी गरुड़ जी को तथा याज्ञवल्क जी ऋषि भारद्वाज जी को कथा सुनाते हैं। जाहिर है कि "मानस" में रामकथा को वक्ता-श्रोता परंपरा से कहा गया है। ज्ञान, भक्ति, निर्गुण, सगुण, उत्साह-करुणा आदि के भावों को वे कलात्मक ढंग से संवादों में ही व्यक्त करते हैं।

"भाव भेद रस भेद अपारा" के जानकार इस कवि को काव्य के विभावन व्यापार की विशेष पकड़ है। तुलसी ने सूर की भांति लोक-संस्कृति के आधार पर ग्रामजीवन के चित्र दिए हैं। सीता से ग्राम वधूटियों की सरस चर्चा, केवट-निषाद का प्रेम यहाँ की सच्ची जन-संस्कृति है। ग्राम वधूटियों के मर्मस्पर्शी दृश्य तुलसी ने "मानस" "कवितावली" "गीतावली" आदि सभी कृतियों में दिए हैं। तुलसी तथा सूर के बाल-वर्णन को पढ़कर वात्सल्य को भाव-कोटि में रखने वाले आचार्य चकित हो सकते हैं और उसे भाव से रस मानने का सीधा प्रस्ताव भी मान सकते हैं। हास्य, वीर, रौद्र, शृंगार सभी रस तुलसी ने अपनी मर्यादावादी वृत्ति से (संयम-संतुलन) ही प्रस्तुत किए हैं। पर शांतरस के वैराग्य भाव में इस कवि का मन नहीं रमता। कारण, शांत का निर्वेद जीवन से पलायन तथा कर्म-सौंदर्य की महिमा को ठुकराने का भाव है। तुलसी को कर्म-सौंदर्य की अवहेलना एक पल भी स्वीकार नहीं है। यही कारण है कि वे शांत को पीछे धकेलकर केन्द्र में भक्ति-रस को लाते हैं। यह भक्ति-रस मानवतावाद की भावभूमि पर फलता-फूलता है। मूल बात ध्यान में रखने की यह है कि तुलसी के भक्ति भाव में लोक-रक्षा, लोक-मंगल का भाव पूरी तरह विद्यमान है। सार-संक्षेप यह कि तुलसीदास के समस्त सृजन का प्रधान रस (अंगी रस) भक्ति रस ही है। इस भक्ति रस में भगवान आलंबन तथा भक्त हृदय आश्रय है और ईश्वर विषयक रति स्थायीभाव।

तुलसी के भावों में मर्यादावाद ने एक प्रकार का नैतिक सौंदर्य बिखेर दिया है। कविता में शृंगार की पवित्रता का चित्र झांक उठता है। विवाह के समय सीता के कंगन में राम का प्रतिबिंब पड़ रहा है। सीता प्रेम भाव में मग्न उस रूपचित्र को देख रही हैं :

यथा :

दूलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुंदर मंदिर माहीं।
गावति गीत सबैमिलि सुंदरि, वेद जुआ, जुरिविप्र पढ़ाहीं।
राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रहीं पल टारति नाहीं।

यहाँ प्रेममय रति भाव स्थायी, राम-सीता आलंबन-आश्रय, राम का रूप प्रतिबिंब उद्दीपन, एकटक तन्मय होकर देखना आदि अनुभव तथा हर्ष, पुलक आदि संचारी भाव के योग से शृंगार रस की पवित्र अभिव्यक्ति हुई है। शृंगार का इतना मर्यादित चित्र हिन्दी में कम ही मिलेगा। भद्दे शृंगार की धारा से अलग तुलसीदास शृंगार की एक अलग पवित्र पहचान बना देते हैं। तुलसीदास मर्यादावादी भावुक कवि हैं। ऐसे कवि की सही पहचान यही है कि वह मनुष्य के हृदय में घुसकर स्थायी रूप से निवास करता है।

प्रेम-करुणा सहानुभूति के भावों का संचार तुलसी की भाव-दक्षता का अनुपम रूप सामने लाती है। राम वनगमन के लिए घर से निकलते हैं—सुकुमारी सीता जी साथ हैं। कठोर धरती पर चलने में असमर्थ सीता को थकान आती है—ओठ सूखने लगते हैं—पसीने से तर हो जातीं हैं। वे बार-बार राम से पूछती हैं—अब कितनी दूर और चलना है। अपनी प्रिया के इस कष्ट एवं थकान को देखकर राम की आँखों से आँसू बहने लगते हैं। यथा—

> पुर तें निकसी रघुबीर बधू, धरि-धरि दए मग में डग ह्वै।
> झलकीं भारी भाल कनी जल की, पुट सुखि गए मधुरा धर वै।
> फिर बझूती है 'चलनों अब केतिक पर्नकुटी करि है कित ह्वै'।
> तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारू चलीं जल च्वै।।

(पुर—गाँव। रघुबीर—वधू सीता। मग—रास्ता। डग द्वै—दो कदम। तु कली जल—पसीना। पुट सूखि—ओठ सूखना। लिय—पाती। लखि आतुरता—कष्टों को देखकर।)

तुलसी के काव्य में भाव प्रसंगों की अद्भुत मार्मिकता को पाकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि "गोस्वामी जी को मनुष्य की अंतः प्रकृति की जितनी परख थी उतनी हिन्दी के और किसी कवि को नहीं। कैसे अवसर पर मनुष्य के हृदय में स्वभावतः कैसे भाव उठते हैं, इसकी वे बहुत सटीक कल्पना करते थे।" (गोस्वामी तुलसीदास पृष्ठ—89)

तुलसीदास जीवनव्यापी भावों की स्थायी भूमि पर खड़े होकर रामकथा के पात्रों का विशेषकर राम, लक्ष्मण, भरत, सीता, रावण, हनुमान, विभीषण आदि का चित्रण करते हैं। चरित्रों के स्वभाव तथा मानसिक वृत्ति पर उनका पूरा ध्यान रहता है। राम में शील, शक्ति एवं सौंदर्य है—तो रावण में शक्ति की प्रचंडता का विस्फोट। लक्ष्मण तथा भरत का भाई-प्रेम, सीता की पति भक्ति, हनुमान की दासभाव की सेवाभक्ति आदि में जीवन के विविध चित्र निहित हैं। सीता-स्वयंवर के अवसर पर राम तथा लक्ष्मण के स्वभाव का पार्थक्य साफ झलक उठता है। लक्ष्मण परशुराम संवाद में दो क्रोधी स्वभाव के चरित्रों का टकराव है—पर राम में विनम्रता, धीरता और ऋषि पूजा का भाव है। भरत की गुण-महिमा रामकथा का सबसे अधिक उजला पक्ष है तुलसी "सब विधि भरत सराहन जोगू" कहते भी हैं। कहना न होगा रामकथा के सभी पात्रों पर दिव्यता का रंग है पर वे सभी मानव आचरण से दूर नहीं है। तुलसी ने ईश्वर के ईश्वरत्व के साथ उनका मानवत्व बराबर दिखाया है। इस जगत को "सियाराममय" समझने वाले तुलसीदास का दृश्य-चित्रण मानव की महिमा का ही संदेश है।

भाव दृश्यों को बिंब रूप (चित्रण) में लाने की कला तुलसी के पास सूर, जायसी, कबीर आदि सभी भक्त कवियों से ज्यादा प्रौढ़ है। उदाहरण के लिए राम की बाल-लीला में भोजन का दृश्य लीजिए। दशरथ भोजन कर रहे हैं—राम किलक कर आते हैं :

> धूसर धूरि भरे तनु आए। भूपति बिहँसि गोद बैठाए।
> भोजन करत चपल चित इत उत अवसरू पाई।
> भागि चले किलकत मुख, दधि ओदन लपटाई।। (मानस)

तुलसीदास ने राम के जीवनमूल्यों का सामंजस्य भारतीय मानव के जीवन में कर दिया है। हर तरह के कष्ट से मुक्ति पाने के लिए वह राम के द्वार पर खड़ा होने लगा। जनता का हृदय ऐसा राममय हो गया कि कोई भी दासता-बर्बरता, तानाशाही, उसे डरा-धमका न सकी। तुलसी के भाव-विधान में भारतीय जीवन का हर कोना आशा-उल्लास से बोल उठा है।

8.5.1 सामंतवाद विरोधी मूल्य

तुलसीदास को जो लोग हिन्दू धर्म का कट्टर समर्थक और इस्लाम का विरोधी समझते हैं—या समझाते हैं—वे तुलसी के काव्य को समझते नहीं हैं। कारण, तुलसीदास के काव्य में मानव-विरोधी मूल्य कहीं नहीं हैं। उनका उद्देश्य हिन्दू-इस्लाम शैव-वैष्णव शाक्त सभी में मानवमूल्यों की भाई चारे की प्रतिष्ठा करने की तमन्ना ही थी। न उन्हें अलगाववाद का जहर

फैलाना था, न ब्राह्मणवाद को सराहना था, न शूद्र और नारी की पराधीनता को बनाये रखने की कोशिश के लिए सिर उठाना था। यदि वे ऐसा करते तो जनता उन्हें "संत" "महात्मा" "भक्तचातक" न कहती। भारतीय जनता के वे दुलारे कवि न होते। जो लोग तुलसीदास की भावधारा या विचारधारा को प्रगति-विरोधी मानते हैं वे "हिन्दी भाषी जनता को तुलसीदास की सांस्कृतिक विरासत से वंचित कर देते हैं।" (डॉ. रामविलास शर्मा–परंपरा का मूल्यांकन पृष्ठ 74)। सोलहवीं शताब्दी में अवध, बंगाल, पंजाब, महाराष्ट्र आदि के संत-साहित्य में एक विराट भक्ति-आंदोलन की बाढ़ आ गई। जनता, वर्ग और धर्म के भेदभाव को छोड़ कर प्रेम-मार्ग पर चल पड़ी। संत पुरोहितों को खुली चुनौती देने लगे। जाहिर है कि पुराना दृढ़ सामंतवाद इस काल में जर्जरित और कमजोर हुआ। तुलसीदास ने सामंतवाद का साथ न दिया वे स्वयं जाति, धर्म, वर्ण, कुल, गोत्र के विरोध में डटकर बोले हैं–यथा–

> धूत कहौ, अवधूत कहौ रजपूत कहौ, जुलहा कहौ कोऊ।
> काहू को बेटी सों बेटा न व्याहव काहू की जाति बिगार न सोऊ।
> तुलसी सरताज गुलाम है राम कौ जाको रूचै सो कहे कुछु ओऊ।
> मांगि के खेबो मसीत को साइबो लेबे को एक न देबे की दोऊ।

इस सवैया का अर्थ तुलसी की सामंतविरोधी मूल्य-चेतना को धूप सा साफ दिखा देता है। कोई मुझे धूर्त कहे, चाहे भिखमंगा कहे, चाहे क्षत्रिय कहे, चाहे जुलाहा कहे, मुझे परवाह नहीं है। न मुझे अपनी लड़की का किसी के लड़के से व्याह ही करना है, मैं किसी भी जाति से संपर्क रखकर उसका बिगाड़ नहीं करता। तुलसी तो राम का दास है–मांगकर खाता है और मौज से मस्जिद में सोता है वह किसी से प्रयोजन नहीं रखता। उसे किसी से लेना-देना नहीं है।

वर्ण, जाति और व्यवस्था के ब्राह्मणवाद को चुनौती देने वाला तुलसी का स्वर सामंतवाद विरोधी है। तुलसी के राम निषाद, कोल, किरात, शबरी सभी को हृदय से लगाते हैं। "रामहि केवल प्रेम पियारा' है, वे रावण की अन्यायी सत्ता को तोड़ते हैं। निचली जाति के लोगों को राम "भरत समभ्राता" बार-बार कहते हैं। तुलसी के काव्य का यह सामंतविरोधी रुख एकदम प्रगतिशील है।

8.5.2 मानवीय सहानुभूति का आधार सामाजिक यथार्थ

अपने समय और समाज का जितना यथार्थ-चित्रण तुलसी ने किया है उतना तत्कालीन अन्य कोई कवि नहीं कर सका। "नहि दरिद्र सम दुःख जगमाही" उनका अनुभव सत्य है। जनता को दरिद्रता, कष्टों का चित्रण वे सजग-भाव से करते हैं यथा "खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी" बड़ी निर्भयता से कुशासन का प्रश्न वे उठाते रहे हैं। फलतः प्रजा को सताने वाले राजा की निंदा वे हजार-हजार जीभों से करते हैं–

"जेहि सुराज प्रिय प्रजा दुःखारी। सो नृप अवश नरक अधिकारी।" आदर्श राज्य का मॉडल वे स्वयं देते हैं। यही रामराज्य है। इसे न भूलना चाहिए।

"नहि दरिद्र कोइ दुखीन दीना। नहि कोई अवुध न लच्छन हीरा।।" डॉ. राम विलास शर्मा ने लिखा है "तुलसीदास का स्वप्न श्रमिक जनता के लिए धरोहर है जिससे प्रेरित होकर वह समाजवाद के लिए मंजिल-दर-मंजिल बढ़ती जायेगी। तुलसी का मानवप्रेम उनकी कविता का स्रोत है। उनके लिए साहित्य न तो सामंतों के मनोरंजन का साधन है, न निरुद्देश्य प्रयोग है। तुलसीदास की स्थापना साहित्य के प्रति सामंती विचारधाराओं से ही लड़ने में मदद नहीं देती, वह पूंजीवादी साहित्य सिद्धांतों से भी लड़ने में मार्ग दर्शन कराती है।" (परम्परा का मूल्यांकन पृष्ठ 83) इस प्रकार तुलसी का मानवीय सहानुभूति वाला भावलोक क्रांतिकारी है तथा जनचेतना को जागृत करने में समर्थ भी। इसी लोकचेतना के कारण वे भारतीय संस्कृति और जनता के प्रतिनिधि कवि हैं। प्रश्न उठता है तुलसी का सामाजिक यथार्थ क्या है? यह सामाजिक यथार्थ है–जर्जर होती सामंती व्यवस्था को तोड़कर लोक-मंगलकारी मूल्यदृष्टि को अपनाना। तुलसी मूलतः मानववादी रचनाकार हैं। उनके राम का क्षात्रधर्म इसी भावना का जीवित संसार है।

8.5.3 समन्वय भावना का लोकविस्तार

तुलसी के संत-स्वभाव का आधार गुण है–मानव प्रेम। इसी प्रवृत्ति से परिचालित होकर उन्होंने शैव, शाक्त, वैष्णव मत के अनुयायियों के बीच बढ़ते हुए विरोध को मिटाने का उपाय किया है। ऊँच-नीच, हिन्दू-मुसलमान में विभाजित समाज को उन्होंने बाँधने तथा एकता लाने का संकल्प किया है। अपने इसी दृष्टिकोण के कारण तुलसी लोकनायक कहलाये हैं। यह भी विद्वानों ने

विशेष कर डॉ. ग्रियर्सन ने कहा "बुद्धदेव के बाद भारत में सबसे बड़े लोक नायक" तुलसीदास हैं। आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने "हिन्दी साहित्य की भूमिका" में कहा है कि "भारत वर्ष का लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके। क्योंकि भारतीय समाज में नाना भांति की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियाँ, साधनाएं, जातियाँ, आचार और विचार-पद्धतियाँ प्रचलित हैं। बुद्धदेव समन्वयकारी थे, गीता में समन्वयकारी चेष्टा है, और तुलसीदास भी समन्वयकारी थे। वे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक विषमताओं-पीड़ाओं के भीतर से स्वयं गुजर चुके थे। फलतः लोक और शास्त्र के इस व्यापक ज्ञान ने उन्हें अभूतपूर्व सफलता दी। उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। लोक और शास्त्र का समन्वय, साहित्य और वैष्णव परंपरा का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृत का समन्वय, निर्गुण एवं सगुण का समन्वय, कथा और तत्वज्ञान का समन्वय, ब्राह्मण और चाण्डाल का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय—रामचरित मानस शुरू से आखिर तक समन्वय का काव्य है। ध्यातव्य है कि इस महान समन्वय के प्रयत्न का आधार उन्होंने रामचरित को बनाया है। वस्तुतः इससे सुंदर चुनाव हो नहीं सकता था।" कृष्ण भक्ति खूब प्रचलित थी पर तुलसीदास मन ही मन मधुर भाव की उपासना-परकीया प्रेम की उपासना पर झल्लाए हुए थे। निर्गुण वैरागियों, अलखवादियों "गोरख जगायो जोग" वालों पर भी उन्हें गुस्सा कम न था पर वे बंधुता का भाव हर कीमत पर लाना चाहते थे। कारण, समन्वय का अर्थ ही है "कुछ झुकना" कुछ दूसरों को झुकने के लिए बाध्य करना, तुलसीदास को ऐसा करना पड़ा है। तुलसी ने शंकर के अद्वैत और रामानुजाचार्य के विशिष्ट द्वैतवाद में समन्वय किया है। "विनय पत्रिका" में तुलसी ने माया का निरूपण शंकर की भांति ही किया है। शिव और राम की एकता स्थापित करते हुए कहा कि जो शिव से शत्रुभाव रखकर राम की भक्ति करता है वह मुझे फूटी आँख नहीं भाता है :

> शिव द्रोही मम दास कहावा। सो जन मेहि सपनेहु नहि भावा।

सीता-पार्वती की पूजा करती हैं—पार्वती सीता को सराहती हैं। एक सीमा के बाद कबीर के राम और तुलसी के राम तत्वतः एक हो जाते हैं। दोनों ही "राम रसायन" छककर पी लेते हैं।

8.6 दार्शनिक विचार

तुलसीदास विशिष्टाद्वैतवादी दार्शनिक कवि हैं। पर उनके ब्रह्म निर्गुण, निराकार, अनादि, विश्वरूप हैं—"व्यापक एक ब्रह्म अविनासी, सत चेतन घन आनंद रासी"। नररूप ब्रह्म राम लीलावतारी हैं। इस राम को तुलसी ने आनंद सिंधु, अमित, अविकार, करुणाधाम आदि कहा है। यह राम निर्गुण होता हुआ भी सगुण साकार है। तुलसी ने जीव को "ईश्वर अंश जीव अविनासी" कहा है। जीव और ईश्वर के बीच माया फंसी है—"भूमिपरत भा ढाबर पानी। जिमि जीवहि माया लपटानी" कहकर ब्रह्म से बिछोह दिखाया है। जीव माया में बंधे मदारी की भांति नाचता है—"सो मायावस परेउ गोसाई। बध्यो कीट मरकट की नाई"। इसी जीव को वे "सेव्य-सेवक भाव" की भक्ति से मुक्ति का मार्ग सुझाते हैं। तुलसी ने जगत को भ्रमात्मक माना है—"जगत सब सपना" की उक्ति यही सिद्ध करती है। संसार की भयंकरता, विषमता की चर्चा भी वे अनेक बार करते हैं। क्योंकि इसी संसार में माया व्याप है :

> व्यापि रहे संसार महुं माया कटक प्रचंड।
> सेनापति कामादि भट, दम्भ कपट पाखंड।।

काम, कपट आदि माया की प्रचंड सेना है यह जीवों को भ्रमित करती है। इस भ्रम से निवारण का मार्ग वे राम-भक्ति को मानते हैं। पर उन्हें ध्यान है कि विद्या माया भक्ति में सृजन तत्व का काम करती है और अविद्या माया नाश। माया रूपी विद्या जीव को ब्रह्म से मिलाती है—और अविद्या माया पतन की ओर लगातार धकेलती है। किन्तु "हरि सेवकहि न व्यापि अविद्या", का सिद्धांत ही उन्हें मान्य है। तुलसी के द्वारा संसार के मिथ्यात्व का प्रतिपादन देखकर कुछ विद्वान उन्हें अद्वैतवादी कहते हैं और जीव तथा ब्रह्म को अंश-अंशी भाव से मानता देखकर तुलसी को विशिष्टाद्वैतवादी भी। ध्यान रहे तुलसी रामानंद की चिंतन-परंपरा के पोषक थे और वे दार्शनिक दृष्टि से विशिष्टाद्वैत को ही अपनाते हैं। रामानुज और रामानंद शंकर के मायावाद का खण्डन करते हैं और "सेव्य-सेवक भाव" को अपनाकर जगत को भी (सिया राम मय) सत्य मान लेते हैं। जाहिर है कि तुलसी शंकर से प्रभावित होने पर भी रामानंद की चिंतन-परंपरा में विशिष्टाद्वैतवाद के समर्थक हैं।

8.7 भक्ति-पद्धति

भक्ति-आंदोलन की अखिल भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना के प्रबल व्याख्याता और रचनाकार भक्त हैं—तुलसीदास। उन्होंने एक ऐसा भक्तिमार्ग निकाला जो ज्ञानमार्ग के दम्भ को तोड़कर सामान्य जनता को शक्ति दे। उन्होंने भक्ति को पंडों-पुरोहितों के एकाधिकार से निकालकर उसके सामाजिक पक्ष का खुलकर विस्तार किया। फिर वह भक्ति आंदोलन जिसमें तुलसी है तुर्कों, पठानों, मुसलमानों के आक्रमण से पहले का है—अतः निराशा उसका मूल भाव नहीं है। यह भक्ति-तत्व करुणा और लोक-मंगल पर केन्द्रित होने के कारण वैष्णव परंपरा की रूढ़िवादी प्रवृत्तियों से मुक्ति का संदेश देता है।

तुलसी राम की भक्ति में चातक को आदर्श रूप में अपनाते हैं—"एक राम घनश्याम हित चातक तुलसीदास"। इस राम भक्ति के भाव में श्रद्धा और विश्वास दोनों का मेल है। वास्तविकता यह है कि दीनता इस भक्ति का मूलाधार है। "मानस" "कवितावली" "विनय पत्रिका" का मूल स्वर दैन्य का है :

राम सो बड़ो है कौन, मोसो कौन छोटो।
~~राम सो खरो है कौन, मोसो कौन छोटो~~।।

तुलसीदास सच्चे अर्थों में दास्य-भक्ति के सिद्धांत में दृढ़ आस्था रखते हैं—

सेव्य-सेवक भाव बिनु, भवन तरिय उरगारि।
भजहु राम पद पंकज, अस सिद्धांत विचारि।।

इस दास्य भक्ति के सिद्धांत में राम सेव्य है और तुलसी सेवक। इसी कारण वे राम से अनेक प्रकार के संबंध मानते हैं—

ब्रह्म तू हौं जीव, तू ठाकुर हौं चेरो।
तात, मातु, गुरु, सखा, तू विधि हितू मेरो।।
तोहि मोहि नाते अनेक मानिए जो भावै।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु चरन सरन पावै।।

भव-पीड़ाओं से जलते संसार में रामनाम तुलसी के लिए शीतल चन्द्रमा है—"राम नाम सोइ सोम" जैसा कथन यही सिद्ध करता भी है। जनता को 'अलख-निरंजन' के चक्कर में डालकर जो योगमार्ग भक्तिमार्ग से हटाता था—उसे तुलसी ललकारते हैं :

हम लखि, लखहि हमार लखि हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहि का लखै नाम-नाम जपु नीच।।

भक्ति के नौ प्रकार माने गए हैं—इसे ही "नवधा भक्ति" नाम दिया गया है। जिसमें श्रवण, कीर्तन, पादसेवन, अर्चना, वंदना, दास्य, सख्य, स्मरण और आत्म निवेदन आते हैं। तुलसी ने नाम, रूप, गुण, लीला, कीर्तन, शील-शक्ति-सौंदर्य वंदना से नवधा-भक्ति का निरूपण किया है। विनय पत्रिका के पदों में आत्मनिवेदन का बहुत ही ऊँचा स्तर है। विनय का एक उदाहरण लीजिए। यहाँ हनुमान जी सीता से विनय कर रहे हैं :

कबहुंक अंब अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि लीजियो, कछु करून-कथा चलाइ।
दीन, सब अंगहीन, छीन, मलीन, अघी अघाइ।

भजन-कीर्तन की भक्ति का भाव देखिए :

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि राम-भगति सुरसरिता, आसकरन ओसकनकी।

भक्त तुलसी के लिए राम का नाम "चारू चिंतामणि" है, "सुरसरिता" है और रामकथा संशयरूपी पंछी को भगाने वाली है। तुलसी की वंदना पद्धति अद्भुत है :

जय-जय सुरनायक, जन सुखदायक प्रणत प्राण भगवंता।
गो-द्विज हितकारी, जै असुरारी, सिंधु सुता प्रियकंता।

नाम-भक्ति की स्थिति तो यह है कि "नाम सकल नामन ते अधिका" है तथा इस नाम की महिमा को स्वयं राम नहीं गा सकते हैं। राम के नाम की महिमा अपार है। नाम जप से अजामिल जैसे पापी तर जाते हैं। जुम्हाई लेने पर भी जो राम का नाम ले लेते हैं वे पाप पुण्य के बंधन से छूट जाते हैं। राम भक्तों के कष्टों के निवारण के लिए ही अवतार धारण करते हैं। भक्तों के लिए ही राम निराकार, निर्गुण रूप से सगुण साकार रूप धारण करते हैं। वे अमंगल को हटाकर मंगल करते हैं।

तुलसी ज्ञान और भक्ति की तुलना में कहते हैं कि ज्ञान से भक्ति श्रेष्ठ है–पर ज्ञानी भक्त और भी अच्छा। इस प्रकार विनय और शरणागति तुलसी की दास्य-भक्ति के स्थायी आधार है। ध्यान रखने की बात यह है कि तुलसी के लिए लोक मंगलकारी भक्ति ही परममूल्य है।

8.7.1 सूर और तुलसी की भक्ति-पद्धति की तुलना

सूर और तुलसी दोनों ही वैष्णव परंपरा के सगुण भक्त हैं। सूर के उपास्य लीला बिहारी कृष्ण हैं और तुलसी के मर्यादा पुरूषोत्तम राम। राम और कृष्ण दोनों ही विष्णु के रूप हैं–एक रूप मर्यादा बांधता है दूसरा बंधनों को तोड़कर स्वछंद बनाता है। सूर के कृष्ण में सौंदर्य की प्रधानता है तुलसी के राम शील-शक्ति सौंदर्य तीनों के ही गुण सागर हैं। कृष्ण की शक्ति मुरली है राम की शक्ति धनुष बाण में है।

सूर की भक्ति में सखाभाव की प्रधानता है–तुलसी की भक्ति में दास्य-भाव तुलसी दास्यभक्ति की प्रधानता में "सेव्य सेवक" सिद्धांत मानते हैं। "विनय पत्रिका" के पदों में दैन्य और विनय का समर्पण भाव है। तुलसी स्पष्ट कहते हैं :

> तू दयालु दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी।
> हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुंज हारी।
> नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो।
> मो समान आरत नहिं, अरतिहर तो सो।

सूर के विनय संबंधी पदों में दैन्य है–पर अधिकांश पदों में सूर कृष्ण के सखा ही हैं। सूर कभी निर्गुण की ओर नहीं जाते हैं। उन्होंने साफ कहा है– जिसके रूप नहीं हैं, गुण नहीं है, आकार नहीं है वह आगम्य है अतः "सब विधि अगम विचाररि ताते सूर अगुण लीला पद गावै"। पर तुलसी निर्गुण-सगुण दोनों समन्वयवाद से बने भक्त हैं। सूर की भक्ति में एकांत तन्यमता है–तुलसी की भक्ति में लोक मंगल की प्रबल भावना। सूर की भक्ति समाज-निरपेक्ष एवं एकांतिक है–पर तुलसी की समाज चेतना जन-जन को कष्टों से उबारने वाली भक्ति में है। सूर की भक्ति पुष्टिमार्ग की रागानुगा भक्ति है, पर तुलसी की भक्ति लोक संग्रह भाव की विशिष्टाद्वैत से समर्पित वैधी या मर्यादाभाव की भक्ति।

बोध प्रश्न ख

1 तुलसी दास के भाव-पक्ष पर दस पंक्तियों में विचार कीजिए–

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2 तुलसी काव्य में सामंत-विरोधी तर्कों पर पाँच पंक्तियाँ लिखिए–

....
....
....

....

....

....

3 तुलसीदास ने समाज का यथार्थ चित्रण किया है–दो पंक्तियों में उत्तर लिखिए।

....

....

4 तुलसी की समन्वय भावना पर सात पंक्तियों में विचार कीजिए–

....

....

....

....

....

....

....

5 तुलसीदास के दार्शनिक मत के नाम पर सही (√) गलत (X) का निशान लगाइये–
अद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद

6 तुलसीदास की भक्ति-पद्धति की विशेषताओं का सात पंक्तियों में विवरण दीजिए–

....

....

....

....

....

....

....

7 सूर और तुलसी की भक्ति-पद्धति में भेद निरूपित कीजिए। उत्तर तीन पंक्तियों का हो।

....

....

....

8.8 अभिव्यंजना शिल्प

तुलसीदास ने अभिव्यंजना-शिल्प की कुशलता का आदर्श प्रस्तुत किया है। अनुभूतियों को सशक्त अभिव्यक्ति देने में उनकी सर्जनात्मकता अद्वितीय है। न तो वे रचना-निपुणता का बनावटी प्रदर्शन करते हैं न शब्द चमत्कारों का झूठा खिलवाड़। भावों विचारों को व्यक्त करने वाली उनकी भाषा में हृदय का पूरा योग है, वाक्य रचना सुव्यवस्थित एवं प्रौढ़ है। अवधी तथा ब्रजभाषा दोनों काव्य-भाषाओं पर उनका समान अधिकार है। प्राचीन काव्य शैलियों के प्रयोग में वे सिद्धहस्त हैं और उनकी प्रबंधपटुता, रचना-कौशल इत्यादि गुणों की शक्ति सराहनीय है। प्रसंगानुकूल काव्य-भाषा ने उनके भावों को लोक-मन में स्थायी रूप से स्थान दिलाया है। आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उनकी कला की विशिष्टताओं पर लिखा है कि "नाना पुराण निगमागम का अभ्यास उन्होंने किया था। और लोकप्रिय साहित्य और साधना की नाड़ी उन्होंने पहचानी थी। पंडितों ने सप्रमाण सिद्ध किया है कि उस युग में प्रचलित ऐसी कोई भी काव्यपद्धति नहीं थी जिस पर उन्होंने अपनी छाप न लगा दी हो। चंद के छप्पय, कबीर के दोहे, सूरदास के पद, जायसी की दोहा-चौपाइयां रीतिकारों के सवैया-कवित, रहीम के बरवै, गाँव वालों के सोहर आदि जितने भी प्रकार की छंद पद्धतियां उन दिनों लोक में प्रसिद्ध थीं, सबको उन्होंने अपनी असाधारण प्रतिभा के बल पर अपने रंग में रंग दिया।" (हिन्दी साहित्य की भूमिका पृष्ठ 119)

8.8.1 काव्य-रूप

तुलसीदास से पूर्व साहित्य क्षेत्र में मुक्तक और प्रबंधकाव्य रूपों के कई प्रयोग प्रचलित थे। तुलसी ने इन काव्यरूपों को अपने ढंग से ग्रहण किया। (1) मुक्तक परंपरा (2) गीतिकाव्य परंपरा (3) प्रबंध परंपरा। मुक्तक काव्य रूपों के अंतर्गत कवितावली, दोहावली, कृष्णा गीतावली आदि रचनाएँ आती हैं। पर इनमें कथा-तत्व खण्डित हैं तथा कवित्त-छप्पय की शैली का प्रयोग है। कवित्त में एक भाव अपनी पूर्णता पाता है। शायद समय-समय पर जो कुछ तुलसीदास ने लिखा होगा उसे पीछे से संग्रह कर दिया गया यही स्फुट पद मुक्तक काव्य हैं। दूसरे इन मुक्तक रचनाओं में "सूरसागर" की भाँति ही कथा के मार्मिक अंशों को ही पदों में कवियों ने ढाला है– यहाँ कथा कहना, कथा में संबंध निर्वाह का ध्यान रखना उनका उद्देश्य नहीं है।

गीतिकाव्य परंपरा की सभी विशेषताओं से युक्त रचना है–विनय पत्रिका। इसमें आत्माभिव्यक्ति, संगीत और भावान्विति तीनों का सफल योग हुआ है। "विनय-पत्रिका" भक्तिरस का अखण्ड सागर है। इसमें भक्ति के साथ शांत की धारा भी प्रवाहित है। जिसमें डुबकी मार कर मन कलुष धो देता है। भक्त मण्डली इसे गाकर भक्ति का अमृत पाती है। इसमें विधि राग-रागनियों का जैसे धना श्री, बसंत, भैरव, मारू आदि का प्रयोग है। कलियुग से त्रस्त तुलसी राम के दरबार में पत्रिका भेजते हैं। सभी देवताओं की वंदना, भरत, लक्ष्मण, सीता से विनय सभी उद्‌गार गीतों में फूट कर निकले हैं। तुलसीदास की प्रबंधकला का सर्वोत्कृष्ट रूप "रामचरित मानस" है। कवि ने "सप्त प्रबंध सुभग सोपाना" तथा "जो प्रबंध बुध नाहि आदर ही" कहकर अपना मत-व्यक्त किया है। तुलसी के इस कथन के बावजूद कि "मानस" प्रबंध काव्य है कुछ सिरफिरे लोग इसे "पुराण काव्य" "चरितकाव्य" कहना चाहते हैं। ध्यान रहे कि भारतीय आचार्यों ने पुराणों को काव्य नहीं कहा। आचार्यों के मत से कोरी कथा कविता नहीं है रमणीय उक्ति, वाक्य या कथा ही कविता के अंतर्गत आती है। हाँ, "मानस" पर पौराणिक-शैली की (वह परंपरा जिसमें पउम चरिउ, महापुराण आदि अपभ्रंश काव्य लिखे गए हैं) गहरी छाप है। तुलसीदास इस शैली को प्रबंध में प्रयुक्त कर लेते हैं–

> आखर-अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबंध अनेक विधाना।

तुलसी साफ कहते रहते हैं कि वे राम की कथा को लेकर एक सुगठित प्रबंधकाव्य रच रहे हैं। इस प्रबंधरचना का उद्देश्य लोकमंगल है। यथा–

> कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहं हित होई।

इस लोकहित दृष्टि तथा राम की लीलादृष्टि के कारण भी "मानस" चरित काव्य नहीं है। "मानस" में गठित कथात्मकता तथा अखंड रसात्मकता दोनों के कारण प्रबंधकला की सफल निर्वाह है। यह प्रबंधकाव्य अपनी काव्यशक्ति एवं लोकदृष्टि के कारण महाकाव्य के सभी प्रतिमानों पर खरा सिद्ध होता है। भक्ति-आंदोलन का सामाजिक-सांस्कृतिक पक्ष "मानस" की राम कथा की "सहज कवित की रति विमल" अर्थात् सहज काव्यात्मकता में उजागर किया गया है। जीवन का समग्र चित्रण धीरोदत्त नायक, महान् उद्देश्य, उदत्त और भव्य शैली, गंभीर रसधारा आदि सभी महाकाव्य के लक्षण "मानस" में मिलते हैं। "रचना-कौशल, प्रबंधपटुता, सहृदयता, इतिवृत की अटूट कड़ी सभी कुछ "मानस" में एक साथ मिल जाते हैं। यहाँ तुलसी प्रबंध और मुक्तक धारा दोनों में समन्वय स्थापित करते दिखाई देते हैं। यह भी स्पष्ट हो जाता है कि भक्तिकाल के सभी कवियों में वे प्रबंधकला तथा मुक्तक रचना के क्षेत्र में सबसे आगे हैं।

8.8.2 काव्यशैलियों का प्रयोग और पालन

तुलसी के सामने कई काव्यशैलियाँ प्रचलित थीं जिनमें पाँच मुख्य थीं–1) वीरगाथा की छप्पय पद्धति 2) विद्यापति एवं सूरदास की गीत पद्धति 3) गंग आदि भाटों की कवित्त-सवैया पद्धति 4) कबीरदास की नीति संबंधी की बानी की दोहा पद्धति जो अपभ्रंश काल से चली आती थीं और 5) ईश्वरदास की दोहा-चौपाई वाली पद्धति।

1) तुलसी की छप्पय-पद्धति की निपुणता देखिए :
   परन चोर चटकन चकोट आदि उर सिर बज्जत
   विकट कटक विद्दरत वीर वादि जिमि गज्जत

   लंगूर लपेटत पटकि पट, जयति राम जय उच्चरत।
   तुलसीदास पवननंदन अटल युद्ध क्रुद्ध कौतुक हरत।

2) विद्यापति और सूरदास की गीत-पद्धति पर "गीतावली" और विनय-पत्रिका लिखी है यथा–

ऐसी मूढ़ता या मन की
परि हरि राम गति सुरसरिता आस करत ओसकन की।

3) गंग और भाटों की कविता-सवैया पद्धति पर "कवितावली" की रचना की है—

1) बालधी बिसाल विकराल ज्वाल जाल मानौ,
लंकलीलिवो को काल रसना पसारी है

2) गोरों गरूर गुमान भरो यह, कौसिक छोटो सो ढोटो है काम

4) नीति-पद्धति पर "राम चरित मानस" तथा "दोहावली" में सूक्तियां भरी पड़ी हैं—

धीरज धर्म मित्र अरू नारी। आपति काल परखिए चारी।

5) दोहा-चौपाई पद्धति पर जायसी ने "पद्मावत" जैसा प्रबंधकाव्य लिखा था। जायसी में ठेठ अवधी भाषा की मिठास है—पर उसी पद्धति पर तुलसी "मानस" लिखते हैं—तो अवधी में संस्कृत की कोमलकांत पदावली का भी मनोहर मिश्रण कर देते हैं—

अमियमूरिमय चूरन चारू। समन सकल भवरूज परिवारू।।

सारांश यह है कि हिन्दी काव्य में सब प्रकार की रचनाशैली के ऊपर गोस्वामी जी ने अपना आसन जमाया है। यह शैलीगत दक्षता और उच्चता किसी अन्य कवि को भक्तिकाल में प्राप्त नहीं हैं। आ. शुक्ल ने लिखा है कि "गोस्वामी जी के प्रादुर्भाव को हिन्दीकाव्य के क्षेत्र में एक चमत्कार समझना चाहिए। हिन्दीकाव्य की शक्ति का प्रसार इनकी रचनाओं से ही पहले-पहल दिखाई पड़ा।" (हि.सा. का इतिहास पृष्ठ 129)।

8.8.3 काव्य-भाषा

हिन्दी के भक्तिकाल में तुलसीदास अकेले ऐसे रचनाकार हैं जिनका अवधी तथा ब्रजी दोनों भाषा पर समानाधिकार है। गोस्वामी जी की संस्कृत इतनी अच्छी है कि जब कभी संस्कृत में लिखते हैं कालिदास की स्मृति ताजा करते हैं। भाषा पर तुलसी के अधिकार को देखते हुए आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है "भाषा की दृष्टि से तुलसी की तुलना हिन्दी के किसी अन्य कवि से नहीं हो सकती। उनकी भाषा में भी एक समन्वय की चेष्टा है। तुलसीदास की भाषा जितनी ही लौकिक है, उतनी ही शास्त्रीय। उसमें संस्कृत का मिश्रण बड़ी चतुरता के साथ किया गया है। जहाँ जैसा विषय भाषा अपने आप उसके अनुकूल हो जाती है। तुलसीदास से पहले किसी ने इतनी मार्जित भाषा का उपयोग नहीं किया था। काव्योपयोगी भाषा लिखने में तो तुलसीदास कमाल करते थे। उनकी विनयपत्रिका में भाषा का जैसा दारदार प्रवाह है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। जहाँ भाषा साधारण और मौलिक होती है वहाँ तुलसीदास की उक्तियाँ तीर की तरह चुभ जाती हैं और जहाँ शास्त्रीय और गंभीर होती है वहाँ पाठक का मन चील की तरह मंडरा कर प्रतिपाद्य सिद्धांत को ग्रहण कर उड़ जाता है।" (हिन्दी साहित्य की भूमिका पृष्ठ 128)।

तुलसी ने अप्रभंश भाषा के कवियों की भांति लोकभाषा में काव्य लिखने का संकल्प किया है। उन्हें ध्यान है कि संस्कृत भाषा तथा काव्य परंपरा के प्रेमी उन्हें दोष देंगे। किन्तु उन्हें विश्वास है कि रामकथा को देशी भाषा में लिखने पर ही जनहित होगा—

भनितिभदेस वस्तु भलि वरनी। रामकथा जगमंगल करनी।

प्राकृत-अपभ्रंश की लोकभाषा परंपरा से उन्हें ताकत मिली थी और उनमें यह विश्वास जन्मा लोक भाषा में ही लिखना चाहिए—

जे प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरि चरित वखाने।

प्राकृत और अपभ्रंश के बुद्धिमान कवियों में स्वयंभु, पुष्पदंत आदि हैं। "मानस" की भाषाशैली पर स्वयंभू का प्रभाव भी दिखाई देता है। स्वयंभू ने "अक्खर मास जलोह मनोहर सु अलंकार छंद मच्छोहर" को लेकर जैसा रूपक बांधा है—वैसा ही रूपक तुलसी "मानस" में बांधते हैं। तुलसी छंद को कमल, भाषा को सुगंध और ध्वनि—वक्रोक्ति को मनोहर मीन कहते हैं। तुलसी की भाषा के लिए आकर्षण का कारण है कि यह न तो संस्कृत जैसी कृत्रिम भाषा है और न दीर्घ समास खण्डों वाली कठिन भाषा। तुलसी की काव्यभाषा में बोलियों का मुक्त समन्वय दिखाई देता है। किन्तु भाषा को खिचड़ी बनाना उनका उद्देश्य नहीं है। वे प्रचलित शब्दों को चुनकर संस्कृत की संज्ञा, सर्वनाम प्रकृति का छौंक लगाकर परंपरागत भाषा को मांजकर चमका देते हैं। लोकोक्ति रही है कि "तुलसी गंग दुवे भये सुकविन के सरदार। इनके काव्यन्ह में मिले भाषा विविध प्रकार"। तुलसी "सुकविन के सरदार" हैं ही इसलिए कि वे भाषा की विविधता में भाव-विविधता की विशिष्टता उत्पन्न कर देते हैं। उनकी इसी शक्ति को देखकर आ. रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक

लिखा है कि "पहली बात तो यह ध्यान देने की है कि 'अवधी' और 'ब्रज' काव्यभाषा की दोनों शाखाओं पर उनका समान और पूर्ण अधिकार था। रामचरितमानस को उन्होंने अवधी में लिखा है जिसमें पूर्वी तथा पछांही (अवधी) दोनों का मेल है। कवितावली, विनय पत्रिका और गीतावली तीनों की भाषा ब्रज है। कवितावली तो ब्रज की चलती भाषा का सुन्दर नमूना है। पार्वती मंगल, जानकी मंगल और रामललान हधू वे तीनों पूरबी अवधी में हैं। भाषा पर ऐसा विस्तृत अधिकार और किस कवि का था। ब्रज के सूर अवधी न लिख सकते थे और न जायसी ब्रज।" (गोस्वामी तुलसीदास पृ. 130)

संस्कृत के तत्सम शब्द तुलसी की भाषा में काफी मिलते हैं। तुलसी ने कुछ पद तो संस्कृत में ही लिखे जैसे "वर्णनामर्थ सघानां रसानां छंद सामपि"। इसके साथ कुछ पदों का निर्माण संस्कृत-हिन्दी की मिश्रित पदावली से किया जैसे विनय पत्रिका में "श्री रामचन्द्र कृपालु भजुमन हरणभव भय दारून?"। ब्रज और अवधी की रचनाओं में पर्याप्त संस्कृत शब्दावली का प्रयोग उन्हें प्रिय है—जैसे "नौमिजनक सुतावंर" का प्रयोग।

तुलसी की काव्य-भाषा में पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं की शब्दसंपदा भी पर्याप्त मात्रा में मिलती है। प्रायः वीर, रौद्र, भयानक रसों के प्रयोग में उक्त भाषाओं के शब्द बहुतायत से आते हैं। इन भाषाओं के द्वित्व शब्द "घट्टा" "चमक्कहि" "दप्पदृष्टि" आदि। "कवितावली" के युद्धवर्णन या "मानस" के युद्धवर्णन के शब्दों का नादसौंदर्य, ओजगुण और भाव-व्यंजना अनुपम है।

तुलसी की समन्वयात्मक प्रकृति ने भारतीय भाषाओं के शब्दों के अतिरिक्त अरबी-फारसी, तुर्की आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों को भी खुलकर ग्रहण किया गया है— जैसे गरूर, गुमान, गरीब निवाज, खसम, जहान, खलक आदि अरबी फारसी-तुर्की के शब्द। कुछ विदेशी शब्दों में देशी प्रत्यय लगाकर वे व्यवहार में लाए हैं—जैसे सरीक से सरीकता "रावरे पिनाक में सरीकता कहां रही"। प्रांतीय और देशज शब्दों के प्रयोग में तो तुलसी माहिर कवि हैं। इन शब्दों में अभिधा-लक्षणा व्यंजना तीनों शब्द शक्तियों का रम्यनिवास है। लोकोक्तियों एवं मुहावरों के प्रयोग में लक्षणाव्यंजना का चमत्कार दमक उठता है—यथा "जानत हों चारिफल चारि ही चनक को" ऐसी चलती मुहावरेदार भाषा है कि अर्थ पाठक के भीतर सीधा समा जाता है—"धोबी कैसों कूकर न घर को न घाट को" या "अपने चनाचबाइ हाथ चाटियत है"। तुलसी की लोकोक्ति मुहावरों से भरी हजारों सूक्तियाँ आज भी शिक्षित-अशिक्षित जनता की जीभ पर रहतीं हैं और लोग बात-बात में कहते मिलेंगे "कोउ नृप होय हमैं का हानी" या "कर्मप्रधान विश्व रचि राखा" आदि। "पर सबसे बड़ी विशेषता गोस्वामी जी की है—भाषा की सफाई और वाक्यरचना की निर्दोषता जो हिन्दी के और किसी कवि को नसीब नहीं है। वे कथ्य को स्पष्ट करने के लिये रूपक बांधते हैं—राम कथा तो भक्त के दोनों हाथों से मिलकर बजने वाली यह ताली है जिससे संशय रूपी पक्षी फौरन उड़ जाता है।

राम कथा सुंदर करतारी। संशय विहग उड़ावनिहारी।

सारांश यह है कि तुलसी के सामने भाषा हाथ जोड़कर चलती है और उनके इशारे पर नाचती है।

8.8.4 छंद-योजना

कविता में छंद का कार्य है—भाव की गति, लय, ताल को सुंदर रूप में ढालकर व्यक्त करना। कवि का स्वभाव ही छंद में प्रकट होता है। इस दृष्टि से हम तुलसी को देखते हैं तो पाते हैं कि अर्थ, के अनुकूल उनकी छंदयोजना बराबर चलती है। "मानस" जैसे प्रबंधकाव्य में दोहा-चौपाई जैसे चिर परिचित छंद ही अधिक हैं पर भावानुकूल रोला, छप्पय आदि भी आते ही रहते हैं। वे सर्गों के बीच प्रसंगानुकूल छंदों का परिवर्तन करते हैं दरअसल, "मानस" की रचना कड़वकबद्ध शैली में हुई है जिस पर अपभ्रंश की छंद योजना का प्रभाव है। "मानस" में चौपाई दोहा, सोरठा, हरिगीतिका, त्रिभंगी और चौपाई जैसे मात्रिक छंद हैं तथा संस्कृत के अनुष्टुम, इन्द्रवज्रा, त्रोटक, भुजंगप्रयात जैसे वर्णिक छंद भी। तुलसी मात्रिक छंदों के प्रयोग में छंद के नियमों का कड़ाई से पालन नहीं करते हैं। जायसी की भांति वे अनेक स्थलों पर अर्द्धालियों को ही पूरी चौपाई मानकर 9, 11, 13 और 15 अर्द्धालियाँ तक रख देते हैं। ऐसा करने का कारण यह है कि तुलसी ने छंदों के व्यवहार सिद्ध प्रयोगों को ही अपनाया है, शास्त्रीय नियमों को नहीं। प्रायः जायसी की तरह पन्द्रह मात्रा की चौपाइयाँ रखी हैं। जबकि चौपाई के प्रत्येक चरण में 16 मात्राओं के साथ जगण, तगण की बात छंदशास्त्र में मिलती है। यही बात दोहा के लिये भी सच है। दोहा में 13 और 11 मात्राएं होती हैं पर तुलसी 13 की जगह 12 मात्राएं ही रख देते हैं यथा—

सुर समूह विनती करि, पहुँचे निज निज धाम।
जग निवास प्रभु प्रकटें, अखिल लोक विश्राम।

ऐसे ही त्रिभंगी छंद में 31 मात्राएँ और अंत में गुरु होना चाहिए पर "मानस" में कहीं-कहीं 29 और कहीं 30 मात्राओं का ही प्रयोग हुआ है। यह मानना सही नहीं है कि तुलसी को दोहा, चौपाई आदि का शास्त्रीय छं नियम पता नहीं रहा होगा। पता है पर शब्द की लय, संगीत, नादसौंदर्य, गति और भाव-व्यंजना पर उनका ध्यान केन्द्रित रहता है। वे छंद-नियम की परवाह नहीं करते हैं। नीति के लिए दोहा, शृंगारिक और आलंकारिक वर्णन के लिए रहीम के बरबै, राम के यशगान के लिए कवित्त सवैया शैली तथा युद्धवर्णन में छप्पय शैली वे अपनाते हैं। "कवितावली" के कवित्त-सवैया जनता के कण्ठहार आज भी हैं तथा "विनय पत्रिका" के पदों की गेयता ने कवि में अद्भुत शक्ति पाई है। उनके वाक्यों में शिथिलता नहीं है। एक-एक शब्द मोती सा दकमता है—भाषा गठी हुई तथा चित्रमय है। आजकल की शब्दावली में कहें तो भाषा बिम्बबहुल है—जो भाव को मूर्त, गोचर एवं निर्दिष्ट रूप में लाती है। यथा— "पीपरपात सरिस मन डोला" अर्थात मन ऐसे डोल गया जैसे थोड़े सी वायु का स्पर्श पाते ही पीपल का पत्ता। तुलसी ने प्रकृति से भाषा के भावसाम्य लिए हैं। उनकी काव्यभाषा में मानव तथा प्रकृति तदाकार हो गयी है।

सारांश यह है कि रामानन्द ने देशी-भाषाओं को काव्यभाषा बनाने की जो पहल की थी उसकी निरवारी हुई छवि कबीर, सूर, जायसी में दिखाई देती है। किन्तु उसकी अनुपम रचनात्मक शक्ति को तुलसीदास ने ही उजागर किया है।

8.8.5 अलंकार-योजना

भारतीय काव्यशास्त्र के विद्वान तुलसी यह अच्छी तरह जानते थे कि अलंकार वाणी की सजावट के लिए ही नहीं होते, वे भावों की अभिव्यक्ति के भी विशेषद्वार हैं। तुलसी अलंकारवादी नहीं थे पर अलंकारों के उपयोग से भलीभांति परिचित थे। उन्होंने अलंकारों का सारा विधान प्रकृत रूप में या सहज रूप में किया है। तुलसी की समस्त अलंकार योजना का उद्देश्य है—"भाव को चित्र रूप में अभिव्यक्ति देना एवं उनके सौंदर्य-प्रभाव में वृद्धि करना, रूप चित्रण तथा वस्तुवर्णन में रमणीयता लाना, अनुभूतियों को मूर्त करना।" उनके काव्य में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टांत, रूपकातिशयोक्ति आदि अलंकारों की प्रधानता है। उन्हें उपमा और रूपक विशेष प्रिय हैं। ध्यान रहे यहां राम एवं सीता की उपमा के लिए कोई उपमान नहीं है—वे स्वयं उपमेय उपमान दोनों हैं—यथा—"सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहिं पटतरिय विदेह कुमारी"। विदेह कुमारी सीता के सामने कवियों की सभी उपमायें जूठी हैं। राम, सीता के सौंदर्य का वर्णन इसलिए भी नहीं कर पाते हैं कि वाणी के पास नेत्र नहीं है—नेत्रों के पास वाणी नहीं है—यथा—"स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी"। मालोपमा अलंकार का एक उदाहरण लीजिए। मालोपमा अलंकार में एक उपमेय के अनेक उपमान होते हैं—यथा —

> कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
> तिमि रघुनाथ निरंतर, प्रिय लागहु मोहि राम।।

कामी व्यक्ति जैसे सुंदरी के लिए, लोभी धन के लिए जैसे ललकता है वैसे ही राम तुम मुझे प्रिय हो। यहां राम-भक्ति में प्रियता के भाव को मालोपमा अलंकार ने बढ़ाया है।

तुलसीदास की आदत है कि वे रूपवर्णन में विशेषकर ध्यान देते हैं—यथा—"ठुमकि चलत राम चन्द्र" जैसे गेय पदों ने लोकहृदय पर आसन जमा लिया है। उनकी अलंकार योजना यह सिद्ध करती है कि तुलसी को शास्त्रपरंपरा का ज्ञान था पर वे लोकपरंपरा को अधिक आदर देते थे।

बोध प्रश्न ग

1 तुलसी के काव्यरूपों पर पाँच पंक्तियाँ लिखिए—

....

....

....

....

....

2 तुलसीदास ने किन पाँच शैलियों को अपनाया है—लिखिए—

....

....

....

....

....

3 तुलसी की काव्य-भाषा पर सात पंक्तियों में विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

4 सही (√) गलत (X) का निशान लगाकर उत्तर दीजिए।

- रामचरितमानस ब्रजी में लिखा गया है।
- रामचरितमानस की भाषा अवधी है
- कवितावली की भाषा अवधी है।
- कवितावली प्रबंधकाव्य है।
- विनय पत्रिका गीतिकाव्य परंपरा की उपलब्धि है।

5 तुलसी की छंदयोजना पर चार पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

6 तुलसीदास के अलंकारों ने इनके काव्य-सौंदर्य को बढ़ाया है यह कहना कहाँ तक उचित है। चार-पंक्तियों में उत्तर लिखिए।

....

....

....

....

8.9 मूल्यांकन

तुलसीदास का मूल्यांकन करते हुए आ. शुक्ल ने उन्हें हिन्दी भाषी जनता का सबसे बड़ा कवि घोषित किया है। "यदि कोई पूछे कि जनता के हृदय पर सबसे अधिक विस्तृत अधिकार रखने वाला हिन्दी का सबसे बड़ा कवि कौन है उसका एकमात्र यही उत्तर हो सकता है कि भारतहृदय भारती कंठ, भक्त चूड़ामणी गोस्वामी तुलसीदास"। (गोस्वामी तुलसीदास पृ. 142) गोस्वामी जी को "भारती हृदय" कहने का अर्थ है—भारतीय लोक चित का वाहक, भारतीय सांस्कृतिक-संवेदन की विशालता का रक्षक और दूसरों के लिए या लोककल्याण के लिए जीने वाला। भारतीय परंपरा, दर्शन और साहित्य का सारवान तत्व ही तुलसी की सृजनात्मकता में आकार ग्रहण कर लेता है। लोकमंगल, लोक-रक्षा, लोक-चिंता की भावना ही उनके भक्त का रूप है। उनके राम दीन-दुःखी को गले लगाने वाले "दीन बंधु" एवं "गरीबनिवाज" है। सूर में भक्ति की तन्मयता है—पर सामाजिक भावना का प्रसार नहीं है। कबीर में भक्त की विनय से ज्यादा सुधारक का अक्खड़पन है। जायसी में पेम की महिमा है—पर तुलसी में सभी प्रकार से समन्वय की विराट चेष्टा है। निश्चय ही वे लोकनायक कहलाने के अधिकारी हैं। हमारी पूरी लोक-जागरण की परंपरा उनके सृजन में साकार रूप धारण करती दिखाई देती है। इसलिए तुलसी को रीतिवादी परंपरा में नहीं कह सकते। "केशव, बिहारी आदि के साथ ऐसे कवि को रखना उनका उपमान करना है"। तुलसी के साथ कबीर तथा सूरदास को ही रखा जा सकता है। भक्ति-आंदोलन के स्तर पर तुलसी से कबीर एवं सूर की गहरी समानता है। इनमें भक्ति वेदों में

बढ़कर है। कबीर एवं तुलसी दोनों ही गनिक-अजामिल गीध को भक्त परंपरा में अपना लेते हैं। लोक मंगल के लिए कबीर और तुलसी दोनों ही गुरु की महिमा, सत्संग महिमा, बुराइयों का खण्डन करते हैं।

जीवन के नाना-भावों, दशाओं, व्यापारों की जितनी व्यापक अभिव्यक्ति तुलसी में मिलती है उतनी न सूर में है, न कबीर में न जायसी में है।

8.10 संदर्भ सहित व्याख्या

आप तुलसीदास के काव्य सृजन की विशेषताओं का ध्यानपूर्वक अध्ययन कर चुके हैं। इस महाकवि के काव्य की व्याख्या किस ढंग से की जानी चाहिए। इसके लिए हम तुलसी काव्य के कुछ अंशों की संदर्भ-प्रसंग सहित व्याख्या प्रस्तुत कर रहे है। साथ ही यहाँ कुछ अंश अभ्यास के लिए भी दिए जा रहे हैं—जिनकी व्याख्या आप स्वयं करेंगे।

1) **एहि-घाट ते थोरिक दूर अहै कटि लौ जलथाह दिखाई हौं जू।**
परसे पग धूरि तरे तरनी, घरनी घर का समझाइ हौं जू।
"तुलसी" अवलंबन और छु, लरिका केहि भांति जिआइ हौं जू।
बर मारिए मोहि बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू।

शब्दार्थ : थोरिक—थोड़ी ही। अहै—(अस्ति) है। लौं—तक। परसे—स्पर्श या छूने से। तरनी—तरणी या नाव। घरनी—गृहिणी, पत्नी। का—क्या। लरिका—बाल-बच्चे। बरू—भले ही।.

संदर्भ : यह पद्य (सवैया) "कवितावली" के "अयोध्याकांड" में से लिया गया है। इसके रचयिता गोस्वामी तुलसीदास जी हैं।

प्रसंग : तुलसीदास ने राम और केवट कथा के संवाद को मार्मिकता से उठाया है। राम वन-गमन के लिए यात्रा कर रहे हैं—वे रास्ते में पढ़ने वाली गंगा जी को नाव से पार करना चाहते हैं किन्तु वन गमन के दौरान एक अद्भुत घटना घट चुकी है कि राम के चरण की धूलि के स्पर्श से गौतम की पत्नी अहिल्या पत्थर से स्त्री हो गई। वनवासियों में फैलकर यह कथा केवट के कान तक पहुँच गई है। राम के पैरों के स्पर्श से उसकी नाव स्त्री न हो जाए यह चिंता केवट को बैचेन किए हैं। इसीलिए वह राम से अपनी मन की बात निर्भय होकर कहता है कि मैं आपके पैरों को धोये बिना नाव पर नहीं चढ़ाऊंगा। क्योंकि आपके चरणों की महिमा से मैं परिचित हो गया हूँ।

व्याख्या : राम से केवट विनय-भाव से कह रहा है कि नाव पर आपको पैर धोए बिना नहीं चढ़ाऊंगा। हाँ, इतना कर सकता हूँ कि इस घाट से कुछ दूर पर गंगा जी उथली है, वहाँ कमर तक ही पानी की गहराई है, मैं आपको उसकी थाह दिए देता हूँ। आप स्वयं ही गंगा जी को घुसकर पार कर लीजिए। नाव से इसलिए नहीं पार ले जा पा रहा हूँ कि आप के पैरों की धूलि के स्पर्श से मेरी नाव तर जाएगी अर्थात् अहिल्या की तरह स्त्री हो जाएगी। यह नाव ही मेरे बाल-बच्चों के पालन-पोषण का एकमात्र सहारा है। जब मेरी घरवाली पूछेगी कि नाव कहां गई तो मैं उसे क्या कहकर समझाऊंगा। नाव नष्ट हो गई तो मेरे बाल-बच्चे भूखों मर जाएंगे। मैं आपको नाव से गंगा पार कराने में लाचार हूँ। आप चाहे इस अवज्ञा के लिए मुझे भले ही मारें-पीटें पर मैं बिना पैर धोए अपनी नाव पर नहीं चढ़ाऊंगा।

विशेष :

1) राम और केवट के इस संवाद से यह पता चलता है कि बनवासी कितनी कठिनाई से जीवन-यापन करते थे मुश्किल से रोटी कमाने के लिए नाव बना पाते थे और वही एकमात्र उनकी जीविका का सहारा थी।
2) केवट निर्भयता से अपने मन की बात राम से कह रहा है। राम उसकी बात को ध्यान से सुन-समझ रहे हैं। प्रजाजन राजा से अपनी व्यथा कहने की स्थिति में थी। यह संकेत भी मिलता है।
3) जनता की पिछड़ी आर्थिक स्थिति का चित्र मिलता है।
4) अहिल्या-गौतमऋषि की समर्पित सुन्दरी पत्नी—जिसके साथ इंद्र ने धोखे से व्यभिचार किया और ऋषि ने क्रोधवश उसे शाप देकर पत्थर बना दिया। अहिल्या के क्षमा मांगने पर ऋषि ने कहा तुम्हें राम के चरणों से ही मुक्ति मिलेगी।
5) इस सवैया छंद में शब्दों का क्रम-विन्यास ऐसा है कि गेयता कि शक्ति अद्भुत रूप में विद्यमान है।

6) रामकथा की ग्रामीण-संवेदना और चेतना का यहां मार्मिक चित्रण हुआ है।
7) पर से पग धूरि, तरे-तरनी, धरनी-धरे में अनुप्रास अलंकार का सहज प्रयोग है। ऐसा ही सहज प्रयोग भाव का उत्कर्ष करते हैं।
8) राम के चरणों के प्रति केवट के मन का भक्तिभाव व्यक्त हुआ है। गांवों-वनों में बुद्धिमान लोग रहते थे उस सांस्कृतिक चेतना को केवट प्रस्तुत कर रहा है।
9) विष्णु के चरणों से गंगा निकली है। वे ही चरण पाने के लिए गंगा बेचैन है। विष्णु के चरणों की शक्ति का वर्णन समस्त वैष्णव-परंपरा में दास्य-भाव से मिलता है।
10) धोरिक, तरनी जैसे शब्दों में ब्रजभाषा की लोकलय का सौंदर्य फूट पड़ा है।

2) कोटि मनोज लजावनि हारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे।।
सुनि सनहेमय मंजुलबानी। सकुची सिय मन महुं मुसुकानी।।
तिन्हहि बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुं सकोच सकुचति वर बरनी
सकुचि सप्रेम बाल मृग नयनी। बोली मधुर बचन पिक बयनी।।
सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लखनु लघु देवल मोरे।।
बहुरि बदन विधु अंचल ढांकी। पिय तन चितहुं भौहं करि बांकी
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेहु तिन्हहिं सियसपननि
भई मुदित सब ग्राम बधूटीं। रकन्ह राय रासि जनु-लूटी।
अति सप्रेम सिय पांय परि बहुविध देहि असीस।
सदा सोहागिनी होहु तुम्हगजब लगि महि अहि सीस।।

शब्दार्थ : कोटि मनोज—करोड़ों कामदेव। सुमुखि—सुंदर मुखवाली। अहि—ये। मंजुल—मनोहर। धरनी—जमीन। बरनी—दुल्हन। बदन—मुख। विधु—चन्द्रमा। खंजन मंजु—खंजन पक्षी की तरह सुंदर आंखें। सयननि—संकेतों से। मुदित—प्रसन्न। बधूटीं—दुल्हनें। राय—राजा। महि—धरती। अहि—शेषनाग।

संदर्भ : प्रस्तुत पद्य खण्ड "रामचरितमानस" के "अयोध्याकांड" में से लिया गया है। इसके रचयिता गोस्वामी तुलसीदास जी हैं।

प्रसंग : तुलसीदास ग्रामीण संस्कृति की संवेदना को व्यक्त करने वाले कवि हैं। राम अयोध्या से वनवासी होकर गाँवों के बीच से जा रहे हैं। राम-सीता और लक्ष्मण की यह वन-यात्रा देखकर ग्रामीण लोग व्यथा में डूबते हैं लेकिन उनके दर्शन उन्हें मोह लेते हैं। बालक, युवा, वृद्ध सभी उन्हें देखने दौड़ते हैं। सुन्दर छवि वाले राम-सीता-लक्ष्मण को जो देखता है देखता ही रह जाता है। इसी अवसर पर गाँव की नवेली दुल्हनें काले रंग के राम के साथ गोरी सीता को देखकर शिष्ट मजाक करती हैं। गाँव की दुल्हनें सीता से पूछतीं हैं कि ये तुम्हारे कौन हैं। लेकिन उनके पूछने की कला पर सीता प्रसन्न हैं।

व्याख्या : गाँव की दुल्हनें सीता से पूछ रहीं है कि हे सुन्दर मुख वाली! मुझे बाताओ कि जिनकी छवि के सामने करोड़ों कामदेव (सौंदर्य के देवता) लज्जित होते हैं—जो कामदेव से भी ज्यादा सुंदर हैं—वे तुम्हारे कौन लगते हैं। उनके इस प्रश्न की बुद्धिमानी का भाव समझकर कि ग्राम वधूटियों ने स्नेहमय सुंदर वाणी में उनके पति का नाम पूछना चाहा है—सीता संकोच में पड़ गई। उनके शिष्ट हास्य को समझते हुए वे स्वयं मुस्करा उठीं। सीता ने राम को देखकर अपना मुख झुका लिया—धरती की ओर देखने लगीं। संकोच में सीता का श्रेष्ठ दुल्हन भाव पड़ गया कि पति का नाम कैसे ले लूं। संकोच से भरी मृग लोचनी सीता ने कोकिल के समान मीठे वचनों में कहा कि सहज सुन्दर गोरे शरीर वाले मेरे देवर लक्ष्मण हैं। उसके बाद उन्होंने अपना चन्द्रमुख अंचल में ढंका-घूंघट निकाला और राम को बांके अनुराग नयनों से भौंहे चढ़ाकर देखा। खंजन पक्षी सी सुंदर आंखों की भाव-भंगिमा से राम को संकेतों से या हाव-भाव से कह दिया कि ये मेरे पति हैं। यह भावस्थिति देखकर ग्राम की वधुएं प्रसन्न हो गई—उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानों गरीबों ने राजा के रत्न भण्डार को लूट लिया हो। उनके आनंद की कोई सीमा न रही। वे सभी प्रेम से सीता के चरणस्पर्श कर उठीं और अनेक प्रकार से उनके जीवन की मंगल कामनाएं करने लगीं कि तुम हमेशा सोहागवती रहो। जब तक शेषनाग इस धरती को धारण किये हुये हैं तुम सुहागिन रहो।

विशेष :
1) गंवई-संवेदना में लोक-संस्कृति का सौंदर्य कवि ने यहाँ व्यक्त किया है।
2) मध्ययुगीन नारियां अपने पति का सम्मान—संकोच के कारण नाम नहीं लेतीं थीं—उस लोक-भाव का संकेत दिया।
3) गाँव के लोक चतुर, बुद्धिमान , परिहास प्रिय और जिंदादिल होते हैं—उस भाव-स्थिति का बिंब (चित्र) प्रस्तुत किया है।

4) गाँव की वधूटियों का प्रसंग तुलसीदास को विशेष प्रिय है। "कवितावली" में इसी प्रसंग पर लिखा है।

सुनि सुंदर बैन सुधारस साने, सयानी है जानकी जानी भली
तिरछे करि नैन दे सैन तिन्हें समुझाय कछु मुस्काय चली।

5) भारतीय मत से सौंदर्य का देवता कामदेव है। रति और प्रीति इसकी दो पत्नियाँ हैं।
6) लोक विश्वास है कि इस धरती को शेषनाग अपने फन पर उठाए हुये है।
7) यहाँ चौपाई तथा दोहा-छंद का प्रयोग हुआ है।
8) "सहज सुभाय सुभग" जैसे प्रयोगों में अनुप्रास तथा "रकन्हराय-रासि जनु लूटी" में उत्प्रेक्षा अलंकार के प्रयोग से भाव के प्रभाव की वृद्धि की है।
9) खंजन पक्षी की आँखें परंपरागत कवि प्रसिद्धि में सबसे मनोहर मानी जातीं हैं। तुलसीदास ने "बालमृग लोचिनि" "पिकवयनी" आदि में परंपरागत उपमानों से नया अर्थ चमत्कार पैदा किया है।
10) नारी के लज्जाजनक अनुभावों की "विलोकति धरनी" आदि से सहज अभिव्यक्ति दी है।
11) ग्राम की सांस्कृति संवेदना में शिष्टाचार पूर्ण संवाद की कला का परिष्कृत रूप मिलता है। यह तथ्य भी सीता तथा गाँव की वधुओं की बातचीत से उजागर किया गया है।
12) तुलसी का परिष्कृत सौंदर्य बोध-मर्यादा से शोभित है, यहाँ यह प्रमाण भी मिलता है।
13) अवधी-भाषा की अभिव्यंजना का सौंदर्य "लजावनि" "कहहु" "आहि" जैसे शब्दों से खिल उठा है। लोकभाषा की अभिव्यक्ति क्षमता का यहाँ रमणीय रूप व्यक्त हुआ है।

3) **तन की दुति स्याम सरोरूह लोचन कंज की मंजुलताई हरैं।**
अति सुंदर सोहत धूरि भरे, छवि भूरि आनंग की दूरि करैं।
दमकैं दतियाँ दुति-दामिनि ज्यों, किलकैं कित बाल-विनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा, तुलसी मन मंदिर में बिहरैं।।

शब्दार्थ : दुति –द्युति, आभा। सरोरूह–नीलकमल। कंज–कमल। मंजुलताई–सुंदरता। सोहत–शोभित। आनंग–कामदेव। दतियाँ–छोटे बच्चे के दांत। कल–सुंदर। बिहरैं–निवास करें।

संदर्भ : प्रस्तुत पद्य "कवितावली" के "बालकांड" में से लिया गया है। इसके रचयिता तुलसीदास जी हैं।

प्रसंग : तुलसीदास ने बाल-लीला का वर्णन सूरदास की भांति ही किया है। उन पर सूर का प्रभाव बाल-वर्णन पर स्पष्ट झलकता है। दशरथ के चार पुत्र राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न तुलसी के मन-मंदिर में निवास करते हैं। बालकों की सहज क्रीड़ाओं का चित्रण ही इस सवैया में तुलसी कर रहे हैं।

व्याख्या : रामचन्द्र जी के शरीर की मनोहर कांति नीलकमल की भांति प्रतीत होती है। नेत्रों की अपूर्व शोभा के आगे कमलों की सुंदरता फीकी दिखाई देती है। धूल भरे, खेलते स्याम बहुत ही सुंदर लगते हैं। उनके रूप-सौंदर्य की यह अपार शोभा सौंदर्य के देवता कामदेव के रूप को भी मात करती है। जब वे हंसते हैं तब उनके छोटे-छोटे दांतों की ज्योति दामिनी या बादलों में चमकने वाली बिजली की भांति दमकती है। किलकारी भरते हुए इन बालकों का बाल-विनोद कानों को सुखद है। राजा दशरथ के ऐसे सुंदर चारों बालक तुलसीदास के मन रूपी मंदिर में बिहार करें या बिहार करते हैं।

विशेष :
1) यह वात्सल्य-रस का अत्यंत ललित सवैया है।
2) सूरदास तथा रसखान ने बाल-सौंदर्य–वर्णन में "धूल भरे अति शोधित स्यामजू?" तथा "शोभित कर नवनीत लिए" में इसी भाव भूमि के बिंब प्रस्तुत किए हैं।
3) तुलसी लोक-सौंदर्य के कवि हैं–यह बाल-चित्रण इस तथ्य की पुष्टि करता है।
4) यहाँ बाल-ब्रह्म की उपासना का वैष्णवपक्ष भी कवि ने उजागर किया है।
5) ब्रजभाषा कविता की ललित शब्दावली जैसे "सरोरूह" आदि शब्दों का सौंदर्य प्रस्तुत किया है।

अब आप संदर्भ-प्रसंग सहित व्याख्या करना सीख चुके हैं। आपके अभ्यास के लिए "विनय पत्रिका" का एक प्रसिद्ध पद नीचे दिया जा रहा है। कहा जाता है कि यह पद तुलसीदास ने मीरां के पत्र के उत्तर में लिखा था।

4) जाके प्रिय न राम वैदेही।
सो छाँड़िए कोटि बैरी सम जदपि परम सनेही।
तज्यो पिता प्रहलाद विभीषण बंधु भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यों कंत ब्रज बनतनि भये जग मंगलकारी।
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लों।
अंजन कहा आँखि तेहि फूटे बहुतक कहौं कहां लों।
तुलसी सो सब भांति परम हित पूज्य प्राण ते प्यारो।
जासों होय सनेह राम पद ये तो मतो हमारो।

शब्दार्थ : सो–उसे। छडिए–त्याग दीजिए। तज्यो–छोड़ दिया। नाते–संबंध। सुहृद–मित्र सुसेव्य–स्वामी।

संदर्भ :

....

....

प्रसंग :

....

....

....

....

व्याख्या :

....

....

....

....

....

विशेष :

....

....

....

....

....

8.11 सारांश

इस इकाई में हमने सीखा है कि रामकाव्य परंपरा में तुलसीदास का स्थान सबसे ऊँचा है। उन्होंने राम को एक लोकनायक के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए भारतीय जनता को सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना के मूल्य दिए है। भक्ति आंदोलन में उनकी भूमिका ने लोक-मंगल की चेतना को दृढ़ किया है। आपने तुलसीदास के जीवन-परिचय तथा कृतियों से साक्षात्कार करते हुए पाया है कि वे संत-परंपरा की उपलब्धि हैं। तुलसीदास का समन्वयवाद एक विराट भूमिका पर खड़ा हुआ था जिसमें भक्ति एवं ज्ञान, ब्राह्मण एवं शूद्र, वैष्णव एवं शाक्त-शैव, निर्गुण एवं सगुण का समन्वय हुआ है। उनके भाव-पक्ष का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है–वे चरित्रों, प्राकृतिक दृश्यों तथा रसों की व्यंजना में अत्यंत सिद्धहस्त कवि हैं।

तुलसी का काव्य राम के माध्यम से उन आशाओं का केन्द्र है जिनसे मानव का विकास एवं भाव-परिष्कार होता है। राम-कथा को काव्य-विषय बनाते समय उन्होंने वेदों-पुराणों की बताई हुई रूपरेखा में काफी परिवर्तन किया है। उनका उद्देश्य भिन्न मत या विचार वालों को राम की भक्ति के आधार पर एक करना है। निर्गुण-सगुण वालों को वे नाम-महिमा के आधार पर एक

करते हैं तथा वैष्णवों एवं शैवों को शिव एवं राम का प्रेमी बनाकर। तुलसी का काव्य-सामंतवाद-विरोधी स्वर लेकर आया है। उनकी भक्ति में मानववाद की प्रधानता है। वे मानते हैं कि—मानव के कर्म-सौंदर्य की महिमा से श्रेष्ठ कुछ नहीं है—उनका काव्य मानों इसी तथ्य का सजीव भाष्य है। उनका दर्शन विशिष्टाद्वैतवाद मानव सौंदर्य की प्रेरणा देता है तथा उनका लीलावाद-अवतारवाद भी ईश्वर के मानवत्व को सिद्ध करता है। उन्होंने दीन-हीन के कष्टों का चित्रण करने के लिए लोक-भाषाओं के भीतर से अपने काव्य-शिल्प को विकसित किया है।

तुलसी कवि हैं, भक्त हैं, लीलागायक हैं, लोक और शास्त्र की परंपराओं का सही उपयोग करने वाले हिन्दी भाषी जनता के सबसे बड़े कवि हैं।

8.12 शब्दावली

भक्ति : ईश्वर में परम अनुराग का भाव।

विभाव : रस के कारण को विभाव कहते हैं। विभाव के दो भेद होते हैं आलंबन विभाव और उद्दीपन विभाव। आलंबन विभाव के दो भेद फिर किए गए हैं। आश्रय और आलंबन। जिसके हृदय में भाव उत्पन्न होता है—आश्रय कहलाता है और जिसको या जिस आधार से उत्पन्न होता है—आलंबन कहलाता है।

अनुभाव : आश्रय के शारीरिक-मानसिक भावों को अनुभाव कहते हैं।

प्रबंध-पटुता : अखण्ड कथात्मकता तथा अखंड रसात्मकता के निर्वाह से काव्य में प्रबंध-पटुता पैदा होती है।

समन्वय : तुलसी के संदर्भ में इसका अर्थ है लोक और शास्त्र का समाहार या मेल-मिलाप।

दास्य-भाव : ईश्वर को स्वामी मानते हुए दास-भाव की भक्ति। इसमें आत्म निवेदन, आत्म-समर्पण का स्वर प्रबल रहता है।

क्षात्र-धर्म का सौंदर्य : राम के चरित्र में विद्यमान लोक-मंगल की भावना, परोपकार के लिए धनुष-बाण, धारण करने वाले प्रभु की छवि।

निगम : वेदों से चलने वाली परंपरा, कर्म कांड की प्रधानता से भरा मार्ग।

आगम : लोक-परंपरा, जिनमें शास्त्र के प्रति विरोध रहता है।

8.13 उपयोगी पुस्तकें

शुक्ल रामचन्द्र, *गोस्वामी तुलसीदास*, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
त्रिपाठी रामनरेश, *तुलसीदास और उनका काव्य*, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली
द्विवेदी हजारी प्रसाद, *हिन्दी साहित्य की भूमिका*, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
चतुर्वेदी रामस्वरूप, *मध्ययुगीन हिन्दी काव्यभाषा*, लोक भारती, इलाहाबाद
शर्मा रामविलास, *परंपरा का मूल्यांकन*, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

8.14 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्नों के उत्तर क

1 देखिए भाग—8.3
2 देखिए — रामकाव्य परंपरा
3 देखिए—उपभाग 8.4.1
4 देखिए—उपभाग 8.4.2
5 देखिए—उपभाग 8.4.2
6 देखिए—उपभाग 8.4.2
7 देखिए—उपभाग 8.4.3
8 देखिए—उपभाग 8.4.3

बोध प्रश्नों के उत्तर ख

1 तुलसी का भावपक्ष देखिए भाग – 8.5
2 देखिए – उपभाग 8.5.1
3 देखिए – उपभाग 8.5.2
4 देखिए – उपभाग समन्वय भावना
5 देखिए दार्शनिक विचार–उपभाग 8.6
6 देखिए – भाग भक्ति पद्धति
7 देखिए – उपभाग 8.7.1

बोध प्रश्नों के उत्तर ग

1 देखिए – उपभाग 8.8.1
2 देखिए – उपभाग 8.8.2
3 देखिए – उपभाग 8.8.3
4 देखिए – उपभाग 8.8.3
5 देखिए – उपभाग 8.8.4
6 देखिए – उपभाग 8.8.5

इकाई 9 रहीम का काव्य

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 रहीम : जीवन वृत्त
9.3 रचनाकार व्यक्तित्व
9.4 रहीम और उनकी रचनाएँ
9.5 नीति काव्य परम्परा और रहीम
9.6 भाव पक्ष
9.6.1 अनुभूति प्रक्रिया और लोक जीवन की अभिव्यक्ति
9.6.2 नीति
9.6.3 भक्ति
9.6.4 शृंगार तथा अन्य रस
9.6.5 प्रकृति
9.7 अभिव्यक्ति कौशल
9.7.1 काव्य भाषा तथा शैली
9.7.2 मुहावरे और लोकोक्तियां
9.7.3 कल्पना, ध्वनि और शब्द शक्ति
9.7.4 अलंकार तथा छंद
9.8 आदान-प्रदान
9.9 मूल्यांकन
9.10 संदर्भ सहित व्याख्या
9.11 सारांश
9.12 शब्दावली
9.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें
9.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- रहीम के व्यक्तित्व, जीवन और युग को जान सकेंगे;
- रहीम की काव्य-कृतियों तथा उनकी विषय-वस्तु का अध्ययन कर सकेंगे;
- नीति काव्य परम्परा तथा रहीम के योगदान को जान सकेंगे;
- रहीम के काव्य के विविध रूप समझा सकेंगे, और
- रहीम काव्य के अभिव्यक्ति कौशल का निरूपण कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

अकबर के दरबार के नौ रत्नों में से एक प्रमुख रत्न थे रहीम। इस इकाई में आप हिन्दी को राज-सम्मान दिलाने वाले तथा हिन्दी-सेवी कवियों में उच्चतम स्थान रखने वाले अब्दुर्रहीम खानखाना के जीवन, व्यक्तित्व, युग तथा काव्य का अध्ययन करेंगे। नीति काव्य परम्परा में रहीम अद्वितीय कवि माने जाते हैं। परन्तु नीति के साथ-साथ भक्ति, शृंगार तथा प्रकृति का भी सहज, सरल तथा प्रभावी वर्णन करने वाले जन कवि—रहीम चतुर्मुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। कवि, विद्वान, कला पारखी तथा बहुभाषाविद् रहीम की इसी काव्य प्रतिभा के अनुभूति एवं अभिव्यक्ति पक्ष का अनुशीलन इस इकाई में किया गया है।

9.2 रहीम : जीवन वृत्त

रहीम का जन्म गुरुवार 17 दिसम्बर, सन् 1556 ई. को लाहौर में हुआ था। रहीम के पिता का नाम था अतालीक बैरमखाँ खानखाना जो कि साम्राज्य के भक्त तथा हुमायूँ के अन्तरंग मित्र थे।

स्वभाव से कवि, कर्म से योद्धा तथा बुद्धि से दूरदर्शी बैरमखाँ ने ही बाबर के मुगल साम्राज्य को विस्तृत करते हुए दृढ़ता प्रदान की थी। बादशाह हुमायूँ की मृत्यु के समय जलालुद्दीन अकबर की आयु लगभग तेरह-चौदह वर्ष थी। ऐसी स्थिति में रहीम के पिता बैरमखाँ चार वर्ष तक बादशाह अकबर के शिक्षक (अतालीक) रहे। स्पष्ट है कि हुमायूँ की मृत्यु के बाद बैरमखाँ ने ही अपनी बुद्धि, विवेक, दूरदर्शिता, राजनीतिक निपुणता तथा शौर्य से कुछ काल तक अप्रत्यक्ष रूप से भारत का शासन चलाया तथा अकबर को एक आदर्श शासक के रूप तक पहुँचाया। कहा जाता है कि बैरमखाँ की बहुत-सी रानियाँ थी किन्तु किसी से भी संतान न होने के कारण उन्होंने साठ वर्ष की अवस्था में अपने मित्र हुमायूँ की इच्छा से विवाह किया। बैरमखाँ ने यह विवाह जमीदार जमालखाँ मेवाती की सुन्दरी एवं गुणवती कन्या सुल्ताना बेगम से किया और यही सुल्ताना बेगम रहीम की माँ बनी, जिन्होंने लाहौर में उन्हें जन्म दिया। रहीम के पिता गुण सम्पन्न व्यक्ति थे उनके ही गुण रहीम को विरासत में मिले थे। पिता बैरमखाँ द्वारा दिया गया "अब्दुल रहीम" नाम धीरे-धीरे अब्दुर्रहीम बन गया तथा कविता में आकर यह 'रहीम' या 'रहिमन' के रूप में प्रयुक्त होने लगा। राजाधिराज या राजाओं के राजा को "खानखाना" कहा जाता था और रहीम के पिता बैरमखाँ को यह उपाधि अपने शौर्य प्रदर्शन के कारण प्राप्त हुई थी। इसी शौर्य प्रदर्शन के कारण यह उपाधि आगे चलकर रहीम को भी दी गई। इसी प्रकार इनके नाम से पहले 'मिर्ज़ा' तथा 'नवाब' शब्द भी जोड़े जाते रहे हैं किंतु प्रचलन में "रहीम" ही अधिक रहा है।

रहीम का लालन-पालन बहुत लाड़-प्यार से किया गया। किन्तु लगभग चार वर्ष बाद 31 जनवरी सन् 1560 को अफगानों द्वारा पिता बैरमखाँ की हत्या कर दी गई और फिर उन्हें बैरमखाँ के स्वामिभक्त सरदार द्वारा अकबर के दरबार में पहुँचा दिया गया। यहीं इस होनहार बालक का पालन पोषण हुआ। अकबर ने इनकी माता से विवाह कर लिया तथा इन्हें पुत्र की तरह पाला। बादशाह अकबर इनकी शिक्षा-दीक्षा का पूरा ध्यान रखते थे। यहीं रहीम ने अरबी, फारसी तथा तुर्की भाषाओं का ज्ञान हासिल किया। रहीम की भाषाओं में इन तीनों भाषाओं का कौशल तथा बचपन में पढ़ी अकबर की राष्ट्रीय धर्म-नीति और राजनीति की गहरी छाप देखने को मिलती है। रहीम को संस्कृत तथा हिन्दी का भी बहुत अच्छा ज्ञान था। उनमें भाषाओं को जानने की जिज्ञासा प्रबल थी, किन्तु हिन्दी के प्रति अपरिमेय स्नेह था। यह भी कहा जाता है कि रहीम विश्व की अनेक प्रसिद्ध भाषाओं में बातचीत कर सकते थे।

रहीम का विवाह बैरमखाँ के विरोधी मिर्ज़ा अजीज कोका की बहन माहबानू से सम्पन्न कराके अकबर ने लम्बे समय की शत्रुता समाप्त करा दी। इसी बेगम से उन्हें तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ हुईं। दुर्भाग्य यह रहा कि एक जाना बेगम को छोड़कर शेष सभी बच्चे उनके सामने ही चल बसे।

कुशाग्रबुद्धि रहीम अकबर के विश्वासपात्र सेनापति थे। उन्होंने कई विद्रोह कुचले तथा अपनी दक्षता सिद्ध की। वे सूबेदार, मीरअर्ज़ (जो जनता की शिकायतें तथा अर्जियाँ सम्राट तक पहुँचा कर शाही निर्णय से जनता को अवगत कराता है) तथा अतावेगी (शाही घोड़ों की व्यवस्था तथा अस्तबल की देखरेख करने वाला खास विश्वासपात्र) के पदों पर भी रहे। पिता बैरमखाँ की उपाधि "खानखाना" उन्हें मिली। मुगल दरबार का उच्चतम पद 'वकील-मुतलक़' उन्हें मिला। 'तुज़के बाबरी' का अनुवाद भी उन्होंने किया।

अकबर की मृत्यु के बाद जहाँगीर शासन पर बैठा और उसने रहीम को दस लाख की राशि, बारह हज़ार सवार तथा सर्वोत्तम घोड़ा दिया। नूरजहाँ की राजनीति के शिकार रहीम भी हुए, परिणामतः शाहजहाँ का पक्ष लेने पर इन्हें जहाँगीर ने राजद्रोही घोषित किया परन्तु अंततः जहाँगीर की गलतफहमी दूर हुई। रहीम पुनः सम्मानित हुए।

जीवन की दौड़ धूप, चार वीर पुत्रों की मृत्यु-पीड़ा, मासूम पौत्रों की हत्या जैसी घटनाओं ने रहीम को अस्वस्थ बना दिया। परिणामतः दिल्ली आकर सन् 1627 ई. में उनकी जीवन-यात्रा समाप्त हो गई। गंग इस कवि की दानवीरता पर लिखते हैं :

सीखे कहाँ नवाबजू ऐसी देनी देन।
ज्यों ज्यों कर ऊँचो करो त्यों त्यों नीचे नैन।।

स्पष्ट है कि सहिष्णुता, अनुभव सम्पन्नता तथा दूरदर्शिता से साहित्य और जन जीवन में रस घोलने वाला यह कूटनीतिज्ञ तथा सरल व्यक्ति अपने आप में एक ही था।

9.3 रचनाकार व्यक्तित्व

हिन्दू परम्पराओं, रीति रिवाजों, भारतीय संस्कृति तथा साहित्य के प्रति गहरी आस्था रखने वाले मुसलमान कवि रहीम की निष्ठा ने हिन्दी समाज को जिस रूप में सिंचित किया है, उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। रहीम, कला के सच्चे पारखी और कवियों के कल्पतरु थे। व्यक्तित्व की दृढ़ता उनके सेनापतित्व की सूचक है तो स्वभाव की कोमलता उनके कवि रूप की। व्यवहार कुशल रहीम का व्यक्तित्व मानवीय गुणों से तो ओतप्रोत था ही, दायित्वों के निर्वाह में भी खरा उतरता था। युद्धवीर तथा दानवीर रहीम दूरदर्शी भी थे और कूटनीतिज्ञ दाँव पेचों में सिद्धहस्त भी। लोक जीवन से क्रियात्मक अनुभव बटोर कर काव्य-पाठकों के समक्ष रत्नों की तरह बिखेर देने वाला यह महान व्यक्ति विविध भाषाओं का प्रकांड ज्ञाता भी था। यही कारण है कि अनुभूति तथा अभिव्यक्ति में वह भक्त कवि सूर, तुलसी तथा रसखान के समकक्ष आ खड़ा होता है। अतः कह सकते हैं कि सेनापति, राजा, भक्त, कवि, भाषाविद्, ज्योतिष, दानवीर, समाज सुधारक तथा नीतिकार की भूमिकाएँ एक साथ निभाने वाला यह रचनाकार अपनी एक विशिष्ट पहचान रखता है।

9.4 रहीम और उनकी रचनाएँ

रहीम के नाम से उपलब्ध होने वाली संपूर्ण प्रकाशित कृतियाँ कुल छह हैं— **दोहावली, नगरशोभा, बरवै नायिका भेद, भक्तिपरक बरवै, शृंगार-सोरठा तथा मदनाष्टक।** इनके अतिरिक्त कुछ फुटकर पद तथा कुछ संस्कृत के श्लोक जिन्हें 'खेट कौतुक जातकम्' के नाम से भी जाना जाता है, उपलब्ध हैं। इनकी 'वाकयात-बाबरी' तथा 'फारसी दीवान' नामक दो अन्य कृतियों की चर्चा भी मिलती है किंतु ये उपलब्ध नहीं हैं।

इन कृतियों में "दोहावली" 299 दोहों वाली नीति काव्य की प्रसिद्ध कृति है जिसमें 'रहीम' और 'रहिमन' के नाम की छाप मिलती है। "नगरशोभा" शृंगार की कृति है जिसमें 142 दोहे हैं। इसमें नायिकाओं का वर्ण और व्यवसाय के आधार पर वर्णन है। 119 छंदों की प्रसिद्ध कृति "बरवै नायिका भेद" रहीम की खास पहचान बनाती है। बरवै छंद के जनक रहीम ने इसमें नायिका-भेद की परम्परा का निर्वाह किया है। "भक्तिपरक बरवै" में गणेश, सूर्य, महादेव, कृष्ण, राम तथा हनुमान आदि की वन्दना, शृंगार वर्णन, ऋतु वर्णन, भक्ति, भ्रमरगीत प्रसंग तथा वैराग्य आदि से संबंधित 105 छंद हैं। इसकी भाषा भी प्रौढ़ और कलात्मक है। 'शृंगार सोरठा' के नाम से केवल छह छंद उपलब्ध हैं जो "रहीम ग्रन्थावली" में प्रकाशित हैं। जनभाषा, फारसी तथा अन्य देशी भाषाओं के मिश्रण से बनने वाली उर्दू या रेखता भाषा में कवि ने "मदनाष्टक" लिखा। 'मालिनी' छंद में लिखी इस कृति में आठ छंद हैं जिसमें मुरली प्रभाव, गोपी प्रेम, कृष्ण रूप माधुरी तथा गोपी-कृष्ण मिलन की आतुरता आदि का मार्मिक वर्णन है। इसी प्रकार कुछ यत्र-तत्र संग्रहों में मिलने वाले फुटकर छंद जिनमें सवैया, घनाक्षरी, बरवै, मालिनी, कवित्त आदि भी उपलब्ध हैं। ब्रजभाषा पर कवि का पूरा अधिकार था ही, अवधी में भी अच्छा दखल था। मधुर भावों की अभिव्यक्ति करने वाले इस बहुभाषा विद् ने फारसी मिश्रित संस्कृत के भी कुछ श्लोक लिखे जिनमें ग्रहों, नक्षत्रों तथा ज्योतिष विज्ञान आदि का विवेचन भी मिलता है। ये समग्र कृतियाँ तथा तुर्क में जन्में इस मुस्लिम भक्त कवि की चेतना, भावना का पुण्य समर्पण और लोक जीवन का सफल एवं समर्थ-स्पर्श उन्हें पूर्णतः भारतीय-आत्मा सिद्ध करते हैं।

9.5 नीति काव्य परम्परा और रहीम

भारतीय साहित्य में अत्यन्त प्राचीन काल से प्रयुक्त होने वाला "नीति" शब्द "नी" धातु में "क्तिन" प्रत्यय लगने से बना है। ऋग्वेद से लेकर लौकिक, संस्कृत, पालि तथा प्राकृतादि भाषाओं में प्रयुक्त होता हुआ यह शब्द हिन्दी और आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी उसी रूप तथा अर्थ में प्रयोग होता आ रहा है। जिसका तात्पर्य है ऐसा मार्ग, जिस पर हम बिना किसी प्राणी का अहित किए आगे बढ़ते रहें और अपना हित सिद्ध कर सकें।

कोशकारों ने नीति के तीस से भी अधिक अर्थ किए हैं परन्तु जीवन के व्यावहारिक ज्ञान तथा सफल जीवन-यापन की कला का अर्थ ही सर्वोपयुक्त है। नीति—अर्थात् ऐसी रीति या कला जिस पर आचरण करके जीवन में सफलता मिलती है। नीति के कई भेद किए जा सकते हैं। विषय के

आधार पर यह अर्थनीति, शिक्षा नीति, विज्ञान नीति, व्यापार नीति, प्रशासन नीति तथा युद्ध नीति आदि भी हो सकती है। इसी प्रकार बाल नीति, पुत्र नीति, पिता नीति, स्वामि नीति, सखा नीति आदि भेद भी किए जा सकते हैं।

अतः नीति का एक पक्ष तो मार्ग निर्धारण या चिन्तन का है और दूसरा आचरण और अभ्यास का। नीति और नीति काव्य मानव जीवन के लिए परम उपयोगी और परम आवश्यक होते हैं। यही कारण है कि वैदिक युग से नीति काव्य की यह परम्परा निरंतर जीवंत और प्रवहमान है। वैदिक साहित्य, दर्शन ग्रंथ, स्मृति-ग्रंथ, पुराण ग्रंथ तथा संस्कृत साहित्य में पर्याप्त मात्रा में नीति साहित्य देखने को मिलता है। यही नहीं, इसके पश्चात् पालि, प्राकृत, अपभ्रंश से होकर हिन्दी के आदिकाल तक भी यह काव्य धारा इसी प्रकार जीवित रही। इसमें संदेह नहीं कि संस्कृत का अधिकांश साहित्य नीति का भंडार है परन्तु आदिकाल में **चंदबरदाई** के पृथ्वीराज रासो का, **जगनिक** के आल्ह खंड तथा **बीसलदेव रासो** का नीति काव्य मात्रा में कम होकर भी सम्पूर्ण नीति साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसी प्रकार भक्तिकाल में **कबीर** पूर्व युग में **जयदेव, वैणी, नामदेव** तथा **स्वामी रामानन्द** जैसे नीति कवि प्रमुख थे। **कबीर** का नीति साहित्य तो जग-प्रसिद्ध है ही। **कबीर** के नीति काव्य का विचार पक्ष कितना प्रौढ़ है, उदाहरण देखिए :

भय बिनु भाव न ऊपजै, भाव बिना नहिं प्रीति।
जब हृदय सौ भय गया, मिटी सकल रस रीति।।

* * *

साईं इतना दीजिए, जा में कुटुम समाइ।
मैं भी भूखौ ना रहों, साधु न भूखो जाइ।।

इसी प्रकार **रैदास गुरु नानकदेव, संत फरीद, मलूकदास, चरनदास, पलटू** तथा **रज्जब** जैसे संतों ने भी मानवतावादी नीति धारा को गति दी। संतों के साथ ही सूफी साधकों में **मौलाना, दाउद, कुतुबन, जायसी, मझन** तथा **उसमान** आदि भी ऐसे ही कवि हैं जिन्होंने अपने नीति ज्ञान से समय-समय पर अवगत कराया। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं–

बाँभन बैस सूद्र अरु ख्यत्री डोम चंडाल मलेच्छ किन सोइ।
होइ पुनीत भगवंत भजन ते आणु तारि तरै कुल दोइ।।

— रैदास

* * *

जागे रे जिन जागना, अब जागनि की बारि।
फेरि कि जागे नानका, जब मोवउ पाँव पसारि।।

* * *

— गुरु नानकदेव

ओछे जानि के काहुहि, जनि कोइ गरब करेइ।
ओछे ऊपर देउ है, जीत-पत्र तेइ देइ।

* * *

— जायसी

सूफी काव्यधारा तथा प्रवाहमान नीति काव्य की यह धारा असूफी प्रेम काव्य **ढोला-मारुरा-दूहा** तथा **माधवानल कामकंदला** जैसे प्रेमाख्यानक काव्य को भी सींचती रही। इसके पश्चात् मध्ययुगीन रामभक्त तथा कृष्णभक्त कवियों ने आध्यात्मिक नीति के साथ-साथ व्यावहारिक नीति को अपनाते हुए काव्य विषयों में क्रांतिकारी परिवर्तन पैदा किया। क्रांतिकारी परिवर्तन करने वाले इन कवियों में तुलसी प्रमुख रहे। अन्य कवियों में **गंग, नरहरि, बीरबल, टोडरमल** तथा **रहीम** आदि इस दिशा में उच्चाधिकारी सिद्ध हुए। जिस प्रकार तुलसी अपने युग की सभी शक्तियों में काव्य-सृजन कर रहे थे उसी प्रकार रहीम ने भी युगीन समस्त विषयों को कविता का आधार बनाया। ज्योतिष, भक्ति, शृंगार, नायिका वर्णन, नीति तथा प्रकृति आदि सभी विषयों में रहीम की पर्वतोन्मुखी प्रतिभा उन्हें तुलसी के समकक्ष ठहराती है। वास्तव में रहीम और तुलसी एक ही युग के दो युग पुरुष कहे जा सकते हैं। नीति की दृष्टि से **तुलसी** ने अध्यात्म नीति, धर्मनीति, प्रेम नीति, सामान्य नीति तथा राजनीति का विस्तार से वर्णन किया है। एक सुन्दर उदाहरण दृष्टव्य है जहाँ रामचरित मानस के अयोध्याकाण्ड में सती सीता पति-पत्नी के सम्बन्धों को व्याख्यायित करती है :

मातु-पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवार सुहृद-समुदाई।
सनु धनु धरमु धरनि पुर राजू। पति विहीन सबु सोक समाजु।।
भोग रोग सम भूषण भारन। जम जातना सरिस संसारन।।
जिय बिनु देह नदी बिनु वारी। तैसिय नाथ पुरुष बिनु नारी।।

स्पष्ट है कि तुलसी के काव्य में नीति को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है। ऐसे अनेकों उदाहरण प्रमाणस्वरूप दिए जा सकते हैं जिनमें तुलसी का महान तथा प्रौढ़ विचार पक्ष प्रभावित करता है। रामभक्त कवियों में **केशव** का नीतिकाव्य भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। कृष्णभक्त कवियों में यह नीति परम्परा **सूरदास, नन्ददास, मीरा** तथा **रसखान** के काव्य में भी प्रवहमान है। इनके

अतिरिक्त **श्रीभट्ट, हरिदास, ध्रुवदास, साईंदास,** व्यास आदि कवियों ने भी इस परंपरा को आगे बढ़ाया। कुछ उदाहरण देखिए–

गुरु विनु ऐसी कौन करै?
भव सागर तै बूड़त राखै, दीपक हाथ धरै।
* * * –सूरदास

रस हूँ लगि कल संत सौ, कलह न कीजै काउ।
कानहि जो ऊनौ करै, सो सोनौ जरि जाउ।
* * * –नन्ददास

कोयल कागा एक सरीसा कोयल किसको कहिये रे।
कोयलपण तो जब ही जाना, मीठा वचन सुणइये रे।।
* * * –मीरा

दंपति सुख अरु विषय रस, पूजा निष्ठा ध्यान।
इन तैं परै बखानिये, सुद्ध प्रेम रसखानि।।
* * * –रसखान

इनके अतिरिक्त अकबर दरबार के पदाधिकारी कवियों ने तो नीति काव्य परम्परा में अपना महान योगदान दिया ही है जिनमें नरहरि, बीरबल, राजा टोडरमल, तानसेन आदि की चर्चा की जा चुकी है। इनमें *गंग* का नीतिकाव्य अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि उनके अनुभव की विशालता, ज्ञान और प्रतिभा के योग से उसे विशिष्ट बना देती है–

लहसुन गांठ कपूर के नीर में, बार पचासक धोइ मंगाई।
केसर के पुट दै दै कै फेरि, सु चंदन वृच्छ की छांह सुखाई।।
मोगरे मगहं खपेरि धरी गंग, बास सुबास न आवे न आई
ऐसहि नीच को ऊँच की संगति, कोटि करो पै कुटेव न जाई।

भक्तिकाल के बाद अगर रीतिकालीन कविता पर नजर डालें तो नीति काव्य परम्परा किसी न किसी रूप में वहाँ भी विद्यमान रही। **वृन्द** तथा **गिरधर कवि** ने पर्याप्त नीति काव्य निर्मित किया और यह अपने आप में प्रेरणा स्रोत भी बना है।

नीति काव्य की इस पूरी परम्परा को देखने के बाद यह कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य के मध्ययुगीन नीति काव्य के सम्राट रहीम ही हैं। संस्कृत के नीति साहित्य में जो स्थान भर्तृहरि को प्राप्त है हिन्दी में रहीम उसी स्थान के अधिकारी कहे जा सकते हैं।

बोध प्रश्न 1

1 नीचे दिए गए प्रश्नों के साथ कुछ कथन दिए जा रहे हैं जिनमें से कुछ सही हैं, कुछ गलत। आप सही कथन पर (√) का चिह्न लगाइए।

i) रहीम का जन्म किस सन् में हुआ था?
(सन् 1652 में, सन् 1520 में, सन् 1556 में)

ii) रहीम को दस लाख रुपये, बारह हजार सवार तथा सर्वोत्तम घोड़ा किसने दिया?
(बादशाह अकबर ने, जहाँगीर ने, शाहजहाँ ने)

iii) रहीम को राजद्रोही घोषित करने वाले बादशाह का नाम क्या था?
(शाहजहाँ, अकबर, जहाँगीर)

iv) रहीम की जीवन यात्रा किस सन् में समाप्त हुई?
(सन् 1627 में, सन् 1599 में, सन् 1630 में)

2 अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए–

i) रहीम को छोड़कर अकबर दरबार के अन्य चार नीतिकारों के नाम लिखिए:

....

....

ii) आदिकालीन साहित्य में नीति की परम्परा किन कृतियों में देखी जा सकती है?

....

....

....

iii) रहीम युग के कौन से ऐसे कवि थे जिन्होंने रहीम की तरह ही युगीन समस्त विषयों को काव्य का आधार बनाया?

....

....

iv) वृन्द और गिरधर किस काल के नीति कवि थे?

....

....

नोट : बोध प्रश्नों के उत्तर इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाइए।

9.6 भाव पक्ष

किसी घटना, विचार, वस्तु अथवा दृश्य विधान को देखकर हमारी चेतना पर जो प्रतिक्रिया होती रहती है, वही अनुभूति कहलाती है। यह अनुभूति जितनी तीव्र होती है अभिव्यक्ति उतनी ही समर्थ होती है। इस भाग में रहीम के अनुभूति जन्य भावों की विवेचना ही हमारा उद्देश्य रहेगा।

9.6.1 अनुभूति प्रक्रिया और लोक जीवन की अभिव्यक्ति

रहीम स्वभाव से ही भावुक थे। किसी पर भी प्रसन्न होकर उसे लाखों के पुरस्कार दे देना, निर्धन की दीनता देख आर्द्र होना या करुणा से भर जाना, वीरता या मित्रता को सही अर्थों में पहचानना, उसकी सराहना या निंदा करना, सौन्दर्य पर रीझ उठना, कला और प्रवृत्ति पर मोहित हो जाना उनकी इसी मनोवृत्ति के सूचक हैं। अपने समय को पहचानने और दूरदृष्टि से भविष्य को आंकनें वाले इस कलाकार की काव्य भूमि का प्रमुख तत्व था युगीन जीवन और समाज। अपने नेत्र-दीपकों से, बाहर और भीतर के राग-अनुराग को देखा, विचारा तथा ध्वनि, वर्ण और शब्दों को स्वर एवं लय में पिरोकर भाषिक आवरण में बाँध दिया। संवेदनाओं को मन और चिंतन की भट्टी में तपाकर काव्य के रूप में अभिव्यक्त कर दिया। भाव ने उसे कविता का रूप दिया और सामाजिक चेतना ने उसे नीति की उपादेयता दे डाली।

परिणामतः अनुभूति विधान के अद्भुत उदाहरण साकार हो गए। समय और स्थिति को सूक्ष्मता से देखने और भोगने वाले कवि की पकड़ कितनी मज़बूत और गहरी है, इस उदाहरण से देखा जा सकता है–

> जिहि अंचल दीपक दुर्‌यौ, हन्यौ सो ताही गात।
> रहिमन असमय के परे, मित्र शत्रु ह्वै जात।।
>
> *　　*　　*
>
> जो रहीम दीपक दसा तिय राखत पट ओट।
> समय परे ते होत है वाहि पट की चोट।।

समय का चक्र निरन्तर चलता रहता है। कभी अच्छा है तो कभी बुरा भी। यही नहीं, रहीम ने यह भी देखा कि जो कभी मित्र है वह शत्रु भी हो सकता है। इसीलिए कहा कि समय एक-सा नहीं रहता। कवि नारी को आँचल में दीपक छिपाकर ले जाते देखता है। रात्रि में दीपक की उपयोगिता और आवश्यकता उसे चुचकार के जीवित रखती है। आँचल की ओट उसे बुझने से बचाती है और प्रातः होते ही वही नारी, उसी आँचल के तेज झटके से उसे बुझा देती है। कल का रक्षक ही आज भक्षक बन जाता है। यह सब काल की देन है तभी तो वे कहते हैं–"काज परे कछु और है काज सरे कछु और।" जीवन को नज़दीक से देखने वाला व्यक्ति प्रत्येक घटना से कैसे-कैसे निष्कर्ष निकाल लेता है, रहीम की अनुभूति इसका प्रबल प्रमाण है। एक अन्य उदाहरण देखिए–

> रहिमन अंसुआ नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
> जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ।।

रावण ने विभीषण को घर से निकाल दिया और विभीषण ने सारा भेद कह डाला। रहीम ने देखा व्यक्ति के दुख और उसकी पीड़ा का भेद खोलने वाले आँसू ही हैं। इस सूक्ष्म-दृष्टा कवि ने अपनी तरल अनुभूति से कितना सार्वभौमिक तथ्य उजागर किया है। समाज, समूह, जाति, देश, व्यक्ति तथा राष्ट्र सभी के लिए यह सत्य कितना महत्वपूर्ण है। लोक भूमि की गंध और प्रकृति की सुगंधित-श्वास में कवि कितना डूबा हुआ है, एक-एक दोहा इसका साक्षी है। नीच की संगति बहुत बुरी है। भले ही आप कितने भी अच्छे हों, फिर भी नीच के साथ से अवश्य बचिए। शराबी

कितना भी भला या अच्छा बन जाए और भले ही वह दूध जैसा अमृत भी हाथ में ले जा रहा हो, लोग यही समझेंगे कि वह शराब ले जा रहा है–

रहिमन नीचन संग बसि लगत कलंक न काहि।
दूध कलारिन हाथ लखि मद समुझहि सब ताहि।

अब हम रहीम की काव्य भूमि के उन प्रमुख पक्षों की चर्चा करेंगे जिनके कारण उनकी सर्वोन्मुखी तथा वैविध्यमयी दृष्टि का परिचय मिलता है।

9.6.2 नीति

सत्य और शिव की कल्याणमयी प्रतिभा को प्रतिष्ठित करने वाली नीति, धर्म की आधार शक्ति मानी जाती है। इस आधार पर कह सकते हैं कि प्रौढ़ विचार पक्ष तथा प्रबल और मूल्यों वाली नीति, साधारण मानव जीवन को प्रत्येक दिशा में प्रगति पर ले जाती है। महाकवि रहीम के नीति काव्य के विषय भी जीवन की विविधताओं की तरह अनन्त हैं। उनमें व्यावहारिकता और गंभीरता एक साथ मिलती है। कवि ने एक स्थान पर शरीर की क्षणभंगुरता को रेत की गठरी से आंका है–

रहिमन ठठरी धूरि की रही पवन तें पूरि।
गाँठ युक्ति की खुल गयी अन्त धूरि की धूरि।।

रहीम ने जीवन की असारता के साथ-साथ प्रेम की निष्कलुषता, अस्थिरता तथा वैभव विलास के प्रति उदासीनता आदि भावों को भी उभारा है तो ईश्वर, धर्म, आचार-विचार, लोक व्यवहार, गुरु, सन्त, माया, मान-अपमान, प्रेम, सन्तोष, परोपकार, नियति, त्याग, मर्यादा, राजकर्तव्य आदि विषयों पर भी अनूठे नीति वचन कहे हैं। कहीं वे मानव प्रकृति की बात करते हैं–

जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्याप्त नहीं लपटे रहे भुजंग।।

तो कहीं उपकार के विषय में सुन्दर सादृश्य प्रस्तुत करते हैं। जैसे मेंहदी लगाने वाले के अपने हाथ लाल हो जाते हैं उसी प्रकार उपकार करने वाले का भी अपना भला पहले होता है। प्रेम के विषय में उनके अपने ही सिद्धांत और मानदण्ड हैं–

रहिमन धागा प्रेम का मत तोड़ो चटकाय।
टूटे तें फिर न जुरै, जुरै गाँठ परि जाय।।

अनुभव-रस से रहीम की नीति ने प्रभावशाली रूप ग्रहण किया है, यथा--

रहिमन चुप ह्वै बैठिये देख दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं बनत न लगिहैं बेर।।

फिर सभी दुखों और कष्टों का एक ही रामबाण इलाज है–सन्तोष–

चाह गई चिन्ता मिटी मनुआ बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिए वे ही सहनसाह।।

इसी प्रकार निर्धनता, अभिमान, चिन्ता, कुसंगति, नीचता, याचकता, कपट, स्वार्थ, आत्मप्रशंसा, चापलूसी आदि बहुत से संदर्भों को भी कवि अपनी पैनी दृष्टि और लेखनी का निशाना बनाता है। कुछ उदाहरण देखिए–

रहिमन निज सम्पति बिना कोउ न बिपति सहाय।
बिनु पानी ज्यों जलज को नहिं रवि सकै बचाय।।

*　　*　　*

खीरा सिर तें काटिए मलिए लोन लगाय।
रहिमन करुवे मुखन को चहियत यही सजाय।।

अर्थात् निजी सम्पत्ति के बिना कोई भी सगा-सम्बन्धी या सहायक नहीं होता। बेटा, बाप, माँ, भाई, पत्नी सभी पैसे के संबंध हैं। जैसे सब कुछ होने पर भी बिना पानी के कमल को सूर्य नहीं बचा सकता। दूसरे उदाहरण में, खीरे का स्वभाव कड़वा होता है। उसका मुख-मर्दन कर नमक डाला जाता है और कड़वाहट खत्म कर दी जाती है। रहीम का सुंदर सा दृश्य है कि कड़वे मुखवालों के साथ यही व्यवहार उचित है। लातों के भूत बातों से नहीं मानते। मर्यादा उत्तम चरित्र का आभूषण है। जीवन को अंधियारे से बाहर निकाल उजाले में ले जाने वाली ज्योति है। इसी की प्रेरणा से मनुष्य जीवन की ऊँचाइयों को प्राप्त करता है। व्यक्ति का मान-सम्मान ही उसका वज़न और पहचान है। इसीलिए रहीम ने आलंकारिक शैली में 'पानी' शब्द का प्रयोग किया :

रहिमन पानी राखिए बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरे मोती मानुष चून।।

पानी के यहाँ तीन अर्थ है। पहला अर्थ है आभा या चमक जो मोती के संदर्भ में है। दूसरा अर्थ है इज्जत या मान, जो मनुष्य के संदर्भ में है और तीसरा अर्थ है जल या पानी जो कि आटे (चून) के

संदर्भ में है। इसलिए रहीम कहते हैं पानी (मर्यादा) अवश्य रखना चाहिए। बिना पानी के तीनों ही व्यर्थ हो जाते हैं।

अतः धर्मनीति, अर्थनीति, कामनीति और मोक्षनीति के साथ अन्य सभी विषयों का रहीम ने अत्यंत समृद्ध निरूपण किया है। सरस अनुभूति और लौकिक अनुभव की विशालता उन्हें किसी वर्ग विशेष में नहीं रहने देते और वे नीति काव्य को एक नवीन दिशा देते हुए प्रत्येक श्रेणी के लोक-हृदय को छू लेते हैं। सरलता, स्वाभाविकता और मार्मिकता ही रहीम की लोकप्रियता का कारण भी बनी हैं।

9.6.3 भक्ति

हिन्दी साहित्य के लिए अकबर-काल वरदान सिद्ध हुआ था। सगुण भक्ति की वह धारा जिसके प्रवाह में उस युग का हिन्दू समाज बड़े वेग से बह रहा था, अकबर की उदार धर्म नीति की ही देन थी। धर्म, भक्ति, कला, दर्शन, संस्कृति तथा भक्ति भावना की सूर, तुलसी जैसी महान विभूतियाँ जिस युग में अपना वैभव बिखेर रही थी, रहीम का जन्म भी उसी स्वर्णिम समय में हुआ था। रहीम के हृदय में भी वैष्णव भक्ति का अथाह सागर हिलोरें ले रहा था। दरबारी वातावरण में रहकर भी कवि ने श्रद्धापूर्वक भक्ति और भगवान का गुणगान किया तथा बरवै, दोहे, सोरठे, सवैये आदि के माध्यम से सभी प्रमुख भक्ति स्रोतों का परिचय दिया। राम, कृष्ण, शिव, विष्णु, सूर्य, गणेश, गंगा, सरस्वती, हनुमान आदि की वन्दना कवि ने तन्मयता से की है। ईश्वर में कवि का अटल और अटूट विश्वास है—

समय दसा कुल देखि कै, सबै करत सनमान।
रहिमन दीन अनाथ को, तुम बिन को भगवान।

धर्मनिरपेक्षता के वर्तमान युग में रहीम के भक्ति काव्य का अपार महत्व है। नीति और भक्ति का अद्भुत मिश्रण कवि की प्रतिभा का परिचायक है। कवि राम और कृष्ण जैसे इष्ट देवों के होते हुए पूर्णतः निश्चिन्त है। ज्वारी, चोर या लबार (ठग) उनका क्या बिगाड़ सकते हैं, सबकी पत (खबर) रखने वाला भगवान (श्रीकृष्ण) उनके साथ हैं—

रहिमन को कोउ का करै, ज्वारी चोर लबार।
जो पत-राखन हार है, माखन-चाखन हार।।

रहीम अपने अवगुण अर्थात् अकरुणत्व (पाषाणता), बुद्धिहीनता (पशुता) तथा अकुलीनता (जातीयता) का हवाला कैसे अप्रत्यक्ष रूप से देते हैं कि ईश्वर उनका उद्धार करने से बच भी नहीं सकते—

मुनि नारी पाषान ही, कपि पसु गुह मातंग।
तीनो तारे राम जू, तीनो मेरे अंग।।

भगवान राम ने पत्थर बनी अहिल्या का उद्धार किया, हनुमानादि वानरों का उद्धार किया तथा अकुलीन निषादराज का उद्धार किया, फिर भला कवि के भीतर बसे इन तीनों अवगुणों से मुक्ति कैसे नहीं होगी।

रहीम किसी सम्प्रदाय विशेष में बंधकर कविता नहीं करते किन्तु फिर भी उनके काव्य में निर्गुण भक्ति, सगुण भक्ति, सूफी भक्ति और यहाँ तक कि सख्य, दास्य, शान्त, शृंगार भक्ति के दर्शन भी होते हैं। भक्ति के प्रकारों में कवि ने कीर्तन, स्मरण, वन्दन, अर्चन, पाद सेवन तथा गुण कथन आदि का वर्णन भी पूरे मनोयोग के साथ किया है –

स्मरण

ते रहीम मन आपुनो, कीन्हों चारू चकोर।
निसि बासर लाग्यो रहे, कृष्णचन्द्र की ओर।।

गुण कथन

जे गरीब पर हित करें, ते रहीम बड़ लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग।।

वन्दन

पुन-पुन वन्दौं गुरु के पद जलजात।
जिहि प्रताप तें मन के तिमिर बिलात।।

ध्यान

ध्यावहुँ सोत विमोचन गिरिजा ईस।
नागर भरन त्रिलोचन सुरसरि सीस।।

यही नहीं, उस आदि रूप की परम द्युति तो घट-घट में समायी हुई है। उसके साक्षात्कार का अनन्त आनन्द अवर्णनीय है। आत्मा-परमात्मा के इस रहस्यमय अमर मिलन के सुख को कौन बखान सकता है। जो इस रहस्य को जानता है वह कह नहीं सकता और जो कहता फिरता है, वह इस सत्य को जानता ही नहीं। कैसी विवशता है। आंखों ने देखा है पर वे बखान नहीं कर सकतीं और जिह्वा बखान करती है तो उसने देखा नहीं है–

रहिमन बात अगम्य की कहन सुनन की नाहिं।
जे जानत ते कहत नहिं कहत ते जानत नाहिं।।

वह ब्रह्म विराट है। सीमा से परे है। वही जीव-जगत का मूलाधार है। विनयशील और गुण ग्राही कवि का कथन है कि भक्ति मार्ग अत्यंत सुलभ और सुन्दर है। अपने अहं की बलि देकर द्वैत को मिटा देना ही प्रकाश की पुण्य प्राप्ति करना है। इस प्रेमा भक्ति का तो पथ इतना संकरा है कि निजत्व को तज कर ही इसमें प्रवेश पाया जा सकता है। स्नेह और ज्योति की प्राप्ति के लिए अशुद्धता और अन्धकार को तजना अनिवार्य है–

रहिमन गली है साँकरी दूजो ना ठहराहि।
आपु अहै तो हरि नहिं हरि तो आपनु नाहि।।

और जिस भक्त के नेत्रों में मन, प्राण और भावों में उस परम प्रभु की सौंदर्य आभा समा गई हो उसे समग्र सांसारिक रूप और सौंदर्य अस्तित्वहीन लगते हैं। रहीम की लौकिक पकड़ से आभा-सादृश्य इस उक्ति को कितना सार्थक बना देता है –

प्रीतम छबि नैनन बसी पर छबि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि पथिक आप फिर जाय।।

इस प्रकार करूणानिधि, भक्त वत्सल और दीन बन्धु के प्रति कवि का अनन्य स्नेह है। कहीं वे साधिकार भगवान पर मीठा व्यंग्य भी कर देते हैं तो कहीं उन्हें उपालम्भ दे देते हैं। अपनी दीनता और भक्ति की याचना करते हुए ईश्वर को उसकी प्रभुता का स्मरण करा देना कवि की बौद्धिक युक्ति का परिचायक है–

तेरोई कहायकै रहीम कहै दीनबन्धु
    आपनी विपत्ति जाय काके द्वार कहिबी।
जीविका हमारी जो पै औरन के कर डारो
    ब्रज के बिहारी तो तिहारी कहाँ साहिबी।।

अगर अपनी विपत्ति किसी अन्य के आगे जाकर कहूँ या मेरी जीविका का दायित्व किसी और के हाथ में सौंप दिया तो हे प्रभु! तुम्हें क्योंकर भगवान मानूँ? फिर भला तुम काहे के साहिब ठहरे? ये भक्त की चुनौती है जो भगवान को नंगे पाँव दौड़े चले आने पर मजबूर कर देती है। स्पष्ट है कि रहीम का काव्य भक्त हृदय की ही सृष्टि है। युगीन भावना को उन्होंने श्रद्धा सहित स्वीकार किया और नीति की लोकोपयोगी धारा में भक्ति को मिश्रित कर डाला। भक्ति की दृष्टि से वे सूर और तुलसी से किसी भी अर्थ में कम नहीं ठहरते। भक्ति की महत्ता, भक्त की दीनता, धार्मिक उदारता तथा एक्य भावना, हृदयगत विशालता, ईश्वर के अनुग्रह की प्राप्ति तथा श्रद्धा, प्रेम और भक्ति का अद्भुत मिश्रण, सभी दृष्टियों से रहीम उच्च और श्रेष्ठ हैं।

9.6.4 शृंगार तथा अन्य रस

रहीम रसिक हृदय तो थे ही, अतः स्वाभाविक है कि नीति के साथ प्रीति और सौंदर्य के साथ शृंगार का सरस तथा मोहक वर्णन वे करते रहे। उनके शृंगार वर्णन में उन्माद है और उल्लास भी। मानव जीवन के सहज स्वाभाविक भावों को परखने और निरखने की अद्भुत क्षमता उनके पास थी। शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों को वे युग और समाज के परिप्रेक्ष्य में रखते हुए पूरी योग्यता से प्रतिबिम्बित करते हैं तो दूसरी तरफ शांत, हास्य, अद्भुत, वीभत्स और वीर आदि रसों के वर्णन में भी अपना कवि कौशल दिखाते हैं। रहीम के शृंगार की विशिष्टता यह है कि एक तरफ वह लोक भूमि का स्पर्श करता है तो दूसरी तरफ शास्त्रीय छोर को छूता है। नगर-शोभा, शृंगार-सोरठा और बरवै नायिका भेद जैसी कृतियों में कवि की शृंगारिक सूझ-बूझ तथा पकड़ को सविस्तार देखा जा सकता है। लोक-अग्नि और प्रेम-अग्नि के अंतर को कवि कितनी सहजता से अलग करके देखता है। लोक अग्नि तो जल कर बुझ जाती है पर प्रेम की अग्नि तो बुझ-बुझ कर जलती है। सुलग-सुलग कर हृदय को गुदगुदाती है–

जे सुलगे ते बुझि गये, बुझे ते सुलगे नाहिं।
रहिमन दाहे प्रेम के, बुझि-बुझि कै सुलगाहिं।।

रहीम के शृंगार वर्णन की सर्वाधिक महत्ता इसी में है कि उसमें वासना की गंध नहीं है। शृंगार

वर्णनों में शब्दों का संयमन तथा भावों की मर्यादा रहीम को शृंगारी कवियों से पूर्णत: पृथक खड़ा करती है–

नैन सलोने अधर मधु, कह रहीम घटि कौन।
मीठो भावै लौन पै, अरु मीठे पै लौन।।

नेत्रों की दीर्घता तथा सलोनापन, बाकी चितवन और अधरों की मिठास कैसा उन्माद पैदा करते हैं। प्यास बुझती ही नहीं। मीठे पर नमकीन और नमकीन पर मीठा खाने की लालसा निरंतर बनी रहती है।

रहीम का युग काफी हद तक विलासिता, ऐश-ओ-आराम, नज़ाकत, साज-सज्जा, हास-परिहास, महफिल तथा बेगमों और राजकुमारियों के नेत्र मिलन का युग था। दूकानों पर स्त्रियाँ, बागों में स्त्रियाँ, पहरे पर स्त्रियाँ तथा मीना बाजार की नुमाइश में स्त्रियाँ देखकर कवि ने नगर शोभा में विभिन्न जातियों की पेशेवाली नारियों के कर्म, व्यापार, स्वभाव और सौंदर्य आदि का मादक एवं शृंगारिक चित्रण भी किया है।

शृंगार में किशोर-किशोरी का होना अनिवार्य है। यही आलम्बन और आश्रय होते हैं। इन्हीं से संयोग और वियोग की स्थिति भी बनती है। मन-भावन प्रियतम निकट हो तो संयोग की अद्वितीय उपलब्धि होती है। ऐसे में बैकुण्ठ और कल्पवृक्ष की प्राप्ति भी अवांछनीय है। रात्रि, दिवस की तुलना में अधिक प्रेय होती है क्योंकि यही उद्दीपन के साधन जुटाती है–

काह करौ बैकुण्ठ लै, कल्पवृक्ष की छाँह।
रहिमन ढाक सुहावनो, जो गल प्रीतम बाँह।।

* * *

रहिमन रजनी ही भली प्रिय सों होय मिलाप।
खरौ दिवस केहि काम कौ, रहिबौ आपुहि आप।।

परन्तु शारीरिक अंगों, क्रियाओं और घटनाओं के इस वर्णन की शृंगारिक काव्य क्षमता का तात्पर्य यह नहीं कि रहीम ने रमणीय वर्णन नहीं किया। प्रेम वर्णन में तो वे उसकी उदात्तता और जवांमर्दी का वास्ता देते हुए स्पष्ट कहते हैं कि मोम के घोड़े पर बैठकर अग्नि पुंज में कूद पड़ने की साधना में सफल होने वाला ही प्रेम मार्ग का सच्चा राही है। हर कोई इस राह को नहीं निबाह सकता। इस अलौकिक अग्नि-शिखा का धुंआ भी बाहर प्रकट नहीं होता–

अन्तर दाब लगी रहे धुआँ न प्रगटै सोय।
कै जिय जानै आपनो जा सिर बीती होय।।

यही नहीं, नायिका के नेत्र रूपी बाण प्रेमी के हृदय रूपी पक्षी का शिकार कर लेते हैं और वह बेचारा हृदय-पक्षी अधर पान की लालसा लिए प्यासा ही रह जाता है–

नैन अहेरी साजि कै वित्त पंछी गहि लेत।
विरही प्राण सचान को अधर न चाखन देत।।

नायिका-भेद, नख-शिख वर्णन, प्रेम वर्णन तथा अन्य कई स्थलों पर संयोग शृंगार के सरस तथा मर्यादित वर्णन कवि ने किए हैं। विप्रलम्भ शृंगार में भी कवि ने बरवै और दोहों के माध्यम से संपूर्ण वास्तविकता को बनाए रखा है। विरह की कल्पना ही प्रेमी के प्राणों पर आ बनती है। सावन के महीने में प्रियतम का जाना अत्यंत दारुण है –

उमड़ि उमड़ि घन घुमड़े दिसि बिदिसान।
सावन दिन मनभावन करत पयान।।

* * *

झूमि झूमि चहुँ ओरन बरसत मेह।
त्यों त्यों प्रिय बिन सजनी तरफत देह।।

वियोगिनी नायिका भूख-प्यास, सुख-चैन, सुध-बुध सब गँवा बैठी है। रात दिन केवल ठंडी और लम्बी साँसे भरती है :

जबतें बिछुरे मोहन भूख न प्यास।
बेरि बेरि बढ़ि आवत बड़े उसाँस।।

* * *

जब तें बिछुरे मितवा, कहु कस चैन।
रहत भरयौ हित साँसन, आँसुन नैन।।

निश्चित ही रहीम का वियोग वर्णन संयोग की तुलना में अधिक सफल और मोहक है। विप्रलम्भ की सभी दशाएँ एवं अवस्थाएँ रहीम के काव्य में मिल जाती हैं। हृदयगत भावों का सरल, सहज,

स्वाभाविक और मर्मस्पर्शी उफान कवि ने हृदय द्रावक शब्दों में बाँध दिया है। अनेकों ऐसे वर्णन हैं जिन्हें यहाँ उद्धृत किया जा सकता है परन्तु विषय विस्तार की सीमा के कारण यह संभव नहीं। रीतिकालीन रीतिमुक्त कवियों की विरह भावना संभवतः रहीम के इसी विरह वर्णन से प्रेरित रही होगी। वेदना की अनन्तता में डूबी कामातुरा वियोगिनी का एक उदाहरण और देखिए जो किसी पथिक द्वारा अपने प्रियतम के पास विरह संदेश भेजती है–

कहियो पथिक सन्देसवा गहिके पाय।
मोहन तुम बिनु तनकहुँ रहत्यों न जाय।।

*   *   *

लोग लुगाई हिल-मिल खेलत फाग।
परयौ उड़ावन मो कौं, सब दिन काग।।

इसी प्रकार *हास्य-व्यंग्य और विनोद* का भी जीवन में अपना ही महत्व है। रहीम के काव्य में शिष्ट, तीव्र और गहन अनुभूति वाले हास्य और व्यंग्य की मात्रा कम है, पर जो कुछ है, वे अपने आप में सुंदरतम और गहन-भाव वाले उदाहरण हैं। कमला लक्ष्मी का पर्याय है। लक्ष्मी चंचल होती है, इसे सभी जानते हैं। रहीम ने 'पुरुष-पुरातन' शब्द से जो चमत्कार और गहरा व्यंग्य प्रस्तुत किया वह अद्भुत है। 'पुरुष-पुरातन' भगवान विष्णु तो हैं ही, वृद्ध पुरुष भी हैं। अर्थात् भगवान विष्णु की पत्नी लक्ष्मी चंचला है अतः अस्थिर होती हैं। इसी प्रकार बूढ़े पुरुष की पत्नी भी स्थिर नहीं होती, वह भी इधर-उधर घूमती रहती है। इस अर्थ को कवि ने कितने कौशल से प्रस्तुत किया, देखिए–

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय।।

इसी प्रकार, एक अन्य उदाहरण में नीति तत्व प्रधान हो गया है परन्तु *व्यंग्य* इसमें भी गहरा ही है। जिह्वा तो कह कर भीतर छिप जाती है पर जूते खोपड़ी को खाने पड़ते हैं–

रहिमन जिह्वा बावरी कहि गै सरग पताल।
आपु तो कहि भीतर रही, जूती खात कपाल।।

वीभत्स, वीर और अद्भुत के उदाहरण भी इसी प्रकार देखे जा सकते हैं। अतः कुल मिलाकर कह सकते हैं कि रहीम का जीवनानुभव अत्यंत व्यापक और गहन होने के साथ पुराण, शास्त्र और प्रकृति के सूक्ष्म व्यापारों से पुष्ट भी था।

9.6.5 प्रकृति

रहीम-काव्य में मानवीय अनुभूति की चिर सहचरी प्रकृति की छवि-छटा भी बिखरी मिलती है। कवि इस प्रकृति वर्णन को भावोद्दीपक तथा उपदेशात्मक रूपों में प्रस्तुत करता है। रहीम के प्राकृतिक उपकरणों में नगर-ग्राम, विष-चंदन, चन्द्र-चकोर, पेड़-पत्ते, पशु-पक्षी, दादुर-मोर, काक-पिक, जल-मीन, फल-फूल, खग-मृग, मेंहदी-रंग, सिन्धु-बिन्दु, दिवा-ससि, ग्रीष्म-शरद, विष-अमृत इत्यादि से संबंधित वर्णन किए गए हैं।

रहीम ने प्रकृति वर्णन में कहीं परम्परागत दृष्टि रखी तो कहीं पूर्णतः मौलिक। कथ्य सामग्री प्राचीन है तो कवि के निष्कर्ष नवीन हैं। प्रकृति प्रयोग की सूक्ष्मता तथा अनुभूतिगत विशिष्टता कवि को एक खास पहचान देती है। कवि कभी तो प्राकृतिक घटनाओं को देखकर नैतिक निष्कर्ष निकालता है तो कभी अपने निष्कर्षों के लिए प्रकृति को उदाहरण बना लेता है–

दादुर मोर किसान मन लग्यो रहै घन माँहि।
रहिमन चातक रटनि हूँ सरूवर को कछु नाँहि।

*   *   *

तरूवर फल नाहि खात है, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम परकाज हित, संपति संचहि सुजान।।

जिस प्रकार वृक्ष अपने फल स्वयं नहीं खाते उसी प्रकार सज्जन लोग भी पर हित के लिए सम्पत्ति संचित करते हैं। दूसरी तरफ, क्वार माह के बादल जैसे गरज-गरज कर चले जाते हैं उसी प्रकार धनी पुरुष भी निर्धन हो जाने पर निराधार बातें ही बनाते हैं–

थोथे बादर क्वार के जो रहीम घहरात।
धनी पुरुष निर्धन भये, करें पाछिली बात।।

इसी प्रकार रहीम की सूझ देखिए, कौवा और कोयल वसन्त ऋतु के अवसर पर एक से ही जान पड़ते हैं परन्तु बोलते ही ज्ञात होता है कि कोयल और कौवे में क्या अंतर है :

दोनों रहिमन एक से, जौ लौं बोलत नाहिं।
जान परत हैं काक पिक, ऋतु वसन्त के माँहि।।

बोध प्रश्न 2

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से अपने उत्तर मिलाइए।

1 रहीम की किन्हीं पाँच प्रामाणिक रचनाओं के नाम तथा उनका मूल-कथ्य बताइये।

....

....

....

....

....

2 रहीम के काव्य में लोक-जीवन की अभिव्यक्ति हुई है। उदाहरण देकर सिद्ध कीजिए।

....

....

....

....

....

3 उत्तम प्रकृति के लोगों पर कुसंग का असर नहीं होता। रहीम ने इस कथन को कैसे सिद्ध किया है?

....

....

....

....

....

4 रहीम के भक्ति संबंधी भावों पर पाँच पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

5 रहीम के विप्रलम्भ शृंगार संबंधी दो दोहे लिखिए।

....

....

....

....

....

6 रहीम ने शृंगार से इतर अन्य किन-किन रसों का वर्णन किया है।

....

....

....

....

....

9.7 अभिव्यक्ति कौशल

जिस प्रकार मानव जीवन में अपने भावों और विचारों को शब्दबद्ध करने की अनिवार्यता है उसी प्रकार साहित्य में भी अभिव्यक्ति एवं अभिव्यक्ति-कौशल का अत्यंत महत्व है। वास्तव में भावों और विचारों की अभिव्यक्ति मानव की मूलभूत प्रवृत्ति है और इसी कारण अन्य प्राणियों की तुलना में मनुष्य विशिष्ट भी ठहरता है। उसके विचारों और भावों की तीव्रता उसे बाधित करती है कि वह उन्हें आजाद करे और इसी दवाव की तीव्रता से वह अलग-अलग माध्यमों में उन्हें ढाल कर अभिव्यक्त कर देता है।

9.7.1 काव्य भाषा तथा शैली

भाषा, मनुष्य की सर्वाधिक उपयोगी उपलब्धि है। मनुष्य की पूरी सभ्यता, संस्कृति, उन्नति तथा उपलब्धियों का रहस्य इसी में छिपा है। इसी प्रकार शैली, कवि, कलाकार या साहित्यकार के मनोगत भावों और विचारों को साकार बनाने का सहज उपकरण है। कवि या कलाकार के व्यक्तित्व और उसके काव्य या कला में घनिष्ठ संबंध होता है और इसी घनिष्ठता का दर्पण बनती है शैली। अकबरी युग के हिन्दी काव्य निर्माताओं में रहीम का नाम प्रमुख है। कलाप्रवीण तथा प्रतिभाशाली इस मुसलमान कवि ने हिन्दी भाषा तथा साहित्य की उन्नति एवं श्रीवृद्धि की। रहीम के युग में मुख्य रूप से दो साहित्यक भाषाएँ अपने उत्कर्ष पर थीं–अवधी और ब्रजभाषा। रहीम ने इन दो भाषाओं को अपने योगदान से समृद्ध करने के साथ ही खड़ी बोली, भोजपुरी, कन्नौजी, राजस्थानी, बुन्देलखंडी, अरबी, फारसी, तुर्की, उर्दू, संस्कृत आदि भाषाओं की ओर भी ध्यान केन्द्रित किया। रहीम के ही बरवै भी संभवतः बिहारी के दोहों की प्रेरणा बने। गागर में सागर भरने की कला में निपुण रहीम की भाषा मृदुल भी है और संगीत प्रधान भी। उसमें अर्थ की गरिमा भी है और सुन्दर भावों की प्रौढ़ता भी। रहीम भावों और विचारों को **ब्रजभाषा** द्वारा तन्मयता से अभिव्यक्त करने की चेष्टा में काफी हद तक सफल रहे हैं। रहीम से पहले का कोई भी कवि अपने दोहों में ब्रजभाषा का वह आकर्षण, सहजता, चमत्कार, विचार-गरिमा वहन करने की शक्ति, सरसता तथा मर्मज्ञता नहीं ला सका, जो रहीम के दोहों में मिलती है। हालांकि ब्रजभाषा में भी कवि ने बहुत सी भाषाओं के शब्द मिला कर प्रयोग किए हैं। तत्सम, तद्भव, अर्द्धतत्सम आदि शब्दों का स्वच्छंद प्रयोग भी किया है। भक्त को 'भगत' और लवण को 'लोन' कर देने वाले इस कवि का शब्द चयन अत्यंत सटीक एवं सुन्दर है। ब्रज में संस्कृत, फारसी, तुर्की, खड़ी बोली, अवधी तथ ठेठ ग्रामीण भाषा के शब्द भी सफलता से मिला दिए हैं। अच्युत, सुरसरी, मनसिज, भूप, सरोवर, यद्यपि तथा अवनि आदि तत्सम शब्द हैं तो दुरदिन, हूजत, लागत, दीरघ, अरथ, आखर आदि तद्भव भी उपलब्ध हैं। फरजी, साह, तासीर, वजीर आदि अरबी-फारसी के शब्द भी ब्रजभाषा में मिश्रित हैं। किसी भी भाषा में ये शब्द ऐसे घुल-मिल कर आए हैं कि इनकी अपनी पहचान भी उसी में समा जाती है। आचार्य शुक्ल ने रहीम की भाषा के संदर्भ में लिखा भी है–"भाषा पर तुलसी का सा ही अधिकार हम रहीम का भी पाते हैं"। (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 188) इसी प्रकार **अवधी भाषा** की उन्नति और श्रीवृद्धि में भी रहीम का महत्वपूर्ण योगदान है। तुलसी और जायसी की सी मर्मज्ञता रहीम के पास भी है। अवधी के सर्वप्रमुख छंद बरवै के जनक भी रहीम ही हैं। बरवै लेखन में तो रहीम जायसी और तुलसी की अवधी से भी अधिक मिठास और सरसता भर देते हैं–

चुनत-फूल गुलबवा, डार कटील।
टुटिगौ बन्द अँगिअवा, फटु पट नील।।

भाषा की शुद्धता और माधुर्य, संस्कृतनिष्ठता और प्रांजलता रहीम की खास पहचान है। कहीं इसमें **भोजपुरी** आ मिलती है तो कहीं **ग्रामीण ठेठ अवधी**। रहीम ने नीतिकाव्य में कुछ ऐसी भाषा भी प्रयुक्त की जो **खड़ी बोली** के बहुत निकट है। 'मदनाष्टक' की भाषा में भी ऐसा ही देखा जा सकता है। शब्द यहाँ भले ही तत्सम, तद्भव या किसी अन्य भाषा के हों पर फ्रेम काफी हद तक खड़ी बोली का सा लगता है। "कान्हा वंशी बजाई", "परम प्यारे साँवरे को मिलाओ", "जवाहिर जड़ा था", तथा "चपल चखन वाला चांदनी में खड़ा था" ऐसे ही प्रयोग हैं। खड़ी बोली के प्रचार-प्रसार-अभियान की पृष्ठभूमि में रहीम की भूमिका महत्वपूर्ण है। रहीम ने कहीं-कहीं वीरगाथा काल की सुप्रसिद्ध काव्य भाषा **'डिंगल'** का भी प्रयोग किया है। रहसी, जासी, नहचौ, राखो आदि शब्द इसके प्रमाण है। रहीम **राजस्थानी** ही नहीं **कन्नौजी, गुजराती, मराठी** तथा **पंजाबी** आदि भाषाएँ भी अच्छी तरह जानते थे। **पश्तो** भाषा पर भी उनका अधिकार था।

रहीम ने कवि हृदय की विशालता से **संस्कृत** के भी कई श्लोक लिखे। ज्योतिष, नक्षत्र तथा खगोल शास्त्र संबंधी 'खेट-कौतुकम' की भाषा संस्कृत ही है। यह मुसलमान कवि देववाणी

संस्कृत को अपनाकर हिन्दू धर्म-शास्त्रों के प्रति श्रद्धावनत था। इसी प्रकार रहीम उर्दू, तुर्की तथा **अरबी-फारसी** जैसी विदेशी भाषाओं के भी प्रकाण्ड विद्वान थे। रहीम ने इन भाषाओं के शब्दों का मिला-जुला प्रयोग भी किया तथा अलग से भी। गुल, बाग, घायल जैसे उर्दू शब्द प्रयुक्त हैं तो अलबेला, यार, जुल्फें, रोशनी तथा चमन आदि अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग भी किया।

अतः शब्द-चयन-क्षमता तथा व्यापक दृष्टिकोण रहीम की भाषा नीति के प्रमुख चरण हैं। व्याकरण सम्मत पकड़ तथा प्रसंगानुकूल शब्द प्रयोग कवि की प्रतिभा के परिचायक हैं। एक भी दोहा ऐसा नहीं दिखाई देता जिसमें गति टूटती हो और प्रवाह खंडित होता हो। बिना किसी बाधा या रुकावट के साफ-सुथरी भाषा, रहीम की अपनी खास पहचान बनाती है। छंदों में लय और संगीत का कारण भी—यह सुन्दर और सटीक शब्द प्रयोग ही है। छोटे-छोटे शब्द कवि को शब्द-शिल्पी ठहरा देते हैं। ऐसा लगता है जैसे एक से फूलों की मनोहारी माला पिरो दी गई हो--

खैर खून खाँसी खुशी, वैर प्रीति मद-पान।
रहिमन दाबे ना दबे, जानत सकल जहान।।

आकार ही नहीं, शब्दों के अर्थ और प्रयोग करने की कला भी अद्भुत है। जैसे-जैसे पढ़ते चलें, अर्थ स्वयं ही खुलता चलता है। अर्थ-सौंदर्य मोहित करता चलता है। आनन्द इस बात का है कि रस, ध्वनि, अलंकार, व्यंग्य, शब्द-शक्ति और उस पर विषय का गांभीर्य, सभी एक साथ जीवंत बने रहते हैं। समय को कवि पहचानता है और उसी के अनुकूल आचरण करता है—

समय लाभ सम लाभ नहि, समय चूक सम चूक।
चतुरन चित रहिमन लगी, समय चूक की हूक।।

स्पष्ट है कि रहीम की भाषा में सर्जनात्मकता की गहन शक्ति है। इसमें प्रौढ़ता, गंभीरता, सरसता और सक्षमता सहज ही मिल जाती है। कई भाषाओं पर अधिकार रखने वाला यह कवि अभिव्यक्ति कौशल में समर्थ एवं सक्षम था।

शैली : भाव, विचार, विषय तथा परिस्थितियों के अनुकूल ही प्रत्येक व्यक्ति की शैली भी बदल जाती है। रहीम ने इन चारों तत्वों के अनुसार समय-समय पर अपनी शैली को भी बदला है। कभी वह सरल और सहज शैली हो जाती है तो कभी अलंकृत। रहीम ने दृष्टान्त शैली, तथ्यात्मक शैली, वर्णनात्मक शैली, उपदेशात्मक शैली, अलंकृत शैली, प्रश्नात्मक शैली, सुबोध शैली तथा प्रतीक शैली जैसी न जाने कितनी ही शैलियों को अपनाया और सभी में अपनी सिद्धता भी प्रमाणित की। रहीम को दृष्टान्त शैली तो अत्यंत प्रिय थी। यहाँ रामायण तथा पुराण के दृष्टान्त से कैसी मर्मयुक्त उक्ति है—

राम न जाते हरिन संग, सीय न रावन साथ।
जो रहीम भावी कतहूँ, होत आपुने हाथ।।

* * *

छिमा बड़न को चाहिए, छोटन को उत्पात।
का रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात।।

पौराणिक उदाहरणों से कवि अपनी बात पुष्ट भी कर देता है और साहित्य को समृद्ध भी बनाता है। कवि ने सैकड़ों दृष्टान्त अपनाए हैं जिनसे उनकी सूझ-बूझ तथा मनोवैज्ञानिक पकड़ का भी पता चलता है। इसी प्रकार कुछ अन्य शैलियाँ भी देखी जा सकती हैं—

प्रतीक शैली

सर सूखे पच्छी उड़ै, औरे सरन समाहिं।
दीन मीन बिन पच्छ के, कहु रहीम कहँ जाहिं।।

अलंकृत शैली

रहिमन यह तन सूप है, लीजै जगत पछोर।
हलुकन को उड़ि जान दै, गरुए राखि बटोर।।

प्रश्न शैली

कहीं रहीम धन बढ़ि घटे, जाति धनिन की बात।
बढ़ै घटै उनको कहा, घास बेचि जे खात।।

स्पष्ट है कि रहीम ने विषय के अनुकूल विभिन्न नीति-शैलियों को अपनाया है।

9.7.2 मुहावरे और लोकोक्तियाँ

रहीम की असाधारण प्रतिभा उनके मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग में भी देखी जा सकती है। भाषा को सशक्त करने वाले इन उपकरणों का तिरस्कार, रहीम जैसा लोक-कवि कैसे कर सकता था। रहीम ने अपनी भाषा ही अधिकांशतः मुहावरेदार रखी है, परन्तु सहजता उसका धर्म रहा

है। रहीम ने **बलि-बलि जाना**, **फजीहत होना**, **कसौटी कसना**, **काज सरना**, **कड़ुए मुख होना**, **रमे रहना**, **स्वर देना**, **गौ बार टूटना**, **दुर्दिन पड़ना**, **लाख टका मोल लेना**, **बात बिगड़ना**, **भाड़ झौंकना**, **भीर पड़ना**, **अति करना**, **पीठ दिखाना**, **बड़े पेट होना** तथा **पावक में चलना**, जैसे न जाने कितने ही मुहावरों का सुंदर एवं सटीक प्रयोग करते हुए भावों को रूपायित कर दिया है। इसी प्रकार **परयौ उड़ावन मोकौ सब दिन काग**, **बौरी बाँझ न जाने पीर**, **बरसत मेघ मूसलाधार**, **रहै प्रान परि पलिकनि**, **भरयो हित साँसन आँसुन नैन**, **ढोल बजा बजाकर पैरों बेढ़ी पड़ना**, **आन (और) की आन हो जाना**, **आठों याम कूच का नगारा बजना** आदि बहुत सी लोक प्रचलित उक्तियों का सटीक प्रयोग भी रहीम की लोक भूमिगत रुचि तथा गंध को दर्शाते हैं। उक्ति-वैचित्र्य तथा अनुभूति की तीव्रता मिलकर वर्ण्य विषय को चमत्कृत कर देते हैं। कुछ उदाहरण देखिए जिसमें कई मुहावरे एक साथ दिए गए हैं –

> रहिमन **करि सम बल नही**, **मानत प्रभु की धाक**।
> **दांत दिखावन दीन ह्वै**, चलत **घिसावत नाक**।।

ऐसे सैकड़ों उदाहरण जुटाए जा सकते हैं जिनमें मुहावरे, लोकोक्तियाँ तथा व्यंग्योक्तियाँ एक साथ देखी जाती हैं। कहीं एक ही छंद में चार-पाँच मुहावरे भी हैं तो कहीं एक या दो भी। इसी प्रकार कुछ नवीन प्रयोग भी कवि ने किए हैं। **नवत पेट के हेत**, तथा **थोथे बादर क्वार के** का प्रयोग देखिए–

> काके-काके नवत हम, अपन पेट के हेत।
>
> * * *
>
> थोथे बादर क्वार के, ज्यों रहीम घहरात।।

कहा जाता है कि सोते को तो जगाया जा सकता है परन्तु जो व्यक्ति जागते हुए सोने का नाटक करे उसे कैसे जगाया जाए। रहीम ने लोक-प्रचलित इस उक्ति को पकड़ लिया–

> अनकीन्हीं बातें करै, जागत ही रहि सोय।
> ताहि सिखाय जगायिबों, रहिमन उचित न होय।।

अंत में, कह सकते हैं कि कवि ने अपनी गहरी सूझ, अनूठी कल्पना एवं शब्दार्थ तथा लक्षणा-व्यंजना शक्ति के प्रयोग से लोक ज्ञान और अनुभव को भर-भर कर मुट्ठी बाँटा एवं लुटाया है। भाव, विषय तथा वर्णन कौशल के अनुरूप मुहावरे और उक्तियों का चयन रहीम को बेजोड़ बना देता है।

9.7.3 कल्पना, ध्वनि और शब्द शक्ति

रहीम के काव्य में रमणीयता तथा प्रभावोत्पाकता का श्रेय, उनकी कल्पनात्मक क्षमता, ध्वन्यर्थपरक सूक्ष्मता तथा शब्द प्रयोग की शक्तियों को ही जाता है। शब्दार्थ में जहाँ तक **कल्पना** का क्षेत्र है, रहीम इसके द्वारा नीरस को सरस बना देते हैं दुर्बोध को सहज बना देते हैं, अरुचिकर में रुचि पैदा कर देते हैं। जन-जीवन और लोक अनुभव की छोटी या बड़ी किसी भी घटना के माध्यम से नीति को प्रतिपादित कर देना उनकी कल्पना शक्ति का ही कमाल है। वे मौलिक कल्पनाओं में भी दक्ष हैं, सरल और संश्लिष्ट कल्पनाएँ भी उनके संकेतों पर चलती हैं। वे पुराण और इतिहास से भी प्रेरणा लेते हैं। रहीम की मौलिक तथा सटीक कल्पना के दो एक उदाहरण देखिए। दीपक की लौ जलते ही पूरे अंधकार को खा जाती है और उगलती है कज्जल (कालिमा)। अर्थात् जैसा खाना, वैसा उगलना। तम को खाना खोटा काम करना ही तो है–

> रहिमन खोटी आदि की, सो परिनाम लखाय।
> जैसे दीपक तम भखै, कज्जल वमन कराय।।

इसी प्रकार एक अन्य कल्पना देखिए। बादल का पिता सागर है। उसका जल खारा होता है अतः कोई पीना नहीं चाहता। इसी के कारण सागर का बेटा बादल भी अपयश का भागी बनता है। आकाश तक ऊँचा उठकर भी वह काले मुख वाला ही रहता है। अर्थात् पिता की करनी और पुत्र की भरनी–

> रहिमन जाके बाप को, पानी पिअत न कोय।
> ताकी गैल अकास लौं, क्यों न कालिमा होय।।

ध्वनि के बिना काव्यत्व असंभव माना जाता है। ध्वनि को काव्य की आत्मा भी कहा जाता है। रहीम के काव्य में भी ध्वनि के विभिन्न भेद-उपभेदों के दर्शन होते हैं। यहाँ ध्वनि के सैकड़ों भेदों के चक्कर में न पड़कर हम केवल इतना स्पष्ट करना चाहेंगे कि चाहे अभिधामूला ध्वनि हो या अर्थशक्ति संभवा संलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि, रहीम की पकड़ अत्यंत मजबूत है। कहीं वे 'रहिमन पानी राखिए', से पूरी बात को कह डालते हैं तो कहीं 'रहिमन अंसुआ नयन ढरि' के माध्यम से।

कहीं वे 'पुरुष-पुरातन की वधु' कहकर अद्भुत व्यंग्य करते हैं। अर्थशक्ति-संभवा संलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि में किसी शब्द विशेष पर बल न देकर उसके अर्थ की शक्ति द्वारा व्यंग्य ध्वनित होता है। एक उदाहरण देखिए। रहीम का ध्वन्यार्थ कितनी गहरी पकड़ रखता है और दूर की कौड़ी लाता है। अधिक लोभ और लालसा के परिणाम स्वरूप ही हाथी की यह दुर्गति है –

बड़े पेट के भरन को, कै रहीम दुख वाढ़ि।
यातें हाथिहि हहरि कै, दिये दाँत द्वै काढ़ि।।

इसी प्रकार रहीम का **शब्द शक्ति व्यापार** भी अत्यंत सराहनीय है। अभिधा हो, लक्षणा या व्यंजना, कवि का बल सहजता पर ही रहा। यों मूलत: वे अभिधा के कवि ही हैं। सीधा सरल अर्थ सम्प्रेषित करना ही उनका अभिप्रेत भी है। अभिधा का सीधा-सहज उदाहरण देखिए –

रहिमन तीन प्रकार ते, हित अनहित पहचानि।
परबस परे पड़ोस वस, परे मामला जानि।।

रहीम की लक्षणा शक्ति संबंधी सूझ-बूझ उस उदाहरण में देखी जा सकती है जहाँ वे कहते हैं वि कुसंग में रहकर कुशलता चाहने वाले मूर्ख हैं। समुद्र की महिमा भी रावण के पड़ोस में बसने से घट गई थी। उसे भी राम की क्रोधाग्नि का शिकार होना पड़ा था। एक अन्य उदाहरण देखिए, कितना सुंदर अर्थ भर दिया है कवि ने। एक दीप से चारों तरफ प्रकाश फैल जाता है। फिर भला नेत्र रूपी दो-दो दीपक जलने पर तन की द्युति कैसे छिप सकती है? तन-स्नेह कहकर रहीम ने सहज-अर्थ को विशिष्ट बना दिया –

कह रहीम एक दीप तें प्रगट सबै दुति होय।
तन सनेह कैसे दुरै, दृग दीपक जुरी दोय।।

इसी प्रकार एकाधिक अर्थों को व्यंजित करने की कला में भी रहीम बेजोड़ हैं। व्यंजना का चमत्कार कहीं 'रहिमन पानी राखिए' में मिलता है तो कहीं 'ज्यों रहीम गति दीप की' में। भगत-भगत (भक्त और भागते-भागते) की सटीक व्यंजना देखिए –

कह रहीम जग मारियो, नैन बान की चोट।
भगत-भगत कोउ बचि गयो, चरन कमल की ओट।।

अत: स्पष्ट है कि रहीम के काव्य में कल्पना, ध्वनि तथा शब्द शक्ति व्यापार के भी सूक्ष्म तथा शास्त्रनुकूल दर्शन होते हैं। नपे-तुले और सशक्त प्रयोग से रहीम उत्कृष्ट कवि बन जाते हैं।

9.7.4 अलंकार और छंद

अलंकार और छंद योजना भी अभिव्यक्ति कौशल के महत्वपूर्ण अंग हैं। रहीम ने इन दोनों उपकरणों से भी अपनी काव्य प्रतिभा को सुसज्जित किया है। रहीम द्वारा प्रयुक्त अधिकांश अलंकार स्वाभाविक तथा सौंदर्यवर्द्धक बन गए हैं। शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक, श्लेष, तथा पुनरूक्ति-प्रकाश आदि अलंकार देखे जा सकते हैं तो अर्थालंकारों में कवि के सर्वप्रिय अलंकार दृष्टान्त, उदाहरण, उपमा, रूपक, दीपक, स्वभावोक्ति, निदर्शना, असंगति, विशेषोक्ति, उत्प्रेक्षा तद्गुण तथा मीलित आदि हैं। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं –

एक ही वर्ण की आवृत्ति एकाधिक बार हो तो **अनुप्रास** अलंकार होता है–
ससि की सीतल चाँदनी, **सुन्दर सबहि** सुहाय।

एक ही शब्द की आवृत्ति एकाधिक बार हो और हर बार अर्थ भी भिन्न हो तो **यमक** –

रहिमन अपने पेट सों, बहुत कहयो समझाय।
जो तू **अनखाय** रहे, तो सों को **अनखाय**।।

यहाँ पहले 'अनखाय' से तात्पर्य है बिना खाए और दूसरे 'अनखाय' से अर्थ है बुरा मानना या घृण करना।

इसी प्रकार जहाँ एक शब्द का प्रयोग एक ही बार हो पर उसके एकाधिक अर्थ हों–**श्लेष** –

रहिमन **पानी** राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती मानस चून।।

यहाँ पानी शब्द–चमक, इज्जत या शर्म तथा जल के लिए प्रयुक्त है। इसी प्रकार **'पुरुष-पुरातन'** प्रयोग में भी दो अर्थ हैं–भगवान विष्णु तथा वृद्ध पुरुष।

दूसरी तरफ केतिक-केतिक, घटत-घटत, बुझि-बुझि, बजाय-बजाय में **पुनरूक्ति प्रकाश** अलंकार देखने को मिलता है।

अर्थालंकारों में **दृष्टान्त** अलंकार कवि का सर्वप्रिय अलंकार है। वास्तव में रहीम की काव्य शैली की विशिष्टता ही दृष्टान्त में उभरती है। दो समान वाक्य जब परस्पर बिम्ब, प्रतिबिम्ब भाव पैदा करें तो दृष्टान्त अलंका॰ नता है। अर्थात् पहले एक कथन प्रस्तुत किया जाता है और फिर उसकी पुष्टि करने वाला दूसरा कथन। रहीम के सैंकड़ों दोहे इसी प्रकार के हैं—

बिगरी बात बन नहीं, लाख करौ किन कोय।
रहिमन फाटे दूध को, मथै न माखन होय।।

* * *

जे गरीब पर हित करै, ते रहीम बड़ लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग।।

इसी प्रकार **उदाहरण** अलंकार भी रहीम का प्रिय अलंकार है। पहले कथन की पुष्टि में ज्यों (अर्थात् जिस प्रकार) कहकर जहाँ दूसरा कथन रखा जाता है वहाँ उदाहरण अलंकार देखा जा सकता है। ज्यौ बढ़री अंखियाँ निरखि, तथा बाँटन बारे के लगे, ज्यों मेंहदी कौ रंग, जैसे कई उदाहरण उद्धृत किए जा सकते हैं।

दो वस्तुएँ भिन्न या असमान होकर भी जहाँ साधर्म्य द्वारा साम्यमूलक संबंध स्थापित करती हैं वहाँ **उपमा** अलंकार होता है। रहीम के नीति काव्य में इसके अधिकांश उदाहरण मिलते हैं। सम, की सी, ऐसे, जैसे आदि प्रयोगों से कवि ने उपमाओं का भंडार जुटाया है। एक उदाहरण दृष्टव्य है—

धरती की सी रीति है, सीत घाम अरु मेह।
जैसी परे सो सहि रहै, त्यों रहीम यह देह।।

इसी प्रकार 'कागज को सो पूतरा' तथा 'अमृत ऐसे वचन में' भी उपमा अलंकार है।

जहाँ उपमान और उपमेय मिलकर एक हो जाएँ अर्थात् वाचक धर्म और साधर्म्य वहाँ न रहे, **रूपक अलंकार** होता है। रहीम ने जी भर के रूपक बाँधे हैं। कहीं वे 'तन स्नेह कैसे दुरे, दृग, दीपक जरू दोय,' कहकर नेत्रों को दीपक बना देते हैं तो कहीं "नैन बान की चोट' कहकर नेत्रों को बाण बना देते हैं। इसी प्रकार 'रहिमन यह तन सूप है' तथा 'मनसिज माली की उपज' आदि भी रूपक के सुंदर उदाहरण हैं।

असंगति अलंकार में कारण और कार्य की भिन्नता होती है। रहीम इस चमत्कार को "फल श्यामा के उर लगे, फूल प्याम उर आँहि" कहकर प्रस्तुत करते हैं। किसी वस्तु कथन या घटना के अर्थ का काल्पनिक अथवा प्रामाणिक समर्थन करना **काव्यलिंग** अलंकार की विशेषता है। रहीम कितने सुंदर तरीके से इसे प्रस्तुत करते हैं—

रहिमन देख बडेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवै सुई, कहा करै तरवारि।।

उपमेय की उपमान में संभावना प्रकट करना **उत्प्रेक्षा** अलंकार का लक्षण है। रहीम की शृंगार दृष्टि का कमाल देखिए। नायिका बिछुए पहन कर प्रियतम के साथ क्रीडा कर रही है और कवि कहता है ऐसा जान पड़ता है जैसे कामदेव की दुदुंभी आधी रात में बज रही है —

पहने जो बिछुआ खरी, पिय के संग अँगरात।
रति पति की नौवत मनौ, बाजत आधी रात।।

रहीम की **अन्योक्ति** का तो जवाब ही नहीं है। जीवन साधना और गहन अनुभूति का प्रखर रंग इनमें भरा है। विशिष्ट भावों से ओत-प्रोत तथा सौंदर्यमयी एक अन्योक्ति देखिए —

पावस देखि रहीम मन, कोयल साधे मौन।
अब दादुर वक्ता भये हमको पूछत कौन।।

रहीम का युग, छन्द-बद्ध कविता का युग था। **छन्द योजना** कौशल में सिद्धहस्त रहीम भला इस दिशा में कैसे पीछे रहते। अन्य प्रचलित छंदों का सार्थक एवं सटीक प्रयोग करने वाले इस कवि ने तो "बरवै" जैसे नवीन छंद को जन्म भी दिया। रहीम की छंद योजना भाषा में स्वर-सारस्य, लय-साम्य तथा नाद की मधुरता भर देती है। लय और तुक का सम्मिश्रण छन्दबद्ध भाव को जन-जन के प्राणों में उतार देता है। नायिका-भेद का सर्वथा नवीन छंद में विस्तृत विवेचन करने वाले इस आचार्य-कवि ने बरवै के महत्व को स्पष्ट भी किया है —

बेधक अनियारो बड़ो, समुझैं चतुर सुजान।
सुनत जात चित चाव पै, यह बरवै के बान।।

रहीम का छन्द-शास्त्रीय ज्ञान व्यापक तथा गहन था। मात्रिक एवं वर्णिक दोनों ही प्रकार के छंदों तथा उनके भेद-उपभेदों को कवि ने अपनाया है। दोहा, सोरठा, बरवै, कवित्त, सवैया, मत्तगयन्द,

सुन्दरि, किरीट, दुर्मिल, घनाक्षरी तथा मालिनी आदि छंदों का कवि ने उत्कृष्ट प्रयोग किया है। नीति- उपदेश तथा नगर शोभा वर्णन वे दोहों में करते हैं। नायिका भेद बरवै में, शृंगारिक रचनाएँ सवैये और सोरठे में, तथा मदनाष्टक मालिनी छंद में रची गई हैं। रहीम को बरवै और दोहा, छंद अत्यंत प्रिय हैं। सर्वप्रथम इन्ही का प्रयोग देखिए। बरवै छंद के प्रथम और तीसरे चरण में बारह-बारह तथा दूसरे तथा चौथे चरण में सात-सात मात्राएँ होती हैं तथा अन्त में जगण (ISI) होता है :

12 7 जगण

II IIII II SS I I I IS I

जक न परत बिन हेरे, सखिन सरोस। = 12 + 7 = 19

हरि न मिलत बसि नैरे, यह अफसोस। = 12 + 7 = 19

यही नहीं, कवि फारसी भाषा में भी बरवै का अत्यंत सटीक निर्वाह करने में दक्ष है। कहीं-कहीं अपवाद स्वरूप इन मात्राओं का नियम भंग हुआ है परन्तु अधिकांशतः कवि इस नव्य-छंद की प्रस्तुति में पूर्णतः सफल हुआ है।

रहीम ने भी तुलसी की तरह दोहे की 13, 11 मात्राओं के मान रूप को स्थापित किया। सही अर्थों में दोहे को शक्ति ही इन दो कवियों ने प्रदान की। कवि ने भाव का अपना भंडार छोटे-छोटे दोहों में भर दिया है। परिणामतः दोहे सुन्दर, आकर्षक और अद्भुत शक्ति सम्पन्न हो गए हैं :

13 11

III III SII IS IS I S I I S I

मथत मथत माखन रहै, दही मही बिलगाय। = 13 + 11 = 24

रहिमन सोई मीत है, भीर परे ठहराय।। = 13 + 11 = 24

मालिनी छंद वह होता है जिसमें दो नगण (III) एक मगण (SSS) तथा दो यगण (ISS) होते हैं।

नगण जगण मगण यगण यगण

III III S S S I S S I SS

तरक तरनि सी हैं तीर सी नोक दारैं।

अमल कमल सी हैं दीर्घ हैं दिन बिदारैं।।
मधुर मधुप हेरैं माल मस्ती न राखें।
विससति मन मेरे सुंदरी श्याम आँखें।।

ब्रजभाषा का अति प्रिय एवं प्रचलित छंद है **सवैया**। 22 से 26 वर्णों तक यह छंद कई प्रकार का होता है। रहीम ने दुर्मिल, घनाक्षरी, मनगयंद, किरीट तथा सुन्दरि आदि सवैयों की रचना भी की है। प्रत्येक चरण में आठ सगण (IIS) वाला **दुर्मिल सवैया** देखिए

सगण सगण सगण सगण सगण सगण सगण सगण

I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S

जिहि कारन बार न लाय कहूँ गहि संभु सरासन दोय किया।

23 वर्णों वाला **मत्तगयन्द सवैया** देखिए जिसके प्रत्येक चरण में सात भगण (SII) तथा अन्त में दो गुरू (S) होते हैं :

भगण भगण भगण भगण भगण भगण भगण गु.गु.

S I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S S

दीन चहै करतार जिन्हें सुख सोत रहीम टरे नहि टारे।

इसी प्रकार घनाक्षरी, किरीट तथा सुन्दरि सवैये भी देखे जा सकते हैं। रहीम ने पद, सोरठा तथा छप्पय छंद की रचना भी की है। परन्तु इसकी रचना में कवि का चित्त अधिक नहीं रमता। विशिष्ट बात यह है कि रहीम का छंद विधान भावों के प्रकाशन में पूर्णतः सफल है। बरवै के लिए कवि अवधी भाषा को चुनता है तो अन्य छंदों के लिए ब्रजभाषा को। वर्ण्य-विषय के अनुकूल ही कवि छंद का चयन भी करता है। रहीम की कवित्व-शक्ति के प्रमाण तथा अभिव्यक्ति-कौशल के ये उपकरण रहीम के योगदान में चार चाँद लगा देते हैं।

9.8 आदान-प्रदान

रहीम तथा उनके काव्य के इस समस्त विवेचन के पश्चात संक्षेप में यह चर्चा करना भी अनिवार्य सा लगता है कि रहीम साहित्य पर किन किन का प्रभाव रहा और रहीम ने किसे-किसे प्रभापित किया। इतना तो स्पष्ट है कि पूर्ववर्ती परम्परा में रहीम संस्कृत के नीतिकाव्य से अत्यंत प्रभावित हैं। उन्होंने वहाँ से बहुत कुछ प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप में लिया भी है। जीवन की लगभग प्रत्येक स्थिति, घटना, वातावरण तथा व्यवहार की अभिव्यक्ति संस्कृत साहित्य में हुई है। अतः संस्कृत काव्य की छाया का हिन्दी साहित्य में आ जाना अस्वाभाविक नहीं है। भर्तृहरि के बहुत से श्लोकों का प्रभाव रहीम पर दिखाई देता है। कहीं कहीं ऐसा लगता है जैसे रहीम ने भाषांतरण अथवा अनुवाद खुद कर दिया हो। राम न जाते हिरन संग, महिमा घटि समुद्र की, रावन बसौ परोस, जो रहीम उत्तम प्रकृति आदि कई छंद हैं जिन पर स्पष्ट प्रभाव दीख पड़ता है। इसी प्रकार चाणक्य नीति, हनुमन्नाष्टक, पंचतन्त्र, विदुर-नीति, रामायण तथा वेद पुराण आदि का प्रभाव भी स्पष्ट है।

संस्कृत से इतर भाषाओं में पालि, अपभ्रंश, प्राकृत तथा फारसी भाषा के साहित्य का प्रभाव भी रहीम पर यत्र-तत्र दिखाई देता है। 'रहिमन वे नर मर चुके, दोहे पर पालि के भाव की छाया है। इसी प्रकार 'कमला थिर न रहीम कहि', दोहे पर अपभ्रंश के प्रभाव को भी देखा जा सकता है। कुछ उदाहरण तो ऐसे भी हैं जो संस्कृत से प्राकृत में आए और प्राकृत से रहीम ने प्रभाव ग्रहण किया।

हिन्दी के मध्यकाल में भी बहुत से कवियों का रहीम से भाव साम्य देखा जा सकता है। कबीर तथा सूरदास का प्रभाव भी रहीम पर स्पष्ट ही मिलता है। इसी प्रकार तुलसी और रहीम समसामयिक कवि थे अतः दोनों में बहुत सी जगह भाव साम्य मिलता है। इन दोनों कवियों का परस्पर पत्र-व्यवहार तथा रहीम के बरवै छंद पर तुलसी का "बरवै रामायण" रचना भी इसी तथ्य का सूचक है। तुलसी के रामचरित मानस का प्रभाव भी रहीम पर है। दोनों कवि एक दूसरे के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित थे। कुछ उदाहरण भाव-साम्य के देखिए—

नीच निचाई नहि तजै, सज्जनहू के संग।
तुलसी चंदन विटप बसि, विष बिनु भये न भुअंग।
—तुलसीदास

* * *

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत-कुसंग।
चन्दन विष व्याप्त नहीं, लिपटे रहत भुजंग।।
—रहीम

* * *

इस प्रकार—

तुलसी पावस के समय धरी कोकिला मौन।
अब तो दादुर बोलिहैं, हमहि पूछिहैं कौन।।
—तुलसीदास

* * *

पावस देखि रहीम मन, कोयल साधे मौन।
अब दादुर वक्ता भये, हम कौं पूछत कौन।।
—रहीम

* * *

यही नहीं, इसी प्रकार के लगभग बीस-पच्चीस दोहे उद्धृत किए जा सकते हैं जहाँ परस्पर दोनों कवियों का भाव, विषय, कथ्य, भाषा तथा शैली आदि भी एक से लगते हैं। यह कहना कठिन है कि कौन किसे कहाँ प्रभावित करता है, पर परस्पर ये दोनों महान कवि भाव की समानता रखते थे।

मित्रता, विचार तथा साहित्य-भावों का आदान-प्रदान इन दोनों कवियों में चलता रहा। वास्तव में दोहों के स्तर की समानता इन दोनों में ही हो सकती है। दोनों भक्त, संस्कृत के पंडित तथा भारतीयता के प्रतीक हैं। दोनों की भाषा जन-भाषा है तथा दोनों का ब्रज और अवधी पर भी समान अधिकार है। वास्तव में राम भक्ति परम्परा में जो तुलसी का स्थान है, नीति काव्य परम्परा में वही भूमिका रहीम की भी रही है।

इनके अतिरिक्त भक्त कवि व्यास, रसमयी कविता के पर्जक रसखान, रीति के प्रमुख कवि बिहारी, मतिराम, रसनिधि, वृन्द तथा गिरधर आदि कवियों पर भी रहीम के कथ्य और भावों का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है। रहीम की शब्द रचना तथा वर्णन शैली ने भी बाद के बहुत से कवियों को प्रभावित किया है।

9.9 मूल्यांकन

कुल मिलाकर रहीम के समग्र भाव-सौंदर्य तथा अभिव्यक्ति कौशल को देखकर उनकी प्रतिभा-शक्ति के चमत्कार का लोहा मानना पड़ता है। कवि रहीम, मन की आँखों से युग धाराओं की तह में बसे जीवन रूपों तथा मूल्यों का सूक्ष्म एवं गहन दर्शन कर रहे थे। इसी का परिणाम है कि नीति, भक्ति, शृंगार, प्रकृति, आध्यात्म, शास्त्र, लोक, साहित्य, भाषा तथा अन्य अभिव्यक्ति कौशल आदि में कवि की गहन अनुभूति पाठकों को संवेदनशील बना कर कवि के विराट व्यक्तित्व को साकार कर देती है। कवि, संस्कृत के भाव सौन्दर्य को भी अपनी कल्पना तथा भाव शक्ति से यथावत प्रस्तुत करने में पूर्णतः सफल रहा है। विशिष्ट दृष्टि, मौलिक चिंतन तथा नैतिक मूल्य स्वयं ही कवि का मूल्यांकन कर देते हैं। दूसरे कवियों से प्रेरणा और प्रभाव लेने वाले इस कवि ने अपनी मौलिक प्रतिभा तथा गहन भावुक अनुभूति से उस भाव और विचार को नवीनतम बना दिया। शैली और दृष्टिकोण की मौलिकता तो रहीम का खास गुण है। यही उनकी काव्य-निपुणता का सूचक भी है। मतिराम, रसखान, गंग, बिहारी आदि कवि विषय वस्तु भाषा-शैली तथा भाव-योजना आदि अनेक दृष्टियों से रहीम के प्रभाव को ग्रहण करते हैं। गहरी अनुभूति, अद्‌भुत तथा सरल भावाभिव्यंजना कवि के कथ्य को सहज ही सम्प्रेषणीय बना देते हैं।

बोध प्रश्न 3

नोट: i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1 रहीम बहुभाषाओं के विद्वान थे बताइए वे कौन-कौन सी प्रमुख भाषाएँ जानते थे?

....

....

....

....

....

2 रहीम ने बहुत सी शैलियाँ अपनाई। कुछ प्रमुख काव्य-शैलियों के नाम बताइए?

....

....

....

....

3 रहीम द्वारा प्रयुक्त किन्ही पाँच मुहावरों का अर्थ सहित उल्लेख करें।

....

....

....

....

....

4 रहीम द्वारा प्रयुक्त अलंकारों में से किन्ही दो के उदाहरण देकर उन्हें सिद्ध करें।

....

....

....

....

5 रहीम ने कौन-कौन से प्रमुख छंद अपनाए तथा उन्होंने कौन सा मौलिक छंद दिया?

....

....

....

....

9.10 संदर्भ सहित व्याख्या

अब आप पूर्व मध्यकाल अर्थात् भक्तिकाल के महान कवि तथा नीतिकार के व्यक्तित्व और कृतित्व का ध्यानपूर्वक अध्ययन कर चुके हैं। इसी महाकवि के काव्यांशों की व्याख्या किस प्रकार की जानी चाहिए, इसके लिए हम रहीम के कुछ पदों की व्याख्या प्रस्तुत कर रहे हैं। इसके बाद कुछ पद अभ्यास के लिए भी दिए जा रहे हैं जिनकी संदर्भ सहित व्याख्या आप स्वयं करेंगे।

1 पद :

रहिमन अँसुआ नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ।।

संदर्भ तथा प्रसंग : प्रस्तुत वाक्यांश महान नीतिकार तथा दूरदृष्टा कवि रहीम के नीति-संग्रह "दोहावली" से लिया गया है। युग कवि रहीम अपने से पहले की पूरी काव्य तथा लोक परम्परा को देखकर जो ठोस एवं प्रेरक अनुभव बटोर रहे थे उन्हें कविता में ढाल कर, आने वाले युगों के मार्गदर्शन के लिए प्रस्तुत करते रहे। इस दोहे में जीवन का ऐसा ही एक कटु सत्य है जिससे मानव जाति को शिक्षा लेनी चाहिए। घर से निकाले गए व्यक्ति से क्या हानि होती या हो सकती है, उसी की चर्चा यहाँ की गई है:

व्याख्या : रहीम कहते हैं कि नेत्रों में घर बनाकर रहने वाले आँसू जब ढुलक कर बाहर आ बैठते हैं तो किसी भी जीव के हृदय के भीतर छिपे दुख, दर्द, पीड़ा या उसकी वेदना का रहस्य खोल देते हैं। अर्थात् वह व्यक्ति या जीव दुखी था तभी इन अश्रुओं के बाहर आने की नौबत आई। इन अश्रुओं ने मौन रहकर भी दुख और वेदना की बात पूरे संसार से कह दी। फिर कवि तर्क देता है कि ऐसा भला क्यों न होता? जिसे घर से निकालेंगे वह भला आपके भेद या रहस्य को क्यों नहीं खोलेगा? वह तो ऐसा करेगा ही।

विशेष :

1. कवि ने इतिहास सम्मत विभीषण के उदाहरण तथा युग-सम्मत सत्य को, अद्‌भुत कौशल से एक दूसरे का पूरक बना दिया है।
2. नेत्र, आँसुओं का घर होते हैं। इसलिए अश्रु वहाँ छिपे रहते हैं। कवि की कल्पना-शक्ति अत्यंत प्रखर है।
3. "जाहि निकारो" कहकर रहीम ने समस्त जड़-चेतन को इसमें समाहित कर लिया। जिसे भी घर से निकाला जायेगा वह तो भेद कहेगा ही। ठीक वैसे ही जैसे विभीषण को रावण ने घर से निकाल दिया था। हालांकि विभीषण प्रसंग की चर्चा भी यहाँ नहीं, परन्तु कवि की व्यंजना-शक्ति इसे मुखर कर देती है।
4. "कस न" का प्रयोग करके कवि यह कहना चाहता है कि यह तो स्वाभाविक ही है। "कैसे नहीं" कहेगा वह इस रहस्य को?
5. कवि दृष्टान्त पहले देकर दूसरे कथन में अपनी बात को पुष्ट करता है।
6. एक छोटे से दोहे में जीवन सत्य को कवि ने बाँध दिया है।
7. नीति के इस संदेश को कवि अत्यंत सहज, सरल तथा लोक जीवन में प्रचलित "ब्रजभाषा" से सम्प्रेषित करता है।

2 पद :

रहिमन पानी राखिए बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरे मोती मानस चून।।

संदर्भ तथा प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियां.................... प्रस्तुत करते रहे। इस दोहे में रहीम ने "पानी" शब्द के चमत्कारी अर्थ से जन-जीवन के तीन महत्वपूर्ण पक्षों, क्षेत्रों और दिशाओं को स्पष्ट किया है। रहीम ने अनुभव के आधार पर यह बताया कि किसके अभाव में मोती, मनुष्य तथा आटे का होना व्यर्थ है--

व्याख्या : कवि कहता है कि जीवन में "पानी" की रक्षा करते हुए उसे सदैव सुरक्षित रखना चाहिए। क्योंकि पानी के बिना तो 'सब कुछ' सूना और व्यर्थ है। दूसरी पंक्ति में कवि ने दृष्टान्त दिया कि पानी चुक जाने पर मोती, मनुष्य और चून (आटा) का होना भी व्यर्थ है अर्थात् बिना पानी के उनका कल्याण या उद्धार भी नहीं हो सकता। "पानी" शब्द के तीन अर्थ हैं और ये तीनों अर्थ मोती, मनुष्य और आटे के संदर्भ में लिए गए हैं। "पानी का पहला अर्थ है चमक। अक्सर

कहा जाता है कि इन मोतियों का पानी उतर गया है या इन आभूषणों पर पानी चढ़वा दें। स्पष्ट है कि जिन मोतियों का पानी उतर गया है वे बेकार हैं। इसी प्रकार दूसरा अर्थ पानी का--इज्जत या मान है। यह अर्थ मनुष्य के संदर्भ में प्रयुक्त है। कहा जाता है कि "इस व्यक्ति की आँखों का पानी (शर्म) मर गया है। स्पष्ट है कि जिस मनुष्य की शर्म, इज्जत या मान नहीं रहे, वह भी व्यर्थ हो गया है। इसी प्रकार चून या आटा जो पानी अर्थात् जल (पेय पदार्थ) के अभाव में बेकार है। बिना पानी के आटा खाया नहीं जा सकता। अतः कवि ने युगों-युगों तक मान्य रहने वाले इस सूक्ष्म सत्य को सहज ही व्यक्त कर दिया।

विशेष :

1 रहीम ने इस महत्वपूर्ण तथा अत्यंत प्रसिद्ध दोहे में सहज तथा स्वाभाविक शैली में अपना संदेश व्यक्त कर दिया है।
2 ब्रज भाषा की सम्प्रेषण शक्ति को निखारते हुए कवि ने "पानी" शब्द को चमत्कारी बना दिया है।
3 "पानी" शब्द के प्रयोग में श्लेष अलंकार की शोभा देखी जा सकती है, जिसमें तीन अर्थ चिपके हुए हैं।
4 "पानी गये न ऊबरे" कहकर कवि यह कहना चाहता है कि बिना पानी के ये तीनों डूब जायेंगे, और पार नहीं लग सकेंगे।

नोट : अब हम नति के ही दो अन्य दोहे कुछ संकेत देकर प्रस्तुत कर रहे हैं। आप इनकी संदर्भ सहित व्याख्या का प्रयास कीजिए :

3 पद

जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं लपटे रहत भुजंग।।

संदर्भ तथा प्रसंग : ये पद्यांश.................. प्रस्तुत करते हैं। प्रकृति अर्थात् स्वभाव की चर्चा यहां की गई है। जो उत्तम स्वभाव के.................. बुरा संग या साथ भी.................. अप्रभावी.................. । कवि का अनुभव-ज्ञान.................. प्रेरक प्रसंग.................. शिक्षा प्रद दृष्टि.................. ।

व्याख्या : उत्तम प्रकृति.................. कुसंग.................. चन्दन के वृक्ष पर सर्प लिपटे रहते हैं परन्तु चन्दन विष नहीं बनता या दुष्प्रभाव ग्रहण नहीं करता.................. इसी प्रकार बुरी संगत में भी.................. उत्तम प्रकृति के लोग.................. ।

विशेष :

1 भाव-योजना का सौंदर्य
2 भाषागत सहजता
3 दृष्टान्त कौशल
4 प्रकृति या स्वभाव का मनोवैज्ञानिक अध्ययन
5 प्रेरणा तथा शिक्षाप्रद दृष्टिकोण
6 कुसंग का दूसरा दोहा "दूध कलारिन हाथ लखि मद समुझहि"

4 पद

रहिमन निज सम्पति बिना कोउ न विपत्ति सहाय।
बिनु पानी ज्यों जलज को नहिं रवि सकै बचाय।।

संदर्भ तथा प्रसंग : प्रस्तुत दोहा.................. है। रहीम का अनुभव है कि बिना अपनी सम्पत्ति के.................. कोई सहायक नहीं.................. । अपना खून अपना ही.................. का भाव.................. आप मरे बिन स्वर्ग न.................. भाई बहन, पत्नी, पिता सभी संबंधी पैसे के..................

व्याख्या : विपत्ति की कसौटी.................. पैसा और वह भी अपना.................. अन्यथा सभी रिश्ते, संबंध व्यर्थ। स्नेह, प्रेम, आत्मीयता सभी पैसे के बिना व्यर्थ हैं जैसे—पानी के अभाव में कमल की रक्षा सूर्य भी नहीं कर सकता। हवा, गर्मी, मिट्टी सब है— पर बिना पानी के वह मृतप्राय है।

विशेष :

1 जीवन का कटु सत्य—अनुभवी दृष्टि
2 भाषिक सामर्थ्य तथा शक्ति

3 "उदाहरण" अलंकार का सौन्दर्य
4 विपत्ति की कसौटी.....................पैसा.....................

5 पद

नैन सलौने अधर मधु, कह रहीम घटि कौन।
मीठो भावै लोन पै, अरू मीठे पै लोन।।

संदर्भ तथा प्रसंग : यह पद्य नीतिकाव्य में अपना अद्वितीय स्थान रखने वाले तथा रीतिकालीन शृंगार की पृष्ठभूमि तैयार करने वाले महाकवि रहीम की सृजन शक्ति की देन है। "दोहावली" रहीम की काव्य-प्रतिभा का अन्यतम उदाहरण है। कवि ने नायिका भेद में तो अपनी रसिक तथा शृंगारी दृष्टि की परतें खोली ही हैं, नायिका के रूप-सौंदर्य का भी अत्यन्त उन्माद भरा तथा स्वभावत: सहज एवं विश्वसनीय वर्णन भी किया है। इनकी नायिका का सौंदर्य रीतिमुक्त कवियों की नायिका सा सलौना और रिझाने वाला पावन सौंदर्य है, जिसमें वासना की गंध नहीं। यहाँ कवि की रसिक दृष्टि देखिए :

व्याख्या : नायिका के नयन सलौने हैं तथा होंठ शहद के समान मीठे। समय अनुसार दोनों का अपना अपना विशिष्ट महत्व होता है। नमक की आवश्यकता मधु से कम नहीं होती तथा मधु (मीठे) की उपयोगिता नमक से कम नहीं। इसीलिए रहीम कहते हैं इन दोनों में से कौन कम है? अर्थात् दोनों एक दूसरे से बढ़कर हैं। अपने इस कथन को कवि कितनी सहजता से पुष्ट कर देता है, यही रहीम की अपनी खूबी है। अत्यंत नमकीन खा लेने पर मनुष्य का जी भर सा जाता है और मीठा खाने की लालसा उसे कुरेदती रहती है। इसी प्रकार मीठा अधिक खाने पर भी मनुष्य को नमकीन खाने की इच्छा बलवती हो जाती है। महत्वपूर्ण यह भी है कि शरीर में आँख और होंठ, दोनों का ही खास महत्व और स्थान है। कोई किसी से कम नहीं है। दोनों एक-दूसरे से बढ़ कर हैं।

विशेष :

1 मानव शरीर में नेत्रों और होठों का महत्व असंदिग्ध है। नायिका के सौंदर्य में चार-चाँद लगाने वाले इन दो महत्वपूर्ण अंगों की सलौनी-कसक कवि के हृदय में विराजमान है।
2 मानव स्वभाव का कवि ने मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। मीठा और नमकीन परस्पर विपरीत आस्वाद वाले हैं और इनका एक दूसरे की तरफ़ आकर्षण कवि को प्रेरित करता है।
3 "सलौने" विशेषण, रूप या यौवन का होता है। पर रहीम ने यह लावण्य नेत्रों में अनुभव किया है। अधरों की मिठास जग विदित है।
4 "मीठो भावै लोन पै, अरू मीठे पै लोन" में अनुप्रास अलंकार है।
5 ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुसार कवि ने शृंगार प्रसंग का सरस वर्णन किया है।

6 पद

जब तें बिछुरे मितवा, कहू कस चैन।
रहत भरयौ हिय साँसन, आँसुन नैन।।

संदर्भ तथा प्रसंग : रहीम शृंगार के संयोग वर्णन में तो कुशल हैं ही, उसके विप्रलम्भ पक्ष की सूक्ष्म अनुभूति भी उनकी विशिष्टता है। "बरवै" छंद के जनक रहीम ने बरवै-नायिक-भेद में नायिका के विरह को भी अत्यंत सहृदयता से अनुभव किया तथा अन्य दिग्गज कवियों की तरह उसकी मार्मिक अभिव्यक्ति की। रहीम का विरह-वर्णन बिहारी की श्वासों से उड़ने वाली नायिका का सा हास्यास्पद विरह नहीं, उसमें जीवन की सच्ची-वेदना और तड़पता-विछोह है। नायक का बिछोह और उस पर सावन का महीना, नायिका पर वज्रपात है। कवि की कुशल अभिव्यक्ति देखिए :

व्याख्या : "मीत" शब्द प्रेमी के लिए प्रयुक्त किया जाता है। नायिका अपने प्रेमी (मितवा) से बिछुड़ गई है और इस बिछोह या दूरी ने उसे बेचैन कर रखा है। वह इस विकल स्थिति में पूछती है कि भला ऐसी स्थिति में जब प्रियतम बिछड़े हों, चैन कैसे मिल सकता है? यही नहीं, दुर्भाग्य यह है कि कामदेव की अग्नि को और भड़काने वाला यह सावन का महीना हृदय की साँसों को और तेज कर देता है। यह तेज साँसें कामाग्नि को हवा देकर नित्त बढ़ाती जा रही हैं। दूसरी तरफ नयन निरंतर अश्रु गिरा रहे हैं। प्रिय दर्शन के अभाव में, नेत्र भी रो रहे हैं।

विशेष :

1 'मितवा' शब्द अत्यंत सटीक प्रयोग है जो कवि के मूल कथ्य को सम्प्रेषित करने में पूर्णत: समर्थ है।

2 विरहिणी नायिका के हृदयगत भाव की सच्ची अनुभूति कवि ने की है।
3 सावन के महीने में वर्षा होती रहती है। नायिका के नेत्र भी निरंतर बरस रहे हैं।
4 कवि ने नायिका की विडम्बना को अत्यंत सूक्ष्म-दृष्टि से देखा है। एक तरफ तो नेत्र, अश्रुजल निरंतर बरसा कर कामाग्नि को बुझाना चाहते हैं जबकि दूसरी तरफ साँसें तेज चलकर उसे और प्रज्जवलित कर रही हैं। अद्भुत विरोध है।
5 सूर ने भी इसी प्रकार के भाव सौंदर्य की अभिव्यक्ति की है। ("निस दिन बरसत नयन हमारे" कहकर)
6 'रहत भरयौ' कहकर कवि यह बताना चाहता है कि निसदिन तेज साँसें चलती हैं, हवा सी बहती है और नेत्रों से अश्रु निरंतर गिरते हैं पर न तो हृदय ही श्वासों से खाली होता है और न ही नेत्र अश्रुओं से।
7 13-7, 13-7 मात्राओं के क्रम वाला " बरवै" रहीम की शास्त्रीय देन का परिचायक है। लय और गति इस छंद की अद्भुत पहचान है लेकिन भावों की जीवंत अभिव्यक्ति इसकी खास पहचान है।

7 पद

पावस देखि रहीम मन, कोयल साधे मौन।
अब दादुर वक्ता भये हमको पूछत कौन।।

संदर्भ तथा प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियाँ जीवन-साधक और गहन-अनुभूति का रंग भरने वाले, भाव एवं कला निपुण नीति, शृंगार, भक्ति तथा प्रकृति का सजीव और जीवंत वर्णन करने वाले महाकवि रहीम की लेखनी से जन्मी है। रहीम केवल युग दृष्टा ही नहीं भविष्य-दृष्टा भी थे। वे समय, परिवेश और व्यक्ति को खूब पहचानते थे। दिनों का फेर उन्हें अलग अलग रूप में प्रभावित करता रहा है। यहाँ भी वे समय की महत्ता पर प्रकाश डालते हैं। जब समय बुरा हो तो समाज और लोक की रुचि भी बदल जाती है। कवि की सूक्ष्म दृष्टि की गहरी पकड़ देखिए :

व्याख्या : रहीम कहते हैं कि वर्षा ऋतु में कानों को अमृत दिलाने वाली कोयल अपनी मधुर एवं कर्णप्रिय ध्वनि को उच्चरित न करके मौन हो बैठी है वह मन ही मन सोचती है कि यह समय का ही चक्र है कि कल तक मेरी मीठी वाणी से आनन्दित होने वाले सभ्य लोग भी अब मुझे नहीं सुनते या सुनना चाहते। क्योंकि वर्षा ऋतु में मेंढक भी टर्र-टर्र करने लगते हैं। ऐसे में जब बेढ़ब और असभ्य लोग अपनी कंठ ध्वनि का बेसुरा-राग अलापने लगते हैं तो सभ्य और सुरमय-स्वर स्वत: ही खामोश हो जाना चाहता है। रहीम ने अप्रत्यक्ष रूप से इस कथन के द्वारा समाज के सभी क्षेत्रों में होने वाले अन्याय और भ्रष्टाचार का कारण स्पष्ट कर दिया है। विशेष रूप से राजनीति के क्षेत्र में। कोयल सोचती है कि जब मेंढक अब वक्ता बन गये हैं तो उसे कौन पूछेगा। अर्थात् जिसकी लाठी में ताकत होगी, वही कार्य सिद्ध कर सकेगा।

विशेष :

1 कवि ने ब्रजभाषा के इस दोहे में जीवन और समाज की विडम्बनाओं के मूल कारण को अपनी व्यंजना-शक्ति से अभिव्यक्ति दी है।
2 कोयल सभ्यता और सहजता की प्रतीक है तो मेंढक असभ्यता और कर्कशता का।
3 आज की राजनीति पर यह दोहा अत्यंत सटीक एवं सार्थक चोट करता है।
4 रहीम ने बदलते हुए मूल्यों और नैतिक-पतन की ओर संकेत किया है।
5 अन्योक्ति अलंकार का यह अन्यतम उदाहरण है।
6 तुलसी ने भी लगभग इसी प्रकार के एक दोहे का सृजन किया है दोनों कवियों में कई जगह पर पर्याप्त भाव-साम्य मिलता है।

9.11 सारांश

इस प्रकार इस पूरी इकाई में आपने रहीम तथा उनके काव्य के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया। रहीम की जीवन यात्रा के बहुत से पड़ाव तथा उनके व्यक्तित्व और प्रतिभा के क्षेत्रों एवं दिशाओं का भी परिचय कराया गया। जन्म, शिक्षा, लालन-पालन, पारिवारिक एवं राजनैतिक जीवन, सेनापतित्व तथा नेतृत्व, कला-प्रेम, लोक-जीवन में रुचि, भाषा-प्रेम, कवि की विभिन्न कृतियों का परिचय, नीति काव्य परम्परा तथा रहीम के स्थान की भी सविस्तार चर्चा की गई। इसके अतिरिक्त आपने भावुक, वीर कला-पारखी, दूरदृष्टा तथा नीति, भक्ति, शृंगार और प्रकृति आदि पर अपनी काव्य-प्रतिभा की छाप लगाने वाले महाकवि रहीम के भाव-पक्ष की विशेषताओं

का अध्ययन किया। अभिव्यक्ति-कौशल के विभिन्न उपकरणों के जादूगर रहीम की काव्य-भाषा, विभिन्न शैलियाँ, भाषा में प्रयोग होने वाले विभिन्न मुहावरे तथा लोकोक्तियों की समीक्षा भी की गई। कवि की अद्भुत कल्पना, शक्ति, शब्दशक्ति, व्यंग्य तथा ध्वनि प्रयोग, अलंकारों और छंदों की सौंदर्य विवेचना के बाद कवि पर पूर्ववर्ती काव्य के प्रभाव को भी दिखाया गया। विशिष्ट बात यह भी है कि रहीम ने अपने बाद के बहुत से कवियों को भी प्रभावित किया है। उनकी जानकारी हासिल करते हुए रहीम के समग्र कार्य का मूल्यांकन भी प्रस्तुत किया गया। अतः इस समग्र अध्ययन के बाद आप निश्चित ही रहीम तथा उनके साहित्य की गहरी जानकारी हासिल कर चुके हैं। रहीम के काव्यांशों की व्याख्या करनी भी आप अब समझ चुके हैं। इस इकाई में प्रयुक्त रहीम के अन्य दोहों की सप्रसंग व्याख्या का अभ्यास अब स्वतः कीजिए।

9.12 शब्दावली

बहुभाषाविद् : बहुत सी भाषाओं को जानने वाला विद्वान व्यक्ति।

काव्य-प्रतिभा : कविता लिखने की वह मौलिक शक्ति जो ईश्वरीय देन होती है।

देदीप्यमान : अत्यंत प्रकाशवान या चमकता-दमकता हुआ

कुशाग्र बुद्धि : कुशा अर्थात् नोकीली, छोटा घास की आगे की नोक की तरह तेज बुद्धि।

कल्पतरु : समुद्र मंथन से निकला ऐसा वृक्ष जो कुछ भी माँगने पर देता है।

सर्वतोन्मुखी : जो सभी दिशाओं की तरफ उन्मुख या अग्रसर हो।

अनुभूति-प्रक्रिया : किसी घटना, विवरण, दृश्य आदि के संदर्भ में महसूस करने या अनुभव करने की क्रमबद्ध व्यवस्था या पद्धति।

बैकुण्ठ : स्वर्ग

शमशीर : तलवार

पूर्वानुराग : नायक-नायिका में श्रवण, दर्शन आदि के कारण मिलने से पहले जो राग उत्पन्न होता है।

कपोल-कल्पित : मनगढ़ंत या बिना किसी प्रामाणिक आधार के कही गई बात।

प्रणय-प्रसंग, प्रेम की चर्चा या संदर्भ।

शब्द-शिल्पी : शब्दों को शिल्पकार की तरह सँवारने वाला।

क्रोधाग्नि : गुस्से का आवेश या आक्रोश।

दुंदुभी : नगाड़ा (एक प्रकार का वाद्य यंत्र)।

सिद्धहस्त : जिसका हाथ कार्य करने में मंझा हो अर्थात् कार्य-कुशल।

शैली : भावों या विचारों को प्रस्तुत करने की तकनीक को शैली कहते हैं।

दृष्टान्त शैली : ऐसी शैली जिसमें उदाहरण द्वारा अपनी बात को सिद्ध किया जाता है।

तथ्यात्मक-शैली : ऐसी शैली जिसमें तथ्यों पर बल दिया जाता है।

प्रतीक-शैली : विशिष्ट अर्थ संकेतों को उत्पन्न करने वाली शैली प्रतीक शैली होती है।

कल्पनात्मक क्षमता : कवि की वह शक्ति जिसमें वह खंड खंड भावों को जोड़कर अखंड बना देता है।

ध्वन्यर्थपरक सूक्ष्मता : ध्वनि का वह भेद जिसमें अनेक अर्थों को प्रकट करने की क्षमता रहती है।

प्रभावोत्पादकता : भाव को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत कर प्रभाव पैदा करना।

लक्षणा : अभिधा-शक्ति के बाद शब्द में कार्य करने वाली वह अर्थवृत्ति जो दूसरे किसी अर्थ को प्रस्तुत करती है।

व्यंजना : ध्वनि पर आधारित वह शब्द शक्ति जिसमें एक साथ अनेक अर्थ निकलते हैं।

9.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

भारतीय नीति काव्य परम्परा और रहीम, डॉ. बालकृष्ण "अकिंचन"
रहीम साहित्य की भूमिका, डॉ. बमबम सिंह "नीलकमल" बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना-4
रहीम ग्रन्थावली, सम्पादक, विद्यानिवास मिश्र तथा गोबिन्द रजनीश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-2
रहीम रत्नावली, सम्पादक मायाशंकर याज्ञिक, साहित्य सेवा सदन, बनारस
रहिमन-नीति-दोहावली, संपादक पं. लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी, अग्रवाल साहित्य सदन; प्रयाग
अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, डॉ. सरयूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्वविद्यालय प्रकाशन, लखनऊ
अब्दुर्रहीम खानखाना; डॉ. समर बहादुर सिंह; झांसी

9.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 i) सन्, 1556 में
ii) जहाँगीर ने
iii) जहाँगीर ने
iv) सन् 1627 में

2 i) देखिए : भाग 9.4
ii) देखिए : भाग 9.4
iii) देखिए : भाग 9.4
iv) देखिए : भाग 9.4

बोध प्रश्न 2

1 देखिए : भाग 9.5
2 देखिए : अनुभाग 9.6.1
3 देखिए : अनुभाग 9.6.2
4 देखिए : अनुभाग 9.6.3
5 देखिए : अनुभाग 9.6.4
6 देखिए : अनुभाग 9.6.4

बोध प्रश्न 3

1 देखिए : अनुभाग 9.7.1
2 देखिए : अनुभाग 9.7.1
3 देखिए : अनुभाग 9.7.2
4 देखिए : अनुभाग 9.7.4
5 देखिए : अनुभाग 9.7.4

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

यू०जी०एच०आई०-02
हिन्दी में ऐच्छिक पाठ्यक्रम

खंड

3

हिंदी रीतिकाव्य

इकाई 10

रीतिकाव्य का स्वरूप एवं विकास 5

इकाई 11

रीतिबद्ध काव्य : देव एवं पद्माकर 23

इकाई 12

रीतिसिद्ध काव्य : बिहारी 46

इकाई 13

रीतिमुक्त काव्य : घनानंद 74

खंड 3 का परिचय

यह हिन्दी के ऐच्छिक पाठ्यक्रम-2 (रीतिकाव्य) का तीसरा खंड है। इसमें आप रीतिकालीन काव्य और परंपरा का विशिष्ट अध्ययन करेंगे। हिंदी रीतिकाव्य हिंदी भाषी प्रदेश के सामंत वर्ग की सामाजिक-सांस्कृतिक परंपरा के स्रोतों से उपजा सृजन है। बहुत पहले से यह काव्यपरंपरा संस्कृत साहित्य में मिलती है। यही कारण है कि इस काल के कवियों और कवि आचार्यों ने संस्कृत से अपने सिद्धांत मात्र ही नहीं लिए उन्हें अपने कथ्य और रूप-शिल्प आदि में वहां से मिले हैं। राज-दरबारी काव्यपंरपरा के पतन के चिह्न ब्रजभाषा की इस कविता में 17वीं और 18वीं शताब्दी में स्पष्टता से दृष्टिगत होते हैं।

ध्यान देने की बात यह है कि हिंदी भक्तिकाव्य के नव जागरणवादी स्वर को रौंदकर रीतिकाल के जिस समाज में यह साहित्य सृजित हुआ उसका नेतृत्व सामंतों के हाथ में था। उन्हीं के राजदरबारों में अपने अन्नदाताओं के मनोरंजन के लिए यह साहित्य निर्मित हुआ। विलास और अनाचार के जो साधन इस सामंत वर्ग को सुलभ थे—वे जनसाधारण को न थे। इसलिए इस काव्य रुचि पर सामंतों का सीधा प्रभाव पड़ा है। इन सामंतों में वे जागीरदार और भू-स्वामी थे जो किसान के श्रम पर ऐश करते थे। स्वयं ईश्वर का अवतार कहकर धर्म की रक्षा के नाम पर सामंती व्यवस्था को दृढ़ किए हुए थे। जाहिर है कि रीतिकाव्य परंपरा एक विशेष स्थिति-परिस्थिति की उपज है।

संस्कृत के जिन सिद्धांतों के आधार पर इस काल के कवियों ने काव्यसृजन किया, उनमें ज्यादातर सिद्धांत पिछड़े और प्रतिगामी थे। रस, ध्वनि, अलंकार की चर्चा इन कवि-आचार्यों ने लोकमंगलवादी कविदृष्टि से न करके चमत्कारवादी, नायक-नायिका भेदवादी दृष्टि से की। अलंकारों, रसों, नायिकाओं के विभाजन और विवेचन में जिस तर्कपद्धति का सहारा लिया गया है, उसमें कृत्रिम कलावादी ज्यादा है तत्व ग्रहण कम। एक प्रकार का छिछला अलंकारवाद रीतिग्रंथों की काव्य रीति पर छाया रहा है। फलतः इनका समस्त नायिकाभेद का काव्य संस्कृत नाट्यशास्त्र के सामान्य भाष्य से आगे नहीं बढ़ सका। इस काल के कवि 'राधिका कान्ह सुमिरन के' बहाने से नारी को नायिका से अधिक कुछ न समझते थे, यह मनोवैज्ञानिक सच्चाई उनकी कृतियों से स्पष्ट हो जाती है। प्रेम की अभिव्यक्ति में रीतिकाव्य का मनोविज्ञान भक्तिकाव्य के उदात्त सौंदर्य से कोसों दूर है।

विशेष बात यह है कि रीतिकाव्य में भले ही सीमित विषयवस्तु रही हो, पर रचनाकौशल का समृद्ध विकास हुआ। इस दृष्टि से इस काल को "कलाकाल" कहना सर्वथा उचित ही है। इस कलाकौशल की पहली विशेषता यह है कि इस काल के कवियों ने शास्त्र पहले लिखा कविता बाद में। इनके कवित्त, सवैया, घनाक्षरी, नायिका भेद पहले अलंकारशास्त्र के उदाहरण हैं। कविता को बंधेबंधाये सांचे में ढालने से उसकी स्वाभाविकता नष्ट हो गई। अलंकारों का चित्रण भी फूहड़ कृत्रिमता की ओर मुड़ता गया। ज्यादातर कवियों ने कल्पना का ऐसा निराला संसार प्रस्तुत किया कि उसमें वास्तविकता कम होती गई। नखशिख वर्णन पूरे व्यक्तित्व का चित्रण न होकर कुछ अंशों तक ही सीमित होकर रह गया। चित्र की सजीवता से ज्यादा उपमानों की विचित्रता पर ध्यान केंद्रित किया गया "लोगन कवित कीन्हों खेल करि जानो है" की उक्ति इस काव्य पर सही ढंग से चरितार्थ होती है।

रीतिकाल के रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवि तो शास्त्र की चर्चा में रमे रहे हैं, लेकिन रीतिमुक्त कवियों ने कविता को शास्त्र-बंधनों से मुक्त किया है। हृदय की स्वच्छन्द भावनाओं का प्रकाशन इन्हें लोकजागरण परंपरा की ओर ले जाता है। इन रीतिमुक्त कवियों ने आत्माभिव्यक्ति, संगीत योजना के साथ काव्यात्मक कलात्मकता का अच्छा विकास प्रस्तुत किया है। ब्रजभाषा काव्य की रसात्मकता और कलात्मकता के क्षेत्र में घनानंद अद्वितीय हैं।

रीतिकाव्य का संपूर्ण काव्यचित्र प्रस्तुत करने की दृष्टि से इकाई 10, 11 में "रीतिकाव्य का स्वरूप एवं विकास" तथा "रीतिबद्ध काव्य देव एवं पद्माकर" पर विस्तार से सामग्री दी गई है। "रीतिसिद्ध कवि बिहारी" पर इकाई 12 में गहराई से विचार किया गया है। इकाई 13 "रीतिमुक्त काव्य घनानंद" में रीतिमुक्त काव्य की केंद्रीय संवेदना और शिल्प का प्रकाशन है। आपको ध्यान रखना होगा कि संदर्भ-सहित व्याख्या के अंश परीक्षा के लिए हैं। इन्हीं के भीतर से परीक्षा में व्याख्या पूछी जाएगी। प्रत्येक इकाई के साथ कुछ उपयोगी पुस्तकों के नाम दिए गए हैं, संभव हो तो आप इन पुस्तकों का अध्ययन भी कीजिए।

इस खंड से संबंधित एक आडियो पाठ भी तैयार किया है जिसे आप अपने केंद्र से प्राप्त कर सकते हैं।

आप अपने पाठ्यक्रम में रखे गये रीतिकालीन कवियों के साथ अन्य कवियों की कविताएँ भी पढ़िए। इससे आपके अध्ययन में विस्तार एवं गहराई का समावेश होगा।

इकाई 10 रीतिकाव्य का स्वरूप एवं विकास

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 रीतिकालीन परिस्थितियाँ
 10.2.1 राजनीतिक परिस्थिति
 10.2.2 सामाजिक परिस्थिति
 10.2.3 धार्मिक-सांस्कृतिक परिस्थिति
10.3 रीतिकाव्य
 10.3.1 रीति शब्द की व्याख्या
 10.3.2 'रीतिकाव्य' से तात्पर्य
 10.3.3 रीतिकाव्य के प्रमुख भेद
 10.3.4 रीतिकाव्य का प्रवर्तन
 10.3.5 रीतिकाल का नामकरण
10.4 रीतिकाव्य की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ
 10.4.1 रीति ग्रंथों का निर्माण
 10.4.2 शृंगार वर्णन
 10.4.3 वीरकाव्य
 10.4.4 नीतिकाव्य
 10.4.5 स्वच्छन्द काव्य अथवा रीतिमुक्त धारा
10.5 शिल्प पक्ष
 10.5.1 भाषा
 10.5.2 छंद
 10.5.3 अलंकार
 10.5.4 काव्यरूप
10.6 रीतिकाल के प्रमुख कवि
 10.6.1 चिंतामणि त्रिपाठी
 10.6.2 भिखारीदास
 10.6.3 देव एवं पद्माकर
 10.6.4 बिहारी
 10.6.5 भूषण
 10.6.6 घनानन्द
10.7 सारांश
10.8 शब्दावली
10.9 उपयोगी पुस्तकें
10.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

इस इकाई में रीतिकाव्य के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया जाएगा। इसे पढ़ने के बाद आप :

- रीतिकालीन परिस्थितियों को पहचान सकेंगे,
- "रीति काव्य" का अर्थ समझ सकेंगे,
- रीतिकाव्य की प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्तियों को रेखांकित कर सकेंगे,
- रीतिकाव्य की शिल्पगत विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे, और
- रीतिकालीन प्रमुख कवियों का परिचय दे सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत पाठ "रीतिकाव्य का स्वरूप एवं विकास" खंड 3 की पहली इकाई है। इसमें रीतिकाव्य की विभिन्न प्रवृत्तियों की चर्चा की जाएगी और उन परिस्थितियों पर भी विचार किया जाएगा, जिनके कारण इस काल में एक विशेष प्रकार का काव्य लिखा गया।

1643 ई. से लेकर 1843 ई. तक का काल हिंदी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल के नाम से जाना जाता है। "रीति" शब्द का हिंदी में सामान्य अर्थ है— काव्य की प्रणाली, काव्य पद्धति, काव्य साँचा, लक्षण ग्रंथों की शैली का अनुकरण, रूढ़ कवि-मार्ग आदि। मूलतः यह शब्द लक्षण ग्रंथ-शैली के लिए प्रयुक्त होता रहा है। जिन ग्रंथों में काव्य के विभिन्न अंगों का लक्षण उदाहरण सहित विवेचन होता है उन्हें रीति ग्रंथ कहते हैं और जिस विधान के अनुसार यह विवेचन होता है उसे रीतिशास्त्र कहते हैं।

रीति संप्रदाय रचना में बाह्याकार को ही सब कुछ मान कर चला और रीति का अर्थ किया गया विशिष्ट पद रचना। हिंदी में रीति शब्द का प्रयोग रीति संप्रदाय की रीति से व्यापक लिया गया। यहाँ काव्य रचना संबंधी नियमों के विधान को ही "रीति" नाम दे दिया गया। स्वभावतः इस काल की रचना में काव्य में वस्तु की अपेक्षा रूप या आकार को ही प्रधानता मिलती रही। कहना न होगा कि रीति शब्द का यह विशिष्टता मूलक प्रयोग हिंदी का अपना प्रयोग है। कारण, रीतिकाव्य के अनेक कवियों ने प्रायः काव्यरीति, अलंकार रीति आदि का इसी अर्थ में प्रयोग किया है :

- अपनी-अपनी रीति के काव्य और कविरीति (देव, शब्द रसायन)
- काव्य की रीति सिखी सुकवीन सो (भिखारीदास, काव्य निर्णय)
- कविता रीति कछु कहत हौं व्यंग्य अर्थ चितलाय (प्रतापसाहि, व्यंग्यार्थ कौमुदी)

पद्माकर ने अपने ग्रंथ "पद्माभरण" में अलंकार चर्चा को स्पष्ट रूप से "अलंकार रीति" नाम दिया। इसी आधार पर मिश्र बंधुओं ने इस काल का नामकरण "अलंकृत काल" किया। अतः रीतिकाल का रीति शब्द आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मौलिक अविष्कार नहीं है— यह शब्द परंपरा में पहले से ही आ रहा था। केवल आ० शुक्ल ने इस रीति शब्द को व्यवस्थित अर्थ भर दिया। शुक्ल जी के "रीतिकाल" को आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने "शृंगारकाल" नाम दिया। परंतु हिंदी में यह नाम ग्रहण नहीं किया गया। हिंदी के अधिकांश विद्वान रचना संबंधी नियमों के विवेचन के कारण इस काल को "रीतिकाल" कहना ही समीचीन समझते हैं।

यहाँ रीति का मतलब "पैटर्न" से है, इस काल में एक ही ढर्रे पर कविता लिखी गयी, पहले काव्य के लक्षण देना और फिर स्वनिर्मित उदाहरण देना। अधिकांश कवियों ने इसी पद्धति पर कविता लिखी। इन कवियों ने शृंगार को अपना मुख्य विषय बनाया। इस विषय के लिए मुक्तक काव्य रूप का सहारा लिया गया। अलंकारों का व्यापक प्रयोग इस काल की कविता में हुआ है।

इस काल की कविता पर तत्कालीन सामंतों की विलासी मनोवृत्ति का प्रभाव था। कवि दरबार में रहते थे और अपने आश्रयदाता के मनोरंजन के लिए कविता लिखते थे। इस कारण विषय और प्रस्तुतीकरण दोनों ही दृष्टियों से इस काल की कविता हासोन्मुख हुई।

रीतिकाव्य सामंतों के आश्रय में लिखा गया। अतएव उसकी अंतःप्रेरणा के स्वरूप को कवियों और आश्रयदाताओं दोनों के पारस्परिक संबंध ज्ञान से ही समझा जा सकता है। वास्तव में, हिंदी रीतिकाव्य परंपरा हिंदी प्रदेशों के विकृत सामंतवाद की विशिष्ट अभिरुचि की परंपरा है। यह सामंत वर्ग ब्रजभाषा काव्य के अभ्युदय से पहले ही यहाँ विद्यमान था। इसलिए यह परंपरा पहले संस्कृत में मिलती है। यही परंपरा समय पाकर केशवदास, चिंतामणि में फूट पड़ती है। जिस समाज में यह साहित्य रचा गया उसका नेतृत्व सामंतों के हाथ में था, उन्हीं के दरबारी कवियों ने उसे पोषित किया। अतः यह "दरबारी काव्य जनता की काव्य रुचि" का प्रतीक नहीं है।

इन सब बातों की जानकारी आप इस इकाई में प्राप्त करेंगे। आगे की इकाइयों में आप रीतिकालीन प्रतिनिधि कवियों का अलग से अध्ययन करेंगे। प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद रीति काव्य एक स्वरूप आपके सामने स्पष्ट होगा। इसके बाद आप कवि की रचनाओं को अच्छी तरह समझ सकेंगे।

10.2 रीतिकालीन परिस्थितियाँ

साहित्य अपने युग की उपज होता है। निश्चित रूप से साहित्य का सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक साहित्यिक आधार होता है। इस आधार पर किन्हीं विशेष वर्गों की रुचियों-स्थितियों का प्रभाव पड़ता है।

वास्तविकता यह है कि सामाजिक-आर्थिक जीवन से अलग हवा में काव्य-रुचि का निर्माण नहीं होता है। रीतिकाव्य की परंपरा विशेष स्थिति परिस्थिति में फूली-फली थी और सामंती व्यवस्था

के विकृत रूप की वह प्रत्यक्ष प्रतिच्छाया थी। रीति काव्यकार रसवादी-ध्वनिवादी नहीं थे; मूलतः वे चमत्कारवादी, कलावादी, शरीरवादी थे। इसी चमत्कारवाद ने नायिका-भेदी काव्य-साहित्य को जन्म दिया।

साहित्य की प्रवृत्तियों को ठीक से समझने के लिए उस युग विशेष को जानना बहुत जरूरी होता है। इसी उद्देश्य से रीतिकालीन काव्य की प्रवृत्तियों पर विचार करने से पहले रीतिकालीन परिस्थितियों का अवलोकन किया जा रहा है। इस भाग में हम तत्कालीन घटनाओं का वर्णन नहीं करने जा रहे हैं, बल्कि तत्कालीन जीवन की उन आंतरिक प्रवृत्तियों को रेखांकित करने जा रहे हैं, जिनसे रीतिकाव्य प्रभावित हुआ।

रीतिकाल के अधिकांश कवि राजदरबारों से संबद्ध थे। अकबर के बाद के मुगल सम्राट और उनके दरबारी विलासी थे। भारत के विभिन्न भागों के छोटे-छोटे सामंत मुगल दरबार में व्याप्त विलासिता की नकल करते थे। इनके लिए कविता मनोरंजन का साधन थी। इन सामंतों की मनोवृत्तियों को ध्यान में रखकर इस काल की अधिकांश कविताएँ लिखी गयीं। इस काल की कविता पर विचार करने से पहले, आइए हम उन परिस्थितियों पर विस्तार से विचार करें, जिनसे प्रभावित होकर रीतिकाव्य लिखा गया। इन परिस्थितियों को तीन उपभागों में विभक्त किया जा रहा है– राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक।

10.2.1 राजनीतिक परिस्थिति

सन् 1643 ई. में भारत के सिंहासन पर शाहजहाँ आसीन हुआ। इस काल में मुगल वैभव अपने चरम उत्कर्ष पर था। जहाँगीर ने जो साम्राज्य छोड़ा था, शाहजहाँ ने उसकी वृद्धि की। उसका दक्षिण में अहमद नगर, गोलकुंडा और बीजापुर राज्यों पर अधिकार हो गया। उत्तर पश्चिम में कंधार किला मुगलों ने जीत लिया। अब मुगलों के पास 22 सूबे थे-- जिनकी आमदनी काफी ज्यादा थी। देश में शांति थी खजाना मालामाल था। कला, संगीत-वैभव पर था और मयूर सिंहासन तथा ताजमहल का निर्माण हो गया था। अपनी शक्ति एवं सीमा बढ़ाने के लिए मुगलों ने मध्य एशिया पर आक्रमण किए पर सफलता नहीं मिली। सन् 1658 में शाहजहाँ बीमार पड़ा और उसके जीवन काल में ही उसके पुत्रों में सिंहासन के लिए युद्ध शुरू हो गया। यह युद्ध रीतिकाल के आरंभ की सर्वाधिक महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना है। शाहजहाँ के बड़े पुत्र दाराशिकोह को रौंद कर औरंगजेब ने गद्दी हथिया ली। लेकिन औरंगजेब का काल अशांति एवं कलह में ही बीता। उसके सामने ही आगरा, अवध और इलाहाबाद के सूबों में विद्रोह हुए। आगरा में जाटों ने, अवध में राजपूतों ने, इलाहाबाद में जमींदारों ने खुला विद्रोह कर दिया। बुन्देलखंड में चम्पतिराय के पुत्र छत्रसाल और महाराष्ट्र में मराठा शिवाजी ने स्वतंत्र रूप से सिर उठाया। जसवंत सिंह के मरते ही मेवाड़ और मारवाड़ ने मुगलों के खिलाफ हल्ला बोल दिया। पंजाब में सिक्खों का असंतोष तीव्र हुआ– गुरुतेग बहादुर तथा गुरु गोविंद सिंह के पुत्रों की हत्या को लेकर सिक्ख जाति बेचैन हो गई। दक्षिण की दशा और भी खराब थी। इस काल में मराठा शक्ति का उदय हुआ। नादिरशाह का तेज हमला हुआ और सेना अपना पराक्रम खो बैठी। इस माहौल में बंगाल का अलावर्दी खां और दक्षिण में आसफजाह स्वतंत्र हो गए। कुछ दक्षिण के सामंत गृह कलह में उलझ गए और अफगान शासक अहमदशाह अब्दाली के हमले शुरू हो गए। उसने मराठों की शक्ति को ध्वस्त किया और अँग्रेजों को व्यापार फैलाने का अवसर मिला। अँग्रेजों का आधिपत्य उत्तरी भारत में फैला और मुगल साम्राज्य दिल्ली आगरा तक सीमित हो गया। इस समय का इतिहास भी दरबारों– अंतःपुरों के षड्यंत्र का इतिहास ही बनकर रह गया। इस प्रकार पूरा देश युद्धों और गृह कलह से पीड़ित हो उठा, जिसके कारण व्यवस्था पूरी तरह छिन्न-भिन्न हो गई। औरंगजेब के व्यक्तित्वहीन संताने पैदा हुई, जो कर्मचारियों के हाथों खिलौना बनकर टूट गए। राजनीतिक स्थिति का इस काल में पूरा चित्र यह बन गया कि देश पदाक्रांत, विलास, जर्जर और विकृत सामंतवाद की इच्छाओं का पतन-प्रतीक बन गया।

10.2.2 सामाजिक परिस्थिति

आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से समाज दो वर्गों में विभक्त था– उत्पादक वर्ग और उपभोक्ता वर्ग। उत्पादक वर्ग के अंतर्गत कृषक समुदाय और श्रमजीवी थे तथा उपभोक्ता वर्ग के अंतर्गत राजा से लेकर उनका दरबान और दास तक शामिल था। इन दोनों के बीच एक बड़ा अंतर था, एक शासित था दूसरा शासक, एक शोषित था दूसरा शोषक। इनके अतिरिक्त विद्वानों का एक वर्ग था, जिनका संबंध निम्न और मध्य वर्ग से था, पर जीविका के लिए वे उच्च वर्ग से जुड़े होते थे उनमें भी उच्च वर्ग के संस्कारों और आशा आकांक्षाओं का प्राबल्य रहता था।

रीतिकाव्य का संबंध निम्न वर्ग से नहीं है, क्योंकि इस काल की नायिका खेत में काम करती हुई

या गोबर पाथती हुई स्त्री नहीं हो सकती थी। इस काल की कविता का मुख्य संबंध बादशाहों, राजाओं और सामंतों की काम क्षुधा की पूर्ति से था। इसलिए हम इसी वर्ग की मनोवृत्तियों पर ज्यादा ध्यान देंगे।

शाहजहाँ के काल में मुगल दरबार अपने ऐश्वर्य के लिए प्रसिद्ध था। बादशाह और उनकी बेगमों के अलावा अमीरों और कर्मचारियों का जीवन भी ऐश्वर्यपूर्ण था। प्रांतीय सामंत भी मुगल दरबार की नकल करते थे। अवध के नवाबों और जयपुर, मारवाड़ आदि के राजाओं का जीवन विलासिता में डूबा हुआ था।

इस विलासिता की सबसे बड़ी विशेषता थी– खोखलापन। औरंगजेब की मृत्यु के बाद वास्तविक वैभव का स्थान वैभव प्रदर्शन ने ले लिया। इस वैभव प्रदर्शन ने विलासिता को जन्म दिया और दरबारी शिक्षा भी आशिकाना गजलों, फारस की अश्लील प्रेम कथाओं तक सीमित रह गयी। रीतिकाल के कवि "पद्माकर" का यह वर्णन उस काल की स्थिति परिस्थिति का परिचायक है :

> गुलगुली गिल में गलीचा है गुनीजन है, चाँदनी है चिक है चिरागन की माला है।
> कहैं पद्माकर त्यों गजक गिजा है सजी, सेज है, सुराही है सुरा है और प्याला है।
> शिशर के पाला को व्यापत कसीला तिन्हैं, जिनके अधीन एते उदित मशाला है।
> तानतुक ताला है, विनोद के रसाला हैं, सुबाला है, दुशाला है, विशाला चित्रशाला है।

ललित क्रीड़ाओं का विलास अंतःपुर में गूंजता था चौसर और गजफा के खेल मनोरंजन करते थे। तरह-तरह के कबूतर, लाल, तोता, मैना से निवास गूंजते थे।

मदिरा और नारी की विकृत विलासिता में पूरा देश गर्क था। शरीर का भोग ही सब कुछ बन गया था। इस स्थिति का बिंब बिहारी ने दिया है; कैसे नायक-नायिका भरे दरबार में काम बाण चलाते थे:

> कहत, नृत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात
> भरे भौन में करत है, नैनन ही सो बात।

इस काल में सैनिकों के साथ ही कामदेव की सेनाएँ चल पड़ी थीं– सैनिक शिविरों में वेश्याओं का निवास था। इस स्थिति का शरीरवाद साफ कहता था:

> तजि तीरथ हरि राधिका, तन दुति कर अनुराग,
> जेहि ब्रज केलि निकुंज मग, पग-पग होत प्रयाग।

रईसों, सेठों, जमींदारों की स्थिति के ठीक विपरीत कृषकों-मजदूरों की स्थिति थी। समाज व्यवसाय एवं पेशों के अनुसार भिन्न-भिन्न वर्गों में बँट गया था– पर किसान-मजदूर का जीवन दयनीय था। अन्न उगाने वाले को अन्न की कमी थी और दरिद्रता इनको तोड़ रही थी। ज्यादातर आबादी किसानों की थी, जो दिनभर काम करने के बाद भी फटे हाल था। मुगल वैभव का पूरा खर्च इन किसानों के बल पर ही चलता था। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में– "सचमुच इस समय के प्रासाद इन्हीं लोगों की हड्डियों पर खड़े थे। इन्हीं के आँसू और रक्त की बूंदे जमकर अमीरों के मोती और लालों का रूप धारण कर लेती थीं। राजा के अबाध अपव्यय की क्षति पूर्ति अनेक प्रकार के उचित अनुचित कर्मों द्वारा की जाती थी, कर्मचारीगण राजा का और अपना उदर किसानों का खून चूसकर भरते थे। सम्राट, सूबेदार, फौजदार, जमींदार आदि सभी का शिकार बेचारा किसान था।" (रीतिकाव्य की भूमिका पृष्ठ 13) मजदूरों-कारीगरों को बेकारी और बेगारी ने तबाह कर दिया था। भयंकर अकाल तथा महामारी से जीवन जीना दूभर हो गया था। देश की धन-समृद्धि के नाश के साथ शिल्प, संस्कृति की हालत भी बिगड़ गई थी।

सामाजिक पतन का यह काल नैतिक मूल्यों के पतन का काल भी था। हिंदू-मुसलमान दोनों जर्जरित होकर नैतिक बल खो बैठे थे। जहाँदार शाह जैसे बादशाहों ने मुगल गौरव को मिट्टी में मिला दिया था। उसकी रखैल लाल कुंवर स्वयं सम्राट तथा अमीरों को भरे दरबार में अपमानित कर देती थी। दरबार छल-कपट के केंद्र थे। वेश्याओं को सामंतों पर शासन करने का अवसर मिल गया था। नैतिक बल से हीन सम्राट, अमीर भाग्यवादी बन गये थे। विलास की रंगीनी में निराशा की कालिमा जीवन को घेर कर बैठ गई थी।

कविता पर इसका सीधा असर पड़ा। डॉ. नगेन्द्र ने इस प्रवृत्ति का सटीक मूल्यांकन किया है। "भीषण राजनीतिक विषमताओं ने बाह्य जीवन के विस्तृत क्षेत्र में स्वस्थ अभिव्यक्ति और प्रगति के भी मार्ग अवरुद्ध कर दिए थे। निदान लोगों की वृत्तियां अंतर्मुखी होकर अस्वस्थ काम-विलास में ही अपने को व्यक्त करती थीं।" (रीतिकाव्य की भूमिका पृष्ठ 15)

10.2.3 धार्मिक-सांस्कृतिक परिस्थिति

इस काल का धर्म भी विलासिता से प्रभावित हुआ। हिंदी प्रदेश में वैष्णव धर्म और उसमें भी कृष्ण भक्ति शाखा तेज़ी से फैली, क्योंकि यह उस युग की प्रवृत्ति के अनुकूल थी। कृष्ण संप्रदाय के कई उप संप्रदाय सामने आये। वल्लभ संप्रदाय में विट्ठलनाथ जी की मृत्यु के बाद उनके पुत्रों ने गोकुल, कामबन, काँकरौली, श्रीनाथद्वारा, सूरत, बंबई और काशी में अपनी-अपनी गद्दियाँ बना लीं। इस प्रकार की गद्दियाँ विलासिता का केंद्र बन गयीं। सेवा-अर्चना की अनेक पद्धतियों का आविष्कार हुआ और भगवान ऐश्वर्य की मूर्ति बन गये। इन गद्दियों के गोस्वामियों का संपर्क राजाओं और सामंतों से बढ़ा। वहाँ से ऐश्वर्य के साधन उपलब्ध होते थे।

इस युग का धर्म अंधविश्वास का पर्याय बन गया। अशिक्षित जनसमुदाय के लिए भक्ति-भावना धर्म के बाह्यांगों तक सीमित थी। ये अपने अंधविश्वास के कारण संतों और पीरों के पास जाते थे और सब प्रकार की रीतियों और अंध परंपराओं का पालन करते थे। ये संत और पीर भोली-भाली जनता का खूब शोषण करते थे। इसके अतिरिक्त इस काल में "अवतारों" की लीलाओं का खूब प्रचलन हुआ। कृष्ण लीला और राम लीला का प्रचलन बढ़ा। इस प्रकार जनता की धर्म भावना उनके मनोविनोद का साधन भी बन गया। भक्तिकाल में माध्व, निंबार्क, चैतन्य तथा वल्लभ संप्रदायों में राधा की भक्ति भाव से प्रधानता थी किंतु इस काल में राधा को परकीया भाव की नायिका मात्र रह जाना पड़ा। नायिका-नायक भेद को रीतिकाल के कवियों ने परकीया भाव में खोल लिया और कहा–

> "आगे के सुकवि रीझि हैं तौ कविताई,
> न तो राधिका कान्ह सुमिरन को बहानो है।"

इस काल की कविता में भक्ति का यही रूप सामने आता है। इस युग के कवि सूरदास और नन्ददास की परंपरा का अनुकरण नहीं कर रहे थे, बल्कि उनकी शृंगारिकता को विकृत रूप में प्रस्तुत कर रहे थे। यह उस काल के बौद्धिक ह्रास का परिणाम है। इस काल में "सूरसागर" के स्थान पर "ब्रज बिलास" ही लिखा जा सकता था। लक्ष्मणाचार्य की "चंडी कुच पंचाशिका" में घोर शृंगार के विकृत उदाहरण ही दिए जा सकते थे।

कला और संगीत

इस काल की स्थापत्य कला, चित्रकला तथा संगीतकला पर भी विलासिता का प्रभाव स्पष्ट है। शाहजहाँ के काल में स्थापत्य और चित्रकला में अलंकरण की प्रवृत्ति बढ़ी। पर औरंगजेब के शासन काल में कला का ह्रास हुआ। अठारहवीं शताब्दी में अवध के नवाबों ने स्थापत्य और चित्रकला की मृत परंपरा को जीवित करने का प्रयास किया, पर इनमें मौलिक प्रतिभा का अभाव है।

संगीत में भी मौलिकता नहीं थी। अवध में संगीत को प्रश्रय मिला, पर अन्य क्षेत्रों की भाँति इस काल के संगीत में भी गंभीरता का अभाव और विलासिता का प्रभाव दीख पड़ता है। इस काल में संगीत भी अलंकरण और रसिकता में डूब गया।

कला के चमत्कारवाद ने इस युग की संपूर्ण चेतना को खास ढंग से व्यक्त किया है। कला में सोने का रंग, मणियों का जड़ाव-नक्काशी और तराश का प्रयोग बढ़ा। स्थापत्य में मूर्ति एवं चित्रण-कला की विशेषताएँ प्रबल हो उठीं। ताजमहल में मूर्ति कला का विस्तार है तो दीवाने खास में चित्रण-कला का रंग। औरंगजेब ने ललित कलाओं को प्रश्रय कम दिया और विशिष्ट ढंग की मसजिदें और मकबरे बनवाए। लाहौर की जामा मसजिद कला की दृष्टि से नकल ही थी। स्थिति की दयनीयता के कारण कला क्षेत्र का विकास अवरुद्ध हो गया। चित्रकला पर पहले तो अरबी फारसी का दबदबा रहा, पर बाद में इसका भारतीयकरण हो गया। राजपूत शैली की चित्रकला का विकास राजस्थानी सामंतों के दरबार तथा प्रेरणा से हुआ। चित्रों में पशु-पक्षी तथा प्रकृति वैभव का उभार उमड़ पड़ा, किंतु अलंकरण की अतिशयता ने इस कला को निर्जीव बना दिया। व्यक्ति चित्रों तक में सहजता न आ सकी, कारो रंग-प्रदर्शन ही शेष रह गया। कला मर्मज्ञ राम कृष्ण दास ने लिखा है– "अब चित्रों में हद से ज्यादा रियाज, महीनकारी, रंगों की खूबी, तथा शान-शौकत एवं अंग प्रत्यंगों की लिखाई विशेषत: हस्त मुद्राओं में बड़ी सफाई और कलम में कमजोरी न रहने पर भी दरबारी अरब कायदों की जकड़बंदी और शाही दबदबे के कारण इन चित्रों में भाव का सर्वथा अभाव बल्कि एक प्रकार से सन्नाटा सा पाया जाता है। यहाँ तक कि जी ऊबने लगता है।" (भारत की चित्रकला–पृष्ठ 34)

राजस्थानी चित्रकला-शैली के साथ इस काल में कांगड़ा-शैली का विकास हुआ। केशव, बिहारी,

मतिराम, देव का काव्य चित्रों में उतारे गये कला स्त्री-सौंदर्य के अंकन में डूबे रहे। रीतिकाव्य का इन स्त्री-चित्रों से सीधा संबंध है, यह न भूलना चाहिए।

बोध प्रश्न 1

1 निम्नलिखित वक्तव्यों के आगे सही (√) या गलत (×) का चिह्न लगाएँ।

क) रीतिकालीन उच्च वर्ग विलासिता में डूबा हुआ था। ( )

ख) रीतिकाल में धर्म अपनी पराकाष्ठा पर था। ( )

ग) रीतिकाल में किसान समृद्ध था। ( )

घ) इस काल में नैतिकता का ह्रास हो गया था। ( )

2 रीतिकालीन राजनीतिक परिस्थिति पर प्रकाश डालिए।
(उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए)

....

....

....

....

....

3 रीतिकाल का समय .... से लेकर .... तक है।

4 रीतिकालीन चित्रकला पर चार पंक्तियों में लिखिए :

....

....

....

....

5 रीतिकाल का सामाजिक ढाँचा सामंतवाद की विकृति का परिणाम था। इस कथन को ध्यान में रखते हुए पाँच पंक्तियों में उत्तर लिखिए :

....

....

....

....

....

10.3 रीतिकाव्य

17 वीं शताब्दी के मध्य से 19 वीं शताब्दी के मध्य तक हिंदी में जो काव्य लिखा गया, उसे रीतिकाव्य कहा जाता है।

10.3.1 रीति शब्द की व्याख्या

रीति शब्द का अर्थ है– नियम, लक्षण, प्रणाली अथवा पद्धति। रीति शब्द की व्युत्पत्ति रीङ् धातु से है, जिसका अर्थ गति, चाल, मार्ग, पद्धति एवं प्रणाली है। रीतिकाल तथा रीतिकाव्य के साथ जब रीति शब्द जुड़ता है तो वह इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है अर्थात् एक विशेष प्रकार के साँचे अथवा "पैटर्न" के आधार पर रचे हुए काव्य की ओर इंगित करता है। यहाँ पर "रीति" शब्द रीति संप्रदाय का वाचक नहीं है, जिसका प्रवर्तन आचार्य वामन ने किया था। वामन ने विशेष प्रकार की पद रचना को "रीति" कहा था। यह पद रचना काव्य गुण पर आधारित थी। वामन ने इसे ही काव्य की आत्मा बताया/माना था। वामन के पश्चात् यह "रीति" मात्र एक शैली का ही पर्याय बन कर रह गई थी। हिंदी के रीतिकाल का रीति शब्द एक व्यापक अर्थ का परिचायक है, जो रस, अलंकार, शब्द शक्ति, छन्द आदि सभी काव्यांगों के आधार पर एक बंधी-बंधाई परिपाटी का वाचक है।

10.3.2 "रीतिकाव्य" से तात्पर्य

वे रचनाएँ जो रस, अलंकार, शब्दशक्ति, छन्द आदि विविध काव्यांगों को आधार मान कर लिखी जाती हैं और इसके फलस्वरूप उनका अपना एक विशेष ढाँचा, स्वरूप एवं 'पैटर्न' होता है, रीतिकाव्य कह ाती हैं। रीतिकाव्य के रचनाकार की दृष्टि किसी एक अथवा एक से अधिक काव्य शास्त्र संबंधी ग्रंथ पर टिकी रहती है और वह रचना संबंधी नियमों को आदर्श मानते हुए अपनी कृति को जन्म देता है। उदाहरण के तौर पर केशवदास की "कविप्रिया" और "रसिकप्रिया" काव्यशास्त्र के ग्रंथ हैं और उनके "रामचंद्रिका" आदि ग्रंथ 'रीतिकाव्य' हैं। इसी प्रकार देव के "भाव विलास", "रसविलास" आदि ग्रंथ काव्यशास्त्र के हैं और "देवशतक", आदि रीतिकाव्य हैं। पद्माकर के "पद्माभरण" और "जगद्विनोद" काव्यशास्त्र ग्रंथ और "हिम्मत बहादर विरुदावली" और "प्रताप सिंह विरुदावली" आदि ग्रंथ रीतिकाव्य कहलाते हैं। "रीति ग्रंथ" और "रीतिकाव्य" इन दो शब्दों में प्रायः समानता दिखाई देती है परंतु वास्तव में दोनों भिन्न हैं। रीति ग्रंथ शब्द लक्षण ग्रंथों के लिए और "रीतिकाव्य" लक्ष्य ग्रंथों के लिए प्रयुक्त होता है। रीति निरूपण की दृष्टि से यह शुद्ध कला काल है। इसमें दो तरह के कवि दिखाई देते हैं— प्रथम वर्ग तो ऐसे कवियों का है, जिन्होंने लक्षण ग्रंथों का निर्माण किया और दूसरा वर्ग उन कवियों का है, जो रीति-शास्त्र में पारंगत होने पर भी लक्षण उदाहरण के चक्कर में न पड़कर के लक्ष्य ग्रंथों की रचना करते रहे। इस हिंदी रीतिकाव्य के पीछे एक समृद्ध रीतिशास्त्र की ताकत थी, जिसमें काव्य के सभी संप्रदायों का सूक्ष्म-गहन विश्लेषण विवेचन हो चुका था। मम्मट के बाद समन्वय का रंग चुक गया और शेष रह गया था— संग्रह-अनुवाद। रीतिकाल के कवि आचार्य यही कार्य करते रहे, उनमें कुछ भी मौलिक करने की न शक्ति थी न साहस। ऐसी स्थिति में रीतिकाव्य के कवि मौलिकता को चिंतन में न ला सके। वे तो मात्र अनुकरण के प्रति आसक्त रहे और ऐसा अनुकरण जो कलाकारी एवं चमत्कारवाद के प्रदर्शन के लिए दरबार की आवश्यकता थी। फलतः रस का स्वरूप, रस, निष्पत्ति, काव्यात्मक, रस ध्वनि-अलंकार के संबंध का कुलपति—भिखारी दास आदि को छोड़कर किसी भी आचार्य कवि ने उल्लेख तक नहीं किया। मूलतः रीतिग्रंथों में तीन प्रकार की निरूपण शैली काम में लाई गई :

1 काव्य-प्रकाशकार मम्मट की निरूपण शैली—इस शैली में काव्य के सभी अंगों पर कम ज्यादा प्रकाश डाला जाता था।
2 रस मंजरी-शृंगार-तिलक आदि की शृंगार परक नायिका भेद वाली शैली।
3 जय देव के "चंद्रालोक" की अलंकार निरूपण शैली—इस शैली में अलंकारों के लक्षण उदाहरण—सूत्रबद्ध शैली में दिए गए हैं। प्रथम शैली में चिंतामणि का "कवि कुलकल्पतरू" "काव्य विवेक" कुलपति मिश्र का "रस रहस्य", देव का "काव्य रसायन", प्रतापसाही का "काव्य विलास" आदि आते हैं। द्वितीय शैली के अंतर्गत वे ग्रंथ आते हैं, जिनका प्रतिपाद्य विषय शृंगार हैं। इन ग्रंथों में केशव की "रसिक प्रिया", "रस विलास" बेनी प्रवीन का "नवरस तरंग" आदि आते हैं। तीसरी शैली में "चंद्रालोक" और "कुवलयानंद" जैसे अनुकरण मूलक अलंकार ग्रंथ आते हैं। इस शैली में जसवंत सिंह का "भाषा भूषण" सुरति मिश्र की "अलंकार माला", पद्माकर का "पद्माभरण" आदि उल्लेखनीय ग्रंथ है। इन ग्रंथों ने अलंकारों का स्वच्छ उदाहरणों से विवेचन किया। इस प्रकार इन तीन प्रकार की शैलियों ने रीतिकाव्य का शास्त्रीय आधार पुष्ट किया है।

10.3.3 रीतिकाव्य के प्रमुख भेद

रीतिकाव्य के तीन प्रमुख भेद हैं— रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त।

रीतिबद्ध : जो कवि रस, अलंकार आदि काव्यांगों के लक्षण उदाहरण लिखने में ही अपनी काव्यशक्ति का उपयोग करते थे, वे रीतिवद्ध कवि कहलाते हैं। यह वर्ग रीतिकाल का सबसे विशाल वर्ग है। इस काल के अधिकांश कवि रीतिबद्ध हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रीतिबद्ध कवियों को "रीति ग्रंथकार कवि" शीर्षक अंतर्गत रखा है जिसमें उन्होंने 57 कवियों की चर्चा की है। रीतिबद्ध काव्य के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि इस वर्ग के कवियों का प्रमुख उद्देश्य काव्य-शास्त्र की शिक्षा देना था। उनके कवि कर्म का मात्र यही उद्देश्य था। डा. नगेन्द्र ने इन कवियों को "रीतिबद्ध" नाम न देकर "रीतिकार" अथवा "आचार्य कवि" नाम दिया है परंतु यह नाम अधिक प्रचलित नहीं हुआ।

चिंतामणि त्रिपाठी, मतिराम, जसवंत सिंह, देव, कुलपति मिश्र, भिखारीदास, भूषण पद्माकर, भट्ट आदि रीतिबद्ध कवि हैं।

रीतिबद्ध कवियों के दो उपवर्ग भी है— (1) सर्वांग निरूपक और (2) विशिष्टांग निरूपक। जो

कवि काव्य के लक्षण से लेकर शब्द शक्ति, गुण दोष, रसरीति, छंद-अलंकार आदि उसके सभी अंगों का विवेचन करते हैं, उन्हें सर्वांग निरूपक और जो एक या एक से अधिक, परंतु थोड़े, अंगों को विवेचित करते हैं, उन्हें विशिष्टांग निरूपक की संज्ञा दी जाती है। जैसे देव सर्वांग निरूपक हैं और पद्माकर विशिष्टांग निरूपक। पद्माकर ने केवल रस तथा अलंकार का निरूपण किया है।

रीतिसिद्ध : जिन कवियों ने लक्षण ग्रंथ तो नहीं लिखे, परंतु अपनी रचनाओं के लिए इन ग्रंथों से प्रेरणा अवश्य लेते रहे, उनको रीतिसिद्ध कवि कहा जाता है। इस कोटि के कवियों में बिहारी सर्वप्रथम हैं। इस श्रेणी के अन्य कवियों में बेनी, कृष्णकवि, रसनिधि, रामसहाय, सेनापति, विक्रम आदि के नाम लिये जा सकते हैं।

रीतिमुक्त : जिन कवियों ने न तो लक्षण ग्रंथ लिखे और न ही वे रीतिकालीन परंपरा एवं प्रवृत्ति से प्रभावित हुए, बल्कि इसके विपरीत स्वतंत्र रूप से काव्य रचना करते रहे, उन कवियों को रीतिमुक्त कवि माना जाता है। घनानन्द, आलम, बोधा, द्विजदेव आदि इसी वर्ग के अंतर्गत आते हैं। इन कवियों ने जो काव्य लिखा है, वह रूढ़ि विरोधी, स्वच्छंद प्रेम भावना का काव्य है। इसमें प्रेम का अनुभूति पक्ष प्रधान है तथा यह किसी भी प्रकार की शास्त्रीय मर्यादाओं का पालन नहीं करता है। इन कवियों की मूल प्रवृत्ति रूप-सौंदर्य चित्रण, विरह वर्णन है। इनमें स्वानुभूति का स्वर प्रधान रूप से व्यंजित हुआ है। इन सभी कवियों ने रीति-स्वच्छंद परंपरा में मौलिक प्रतिभा का काव्य सृजन किया है।

10.3.4 रीतिकाव्य का प्रवर्तन

हिंदी में सबसे पहले केशवदास ने काव्य के सभी अंगों का शास्त्रीय ढंग से विवेचन किया। उनके इस ग्रंथ का नाम "कवि प्रिया" है। पर रीतिकाव्य की शुरुआत केशवदास से न मानकर चिंतामणि से मानी जाती है, जिनका काल केशवदास से 50 वर्ष बाद है। इसका महत्वपूर्ण कारण यह है कि केशवदास ने जिस काव्य शास्त्रीय परंपरा के आधार पर काव्य का विश्लेषण किया वह पुरानी पद्धति थी और हिंदी के रीति कवियों ने उसका अनुसरण नहीं किया। केशव अलंकार को प्रधान मानने वाले चमत्कारी कवि थे, जो अलंकार और अलंकार्य का भेद नहीं कर सके थे। हिंदी के कवियों ने उस पुरानी परिपाटी को छोड़ "चंद्रालोक" और "कुवलयानंद" की परंपरा का अनुसरण किया। हिंदी में इस परंपरा का अनुसरण करने वाले पहले रीतिकवि चिंतामणि त्रिपाठी हैं, जिन्होंने 1643 ई. के आसपास "काव्य विवेक", "कविकल्पतरु" और "काव्य-प्रकाश" ग्रंथ लिखे।

10.3.5 रीतिकाल का नामकरण

हिंदी साहित्य के उत्तर मध्यकाल के नामकरण के प्रश्न पर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। इसे रीतिकाल, शृंगारकाल, कला काल, अलंकृत काल आदि नाम दिए गए हैं।

मिश्रबंधुओं ने इस काल को "अलंकृत काल" कहा है। रमाशंकर शुक्ल रसाल ने इसे "कला-काल" कहा है। पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसे "शृंगार काल" कहा है। पर इन सभी नामों में आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा दिया गया नाम "रीतिकाल" सर्वमान्य है। हम इस इकाई में इसी सर्वमान्य नाम का प्रयोग कर रहे हैं।

रीतिकाल के नामकरण के प्रश्न पर 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (पाठ्यक्रम (3)) में विस्तार से विचार किया जाएगा।

बोध प्रश्न 2

6 "रीतिकाव्य" से आप क्या समझते हैं? (पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

....

....

....

....

....

7 रीतिकालीन पाँच कवियों का नाम लिखिए।

8 "रीतिबद्ध" और "रीतिसिद्ध" कवि में क्या अंतर है। पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

9 रीतिकाव्य की तीन शास्त्रीय शैलियों पर पाँच पंक्तियाँ लिखिए।

10.4 रीतिकाव्य की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ

संस्कृत की दरबारी काव्य परंपरा का रीतिवाद इस काल की स्थिति परिस्थिति का सहारा पाकर प्रबल हो गया। इस रीतिवादी प्रबलता में प्रधान रूप से अलंकार-निरूपण, शृंगार चित्रण, बारहमासा वर्णन तथा नायक-नायिका भेद की परंपरा को प्रश्रय दिया। यहाँ एक तरह के कवि शृंगार की पिचकारी कान में मारते थे तो दूसरी तरह के कवि शृंगार का मकरध्वज मुँह में भरते थे। संस्कृत की रीतिवादी परंपरा का अनुकरण इस हद तक किया गया कि केशवदास, चिंतामणि, मतिराम एवं भूषण आदि ने कथ्य और कथन दोनों की भंगिमा में सामंत वर्ग की सौंदर्याभिरुचियों का पोषण किया। कविता काम कामिनी और सुरा के पास चक्कर काट कर ही सीमित क्षेत्र में बैठ गई। यह सामंत वर्ग 17-18 वीं शताब्दी में इतना पतित हुआ है कि दरबारी काव्य परंपरा पर उस पतन की सीधी छाप दिखाई देती है। इस दरबारी काव्य परंपरा का सीधा विरोध रीतिकाल की अंतिम सीमा रेखा पर आधुनिक काल के प्रवर्तक भारतेंदु बाबू ने किया और इसकी रूढ़ियों से साहित्य को मुक्त किया। इस काल में यह भी सिद्ध हुआ कि रीतिकाव्य का शृंगार रसवादी न होकर चमत्कारवादी, झूठा एवं कृत्रिम है। जीवन एवं काव्य के प्रति इनकी प्रवृत्तियों का दृष्टिकोण केशव के इन दो दोहों में मिलता है—

1) केशव केसन असकरी—जसि हरि हू न कराहि।
चंद्रवदन मृग लोचनी, बाबा कहि कहि जाहि।।

2) जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु न बिराजई, कविता, बनिता, मित्त।।

क्षीण रसवादिता और विकृत अलंकारवाद की यह प्रवृत्ति ही रीतिशास्त्र की सड़ांध में इस कविता को धकेल रही थी। अलंकारों तथा नायिकाओं के विभाजन विवेचन में जिस तर्क पद्धति का सहारा लिया गया उसमें तत्वग्रहण कम है; बौद्धिक कलाबाजी का झूठा कमाल ज्यादा है।

10.4.1 रीति ग्रंथों का निर्माण

रीति ग्रंथों का निर्माण इस काल की प्रमुख प्रवृत्ति है। जैसा आप जानते हैं, रीतिग्रंथ का मतलब उस लक्षण ग्रंथ से है, जिसमें काव्यांगों का लक्षण-निरूपण करके उनके उदाहरण के रूप में स्वनिर्मित पद दिए जाते थे। इस काल के कवियों ने कविता लिखने की यह प्रणाली बना ली थी कि पहले दोहे में लक्षण लिखते थे और फिर उसके उदाहरण के रूप में स्वनिर्मित कविता उपस्थित करते थे। इसलिए इस काल का रचनाकार आचार्य और कवि दोनों का काम एक साथ निबाहने का प्रयत्न करता था। लेकिन इससे सूक्ष्म विवेचन और विश्लेषण पर गहरा असर पड़ा। साथ ही इस काल के लक्षण-ग्रंथों में नये सिद्धांत, नये मत सामने नहीं आये, बल्कि पुराने मतों को ही दुहराया गया।

इन रीतिकालीन विद्वानों में उस प्रौढ़ एवं संतुलित विवेचन शक्ति का अभाव था, जो एक आचार्य के लिए जरूरी होता है। अतः ये कवि आचार्य कोटि में नहीं आ सकते।

इस प्रवृत्ति का मूल भी इस काल के सामंतों की मनोवृत्ति में ढूँढा जा सकता है। ये साहित्य के पारखी नहीं थे, बल्कि ऐसे विलासी रईस थे, जिनमें तर्क की सूक्ष्मता को समझने की न तो शक्ति

थी, न ही उन्हें अवकाश था। फिर भी काव्य को समझने के लिए उसके विषय में थोड़ा बहुत जानना भी जरूरी था। इस काल के कवियों ने उनकी इसी आवश्यकता की पूर्ति की।

इन रीति ग्रंथों के रचयिता सहृदय और कुशल कवि थे। उनका मूल उद्देश्य काव्य की रचना करना था, न कि काव्यांगों का शास्त्रीय निरूपण करना। अतः उनका सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने अपनी कविता के माध्यम से रस और अलंकार आदि के सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। पर ध्यान रखना होगा कि इस काल में कवियों ने "शास्त्र" पहले लिखा है– कविता बाद में। प्रेम-शृंगार के वर्णन में इन कवियों का भावनालोक उदात्त एवं परिपरिष्कृत से कोसों दूर है। फूहड़पन और कुरुचि का काव्य में साम्राज्य है।

10.4.2 शृंगार वर्णन

इस काल के साहित्य में शृंगार की प्रधानता है। इसका कारण भी उस काल के सामाजिक संदर्भों, साहित्यिक परंपराओं और राजाओं की मनोवृत्ति में ढूँढा जा सकता है। सामंत वर्ग काम देवता का उपासक था और नारी में काम रति का स्वाद ही इन्हें प्रिय था। ये अपने जीवन में ही नहीं कविता में भी शृंगार देखना चाहते थे। अतः इस काल के कवियों ने शृंगार को केंद्र में रखकर कविता लिखी। पर इस काल का शृंगार बीमार दीख पड़ता है (स्वच्छंद धारा को छोड़ कर) इसमें संतुलित दृष्टि का अभाव है। इसमें प्रेमिका का व्यक्तित्व नहीं उभर सका है। महाभारत में अर्जुन मछली की आँख को बेधकर द्रौपदी से शादी करता है, पृथ्वीराज रासो में पृथ्वीराज चौहान दुश्मनों के बीच से अपनी प्रेमिका को उठा लाता है। इस प्रकार के साहसिक कार्य की योजना, जिसमें प्रेमी प्रेमिका का प्रेम जीतने की कोशिश करता है, का रीतिकाव्य में अभाव है। इस काल के शृंगार का आधार है– नारी का मांसल शरीर, सूक्ष्म आत्मा नहीं। नारी विलास का उपकरण मात्र है। देव यहाँ तक कह देते हैं :

"कौन गने पुर बन नगर कामिनि एकै रीति।
देखत हरै विवेक को चित्त हरै करि प्रीति।"

अर्थात् मोहल्ले, वन और नगर में जा-जा कर नारी को कौन देखे, कामिनी (सुंदर स्त्री) की एक ही चाल है। उसको देखते ही विवेक समाप्त हो जाता है और वह प्रेम करके हृदय को छीन लेती है। इन कवियों की दृष्टि में नारी का व्यक्तित्व अलग-अलग हो ही नहीं सकता है। वह पुरुष के आकर्षण का केंद्र मात्र है। उनका सामाजिक अस्तित्व शून्य है।

"रीतिकाल में काम-वृत्ति की अभिव्यक्ति के लिए पूर्ण स्वच्छंदता थी। अतएव रीतिकाव्य की शृंगारिकता में अप्राकृतिक गोपन अथवा दमन से उत्पन्न ग्रंथियाँ नहीं हैं। उसमें स्वीकृत रूप से शरीरसुख की साधना है, जिसमें न आध्यात्मिकता का आरोप है न वासना के उन्नयन अथवा प्रेम को अतीन्द्रिय रूप देने का उचित-अनुचित प्रयास।" (रीतिकाव्य की भूमिका पृष्ठ 159) फलतः इस काव्य में शृंगार में घुमड़न नहीं है, कुंठाओं से मुक्ति है। इस शृंगार में प्रेम की एकनिष्ठता न होकर विलास की रसिकता है।

मादकता रीतिकालीन शृंगार की उल्लेखनीय विशेषता है। रीतिकालीन कवि अपनी कविता को मादकता के तत्वों से परिपूर्ण रखना चाहता था। इसीलिए कवि आडंबरपूर्ण वातावरण और भड़कीली वेश-भूषा का वर्णन करता है। उनकी नायिकाएँ विशाल महलों में रहती हैं, उनकी सेज की चादरें चाँदनी को लज्जित करती हैं। ऐसी नारी उन्हें पसंद नहीं जिसमें कटाक्ष निक्षेप की क्षमता न हो।

रीतिकालीन शृंगार उपभोग प्रधान होने के बावजूद गार्डस्थिक है। यह बाजारी इश्क या दरबारी वेश्या विलास से अलग है। परिणामस्वरूप कुल और शील की छाया किसी न किसी रूप में वर्तमान अवश्य रही है। नायिकाएँ स्वकीया एवं परकीया दोनों रूपों में आई हैं, पर स्वकीया का गौरव कम नहीं किया गया। स्वकीया का अर्थ है अपनी विवाहिता पत्नी और परकीया का अर्थ है दूसरे व्यक्ति की स्त्री अथवा अविवाहिता कन्या।

रीतिकालीन काव्य में राधा और कृष्ण का नाम बार-बार लिया जाता है। पर नाम ले लेने भर से ये भक्त कवि नहीं हो सकते, क्योंकि इनकी मूल प्रेरणा भक्ति नहीं है। प्रधानता ऐहिकतापरक शृंगार की है। भक्ति भावना का इस्तेमाल कवियों ने ढाल के रूप में किया है। रीतिकालीन के एक कवि ने इस संबंध में एक बड़ी स्पष्ट बात कही है :

आगे के सुकवि रीझि हैं, तौ कविताई,
न तौ राधिका कान्ह सुमिरन कौ बहानौ है।

अर्थात् आगे के कवि अगर हमारी इस कविता को अच्छा समझें, तो ठीक है, अगर यह अच्छी कविता नहीं बन पड़ी तो राधा और कृष्ण को याद करने का बहाना तो है ही।

वस्तुतः इस काल में आकर राधा कृष्ण सामान्य नायक-नायिका के रूप में परिणत हो गये। डॉ. नगेन्द्र ने इस "भक्ति" को कवियों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता माना है। जब कवि अतिशय भृंगार वर्णन के कारण मन में अपराध भावना का अनुभव करने थे तो राधा कृष्ण का स्मरण उनके धर्मभीरू मन को आश्वासन देता था और उनके लिए सामाजिक कवच का काम भी करता था।

10.4.3 वीरकाव्य

रीतिकाल में सामान्य रूप से शृंगार रस की रचनाओं की ही प्रधानता थी, तदापि शृंगार के साथ-साथ वीर रस की धारा भी अपनी मंद-मंथर गति मे बह रही थी। शाहजहाँ का शासनकाल तो पर्याप्त सुख-शांति का युग था परंतु औरंगजेब के गद्दी पर बैठते ही विपत्ति के बादल मंडराने लगे थे। उसकी धर्मांधता और कट्टर नीति ने संपूर्ण वातावरण को विक्षुब्ध कर दिया था। उसके नित नये अत्याचारों की प्रतिक्रियास्वरूप देश के कुछ वीर शासक औरंगजेब के विरुद्ध खड़े हो गये थे। दक्षिण में महाराज शिवाजी, पंजाब में गुरु गोविंद सिंह और राजस्थान में महाराज जसवंत सिंह तथा मध्य प्रदेश में छत्रसाल आदि ने अपनी तलवारें संभाल ली थीं। इनकी वीरता की भावना से प्रेरित होकर तथा इनके वीरत्व को सजग बनाये रखने के लिये वीर-रसात्मक काव्य रचना को पर्याप्त बल मिलने लगा था। मुख्य धारा शृंगारपरक होने पर भी भूषण, सूदन, पद्माकर, गोरेलाल, गुरु गोबिंद सिंह आदि कवि वीर काव्यों के सृजन में गहरी रुचि लेने लगे थे। इन कवियों की ओजपूर्ण रचनाएँ पढ़ कर वीर योद्धाओं की नसों में ऊष्ण रक्त प्रवाहित होने लगता है। भूषण का काव्य वीर रस का सर्वोत्कृष्ट काव्य माना जाता है। वे तत्कालीन जन-जागरण के प्रहरी बन कर काव्यक्षेत्र में उतरे थे। यद्यपि रीतिकालीन वीर रस के कवियों की संख्या बहुत अधिक नहीं है फिर भी हिंदी की राष्ट्रीय काव्यधारा में इनका योगदान निश्चय ही महत्वपूर्ण माना जाता है।

10.4.4 नीतिकाव्य

नीतिकाव्य का सृजन भी रीतिकाल की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। संस्कृत साहित्य में नीतिकाव्य रचना की एक विशाल एवं समृद्ध परंपरा थी, जिसका हिंदी कवियों पर भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा था। भक्तिकाल में भी नीति संबंधी प्रचुर सामग्री मिल जाती है। कबीर, तुलसी, रहीम आदि कवियों की नीतिविषयक सूक्तियाँ विशेष प्रसिद्ध हैं। भक्तिकाल की नीतिकाव्य परंपरा ही रीतिकाल तक आते-आते अधिक समृद्ध एवं जनप्रिय हो गई थी। रीतिकाल में नीतिविषयक रचनाएँ करने वालों में वृन्द, गिरिधर कविराय, घाघ, वैताल, दीनदयाल गिरि आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन कवियों की रचनाओं में जीवन के अनेक प्रभावशाली अनुभव चुभती हुई शैली में कहे गये हैं। यद्यपि इस साहित्य में चमत्कार का पुट अवश्य मिल जाता है परंतु इनसे रस की अनुभूति नहीं होती। इसीलिए आचार्य शुक्ल ने इसे कविता न कहकर सूक्ति साहित्य कहा है। विषय की विविधता और सूझ की विचित्रता के कारण यह जनता का कण्ठहार बन गया है। इसमें कण्ठस्थ हो जाने का गुण भी है, जिसने इसे सर्वप्रिय बना दिया है।

10.4.5 स्वच्छंद काव्य अथवा रीतिमुक्त धारा

रीतिकाल के अधिकांश कवि या तो लक्षण ग्रंथ लिखते थे या इन ग्रंथों को अपना आदर्श मानकर काव्य रचना करते थे। इस प्रवृत्ति के अलावा इस युग में एक और काव्यधारा भी चल रही थी, जिसे स्वच्छंदधारा अथवा रीतिमुक्त काव्यधारा कहते हैं। स्वच्छंदता का अर्थ यहाँ परंपराओं और रूढ़ियों का त्याग है। स्वच्छंदतावादी कवियों ने न तो लक्षण ग्रंथ लिखे और न ही उनके आधार पर काव्य रचना की। किसी मिश्रित आधार या बंधे-बंधाये नियमों के अधीन रह कर काव्य रचना करना उनको स्वीकार नहीं था। इन कवियों के काव्य में नवीनता एवं मौलिकता की प्रधानता है क्योंकि ये पीछे की ओर न झाँक कर समवर्ती जीवन से प्रेरणा लेते थे। इनका काव्य अलंकारों के बोझ से दबा हुआ न होकर अनुभूति प्रधान है। भाषा के क्षेत्र में भी इन्होंने केशव आदि रीतिबद्ध कवियों की तरह शब्दों की लड़ियाँ सजाने के मोह में न पड़ कर अर्थ वैचित्र्य को ही महत्व दिया है। इनका शृंगार चित्रण भी अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ, संयत और स्वच्छ है। इसीलिए इन्होंने रीतिबद्ध कवियों की तरह दूर की कौड़ी लाने का प्रयास नहीं किया। संक्षेप में इनके पास प्रेम की सच्ची अनुभूति है, जिसका उन्होंने उदात्त रूप में वर्णन किया है।

स्वच्छंदता एवं स्वच्छंद काव्यधारा के विकास में योग देने वाले कवियों में घनानंद, आलम, ठाकुर, बोधा और द्विजदेव आदि नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

10.5 शिल्प पक्ष

10.5.1 भाषा

रीतिकाल की प्रमुख साहित्यिक भाषा ब्रज थी। मध्य देश की भाषा होने तथा प्रकृति से मधुर होने के कारण उस युग के कवियों की अभिव्यक्ति का यह सर्वोत्तम माध्यम बन गई थी। रीतिकाल भाषा की सजावट का युग था और ब्रजभाषा में कोमल भावों की अभिव्यक्ति की अपार क्षमता थी। अतः रीतिकवि न केवल इनके प्रति आकृष्ट ही हुआ बल्कि उसने इसको सजाने, सँवारने और निखारने में कोई कसर उठा नहीं रखी थी।

रीतिकाल ब्रजभाषा के एकाधिपत्य का काल है। ब्रजमंडल के अतिरिक्त दूसरे प्रांतों के कवियों ने भी इसी भाषा को अभिव्यंजना का माध्यम बनाया। परिणामतः इसके शब्द भंडार में अवधी, राजस्थानी, बुंदेलखंडी आदि भाषाओं के अतिरिक्त अरबी, फारसी तथा तुरकी भाषाओं के अनेक शब्द समाविष्ट हो गये। इस प्रवृत्ति के जोर पकड़ लेने का दुष्परिणाम यह निकला कि शब्दों के मनमाने प्रयोग होने लगे। कवि व्याकरण की परवाह न करके शब्दों को तोड़ने-मरोड़ने में रुचि लेने लगे। रीतिबद्ध कवियों में तो कारक चिह्नों की गड़बड़ी तथा लिंग संबंधी दोषों की भी भरमार हो गई।

स्वच्छंदतावादी कवियों की भाषा प्रायः इसका अपवाद ही रही। इन लोगों ने भाषा के साथ खिलवाड़ नहीं किया। घनानन्द, बोधा, ठाकुर आदि ने भाषाशुद्धि एवं भाषा की अर्थक्षमता की ओर विशेष ध्यान दिया। इसीलिए इस वर्ग के कवियों की ब्रज परिनिष्ठित ब्रज का सुंदर नमूना मानी जाती है।

10.5.2 छंद

रीतिकाव्य दरबारी मनोवृत्ति का काव्य था। इसलिए इस युग में मुक्तक काव्य रचना का ही प्राधान्य रहा। मुक्तक काव्य रचना के लिए कवि को कुछ चुने हुए छंदों पर ही आश्रित रहना पड़ता है, इसलिए इस युग में कवित्त, सवैया, छप्पय, दोहा, सोरठा, बरवै और रोला जैसे छंद ही प्रचलित हुए जो रीतिकालीन काव्यधारा की प्रकृति के अनुकूल थे। जहाँ शृंगार के लिए कविगण सवैया छंद की ओर आकृष्ट हुए वहाँ वीर रस के लिए अधिकतर कवित्त को ही चुना गया। दोहा इस युग का सबसे अधिक लोकप्रिय छन्द था। भक्ति और नीति का संपूर्ण साहित्य दोहा छंद में ही रचा गया। माधुर्य एवं चारुता की दृष्टि से सवैया इस युग का सर्वश्रेष्ठ छंद माना गया। देव, पद्माकर, घनानन्द, ठाकुर, बोधा आदि के सवैया की सरस धारा रीतिकाव्य की चरम उपलब्धि है।

यद्यपि इस युग में छंदशास्त्र के निर्माता कवियों की संख्या अधिक नहीं रही, परंतु उन्होंने अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार हिंदी छंदशास्त्र के विकास में पर्याप्त रुचि दिखाई है। संस्कृत ग्रंथों से प्रभावित होने पर भी उनकी रचनाओं में मौलिकता का कुछ न कुछ अंश अवश्य है। उन्होंने पाठकों की सीमाओं का ध्यान रखते हुए सरल एवं सुबोध शैली का अनुसरण किया है। प्रायः सभी ने दोहादि छंदों में लक्षण-उदाहरण पद्धति को ही अपनाया है। गति और लय आदि की व्यवस्था की दृष्टि से भी इनका योगदान महत्वपूर्ण है। चिंतामणि का छंदविचार, मतिराम की वृत कौमुदी, भिखारीदास का छंदोर्ण व पिंगल, रामसहाय की वृत्ततरंगिणी, अमीरदास का वृत्तचंद्रोदय सुखदेव का वृत्तविचार आदि ग्रंथ प्रसिद्ध हैं।

10.5.3 अलंकार

रीतिकाल अलंकारों के विवेचन तथा काव्य में इनके प्रयोग के लिए विशेष प्रसिद्ध है। संभवतः इसीलिए मिश्रबंधुओं ने इस युग का नाम अलकृतिकाल रखा था। यद्यपि यह नाम बहुमत से स्वीकृत नहीं हुआ परंतु इस युग में रचे गये लक्षण और लक्ष्य दोनों प्रकार के ग्रंथों में अलंकारों को ही प्रधानता मिलती रही। वैसे भी उन दिनों अलंकार शास्त्र के समुचित ज्ञान के बिना किसी भी कवि के लिये राजदरबार में प्रवेश प्राप्त करना सुलभ नहीं था। इसलिए इस युग में अलंकारों की खूब धूम मची रही। यहाँ तक कि अलंकारों को साधन की अपेक्षा साध्य होने का दर्जा मिल गया। रीतिबद्ध कवि तो इस दिशा में सबसे बाजी ले गये। चमत्कारप्रिय होने के कारण श्लेष, यमक

और अनुप्रास के प्रयोग में तो इनकी होड़ लग गई। परिणामस्वरूप अलंकारों के बोझ के कारण कविता का आंतरिक सौंदर्य विलुप्त हो गया। इस काल के कवियों ने शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का प्रयोग किया है। पर इनका एक ही उद्देश्य है—चमत्कार उत्पन्न करना। बिहारी का एक दोहा उदाहरणस्वरूप लिया जा सकता है :

अधर परसि मीठी भई दई हाथ तै डारि।
लावति दतुअन ऊखि की नोखी खिदमतगारि।।

इस दोहे में नायिका अपनी दासी को ईख का दतुअन लाने के अपराध में डाँट रही है। यहाँ नायिका की सरलता एक क्षणिक चमत्कार उत्पन्न करके रह जाती है। अधर के माधुर्य से दतुअन मीठा नहीं हो जाता। पर कवि ने चमत्कार उत्पन्न करने के लिए यह कल्पना कर ली है कि होठ से लगाने मात्र से दतुअन मीठा हो गया।

चमत्कार उत्पन्न करने की इस प्रवृत्ति के पीछे भी राजाओं की रुचि का हाथ है। उस समय का शासक वर्ग इस प्रकार की चमत्कारिक उक्तियों को पसंद करता था।

केशवदास की प्रसिद्ध उक्ति, "भूषन बिनु न विराजई कविता, वनिता, मित्त" इस युग के कवियों की अलंकारप्रियता को पुष्ट करती है। यद्यपि कुछ एक कवियों ने अलंकार-विवेचन पर्याप्त विस्तार एवं मनोयोग से किया परन्तु वे किसी मौलिक सूझबूझ का परिचय नहीं दे पाये। वास्तव में वे सभी आचार्य न होकर कवि ही थे। उनका काव्यशास्त्रीय ज्ञान अधूरा था। उनके लक्षणों और उदाहरणों में भी कहीं-कहीं पर्याप्त त्रुटियाँ हैं। ये कवि सामान्य रूप से संस्कृत ग्रंथों को आधार मानकर ही चले हैं, जिनमें अधिकांश ने चंद्रालोक और कुवलयानंद की पद्धति को अपनाया है अर्थात् एक ही दोहे में लक्षण उदाहरण का समावेश कर लिया गया। चिंतामणि, मतिराम, जसवंतसिंह, देव, भूषण, पद्माकर, भट्ट, भिखारीदास आदि के अलंकारविषयक ग्रंथ विशेष प्रसिद्ध हुए।

10.5.4 काव्यरूप

रीतिकाल में काव्यरूपों की पर्याप्त विविधता पाई जाती है। प्रबंध, मुक्तक सतसई साहित्य तथा शतक आदि सभी शैलियों में काव्य रचना होती रही। इस युग का प्रधान काव्य रूप मुक्तक ही रहा। राजदरबारों में अपनी प्रतिभा का सिक्का जमाने के लिए अधिकांश कवि मुक्तक रचना को ही प्रश्रय देते रहे।

रीतिकाल में प्रबंधकाव्यों की अपेक्षा मुक्तक रचनाओं का प्रचार विपुल मात्रा में था। मुक्तक में प्रत्येक पद्य अपने में एक स्वतंत्र इकाई होता है। अर्थ की दृष्टि से उसमें पूर्वापर संबंध नहीं होता परंतु इसमें पाठक को स्वतंत्र रूप से रस लीन करने की क्षमता होती है। रीतिकालीन कवि दरबारी वातावरण से घिरा हुआ था। दरबार में अपनी कला का चमत्कार दिखाने के लिये मुक्तक शैली अधिक अनुकूल थी। उन दिनों राजदरबारों में कवियों की परस्पर होड़ चलती थी। श्रोताओं की "वाहवाही" लूटने के लिए और एक दूसरे को परास्त करने के उद्देश्य से मुक्तक शैली का प्रभाव गहरा पड़ता था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने मुक्तक को चुना हुआ गुलदस्ता कहा है। यद्यपि इसमें प्रबंध के समान रस का निरंतर प्रवाह नहीं होता परंतु यह श्रोता एवं पाठक के मन पर इसके छीटें डाल देता है, जिससे वह कुछ क्षणों के लिये मंत्रमुग्ध सा हो जाता है। कुछ आचार्यों ने तो मुक्तक रचना को प्रबंध से भी अधिक प्रभावपूर्ण माना है। संस्कृत कवि अमरूक के एक-एक मुक्तक पद्य को शत-शत प्रबंध काव्यों के समान हृदयग्राही कहा गया है। रीतिसिद्ध कवि बिहारी के दोहों में भी रसोद्रेक की पर्याप्त क्षमता है। रीतिबद्ध कवि देव का मुक्तक काव्य भी पाठक वर्ग का मन मोह लेता है।

यद्यपि इस युग के काव्य का एक बहुत बड़ा भाग मुक्तक शैली में ही लिखा गया, तथापि प्रबंध काव्यों के सृजन में भी कविगण अपनी कला का प्रदर्शन करते रहे। यह अलग बात है कि इस युग में रची गई प्रबंध रचनाएँ कवित्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण सिद्ध नहीं हुई। वैसे इस युग में पूर्व प्रचलित सभी प्रकार की प्रबंध काव्यधाराओं का प्रतिनिधित्व होता रहा। कथात्मक प्रबंध, सूफी प्रबंध, राम-काव्यधारा, कृष्णकाव्यधारा तथा वीर रसात्मक प्रबंध काव्य आदि सभी मिल जाते हैं। सबल सिंह का "महाभारत" (कथात्मक प्रबंध काव्य), कासिम शाह का हंसजवाहिर, नूरमुहम्मद की इंद्रावती, शेख निसार का यूसुफ जुलेखा (सूफी प्रबंध), गुरु गोविंद सिंह की गोविंद रामायण (रामकाव्य), ब्रजवासी दास का ब्रजविलास (कृष्णकाव्य), सूदन का सुजानचरित, जोधराज का हम्मीर रासो, गोरे लाल का छत्रसाल प्रकाश (वीरकाव्य) आदि प्रबंध रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

सतसई भी वास्तव में मुक्तक का ही एक भेद है। सतसई अर्थात् सात सौ तथा शतक अर्थात् एक सौ पद्यों के संग्रह तैयार करने की परिपाटी संस्कृत से हिंदी में आई। रीतिकाल में इस प्रवृत्ति ने विशेष जोर पकड़ा। शतकों और सतसइयों के अतिरिक्त "हजारे" भी लिखे गये। इस परंपरा में मतिराम सतसई, भूपति सतसई, राम सतसई, विक्रम सतसई, अलक शतक, तिल शतक, रसनिधि का रतन हजारा आदि संख्याबद्ध काव्य विशेष प्रसिद्ध हुए।

बोध प्रश्न 3

10 सही विकल्प के सामने (√) और गलत के सामने (X) का चिह्न लगाएँ।
रीति काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति है

क) शृंगार ( )
ख) वीर ( )
ग) लक्षण ग्रंथों का निर्माण ( )
घ) नीति काव्य ( )

11 रीतिकाल में "शृंगार" काव्य का विषय क्यों बना? (तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

....

....

....

12 रीति काव्य में कौन सा काव्यरूप अपनाया गया? सही उत्तर के सामने (√) का चिह्न लगाएँ।

क) प्रबंध ( )
ख) मुक्तक ( )
ग) कथा ( )
घ) चम्पू ( )

10.6 रीतिकाल के प्रमुख कवि

10.6.1 चिंतामणि त्रिपाठी

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने चिंतामणि को रीतिकाल का प्रथम आचार्य कवि माना है। आचार्यत्व और कवित्व दोनों दृष्टियों से रीति कालीन काव्य के विकास में इनका स्थान महत्वपूर्ण है। इन्होंने नौ ग्रंथ लिखे थे जिसमें से आज केवल पाँच ही उपलब्ध हैं। "रसविलास" इनका रस-संबंधी ग्रंथ है। "शृंगार मंजरी" नायक-नायिका भेद का ग्रंथ है। "कविकल्पतरू" में काव्यांगों का विवेचन मिलता है। "छंदविचार" में छंदों के आधार पर कृष्णचरित वर्णित है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग के निवासी होने पर भी उन्होंने स्वच्छ एवं परिनिष्ठित ब्रज का प्रयोग किया है। यह मुख्यतः रसवादी हैं और अलंकारों का प्रयोग मात्र रसोत्कर्ष के लिये ही वांछनीय मानते हैं।

10.6.2 भिखारीदास

रीतिनिरूपण के क्षेत्र में मौलिक चिंतन के लिए भिखारीदास का स्थान प्रथम श्रेणी के आलोचकों में गिना जाता है। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती संस्कृत और हिंदी के आलोचकों के काव्य सिद्धांतों का अध्ययन करके हिंदी आलोचना का सूत्रपात किया है। उनका प्रामाणिक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ "काव्य निर्णय" है जिसमें सभी काव्यांगों का गंभीर विवेचन मिलता है। आपका छंद विवेचन संबंधी ग्रंथ 'छंदोर्णव पिंगल' भी इस विषय का प्रौढ़ ग्रंथ है। नवीन छंदों का निरूपण इनकी मौलिक सूझबूझ का ज्वलंत प्रमाण है। कवित्व के क्षेत्र में भी भिखारीदास ने प्रभूत ख्याति अर्जित की है। इनकी सीधी और सरल बिंब योजना पाठक के हृदय पर अमिट प्रभाव छोड़ जाती है। इनकी भाषा सहज, स्वभाविक तथा विषयानुरूप है। आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने अरबी-फारसी शब्दावली का भी निःसंकोच प्रयोग किया है।

10.6.3 देव एवं पद्माकर

आपको यह मालूम है कि देव और पद्माकर रीतिबद्ध कवि हैं। इसलिए हम इनकी चर्चा एक साथ कर रहे हैं।

रीतिकाल के कवियों में देव की रचना परिमाण की दृष्टि से सबसे ज्यादा है। इनमें भाव-विलास, अष्टयाम, सुजान विनोद, प्रेम तरंग आदि उल्लेखनीय है। देव आचार्य और कवि दोनों ही थे। पर आचार्य के रूप में इनका कोई स्थान नहीं है। मुख्य रूप से ये कवि हैं। रीतिकाल के कवियों में इनका प्रमुख स्थान था।

लोकप्रियता की दृष्टि से बिहारी के बाद पद्माकर का न... लिया जाता है। पद्माकर की लोकप्रियता का कारण कविता की रमणीयता है। इनकी कविता में कल्पना और भावुकता का अद्भुत संयोग हुआ है। इनकी भाषा में अनेकरूपता है। पद्माभरण, जगद्विनोद, प्रबोध पचासा, "हिम्मत विरूदावली" इनके प्रमुख ग्रंथ है।

10.6.4 बिहारी

रीतिसिद्ध कवियों में ही नहीं बल्कि समूचे रीतिकाल में बिहारी का स्थान अन्यतम है। "बिहारी सतसई" नामक सात सौ दोहों की लघु रचना लिख कर जितनी अक्षय कीर्ति बिहारी को प्राप्त हुई वैसा कोई दूसरा ढूँढ पाना सरल नहीं है। वास्तव में यह रचना के परिमाण में छोटी जरूर है परंतु सागर को गागर में भरने की उक्ति को चरितार्थ करती है। कवि ने शृंगार के कोने-कोने को, प्रेम-सागर से उमड़ी प्रत्येक भाव तरंग को अपने कलाफलक पर इस व्यापकता से अंकित किया है कि श्रोता एवं पाठक अवाक रह जाता है। इसीलिए यदि सूर सूर हैं तो राधाचरण गोस्वामी के शब्दों में "बिहारी पीयूषवर्षी मेघ हैं जिसके उदय होते ही सबका प्रकाश आच्छन्न हो जाता है। कविकोकिल कुहकने, मनोमयूर नृत्य करने और चतुर चातक चुहकने लगते हैं।"

आचार्य शुक्ल ने भी बिहारी की कल्पना की समाहार शक्ति और भाषा की समास शक्ति की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इसी विशेषता के कारण बिहारी के दोहों को नावक के तीर कहा गया है:

सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखत में छोटे लगैं घाव करैं गंभीर।।

10.6.5 भूषण

भूषण वीर रस के कवि थे। रीतिकाल में शृंगार रस की प्रधानता थी, पर भूषण ने आदिकाल की वीर गाथात्मक परंपरा को जिंदा रखा। इन्होंने अपने दो आश्रयदाताओं—छत्रसाल और शिवाजी को अपने वीर काव्य का विषय बनाया। रीतिकाल के कवि होने के कारण भूषण ने "शिवराज भूषण" नाम से एक अलंकार ग्रंथ भी लिखा, पर अलंकार निरूपण की दृष्टि से इसे श्रेष्ठ ग्रंथ नहीं कहा जा सकता।

10.6.6 घनानन्द

घनानन्द स्वच्छंद काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं। इस काव्य प्रवृत्ति के सभी गुण इनके काव्य में समाहित हैं। अपनी रचना प्रक्रिया की ओर संकेत करते हुए कवि ने स्पष्ट कहा है कि उसे काव्य की प्रेरणा अपनी प्रेयसी सुजान के मादक रूप से मिली है। कवि का प्रेम एकनिष्ठ एवं अंतर्मुखी है, अतः उसमें हृदय की सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाओं का मार्मिक चित्रण मिलता है। आचार्य शुक्ल इनके संबंध में लिखते हैं— "ये वियोग शृंगार के मुक्तक प्रधान कवि हैं। "प्रेम की पीर" लेकर इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण एवं धीर पथिक तथा जबादानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।" शुक्ल जी की उपर्युक्त टिप्पणी से सिद्ध हो जाता है कि यह भाव और कला दोनों क्षेत्रों में अपने वर्ग के सर्वश्रेष्ठ कवि रहे हैं।

यद्यपि घनानन्द ने शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का वर्णन किया है परंतु विरह वर्णन में उनकी मनोवृत्ति अधिक रमी है। इनके विरह वर्णन में पर्याप्त गंभीरता और तड़प है। रीतिकाल के रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों की तरह इन्होंने अपनी विरह व्यथा को अभिव्यक्त करने में अतिशयोक्ति से काम न लेकर उसे स्वाभाविक बना दिया है।

इनकी भाषा रीतिकालीन कवियों में सर्वश्रेष्ठ है। इनकी भाषा में एक स्वाभाविकता है। लक्षणा का प्रयोग मात्रा में किया गया है, मुहावरों की छटा भी दर्शनीय है, पर ये अन्य कवियों की तरह आरोपित नहीं लगते।

इनके ग्रंथों के नाम हैं— सुजानसागर, विरह लीला, कोकसार, रसकेलिवल्ली और कृपाकाण्ड।

मूल्यांकन

रीतिकालीन काव्य मूलत: दरबारी काव्य था, जिसने शृंगार को अपना केंद्रीय विषय बनाया। कविता राजा और उसके दरबारियों के मनोरंजन का साधन बन गयी। कवि राजा के मनोरंजन के लिए शृंगार का विकृत रूप अपनी कविता के माध्यम से प्रस्तुत करने लगा। उसका एक ही उद्देश्य था राजा की प्रशंसा और अशर्फी प्राप्त करना। कविता जब व्यावसायिक हो जाती है और उसका उद्देश्य सत्ताधारी वर्ग का मनोरंजन करना हो जाता है, तब वह अपने श्रेष्ठ पद से गिर जाती है। इस काल की कविता का भी यही परिणाम हुआ। यह कविता रुग्ण मानसिकता का प्रतिफलन है। इस काल के कवियों ने लक्षण ग्रंथ भी लिखे, पर ये कुशल आचार्य भी न बन सके। उन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्रों का अनुवाद भर प्रस्तुत कर दिया इस क्षेत्र में उनका एक योगदान यह रहा कि उन्होंने रस और अलंकार के उदाहरण प्रचुर मात्रा में निर्मित किए।

रीतिकाल में कविता की प्रस्तुति और भाषा भी सहज नहीं रह गयी इस काल के कवि अपनी प्रस्तुति से अपने आश्रयदाता को चमत्कृत करना चाहते थे, अत: इस काल की भाषा में चमत्कार की प्रधानता मिलती है। अलंकार का बहुत प्रयोग इस काल में हुआ। इन चमत्कारी कवियों ने अलंकार को साधक न मानकर साध्य माना। रीतिकालीन कवियों ने यत्नपूर्वक कठोर शब्दों का बहिष्कार किया। इन्होंने उन सभी शब्दों को निकाल फेंका, जो माधुर्य गुण से ओतप्रोत न हों। डॉ. नगेन्द्र रीतिकाल की भाषा पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं: "इस प्रकार यह केवल काव्य की भाषा थी, जन-जीवन की भाषा नहीं थी इसीलिए उसमें रचनात्मकता-मात्र थी, महाप्राणता और व्यापकता नहीं रह गई है। (रीतिकाव्य की भूमिका, पृष्ठ-178)

बोध प्रश्न 4

13 चिंतामणि त्रिपाठी का परिचय दीजिए (दो पंक्तियों में)।

....

....

14 भिखारीदास का ग्रंथ है (सही उत्तर के सामने (√) का चिह्न लगाएँ)।

क) कवि कल्पतरू ( )

ख) भिखारी सतसई ( )

ग) काव्य निर्णय ( )

घ) रस विलास ( )

15 नीचे दिए गए टेबल का ठीक से मिलान करें।

देव	1	रीतिसिद्ध
बिहारी	2	रीतिमुक्त
घनानन्द	3	रीतिबद्ध

10.7 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान चुके हैं कि रीतिकाल में राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक तीनों क्षेत्रों में विघटन की प्रक्रिया आरंभ हो चुकी थी। दिल्ली के तख्त के लिए जब खून की नदियाँ बह रही थीं तो प्रजा वर्ग में खलबली मच जाना स्वाभाविक ही था। राज सेवक व्यापारी, श्रमिक एवं कृषक सब भय और संत्रास के शिकार हो गये थे। उन सबका सांस्कृतिक जीवन भी आदर्शहीन होकर विलासिता में उलझ कर रह गया था। कविता भी मनोरंजन का साधन बन गई थी इस बौद्धिक और सांस्कृतिक ह्रास से साहित्य रचना में भी परिवर्तन होने लगा था। भक्ति का स्थान शृंगार ने ले लिया था। नख शिख वर्णन, नायक-नायिका भेद आदि विषयों को लेकर इस युग के श्रेष्ठकवि अपनी प्रतिभा का ह्रास कर रहे थे। काव्य लक्षण से लेकर शब्दशक्ति, गुण-दोष, रसरीति, छंद अलंकार आदि सभी विषयों पर परंपरा पालन मात्र के लिये ही कविगण अपनी कलम घसीटने लगे थे। राजदरबार में सम्मान प्राप्त करने के लिए कवि होने के साथ आचार्य के कर्तव्य का निर्वाह भी आवश्यक समझा जाता था। ये लेखक काव्य शास्त्र के ज्ञाता नहीं थे परंतु ज्ञाता होने का स्वांग रच रहे थे। उनके आचार्यत्व पर उनके कवि का पलड़ा भारी रहता था। परंतु कवि के रूप में भी वे वासनाजन्य प्रेम को ही प्रश्रय देते रहे। इसमें संदेह नहीं कि रीतिमुक्त कवियों का एक छोटा-सा वर्ग अवश्य ही इसका अपवाद सिद्ध होता है। इन कवियों की रचनाओं में प्रेम का उदात रूप मुखरित हुआ है। इन्होंने रीतिबद्ध कवियों की तरह राधा और कृष्ण के सुमिरन के बहाने से अपनी रुग्ण मनोवृत्ति का परिचय नहीं दिया है।

रीतिकाल में कथ्य की अपेक्षा शिल्पविधान की ओर कवियों की मनोवृत्ति अधिक रमी है। भाषा को नानाविध अलंकारों से सजाया गया है। काव्यभाषा ब्रज का शब्द भण्डार अवधी, राजस्थानी, बुंदेलखंडी आदि के अलावा अरबी, फ़ारसी और तुर्की शब्दों से पर्याप्त समृद्ध हो गया था। भाषा की अभिव्यंजना शक्ति में विस्तार एवं विकास अवश्य आया था परंतु भाषा का रूप भी विकृत हो चला था। रीतिबद्ध कवियों में तो कारक चिह्नों की गड़बड़ी तथा लिंग संबंधी दोषों की भरमार हो गई थी। रीति मुक्त कवि निश्चय ही इसका अपवाद रहे। घनानन्द आदि कवियों की भाषा परिनिष्ठित ब्रज का आदर्श उपस्थित करती है।

10.8 शब्दावली

अंतर्मुखी : भीतर की ओर जाने वाली
अभिव्यंजना : अभिव्यक्ति, प्रकट होना
उष्ण : तीखा
एकनिष्ठ : एक के ही ऊपर निष्ठा
ऐहिकतापरक : जिसका संबंध सांसारिक बातों से हो।
कटाक्ष निक्षेप : तिरछी निगाह डालना
काव्यांग : काव्य के अंग
जबादानी : भाषा का पंडित
पूर्वापर : अगला और पिछला
मसृणता : चिकना, मुलायम, चमकदार।
रसोद्रेक : रस से सराबोर
विपुल : काफी
समास शक्ति : संक्षेप रूप में प्रस्तुत करने की शक्ति
समाहार शक्ति : शब्दों और वाक्यों को जोड़ने की शक्ति
सूक्ति : सुंदर उक्ति
हृदयग्राही : मनोहर

10.9 उपयोगी पुस्तकें

द्विवेदी, हजारी प्रसाद, *हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास,* राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

नगेन्द्र, *रीतिकाव्य की भूमिका,* नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली।

शुक्ल, रामचंद्र, *हिंदी साहित्य का इतिहास,* नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

10.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 (क) ✓ (ख) × (ग) × (घ) ✓
2 रीतिकाल के दौरान राजनीतिक अस्थिरता व्याप्त थी। औरंगजेब के समय से ही स्थानीय सरदार और अमीर सिर उठाने लगे थे। उसकी मृत्यु के बाद केंद्रीय शासन बुरी तरह बिखर गया और प्रांतीय सरदारों और अमीरों ने अपना स्वतंत्र अस्तित्व कायम कर लिया। नादिर शाह (1739) और अहमदशाह अब्दाली (1748) के आक्रमणों ने मुगलों की शक्ति को पूरी तरह ध्वस्त कर दिया।
3 1643, 1843
4 रीतिकालीन चित्रकला अलंकरण के बोझ से दब सी गई। इससे यह कला निर्जीव हो गयी। व्यक्ति चित्रों तक में रंग-प्रदर्शन का महत्व रह गया। इन व्यक्ति-चित्रों में स्त्री सौंदर्य के अंकन की प्रधानता है।
5 रीतिकालीन समाज ह्रासोन्मुख सामंतवादी समाज था, जिसमें एक वर्ग विलासिता और शृंगार में डूबा हुआ था और दूसरा वर्ग भर पेट भोजन नहीं ग्रहण कर पा रहा था। विडंबना यह थी कि यही वर्ग उत्पादन भी कर रहा था, पर उस पर उसका अधिकार नहीं था।

बोध प्रश्न 2

6 17वीं शताब्दी के मध्य से 19 वीं शताब्दी के मध्य तक लिखी गयी हिंदी कविता को रीतिकाव्य के रूप में जाना जाता है। इस काल में एक रीति अर्थात् एक पद्धति पर कविता लिखी गयी।

7 चिंतामणि, भिखारीदास, बिहारी, देव, पद्माकर और घनानंद।

8 रीतिबद्ध कवि कविता करने के साथ-साथ काव्यशास्त्र की शिक्षा भी दिया करते थे। इन्हें आचार्य कवि भी कहा जाता है। रीतिसिद्ध कवि लक्षण ग्रंथ नहीं लिखते थे, पर इन ग्रंथों से प्रेरणा अवश्य लेते थे।

9 रीतिकाव्य की तीन शास्त्रीय शैलियाँ थीं– रीतिबद्ध, रीतिमुक्त और रीतिसिद्ध। रीतिबद्ध कवि लक्षण–उदाहरण लिखने पर ज्यादा ध्यान देते थे। रीतिसिद्ध कवि लक्षण नहीं लिखते थे, पर लक्षणों को ध्यान में रख कर ही कविता लिखते थे। रीतिमुक्त शैली में रूढ़िविरोधी, स्वच्छंद भावना से ओतप्रोत शैली है, जिसमें प्रेम के अनुभूति पक्ष की प्रधानता है।

बोध प्रश्न 3

10 क) (√) ख) (×) ग) (√) घ) (×)

11 अपने आश्रयदाताओं का मनोरंजन करने के लिए कवि शृंगारपरक कविताएँ लिखते थे। इसी कारण शृंगार कविता का केंद्रीय विषय बन गया।

12 ख) (√)

बोध प्रश्न 4

13 चिंतामणि रीतिकाल के प्रथम आचार्य-कवि हैं। "रसविलास" इनका प्रमुख ग्रंथ है।

14 ग

15 देव - रीतिबद्ध
बिहारी - रीतिसिद्ध
घनानंद - रीतिमुक्त

इकाई 11 रीतिबद्ध काव्य : देव एवं पद्माकर

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 देव एवं पद्माकर : रीतिबद्ध कवि
11.3 देव और उनका काव्य
11.3.1 देव का आचार्यत्व
11.4 देव की काव्यगत विशेषताएँ
11.4.1 वर्ण्य विषय
11.4.2 भाव पक्ष
11.4.3 संरचना शिल्प
11.5 संदर्भ सहित व्याख्या
11.6 पद्माकर और उनका काव्य
11.6.1 पद्माकर का आचार्यत्व
11.7 पद्माकर की काव्यगत विशेषताएँ
11.7.1 वर्ण्य विषय
11.7.2 भाव पक्ष
11.7.3 संरचना शिल्प
11.8 संदर्भ सहित व्याख्या
11.9 सारांश
11.10 शब्दावली
11.11 उपयोगी पुस्तकें
11.12 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम रीतिकाल के दो कवियों देव और पद्माकर के काव्य की विशेषताओं का अध्ययन करेंगे। इन दोनों कवियों की काव्यगत विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करने के साथ-साथ कवि का परिचय, काव्य का वाचन और संदर्भ सहित व्याख्या प्रस्तुत करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- रीतिकालीन कविता में देव और पद्माकर के काव्य का महत्व रेखांकित कर सकेंगे,
- विवेच्य कवियों के काव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डाल सकेंगे,
- कविता में आये कठिन शब्दों का अर्थ बता सकेंगे, और
- कविता के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम देव एवं पद्माकर की कविता का अध्ययन करेंगे। इसके पहले आपने इकाई 10 में "रीतिकाव्य का स्वरूप एवं विकास" का परिचय प्राप्त किया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद रीति शब्द का अर्थ; रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त कविता का अंतर, आपकी समझ में आ गया होगा। आप यह पढ़ चुके हैं कि जिन ग्रंथों में रचना-संबंधी नियमों का उल्लेख होता है, उन्हें रीतिग्रंथ कहते हैं और इन ग्रंथों को आधार मानकर लिखी हुई कविताओं को रीतिकाव्य। इकाई 10 को पढ़ने के बाद आप इस तथ्य से भी अवगत हो गये हैं कि रीतिकाल में जिन कवियों ने रस अलंकार आदि काव्यांगों के लक्षण-उदाहरण लिखने में अपनी काव्य-प्रतिभा का उपयोग किया, उन्हें रीतिबद्ध कवि कहा गया, जिन कवियों ने लक्षण ग्रंथ तो नहीं लिखे परंतु काव्य रचना करते हुए उनकी दृष्टि इन ग्रंथों की मान्यताओं का पालन करती रही, उनको रीतिसिद्ध कवि माना जाता है, तथा जिन कवियों ने न तो लक्षण ग्रंथ लिखे और न ही वे रीतिकालीन परंपरा से प्रभावित हुए, बल्कि स्वतंत्र रूप से काव्य रचना करते रहे, ऐसे कवियों को रीतिमुक्त कवि माना गया।

इन जानकारियों के आलोक में आप रीतिबद्ध कविता के प्रतिनिधि कवि देव और पद्माकर की जानकारी इस इकाई में प्राप्त करेंगे। इसके बाद आपको देव और पद्माकर की रचनाओं से अवगत कराया जाएगा। इन कवियों की रचनाओं से परिचित होने के बाद आप इनकी काव्यगत विशेषताओं के बारे में पढ़ेंगे। इसके साथ ही साथ आप संदर्भ व्याख्या करना भी सीखेंगे। इकाई के बीच में बोध प्रश्न दिए जाएंगे, जिससे आपको पता चल सके कि आपने बात किस हद तक सीखी। अभ्यास प्रश्नों के माध्यम से आपकी योग्यता की जाँच की जाएगी।

11.2 देव एवं पद्माकर: रीतिबद्ध कवि

देव और पद्माकर दोनों रीतिबद्ध कवियों की श्रेणी में आते हैं। रीतिकालीन साहित्य के अधिकांश कवि इसी रीतिबद्ध वर्ग में आते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रीतिबद्ध कवियों को रीति ग्रंथकार कवि शीर्षक के अंतर्गत रखा है जिसमें उन्होंने 57 कवि चर्चित कवियों की चर्चा की है। वास्तव में देव और पद्माकर दोनों कवि इस वर्ग में अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। रीतिबद्ध काव्य के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि इस वर्ग के कवियों का प्रमुख उद्देश्य काव्यशास्त्र की शिक्षा देना था। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर वे ग्रंथ रचना करते थे। इसलिए इनका नाम रीतिबद्ध रखा गया अर्थात् ये कवि रीति अथवा काव्यशास्त्र से जुड़े हुए थे। डॉ. नगेन्द्र ने रीतिबद्ध के स्थान पर इनका नाम "रीतिकार" अथवा "आचार्य कवि" रखा है परंतु यह नाम अधिक प्रचलित नहीं हुआ।

रीतिबद्ध कवियों के भी दो प्रमुख वर्ग माने जाते हैं—**सर्वांग निरूपक और विशिष्टांग निरूपक।** जो कवि काव्य लक्षण से लेकर शब्द शक्ति, गुण-दोष रस, रीति, अलंकार, छंदादि सभी काव्यांगों का विवेचन करते हैं, उन्हें **सर्वांग निरूपक** कवि माना गया है। हमारे आलोच्य कवि देव इसी कोटि में आते हैं, क्योंकि इन्होंने सभी काव्यांगों का विवेचन बड़े विस्तार से किया है। **विशिष्टांग निरूपक** कवि काव्य के सभी अंगों को अपने विवेचन का विषय न बनाकर रस, अलंकार, छंद आदि में से एक, दो अथवा तीन अंगों का ही विवेचन करते हैं। पद्माकर भट्ट का स्थान इसी वर्ग में ठहरता है। पद्माकर ने दो काव्यांगों– रस और अलंकार– के विवेचन में अपनी अद्भुत क्षमता का परिचय दिया है।

यद्यपि देव ने सभी काव्यांगों को बड़े विस्तार से विवेचित किया है परंतु उनके लक्षणों और उदाहरणों में कहीं-कहीं समानता का अभाव है। उनका रस-विवेचन तथा नायक-नायिका वर्णन भी कहीं-कहीं दोषपूर्ण हो गया है। इसमें संदेह नहीं कि कवित्व की दृष्टि से इनकी रचनाएँ पर्याप्त लोकप्रिय हुई हैं। परिणाम एवं गुणवत्ता दोनों दृष्टियों से देव इस युग के श्रेष्ठ कवि सिद्ध होते हैं। इनकी सुकुमार कल्पना बिहारी से टक्कर लेती है। इसलिए कई आलोचकों ने इनकी तुलना बिहारी से भी की है।

विशिष्टांग निरूपक रीतिकवियों में पद्माकर का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। इन्होंने आचार्य एवं कवि दोनों रूपों में विपुल ख्याति अर्जित की है। इनका नाम रस एवं अलंकार का सफल विवेचन करने वाले गिने-चुने आचार्यों में बड़े गर्व से लिया जाता है। इनकी कल्पना इतनी स्वाभाविक है कि पाठक मानों प्रत्यक्ष अनुभूति में मग्न हो जाता है। इन्होंने वीर रस की कविता भी लिखी हैं और भक्ति पर भी इनका समान अधिकार रहा है, परंतु जितनी सफलता इन्हें शृंगार वर्णन में मिली है, उतनी किसी अन्य क्षेत्र में प्राप्त नहीं हुई। यद्यपि अनुप्रासों के फेर में उन्होंने कहीं-कहीं भावों की उपेक्षा कर दी है। परंतु सामान्यतः उनकी भाषा पर्याप्त सधी हुई एवं सौष्ठव संपन्न है। आचार्य के रूप में उन्होंने दोहों का प्रयोग किया है। और कवि के रूप में कवित्त और सवैयों का। उनका शब्द भंडार विपुल है, इसलिए उनके छंद सरस एवं कलापूर्ण बन सके हैं।

11.3 देव और उनका काव्य

देव का जन्म उत्तरप्रदेश के इटावा नगर में 1673 ई. में हुआ था। मिश्रबंधुओं ने इन्हें कान्यकुब्ज ब्राह्मण माना है, परंतु इनका संबंध सनाढ्य ब्राह्मण परिवार से था। यह अपने जीवन काल में अनेक राजा, रईसों और नवाबों के आश्रय में रहे। कहा जाता है कि यह 94 वर्षों तक जीवित रहे और 1767 ई. में इनका देहावसान हो गया।

देव ने "भाव विलास" नामक रचना में कहा है कि वे धौसरिया ब्राह्मण थे– "धौसरिया कवि देव

को नगर इटायो बास।" इटावा के पास वे एक गाँव कुसमरा में लंबे समय तक रहे और उनके सृजन का स्थान भी वहीं है। देव के गुरु श्री हित हरिवंश थे, जो वृंदावन में रहते थे। वहीं पर देव ने विद्याध्ययन किया। हित हरिवंश के बारह शिष्यों में देव मुख्य थे।

भारतेंदु बाबू ने देव के पदों का संग्रह "सुंदरी सिंदूर" नाम से किया तथा इस स्थापना का समर्थन किया है। देव अपने जीवनकाल में आजमशाह, अकबर अलीखां, दादरी के रईस, भवानीदत्त, फफूंद के केशव सिंह, उद्योत सिंह, भोगी लाल आदि अनेक राजाओं और रईसों के दरबार में रहे थे।

रीतिकाल के कवियों में देव का कृतित्व प्राय: सबसे अधिक माना जाता है कुछ विद्वान इनकी पुस्तकों की संख्या 72 और कुछ 52 मानते हैं। परंतु अभी तक इनकी केवल 25 रचनाएँ ही प्रकाश में आई हैं। **भाव विलास** इनकी सर्वप्रथम रचना है। इसमें अलंकार निरूपण और शृंगार की विस्तृत व्याख्या मिलती है। **शब्द-रसायन** में शब्दशक्ति, गुण, रीति तथा छंदों का विवेचन है। **अष्टयाम** में नायक-नायिकाओं की दिनचर्या प्रस्तुत की गई है। **देव शतक** अध्यातम संबंधी ग्रंथ है। **प्रेमचंद्रिका** में विषय-वासना के प्रति तिरस्कार की भावना मिलती है। इसके अतिरिक्त **रसविलास, जातिविलास, सुखसागर तरंग, राधिका विलास, देवचरित्र, भवानीविलास, कुशलविलास, प्रेमतरंग, सुजान विनोद** आदि भी इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। **देव माया प्रपंच** संस्कृत के **प्रबोध-चन्द्रोदय** नाटक का पद्यानुवाद है।

इनकी प्रारंभिक रचनाएँ शृंगार प्रधान थीं परंतु जैसे-जैसे इनकी आयु ढलती गई, वह भक्तिपरक काव्य लिखने लगे। ब्रह्म दर्शन पचीसी और तत्व दर्शन इनकी आखिरी दौर की रचनाएँ हैं जो आत्मचिंतन पर आधारित है।

11.3.1 देव का आचार्यत्व

देव ने अन्य विषयों की अपेक्षा रीतिग्रंथ सबसे अधिक लिखे हैं। इनके अब तक उपलब्ध कुल अठारह ग्रंथ में दस रीतिग्रंथ ही हैं। संभवत: इसलिए मिश्रबंधुओं ने इन्हें हिंदी का मम्मट माना है।

देव को रीति आचार्यों में मम्मट इसलिए कहा जाता है कि इन्होंने काव्य के सर्वांग का विवेचन और निरूपण किया है। इस प्रवृत्ति के प्रमुख ग्रंथ दो हैं– (1) भाव विलास (2) शब्द रसायन। सभी रसों का पूर्ण विवेचन "भवानी विलास" तथा "शब्द रसायन" में ही मिलता है। "भाव विलास" में रस के आंतरिक अंगों का विवेचन है; पर इसमें शृंगार की ही प्रधानता है–यथा–

> कवि देवदत्त शृंगार रस सकल भाव संयुत संच्यो।
> सब नायकादि नायक सहित, अलंकार वर्णन रच्यो ।। (भाव विलास)

नायिका-भेद "भाव विलास", "भवानी विलास", "रस विलास", "सुख सागर तरंग" में पूर्ण विस्तार से वर्णित है। इसके अतिरिक्त देव, काव्य-रस, अलंकार, शब्द-शक्ति, काव्य हेतु, काव्य-प्रयोजन, काव्य की आत्मा काव्य-उपादान आदि पर विस्तार से मम्मट की भांति ही विचार करते हैं। देव के लक्षण सीधे और स्पष्ट होते हैं जैसे–

> जो विभाव अनुभाव अरू, विभचारिन करि होइ।
> थिति की पूरन वासना, सुकवि कहत रस होय।। (भाव विलास)

अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव द्वारा स्थायी भाव की पूर्ण वासना को रस कहते हैं। यहां "वासना" शब्द का अर्थ है– स्मृत ज्ञान आपका अनुभव। रस-परिपाक के लिए देव ने स्नेह या रागात्मकता को अनिवार्य माना है। दरअसल देव का आधार ग्रंथ है– भानुदत्त की "रस-तरंगिणी"। फिर भी देव ने नव रसों के साथ वत्सल, प्रेयान भक्ति आदि को पृथक रूप से स्वीकार कर रसों की संख्या में वृद्धि की। शृंगार के आलंबन नायक-नायिका भेद भी रस के अंतर्गत ही आ गया है और रीतिकाल के शृंगार को समझने की मूल दृष्टि भी देव ने ही दी है–

> वाणी को सार बखान्यो सिंगार।
> सिंगार को सार किसारे-किसोनी।।

कामशास्त्र के आधार पर देव नायक-नायिका भेद का भाव-विस्तार करते हैं तथा देश, प्रकृति, काल को लेकर आगे बढ़ते हैं, देश-भेद, जैसे– मध्यप्रदेश वधू, मगधवधू, पाटलवधू, उत्कलवधू आदि भेद।

देव ने रीति को "काव्य द्वार" माना है तथा रस से उसे जोड़ दिया है।

ताते पहले बरनिए काव्य द्वार रसरीति।

रीतिबद्ध कवि देव विशुद्ध रसवादी थे और विश्वनाथ आचार्य की रसवादी परंपरा में स्थान रखते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि देव रस की चर्चा करने पर भी ध्वनि पर मौन रहते हैं। अलंकार पर बोलते हैं, काव्य गुण पर विचार करते हैं पर ध्वनि पर नहीं। उन्हें शब्द शक्तियों का बहुत अच्छा ज्ञान है तथा वे अभिधा को उत्तम काव्य मानते हैं तथा व्यंजना को रस-कुटिल अधम कहते हैं--

अभिधा उत्तम काव्य है; मध्य लच्छना लीन।
अधम व्यंजना रस कुटिल उलटी कहत प्रवीन।।

निष्कर्ष यह कि हिंदी के रीति-साहित्य में रस-सिद्धांत का इतना समर्थ आचार्य दूसरा नहीं है।

इसमें संदेह नहीं कि इनके काव्यशास्त्रीय विवेचन में बहुत अधिक विस्तार है, परंतु गहराई बहुत कम है। कुछ बातें इन्होंने नई भी कहीं हैं, जैसे "छल" को 34वां संचारी भाव माना है। गुणों की संख्या 12 कर दी है। नायिकाओं की संख्या 384 तक पहुंचाई है। अभिधा को उत्तम और व्यंजना को अधम माना है। 33 वर्णों का एक नया छंद देव घनाक्षरी के नाम से प्रचलित किया है तथा सवैये के चार नवीन भेद भी किए हैं। जहाँ तक काव्यशास्त्रीय योगदान का संबंध है, देव के उपर्युक्त निष्कर्षों को बहुत कम महत्व दिया जाता है। पिंगल के क्षेत्र में देव की मौलिकता अवश्य ही सराहनीय है।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित कथनों में से कौन सही है और कौन गलत।
(सही कथन के सामने (√) का और गलत कथन के सामने (X) का चिह्न लगाएं)

क) देव विशिष्टांग निरूपक कवि थे ( )
ख) देव सर्वांग निरूपक कवि थे। ( )
ग) पद्माकर विशिष्टांग निरूपक कवि थे। ( )
घ) पद्माकर सर्वांग निरूपक कवि थे। ( )

2) रिक्त स्थान की पूर्ति नीचे दिए गए विकल्पों में से चुनकर करें।
.... देव की पहली रचना है।

क) शब्द रसायन
ख) ब्रह्म दर्शन पचीसी।
ग) भवानी विलास।
घ) भाव विलास।

3) देव को हिंदी का मम्मट क्यों कहा जाता है? (उत्तर पांच पंक्तियों में लिखिए)
....
....
....
....
....

11.4 देव की काव्यगत विशेषताएँ

हम देव की काव्यगत विशेषताओं पर विचार करने जा रहे हैं। इसके अंतर्गत वर्ण्य विषय, भाव पक्ष और संरचना शिल्प के बारे में हम आपको कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों से अवगत कराएंगे।

11.4.1 वर्ण्य विषय

देव ने अपनी प्रथम रचना "भाव विलास" 16 वर्ष की अवस्था में लिखी थी। इस प्रकार इनका लेखन कार्य अनुमानतः सात-आठ दशक तक चलता रहा होगा। जनश्रुति के अनुसार इनके कुल ग्रंथों की संख्या किसी ने 72 और किसी ने 52 बताई है। यह संख्या विश्वसनीय न भी हो परंतु यह मानना होगा कि देव का रचना-संसार परिमाण और विविधता दोनों दृष्टियों से रीतिकाल के अन्य

कवियों की अपेक्षा विशाल एवं व्यापक है। देव की केंद्रीय संवेदना शृंगार प्रधान है। एक दो ग्रंथों को छोड़कर उनके सभी ग्रंथों में शृंगार रस का विषय विस्तार है। देव ने पूरे आग्रह के साथ रस काल में शृंगार का रस राजत्व सिद्ध किया। इस रस राजत्व को वे :

1) निर्मल स्याम सिंगार हरि देव अकास अनंत,
उड़ि उड़ि खग ज्यों और रस विवस न पावत अंत।

2) भूलि कहत नवरस सुकवि सकल मूल सिंगार,
तेहि उछाह निर्वेद लै, बीर, शांत, संचार। (भवानी विलास)

शृंगार का प्रतिपादन देव के लिए मात्र सिद्धांत प्रतिपादन ही नहीं था बल्कि वह काव्यनुभूति का सहज अंग था। मुक्ति और भोग का मूल है– काम-भावना की तृप्ति। काम पूर्ति का आधार है– रमणी से रमण–

युक्ति सराही मुक्ति हित, मुक्ति भुक्ति को धाम।
युक्ति, मुक्ति और भुक्ति को मूल सु कहिए काम।

बिना काम पूरन भये लगै परम पद क्षुद्र।
रमनी राका–ससि मुखी पूरे काम–समुद्र। (रस विलास)

तीनों लोकों में काम की महिमा है– इस काम की महिमा से भगवान भी अभिभूत हैं। पर देव का यह मत भी साफ है कि प्रेम के बिना शृंगार असार है। "प्रेम हीन त्रिय वेश्या है शृंगाराभास"। इस भावना के कारण वे स्वकीया के प्रेम को ही सच्चा प्रेम मानते हैं। उनके विचार से परकीया का प्रेम तीव्र होने पर भी श्रेयस्कर नहीं है। कहना होगा कि प्रेम के प्रति देव का दृष्टिकोण विकृत शृंगारिकता के रीतिकालीन बोध से युक्त नहीं था–

सब सुखदायक नायिका-नायक जुगल अनूप।
राधा हरि आधार जस रस सिंगार स्वरूप।।

इन्होंने शृंगार, भक्ति, दरबारी संस्कृति, काव्य, नाटक, रस, अलंकार, नायक-नायिका भेद आदि अनेक विषयों को अपनी लेखन परिधि में ले लिया है। इसमें संदेह नहीं कि इनकी रचनाओं में कुछ विषयों की पुनरावृत्ति भी हो गई है। "भाव विलास" में निरूपित अलंकार "शब्द रसायन" में भी समाविष्ट हो गये हैं। नायक-नायिका भेद तो तीन-चार ग्रंथों में थोड़े-बहुत हेरफेर के साथ एक समान ही निरूपित हो गया है। "सुख सागर तरंग" में तो बहुत सी सामग्री अन्य ग्रंथों से संग्रहीत की गई है।

देव के वर्ण्य विषयों में शृंगार वर्णन को सर्वाधिक वरीयता मिली है। शृंगार के दोनों पक्षों– संयोग और वियोग– के सभी अवयवों के सुंदर उदाहरण इनकी कविता में यत्रतत्र बिखरे पड़े हैं। संयोग के अंतर्गत देव ने विनोद, विहार, रूप-चित्रण आदि सभी प्रसंगों को लिया है। नोक-झोंक, हास-परिहास, चुहल, होली खेलना, झूला झूलना आदि सभी विलास-क्रियाएं चित्रित हुई हैं। उदाहरण स्वरूप संयोग और वियोग के पदों को देखें।

संयोग शृंगार

नायिका द्विरागमन अर्थात् गौने की तैयारी कर रही है। घर की बड़ी बूढ़ियाँ उसका शृंगार कर रही हैं। सखी-सहेलियाँ ससुराल की सुख सुविधाएँ बताकर उसे शिक्षा दे रही हैं जिससे वह अपने "मनभावन" अर्थात् पति को प्रसन्न रखे। "मनभावन" सुनते ही किस प्रकार नायिका पुलकित हो उठती है इसका वर्णन है :

**1) गौने[1] के चार चली दूलही[2], गुरु लोगन भूषण भेष बनाए।
सीख सयान सखीन सिखायो, बड़े सुख सासुरे[3] हू के सुनाये।
बोलियो बोल सदा हंसी कोमल, जे मन भावन[4] के मन भाये।
यों सुनि ओछे उरोजन[5] पै, अनुराग[6] के अंकुर से उठि आए।**

वियोग शृंगार

रीतिकालीन कवियों की नायिकाएँ वियोग में सूखकर कांटा हो जाती हैं। बिहारी की नायिका हवा चलने से छह सात हाथ आगे-पीछे डोलने लगती है। इस प्रकार के अनेक अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन

---

1 गौने : द्विरागमन, विवाह के बाद एक रस्म जिसमें वर वधू को अपने घर लाता है; 2 दूलही : दूलहन; 3 सासुरे : ससुराल; 4 मन भावन : प्रियतम, पति; 5 उरोजन : स्तन; 6 अनुराग के अंकुर... आए : पुलकित हो उठी, रोमांच हो आया;

मिलते हैं। देव का वियोग चित्र जो हम देने जा रहे हैं, यद्यपि अतिशयोक्तिपूर्ण है परंतु इतना अस्वाभाविक नहीं है। इस प्रकार के चित्र प्रायः रीतिकाल की मानसिकता के अनुकूल ही हैं। देव की नायिका की कलाई इतनी पतली हो गई है कि कलाई में पहनी हुई चूड़ियाँ "काग" उड़ाते समय निकालकर कौवे के गले में जा गिरती हैं–

2) **लाल बिना बिरहाकुल बाल वियोग की ज्वाल भई झूरि झूरि।**
पौन औ पानी सो प्रेम कहानी सौ पान ज्यौं प्राननि राखत हरी।
"देव जू" आजु मिलाप की औधि सो बीतत देख विसेरव बिसूरी।
हाथ उठायो उडायवे को उड़ि काग गरे गिरी चारिक चूरी।

प्रकृति चित्रण

रीतिकालीन कवियों ने प्रकृति का स्वतंत्र चित्रण प्रायः नहीं किया है। इसका चित्रण विशेषतः उद्दीपन के रूप में हुआ है। देव का एक पद पढ़िए।

3) **झहरि झहरि झीनी बूंदनि परत मानो,**
घहरि घहरि घटा छेरी है गगन में।
आनि कध्यो स्याम मोसौं "चलौ भूलिवे कौं" आज,
फूली न समानी, भई ऐसी हौं मगन में।।

वर्षा की फुहार जमीन पर पड़ रही है, आकाश में बादल घिरे आये हैं। इसी समय कृष्ण आते हैं और नायिका को झूला झूलने का आमंत्रण देते हैं। नायिका फूली नहीं समाती, उसे अपनी सुधा नहीं रहती :

देव की कविता में दूसरा स्थान भक्ति, दर्शन और नीति को मिला है। "देव माया प्रपंच" और "देव शतक" दार्शनिक ग्रंथ हैं। एक "नीतिशतक" नाम का ग्रंथ भी देव के नाम के साथ जोड़ा जाता है परंतु यह ग्रंथ अभी तक उपलब्ध नहीं हो सका है। भक्ति और नीति संबंधी निम्नलिखित पदों को पढ़ने पर यह बात और भी स्पष्ट हो जाएगी।

भक्ति

इससे पूर्व आप देवकवि के संयोग और वियोग पर आधारित दो पदों का अध्ययन कर चुके हैं। रीतिकालीन कवियों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय तो शृंगार ही था परंतु वृद्धावस्था प्राप्त करने पर वे कभी-कभार भक्ति काव्य भी रच डालते थे। यद्यपि इनकी भक्ति राधा-कृष्ण के स्मरण का बहाना ही कही जा सकती है। देव भी इसी प्रवाह में बहे थे। निम्नलिखित पद में उनकी अपने इष्ट देव की शक्ति में अतुल निष्ठा का परिचय मिलता है।

4) **चाहे सुमेरू[1] को छारि[2] करै,**
अरू छार को चाहे सुमेरू[3] बनावै,
चाहे तो रंक[4] को राव[5] करै,
चाहे राव को द्वार ही द्वार फिरावै,
रीति यही करुणाकर[6] की कवि,
देव कहे विनती मोहि भावै,
चींटि के पांव में बांधि के हाथी,
वह चाहे समुद्र को पार लगावै।।

नीति

रीतिकाल में दरबारी काव्य लिखने की भी एक विशिष्ट परंपरा रही है। देव ने भी अपने आश्रयदाताओं की स्तुति में बहुत कुछ लिखा है परंतु जिस प्रकार वृद्धावस्था में पहुंचकर वह शृंगार के स्थान पर भक्ति के पद रखने लगे थे, उसी प्रकार गुणगान से भी उन्होंने अपनी कलम खींच ली थी। उनको विश्वास हो गया था कि स्वार्थवश अर्थलोलुप होकर आश्रयदाताओं का गुणगान करना एक सच्चे कवि को शोभा नहीं देता। इस संबंध में उनका एक प्रसिद्ध सवैया इस प्रकार है–

---

1 सुमेरू : सुमेर पर्वत, सोने का पहाड; 2 छारि : राख; 3 सुमेरू : सोना; 4 रंक : गरीब; 5 राव : राजा; 6 करुणाकर : करुणा के भंडार, ईश्वर।

5) **जाके न काम न क्रोध विरोध**
न लोभ छुवे नहिं छोभ को छांहीं।
मोह न जाहि, रहे जग बाहिर
मोल जवाहिर[1] तो अति चाहीं।
बानि पुनीति ज्यों देवधुनी
रस आरद[2] सारद[3] के गुन गाहीं।
सील ससी[4] सविता[5] छविता
कविताहि रचे कवि ताहि सराहीं।।

11.4.2 भाव पक्ष

कविता में दो पक्ष होते हैं। कवि जो कहता है उसे भाव, वस्तु या विषय कहते हैं तथा जिस ढंग से कहता है उसे शैली या कला कहते हैं। देव प्रधानतः शृंगार रस के कवि हैं, अतः उनके भावपक्ष पर विचार करते समय हमारा ध्यान सर्वप्रथम उनके शृंगार-वर्णन की ओर हो जाता है। देव ने शृंगार को रसराज मानते हुए उसी में सभी रसों का विलय माना है। उन्होंने स्पष्ट कहा है: **नवरस मुख्य शृंगार जहं उपजत विनसत सकल रस।**

रीतिकालीन कवियों ने जहाँ बारह मासे और षट्ऋतु वर्णन में विशेष उत्साह दिखाया है वहाँ देव इससे भी एक कदम आगे बढ़ गये हैं। उन्होंने अष्टयाम लिखकर आठ पहरों और चौसठ घड़ियों के विलासपूर्ण चित्र खींचे हैं।

देव के शृंगार वर्णन की सबसे बड़ी एक विशेषता यह है कि उन्होंने अन्य कवियों की भांति परकीया के शृंगार को शृंगार नहीं माना। उन्होंने केवल स्वकीया प्रेम को ही शुद्ध शृंगार के अंतर्गत लिया है। उदाहरण स्वरूप इस पद को ध्यान से पढ़ें :

गौने के चार चली दुलही, गुरू लोगन भूषण भेंष बनाए
सील सयान सखीन सिखायो, बड़े सुख सासुरे हू के सुनाये।
बोलियो बोल सदा हंसी कोमल, जे मन भावन के मन भाये
यों सुनि ओछे उरोजन पै, अनुराग के अंकुर से उठि आए।

यहाँ "मनभावन" पति के लिए आया है, न कि प्रेमी के लिए। अतः यह स्वकीया प्रेम का उदाहरण है।

रीतिकालीन कवियों ने प्रायः वासनाजन्य प्रेम को ही प्रश्रय दिया है जबकि देव ने प्रेम को अमृत से भी अधिक आकर्षक तथा सुख-दुःख में एक-सा रहने वाला माना है। उनके मत में संसार का सार काव्य, काव्य का सार रस, रस का सार शृंगार और शृंगार का सार प्रेम है। रीतिकालीन के शृंगार कवियों के आलंबन प्रायः राधा-कृष्ण ही रहे हैं। परंतु देवकवि इस लीक से बंधकर नहीं चले। इन्होंने राधा-कृष्ण के साथ राम, सीता, शिव-पार्वती, दुर्गा के प्रति भी अपने भक्तिसुमन समर्पित किये हैं। इस दृष्टि से तुलसी की तरह देव भी समन्वयवादियों की श्रेणी में गिने जा सकते हैं। उदाहरण स्वरूप :

कवि "देव" हिये सियरानी सबै, सियरानी को देखि सुहाग सनी।

रीतिकालीन कवि प्रायः दरबारी मनोवृत्ति के कवि थे, इसलिए प्राकृतिक सौंदर्य के प्रति उनका आकर्षण प्रायः मंद ही रहा है। इसीलिए रीतिकाल में स्वतंत्र प्रकृति-चित्रण प्रायः बहुत कम मात्रा में मिलता है। कवि देव ने निश्चय ही इस दिशा में पर्याप्त योगदान किया है। चित्रकारिता की अद्भुत क्षमता के कारण उनके प्रकृति चित्रण पर्याप्त सजीव एवं यथार्थ हैं। उनके शरद कौमुदी चित्र तथा पावस चित्र विशेष प्रसिद्ध हुए हैं। देव के भाव पक्ष में रूप-सौंदर्य की विविधता और गहनता के चित्र मिलते हैं। सौंदर्य का अनिर्वचनीय तत्व उन्हें मथता है। वस्तु और भाव का सामंजस्य ही सौंदर्य है। उपमानों-प्रतीकों से देव इन चित्रों को सामने लाते हैं– राशि-राशि रूप का चित्र :

ललित लिलार श्रम झलक अलक भार, मग में धरत पग जावक धुरो परै।
देव मनि नुपुर पदुम-पद दू पर है, भूपर अनूप रंग रूप निचुरो परै।

यहाँ नायिका का रूप ही कली की रोशनी बन गया है :

डगरे मगर बगराकति अगर अंग,
जगर मगर आयु आवति दिवारी-सी।

1 जवाहिर : जवाहर, एक प्रकार का रत्न, 2 आरद (आर्द्र) : गीला, 3 सारद : शारदा, सरस्वती, 4 सील : शील, 5 सविता : सूर्य।

दृश्य बिंबों और रमणीय प्रतीकों से भाव रूप की व्यंजना में देव को कमाल हासिल है :

संग-संग डोलत सखीन के उमंग भरी,
अंग-अंग उठत तरंग स्याम-रंग की।

विशेष बात यह है कि देव ने नायक-नायिका के नखशिख, शोभा, अलंकार, विलास, हाव-हेला का बारीकी से वर्णन किया है। राधा ने कृष्ण का रूप ही नयनों में काजल बनाकर लगा लिया है–

साँवरे लाल को साँवरो रूप मैं नैनन में कजरा करि राख्यो।

निष्कर्षत: आचार्य देव की अपेक्षा कवि देव का पलड़ा पर्याप्त भारी बैठता है। कुछ आलोचकों ने अवश्य ही उनके अश्लील चित्रों को लेकर उनको कठोर आलोचना का पात्र ठहराया है। देवयुगीन समाज सुरासुंदरी प्रधान समाज था, अत: कवि के लिए उस समाज से तटस्थ रहना संभव नहीं था। वे काजल की कोठारी में घुसे थे, अत: उन पर कालिख लगनी स्वाभाविक ही थी।

11.4.3 संरचना शिल्प

देव काव्य की भाषा साहित्यिक ब्रज है। भाषा के सौष्ठव, मार्दव एवं अलंकरण पर देव ने विशेष ध्यान दिया है। देव की काव्य भाषा की प्रमुख विशेषता है– चित्र-योजना। वस्तुत: अनुभूति को आकार देने का माध्यम चित्र ही है। देव शृंगारिक अनुभूतियों को मधुर चित्रों में अंकित करते हैं–

पीत रंग सारी गोरे अंग मिलाई देव, श्रीफल उरोज आभा आभासै अधिक सी।
छूटि अलकनि, झलकनि जलकननि की, बिना बेंदी बदन बदन शोभा बिकसी।।

इस चित्र में पीले रंग की साड़ी का भीगकर नायिका के अंगों से लिपट जाना और उसी रंग में मिल जाना, शरीर से वस्त्र के चिपक जाने के कारण उरोजों का उभरना, बिखरी अलकों में जलकणों का बिखरना, माथे के सिंदूर बिंदी का धुल जाने के कारण सहज शोभा का निखर आना सभी संकेत मधुर चित्र बनाते हैं। एक पूरी नारी रूप-सौंदर्य की योजना के क्षेत्र, अनुभावों-विभावों से व्यक्त कर देते हैं।

देव के चित्रों में गति का वेग रहता है इसलिए चित्रों की प्रभावान्विति बढ़ जाती है– नायिका की हड़बड़ी का एक सजीव चित्र देखिए :

भूषननि भूलि पैन्हे उलटे दुकूल देव, खुले भुज मूल प्रतिकूल विधि बंक में।
चूल्हें चढ़े छांडे, उफनात दूध भांड़े, उन सुत छांडे अंक, पति छांड परजंक में।।

रीतिकाल कला का समृद्धि का युग था और चित्रों की रंगकला ललित कलाओं के प्रभाव से वृद्धि पर थी– देव में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। ब्रज भाषा की वर्णयोजना में निहित कारीगारी देव के पास प्रचुर मात्रा में है– रंग सभी चटकीले हैं– "प्रात पयोदन ज्यों अरुणाई दिखाइ गई तरुणाई प्रबीनै।"

देव ने विषय के अनुसार ही शब्द-चयन किया है परंतु शब्द-विन्यास में कहीं-कहीं व्याकरण की त्रुटियाँ भी दिखाई दे जाती हैं। तुकान्त और अनुप्रास के मोह में पड़कर इन्होंने कई स्थलों पर शब्दों और वाक्यों को तोड़-मोड़ दिया है। कारक चिह्नों को उड़ा देने की प्रवृत्ति देव के काव्य में चरम सीमा पर है। लिंग-दोष और वचन-दोष भी पर्याप्त मिल जाते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल देव की भाषा के संबंध में लिखते हैं– "कभी-कभी वे कुछ बड़े और पेचीदे मज़मून का हौसला बांधते थे पर अनुप्रास के आडंबर की रुचि बीच ही में उसका अंगभंग करके सारे पद्य को कीचड़ में फंसा छकड़ा बना देती थी।" शुक्ल जी के इस कथन से स्पष्ट है यह सब कुछ वह काव्य में सौंदर्य वृद्धि के लिए ही करते थे। जहाँ-जहाँ वह अक्षर-मैत्री और अनावश्यक शब्द-चमत्कार दिखाने के लोभ में नहीं पड़े वहाँ उनकी कविता अत्यंत सरल और हृदयग्राही बन गई है।

देव का शब्द-भंडार अत्यंत व्यापक एवं विपुल है। उन्होंने मतिराम, बिहारी, पद्माकर आदि की अपेक्षा तत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग किया है। इन शब्दों को कवि ने ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुकूल बनाने का प्रयास भी किया है। जैसे दीप्ति को दीपति और स्फूर्ति को स्फूरति लिखना। देव में अरबी, फारसी और तुर्की शब्दों का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है। अरबी शब्द फारसी की अपेक्षा अधिक है। लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग में भी देव पर्याप्त उदार रहे हैं। देव के मुहावरे इनके कथ्य का सहज अंग बन कर प्रयुक्त हुए हैं। इनके द्वारा कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक अर्थ की अभिव्यक्ति हुई है।

देव यद्यपि अलंकारवादी न होकर रसवादी थे परंतु उन्होंने अलंकारों का खुलकर प्रयोग किया है। स्वभावोक्ति और उपमा उनके सर्वप्रिय अलंकार हैं। स्वभावोक्ति के उदाहरण उनके ग्रंथों में भरे पड़े हैं। उपमा अलंकार के प्रयोग में तो उन्होंने मूर्त के स्थान पर अमूर्त उपमान भी लिए हैं। नायिका की कटि के संबंध में लिखते हैं– जानि न परत अति सूक्ष्म ज्यों देवगति। विभावना

अलंकार का भी उनके काव्य में सुंदर प्रयोग हुआ है जैसे ···· ये अंखियां बिनु काजर कारी ····। अनुप्रास के क्षेत्र में तो देव की कला का वैभव विशेष दर्शनीय है। वृत्यानुप्रयास उन्हें अत्यंत प्रिय है। कभी-कभी तो पूरे का पूरा छंद एक ही प्रकार की आवृति से मंडित दिखाई देता है। जैसे :

झहरि झहरि झीनी बूंदनि परत मानो,
घहरि घहरि घटा घेरी है गगन में।

उक्ति वैचित्र्य के आधार पर भी देव काव्य विशेष शोभा सम्पन्न हुआ है। शब्दों की आवृति ने कहीं-कहीं अर्थ को नवीन आयाम भी दिये हैं:

लाल भले हौं भले सुख दीनों, भली भई आजु भले बनि आये।

इस कथन की विचित्रता "भले" शब्द में निहित है। पहले आप प्रसंग समझ लें। नायक अपने घर आता है। उसके चेहरे पर कुछ ऐसे निशान हैं। (सिंदूर आदि के) जिससे साफ पता चलता है कि वह किसी दूसरी स्त्री से मिल कर आया है। यह देखकर नायिका बड़ी क्रोधित होती है। वह व्यंग्य करती हुई कहती है कि हे लाल (ब्रज में प्रिय या पति का संबोधन) तुम इस रूप में बड़े भले लग रहे हो, और बड़ा अच्छा (भला) सुख मुझे तुमने दिया है, आज का दिन मेरे लिए बड़ा शुभ (भला) है, जो तुम इस तरह की भली सूरत (सिंदूर लगाकर) बनाकर आये हो।

अभिव्यक्ति को सबल सक्षम बनाने का माध्यम है– अप्रस्तुत विधान। अर्थात् प्रस्तुत की वृद्धि के लिए अप्रस्तुत का उपयोग। यह अप्रस्तुत विधान साम्य पर आधारित रहता है। रीतिकाल में रूप एवं प्रभाव साम्य को व्यक्त करने के लिए प्रायः रूढ़ उपमान गढ़ लिए गए थे। यह रूढ़ उपमान नवीन कल्पना की बाधा थे। किन्तु अनुभूति में रूढ़ उपमान मिलते हैं–

त्रिवली त्रिवैणी लट रोमावलि धूम लट, यौवन पटल ज्योति बेदी छबि तण्डयौं।
बेद ध्वनि बोलै गुणवंत मुनि किंकणीक रसना रतन मणी मुकुतान झुंड मैं।।

कामदेव के यज्ञ को पूरा करने के लिए त्रिबल्ी की त्रिवेणी और रोमावली रूढ़ उपमान है। "जगर-मगर आयु आवत दिवारी सी" का भी रूप-साम्य काफी रूढ़ उपमान पर केंद्रित है। साधर्म्यमूलक उक्तियां देव का प्रिय काव्य व्यसन रहीं हैं–

देव कछु अपनो बस ना, रस लालच लाल चितै भई चेरी।
बेगाई बूड़ि गई पंखियां, अँखियां मधु की मखियां भई मेरी।

आँखों में और मधुमक्खी में रूप-साम्य विशेष नहीं है– पर दोनों में रूप-लोच या रस का धर्म साम्य है। "माखन सो तन दूध सो जोवन" में भोली ग्रामीण युवती के शरीर की उपमा मक्खन से और यौवन की दूध से दी गई है। प्रभाव-साम्य पर आधारित देव को अप्रस्तुत विधान का एक उदाहरण लीजिए :

ये अँखियां सखियां न हमारियै, जाय मिली जल बिन्द ज्यों कूप मैं।

नेत्र के रूप में डूबने का यह प्रभावशाली साम्य-चित्र है। भाव संवेदन में मानवीकरण की कला है और अमूर्त को मूर्त करने की तमन्ना। देव में सृजन, नाश और काम के प्रतीक एक साथ सक्रिय रहते हैं। किन्तु उनमें शृंगार प्रतीकों की प्रधानता है। जैसे चंद्रमा में बिजली, प्रात-पयोदों की अरुणिमा आदि।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि देव का भाषा पर अधिकार था और कल्पना के सर्जनात्मक प्रयोग से वे उसमें विदग्धता पैदा कर सकते थे। दरबारी कविता के प्रसिद्ध छंद सवैया और घनाक्षरी में देव को दक्षता प्राप्त है।

11.5 संदर्भ सहित व्याख्या

आपने देव की काव्यगत विशेषताओं की जानकारी प्राप्त की। अब हम आपको यह बताना चाहेंगे कि देव की कविता की व्याख्या कैसे करनी चाहिए। इस उद्देश्य से पूर्व उद्धृत कविता में से कुछ की व्याख्या हम यहाँ कर रहे हैं। इसकी सहायता से आप देव के अन्य पदों की भी व्याख्या कर सकते हैं।

गौने के चार चली दुलही, गुरु लोगन भूषण भेष बनाए
सील सयान सखीन सिखायो, बड़े सुख सासुर हू के सनाये।
बोलियो बोल सदा हंसी कोमल, जे मन भावन के मन भाये
यों सुनि ओछे उरोजन पै, अनुराग के अंकुर से उठि आए।

संदर्भ :

प्रस्तुत पंक्तियों के रचयिता कवि देव हैं। ये रीतिकालीन कवि हैं और रीतिबद्ध काव्य-परंपरा में इनका प्रमुख स्थान है। इनका पूरा नाम देवदत्त था। इनकी पहली रचना "भाव विलास" का रचनाकाल 1689 ई. है।

प्रसंग :

नायिका द्विरागमन अर्थात् गौने की तैयारी कर रही है। घर की बड़ी-बूढ़ियां उसका शृंगार कर रही हैं। सखियां सलाह दे रही है कि ससुराल में कैसे रहना चाहिए, पति से कैसे बातें करनी चाहिए, कैसे उसे मोहित करना चाहिए।

व्याख्या :

घर की बड़ी-बूढ़ी औरतें ससुराल जा रही नायिका का शृंगार कर रही है। गुरु लोगन अर्थात् बड़े लोग। "भूषण भेष बनाए" का मतलब है कि नाना प्रकार के गहनों से नायिका को सजाया जा रहा है। जो "सयानी" यानी होशियार और अनुभवी सखियां हैं, जिनकी शादी हो चुकी है, वे नायिका को ससुराल के सुख से अवगत करा रही हैं। सखियां नायिका को सलाह दे रही हैं कि ससुराल में हमेशा हँसकर कोमल वाणी बोलना। ऐसी बातें करना जिससे "मन भावन" अर्थात् पति खुश रहे। "मन भावन" का अर्थ है मन को भाने वाला अर्थात् पति। "मन भावन" का जिक्र आते ही नायिका के हृदय में अनुराग का अंकुर जन्म लेता है। उसके हृदय में प्रेम की कली फूटती है और उसे अजीब सी गुदगुदी होने लगती है। "अनुराग का अंकुर" आसक्ति की शुरुआत का द्योतक है। आसक्ति अभी तक नायिका के हृदय में दबी पड़ी थी, जैसे बीज जमीन में दबा पड़ा होता है। पर "मन भावन" का नाम आते ही वह आसक्ति अंकुरित हो जाती है, जैसे जल के संसर्ग में आते ही बीज अंकुरित हो जाता है।

विशेष :

इस पद में अनुप्रास का सुंदर उपयोग किया गया है। चार चली, भूषण भेष, सील सयान सखीन सिखायो, सुख सासुर, बोलियो, बोल, मन भावन के मन भाये, अनुराग के अंकुर, के रूप में अनुप्रास का प्रयोग हुआ है। अनुप्रासों से भरा होने के बावजूद व्याख्येय पद दुरुह नहीं बन पड़ा है, बल्कि सरलता ही इसका सौंदर्य है। तत्सम और तद्भव शब्दों का सुंदर समन्वय इस पद में किया गया है। एक ही पंक्ति "गौने के चार चली दूलही" गुरु लोगन भूषण भेष बनाए में गौना, दूलही (दुल्हिन) जैसे तद्भव और लोक भाषा के शब्द हैं तो दूसरी तरफ गुरु, भूषण, भेष (वेश) तत्सम शब्द हैं।

लाल बिना बिरहाकुल बाल वियोग की ज्वाल भई झूरि झूरि।
पौन औ पानी सो प्रेम कहानी सौं पान ज्यौं प्रानीन राखत दूरी।
"देव जू" आजु मिलाप की औधि सो बीतत देख बिसेख बिसूरी।
हाथ उठायो उडायवे को उड़ि काग गरे गिरि चारिक चूरी।

संदर्भ :

व्याख्येय पंक्तियाँ देव की कविता का सुंदर नमूना है। देव रीतिकाल के प्रमुख कवि हैं। अन्य रीतिकालीन कवियों की भांति देव भी अपनी कविता में अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करते हैं। उपर्युक्त पंक्तियाँ इसका अच्छा उदाहरण हैं।

प्रसंग :

प्रेमिका विरह में है। उसका प्रिय उससे दूर है। वह प्रिय के वियोग में काफी दुर्बल हो गयी है। वह रोज प्रिय की राह देखती है। आज भी वह राह देख रही है, पर उसका प्रिय वापस नहीं आता है।

व्याख्या :

प्रियतम के बिना नायिका वियोग में दुर्बल हो गयी है। वह केवल वायु और जल पर ही आश्रित है। वही उसके प्राणों की रक्षा कर रहे हैं। अर्थात् नायिका को प्रियतम के वियोग में खाने की भी सुध नहीं है। उसे भूख ही नहीं लग रही है। देव कहते हैं कि आज भी मिलन की अवधि बीत रही है, इससे नायिका काफी दुःखी है। नायिका खीझ कर कौए को उड़ाती है, पर वह इतनी दुर्बल हो गयी है कि उसकी चूड़ी उसके हाथ से निकल कर कौए के गले में जा फंसती है।

विशेष :

इन पंक्तियों में प्रियतम के लिए "लाल" और नायिका के लिए "बाल" शब्द का प्रयोग किया है पौन औ पानी, बिसरेव बिसूरी, गरे गिरि, चारिक चूरि अनुप्रास अलंकार के सुंदर उदाहरण हैं।

अंतिम पंक्ति में चमत्कार पैदा करने के लिए अतिशयोक्ति का सहारा लिया गया है।

बोध प्रश्न 2

4 निम्नलिखित कथन में कौन सही है और कौन गलत? (सही कथन के आगे √ का और गलत कथन के आगे × का चिह्न लगाएं।)

क) देव परकीया शृंगार को विशेष महत्व देते थे।

ख) देव स्वकीया प्रेम को ही शुद्ध शृंगार मानते थे।

ग) देव ने सीता, राम, दुर्गा को भी अपना आराध्य बनाया है।

घ) देव ने संयोग और वियोग शृंगार के दोनों पक्षों का वर्णन किया है।

5 देव की काव्य भाषा पर चार पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

6 देव के शृंगार वर्णन की तीन विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

क) ....

ख) ....

ग) ....

7 रिक्त स्थान की पूर्ति नीचे दिए विकल्पों में से चुनकर करें–

....और..

देव के प्रिय अलंकार हैं।

क) स्वभावोक्ति, ख) उत्प्रेक्षा, ग) उपमा, घ) अतिशयोक्ति, ङ) अनुप्रास

अभ्यास 1

1 निम्नलिखित पंक्तियों की संदर्भ सहित व्याख्या करें :

क) चाहै सुमेरू को छारि करै,
अरू छार को चाहै सुमेरू बनावै।
चाहै तो रंक को राव करै,
चाहै राव को द्वार ही द्वार फिरावै।

संदर्भ : ....

....

प्रसंग : ....

....

व्याख्या : ....

....

विशेष : ....

....

ख) जाके न काम न क्रोध विरोध,
न लोभ छुवै नहिं छोभ की छांहा।
मोह न ताहि, रहै जग बाहिर,
मोल जवाहिर तौ अति चाहौ।

संदर्भ :

....

प्रसंग :

....

व्याख्या :

....

....

विशेष :

....

....

2 नीचे दी गयी पंक्ति में कौन सा अलंकार प्रयुक्त हुआ है।

झहरि झहरि झीनी बूंदनि परत मानो,
घहरि घहरि घटा घेरी हैं गगन मैं।

....

11.6 पद्माकर और उनका काव्य

पद्माकर रीतिकाल के अंतिम खेमे के कवि हैं। वे तेलंग ब्राह्मण थे। अनुमान है कि इनका जन्म 1753 ई. में मध्यप्रदेश के सागर नामक नगर में हुआ था। किंतु स्वयं पद्माकर ने **"राम रसायन"** तथा **"जगद्विनोद"** में अपना जन्म स्थान का नाम मथुरा कहा है। किंतु सागर डिस्टिक गजेटिर तथा जार्ज ग्रियर्सन के कथनों के आधार पर बहुत से विद्वान सागर (मध्य प्रदेश) को ही उनका जन्म स्थान मानते हैं। पद्माकर ने संस्कृत काव्यशास्त्र की विधिवत शिक्षा ली थी। यह शास्त्र शिक्षण इनकी रचना में बार-बार अनुगूंज छोड़ती है। देव कवि की तरह पद्माकर भी अनेक राजाओं, राजा-रईसों तथा नवाबों के आश्रय में रहे। देव को अपने आश्रयदाताओं से बहुत कम लाभ होता था और वह अक्सर धनाभाव से पीड़ित रहते थे, परंतु इसके विपरीत पद्माकर को अपने आश्रयदाताओं से यशमान के अतिरिक्त प्रभूत धनराशि भी मिलती रहती थी। महाराजा रघुनाथ राव से इन्हें बड़ी सम्पत्ति मिली थी। पद्माकर ने स्वयं लिखा है कि **"संपत्ति सुमेर की कुबेर की जु पावे ताहि तुरंत लुटावत बिलंब उर धारे ना।"**

महाराजा जगत सिंह को पद्माकर ने अपना परिचय स्वयं दिया है।

भट्ट तिलंगाने को बुंदेलखंड बासी कवि,
सुजस प्रकाशी पद्माकर सुजामा हौं।
जोरत कवित्त छंद छप्पय अनेक भांति,
संस्कृत प्राकृत पढ़ो जु गुनग्रामा हौं।।
हय, रथ, पालकी, गयंद, गृह, ग्राम चारू,
आखर लगाय लेत लाखन की सामा हौं।
मेरे जान मेरे तुम कान्ह हौ जगत सिंह
तेरे जान तेरो वह विप्र मैं सुदामा हौं।

जगतसिंह ने पद्माकर की कवित्व शक्ति से प्रभावित होकर उन्हें मालामाल कर दिया था। पर सवाई राजा जगतसिंह के स्वर्गवास हो जाने के बाद वे जयपुर छोड़कर ग्वालियर नरेश दौलत राव सिंधिया के दरबार में चले गए और प्रशंसा में लिखा :

छीनगढ़ बंबई सुमंद कर मंदरास, बंदर को बंद कर बंदर बसा वैगो।
कहै पद्माकर कय कै कासमीर हूं को पिंजर सौ घेरि के कालिंजर छोड़ा वैगौ।
बांका नृप दौलत अलीजा महराज कवौ, साजि दल पकरि फिरंगिन को पा वैगो।
दिल्ली दरपट्ट पटना हूं को झपट्टकर, कबहूं कै लता कलकत्ता को उड़ावैगो।।

यहीं पर पद्माकर ने महाराजा के नाम से "आलीजाह प्रकाश" नामक एक साहित्यशास्त्र पर ग्रंथ लिखा। यहीं पर संस्कृत हितोपदेश का हिंदी भाषा में अनुवाद किया। यहीं एक सोनारिन स्त्री के प्रेम में भी पागल रहे और अंत में कुष्ट रोग हो जाने पर गंगा किनारे बस गए। इसी मनःस्थिति में "राम रसायन" तथा "प्रबोध पचासा" की रचना की। कानपुर में "गंगालहरी" का सृजन किया। पर वे जीवन में लुप्त व्यक्ति नहीं थे। अपने अंतिम दिनों में उन्होंने बहुत धन-संपत्ति इकट्ठी कर ली थी और गंगा तट पर वास करने की इच्छा से कानपुर चले गये थे, जहाँ 80 वर्ष की आयु में 1833 ई. में वह परलोक सिधार गये। इनके रचित सात मौलिक ग्रंथ मिलते हैं— हिम्मत बहादुर विरुदावली, पद्माभरण, जगद्विनोद, प्रबोध पचासा, प्रतापसिंह विरुदावली, कलिपच्चीसी और गंगा लहरी। "हिम्मत बहादुर विरुदावली" वीर रस प्रधान ग्रंथ है जो हिम्मत बहादुर के नाम पर रचित हुआ। "पद्माभरण" दोहों में रचित अलंकार ग्रंथ हैं। "जगद्विनोद" जयपुर नरेश

महाराज जगतसिंह के नाम पर लिखा गया रीतिग्रंथ है जो काव्य रसिकों के द्वारा बड़े चाव से पढ़ा जाता है। यह शृंगार रस की एक उत्कृष्ट रचना मानी जाती थी। "प्रबोध पचासा" भक्ति और वैराग्यपूर्ण रचनाओं का संकलन है जो उनके जीवन के अंतिम प्रहर की और अंतिम रचना है। यह रचना कवि के गंगा मय्या के प्रति अर्पित किये गये भाव-सुमनों की एक सुंदर पुष्पांजलि है जिसकी रचना कविताओं में हुई है। यह पद्माकर भट्ट के जीवन की अंतिम कृति है।

11.6.1 पद्माकर का आचार्यत्व

पद्माकर रीतिकाल के अंतिम चरण के आचार्य कवि थे। नवरसों का सफल वर्णन करने के कारण वे आचार्य कवियों में प्रसिद्ध हुए थे। "**जगद्विनोद**" इनका रसग्रंथ है। इसमें नायक-नायिका भेद का भी सरस वर्णन मिलता है। लक्षण सामान्यत: दोहों में हैं और उदाहरण कवित्त, सवैया आदि में दिये गये हैं। विषय को स्पष्ट करने के लिए कहीं-कहीं ब्रजभाषा गद्य का भी आश्रय लिया गया है परंतु लक्षणों में वह स्पष्टता एवं सूक्ष्मता नहीं आ पाई है जो प्राय: संस्कृत आचार्यों के ग्रंथों में मिलती है।

पद्माकर का दूसरा रीति ग्रंथ "**पद्माभरण**" है, जिसमें अलंकारों का निरूपण है। यह ग्रंथ दोहा-चौपाई में लिखा गया है। इसकी प्रेरणा इन्हें वैरीसाल के "भाषाभरण" से मिली थी। इस ग्रंथ में केवल अर्थालंकार ही निरूपित हुए हैं जिनका आधार संस्कृत का "**कुवलयानंद**" ग्रंथ है। इनके उदाहरण पर्याप्त कवित्वपूर्ण हैं जिससे इस ग्रंथ की उपयोगिता बढ़ गई है परंतु इनमें आचार्यत्व की विशेष प्रतिभा का अभाव ही रहा है। वे मुख्य रूप से कवि थे और उनका आचार्यत्व मात्र परंपरा पालन ही कहा जा सकता है।

बोध प्रश्न 3

8 पद्माकर द्वारा रचित चार ग्रंथों के नाम लिखिए

क) .... ख) ....

ग) .... घ) ....

9 जगद्विनोद .... है, जबकि .... में अलंकारों की चर्चा की गयी है।

10 आचार्य के रूप में पद्माकर का योगदान निम्नलिखित में से किन क्षेत्रों में था? (सही उत्तर के सामने (√) का चिह्न और गलत उत्तर के सामने (X) का चिह्न लगाएं।)

क) रस ( )

ख) पिंगल शास्त्र ( )

ग) नायक-नायिका भेद ( )

घ) अलंकार ( )

11.7 पद्माकर की काव्यगत विशेषताएँ

इस उपभाग में पद्माकर की काव्यगत विशेषताओं को समझाया जा रहा है। इसके अंतर्गत हम कविता के विषय, भावपक्ष और संरचना शिल्प पर विचार करेंगे।

11.7.1 वर्ण्य विषय

पद्माकर के काव्य का प्रधान प्रतिपाद्य विषय है– शृंगार। मूलत: वे सौंदर्य के कवि है। उनके सौंदर्य अंकन में नायिकाओं और ऋतुओं के मोहक चित्र हैं। नूतनता तथा शास्त्रजड़ता दोनों की ओर उनका ध्यान न था। वे तो सौंदर्यमयी सृष्टि के रूप-उपासक कवि हैं। नारी शरीर के सौंदर्य अंकन में उन्हें विशेष सफलता मिली है और नारी में ही उनका मन रमा है। भक्ति और वीर रस भी इनके काव्य में मिलते हैं किन्तु यह इस कवि का मुख्य क्षेत्र नहीं है। पद्माकर रीतिबद्ध कवि हैं, उनकी कविता लक्षण उदाहरण के रूप में सामने आयी है। पर उनके दो ग्रथ **जगद्विलास** और **पद्माभरण** ही लक्षण ग्रंथ है। अन्य ग्रंथों में नायक-नायिका वर्णन, वियोग वर्णन, ऋतु वर्णन होली वर्णन और हिंडोला वर्णन है। पद्माकर ने संयोग शृंगार को अपने काव्य का विषय बनाया है। इसके अंतर्गत नायक-नायिका के सौंदर्य तथा मिलन का चित्रण हुआ है। नायिका के सौंदर्य चित्रण का एक उदाहरण देखिए:

1) सुंदर सुरंग नैन सोभित अनंगरंग,
अंग-अंग फैलत तरंग परिमल के।

नायिका की आँखें बड़ी सुंदर और सुनहरे रंग वाली है, कामदेव का प्रभाव छाया हुआ है। अनंग का अर्थ है, कामदेव। सारे अंग में परिमल (चंदन की सुगंध) की लहर फैली हुई है। अर्थात् शरीर से चंदन की सुगंध आ रही है। सखि नायिका को सीख देती है कि स्नेह या अनुराग के फेर में पड़ने से लज्जा (जो स्त्री का सौंदर्य है) भाग जाती है और पुष्प रूपी सुंदर मन अनुराग की नदी में बह जाता है। उस नदी की भँवरों में नेत्र उलझ जाते हैं। अतः तुम इस नदी में पैर मत डालना।

2) बहति लाज **बूड़त**[1] **सुमन**[2] भ्रमत नैन तिहि ठांउ।
नेह[3] नदी की धार में तू न दीजिये पाँव।।

पर नायक और नायिका का मिलन होता है और उनके बीच में प्रेम का संचार होता है। मिलन के सुंदर दृश्यों के चित्रण में पद्माकर के होली वर्णन संबंधी पदों का विशेष स्थान है–

या अनुराग की फाग लखौं जहँ रागती राग किसोर किसोरी

इस प्रेममय होली को देखो जहाँ किशोर और किशोरी यानी नायक और नायिका विभिन्न रागों में मस्त हैं। अर्थात् मिलन का समय है और नायक नायिका प्रेम के रंग से सराबोर हैं।

इस मिलन के बाद नायक-नायिका एक दूसरे से बिछुड़ जाते हैं और उन्हें वर्षा में भी जलन महसूस होती है :

बरसत **मेह नेह**[4] **सरसत**[5] अंग अंग
झरसत[6] देह जैसे **जरत जवासो**[7] है।
कहे "पद्माकर" **कालिंदी**[8] के **कदंबन**[9] पै
मधुपन[10] कीन्हों **आइ महत**[11] **मवासो**[12] है।
ऊधौ यह ऊधम जताइ दीजौ मोहन कों
ब्रज को **सुवासो**[13] भयो अगिन **अवासो**[14] है।
पातकी[15] पपीहा जलपान को न प्यासो
काहू **बिथित**[16] वियोगिनी के प्रानन को प्यासो है।।

पद्माकर ने राजा या आश्रयदाता की प्रशस्ति में भी काव्य रचे हैं। **"हिम्मत विरुदावली"** इनका प्रमुख प्रशस्ति काव्य है। इसमें रणक्षेत्र, रण प्रस्थान और युद्ध का परंपरागत वर्णन हुआ है।

प्रशस्ति

रीतिकालीन कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की स्तुति में प्रभूत काव्य रचना की है। पद्माकर ने निम्नलिखित पद सागर नरेश रघुनाथ राव की प्रशंसा में लिखा था जिस पर प्रसन्न होकर राजा ने उन्हें एक लाख मोहरें प्रदान की थीं। इसलिए यह "लाखिया" कवित्त के नाम से प्रसिद्ध हो गया था। रघुनाथ राव इतने दानवीर थे कि वे सर्वस्व दान करने से भी नहीं चूकते थे। हाथी-घोड़ों की तो बात ही क्या। कहीं हाथी के भ्रम में गणेश जी को भी दान में न दे दें इसी डर से पार्वती अपने बेटे को गोद से नहीं उतारतीं–

(4) संपति **सुमेर**[17] की कुबेर की जो पावै ताहि,
तुरत लुटावत विलंब उर धारै ना।
कहे "पद्माकर" **सुहेममय**[18] हाथिन के,
हलके[19] हजारन के **बितर**[20] बिचारै ना।
गजगज बकस **महीप**[21] रघुनाथ राव,
याही गज धोखे कहूं काहे देइ डारै ना।
याही डर **गिरिजा**[22] **गजानन**[23] को **गोय**[24] रहीं,
गिरि ते गरे तें निज गोद तें उतारे ना।।

1 बूड़त : डूबता है; 2 सुमन : पुष्प, सुंदर मन; 3 नेह : प्रेम; 4 मेह नेह : स्नेह की वर्षा, प्रेम; 5 सरसत : सरस होना, हरा भरा होना; 6 झरसत : झुलस रहा है; 7 जरत जवासो : कंटीली झाड़ी जलती है, (जवासो एक प्रकार की कंटीली झाड़ी होती है); 8 कालिंदी : यमुना; 9 कदंबन : कदंब, एक प्रकार का वृक्ष; 10 मधुपन : भौंरें; 11 महत : बड़ा; 12 मवासो : गढ़, दुर्ग; 13 सुवासो : सुखद जीवन; 14 अवासो : आवास है; 15 पातकी : पापी; 16 बिथित : व्यथित, दुःखी; 17 सुमेर : सुमेरु पर्वत, सोने का पहाड़; 18 सुहेममय : सुनहरी; 19 हलके : झुंड; 20 बितर : बाँटना; 21 महीप : पृथ्वी का स्वामी, राजा; 22 गिरिजा : पार्वती; 23 गजानन : गणेश; 24 गोय : छिपाना।

भक्ति

पद्माकर आदि रीतिकालीन कवियों ने उम्र ढलने के साथ-साथ भक्ति के पद भी रचे। उम्र ढलने के साथ-साथ शृंगार से इन्हें विरक्ति होने लगी।

देव की तरह पद्माकर भी अपने जीवन की संध्या में भक्तिपरक पदों की रचना में विशेष रुचि लेने लगे थे। प्रभु की अनंत शक्ति पर उनको अटल विश्वास हो गया था। रघुनाथ की शरण के बिना मनुष्य के लिये त्राण का कोई अन्य उपाय नहीं है। राम भक्ति में डूबा हुआ निम्नलिखित पद कवि की निश्छल भक्ति का सुंदर उदाहरण है :

> या **जगजीवन**[1] को है यहै फल,
> जो छल **छांड़ि**[2] भजै **रघुराई**[3]।
> **सोधि**[4] कै **संत महंत**[5] हूँ को,
> पद्माकर बात यहै **ठहराई**[6]।
> **हवै**[7] रहि होनि प्रयास बिना,
> **अनिहोनि**[8] न हवै सकै **कोटि**[9] उपाई
> जो **विधि**[10] भाग मैं **लीकि**[11] लिखी
> न बढ़ाई बढ़ै न घटै न घटाई।।

रीतिकालीन कवि ऋतुवर्णन में विशेष रुचि लेते रहे हैं। यद्यपि इन कवियों का ऋतुवर्णन प्रायः उद्दीपन रूप में ही हुआ है परंतु कहीं-कहीं इन्होंने प्रकृति के स्वतंत्र चित्र भी उतारे हैं। पद्माकर का निम्नलिखित पद वसंत वर्णन का सुंदर उदाहरण है :

> कूलन में केलि में **कछारन**[12] में **कुंजन**[13] में
> क्यारिन में **कलित कलीन**[14] **किलकन्त**[15] है।
> कहै पद्माकर परागन में **पौनहू**[16] में
> **पातन**[17] में **पिक**[18] में **पलासन**[19] पगंत है।
> द्वारे में दिसान में **दुनी**[20] में देस देसन में
> देखौ **दीप**[21]-दीपन में **दीपत**[22] **दिगन्त**[23] है।
> **बीथिन**[24] में ब्रज में **नवेलिन**[25] में **बेलिन**[26] में
> बनन में बागन में **बगरयौ**[27] बसंत है।।

11.7.2 भाव पक्ष

पद्माकर आचार्य की अपेक्षा कवि रूप में अधिक प्रख्यात हैं। वे उदात्त एवं स्वच्छंद कल्पना के कवि हैं। इनका कवि मन आनंद और उल्लास के वर्णन प्रसंगों में खूब रमा है। पद्माकर की कल्पना इतनी मधुर एवं स्वाभाविक है कि पाठक को बरबस रसोविभोर कर देती है। अब इसी पद में देखिए कवि कल्पना की कैसी उड़ान भरता है :

> बहति लाज बूड़त सुमन भ्रमत नैन तिहि ठाँउ।"

प्रेम रूपी नदी की धार में पैर डालने का परिणाम यह होता है कि लज्जा बह जाती है, मन रूपी फूल डूबता जाता है और आंखें उस नदी के भँवर में फँस जाती हैं। कवि यहाँ केवल यह कहना चाहता है कि प्रेम करने के बाद तन और मन की सुध नहीं रहती। पर इसी बात को उसने एक चित्र के रूप में प्रस्तुत कर दिया है।

पद्माकर के इसी गुण के कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं "ऐसा सजीव मूर्ति-विधान करने वाली कल्पना बिहारी को छोड़कर अन्य किसी कवि में नहीं पाई जाती। (हि.सा.का. इतिहास, पृष्ठ 295) पद्माकर की विशेषता यह है कि इन्होंने अन्य रीतिकालीन कवियों की तरह दूर की कौड़ी लाने का प्रयास नहीं किया। इन्होंने यथासंभव अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों से अपने काव्य को दूर रखा।

---

1 जगजीवन : संसार का जीवन; 2 छांड़ि : छोड़कर; 3 रघुराई : भगवान राम; 4 सोधि : खोजना, समझना; 5 संत महंत : साधु महात्मा; 6 ठहराई : निश्चय किया; 7 हवै : होना; 8 जनिहोनी : जो नहीं होना है; 9 कोटि : करोड़ों; 10 विधि : विधाता; 11 लीकि : रेखाएँ; 12 कछारन : नदी तट; 13 कुंजन : झाड़ी; 14 कलित कलीन : सुंदर कलियों में; 15 किलकन्त : किलकारियां मारना, हर्षध्वनि करना; 16 पौनहू : पवन हवा; 17 पातन : पत्तों; 18 पिक : कोयल; 19 पलासन : पलाशों; 20 दुनी : दुनिया 21 दीप : द्वीप; 22 दीपत : प्रकाशवान; 23 दिगंत : आकाश के अंत तक; 24 बीथिन : गलियों 25 नवेलिन : नव यौवना; 26 बेलिन : लताओं; 27 बगरयौ : छाया हुआ है।

पद्माकर की कल्पना की शक्ति का अंदाज निम्नलिखित पंक्तियों से लगाया जा सकता है :

> पातकी पपीहा जलपान को न प्यासो,
> काहू विथित वियोगिनी के प्रानन को प्यासो है।

कृष्ण के वियोग में जल रही नायिकाओं की हालत गंभीर है। उनकी इस दशा पर कोई तरस नहीं खा रहा है। यहाँ तक कि पापी पपीहा भी अब स्वाति की बूँद के लिए रट नहीं लगा रहा है बल्कि वह व्यथित और वियोग से पीड़ित नायिकाओं के प्राण का प्यासा हो गया है। पपीहा की "पी कहाँ-पी कहाँ" की रट नायिकाओं के वियोग को और बढ़ा रही है; ऐसा लगता है मानो वह वियोग से पीड़ित नायिकाओं का प्राण हर कर ही रहेगा।

नायिका की यह विरह दशा कितनी मर्मस्पर्शी है इसका अनुमान सिर्फ सहृदय ही लगा सकता हैं। इस प्रकार के भावुक चित्रण से पद्माकर का काव्य भरा पड़ा है।

पद्माकर वर्णन की विदग्धता, रसिकता और अनुभूति की सघनता के कारण रीतिकाल के लोकप्रिय कवियों में स्थान रखते हैं। आ. रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि– "रीतिकाल के कवियों में सहृदय समाज इन्हें बहुत ऊँचा स्थान देता आया है। ऐसा सर्वप्रिय कवि इस काल के भीतर बिहारी को छोड़ दूसरा नहीं हुआ। इनकी रचना की रमणीयता ही इस सर्वप्रियता का एक मात्र कारण है। रीतिकाल की कविता इनकी और प्रताप साहि की वाणी द्वारा अपने पूर्ण उत्कर्ष को पहुँचकर फिर ह्रासोन्मुख हुई। अतः जिस प्रकार से ये अपनी परंपरा के परमोत्कृष्ट कवि हैं उसी प्रकार प्रसिद्धि में अंतिम भी। देश में जैसा इनका नाम गूँजा वैसा फिर आगे चलकर किसी और कवि का नहीं"। (हि.सा. का इतिहास, पृष्ठ 293)। दरबारी काव्य-परंपरा की चमत्कार प्रियता को पद्माकर ने शिखर पर पहुँचा दिया और अंत में वे "कविराज शिरोमणि" की पदवी पाकर ही रहे। कल्पना और अभिव्यक्ति शक्ति दोनों के संयोग से उनका काव्य प्रभावशाली बन गया है।

11.7.3 संरचना शिल्प

पद्माकर की भाषा सरस, कोमल एवं मँजी हुई साहित्यिक ब्रज का सुंदर नमूना है। यह कवित्व के प्रायः सभी गुणों से ओतप्रोत है तथा पद्माकर की ख्याति का मुख्य आधार है। पद्माकर शब्दचयन में माहिर थे। अन्य रीतिकालीन कवियों की तरह पद्माकर ने भी मधुर एवं कोमल शब्दों की लड़ियाँ सजाने में गहन रुचि का परिचय दिया है, परंतु इससे इनके भाव-सौंदर्य को क्षति नहीं पहुँची है। पद्माकर की काव्य भाषा में बिंब योजना एक खास प्रकार की है। "इनकी मधुर कल्पना ऐसी स्वाभाविक और हाव-भावपूर्ण मूर्ति विधान करती है कि पाठक मानो प्रत्यक्ष अनुभूति में मग्न हो जाता है। ऐसी सजीव मूर्ति विधान करने वाली कल्पना बिहारी को छोड़ और किसी कवि में नहीं पाई जाती। ऐसी कल्पना के बिना भावुकता कुछ नहीं कर सकती। यह तो वह भीतर ही भीतर लीन हो जाती है अथवा असमर्थ पदावली के बीच व्यर्थ फड़फड़ाया करती है।" (रामचंद्र शुक्ल हि.सा. का इतिहास पृष्ठ 295) इस काव्य भाषा में प्रयोग-शक्ति की सजीवता इतनी अधिक है कि उक्तियों की मार्मिकता में काव्यात्मकता की सरसता मनोमुग्धकारी है। कहीं तो वे शृंगार की रसधारा प्रवाहित कर देते हैं और कहीं वीररस से "अकड़ती और कड़कती" काव्य भाषा का कौशल दिखाते हैं। "सारांश यह कि उनकी भाषा में वह अनेकरूपता है जो एक बड़े कवि में होनी चाहिए। भाषा की ऐसी अनेकरूपता तुलसीदास में दिखाई देती हैं।" यहाँ तुलसी तथा पद्माकर की काव्य भाषा की तुलना यह सिद्ध करती है कि दोनों में ही भाषा की अनेकरूपता से अनुभवों को व्यक्त करने की नई पद्धतियाँ-प्रविधियाँ विकसित हुई हैं। कोमल भाव-स्थितियों का सृजनात्मक स्पंदन भी पद्माकर की भाषा का आकर्षण है। इसका बिंब विधान हृदय की सच्ची प्रेरणा का परिणाम दिखाई देता है। इन बिंबों में लक्षण व्यंजना के सही प्रयोग से नयी भाव दीप्ति निष्पन्न हुई है। अनुप्रास के सुंदर प्रयोग का एक उदाहरण देखिए :

> "कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में
> क्यारिन में कलित कलीन किलकन्त है।"

वस्तुतः यह पूरा पद चमत्कारवादी अनुप्रास कला का सुंदर नमूना है। उपर्युक्त पंक्तियों में "क" वर्ण की बार-बार आवृत्ति हुई है, अतः यहाँ अनुप्रास अलंकार है। अनुप्रास की प्रवृत्ति रीतिकाल के सभी कवियों में आवश्यकता से अधिक रही है। पद्माकर जी भी उसके प्रभाव से नहीं बचे हैं। पर थोड़ा ध्यान देने पर यह प्रवृत्ति उनमें अरुचिकर सीमा तक पहुँचती है। वे सप्रयास शब्द चमत्कार और उक्ति चमत्कार पैदा करते हैं जिससे काव्य सौंदर्य की स्वाभाविकता की हानि होती है।

ऊपर दिए गए उदाहरण से यह बात भी स्पष्ट होकर सामने आती है कि भाषा पर पद्माकर का

व्यापक अधिकार था। भाषा की गति और प्रवाह की दृष्टि से इन्हें मतिराम के समकक्ष माना जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल पद्माकर की भाषा पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं "भाषा की सब प्रकार की शक्तियों पर कवि का अधिकार दिखाई पड़ता है।"

कहीं तो इनकी भाषा स्निग्ध, मधुर पदावली द्वारा एक सजीव भावभरी प्रेम मूर्ति खड़ा करती है, कहीं भाव या रस की धारा बहाती है, कहीं अनुप्रासों की झंकार उत्पन्न करती है, कहीं वीर दर्प से क्षुब्ध वाहिनी के समान अकड़ती और कड़कती हुई चलती है और कहीं प्रशांत सरोवर के समान स्थिर और गंभीर होकर मनुष्य जीवन की विश्रान्ति की छाया दिखाती है। सारांश यह कि इनकी भाषा में वह अनेकरूपता है जो एक बड़े कवि में होनी चाहिए। यद्यपि प्रबंध रचना में पद्माकर को पर्याप्त सफलता नहीं मिली परंतु मुक्तक रचना में वह साहित्य क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान बनाने में सफल हो गये हैं जो मुख्यतः इनकी जादुई भाषा की ही करामात कही जा सकती है।

वस्तुतः पद्माकर की काव्य भाषा बुंदेलखंडी मिश्रित ब्रजभाषा है। पर भावानुकूल पथों पर चलने के कारण प्राकृत-अपभ्रंश एवं पूर्वी भाषा के प्रचुर प्रयोग भी मिलते हैं। उर्दू भाषा के प्रयोग सहजता से आते हैं– जैसे– फराकत, साहिबी, चिरागन, जौहर, कलाम, गुल आदि। मूलतः यह फारसी मिश्रित उर्दू का रूप प्रस्तुत करती है। देशज शब्दों के प्रयोग में पद्माकर एकदम मुक्त हैं– इटावा की बोली और लोकभाषा की झंकार साफ सुनाई दे जाती है। लोकोक्ति मुहावरे तड़प के साथ आते हैं, जैसे :

1) गोरी गरबीली तेरे गात की गुराई आगे चपला की निकाई अति फीकी लागत सहल सी।
2) मोहि झकझोर डारी कंचुकी मरोर डारी तोरि डारी कसनि विथोरि डारी बेनी ज्यो।

हृदय तत्व के संयोग के कारण यह भाषा कोरे शब्दाडंबर की भाषा नहीं है, तरलता और नाद-सौंदर्य इसका गुण है।

पद्माकर का प्रिय छंद कवित्त है। इसके अतिरिक्त इन्होंने दोहा, चौपाई, सवैया, छप्पय आदि छंदों का भी प्रयोग किया है। लेकिन कवित्त ने इन्हें जितना लोकप्रिय बनाया, उतना अन्य छंदों ने नहीं।

मूल्यांकन

देव और पद्माकर रीतिबद्ध कवि हैं। रीतिबद्ध कवि आचार्य की भूमिका भी निभाता था और कवि की भी। पर अन्य रीतिकालीन कवियों की भाँति देव और पद्माकर भी श्रेष्ठ आचार्य सिद्ध नहीं हो सके। अतः उनके कवि-व्यक्तित्व का मूल्यांकन ही समीचीन है।

देव और पद्माकर दोनों कवियों ने शृंगार को अपना प्रमुख विषय बनाया। दोनों कवियों ने अपनी कविता में कल्पना और भावुकता का समावेश किया। कवित्व शक्ति और मौलिकता की दृष्टि से देव का अपना अलग महत्व है। पर जहाँ ये अलंकारों के मोह में पड़ते हैं वहाँ उनकी कविता कमजोर पड़ जाती है। भाषा के प्रवाह में भी इसमे बाधा पड़ती है। पद्माकर की भाषा में विविधता है। कहीं इनकी भाषा स्निग्ध है, कहीं भाव और रस से परिपूर्ण है, कहीं अनुप्रास के झंकारों से ओतप्रोत है, कहीं इसमें वीर रस का ओज है तो कहीं बिल्कुल शांत और गंभीर। इस प्रकार की विविधता कम कवियों में पायी जाती है।

11.8 संदर्भ सहित व्याख्या

आपने पद्माकर की विशेषताओं का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया होगा। पद्माकर के काव्य की व्याख्या कैसे करनी चाहिए, यह बताने के लिए हम पद्माकर के शृंगार विषयक पद की व्याख्या कर रहे हैं। आप अन्य पदों की व्याख्या करने का प्रयास करें।

बहति लाज बूड़त सुमन भ्रमत नैन तिहि ठांऊ।
नेह नदी की धार में तें न दीजिये पाँव।।

संदर्भ :

उद्धृत काव्य-पंक्ति पद्माकर की रचना है। पद्माकर रीतिकालीन काव्य-परंपरा के अंतिम श्रेष्ठ कवि हैं। पद्माभरण और जगद्विनोद इनके प्रमुख लक्षण ग्रंथ हैं।

प्रसंग :

सखि नायिका को प्रेम न करने की सलाह दे रही है। नायिका नायक के प्रति आसक्त है। सखि प्रेम

की कठिनाइयों से नायिका को अवगत करा रही है।

व्याख्या :

सखि प्रेम में डूबी नायिका से कहती है कि प्रेम एक नदी के समान है। इसमें तुम अपना पैर मत डालो। अगर इस नदी में पैर डालोगी तो सबसे पहले उसमें तुम्हारी लज्जा बह जाएगी। अर्थात् प्रेम करने की पहली शर्त यह है कि शर्म छोड़नी पड़ती है। क्योंकि शर्म या संकोच की स्थिति में तुम नायक के सामने प्रेम का प्रस्ताव कर ही नहीं सकती। प्रेम करने में दूसरा खतरा यह है कि मन तुम्हारे वश में नहीं रह जाएगा। वह प्रेम रूपी नदी में डूब जाएगा। जिस प्रकार फूल नदी की धारा में डूब जाता है उसी प्रकार तुम्हारा मन भी प्रेम की नदी में डूब जाएगा। इसके अतिरिक्त आँखें भी तुम्हारी आज्ञा नहीं मानेंगी। उनमें हमेशा प्रियतम ही छाया रहेगा। तुम उससे दूसरी चीज देख ही नहीं सकती। जिस प्रकार जल में पड़ने वाले भँवर में फँसी चीज डूब जाती है, उसी प्रकार तुम्हारी आँखें भी प्रेम के भँवर में पड़कर डूब जाएँगी और फिर उसे कहीं शरण नहीं मिलेगी। इसीलिए मैं तुम्हें सलाह देती हूँ कि प्रेम रूपी इस नदी में पैर न डालो।

विशेष :

पद्माकर के काव्य का यह उदाहरण दोहे में रचा गया है। इसमें लज्जा, मन और आँख का मानवीकरण किया गया है। लज्जा का बहना, मन का डूबना, आँखों को कहीं ठौर न मिलना इसके उदाहरण हैं।

यहाँ सांगरूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है। जब एक वस्तु पर दूसरी वस्तु का आरोप होता है, तो वहाँ रूपक अलंकार होता है और जब पूरे पद में एक रूपक निर्मित होता है, तो उसे सांगरूपक अलंकार कहते हैं।

बोध प्रश्न 4

11) पद्माकर ने अपने काव्य का आधार किस-किस विषय को बनाया। (पाँच पंक्तियों में उत्तर दें)

....

....

....

....

....

12) पद्माकर के काव्य की विशेषताएँ क्या हैं? (सही कथन के आगे (✓) का और गलत कथन के आगे (✗) का चिह्न लगाएँ।)

क) सजीव मूर्ति विधान ( )

ख) कल्पना शक्ति ( )

ग) स्थूल भाषा ( )

घ) शब्दों के चुनाव में असंगति ( )

13) नीचे दिए गए विकल्पों में से सही उत्तर चुनकर रिक्त स्थान की पूर्ति करें।

.... पद्माकर का प्रिय छंद था।

क) सवैया   ख) कवित्त   ग) दोहा   घ) चौपाई

अभ्यास 2

3) नीचे व्याख्या के लिए कुछ पंक्तियाँ दी जा रही हैं। आप इनकी व्याख्या करें।

क) कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में
क्यारिन में कलित कलीन किलकन्त है।
कहै पद्माकर परागन में पौनहू में
पातन में पिक में पलासन पंगत है।

संदर्भ :

....

प्रसंग :

....

....

व्याख्या :

....

विशेष :

....

ख). संपत्ति सुमेर की कुबेर की जो पावै ताहि,
तुरत लुटावत विलंब उर धारै ना।
कहै "पद्माकर" सुहेममय हाथिन के,
हलके हजारन के तितर बितर बिचारे ना।

संदर्भ :

....

प्रसंग :

....

व्याख्या :

....

विशेष :

....

4) निम्नलिखित पंक्तियों की विशेष शिल्पगत विशेषताएँ बताएँ।

द्वारे में दिसान में दुनी में, देस देसन में
देखौ दीप-दीपन में दीपत दिगन्त है।

....

....

....

11.9 सारांश

इस इकाई में आपने देव और पद्माकर के काव्य का अध्ययन किया। उनकी कविता की काव्यगत विशेषताओं की जानकारी प्राप्त की और संदर्भ सहित व्याख्या करना सीखा। हम आशा करते हैं कि आपने इन पक्षों पर पूरा ध्यान दिया होगा।

अब आप रीतिबद्ध कवि के रूप में देव और पद्माकर का मूल्यांकन करने में सक्षम हो गये हैं। आप इस तथ्य से भी परिचित हो गये हैं कि देव और पद्माकर क्रमशः 17वीं और 18वीं शती के रीतिकालीन कवि हैं, जिन्होंने रीतिग्रंथ, शृंगार ग्रंथ और राजाओं की स्तुति में ग्रंथ लिखे। इन्होंने भक्ति संबंधी रचनाएँ भी कीं। आप यह भी जान गये हैं कि देव और पद्माकर आचार्य और कवि दोनों थे। आचार्य के रूप में उन्होंने लक्षण-ग्रंथों की रचना की।

देव और पद्माकर के कवि रूप से भी आपका परिचय हुआ। आप इस तथ्य से भी अवगत हुए कि देव ने शृंगार वर्णन में स्वकीया प्रेम को ही श्रेष्ठ माना है। प्रेम उनके लिए वासना की वस्तु नहीं थी, बल्कि प्रेम को उन्होंने आदर्शात्मक ऊँचाइयों तक उठाया। देव ने अपने काव्य में अलंकारों का खूब प्रयोग किया। अनुप्रासों का सुंदर प्रयोग उनकी कविता में देखा जा सकता है। इनके कुछ पदों को पढ़ते समय आपने देव के इस काव्य कौशल पर गौर किया होगा।

पद्माकर ने शृंगार के दोनों पक्षों (संयोग और वियोग) का वर्णन किया है, पर उनका मन संयोग चित्रण में अधिक रमा है। नायक-नायिका के सौंदर्य चित्रण, ऋतु वर्णन, होली वर्णन, हिंडोला वर्णन आदि के रूप में पद्माकर ने संयोग शृंगार का चित्रण किया है। पद्माकर ने "हिम्मत रुदावली" नाम से प्रशस्ति ग्रंथ भी लिखा है और उन्होंने भक्ति काव्य की भी रचना की है। पर

उनकी कविता शृंगार वर्णन में अधिक सफल प्रतीत होती है। उनकी कल्पना शक्ति की तुलना बिहारी से की जाती है। उनके काव्य में अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है, पर यह अन्य रीतिकालीन कवियों के समान वे सिर-पैर का नहीं है। पद्माकर की भाषा सरल, सुंदर और प्रवाहमयी है। अनुप्रास का इन्होंने इतना मोहक प्रयोग किया है कि कविता में संगीत की धुन उत्पन्न हो गयी है। पद्माकर को कवित्त पर महारथ हासिल था। संपूर्ण रीतिकाल में इस छंद का प्रयोग इतनी सशक्तता के साथ कोई अन्य कवि नहीं कर सका।

देव और पद्माकर के काव्य की व्याख्या किस प्रकार करनी चाहिए, यह आपने सीख लिया है। अब आप इसके आधार पर देव और पद्माकर के काव्य की व्याख्या कर सकते हैं। आप यह जान गये हैं कि रीतिकालीन कवियों की रचना की व्याख्या में सबसे महत्वपूर्ण बात होती है, प्रसंग समझना। कवि एक छंद में पूरा दृश्य उपस्थित कर देता है। जब तक आपके सामने प्रसंग स्पष्ट नहीं होता है, आप इनकी व्याख्या करने में असमर्थ रहेंगे। अतः ध्यान देकर प्रसंग को समझने की कोशिश करें, इन कविताओं की व्याख्या आपके लिए काफी आसान हो जाएगी। कठिन शब्दों के लिए आप शब्दकोश का सहारा ले सकते हैं।

11.10 शब्दावली

अक्षर मैत्री : अक्षर जब एक दूसरे के अनुकूल नाद उत्पन्न करते हुए प्रयुक्त किए जाएँ।

अनुप्रास : यह एक शब्दालंकार है। जब किसी पंक्ति में एक ही वर्ण या वर्ण-समूह दो या दो से अधिक बार आता है, तो उसे अनुप्रास अलंकार कहते हैं; जैसे : निपट नीरव नंद निकेत में यहाँ एक ही वर्ण "न" को कई बार दुहराया गया है, अतः यहाँ अनुप्रास अलंकार है।

अभिधा : शब्द का अर्थ प्रकट करने की शक्ति को शब्द शक्ति कहते हैं। इसके तीन भेद हैं : अभिधा, लक्षणा, व्यंजना। अभिधा शब्द की वह शक्ति है जिससे वाच्यार्थ प्रकट होता है। साधारण शब्दों में जिससे शब्द का सामान्य अर्थ सामने आता है।

अलंकरण : किसी पंक्ति, वाक्य या पद में जब अलंकार का प्रयोग होता है, तो उस प्रयोग पद्धति को अलंकरण कहते हैं।

उक्ति वैचित्रय : जब किसी कथन में विचित्रता होती है, उसे उक्ति वैचित्रय कहते हैं।

काव्यांग : रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, छंद आदि।

कुवलयानंद : अप्पयदीक्षित लिखित अलंकार का ग्रंथ।

कोमल कांत पदावली : काव्य की मृदुल, कोमल और सुंदर पद रचना।

गुण : काव्य की वह विशेषता जिससे उसका सरलता से, मधुरता से या ओजीस्वता से अनुभव किया जा सके। काव्य में इन्हें क्रमशः प्रसाद, माधुर्य और ओज गुण कहा जाता है।

घनाक्षरी : एक छंद का नाम जिसे हिंदी में कवित्त भी कहते हैं। इसमें अक्षरों का विन्यास इतना सघन और प्रवाहमय होता है कि इसी के कारण उसका नाम घनाक्षरी रखा गया है। इसके रूप घनाक्षरी, देव घनाक्षरी आदि कई भेद होते हैं। यह इकतीस से तैंतीस वर्णों का दंडक छंद है, जिसके पहले चरण में 16, 15 या 16, 16 अथवा 16, 17 वर्ण होते हैं। 33 वर्णों का देव घनाक्षरी छंद कवि देव ने बनाया था अतएव उन्हीं के नाम पर उसे देव घनाक्षरी कहा गया।

तुकान्त : छंद के पहले चरण में जिस शब्द से समाप्ति की जाती है, उसी उच्चारण से मिलते-जुलते शब्दों को अन्य चरणों में रखना। उदाहरण —करते हैं, चरते हैं, हरते हैं।

पुराण शैली : इतिहास, मिथक, धर्म आदि का मिश्रण करते हुए रचना करना। कथा को धार्मिक और आस्थावादी दृष्टि से प्रस्तुत करना।

बारह मासा : जिस काव्य रूप में बारहों महीने का वर्णन किया जाता है। यह विरह काव्य होता है।

प्रभूत : बहुत अधिक

मजमून : विषय वस्तु

मणि कांचन संयोग : रत्न और सोने जैसा शोभा सुंदरता बढ़ाने वाला संयोग।

मम्मट : मम्मट संस्कृत के आचार्य थे। इन्होंने ध्वनिमत को स्वीकार किया है। इनका ग्रंथ है 'काव्य-प्रकाश'।

मार्दव : नरमी, चित्र की कोमलता।

मूर्त, अमूर्त उपमान : जिस किसी वस्तु से किसी की तुलना की जाती है, उसे उपमान कहते हैं, जैसे उसका मुख चाँद के समान है। यहाँ चाँद उपमान है। जो प्रत्यक्ष है वह मूर्त है, जो अदृश्य है, उसे अमूर्त कहते हैं। काव्य में भाव अमूर्त होते हैं जैसे आकांक्षा कमल, सूर्य, आदि उपमान मूर्त है।

विभावना अलंकार : कारण के न रहने पर भी कार्य का पूरा होना, अथवा कारण के अपूर्ण रहने पर भी कार्य का पूरा होना विभावना अलंकार कहलाता है।

व्यास शैली : पंडिताऊ तरीके से कथा वाचक की बात बढ़ाते हुए काव्य की व्याख्या करना।

संचारी भाव : मनुष्य के मन में कुछ भाव ऐसे होते हैं, जो निरंतर और देर तक वर्तमान रहते हैं और कुछ ऐसे जो किसी वस्तु और विषय को देखकर, देखने वाले व्यक्ति के मन में थोड़ी देर के लिए उठते और लुप्त होते जाते हैं। भावों के उठने और लुप्त होने के कारण इन्हें संचारी या व्यभिचारी भाव भी कहते हैं।

सवैया : एक तरह का छंद। यह भी एक छंद है। इसके कई भेद हैं जैसे दुर्मिल और मत्त गयद।

श्रुति : सुनी सुनायी बात।

षट्ऋतु वर्णन : यह भी बारहमासा की तरह एक प्रकार का काव्य है, जिसमें छह ऋतुओं का वर्णन होता है। इसमें संयोग और वियोग दोनों पक्षों का चित्रण हो सकता है।

सौष्ठव : सुडौलपन

स्वकीया-परकीया प्रेम : जब पति पत्नी के प्रेम की चर्चा होती है, तो उसे स्वकीया प्रेम और जब प्रेमी प्रेमिका के प्रेम की बात हो, तो उसे परकीया प्रेम कहते हैं।

11.11 उपयोगी पुस्तकें

खत्री, मधु, *पद्माकर की काव्य भाषा।*

तिवारी (डॉ.) भोलानाथ, *महाकवि देव।*

त्रिपाठी, रामफेर, *रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि।*

शुक्ल, उमाशंकर, पद्माकर, *व्यक्ति, काव्य और युग।*

सिंह, अखौरी गंगा प्रसाद, *पद्माकर की काव्य साधना।*

11.12 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) क (×)　　ख (√)　　ग (√)　　घ, (×)

2) घ भाव विलास

3) देखिए, उपभाग 12.3.1

बोध प्रश्न 2

4) क (×)　　ख (√)　　ग (√)　　घ (√)

5) देव ने काव्य-रचना के लिए ब्रजभाषा को आधार बनाया है। चित्र-योजना देव की भाषा की प्रमुख विशेषता है। उनकी भाषा में एक चटकीलापन है। पर देव ने अपनी कविता में शब्दों और वाक्यों को काफी तोड़ा मरोड़ा, ऐसी जगहों पर कविता और उनकी भाषा दुरूह हो गयी हैं।

6) क) स्वकीया प्रेम वर्णन

ख) शृंगार का आलंबन केवल राधा-कृष्ण को ही नहीं बनाया है, बल्कि राम, सीता, को ।
आलंबन बनाया है।

ग) देव ने वासनाजन्य प्रेम को श्रेष्ठ नहीं माना है।

7) क स्वभावोक्ति, ग उपमा, ङ अनुप्रास

बोध प्रश्न 3

8) क) हिम्मत बहादुर विरुदावली

ख) पद्माभरण

ग) जगद्विनोद

घ) प्रबोध पचासा

9) रसग्रंथ/पद्माभरण

10) क (√) ख (X) ग (√) घ (√)

बोध प्रश्न 4

11) पद्माकर का मुख्य विषय शृंगार है। उन्होंने शृंगार के दोनों पक्षों (संयोग और वियोग) का चित्रण किया है। पर उनका मन संयोग वर्णन में ज्यादा रमा। इसके अतिरिक्त उन्होंने प्रकृति चित्रण भी किए हैं, आश्रयदाता की स्तुति भी की है और भक्ति संबंधी पद भी लिखे हैं।

12) क (√) ख (√) ग (X) घ (X)

13) ख) कवित्त

अभ्यास 1

संदर्भ :

क) व्याख्येय पंक्तियों के रचयिता प्रसिद्ध रीतिकालीन कवि देव हैं। देव ने कुछ भक्तिपरक कविता भी लिखी। प्रस्तुत पंक्तियाँ इसका सुंदर उदाहरण हैं।

प्रसंग :

उद्धृत पंक्तियों में कवि ईश्वर की अपार शक्ति में अपना अटल विश्वास प्रकट करता है। प्रभु की इच्छा सर्वोपरि है। उनकी कृपा से असंभव से असंभव काम भी सरल हो जाते हैं।

व्याख्या :

कवि इस पद में परमात्मा की महिमा का गान कर रहा है। संसार में सब कुछ ईश्वर की इच्छा के अनुसार ही घटित हो रहा है। प्रभु की इच्छा से सोने का पहाड़ (सुमेरू) राख बन सकता है और राख सोने का पहाड़ बन सकता है। वह चाहे तो कंगाल को राजा बना दे और राजा को दर-दर का भिखारी।

विशेष :

यह पद सरल, सहज एवं स्वाभाविक ब्रजभाषा का सुंदर नमूना है। देव सरल शैली में भी कितनी सफल रचना कर सकते हैं, यह पद इसका सुंदर उदाहरण है।

संदर्भ :

ख) प्रस्तुत पंक्तियाँ देव की कविता का सुंदर नमूना है। इसमें कवि ने एक सच्चे कवि के गुण गिनाए हैं।

प्रसंग :

सच्चा कवि स्वार्थवश राजा महाराजाओं की स्तुति नहीं करता है, क्योंकि उसे किसी तरह का लोभ नहीं होता।

व्याख्या :

इस पद में देव कवि बता रहे हैं कि उनकी एक सच्चे कवि के संबंध में क्या धारणा है। वह कहते हैं कि मैं उसी कवि का प्रशंसक हूँ जो काम, क्रोध, विरोध, लोभ और भय से परे है। जो मोहहीन होकर संसार से भी परे है। उसका मूल्य रत्न से भी अधिक है।

विशेष :

प्रस्तुत पद देव की अनुप्रास योजना का सुंदर उदाहरण है। क्रोध, विरोध, छ्वै, छोभ, छाहों में पदों की आवृत्ति से काव्य का सौंदर्य बढ़ गया है।

2) अनुप्रास अलंकार। "झ" और "छ" की बार-बार आवृत्ति हुई है।

अभ्यास 2

3)

संदर्भ :

क) प्रस्तुत पंक्तियों की रचना कवि पद्माकर ने की है। इसमें कवि ने स्वतंत्र रूप से प्रकृति का वर्णन किया है। रीतिकाल में ज्यादातर प्रकृति का वर्णन उद्दीपन के रूप में हुआ है। इस दृष्टि से इस कविता का विशेष महत्व है।

प्रसंग :

वसंत का आगमन हो गया है। चारों ओर हरियाली छाई हुई है। सारी प्रकृति खुशी में झूम रही है। चारों ओर फूल खिले हैं, हरीतिमा हृदय को प्रसन्न कर रही है। इसी वसंत के आगमन का जिक्र कवि पद्माकर यहां कर रहे हैं।

व्याख्या :

नदी के तट, पेड़ पौधों, क्यारियों और सुंदर कलियों को देखने से ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानों इनसे हर्षध्वनि निकल रही हो। पद्माकर जोर देकर कहते हैं कि परागों में, हवा में, पत्तों में, कोयल में, पलाशों में वसंत की मस्ती छाई हुई है। प्रकृति का कोई भी अंग वसंत के आगमन से अछूता नहीं रह गया है।

विशेष :

इन पंक्तियों में अनुप्रास की अद्भुत छटा देखने को मिलती है। इससे कविता में संगीत पैदा हो गया है।

संदर्भ :

ख) प्रस्तुत काव्य-पंक्तियां पद्माकर की स्तुतिपरक कविता का सुंदर उदाहरण है। इसमें कवि देव ने वीरकाव्य की परम्परा का पालन करते हुए अपने आश्रयदाता की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा की है।

प्रसंग :

इन पंक्तियों में कवि अपने आश्रयदाता राजा की प्रशंसा कर रहा है और उन्हें बहुत बड़ा दानी बता रहा है।

व्याख्या :

कवि कहता है कि राजा इतना दानी है कि उसे कुबेर की संपत्ति मिले या सुमेर पर्वत का पूरा सोना ही मिल जाए, उसे लुटाने में राजा को तनिक भी विलम्ब नहीं होता है। इन्हें दान करने में उसे तनिक भी सोच विचार नहीं करना पड़ता है। पद्माकर कहते हैं कि अगर राजा के पास हजारों सुनहरे हाथियों का झुंड भी हो तो उसे बांटने में या दान देने में उसे तनिक भी विलम्ब नहीं होता है।

विशेष :

यह पद अतिशयोक्ति अलंकार का सुंदर उदाहरण है। इसमें राजा की बढ़ा चढ़ाकर प्रशंसा की गयी है। कुबेर स्वर्ग में संपत्ति के देवता हैं। सुमेरू पर्वत की चर्चा पौराणिक कथाओं में हुई है। यह सोने का पहाड़ था। यह अनुप्रास अलंकार का सुंदर उदाहरण है। दीप का प्रयोग दो जगह दो अर्थों में हुआ है। एक जगह द्वीप के अर्थ में और दूसरी जगह **प्रकाश** के अर्थ में। अतः यहां **यमक** अलंकार है। जब शब्द की आवृत्ति दो या दो से अधिक बार हो और अर्थ बदल जाए, तो उसे यमक अलंकार कहते हैं।

इकाई 12 रीतिसिद्ध काव्य : बिहारी

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 जीवन परिचय
12.2.1 रचनाकार का व्यक्तित्व, रचनाएँ
12.2.2 दरबारी काव्य परंपरा
12.2.3 रीतिसिद्ध कवि
12.2.4 मुक्तक काव्य परंपरा/सतसई परंपरा
12.3 शृंगारिक काव्य
12.3.1 संयोग शृंगार
12.3.2 वियोग शृंगार
12.3.3 भक्ति और नीति
12.4 संरचना शिल्प
12.4.1 काव्य रूप
12.4.2 काव्य भाषा
12.4.3 बिंब विधान
12.4.4 अलंकार योजना
12.4.5 छंद विधान
12.5 संदर्भ सहित व्याख्या
12.6 सारांश
12.7 शब्दावली
12.8 उपयोगी पुस्तकें
12.9 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

ऐच्छिक पाठ्यक्रम के खंड-2 की यह 12वीं इकाई है। इसमें आप रीतिकालीन कवि बिहारी के काव्य का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- बिहारी का जीवन परिचय दे सकेंगे,
- बिहारी सतसई की विशेषताएँ बता सकेंगे,
- रीति काव्य परंपरा की मुख्य प्रवृत्तियों को बता सकेंगे,
- बिहारी को रीतिसिद्ध कवि क्यों कहा जाता है, बता सकेंगे,
- बिहारी के काव्य के आधार पर रीतिकाव्य की विशेषताएँ बता सकेंगे,
- बिहारी के काव्य की शृंगारिक विशेषताएँ बता सकेंगे,
- बिहारी में भक्ति और नीतिकाव्य की विशेषताएँ बता सकेंगे, और
- बिहारी काव्य के संरचनाशिल्प की विशेषताएँ बता सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

रीतिकाल या शृंगारकाल में कविवर बिहारी लाल रीतिधारा की प्रमुख प्रवृत्तियों, मन:स्थितियों और सामाजिक विकृतियों को अपनी रचना में प्रस्तुत करने वाले प्रतिनिधि रचनाकार के रूप में सामने आते हैं। भक्तिकाल के बाद रीतिपरक शृंगार की जो धारा पूरे वेग से प्रवाहित हुई है— बिहारी इसी धारा की शक्ति और सीमाओं के दोनों छोरों को थामकर कविकर्म में प्रवृत्त होते हैं। बिहारी अपनी रचना में रीतिशास्त्र के व्यावहारिक पक्ष की ही लीक पीटते रहे। नतीजा यह हुआ कि वे रीतिसिद्ध कवि बनकर ही रह गए। रीति शास्त्र की बंधी लीक को छोड़कर वे स्वच्छंद मार्ग पर न चल सके। उनकी समस्त काव्य प्रतिभा रस रीति, नायक-नायिका, अलंकार ध्वनि के

विलास और रंजन में ही गर्क हो गई। उनकी बहुज्ञता ने कृत्रिम कलात्मकता और आलंकारिता का दामन थाम लिया और वह शृंगारिक लटकों-झटकों की भूल भुलैया में ही चक्कर काटती रही।

बिहारी का समस्त सृजन दरबारी काव्य परंपरा की रुचियों को ध्यान में रखकर सामने आया। उसमें सूर-तुलसी, कबीर-जायसी की वह लोक जागरण वाली संपूर्ण परंपरा का ही निषेध है जो जनता की आशाओं-आकांक्षाओं को मुक्त रूप से वाणी देती थी। अब रीतिवादी परिवेश पर सामंत कुमारों की धाक और धमक थी और कवि इन्हीं सामंत कुमारों के मनोविनोद के लिए राजाश्रय पाकर गाते थे। रीति-परंपरा संस्कृत के काव्य में भी थी, पर सामंत वर्ग की रुचियों का इतना पतन न हुआ था, जितना कि हिंदी के रीतिकाल में पतन दिखाई देता है। राजाश्रय पोषण के सभी तत्व रीतिकाल के काव्य में समाहित होते गए और काव्य चमत्कारवाद, नायक-नायिका भेद, अलंकार प्रदर्शन का कृत्रिम क्षेत्र ही बनता गया। इस समाज और काव्य के मूल्यादर्शी की पूर्णता भोगवाद, नारी के सौंदर्य और शारीरिक वासना की तृप्ति में हुई। नारी के चारों ओर अलंकार, नायिका-भेद, प्रकृति वर्णन आदि चक्कर काट उठे। फलत: इनका प्रिय काव्य विषय बना नारी का नखशिख वर्णन, हाव-हेला वर्णन, अभिसारिका की विभिन्न अवस्थाओं और दशाओं का चित्रण। प्रेम और माधुर्य के नाम पर रीतिकालीन कवियों ने नायिकाओं के विरह का वर्णन किया। विरहिणी नारी की विरह आग में गुलाबजल की शीशियाँ दूर से सूखने लगीं और "नारि सलोनी सांवरी नागिनिसी डसि जाय" का भाव चित्रण ही प्रबल हो गया। यहां पर वियोग की दीर्घ श्वासों को खींचती फेंकती सात-सात, आठ-आठ हाथ आगे पीछे जाती नारियाँ मिलेंगी। नेत्रों, भौहों, कटि प्रदेशों पर काव्य लिखा गया। जहांगीर, शाहजहां, जयसिंह, इंद्रदेव सिंह जैसे सम्राटों और राजाओं की इच्छाओं की पूर्ति का यह काव्य साधन मात्र रह गया। राधा-कृष्ण ईश्वरत्व की गरिमा खोकर नायक-नायिका बन गए और उनका शरीर ही तीर्थराज प्रयाग। भरे भवनों में आंख लड़ाने का व्यापार चल पड़ा और "उड़त गुड़ी लखि लाल" से ही नायिका प्रेमोन्माद में पागल हो उठी। तंत्रीनाद, कवित्त रस, सरस राग, रतिरंग की पूर्णता पूरी तरह उसमें डूबने पर ही समझाई जाने लगी। सदाचार और नैतिकता के मूल्यों के हाथ-पांव उखाड़ दिए गए और "लटक छटक नट मिलत" का संसार बस गया। चारों और दूतीकर्म, कुंज व्यभिचार, पानमोचन के व्यापारों का इजाफा हुआ और हर नारी परकीया नायिका की ठसक में दिखाई देने लगी। सूफी प्रेम का "इश्क हकीकी" राग भूलकर कविगण इस काल में विलासिता को ही जीवन का मान दंड मान बैठे।

राजाश्रय और चमत्कार प्रदर्शन की होड़ में श्लेष, यमक, अन्योक्ति और अनुप्रास अलंकारों की बाढ़ आ गई और कृत्रिम कार्य व्यापारों से काव्य का सहज सौंदर्य नष्ट हो गया। प्रकृति के उपमानों को कवियों ने दरबारों की संगमरमरी दीवारों में कैद कर लिया और जीवन के सौंदर्य को नष्ट कर दिया गया। रीतिकाल का कवि अपनी कटाक्ष-निपुण नायिकाओं को गरीबी में नहीं देख सका वह उसके कोमल शरीर को आभूषणों के भार से शोभित करने लगा। वास्तव में रीतिवादी कवि चमत्कारवादी थे और उनकी नागर-कला में सामंतों की विलासी वृत्ति का चित्रण हुआ है।

12.1.1 युग-परिवेश और समाज

रचना कर्म के सामाजिक-आर्थिक आधारों की उपेक्षा करके हम उसके भीतरी बाहरी अंतर्विरोधों, तनावों और मूल्यों को सही तरह नहीं समझ सकते हैं। रचना कर्म की सौंदर्य दृष्टि उसके सामाजिक आधारों के भीतर से ही फूटती है। इसी तरह की दृष्टि से बिहारी और रीतिकाल के परिवेश को समझना आवश्यक है, क्योंकि इसी रीतिकालीन परिवेश ने बिहारी की रचनात्मक मानसिकता का गठन किया है। कहना न होगा कि बिहारी का काल अकबर के शासनकाल का उत्तरार्द्ध और औरंगजेब के राज्याभिषेक के कुछ वर्षों तक फैला हुआ है। उन्होंने तीन मुगल शासकों और उनकी नीति देखी थी। जहांगीर-शाहजहां का काल वैभव विलास और कला की नक्काशी का काल था। जनता उपेक्षित, शोषित और पीड़ित थी तथा उच्च वर्ग आमोद-प्रमोद के सुख-साधनों को भोगने में मस्त था।

बिहारी को प्राप्त आमेर का राजपूत घराना वैभव और चकाचौंध का संसार था। जयसिंह मुगलों की मित्रता से भोग के लिए समय पा गया था। उत्तराधिकार के प्रश्न पर भी जयसिंह ने औरंगजेब का साथ दिया था और उसके विरोधियों को कुचलने में कसर न छोड़ी थी। छत्रसाल से संधि कराने और शिवाजी को मुगल दरबार में लाने का श्रेय भी जयसिंह को ही था। "बिहारी सतसई" के अध्ययन से यह निष्कर्ष सहज ही निकलता है कि वे इस काल की राजनीति के दांव पेचों से अनभिज्ञ न थे। वे अपने आश्रयदाता जयसिंह का मुगलों के साथ सहयोग स्पष्टता से घोषित करते हैं, जैसे–

सामां सेन समान ही सबै साहि के साथ।
बाहुबली जय साहि जू, फने तिहारे हाथ।।

मुगलों के संकेत पर राजा जयसिंह उनके विरोधियों का निर्ममता से संहार करता था। इस नीति से बिहारी का मन क्षुब्ध था एक दोहे में वे कहते हैं—

स्वारथ सुकृतन श्रम वृथा देखि विहंग विचारी।
वाज पराये पानि परि तू पच्छीन न मारि।।

मुगलों और शिवाजी के बीच जब संधि हो गई तब बिहारी का मन बेहद प्रसन्न हुआ। इस प्रसन्नता को व्यक्त करने वाला यह दोहा ऐतिहासिक दस्तावेज है।

घर-घर तुरकिनी, हिन्दुनी देति रासीस सराहि।
पतिनु राखि चादर चुरी तैं राखीं जयसाहि।।

मुसलमान और हिंदुओं की स्त्रियां खुश हैं कि "जयसाहि" को उनके सुहाग की परवाह है।

1 करि फुलेल को आचमन मीठो कहत सराहि।
रेगंधी मति मन्दतत् इतर दिखावत काहि।।

2 करिलै सूंधि सराहि करि, सबै रहत गहि मौन।
गंधी गंध गुलाब की गंवई गाहक कौन।।

इत्र फुलेल का अर्थ व्यवहार तो शहरी रसिक वर्ग ही समझता था। गांव के श्रमिक उसका अर्थ और प्रयोग क्या समझें। सामान्य जन दयनीय अवस्था में गुजर-बसर कर रहा था। व्यापार पर धनिकों का पूरा कब्जा था गांव के आदमी में हाथियों के व्यापार की क्षमता ही न थी। पिछड़ी जातियाँ शोषित और वंचित थीं— इस बात का प्रमाण बिहारी के कथनों से बार-बार मिलता है।

ग्रामीण बालाएं नागरिक जीवन की चतुरता से सर्वथा अपरिचित थीं। उनकी सहज चेष्टाओं का एक भद्दा रूप बिहारी ने अंकित किया है—

गदरानी तन गोरटी ऐपन आड़ लिलाए।
हुढ़यौ दे इठलाइ दृग करै गंवारि सुवार।।

गरीबों के पास सत की बेंदी थी और शहरी नायिका के पास सोने के आभूषणों की भरमार। तरयौना, बेसरि, करधनी से वे नायिकाएं सजी पड़ी थीं। एक जगह तो सहज शोभा भरी युवती पर कृत्रिम आभूषणों का बोझ देखकर बिहारी कह उठे थे—

भूषण भारि संभारि है, क्यों यह तन सुकुमारि।
सूधे पांव न धरि परत सोभा ही के भारि।।

नागर-जनों का जीवन राग-रंग, गुलमुली गुल्मों, गलीचों से संपन्न था। नैतिक दृष्टि से इस पतित समाज के चित्र रीतिकाल की कविता में प्रायः हर जगह मौजूद हैं।

शाहजहां के समय में भारतीय समाज का सामंतवादी आधार बड़ा ही शक्तिशाली था। केंद्र के आधार ऊंचे ओहदे वाले मनसबदार और अमीर थे। मध्यवर्ग इनकी सेवा और कृपा पर जीवन बसर कर रहा था। व्यापारी, साहूकार संपन्न थे पर शिक्षा संस्कृति से हीन थे। अधिकांश समाज कृषि पर निर्भर था और सुख सुविधाओं से वंचित। शोषक और शोषित के बीच लंबी खाई थी और कलाकार, कवि रईसों के यहां आश्रय पाए हुए थे। कवि कलाकार जन्म से निम्न वर्ग के थे लेकिन उच्च वर्ग में आश्रय पाकर आमोद प्रमोद का जीवन भोग रहे थे। भारत की निर्धन जनता से उनका सीधा संबंध न था। कवि कलाकार राजाओं, सूबेदारों, नवाबों, मनसबदारों और अमीरों के दरबारों में पल रहे थे। ऐसी स्थिति के कारण उनका स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं था।

दरबारों में वैभव की चकाचौंध थी। मणियों और रत्नों की चमक में मुगल दरबार जगमगा रहा था। मुगलों और राजाओं का अंतःपुर इंद्र का नंदन कानन दिखाई देता था। अमीरों के बहुमूल्य वस्त्रों में रत्न हारों और इत्र फुलेल की गंध बसी रहती थी। रानियों का पूरा शरीर आभूषणों से भरा रहता था। रीतिकाल के कवियों को इस परिवेश से सीधे प्रेरणा मिली थी। अवध, बुंदेलखंड, राजपूताना के नवाबों, राजाओं के कवि ऐसा ही प्रमाण अपनी कविता से देते हैं। विलास भरे भवनों में लक्ष्मी नृत्य करती थी और स्वर्ग धरती पर ही हंसता दिखाई देता था। बिहारी सतसई में बिहारी लाल ने कहा है कि प्रतिबिंबित महलों में सौंदर्य का देवता कामदेव अपनी व्यूह रचना करने लगा था—

प्रतिबिंबित जय साह दुति दीपतिदर पन धाम।
सब जगु जीतन को करयो काय व्यूह मनु काम।।

सामंतों, रईसों, छोटे अधिकारी अपना समय आमोद-प्रमोद में गुजारते थे। अंतःपुर और भवनों में विलास का एक छत्र राज्य था। शतरंज, चौसर, गजफा का खेल, पतंगबाजी, कबूतर उड़ाना और

तोता मैना के स्वरों से परिवेश गूंज रहा था। बिहारी ने उस स्थिति का सीधा चित्र अंकित किया है–

1 उड़त गुड़ी लखि लाल की, अंगना अंगना मांह।
बौरी सी दौरी फिरति, छुवति छबीली छांह।।

2 ऊंचे चितै सराहियत, गिरत कबूतर लेतु।
झलकित दृग मुलकित वदनु लनु पुलकित किहि हेतु।।

यहां विकृत सामंतवाद की एक सीधी तस्वीर ही मानों बिहारी ने चतुरता से खींच दी है। हिंदू मुसलमानों के उत्सवों, पर्वों-त्योहारों, संस्कारी रीति-रिवाजों, खेल तमाशों में सामान्य रूप से भेद करना कठिन था। हिंदू और मुसलमान अपना नैतिक तेज खोकर विलास जर्जर हो गए थे। बिहारी ने इसी दशा का सिद्धांत सूत्र दिया है :

तीज तीरथ हरि राधिका, तन दुति करि अनुरागु।
जिहि ब्रज केलि निकुंज मग, पग-पग होत प्रयागु।।

युवती के नेत्रों की चंचलता युवकों को आकर्षित कर रही थी। बिहारी ने इसी हालत का बिंब दिया है :

सर जीवे सन मैन के, ऐसे देखि मैन।
हरिनी के नैनान ते, हरि नीके ये नैन।।

रूप गोस्वामी का नायिका-भेद बदलकर काम कर रहा था। भक्ति की आड़ में शृंगार का कीर्तन हो रहा था। ऐसे समय में "रामचरित मानस" के स्थान पर "बिहारी सतसई" की ही रचना हो सकती थी। कबीर सूर की उपेक्षा के बाद कविगण शृंगारिकता पर टूट पड़े थे। विभिन्न नायिकाएं रागमालाओं, ललितकलाओं की चित्रावली में कला का प्रतीक बन गई थीं। राजस्थानी शैली के चित्रों में राधा-कृष्ण के अभिसार को रेखांकित किया। नायक-परकीया नायिका के प्रति आसक्त है–

पलक पीक, अंजन अधर, दिए महाउर भाल।
आज मिले सु भली करी, भले बने हो लाल।।

अतः रीतिकालीन काव्य की अंतःप्रेरणा आश्रयदाताओं से जोड़कर ही समझी जा सकती है।

भक्तिकालीन आध्यात्मिकता को पराजित कर रीतिकालीन शृंगारिकता का वेग उमड़ पड़ा था–जिसके पीछे युग के पूरे परिवेश का प्रभाव काम रहा था। और तो और भक्तिकालीन कृष्ण-भक्ति परंपरा को भी रीति कवियों ने बेधड़क होकर शृंगार में ढाल लिया था। काम सौंदर्य की उपासना राज दरबारों का स्वीकृत सत्य था और फारसी साहित्य और संस्कृति के प्रभाव से शृंगारिकता में एक नया रंग ही घुल मिल गया था। इस श्रृंगारिकता में प्रेम की एकनिष्ठता न होकर विलास की लालसा ही शेष थी। रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि बिहारी लाल भी रसिक ही थे–प्रेमी कवि नहीं। उनकी दृष्टि बाहरी वैभव और शारीरिक सौंदर्य पर ही केंद्रित रही है। राधा-कृष्ण की भक्ति उनके लिए मानसिक छलना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

12.2 जीवन परिचय

रीतिकालीन मुक्तक परंपरा के प्रसिद्ध कवि बिहारी का जन्म सन् 1595 ई. में ग्वालियर के पास बसुआ गोविन्दपुर नामक गांव में हुआ। इनके पिता का नाम केशवराय था। इनका बचपन बुंदेलखंड में बीता और विवाह मथुरा से हुआ। बिहारी ने लिखा है :

प्रगट भये द्विजराज कुल सुबसु बसे ब्रज आय।
मेरे हरौ कलेश सब केशव केशव राय।।

जनम ग्वालियर जानिए खंड बुंदेले बाल।
तरूनाई आई सुखद, मथुरा बसि ससुराल।।

ससुराल में इनका जीवन अपमान में व्यतीत हुआ।

कहा जाता है कि पिता केशवराय इन्हें ओरछा ले गए। वहां इन्होंने हिंदी के प्राकृत काव्यग्रंथों का अध्ययन किया और आगरा आकर उर्दू फारसी पढ़ी। प्रसिद्ध कवि अब्दुर्रहीम खान खाना के संपर्क

में रहे और कवि कर्म की ख्याति अर्जित की। ये शाहजहां के कृपा पात्र भी रहे तथा जोधपुर, बूंदी से भी इनका संपर्क रहा। वे आमेर गए और जयपुर नरेश के साथ पटरानी अनन्तकुमारी को अपनी काव्य-प्रतिभा से प्रभावित किया। यहीं वे जयपुर नरेश के दरबारी कवि हो गए। यह भी प्रसिद्ध है कि जब राजा जयसिंह नव विवाहिता पत्नी पर आसक्त होकर राजकाज से उदासीन हो रहे थे तो बिहारी ने उन्हें यह दोहा लिखकर सचेत किया–

नहिं परागु, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।
भली कली ही सौं बन्ध्यौ, आगे कौन हवाल।।

बिहारी की पत्नी सुशिक्षित थीं और कहा जाता है कि सतसई रचनाओं में उनका भी योगदान था। आमेर में ही सतसई की रचना की। रीतिशास्त्र की शास्त्रीय पद्धतियों में उन्होंने प्रवीणता प्राप्त की और कुछ समय नरहरि दास और पं. जगन्नाथ के साथ काव्यमंथन में व्यतीत किया। बिहारी के कोई संतान न थी– जीवन के अंतिम वर्ष निराशा में व्यतीत हुए। सतसई की ख्याति प्राप्ति के पश्चात् ये पुनः मथुरा लौट आए और यहीं पर सन् 1664 ई. में इनका निधन हो गया।

12.2.1 रचनाकार का व्यक्तित्व और रचनाएँ

कविवर बिहारी लाल का व्यक्तित्व काव्य मर्मज्ञ, शास्त्र ज्ञाता, बहुज्ञ मानव और रसिक व्यक्ति के आदर्श पर निर्मित हुआ था। वे जीवन के भोग पक्ष को स्वीकृति देते थे और संप्रदायों की दलबंदी से दूर रहते थे। वास्तव में, इनके व्यक्तित्व का निर्माण सामंतवादी परिवेश में हुआ था। गंवई संवेदना से दूर ये नागर कला के व्यक्ति थे। विलास-ऐश्वर्य इनके संस्कारों में बस गया था। लेकिन जीवन के अनुभवों के कारण सामाजिक राजनीतिक स्थितियों पर कठोर व्यंग्य करने में नहीं चूकते थे। निंबार्क संप्रदाय में दीक्षित होने पर भी राम और कृष्ण, निर्गुण और सगुण में भेदभाव न रखते थे। यही कारण है कि इनके पास एक अखंड रचनाकार का तेजस्वी व्यक्तित्व था।

रचनाएं

बिहारी की एक ही रचना "सतसैया" या "सतसई" नाम से मिलती है। इस रचना को ही "बिहारी सतसई" और "बिहारी रत्नाकर" भी कहा जाता है। इस रचना में बिहारी के 713 मुक्तक परंपरा के दोहे तथा सोरठे संगृहीत हैं। इधर इस रचना के साथ इनके तीन कवित्त और उपलब्ध हुए हैं तथा शेष रचनाओं की खोज जारी है। शृंगार, नीति और नीति के दोहों से युक्त इनकी "सतसई" भाषा की समस्त शक्ति एवं अर्थ के पैनेपन के लिए है। बिहारी के दोहे अर्थ गूढ़ होने के कारण "गागर में सागर" भरने की कहावत चरितार्थ करते हैं। इस रचना के लिए यह कहा जाता है कि –

सतसैया के दोहरे ज्यों नाविक के तीर।
देखन में छोटे लगैं घाव करैं गंभीर।।

अर्थ की गहराई और विस्तार दोनों ही गुण इनके दोहों में पाए जाते हैं। मूलतः इस रचना का काम प्रतिपाद्य विषय शृंगार है। इसमें भक्ति, नीति और शास्त्र के भी कुछ अंश हैं पर प्रधानता तो शृंगार की ही है। राधा-कृष्ण का रीतिकालीन रूप नायक नायिका के भेदों-उपभेदों के साथ इस रीतिसिद्ध रचना में मौजूद है। नायक-नायिका के अनुभाव, हाव, हेला की तो यह रचना सुंदर उदाहरण ही कही जा सकती है। विशेष बात यह है कि बिहारी ने अलंकारों के उदाहरणों के रूप में रचना नहीं की, पर अलंकारों की काव्य उपयोगिता पर इनकी दृष्टि बराबर केंद्रित रही है। भाव की विदग्धता, सरसता और कला के चमत्कार ने मिलकर इस रचना की सृष्टि की है। दरबारी काव्य परंपरा के उर्दू शायर जैसे शेर कहकर दरबारों में वाहवाही लूटते थे वैसे ही बिहारी दोहे की अर्थ शक्ति से सभी को दरबार में चकित कर यश पाते थे। चमत्कार और अलंकार इनके दोहों की छवि नहीं बिगाड़ते बल्कि सौंदर्य में वृद्धि करते हैं।

"बिहारी सतसई" का प्रभाव हिंदी साहित्य पर काफी दूर तक पड़ा। इनके बाद शृंगार विषयक सतसइयों की परंपरा ही चल पड़ी। बिहारी सतसई का इतना अधिक साहित्यिक आदर रहा कि बड़े से बड़े कवियों ने इस रचना पर टीकाएं लिखीं हैं। सतसई रसिक संप्रदाय और रीतिवादी कवि संप्रदाय की तो कंठ माला ही बनती गई है।

"सतसई" की पहली टीका या गद्य टीका कृष्ण लाल ने की है। यह टीका सन् 1662 ई. की है। दूसरी टीका सन् 1763 ई. में मानसिंह ने लिखी है। तीसरी टीका सन् 1714 ई. में किन्हीं अनवर ने "अनवर चंद्रिका" नाम से की है। सन् 1717 ई. में सुरति मिश्र ने "अमर चंद्रिका" नाम से की है। 1777 ई. में हरिचरण दास ने "हरि प्रकाश" नाम से सतसई की प्रसिद्ध टीका की। इधर

लल्लू जी लाल ने खड़ी बोली ब्रज मिश्रित भाषा में "लाल चंद्रिका" नाम से टीका की। इसका पहला संस्करण 1811 ई. में निकला। स्वयं भारतेंदु बाबू ने सतसई पर कुंडलिया भाष्य लिखा। लाला भगवान दीन ने "बिहारी बोधिनी", पं. जगन्नाथ दास रत्नाकर ने "बिहारी रत्नाकर", पद्मसिंह शर्मा ने संजीवन भाषा लिखा। "बिहारी सतसई" की भारतीय भाषाओं में भी अनेक टीकाएं, भाष्य हुए। नारायण कवि ने गुजराती में "नानार्थ प्रकाशित" नाम से सतसई की टीका की। इस प्रकार इस रचना पर एक विशाल साहित्य मिलता है।

12.2.2 दरबारी काव्य परंपरा

दरबारी काव्य विशृंखलित केंद्रीय सत्ता, उत्तरदायित्व हीन विलासिता के वातावरण की उत्पत्ति हैं। सम्राटों, सामंतों के दरबारों में रचे जाने वाले इस साहित्य में अलंकरण और कलात्मकता अपने चरम बिंदु पर पहुंच गई थी। काव्य में शृंगार की अतिशयता राजाओं, सामंतों का मन बहलाने में सफल हो गई थी। उस समय की अधिकतर रचनाओं में शृंगार की अतिशयता, देखी जा सकती है। अधिकतर रीति कवि दरबारी थे राजा के मनोरंजन के लिए शृंगार का विकृत रूप प्रस्तुत करना और आश्रयदाताओं की झूठी स्तुति करना इनका कार्य रह गया था। कविता अब व्यावसायिक हो गयी थी अतः अपनी गरिमा से गिर चुकी थी। हिंदी के रीतिकवियों को दरबार में अपने काव्य का चमत्कार प्रदर्शन करने के लिए एक ओर संस्कृत के आचार्यों, पंडितों से स्पर्धा करनी पड़ती थी तो, दूसरी ओर फ़ारसी या उर्दू के कवियों से, जो आशिक और माशूक के प्रेम की बंधी-बंधाई परिपाटी पर रचना करते थे। संस्कृत, प्राकृत और फ़ारसी, उर्दू की कविता से समानता या श्रेष्ठता पाने के लिए हिंदी के दरबारी कवियों को शृंगार या नायक-नायिका के नख-शिख वर्णन का रोमानी, वासनामूलक चित्र प्रस्तुत करना पड़ता था। बिहारी ने भी इसी दरबारी काव्य परंपरा को अपनाते हुए अपने काव्य में शृंगार वर्णन को अधिक महत्व दिया है। उस काल की दरबारों की रुचि का ध्यान रखते हुए बिहारी ने दाम्पत्य रति को भी प्रमुखता दी है। दाम्पत्य रति के कारण वात्सल्य भाव भी कैसे नष्ट हो गया है। इसे दर्शाने वाला एक दोहा उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है–

बिहँसि बुलाय बिलोकि उत प्रौढ़ तिया रस घूमि।
पुलकि पसीजति पूत को पिय चूम्यौं मुँह चूमि।।

इन सभी तथ्यों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि रीतिकालीन कविता का एक छोर शाही दरबार के वातावरण से जुड़ा है तो दूसरा छोर भारतीय शृंगार-परंपरा के साथ जुड़ा है। इसी परंपरा को अपनाते हुए बिहारी और अन्य रीतिकालीन कवियों ने अपने काव्य की रचना की थी, जिसमें शृंगार विलास और मनोरंजन की प्रवृत्ति प्रधान है। जो कि उस युग की दरबारी काव्य परंपरा की मूल प्रवृत्ति रही है।

12.2.3 रीतिसिद्ध कवि

रीतिकाल के रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों से बिहारी का काव्य व्यक्तित्व अलग है। वे मूलतः रीतिसिद्ध धारा के कवि हैं। उन्हें रीतिसिद्ध कवि कहने का अर्थ यह है कि रीतिशास्त्र की परंपरा उन्हें पूरी तरह सिद्ध है। वे उसका शास्त्रीय आधार जानते हुए उसे व्यवहारिक धरातल पर व्यवहार में लाते हैं। उन्होंने रचनाएँ तो रीति की परिपाटी के भीतर ही की हैं, पर लक्षण ग्रंथ प्रस्तुत करके स्वतंत्र रूप से उनका व्यवहार प्रस्तुत नहीं किया है। रीतिशास्त्र का पालन करने पर भी वे लकीर के फकीर न थे, रचनाकर्म की सीमित स्वतंत्रता उनके कवि कर्म का अंग रही है। रीतिग्रंथ लिखने वाले लक्षणों के साथ अपने उदाहरण या उक्तियां जोड़ते थे– किन्तु वे लक्षणों की सीमाओं के बाहर न जाते थे। पर जो कवि रीतिशास्त्र के ज्ञान का सहारा लेते थे और रीति से बंधकर भी स्वतंत्र रचना करते थे। उनमें बिहारी लाल का स्थान प्रमुख है। बिहारी के दोहे अपनी भाव स्वतंत्रता में रीतिशास्त्र जुगाली भर नहीं है बल्कि उनका चमत्कारिक स्वतंत्र काव्य सौंदर्य भी है। हालांकि इस स्वतंत्रता का मेल रीतिमुक्त कवियों से नहीं है। क्योंकि रीतिमुक्त कवि हृदयगत भावों की स्वच्छंद प्रवृत्ति से अभिव्यक्त देते हैं।

शृंगार को लेकर नायक-नायिका भेद का जो वर्गीकरण प्रस्तुत किया, उसमें कुछ ऐसे सामान्य पक्ष रखे गए कि जयदेव, विद्यापति और सूरदास तक उसमें समाहित होते चले गए। फारसी की रचनाओं का जो रंग राज दरबारों पर छाया हुआ था– बिहारी उससे अपरिचित न थे। उन्होंने अपभ्रंश की इहा-पद्धति और फारसी ढंग के शेरों का अपने दोहों में नए ढंग से उपयोग किया। दोहे की भाषा का रचना क्रम इतना चुस्त दुरुस्त रखा कि वह शेर का मुकाबला कर उठा। सच बात है कि मुक्तक परंपरा की शक्ति का प्रतीक दोहा ही बना है।

बिहारी रीतिशास्त्र के विरोध में नहीं है, लेकिन रीतिशास्त्र के ऐसे दास भी नहीं है। फलत: रीतिसिद्ध कवि बिहारी की विशेषता यह है कि वे रीतिसिद्ध कवियों की भांति रीतिशास्त्र के गुलाम नहीं हैं। आ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने सही लिखा है कि "शास्त्र स्थिति संपादन मात्र इनका लक्ष्य नहीं था। कहीं तो चमत्कारातिशय के लिए ये उक्तियां बांधते थे और कहीं रसाभिव्यक्ति के लिए रीतिशास्त्रों में गिनाई सामग्री का त्याग करके अपने अनुभव और निरीक्षण से प्राप्त उपलब्धि, सामग्री या नूतनता का सन्निवेश करते थे। किसी विशेष नायिका या नायक के स्वरूप के लिए जो शर्तें शास्त्रों में कही हुई हैं वे उपलक्षण मात्र हैं अर्थात् वे मार्ग निर्देश के लिए हैं। उनके सहारे नई-नई कल्पनाएं स्वयं कवि कर सकता है और भी बातें वह ला सकता है।" (बिहारी की वाग्विभूति पृ. 22) यह मानी हुई बात है कि लक्ष्य को लेकर ही लक्षण ग्रंथ का निर्माण होता है। लेकिन रीतिशास्त्र के लेखक रीति ग्रंथों को ही सब कुछ समझते थे और यह कठिनाई काफी बड़ी थी जिससे वे कभी छुटकारा नहीं पा सके। नतीजा साफ था कि उनकी प्रतीक्षा का स्वतंत्र निर्माण नहीं हो सका। लक्षणों के उदाहरण तो जुटाते रहे, स्वतंत्र उद्भावना न कर सके। बिहारी में नवीन उद्भावना के बीज हैं– पर उनका विस्तार वे नहीं कर सके। दोहे में कला का कमाल है, पर भाव पक्ष उपेक्षित नहीं है। अर्थ रमणीयता और भाषा का नाद्-सौंदर्य बिहारी की रचना शक्ति का एक विशिष्ट पक्ष है।

कृष्ण भक्ति के शृंगारी रूप ने भी बिहारी को खुला क्षेत्र दिया। "राधिका कान्ह सुमिरन को बहानो है" इसी भाव-भूमि का अर्थ विस्तार है। यह भाव-भूमि इतनी प्रसिद्ध हुई कि जनता नायिका भेद में रुचि लेने लगी। राज दरबारों, अमीरों के भवनों में शृंगारी काव्य की गोष्ठियां जमने लगीं और विशेष तरह का "रसीक" इन रीति कवियों ने तैयार किया। इस लोक रुचि ने "सतसई" के प्रचार में योग दिया है।

रीतिसिद्ध कवि बिहारी के दोहों की दीवारों पर चित्रकारी हुई और उस पर प्राकृत अपभ्रंश की गाथा– दूहा पद्धति और स्वतंत्र नायिका भेद की पद्धति का भी रंग दिखाई दिया। राजदरबारों के फारसी परिवेश ने बिहारी की मानसिकता को प्रभावित किया है और उसकी झलक भी उनके दोहे में दृष्टिगत होती है। जाहिर है कि रीतिसिद्ध परंपरा के बिहारी बड़े ही निपुण कवि हैं।

12.2.4 मुक्तक काव्य परंपरा या सतसई परंपरा

रचना शैली की दृष्टि से काव्य के दो भेद किए जाते हैं– प्रबंध काव्य और मुक्तक काव्य। प्रबंध काव्य के समाज पद्य कथावस्तु अथवा विचारधारा द्वारा एक दूसरे से परस्पर गुंथे होते हैं। वे पूर्वापर प्रसंगों के ज्ञान के बिना पूरा अर्थ नहीं दे पाते। किन्तु मुक्तक काव्य में प्रत्येक पद्य अपने में स्वतंत्र एवं स्वत: पूर्ण होता है। पूर्वापर प्रसंग ज्ञान की मुक्तक में आवश्यकता नहीं होती। इस दृष्टि से स्वतंत्र रूप में जो पद्य पाठक का रसास्वादन कराने में समर्थ होता है–उसे मुक्तक कहते हैं। पर रस की पूर्णता के लिए जितना अवसर प्रबंध काव्य में रहता है– उतना मुक्तक में नहीं। आ. रामचंद्र शुक्ल का यह कथन प्रसिद्ध है कि "यदि प्रबंध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है। इसी से यह सभा-समाजों के लिए अधिक उपयुक्त होता है।" (हिंदी साहित्य का इतिहास पृ. 247) मुक्तक में रस की धारा नहीं रहती केवल रस के छींटे ही उड़ते रहते हैं जो थोड़ी देर के लिए हमारे चित्त को रसमग्न कर लेते हैं। इस दृष्टि से मुक्तक में जीवन का खंड दृश्य ही सामने आता है–प्रबंध काव्य की भांति संपूर्ण जीवन दृश्य नहीं। जाहिर है कि मुक्तक में "मनोरम वस्तुओं" और व्यापारों का एक छोटा-सा स्तवक कल्पित करके अत्यंत संक्षिप्त और सशक्त भाषा में प्रदर्शित करना पड़ता है।" (वही पृष्ठ 247) इसलिए सफल मुक्तकों की रचना के लिए जहां एक ओर कल्पना की समाहार शक्ति चाहिए वहीं दूसरी ओर भाषा की समास शक्ति भी अपेक्षित होती है।

भारतीय साहित्य में मुक्तक पद्यों के संग्रह "शतकों" "सप्त शतियों" तथा "हजारों" के रूप में मिलते हैं। पर सात सौ मुक्तकों के संग्रह के प्रति झुकाव अधिक रहा है। उदाहरण के लिए हिंदी के रचनाकारों में "सतसई" के लिए अधिक मोहक रहा है, "शतक" के लिए। हालांकि "रतन हजारा" और "अलक हजारा" भी लिखे गए हैं। मूल बात यह है कि हिंदी में "सप्तशती" या सतसई लिखने की परंपरा संस्कृत तथा प्राकृत को आदर्श मानकर चली। यह परंपरा भक्ति काल से आधुनिक काल तक फैलती रही तथा विषय तथा छंद दोनों में संस्कृत प्राकृत सप्तशती का अनुकरण चलता रहा।

संस्कृत में मार्कण्डेय पुराण की "दुर्गा सप्तशती" सप्तशती रचनाओं में प्राचीनतम मानी जाती है। किंतु यह न तो मुक्तक रचना है और इसका प्रतिपाद्य विषय नीति या शृंगार है। यह शुद्ध धार्मिक रचना है। संस्कृत तथा प्राकृत की जिन सात शतियों का हिंदी की सतसइयों पर प्रभाव पड़ा है उनमें हाल कविकृत "गाथा सप्तशती" जो कि सप्तशती (सतसई) परंपरा की सर्वप्रथम

कृति हैं, तथा कवि गोवर्द्धनाचार्य की "आर्या सप्तशती" का नाम उल्लेखनीय है। आर्या सप्तशती ने विषय और छंद दोनों में गाथा सप्तशती का अनुकरण किया है। शृंगार की उत्कृष्ट उक्तियों को चुन कर हाल ने सात सौ "गाहाओं" का यह संग्रह प्रस्तुत किया। इसकी मूल भाषा प्राकृत है– जिसका गोवर्द्धनाचार्य ने संस्कृत अनुवाद किया। पर शृंगार ही इस रचना का प्रधान प्रतिपाद्य है। सभी पद्य अपने आप में स्वतंत्र हैं और लोक जीवन के विविध पक्षों की झांकी देते हैं। ध्यान देने की बात यह है कि आर्या सप्तशती का मुख्य प्रतिपाद्य विषय शृंगार ही है। प्रेमी प्रेमिकाओं की अवस्थाओं, मानसिक स्थितियों, हाव-भावों का इसमें मनोरम चित्रण है।

संस्कृत के अनेक शतक ग्रंथों की गाथा सतसई परंपरा में की जा सकती है। इसका कारण यह है कि सतसई और शतक ग्रंथों में छंद संख्या का ही अंतर है, मूल विषय दोनों का एक ही है। संस्कृत के विशिष्ट शतक साहित्य में भर्तहरि के "नीतिशतक" "शृंगारशतक" और "वैराग्यशतक" इन तीन कृतियों का प्रमुख स्थान है। अमरूक कवि के "अमरूक शतक" को शृंगारपरक मुक्तक रचनाओं में विशेष लोकप्रियता मिली है। हिंदी की सतसई परंपरा पर "अमरूक शतक" का गहरा प्रभाव पड़ा है। हिंदी में बिहारी ने "अमरूक" से विशेष प्रभाव ग्रहण किया है। विद्वानों ने सतसई साहित्य को "सूक्ति सतसई" और "शृंगार सतसई" को दो श्रेणियों में विभक्त किया है। तुलसी सतसई, रहीम सतसई और वृन्द सतसई की गणना सूक्ति सतसई में की जाती है और "बिहारी सतसई", "मतिराम सतसई" तथा "विक्रय सतसई" जैसी रचनाएँ शृंगारपरक सतसई परंपरा में आती हैं। सूक्ति सतसई परंपरा में लोकोपयोगी ज्ञान का भंडार मिलता है और शृंगार सतसइयों में रमणीय भाव व्यंजना, रस-विदग्धता का चमत्कार। नायक-नायिका की शृंगारपरक चेष्टाओं को यहां विशेष महत्व प्राप्त है। कालक्रम से हिंदी की सतसई परंपरा में तुलसी-रहीम की सतसइयां आती हैं।

शृंगारपरक सतसई परंपरा में बिहारी का स्थान सर्वोपरि है। उनकी सतसई को शृंगार परंपरा में जितनी लोकप्रियता प्राप्त हुई है उतनी अन्य किसी सतसई को नहीं। बिहारी सतसई परंपरा को भाव भाषा दोनों ही दृष्टियों से सहसा ही प्रौढ़ता प्रदान कर देते हैं। एक प्रकार से मुक्तक काव्य परंपरा का सघन काव्य सौंदर्य बिहारी में दिखाई देता है। सतसई को मुक्तक काव्य परंपरा का ऐसा प्रतिमान कह सकते हैं, जिसमें रसाभिव्यक्ति के साथ भाषा की समाहार शक्ति अर्थात् नये तुले शब्दों में भावों को व्यक्त करने की क्षमता है। बिहारी अपनी भाषा की समाहार शक्ति के कारण हर तरह से सहारे गए हैं। दोहा जैसे छोटे छंद में किसी भी मनोभाव, परिस्थिति, दशा का चित्रण करने में वे समर्थ रचनाकार हैं। शब्दों को इस ढंग से चुन-चुन कर व्यंग्यार्थपरक प्रयोग करते हैं कि उसमें अर्थ लावण्य और उक्ति वक्रता पैदा हो जाती है। भाव की सघनता और अभिव्यक्ति की कलात्मकता यह दोनों विशेषताएँ उनके रचना कर्म में विद्यमान रहती हैं। उनकी शब्द वक्रता और वचन वक्रता का एक अद्भुत और रमणीय काव्य संसार है। नायिका के अनुभाव, हाव, हेला, सौंदर्य का वर्णन बिहारी ने कुशलता से किया है। एक उदाहरण देखिए–

> बतरस लालन लाल की, मुरली धरी लुकाय।
> सौंह करै, भौंहन हंसे, देन कहै नटि जाय।।

लाल की मुरली छिपाने और उससे बतरस का आनंद पाने के साथ नेत्रों भौहों की क्रियाएं स्थिति का व्यंग्य उभारती हैं। शृंगार के ऐसे सहज वक्र, चमत्कार विधायक और आकर्षक चित्रों की "बिहारी सतसई" का अनुपम चित्रशाला है। भाव चित्रों में रूप के साथ गति के चित्र अधिक हैं। विप्रलंभ में बिहारी की कल्पना अपने पंख खोल देती है और वे विरहिणी का ऐसा अतिशयोक्तिमय चित्र खींचते हैं कि फारसी अदाकारों की विरहिणी नायिकाओं का चित्र फीका पड़ जाता है। प्राकृत और संस्कृत की गाथा सप्तशती और आर्या सप्तशती का भावानुवाद ऐसे कर देते हैं कि मौलिक सर्जनात्मकता का आनंद मिलता है। एक उदाहरण लीजिए–

बिहारी सतसई नहि परागु नहि, मधुरमधु, नहि विकास इहि काल।
अली, कली हीं सौं बंध्यौं, आगे कौन हवाल।।

गाथा सप्तशती यावन्न कोश विकास प्राप्तोतीय मालती कलिका।
मकरन्दयान लोभयुक्त भ्रमर ताव देव मर्दयसि।।

आर्या सप्तशती पिबमधुर बकुलकलिका दूरे रसनाग्र मात्र माधाय।
अधर विलय समारये मधुनि सुधा वदन मर्यमसि।।

तुलना करने पर स्पष्ट होता है कि प्राकृत, संस्कृत के दोहों का बिहारी ने एक विशेष कला से न केवल अनुवाद किया है, बल्कि रमणीयता की भी नूतन सृष्टि की है।

बिहारी के बाद सतसई परंपरा में मतिराम की "मतिराम सतसई" का नाम आता है हालांकि

मतिराम के पास बिहारी जैसी वाक्य-वक्रता, शब्द-वक्रता पैदा करने वाली प्रतिभा नहीं है। भाषा की समाहार शक्ति में भी मतिराम, बिहारी के सामने काफी फीके नजर आते हैं। यह भी वास्तविकता है कि मतिराम के अनेक दोहों पर बिहारी का प्रभाव है। जैसे–

बिहारी लाज लगाम न मानही, नैना मो वस नाहि।
ए मुंहजोर तुरंग ज्यों, ऐंचत हूं चलि जाहि।।

मतिराम मानत लाज लगाम नहि, नैकु न गहत मरोर।
होत लाल लखि बलिक, हग तुरंग मुंह जोर।

वास्तव में, बिहारी की सतसई ने परवर्ती शृंगारपरक मुक्तक परंपरा को अनेक रूपों में प्रभावित किया है। हिंदी में सतसई परंपरा के क्षेत्र की "बिहारी सतसई" एक क्लासिक कृति है– जिसकी टक्कर की कोई दूसरी सतसई आज तक उपलब्ध नहीं है।

12.3 शृंगारिक काव्य

रीतिकालीन कविता की प्रधान प्रवृत्ति है, शृंगारिकता। इस प्रवृत्ति की प्रधानता के कारण रीतिकाल का एक नाम "शृंगार काल" भी सुझाया गया है। इस प्रवृत्ति का बीज भाव यह दिया जाता है कि "शृंगार को सार किशोर-किशोरी" जाहिर है कि यह यौवन-उमंग उत्साह और उल्लास की अंतर्वृत्तियों को अभिव्यक्ति देने वाला काव्य है। "बिहारी" देव, पद्माकर आदि सभी कवि "रसराज" शृंगार के आराधक कवि हैं। रीतिकाल विलास वैभव की अतिशय चकाचौंध का युग था और, सामंतवादी वृत्तियाँ रसिकों में देखी जा सकती थीं। बिहारी का इस प्रवृत्ति को स्पष्ट करने वाला एक दोहा यहाँ उदाहरण के रूप में दिया है–

तजि तीरथ हरि राधिका, तन दुति करि अनुराग।
जेहि ब्रज केलि निकुंज मग, पग पग होत प्रयाग।।

इस दोहे का भावार्थ यह है कि तीर्थ व्रत व्यर्थ है। राधा-कृष्ण के शरीर की कांति और निकुंज केलि क्रीड़ाओं में ही प्रयाग पाया जा सकता है। भक्तिकाल का आध्यात्मिक प्रकाश लुप्त होकर रीतिकालीन भोगवाद शरीरवाद कैसे ले आया था– उसका सीधा तत्वदर्शन बिहारी प्रस्तुत करते हैं। रीतिकाल की कृष्ण काव्य परंपरा कामदेव की पूजा और नायक-नायिका विहार की खुली छूट देती थीं। कवि साफ कहते थे कि राधा-कृष्ण की प्रणय लीला, रति-विलास लीला जिन्हें नापसंद है, उनकी आंखों में हजारों मुट्ठी धूल झोंक देनी चाहिए। अपने देश और काल की इस मूलधारा से बिहारी लाल गहरे जुड़े हुए थे। फारसी संस्कृति और साहित्य की शृंगारिकता ने भी बिहारी को प्रभावित किया था। यह शृंगारिकता नागरता का आभूषण थी और कामुकता ही शृंगारिकता का पर्याय बन गई थी। नैतिक मूल्यों के विघटन के कारण काम व्यापार में स्वच्छंदता का क्षेत्र खुल गया था और बिहारी ने शृंगारिकता की मुक्त अभिव्यक्ति को ही महत्वपूर्ण माना था।

विशेष बात यह भी है कि बिहारी की शृंगारिकता का स्वरूप नागरिक संस्कृति के सौंदर्य बोध पर आधारित है। गवंई शृंगार की खुली संवेदना इस रचना कर्म में लगभग नहीं है। बिहारी ने दरबारी काव्य की मूल प्रवृत्तियों को अर्थ ध्वनियों, संकेतों और शृंगार की शास्त्रीय मर्यादाओं से प्रस्तुत किया। उनकी दृष्टि शृंगार के बाहरी पक्ष पर ज्यादा केंद्रित होती है, आंतरिक भाव-व्यापारों के प्रकृत रूप पर कम। इसलिए इस शृंगार को हम शुद्ध प्रेम का मूल्य नहीं कहते हैं।

12.3.1 संयोग शृंगार

साहित्य में रसराज स्वीकार किए जाने वाले शृंगार रस की अन्य रसों की अपेक्षा व्याप्ति अधिक है। इसका स्थायी भाव "रति" इतना व्यापक और विशद हैं कि मानव के अधिकांश मनोभाव इसी के अंतर्गत समाहित हो जाते हैं। शृंगार रस के दो भेद हैं– संयोग शृंगार और वियोग शृंगार।

बिहारी ने रीतिकाल के अन्य कवियों की भांति संयोग शृंगार के विभिन्न पक्षों का मनोयोगपूर्वक निरूपण किया है। शृंगार के इस क्षेत्र वर्णन में उन्होंने नायिका का नखशिख वर्णन या रूप सौंदर्य वर्णन, नायक-नायिका भेद, प्रेम प्रसंग की विभिन्न स्थितियां, हास-व्यंग्य आदि को भी समाहित किया है। संयोग शृंगार के एक-एक दोहे में बिहारी निपुणता से मनोवृत्तियों और विविध चेष्टाओं

का चित्रण करते हैं। नायिका की सहज चेष्टाएँ "अनुभाव" बनकर भाव दीप्ति कर देती हैं। बिहारी का एक संयोग शृंगार का दोहा लीजिए–

> बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
> सौंह करै, भौंहन हंसे, दैन कहै, नटि जाय।।

यहाँ पर लालच से लाल की मुरली छिपाना, भौहों में हंसना, हास-परिहास में सौगंध खाना, मुरली देने के लिए पहले कहना फिर नट जाना आदि ऐसे भाव व्यापार हैं जो स्थिति को मूर्त कर देते हैं। नायक के हाथ का स्पर्श होते ही नायिका के शरीर पर पसीना आ जाता है, रोमांच हो जाता है–

> स्वेद सलिल रोमांच कुल, गति दुलही अरूहाथ।
> हियो दियो संग हाथ के, हथलेवा ही हाथ।।

संयोग शृंगार के अंतर्गत बिहारी नायिकाओं के अभिसार वर्णन में खूब रमते हैं। शुक्लाभिसारिका और कृष्णाभिसारिका नायिकाओं के मोहक चित्र बिहारी ने प्रस्तुत किए हैं। नायिका शुक्ल पक्ष (उजले पक्ष) की रात्रि को श्वेत वस्त्र पहन कर जब विहार करने जाती हैं तो शुक्लाभिसारिका कह जाती है। यदि कृष्ण पक्ष (अंधेरी रात्रि) में नायक के साथ विहार करती है तो कृष्णाभिसारिका कहलाती है। बिहारी कहते हैं कि गौरवर्ण की नायिका का गोरा रंग चांदनी के रंग से मिल गया। अभिसार को जाते उसे कोई देखकर पहचान नहीं सकता। केवल सुगंध के सहारे ही उसका पता चल सकता है।

> जुवति जोन्ह में मिलि गई नेकुन परति लखाइ।
> सौंधे के डोरे लगी, अली चली ढिंग जाय।।

एक कृष्णाभिसारिका नायिका अंधेरी रात्रि में अभिसार करके लौट रही थी कि चंद्रमा निकल पड़ा। उस नायिका की घबराहट, छिपने की कुशलता का आकर्षक वर्णन बिहारी ने किया है–

> अरी खरी सरपर परी विधु आधे मग हेरि।
> संग लगे मधुपनि लई। भागति गली अंधेरि।।

संयोग शृंगार के अंतर्गत बिहारी बाहरी व्यापारों की क्रीड़ाओं का भी वर्णन करते हैं। बिहारी भावोत्तेजक और चमत्कारी संयोग वर्णन में विशेष दक्ष हैं। पूरा रीतिकाल अपने आसक्तिपरक भोगवाद के साथ मूर्त्त हो उठता है।

12.3.2 विप्रलंभ शृंगार या वियोग शृंगार

वियोग को प्रेम का पक्ष कहा जा सकता है। इसमें हृदय का विस्तार एवं वेदना की उदात्त वृत्ति के भाव-चित्र प्रस्तुत किए जाते हैं। मानव मन की सूक्ष्म दशाओं का गहरा ज्ञान रखने के कारण बिहारी ने वियोग का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है। उनके वियोग वर्णन पर एक ओर तो सूफी ढंग की प्रेम दशाओं का प्रभाव है, दूसरी ओर फारसी परंपरा के विरह वर्णन का प्रभाव। फलतः उनका वियोग वर्णन अतिशयोक्ति पूर्ण है– जिसे विरह वर्णन की "ऊहात्मक पद्धति" कह सकते हैं।

विप्रलंभ या वियोग शृंगार के मुख्य रूप से चार भेद माने जाते हैं–
(1) पूर्व राग (2) मान (3) प्रवास (4) करूणा।

प्रिय के मिलन से पूर्व उसके दर्शन, गुण श्रवण, चित्र दर्शन आदि से जो प्रबल अभिलाषा पैदा होती है और मिल न पाने के कारण हृदय में जो वेदना, टीस या तड़प होती है, उसे ही पूर्वराग कहते हैं। बिहारी ने इस "पूर्वराग" कथा का पूर्वानुरागी नायिका की तड़प का बड़ा ही मार्मिक चित्र अंकित किया है। बिहारी ने चित्रण किया है कि जब उसके प्रेमातुर नेत्र नायक की छवि रूपी जल में मग्न हुए या गिरे हैं तब से एक क्षण भी बिछुड़ पाना असहनीय हो गया है। उसके नेत्र समय सूचक कशेरी की भांति निरंतर डूबते उतरते रहते हैं–

> हरि छबि जल जब तैं परे, तब तैं छिनु बिछुरैन।
> भंरत ठरत, बूढ़त, तरत, रहत धरी लौं नैन।।

संयोग के पश्चात् प्रेम की प्रगाढ़ता के कारण अथवा ईर्ष्या से जब नायक-नायिका परस्पर रूठ जाते हैं– उसे "मान" कहते हैं। विरह प्रसंग में प्रणय मान को कम ईर्ष्या मान कर मुक्त वर्णन किया जाता है। इसलिए इसे "ईर्ष्या हेतुक" मान भी कहते हैं। प्रेमिका नायक के हृदय में अन्य प्रेमिकाओं के नाम से या उनमें आसक्ति देखकर रूठ जाती है–यही ईर्ष्यामान की वास्तविक स्थिति है। बिहारी ने प्रणय मान में एक ऐसे नायक-नायिका का चित्र भी अंकित किया है जिसमें

किसे कौन मनाए की स्वाभाविक स्थिति है। क्योंकि दोनों ही अपने रूप-सौंदर्य के घमंड में अकड़े हुए हैं–

दोऊ अधिकाई भरे, एकै गौं गहराइ।
कौन मनावै को मनै, माने मन ठहराइ।।

कार्यवश या किसी शापवश प्रिय के परदेश गमन पर प्रवास विरह पैदा होता है। प्रयास संबंधी विरह वर्णन की बिहारी में भरमार है और अपनी पूरी कला से बिहारी प्रवास वर्णन में प्रवृत्त होते हैं। बिहारी ने लिखा है कि एक नायिका नायक के विदेश गमन की खबर पाते ही बेचैन हो उठी, उसके नेत्र डबडबा गए, गला भर आया–वह बोल तक न सकी यथा–

ललन चलनु सुनि चुपी रही, बोली आप न ईठि।
राख्यो गहि गौढ़ गरें भनो गलगली डीठी।।

विरह प्रवास की अनेक अतिशयोक्ति से सतसई भरी पड़ी है। इस तरह के विरह पर उनका गहरा अधिकार है जिसके चमत्कार से वे चकित कर देते हैं।

करुण विप्रलंभ विरह वियोग की वह स्थिति है जहाँ मृत्यु तो नहीं होती, पर कष्ट से प्राण निकलते प्रतीत होते हैं। बिहारी की नायिका विरह में सूख कर ऐसी हो गई है कि अंगूठी के भीतर से निकल जाती है, मृत्यु उसे आंखों में चश्मा लगाकर देख पाती है और सांस लेने पर सात हाथ आगे जाती है– सांस छोड़ने पर सात हाथ पीछे आती है–

1) करी बिरह ऐसीतऊ गैलन छाड़तु नीचु।
दीन्हें हूं चसमा चखनु, चहै लहै ना मीनु।।

2) इत आवत चलि जात उत, चली छ सातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहे लगी उसासनि साथ।।

नायिका के विरह में जलते शरीर पर शीतलता के लिए गुलाब जल की शीशी डाली जाती है– तो वह बीच में ही सूख जाती है– नायिका के शरीर पर एक बूंद भी नहीं गिरती है–

औंधाई सीसी, सुलखि विरह बरति बिल लात।
बिच ही सूखि गुलाब गौ, छींटौं छुयी न गात।।

बिहारी ने गोपियों की विरहावस्था का वर्णन करते हुए कहा है कि ब्रज की गली गली तथा घरों के द्वार पर गोपियों के आंसुओं की नदी बह रही है– जो कभी सूख नहीं पाती–

गोपिनु कै अंसुवन भरी सदा असोस अपार।
उगर उगर नै है रही बगर-बगर कै बार।।

शास्त्रीय दृष्टि से बिहारी ने विरह जन्य सभी काम दशाओं का सजीव चित्रण किया है। कहना न होगा कि बिहारी का वियोग वर्णन रूढ़िबद्ध एवं ऊहात्मक है। पर संदेश, पत्र-प्रसंग में हृदय के विस्तृत प्रेम-पक्ष की व्यंजना करते हैं। कभी-कभार विरह वर्णन की स्वाभाविक स्थिति मन मोह लेती है। जहाँ कहीं बिहारी चमत्कारवादी अतिशयोक्ति के चक्कर में पड़ जाते हैं– वहां काव्यात्मकता का नाश हो जाता है। घनानंद सच्चे प्रेम पीर के कवि हैं– पर बिहारी प्रेम का दरबारी तमाशा खड़ा कर देते हैं। घनानंद में हृदय की अनुभूति का खरापन है– पर बिहारी में उक्ति चमत्कार का कौशल कृत्रिमता को जन्म देता है। कभी-कभार अपवाद रूप में बिहारी स्वाभाविक विरह का वर्णन करते हैं– एक नायिका का विरह देखिए जिसमें वह हृदय दशा के वर्णन में पत्र लिखते शर्माती है और कोरा कागज ही भेज देती है।

वियोग वर्णन की परंपरा पालन में बिहारी की स्वच्छंद अनुभूतियां दब गई हैं। उन्होंने रीतिशास्त्र का कोई लक्षण ग्रंथ तो नहीं लिखा, पर रीति परंपरा के पालन के चक्कर में उनकी काव्यानुभूति एक ढर्रे में ही ढलती गई है।...

12.3.3 भक्ति और नीति

बिहारी ने वैराग्यमूलक भक्ति से अपना संबंध स्थापित नहीं किया। वे भक्ति के किसी संप्रदाय या मत से भी प्रतिबद्ध नहीं है। हालांकि विद्वानों ने उन्हें अद्वैतवाद में मान लिया है। जबकि बिहारी किसी भी मतवाद को निरर्थक मानते हैं–

अपने अपने मत लगे बादि मचावत सोर।
ज्यौं-ज्यौं सेइबों एकै नंद किसोर।।

बिहारी की विशेषता यह है कि वे सुगण-निर्गुण के भेद में नहीं पड़ते हैं। उनकी कृष्ण भक्ति भी राम भक्ति के विरोध में नहीं है। किंतु निर्गुण की व्यापकता से वे परिचित हैं—

दरि भजत प्रभु पीठि दै गुन—विस्तारन काल।
प्रगटत निर्गुण निकट ही चंग-रंग गोपाल।।

सगुण के गुण उनकी दृष्टि में मौजूद हैं—

मोहूं दीजै मोप, जौ अनेक पतितनि दियौ।
जौ बांधे ही तोष, तौ बांधौ अपने गुननि।।

गोपाल, श्याम, हरि, ब्रज बिहारी कृष्ण में उनकी निष्ठा है। उनकी "सतसई" का प्रथम मंगलाचरण यही सिद्ध करता है—

मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोय।
जा तन की झांई परैं, स्याम हरित दुति होय।।

राम और कृष्ण की लीला में भेद न करते हुए वे भक्त की भांति भगवान को विरह का ध्यान दिलाते हैं—

कौन भांति रहि है बिरह अब देख बी मुरारि।
बींधे मोसों आनि कै, गीधे गीधहि तारि।।

जगह-जगह वे अपने को पतित कहते हैं और सूर तुलसी की भांति "पतितन को टीकों" कली परंपरा में रखते हैं यथा—

कीजै चित्र सोई, तरे जिहि पतितन के साथ।
मेरे गुन-औगुन गननि गनी न गोपीनाथ।।

भक्ति के साथ मनोरम कवित्व का मिश्रण करना बिहारी के वाग्वैदग्धं की कला है। यह कला उन्होंने भक्ति के सहज रूप के साथ अपनाई है— त्रिभंगी लाल कृष्ण की भाव-व्यंजना में उनका कवि भाव-विभोर रहता है।

सामंती प्रभाव से कृष्ण भी नहीं बच सके; —कृष्ण भक्ति पर भी सामंती व्यवहार की छाप पड़ी है। पर इस पर बिहारी व्यंग्य कर रहे है। वे भक्ति का आडंबर नहीं चाहते। हृदय की निष्कपटता ही उन्हें पसंद हैं—

जप माला छापा तिलक सरै न एकै काम।
मन कांचै नांचै वृथा सांचै रांचै राम।।

बिहारी का मन जब कभी श्रृंगार वर्णन से थक जाता है तो वे इसी भक्ति रस में मग्न हो जाते हैं। कहना न होगा कि उनकी भक्ति भी श्रृंगारिकता का ही एक अंग है। जीवन की अतिशय रसिकता से घबराए, बिहारी के धर्म भीरू मन को भक्ति ही सहारा देती है। वैसे भी रीतिकालीन कवियों ने राधा-कृष्ण 'सुमिरन को बहानों' करके श्रृंगार के साथ भक्ति को स्थान दिया है।

बिहारी ने भक्ति के साथ नीति परक दोहे भी रचे हैं। जगह-जगह इन दोनों में धन अथवा स्वर्ण की निंदा है। कभी-कभार शासन भार से भयभीत और दुःखी जनता की भी वे चर्चा करते हैं। नीच मनुष्यों के अपरिवर्तनशील स्वभाव का उन्हें अच्छा अनुभव है यथा—

कनक कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय।
वा खाए बैराय जग, या पाये बौराइ।।

स्वर्ण आदमी को पागल बना देता है— उसका लोभ नाश का कारण है। नीच प्रकृति के व्यक्ति के लिए उनका विचार है कि वह अपरिवर्तनशील होता है —

कोटि जतन कोअ करौ, क्यों न बढ़ै दुख द्वंद।
अधिक अंधेरों जग करत, मिलि मावस रवि चन्द।।

भारतीय साहित्य नीति की एक लंबी परंपरा रही है। इस नीति परंपरा में अनुभव भरा पड़ा है। ऐसा ठोस अनुभव जिसे लेकर जीवन को ठोस दिशा मिल सकती है।

साहित्यिक ज्ञान के अतिरिक्त बिहारी को लौकिक ज्ञान है। शास्त्र एवं लोक के ज्ञान का बिहारी में सामंजस्य है। ज्योतिष, वैद्यक, गणित आदि का बिहारी को ज्ञान है और वे काव्यात्मकता में उसका पूर्ण उपयोग करते हैं। कहना न होगा कि बिहारी का नीति ज्ञान, शास्त्र ज्ञान लोकानुभव पर आधारित है। उनकी सूक्तियां चमत्कार मूलक होने पर भी नीति से भरी पड़ी हैं। वे जानते हैं

कि शुष्क नीति का काव्यानुवाद काव्य नहीं है— यही कारण है कि वे नीति को कौशल से काव्यात्मकता में मिलाकर नया भाव-रूप प्रस्तुत कर देते हैं। केवल तथ्य कथन उनका लक्ष्य नहीं है— उनका लक्ष्य अच्छी कविता निष्पन्न करना भी रहा है।

बोध प्रश्न 1

1 उचित शब्दों द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

i) बिहारी की रचना को.......................................कहा जाता है।
(बिहारी सतसई, बिहारी रत्नाकर)

ii) बिहारी.......................................काव्य धारा के कवि हैं।
(रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध)

iii) बिहारी के काव्य में मुख्य रूप से.......................................का वर्णन हुआ है।
(शृंगार, भक्ति, नीति)

2 निम्नलिखित रचनाओं में से सतसई परंपरा की सबसे पहली रचना कौन सी है। निशान लगाइए।

i) गाथा सप्रशती
ii) आर्या सप्रशती
iii) भर्तृहरि शतक
iv) अमरूक शतक

3 उचित शब्दों द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

कल्पना को.............., भाषा की..............मुक्तक काव्य में आवश्यक है।
(समाहार शक्ति, समास शक्ति, कंजना, उक्ति वैविध्य)

बोध प्रश्न 2

4 उचित शब्दों द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए?

i) ....रीतिकालीन कविता की प्रधान प्रवृत्ति है।
(उपदेशात्मकता, शृंगारिकता)

ii) विप्रलंभ या वियोग शृंगार के मुख्य भेद कौन-कौन से हैं—
(क)..........(ख)..........(ग)..........(घ)..........।
(पूर्वराग, प्रवास, करूणा, मान, उपालम्भ, अभिलाषा)

iii) बिहारी ने भक्ति एवं नीति के अतिरिक्त ....आदि विषयों पर भी दोहे लिखे हैं।
(वैद्यक, गणित, ज्योतिष, वाणिज्य)

बोध प्रश्न 3

5 बिहारी सतसई की रचना निम्नलिखित छंद में हुई है। सही पर निशान लगाएं।
(i) दोहा, (ii) कवित्त सवैया, (iii) वार्णिक छंद, (iv) मुक्त छंद.

6 "दोहा" छंद की दो विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

7 बिहारी की काव्य भाषा की दो विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

12.4 संरचना शिल्प

रीतिसिद्ध कवि बिहारी सामंती अभिरुचि के अनुकूल अपना रचना कर्म करते रहे। किंतु उनके काव्य का संरचना शिल्प अपनी कलात्मक विशिष्टताओं के कारण महत्वपूर्ण रहा है।

रीतिकालीन काव्य के सौंदर्य बोध को बिहारी में गहराई एवं विस्तार मिला है। अभिव्यंजना शिल्प की बारीकी और कसावट के लिए "बिहारी सतसई" एक प्रतिमान प्रस्तुत करने वाली रचना है। ब्रजभाषा काव्य की मुक्तक शृंगारी परंपरा और काव्य भाषा ब्रजभाषा की सर्जनात्मकता, ध्वनि वक्रता, उक्ति वैदग्ध, उपमान योजना और दोहा छंद की शक्ति सामर्थ्य का उपयोग "बिहारी मुक्त रूप से करते हैं। काव्य भाषा में चमत्कार प्रदर्शन" बिंब की सजीव मूर्तिमत्ता और कल्पना की समाहार शक्ति का उनके काव्य में कलात्मक प्रदर्शन है। रीतिशास्त्र का लक्षण-ग्रंथ न लिखने पर भी वे रीतिशास्त्र पर असाधारण अधिकार रखते हैं। इसी अधिकार ने उनके शिल्प पक्ष को तराश कर चमका दिया है। यहाँ पर हम बिहारी के संरचना शिल्प के बुनियादी आधारों को प्रस्तुत करेंगे। इन बुनियादी आधारों की समझ से आप बिहारी के शिल्प-सौंदर्य को समझ सकेंगे।

12.4.1 काव्य रूप

राजदरबारी काव्य-परंपरा के प्रभाव में बिहारी प्रबंधकाव्य की ओर न जाकर मुक्तक काव्य की ओर ही गए। उन्होंने मुक्तक काव्य में सवैया घनाक्षरी की रूप पद्धति को भी नहीं अपनाया। मूलतः वे "दोहे" पर ही केंद्रित रहे। ध्यान देने की बात यहां यह है कि "दोहा" जिसे "दूहा" भी कहा जाता है, अपभ्रंश भाषा का प्रसिद्ध छंद है। छंद शास्त्री मानते हैं कि दूहा अर्धसम छंद है। इसके पहले तीसरे, दूसरे और चौथे चरण समान होते हैं। पहले तीसरे चरण में 11, 11 और दूसरे चौथे चरण में 12, 13 मात्राएं होती हैं। इसके चारों चरणों में 48 मात्राएं होती हैं। विद्वानों का मानना है कि अपभ्रंश युग में दोहे को उलटने की परपरा (सौराष्ट्र) गुजरात में चली और इसे "सोरठा" कहा गया। आज भी सोरठा को "सोरठिया दोहा" कहते हैं।

दोहा मुक्तक काव्य का ऐसा रूप छंद है जिसमें छोटे सांचे में बड़ी बात कही जाती है। बिहारी के लिए तो "सतसैया के दोहरे ज्यों नाविक के तीर" वाली उक्ति प्रसिद्ध ही है। विशेष बात यह भी है कि बिहारी समास पद्धति, उक्ति वैविध्य, व्यंग्य क्रोधित की समर्थ काव्य परंपरा से परिचित जान पड़ते हैं। थोड़े शब्दों में भाव को सूक्ष्मता से प्रस्तुत करने की दक्षता उनके पास है। रहीम दोहे की इसी दक्षता का बखान करते हुए कहते हैं कि–

> दीरघ दोहा अरथ के आखर थोड़े आहि।
> ज्यो रहीम नट कुंडली सिमिटि कूदिं चलि जाहि।।

नट जैसे थोड़े घेरे में कलाबाजी दिखाकर दर्शकों को चकित कर देता है, ऐसे ही समर्थ दोहाकार अर्थ का थोड़े ही शब्द में कमाल दिखा देता है। बिहारी तो दोहा ही नहीं लिखते उसके नुकीलेपन से गंभीर घाव भी करते हैं। बिहारी को अच्छी तरह ज्ञात है कि मुक्तक काव्य में प्रबंध की प्रसंगबद्धता न होने के कारण भारी स्वतंत्रता है। मुक्तक में वे खास ढंग से चित्रण और अनुभाव की योजना करते हैं। अनुभाव आश्रय के शारीरिक भाव विकार भी कहलाते हैं तथा अनुभाव का एक अर्थ है भाव का अनुभव कराने वाला। एक ही भाव की अनेक प्रकार से व्यंजना करने वाले अनुभाव बिहारी प्रायः अपने दोहों में लाते हैं। स्वाभाविक "हाव" लाते हैं–जैसे भौहों, नेत्रों की क्रियाएं, यथा–

> नाभा मोरि नचाय दृग करी कका की सौंह।
> कांटे सी कसकत हिए अजौं कटीली भौंह।।

बिहारी के मुक्तक काव्य की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1 मुक्तक काव्य रूप में बिहारी सूक्तियों का अद्भुत ढंग से प्रयाग करते हैं जैसे–
   क) तंत्री पार, कवित्त रस, सरस राग रति रंग।
      अनबूंद बूड़े तिरे ते बूड़े सच अंग।।
   ख) वह चितवनि और कछू जिहि बस होत सुजान।

2 अतिशयोक्तिपूर्ण उक्तियों ने इस मुक्तक काव्य रूप को उपहास्यास्पद तो बनाया लेकिन लोक प्रसिद्धि भी दी है–
   क) बिरह ज्वाल जरिबो लखो, भरिबो भयो अमीस।
   ख) इत आवत चलि जात उत चली छसातक हाथ।।

3 इनमें भाव माधुर्य, उक्ति वैचित्र्य तथा शब्द वक्रता के साथ शृंगार के संयोग वियोग दोनों पक्षों का सजीव निरूपण किया गया है।

4 विलास प्रिय सामंती समाज की विकृतियों को दर्शाने में इन शृंगार मुक्तकों का आज ऐतिहासिक महत्व है। हम बिहारी कालीन समाज को इन्हीं मुक्तकों से देख सकते हैं

5 इस मुक्तक काव्य रूप पर प्राकृत अपभ्रंश की दूहा परंपरा के साथ फ़ारसी उर्दू की शेर कहने वाली मार्मिक परंपरा की भी छाप है।

6 बिहारी राजनीतिक और धार्मिक व्यंग्य काव्य भी इसी मुक्तक काव्य के अंतर्गत रचते हैं।

7 इस मुक्तक काव्य रूप का रचना विधान आदि से अंत तक रीतिशास्त्र से अनुशासित है। शृंगार, अलंकरण, नायिका भेद, दूती प्रसंग, नखशिख वर्णन, अनुभाव विधान आदि सभी पर रीति कलाशास्त्र का जादू बोल रहा है।

8 इनमें लक्षण रचने की परंपरा को छोड़कर स्वतंत्र रूप से मुक्तकों को रचने तथा काव्यशास्त्र पद्धति को लाने का अच्छा प्रयास किया गया है।

9 प्रकृति के स्वतंत्र उद्दीपन के चित्र हैं। जिनमें कल्पना की समाहार शक्ति का योग रहा है। व्यंग्य से पुष्ट होने के कारण इन मुक्तकों में आकर्षण भी कम नहीं है।

12.4.2 काव्य-भाषा

बिहारी ने ब्रजभाषा को काव्य भाषा के रूप में रचनात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। बिहारी से पहले काव्य भाषा के रूप में ब्रजभाषा भक्तिकाल के कृष्ण भक्त कवियों में विशेषकर सूरदास नंदराम के काव्य में साहित्यिक परिष्करण और लयगेयता की शक्ति पा चुकी थी। काव्य भाषा के रूप में ब्रजभाषा का प्रसार इतना अधिक हो चुका था कि यह संपूर्ण मध्य देश की भाषा बन चुकी थी। बिहारी ने ब्रजभाषा को रीतिकालीन अलंकरण तथा चमत्कारपरक भंगिमाओं में अच्छी तरह ढाल दिया। उन्होंने शब्द चयन की सतर्कता के साथ उसकी अनगढ़ता को तराशकर नया रूप प्रदान किया। उनका पूरा बल शब्दों की तराश पर केंद्रित रहा। यह तराश दो रूपों में देखी जा सकती है। (क) शब्दों का अनुकलन करके जैसे "परझाई की जगह– "झांई" का विशेष रूप से प्रयोग, जा तन की झांई परै स्थाम हरित दुति होय– (ख) कुछ शब्दों में प्रत्यय लगाकर जैसे सतरौहैं या सवादिल जैसे विशेषण। कहना न होगा कि बिहारी ने इन शब्दों को नया संस्कार दिया। शब्दों की इस नवीन संस्कार प्रवृत्ति पर डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है– "ध्वन्यात्मक और व्याकरणिक दोनों स्तरों पर कवि की यह भाषिक तराश रीतिकालीन मनोवृत्ति और मुगलकालीन कला की बारीक पसंदी के समानांतर चलती है। इस संदर्भ में बिहारी को रीतिकालीन काव्य भाषा का प्रतिनिधि कहा जा सकता है।" (मध्यकालीन हिंदी भाषा पृ. 130)।

बिहारी की सर्जनात्मक ब्रजभाषा के मूल में एक क्षेत्रीय कारण भी रहा है। उन्होंने प्रचलित बुंदेलखंडी शब्द रूपों के साथ मथुरा आगरा की ओर रूप प्रधान केंद्रित ब्रजभाषा का ही निपुणता से प्रयोग किया है। यहां उनकी काव्य भाषा और ब्रज संस्कृति का अविच्छिन्न संबंध दृष्टिगत होता है। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि उनके काव्य भावों, चित्रों, वर्णनों, आदि में ब्रज संस्कृति के श्रृंगारिक चित्र मूर्त रूप में प्रस्तुत हों। राधा-कृष्ण की भक्ति और शृंगार मिश्रित परंपरा बिहारी को संस्कार रूप में सहज ही मिल गई। फलतः उनकी ब्रजभाषा में एक ओर तो भीतर से शास्त्रीयता झिलमिला रही है, दूसरी ओर ब्रजभूमि की मुक्त जीवन पद्धति का चटक रंग। इन दोनों ने उस सामंतवादी समाज का भाषा में यथार्थ चित्र खींच दिया।

बिहारी ने काव्य भाषा में विशेषणों का प्रयोग खास ढंग से किया है। मूलतः विशेषणों का यह प्रयोग रचनात्मक अनुभव को सीधे संप्रेषित करने के लिए किया गया है। बिहारी चुने हुए विशेषणों को काव्य संदर्भ के अनुकूल तराशते हैं। बिहारी ने औहैं प्रत्यय जोड़कर संज्ञाओं तथा विशेषणों में भी विशेषण बनाए हैं। ब्रज के "सतर" विशेष का अर्थ होता है– सीधा खड़ा हुआ। वह इसी "सतर" से रूप बनाता है– सतरौ हैं

सकुचि न रहियै स्याम, सुनि ए सतरौ हें बेन।

नायिका ऊपर से गुस्सा पर भीतरी प्रेम से कोमल है। इस भाव से "सतरौ हैं" का प्रयोग सार्थक सटीक बैठता है। इसी से मिलते जुलते अन्य रूप कवि ने बनाए हैं– जैसे ललचौ हें, खिसों हें, रिसौ हें, हसौ हें आदि। "संवाद" से "सवादिलु" तथा "तेल" से "तिलौछें" भी ऐसे ही प्रयोग हैं। जिनका प्रयोग कवि ने तत्कालीन लोक भाषा के भीतर से लेकर किया है। बहरहाल, इन विशेषणों का संप्रेषण व्यापार अर्थ के लिए अचूक काम करता है।

ब्रजभाषा के स्थानीय प्रयोगों से कवि की ठेठ देशज प्रयोग कला में अभिव्यक्ति का पैनापन आया है। दूसरी ओर साहित्यिक ब्रजभाषा की विश्वसनीयता को भी लोकग्राह्य आधार मिला है। उनकी भाषा में "त्यौनार" (कुशलता) "भटभेरा" (शरीरों का भिड़ना) आदि ऐसे ही प्रयोग हैं।

बिहारी की काव्य भाषा में संज्ञा शब्दों की भंगिमाएं विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट करतीं हैं। छोटे और निर्विकार दिखाई पड़ने वाले अव्यय शब्द पूरे वाक्य के अर्थ को कैसे विकसित करते हैं, यह

बिहारी की काव्यभाषा में देखने लायक कला है। यहाँ शब्द लाघव में उर्दू शायरी का भाषिक विधान स्मरण हो आता है जहाँ "ही" "भी" "गोया" जैसे शब्द समूचे अर्थ में नया प्रकाश भर देते हैं। जैसे औरै। (औरे ही) छाहौं (छाया भी) आदि प्रयोग :

> वह चितवनि औरै कछु जिहि बस होत सुजान।
> देखि दुपहरी जेठ की छांहौ चाहति छांह।
> लपट बुझावत बिरह की कपट भरेऊ आइ।।

बिहारी की काव्य भाषा पर विचार करते समय यह भी ध्यान रखना होगा कि उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति के लिए मुक्तक रूप में दोहा को चुना है। यह दोहा उर्दू कविता के शेर से तुलनीय है। गजल का पूरा रूप स्वतंत्र अस्तित्व लिए हुए इन शेरों से ही निर्मित होता है। जो कथावस्तु के स्तर पर संबद्ध होते हुए भी भाषिक स्तर पर अलग अलग होते हैं। रीतिकाल में दोहों और शेर का मुक्तक रूप दरबारी काव्य परंपरा से जुड़ा हुआ है। इसलिए बिहारी की भाषा जगह जगह समास शैली का सहारा लिए हुए है :

> संगति दोष लगै सबनु, कहेति सांचे बैन।
> कुटिल बंक-भुव संग भए कुटिल, बंक-गति नैन।।

बिहारी की इसी समास शैली की विशेषता को रेखांकित करते हुए आ. रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि "बिहारी की भाषा चलती होने पर भी व्यवस्थित है। वाक्य रचना व्यवस्थित है और शब्दों के रूपों का व्यवहार एक निश्चित प्रणाली पर है। यह बात बहुत कम कवियों में पाई जाती है। ब्रजभाषा के कवियों में शब्दों को तोड़ मरोड़कर विकृत करने की आदत बहुतों में पाई जाती है। "भूषण" और "देव" ने शब्दों का बहुत अंग भंग किया है और कहीं कहीं गढ़ंत शब्दों का व्यवहार किया है। बिहारी की भाषा इस दोष से भी बहुत कुछ मुक्त है। दो एक स्थल पर ही "स्मर" के लिए "समर" "ककै" ऐसे कुछ विकृत रूप मिलेंगे।" (हि.सा. का इतिहास पृ. 241-42)।

बिहारी की ब्रजी पर बुंदेलखंडी, अवधी का प्रभाव है। तुलसी ने विनय पत्रिका ब्रजभाषा में लिखी थी– पर उसमें अवधी का प्रभाव है। सूरदास की ब्रजभाषा भी विशुद्ध ब्रजभाषा नहीं है– उसमें भी मेल मिलावट है। बिहारी की साहित्यिक ब्रजभाषा में मेल-मिलावट खूब है। बिहारी में पूर्वी हिंदी के "लीन" "कीन" जैसे खूब प्रयोग मिलते हैं–

> स्तन मन नैन नितंब को बड़ो इजाफा कीन।
> पिय तिय से हँसिकै कहयौ लखैं डिठौना दीन।

बुंदेलखंडी शब्द प्रयोग भी बिहारी में साफ दिखाई दे जाता है। "खंड बुंदेलै बाल" का इतना तो असर होना ही चाहिए। "लखबी" "कारबी" तक तो खैर है, पर बिहारी "स्यौं" जैसा बुंदेलखंडी अव्यय भी ले लेते हैं–

> चिलक चिकनई चटक स्यौं लफति सटक लौं आय।
> स्यौं बिजुरी मनु मेह, आनि इहां बिरहा धरे।

संस्कृत के तत्सम शब्द प्रयोग में भी बिहारी माहिर है जैसे, चित्र, अनुरागी, संपत्ति, मृग, मोहन, प्रभा, प्रभात आदि अनेक शब्द

> या अनुरागी चित्र की गति समुझै नहि कोय।

प्राकृत अपभ्रंश और डिंगल (राजस्थानी) के शब्द इस काव्य भाषा में मोतियों की भांति गुंथे मिलते हैं– जैसे अच्छ, बिज्ज, कज्जल, छाई आदि–

> शनि कज्जल चखि झकि दृगन उपज्यो सांदिन सनेह।

जनसाधारण और दरबारों में प्रचलित अरबी, फारसी के शब्द बिहारी निर्भयता से प्रयोग करते हैं– सबी, गरूक, इजाफा, कबूल, रकम, बाज, पायंदाज आदि अनेक शब्द

> लिखनि बैठि जाकी **सबी**, गहि गहि गरब **गरूर**।
> स्तन मन नैननितम्ब को बड़ें। **इजाफा** कीन।
> दृग पगन पोछन को किए भूषण **पायंदाज**।

भाषा में नाद-सौंदर्य और ध्वन्यात्मकता पर उनका पूरा ध्यान रहा है, वे अद्भुत वर्ण-मैत्री का चमत्कार दिखाने में भाव की गति बढ़ा देते हैं– "रनित भृंग घंटावली" के साथ "मंद मंद आवत चल्यो कुंजर कुंज समीर" कहकर वे ध्वनि प्रभाव को कार्य की गति से जोड़ देते हैं। लक्षण और

व्यंजना शक्ति के चमत्कार भाषा की समास शक्ति में कला का कौशल दिखाते हैं। साथ ही यह भाषा अनुप्रास बहुला है। प्राय: एक स्वर वाले एक व्यंजन वाले शब्द युग्म आते रहते हैं जैसे–

झीने पट में **झलमली झलकति** ओप अपार।

भाषा की लाक्षयिक वक्रता और माधुर्य व्यंजना को बढ़ाने के लिए भाषा में लोकोक्ति मुहावरों की सीधी गति का प्रवाह है। लोकोक्ति मुहावरों के प्रयोग से भाषा सजीव और सार्थक बनती गई है।

सूधो पांव न धरि परत सोभा ही के भार।
मूड़ चढ़ाएंऊ रहै परयो पीठि कच भार।
परत गांठ दुरजन हिये दिइं नई यह रीति।

बिहारी की इस समर्थ सर्जनात्मक ब्रजभाषा के लिए आ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने ठीक कहा है कि "बिहारी का भाषा पर सच्चा अधिकार था। उनके बाद भाषा पर अच्छा अधिकार रखने वाले मतिराम, पद्माकर आदि कुछ ही प्रवीण कवि हुए। आधुनिक युग में रत्नाकर का भी वैसा ही अधिकार था। घनानंद और दो एक के अतिरिक्त भाषा की दृष्टि से बिहारी की समता करने वाला, भाषा पर वैसा अधिकार रखने वाला कोई मुक्तक रचनाकार नहीं दिखाई देता।" (बिहारी की वाग्विभूति पृ. 149) जाहिर है कि बिहारी ने ब्रजभाषा की अभिव्यंजना शक्ति का अद्भुत ढंग से विकास किया।

12.4.3 बिंब विधान

रीतिसिद्ध कवि बिहारी की कलात्मक सर्जना का आधार उनकी निंब योजना में दृष्टिगत होता है। उनकी बिंब योजना में व्यक्ति, परिवेश और संदर्भ आकार ग्रहण करते हैं। बिंबवादियों की यह स्थापना बिहारी में प्राकृत रूप से कार्य करती है कि काव्य में "विशेष" की अभिव्यक्ति होती है– "सामान्य" की नहीं। बिंब का संबंध कवि के प्रत्यक्ष इंद्रिय बोध से होता है। ऐन्द्रिय बोध का विषय होता है-- "विशेष व्यक्ति, विशेष वस्तु, विशेष दृश्य। अत: बिंब जब होगा "विशेष" का ही होगा। बिंब काव्य में वस्तु का मूर्त भावचित्र या प्रत्यक्ष ग्रहण है। बिंब ऐसे शब्दों का त्याग करता है जो काव्य को अर्थवान नहीं बनाते। इसलिए काव्य योजना में बिंब यांत्रिक पद्धति का सीधा निषेध करता है और संगितिक नियमों को अपनाता है।

बिंब के लिए चित्र भाषा की आवश्यकता होती है– ऐसी भाषा जो बोलती हो। विशेष बात यह है कि काव्य में कवि ऐसे नैसर्गिक बिंबों का प्रयोग करता है जो सामूहिक और वैयक्तिक अवचेतन का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस दृष्टि से बिंब विधान के अध्ययन से कवि के व्यक्तित्व की विशिष्टता का उद्‌घाटन किया जा सकता है। उसकी रुचियां, उसकी स्मृति, उसके सोचने का ढंग, उसका परिवेश सब कुछ बिंब से जाना जा सकता है। बिंब का प्रधान कार्य है एक कल्पित सादृश्य विधान द्वारा वस्तु और काव्यगत अर्थ को जोड़ना। काव्य का काम है कल्पना में बिंब या "मूर्त भावना" उपस्थित करना। अर्थात् बिंब कल्पना का विषय है जिसका बोध होना चाहिए। इसी दृष्टि से ऐन्द्रियता। बिंब की प्रथम और अंतिम कसौटी है। ऐन्द्रियों से संबंधित रूप, रस, स्पर्श, गंध और श्रव्य के बिंब होते हैं। इसलिए कविता में अर्थ ग्रहण के साथ बिंब ग्रहण अपेक्षित होता है। एक प्रकार से बिंब जीवन यथार्थ का प्रत्यक्ष मानसिक प्रतिबिंब है जो प्रत्यक्षीकरण से संप्रेषण व्यापार में सहायक होता है। वह मात्र मानसिक है जो प्रत्यक्षीकरण से सम्प्रेषण व्यापार में सहायक होता है। वह मात्र मानसिक बिंब नहीं है, कारण वह शब्दबद्ध होकर मूर्त भाव चित्र के रूप में सामने आता है।

बिहारी के काव्य बिंबों की निर्माण पद्धति सदैव एक सी नहीं है। उनका जीवन तथा परिवेश दोनों सम्मिलित रूप से बिंब रचते हैं। कवि सच्ची और गहरी अनुभूतियों को भाव चित्रों में कल्पना शक्ति से रूपायित करता है। कल्पना का साथ स्मृति देती है और यथार्थ के काव्यानुभव ऐन्द्रिय प्रभाव उत्पन्न करते हैं। स्मृति बिंब का एक उदाहरण लीजिए।

नासा मोरि नचाय दृग करी कका की सौंह।
कांटे सी कसकति हिए अजौ कटीली भौंह।।

नायक से नाक मोड़कर, आंखें नचाकर नायिका ने पिता की कसम खाई और चली गई। उसकी कटीली भौंह नायक के हृदय में कांटे सी कसकती रह गई। नर नारी शृंगार के आदिम-बिंब बिहारी की कविता में हर मोड़ पर मिलते हैं। इसी आदिमता के प्रभाव से राधा (नारी) का ध्यान करते ही कृष्ण (नर) का चित्र हरा भरा हो जाता है– "जातन की झांई परयो, स्याम हरित दुति होय" रहने में यही आदिम बिंब है।

बंसत का बिंब प्रकृति सौंदर्य में मंद मंद हाथी की भांति चलता पवन लेकर आता है। कानों में घंटा ध्वनि एवं भौरों का गुंजार सुनाई देने लगता है—

रणित भृंग घंटावली झरत दान मधु नीर।
मंद-मंद आवत चल्यो कुंजर कुंज शरीर।।

इस दोहे के बंसत बिंब से जाहिर है कि कोई भी बिंब अकेला नहीं होता— उसका एक संपूर्ण परिवेश होता है। कविता में कवि उस परिवेश को लाने के लिए अन्य वस्तुओं से संबंध स्थापित करता है।

जिस सामंतवादी परिवेश में बिहारी विद्यमान थे, उसमें प्रेम निवेदन का खुला खिलवाड़ हो रहा था। उस सामंतवादी परिवेश को बिहारी ने क्रिया कथनों, नयन संकेतों, से मूर्त किया है— ऐसा बिंब देखिए जिसमें नायक भरे भुवन में नायिका से प्रेम निवेदन कर रहा है—

कहत, नटत, रीझत, खिजत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे नौन में करत है, नैनन ही सौं बात।।

यह बिंब सीधा और स्पष्ट है, शब्द चयन में सतर्कता से काम लिया गया है। नेत्र के अतिरिक्त किसी अन्य इन्द्रिय का सीधा प्रवेश नहीं है। बिहारी तक आते-आते भक्तिकाल की भक्ति चेतना और स्वच्छंद कल्पना चुकने लगी थी। शास्त्र की अनुमति नहीं थी और पौराणिक सीमाएं निश्चित हो चुकी थीं। अतः बिहारी को उन्मुक्त उद्दाम शृंगार वर्णन के लिए अप्रस्तुत विधान का सहारा लेना पड़ा। पुराने उपमान उछल पड़े जैसे सुंदर आंखों के लिए हिरणी की आंखों का उपमान :

हरिनी के नैनान ते हरिनी के ये नैन।
कानन चारी नैन मृग नागरि नरनि सिकार।

बिहारी में अप्रस्तुतों की संख्या भी निश्चित है और नए उपमानों के लिए उन्हें भटकना नहीं पड़ता। कभी-कभार वे अपनी सीमाएं तोड़कर रंगीन बिंब उत्पन्न करते हैं। जैसे कृष्ण के वस्त्र की पीली आभा से प्रातःकालीन प्रभात की धूप से सदृश्य का बिंब :

सोहत ओठे पीत पर स्याम सलोने गात।
मनौ नीलमणि सैल पर आतयपर्‌यो प्रभात।।

नायक के पतंग की आंगन में पड़ने वाली छाया का स्पर्श नायिका को पागल बना देता है। उन्माद व्याकुल परकीया नायिका का एक बिंब इस दोहे में देखिए :

उड़ति गुड़ी लखि लाल की, अंगना अंगना माहि।
बौरी सी दौरी फिरति, छुवति छबीली छाहि।

बिहारी कभी-कभार परंपरागत बिंबों को छोड़कर स्वच्छंद कल्पना की ओर भी बढ़ते हैं और नया बिंब रचते हैं।

जय, माला, छाया तिलक सरै न एकौ काम।
मन काचै नाचै विथा, सांचै रांचै राम।।

रीतिकालीन दरबारी परिवेश बिहारी को घेरे रहता है। "सजि तीरथ हरि राधिका तन दुति करि अनुराग" का वे बार-बार उल्लेख करते रहते हैं। नायिकाएं घुंघराले बालों के बीच में अंगुली फंसाकर चंचल निगाहों से नंद कुमार (नायक) को देखती हैं और नैनों से ही बात कर लेती हैं।

कंजनयन मंजन किए बैठी ब्योरति बार।
कच उगरिन बिच दीठि दै चितवति नंद कुमार।।

सद्यः स्नाता नायिका का यह बिंब पूरी रीतिकालीन मानसिकता को उजागर करने वाला कहा जा सकता है। बिहारी स्थूल संवेदना के शृंगारी बिंब इस तरह के भाव चित्रों से भरे पड़े हैं। आंखों के काम बाण से लाज बेहाल पड़े हैं— उस स्थिति का बिंब देखिए जिसमें कहीं मुरली पड़ी है। कहीं पीला वस्त्र पड़ा है, कहीं मुकुट पड़ा है। जैसे—

कहा लड़ैते दृग करे परे लाल बेहाल।
कहुं मुरली, कहुं पीत पर कहूं मुकुट बनमाल।

बिहारी ने बिंब के लिए रूप, प्रभाव, साधर्म्य मूलक अलंकारों तथा रंगों का भरपूर प्रयोग किया है। संक्षेप में, कहा जा सकता है कि चित्र योजना बिहारी की कला की शक्ति है। वे थोड़े से शब्दों में भाव चित्र प्रस्तुत करने की क्षमता रखते हैं।

12.4.4 अलंकार-योजना

अलंकार काव्य में शोभा की वृद्धि तो कर सकते हैं, पर वे शोभा का निर्माण नहीं कर सकते हैं। रीतिकाल का एक नाम अलंकार योजना की अतिशयता के कारण "अलंकृत काल" भी किया गया है। अलंकारों के कलावादी चमत्कारी संसार में बिहारी का नाम भी नगण्य नहीं है। बिहारी यह जानते हुए कि अलंकार काव्य के अस्थिर धर्म हैं, अलंकारवादियों के साथ होने में हिचकते नहीं है। रीतिकाल में शृंगार की एक शोभा अलंकार भी था। "भूषण बिनु न विराजई कविता वनिता मित्र" मात्र सिद्धांत वाक्य ही नहीं था– यह काल में उसकी व्यवहारिकता के स्तर पर उपयोग भी हुआ था। अलंकार्य (वस्तु) को अलंकार से ढकने की इन्हें परवाह न थी। वे इसका चमत्कार दिखाने में ही विश्वास रखते थे। बिहारी की अलंकार योजना कहीं-कहीं मात्र चमत्कार उत्पन्न करती है–

तो पर बारौं उरबसी सुनि राधिके सुजान।
तूं मोहन के उरबसी है उरबसी समान।।

इस उर्वशी के माध्यम से यमक अलंकार प्रस्तुत करने वाले दोहे पर आ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने टिप्पणी की है– "उरबसी" का यमक प्रमुख है। राधिका का स्वरूप बोध कराने या रूप का प्रभाव डालने में यमक सहायक नहीं है। ध्यान को वही अधिक आकष्ट करता है। अलंकाराभ्यासियों के विचार से अलंकार दोष भी आ गया। यमक का पूरा चमत्कार तब होता जब चारों चरणों में "उरबसी" शब्द आता, दूसरे में नहीं है। चौपाया एक पैर से लंगड़ा हो गया है। यह यमक दोष उपयुक्त दोष के भतीर माना जाता है। (बिहारी की वाग्विभूति पृ. 124) लेकिन प्रायः बिहारी यमक, श्लेष आदि शब्दालंकारों के प्रयोग में बड़े सिद्धहस्त हैं। यमक का यह उदाहरण देखिए जिसमें पंक्ति में नया-नया चमत्कार है–

बरजीते सर मैन के ऐसे देखे मैं न।
हरिणी के नैनान तें हरि नीके ये नैन।।

शब्द-श्लेष बिहारी का प्रिय अलंकार है। शब्द के दो या दो से अधिक (सहज ही) अर्थ जहाँ निकलते हैं– वहाँ शब्द श्लेष अलंकार होता है। शब्द-श्लेष अलंकार में कवि प्रयुक्त शब्द का पर्याय रखते ही उसका चमत्कार मर जाता है– जैसे "सुमन" शब्द का इस दोहे में प्रयोग सुन्दरमन वाली तथा पुष्प दोनों अर्थों में हुआ है– पर यदि सुमन की जगह "पुष्प" शब्द रख दें तो पूरे दोहे का चमत्कार नष्ट हो जाता है– दोहा देखिए–

लग्यो सुमन है है सुफल आतप ओप निवारि।
बारी-बारी अपनी सींची सहृदयता बारि।।

बिहारी में शब्दालंकारों का चमत्कार बहुत ज्यादा है पर इस तरह के चमत्कारवादी दोहों की संख्या इनी-गिनी है। अनुप्रास में बिहारी का पद्माकर की भाँति मन फंसा रहता है। पर प्रसंगानुकूल ही वे अलंकार योजना करते हैं और काव्य-सौंदर्य की वृद्धि भी इन अलंकार प्रयोगों से हुई है। अनुप्रास के चमत्कार का एक काव्य सौंदर्य वाला दोहा देखिए–

रनित भृंग घंटावली, झरित दान मधुनीर।
मंद-मंद आवत चल्यो, कुंजर-कुंज समीर।।

एक साथ इस दोहे में अनुप्रास, वीरसा, चमक आदि शब्दालंकार आ गए हैं। शब्द झंकृति ने ध्वनि का विस्तार किया है। गले में घंटा बांधे हाथी की मस्तानी चाल से आने और कुंज समीर के बहने में एक मोहक अर्थ झंकार है। यहां अलंकार ने केवल वसंत वर्णन के भाव विस्तार की ही वृद्धि नहीं की है बल्कि बिंब के माध्यम से अनुभव को मूर्त कर दिया है। अलंकारिक चमत्कार प्रकृत प्रसंग में भाव-सौंदर्य का उत्कर्ष करता है। एक और उदाहरण लीजिए–

अधर धरत हरि के परत ओठ दीठि पट ज्योति।
हरित बांस की बांसुरी इन्द्रधनुष रंग होति।।

यहां पर दोहे में तद्गुण अलंकार है। किंतु बिहारी ने रंगों का एक कुशल मेल किया है कि चमत्कार सुंदरता में बदल गया है। तद्गुण अलंकार वहाँ होता है जहाँ एक वस्तु प्रधान होती है और दूसरी गौण। गौण वस्तु प्रधान वस्तु का गुण ग्रहण कर लेती है और अपना खो देती है। पर यहाँ बांसुरी ओठ, दृष्टि और पट के रंगों को ग्रहण करने पर भी अपना रंग खोती है। चार रंगों में सात रंगों के इंद्रधनुष की छबि निखर उठती है। तद्गुण से अलंकार चमत्कार होने पर भी बात बराबर बनती दिखाई देती है। कहना न होगा कि शब्दालंकारों और अर्थालंकारों दोनों में बिहारी की गति थी।

वास्तव में, बिहारी की अलंकारशास्त्र पर जबरदस्त अधिकार था। वे अलंकार का ऐसा प्रभाव साम्य और चमत्कार पैदा कर सकते हैं कि लक्षण-ग्रंथ लिखने वाले भी उसे पाकर दंग रह जायें। इस अलंकार विदग्धता और प्रवीणता से ज्ञात होता है कि उन्होंने लक्षणग्रंथों का गहन अध्ययन किया था। अलंकारों की कथनगत स्वच्छता, बिंब की निर्मलता, प्रस्तुत अप्रस्तुत की गहरी पकड़ बिहारी को रीतिकाल का प्रतिनिधि कवि सिद्ध करती है। बिहारी के सभी टीकाकार उनकी अलंकार शक्ति को पूरे मन से सवारंते रहे हैं। बिहारी कोरे चमत्कारवादी नहीं हैं, ध्वनि, रसवादी कवि हैं– यह बात उनकी अलंकार योजना से सिद्ध भी होती है।

12.4.5 छंद विधान

लय काव्य एवं कलाओं की प्रेरक शक्ति है। ध्वनि अथवा गति की व्यवस्था ही छंदमात्र का आधार है। काव्य की मूल दो प्रेरणाएं हैं– (1) संगीतात्मक लय (2) अनुकरण की प्रवृत्ति। छंद लय का ही रूप विधायक अंग है। लय अपने में इंद्रियों की संवेदना शक्ति से जुड़ी है जो शब्दबद्ध होकर छंद का रूप धारण कर लेती है। यह काव्य के अर्थ संप्रेषण का अनिवार्य आधार भी है। काव्य एवं छंद के इस अविच्छिन्न संबंध को रीतिकाल के कवि पहचानते हैं। वे बड़े सार्थक ढंग से प्राकृत अपभ्रंश के लोकप्रिय छंदों का प्रयोग करते हैं। रीतिकाल एक प्रकार से संगीत कला के उत्कर्ष का काल भी था– दरबारों में लहरदार तान का जादू चलता रहता था। राग को स्पन्दन, कम्पन, वेग और प्रवाह छंद ही देता था। पर बिहारी लाल पक्के रागों की ओर नहीं गए उन्होंने दरबारी काव्य परंपरा के अनुकूल छंद दोहा चुना। "बिहारी सतसई" में दोहा का जादू और कभी-कभार सोरठा छंद अपनी शक्ति का प्रदर्शन प्राकृत अपभ्रंश काव्य में कर चुके थे। भक्ति काल में तुलसीदास दोहा की चपलगति, धारदार ताकत दिखा चुके थे। अतः बिहारी ने राजदरबारों में उक्ति चमत्कार, वचन वक्रता, अलंकरण और शृंगारिक चेष्टाओं की अभिव्यक्ति के लिए छोटा जैसे लघु छंद को ही चुना और उसकी शक्ति संभावनाओं से कविता को ख्याति दिलाई। बिहारी के सामने वाहवाही लूटने वाले फारसी उर्दू के शेर कहने वाले शायर थे– उनकी टक्कर दोहा छंद की चुस्त दुरुस्त गति से ही ली जा सकती थी।

दोहा या दूहा अपभ्रंश भाषा साहित्य का छंद है। "श्लोक" कहने से संस्कृत, गाथा कहने से प्राकृत का संकेत मिलता है– वैसे ही "दूहा" कहने से अपभ्रंश काव्य का बोध होता है। "दूहा" शब्द कैसे बना यह बताना कठिन है। विद्वान कहते हैं कि यह "दोधक" शब्द से बिगड़कर बना है। दोहा अर्धसम मात्रिक छंद है। इसके पहले और तीसरे, दूसरे और चौथे चरण में समान मात्राएं होती हैं। विषम चरण प्रथम तीसरे में 13, 13 तथा सम चरणों में दूसरे चौथे में 11, 11 मात्राएं रहती हैं। इसमें चार चरण होते हैं पर यह दो पंक्तियों में लिखा जाता है। अतः एक अनुमान के अनुसार दोहा दो पदों से बना होगा। यह भी हो सकता है कि प्राकृत की गाहा से दोआहा फिर "दोहा" बन गया हो। "दोहा" के लिए "दोहरा" शब्द भी मिलता है। पर यह छोटे ढांचे और सांचे का छद है। शृंगार के लिए भी बिहारी ने इस छंद को चुना। फिर दोहा को उलट देने से ही सोरठा बन जाता है।

बिहारी को ज्ञात है कि दोहा में कितनी ही बड़ी बातें लाघव से कहनी पड़तीं हैं। इस स्थिति के लिए भाव की कसावट और लाघव कला चाहिए। कवित्त सवैया बड़े छंद हैं। सोच-समझकर बिहारी ने दोहे की समास पद्धति को अपनाया। थोड़े शब्दों में वर्ण्य विषय रखने की कला का अभ्यास किया और सिद्धि हासिल की। दोहे के विषय में रहीम ने बड़ी पकड़ की बात कही है कि दोहा नट की भांति थोड़े स्थान में उछल कूद का कमाल दिखा देता है।

> दीरघ दोहा अरथ के आखर थोरे आहि।
> ज्यों रहीम नट कुंडली सिमिटि कूदि चलि जाहि।।

जैसे जौहरी आभूषण में रत्न जड़ता है वैसे ही दोहाकार दोहे में शब्द संगीत, अर्थ संगति बैठाकर अर्थ प्रकाश पैदा कर देता है। "बिहारी सतसई" रत्न जड़ित दोहों का समृद्ध रत्नागार है। यह उक्ति सटीक और सार्थक है कि बिहारी के छोटे आकार के दोहे अर्थ की गंभीर मार करते हैं–

> सतसैया के दोहरे, ज्यों नाविक के तीर।
> देखन को छोटे लगैं, घाव करें गंभीर।।

राजा जयसिंह उनकी रानी अनंत कुमारी और राजा के चतुर दरबारी, बिहारी के इन दोहों पर मंत्रमुग्ध रहे। बिहारी के दोहे की सारी शक्ति अर्थ और भाषा की व्यंजनागर्भित शक्ति में है। बिहारी दोहे में न तो मात्रा का दोष पैदा करते हैं, न लय तोड़ते हैं, न शब्दों की नाद सौंदर्य योजना ढीली होती है। आचार्यों ने इन्हें सराहना के प्रमाण पत्र दिए हैं, पर रसिकों ने इन दोहों को अपने हृदय में लिख लिया है।

अभ्यास 1

1) बिहारी के वियोग शृंगार की प्रमुख विशेषताएँ लगभग 10 पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) बिहारी के नीतिपरक दोहों में व्यक्त विचारों को अपने शब्दों में लिखिए

....

....

....

....

अभ्यास 2

1 बिहारी के छंद विधान पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

12.5 संदर्भ प्रसंग सहित व्याख्या

यहाँ पर "बिहारी सतसई" के कुछ दोहों को संदर्भ, प्रसंग, व्याख्या और विशेष के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है। ध्यान देने की बात यह है कि इन्हीं दोहों में से परीक्षा के लिए संदर्भ सहित व्याख्या पूछी जाएगी।

i) नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इहि काल।
अली, कली ही सौं बंध्यो, आगे कौन हवाल।।

संदर्भ :
यह दोहा "बिहारी सतसई" में से लिया गया है। इसके रचनाकार कविवर बिहारी लाल हैं।

प्रसंग :
बिहारी का यह इतिहास प्रसिद्ध दोहा है। यह माना जाता है कि बिहारी ने यह दोहा राजा जयसिंह के पास लिखकर भिजवाया था। राजा इस दोहे के भाव सौंदर्य से बहुत प्रभावित हुआ था और उसने नवोढ़ा रानी के विलास से अपने को सावधान कर लिया था। इसकी इस दोहे से आंखें खुल गई और उसने कवि को सम्मान सहित राज्याश्रम दिया। कवि ने अन्योक्ति अलंकार की सहायता से भ्रमर के प्रति कही गई उक्ति को नायक पर भी लागू किया है। क्योंकि राजा अपने सभी कर्त्तव्यों को भूलकर नवोढ़ा बाला नायिका के विलास में डूबा रहता था।

व्याख्या :
हे भ्रमर, यही तो अभी कली है। इसमें न तो अभी पुष्प का पराग है न मधुर रस है और न ही इसका अभी पूरी तरह विकास ही हुआ है। अभी से तू इस कली पर आसक्त होकर बंध गया है। आगे चलकर जब यह कली फूल बनेगी, तब तेरी आसक्ति का क्या हाल होगा?

विशेष :
इस दोहे में अन्योक्ति अलंकार का काव्य सौंदर्य है। जहाँ प्रस्तुत अर्थ प्रधान हो वहाँ अनयोक्ति अलंकार होता है।

बिहारी ने राजा को कोरा उपदेश न देकर काव्यात्मक शैली में अर्थ व्यंजना से उपदेश दिया है। उन्हें ध्यान है कि कविता मात्र उपदेश नहीं है, वह सामान्य कथन होकर विशेष कथन है। समर्थ कवि उपदेशक नहीं होता, वह तो अर्थ संकेत या भाव-भंगिमा से बात करने में निपुण होता है

बिहारी की काव्य भाषा (ब्रजभाषा) में अर्थ की गहरी कसावट है। प्रत्येक शब्द में एक विशेष अर्थ ध्वनि है। "हवाल" शब्द अरबी शब्द "हाल" का तद्भव बहुवचन है। मूल है– "अहवाल"। इस तरह के शब्द दरबारों में अरबी फारसी के प्रभाव से मौजूद थे और लोक भाषा में कुल मिलकर चल पड़े थे। इन शब्दों के प्रयोग से काव्य भाषा में विशेष रचनात्मकता पैदा हुई है।

"अली कली" में छेकानुप्रास है। "आगे कौन हवाल" में वक्रोक्ति है। "मधुर मधु" में यमक अलंकार है। "नहिं" शब्द की तीन बार आवृत्ति अर्थ के क्रमिक उत्कर्ष की द्योतक है। "बंध्यो" का अर्थ लक्षण शब्द शक्ति से लेना पड़ता है– अर्थात् हर समय उसके संयोग में रहना, क्षणभर भी उससे अलग न होना।

रस लोभी भ्रमर के बिंब से रस लोभी राजा की अंधी आसक्ति को प्रस्तुत किया गया है।

भोगवादी सामंतवाद की अंधी वासना पर यह एक इतिहास प्रसिद्ध काव्योक्ति है।

ii) मेरी भवबाधा हरौ, राधा-नागरि सोइ।
जा तन की झांई परैं, स्यामु हरित दुति होइ।।

प्रसंग :
यह सतसई का प्रथम दोहा है। इसको काव्यारंभ का मंगलाचरण समझना चाहिए। बिहारी ने इष्ट देवता के रूप में "राधा नागरी" की स्तुति की है।

व्याख्या :
इस दोहे का एक सीधा अर्थ यह है कि वही राधा नागरी मेरी सांसारिक बाधाओं को दूर करें जिनके शरीर की झांई या छाया पड़ने से (स्याम हरित) काले रंग के कृष्ण प्रसन्नचित्त हो जाते हैं। इस दोहे का दूसरा अर्थ यह है कि वही राधा नागरी मेरी सांसारिक भव बाधाओं का निवारण करें, जिनके शरीर मात्र का ध्यान करने से पाप नष्ट हो जाते हैं और मन में प्रकाश छा जाता है।

विशेष :
इस दोहे के भिन्न-भिन्न अर्थ किए जा सकते हैं। बिहारी की कला विदग्धता को देखते हुए, लीलापरक अर्थ भी किया गया है। लीलापरक अर्थ यह है कि वृंदावन में रास लीला करते हुए राधा कृष्ण जब एकत्र होते हैं–तो कृष्ण के शरीर की नीली झलक तथा राधा के शरीर की पीली कनक (छवि) की झलक मिलने से हरे रंग का आभास मिलता है। जिसे पाकर भक्तों के हृदय हरे भरे हो जाते हैं।

बिहारी के रंग ज्ञान का यह अनुपम उदाहरण है कि नीला तथा पीला रंग मिलाने से हरा रंग बन जाता है।

"झांई" "स्यामु" "हरित" पदों में श्लेष है।

इस समस्त दोहे में काव्यलिंग अलंकार है, क्योंकि समर्थनीय अर्थ का समर्थन हो रहा है।

"झांई" शब्द का अर्थ "छाया" "झलक" "कांति" आदि हैं। "हरित दुति" के दो अर्थ हैं– हरी द्युति से युक्त या हरी गई है द्युति जिसकी अर्थात् द्युतिहीन– दोनों परस्पर विरोधी अर्थ एक साथ निकलते हैं।

राधा बिहारी की इष्ट देवता हैं। वे ही बाधाहरण करतीं हैं। कवि ने कृष्ण से ज्यादा राधा को महत्व प्रदान किया है।

सूर की राधा "ग्वालिनि" थीं, परंतु बिहारी में आकर "राधा नागरि" या चतुर राधा हो गई हैं। यह सांस्कृतिक दृष्टि से सामंतवाद का प्रभाव है। कवि नागर संस्कृति का समर्थन करता है तथा गंवई संस्कृति का परिहास उड़ाता है।

"मेरी" तथा "हरौ" पर खड़ी बोली का प्रभाव है। ब्रजभाषा में "मेरी" के स्थान पर "मोरी" तथा "हरौ" के "हरहु" होगा।

राधा-कृष्ण के भक्ति और शृंगारी दोनों रूपों का बिंब इस दोहे का चमत्कारिक प्रयोग है।

iii) कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन में करत है, नैनन हीं सब बात।।

प्रसंग :
इस दोहे में परकीया नायिका का वर्णन है, जिससे गुरुजनों से नायक भरे भवन में भी प्रेम निवेदन करता है। लेकिन यहाँ तो नेत्रों के माध्यम से ही बातचीत हो सकती है। कवि इस नेत्र संवाद को चतुरता से संकेतित करता है। उसका मत है कि इस तरह के माहौल में नेत्रों की वाणी से ही संवाद किया जा सकता है। क्योंकि नेत्रों की भाषा तो वाणी से भी ज्यादा शक्तिशाली होती है।

व्याख्या :
इस दोहे में नेत्रों की चमत्कारिक क्रियाओं को एक साथ सम्बद्ध कर दिया गया है। नायिका-नायक से नेत्रों के माध्यम से जुड़ी है। नायक प्रेम निवेदन करता है नायिका मना (नटित) कर देती है। इस मना करने की अदा पर नायक और रीझ जाता है लेकिन गुरुजन परिजन की उपस्थिति होने के कारण नायिका नाराज हो जाती है। लेकिन कुछ देर बाद दोनों के नेत्र आपस में मिल जाते हैं एवं मिलकर खिल उठते हैं। अंत में इस शंका से कोई अन्य देख तो नहीं रहा दोनों के नेत्र लज्जित हो जाते हैं।

विशेष :
आलोचकों ने इस दोहे में सात क्रियाओं के द्वारा संवाद कला की प्रशंसा की है।

एक विचार यह भी है कि इस दोहे में परकीया नायिका का वर्णन न होकर किसी नवदम्पति का वर्णन है।

यह दोहा पतनशील रीतिकालीन वृत्ति का सटीक उदाहरण प्रस्तुत करता है।

iv) तजि तीरथ, हरि राधिका तन दुति करि अनुरागु।
जिहि ब्रज केलि निकुंज मग, पग-पग होतु प्रयोगु।।

प्रसंग :
भक्ति तथा शृंगार दो विरोधी दिखाई पड़ने पर भी विरोधी नहीं हैं। बिहारी की भक्ति "राधा नागरी" की भक्ति है और शृंगार राधा कृष्ण की युगल उपासना से प्रेरित है। उनके जीवन का चरम लक्ष्य है राधा कृष्ण की लीलाओं का गान। इस मधुर लीलामृत के लिए ही बिहारी शृंगार के बहाने समर्पित है। उनका चिंतन परंपरावादी मर्यादावादी धार्मिकता की उपेक्षा करता है। वे ज्ञान मार्ग और उपासना मार्ग दोनों की ही उपेक्षा का और तुच्छता का संदेश देते हैं।

व्याख्या :
इस दोहे में वे साफ कहते हैं कि उपासना के मार्ग में सहायक तीर्थों में भटकना छोड़ दो और राधा कृष्ण की युगल छबि के सौंदर्य में मग्न रहो। इस युगल ने ब्रज की निकुंजों की ओर जाते हुए जहां-जहां अपने चरण रखे वहां-वहां तीर्थराज (प्रयाग) बन गए। उस रजन रज की महिमा यज्ञस्थली प्रयाग से बढ़कर है।

विशेष :
रीतिकालीन श्रृंगार की दृष्टि को समझने के लिए यह दोहा उस जीवन दर्शन का मूलाधार प्रस्तुत करता है।

v) अधर धरत हरि कैं, परत ओठ-डीठि पर जोति।
हरित बांस की बांसुरी, इंद्रधनुष रंग होति।।

प्रसंग :
श्रीकृष्ण की सर्वाधिक आकर्षक मुद्रा त्रिभंगीमुद्रा है। बिहारी ने इसी मुद्रा का इस दोहे में वर्णन किया है। वंशी वादन करते हुए श्री कृष्ण की इस मुद्रा पर कवि का चित्र अनुरक्त रहा है। बिहारी कहते हैं कि यह रंग-बिरंगी आभा लोकचित्त को मुग्ध कर लेती है।

व्याख्या :
जिस समय श्री कृष्ण अधर पर मुरली रखकर बजाने को प्रस्तुत होते हैं, उस समय की अद्भुत छबि इंद्रधनुष के रंगों की भांति रंग-बिरंगी आभा बिखेर देती है। इस आभा में वंशी का हरा रंग,

कर देते हैं।

विशेष :

क) इंद्रधनुष के सात रंग माने जाते हैं। किंतु यहाँ चार रंगों का ही वर्णन है। इस हेतु की दो व्याख्याएं हैं। (1) इन चार रंगों के मेल से अन्य तीन रंग भी सहज ही झलक उठते हैं। (2) इंद्रधनुष से रंग-बिरंगी छबि का अर्थ लेना अधिक सार्थक प्रतीत होता है।

ख) निचले ओठ को अधर तथा ऊपर के ओठ को "ओष्ठ" कहते हैं। अधर शब्द का एक अर्थ आकाश भी है। इस दृष्टि से इंद्रधनुष ओठ (आकाश) पर सौंदर्य बिखेरता है।

ग) पूरे दोहे में तद्गुण अलंकार हैं।

घ) "होति" क्रिया स्त्रीलिंग में है। अर्थ का अन्वय होगा– "बांसुरी इंद्रधनुष रंग होति।" स्पष्ट है कि यह वंशी की रंग-बिरंगी आभा का वर्णन है। मुरली, कृष्ण की नाद शक्ति है। किंतु यह कथन सखी का नायिका के प्रति माना जा सकता है। वर्ण्य विषय कृष्ण नहीं है, वंशी है।

vi) उड़त गुड़ी लखि लाल की, अंगना अंगना मांह।
बौरी सी दौरी फिरति छुवति छबी ली छांह।।

गुड़ी-पतंग, लखि-देखकर, लाल-प्रिय, अंगना-स्त्री घर का आंगन, बौरी-पागल, दौरी-भागती हुई, छुवंति-स्पर्श।

प्रसंग :

अल्हड़ किशोरी पड़ोस के युवक से प्रेम करने लगी है। वह अवसर पाकर कभी-कभार नायक से नेत्र संवाद तथा चित्र चाह का आनंद भी ले लेती है। एक दिन उसका प्रिय पतंग उड़ा रहा था। उसकी पतंग की छाया नायिका के आंगन में पड़ रही थी। उस पतंग की छाया को देखकर नायिका इतने प्रेमावेश में आ गई कि वह पतंग की छाया के स्पर्श से ही रोमांचित होने लगी। यहाँ पर एक सखी किसी अन्य सखी से नायिका के उन्माद और आसक्ति का वर्णन कर रही है।

व्याख्या :

नायक की पतंग नायिका के घर के ऊपर उड़ रही थी और उस पतंग की छाया नायिका के आंगन में पड़ने लगी। उस छाया को देखकर वह छबीली नायिका मानो पागल हो गई। उस छाया को छूने के लिए वह छाया के पीछे पागलों सी भागती रही। उसे लगता था कि मानो छाया का स्पर्श कर लेगी तो वह नायक के स्पर्श के समान ही सुखकर होगा।

विशेष :

यहाँ नायिका ने नायक के दर्शन का आनंद तो पाया है, किंतु स्पर्श सुख से वह वंचित रही है।

इस दोहे में उन्माद दशा (विरह की एक दशा विशेष) का बंब है– जिसे चपलता और पागलपन के संचारी भावों ने अनुभूति की ईमानदारी में ढाला है।

"आंगना" पद की दो बार आवृत्ति से यमक अलंकार है। "बौरी सी दौरी फिरति" में उपमा तथा "छुवत छबीली छांह" में अनुप्रास अलंकार है।

रीतिकाल के विलासी वातावरण में पतंग उड़ाना, कबूतर पालना, बटेर लड़ाना निठल्ले सामंत किशोरों का प्रिय व्यसन था। इस युग में काव्यशास्त्र, का अभ्यास समाप्त होता जा रहा था। इस प्रकार यह दोहा उस पतनशील परिवेश पर कवि की बड़ी सार्थक टिप्पणी है।

vii) नभ लाली, चाली निशा, चटकाली धुनि कीन।
रति पाली, आली अनत, आए वनमाली न।।

प्रसंग :

अपने प्रिय की स्वकीया नायिका रात्रिभर प्रतीक्षा करती रही। उसकी एक अंतरंग सखी उसे बराबर ढांढ़स बंधाती रही कि उसका प्रिय अवश्य ही आयेगा। उसे किसी अन्य कार्य के कारण देर हो गई होगी। पर जैसे-जैसे रात बीत रही है नायिका की निराशा बढ़ रही है। आखिरकार प्रतीक्षा व्यर्थ गई। रात का अंतिम प्रहर बीत गया और आकाश में लाली दिखाई देने लगी। व्यथित नायिका ने अपने पति-प्रेमी नायक की व्यभिचारवृत्ति को समझते हुए अपनी सखी से व्यथित भाव से कहा–

व्याख्या :

प्रतीक्षातुर द्वार पर एकदम दृष्टि लगी रहने के बाद मुझे ज्ञात हो गया कि अब रात बीत गई है।

क्योंकि दूर आकाश में लालिमा दौड़ने लगी है और कलियां चटक कर खिलने लगी हैं। पौ फट गई है—सबेरा हो गया है। पक्षी भी उड़कर सबरे की सूचना दे उठे हैं। हे सखी, मेरा अनुमान अब सच में बदल गया है कि मेरे प्रिय ने आज रात किसी अन्य स्त्री के साथ बिताई है। यही कारण है कि वह अभी तक नहीं अया है।

viii) औंधाई सीसी, सुलखि बिरह-बरनि बिललात।
बीचहि सूखि गुलाबु गौ, छीटों छुई न गात।।

औंधाई-उलट दी, उड़ेल दी। सीसी-बोतल। सु-उसकी। बरनि-जलना। बिललत-कातर स्वर में बोलना, विलाप करना। छींटी-बूंद। गात-शरीर।

प्रसंग :
नायिका के विरह का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कह रही है या नायिका के विरह का वर्णन एक सखी कठोर हृदय नायक से कर रही है। नायिका के विरह वर्णन की व्यथा से वह नायक के मन में संवेदनशीलता पैदा करना चाहती है। इसलिए वह कहती है कि विरह में नायिका जलकर मरी जा रही है।

व्याख्या :
अपनी सखी को विरह की आग में जलते तड़पते और कातर स्वर में बोलते देखकर हमने उसके रोग का निवारण सोचा और उसके शरीर का ताप शांत करने के लिए गुलाबजल की पूरी बोतल उंडेल दी। परंतु विरह के आग की लपट इतनी तेज थी कि गुलाब जल का एक भी बूंद उसके शरीर के पास तक पहुंचा ही नहीं और बीच में ही भाप बनकर उड़ गया।

विशेष :
फारसी प्रेम पद्धति के प्रभाव से यह विरह का ऊहात्मक वर्णन (अतिश्योक्तिपूर्ण चमत्कारिक) है। बिहारी का काव्य इस प्रकार की ऊहात्मक उक्तियों के चमत्कार से भरा पड़ा है। इस प्रकार की ऊहात्मक उक्तियों का पाठक पर कोई गहरा प्रभाव नहीं पड़ता, उसका मनोविनोद मात्र होता है। नतीजा यह है कि इस प्रकार की उक्तियों को लेकर आ. रामचंद्र शुक्ल ने बिहारी की मजाक बनाई है और ऐसे दोहों को खोजकर कहा है कि ये मात्र मनोरंजन है कला की लोक शक्ति इनमें नहीं है। बिहारी के ऐसे ही कुछ दोहे हैं-जिनमें विरह पीड़ित नायिका पैण्डलुम बन गई है—जैसे

इत आवति चलि, जाति उत चली छ सातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहै, लगी उसासनु साथ।।

यह दोहा रीतिकालीन झूठे चमत्कारवाद और कलावाद का भी सटीक चित्र प्रस्तुत करता है।

ix) कौन भांति रहि है बिरदु अब देखिबी मुरारि।
बींधे मोसों आइ कै, गीधे गीधहि तारि।।

प्रसंग :
बिहारी ने भक्तकालीन कवियों की भांति उसी भाव परम्परा के बहुत से दोहे लिखे हैं। विद्वानों का विचार है कि बिहारी दरबारी प्रभाव में विवश होकर श्रृंगारी कविता लिखते अवश्य थे—पर उनका मन भक्ति में ही रमता था। इस बात को इस तरह से भी कहा जा सकता है कि अपने अपराध बोध से पीड़ित बिहारी का मन भगवान की शरण खोजता रहा है। भक्त भगवान से प्रेम में हठ कर बैठता है, यही हालत यहां बिहारी की है वे भगवान के विरुद्ध चुनौती देकर अपने उद्धार के लिए उकसाते हैं।

व्याख्या :
हे कृष्ण! तुमने पतितों का उद्धार कर बड़ा यश कमाया है और तुम पतित पावन कहलाने लगे हो। मैं देखता हूं कि अब तुम इस बार कैसे बचा पाते हो। मैं तुम्हारे समस्त यश को कलंकित कर दूंगा क्योंकि मुझ जैसे पापी का उद्धार नहीं कर पाओगे। एक बार एक गिद्ध संपाति को तारकर तुम्हें तारने का लालच लग गया है। इस झोक में भगवान तुम मुझे तारने का काम ले बैठे पर न तो मुझे तार ही सकोगे और न अपना यश ही बचा पाओगे।

विशेष :
"सूरसागर" में सूरदास ने इस दोहे के भावों से मिलते-जुलते अनेक पद प्रसंग वश दिए हैं। सूरदास बार-बार कहते हैं—कै प्रभु हरि मानि कै बैठो कै करौ विरुद्ध सही।"

मुरा नामक शत्रु का वध करने के कारण कृष्ण का एक नाम कृष्णावतार की कथाओं में "मुरारी" मिलता है।

गिद्ध संपाति गिद्ध जटायु का भाई था– जिसका उद्धार राम ने रामावतार की कथा में किया था।

बिहारी ने राम और कृष्ण में कोई भेद नहीं किया है। यहाँ उनका संकेत विष्णु से है।

बिहारी की ब्रजभाषा ने अपनी सर्जनात्मकता का विस्तार करने के लिए देशी विदेशी शब्दों को खुलकर ग्रहण किया हैं। इस दोहे में सीधे-बीधे-कन्नौजी-बुंदेलखंडी के प्रयोग हैं।

चुनौती देते भक्त का बिंब इस दोहे का सौंदर्य है। दोहे की अर्थ-ध्वनि में बिहारी का अवचेतन मन झांक रहा है।

अभ्यास 3

1 निम्नलिखित दोहों की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।

i) अजौं तर्‌यौना ही रहयो, श्रुति सेवत इक रंग।
नाक-बांस बेसरि लहयौ, बसि मुकुतनु के संग।।

संकेत : अजौं-अब भी। तर्‌यौना-ठोस सोने का बना एक आभूषण जो कान में पहिना जाता है। नाक-स्वर्ग। बास-निवास। श्रुति-सेवत-वेदों की साधना-सेवा, कानों की सेवा। इकरंग-निरंतर साधना या तप। मुकतन-मुक्त पुरुष, संत, भक्त, परमहंस। संग-संगीत। बेसरि-नाक में पहनने वाला आभूषण मोतियों वाली बारी। तर्‌योना पर-शब्दश्लेष हैं एक अर्थ कान का आभूषण, दूसरा अर्थ-तर्‌योना-तर नहीं सका या उद्धार नहीं।

संदर्भ :

....

प्रसंग :

....

व्याख्या :

....

ii लसतु सेतवारी ढय्‌यो, तरल तर्‌यौना कान।
परयो मनौ सुरसारि सलिल, रवि, प्रतिबिंब बिरान।।

संदर्भ :

....

प्रसंग :

....

व्याख्या :

....

12.6 सारांश

बिहारी रीतिकाव्य परंपरा के प्रतिनिधि कवि हैं तथा रीतिसिद्ध कवियों में उनका स्थान सर्वोपरि है। उनकी सतसई के काव्य सौंदर्य से स्पष्ट है कि इतनी कम रचना करके इतना अधिक सम्मान पाने वाला हिंदी में उस युग का कोई दूसरा कवि नहीं है। बिहारी की सतसई ने इतना अधिक आदर प्राप्त किया कि पीछे से उनके अनुकरण की परंपरा ही चल पड़ी। भाव एवं भाषा दोनों ही क्षेत्रों में उनका रचनानुभव परवर्ती सतसई परंपरा की मुक्तक शृंगार धारा में एक प्रतिमान ही बन गया। राज दरबारी काव्य-परंपरा में सामंत वर्ग का प्रभुत्व रचना को किस प्रकार की विकृत शृंगारिकता की ओर धकेल कर ले गया। बिहारी का रचना कर्म इसका साक्षी है।

बिहारी के रचना कर्म का प्रत्येक दोहा अपनी अर्थगत रमणीयता, भाव-उक्ति वक्रता तथा काव्यानुभव में विशिष्ट है। उनमें भाव की पुनरावृत्ति नहीं है। और न दोहे की अर्थ सौंदर्य गत स्वच्छंदता ही बाधित है। शृंगारी मुक्तक काव्य परंपरा की लगभग सभी विशिष्टताएँ एवं प्रवृत्तियाँ बिहारी की संवेदना में केंद्रित दृष्टिगत होती हैं। मुक्तक काव्य के कलेवर भाव-भाषा-शैली की ऐसी अचूक पकड़ और पहुंच बिहारी के पास है कि उनका कवि कर्म

कलात्मकता का अक्षय भंडार दिखाई देता है। रीतिशास्त्र के गहन अध्ययन के बाद बिहारी ने दरबारी काव्य रुचि के अनुकूल नायक नायिका भेद, भाव-भेद, रसभेद, ध्वनि, उक्ति वैदग्ध, शब्द-प्रयोग का चमत्कार आदि पर ऐसा अधिकार किया कि ब्रजभाषा काव्य की शक्ति का बड़ा भारी विकास हुआ है। बिहारी के काव्य की चित्रमयता और शब्द चुनाव क्षमता आज भी हमारे लिए विशेष महत्व रखती है। अपने युग की संपूर्ण मानसिकता को प्रस्तुत करने वाले कवियों में बिहारी का नाम उल्लेखनीय है।

12.7 शब्दावली

अनुभाव : आश्रय के शारीरिक विकारों या सहजात भावों को अनुभाव कहते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं– (1) यत्नज अनुभाव (2) अयत्नज अनुभाव।

अलंकार : काव्य की शोभा में वृद्धि करने के लिए अलंकार का प्रयोग होता है। अलंकार शोभा की वृद्धि तो कर सकते हैं, पर उसका निर्माण नहीं कर सकते हैं।

दोहा : मात्रिक छंद है। इसके चार चरण होते हैं। प्रथम तथा तीसरे चरण में, 13, 13 तथा दूसरे और चौथे चरण में 11, 11 मात्राएं होती हैं।

बिंब : भावचित्र। इंद्रियों से संबंधित वस्तु, दृश्य, भाव, स्थिति, मनोदशा का मूर्तरूप। अमूर्त भाव या व्यापार को बिंब मूर्त रूप में पाठक के साथ लाता है।

शृंगार : इसे रसराज, रस नायक भी कहा जाता है। इसका स्थायी भाव रति है तथा नायक-नायिका आलंबन, उद्दीपन। शृंगार के दो भेद हैं- संयोग शृंगार तथा वियोग शृंगार।

काव्य भाषा : बोलचाल की भाषा में कवि अपने भावों विचारों के संयोग से जिस रचनात्मकता या काव्यात्मकता को जन्म देता है तो वह "काव्य भाषा" बन जाती है।

12.8 उपयोगी पुस्तकें

मिश्र-विश्वनाथ प्रसाद : *बिहारी की वाग्विभूति वाणी,* वितान प्रकाशन, ब्रह्मनाल, वाराणसी।

त्रिपाठी डॉ. राम सागर : *मुक्तक परंपरा और बिहारी,* अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली।

डॉ. नगेन्द्र : *रीतिकाव्य की भूमिका,* नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली

डॉ. बच्चन सिंह : *बिहारी काव्य का नया मूल्यांकन,* हिंदी प्रचारक संस्थान, वाराणसी।

चतुर्वेदी डॉ. रामस्वरूप : *मध्यकालीन काव्य-भाषा,* लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

शुक्ल रामचंद्र : *हिंदी साहित्य का इतिहास,* काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

12.9 अभ्यास और बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 i) बिहारी सतसई

ii) रीतिसिद्ध

iii) शृंगार

2 i) गाथा सप्तशती

3 समाहार शक्ति, समास शक्ति

बोध प्रश्न 2

4 i) शृंगारिकता

ii) क) पूर्वराग, ख) मान, ग) प्रवास, घ) करुणा,

iii) वैद्यक, गणित, ज्योतिष

बोध प्रश्न 3

5 i) दोहा

6 i) थोड़े शब्दों में भावों की सूक्ष्मता को व्यक्त करने की क्षमता।
ii) संपूर्ण प्रसंग का चित्रण करने की क्षमता।

7 ब्रजभाषा को काव्य का माध्यम बनाया, तथा ब्रजभाषा के स्थानीय, ठेठ देशज शब्दों मुहावरों का प्रयोग किया।

भाषा में नाद-सौंदर्य और चमत्कार निर्माण करने वाले शब्दों का चयन किया।

अभ्यासों के उत्तर

1 बिहारी ने वियोग शृंगार में मानव मन की सूक्ष्म दशाओं का सजीव चित्रण किया है। विरह की विभिन्न दशाओं के अंतर्गत बिहारी ने मुख्यतः व्याधि, मरण, जड़ता का वर्णन अधिक किया है। बिहारी की नायिकाएँ वियोग में इतनी दुर्बल हो गई हैं कि उन्हें देखने के लिए प्रत्यक्ष मृत्यु को चश्मा लगाना पड़ता है, वह साँस लेने पर सात हाथ आगे जाती है, साँस छोड़ने पर सात हाथ पीछे जाती है। बिहारी ने व्याधि कम अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है। वियोग शृंगार पर सूफ़ी काल वियोग और फ़ारसी परंपरा के विरह का प्रभाव है।

2 बिहारी ने नीतिपरक दोहों में जीवन को एक निश्चित दिशा देने की बात कही है। मानव की विभिन्न स्वभाव विशेषताओं का वर्णन भी किया है। मनुष्य स्वर्ण अथवा धन का लालच कभी न करें क्योंकि उससे मनुष्य का नाश हो सकता है। कुसंगति से बचने को भी बिहारी कहते हैं। बिहारी के नीतिपरक दोहों में व्यक्त विचार लोकानुभाव पर आधारित है। बिहारी केवल नीति की शुष्क बातें नहीं कहते बल्कि नीति को कौशल से नया भाव-रूप देकर प्रस्तुत करते हैं। केवल तथ्यों का कथन करना ही उनका उद्देश्य नहीं था– अच्छी कविता लिखना भी उनका उद्देश्य था।

3 बिहारी ने दरबारी परंपरा के अनुकूल अपनी कविता के लिए दोहा छंद को चुना है। दोहा छंद अपभ्रंश भाषा का छंद है। दोहे में बहुत बड़ी बात को संक्षेप में करना होता है। इसलिए कवि की काव्य कुशलता और विद्वत्ता का इसमें बड़ा योगदान है। थोड़े शब्दों में एक संपूर्ण प्रसंग का चित्रण केवल सिद्धहस्त कवि ही कर सकता है। बिहारी के छोटे आकार के दोहों में गंभीर और सार्थक अर्थ भरा है। बिहारी के दोहे चमत्कारपूर्ण उक्तियों द्वारा संपूर्ण प्रसंग को चित्रित करने की क्षमता रखते हैं।

इकाई 13 रीतिमुक्त काव्य : घनानंद

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 घनानंद : जीवन परिचय तथा रचनाएँ
13.3 भावपक्ष
- 13.3.1 घनानंद का प्रेम निरूपण
- 13.3.2 घनानंद का शृंगार वर्णन
- 13.3.3 रूप सौंदर्य का वर्णन
- 13.3.4 घनानंद की भक्ति भावना

13.4 अभिव्यंजना पक्ष
- 13.4.1 काव्य भाषा
- 13.4.2 छंद और अलंकार

13.5 संदर्भ सहित व्याख्या
13.6 मूल्यांकन
13.7 सारांश
13.8 शब्दावली
13.9 उपयोगी पुस्तकें
13.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

इससे पिछली इकाई में आपने रीतिबद्ध कवि विहारी का अध्ययन किया है। इस इकाई में आप रीतिमुक्त कवि घनानंद का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- घनानंद के पठित काव्य का अर्थ कर सकेंगे,
- घनानंद के काव्य की विशेषताएँ बता सकेंगे,
- रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवि के रूप में घनानंद के महत्व को समझा सकेंगे,
- रीतिबद्ध कवियों के कृत्रिम शृंगार का वर्णन और घनानंद की स्वानुभूत प्रेमाभिव्यक्ति में अंतर कर सकेंगे, और
- घनानंद के काव्य के शिल्प.पक्ष की विशेषताएँ बता सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के उत्तर मध्यकाल को ही रीतिकाल (1658 ई. से 1857 ई. तक) कहा जाता है। रीतिकाल के बारे में आप यह जान ही चुके हैं कि इस युग का समाज सामंती था और साहित्य एवं कला लोकजन से कट कर दरबारों और दरबारी आश्रयदाताओं के संरक्षण में पल रही थी। अतः कवियों को भी अपने आश्रयदाताओं की रुचि के अनुसार ही ऐसा काव्य रचना पड़ता था जो उन आश्रयदाताओं के समृद्ध और भोग विलास के जीवन में आनंद भर सके।

इस युग में जो काव्य रचा गया, उसे रीतिकाव्य कहा गया। रीतिकाव्य का अर्थ है ऐसा काव्य जो संस्कृत काव्य शास्त्र के लक्षणों-अलंकार, रस, गुण, ध्वनि, नायक-नायिका भेद आदि के आधार पर रचा गया हो। इस युग में इन काव्य शास्त्रीय लक्षणों के आधार पर काव्य लिखने की जो रीति चली, उसी के आधार पर इस काव्य को रीतिकाव्य कहा गया। रीतिकाल में केवल रीतिकाव्य का सृजन नहीं हुआ है—बल्कि इस युग में ऐसा काव्य भी रचा गया, जो रूढ़ि-विरोधी, स्वच्छंद प्रवृत्ति प्रधान रीतिमुक्त काव्य है। रीतिकाव्य लक्षणबद्ध और लक्षण उदाहरणबद्ध काव्य है किंतु रीतिमुक्त काव्यशास्त्र की आयास जड़ लीकों का सीधा निषेध है। बोधा, आलम, रसखान, घनानंद, ठाकुर आदि इस काल के ऐसे बहुत से कवि हैं जो संस्कृत काव्यशास्त्र की शास्त्रीय परंपराओं के खिलाफ़ विद्रोह कर सकते हैं। फलतः रीतिवाद के खिलाफ विद्रोह और लोक जागरण परंपरा की इनमें स्पष्ट स्वीकृति मिलती है। जैसे यूरोप में शास्त्रवाद के खिलाफ स्वच्छंदतावाद का विरोध लगातार जारी रहा है। रीतियुग के इन कवियों में जहां एक ओर शास्त्र का विरोध था

वहां दूसरी ओर सामाजिक रूढ़ियों और जड़ मर्यादाओं के प्रति विद्रोह की भावना भी प्रबल थी। धर्मगत, आधारगत रूढ़ियों को तोड़ कर यह रीतिमुक्त धारा "सेक्यूलर रूप में उभरती है और स्वच्छंद प्रेम का मार्ग ग्रहण करती है"। इस युग का नीति काव्य, वीर काव्य तथा भक्ति काव्य भी रीतिमुक्त काव्य ही रहा है क्योंकि इसमें शास्त्रीय रूढ़ियों का सीधा निषेध है।

रीतिमुक्त कवियों ने प्रेम को ही अपना विषय बनाया था और प्रेम में ही शृंगार को भी समाहित कर लिया था। रीतिमुक्त कवियों ने प्रबंध और मुक्तक शैली को खुल कर अपनाया। इनकी प्रबंध काव्य शैली पर सूफी प्रेमाख्यानक परंपरा की छाप है तो मुक्तक शैली पर कवित्त, सवैया, कुंडलिया शैली का प्रभाव है। इन रीतिमुक्त कवियों ने काव्यानुभूति में स्वच्छंद और उदात्त, ललित और संवेदनात्मक रूप वर्णन सौंदर्य और आत्मपरक को विशेष बल देकर प्रस्तुत किया। घनानंद, बोधा और ठाकुर रीतिमुक्त काव्य परंपरा के ऐसे प्रतिनिधि कवि हैं जिनमें स्वच्छंद कल्पना का सौंदर्यवाद चरम शिखर पर पहुंचता दृष्टिगत होता है। कहना न होगा कि घनानंद रीतिमुक्त काव्य प्रवृत्तियों के संपूर्ण रूप में प्रतिनिधि रचनाकार हैं।

संक्षेप में रीतिकाल के अंतर्गत तीन प्रकार की रचनाएँ हुईं। रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध तथा रीतिमुक्त। रीतिबद्ध कवि संस्कृत काव्य शास्त्र के लक्षणों की रचना किया करते थे और रीतिसिद्ध कवि संस्कृत काव्य, शास्त्र के लक्षणों के आधार पर काव्य रचते थे। तीसरे प्रकार के कवि, जिन्हें रीतिमुक्त कवि कहा जाता है इस रीतिपरंपरा के विरोध में खड़े दिखाई देते हैं। इन्होंने काव्य की शास्त्रीय या पारंपरिक पद्धति को नहीं अपनाया और अनुभूति और भावना को आधार बना कर स्वच्छंद रूप से काव्य रचना की। इन कवियों का ध्यान रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों की तरह न तो अपने आश्रयदाताओं की रुचि के अनुसार रचना करने की ओर था और न ही संस्कृत काव्य शास्त्र के लक्षणों की ओर। घनानंद इसी रीतिमुक्त स्वच्छंद काव्यधारा के ऐसे प्रतिनिधि कवि हैं, जिन्होंने स्वानुभूत प्रेम की अभिव्यक्ति को ही काव्य रचना के रूप में प्रस्तुत किया।

13.2 घनानंद : जीवन परिचय तथा रचनाएँ

रीतिकाल के कवियों में घनानंद साक्षात रसमूर्ति एवं रसावतार माने जाते हैं किंतु उनके जीवन की प्रामाणिक जानकारी आज उपलब्ध नहीं है। अतः उनके जीवन वृत्त पर किवदंतियों तथा उनके समकालीन रचनाकारों की कृत्तियों में उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर ही विचार किया जा सकता है।

1) अनुमान के आधार पर कहा जा सकता है कि उनका जन्म ब्रज प्रदेश के बुलंदशहर में सन् 1689 ई. में हुआ था।

2) वे जाति के कायस्थ थे और उन्होंने बचपन से ही फारसी साहित्य का गंभीरता से अध्ययन किया था।

3) ऐतिहासिक प्रमाणों का साक्ष्य न मिलने पर भी इन्हें दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह का मीर मुंशी माना गया है। किसी-किसी हिंदी साहित्य के इतिहासकार ने भ्रमवश इन्हें बहादुरशाह का मीर मुंशी भी कहा है। मुहम्मदशाह को कभी-कभार मुहम्मदशाह रंगीले भी कहा गया है, किंतु इस मत का कोई आधार नहीं है। विद्वानों ने प्रायः यही माना है कि मुहम्मदशाह दिल्ली के दरबार में वे मीर मुंशी थे।

4) प्रकृति से वे बड़े प्रेमी जीव थे और सुजान नामक किसी वेश्या सुंदरी से प्रेम करते थे। किंवदंती है कि एक दिन शाही दरबार में 'कुछ कुचकियों' ने कहा कि मीर मुंशी गाते बहुत अच्छा हैं। बादशाह से उन्होंने टालमटोल की। इस पर लोगों ने कहा कि ये सुजान के कहने पर ही गाएंगे। सुजान के कहने पर घनानंद ने बादशाह की तरफ पीठ और सुजान की ओर मुंह करके ध्रुपद गाया। बादशाह गाने पर प्रसन्न और बेअदबी से नाराज हो गया। उसने इन्हें दंड रूप में शहर से निकाल दिया। घनानंद ने सुजान से भी साथ चलने को कहा पर उसने इंकार कर दिया। निराश होकर वे वृंदावन चले गये।

5) इनकी प्रेमिका का नाम सुजान था– यह भी किंवदंती ही है। निश्चित प्रमाण के अभाव में कुछ नहीं कहा जा सकता। फिर विशेष बात यह है कि प्रेम और प्रेमिका की कथाएँ लगभग सभी रीतिमुक्त कवियों के नाम से प्रसिद्ध हैं। बोधा, ठाकुर आलम की प्रेमिका प्रेमासक्ति की कथाएँ अनेक हैं। घनानंद ने अपने कवित्त, सवैयों में "सुजान" का प्रयोग किया है। पर कह नहीं सकते कि यह "सुजान" कौन थी। कभी तो "सुजान" शब्द प्रेमिका के लिए, कभी कृष्ण

के लिए, कभी राधा के लिए, कभी राधा-कृष्ण दोनों के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। कभी "सुजान" को ज्ञानी के अर्थ से जोड़ कर भी रचा गया है। पर लोक विश्वास यही है कि सुजान घनानंद की प्रेमिका थी और वही काव्य प्रेरक भी कही जा सकती है।

6) घनानंद वृंदावन जा कर निंबार्क संप्रदाय में दीक्षित हो गये और इसी संप्रदाय के सखी भाव में तन्मय रहने लगे। अब भी यह लोकमत प्रसिद्ध है कि–

घनानंद की कथा अनेका, ब्रज में विदित उहै सविवेका।
घनानंद के विपुल कविता, अबलो हरन कविन के चिंता।

7) यह कवि गायन-वादन में प्रवीण था तथा रासलीला के प्रति विशेष झुकाव रखता था। वे रासलीला करते भी थे तथा उनके पद रासधारी लीलाओं पर गाते थे। चाचा वृंदावन दास ने रासलीला प्रसंग में यह चर्चा स्पष्टता से की है।

8) रसखान की भाँति ही इन्हें ब्रजपति (कृष्ण) ब्रजरानी (राधा), ब्रजभूमि; ब्रजरस और ब्रजरस में प्रगाढ़ अनुराग था।

9) स्वभाव से प्रेमी और संत महात्मा थे। तत्कालीन संत नागरीदास तथा नाथ संतों में इनका बड़ा आदर था।

10) इनके नाम पर भी विवाद है कि घनआनंद या आनंदघन या घनानंद। कवि ने स्वय अपने नाम के विविध रूपों का प्रयोग किया है। कभी-कभी स्वयं ही पर्याय दिये हैं यथा– आनंदघन, आनंदपयोद, आनंदकंद, सच्चिदानंदघन, आनंद अमृतकंद आदि शब्द उनकी कविता में प्रायः प्रयुक्त हुए हैं। घनानंद शब्द अपने शुद्ध रूप में कहीं नहीं आया है, प्रायः आनंदघन या घनआनंद शब्द का ही प्रयोग हुआ है। किंतु इधर हिंदी साहित्य में घनानंद और आनंदघन नाम ही अधिक प्रचलित हो गये हैं।

11) यह अनुमान भी लगाया गया है कि नादिरशाह के ही सेना के सिपाहियों ने इनका सन् 1739 ई में मथुरा में वध कर दिया। यथा–

नादिरशाही ब्रज रज मिले नेकु उच्चार मन।
हरि भक्ति बेलि सिंचन करी घनआनंद आनंदघन।।

इस कथन से जाहिर है कि वे प्रेमी कवि से जीवन के अंतिम दिनों में भक्त कवि हो गये थे। पर सुजान का प्रेम इनके जीवन की साधना बना रहा है–

प्यारे मीत सुजान जान सों नेह लगायो।
लगन बान तें बिंध्यो विरह रस मंत्र जगायो।।

रचनाएँ

घनानंद की कुल कितनी रचनाएँ हैं, इस पर सभी विद्वान एकमत नहीं हैं। फिर भी आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपनी खोजबीन एवं प्रयास के बाद, इन की कृतियों की प्रमाणिकता को ध्यान में रखते हुए घनानंद ग्रंथावली का संपादन किया है, जिसमें घनानंद की 39 कृतियाँ संकलित हैं।

इन कृतियों के नाम इस प्रकार हैं :

1	सुजानहित	12	रंग बधाई
2	कृपाकंद	13	प्रेम पद्धति
3	वियोगबेलि	14	वृषभानुपुर सुषमा वर्णन
4	इश्क लता	15	गोकुल गीत
5	यमुना यश	16	नाम माधुरी
6	प्रीति पावस	17	गिरिपूजन
7	प्रेम पत्रिका	18	विचार सार
8	प्रेम सरोवर	19	दान घटा
9	ब्रज विलास	20	भावना प्रकाश
10	सरस वसंत	21	कृष्ण कौमुदी
11	अनुभव चंद्रिका	22	धाम चमत्कार

23 प्रिया प्रसाद
24 वृंदावन मुद्रा
25 ब्रज स्वरूप
26 गोकुल चरित्र
27 प्रेम पहेली
28 रसना यश
29 गोकुल विनोद
30 ब्रज प्रसाद
31 मुरलिका मोद
32 मनोरथ मंजरी
33 छन्दास्टक
34 त्रिभंगी
35 परमहंस वंशावली
36 ब्रज व्यवहार
37 गिरिगाथा
38 पदावली
39 प्रकीर्णक (स्फुट)

घनानंद की इस रचना सूचि का भी एक इतिहास है जिसमें संक्षेप में परिचित होना आवश्यक है। सर्वप्रथम घनानंद की विलुप्त बिखरी हुई रचनाओं का उद्धार भारतेंदु बाबू ने किया। उन्होंने घनानंद की कुछ रचनाओं का प्रकाशन "सुंदरी तिलक" नाम से किया। इसके बाद सन् 1870 ई. में "सुजानसतक" नाम से 119 कवित्त सामने आए। 1897 ई. में जगन्नाथदास रत्नाकर ने "सुजान सागर" निकाला। सन् 1907 में काशी प्रसाद जायसवाल ने "वियोग बेलि", "विरह लीला" का प्रकाशन किया। इसी क्रम में "घनानंद रत्नावली" का प्रयाग से प्रकाशन हुआ। 1943 में शम्भुप्रसाद बहुगुणा ने "घनआनंद" नाम से पुस्तक प्रकाशित की। किंतु इन रचनाओं का कठोर श्रम साधना के बाद वैज्ञानिक दृष्टि से आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने संपादन किया। इनका पहला संग्रह "घनानंद कवित्त" (505 पद्य) नाम से आया। इनका दूसरा संग्रह "सुजानहित प्रबंध" 701 कवित्त सवैया छंदों का आया। अंततः मिश्र जी ने "घनआनंद ग्रंथावली" को 1952 में संपूर्ण रूप से प्रस्तुत किया। इसमें "प्रेम सरोवर", "प्रेम पहेली" "ब्रज वर्णन" तथा "सुजान हित" को समाहित किया गया। अब इस ग्रंथावली में 1068 पद हैं। इधर "वृंदावन मुद्रा", "प्रेम पत्रिका" तथा "प्रकीर्णक" और आए हैं। तथा अन्य रचनाओं के लिए अनुसंधान कार्य जारी है। काव्य छंद 4108 तक उपलब्ध हो गये हैं।

इनमें से सुजानहित, वियोगबेलि, इश्क लता, प्रेम पत्रिका, दानघटा तथा वृषभानुपुर सुषमा प्रमुख हैं। इनकी रचनाओं में भावात्मकता, वक्रता, लाक्षणिकता, रहस्यात्मकता, भावों की वैयक्तिकता तथा स्वच्छंदता आदि गुण मिलते हैं। घनानंद की रचनाओं को दो भागों में बांटा जा सकता है। पहले भाग में इनकी प्रेम निरूपण से संबंधित रचनाएँ हैं जो प्रायः कवित्त और सवैयों में रचित हैं और दूसरे वर्ग की रचनाएँ भक्ति परक रचनाएँ जो प्रायः दोहे और चौपाइयों में रचित हैं।

13.3 भावपक्ष

घनानंद मूलतः अति संवेदनशील प्रेम कवि हैं। अतः उनके काव्य का आधार और भावपक्ष प्रेम ही है। किंतु यह प्रेम रीतिकाल की रीतिसिद्ध और रीतिबद्ध परंपरा वाला चमत्कारिक और कृत्रिम प्रेम नहीं है– यह आप जान चुके हैं। यहां हम पहले घनानंद के प्रेम निरूपण का विश्लेषण करेंगे। आप देखेंगे कि घनानंद का प्रेम स्वानुभूत, स्वाभाविक और रूढ़ियों से मुक्त स्वच्छंद प्रेम है, जिसका आधार घनानंद की प्रेमिका "सुजान" रही है। स्वच्छंद प्रेम होते हुए भी घनानंद के प्रेम वर्णन में वह अश्लीलता नहीं है, जिसके आरोपों से रीति युग के अन्य कई कवि घिरे हुए हैं। घनानंद के प्रेम वर्णन की एक अन्य विशेषता आप देखेंगे कि उनका प्रेम विरह प्रधान है। विरह में ही घनानंद प्रेम की गहन अनुभूतियों को अनुभूत कर सके। घनानंद के प्रेम निरूपण के बाद हम घनानंद के शृंगार वर्णन की चर्चा करेंगे। वैसे तो शृंगार और प्रेम को अलग-अलग करके नहीं देखा जा सकता–तथापि हमने शृंगार वर्णन अलग से इसलिए दिया है ताकि आप यह समझ सकें कि घनानंद का शृंगार वर्णन भी रीति युग के अलंकारिक और चमत्कारिक शृंगार वर्णन से कितना पृथक है। घनानंद के काव्य में संयोग शृंगार के चित्र बहुत कम हैं। वियोग शृंगार की स्थितियाँ ही अधिक हैं। घनानंद ने सुजान के रूप में सौंदर्य का भी वर्णन किया है। इसमें भी वह अपनी अनुभूतियों से बाहर नहीं गये हैं। सुजान की जो-जो छवि उन्हें जिस-जिस रूप में-आकर्षित करती रही है, उसी के चित्र उन्होंने खींचे हैं। प्रेम के अतिरिक्त घनानंद ने कुछ भक्तिपरक रचनाएँ भी की हैं– जिनकी चर्चा भी यहां की गयी है।

13.3.1 घनानंद का प्रेम निरूपण

प्रेम एक सहज मानवीय वृत्ति है जो किसी व्यक्ति के रूप, सौंदर्य, गुण या सामीप्य के कारण उत्पन्न होती है।

प्रेम का संबंध प्रिय से है। प्रिय का अर्थ है तृप्तिदायक। भक्तों ने प्रेम के लौकिक और अलौकिक लक्षणों की विस्तार से चर्चा की है। इस चर्चा का सार यह है कि प्रेम की उद्‌भव भूमि चित्तवृत्ति है। वस्तु, व्यक्ति, स्थान आदि से परिचय और सौहार्द के बगैर प्रेम नहीं हो सकता। मूलतः प्रेम अंतःकरण की सहज वृत्ति है जिसमें चित्त की द्रवित अवस्था रहती है। ऐसी स्थिति के कारण इच्छा विशेष का नाम ही प्रेम है। फलतः यह वाणी से ज्यादा अनुभव का विषय है। यह भाव हृदय को स्निग्ध करता है और व्यक्तित्व का रागात्मक विस्तार। निकृष्ट कोटि का प्रेम वह है जो स्वार्थवश किया जाता है उसमें हृदय का लगाव और उदात्तता नहीं होती। मध्यम कोटि के प्रेम में एक व्यक्ति दूसरे से भाव प्रेरित, इंद्रिय प्रेरित प्रेम करता है। श्रेष्ठ कोटि का प्रेम वह है जिसमें न कोई स्वार्थ होता है न संकोच। यह प्रेम अनुकूलता की भी अपेक्षा नहीं करता। यह प्रेम प्रतिकूलता में विरह से पनपता तथा प्रगाढ़ होता है।

मूलतः घनानंद प्रेम सौंदर्य के समर्थ कवि हैं पर उन्होंने प्रेम का शास्त्रीय पद्धतियों से निरूपण कहीं नहीं किया। उनका स्वच्छंद प्रेम शास्त्रीय रूढ़ियों के प्रति खुला विद्रोह करता दिखाई देता है। यह प्रेम लौकिक रीति से शुरू होकर राधा-कृष्ण के भक्ति रस तक विस्तार पाए हुए है। प्रेम में विरह पीड़ा की शक्ति ने इस कवि को नया भाव लोक प्रदान किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि "विशुद्धता के साथ प्रौढ़ता और माधुर्य भी अपूर्व ही है। ये वियोग शृंगार के प्रधान मुक्तक कवि हैं। प्रेम का पीर, लेकर ही इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबादानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ (हिंदी साहित्य का इतिहास पृ. 320)" प्रेमी घनानंद सुजान (प्रेमिका) तथा सुजान (राधा-कृष्ण) को बराबर पुकारते मिलते हैं। लौकिक अर्थ में सुजान प्रेमिका के लिए और भक्ति भाव में सुजान राधा-कृष्ण के लिए प्रतीक रूप में मानने चाहिए। कारण यह चातक भाव का प्रेम है।

रीतिकाव्य जिसे शृंगार काव्य भी कह दिया जाता है– वास्तव में प्रेम काव्य नहीं है। अपितु यह सिर्फ भोग.विलास का काव्य है जिसमें नारी को उपभोग की वस्तु ही समझा गया। किंतु घनानंद ने (रीतिमुक्त कवियों ने भी) इस भोग विलास को अपना हेतु न बना कर स्वच्छंद प्रेम को अपने काव्य की विषय वस्तु बनाया है। यह प्रेम अनुभूतिप्रधान है, भावनाप्रधान है, मांसल है, शरीरी है और मानसिक है। यह बात कही जा चुकी है कि घनानंद एक रूपवती वेश्या सुजान के प्रेम में बंधे हुए थे। सुजान के प्रेम ने ही उन्हें प्रेम की समस्त अवस्थाओं में से गुजरने का अवसर प्रदान किया। वैसे मुख्य रूप से घनानंद का प्रेम विरह प्रधान है। सुजान ने घनानंद के साथ जब मथुरा जाने से इंकार कर दिया तब वे सारी उम्र अकेले ही रहे और अपने प्रेमानुभवों और प्रेमानुभूतियों को अभिव्यक्त करते रहे। प्रेयसी सुजान का नाम ही इस कविता में प्रेम-रसायन का सार प्रतीक है। यह नाम उनके चेतन अवचेतन मन में बस गया है कि किसी भी स्थिति में छूटने का नाम नहीं लेता है। प्रेम का उदात्त आदि बिंब ही घनानंद की कविता में झिलमिलाता रहता है और यह बिंब ही राधा, कृष्ण, सुजान के रूप में भाव लोक की स्वच्छंद सृष्टि करता है। प्रेम में नारी रति के प्रति खुला आकर्षण रहने के कारण यह काव्य अधिकांशतः शृंगार की कोटि में आता है भक्ति की कोटि में नहीं। हालांकि यह सच है कि विरक्त घनानंद सखी भाव के भक्त और ब्रजरस में मग्न होकर कीर्तन, रासलीला तथा भ्रमण गायन करते थे। घनानंद में प्रेम का भावपक्ष पूरी तरह मौजूद है पर विभाव पक्ष का चित्रण कम है। इसका कारण है कि वे प्रेम के रूप सौंदर्य पक्ष की अनेकता पर ध्यान केंद्रित किए रहे हैं। जहां प्रेमहृदय का वर्णन उन्होंने किया है वहां उसके प्रभाव का वर्णन ही मुख्य है। इनकी वाणी की प्रवृत्ति अंतर्वृत्ति निरूपण की ओर ही अधिक रहने के कारण बाह्यार्थ निरूपक रचना कम मिलती है। होली, उत्सव, मार्ग में नायक नायिका की भेंट, उनकी रमणीय चेष्टाओं आदि के वर्णन के रूप में ही वह पाई जाती है। संयोग का भी कहीं-कहीं बाह्य वर्णन मिलता है, पर उसमें प्रधानता बाहरी व्यापारों या चेष्टाओं की नहीं है हृदय के उल्लास और लीनता की ही है। प्रेम दशा की व्यंजना ही इनका प्रधान क्षेत्र है। प्रेम की अंतर्दशा का उद्‌घाटन जैसा इनमें है वैसा हिंदी के अन्य किसी शृंगारी कवि में नहीं। (हि.सा. का इतिहास पृ. 321)

घनानंद फारसी की प्रेम परंपरा से परिचित हैं। उनके "इश्क लता" और "वियोगबेलि" में इस तरह के प्रेम का स्वरूप मिलता है। इन कृतियों के प्रेम में प्रत्यक्ष रूप से वैष्णव प्रेम परंपरा और अप्रत्यक्ष रूप में फारसी की प्रेम परंपरा का असर है। दसअसल, घनानंद का प्रेम रीतिकालीन वासनात्मक प्रेम से भी भिन्न है। इस प्रेम की प्रगाढ़ता, साधना भाव इन्हें भक्त कोटि में ले जाता है।

प्रेम के विषय में घनानंद ने जो धारणा अभिव्यक्त की है उसके अनुसार प्रेम का मार्ग बहुत सीधा और सरल होता है, इसमें चालाकी, चतुराई या लोभ की जगह नहीं होती।

अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नेंकु सयानप बाँक नहीं।
तहे साँधे चलैं तजि आपनपौ झिझकैं कपटी जें निसाँक नहीं।।
घन आनंद प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक ते दूसरौ आँक नहीं।
तुम कौन धौं, पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।।

आचार्य शुक्ल चिंतामणि (भाग-1) में कहते हैं– "प्रीति में लोभ नहीं हुआ करता।" घनानंद इसी लोभ के विरोधी हैं। इस प्रकार घनानंद द्वारा चालाकी या सयानेपन की निंदा और सरलता एवं सहजता की प्रशंसा से यही सिद्ध होता है कि घनानंद प्रेम की सहजता और सात्विकता में विश्वास तथा प्रेम की सरलता में आने वाली कठिनाइयों की निंदा करते हैं।

घनानंद के प्रेम निरूपण से स्पष्ट होता है कि उनका प्रेम एकपक्षीय है, प्रतिदान की कामना नहीं है। प्रकारान्तर से यह भी लगता है कि उनका प्रेम सात्विकता से जुड़ा है।

घनानंद के प्रेम में प्रतिदान की चाह नहीं है किंतु प्रियाभिलाषा अवश्य है। जहाँ कहीं भी सुजान के रूप का विवेचन है– वहाँ के सारे स्थल इसी अभिलाष नामक गुण से जुड़े हैं।

मोहन के बढ़त मिठास भरी ताने मिदि।
माठिए लगति जब मिलै सब डाटिए लौ।।

इन पंक्तियों में रूप माधुर्य और मन की अभिलाषा व्यक्त हुई है।

घनानंद की विरह व्यथा में हृदयानुभूति का वेग बहुत है। स्थिति यहाँ तक पहुंचती है कि प्रिय मारकर जिलाता है और जिलाकर मारता है। प्रिय के आते ही महारस छा जाता हैं और वियोग में प्राण चातक तड़प कर चीखता है पर यहाँ भोग का विलास नहीं है। साधना की प्रेम शक्ति है। इसी में हृदय की मार्मिक पीड़ाओं का अनुभवात्मक संश्लेषण-विश्लेषण होता रहता है। इस भावनात्मक प्रेम का रूप देखिए–

नेह सो मोय सजीव धरी हिय दीप दसा जु मरी अति आरति।
भावना धार दुलास के हाथनि यों हित मूरति हेरि उतारति।।

प्रिय के रूप की अनेक तरंगों से यह प्रेम जीवित है। इसमें संवेदनात्मक ज्ञान के पक्ष सक्रिय हैं। इस प्रेम में हृदय व्यापार सीधा है, कुटिलता छू तक नहीं गई है। वैष्णव आचार्यों की शब्दावली में कहें तो अभिलाषा ही प्रेम बन गई है। घनानंद का प्रेम दर्शन शरीरी से अशरीरी की ओर बढ़ता रहा है और शृंगार से भक्ति की ओर। हृदय की स्वच्छंदता ने बंधनों को तोड़ दिया है– कवि की अनुभूति में सात्विक प्रकाश भर गया है। घनानंद का प्रेमी प्रतीक है चातक और प्रिय प्रतीक घन। यहाँ यह अनन्यता ही भाव सिद्धि का द्वार है। इस प्रेम में "मौन पुकार" का विश्व है। बिहारी देव के प्रेम में रसिकता है पर घनानंद के प्रेम में स्वच्छंद तन्मयता।

प्रेम के आठ गुण माने गये हैं– उल्लास, ममता, विस्रम्भ, प्रिय के गुण का अभिमान, चित्त की द्रवता, प्रियाभिलाष, प्रिय की नवलता का अनुभव तथा विलक्षण गुणोद्‌भव उन्माद। यदि घनानंद के प्रेम को इन गुणों के आधार पर परखने की चेष्टा करें तो हम देखते हैं कि घनानंद के प्रेम निरूपण में ये आठों गुण मिल जाते हैं।

उदाहरण के लिए–

रावरै रूप की रीति अनूप, न्यों-न्यों लागत ज्यों-ज्यों निहारिये।

विलक्षण गुणोद्‌भव उन्माद का भाव–

पाऊ मैं तुम्हें हरि कहां, धरती में घातों के अकास को चीरों।

घनानंद के प्रेम की अंतिम विशेषता है प्रेम का उदात्तीकरण। घनानंद ने प्रेम को अनिंदय प्रेम कहा है। उनके प्रेम का आदर्श विरह की आग में जल कर प्राण त्यागना नहीं उनका प्रेम तो जल के अभाव में तड़प कर प्राण गंवाती मीन से भी आगे है।

हीन भय जल मीन अधीन, कहस कछु मो अकुलानि समाने।
नीर सनेही को लाय कलंक निरास कायर त्यागात प्रानै।।
प्रीति की रीति सु क्यों समुझै जड़, मीत के प्रानि परै को प्रयानै।
या मन की जु दसा, घन और आनंद जीव की जीवनि जान ही जानै।।

घनानंद का लौकिक, शारीरिक एवं मानसिक प्रेम अंत में अलौकिकता से जुड़ जाता है। जीवन के उत्तरार्द्ध में राधा-कृष्ण की भक्ति में उनके प्रेम का उदात्तीकरण हो जाता है।

बोध प्रश्न 1
नीचे दिये गये प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर दीजिए।

1 तीन पंक्तियों में बताइये कि रीतिमुक्त काव्य और रीतिकाव्य में क्या अंतर है।

....

....

....

2 घनानंद की किन्हीं चार रचनाओं के नाम बताइए।

क) ....

ख) ....

ग) ....

घ) ....

3 स्वच्छंद प्रेम की विशेषताओं का पांच पंक्तियों में निरूपण कीजिए।

....

....

....

....

....

4 सही उत्तर पर निशान (√) लगाइये।

घनानंद का प्रेम रीतिबद्ध कवियों से इसलिए भिन्न है क्योंकि :

क) वह अत्यधिक मांसल है

ख) वह स्वानुभूत और रीतिमुक्त है

ग) वह अलौकिक और आध्यात्मिक है

घ) वह सुजान से प्रेरित है

5 सूफी प्रेम का प्रभाव घनानंद की किन दो रचनाओं में मिलता है— नाम लिखिए।

....

....

13.3.2 घनानंद का शृंगार वर्णन

नव रसों में शृंगार को रसराज कहा जाता है क्योंकि शृंगार रस में बाकी सभी रस समाहित हो जाते हैं। शृंगार रस का स्थायी भाव रति है जो प्रेमी-प्रेमिका के संयोग द्वारा संभव होता है। इस प्रकार प्रेमी-प्रेमिका का मिलन या संयोग शृंगार और उनका विरह वियोग शृंगार कहलाता है। संयोग वियोग की दशाओं में ही प्रेमी-प्रेमिका का रूप सौंदर्य चित्रण भी होता है। अतः घनानंद के काव्य के संदर्भ में शृंगार के तीन मुख्य पक्ष हो सकते हैं—

- संयोग शृंगार
- वियोग शृंगार
- रूप सौंदर्य चित्रण

संयोग शृंगार : घनानंद का प्रेम मूलतः विरह प्रधान है। वास्तविक जीवन में भी उन्हें अधिकांश जीवन अपनी प्रिया "सुजान" से दूर रह कर ही बिताना पड़ा। फिर भी उनके काव्य में संयोग या मिलन की कुछ स्थितियाँ विद्यमान हैं।

ललित उमंग-बेलि आलबाल-अंतर तें
आनंद के घन सींची रोम-रोम ह्वै चढ़ी।
आगम उमाह-चाह छायो सु उछाह रंग
अंग-अंग फूलनि दुकूलनि परै कढ़ी।
बोलत बधाई दौरि-दौरि में छबीले दृग
दसा सुभ सगुनौती नीकें इन पै पढ़ी।

प्रेमी का प्रेमिका के साथ शारीरिक मिलन होने वाला है, इस कारण उमंग से भरी हुई ललित भावनाएँ हृदय में आनंद के रस में भीग-भीग कर रोम-रोम में व्याप्त हो गयी हैं। इस तरंग में अंग-अंग इतनी उमंग से भर गये हैं कि वस्त्रों को फाड़ कर बाहर निकल आना चाहते हैं। छबीली आंखें दौड़-दौड़ कर प्रिया पर काम दशा के चढ़ने की बधाई दे रही हैं।

इस छंद में कवि का प्रेमिका के साथ मिलन का संकेत है। किंतु ऐसे मिलन के छंद बहुत कम हैं।

वियोग शृंगार : वास्तव में घनानंद विरह के ही कवि हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में, "यद्यपि इन्होंने संयोग और वियोग दोनों को लिया है, पर वियोग की अंतर्दशाओं की ओर ही दृष्टि अधिक है। इसी से अनेक वियोग संबंधी पद ही प्रसिद्ध हैं। वियोग वर्णन भी अधिक अंतर्वृत्ति निरूपक है, बाह्यार्थ निरूपक नहीं। घनानंद ने न तो बिहारी की तरह विरहताप को बाहरी ताप से मापा है, न बाहरी उछलकूद दिखाई है। जो कुछ हलचल है, वह भीतर की है–बाहर से यह वियोग प्रशांत और गंभीर है, न उसमें करवटें बदलना है, न सेज का आग की तरह से तपना, न उछल-उछल कर भागना है। इस प्रकार घनानंद की विरह वेदना स्वानुभूत है, अकृत्रिम है। घनानंद ने अपनी विरह दशा का वर्णन अनेकानेक छंदों में किया है। उनके संपूर्ण काव्य का अधिकांश भाग विरह-वियोग से ही संबंधित है।

शास्त्रीय दृष्टि से वियोग शृंगार या विप्रलम्भ शृंगार के चार अंग है– पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण। धनानंद ने काव्य रचना में शास्त्र ज्ञाता होते हुए भी कभी शास्त्र या शास्त्र की पद्धतियों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। स्वच्छंद रूप से जैसा अनुभव किया वैसा लिख दिया। फिर भी शृंगार वियोग के ये शास्त्रानुमोदित पक्ष उनके काव्य में मिल जाते हैं।

पूर्वराग : प्रिय मिलन की अभिलाषा को "पूर्वराग" कहा जाता है।
"रस सागर-नगर स्याम लखैं, अभिलाषनि धार-मंझार बहौ।"

मान : प्रेमी-प्रेमिका का सहज रूप से आपस में रूठना ही "मान" है।
"अनमानि बोई मनमानी रह्यौ, अरु मौन ही सौ कछु बोलति है।"

प्रवास : प्रिय से दूर चले जाना "प्रवास" है।
"तब तो छवि पीवत जीवन है, अब सोचन लोचन जात जरैं।
तब हार पहार से लागत है, अब आनि के बीच पहार परै।।

(एक समय था जब प्रिय की छवि रस पान करके प्रेमी जीता था, अब नेत्र हर समय दर्शन की प्यास से जलते रहते हैं। संयोग के मधुरतम क्षणों में हार भी पहाड़ के समान लगते थे और अब यह स्थिति है कि प्रेमी और प्रिया के बीच पहाड़ों की दूरी पड़ गयी है।)

करुण : प्रेमी या प्रेमिका की मृत्यु के बाद भी जहा संयोग होने की आशा बनी रहती है, वहां करुण वियोग होता है। घनानंद ने इस का चित्रण इस प्रकार किया है–

"बहुत दिनान के अवधि आस-पास-परै,
खरे अब रनि संदेसो मनभावन कौ।
अधर लगे हैं आनि करिकैं प्रदान जान,
चाहत चलन ये संदेसो लैं सुजान को।"

(प्रिय का कोई संदेश आएगा इस आशा ने उसे बहुत दिनों तक जीवित रखा मन बार-बार यह कहता था कि प्रिय को एक दिन उसकी सुध आएगी। किंतु प्रा . अधरों पर लगे हैं और प्रिय नहीं आयी।)

विरह वर्णन में शास्त्रों में दस अंतर्दशाओं की बात की गयी है– अभिलाष, चिंता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधिजड़ता और मरण। घनानंद के काव्य में विरह की ये अंतर्दशाएँ भी मिलती हैं– एक दो उदाहरण देखिए–

अभिलाष : घनानंद ने अभिलाष का वर्णन करते हुए प्रिय के दर्शन की अभिलाषा को व्यक्त किया है–

भोर ते साँझ लौ कानन ओर,
निहारति बावरि नैकु न हारति।
साँझ ते भौर लौ तारनि ताकिबो,
तारनि सों इकतार न हारति।

(सुबह से शाम तक आँखें प्रिय का रास्ता देखती रहती हैं और साँझ से सुबह तक तारों को देखती रहती हैं अर्थात् प्रिय के आने की अभिलाषा में आंखें हर दम इंतजार करती हैं।)

स्मृति : "तब तो छबि पीवत जीवत हे, अब सोचन लोचन जात जरे।
घनआनंद मीत सुजान बिना, सब ही सुखं साज समाज हरे।
तब हार पहार से लागत हे, अब आनि के बीच पहार परे।।"

(प्रेमी विरह की पीड़ा झेलते हुए संयोग के दिनों से विरह के दिनों की तुलना करता हुआ कहता है कि तब नेत्र प्रिय के सौंदर्य का पान करके जीते थे अब वे सोच की आग में जलते रहते हैं। सुख के उस सघन क्षणों में दो शरीरों के बीच छाती पर पड़ा हुआ हार पहाड़ की तरह लगता था। अब समय विपरीत होने के कारण दोनों शरीरों के बीच पहाड़ों की दूरी आ गयी है।)

अतः घनानंद के शृंगार वर्णन में प्रिय के संयोग-वियोग दोनों का मार्मिक स्वानुभूत वर्णन मिलता है किंतु वियोग की स्थितियाँ ही अधिक हैं। प्रिय के वियोग की दशा में घनानंद ने प्रेम की गहनतम और सूक्ष्म से सूक्ष्मतम अनुभूतियों का अनुभव भी किया और पूरे मनोयोग से उन्हें अभिव्यक्त भी किया। आपने पहले भी यह पढ़ा था कि घनानंद अपने जीवन और काव्य में स्वच्छंद और उन्मुक्त रहे हैं। उन्होंने रीतिकाल के रीतिवादी कवियों की तरह शास्त्र को अपने काव्य और अभिव्यक्ति का आधार नहीं बनाया। यही बात उनके शृंगार वर्णन पर भी लागू होती है। घनानंद का शृंगार वर्णन भी स्वानुभूत और स्वच्छंद है।

13.3.3 रूप सौंदर्य का वर्णन

घनानंद के प्रेम और काव्य का आलंबन मुख्य रूप से उनकी प्रेमिका "सुजान" ही रही है किंतु जीवन के उत्तरार्द्ध में वे राधा-कृष्ण की ओर भी आकर्षित हुए। घनानंद ने सुजान के रूप का वर्णन परंपरागत चामत्कारिक ढंग से या रीतिकाल के अन्य कवियों की तरह लक्षण ग्रंथों के आधार पर नहीं किया है बल्कि "सुजान" कवि को जिस-जिस रूप में आकर्षित करती रही है, उन्हीं रूपों या छवियों के सौंदर्य के वर्णन की ओर घनानंद प्रवृत्त हुए हैं। एक-एक अंग को, उसकी सुंदरता को अलग-अलग करके विस्तार से उस पर कलम चलाने की प्रवृत्ति घनानंद में नहीं है।

सुजान के रूप सौंदर्य वर्णन की सबसे बड़ी विशेषता है कि कवि ने स्वानुभूत रूप सौंदर्य का बड़ी तन्मयता एवं आसक्त भाव से वर्णन किया है। घनानंद के रूप सौंदर्य वर्णन में मांसलता है, सूक्ष्मता है, नयी भावनाओं एवं कल्पनाओं का योग है। बाह्य रूप सौंदर्य के साथ-साथ घनानंद ने सुजान के भीतरी मानसिक सौंदर्य का भी चित्रण किया है।

उदाहरण के लिए निम्नलिखित छंद देखिए जिसमें कवि ने सुजान के रूप सौंदर्य का वर्णन अनुभूति की सघनता के साथ, निहायत सादगी से किया है–

सोभा बरसीली सुभ सों लसीली,
सु रसीली हँसि हेरें हरै बिरह-तपति है।
अति ही सुजान प्रान-पुंज-दान बोलनि में,
देखी पैज-पूरी, प्रीति-नीति को थपति है।
जाके गुन बंधे मन छूटे और ठौरनि तें,
सहज मिठास लीजै स्वादनि सपति है।
पानिप अपार घनआनंद उकति ओछी,
जतन जुगति जोन्ह कौन पै नपति है।

इस छंद में किए गए सादगी भरे रूप सौंदर्य से ही पता चल जाता है कि घनानंद स्वानुभूत रूप सौंदर्य का वर्णन कर रहे हैं न कि रीति कवियों की तरह चमत्कारिक रूप का।

घनानंद ने सुजान के अंग-प्रत्यंग का, शिर, केश, भाल, घूंघट का भौंह, और नेत्र आदि का भी रूप वर्णन किया है किंतु यहाँ भी वे कृत्रिम या चमत्कारिक नहीं हुए हैं। इसके अलावा घनानंद ने सुजान के स्वभाव का, उसके गुमान का, उसकी शोभा, लावण्य और सुकुमारता का भी रूप वर्णन किया है।

13.3.4 घनानंद की भक्ति भावना

वैसे तो घनानंद पूर्ण रूप से प्रेम के ही कवि हैं, किंतु जीवन के उत्तरार्द्ध में वे कृष्ण-राधा के प्रति भक्ति भाव रख कर भक्तिपरक रचनाएँ करने लगे थे। दिल्ली दरबार से निकाले जाने पर जब वे मथुरा जाने लगे और सुजान से भी साथ चलने को कहा किंतु सुजान ने इंकार कर दिया तब वे अकेले ही मथुरा चले गये किंतु वहां रह कर भी वे सुजान को भुला नहीं पाए। उनके समस्त प्रेम

काव्य का आलंबन सुजान ही बनी रही। किंतु बाद में वे किसी धार्मिक संप्रदाय में ही विधिवत दीक्षित भी हुए और जीवन के अंत तक कृष्ण-राधा की भक्ति की रचनाएँ करते रहे। घनानंद किस संप्रदाय में दीक्षित हुए, ठीक-ठीक कहना संभव नहीं। वैसे आचार्य शुक्ल उन्हें निंबार्क संप्रदाय में, मनोहर लाल गौड और लाला भगवान दीन सखी संप्रदाय में तथा श्रीमती ज्ञानवती त्रिवेदी वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित हुआ मानते हैं। इस उलझन का कारण यह है कि उनकी भक्तिपरक रचनाएँ अनेकों संप्रदायों की मान्यताओं को पुष्ट करती हैं। जैसे आचार्य शुक्ल अपने मत के प्रमाण में उनका एक पद प्रस्तुत करते हैं तो गौड दूसरा, इसी तरह श्रीमती त्रिवेदी भी उनके वल्लभ संप्रदाय में होने के प्रमाण स्वरूप एक पद "श्री वल्लभ गुणगान, भौंर हौं वल्लभ वल्लभ कहिये" प्रस्तुत करती हैं।

वास्तव में, घनानंद को यहाँ भी किसी एक संप्रदाय में बांध कर देखना उचित नहीं प्रतीत होता। संभव है कि उन्होंने किसी संप्रदाय में दीक्षा ली भी हो, तो भी अपनी स्वच्छंद प्रवृत्ति और चेतना के कारण वे किसी एक ही संप्रदाय में बंध कर रहे हों, यह संभव नहीं लगता। इसलिए यह कहा जा सकता है कि उन्हें जिस संप्रदाय में राधा-कृष्ण का जो रूप, भक्ति का जो पक्ष अच्छा लगा, उसे उन्होंने अपना लिया। यही कारण है कि उनकी भक्तिपरक रचनाओं में विभिन्न प्रकार की भक्ति मिल जाती है।

प्रमुख विशेषताएँ : घनानंद के भक्ति काव्य की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1 लौकिक जीवन के प्रति उदासीनता : सुजान द्वारा ठुकराये जाने पर जब घनानंद अकेले ही मथुरा-वृंदावन चले गये तो वहां बाद में राधा-कृष्ण की ओर आकृष्ट हुए और धीरे-धीरे उन्होंने लौकिक जीवन से मानसिक रूप से अपना नाता तोड़ कर श्रीकृष्ण के साथ नाता जोड़ लिया। एक पद में भौतिक स्नेह, ऐश्वर्य और धन आदि की घोर निंदा करते हुए अपनी वैराग्य भावना का परिचय देते हैं–

"देह सौ स्नेह सो तौ हवै खेह-खिन ही मैं,
नाते सब हाते परि रहै गौ नहीं रे नाम।।"

2 राधा-कृष्ण के प्रति प्रेम : निंबार्क संप्रदाय में राधा-कृष्ण दोनों के प्रति मधुर भाव की भक्ति को सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। इसे इस संप्रदाय में "युगल उपासना" कहा जाता है। राधा-कृष्ण की भक्ति में ही कवि अपने जीवन की सार्थकता समझता है। घनानंद ने भी राधा-कृष्ण के प्रति इसी भाव से अपनी गहन-आस्था, श्रद्धा तथा असीम विश्वास को प्रकट किया है।

राधा रमन की वलि जाऊँ।
गौर स्याम ललाम संपति रमि रहि द्रुम बेलि।
महा अनुपम रूप शोभा लहलहानि रस झेलि।
आपु बन धन आपु तन मय है रहत निसि भोर।

राधा-कृष्ण के प्रति घनानंद का प्रेम अनेक स्थलों पर अनेक छंदों में, अनेक प्रकार से अभिव्यक्त हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है मानों भक्त कवि हृदय राधा की प्रशंसा करते हुए थकता नहीं है। राधा का रूप चित्रण और राधा-कृष्ण के प्रेम का वर्णन करते हुए कवि लिखता है– दोनों में इतना प्यार है कि क्षण भर को भी वे विलग नहीं होते और यदि संयोग से हो जाएं तो व्याकुल हो कर एक दूसरे को खोज लेते हैं–

ऐरी रूप अगाधे राधे, राधे राधे राधे राधे।
तेरी मिलिवे को ब्रहमोहन, बहुत जतन है साधे।।

3 ब्रजभूमि के प्रति प्रेम : राधा-कृष्ण के अलावा घनानंद को राधा-कृष्णधाम ब्रजभूमि से भी असीम प्रेम था। यह उनकी रचनाओं से ही प्रमाणित हो जाता है जिनमें उन्होंने केवल ब्रज का गुणगान ही किया है– ब्रज प्रसाद, ब्रज स्वरूप, धाम-चमत्कार, ब्रज विलास, वृंदावन मुद्रा, यमुना-यश, गोकुल-गीत, गिरि पूजन आदि। ब्रज प्रसाद में ब्रज की प्रशंसा करते हुए वे लिखते हैं कि यह ऐसी भूमि है जहां नित्य सुख का सागर हिलौरें लेता रहता है और ब्रजभूमि के चंद्रमा यानि कि कृष्ण इधर-उधर डोलते रहते हैं। इस जीवन का यदि कुछ लाभ है तो ब्रज भूमि के दर्शन में निहित है, जिसके बाद भक्त कवि का तन-मन प्रेम से सराबोर हो उठता है। मेरे बड़े भाग्य थे कि मैंने इस जन्म में ब्रजभूमि के दर्शन कर लिये। मैं इसे छोड़ कर नहीं जाना चाहता। ब्रज के प्रति प्रेम के साथ-साथ कवि के मन में पूज्य भाव भी है।

4 सूफी प्रभाव : घनानंद ने सूफी भाव की इस मान्यता को तो अस्वीकार किया कि आत्मा पुरुष है और परमात्मा स्त्री। किंतु आत्मा की तड़प, बेचैनी, व्यग्रता, अतंस की टीस आदि सूफी काव्य धारा की विरहगत विशेषताओं को उन्होंने स्वीकार किया। "वियोगबेलि" और "इश्क लता" में यह फारसी प्रभाव कहीं-कहीं दिखाई पड़ जाता है।

सूफी और फारसी काव्यधारा से घनानंद ने "प्रेम की पीर" का भाव ग्रहण किया सूफियों की प्रेम भावना की मूल विशेषता है लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम के उच्च सोपान पर पहुंचना– इश्क मिजाजी द्वारा इश्क हकीकी को प्राप्त करना। यह सिद्धांत घनानंद पर भी लागू किया जा सकता है क्योंकि सुजान के लौकिक प्रेम के माध्यम से वे राधा-कृष्ण के अलौकिक प्रेम की ओर आकर्षित हुए लेकिन यह प्रभाव इतना अधिक नहीं है कि हम घनानंद के प्रेम को फारसी काव्यधारा के प्रेम की पीर का कवि ही घोषित कर दें। समकालीन युग और पीछे से चली आ रही परंपराओं का प्रभाव प्रत्येक लेखक पर पड़ता ही है घनानंद के काव्य पर सूफी प्रभाव को भी इसी दृष्टि से देखना चाहिए।

घनानंद ने जो स्वच्छंदता प्रेम के क्षेत्र में दिखाई वही स्वच्छंदता भक्ति के क्षेत्र में। अतः उनके प्रेम और भक्ति को किसी भी सीमा में बांधा नहीं जा सकता।

बोध प्रश्न 2

6 घनानंद के शृंगार वर्णन की ऐसी कौन सी प्रमुख विशेषता है जो उन्हें रीतिबद्ध कवियों से अलग करती है? (दो पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

....

....

7 **टिप्पणी** : सही उत्तर पर निशान (√) लगाइये।
घनानंद के काव्य का अधिकांश भाग :

क) भक्ति तत्व से संबंधित है ( )

ख) विरह स्थितियों से संबंधित है ( )

ग) प्रेमी मिलन की स्थितियों से संबंधित है। ( )

8 शास्त्रों में वर्णित विरह की अंतर्दशाएँ कौन-कौन सी हैं? (दो पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

....

....

9 शृंगार वर्णन कभी प्रिय के संयोग से प्रेरित होता है और कभी वियोग से घनानंद के शृंगार वर्णन की प्रेरणा में संयोग है या वियोग? (दो पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

....

....

10 **टिप्पणी** : सही उत्तर पर निशान (√) लगाइये।
सूफी काव्य में :

क) आत्मा को स्त्री माना जाता है ( )

ख) परमात्मा को पुरुष माना जाता है ( )

ग) आत्मा को पुरुष और परमात्मा को स्त्री माना जाता है। ( )

13.4 अभिव्यंजना पक्ष

अभिव्यंजना पक्ष में हम घनानंद की काव्य भाषा पर विचार करेंगे। आप देखेंगे कि घनानंद की काव्य भाषा में मधुरता, व्यंजकता, ध्वन्यार्थ और वक्रता के गुण विद्यमान हैं। घनानंद ने ब्रजभाषा में काव्य रचना की है और घनानंद के समय तक ब्रजभाषा काफी विकसित हो चुकी थी। इस बारे में हमने आचार्य शुक्ल के विचार दिये हैं। घनानंद ने विकसित ब्रजभाषा की परंपरा को स्वीकार करते हुए भी उसमें अपने ढंग से प्रयोग किये हैं या यूँ कहें कि उन्होंने ब्रजभाषा का और भी विकास किया है। यह विकास हमें घनानंद द्वारा प्रयुक्त देशज, संस्कृत और अन्य भाषाओं के शब्दों के प्रयोग में देखने को मिलता है। घनानंद ने काव्य भाषा में अभिव्यक्ति की वक्र पद्धति अपनायी है– सरल या ऋजु नहीं। यह इसलिए कि वे अपने काव्य में प्रेमिका सुजान से संबोधित हैं– समाज से नहीं। आप यह भी देखेंगे कि घनानंद ने अपने काव्य में अलंकारों का इस्तेमाल काव्य का उत्कर्ष बढ़ाने के लिये किया है न कि उसमें चमत्कार लाने के लिये। जहाँ तक छंद का प्रश्न है– घनानंद ने मुख्य रूप से केवल दो छंदों–कवित्त और सवैये का ही इस्तेमाल किया है।

13.4.1 काव्य भाषा

किसी भी रचना का भाषिक मूल्यांकन दो आधारों पर किया जा सकता है। भाषिकीय, जिसमें ध्वनि, स्वनिम, वर्ण, पद समूह, उपवाक्य, वाक्य आदि के अंतर्संबंधों की गणना का सांख्यिकी विधान किया जा सकता है और दूसरा साहित्यिक जहां भाषा की सामर्थ्य पर बल दिया जाता है। भाषा की सामर्थ्य उसकी संप्रेषण क्षमता है। कलाकार अपने शब्दों के सीमित उपयोग से व्यापक अर्थ का संप्रेषण करता है। अतः किसी कृत्ति के भाषिक मूल्यांकन के लिए साहित्यिक आधार आर्थिक सार्थक है।

साहित्यिक ब्रजभाषा की मधुरता, व्यंजकता और भाव वक्रता का खिला और खुला सौंदर्य घनानंद की काव्य भाषा में मिलता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने ब्रजभाषा काव्य परंपरा पर विचार करते हुए अपना यह मत दिया है कि "यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भाषा पर जैसा अचूक अधिकार इनका था वैसा और किसी कवि का नहीं। भाषा मानो इनके हृदय के साथ जुड़कर ऐसी वशवर्तिनी हो गयी थी कि ये उसे अपनी अनूठी भाव भंगी के साथ जिस रूप में चाहते थे उस रूप में मोड़ सकते थे।

घनानंद ने काव्य रचना ब्रजभाषा में की है। ब्रजभाषा की आरंभिक कृत्ति "सूरसागर" है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन है– "चलती हुई ब्रजभाषा में जब हम "सूरसागर" देखते हैं तो आश्चर्यचकित हो जाते हैं। यह चलती हुई परंपरा का पूर्ण विकास है। हिंदी साहित्य में "सूरसागर" प्रथम रचना है जिसमें ब्रजभाषा अपना पूर्ण विकास प्रकट करती है।"

अतः घनानंद को ब्रजभाषा विकसित और प्रौढ़ रूप में मिली। शुक्ल जी ने उनकी ब्रजभाषा की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए कहा कि बिहारी और घनानंद के ब्रजभाषा प्रयोगों को संयुक्त करके ब्रजभाषा का अच्छा व्याकरण लिखा जा सकता है। तात्पर्य यह है कि उनमें ब्रजभाषा का पूर्ण विकास लक्षित होता है। अतः घनानंद को भाषा के सिलसिले में अभिव्यक्ति के संकट और शब्दों के न मिलने के संकट का सामना नहीं करना पड़ा। लेकिन रचनाधर्मी घनानंद ने प्राप्त भाषा के स्वरूप को यथावत स्वीकार न कर भाषिक क्षमता आगे बढ़ाई, नवीन प्रयोग किये, कई प्रकार से शब्द भंडार को विकसित किया। कुछ ग्राम्य, देशज शब्द जैसे "सल" शब्द का प्रयोग "ज्ञान" के अर्थ में, "पैधक" का प्रयोग "पांव की ध्वनि" के लिए, "बर" का प्रयोग "जंगल" के लिये, "चारे" के लिये "न्यार", "मूर्छा" के अर्थ में "तमाशे" आदि का प्रयोग किया। इन प्रयोगों से उनकी संप्रेषण क्षमता बढ़ी है और देशज शब्दों का प्रयोग उनके जटिल संवेगों और मनःस्थितियों को सहज, अकृत्रिम अभिव्यक्ति देता है। भाषा का यह सहज रूप उनकी अकृत्रिम मानसिकता, अनायासता तथा असजगता को प्रकट करता है। बिहारी ने भी इसी शब्दावली का प्रयोग किया लेकिन उनमें दूरान्वय दोष आ गया। घनानंद इस दोष से बचे रहे। इस बिंदु पर वे बिहारी से आगे हैं।

अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग : भाषिक क्षमता को बढ़ाने का दूसरा उपक्रम विभाषाओं के शब्दों का यथावसर प्रयोग है। उस समय की पूर्वी भाषाओं के शब्द घनानंद में मिल जाते हैं जैसे पोइ (पिरोना), बोइ (बोना) आदि। फारसी के शब्दों में निसानी, मार, जान दिलजानी, हुस्न तथा संस्कृत के शब्दों में योग, मीन, विष, नीर, लोचन आदि का घनानंद ने प्रयोग किया है इसके अलावा तद्भव शब्दों में अधिक, अचूक, आंक, बिसास, अजान, आरत, उद्वेग, नरम आदि। कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो छंदपूर्ति या अन्य आवश्यकता के कारण गढ़ लिये गये हैं। देखीबाइ, अनचाहन, इहरि, दिनदनि आदि शब्दों का वैयक्तिक प्रयोग हुआ है।

इस शब्द भंडार से घनानंद की भाषा के विषय में यह निश्चित किया जा सकता है कि वे बंधी-बंधाई भाषा के पथ पर न चल कर मुक्त स्वतंत्र पथ पर चले हैं। शब्द भाषा विशेष का हो, कवि ने इसका ध्यान नहीं रखा है। यह बात प्रशंसनीय इसलिए है कि कवि सहज रहा है। शब्द चयन के प्रति सचेष्ट नहीं है। शब्द भंडार या भाषा की सिद्धि संप्रेषण ही में समझी जाती है। संप्रेषण ही सामान्य भाषा और काव्य भाषा का अंतर करता है। सामान्य भाषा में केवल अभिधात्मकता तथा बनावट होती है। काव्य भाषा में अभिधात्मकता के अतिरिक्त अर्थ की अन्य संभावनाएँ ज्यादा प्रबल तथा बनावट के अतिरिक्त बुनावट भी होती है।

शब्द शक्तियों के आधार पर : घनानंद की संप्रेषण सामर्थ्य (अर्थ वैभव) पर शब्द शक्तियों की कसौटी पर विचार किया जा सकता है। यह बात स्पष्ट है कि घनानंद की भाषा अभिधात्मक बिल्कुल नहीं है अर्थात् उनकी अभिव्यक्ति पद्धति सीधी, सरल या ऋतु नहीं है। वक्र और जटिल है। ऋजु पद्धति वहाँ होती है, जहाँ संदर्भ सामाजिक हुआ करता है, कथाक्रम विद्यमान रहता है, उपदेशात्मकता रहती है। इसके विपरीत जहाँ उपदेशात्मकता, नीतिकथन, संवाद आदि नहीं होता, कवि आत्ममंथन और आत्माभिव्यक्ति करता है वहाँ अभिव्यक्ति की पद्धति वक्र और

जटिल हो जाती है। संवेगों की जटिलता के कारण अभिव्यक्ति अर्थान्तरण की प्रक्रिया में आ जाती है।

घनानंद की कविता एकालाप है, समाज से उसका सीधा संवाद नहीं है– सुजान से है। इसलिए अगर वहाँ अभिधात्मकता नहीं है तो यह कथ्यनुकूलता के अनुरोध से ही है। उनकी कविता में हमें लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ का बाहुल्य मिलता है। प्रायः व्यंग्यार्थ को ध्वन्यात्मकता भी कह दिया जाता है। काव्य का उत्कर्ष भी मध्यकाल में इसी में समझा गया था क्योंकि यह माना जाता था कि प्रकट कथन अवांछित है, भाव की अभिव्यंजना होनी चाहिए, स्पष्ट कथन नहीं। स्पष्ट कथन में भामह ने रसवत अलंकार बनाया। इसी को स्ववाच्यता दोष भी कहा जाता है। अतः रस की सिद्धि व्यजंना की सिद्धि में निहित होने के कारण व्यंजना को महत्व दिया गया। घनानंद के प्रेम की अभिव्यक्ति व्यंजना के सहारे हुई है।

> "आनंद की निधि जगमगति छबीली बाल,
> अंगनि अनंग रंग ढुरि मुरि जानि मैं।"

यहां सौंदर्य और तत्जन्य प्रभाव की अभिव्यंजना हुई है। एक और उदाहरण–

> "जौं लौं करैं आवन विनोद बरसावनयै,
> तौं लौं वरारे बजमारै घन घोरि लै।"

यहां भी प्रतीक्षा और विश्वास व्यंजित हो रहा है।

घनानंद की कविता में व्यंजना से अधिक लाक्षणिकता है। जहाँ शब्दार्थ का वाच्यार्थ में रुकावट विरोध सूचित हो, वहाँ लक्षणा हुआ करती है।

> "जहाँ ते पधारे मेरे नैननि हि पाँव मगै
> अब ये विचारे प्राण पैंड-पैंड पै मने।"

मानो हमारे नैनों पर पाँव रखते आए हैं– लाक्षणिकता

> "कूक भरी मूकता बुलाए आप बोन्ती है
> कूक भरी मूकता–लाक्षणिकता।"

इस प्रकार घनानंद ने शब्द शक्तियों के सहारे न केवल उक्ति चमत्कार ही प्रस्तुत किया अपितु भाव के संप्रेषण में शब्द सामर्थ्य को भी बढ़ाया। उक्ति चमत्कार के लिए भी मुहावरों व लाक्षणिकता का प्रयोग किया है।

> "तुम कौन धौपाटी पढ़े हो कहो,
> मन लेहु के देहु छटांक नहीं।"

13.4.2 छंद और अलंकार

रीतिकाल में छंदबद्ध कविता का ही चलन था। कवि अपने आश्रयदाताओं की रसिकता की वृद्धि के लिये गा कर, तान व लय से युक्त अपनी रचनाओं का पाठ किया करते थे। घनानंद कवि होने के साथ-साथ अच्छे संगीतकार एवं गायक भी थे। अतः उनकी रचनाएँ छंद विधान से पूरी तरह संयुक्त हैं। काव्य में चारूता लाने एवं उसे भव्य बनाने में छंद का बहुत योगदान होता है। यही कारण है कि छंदबद्ध कविताएँ सुनने वाले के हृदय पर जितना प्रभाव जमा सकती हैं, उतना छंदविहीन कविताएँ नहीं।

घनानंद ने शृंगार और प्रेम के काव्य को ध्यान में रख कर ही कवित्त और सवैये छंद का इस्तेमाल किया है। डॉ मनोहर लाल गौड के शब्दों में "आनंदघन के सवैये अधिक संख्या में ऐसे ही हैं जो अत्यंत कोमल शब्दावली में लिखे गये हैं और जिनमें संगीत की मधुर गूंज उत्पन्न होती है। समस्त छंद में एक भी सवैये के अतिरिक्त घनानंद ने कवित्त छंद का ही प्रयोग किया है। कवित्त के दो भेद हैं घनाक्षरी और मगहर। घनानंद ने दोनों का प्रयोग किया है। इन दो छंदों के अलावा घनानंद ने जिन अन्य छंदों का इस्तेमाल किया है वे हैं– सुमेरू, त्रिलोकी, ताटंक, निसानी, शोभन, त्रिभंगी। प्रबंध काव्य में दोहे-चौपाई का भी प्रयोग किया गया है। लेकिन चौपाई में कवि को अधिक सफलता नहीं मिली क्योंकि चौपाई छंद ब्रजभाषा के अनुकूल नहीं पड़ता। यह तो मानो अवधि भाषा के लिए ही निर्मित हुआ है।

अलंकार : अलंकार की दृष्टि से यदि घनानंद के काव्य का विवेचन विश्लेषण किया जाए तो सबसे प्रमुख बात उभर कर यह सामने आती है कि उन्होंने लगभग सभी अलंकारों का प्रयोग किया है, किंतु अलंकार उनके काव्य में भावों की तीव्रता प्रदान करने के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं।

कहीं पर भी चमत्कार के लिये या मात्र प्रदर्शन के लिए अलंकारों का इस्तेमाल नहीं किया गया।

घनानंद के काव्य में जो अलंकार आए हैं– वे उनके काव्य को अधिक स्पष्टता और गहराई के साथ प्रस्तुत करने में ही सहायक हैं। इस बारे में घनानंद का स्वयं का कथन है– "लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मौहि तौ मेरे कवित्त बनावत।" अर्थात् जहाँ बाकी कवि (रीतिमार्गी) जी तोड़ कोशिश कर के, काव्य शास्त्र के नियमों का सहारा ले कर, अलंकारों से सुसज्जित कर काव्य बनाने में लगे रहते हैं– वहाँ मैं तो कुछ भी नहीं करता– मेरे कवित्त मुझको बनाते हैं अर्थात् जो मैं जैसा अनुभव करता हूँ, उसे वैसे ही अभिव्यक्त कर देता हूँ। वास्तव में घनानंद ने सायास कभी कुछ नहीं कहा, अपितु जो भी कहा, वह उनके हृदय की सहज अभिव्यक्ति बन कर प्रकट हुआ।

वैसे घनानंद के काव्य में हमें शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों मिल जाते हैं फिर भी उन्होंने विरोधमूल और साम्यमूलक अलंकारों का अधिक प्रयोग किया है। (शब्दालंकार–जहां शब्दों में या भाषा में सौंदर्य लाने के लिए कुछ विशेष शब्दों का प्रयोग किया जाता है– शब्दालंकार कहलाता है)।

बोध प्रश्न 3

11 सामान्य भाषा और काव्य भाषा में क्या अंतर है? तीन पंक्तियों में बताइये।

....

....

....

टिप्पणी : खाली स्थान भरिये :

12 घनानंद ने अपने काव्य में अलंकारों का प्रयोग .... किया है।
   क) चमत्कार लाने के लिए
   ख) भावों की तीव्रता प्रदान करने के लिये
   ग) काव्य के रूप को सजाने के लिए

13 घनानंद ने अपने काव्य में मुख्य रूप से कौन-कौन से छंदों का इस्तेमाल किया है?

....

....

14 अभिव्यक्ति की ऋजु पद्धति तथा वक्र पद्धति क्या होती है? घनानंद ने इनमें से कौन सी पद्धति का इस्तेमाल किया है और क्यों? पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

13.5 संदर्भ सहित व्याख्या

अब तक आप घनानंद के काव्य की विशेषताओं को समझ चुके होंगे। यहाँ हम आप को घनानंद के तीन पदों की संदर्भ सहित व्याख्या दे रहे हैं इससे आपको घनानंद के काव्य की व्याख्या करने में मदद मिलेगी।

कवित्त

हीन भय जल मीन अधीन, कहा कछु यो अकुलानि समानै।
नीर सनेही को लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै
प्रीत की रीति स क्यों समझै जड़, मीन के पानि परै को प्रमानै।
या मन की जु दसा, घन आनंद जीव की जीवनि जान ही जानै।।

संदर्भ :

घनानंद द्वारा रचित यह कवित्त घनानंद रचनावली "सुजानहित" से लिया गया है। इस कवित्त में कवि ने प्रेमी की विरह दशा का वर्णन करते हुए प्रेम की अपनी भाषा को अभिव्यक्त किया है।

व्याख्या :
विरही प्रेमी विरह में जलते हुए अपने मन की दशा की तुलना की तड़प से करता हुआ कहता है कि जल से बाहर निकाले जाने पर तड़प कर प्राण देने वाले मीन के प्रेम भाव को महत्वपूर्ण मान कर संसार में उसे आदर्श प्रेमी माना जाता है कि यह सत्य है। किंतु अपने अनुभव से विरहाकुल प्रेमी यह सिद्ध करता है कि तड़पने और जान देने से मीन के प्रेम की प्रगाढ़ता के बदले उसका छिछलापन ही अधिक प्रमाणित होता है। प्राण दे कर दुख से मुक्ति पा लेने वाला उस असह्य दुख को कैसे अनुभव कर सकता है जो तिल-तिल जलता हुआ विरही अनुभव करता है।

अर्थात् मीन जल से अलग हो कर इसलिए प्राण त्याग देती है क्योंकि वह कायर है। प्रणय के क्षेत्र में वह दुख की मार को झेल नहीं सकता। वह स्वयं तो मरता ही है, जल पर नीरस और कठोर होने का कलंक भी लगा देता है। अपने प्राण दे कर वह यह प्रमाणित कर देता है कि वह जड़ प्रेमी के हाथ पड़ गया था। अथवा वह जड़ मीन प्रीत की रीत को समझ नहीं पाता। ऐसा मीन भला प्रीत की विलक्षणता को कैसे समझ सकता है। वियोग की व्यथा से घबरा कर प्राण दे देना, प्रणय के क्षेत्र की रीति के प्रति उसकी अनभिज्ञता ही प्रकट होती है।

विशेष :
लोक प्रसिद्ध जल-मीन या अग्नि-पतंगों के प्रेम आदर्श को कवि अपने प्रेम आदर्श के समक्ष तुच्छ समझता है।

सवैया :

झलकै अति सुंदर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छवै।
हँसि बोलन में छवि-फूलन की बरषा, उर-ऊपर जाति हवै।
लट लोल कपोल कलौल करै, कल कंठ बनी जलजावलि छवै।
अंग-अंग तरंग उठे दुति की, परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै।।

संदर्भ :
घनानंद द्वारा रचित यह उत्प्रेक्ष सवैया
विश्वनाथ प्रसाद द्वारा संपादित "घनानंद कवित्त" पुस्तक से लिया गया है। इस सवैये में कवि ने अपनी प्रिया "सुजान" के रूप सौंदर्य का स्वानुभूत वर्णन किया है।

प्रसंग :
घनानंद ने सौंदर्य का चित्र प्रस्तुत किया है।

व्याख्या :
कवि कहता है कि प्रिय (सुजान) का गोरा मुखड़ा इतना सुंदर है कि जिसे देख कर आंखें आश्चर्य से कानों तक खिंच जाती हैं। प्रिया जब बोलती है या हँसती है तो हृदय पर फूलों की वर्षा होने लगती है। उसके गाल पर बालों की एक लट ऐसी जान पड़ती है मानो वह गालों के साथ खेल रही हो। उसके गले में पड़ी मोतियों की दो लड़ी वाली माला उसके सौंदर्य को और बढ़ा रही है। कवि प्रिया के सौंदर्य का चित्र खींचते हुए आगे कहता है कि उसके अंग-अंग से सौंदर्य फूट रहा है। या उसके अंग-अंग से यौवन की उमंग की विद्युत उठ रही है। अर्थात् उसका सौंदर्य इतना मनोहर और चकाचौंध करने वाला है और ऐसा प्रतीत होता है मानो उसका रूप अभी धरती पर चू पड़ेगा। अर्थात् उसकी प्रिया अति सुंदर है।

विशेष :
(1) इस सवैये से कवि ने अपनी प्रिया के स्वानुभूत सौंदर्य का जिस सादगी से वर्णन किया है— रीतिकालीन अन्य कवियों के सौंदर्य वर्णन में यह देखने को नहीं मिलता।

(2) "लट लोल कपोल कलोल करे" पंक्ति में अनुप्रास अलंकार है। एवं पूरे छंद में सांग रूपक अलंकार है।

सवैया :

तब तौ छवि पीवत जीवत है, अब सोचन लोचन जात जरे।
हित-पोष के तोष सु प्रान पले, बिललात महादुख-दोष भरे।
घन आनंद मीत सुजान बिना सब ही सुख-साज-समाज टरे।
तब हार पहार से लागत हे अब आनि कै बीच पहार परे।

संदर्भ :
यह पद्य घनानंद रचित है। इस कवित्त में कवि ने रूप-सौंदर्य कर सजीव चित्रण किया है।

व्याख्या :

कवि कहता है कि जब प्रिय से संयोग था अर्थात् जब प्रिया पास में थी तब उस का रूप सौंदर्य निहारते हुए ही जीवन बीतता था और अब (जबकि वह पास नहीं है) उन बातों को सोच-सोच कर आंखें जलती हैं। कवि आगे कहता है कि तब (जब प्रिया पास थी) मेरे प्राण प्रेम द्वारा पोषित हो कर संतुष्ट होते थे और अब विरह रूपी महादुख के कारण मेरे प्राण हमेशा बिलखते रहते हैं या व्याकुल रहते हैं। घनानंद कहते हैं कि प्रिया सुजान के बिना जीवन के सारे सुख, विलासिता की सारी सामग्री और समाज उनसे दूर हो गया है अर्थात प्रिया के बिना कुछ भी अच्छा नहीं लगता। बीती बातों को याद करता हुआ कवि आगे कहता है कि तब आलिंगन करते समय प्रिया के गले में पड़ा हुआ हार भी पहाड़ की तरह लगता था और अब प्रिया के आने के बीच ही समय पहाड़ की तरह खड़ा हो गया है अर्थात् प्रिया से मिले ही बहुत समय बीत गया है।

विशेष :

यह सवैया घनानंद की विरह वेदना को दर्शाता है।

13.6 मूल्यांकन

यह आप जान ही चुके हैं कि रीतिकालीन साहित्य और समाज किस प्रकार की सड़ी-गली रूढ़ियों, अंधविश्वासों और साहित्य की रीतिवादी परिपाटी में फंस चुका था। जागीरदारों, सामंतों के पास आश्रय खोजते हुए कवियों को अपने आश्रयदाताओं की कामुकता भोग विलास को संतुष्ट करने के लिए ही काव्य रचना करनी पड़ती थी। फलतः बाह्य सौंदर्य ही काव्य का तत्व माना जाने लगा और केवल चमत्कार प्रदर्शन कवि की विशेषता मानी जानी लगी। यह बाह्य प्रदर्शन और चमत्कार इतना बढ़ा कि नायिका अपनी सांसों के उतार-चढ़ाव के साथ-साथ छह सात हाथ आगे पीछे झूले लेने लगी। कुल मिला कर इस युग की कविता में उबा देने वाली पुनरावृत्ति, जुगुप्सा, नये मांसल वर्णनों की भरमार हो गयी। कवि के लिए एक मात्र विषय नायिका भेद, नख-शिख वर्णन ही बचा रहा। नारी के स्नेह और प्रेम की जो एक पवित्र और भव्य भावना आदिकाल से चलती आ रही थी उसे इस युग के रीतिकालीन कवियों ने सस्ता और ओछा बना दिया।

किंतु यह सब होते हुए भी इसी युग में कवियों की एक ऐसी जमात भी उभर कर सामने आयी जिन्होंने रीतिकाल की इन समस्त रूढ़िवादी, रीति परक प्रवृत्तियों के विरुद्ध प्रेम की स्वानुभूत स्वाभाविक अभिव्यक्ति को अपने काव्य का आधार बनाया। ऐसे कवियों में आलम, बोधा, रत्नाकर और घनानंद हैं। किंतु इनमें भी सबसे महत्वपूर्ण कवि घनानंद ही हैं। क्योंकि घनानंद ने अपने जीवन एवं काव्य में प्रेम के जिस लौकिक और अलौकिक धरातल का स्पर्श किया है, विरह वियोग की अंतर्दशाओं, अनुभूतियों को जिस गहराई और ईमानदारी के साथ अनुभूत एवं अभिव्यक्त किया है, इनके समकालीन कवि उस गहराई और ऊँचाई तक नहीं पहुंच पाए। इसके अलावा इनकी महत्ता का एक कारण यह भी है कि इस युग की कविता नारी के जिस भोग्या रूप को स्थापित करने में जी जान से जटी हई थी, इन्होंने उस नारी को प्रेम के पवित्र धरातल पर स्थापित किया और उसे भोग विलास की वस्तु मानने का विरोध किया। शिल्प के धरातल पर भी घनानंद ने अलंकारों द्वारा चमत्कार प्रदर्शन की परंपरा का न केवल विरोध किया अपितु उसके स्थान पर अलंकारों को नारी का सौंदर्य बढ़ाने के उपादानों के रूप में सही जगह प्रतिष्ठित किया। घनानंद की भाषा का अध्ययन करते हुए आपने देखा होगा कि उनकी भाषा एक ओर तो अपनी धरती की गंध लेकर विकसित होती है दूसरी ओर अन्य भाषाओं से शब्द लेकर वे अपनी भाषा का शब्द भंडार भी बढ़ाते हैं।

इन्हीं कारणों से घनानंद समस्त रीतिकाल में एक स्वच्छंद, रीतिमुक्त कवि के रूप में ही अपना सर्वश्रेष्ठ स्थान नहीं बनाते अपितु काव्य को रूढ़िबद्ध रीतिपरंपरा से मुक्ति दिलाते हुए अपने प्रगतिशील होने के दावे को भी पुख्ता करते हैं।

13.7 सारांश

आपने इस इकाई में रीतिकाल की रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवि घनानंद का अध्ययन किया। घनानंद ने स्वानुभूत प्रेम की स्वच्छंद अभिव्यक्ति द्वारा रीतिकाल की रीति परंपरा का विरोध कर तन और धन से चिपकी हुई कविता को मुक्त किया।

घनानंद के श्रृंगार वर्णन को पढ़ते समय आपने देखा कि घनानंद का श्रृंगार वर्णन रीतिकाल की बंधी बंधाई परिपाटी वाला श्रृंगार वर्णन नहीं है जिसमें नायिका भेद, नख-शिख वर्णन और दूर की कोडी लाने का प्रयास किया गया हो। घनानंद के श्रृंगार वर्णन और प्रेम निरूपण की मुख्य प्रेरणा रही है उनकी प्रेमिका सुजान। सुजान के रूप चित्रण में कवि का मन रमा है। सुजान घनानंद को जिस-जिस रूप में आकर्षित करती रही है, उसका कवि ने वर्णन किया है। किंतु घनानंद के श्रृंगार वर्णन में सुजान का रूप चित्रण इतना प्रमुख नहीं है जितना सुजान के वियोग का वर्णन। क्योंकि सुजान के साथ अधिक समय रहने का मौका घनानंद को मिला ही नहीं। सुजान से अलग रहते हुए विरह की जितनी भी मार्मिक अनुभूतियों से घनानंद को गुजरना पड़ा, उन सबका उन्होंने स्वानुभूत वर्णन किया है। बाद में घनानंद किसी धार्मिक संप्रदाय में दीक्षित भी हुए, राधा-कृष्ण की अभिव्यक्ति में घनानंद को सफलता नहीं मिली जो सुजान के विरह वर्णन में मिली।

वस्तुत: घनानंद हैं ही प्रेम के कवि।

घनानंद पर थोड़ा बहुत फारसी प्रेम पद्धति का भी प्रभाव पड़ा, किंतु बहुत थोड़ा। भाषा के धरातल पर वैसे तो घनानंद को विकसित ब्रजभाषा की परंपरा मिली किंतु अपने ब्रजभाषा में विभिन्न दूसरी भाषाओं के शब्द लाकर उन्होंने ब्रज का शब्द भंडार भी बढ़ाया और उसे धरती की गंध के साथ भी जोड़ा। ऐसी भाषाओं के शब्दों को ब्रज में लाकर उन्होंने यह काम किया। घनानंद ने मुख्य रूप से केवल दो छंदों कवित्त और सवैये का ही प्रयोग किया क्योंकि कवित्त और सवैया छंद प्रेमाभिव्यक्ति के लिये सबसे अनुकूल छंद हैं। घनानंद ने अलंकारों का इस्तेमाल भी किया है किंतु भावों में गहराई लाने के लिये न कि बाह्य चमत्कार पैदा करने के लिए।

इस इकाई के अंत में आपने पढ़ा कि किस प्रकार घनानंद रीतिबद्ध काव्य धारा का विरोध करते हुए कविता को रूढ़िबद्धता, बाह्य चमत्कार और नारी के कृत्रिम श्रृंगार से मुक्त करते हैं।

13.8 शब्दावली

सूधौ : सीधा

सयानप : सयानापन

नेंकु : थोड़ा

बाँक : छबीला, सुंदर, तिरछा

तजि : छोड़ना

आपनपौ : अपनापन

पाटी : लिखने की लकड़ी से बनी पट्टी

रखरैं : रूपक

अनूप : सुंदर, अनुरूप

ललित : सौंदर्य, मनोहर

उमंग बेलि : प्रेम की लता

आगम : लौकिक परंपरा

उछाह : उत्साह

छबीले दृग : सुंदर नयन

सगुनौती : शगुन

नीकें : अच्छा, सुंदर लगने वाला

बरसीली : बरसावाली

सील : शील, गुण

रसीली : रस से भरी हुई

तपति : गरमी

पैज : प्रतिज्ञा

गुन : गुण, डोर

छूटना : बंधन से मुक्त होना

स्वादनि : स्वाद से

सपति है : शाप देती है

उकति : वाणी, उक्ति

ओछी : तुच्छ, छोटी

13.9 उपयोगी पुस्तकें

शुक्ल, रामदेव, *घनानंद का काव्य*, मैकमिलन कं. आफ इंडिया : नयी दिल्ली, 1976.

शुक्ल, रामदेव, *घनानंद का श्रृंगार काव्य*, मैकमिलन कं. आफ इंडिया : नयी दिल्ली, 1975.

गौड, मनोहर लाल, *घनानंद और स्वच्छंद काव्यधारा*, नागरी प्रचारिणी सभा : काशी, 1962.

शुक्ल-रामचंद्र, *हिंदी साहित्य का इतिहास*, नागरी प्रचारिणी सभा : वाराणसी।

मिश्र-विश्वनाथ प्रसाद, *हमारे साहित्य का अतीत भाग-2*, वाणी प्रकाशन : दिल्ली

13.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 रीतिकाव्य संस्कृत काव्य शास्त्र में दिये गये लक्षणों की रीति पर रचे गये काव्य को कहा जाता है और रीतिमुक्त काव्य संस्कृत काव्य शास्त्र में दिये गये लक्षणों से मुक्त स्वच्छंद रूप से रचे गए काव्य को कहा जाता है।

2 सुजानहित, वियोगबेलि, इश्क लता, प्रेमलता

3 घनानंद का स्वच्छंद प्रेम स्वानुभूत तथा अनुभूति प्रधान है। वे सुजान से प्रेम करते थे। अतः अपने प्रेम में उन्होंने जैसा अनुभूत किया, वैसा ही उसे अभिव्यक्त कर दिया। इसलिए उनका प्रेम रीतिमार्गी कवियों के चमत्कारिक एवं आडम्बरपूर्ण प्रेम के विपरीत स्वाभाविक है। उनका प्रेम वायावी नहीं है। इसलिए मांसल और शरीरी भी है। सुजान के रूप चित्रण में कवि का मन रमा है। किंतु सुजान से प्रायः अलग रहने के कारण उनके प्रेम में विरह की स्थितियाँ बहुत ज्यादा हैं इसी कारण उनकी प्रेमाभिव्यक्ति में भी विरह प्रधान है। उन्होंने प्रेम में लौकिक से अलौकिक स्तर की अनुभूतियों को भी महसूस और अभिव्यक्त किया है।

4 (ख)

5 इश्क लता, वियोगबेलि

बोध प्रश्न 2

6 घनानंद के शृंगार वर्णन की प्रमुख विशेषता यह है कि उनके शृंगार वर्णन का आधार उनकी अपनी प्रेमिका सुजान और सुजान से किया गया प्रेम है। स्वानुभूत प्रेम की स्वच्छंद अभिव्यक्ति उन्हें रीतिबद्ध कवियों से अलग करती है।

7 (ख)

8 अभिलाष, चिंता, स्मृति, गुण कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण।

9 घनानंद के शृंगार वर्णन में वियोग है, संयोग नहीं। दरबार से निकाले जाने पर जब वे वृंदावन मथुरा जाने लगे और उन्होंने सुजान से भी साथ चलने को कहा तो सुजान ने मना कर दिया। फलतः सारी उम्र वे अकेले रहे। सुजान से यह दूरी या वियोग ही उनके शृंगार वर्णन की प्रेरणा बना।

10 (ग)

बोध प्रश्न 3

11 सामान्य भाषा में केवल अभिधात्मकता तथा बनावट होती है जबकि काव्यभाषा में अभिधात्मकता के अतिरिक्त अर्थ की अन्य संभावनाएँ ज्यादा प्रबल तथा बनावट के अतिरिक्त बुनावट भी होती है।

12 (ख)

13 कवित्त और सवैया।

14 अभिव्यक्ति की ऋजु पद्धति का अर्थ है बात को सीधे-सीधे कहना। पद्धति वहां प्रयुक्त होती है जहाँ संदर्भ सामाजिक हुआ करता है। कथ्यक्रम विद्यमान रहता है और कथन में उपदेशात्मकता रहती है। इसके विपरीत जहाँ उपदेशात्मकता, नीति कथन आदि नहीं होता और कवि आत्ममंथन, आत्माभिव्यक्ति ही करता है, अभिव्यक्ति की पद्धति वक्र और जटिल हो जाती है और वह बात को सीधे-सीधे न कह कर व्यंग्यार्थ में या लाक्षणिकता में या व्यंजना में कहता है। घनानंद की अभिव्यक्ति पद्धति वक्र और जटिल है क्योंकि समाज से उसका संवाद नहीं है, सुजान से है।

Notes

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

यू०जी०एच०आई०-02

हिंदी में ऐच्छिक पाठ्यक्रम

खंड

4

आधुनिक काव्य (भारतेंदु युग तथा द्विवेदी युग)

इकाई 14
भारतेन्दु युगीन हिंदी काव्य : स्वरूप और विकास 5

इकाई 15
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 27

इकाई 16
द्विवेदी युगीन हिंदी काव्य : स्वरूप और विकास 49

इकाई 17
मैथिलीशरण गुप्त 70

इकाई 18
रामनरेश त्रिपाठी 94

खंड परिचय

हिंदी ऐच्छिक पाठ्यक्रम 2 के चौथे खंड में आप आधुनिक हिंदी कविता का अध्ययन शुरू करेंगे। आधुनिक हिंदी कविता की शुरुआत 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से होती है। आधुनिक युग में आकर कविता के भाव, भाषा और प्रयोजन में महत्वपूर्ण बदलाव हुए हैं। बदलते हुए सामाजिक राजनीतिक परिवेश के कारण जीवन मूल्यों में जो जागृति आई उसने साहित्यकार को अपने सामाजिक दायित्वों के प्रति सजग बनाया। परिणामस्वरूप रीतिकालीन कविता का सामंती-दरबारी गढ़ ध्वस्त होने लगा। कवि अब चमत्कारवाद और कृत्रिम कलावाद से बाहर निकलने को उत्सुक दिखाई दिया। लेकिन लगभग दो शताब्दी से जमे हुए संस्कार एकदम छूटने संभव न थे। इसलिए आधुनिक काल की आरंभिक कविता में हमें रीतियुगीन परंपरा और नए बदलाव की चेतना दोनों का स्वर एक साथ सुनाई देता है। आधुनिक युग के प्रणेता भारतेन्दु हरिश्चंद्र के साहित्य में इस द्वंद्व को स्पष्ट और प्रखर रूप में देखा जा सकता है।

इस काल के साहित्य में दो चीजें बहुत साफ दिखाई देती हैं पहली तो यह कि कविता में अब केंद्रीय स्थिति ईश्वर की नहीं रही। मनुष्य कविता के केंद्र में आया है। मनुष्य और उसकी शक्ति का विस्तार और प्रसार कविता में तेजी से होता है। ईश्वर की महिमा का गान और असीम विराट क्षमता का स्थान धीरे-धीरे मनुष्यत्व की महिमा और क्षमता ले लेती है। मैथिलीशरण गुप्त के राम और सीता तथा हरिऔध के कृष्ण और राधा श्रेष्ठ मानवीय गुणों के प्रतीक बनते हैं। दूसरी ओर आधुनिक काल में कविता के विषयों का तेजी से विस्तार होता है। स्वयं भारतेन्दु ही महामारी और टिक्कस (टैक्स) जैसे विषयों पर कविता लिखते हैं। देश भक्ति, राष्ट्र और समाज की उन्नति, प्रकृति-प्रेम, उपेक्षितों का उद्धार आदि कविता के विषय बनते हैं। तात्पर्य यह है कि अब कविता के लिए कोई विषय कम महत्व का नहीं रहता।

आधुनिक युग में आकर साहित्य में एक अन्य महत्वपूर्ण घटना यह घटती है कि गद्य का साहित्य के सशक्त माध्यम के रूप में उदय होता है। मध्यकाल तक पद्य ही साहित्यिक अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम था, किंतु आधुनिक काल में गद्य के आविर्भाव के कारण गद्य साहित्य की विविध विधाओं की शुरुआत हुई और खड़ी बोली को गद्य की भाषा के रूप में ग्रहण किया गया। गद्य भाषा के रूप में खड़ी बोली की स्वीकृति ने रचनाकार को काव्य भाषा के विषय में विचार करने को मजबूर किया। परिणामतः सदियों से चली आ रही ब्रजभाषा को काव्य-भाषा बनाए रखने की बात पर प्रश्न चिन्ह लगाया गया। नए भावों और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए नई काव्य भाषा की मांग हुई और धीरे-धीरे ब्रजभाषा कविता का स्थान खड़ी बोली कविता ने ग्रहण किया।

आधुनिक युग के साहित्य में अब विशेषता आप यह देखेंगे कि इस युग में कई ऐसे महानुभाव हुए जिनके व्यापक और बहु आयामी व्यक्तित्व के कारण उन्हें युग प्रवर्तक स्वीकार किया गया। भारतेन्दु हरिश्चंद्र और महावीर प्रसाद द्विवेदी ऐसी ही दो विभूतियाँ हैं जिनके नाम पर क्रमशः 'भारतेन्दु युग' और 'द्विवेदी युग' का नामकरण किया गया है।

पिछले युगों की तुलना में आधुनिक काल की यह भी विशेषता है कि इस युग में काव्यांदोलनों का प्रसार काल अपेक्षाकृत छोटा है। भक्ति काल और रीति काल का प्रसार कई शताब्दियों तक फैला है जब कि लगभग डेढ़ शताब्दी पुराने आधुनिक काल में कविता के विभिन्न आंदोलन छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद नई कविता आदि रूपों में दिखाई देता है।

इस खंड में आप 'भारतेन्दु युग' और 'द्विवेदी युग' की कविता के बारे में पढ़ेंगे। 14 से लेकर 18 तक पाँच इकाइयों में से एक-एक इकाई युग विशेष के स्वरूप और विकास के बारे में है तथा शेष तीन इकाइयाँ इस काल के तीन महत्वपूर्ण कवियों — भारतेन्दु हरिश्चंद्र, मैथिलीशरण गुप्त तथा रामनरेश त्रिपाठी पर हैं। शेष कवियों की चर्चा भी प्रकारांतर से की गई है तथा उनके योगदान का उल्लेख भी किया गया है। कवियों से संबद्ध इकाइयों में उनकी कुछ कविताएँ/कविताओं के अंश भी शामिल किए गए हैं। इनमें से कुछ अंशों की संदर्भ सहित व्याख्या करके दिखाई गई है। इस कविताओं/काव्यांशों से आपको परीक्षा में सप्रसंग व्याख्या करनी होगी।

इकाई 14 भारतेन्दु युगीन हिंदी काव्य का स्वरूप और विकास

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 भारतेन्दु युगीन हिंदी काव्य की पृष्ठभूमि
 14.2.1 राजनीतिक पृष्ठभूमि
 14.2.2 सामाजिक पृष्ठभूमि
 14.2.3 साहित्यिक पृष्ठभूमि
 14.2.4 भारतेन्दु का आगमन
14.3 भारतेन्दु युगीन हिंदी काव्य का विकास
 14.3.1 बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन
 14.3.2 प्रतापनारायण मिश्र
 14.3.3 पं. राधाचरण गोस्वामी
 14.3.4 राधाकृष्ण दास
14.4 भारतेन्दु युगीन हिंदी काव्य की विशेषताएँ
 14.4.1 विषयवस्तु
 14.4.2 भाषा-शैली
 14.4.3 छंदोविधान
14.5 सारांश
14.6 उपयोगी पुस्तकें
14.7 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

14.0 उद्देश्य

हिंदी में ऐच्छिक पाठ्यक्रम-2 के अन्तर्गत आपने अब तक तीन खंडों का अध्ययन कर लिया है। यह चौथा खंड "आधुनिक काव्य" पर आधारित है। इस खंड की पहली इकाई भारतेंदु युगीन काव्य के स्वरूप और विकास से संबंधित है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- उन राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक आदि पृष्ठभूमि को स्पष्ट कर सकेंगे जिसके कारण आधुनिक काव्य की शुरुआत हुई,
- इस युग के प्रणेता भारतेन्दु के योगदान का विश्लेषण प्रस्तुत कर सकेंगे,
- बता सकेंगे कि इस युग के कवियों ने हिंदी काव्य को नई दिशा देने में क्या भूमिका निभाई, और
- भारतेन्दु युगीन हिंदी काव्य की संरचनागत विशेषताओं को बता सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

ऐच्छिक पाठ्यक्रम-2 से संबंधित चौथे खंड की यह पहली इकाई है अर्थात इस पाठ्यक्रम की यह चौदहवीं इकाई है। इस पाठ्यक्रम के अन्तर्गत अब तक आपने तीन खंडों में तेरह इकाइयों का अध्ययन कर लिया है। आदि काव्य, भक्ति काव्य एवं रीतिकाव्य के विकास एवं विस्तार की जानकारी भी प्राप्त कर ली है। आपने प्रत्येक काल से संबंधित कवियों के काव्य का भी अध्ययन किया और उनकी विशेषताओं को भी जाना। पिछले खंडों के अध्ययन से आपने यह भी अनुमान लगा लिया होगा कि हिंदी काव्य का स्वरूप विभिन्न कालों में परिवर्तित होता रहा है। भाषा, विषयवस्तु एवं छंद, अलंकार सभी दृष्टियों से हिंदी काव्य में परिवर्तन आया। पिछले खंडों में हमने आपको प्रत्येक काल के स्वरूप एवं विकास से परिचित करवाया, जिससे आपको उन कालों में हिंदी काव्य में आए परिवर्तन को समझने में आसानी हुई। यह चौथा खंड आधुनिक काव्य से संबंधित है। इस खंड की पहली इकाई भारतेंदु युग के काव्य के स्वरूप एवं विकास से संबंधित है। हिंदी साहित्य के इतिहास में भारतेन्दु हरिश्चंद्र का आगमन एक युगान्तकारी घटना थी। हिंदी भाषा के काव्य एवं गद्य की विविध विधाओं में नवीनता का समावेश करके उन्होंने युगान्तकारी परिवर्तन लाया। यही कारण है कि विद्वानों ने इस काल खंड का नामकरण भारतेन्दु के नाम पर किया। हमारी इस इकाई का नाम भी "भारतेन्दु युगीन हिंदी काव्य का स्वरूप और विकास" इसी तथ्य को ध्यान में रख कर किया गया है। किसी भाषा के काव्य में विषयवस्तु, भाषा, शैली, अलंकार आदि में क्यों परिवर्तन उपस्थित होता है? क्या कारण है कि अचानक काव्य की प्रवृत्ति बदल

जाती है? इन प्रश्नों के उत्तर जानने के लिए हमें सबसे पहले उन सामाजिक-राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, साहित्यिक तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने की आवश्यकता है जिनका प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर पड़ता है। आइए भारतेन्दु युगीन हिंदी काव्य के स्वरूप एवं विकास को समझने तथा उनका विश्लेषण और मूल्यांकन करने के लिए उपर्युक्त परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त करें।

14.2 भारतेन्दु युगीन हिंदी काव्य की पृष्ठभूमि

किसी काल के साहित्य में बदलाव के पीछे राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक कारण मौजूद रहते हैं। भारतेन्दु युगीन हिंदी काव्य में परिवर्तन आया इसके पीछे भी तत्कालीन परिस्थितियाँ मौजूद थीं। भारतेन्दु के समय का काल स्वयं भारत के लिए नहीं बल्कि पूरे विश्व के लिए अत्यंत महत्व का था। इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप उन्नति का नया मार्ग प्रशस्त हुआ था। इस युग में नये-नये अन्वेषण और आविष्कार हुए, धर्म और दर्शन का नया संस्करण हुआ, राजनीति और समाजव्यवस्था में मौलिक क्रांति का सूत्रपात हुआ। पश्चिमी यूरोप विशेषकर इटली, नीदरलैण्ड, स्पेन, फ्रांस, जर्मनी और इंग्लैण्ड में एक नयी सांस्कृतिक चेतना जागी। इस युग में कार्लमार्क्स और एंगिल्स जैसे राजनीतिक विचारक पैदा हुए। मनोविश्लेषण के आचार्य सिगमण्ड फ्रायड का आगमन भी इसी काल में हुआ। भारतीय परिवेश में देखा जाय तो ब्रह्म समाज के प्रवर्तक राजा राममोहन राय, आर्य समाज के प्रवर्तक दयानंद सरस्वती आदि समाज सुधारक इसी कालखंड की उपज थे। सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, दादा भाई नौरोजी और सर सैयद अहमद आदि राजनीतिक नेता भी इसी काल खण्ड की शोभा थे। आधुनिक शिक्षा के प्रवर्तक ईश्वरचन्द्र विद्यासागर भी इसी काल खंड में सक्रिय थे। "वन्देमातरम" के प्रणेता एवं बंगला भाषा के श्रेष्ठ साहित्यकार बंकिमचंद्र इसी युग की विभूति थे। हिंदी प्रदेश में युग निर्माता भारतेन्दु हरिश्चंद्र का प्रादुर्भाव भी इसी समय हुआ। साहित्य में नए-नए विषयों का समावेश करके भारतेन्दु ने नवजागरण का सूत्रपात किया। देशभक्ति, राजभक्ति, समाजसुधार, स्वदेश-प्रेम, हिंदी भाषा प्रेम आदि विषयों पर कविताएँ लिखकर काव्य की संकीर्ण सीमा का विषय विस्तार किया। तत्कालीन सभी कवियों में भारतेन्दु द्वारा प्रारंभ की गई प्रवृत्तियों का ही विस्तार हुआ। साहित्य में नये बदलाव के पीछे तत्कालीन परिस्थितियों का हाथ था। हम यहाँ एक-एक करके उन परिस्थितियों के बारे में जानें जिससे हमें स्पष्ट पता चले कि काव्य में परिवर्तन क्यों आया।

14.2.1 राजनीतिक पृष्ठभूमि

यूरोप के देशों से भारत का व्यापारिक संबंध बहुत पुराना है। भारत के साथ व्यापार कर यूरोपीय व्यापारियों को बहुत लाभ होता था। मुगल काल में कई यूरोपीय देशों के व्यापारियों द्वारा भारत के साथ व्यापार के लिए संघर्ष हुआ। अंग्रेज अपनी बुद्धिमत्ता एवं जलसेना के बल पर सबसे आगे निकल गए। मुगल बादशाहों से अनुमति पाकर अंग्रेजों ने व्यापारिक केंद्र स्थापित किये। भारत की राजनीति पर अंग्रेजों का ध्यान शुरू से ही था। केंद्रीय मुगल सत्ता की कमजोरी का फायदा उठाते हुए उन्होंने यहाँ की राजनीति में दखल देना शुरू किया। कूटनीति के बल पर उन्हें सफलता मिली। 1757 ई. में प्लासी के युद्ध के बाद अंग्रेजी राज की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ। धीरे-धीरे एक-एक कर भारतीय राज्यों पर अंग्रेजों का अधिकार होता चला गया। सन् 1857 ई. तक लगभग सारा भारत अंग्रेजों के अधीन था। यदि अंग्रेज भारतीय वस्तुओं का व्यापार करके मुनाफा ही कमाते तो भारत की आर्थिक स्थिति पर इसका अधिक प्रतिकूल असर नहीं पड़ता था। किंतु इंग्लैण्ड में हुई औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप यह स्थिति बदल गई। भारत के कच्चे माल का प्रयोग इंग्लैण्ड में उन्नत आधुनिक उपकरणों द्वारा माल उत्पादन में होता था। तैयार माल को अधिक कीमत पर इस देश में बेचा जाने लगा। इस बदली हुई परिस्थिति के कारण भारत की आर्थिक स्थिति खराब होने लगी। शोषण के कारण लोगों में असंतोष इकट्ठा होने लगा। तत्कालीन अंग्रेजी शासन की शोषण नीति इस प्रकार की थी कि स्वयं एक अंग्रेज लेखक जॉन ब्राइट द्वारा इस काल को "ए हंड्रेड यीयर्स ऑफ क्राइम" कहना पड़ा अंग्रेजी शासन से त्रस्त भारतीय जनता ने आवाज़ उठाई और इतिहास प्रसिद्ध सन् 1857 ई. का जन-विद्रोह हुआ। विद्रोह के परिणामस्वरूप राजनीतिक क्षेत्र में परिवर्तन आया। विद्रोह को दबाने के बाद शासन का भार ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथ से निकल कर रानी विक्टोरिया के हाथ में चला गया। रानी ने पहली नवंबर, सन् 1858 ई. को घोषणा-पत्र जारी किया। भारतीयों को आश्वासन दिलाया गया कि सरकार प्रजा की भलाई के लिए कार्य करेगी। रंग, जाति और धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाएगा। सरकारी नौकरियों में शिक्षा योग्यता एवं कार्य-क्षमता के अनुसार ही भरती की जाएगी। रानी के आश्वासन से भारतीयों में आशा जगी। यही कारण है कि तत्कालीन कवियों ने उस समय महारानी की मुक्त-कंठ से प्रशंसा की। सरकार की ओर से कई सुधार भी किए गए। कलकत्ता, मद्रास एवं बंबई में विश्वविद्यालयों की स्थापना भी की गई और अंग्रेज़ी शिक्षा का प्रचार किया गया। इस बीच, सन् 1861 ई. में पंजाब, राजपूताना, आगरा और अवध के कुछ भागों में भीषण अकाल पड़ा बहुत से लोग मारे गए। सन् 1864 ई. से सन् 1869 ई. तक सर जॉन लारेन्स के वाइसराय के पद पर कार्यरत होने के काल में कृषि से बंधी सुधार किए गए। इस बीच फिर सन् 1866 ई. से 1869 ई. में भारत के कई भागों में अकाल पड़ा, सैकड़ों लोगों की जानें गई। सन् 1870 ई. से जनता पर कई प्रकार के कर लगाए गए। सन् 1878 ई. में भारतीय मिलों के कपड़ों पर कर लगा दिया गया। सिविल सर्विस परीक्षा में उम्र घटाकर भारतीयों को परीक्षा से दूर रखने का षड्यंत्र रचा गया। सन् 1877 ई. में दिल्ली में शानदार दरबार कर लिटन ने विक्टोरिया को भारत की साम्राज्ञी घोषित किया। इस आयोजन में बहुत-सा धन व्यय किया गया। एक ओर धन का व्यय हो रहा था दूसरी ओर चेचक आदि महामारियों में लोग मरे जा रहे थे। सन् 1878 ई. में

"वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट" के द्वारा भारतीय भाषाओं में प्रकाशित समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता पर पाबंदी लगा दी गई। इन सब कारणों से जनता में राष्ट्रीय चेतना के बीज अंकुरित होने लगे। सन् 1880 ई. से सन् 1884 ई. में वायसराय लार्ड रिपन के कार्यकाल में कई महत्वपूर्ण कार्य हुए। सन् 1882 ई. में "प्रेस ऐक्ट" को समाप्त कर दिया गया। शिक्षा संस्थाओं को सरकारी सहायता दी गई। सन् 1883 ई. में "इलबर्ट-बिल" के विरोध में आंदोलन प्रारंभ हुआ लार्ड रिपन ने इस आंदोलन के साथ सहानुभूति रखी। बाद के वायसराय डफरिन आदि ने जनता की भलाई का कार्य नहीं किया। प्रायः सभी वायसरायों ने (केवल उदारवादियों को छोड़कर) भारतीय जनता के साथ दोहरी नीति बनाए रखी। ऊपरी तौर पर वे जनता की भलाई की बातें करते थे, लेकिन चाहते यह थे कि हर प्रकार से शोषण की नीति कायम रहे। अंग्रेजों की इस नीति के परिणामस्वरूप जनता में चेतना जगी। परिणाम था सन् 1885 ई. में "भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस" की स्थापना। कांग्रेस के मंच से भारतीय जनता ने राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम की शुरुआत की। यह तो थी तत्कालीन समय में भारत की राजनीतिक स्थिति। अब हम उस समय की सामाजिक स्थिति को देखें।

14.2.2 सामाजिक पृष्ठभूमि

तत्कालीन समय में भारत की सामाजिक स्थिति द्वेषपूर्ण थी। लोगों में जातिगत द्वेष बहुत अधिक बढ़ गया था। समुद्र यात्रा करना पाप समझा जाता था। समुद्र यात्रा करने पर व्यक्ति को समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था। समाज दो वर्गों में विभक्त हो गया था। एक प्राचीन मान्यताओं का पुजारी था तो दूसरा नवीनता का। समाज में नशाखोरी एवं व्यभिचार बढ़ रहा था। ब्रिटिश शासक साम्राज्यवाद एवं शोषण की नीति को बनाए रखने के लिए कूटनीति से काम ले रहे थे। मादक वस्तुओं का प्रचार करके तथा हिन्दू-मुसलमानों में विभेद नीति अपना कर वे अपना कार्य सिद्ध करना चाहते थे। तत्कालीन समाज में नारी का स्थान दयनीय अवस्था में था। पर्दा-प्रथा के कारण उन्हें घर की चहार-दीवारी में बंद रहना पड़ता था। बौद्धिक एवं मानसिक विकास का अवसर उन्हें नहीं मिल पाता था। लड़कियों की शिक्षा पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था यदि अवसर पाकर कोई पढ़ भी जाती थी तो उसके विवाह में अड़चन आती थी। समाज में बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह और बहु-विवाह की कुप्रथाएँ फैली हुई थीं। कम अवस्था में ही लड़कियों की शादी कर दी जाती थी, दहेज प्रथा के कारण निर्धन व्यक्ति अपनी लड़कियों का विवाह वृद्ध पुरुष के साथ करने को विवश हो जाते थे जिससे कम अवस्था में ही लड़कियाँ विधवा बन जाती थीं। कई-कई स्त्रियाँ रखना लोगों के शान-शौकत में शामिल हो गया था। इन सब कुरीतियों के खिलाफ समाज सुधारकों ने आंदोलन शुरू किया। सन् 1872 ई. में केशवचन्द्र सेन के प्रयास से सरकार ने बाल-विवाह एवं बहु-विवाह पर प्रतिबंध लगाया। नर-बलि तत्कालीन समाज की एक अत्यंत पाशविक प्रथा थी। वंश वृद्धि तथा देवी-देवताओं की उपासना के लिए नर-बलि दी जाती थी। सर्वप्रथम सन् 1795 ई. में और फिर सन् 1802 ई. में सरकार ने इस प्रथा को कानून बनाकर बंद करने का प्रयत्न किया। राजपूताना, बंगाल एवं दक्षिण भारत में सती प्रथा विशेष रूप से प्रचलित थी। पति की मृत्यु के बाद पत्नी को जबरदस्ती चिता में ढकेल दिया जाता था। राजा राममोहन राय ने इस प्रथा को समाप्त करने का जोरदार प्रयत्न किया और उनके ही प्रयास से सन् 1829 ई. में सरकार ने इस प्रथा को दंडनीय घोषित किया। इस प्रथा पर प्रतिबंध लग जाने से समाज में विधवाओं की संख्या में वृद्धि हुई। इस समस्या के समाधान के लिए ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने विधवा-विवाह का आंदोलन शुरू किया। सन् 1856 ई. में सरकार ने विधवा-विवाह को वैध घोषित किया। इस इकाई में आगे हम देखेंगे कि सभी कवियों ने अपनी रचनाओं में तत्कालीन समाज का चित्रण किया है। धार्मिक क्षेत्र में तत्कालीन समय में बहुदेववाद रूढ़िप्रियता-अंधविश्वास उत्कर्ष पर था। शैव, शाक्त, वैष्णव आदि मतवाद का जोर था। सभी अपने-अपने देवों की श्रेष्ठता सिद्ध करने में लगे हुए थे। ब्राह्मणों का प्रभुत्व था, ये कर्मकाण्ड को बढ़ावा दे रहे थे। अंग्रेजों द्वारा देश की राजनीति पर प्रभुत्व जमाने के बाद ईसाई धर्म-प्रचारकों के कार्य में तेजी आ गई थी। हिन्दू धर्म के आडम्बर-प्रियता, संकीर्णता, फूट आदि की आलोचना कर ये भारतीय नवयुवकों को अपनी ओर आकर्षित करने में लगे थे। बहुत से नवयुवकों को ईसाई धर्म-प्रचारकों की बात अच्छी लगी और उन्होंने ईसाई मत को अपनाया। किन्तु इसी समय भारतीय समाज सुधारकों में भी चेतना आयी। अपने धर्म को नये दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न किया। एक नया धार्मिक आंदोलन प्रारंभ हुआ ब्रह्म-समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, ब्रह्म विद्या समाज आदि संस्थाओं तथा रामकृष्ण एवं विवेकानंद जैसे महापुरुषों द्वारा यह कार्य सम्पन्न हुआ। अंग्रेजी शिक्षा द्वारा जहाँ यूरोप में हुई वैज्ञानिक प्रगति का ज्ञान प्राप्त हुआ वहीं लोगों में प्रत्येक चीज में वैज्ञानिकता खोजने की प्रवृत्ति जागी। आंदोलन द्वारा धार्मिक रूढ़ि, सती प्रथा, जाति-पांति के विरोध, मूर्ति पूजा, अवतारवाद पर विश्वास मिटाने का प्रयत्न किया गया। शिक्षा के प्रचार पर जोर दिया गया। मजदूरों एवं स्त्रियों की शिक्षा पर ध्यान दिया गया। इस प्रकार, समाज में नवजागरण की लहर फैलने लगी।

14.2.3 साहित्यिक पृष्ठभूमि

राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक स्थितियों के परिचय से यह स्पष्ट है कि धीरे-धीरे सभी क्षेत्रों में परिवर्तन का दौर शुरू होने लगा था। अब हम साहित्यिक पृष्ठभूमि के बारे में जानेंगे। सन् 1857 ई. के पहले भारतीय साहित्येतिहास में रीतिकाल की परंपरा का ही बाहुल्य था दरबारी-विलास से पूर्ण रचनाएँ होती थीं। इसके पीछे एक बहुत बड़ा कारण था, यह था कवियों को राज्याश्रय प्राप्त होना। कवि एवं साहित्यकार अपनी जीविका को प्रमुख मानकर साहित्य की रचना कर रहे थे। आश्रयदाताओं के यहाँ उनकी लेखनी वही लिखती थी, जो उनके आश्रयदाता चाहते थे। राजाओं की प्रशंसा एवं नायक-नायिकाओं के भेद तथा राजा के सुख वैभव का वर्णन करना उनका कार्य था। यही कारण है कि साहित्य में इस समय चतुर्मुखी विकास नहीं हो सका। किंतु भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ ही इस स्थिति में परिवर्तन आया। ब्रिटिश शक्ति के सामने देशी राज्य टिक नहीं सके सभी एक-एक कर पराधीन होते गए। कवियों का राज्याश्रय भी समाप्त होने लगा। कवि राजाओं के विलास को छोड़कर जनता के संपर्क में आने लगे और परिणामतः जन साहित्य का प्रणयन शुरू हुआ। सन् 1792-93 ई. से अंग्रेजी के माध्यम से उपयोगी ज्ञान की शिक्षा के

लिए अंग्रेजों ने प्रयत्न शुरू किया था। सन् 1800 ई. में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना हुई। सन् 1813 ई. में एक लाख रुपए की राशि वैज्ञानिक शिक्षा के लिए रखने की बात कहीं गई। किन्तु उसपर आगे कार्रवाई नहीं हुई। राजा राममोहन राय के प्रयत्न से सन् 1817 ई. में हिन्दू कॉलेज की स्थापना हुई। फिर धीरे-धीरे देश के कई भागों में कॉलेजों की स्थापना हुई। सन् 1823 ई. में आगरा कॉलेज, सन् 1830 ई. में दिल्ली कॉलेज, सन् 1830 ई. में ही बरेली कॉलेज, सन् 1833 ई. में कलकत्ता स्कूल ऑफ बुक सोसाइटी तथा सन् 1834 ई. में बंबई में ऐल्फिन्सटन कॉलेज की स्थापना हुई। इस प्रकार, शिक्षा के क्षेत्र में धीरे-धीरे प्रगति हो रही थी। सन् 1855 ई. तक भारत में अंग्रेज़ी भाषा का अच्छा खासा प्रचार हो गया था। नवीन शिक्षा द्वारा जनजागरण में तेजी आई। कविता के क्षेत्र में कवियों ने अतीत एवं वर्तमान दोनों को स्थान दिया। कवियों ने एक ओर कबीर, सूर और तुलसी के अनुकरण पर उपदेशात्मक एवं भक्तिपूर्ण रचनाएँ की तो साथ ही साथ बिहारी और मतिराम के अनुकरण पर शृंगारपूर्ण रचनाएँ भी कीं। दूसरी ओर, वर्तमान स्थिति से प्रभावित राष्ट्र-प्रेम एवं सामाजिक यथार्थ से पूर्ण रचनाएँ की गईं। इस प्रकार परंपरा को निभाते हुए कवियों ने नये-नये भावों एवं विचारों को कविता में स्थान दिया। इस काल की कविता जन-जीवन के साथ अपना पग मिलाने लगी। कवियों का उद्देश्य जनता में जागृति लाना था। जनता की अभिरुचि एवं प्रचार की सुविधा के लिए कविता में विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया गया। भक्ति और रीतिकाव्य के कवित्त, दोहे, सवैया लिखे गए; साथ ही नए-नए साहित्यिक गीतों और लोक गीतों की रचना प्रारंभ हुई। लोक गीत—कजली, खेमटा, कहरवा, ठुमरी, गजल, होली अद्धा, चैती, बिरहा, लॉवनी आदि छंदों में लिखे गए। इकाई में कवियों की रचनाओं की चर्चा करते हुए हम उनके काव्य रचना के उदाहरणों द्वारा जानेंगे कि किस प्रकार कविता के छंदों में परिवर्तन आया।

भाषा के क्षेत्र में इस युग में क्रांतिकारी परिवर्तन आया। अब तक अवधी एवं ब्रजभाषा में ही काव्य रचनाएँ की जाती थीं। रीतिकाल में तो यह मान्यता हो गई थी कि ब्रजभाषा को छोड़कर अन्य भाषा में कविता हो ही नहीं सकती। धीरे-धीरे खड़ी बोली-पद्य का आंदोलन प्रारंभ हुआ। कुछ लोगों ने परंपरानुकूल ब्रजभाषा का पक्ष लिया तो कुछ लोग नवीन दृष्टिकोण को लेकर खड़ी बोली की ओर बढ़े इस प्रकार का आंदोलन सन् 1887 ई. से सन् 1890 ई. तक चला। ब्रजभाषा के पक्षधरों में प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी आदि थे तो खड़ी बोली के पक्ष में अयोध्याप्रसाद खत्री, श्रीधर पाठक आदि प्रमुख थे। धीरे-धीरे लोगों में खड़ी बोली के प्रति रुचि बढ़ती गई और ब्रजभाषा का स्थान पिछड़ता गया। खड़ी बोली पद्य रचना की क्षीण परंपरा खुसरो की मुकरियों तथा कबीर के दोहों से शुरू होती है और आधुनिक काल तक पूर्ण विकास में परिणत होती है।

इस प्रकार हमने देखा कि तत्कालीन समय में किस प्रकार की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियाँ थीं और किस प्रकार उनमें परिवर्तन उपस्थित हो रहा था। यही वह समय था जब हिंदी भाषा साहित्य के इतिहास में एक ऐसे व्यक्तित्व का आगमन होता है जिसने अपनी प्रतिभा के बल पर हिंदी भाषा साहित्य में युगान्तकारी परिवर्तन लाया। इस युगपुरुष का नाम था भारतेन्दु हरिश्चंद्र। आइए हिंदी भाषा साहित्य के इस आधार स्तम्भ के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करें। उसके बाद हिंदी काव्य के इस परिवर्तन के विस्तार को अन्य कवियों के माध्यम से जानेंगे।

14.2.4 भारतेन्दु का आगमन

भारतेन्दु का जन्म काशी के एक समृद्ध परिवार में 9 सितंबर, सन् 1850 ई. को हुआ था। इनके पिता बाबू गोपालचन्द्र स्वयं उच्च कोटि के कवि थे। बचपन से ही इनमें काव्य रचना की प्रतिभा थी। पाँच वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने एक दोहा कहा —

लै ब्योंड़ा ठाड़े भये, श्री अनिरुद्ध सुजान।
बानासुर के सैन को, हनन लगे भगवान॥

पिता ने बालक की प्रतिभा देखकर आशीर्वाद दिया कि वह एक दिन बहुत बड़ा आदमी बनेगा। पिता का आशीर्वाद प्रतिफलित हुआ, भारतेन्दु केवल बड़ा आदमी ही नहीं, युग-निर्माता बने। बचपन में ही माता-पिता का साया उठ गया जिससे इनमें स्वच्छंद रहने की प्रवृत्ति बढ़ी। स्कूली शिक्षा नाम मात्र की ही हो पाई। ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा तो थी ही, किसी भी रचना को एक बार पढ़ने पर कभी नहीं भूलते थे। हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी का अध्ययन लगन से किया। ग्यारह वर्ष की अवस्था में जगन्नाथ पुरी की यात्रा के समय बंगला भाषा का नाटक "विधवा विवाह" के अध्ययन से बंगला भाषा के प्रति रुचि बढ़ी। यात्रा के दौरान देश की दशा को देखने का अवसर मिला। देश की दुर्दशा देखकर उनमें देश सेवा की भावना जगी। हिंदी भाषा का उद्धार एवं अंग्रेजी भाषा के प्रचार द्वारा राष्ट्र सेवा का व्रत लिया। सर्वप्रथम उन्होंने एक प्राइमरी पाठशाला "चौखंभा स्कूल" के नाम से खोली। यह पाठशाला आज भी "हरिश्चंद्र कॉलेज" के रूप में विद्यमान है। भारतेन्दु ने सात वर्ष की अवस्था में सन् 1857 ई. में भारतीय स्वतंत्रता का प्रथम संग्राम देखा था। भारतीय राजनीति में परिवर्तन हो चुका था। भारत इंग्लैण्ड का उप निवेश बन चुका था। अंग्रेजों की शोषण नीति कायम थी। ब्रिटेन की महारानी द्वारा घोषित पत्र की लुभावने सपने से मोह भंग होने लगा था। यद्यपि भारतेन्दु का परिवार अंग्रेजी राज का भक्त था, लेकिन भारतेन्दु केवल राजभक्ति से ही नहीं जुड़े रहे, उन्होंने जहाँ राजभक्ति की कविताएँ लिखीं वहीं सरकार की शोषण नीति के विरोध में भी आवाज़ बुलंद की। उन्होंने राष्ट्र सेवा का व्रत लिया था और इस कार्य के लिए हिंदी भाषा को अपना अस्त्र बनाया। अंग्रेजी सरकार की कूटनीति केवल राजनीति तक सीमित नहीं थी बल्कि भाषा के विवाद को खड़ा कर वे अपना कार्य सिद्ध करना चाहते थे। उर्दू-हिंदी के झगड़े को बढ़ाकर वे हिंदू-मुसलमानों में दूरी बनाए रखना चाहते थे। इसके पीछे उनका उद्देश्य यह था कि वे नहीं चाहते थे कि हिंदू-मुसलमानों में एकता कायम हो। यह उनके लिए हानिकर हो सकता था। भारतेन्दु अंग्रेजों की नीति को भली-भांति

समझते थे। उन्होंने हिंदी-उर्दू के झगड़े को समाप्त करने के लिए बीच का रास्ता निकाला। उन्होंने साहित्य रचना के लिए ऐसी भाषा की शुरुआत की, जो जनता के लिए ग्राह्य हो। उन्होंने घोषणा की, कि अपनी भाषा की उन्नति करके ही हम सभी प्रकार की उन्नति कर सकते हैं।

निज भाषा उन्नति अहे, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।।

तत्कालीन सामाजिक कुरीतियाँ से देश जर्जर हुआ जा रहा था। भारतेन्दु ने कुरीतियों के विरोध में लेखनी उठायी। निर्धनता, अकाल, बहु-विवाह, बाल विवाहँ, विधवा विवाह निषेध और उससे उत्पन्न व्यभिचार आदि का अशिक्षा एवं अज्ञानता आदि का रोग, बैर, आलस्य, टैक्सों का आधिक्य, छुआ-छूत, अदालती बुराइयाँ, पुलिस के अत्याचारों आदि विषयों पर लिखकर भारतेन्दु ने नवजागरण का सूत्रपात किया। कलकत्ता में सन् 1826 ई. में प्रथम हिंदी पत्र "उदंत मार्तण्ड" का प्रारंभ कर पं. युगलकिशोर शुक्ल ने जिस परंपरा की शुरुआत की थी उसका विकसित रूप भारतेन्दु युग में मिलता है। स्वयं भारतेन्दु ने फिर से इस परंपरा की शुरुआत की। "कवि वचन सुधा हरिश्चंद्र मैगज़ीन आदि पत्रों द्वारा उन्होंने इस परंपरा को आगे बढ़ाया। हिंदी गद्य की विविध विधाओं की शुरुआत भारतेन्दु ने ही की। भारतेन्दु की दृष्टि किसी क्षेत्र विशेष पर सीमित नहीं थी। उन्होंने साहित्य में तत्कालीन उन सभी विषयों पर लेखन किया जिनसे जीवन के विविध क्षेत्र में नवजागरण का उन्मेष हुआ। भारतेन्दु अभूतपूर्व प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तित्व लेकर आए थे। उनके साहित्यिक, सामाजिक आदि सभी कार्यों का तत्कालीन सभी कवियों पर प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। यही कारण है कि तत्कालीन कवियों की एक ऐसी मंडली तैयार हो गई जिसने भारतेन्दु द्वारा प्रारंभ किए गए जनजागरण के कार्य को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस मण्डली को साहित्योतिहास में "भारतेन्दु-मण्डल" के नाम से प्रतिष्ठा मिली। आइए अब हम भारतेन्दु मण्डल के कवियों के बारे में एक-एक कर जानकारी प्राप्त करें तथा भारतेन्दु के काव्य के स्वरूप एवं विकास को जानें, उससे पहले कुछ बोध प्रश्नों के उत्तर दें:

बोध प्रश्न

1 क्या कारण थे कि भारतेन्दु युग से पूर्व के कवि परिपाटी के अनुसार ही काव्य रचना करते थे? दो-तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

2 जनसाधारण की समस्याओं से संबंधित काव्य रचना प्रारंभ होने के पीछे क्या कारण थे? दो-तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

3 नीचे कुछ शिक्षा संस्थाओं एवं उनकी स्थापना से संबंधित वर्ष दिए जा रहे हैं। आप इनका सही मिलान करें:

शिक्षा संस्थाएँ	स्थापना वर्ष
क) फोर्ट विलियम कॉलेज	सन् 1817 ई.
ख) हिंदू कॉलेज	सन् 1800 ई.
ग) आगरा कॉलेज	सन् 1830 ई.
घ) दिल्ली कॉलेज	सन् 1823 ई.
ङ) बरेली कॉलेज	सन् 1833 ई.
च) कलकत्ता बुक सोसाइटी	सन् 1834 ई.
छ) ऐल्फिंसटन कॉलेज	सन् 1830 ई.

4 खड़ी बोली में पद्य रचना की प्रवृत्ति शुरुआत के किन कवियों में पायी जाती है?

....

....

5 भाषा के मामले में भारतेन्दु का क्या विचार था?

....

....

अभ्यास

1 भारतेन्दु युग की राजनीतिक परिस्थितियों की चर्चा करते हुए स्पष्ट कीजिए कि जनता में असंतोष के पीछे क्या कारण थे? दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

14.3 भारतेन्दु युगीन हिंदी काव्य का विकास

काव्य की दृष्टि से भारतेन्दु युग संक्रांति का युग है। इस समय एक ओर प्राचीन काव्य धारा का प्राचुर्य रहा तो दूसरी ओर नई काव्य धारा की शुरुआत भी हुई। इस युग के कवियों को तीन कोटियों में रखा जा सकता है, प्रथम कोटि में ऐसे कवि आते हैं जिन्होंने आधुनिकता से अपने को बिल्कुल ही अलग रखा। सेवक, सरदार हनुमान कवि इस कोटि में आते हैं दूसरे कोटि में ऐसे कवियों को रखा जा सकता है जिन्होंने कविता लेखन का आरंभ तो प्राचीन परंपरा के अनुकूल किया किन्तु फिर वे आधुनिकता से युक्त काव्य रचना करते चले गए। ऐसे कवियों में स्वयं भारतेन्दु हरिश्चंद्र थे। इस कोटि के अन्य कवि थे चौधरी बदरी नारायण "प्रेमघन", प्रताप नारायण मिश्र और राधाकृष्ण दास। तीसरी कोटि में वैसे कवि आते हैं, जिन्होंने अर्वाचीन ढंग की काव्य रचनाएँ कीं इनमें बालमुकुन्द गुप्त का नाम प्रथम है। तत्कालीन हिंदी काव्य को नयी दिशा प्रदान करने का कार्य भारतेन्दु ने किया। उस समय के अन्य कवियों के लिए वे प्रेरणास्रोत बन गए थे। उनके द्वारा आरंभ किए गए कार्य को ही अन्य कवियों ने आगे बढ़ाया : बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन, राधाचरण गोस्वामी, प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्ण दास इनमें प्रमुख थे।

14.3.1 पं. बदरीनारायण चौधरी "प्रेमघन"

पं. चौधरी बदरीनारायण का जन्म सं 1912 जिला गोंडा के दत्तापुर गाँव में हुआ था। वर्षा ऋतु से इन्हें विशेष लगाव था। इसलिए उन्होंने अपना उपनाम भी "प्रेमघन" रखा था। ये भारतेन्दु के अंतरंग मित्र थे। प्रेमघन ने विपुल साहित्य की रचना की। भारतेन्दु द्वारा आरंभ किए गए कार्य को आगे बढ़ाया। जिस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने साहित्यिक गतिविधि को बढ़ाने के लिए "तदीय समाज" की स्थापना की थी उसी प्रकार प्रेमघन जी ने "सद्धर्म सभा" तथा "रसिक समाज" की स्थापना की। जिस प्रकार भारतेन्दु ने कविवचन सुधा, हरिश्चंद्र मैगजीन तथा बालाबोधिनी पत्रिकाएँ निकाली थीं, उसी प्रकार इन्होंने भी साहित्य-सेवा के उद्देश्य से "आनंद कादंबिनी" मासिक तथा "नागरी नीरद" साप्ताहिक पत्र निकाला। प्रेमघन ने जितनी भी साहित्यिक रचनाएँ की वह "प्रेमघन सर्वस्व" नाम के संकलन में उपलब्ध है। उन्होंने दो प्रबंध काव्य (1) जीर्ण जनपदः तथा (2) अलौकिक लीला तथा चार नाटकों भारत सौभाग्य, वारांगना रहस्य, प्रयाग रामागमन तथा वृद्ध विलाप के अलावा विपुल स्फुट काव्य की रचना की। विभिन्न अवसरों पर काव्य रचना की प्रवृत्ति इनमें थी। महारानी विक्टोरिया की हीरक जयंती के अवसर पर सनातन धर्म सम्मेलन के अवसर पर, नागरी लिपि के कचहरियों में प्रवेश के अवसर पर दादाभाई नौरोजी के पार्लियामेंट में प्रवेश के अवसर पर तथा भारतेन्दु के निधन के अवसर पर कविताएँ लिखीं। आइए उनके स्फुट काव्य के कुछ उदाहरण देखें। इंग्लैण्ड में दादाभाई नौरोजी को काला कहकर मजाक उड़ाया गया उस समय प्रेमघन ने क्षोभ पूर्ण रचना की--

अचरज होत तुमहु सम गोरे बाजत कारे।
तासों कारे "कारे" शब्दहु पर है वारे॥
कारे काम, राम, जलधर जल बरसनवारे।
यातै नीको है तुम कारे जाहु पुकारे
याहै असीस देत तुम कहँ, मिलि हम सब कारे॥

प्रेमघन भारतेन्दु युग के उन कवियों में हैं जो प्राचीन परंपरा से शुरू कर आधुनिकता की ओर बढ़ते गए हैं। प्राचीन पंपरा से युक्त एक उदाहरण देखिए—

छहरै मुख पै घनश्याम से केश, इतै सिर मोर पखा फहरै
उत गोल कपोलन में अति लोल अमोल लली मुक्ता भहरै
इहि भांति सो बद्री नारायण जू दोऊ देखि रहे जमुना लहरै
निति ऐसे सनेह सों राधिका श्याम हमारे हिये मे सदा बिहरै
"युगल मंगल स्तोत"

"बृजवंद पंचक" प्रेमघन की भक्तिभावपूर्ण रचना है। इसमें दोहा, कुंडलियाँ तथा छप्पय हैं। "कलिकाल तर्पण में प्रेमघन जी ने भारत के स्वर्ण अतीत एवं वर्तमान दुःखद दशा का चित्रण किया है। भारतेन्दु की रचना "बकरी विलाप" से प्रभावित होकर उन्होंने "पितर प्रलाप" की रचना की। इस रचना में राष्ट्रीयता का स्वर प्रबल है। "शोकाकुल बिंदु" की रचना इन्होंने भारतेन्दु के देहावसान पर लिखी थी। निम्नलिखित उदाहरण से आपको स्पष्ट होगा कि विशिष्ट अवसर पर कितनी अनुकूल रचना करते थे—

अथयो हरिश्चंद्र अमंद सो भारत चन्द चहुँ तम छाप गयो
तरू हिंदुन के हित उन्नति को बढ़तै अबहीं मुरझाय गयो
गुन रासि जवाहिर की गठरी अनमोल सो कौन उठाय गयो
नित जाके गरूर से चूर रहयो वह हिन्द ते हाय हराप गयो।

इस रचना के दो दोहे उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत हैं—

बल्लभ कु के शियगन मैं शोभा का हेट
अष्टछाप को नौ करन कविता भक्ति निकेट

तत्कालीन अंग्रेज़ी सरकार द्वारा टैक्स लगाए जाने पर कवियों के अंदर रोप प्रकट हुआ। प्रेमघन ने लिखा —

"जबसे लागहू इ टिक्कस हाय उड़ा होस मेरा
रोवे के चाहि, हंसी ढीढ़ी उठाना कैसा"

वे आगे लिखते हैं—

रोओ सब क मुंह बाप बाप
हाय हाय टिकस हाय हाय
रोज कचहरी धाप धाप
अमलन के ढिग जाय जाय

भारतेन्दु के समान प्रेमघन भी प्रथमतः राजभक्ति से पूर्ण रचना करते थे। 1857 की क्रांति की निंदा करते हुए उन्होंने लिखा—

देसी मूँढ सिपाह कछुक लै कुंटिल प्रजा संग
कियो अमिट उत्पात रच्यो बिन नासन को ढंग

महारानी विक्टोरिया के हीरक जुबली अवसर पर वे लिखते हैं—

तेरी सुखद राज की कीरति रहै अटल इत
धर्मराज, रघु, राम, प्रजा हिय में निमि अंकित

किंतु विदेशी सरकार की वास्तविकता को जानने के बाद उनमें देश के प्रति प्रेम जगा। भारत की प्रशंसा करते हुए वे लिखते हैं—

सब द्वीप की विद्या कला विज्ञान इत चली आवई
उद्यम निरत आरत प्रजा रहि सुख समृद्धि बढ़ावई
दुष्काल रोग अनीति नसि, सद्धर्म उन्नति पावई
भर, बिवुध, अन्न, सुरल भारत भूमि नित उपजावई

"आनंद अरूणोदय" में भारतीयों को उद्बुद्ध करने के लिए उन्होंने लिखा—

"उठो आर्य संतान सकल मिलि, बस न विलंब लगाओ"

भारतेन्दु युग के कवि जनता से जुड़ गए थे। लोक जीवन से संबंधित रचनाएँ होने लगी थीं। जिस प्रकार भारतेन्दु ने बारातों में गाए जाने के लिए उर्दू के सेहरा के ढंग पर एक बनरा लिखा था। उसी प्रकार प्रेमघन जी ने भी बनरे लिखे, एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

बनरा का ससि आया बनरा
सबके चखनि चकोर बनाया
जामा सुभग सियो दरजी तुव,
बग रुचिर रंगरेज सुहाणा।
सुखमा सीस तिहारी माली
सजि सेहरा अति अधिक बढ़ाया।

कजरियों की रचना कर भारतेन्दु युग के कवियों ने साहित्य को जन-जीवन से जोड़ दिया था। लोक गीतों में कजली या कजरी बहुत ही प्रसिद्ध है। प्रेमघन ने कजरियों की रचना की। निम्नलिखित उदाहरण में कवि ने मनःस्थित ब्रह्म का कितना सुन्दर वर्णन किया है—

तोहसे यार मिले के खातिर सौ सौ तार लगाईला।
गंगा रोज नहाईला, मंदिर में जाईला
कथा पुरान सुनीला, माला बेढि हिलाईला हो।

यह बनारसी लय से युक्त रचना है। प्रेमघन ने मुख्यतः ब्रजभाषा में कविता रचना की किन्तु, उन्होंने उर्दू में भी कुछ रचनाएँ कीं। एक गज़ल की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं—

मेरी जान ले, क्या नफा पाइएगा
छुड़ाकर ए दामन किधर जाइएगा।
जो कहता हूँ अब रहम ‿ जाय मुझपर
तो कहते हैं फिर आप आ जाइएगा।

प्रेमघ्रन के काव्य में प्राचीनता का तत्व कम, नवीनता का अधिक है।

जिन रचनाओं में प्राचीनता के तत्व हैं, वे हैं अपूर्ण प्रबंध अलौकिक लीला, कवित संबंधों के संग्रह प्रेम पीयूष वर्षा, दोहों के संग्रह "लालित लहरी" और शृंगार बिंदु। राजभक्ति, देशभक्ति, हिंदी के प्रति अनन्य प्रेम तथा हास्य आदि नवीनता के तत्व से युक्त रचनाएँ इस प्रकार हैं—

राजभक्ति — मंगलाशा, हार्दिक हर्षादर्श, भारत बधाई, आर्याभिनंदन और सौभाग्य समागम।

देशभक्ति — कलिकाल तर्पण, पितर प्रलाप, मंगलाशा, हार्दिक हर्षादर्श, भारत बधाई, स्वागत पत्र, आनंद बधाई, आनंद आर्याभिनंदन के अलावा फुटकर संगीत काव्यों, कजली होली आदि।

हिंदी के प्रति अनन्य प्रेम — आनंद बधाई शीर्षक कविता में

हास्य — "हास्य बिंदु" तथा "होली की नकल"

प्रेमघन के काव्य का अधिक भाग समसामयिक है। वे परंपरा से आरंभ कर नवीनता की ओर अग्रसर होते गए। वर्षा ऋतु से उन्हें विशेष प्रेम था। अतः अपनी कजलियों में वर्षा ऋतु का बहुत सुंदर वर्णन किया। होली, कजली, ठुमरी, दादरा, खेमटा, लावनी, गज़ल, आदि की रचना की और काव्य को जन जीवन से जोड़ा। भारतेन्दु को छोड़कर वे उस युग के सबसे बड़े कवि थे। केवल प्रतापनारायण मिश्र को उनके समक्ष लाया जा सकता है। आइए अब प्रतापनारायण मिश्र के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करें।

14.3.2 प्रतापनारायण मिश्र

प्रतापनारायण मिश्र का जन्म 24 सितंबर सन् 1856 ई. को कानपुर में हुआ था। स्कूली शिक्षा ढंग से नहीं हो पायी। हिंदी अंग्रेजी के अलावा स्वाध्याय से इन्होंने उर्दू, फारसी तथा बंगला भाषा का ज्ञान प्राप्त किया। भारतेन्दु द्वारा प्रकाशित पत्रिका "कविवचन सुधा" के द्वारा उनका झुकाव भारतेन्दु की ओर हुआ। मिश्र जी की प्रथम काव्य रचना "प्रेम पुष्पावली" की प्रशंसा स्वयं भारतेन्दु ने की। भारतेन्दु जैसे कवि की प्रशंसा पाकर मिश्र जी को बहुत बल मिला। उन्होंने लिखा—

श्री मुख जासु सराहना कीन्ही श्री हरिचंद
तासु कलम-करतूति लखि, लहै न को आनंद।

मिश्र जी ने तत्कालीन अन्य कवियों की भाँति ही सन् 1883 ई. में "ब्राह्मण" नामक मासिक पत्र निकाला। यह पत्र 50 वर्षों तक चला। भारतेन्दु युग में हिंदी भाषा साहित्य को नयी दिशा देने में तत्कालीन साहित्यकारों का बहुत बड़ा योगदान रहा। भारतेन्दु ने तो नयी-नयी विधाओं की शुरुआत की थी। उनके समय के अन्य लेखकों ने भी साहित्य के विविध विधाओं में लेखन किया। प्रतापनारायण मिश्र ने नाटक उपन्यास निबंध की भी रचना की। मिश्र जी की काव्य रचनाएँ इस प्रकार हैं—

1) प्रेम पुष्पावली
2) मन की लहर — (उर्दू, खड़ी बोली, संस्कृत, ब्रजभाषा, फारसी में 31 लावनियाँ)
3) शृंगार विलास
4) दंगल खण्ड (आल्हा)
5) ब्रेडला स्वागत
6) लोकोक्ति शतक — 100 कहावतों पर देश प्रेम भरी कविता

मिश्र जी प्रताप, प्रतापहरी, परतापनारायन, प्रेमदास आदि उपनाम से कविता करते थे। उर्दू में इनका तखल्लुस था बरहमन भारतेन्दु एवं प्रेमघन की तुलना में इनकी कविताएँ कम हैं फिर भी उनमें नवीनता सबसे अधिक है। लोक गीतों की रचना कर अन्य समकालीन कवियों के समान उन्होंने कविता को जन सामान्य से जोड़ा। कजली, लावनी, होली, दादरा तो लिखा ही साथ ही आल्हा जैसे लोकप्रिय प्रबन्ध गीत की भी रचना की कजली का एक उदाहरण देखिए—

कसकै मारे रे करेजवा तोरे नैना बाँके बान
नहिं भूलि जस वह दिन तानी बाकी भह कमान
जादू भरी रसीली चितवन, प्रेम भरी मुसकान
छिन-छिन पल-पल पर सुधि आवत, बिसरावत सब ज्ञान
अब 'परताप' न जीवत रहिहैं बिना अधर रस दान
ध्यान आप गर लागु नियरवा, नहिन निकसै प्रान

होली लोक गीत में मिश्र जी ने देश की दुर्दशा का चित्र खींचा है। उन्होंने एक दर्जन होलियाँ लिखीं। होली का एक सरस उदाहरण प्रस्तुत है।

आजु फगुवानो डोलै छैल
रँग-राते रसिया के मोरे, चलि न सकै कोउ गैल
जैसी आप सखा सँग तैसो, काहू को न दबैल
आवत लखिकै कुल जुवतनि को, लगै मचावन कैल
ताकि ताकि जात हनै पिचकारी, दिधरक निलज अरैल
गावत निपट कुकारी गारी, लावत नाहि मन मैल
सबकी लाज लेन में दैया, गिनै सधारन सैल
"प्रेमदास" धौं काह करैगों जसुमति का बिगरैल

भारतेन्दु युग की कविता का काल नवजागरण का काल था। कविता का प्रत्येक पक्ष एक नयी दिशा में पूर्ण स्फूर्ति के साथ आगे बढ़ रहा था। मिश्र जी कविता के लिए लोकहित और सरसता को प्रमुख मानते थे। भारतेन्दु युग के कवि जहाँ परंपरा के अनुकूल रचनाएँ करते थे वहीं धीरे-धीरे उनका रुझान आधुनिकता की ओर होता गया। मिश्र जी ने भी परंपरानुकूल वीर, भक्ति एवं शृंगारयुक्त रचनाएँ की। बाद में देश भक्ति, हास्य-व्यंग्य से युक्त रचनाएँ कीं। वीर भावना से युक्त रचनाएँ कम हैं लेकिन जो हैं वे उत्कृष्ट हैं। एक उदाहरण से आप इसे स्पष्ट समझ सकते हैं। 'हठी हमीर' रचना में युद्ध क्षेत्र का वर्णन बहुत सुन्दर है। इसमें चित्रात्मकता है—

कहूँ घन सों गरजैं गजराज। कहूँ महि खुदहिं कूदहिं बाज॥
कहूँ झमकैं रथ भातिन भांति। महू फब्रि फैलि पदातिनु पांति॥
लसै अति सेन सजी चतुरंग। फबी फहिराहि ध्वजा बहुरंग॥
बिराजहिं वीर सजे तन तानि। गहे कोउ शूल कोउ धनुबान॥
लिये कर पटिटम तोमर कोय। जिन्हें लखि कालहु को भय होय॥
चमकि रहीं चहुँधा असि सग्र। सकैं करि परबत हूँ कहं भग्र॥
चढ़ी परवीन भयंकर तोप। करैं छिन मौंहि त्रिलोकहिं लोप॥

परिस्थितियों की चर्चा करते समय हमने देखा कि भारतेन्दु युग के समय मत-मतान्तरों का जोर बढ़ रहा था। मिश्र जी ने अपनी भक्ति पूर्ण रचनाओं में स्पष्ट रूप से मतवाद से दूर रहने की बात कही —

"झूठे झगड़ों से मेरा पिण्ड छुड़ाओ।
मुझको प्रभु अपना सच्चा दास बनाओ।

'प्रताप लहरी'

मिश्र जी की भक्ति पूर्ण रचनाओं में भक्तिकालीन कवियों की सी उपदेशात्मकता मिलती है। संसार के भयावह परिणामों से अवगत कराते हुए वे ईश्वर की ओर उन्मुख होने की बात करते हैं—

जागो भाई जागो रात अब थोरी।
काल चोर नहि करन चहत है जीवन धन की चोरी॥
औसर चूके फिर पछतैहो हाथ मीनि सिर कोरी।
काम करो नहि काम न एहै बतै कोरी कोरी॥
जो कुछ बीती बीत चुकी सो चिंता से मुख मोरी।
आगे जागे बलै सो कीजै करि तन मन इकठौरी॥

'प्रताप लहरी'

मिश्र जी की शृंगारपूर्ण रचनाएँ स्वाभाविकता से पूर्ण है। शकुन्तला के मुख पर एक भ्रमर मंडरा रहा है। दुष्यन्त यह दृश्य देख कर भ्रमर की सराहना करता है—

धन्नि भँवर बड़ि भाग तिहारो रे।
कौन तप करि कीन्हों देहो कारो-कारो रे॥
फिर-फिर परसि-परसि भागत हौ,
बड़े-बड़े नैनन कोनिकै अनियारो रे॥
उड़ि-उड़ि गुंजत कानन के ढिग,
रस की कहत मानौ बातै प्यारी-प्यारी रे।
भाजत होठन को रस लै-लै,
बाँह सो हटायै ज्यों-ज्यों यह सुकुमारी रे॥

रीतिकालीन परंपरा के अनुरूप मिश्र जी ने ऋतु वर्णन किया है। वसन्त ऋतु, विरहिणी के लिए सबसे दुखदायिनी होती है। इस ऋतु में नायिका की क्या स्थिति है द्रष्टव्य है—

कीन्हौं कहा तरून जु लूटि लीन्हों नाहक में,
दीन्हों बन कोकिलन सहज पुकारे में।
आगि सी लगाय दई किंसुक गुलबन में,
भौरन को डारयो बहि वरत अंगारे में॥
परताप नारायनहु को न करत डर,
काम को जगाय दिय हरदय हमारे में।
सबहि सताय हाय लेकै रितुराज पापी,
जै है कि जमराजपुर आठ-अठवारे में।

'प्रताप लहरी'

भारतेन्दु युग राष्ट्रीय चेतना का युग है। ब्रिटिश साम्राज्य से उत्पन्न असंतोष सभी ओर फैल रहा था। मिश्र जी की कविताओं में भी यह असंतोष प्रकट हुआ है। प्रथमतः तो इन्होंने शासकों के छोटे-छोटे हितैषी कार्यों की मुक्त कंठ से प्रशंसा की युवराज विक्टर का स्वागत करते हुए मिश्र जी कहते हैं कि यदि तुम महारानी से निवेदन करोगे तो वे भारतीयों के कष्ट का निवारण करेंगी—

कहु उपाय करि प्रजा वर्ग की बिपति बिदरिहै,
सहजहि मह आनन्द अमृत की वर्षा करिहैं॥
फिर हम कबहूँ तुम्हरो गुण जिय ते न भूलैहैं।
कहिहैं जय, जयकार सदा इमि आशिष देहैं॥
जुग-जुग जीवहु जय जय युत युवराज दुलारे,
जुग-जुग जीवहु श्री विजयिनि के प्रान पियारे

'ब्राह्मण खण्ड 6, संख्या 4 युवराज स्वागतन्ते'

किंतु जब उन्होंने देखा निवेदन का कोई प्रभाव नहीं, तब उन्होंने अंग्रेजों की भर्त्सना करनी प्रारंभ की। भारतीयों को जगाना शुरू किया—

आपनो काम आपने ही हाथन भल होई।
परदेशिन परधर्मिन ते आशा नहिं कोई॥
धन धरती जिन हरी सुकरि है कौन भलाई।
जोगी काके मीत कलंदर केहि के भाई॥
सब तजि गहौ स्वतंत्रता नहि चुप लौटे खाव।
राजा केरे त्यो न्याय है पांसा पेरे तो दाव॥

'लोकोक्ति शतक'

एकता के बिना देश की उन्नति संभव नहीं अतः लोगों में एकता स्थापित कर देश उन्नति की कामना करते हुए मिश्र जी लिखते हैं—

प्रीति परस्पर राखहु मीत, जइहै सब दुख सहजहि बीत।
नहिं एकता सरिस बल कोय, एक-एक मिल ग्यारह होय॥

सामाजिक कुरीतियों से देश अधःपतन की ओर उन्मुख हो रहा है। बाल-विवाह की निन्दा करते हुए वे लिखते हैं—

बाल ब्याह ने बल नहिं रखा, चलते काया डोली है।
नहीं आने की मुख पर लाली, वृथा बिगाडी टोली है॥

'प्रताप लहरी'

समाज सुधारक एवं आर्य समाज के संस्थापक दयानंद के निधन पर वे ईश्वर को कोसते हैं—

करूणानिधि कहवाय हाय हरि आज कहा यह कीन्हों।
देश अधार सुतन तत्पर वर पुरुष रतन हरि लीन्हों॥
जो ऐसे ही बोझ लगत हो काल चक्र तब हाथे।
क्रस न गिराय दियो काहू भारत कलंक के माथे॥

देश प्रेम विषयक रचनाओं से स्पष्ट है कि उनमें एक सच्चे देश भक्त की पुकार है, लोक भावना से परिपूर्ण रचनाओं में उस समय की [illegible] साकार हो उठा है। कविताएँ जनता में स्फूर्ति, स्वाभिमान [illegible] राष्ट्रीय चेतना जगाने में समर्थ हैं।

मिश्र जी ने हास्य [illegible] से पूर्ण रचनाएँ की किंतु उनकी ऐसी रचनाएँ कोरे हास्य को महत्व नहीं देतीं बल्कि उसमें समाजोपयोगी [illegible] रहते हैं—

गोरण्डदास उवाच

जग जाने इंगलिश हमै वाणी वस्त्रहि जोय।
मिटै वदन कर श्याम रंग जन्म सुफल तब होय॥

14.3.3 श्री राधाचरण गोस्वामी

राधाचरण जी का जन्म 25 फरवरी सन् 1859 ई. को वृंदावन में हुआ था। इनके पिता गोस्वामी गल्लू जी स्वयं सुकवि थे। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने हरिश्चंद्र मैगजीन तथा हरिश्चंद्र चंद्रिका नाम की पत्रिकाओं का प्रकाशन किया था। राधाचरण जी हरिश्चंद्र मैगजीन पढ़ा करते थे, इस पत्रिका के माध्यम से उनमें हिंदी के प्रति प्रेम बढ़ा। हिंदी के प्रचार के लिए इन्होंने "कवि कुल कौमुदी" नामक एक संस्था की स्थापना की थी। तत्कालीन अंग्रेजी शासन द्वारा जन भाषा हिंदी के विकास को रोकने का षड्यंत्र रचा जा रहा था। राधाचरण जी ने ऐसे समय में शिक्षा कमीशन के सामने हिंदी के पक्ष में 21 हजार लोगों के हस्ताक्षर आवेदन प्रस्तुत किए। अन्य लेखकों के समान उन्होंने 'भारतेन्दु' नामक पत्र निकाला तथा इसके माध्यम से हिंदी साहित्य की सेवा की। राधाचरण जी ने गद्य-पद्य की लगभग छत्तीस ग्रंथों की रचना की। ब्रजभाषा से राधाचरण जी को अत्यंत प्रेम था। ब्रजभाषा के संबंध में वे लिखते हैं—

ब्रजभाषा भाषा भाषा ललित; कलित कृष्ण की केलि
या ब्रज मंडल में उठी, ताकी घर घर बेलि

सन् 1883 ई. में जब हिंदी के पक्ष में 21 हजार लोगों के हस्ताक्षर करवाए उस समय उन्होंने हिंदी के संबंध में कहा—

कवि, पंडित, परिजन, प्रभृति, छात्र, रसिक रिझवार
राजा प्रजा सप्रेम बस करि हिंदी को प्यार
हिंदी हिन्दुस्तान की भाषा विशद विशाल
जन्म लेत सवसो कहे माँग माँ दादा बाल

भारतेन्दु युगीन अन्य कवियों की भाँति ये अत्यंत भारत भक्त थे। उन्होंने अपनी रचनाओं में तत्कालीन अत्याचारी शासन की कटु आलोचना की, देश-दुर्दशा का अंकन किया तथा स्वदेश की प्रशंसा की है। पश्चिम का प्रभाव भारत पर बढ़ रहा था, ऐसा लगता था भारतीय संस्कृति समाप्त हो जायेगी। इसका गोस्वामी जी ने इस लावनी में चित्रण किया है।

मैं हाय हाय दै ध्याय पुकारौ कोई
भारत की डूबी नाव उबारो कोई
उड़ गए वेद के ब्रतदवान अति भोरे
ऋषिजन रस्सा नहि रहे खैंचनहारे
यामैं चिंतामणि सदृश रत्न की ढेरी
यामैं अमृत सम औषधीन की फेरी
बह चली सकल यूरोप, हाय मति भोई
भारत की डूबी नाव उबारो कोई

राधाचरण जी की काव्य रचनाओं में राजभक्ति तथा देश भक्ति दोनों पायी जाती हैं। लेकिन तत्कालीन शासन की खुलकर आलोचना करने की प्रवृत्ति बढ़ती दिखायी देती है। भारत के स्वर्णिम अतीत का चित्रण कर उन्होंने लोगों में नवचेतना फैलाने का प्रयास किया। उनकी काव्य रचनाएँ इस प्रकार हैं : 1) नव भक्तमाल, 2) दामिनी दूतिका, 3) शिशिर सुषमा, 4) इश्क चमन - प्रेम संबंधी दोहे, 5) भ्रमर गीत, 6) निपट नादान बारहमासी, 7) प्रेम बगीची - 17 पद, 8) भारत संगीत - 19 पद, 9) विधवा विलाप - 50 दोहे, 10) भू-भार हरणार्थ प्रार्थना - 12 छप्पय, 11) श्री गोपिका गीतम (संस्कृत में), 12) पातित स्तोत्र, रेलवे स्तोत्र, यमलोक की यात्रा (परिहास रूपी रचनाएँ)।

14.3.4 राधाकृष्ण दास

राधाकृष्ण दास का जन्म 7 अगस्त, सन् 1865 ई. को काशी में हुआ था। ये भारतेन्दु मण्डल के मुख्य कवियों में से थे। साथ ही भारतेन्दु हरिश्चंद्र के फुफेरे भाई भी थे। हिंदी भाषा साहित्य के विकास के लिए उन्होंने अथक प्रयास किया। सन् 1893 ई. में स्थापित "नागरी प्रचारिणी सभा" काशी के सभापति पद पर रहे तथा इसके माध्यम से हिंदी भाषा साहित्य को गौरवमय स्थान दिलाने का प्रयास किया। जब सन् 1895 ई. में अंग्रेजी सरकार ने हिंदी के लिए रोमन लिपि चलाने का षडयंत्र रचा, उस समय उन्होंने रोमन लिपि की अपूर्णता तथा देवनागरी लिपि की प्रशंसा की। अदालतों में होने वाले कार्यों में हिंदी के प्रयोग के लिए आंदोलन में भी सहयोग दिया। राधाकृष्ण दास ग्रंथावली के अनुसार इनकी समस्त काव्य रचनाएँ इस प्रकार हैं—

1) मेकडानेल पुष्पांजलि, 2) विजयिनी विलाप, 3) पथ्वीराज प्रयाण, 4) भारत बारहमासा, 5) जुबिली, 6) देश दशा, 7) छप्पन की बिदाई नए वर्ष की बधाई, 8) राम जानकी, 9) प्रताप विसर्जन, 10) रहिमन विलास, 11) विनय, 12) फुटकर कविता, सुनीति।

अन्य साहित्यकारों की भांति उन्होंने विभिन्न साहित्यिक विधाओं — लेख, जीवनचरित, नाटक आदि में लेखन कार्य किया। इन्होंने अनुवाद एवं संपादन का कार्य भी किया।

राधाकृष्ण दास जी बल्लभ संप्रदाय में दीक्षित कृष्ण भक्त थे, अतः कृष्ण भक्ति से संबंधित रचनाएँ भी की। राधा संबंधी एक पद द्रष्टव्य है—

हमारो चौथ चंदा का करिहै
श्री बृजचंद चंद मुख प्रेमी, औरन सों का डरिहै
कुल बोरिनि सब कहत गाँव में और नाम का धरिहै
"दास" कलंकहु हम प्रेकिन के ढिग आवत थरहरिहै

राधाकृष्ण दास ने संस्कृत के 14 नीति श्लोकों का अनुवाद दोहों में किया। एक उदाहरण देखिए—

नदी, शस्त्रधारी, नखी शृंगी, राजा, नारि
भूमि न इन्हैं पतीजिए, बुधजन कहत बिचारि

इन्होंने रहीम के दोहों पर कुंडलियाँ बनाई। उस युग में कुंडलियाँ बनाने की परंपरा चल पड़ी थी। भारतेन्दु ने भी बिहारी के दोहों पर कुंडलियाँ बनाई थीं। ये तो थीं परंपरा के अनुकूल रचनाएँ। आधुनिकता से युक्त रचनाओं में राजभक्ति एवं देशभक्ति से संबंधित रचनाओं को देखिए।

राजभक्ति से संबंधित दो रचनाएँ हैं — "जुबिली" और "विजयिनी विलाप", जुबली में 4 छप्पय हैं, जिनमें विक्टोरिया की हीरक ज्यन्ती का वर्णन है। एक उदाहरण देखिए —

परम दुःखमय तिमिर जबै भारत मैं छायो
गृह-विछेद बहु खंड राज्य, सब प्रजा सतायो
तबहि कृपा करि ईश बृटिश सूरज प्रगटायो
जिन उजरत करि कृपा बहुरि यह देस बसायो

"विजयिनी विलाप" में विक्टोरिया की मृत्यु पर शोक प्रकट किया गया है—

तिरसठ बरस जासु छाया सुख कीनो भारतवासी
ताको अनायास हरि लीनो, सब कहु-आसा नासी
रे बीसवीं सदी तेरो पैरो कैसो जग आयो
या बसुधा को अमल चंद्र हरि, चहुं दिसि तम फैलायो

देशभक्तिपूर्ण रचनाओं में तीन प्रकार की प्रवृत्ति मिलती है। 1) वर्तमान दुःख दैन्य के प्रति हार्दिक सहानुभूति, 2) हिंदी के प्रति प्रेम, 3) अतीत गौरव। पहली प्रवृत्ति का एक उदाहरण देखिए—

लायो असाढ़ सुहावना सब देस मिली आंनद करैं
यूरप अमेरिका फ्रांस जरमन मोह जिय में नहिं धरैं
एक हम अभागे देस भर के बैठि के रोवत रहैं
नहिं काम काज करनो हमें, बस व्यर्थ दिन खोवत रहैं

वे ईश्वर से प्रार्थना कर अनुनय विनय करते हैं कि पृथ्वी पर आकर दुःख दरिद्र दूर करे—

"प्रभु हो पुनि भूतल अवतरिए
अपुने या प्यारे भारत को पुनि दुःख दरिद्र हरिए

'विनय'

18 अप्रैल, सन् 1900 ई. को कचहरियों के काम काज के लिए हिंदी को प्रवेश मिला। राधाकृष्ण दास ने इस अवसर पर लिखा —

धनि मेकडानेल लाट प्रजा के दुःख निवारे
कचहरिया लीला सों सबके प्रान उबारे
धन उनइस सौ सन्, धन धन यह मास एपरिल
धन तारिख अठारह, जन हिय कमल गए खिल
जब लौ हिंदू हिंदी रहै, यह शुभ दिन न बिसारिहैं
मेकडानेल नाम पवित्र यह, निज सादर उच्चारिहैं

अतीत गौरव संबंधी उन्होंने दो रचनाएँ लिखीं 1) पृथ्वीराज प्रयाण तथा 2) प्रताप "विसर्जन"। "पृथ्वीराज प्रयाण" में पृथ्वीराज बंधकर गजनी जा रहे हैं, उस समय भारत माता से विदा लेते वे कहते हैं—

जननी हमें सीख अब दीजे
परम कपूत पूत तेरो यह ताहि विदा अब कीजे

इस प्रकार तत्कालीन कवियों ने समसामयिक विषयों पर रचना कर जहाँ कविता को जन-जीवन से जोड़ा वहाँ समाज में जागृति फैलाने का कार्य किया। इन प्रमुख कवियों के अलावा कुछ और कवि हुए जिनमें प्राचीनता एवं नवीनता दोनों का समावेश था।

बोध प्रश्न

6 उचित शब्द रखकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए—

क) हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने .... की स्थापना की।

ख) .... ने विभिन्न अवसरों से संबंधित काव्य रचनाएँ कीं।

ग) साहित्यिक गतिविधि को बढ़ाने के लिए "प्रेमधन" ने .... तथा .... की स्थापना की।

घ) प्रतापनारायण मिश्र .... उपनाम से कविता करते थे।

7 भारतेन्दु युग के कवियों ने पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन करके साहित्यिक एवं सामाजिक कार्य किया। नीचे पत्रिकाओं एवं प्रकाशकों के नाम दिए जा रहे हैं। आप उनका सही मिलान कीजिए।

पत्रिकाएँ	प्रकाशक
कविवचन सुधा	प्रेमधन
बालाबोधिनी	प्रतापनारायण मिश्र
आनंद कादंबिनी	हरिश्चंद्र
नागरी नीरद	राधाचरण गोस्वामी
ब्राह्मण	प्रेमधन
भारतेन्दु	हरिश्चंद्र

8 भारतेन्दु युग के कवियों ने हास्य युक्त रचनाएँ उपयोगिता की दृष्टि से की हैं। चार पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

अभ्यास

2 भारतेन्दु युग के कवियों ने भारतेन्दु द्वारा शुरू किए गए कार्य को आगे बढ़ाया। दस-बारह पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

14.4 भारतेन्दु युगीन हिंदी काव्य की विशेषताएँ

आधुनिक काल के प्रारंभ में संसार के देशों में परिवर्तन आ रहा था। यूरोप के देशों में विशेषकर इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप जो प्रगति हुई उसने मानव जीवन के विभिन्न पक्षों को प्रभावित किया। परिस्थितियों की चर्चा करते हुए आपने पढ़ा कि भारत में अंग्रेजी शासन के प्रारंभ होने के साथ ही एक ओर जहाँ जनता का शोषण प्रारंभ हुआ, वहीं वैज्ञानिक साधनों एवं यातायात की व्यवस्था से जनता में जागृति भी आई। उस युग के लेखकों ने जन-जागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। समाज सुधारक नेताओं द्वारा सामाजिक, धार्मिक, रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों से ग्रसित समाज में परिवर्तन लाने के लिए आंदोलन शुरू किया गया। अंग्रेजों ने देशी राज्यों को हराया। अब राजाओं की व्यक्तिगत स्वतंत्रता नहीं रह गयी। कवियों का राज्याश्रय समाप्त होने लगा। अब कवि जनता के संपर्क में आए। रीतिकालीन दरबारी कविता का रूप बदलने लगा। पहले जहाँ आश्रयदाताओं की व्यक्तिगत इच्छा अनिच्छा के अनुसार कविताएँ

की जाती थी, वहाँ अब सामाजिक जरूरतों को स्थान दिया जाने लगा। हिंदी साहित्य में परिवर्तन के इस दौर को प्रारंभ करने का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चंद्र को है। यद्यपि भारतेन्दु परंपरागत धारा से प्रभावित अवश्य थे, किन्तु नवयुग की चेतना ही उनमें मुखरित होती गई। इसे हम एक उदाहरण द्वारा समझें। भारतेन्दु से पूर्व काव्य में प्रकृति का चित्रण, आलम्बन, उद्दीपन तथा उपदेशात्मक रूप में होता था। अब प्रकृति चित्रण सामाजिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाने लगा। नवीन युग की चेतना के कारण काव्य मयक, नायिका के प्रेम सीमा से मुक्त होकर जीवन के विशाल क्षेत्र को प्रभावित करने लगा। भारतेन्दु जब होली का वर्णन करते हैं, उस समय वे भारत की दयनीय दशा को नहीं भूलते।

भारत में मची है होरी
धूर उड़त सोई अबीर उडावत सबको नैन भोरी
दीन दशा असुअन पिचकारी सब लिलार भिजयोरी ॥

विदेशी शासन द्वारा भारत में निष्क्रियता, निरीहता, अज्ञान आदि का वातावरण बन गया था। कवि ने प्रकृति के साथ जोड़ कर इनका किस प्रकार वर्णन किया है, द्रष्टव्य है —

छाई अंधियारी भारी सूझत नहि राह कहूँ।
गरजि गरजि बादर से जवन सब डरावैं ॥
चपला सी हिन्दुन की बुद्धि वीरतादि भई।
छिपे वीर तारागन कहूँ न दिखावै ॥
सुजस चंद मंद भयो कायरता घास बढ़ी।

उपर्युक्त वर्णन में शैली तो प्राचीन है किन्तु उपयोगिता की दृष्टि से नवीनता का समावेश है। भारतेन्दु ने प्रकृति का वर्णन तो यहाँ किया है लेकिन भारतीय वीरों की बात करते समय उनका कहना है कि जिस प्रकार बिजली चमक कर छुप जाती है उसी प्रकार यहाँ के लोगों की वीरता क्षण भर के लिए ही दिखती है। जिस प्रकार घास दूर-दूर तक घने रूप में फैल रही है, मानों यहाँ के लोगों में कायरता भी उसी प्रकार फैल गयी है।

भारतेन्दु युग में हिंदी काव्य में परिवर्तन का दौर आरंभ हुआ। केवल विषयवस्तु की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि भाषा शैली एवं छंद विधान की दृष्टि से भी परंपरा से चली आ रही परिपाटी को छोड़कर काव्य रचना आरंभ हुई। आइए इस युग के काव्य की संरचनागत विशेषताओं को एक-एक कर देखें।

14.4.1 विषयवस्तु

विषयवस्तु की दृष्टि से भारतेन्दु युग की कविता में परिवर्तन आया। इस युग के कवियों ने जहाँ प्राचीन परंपरा से चली आ रही विषयवस्तु को स्थान दिया वहीं अब धीरे-धीरे उनका झुकाव नवीनता की ओर होने लगा। समसामयिक समस्याओं को काव्य में स्थान दिया जाने लगा। शृंगार, हास्य-व्यंग्य, ईश्वर भक्ति के अलावा देश प्रेम की रचनाएँ प्रमुख हो चलीं। हम विभिन्न प्रकार की राजनीतिक, सामाजिक, एवं आर्थिक विषयों से संबंधित रचनाओं के उदाहरण से इसे और स्पष्ट रूप से समझेंगे कि तत्कालीन युग के कवियों ने किस प्रकार की विषयवस्तु चुनी। सबसे पहले प्राचीन काव्य धारा विषयक उदाहरण लें।

शृंगारिक रचनाएँ : तत्कालीन कवि परंपरा से अपने को अलग नहीं रख पाए। सभी कवियों ने रीतिकालीन परिपाटी के अनुसार काव्य रचनाएँ कीं। नायिका भेद के अंतर्गत भारतेन्दु का यह सवैया सुंदर उदाहरण है—

गोरे से रंग उमंग भरयो चित, अंग अनंग को मंग जगाए
काजर रेख खुभी दृग में, दोऊ भौहन काम कमान चढ़ाए
आवनि बोलनि डोलनि ताकी, चढ़ी चित्त में अति चोप बढ़ाए
सुंदर रूप सो नैनन में बस्यो, भूलत नाहिनै क्योंहू भूलाए

'कर्पूर मंजरी'

इसी प्रकार अन्य कवियों ने भी शृंगारिक रचनाएँ कीं।

भक्तिपरक रचनाएँ : परंपरा से चली आ रही परिपाटी के अनुसार कवि गण भक्तिपरक रचनाएँ करते थे, भारतेन्दु युग में भारतेन्दु आदि कवियों ने भक्तिपरक रचनाएँ की। ईश्वर की प्रशंसा करते हुए भारतेन्दु लिखते हैं—

हरि लीला सब विधि सुखदाइ।
कहत सुनत देखत जिय आनत देहि भयति अधिकाई ॥
प्रेम बढ़त, अघ नसत, पुन्य रति जिय में उपजत आई
याहि सों "हरिचंद" करत सुमि नित हरि-चरित बड़ाई ॥

कृष्ण का रूप वर्णन करते हुए "प्रेमधन" लिखते है—

छहरै मुख पै घनश्याम से केश, इतै सिर मोर पंखा फहरे
उत गोल कपोलन पै अति लोल अमोल लली मुकट लहरै
इहि भांति सों बद्री नारायण जू दोऊ देखि रहे जमुना लहरै
निति ऐसे सनेह सों राधिका श्याम हमारे हिये में सदा बिहरै।

राजभक्तिः

इसी प्रकार, अन्य कवियों ने भी भक्तिपरक रचनाएँ की। किन्तु इस काल में भक्ति एवं रीति विषयक काव्य रचना की ओर से हटकर कवियों ने नए-नए विषयों की ओर विशेष ध्यान दिया। तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति ऐसी थी कि कवियों ने राजभक्ति से संबंधित रचनाएँ कीं। भारतेन्दु ने अनेकों रचनाएँ कीं, जिसमें राजभक्ति निहित है। महारानी विक्टोरिया की प्रशंसा करते हुए वे लिखते हैं —

पूरी अमी की कटोरिया की चिरजीओ सदा विक्टोरिया रानी
सूरज चंद प्रकाश करे जब लौं रहै सातहू सिंधु में पानी
राज करौ सुख सों तब लौं निज पुत्र औ पौत्र समेत सयानी
पालो प्रजाजन को सुख सो जग कीरति — जानं करे गुनी जानी।

"प्रेमघन" ने लिखा—

तेरे सुखद राज की कीरति रहे अटल इत
धर्मराज, रघु, राम, प्रजा हिय में जिमि अंकित

सन् 1890 ई. में राजकुमार विक्टर के भारत आगमन पर प्रतापनारायण मिश्र ने लिखा —

हरि शशि संवत पांच मैंह, सित पख अगहन मास
श्री विक्टर आगमन से भयो हिंद सुखं रास

इस प्रकार राजभक्ति से संबंधित रचनाएँ कवियों ने कीं किन्तु अत्याचारी अंग्रेजी शासन के प्रति जल्दी ही लोगों का मोह भंग हो गया। कवियों ने राजभक्ति के जगह पर देशभक्ति से पूर्ण रचनाएँ आरंभ कीं। भारत के स्वर्णिम अतीत की याद दिलाकर लोगों में जागरण के लिए प्रयत्न शुरू हुआ। भारतेन्दु ने लिखा —

देशभक्तिः

कहँ गए बिक्रम भोज राम बनि कर्ण युधिष्ठिर
चंद्रगुप्त चाणक्य कहाँ नासे करिकै थिर
कहँ छत्री सब मो जो सब गए कितै गिर
कहाँ राज को तौन साज जोहि जानत है चिर

भारत की दुर्दशा पर सभी को मिलाकर देश दशा पर विचार करने के लिए लिखते हैं —

रोअहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।

भारत की दुर्दशा पर प्रेमघन लिखते हैं —

"मची है भारत में कैसी होली, सब अनीति गति हो ली
पी प्रमाद मदिरा अधिकारी लाज सरम सब घो ली"

सन् 1885 ई. में अखिल भारतीय कांग्रेस पार्टी की स्थापना हुई जिसके द्वारा भारतीय जनता ने अंग्रेजों के खिलाफ आंदोलन शुरू किया। प्रतापनारायण मिश्र पार्टी की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं—

जय जयति भगवति कांगरेस असेष मंगल कारिनी

तत्कालीन कवियों ने भाषा प्रेम से संबंधित रचनाएँ कीं। भारतेन्दु ने लिखा —

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को भूल
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटन न हिय को शूल

भारतेन्दु का विचार था कि सभी देशों से ज्ञान की बातें लेकर उसे अपनी भाषा में ही प्रचार करने से कल्याण होगा।

विविध कला शिक्षा अमिट ज्ञान अनेक प्रकार
सब देसन से लै करहु भाषा महि प्रचार

प्रतापनारायण मिश्र देवनागरी को गले लगाने के लिए भारतीयों को आदेश देते हैं—

देवनागरिहि गरे लगाओ येहो मोद महान
रहो निशंक मद माते श्री परताप समान

भारत की आर्थिक स्थिति पर तत्कालीन कवियों ने विचार व्यक्त किए — भारतेन्दु ने जगह-जगह इस विषय पर लिखा है—

अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख़ारी

टैक्स लगाने पर वे लिखते हैं—

चना हाकिम लोग जो खाते
सब पर दूना टिकस लगाते

"प्रेमघन" लिखते हैं—

रोओ सब मुँह बाय बाय
हाय टिकस हाय हाय

इस प्रकार, भारतेन्दु युगीन कवियों ने जहाँ परंपरागत विषयों पर काव्य रचनाएँ की वहीं परिस्थितिनुकूल नवीन विषयों पर भी उनका ध्यान गया। देश प्रेम, समाज सुधार भाषा प्रेम, आदि विषयों पर रचनाएँ करके उन्होंने भारतीयों में जनजागरण फैलाने का प्रयत्न किया।

14.4.2 भाषा-शैली

भारतेन्दु युग से पूर्व काव्य का आधार मध्य युग में भक्ति भावना फिर रीतिकाल में शृंगार तथा प्रेम भावना एवं चमत्कारप्रियता की प्रमुखता थी। आधुनिक काल में इस प्रवृत्ति में बदलाव आया। यह परिवर्तन केवल भावों एवं विचारों में ही नहीं बल्कि भाषा के क्षेत्र में भी आया। भारतेन्दु युग से पूर्व ब्रजभाषा एवं अवधी को ही काव्य के लिए उपयुक्त समझा जाता था। रीतिकाल में तो ब्रजभाषा का मान इतना बढ़ गया था कि कविगण ब्रजभाषा छोड़ किसी अन्य भाषा में कविता करते ही नहीं थे, और मान्यता यह हो गई थी कि ब्रजभाषा के अलावा किसी अन्य भाषा में कविता हो ही नहीं सकती। भारतेन्दु युग में यह धारणा दूर हुई। अब खड़ी बोली में काव्य रचना की प्रवृत्ति बढ़ी। भक्तिकाल में कवियों ने कविता को भक्तिभाव से पूर्ण बना दिया था। रीतिकाल में छंद, अलंकार का चमत्कार दिखाने के लिए भाषा को जनसामान्य से दूर कर दिया गया। भारतेन्दु युग में कवियों ने भाषा को कृत्रिमता के घेरे से बाहर निकाला। इस कार्य की शुरुआत भी भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने ही की। उन्होंने भाषा को अलंकृत करने का परिश्रम नहीं किया। तत्सम शब्दों का बहिष्कार तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग करके उन्होंने भाषा को सरल एवं सर्वग्राह्य बनाया। प्राचीन काल में भुआल, बयन, चक्कवै, सायर, लोयन आदि अप्रचलित शब्दों का पूर्ण बहिष्कार किया। एक उदाहरण देखिए —

मारग प्रेम को को समुझै, "हरिचंद्र" *यथारथ* हो यथा है
लाभ कछु न पुकारन में, बदनाम ही होने की सारी कथा है
जानत है हिय मेरो भली विधि, और उपाय सबै *विरथा* है
बावरे हैं ब्रज के सगरे, मोहि नाहक पूछत कौन *विथा* है।

इस सवैये में भारतेन्दु ने मार्ग, यथार्थ, व्यथा, वृथा के स्थान पर मारग, यथारथ, विथा और विरथा का प्रयोग किया है। इस प्रकार उनकी रचनाओं में सैकड़ों शब्द खोजे जा सकते हैं।

उर्दू का प्रयोग

उर्दू के प्रचलित शब्दों का प्रयोग कर उन्होंने भाषा को बोधगम्य बनाया —

राज पाट हय गय रथ प्यादे बहुविधि अन धन धाम सभी
हीरा मोती पत्र मानिक कनक मुकुट उर दाम सभी
खाना पीना नाच *तमाशा* लाख *ऐश आराम* सभी
जैसे विंजन नमक बिना त्यौं राम बिना *बेकाम* सभी

इस उदाहरण में खाना, तमाशा, ऐश-आराम, बेकाम आदि उर्दू के शब्द है।

भारतेन्दु युग के कवि काव्य की भाषा को जन-साधारण से जोड़ देना चाहते थे। वे ऐसे सरल एवं प्रचलित शब्दों का प्रयोग करते थे जो जन-सामान्य के लिए बोधगम्य हो। प्रतापनारायण मिश्र ने उर्दू का प्रयोग इसी दृष्टि से किया। "प्रेम प्रसग" से एक उदाहरण देखिए —

गरचे यह तर्क की वन्ना है इश्क़।
तो भी देता अजब मजा है इश्क़॥
बुलहवास को तो खेल सा है इश्क़।
आशिकों के लिए कज़ा है इश्क़॥

अंग्रेज़ी आदि शब्दों का प्रयोग

भारतेन्दु युग के कवियों ने अंग्रेज़ी आदि शब्दों का प्रयोग भी किया। किन्तु ऐसा प्रयोग अधिकांशतः हास्य रस की रचनाओं में हुआ। भारतेन्दु ने "परिहासिनी" में लिखा —

1) क्रास-वाच इस्टार हुए महराज बहादुर नाम सभी
2) टिकस पिया मोरि लाज को रखल्लयो ऐसे बनो न कसाई तुम्हें कैसर की दुहाई

"वैदिकी हिंसा" में वे लिखते हैं—

विष्णु, वाहनी पोर्ट पुरुषोत्तम, भय मुरारि
शैंपन शिव, गौरी गिरिश, ब्रांडी ब्रह्म विचारि॥

नीचे के उदाहरण में देखिए प्रतापनारायण मिश्र ने अंग्रेजी एवं अरबी के शब्दों का कैसा प्रयोग किया है—

"हमरी ही जाति हमहीं को दोष लगावै।
"सेलफिश" की नैया बूड़त कोउ न बचावै॥
सुनि न्याय नाम बिलखत बीतत दिन राती।
यह ..... भई सबति हमारि जररवत छाती॥

मुहावरों एवं कहावतों का प्रयोग

भाषा को सजीव एवं बोधगम्य बनाने के लिए भारतेन्दु युग के कवियों ने अपनी रचनाओं में मुहावरों एवं कहावतों का प्रयोग किया। भारतेन्दु की रचनाओं में जगह-जगह निम्नलिखित मुहावरों एवं कहावतों का प्रयोग मिल जाएगा।

मुहावरे — फरियादु पिया की हाय *आँख भरि आई*
"हरिचंद" घर घर के *भौंरा* तुम मतलब के मीत

लोकोक्ति — जल पान के पूछना जाति नहीं
माछर मारे जल के साथ
ऊंची दुकान की फीकी मिठाई

प्रतापनारायण मिश्र की "तारापात पचीसी" में मुहावरे का प्रयोग देखिए—

"तव मुख दरशन बिन, नहिं भनिहि मन मोर।
कस न दिखावै मुख कोऊ, नभ के तारे तारे॥
हाय टिकस हाय हाय

"लोकोक्ति शतक" में कहावत का इनका प्रयोग देखिए—

व्यापक ब्रह्म सदा सब ठौर बादि चारिधामन की दौर।
का न देखु मन नयन उघारि, *कनियाँ लरिका गाँव गुहार*॥

भारतेन्दु युग के कवि जागरूक थे। राष्ट्रीयता के प्रचार के लिए जनभाषाओं—बुन्देली, अवधी, खड़ी बोली—को काव्य का माध्यम बनाया। खड़ी बोली में रचनाएँ करके कवियों ने इसको विस्तार प्रदान किया। खड़ी बोली की जो क्षीण परंपरा अमीर खुसरो की मुकरियों एवं कबीर के दोहों से प्रारंभ होती है उसे इस युग में विस्तार मिला। युग की नवचेतना शृंगारिकता एवं कोमलकांत पदावली के बोझ से लदी ब्रजभाषा द्वारा संभव नहीं थी। खड़ी बोली में वह शक्ति थी जो नवचेतना एवं ज्ञान विज्ञान को जन-सामान्य तक पहुँचा सकती थी। भारतेन्दु युग के कवियों ने सरल खड़ी बोली में कविताओं की रचना करके अपने उपदेशात्मक स्वर को जन-सामान्य तक पहुँचाया।

शैली : भारतेन्दु युग में हिंदी काव्य को नए साँचे में ढाला गया। इस युग के कवियों ने जहाँ प्राचीन काव्य शैलियों का प्रयोग किया वहीं तत्कालीन आश्यकतानुकूल नवीन शैलियों को प्रमुख स्थान दिया। प्राचीन काव्य शैली में वीर भावना, भक्ति भावना, शृंगार भावना थी तो नवीन काव्य शैली में देश प्रेम, हास्य तथा प्रकृति का आश्यकतानुकूल वर्णन है। अमीर खुसरो की तरह भारतेन्दु ने "नय जमाने की मुकरी" लिखी—

सब गुरुजन को बुरा बतावै।
अपनी खिचड़ी अलग पकावै।
भीतर तत्त्व न झूठी तेजी।
क्यों सखि साजन नहीं अंग्रेज़ी।

एक और सुंदर उदाहरण देखिए—

मोटी टेकर पास बुलवै
रुपया ले तो निकट बिठावै।
ले भागे मोहि खेलहि खेल।
क्यों सखि साजन नहीं सखि रेल।

पाठ में आपने देश प्रेम, हास्य व्यंग्य आदि शैलियों को देखा है। यहाँ एक दूसरे प्रकार की शैली के बारे में जानें। भारतेन्दु ने प्राचीन एवं नवीन शैली का प्रयोग किया। अपने पूर्ववर्ती कवियों का अनुसरण करते हुए उन्होंने कला के क्षेत्र में नवीन प्रयोग भी किए। हिंदी एवं उर्दू शैलियों को मिलाकर उन्होंने नवीन शैली बनायी। निम्नलिखित उदारहण देखिए —

जहाँ देखो वहाँ मौजूद मेरा कृष्ण प्यारा है।
उसीका सब है जलवा जो जहाँ में अशकारा है॥
मरवलूक खालिक की सिफ्त समझे कहाँ कुहरत।
इसी से नेति-नेति ए यार वेदों ने पुकारा है॥

प्रकृति वर्णन कवियों की मुख्य प्रवृत्ति रही, लेकिन जहाँ पूर्ववर्ती कवियों ने नायक-नायिकाओं के प्रेम-विरह आदि के लिए ही प्रकृति वर्णन किया, वहाँ अब प्रेम की सीमा से बाहर जीवन के विशाल क्षेत्र को ध्यान में रखकर प्रकृति वर्णन किया जाने लगा। देश दशा का चित्रण करते हुए भारतेन्दु होली का वर्णन करते समय लिखते हैं—

भारत में मची है होरी।
धूर उड़त सोई अबीर उड़ावत सबको नैन भोरी
हीन दशा असुअन पिचकारी सब लिलार भिजयोरि।

विदेशी शासन द्वारा भारत में निष्क्रियता, निरीहता, अज्ञान का वातावरण बन गया था। भारतेन्दु ने प्रकृति से जोड़कर किस प्रकार की शैली अपनाई है दर्शनीय है—

छायी अंधियारी भारी सूझत नहि राह कहूँ।
गरजि गरजि बादर से जवन सब डरावै।
चपला सी हिन्दुन की बुद्धि वीरता भई।
छिपे वीर ताराजन कहुँ न दिखावै।।
सुजस चंद-मंद भयो कायरता घास बढ़ी।

उपर्युक्त वर्णन में शैली तो प्राचीन है, किन्तु उपयोगिता की दृष्टि से नवीनता का समावेश है। कवि प्रकृति का वर्णन तो कर रहा है, लेकिन जब भारतीयों की वीरता की बात करता है, तो उसका कहना है जिस प्रकार बिजली चमक कर छुप जाती है, उसी प्रकार यहाँ के वीरों की बुद्धि एवं वीरता क्षण भर को ही दिखती है। जिस प्रकार घास दूर-दूर तक घने रूप में फैली रहती है, मानों उसी प्रकार यहाँ के लोगों में कायरता फैल गई है। इस प्रकार शैली की दृष्टि से भारतेन्दु युग में परिवर्तन आया।

14.4.3 छंदोविधान

भारतेन्दु युग के कवियों ने जहाँ रीतिकाल से चली आती हुई परंपरागत छंदों, दोहा, कवित्त, सवैया, चौपाई, पद, छप्पय, कुण्डलियाँ, सोरठा आदि का प्रयोग किया, वहीं उर्दू तथा लोक गीत के छंदों का भी प्रयोग किया। इम एक-दो उदाहरण के साथ देखेंगे कि इस युग के कवियों ने किस प्रकार के छंदों का प्रयोग किया।

दोहा : "चंद्रभानु नृप-नंदिनी चंद्रानलि सुकुवांरि।
कृष्णचंद्र-मनहारिनी जय चंद्रावलि नारि।"

भक्त सर्वस्व, भारतेन्दु हरिश्चंद्र

"छवि सागर नागर नवल सब गुन गन आगार।
छैल छबीले रसिक वर, प्रेमिका प्राण अधार।।

"वर्षारम्भ" प्रतापनारायण मिश्र

पद :

"सर्व धर्म पर धर्म गई बस।
" " " " " "
" " " " " "

यह सुखं पावै जो प्रताप सो, सुखमय देखे सत्य दिशा दस"

"प्रतापलहरी", प्रतापनारायण मिश्र

प्रगटे द्विजकुल — सुखकर चंद।
भक्ति-सुधा-रस निस-दिन वरषत सब विधि परम अमंद'
मायावाद परम अंधिकारी दूरि कियो दुख-द्वंद।
भक्त-हृदय-कुमुदित प्रफुलित भई भयौ परम आनंद।
काशी नभ मइं किरिन प्रकाशी बुध सब नखत सुछंद।
"हरीचंद" मन सिंधु बढयौ लखि रसमय मुख सुखकंद।

भारतेन्दु युग में कवित्त छंद का प्रयोग परंपरा के अनुसार मिलता है। "कृष्ण चरित्र" में भारतेन्दु के एक कवित्त का उदाहरण देखिए—

ओ री प्रान प्यारी बिन देखे मुख तेरो मेरे
जिय में बिरह घटा घहरि घहरि उठै।
त्यों ही "हरिचंद" सुधि भूलत न क्यों हूँ तेरो।
लाखो केस रैन-दिन छहरि छहरि उठै।
गडि गडि उठत कुटील कुच कोर तेरी
सारी सो लहरदार लहरि लहरि उठै।
सालि सालि जात आधे आधे नैन बन तेरे
घूँघट की फहरानि फहरि-फहरि उठै।

प्रतापनारायण मिश्र द्वारा रचित एक कवित्त का उदाहरण देखिए—

जात हौ पथिक लोग मधुपुर जो भरोमों है,
तुमहूँ प्रताप हरि सौं गाढ़ तान गहियो।
आपनु सयाने ही कहिये कहलौ और

भारतेन्दु युग में घनाक्षरी छन्दों का प्रयोग कवियों ने किया। "प्रेममाधुरी" में भारतेन्दु ने इस छंद का सुंदर प्रयोग किया। एक उदाहरण देखिए —

बाजौ करे वंशी धुनि बाजि बाजि श्रवनन
जोरी जोरी मुख क छवि चितहि चुराए लेत।
हंसनि हंसावत जगत सो तिहारी मुरि.
मुरानि प्यारी मन सब सौं मुराए लेत।
हरिचंद बोलनि चलनि बतरानि पीत.
पट फहगनि मिलि धीरज मिटाए लेत।
जुलफैं तिहारी. लाज कुलफन तोरे प्रान.
प्यारे नैन मैन प्रान संज ही लगाए लेत॥

इस युग में कवियों ने सवैया छंदों में रचनाएँ कीं। ब्रजभाषा का लोक-प्रचलित रूप ग्रहण कर कवियों ने सवैये छंदों की रचनाएँ कीं। इस काल के कवियों ने कुण्डलियों तथा छप्पय छंदों में भी प्रचुर रचनाएं की। लोक जीवन को अभिव्यक्त करने के लिए इस काल के कवियों ने लावनी. कजरी. होरी. बारहमासा. गाली. सेहरा. चैता आदि छंदों का प्रयोग किया। इनमें से कुछ के उदाहरण देखिए—

लावनी

बीत चली सब रात न आए अब तक दिल जानी।
खड़ी अकेली राह देखती बरस रहा पानी।
अंधेरी छाय रही भारी।
सुझत कहूँ न पंथ सोच करे मन मन मे नारी
न कोई समझावनवारी।
चौंकि चौंकि के उझकि झरोख झांक रही प्यारी।
खड़ी अकेली राह देखती रही बरस रहा पानी।

वर्षा विनोद "भारतेन्दु"

वर्षा ऋतु में प्रियतमा अपने प्रिय के इंतजार में किस प्रकार व्याकुल है, भारतेन्दु ने उसका सुंदर चित्रण इस लावनी में किया है।

कजली

प्यारी झूलन पधारो झुकि आए बदरा
ओढ़ो सुरुख चुनरि तापै श्याम चदरा।
देखो बिजुरी चमक्कै बरसै अदरा।
"हरीचंद" तुम बिन पिय अति कदरा।

"वर्षा विनोद" हरिश्चंद्र

होली — कवियों ने विभिन्न वर्ण्य विषय जैसे शृंगार. भक्ति. देश दशा आदि पर होली लिखी। भारतेन्दु द्वारा रचित विभिन्न वर्ण्य विषय की होली देखिए —

भक्ति

हम चाकर राधा रानी के
ठाकुर श्री नंद नंदन के, वृषभानी लले ठकुरानी के
निरभय रहत बदन नहि काहू डर नहिं डरत भवानी के
"हरिचंद" नित रहत दिवनि सूरत अजब सिवानी के

होली

विशुद्ध शृंगार

तेरी अंगिया में चोर बसें गोरी
इन चोरन मेरो सरबस लुटयो मन लीने जोरा जोरी
छोड़ि देइ दिल बंद' चोलिय पकरे चोर हम अपनी री
"हरिचंद" इन दोउन मेरी नाहक कीनी चित चोरी

"स्फुट कविताएं"

देश दशा

जुरि आए फाके मस्त होली होय रही
घर में भूंजी भांग नहीं है तो भी न हिम्मत पस्त
होली होय रही।
मंहगी परी, न पानी बरसा, बजरौ नहिं सस्त
धन सब गवा, अकिल नहिं आई, तो भी कंजली मस्त
होली होय रही।
परबस कायर कूर आलसी अधे पेट परस्त
सूझत कुछ न बसंत मांहि, ये भी खराब औ खस्त
होली होय रही।

"मधुमुकुल"

इस प्रकार, भारतेन्दु युग में जहां परंपरानुकूल छंदों का प्रयोग किया गया, वहीं लोक-जीवन एवं तत्कालीन सामाजिक समस्याओं को उठाने के लिए नए छंदों का भी प्रयोग किया। इस युग के कवियों ने किसी मतवाद से आबद्ध न होकर भावाभिव्यक्ति के अनुरूप ही छंदों का प्रयोग किया।

बोध प्रश्न

9 विषयवस्तु की दृष्टि से भारतेन्दु युग के काव्य में क्या परिवर्तन आया। दो-तीन पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

10 क्या कारण थे कि भारतेन्दु के समय तक खड़ी बोली में काव्य रचना करने में संशय बना रहता था?

....

....

....

....

11 भारतेन्दु युग के काव्य में प्रकृति वर्णन में क्या परिवर्तन आया?

....

....

....

....

12 काव्य को जन-साधारण से जोड़ने के लिए भारतेन्दु युग के कवियों ने छंद विधान में क्या परिवर्तन किया?

....

....

....

....

अभ्यास

3 भारतेन्दु युग के कवियों ने भारतेन्दु द्वारा शुरू किए गए कार्य को आगे बढाया। दस-बारह पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

14.5 सारांश

- भारत में अंग्रेज़ी साम्राज्य की स्थापना के साथ यहाँ के लोगों का शोषण प्रारंभ हुआ। जनता के अंदर इस शोषण के खिलाफ असंतोष जमा होता गया। परिणाम था 1857 ई. की क्रांति। किंतु इसके साथ राजनीतिक क्षेत्र में भी परिवर्तन आया। शासन अब इंग्लैण्ड की महारानी के हाथ में चला गया। शोषण का नया दौर प्रारंभ हो गया। राज्याश्रय समाप्त होने पर कवि जनता के संपर्क में आए। देश दशा एवं समाज की गिरती दशा पर कवियों का ध्यान गया। काव्य रचनाकार जनता में जागृति लाने का प्रयत्न शुरू हुआ। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप भारतेन्दु युगीन हिंदी काव्य में पृष्ठभूमि की व्याख्या कर सकते हैं।
- भारतेन्दु हरिश्चंद्र का आगमन इस युग की महत्वपूर्ण घटना थी। हिंदी भाषा साहित्य को नयी दिशा प्रदान करने के लिए उन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया। आप भारतेन्दु द्वारा आरंभ किये गए कार्य का विश्लेषण प्रस्तुत कर सकते हैं।
- प्रेमधन, प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी, राधाकृष्ण दास आदि कवियों ने भारतेन्दु द्वारा शुरू किये गए कार्य को आगे बढ़ाया। आप इन कवियों के योगदान को स्पष्ट कर सकते हैं।
- भारतेन्दु युग में जहाँ परंपरागत काव्य भाषा ब्रजभाषा में काव्य रचना हुई, वहीं अब खड़ी बोली में काव्य रत्तना की प्रवृत्ति बनने लगी। भाषा को जनसामान्य के अनुकूल बनाया गया। विषयवस्तु के अनुकूल भाषा को ढाला गया। परंपरागत विभिन्न प्रकार के छंदों के साथ लावनी, होली, कजली, बारहमासा आदि छंदों का प्रयोग कर काव्य को जनसामान्य के निकट लाया गया। आप भारतेन्दु युगीन हिंदी काव्य के शिल्प विधान की विशेषताएँ बता सकते हैं।

14.6 उपयोगी पुस्तकें

- गुप्त किशोरीलाल : *भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि*, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय बनारस
- संपादक हेमन्त शर्मा : *भारतेन्दु समग्र, प्रचारक ग्रन्थावली परियोजना*, हिंदी प्रचारक संस्थान बनारस
- 'चन्द्र' शुक्ल सुरेशचन्द्र : प्रतापनारायण मिश्र, *जीवन और साहित्य* अनुसंधान प्रकाशन, आचार्य नगर, कानपुर
- वार्ष्णेय लक्ष्मीसागर, *हिंदी साहित्य का इतिहास*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

14.7 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1 भारतेन्दु युग के कवि राजा के आश्रय में रहते थे। अपनी जीविका चलाने के लिए ही वे साहित्य रचना करते थे। यदि अपने आश्रयदाता की प्रशंसा के अलावा किसी विषय पर काव्य रचना करते तो हो सकता था कि उन्हें राज्याश्रय से हटा दिया जाय। इन्हीं कारणों से वे परिपाटी के अनुसार ही काव्य रचना करते थे।

2 अंग्रेजी ताकत के हाथों देशी राज्य पराजित होते गए अतः कवियों का राज्याश्रय भी जाता रहा। अब कवियों को भोग विलास की दुनिया से अलग हट कर जनता के संपर्क में आना पड़ा, अतः उन्होंने जन साहित्य की रचना प्रारंभ की।

3

शिक्षा संस्थाएँ	स्थापना दिवस
(क) फोर्ट विलियम	1800 ई.
(ख) हिंदू कालेज	1817 ई.
(ग) आगरा कालेज	1823 ई.
(घ) दिल्ली कालेज	1830 ई.

(ङ) बरेली कालेज 1830 ई

(च) कलकत्ता बुक सोसाइटी 1813 ई.

(छ) ऐल्फिन्सटन कालेज 1834 ई.

4 खड़ीबोली में पद रचना की शुरुआत अमीर खुसरो तथा कबीर की रचनाओं से होती है।

5 भाषा के मामले में भारतेन्दु का यह विचार था कि वे अपनी भाषा की उन्नति के द्वारा ही सभी प्रकार की उन्नति मानते थे।

अभ्यास

1 अंग्रेज़ भारत में व्यापार करने आए थे। तत्कालीन भारत की राजनीतिक क्षेत्र में विद्वेषतापूर्ण वातावरण था। राजे आपस में लड़ा करते थे। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर अंग्रेज़ों ने राजनीतिक क्षेत्र में दखल शुरू किया। कूटनीति के बल पर उन्हें सफलता मिली। वे यहाँ के शासक बन बैठे। जब तक पूर्ण रूप से व्यापार चलता रहा, भारत की आर्थिक स्थिति पर कोई असर नहीं पड़ा, किन्तु इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप यह स्थिति उलट गई। भारत के कच्चे माल का प्रयोग इंग्लैण्ड की मशीन के उत्पादन के लिए होने लगा तथा तैयार माल का बाज़ार भारत ही बना। भारत के कुटीर उद्योग नष्ट होने लगे। तरह-तरह से शोषण प्रारंभ हुआ। भारतीय जनता निर्धन होती गई। समय-समय पर तरह-तरह के प्रतिबंध एवं टैक्स के कारण जनता में असंतोष इकट्ठा होने लगा।

बोध प्रश्न

6 क) "तदीय समाज" ख) "प्रेमघन" ग) "सद्धर्म सभा", "रसिक-समाज" घ) प्रेमदास

7 कविवचन सुधा — हरिश्चंद्र
बालाबोधिनी — हरिश्चंद्र
आनंद कादंबिनी — प्रेमधन
नागरी नीरद — प्रेमधन
ब्राह्मण — प्रतापनारायण मिश्र
भारतेन्दु — राधाचरण गोस्वामी

8 भारतेन्दु युग के कवि समाज में हो रही बुराइयों पर नज़र रखते थे, उन बुराइयों को दूर करने के लिए जनता को सतर्क करना चाहते थे। जैसे जब नये जमाने के मुकरी लिखते समय भारतेन्दु कहते हैं कि भय दिखाकर सब लूटते हैं और उनके फंदे में जो पड़ता है कभी नहीं छूटता, वह कौन है? वह पुलिस है। यहाँ वे पुलिस द्वारा हो रहे शोषण की ही बात करते हैं।

अभ्यास

2 भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने हिंदी भाषा साहित्य को एक नयी दिशा दी। साहित्य में नए विधाओं का प्रणयन किया। काव्य में विविध विषयों का समावेश किया। सामाजिक आश्यकताओं को ध्यान में रखकर काव्य रचना की। भारतेन्दु युग उथल-पुथल का युग था। विदेशी शासन से जनता त्रस्त थी। साहित्य में राजनीतिक, सामाजिक समस्याओं को स्थान देकर जनता में जन-जागरण लाने का कार्य शुरू किया गया। भारतेन्दु ने पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया और इसके माध्यम से साहित्यिक गतिविधियों को बढ़ाया। भारतेन्दु के प्रभाव से तत्कालीन सभी कवियों में देशप्रेम एवं भाषा प्रेम बढ़ा,कवियों ने पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया। काव्य में राजनीतिक-सामाजिक समस्याओं को स्थान दिया। इस प्रकार उन्होंने भारतेन्दु द्वारा शुरू किए गए कार्य को विस्तार प्रदान किया।

बोध प्रश्न

9 भारतेन्दु युग परिवर्तन के दौर का था। कवियों ने जहाँ परंपरा के अनुकूल काव्य रचनाएँ की, वहीं तत्कालीन समाजोपयोगी रचनाएँ भी कीं। अब काव्य में केवल शृंगार, भक्ति या वीर भाव को ही नहीं बल्कि देश प्रेम एवं सामाजिक समस्याओं पर भी रचनाए की जाने लगीं।

10 ब्रजभाषा एवं अवधी में काव्य रचनाएँ होती थीं। ब्रजभाषा का मान इतना बढ़ गया था कि धारणा ही बन गई थी कि ब्रजभाषा के अलावा किसी अन्य भाषा में (खड़ी बोली आदि) में काव्य रचना नहीं की जा सकती। यही कारण है कि खड़ी बोली में काव्य रचना करने का प्रयास नहीं होता था।

11 भारतेन्दु युग में प्रकृति वर्णन में बदलाव आया। जहाँ पहले नायक-नायिका के प्रेम को बढ़ाने में प्रकृति का चित्रण किया जाता था, वहाँ अब सामाजिक उपयोगिता आदि को ध्यान में रखा गया। उदाहरणस्वरूप अब कवि जब प्रकृति चित्रण करते हैं तो भारत की दयनीय दशा तथा समाज में हो रहे दुराचार को नहीं भूलते।

12 भारतेन्दु युग के कवियों ने परंपरागत छंदों का प्रयोग किया। साथ ही काव्य को जन-सामान्य—विशेषकर ग्रामीण जनता के साथ जोड़ने के लिए कजरी, लखनी, होली, बारहमासा, चैता के साथ उर्दू आदि विभिन्न छंदों का प्रयोग किया।

इकाई 15 भारतेन्दु हरिश्चंद्र

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 पृष्ठभूमि
15.3 भारतेन्दु हरिश्चंद्र : कवि परिचय
15.3.1 जीवन परिचय
15.3.2 काव्य रचनाएँ
15.4 भारतेन्दु काव्य : प्रमुख प्रवृत्तियाँ
15.4.1 प्राचीन प्रवृत्तियाँ
15.4.2 नवीन प्रवृत्तियाँ
15.5 संरचना शिल्प
15.5.1 भाषा
15.5.2 काव्य रूप
15.5.3 छंदोविधान
15.5.4 रस
15.5.5 अलंकार
15.6 काव्य वाचन तथा संदर्भ सहित व्याख्या
15.7 सारांश
15.8 शब्दावली
15.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
15.10 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

15.0 उद्देश्य

आप हिंदी में ऐच्छिक पाठ्यक्रम-2 का अध्ययन कर रहे है। इस इकाई से पूर्व आपने "भारतेन्दु युगीन हिंदी काव्य का स्वरूप और विकास" इकाई का अध्ययन कर लिया है। अब आप कवि "भारतेन्दु हरिश्चंद्र" इकाई का अध्ययन करने जा रहे हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भारतेन्दु के आगमन से हिंदी कविता में आए नवजागरण को समझ सकेंगे,
- भारतेन्दु का जीवन परिचय दे सकेंगे तथा उनके कृतित्व के बारे में बता सकेंगे,
- भारतेन्दु काव्य की मूल संवेदना को स्पष्ट कर सकेंगे, और
- भारतेन्दु काव्य की संरचनागत विशेषताओं का विश्लेषण कर सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

आपने पूर्व की इकाई "भारतेन्दु युगीन हिंदी काव्य का स्वरूप और विकास" का अध्ययन कर लिया है, उस इकाई के माध्यम से आपने यह जाना है कि भारतेन्दु से पूर्व कौन-कौन सी राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ थीं और किस प्रकार विदेशी शासन द्वारा उनमें परिवर्तन आया। तत्कालीन परिस्थितियों में भारतेन्दु एवं उनके मण्डल के कवियों की रचनाओं ने नवजागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। परिवर्तन का दौर साहित्यिक क्षेत्र में भिन्न-भिन्न विधाओं के माध्यम से आया। कविता में नवीनता का समावेश, भाषा, शैली, विषयवस्तु, सभी क्षेत्रों में हुआ। हिंदी साहित्य में यह महान परिवर्तन भारतेन्दु हरिश्चंद्र के द्वारा प्रारंभ किया गया। पूर्व इकाई के अध्ययन द्वारा आपने अनुमान लगा लिया होगा कि भारतेन्दु जैसे प्रतिभाशाली व्यक्तित्व ने तत्कालीन हिंदी साहित्य को किस प्रकार प्रभावित किया। तत्कालीन अन्य कवियों को उनकी रचनाओं से प्रेरणा मिली, उनके व्यक्तित्व ने अन्य कवियों में देशभक्ति की ज्योति जलाई। इस इकाई में हम इन्हीं महान व्यक्तित्व के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त करेंगे। भारतेन्दु ने हिंदी साहित्य को एक नई रोशनी दिखाई। यही कारण है कि उन्हें आधुनिक हिंदी साहित्य का जन्मदाता कहा जाता है। हिंदी काव्य नाटक, लेख, अनुवाद आदि के द्वारा उन्होंने हिंदी साहित्य में नवचेतना का संचार किया। इसके साथ ही उनके द्वारा एक और महत्वपूर्ण कार्य हुआ। वह था पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन। हिंदी साहित्य को नया आयाम देने के लिए इसके विकास एवं विस्तार के लिए इन पत्र पत्रिकाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। राष्ट्रीयता, समाज सुधार आदि विविध विषयों से संबंधित रचनाओं पर चर्चा करते हुए हम उनके कार्यों को जानेंगे तथा यह समझने का प्रयत्न करेंगे कि हिंदी साहित्य में भारतेन्दु का क्या महत्व है। आइए हम पहले इस महान साहित्य स्रष्टा के जीवन परिचय से पूर्व तत्कालीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति पर एक नजर डाल लें।

15.2 पृष्ठभूमि

भारतेन्दु के आगमन से पूर्व भारत की राजनीतिक परिस्थितियों में परिवर्तन हो रहा था। हिन्दुस्तान के शासन की बागडोर धीरे-धीरे खिसक कर अंग्रेजों के हाथ में चली गई थी। भारत में व्यापार करने के लिए जितने भी यूरोपीय जातियाँ आई उनमें भी आपस में संघर्ष हुआ, किन्तु चालाकी एवं धूर्तनीति के बल पर अंग्रेजों को ही सफलता मिली। तत्कालीन भारत की राजनीतिक स्थिति से लाभ उठाकर अंग्रेजों ने यहाँ की राजनीति में हस्तक्षेप शुरू कर दिया। भारतीय राजाओं से संधि एवं संघर्ष करके ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने राजनीतिक लाभ उठाए। सन् 1757 ई. में बंगाल के शासक सिराजुद्दौला के साथ प्लासी की लड़ाई में विजय हासिल करके अंग्रेजों ने बंगाल पर प्रभुत्व जमा लिया। धीरे-धीरे सन् 1849 ई. में सिक्खों के साथ हुए द्वितीय युद्ध के बाद समस्त भारत पर उनका अधिकार हो गया। चूँकि भारत के राजाओं में आपसी शत्रुता अधिक थी और ऐसे शासकों पर अंग्रेजों ने विजय पाई थी, मनमाने ढंग से उन्होंने यहाँ का शोषण शुरू कर दिया। ईसाई धर्म के फैलाने के लिए पादरी इस देश में बहुत वर्ष पूर्व आ गए थे। लेकिन जब अंग्रेजों ने यहाँ पर शासन करना शुरू कर दिया तब पादरियों को अपने कार्य करने में और सहायता मिली। भारतीयों को अंग्रेज असभ्य और जंगली समझते थे। यहाँ के किसी भी सामाजिक धार्मिक रीति-रिवाज को नष्ट करके उन्हें गर्व होता था। भारतीय कुटीर उद्योग नष्ट होते जा रहे थे। इन सभी कारणों से भारतीयों के मन में विद्रोह की अग्नि जलने लगी। छोटे-छोटे सामन्तों के मन में भी फिरंगियों के प्रति बदले की भावना बढ़ रही थी। फिर सन् 1857 ई. का वर्ष आया और भारतीयों के अंदर जल रहे विद्रोह की अग्नि भड़क उठी। सम्पूर्ण उत्तरी भारत में विद्रोह शुरू हो गया। ऐसा लगने लगा कि फिरंगी अब वापस लौट जायेंगे किन्तु, ऐसा हुआ नहीं। विद्रोह में तालमेल न होने के कारण सफलता नहीं मिल पाई। भारत की राजनीति में फिर एक मोड़ आया। शासन की बागडोर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथ से निकल कर सीधे इंग्लैण्ड की महारानी के हाथों में चली गई। महारानी ने सुधार की कई घोषणाएँ कीं। आधुनिक तरीकों से प्रगति के लिए कई योजनाएँ बनाई गई। भारतीयों को महारानी की घोषणा से लगा कि सचमुच ही उनकी उन्नति के लिए कार्य किया जाएगा। किन्तु यातायात की सुविधा रेल, डाक, तार आदि साधनों का प्रयोग यहाँ की उन्नति की लिए नहीं बल्कि शासन तन्त्र को मजबूत करने के लिए किया गया। अंग्रेजी सरकार, द्वारा वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग अप्रत्यक्ष रूप से भारतीयों में एकता एवं जागृति लाने में सहायक सिद्ध हुआ। महारानी के लुभावने घोषणापत्र एवं ईस्ट इंडिया कम्पनी के अत्याचारों की तुलना करने के बाद जनता एवं कवियों के मन में एक आशा बंधी, किन्तु अकाल, महामारी, बेकारी, टैक्स में बढ़ोतरी आदि से जनता एवं रचनाकारों की आँखें खुल गई। कई अंग्रेज लेखकों ने भी तत्कालीन अंग्रेजी सरकार की नीतियों की आलोचना की। यही समय था जब भारतेन्दु हरिश्चंद्र एवं अन्य लेखकों ने जनजागरण के लिए कार्य किया। कविताओं की रचना करके, सभाओं की स्थापना द्वारा तथा पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन करके जनता में जागृति लायी। अकाल एवं महामारी से तबाही मच रही थी, किन्तु अंग्रेज शासकों को इसकी परवाह नहीं थी। कवियों ने महामारी आदि का इस रूप में मार्मिक वर्णन किया है कि भारत का धन विदेशों को चला जा रहा है। इससे यहाँ की आर्थिक स्थिति खराब हो रही है।

> अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।
> पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी॥

सामाजिक सुधार के लिए तत्कालीन मत-मतान्तरों की आलोचना की गई।

> रचि बहुविधि के वाक्य पुरानन मोहि घुसाए।
> शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगति चलाए॥
> जाति अनेकन करी, नीच अरू ऊँच बनायो।
> खान पान सम्बन्ध सबन सो बरूजि छुड़ायो॥

इस प्रकार विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों में एक परिवर्तन का दौर शुरु हो गया था। भारतेन्दु के जन्म के सात वर्ष बाद 1857 की क्रांति हुई। भारतेन्दु जब युवावस्था के हुए तब तक अंग्रेजी सरकार की नीतियों में परिवर्तन हो चुका था। यह परिवर्तन किसी उन्नति के लिए नहीं बल्कि भारत के शोषण के तरीकों में बदलाव के लिए किया गया। भारतेन्दु ने गहराई से तत्कालीन परिस्थितियों का निरीक्षण किया था, यही कारण है कि उनकी रचनाओं में तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक चेतना का स्वरूप मिलता है। आइए इस युग प्रवर्तक की जीवनी को संक्षेप में जानें।

15.3 भारतेन्दु हरिश्चंद्र : कवि परिचय

15.3.1 जीवन-परिचय

भारतेन्दु हरिश्चंद्र का जन्म काशी के प्रतिष्ठित अग्रवाल सेठ के परिवार में 9 सितम्बर सन् 1850 ई. में हुआ था। इनके पिता श्री गोपालचन्द्र उर्फ गिरिधरदास प्रतिभाशाली कवि तथा हिंदी-उर्दू एवं संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान थे। इस प्रकार साहित्यिक वातावरण उन्हें विरासत में ही मिला था। अपने परिवार की वंशावली का वर्णन भारतेन्दु ने पद रचनाओं में किया है। जैसा कि प्रायः देखा जाता है संसार के कई महापुरुषों के जीवन में उनके माता-पिता की छत्र-

छाया बचपन में ही उठ जाती है। भारतेन्दु के जीवन में भी ऐसा ही हुआ। जब वे पाँच वर्ष के हुए तब उनकी माता का निधन हो गया। और जब उनकी अवस्था दस वर्ष की हुई तब पिता की छत्र-छाया उठ गई। इस प्रकार दस वर्ष की आयु से ही उन्हें कई प्रकार के संघर्ष झेलने पड़े। बचपन से स्नेह से वंचित होने पर उनका हृदय प्रेम के प्रतिदान के लिए लालायित रहता था। उनकी यह इच्छा समाज सेवा, राष्ट्रप्रेम, मातृभाषा की उन्नति के रूप में पूरी हुई। चूँकि स्वयं भारतेन्दु के पिता ही साहित्यानुरागी थे, उनका साहित्य के प्रति विशेष झुकाव होना स्वाभाविक था। गोपालचन्द्र जी ने एक सरस्वती भवन की स्थापना की थी जिसमें साहित्यानुरागियों का दरबार लगता था। साहित्यिक वातावरण का प्रभाव भारतेन्दु के जीवन पर पड़ा। एक बार जब उनके पिता "बलराम-कथामृत" में उषा-हरण का प्रकरण लिखवा रहे थे, उस अवसर पर भारतेन्दु ने एक दोहा कहा —

लै ब्योढ़ा ठाढ़े भये श्री अनिरुद्ध सुजान।
बानासुर के सैन को, हनन लगे भगवान ।।

अरगल लेकर अनिरुद्ध खड़े को गए और बानासुर की सेना का वध करने लगे। पिता को बालक भारतेन्दु में ऐसी प्रतिभा देख कर अति प्रसन्नता हुई। उन्होंने आशीर्वाद दिया कि भविष्य में वह बड़ा कवि बनेगा। पिता की भविष्यावाणी सच हुई। भारतेन्दु हिंदी भाषा एवं साहित्य के पथ प्रदर्शक बने।

शिक्षा : शिक्षा के लिए बनारस के क्वींस कालेज में भर्ती हुए किन्तु विमाता की उपेक्षाभाव के कारण पढ़ाई आगे बढ़ नहीं सकी। कालेज से नाता टूट जाना उनके जीवन के लिए एक नई राह बनाने का आधार बना। ज्ञान प्राप्ति एवं विद्यार्जन करने की ललक के कारण उन्होंने स्वयं ही संस्कृत, उर्दू हिंदी, बंगला एवं गुजराती भाषाओं के साहित्य का गहन अध्ययन किया।

यात्राएँ : भ्रमणशील होने के कारण उन्होंने देश के विभिन्न भागों की यात्राएँ कीं। प्रथम यात्रा जो उन्होंने सपरिवार की वह भी पुरी के जगन्नाथ मन्दिर की यात्रा। इसी दौरान उन्होंने बंगला भाषा का नाटक "विधवा विवाह" पढ़ा। सामाजिक अवस्था से परिचित हुए। यात्राओं से उनके मन में देशभक्ति की भावना जगी। हिंदी भाषा के प्रसार-प्रचार के लिए उन्होंने प्रतिज्ञा ली। चौखम्भा स्कूल की स्थापना करके उन्होंने देश सेवा एवं हिंदी के विकास-विस्तार का महत्वपूर्ण कार्य किया। यह स्कूल आज भी हरिश्चंद्र कालेज के नाम से मौजूद है। हिंदी के समाचारपत्रों के प्रकाशन का कार्य करके उन्होंने भाषा एवं साहित्य की उन्नति के लिए एक महत्वपूर्ण कार्य किया। सबसे पहले "कवि वचन सुधा" नामक पत्र निकाला। इसमें तत्कालीन सभी लेखकों की रचनाएँ छपती थीं। अक्टूबर सन् 1873 ई. में इन्होंने "हरिश्चंद्र मैगजीन" नाम की पत्रिका निकाली। आठ अंकों के प्रकाशन के बाद इस पत्रिका का नाम बदलकर "हरिश्चंद्र चंद्रिका" रख दिया गया। यह पत्रिका सन् 1880 ई. तक प्रकाशित होती रही। सन् 1884 ई. में भारतेन्दु ने एक और पत्रिका "नवोदिता हरिश्चंद्र चंद्रिका" निकालना शुरू किया। किन्तु इसके दो अंक ही प्रकाशित हो सके। भारतेन्दु की ही प्रेरणा से तत्कालीन लेखकों ने "आनन्द कादम्बिनी", "हिंदी प्रदीप", "ब्राह्मण", "काशी पत्रिका", "मित्र विलास" तथा "भारत मित्र" नामक पत्रिकाओं का प्रकाशन किया। इन पत्रिकाओं के माध्यम से हिंदी भाषा एवं साहित्य के विकास, विस्तार में बहुत सहायता मिली। नारी उत्थान के कार्य के प्रति भी भारतेन्दु सक्रिय रहे। "बालाबोधिनी" पत्रिका के माध्यम से उन्होंने इस कार्य को आगे बढ़ाया।

हिंदी भाषा एवं साहित्य के भंडार को उन्होंने 238 ग्रंथों की रचना करके समृद्ध किया। नाटक, पद्य, इतिहास, कथा, कहानी, निबंध, जीवन-चरित्र, आलोचना आदि साहित्यिक विधाओं में रचना की तथा हिंदी भाषा साहित्य को पारंपरिक वातावरण से बाहर निकाला। भाषा, शैली एवं विषयगत नवीनताओं का समावेश करके साहित्य को गति प्रदान की। भारतेन्दु का व्यक्तित्व भी प्रभावशाली एवं आकर्षक था। सन् 1870 ई. में वे आनरेरी मजिस्ट्रेट बनाए गए। छह वर्ष तक म्यूनिसिपल कमिश्नर रहे, पंजाब विश्वविद्यालय में संस्कृत भाषा के परीक्षक का काम किया तथा कई देशी राजाओं ने उन्हें सम्मानित किया। 18 सितंबर 1870 को "सारसुधा निधि" में प्रस्ताव पास करके हिंदी जगत ने उन्हें "भारतेन्दु" की पदवी से विभूषित किया था। सन् 1882 ई. में राजस्थान के मेवाड़ यात्रा से वापस आने पर वे अस्वस्थ हो गए और 6 जनवरी सन् 1885 ई. में 35 वर्ष की अल्पायु में उनका स्वर्गवास हो गया। भारतेन्दु का व्यक्तित्व कैसा था यह स्वयं उनकी इस रचना द्वारा स्पष्ट होता है:

सेवक गुनीजन के, चाकर चतुर के हैं,
कविन के मीत, चित हित गुनगानी के
सीधेन सों सीधे, महाबाँके हम बाँकेन सों,
हरीचन्द नगद दमाद अभिमानी के
चाहिवे की चाह, काहू की न परवाह,
नेही नेह के दिवाने सदा सूरत निवानी के,
सरबस रसिक के, सुदास दास प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधा रानी के ।।

भारतेन्दु ने अपने जीवन का हर क्षण साहित्यसेवा, राष्ट्रसेवा में लगाया। उन्होंने विपुल साहित्य की रचना की। आइए उनकी काव्य रचनाओं के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करें।

ब्योढ़ा (अरगल) — वह लंबी गोलाकार लकड़ी जो दरवाजा बंद करके अंदर से उसे खुलने से रोकने के लिए लगाई जाती है।

15.3.2 काव्य रचनाएँ

भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने लगभग 21 काव्य ग्रंथों, 48 प्रबंध काव्य तथा सैकड़ों मुक्त काव्य रचनाएँ की। इसके अतिरिक्त नाटक, गद्य एवं विविध विधाओं में रचनाएँ की। नीचे उनकी काव्य रचनाएँ तथा विधाओं में की गई रचनाओं की तालिका तथा महत्वपूर्ण रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

1 भक्त सर्वस्व
2 प्रेम मालिका
3 फूलों का गुच्छा
4 जैन कुतुहल
5 प्रेमसरोवर
6 प्रेमाश्रु वर्षण
7 **प्रेम फुलवारी:** यह 93 पदों का ग्रंथ है, इसमें दैन्य भाव के विरह संबंधि, प्रीति, राधा स्तुति, कृष्ण स्तुति के पद हैं, यह पदों की विशुद्ध शैली में लिखित भारतेन्दु जी के, अत्यंत श्रेष्ठ एवं प्रौढ़ ग्रंथों में से है। इसके अनेक पद चंद्रावली नाटिका में हैं।
8 भक्तमाला उत्तरार्ध
9 वैसाख माहात्मय
10 **प्रेम तरंग:** यह भारतेन्दु रचित महत्वपूर्ण ग्रंथ है, इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें पदों की नहीं बल्कि गानों का संकलन है। इसमें साधारण जनता में प्रचलित लोकगीतों को साहित्यक रूप दिया गया है। इसमें ब्रजभाषा, खड़ी बोली, उर्दू, बंगला, पंजाबी आदि कई भाषाओं की रचनाएँ हैं।
11 प्रेम प्रलाप
12 गीत गोविन्द
13 सतसई सिंगार
14 होली
15 मधु मुकुल
16 वर्षा विनोद
17 **प्रेम माधुरी:** यह भारतेन्दु के कवित सवैयों का एकमात्र संग्रह है। यह ग्रंथ भारतेन्दु को रीतिकालीन परंपरा से जोड़ता है। इस ग्रंथ में रीतिकालीन कवि घनानंद, ठाकुर बोधा, रसखान द्वारा वर्णित प्रेम विरह के समान ही विरह की अत्यन्त सुन्दर अभिव्यंजना हुई है।
18 विनय प्रेम पचासा
19 कृष्ण चरित
20 कार्तिक स्नान
21 राग संग्रह

भारतेन्दु ने 48 प्रबंध काव्यों की रचनाएँ की। जिनमें राजभक्ति, भक्ति संबंधि तथा विविध विषयों से संबंधित रचनाएँ हैं।

राजभक्ति संबंधी — इसके अर्न्तगत श्री राजकुमार शुभागमन वर्णन, भारत भिक्षा, भारत वीरत्व, विजय वल्लरी, विजयिनी विजय पताका या वैजयंती, जातीय संगीत एवं रिपनाष्टक मुख्य हैं।

भक्तिकाव्य — कृष्णकाव्य, प्रबोधिनी आदि मुख्य हैं।

विविध — चतुरंग बसंत होली, उर्दू का स्यापा, बकरी विलाप, बंदर सभा, नए जमाने की मुकरी तथा हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान मुख्य हैं।

भारतेन्दु ने 24 नाटकों की रचना की जिनमें मुख्य हैं —

1 विद्या सुन्दर
2 पाखण्डविडम्बन
3 वैदिक हिंसा हिंसा न भवित
4 सत्यहरिश्चंद्र
5 प्रेमजोगिनी
6 विषस्य विषमौषधम
7 चंद्रावली
8 भारत दुर्दशा
9 भारत जननी
10 नीलदेवी
11 दुर्लभबन्धु (अनुवाद)
12 अंधेर नगरी।

भारतेन्दु रचित काव्य कृतियों के परिचयमात्र से आपने यह अनुमान लगा लिया होगा कि उन्होंने जीवन के विविध पक्षों को काव्य में स्थान दिया। एक ओर परंपरा से चली आ रही परिपाटी का पालन किया, वहीं दूसरी ओर तत्कालीन आवश्यकताओं के अनुरूप विविध विषयों का चयन किया। हम भारतेन्दु के काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों को जाने उससे पहले कुछ बोध प्रश्नों का उत्तर दें :

बोध प्रश्न

1 रिक्त स्थानों में उचित शब्द रखकर वाक्य पूर्ति कीजिए :

क) भारतेन्दु हरिश्चंद्र के पिता का नाम .... था। वे स्वयं अच्छे .... थे।

ख) भारतेन्दु हरिश्चंद्र के पिता ने उषा हरण प्रकरण लिखवाते समय भारतेन्दु द्वारा .... कहने पर बड़ा .... बनने का आशीर्वाद दिया।

ग) भारतेन्दु हिंदी के अलावा ...., ... आदि भाषाओं की अच्छी जानकारी रखते थे।

घ) पुरी यात्रा के दौरान बंगला भाषा का नाटक .... पढ़ने पर भारतेन्दु में सामाजिक चेतना जगी।

ङ) हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए भारतेन्दु ने .... की स्थापना की।

च) भारतेन्दु ने सर्वप्रथम .... नामक पत्र निकाला।

छ) हिंदी जगत ने सन् 1870 ई. में हरिश्चंद्र को .... की पदवी से विभूषित किया।

ज) सन् 1885 ई. में .... की अल्पायु में भारतेन्दु हरिश्चंद्र का स्वर्गवास हो गया।

2 भारतेन्दु में साहित्यिक रुचि पैदा होने का प्रमुख कारण क्या था?

....

....

3 नारी उत्थान के लिए भारतेन्दु द्वारा किया गया प्रथम प्रयास क्या था?

....

4 पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन के पीछे भारतेन्दु का मुख्य उद्देश्य क्या था?

....

अभ्यास

1 तत्कालीन भारत की किन-किन परिस्थितियों ने कवियों में चेतना फैलाई? दस पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

15.4 भारतेन्दु का काव्य : प्रमुख प्रवृत्तियाँ

भारतेन्दु हरिश्चंद्र हिंदी भाषा साहित्य के उन महाकवियों में हैं जिन्होंने अपने पूर्व परंपरा पर चलते हुए काव्य रचनाएँ की, वहीं स्वयं अपनी एक परंपरा भी प्रारंभ की। भारतेन्दु हिंदी के पूर्ववर्ती साहित्य से पूरे प्रभावित हैं, उनके काव्य में परंपरागत सभी धाराओं का प्रतिनिधित्व मिल जाता है। "विजयिनी विजय वैजयंती" तथा "विजय वल्लरी" में वीरगाथा काव्य की झलक मिलती है, भक्ति काव्य में भक्तिकाल की कृष्णश्रयी एवं रामाश्रयी दोनों सगुण धाराओं तथा ज्ञानाश्रीय धारा का प्रतिबिंब मिलता है। भारतेन्दु के भक्ति काव्य में कबीर, सूर, तुलसी की झलक है। भारतेन्दु वल्लभ सम्प्रदाय

के वैष्णव थे। इसलिए उन्होंने कृष्ण काव्य की रचना प्रचुर मात्रा में की। भारतेन्दु का बचपन रीतिकाल में बीता था इसलिए इसके प्रभाव से बच निकलना असंभव था। घनानन्द, रसखान, ठाकुर, बोधा, आलम आदि स्वच्छंद कवियों का अनुकरण किया। उनके अनेक कवित्त सवैये रीति परंपरा पर हैं और उनमें नायक नायिकाओं के अच्छे उदाहरण मिल सकते हैं। परकीय के विरह का जो स्वाभाविक एवं सरस चित्रण भारतेन्दु ने किया है उसकी तुलना घनानंद की रचनाओं से की जा सकती है। विरह का अस्भाविकं अत्युक्तिपूर्ण ऊहात्मक वर्णन उन्होंने नहीं किया है। भक्त कवियों में जिन्होंने पद रचना की उनमें भारतेन्दु विद्यापति एवं मीरा के समान और सूर को छोड़कर अष्टछाप के सभी कवियों से आगे हैं। कवित्त सवैया रचना करने वाले शृंगारी कवियों में वे देव, पद्माकर, ठाकुर, घनानंद एवं रसखान की कोटि के हैं।

भारतेन्दु आधुनिक काव्य के प्रवर्तक है। हिंदी काव्य रीतिकाल में जन जीवन से दूर चला गया था। भारतेन्दु ने साहित्य को जीवन से जोड़कर इस विच्छेद की खाई को पाट दिया। राजभक्ति, देश भक्ति समाज सुधार, देश प्रेम, हिंदी प्रेम आदि विषयों पर कविताएँ लिख कर काव्य की संकीर्ण सीमा का विषय विस्तार किया।

काव्य में हास्य रस प्रायः अछूता रहा है। भारतेन्दु पहले कवि थे जिन्होंने हास्य रस से संबंधित रचनाएँ की, किन्तु उनका हास्य निरर्थक न होकर सोद्देश्य है। हास्य रचना कर वे सामाजिक कुरीतियों पर कुठाराघात करते हैं। इकाई में आगे हम उदाहरणों द्वारा इसे जानेंगे।

लोकगीतों को साहित्योपयोगी बनाकर उन्होंने अपने स्वछंद प्रकृति का परिचय दिया। भारतेन्दु पहले कवि है जिन्होंने प्रचुर मात्रा में रस से युक्त गानों का प्रणयन किया। काव्य रूपों के क्षेत्र में भी भारतेन्दु ने नवीनता का समावेश किया। भारतेन्दु हिंदी के पहले कवि हैं जिन्होंने पहले-पहल अंग्रेजी के ढंग पर निबंध काव्यों, कलाकाव्यों एवं संबद्ध मुक्तकों की रचनाएँ की।

भारतेन्दु से पूर्व हिंदी के कवियों में जहाँ किसी एक शैली में प्रवीणता दिखाई वही भारतेन्दु ने प्रायः प्रत्येक पूर्ववर्ती काव्य शैली में सफलता प्राप्त की है, साथ ही नवीन काव्य शैलियों का प्रणयन भी किया। भारतेन्दु ब्रजभाषा के कवि हैं, किन्तु आधुनिक खड़ी बोली में सर्वप्रथम परीक्षात्मक प्रयोग का कार्य उन्होंने ही किया। भारतेन्दु से पूर्व अमीर खुसरो एवं कबीर के काव्य में खड़ी बोली की क्षीण परंपरा मिलती है, किन्तु जागरूक रूप से प्रयास भारतेन्दु द्वारा हो प्रारंभ हुआ। जब गद्य रचना के लिए खड़ी बोली समर्थ भाषा के रूप में सामने आई तब प्रश्न यह उठा कि गद्य एवं पद्य की दो भिन्न भाषाएँ कहाँ तक समीचीन हैं। इसी अस्वाभाविकता को दूर करने के लिए भारतेन्दु ने खड़ी बोली में काव्य-लेखन का प्रयोग किया।

आइए भारतेन्दु काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों को जानें। सम्पूर्ण भारतेन्दु काव्य को हम मुख्य रूप से दो भागों में बाँट कर उनके काव्य की प्रवृत्तियों को पहचान सकते हैं। पहले के अन्तर्गत प्राचीन प्रवृत्तियों को रखा जा सकता है तथा दूसरे को नवीन प्रवृत्तियों को।

15.4.1 प्राचीन प्रवृत्तियाँ

भारतेन्दु परंपरा से अधिक प्रभावित थे। वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होने के कारण उन्होंने भक्ति से संबंधित रचनाएँ की। सूर एवं तुलसी की भाँति उन्होंने विनय के पदों की रचना की। वे हरि-चरित की बड़ाई करने का कारण बताते हैं—

हरि लीला सब विधि सुखदाई।
कहत सुनत देखत जिय आनत देहि भगति अधिकाई।
प्रेम बढ़त, अघ नसत, पुन्य-रति जिस में उपजत असई॥
याही सों "हरीचंद" करत मुनि नित हरि-चरित बड़ाई।

श्री राम लीला

आत्म निवेदन के पद में भारतेन्दु का हृदय अन्य भक्त कवियों की भाँति उदार हो जाता है।

नहि ईश्वरता अँटकी वेद में।
तुम तो अगम अनादि अगोचर सो कैसे मतभेद में॥

कृष्णपदावली : जिस प्रकार सूरदास ने प्रायः चार सौ पदों में कृष्ण चरित का वर्णन किया उसी प्रकार भारतेन्दु ने पाँच सौ से अधिक पदों में कृष्ण चरित का वर्णन किया है। जन्म, बाल लीला, पूर्वराग, विविध लीलाएँ, राधा कृष्ण विवाह, रूप, युगल विहार, खंडिता मान, मंगलमय ब्रज, प्रवास विप्रलंभ, भ्रमर गीत, कृष्ण का अभिषेक, रथ यात्रा, उपसंहार आदि विषयों पर कृष्ण चरित लिखा है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं। वे कृष्ण के जन्म का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

प्रगटे रसिक जनन के सरबस।
जसुमति उदार अलौकि वारिधि श्याम कलानिधि विधि रस।
पसरति चंद्र कला सो पूरव उज्ज्वल विमल विसद जस।
"हरीचंद" ब्रजवधुचकरी सहजहि कीन्हीं निज बस॥

जिस प्रकार सूरदास ने राम-कृष्ण को आँगन में साथ-साथ खेलते हुए दिखाया है यथा—

भावत हरि को बाल बिनोद
श्याम-राम मुख निरखि निरखि, सुख मुदित रोहिनी जननि जसोद।

सूरसागर - 115/737

उसी प्रकार भारतेन्दु ने भी चित्रण किया है—

सखी री देखहु बाल विनोद,
खेलत राम कृष्ण दोऊ आँगन किलकत हँसत प्रमोद।

प्रेममालिका - 6

सूरदास ने नयनों पर प्रायः दो सौ पद लिखे, भारतेन्दु ने भी इस पर करीब एक दर्जन पद लिखे। एक सुन्दर उदाहरण देखिए। कन्हैया की एक मुद्रा ने बेचारी राधा को बुरी तरह आकृष्ट किया है और उसके नेत्र उस छवि को भूलने में अपने को असमर्थ पा रहे हैं—

नैना वह छवि नहिन भूले
दया भरी चहुँ दिसि की चितवनि नैन कमल दल फूले
वह आवनि, वह हँसनि छबीली, वह मुसकनि चित चोरै
" " "
" " "
परवस भए फिरत है नैना, एक छन हरत न टारे
"हरीचंद" ऐसी छवि निरखत, तन मन धन सब हारे।

प्रेम मालिका - 20

चीर हरण लीला पर सूर ने 34 पद लिखे भारतेन्दु ने इससे संबंधित चार पदों की रचना की। एक सुंदर पद देखिए। स्नान कर लेने के उपरान्त गोपियाँ अपने वस्त्रालंकार न पा व्याकुल हो गई।

खोजत वसन ब्रज की बाल
निकसिकै सब लेहु, छिपिकै कह्यो स्याम तमाल
सुंनत चचंल चित चुहुँ दिसि चकित निरखत नारि
मधुर बैननि हिओ फरकत जानिकै बनवारि
कदम पर तै दरस दीनों, गिरिधरन-घनश्याम
अंग अंग अनूप शोभा, मथन कोटिक काम
सिर मुकुट की लटक चटकत, वसन सोभित प्रीत
चरन तक वनमाला सोभित, मनहु लपटी प्रीत
फैलि रहि सोभा चुहुँ दिसि मन लुभावत पास
नैन ते "हरीचंद" के छवि टरट नहीं इक साँस।

स्फुट - 13

इसी प्रकार राधा कृष्ण विवाह से लेकर प्रवास, विप्रलंभ एवं भ्रमर गीत के साथ रथ यात्रा एवं उपसंहार तक कृष्ण चरित से संबंधित पदों की रचना की।

कथाकाव्य : भारतेन्दु ने प्रबंध काव्य या कथाकाव्य लिखने में रुचि दिखाई लेकिन वस्तुतः उनकी ऐसी रचनाएँ मुक्तक के रूप में ही हैं। "देवी छद्म लीला", "तन्मय लीला", "दान लीला", "रानी छद्म लीला", वेणुजोति आदि उनके कथा काव्य हैं। सभी रचनाएँ छोटी-छोटी और कृष्ण लीला से संबंधित हैं।

रीतिकाव्य : भारतेन्दु पूर्व का युग रीतिकाव्य का है। भारतेन्दु के समय में भी रीतिबद्ध शृंगार काव्य की रचनाएँ प्रचुर मात्रा में हो रही थीं। स्वयं भारतेन्दु ने कोई रीतिबद्ध ग्रन्थ की रचना तो नहीं की, किन्तु उनके आधे से अधिक कवित्त, सवैये, रीति काव्य रचना के सफल उदाहरण हैं। "सुंदरी तिलक" सवैयों के संग्रह में भारतेन्दु ने नायिका-भेद के क्रम का अनुसरण किया है। भारतेन्दु ने साहित्यशास्त्र का गहन अध्ययन किया था। वे विभिन्न विषयों पर तर्कपूर्ण स्वतन्त्र सम्मति रखते थे उनके आधे से अधिक कवित्त सवैये नायिका भेद संबंधी हैं। नायिका भेद ग्रंथों में पहले नायिका का ही उदाहरण दिया जाता है। नायिका रूप, गुण एवं यौवन से युक्त होनी चाहिए। भारतेन्दु रचित यह सवैया देखिए—

गोरें सो रंग, उमंग भर्यो नित, अंग अनंग की मंत्र जगाए
काजर रेख खुभी दृग मैं, दोउ भौंहन काम कमान चढ़ाए
आवनि बोलनि डोलनि ताकी, चढ़ी चित मे अति चाँद बढ़ाए
सुंदर रूप सो नैनन में बस्यो, भूलत नाहिनै क्योंहू भुलाए।

॥ कर्पूर मंजरी ॥

विवरणात्मक काव्य : जिस काव्य में कार्य विशेष या किसी दृश्य का विवरण प्रस्तुत किया जाए उसे विवरणात्मक काव्य कहते हैं। भारतेन्दु ने दो विवरणात्मक काव्य की रचना की 1. हिंडोला तथा 2. होली।

हिंडोला — यह विवरणात्मक काव्य है। इसका रूप पद का सा है, पहली पंक्ति छोटी है, फिर 190 पंक्तियाँ नाप-जोख की हैं। चार-चार चरणों की एक कड़ी होती है और इसके पश्चात पहले छोटे चरण की आवृति है। प्रत्येक चरण में

14, 12 के विराम से 26 मात्रायें है। एक उदाहरण देखिए — एक सुंदर उपवन में चढ़कर पेड़ की मोटी डाल पर झूला डाल दिया गया है। झूले का वर्णन अत्यंत सुन्दर है--

तहँ झमकि झूलत होड़ बदि बदि उमंगि करहिं कलोल
खेले, हँसै गेदंक चलावै, गाई मीठे बोल
झोटा बढ़यो रमकत दोऊ दिसि डार परसत जाई
फहरत अंचल खुलत बैनी अंग परत दिखाई
टूटि मोती माला मुक्ता गिरत भूपै आई
मनु मुक्त जन अधिकार गत लखि देत धरनि गिराइ
कसी कंचुकि होत ढीली खुलि तनो के बंद
सिथिल कंवरी उड़त सारी, गिरत कर के छंद
प्रगट बदन दुरात, झूलत मै तहाँ सानंद
मनु प्रेम सागर मनत इत उत तरह कढि बहुचंद

"होली लीला" भी हिंडोला के ढंग की रचना है। इसका काव्य सौष्ठव एवं रचना प्रणाली हिंडोला के समान ही है।

काव्य कौतुक : भारतेन्दु में कौतुक की प्रवृत्ति थी। उनके काव्य में भी यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। काव्य प्रवृत्ति से संबंधित भारतेन्दु की निम्नलिखित रचनाएँ हैं।

1 अलबरत अन्तर्लिपिका
2 श्रोजीवन जी महाराज
3 चतुरंग
4 वसन्त होली-काव्य
5 मूक प्रश्न, मानलीला
6 फूल बुझौवन काव्य
7 रिपनाष्टक का आठवाँ छन्द
8 नए जमाने की मुकरी
9 समधिन मधुमास
10 मनोमुकूल माला

इस प्रकार भारतेन्दु के काव्य का अधिकांश भाग प्रवृतियों से संबंधित है। पंपरा से चली आ रही प्रवृत्ति को उन्होंने अपनाया किन्तु तत्कालीन परिस्थितियों ने उनमें नवीन प्रवृत्ति के लिए प्रेरणा प्रदान की। आइए भारतेन्दु काव्य की नवीन प्रवृत्ति को जानें।

15.4.2 नवीन प्रवृत्तियाँ

अब तक के अध्ययन से आपको स्पष्ट को गया होगा कि आधुनिक काव्य धारा के उद्देश्य के पीछे तत्कालीन राजनीतिक सामाजिक आर्थिक परिस्थितियाँ उत्तरदायी थीं। भारतेन्दु काव्य में इस आधुनिक नवीन काव्य धारा की प्रवृत्तियों को निम्नलिखित विषयों में देखा जा सकता है।

1 राजभक्ति
2 देशभक्ति
3 समाज सुधार
4 अर्थनीति
5 भाषा-प्रेम
6 परिहास काव्य
7 लोकगीत
8 निबंध काव्य
9 प्रकृति वर्णन

आइए एक-एक उदाहरण सहित इन्हें जानें :

1 राजभक्ति : भारतेन्दु का परिवार अंग्रेजी हुकूमत का समर्थक था। प्रत्येक रईस की भाँति भारतेन्दु में भी राजभक्ति निहित थी। राजभक्ति प्रदर्शित करने का उन्हें जहाँ भी अवसर मिला वहाँ उन्होंने यह कार्य किया है। राजपरिवार के सुख, दुःख, हर्ष, विषाद सभी अवसरों पर काव्य रचनाएँ कीं। राजभक्ति से संबंधित रचनाएँ इस प्रकार है—

1 अलंवरत वर्णन अन्तर्लिपिका, 1918
2 श्री राजकुमार सुस्वागत पत्र, 1926
3 काशी में ग्रहण के हित महाराजकुमार के आने के हेतु कवित, 1926
4 सुमनान्जलि, 1927
5 कविता, 1928
6 भारत भिक्षा, 1932

7 मानसोपायन, 1933
8 मनोमुकुल, 1934
9 भारत वीरत्व, 1935
10 विजय पल्लरी, 1938
11 विनयिनी विजय पताका या वैजयंती, 1913
12 जातीय संगीत, 1941
13 रिपनाष्टक, 1941
14 स्फुट

स्फुट रचना में से एक प्रसिद्ध रचना उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत है। मुद्राराक्षस नाटक के अन्त में कवि ने रानी विक्टोरिया की प्रशंसा में इस सवैये की रचना की है।

पूरी अमी की कटोरिया सी चिरजीओं सदा विक्टोरिया रानी
सूरज चंद प्रकाश करै जब लौं रहे सातहू सिंधु मैं पानी
राज करौ सुख सों तब लौं निज पुत्र औ पौत्र समेत सयानी
पालौ प्रजाजन को सुख सो जग कीरति जान करै गुन जानी।

भारतेन्दु का परिवार अंग्रेजी शासकों का समर्थक था। भारतेन्दु केवल इसी कारण से ही राजभक्त नहीं थे कि उनका वंश भी राजभक्त था, बल्कि इसके पीछे कारण था। "भारत वीरत्व" रचना में हम इस कारण को देख सकते हैं—

जासु राज सुख वस्यौ सदा भारत भय त्यागी
जासु बुद्धि नित प्रजा पुंज रंजन महँ पागी

उन्हें यह आशा थी कि विक्टोरिया के शासन से देश में सुख शांति रहेगी।

2 देश भक्ति : लगभग सन् 1931 ई. तक भारतेन्दु राजभक्त बने रहे। उस समय तक वे अंग्रेजी सरकार को न्याय, धर्म तथा दया का अवतार समझते रहे। किन्तु उन्हें सहज ही ज्ञात हो गया कि कोरी राजभक्ति से काम नहीं चलेगा। विदेशी शासन की बुराइयों से परिचित होने पर उनमें राष्ट्रीयता के अंकुर प्रस्फुटित होने लगे। कविताओं में अंग्रेजी शासन की आलोचना, अतीत पर गर्व, वर्तमान पर क्षोभ, भगवत्प्रार्थना तथा मंगलाशा के अन्तर्गत उन्होंने देशभक्ति की भावना व्यक्त की।

भारत के अतीत की याद से संबंधित रचनाएँ हैं — "विजयिनी विजय वैजयंती", "प्रबोधिनी", "भारत भिक्षा", 'भारत वीरत्व", "राजकुमार शुभागमन वर्णन"। एक उदाहरण देखिए—

कहँ गए विक्रम भोज राम बलि कर्ण युधिष्ठिर
चंद्रगुप्त चाणक्य कहाँ नासे करिकै थिर
कहँ क्षत्री सब मरे जरे सब गए कितै गिर
कहाँ राज को तौन साज, जेहि जानत है चिर
कहँ दुर्ग सैन-धन, बल गयो, धुरहि धूर दिखात जग
जागो अब तौ खल-बल दलन, रक्षहु अपुनो आर्य मग

प्रबोधिनी छंद - 19

अतीत की याद तो आती है साथ ही वर्तमान दशा पर जब उनका ध्यान जाता है तब कलेजा दो टूक हो जाता है। "भारत दुर्दशा" तथा "नीलदेवी" में इस निराशा को देखा जा सकता है।

सब भाँति दैव प्रतिकूल होई एहि नासा
अब तजहुँ बीरवर भारत को सब आसा
— नीलदेवी

रोअहु सब मिलकै आवहु भारत भाई
हा हा। भारत दुर्दशा न देखी जाई
— भारत दुर्दशा

"वर्षा विनोद" — "मधुमुकुल", "अंधेर नगरी", रचनाओं में वर्तमान दशा पर क्षोभ व्यक्त किया गया है।

भगवत्प्रार्थना : देश की दुर्दशा पर क्षोभ व्यक्त करने के बाद वे ईश्वर से प्रार्थना करते है, और देश की दशा सुधारने की मांग करते है।

हाय सुनत नहि, निठुर भए क्यों, परम दयाल कहाई
सब विधि बुड़त लखि निज देसहि लेहु न अवहुँ बचाई
— नीलदेवी

मंगलाशा : कवि अतीत पर गर्व, वर्तमान पर क्षोभ प्रकट करने के बाद भविष्य के लिए मंगलाशा भी करता है —

सब देसन की कला सिमिटिकै इतहै आवै
कर राजा नहि लेइ प्रजन पै हेत बढ़ावै
गाय दूध बहु देहि तिनहि कोऊ न नसावै
द्विज गन आस्तिक होई मेघ सुभ जल बरसावै
तजि क्षुद्र वासना पर सबै निज उदार उन्नति करहि
कहि कृष्ण राधिक नाथ जय, हमहुँ जिय आनंद भरहि

— प्रबोधिनी छंद

समाज सुधार : भारतेन्दु के समय सामाजिक क्षेत्र में परिवर्तन का दौर शुरू हो गया था। समाज में दो तरह के लोगों का दल बन गया था। एक दल रूढ़ीवादी थे, वे परंपरा के अनुकूल रहना चाहते थे। समाज में किसी प्रकार के परिवर्तन के पक्ष में वे नहीं थे। दूसरा दल समाज में आमूल परिवर्तन चाहता था। किन्तु भारतेन्दु इस प्रकार के खेमे से बाहर थे। वे न तो आमूल परिवर्तन के पक्ष में थे और न ही रूढ़ि को पूर्ण समर्थन करते थे। उनका रास्ता बीच का था। वे समाज की जरूरतों के अनुसार आवश्यक सुधार चाहते थे। उनकी कविताओं में जगह-जगह सुधार की बातें कही गई हैं। समाज में किस प्रकार का दोष घर कर गया है उसकी चर्चा "भारत दुर्दशा" में की गई है।

रुचि बहुविधि के वाक्य पुरानन मोहि घुसाए
शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगटि चलाए
जाति अनेकन करी, नीच अरू ऊँच बनायो
खान पान संबंध सबन सो वरजि छुड़ाओ
× × × ×
रोकि विलायत गमन कूप मंडूक बनायो
औरन को संसर्ग छुड़ाई प्रचार घटायो।

वे जाति-पाँति की भावना को समाज के लिए कलंक मानते थे। खान-पान तथा विभिन्न मत मतान्तरों के कारण समाज छोटे-छोटे टुकड़े में बँट गया था। वे चाहते थे कि समाज से ऐसी भिन्नतायें दूर हों। समुद्र पार करना पाप समझा जाता था। भारतेन्दु इसे कूप मंडूकता कहते थे। जिस प्रकार कुएँ का मेंढक कुएँ तक की जगह को सारा संसार मानता है उसी प्रकार भारतीय संसार से दूर रह कर भारत तक ही सीमित हैं। वे इन सब बुराइयों को दूर करना चाहते थे।

वैदिक हिंसा-हिंसा न भवति में मदिरा पान एवं मांस भक्षण आदि पर करारा व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं—

यहि असार संसार में चार वस्तु है सार
जुआ मदिरा मांस अरू नारी संग विहार

लोक गीतों में भारतेन्दु ने समाज सुधार की बातें कही हैं।

अर्थनीति अंग्रेजी शासन की शोषण नीति के कारण भारत की आर्थिक स्थिति खराब होती जा रही थी। भारत का धन विदेश चला जा रहा था। भारतेन्दु लिखते हैं:

अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख़ारी।

— भारत दुर्दशा

विदेशी वस्तुओं की लोकप्रियता के कारण भारतीय उद्योग धंधों पर बुरा असर पड़ रहा था। विदेशी वस्तुओं के इस्तेमाल से भारत का धन विदेश चला जा रहा था। भारतेन्दु भारतीयों की इस प्रवृत्ति से दुःखी थे—

मारकीन मलमल बिना चलत कहू नहि काम
परदेशी जुलाहन के मानहुँ भए गुलाम
वस्त्र काँच कागज कलम चित्र खिलौने आदि
आवत सब परदेश सो नितहि जहाजन लादि

भाषा प्रेम : भारतेन्दु युग के काव्य प्रवृत्तियों में एक नवीन महत्वपूर्ण प्रवृति का उदय हुआ था, वह था भाषा प्रेम। भारतेन्दु ने भाषा प्रेम को इस रूप में व्यक्त किया—

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को शूल।।

वे सभी प्रकार की उन्नति के लिए अपनी भाषाओं की उन्नति को मूल रूप में मानते हैं। वे सभी भाषाओं के सम्मान की बात करते थे हिंदी भाषा के प्राचार के लिए वे जनता में जागृति लाना चाहते थे। सन् 1877 ई. में 'हिंदीवर्द्धिनी'

सभा में हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान देते समय पढ़ा—

प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि जतन
राज काज दरबार में, फैलावहु यह रतन
भाषा सोधहु आपनी, होइ सबै एकत्र
पढ़हु पढ़ावहु लिखहु मिलि, छपवावहु कहु पत्र।

परिहास काव्य : भारतेन्दु से पूर्व परिहास काव्य का भोंडा रूप मिलता है। कविगण, एक दोहे में हास्य रस का लक्षण लिखकर कवित या सवैये में उदाहरण दे देते थे। भारतेन्दु ने सर्वप्रथम सोद्देश्य हास्य रचनाएँ प्रारंभ कीं। उनका परिहास काव्य राष्ट्रीय दृष्टिकोण से ही लिखा गया है। भारतेन्दु का परिहास काव्य निम्नलिखित रचनाओं में है—

1 उर्दू का स्यापा — 2 बंदर सभा एवं होली बंदर सभा
3 समधिन मधुमास — 4 रामलीला के अन्तर्गत गारी
5 नए जमाने की मुकरी — 6 परिहासिनी के अन्तर्गत मुशायरा

"नए जमाने की मुकरी" से एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

रूप दिखावत सरबस लूटै
फंदे में जो पड़ै न छूटे
कपट कटारी हिय में हूलिस
क्यों सखि साजन, नहिं सखि पुलिस

लोकगीत : भारतेन्दु युग पूर्व का हिंदी काव्य जनसाधारण से दूर था। भारतेन्दु युग में काव्य को जनसाधारण से जोड़ने का कार्य किया गया। इस कार्य का शुभारंभ भी भारतेन्दु ने किया। लोकगीत के सौन्दर्य ने भारतेन्दु को लोकगीतों की रचना के लिए प्रेरित किया। कजली, होली, बारहमासा, लावनी, गाली, सेहरा, चैता के अलावा ठुमरी, पूरबी, खेमटा, झिझोटी, दादरा आदि लोकगीतों में भारतेन्दु ने काव्य रचनाएँ कीं। वर्षा विनोद, स्फुट कविताएँ, होली मधुमुकुल, फूलों का गुच्छा, प्रेम तरंग, कर्पूर मंजरी तथा प्रेम प्रलाप रचनाएँ लोक गीतों की हैं। प्रेम तरंग से लोक गीत का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

श्याम सलोने गात मलिनियाँ
बड़े-बड़े नैन, भौहें दोऊ बाँकी, जोवन सो इठलात,
सुनत नहीं कछु बात कोऊ के, राधे के ढ़िग जात
"हरीचंद" कहु जान परे नहि, घूँघट में मुस्कात।

— प्रेम तरंग

निबंध काव्य : किशोरी लाल गुप्त ने अपनी पुस्तक भारतेन्दु एवं अन्य सहयोगी कवि में कुछ रचनाओं को निबंध काव्य की संज्ञा दी हैं। किसी विषय पर सम्यक रूप से तथा सुसंबद्ध रूप से लगातार कई छंदों में रचना को निबंध काव्य कहते हैं। भारतेन्दु ने ही हिंदी में निबंध काव्य की प्रणाली चलाई। भारतेन्दु से पूर्व मुक्तक रचना का रिवाज था। किसी विषय पर सुसंबद्ध रूप से छन्द रचना नहीं की जाती थी। भारतेन्दु ने राजभक्ति संबंधी, देशभक्ति संबंधी तथा प्रकृति संबंधी निबंध काव्य लिखे। इसके अलावा विविध विषयों पर भी निबंध काव्यों की रचना की। भारतेन्दु के निबंध काव्य निम्नलिखित हैं।

1 राजभक्ति संबंधी : श्रीरामकुमार सुस्वागत पत्र, प्रिंस आँफ वेल्स के पीड़ित होने पर कविता, मुँह दिखावनी, भारत भिक्षा, मनोमुकुल माला, भारत वीरत्व, विजयिनी विजय-वैजयंती।

2 देशभक्ति संबंधी : प्रबोधिनी, हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान

3 प्रकृति संबंधी : प्रातः समीर

4 विविध : बकरी विलाप

हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान में भारतेन्दु ने हिंदी भाषा के हित के लिए सभा होने पर प्रसन्नता प्रकट की है।

अहो अहो मम प्रान प्रिय आर्य भ्रात जन आज
धन्य दिवस जो यह जुड़ों हिंदी हेतु समाज

इसके बाद भाषा से संबंधित 98 दोहे हैं। अंत में यह निवेदन किया गया है कि विलंब न करके हिंदी भाषा की उन्नति के लिए कार्य करें।

करहु विलंब न भ्रात अब उठहु मिटावहु सूल
निज भाषा उन्नति करहु प्रथम जो सब को मूल।

ऊपर की चर्चा से आपको यह स्पष्ट हो गया होगा कि एक ओर भारतेन्दु ने परंपरा से चली आ रही प्रवृत्तियों का अनुसरण किया, वहीं तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक आदि अवश्यकताओं के अनुरूप नवीन प्रवृतियों को जन्म भी दिया। चूँकि भारतेन्दु युग से पूर्व का काव्य क्षीण भक्ति काव्य एवं रीति काव्य का है अतः उस परंपरागत काव्य से प्रभावित होना स्वाभाविक था, किन्तु तत्कालीन जरूरतों के अनुसार जिन नई प्रवृतियों का प्रारंभ भारतेन्दु ने किया वह उनका हिंदी भाषा साहित्य के इतिहास में युगान्तकारी योगदान है।

बोध प्रश्न

5 भारतेन्दु काव्य की प्राचीन प्रवृत्तियाँ कौन-कौन सी है?

6 भारतेन्दु काव्य में नवीन प्रवृत्ति के उद्‌भव के पीछे क्या कारण थे?

7 कृष्णपदावली रचना करते हुए भारतेन्दु ने किस भक्त कवि का अनुसरण किया ?

8 विवरणात्मक काव्य का तात्पर्य स्पष्ट कीजिए।

9 भारतेन्दु ने राजभक्ति संबंधी रचनाएँ क्यों की?

10 भारतेन्दु से पूर्व परिहास काव्य का स्वरूप क्या था?

11 लोकगीतों की रचना के पीछे भारतेन्दु का क्या उद्देश्य था?

12 निबंध काव्य का तात्पर्य क्या है?

13 नीचे भारतेन्दु काव्य से प्राचीन एवं नवीन प्रवृत्तियों से संबंधित विषय एवं रचनाएँ दी जा रही हैं, आप उनका सही मिलान करें।

विषय	रचनाएँ
1 कथाकाव्य	प्रेम मालिका
2 कृष्णपदावली	देवीछद्‌मलीला
3 नायिका भेद	हिंडोला
4 विवरणात्मक काव्य	सुंदरी तिलक
5 श्रीराजकुमार सुस्वागत पत्र	मनोमुकुल माला
6 काव्य कौतुक	राजभक्ति

15.5 संरचना शिल्प

अब तक हमने भारतेन्दु काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों के बारे में जानकारी प्राप्त की है। अब हम भारतेन्दु काव्य के संरचनागत विशेषताओं पर विचार करेंगे। इसके अन्तर्गत भाषा, काव्य रूप, छंद, रस, अलंकार पर चर्चा की जाएगी। आइए सर्वप्रथम भाषा पर विचार करें—

15.5.1 भाषा

भारतेन्दु ने काव्य रचना के लिए सरल, सरस, प्रचलित [illegible] प्रकृत [illegible] का प्रयोग किया। परंपरा से चली आ रही कृत्रिम भाषा का प्रयोग उन्होंने नहीं किया। उनकी काव्य [illegible] प्रकृत है। भारतेन्दु ने अपनी रचना के लिए तद्भव शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया है। तत्सम शब्दों को वे अपनी [illegible] रचना से दूर ही रखते हैं। अप्रचलित शब्दों जैसे—बयन, सायर चकवै, भुआल, लोचन आदि को उन्होंने छोड़ दिया है। उन्होंने काव्य की [illegible] भाषा का परिष्कार किया और उसे एक चलता एवं सर्व साधारण, बोधगम्य, निखरा रूप प्रदान किया। एक उदाहरण से इसे समझें—

मारग प्रेम को समुझै, हरिचंद यथारथ होत यथा है।
लाभ कछू न पुकारन में, बदनाम ही होन के सारी कथा है।
जानत है जिय मेरो भली विधि, और उपाय सबै विरथा है।
बावरे है बृज के सगरे, मोहि नाहक पूछत कौन बिथा है।

इस सवैये में कवि ने मार्ग, यथार्थ, व्यथा, वृथा तत्सम शब्दों के स्थान पर मारग, यथारथ, बिथा और विरथा तद्भव शब्दों का प्रयोग किया। इस प्रकार उनकी रचनाओं में सैकड़ों शब्द ढूंढे जा सकते हैं।

उर्दू के शब्दों का प्रयोग : भारतेन्दु कई भाषाओं के जानकार थे। उर्दू का उन्हें अच्छा ज्ञान था। किन्तु उन्होंने उर्दू के प्रचलित एवं सर्वसाधारण बोधगम्य शब्दों का प्रयोग किया। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

खाना-पीना नाच-तमाशा लाख ऐश-आराम सभी
जैसे बिंजन नमक बिना त्यों राम बिना बे काम सभी

— स्फुट पद

ऊपर के उदाहरण में खाना, तमाशा, ऐश-आराम, बेकाम उर्दू के प्रचलित शब्द हैं।

अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग : भारतेन्दु ने अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग हास्य व्यंग्य से संबंधित रचनाओं के लिए किया है। एक उदाहरण देखिए—

विष्णु वाहनी, *पोर्ट* पुरुषोतम, मद्य मुरारी
शैंपेन शिव, गौरी गिरीश, *ब्रांडी ब्रह्म* बिचारी
लंहगा दुपटटा सीक नहिं लागे।
मेमन का *गौन* मंगाये नहि देखों॥

स्थानीय शब्दों का प्रयोग : लोकगीतों में भारतेन्दु ने स्थानीय बनारसी शब्दों का प्रयोग किया है। भाषा की सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य बनाने के लिए यह आवश्यक था। भारतेन्दु के गीत जनसाधारण में लोकप्रिय हुए इसका मुख्य कारण था भाषा का सरल होना।

एक उदाहरण देखिए—

काकरौं गोइयाँ गई अखियाँ
कैसे छिपाऊँ छिपत नहीं सजनी छैला मद-मती भई मधु-मखियाँ
सावरों रूप देख परबस भई इन कुल-लाज तनिक नहीं रखियाँ
'हरीचंद' बदनाम भई मैं तो ताना मारत तब सँग की सखियाँ

— प्रेम तरंग

इस प्रकार भारतेन्दु काव्य पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है कि भारतेन्दु ने काव्य भाषा को जनसामान्य योग्य बनाने के लिए तद्भव, उर्दू, अंग्रेजी तथा स्थानीय शब्दों का सफल प्रयोग किया है। वस्तुतः भाषा को जनसामान्य के निकट लाकर भारतेन्दु ने एक ऐसा स्वरूप खड़ा कर दिया जिसके आधार पर खड़ी बोली हिंदी कविता में प्रमुख स्थान पाने में सफल हो सकी।

15.5.2 काव्य रूप

किशोरीलाल गुप्त के अनुसार मुक्तक एवं प्रबंध काव्य के बीच की रचनाओं को निबन्ध काव्य, वर्णात्मक काव्य, काव्य कहानी नामों से अभिहित किया जा सकता है। हिंदी साहित्य में ऐसी रचनाओं का प्रारंभ भारतेन्दु ने किया।

निबंध काव्य : किसी विषय पर चिंतन करके पद्यबद्ध लेख के रूप में प्रस्तुत रचना को निबंध काव्य की संज्ञा दी जाती है। ऐसी रचना में कोई कथा सूत्र नहीं होता है। हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान, बकरी विलाप, प्रातः समीर, रिपनाष्टक ऐसी ही रचनाएँ हैं।

वर्णनात्मक काव्य : बिना कथा सूत्र के किसी दृश्य का वर्णन करते हुए जो काव्य रचना की जाती है उसे वर्णनात्मक काव्य कहते हैं। भारतेन्दु ने "होली लीला" मधुमुकुल छंद, हिंडोला आदि वर्णनात्मक काव्य रचनाएं कीं।

विवरणात्मक काव्य : जिस रचना में कथा का लघु एवं क्षीण सूत्र वर्तमान हो और जिसमें किसी घटना का विवरण प्रस्तुत किया जाये उसे विवरणात्मक काव्य की संज्ञा दी जाती है। भारतेन्दु की ऐसी रचनाएं हैं [illegible] विजय वैजयंती, भारत वीरत्व एवं भारत भिक्षा।

मुक्तक : मुक्तक ऐसी काव्य रचनाएँ हैं जिनमें किसी प्रकार का बंधन नहीं रहता। जिनका एक-एक छंद स्वतन्त्र एवं काव्य आनन्द देने में पूर्ण होता है। मुक्तकों को भी दो प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है। एक वे जो गाये जाने के लिए ही लिखे जाते है इनमें राग-रागनियों का बंधन होता है। दूसरे प्रकार के मुक्तक को साधारण मुक्तक या "मुक्तक" कह सकते हैं। भारतेन्दु संगीत प्रेमी थे, उनका कण्ठ भी सुरीला था वे स्वयं कई प्रकार के वाद्य बजा सकते थे। यही कारण है कि उन्होंने अधिकांश रचनाएँ प्रगीत मुक्तकों में लिखीं। प्रगीत मुक्तक दो प्रकार के होते हैं एक भक्तों की प्राचीन परंपरा से चली आई हुई पद-प्रणाली की, और दूसरी लोकगीतों के रूप में। भारतेन्दु ने पहले प्रकार के प्रगीत (पद-प्रणाली) की रचनाएँ अधिक संख्या में कीं। प्रेम मालिका, कार्तिक स्नान, प्रेमाश्रु वर्णन, जैन कुतूहल, प्रेम तरंग, प्रेम प्रलाप, गीत-गोविदानंद, होली, मधु मुकुल, राग संग्रह, वर्षा विनोद, विनय-प्रेम पचासा, प्रेम फुलवारी, कृष्णचरित, देवी छद्मलीला, दैन्य प्रलाप, उराहना, तन्मय लीला, बोधगीत, भीष्मस्तवराज आदि 800 रचनाएँ पद में हैं।

लोकगीतों में, कजली, होली, दादरा, ठुमरी, साँझी, लावनी, गजल, चैती, पूरबी, बारहमासा आदि लगभग 200 रचनाएँ कीं।

स्तोत्र काव्य : भारतेन्दु ने प्रातः स्मरण, भजनपाठ स्वरूप चिंतन, सर्वोत्तम स्तोत्र, प्रातः स्मरण स्तोत्र, अपवर्गाष्टक, श्रीनाथ स्तुति, अपवर्ण पंचक, श्री सीता वल्लभ स्तोत्र, स्तोत्रों की रचनाएँ कीं।

प्राचीन प्रणाली : भारतेन्दु ने लगभग एक सौ दोहे, एवं ढाई सौ के करीब कवित्त सवैयों की रचनाएँ कीं।

15.5.3 छन्दोविधान

भारतेन्दु ने अधिकांशतः प्रगीत मुक्तकों की रचना की है। इन मुक्तकों का छन्द विधान पिंगलशास्त्र में मिलना कठिन है। इन मुक्तक रचनाओं को विषम मात्रिक छन्द के अन्तर्गत लिया जा सकता है। भारतेन्दु के गीतों की गति मात्राओं पर निर्भर है। चरणों की संख्या असमान है। किसी पद में चार चरण हैं तो किसी में दस। प्रायः पहली पंक्ति छोटी यही दशा उनके अधिकतर लोकगीतों में है। गति और लय के अनुसार भारतेन्दु के गीतों का विवेचन किया जा सकता है? एक उदाहरण देखें—

फबी छवि भोरे ही सिंगार
बिना कंचुकी, बिनु कर कंकन, सोभा बढ़ी अपार
खसि रहि तन में, तन सुखसारी खुलि रहे सोध बार।
हरिचंद मनमोहन प्यारे, रिझयो है रिझवार॥

उपर्युक्त पद की प्रत्येक पंक्ति में मात्राएँ एक सी नहीं हैं। अनेक यतियाँ लगाकर छन्द में प्रभाव बढाने का प्रयास किया गया है।

भारतेन्दु ने कृष्ण काव्य परंपरा मे पद-प्रणाली ग्रहण की। पदों में विविध राग रागनियों के आधार पर अभिव्यक्ति में स्वर एवं लय का पूरा ध्यान रखा है। एक उदाहरण देखिए—

धनि ये मुनि वृंदावन-वासी
दरसन हेतु बिहंगम है रहे मूरति मधुर व्यासी।
नव कोमल दल पल्लव द्रुम पै मिलि बैठत है आई।
नैननि मूँदि त्यागि कोलाहल-सुनहि बेनुधुनि भाई।
प्रानन्नाथ के मुख की बानी करहि अमृत रस पान।
हरीचंद हम कौ सोऊ दुर्लभ यह विधि की गति आन॥

रीतिकाव्य काव्य से भारतेन्दु ने दोहा, कवित और सवैया छंदों को ग्रहण किया है। भारतेन्दु के दोहों में रीतिकालीन कवियों की तरह चमत्कार विलक्षणता नहीं है। सरलता एवं भावाभियक्ति में पूर्णता ही इनके काव्य की विशेषता है। एक उदाहरण लीजिए —

तन तरू चढ़ि रस चूसि सब, फूली न रीति
प्रिय अकास वेली भई, तुव निर्मूलक प्रीति।

भारतेन्दु के कवित्त रीतिकालीन घनानंद, देव एवं पद्माकर की याद दिलाते हैं — एक उदाहरण देखिए:

नेह हरी सो नीकों लागै
सदा एक रस रहत निरंतर छिन-छिन अति रस पावै।
नहिं वियोग — भय नहिं हिंसा जहँ सतत मधुर ह्वै जागे।
हरिचंद तेहि तजि मूरख क्यों जगत जाल अनुरागै॥

— प्रेम फुलवारी

भारतेन्दु ने देवघनाक्षरी तथा रूप-घनाक्षरी छन्दों का सफल प्रयोग किया है। प्रेम माधुरी से एक उदाहरण प्रस्तुत है —

रूप-घनाक्षरी—

बाजी करै वंसी धुनि बाजि बाजि श्रवनन,
जोरा-जोरी मुख-छवि चितही चुराए लेत
हँसनि हँसावति जगत सों तिहारी मुरि
मुरनि पियारी मन सब सों मुराए लेत
हरीचंद बोलनि चलनि बतरानि, पीत-
पट फहरानि मिलि धीरजमिटाए लेत
जुलफैं तिहारी लाज-कुलफन तोरै प्रान,
प्यारे नैन-सैन प्रान संग ही लगाए लेत।

देव घनाक्षरी का एक उदाहरण देखिए —

आजु कुंज मंदिर मै छके रंग दोऊ बैठे
केलि करै लाज छोड़ि रंग सों जहकि जहकि।
सखीजन कहत कहानी हरीचंद तहाँ,
नेह भरी केकी कीर पिक सी चहकि चहकि।
एक टक बदन निहारें बलिहारी लै लै,
गाढ़े भुज भरी लेत नेह सो लहकि लहकि।
गरे लपटाय प्यारी बारबार चूमि मुख
प्रेम भरी बातैं करै मद सो बहकि बहकि।

भारतेन्दु ने मत्तगयंद, अरसात, सुन्दरी, किरीट सवैयों की रचना की। कुछ स्थानों पर मिश्रित सवैयों की रचना की। वर्णनात्मक काव्य के लिए रोला छंद का प्रयोग किया। लोक जीवन की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने लावनी, कजरी, होली आदि छंदों का प्रयोग किया। इसके अलावा बंगला, उर्दू फारसी आदि भाषाओं के छंदों का प्रयोग उनके काव्य की विशेषता है। भारतेन्दु ने काव्य रचना के लिए किसी मतवाद से आबद्ध न होकर भावाभियक्ति के अनुरूप ही छंदों का प्रयोग किया है।

15.5.4 रस

भारतेन्दु हरिश्चंद्र के व्यक्तित्व में दो रूप स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते हैं। एक भक्त का दूसरा कवि का। भारतेन्दु के समग्र काव्य का अवलोकन करने पर यह तथ्य सामने आता है कि भारतेन्दु शांत एवं शृंगार रस के कवि हैं। भारतेन्दु काव्य में यही दो रस प्रमुख हैं। भारतेन्दु विनोदी प्रकृति के कवि थे इसलिए हास्य रस की रचनाएँ भी पर्याप्त मात्रा में है। अन्य रसों की रचनाएँ प्रसंगवंश मिल जाएँगी, लेकिन उनकी संख्या कम है।

शृंगार रस रसों का राजा है। भारतेन्दु ने शृंगार रस के दोनों प्रकार संयोग एवं वियोग का सुन्दर प्रयोग किया है। संयोग शृंगार का एक उदाहरण — "प्रेममाधुरी" रचना से यहाँ प्रस्तुत है—

आज कुंज मंदिर अनंद भरि बैठे स्याम
स्यामा संग रंगन उमंग अनुराग है
घन घहरात बरसात होत जात ज्यों-ज्यों
त्यों ही त्यों अधिक दोऊ प्रेम-पुंज पागे है
"हरीचंद" झलके कपोल पै सिमिट रही
बारि बुंद चूअत अतिहि नीके लागे है
भीजि भीजि लपटि सतराई दोऊ
नील पीत मिलि नए एकै रंग बाजे हैं।

— प्रेम माधुरी

इस कवित्त में कवि ने युगल स्वरूप का मधुर चित्रण किया है। बरसात के मौसम में प्रिय प्रियतमा एक स्थान पर हैं। वर्षा की फुहारें उनमें उत्तेजना बढ़ा रही है। राधा के संग कृष्ण मानों एकाकार हो गए है। स्याम पीत-अंबर भी मिलकर एक रंग के होते जा रहे हैं।

भारतेन्दु वल्लभ संप्रदाय के वैष्णव भक्त थे इसलिए विनय, आत्म समर्पण एवं दैन्य संबंधी पदों की रचना की है। वैराग्य रस से संबंधित एक उदाहरण देखिए—

नाथ तुम अपनी ओर निहारो
हमरी लखते अवलौ गुन-औगुन अपने गुन बिसराई
तौ तरते किमि अजामेल से पापी देहु बताई
अवलौ तो कबहुँ नहिं देख्यो जन के औगुन प्यारे
तौ अब नाथ नई क्यों ठानत भारबहु बार हमारे
तब गुन क्षमा दया सों मेरे अघ नहिं बढ़े पन्हाई
तारों तारि लेहू नंद नंदन "हरिचंद" को धाई

भारतेन्दु ने वीर रस की रचनाएँ देश भक्ति से संबंधित कविताओं में की है "विजयिनी विजय वैयजंती" से एक उदाहरण देखिए—

उठहु वीर तरवार खींचि माड़हु घर संगर
लोह लेखनी लिखहु आर्य बल जवन हृदय पर

"राज संग्रह" में श्री नृसिहें-चतुर्दशी बधाई में रौद्र भयानक तथा अद्भुत रस एक साथ देखा जा सकता है। उर्दू का स्यापा हास्य रस से संबंधित रचना का अच्छा उदाहरण है—

है है उर्दू हाय हाय। कहाँ सिधारी हाय हाय।
मेरी प्यारी हाय हाय। मुर्शी मुल्ला हाय हाय
बल्ला बिल्ला हाय हाय। रोय पीटे हाय हाय।
टाँग घसीठे हाय हाय। सब छिन सोंचे हाय हाय।

15.5.5 अलंकार

भारतेन्दु पूर्व रीति साहित्य का युग था। रीतिकाल के कवियों ने कविता को अलंकारों के भार से दुरूह बना दिया था। चमत्कार प्रदर्शन के लिए अलंकारों का प्रयोग आवश्यक हो गया था। भारतेन्दु के आगमन के बाद काव्य की इस प्रवृत्ति को दूर किया गया। भारतेन्दु सीधी-सादी भाषा लिखने के पक्ष में थे। काव्यालंकारों से बोझिल काव्य से उन्हें मोह नहीं था। उनके काव्य में जहाँ भी अलंकार आए हैं वे सहज सरल एवं स्वाभाविक हैं। हम यहाँ एक-एक अलंकारों के उदाहरण से इसे समझेंगे।

अनुप्रासः भारतेन्दु ने सहज, सरल स्वाभाविक अनुप्रास का प्रयोग किया है—

"तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाए"

यमकः भारतेन्दु यमक नामक अलंकार का प्रयोग अधिक करते हैं। "मानलीला" "फूल बुझोवल" का प्रत्येक दोहा यमक अलंकार से युक्त है:

"अमल कमल कर पद बदन जमल कमल से नैन
क्यों न करत कमला विमल कमल नाम संग सैन"

इस दोहे में कमल शब्द चार बार आता है।

पुनरूक्ति प्रकाश

एक शब्द को दो-दो बार दुहराने पर पुनुरूक्ति प्रकाश अलंकार की संज्ञा दी जाती है। भारतेन्दु में यह प्रवृत्ति बहुत अधिक है:

वह *वन वन* विहरन *कुंज कुंज* तरू पोते
वह गल भुज डालन *प्रीति प्रीति* की घातै
वह चंद *चाँदनी* और निराली रातैं
एक एक की *सौं सौं* जी में खटकती बातैं
"हरीचंद" बिना भई-*रो रो* हाथ दिबानी
पिय प्यारे की मैं *कब* लौं *कहौं कहानी*

भारतेन्दु ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यातिरेक, संदेह आदि अलंकारों का प्रयोग भी किया है।

उपमा : नागरी रूप लता सी सोहै
कमल सो बदन पल्लव से कर पद देखत ही मनमोहे॥
अलसी कुसुम सी नी नासिका जलज पत्र से नयन।
बिम्ब से अधर कुन्द दन्तावलि मदन वान सी सयन॥

उक्त पद में विभिन्न उपमाओं के द्वारा नायिका के नख-सिख सौन्दर्य का सजीव चित्रण किया गया है। इस प्रकार भारतेन्दु ने काव्य रचना में अलंकारों का प्रयोग किया है लेकिन परंपरानुकूल अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन को छोड़कर।

बोध प्रश्न

14 भारतेन्दु के काव्य भाषा की दो विशेषताएँ बताइए।

....

....

15 भारतेन्दु ने काव्य रचना में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग किस उद्देश्य से किया है?

....

....

16 भारतेन्दु ने मुक्तक एवं प्रबंध काव्य के बीच की जिन रचनाओं का प्रारंभ किया उनके नाम लिखिए।

....

....

....

17 वर्णनात्मक काव्य क्या है? भारतेन्दु द्वारा रचित दो वर्णनात्मक काव्य के नाम लिखिए।

....

....

18 मुक्तक रचना किसे कहते हैं? भारतेन्दु द्वारा अपनाये गए दो प्रकार कें मुक्तकों के नाम लिखिए।

....

....

19 भारतेन्दु ने वर्णनात्मक काव्य एवं लोकजीवन की अभिव्यक्ति के लिए किन-किन छंदों का प्रयोग किया?

....

....

20 भारतेन्दु काव्य में शृंगार एवं शांत रस के काव्यों की प्रधानता है कारण बताइए?

....

....

....

....

21 भारतेन्दु काव्य अलंकारों के भार से मुक्त है, कारण बताइये।

....

....

15.6 काव्य वाचन तथा संदर्भ सहित व्याख्या

नैना वह छवि नाहिन भूलै।
दया भरी चहुँ दिसि की चितवनि नैन कमल दल फूले।
वह आवनि वह हंसनि छबीली वह मुस्कनि चित चोरै।
वह बतरानि मुरनि हरि की वह देखन चहुँ कोरे।
वह धीरी गति कमल फिरावन कर लै गायन पाछै।
वह बीरी मुख वेनु बजावति पीत पिछौरी काछे।
पर बस भए फिरत है नैना एक छन टरत न टारे।
"हरिचंद" ऐसी छवि निरखत तन मन धन सब हारे।

— प्रेम मालिका

नाहिन = नहीं, चहुँ = चारों ओर, चित चोरै = दिल चुराने वाला, बतरानि = बात करने की इच्छा, बीरी = पान का बीड़ा, पिछोरी = पीछे की ओर, निरखत = देखकर

तुम्है तो पतितन ही सों प्रीति।
लोकरू बेद विरुद्ध चलाई क्यों यह उलटी रीति।
सब विधि जनत हो निश्चय करि तुमसों छिप्यौ न नेक।
बेद-पुरान प्रभाव तजन को मेरो यह अविवेक।
महा पतित सब धर्म्म बिवर्जित श्रुतिनिंदक अध-खान।
मरजादा ते रहित मनस्वी मानत कहु न प्रभान।
जानत भए अजान काहे क्यों रहे तेल दै कान।
तुम्हे छोड़ि जग को नहि जो मोहि विगरयो करत बखान।
बलिहारी यह रीझि शबरी कहाँ खुटानी आय।
"हरिचंद" सो नेप निबाहत हरि कहु कही न आय।

— प्रेम मालिका

लोकरू = लोक के, जनत = जानते हो, तजन = छोड़कर, मरजादा = मर्यादा, अजान = अनजान

व्याख्या 1

रहै क्यों एक म्यान असि दोय।
जिन नैनन में हरि रस छायो तेहि क्यों भावै कोय।
जा तन-मन में रति रहे मोहन तहाँ ग्यान को आवै।
चाहो जितनी बात प्रबोधो हयाँ को जो पति आवै।
अमृत खाइ अब देखि इनारून को मूरख जो भूलै।
"हरिचंद" ब्रज ले कटली बन काटौ तो फिरी फूलै।

— प्रेम फुलवारी

संदर्भ तथा प्रसंग :

भारतेन्दु भक्ति एवं रीतिकालीन काव्य प्रवृत्तियों से प्रभावित थे। उनके काव्य में एक ओर जहाँ भक्ति कालीन कवियों की भक्तिधारा का प्रतिबिंब मिलता है, वहीं रीतिकालीन प्रवृति का पुट भी। अंतर यह है कि इनमें रीतिकालीन काव्य के समान उहात्मक वर्णन नहीं है। 'प्रेम फुलवारी' से उद्धृत इस रचना में कवि ने प्रेम का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन किया है।

व्याख्या

नायिका कहती है कि एक म्यान में दो तलवार कैसे रह सकती हैं। जिन नैनो में हरी की छवि बस गई है, उसमें दूसरे की छवि नहीं समा सकती। जिस तन मन में श्याम समा गए हों वहाँ ज्ञान के लिए जगह नहीं। चाहे जितनी बातों पर विश्वास हो जाये किन्तु यह कैसे माना जा सकता है कि अमृत छोड़कर कोई विष की चाह कर रहा है। ऐसा तो कोई मूर्ख ही कर सकता है। हरीश्चंद्र कहते है (राधा कहती है) कि जिस प्रकार केले के वृक्ष को जितना काटते जाओ, वह उतना ही फैलता है, उसी प्रकार श्याम का प्रेम है। इस प्रेम को जितना भी दूर करने की कोशिश करोगे यह उतना ही बढ़ता जाएगा।

विशेष :
- इस पद में प्रेम की व्याख्या की गई है।
- पद हमें सूर की रचना की याद दिलाती है जिस प्रकार गोपियाँ उद्धव से प्रेम की व्याख्या करती है और अपने तर्कपूर्ण उत्तर से उद्धव के ज्ञान का खंडन करती है। उसी प्रकार यहाँ नायिका प्रेम को परिभाषित कर रही है।
- ब्रजभाषा के अनुरूप कवि ने वियोग शृंगार का सुन्दर चित्रण किया है।
- रीतिकालीन कवियों के समान इसमें प्रेम का उहात्मक वर्णन नहीं है।

व्याख्या 2

नीचे भारतेन्दु रचित का एक 'कवित्त' दिया जा रहा है, लिखित बिंदुओं के आधार पर आप इसकी व्याख्या करें।

प्रेम में मीन मेष कछू नाहि।
अति ही सरल पंथ यह सूधो छल नहिं जाके माही।
हिंसा द्वैष इरखा मत्सर मद स्वारथ की बातै।
कबहूं याके निकट न आवै छल प्रपंच की घातै।
सहज सुभाविक रहनि प्रेम की प्रीतम सुख सुखकारी।
अपुनो कोटि कोटि सुख पिय के तिनकहि पर बलिहारी।
जहँ ने ज्ञान अभिमान नेम ब्रत विषय-वासना आवै।
रीझ खीज दोऊ पीतम की मन आनंद बढ़ावै।
परमारथ स्वारथ दोऊ पीतम और जगत नहिं जाने।
हरीचंद यह प्रेम-रीति कोउ विरले ही परिचाने॥

"विनय प्रेम पचासा"

संदर्भ :

....

....

....

सच्चे प्रेम की परिभाषा

....

....

....

छल प्रपंच का स्थान नहीं

....

....

....

प्रेमी का सुख अपना सुख

....

....

....

सच्चा प्रेमी कोई विरला

....

....

....

विशेष:

....

....

....

व्याख्या 3

मुँह जब लागै तब नहि छूटै।
जाति मान धन सब कुछ लूटै।
पागल करि मोहि करे खराब
क्यों सखि साजन नहीं शराब।

संदर्भ :

भारतेन्दु का युग परिवर्तन का युग था। तत्कालीन परिस्थितियों ने कवियों में चेतना फैलायी। समाज को जगाने के लिए कवियों ने काव्य रचनाएँ कीं। भारतेन्दु सामाजिक बुराइयों को दूर करके देश में नयी स्फूर्ति का संचार करना चाहते थे। उनके काव्य रचना की प्रवृत्ति में परिवर्तन आया। पारंपरिक प्रवृत्तियों के स्थान पर नयी प्रवृत्तियों ने स्थान पाया। मुकरियों की रचना में इन्हीं प्रवृत्तियों को देखा जा सकता है। नए जमाने की मुकरी से उद्धृत इस मुकरी में कवि ने शराब पीने की बुराइयों की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया है।

व्याख्या :

सखी पहले पहेली पूछती है। फिर स्पष्ट करती है कि शराब ऐसी चीज है जब किसी के मुँह लग जाती है अर्थात जब किसी को इसकी आदत पड़ जाती है तब जाति, मान, मर्यादा, धन सब लूट लेती है। यह व्यक्ति को पागल बना देती है। इसकी आदत पड़ जाने से व्यक्ति का जीवन बर्बाद हो जाता है।

विशेष : मुकरियों की रचना करके भारतेन्दु हरिश्चंद्र जनता में जागृति लाना चाहते थे। शराब पीने से समाज में जो अवनति आ रही थी उसे दूर करने के लिए कवि ने व्यंग्य भरी मुकरियों की रचनाएँ कीं।

यहाँ दो मुकरी दी जा रही हैं आप इनकी व्याख्या करें—

भीतर भीतर सब रस चूसै।
हँसि हँसि के तन मन धन मूँसै।
जाहिर बातन में अति तेज
क्यों सखि साजन नहीं अंग्रेज।

संदर्भ

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

नई नई नित तान सुनावै
    अपने जाल में जगत फँसावै
नित नित हमै करै बल सून
    क्यों सखि साजन नहीं कानून।

संदर्भ

....

....

....

....

....

....

....

....

....

15.7 सारांश

- अंग्रेज़ों के आगमन के बाद भारत के राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में परिवर्तन आया। बदली हुई परिस्थितियों का प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर पड़ा। 'अंग्रेजों' की शोषण नीतियों ने जहाँ भारतीय जनता में विद्रोह की अग्नि भड़काई वहीं तत्कालीन कवियों में चेतना फैलाई। भारतेन्दु इस चेतना के अग्रदूत बने। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप हिंदी कविता में आए परिवर्तन को बता सकते हैं।
- भारतेन्दु का आगमन हिंदी भाषा साहित्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण था। उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व ने हिंदी काव्य को एक नई दिशा प्रदान की। आप इस युग पुरुष के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की विशेषताओं को स्पष्ट कर सकते हैं।
- तत्कालीन परिस्थितियों ने कवियों के अंदर नई चेतना का संचार किया। यद्यपि भारतेन्दु पारंपरिक प्रवृत्तियों से जुड़े रहे लेकिन नई चेतना उनके काव्य के मुख्य विषयवस्तु के रूप में सामने आई। आप भारतेन्दु की मूल संवेदना को स्पष्ट कर सकते हैं।
- भारतेन्दु का आगमन जिस समय हुआ वह रीतिकाल का समय था। रीति कालीन परंपरा का प्रभाव उन पर था लेकिन काव्य की विषयवस्तु, भाषा शैली आदि में उन्होंने नए प्रयोग किए। ब्रज भाषा ही काव्य भाषा हो सकती है, इस भ्रम को उन्होंने दूर किया। इकाई के अध्ययन के बाद आप भारतेन्दु काव्य की संरचनागत विशेषताओं को बता सकते हैं।

15.8 शब्दावली

तिदान - लौटाना, वापस करना, किसी की दी हुई वस्तु के बदले में मिलने वाली वस्तु।

[illegible] - ग्रन्थ के अन्तर्गत उसका छोटा विभाग, अध्याय।

पूर्ववर्ती - पहले का, जो पहले रह चुका हो।

त्मक - बढ़ाचढ़ा कर वर्णन करना।

अष्टछाप - गोसाई विट्ठलनाथ जी का निश्चित किया हुआ आठ सर्वोत्तम पुष्टि मार्गी कवियों का एक वर्ग।

कुठाराघात - गहरी चोट।

समीचीन - उपयुक्त, उचित, वाजिब, ठीक-ठीक।

मुद्रा - खड़े होने, बैठने आदि में शरीर के अंगों की कोई स्थिति।

कौतुक - विनोद, तमाशा, कुतुहल, दिल्लगी।

15.9 उपयोगी पुस्तकें

- गुप्त, किशोरी लाल : *भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि*, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस
- पूर्व इकाई में उल्लेखित पुस्तकों को प्रयोग में लाएँ।

15.10 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1 (क) श्री गोपालचन्द्र, कवि (ख) दोहा, कवि, (ग) संस्कृत, उर्दू, बंगला (घ) विधवा विवाह (ङ) चौखम्भा (च) कविवचन सुधा (छ) भारतेन्दु (ज) 35

2 भारतेन्दु में साहित्यिक रुचि पैदा होने का प्रमुख कारण था घर में साहित्यिक वातावरण का होना। उनके पिता स्वयं कवि थे एवं साहित्यकारों की सभा का आयोजन करते थे। घर के साहित्यिक माहौल ने उनके अंदर के कवि को प्रेरणा दी।

3 बंगला भाषा का नाटक "विधवा विवाह" पढ़ने के बाद भारतेन्दु में सामाजिक चेतना जगी। नारी उत्थान के लिए उनके द्वारा किया गया पहला प्रयास था "बाला बोधिनी" नामक पत्रिका का प्रकाशन।

4 पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन के पीछे भारतेन्दु का मुख्य उद्देश्य था साहित्य के माध्यम से लोगों में जागरण पैदा करना।

अभ्यास

1 देखिए उपभाग 16.2.1

बोध प्रश्न

5 भारतेन्दु काव्य की प्राचीन प्रवृत्तियाँ हैं कृष्णपदावली आदि भक्ति काव्य, कथा काव्य, रीति काव्य, विवरणात्मक काव्य एवं काव्य कौतुक।

6 तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, परिस्थिति के परिणामस्वरूप भारतेन्दु काव्य में नवीन प्रवृत्तियों का उदय हुआ।

7 कृष्णपदावली की रचना करते हुए भारतेन्दु ने भक्त कवि सूरदास का अनुसरण किया।

8 जिस काव्य में किसी दृश्य या कार्य का विवरण प्रस्तुत किया जाए उसे विवरणात्मक काव्य कहते हैं।

9 भारतेन्दु का वंश राजभक्त था साथ ही भारतेन्दु को भी तत्कालीन गोरी सरकार से कई आशाएँ थीं अतः उन्होंने राजभक्ति संबंधी रचनाएँ कीं।

10 भारतेन्दु पूर्व परिहास काव्य का स्वरूप भौंडा था। भारतेन्दु ने सोद्देश्य परिहास काव्य की शुरुआत की।

11 लोकगीतों की रचना के पीछे भारतेन्दु का मुख्य उद्देश्य था साहित्य को जनता से जोड़ना।

12 किसी विषय पर सुसंबद्ध रूप से छन्दबद्ध रचना को निबंध काव्य कहते हैं।

13

विषय	रचनाएँ
1 कथाकाव्य	देवी छद्मलीला
2 कृष्णपदावली	प्रेममालिका
3 नायिका भेद	सुंदरी तिलक
4 विवरणात्मक काव्य	हिंडोला
5 श्री राजकुमार सुस्वागत	राजभक्ति
6 काव्य कौतुक	मनोमुकुलमाला

14 भारतेन्दु के काव्य भाषा की दो निम्नलिखित विशेषताएँ हैं
1 सरल प्रचलित शब्दों का प्रयोग
2 परिष्कृत एवं सरस पदावली

15 भारतेन्दु ने काव्य रचना में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग व्यंग्य एवं हास्य के लिए किया है।

16 भारतेन्दु ने मुक्तक एवं प्रबंध काव्य के बीच की निम्न रचनाओं को प्रारंभ किया —
निबंध काव्य
वर्णनात्मक काव्य
विवरणात्मक काव्य

17 जिन काव्य रचनाओं में बिना कथा सूत्र के किसी दृश्य का वर्णन किया जाये उसे वर्णनात्मक काव्य कहते हैं। भारतेन्दु रचित दो वर्णनात्मक काव्य रचना के नाम है "होली लीला" एवं 'हिंडोला'।

18 मुक्तक काव्य उन रचनाओं को कहते है जिनका एक-एक छंद स्वतंत्र एवं काव्य आनंद प्रदान करने में सक्षम होते हैं। भारतेन्दु ने "पद" और "लोकगीत" मुक्तकों की रचना की है।

19 भारतेन्दु ने वर्णनात्मक काव्य के लिए रोला छंद तथा लोक जीवन की अभिव्यक्ति के लिए लावनी, कजरी, होली आदि छंदों का प्रयोग किया।

20 भारतेन्दु भक्त एवं कवि दोनों थे। भक्त होने के कारण उन्होंने विनय एवं भक्ति से संबंधित रचनाएँ की। फलतः शांत रस का होना आवश्यक था। दूसरी ओर रीतिकालीन परंपरा से उनका संबंध था। यही कारण है कि उन्होंने श्रृंगारिक रचनाएँ की।

21 भारतेन्दु काव्य रचना करते समय सीधी-साधी सरल भाषा का प्रयोग करते थे। वे काव्य को जनसामान्य से जोड़ना चाहते थे। रीतिकालीन कवियों ने काव्यभाषा को अलंकारों के भरपूर प्रयोग से दरूह एवं सीमित बना दिया था। भारतेन्दु ने इस प्रवृति को बदला। यही कारण है कि उनका काव्य अलंकारों के भार से मुक्त है।

इकाई 16 द्विवेदी युगीन हिन्दी काव्य : स्वरूप और विकास

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 युगीन पृष्ठभूमि
16.3 द्विवेदी युग
- 16.3.1 काल निर्धारण और नामकरण
- 16.3.2 महावीर प्रसाद द्विवेदी : युगकर्ता की शक्तियाँ और सीमाएँ

16.4 द्विवेदी युग के प्रमुख कवि
- 16.4.1 मैथिलीशरण गुप्त
- 16.4.2 अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध
- 16.4.3 रामनरेश त्रिपाठी
- 16.4.4 नाथूराम शंकर शर्मा
- 16.4.5 सियाराम शरण गुप्त

16.5 द्विवेदी युगीन काव्य की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ
- 16.5.1 काव्य-विषयों की व्यापकता
- 16.5.2 राष्ट्रीयता : जागरण, सुधार और देशभक्ति
- 16.5.3 उपेक्षितों और सामान्य व्यक्तियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण
- 16.5.4 स्वच्छंदतावादी काव्य के आरंभिक संकेत
- 16.5.5 द्विवेदी युगीन काव्य में प्रकृति का स्थान
- 16.5.6 उदात्त प्रेम की संयत अभिव्यक्ति
- 16.5.7 परंपरानुवर्ती कविता की झलक
- 16.5.8 इतिवृत्तात्मकता

16.6 द्विवेदी युगीन काव्य का अभिव्यंजना शिल्प
- 16.6.1 काव्य रूपों की विविधता
- 16.6.2 द्विवेदी युगीन काव्य भाषा : खड़ी बोली
- 16.6.3 प्रतीक एवं बिंब-विधान
- 16.6.4 उपमान योजना
- 16.6.5 छंद विधान

16.7 सारांश : द्विवेदी युगीन काव्य का मूल्यांकन
- 16.7.1 प्रमुख प्रदेय
- 16.7.2 सीमाएँ

16.8 शब्दावली
16.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
16.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

16.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- द्विवेदी युगीन काव्य की पृष्ठभूमि का उल्लेख कर सकेंगे,
- द्विवेदी युग से भारतेन्दु युग का संबंध बता सकेंगे, और
- महावीर प्रसाद द्विवेदी के युगकर्ता व्यक्तित्व का परिचय दे सकेंगे,
- द्विवेदी युग के प्रमुख कवियों के विषय में बता सकेंगे,
- द्विवेदी युगीन काव्य की विविध विशेषताओं का विवेचन कर सकेंगे, और
- द्विवेदी युग के प्रमुख प्रदेय और उसकी सीमाओं की चर्चा कर सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

इस खंड की पिछली इकाइयों में आप भारतेन्दु युगीन कविता के बारे में पढ़ चुके हैं। आपने देखा कि किस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने अपनी प्रतिभा और लगन से साहित्य की धारा को नयी दिशा दी और अपने समय के रचनाकारों को प्रभावित किया। इस तरह 19वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध हिंदी साहित्य में भारतेन्दु युग के नाम से जाना जाने लगा।

बीसवीं शताब्दी के आरंभ के साथ साहित्य की इस धारा के विकास के नए मार्ग खुले। इस इकाई में हम इन नए मार्गों की विस्तृत चर्चा करेंगे। साहित्य के विकास के इस नए मोड़ को द्विवेदी युग के नाम से जाना जाता है। कुछ विद्वान यह भी कहते हैं कि द्विवेदी युग का जन्म भारतेन्दु युग की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ था क्योंकि भारतेन्दु युग में स्वीकृत ब्रजभाषा कविता, रीतिकालीन परंपराबद्धता और शिल्पयोजना का द्विवेदी युग में खुलकर विरोध हुआ था। किन्तु इस विरोध को प्रतिक्रिया मानने की बजाए भारतेन्दु युग में सूत्रपात हुई और अंकुरित स्थितियों का सहज प्रस्फुटन और विकास मानना ज्यादा उपयुक्त होगा। भारतेन्दु युग में जो बातें रचनाकार महसूस करने लगा था उनके प्रति विश्वास और दृढ़ता उसने द्विवेदी युग में आकर पायी। अतः द्विवेदी युग भारतेन्दु युग की प्रतिक्रिया न होकर उसका सहज और उन्नत विकास है।

16.2 युगीन पृष्ठभूमि

पिछली इकाइयों में हम पढ़ चुके हैं कि हिंदी साहित्य के आधुनिक युग की शुरुआत भारतेन्दु हरिश्चंद्र से होती है। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन में हुए व्यापक परिवर्तनों ने इस युग की मनोभूमिका का निर्माण किया था। कवि अब रीतिकालीन दरबारी परिवेश से बाहर निकल कर जीवन की गहन समस्याओं पर विचार करने के लिए प्रेरित हुआ था।

सन् 1857 की क्रांति के बाद भारत में अंग्रेजों की राजनैतिक शासन व्यवस्था दृढ़ हो गयी थी। रेल, तार, डाक व्यवस्था एवं आवागमन की अन्य सुविधाएँ यद्यपि अंग्रेजों ने देश के विभिन्न प्रांतों में अपने शासन तंत्र को मजबूत बनाने के लिए स्थापित की थीं किन्तु इनसे सांस्कृतिक, एवं राजनैतिक एकता को भी भौतिक आधार प्राप्त होने लगा था।

धीरे-धीरे शिक्षित और विचारशील लोगों के ध्यान में आने लगा था कि व्यवस्था, शांति, न्याय, सुविधाएँ, शिक्षा इत्यादि की बातें दिखावे की थीं। असलियत यह थी कि यह सारा काम जनता के प्रति सहानुभूति से न हो कर अपनी सत्ता को दृढ़ बनाने और उसके माध्यम से भारत जैसे समृद्ध देश का आर्थिक शोषण करने के उद्देश्य से प्रेरित था। भारतेन्दु युग के साहित्यकारों में एक ओर अंग्रेजों के प्रति भक्ति की भावना भी दिखाई पड़ती है तो दूसरी ओर उनकी सही पहचान की व्यंग्यात्मक अभिव्यंजना भी हुई है। जैसे-जैसे भारतेन्दु युग का साहित्यकार देश की व्यवस्था एवं स्थिति के प्रति सजग होने लगा वैसे-वैसे शासन के प्रति आदर, भक्ति एवं विश्वास का लोप होता दिखाता है और राष्ट्र भक्ति, स्वातंत्र्य-प्रेम, स्वजन-उद्धार की भावना जोर पकड़ती जाती है। देशभक्ति राजभक्ति पर हावी हो जाती है।

भारतेन्दु युग की कविता उन धार्मिक, सामाजिक सुधार आंदोलनों से भी प्रभावित है जो उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में प्रारंभ और विकसित हुए। उन्नीसवीं सदी तक आते-आते धर्म असंख्य जर्जर रूढ़ियों, विकृत परंपराओं, व्यर्थ विधि-विधानों से तेजहीन हो गया था। न वह भौतिक उन्नति के लिए सहायक बन रहा था न आध्यात्मिक प्रगति के लिए उपयोगी। धर्म की विकृतियों को दूर हटा कर उसके मूल स्वच्छ रूप को जनता के लिए प्रस्तुत करने के उद्देश्य से कतिपय सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन हुए, कतिपय प्रतिभाशाली तेजस्वी व्यक्तित्वों ने अपनी शक्ति देशोद्धार में लगा दी और नवजागरण की चेतना ने नए ढंग से सोचने का कार्य किया।

द्विवेदी युग के काव्य की मानसिक पृष्ठभूमि भी भली-भाँति समझने के लिए इसकी सामाजिक-सांस्कृतिक नवजागरण की चेतना को विस्तार से समझना जरूरी है।

भारतीय नवजागरण : विविध मूल्य दृष्टियाँ

भारत में अंग्रेजों के शासन के स्थिरीकरण के बाद अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार शुरू हुआ। परिणामस्वरूप पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान से हमारा परिचय तो हुआ ही, अपने प्राचीन ज्ञान-विज्ञान की भी खोजों को जांचने परखने की लालसा भारतीय मानस में [illegible] हुई और वैचारिक एवं सांस्कृतिक आंदोलन प्रारंभ हुए। भारतीय मनीषियों ने भारतीय वैदिक संस्कृति से लेकर सामाजिक स्थिति तक हमारी परंपराओं, सांस्कृतिक मूल्यों, सामाजिक व्यवहारों एवं साहित्यिक समृद्धियों पर पुनर्विचार करना शुरू किया। पश्चिमी विचारों से परिचय होने पर हमने देखा कि पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति में बुद्धिवाद, वैज्ञानिक दृष्टि की महत्ता, मनुष्य मात्र से बंधुत्व की भावना धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में समानता, व्यक्ति की स्वतंत्रता इत्यादि मूल्यों का महत्व उद्घोषित हो रहा था। नारी के प्रति समानता का उदार दृष्टिकोण अपनाया गया था। पीड़ित, दुखी एवं संत्रस्त मनुष्य के प्रति करुणा और सहानुभूति के दृष्टिकोण को वरीयता दी गयी थी। आर्थिक गति में स्पर्धा परन्तु मानवीय व्यवहार में सहिष्णुता, न्याय-प्रियता, तथा मानवतावादी दृष्टि का महत्व स्वीकृत था। मनुष्य के व्यक्तित्व-विकास के लिए बढ़ते ज्ञान-विज्ञान का परिचय एवं संस्कार अत्यावश्यक समझा गया था। धीरे-धीरे समाज, राजनीति, धर्म, संस्कृति इत्यादि क्षेत्रों में व्यक्ति के महत्व और लोकोन्मुख जीवनदृष्टि को स्वीकार किया गया था। इस नयी मूल्य-सरणि ने भारतीय बौद्धिकों को अपने धर्म, समाज, जीवन-विषयक अवधारणाओं, आध्यात्मिक संकल्पनाओं, जाति-वर्णादि संगठनों का पुनरुद्धार करने की आवश्यकता को उजागर किया।

द्विवेदी युग में आकर स्वाधीनता आंदोलन अधिक शक्तिशाली हो गया था। भारतीय राजनीति में यह नौरोजी, गोखले और तिलक युग था। पूरी चेतना ब्रिटिश साम्राज्यवाद और उपनिवेशवादी शक्तियों को देश से बाहर खदेड़ देने के लिए

संकल्पबद्ध रूप में सामने आयी। पराधीनता के विरुद्ध विद्रोह इस स्वाधीनता आंदोलन की एक ऐसी पुकार थी जिसने 1905 के स्वदेशी आंदोलन के साथ देश की प्राचीन परंपराओं की पुनर्व्याख्या से एक नवीन मूल्य दृष्टि पैदा की थी।

ब्रजभाषा कविता की सामंतवादी रूढ़ियों को पीछे धकेल कर खड़ी बोली में काव्य सृजन का मार्ग अपनाया गया। ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली की स्वीकृति मात्र भाषा परिवर्तन नहीं थी बल्कि यह बदलती हुई मानसिकता का नया तेज था। नयी संवेदना को पुरानी भाषा में व्यक्त करना अब संभव नहीं था। इसलिए गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में खड़ी बोली की प्रतिष्ठा हुई। आचार्य शुक्ल ने इस काल को हिंदी काव्य की नयी धारा नाम ही इसलिए दिया है कि इस काल की कविता जागरण सुधार युग के आंदोलनों, क्रांतियों और विद्रोहों की सशक्त अभिव्यक्ति का माध्यम बनी है। किसान-मजदूरों के आंदोलन इस काल में उठे और उन्हें दादा भाई नौरोजी तथा तिलक की विचारधाराओं से दिशा मिली। भारतीयता की तलाश में यह काव्य रामकृष्ण, शिवाजी आदि को अपनाकर नए रूप में प्रस्तुत हुआ और नारी जागरण संबंधी आंदोलनों की सीधी प्रतिध्वनि 'प्रिय-प्रवास', 'मिलन', 'यशोधरा', 'साकेत' जैसे काव्यों में सुनाई दी। रीतिवाद को तोड़ते हुए इस काल की कविता ने राष्ट्रीयता और देशभक्ति के माध्यम से मानव मुक्ति का अभियान चलाया। एक ओर तो कविता इतिवृत्तात्मक, उपदेशात्मक और आदर्शात्मक रही और दूसरी ओर श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी मुकुटधर पांडेय आदि कवियों ने प्राचीन रूढ़ियों से विद्रोह करते हुए स्वच्छंदतावादी कवियों का मार्ग प्रशस्त किया। कहा जा सकता है कि द्विवेदी युगीन कविता भाव और भाषा दोनों ही स्तरों पर नवीन प्रवृत्तियों को लेकर उदित होती है।

16.3 द्विवेदी युग

16.3.1 काल निर्धारण और नामकरण

1900 ई. से 1920 ई. के युग की कविता को द्विवेदी युगीन काव्य कहा जाता है इस युग की साहित्यिक और सांस्कृतिक चेतना को दिशा और दृष्टि प्रदान करने में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की महत्वपूर्ण भूमिका थी। भाषा, भाव और विषय सभी की दृष्टि से उनके इस अविस्मरणीय योगदान के कारण इस युग को "द्विवेदी युग" नाम दिया गया।

साहित्यिक युग का काल निर्धारण निश्चित तिथि के अनुसार करने में कठिनाई आती है। "सरस्वती" पत्रिका, जिसने साहित्य को आकार और गति प्रदान करने में विशिष्ट भूमिका निभायी, 1900 से प्रकाशित होने लगी थी। सन् 1903 में महावीर प्रसाद द्विवेदी उसके संपादक बने और अपनी रुचियों, प्रवृत्तियों एवं विचारों के अनुसार साहित्य क्षेत्र को प्रभावित करने लगे। यद्यपि 1917 के आस-पास नये ढंग की कविता; जिसे बाद में छायावादी काव्य के नाम से अभिहित किया गया, प्रकाशित होने लगी थी फिर भी उसका यथोचित प्रभाव 1920 के बाद गहराया था और उसी समय महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने भी सरस्वती के संपादन का भार छोड़ा था। महात्मा गांधी का राजनैतिक क्षेत्र में प्रभाव उसी समय, विशेषतः 1920 में लोकमान्य तिलक की मृत्यु के बाद, बढ़ने लगा था। इस नए नेतृत्व का नाता छायावादी कविता से जुड़ जाता है।

16.3.2 महावीर प्रसाद द्विवेदी : युगकर्ता की शक्ति एवं सीमाएँ

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 1900 से 1920 तक के साहित्यिक युग पर अपने विशिष्ट व्यक्तित्व एवं कृतित्व के फलस्वरूप ऐसी छाप अंकित कर दी कि इस युग को द्विवेदी युग कहा जाता है। आश्चर्य की बात यह है कि महावीर प्रसाद द्विवेदी स्वयं प्रतिभाशाली महान सर्जक साहित्यकार नहीं थे। अपने प्रारंभिक जीवन में उन्होंने कविताएं लिखीं परंतु वे स्वयं कवि के रूप में अपनी सीमाएं जानते थे, वे अपनी कविता को तुकबंदी का सामान्य प्रयास ही समझते थे और यह भी जानते थे कि कवि की प्रतिभा उनमें नहीं है। उन्होंने गद्य लिखा, अनुवाद किए और हिंदी लेखकों, कवियों और चिंतकों को लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। कुल मिलाकर उन्होंने छोटी बड़ी गद्य-पद्य रचनाएँ प्रकाशित कीं। वे कहानीकार, उपन्यासकार, या नाटककार नहीं थे परन्तु ललित साहित्यकारों को खूब प्रोत्साहन उन्होंने दिया। असल में महावीर प्रसाद द्विवेदी का ध्यान पाठकों को सुरुचिपूर्ण विविध विषयों पर सामग्री हिंदी में उपलब्ध करा देने पर लगा हुआ था। उनका मुख्य कार्य "सरस्वती" पत्रिका का सम्पादन था। इस पत्रिका के सम्पादक के रूप में उन्होंने अपने युगीन साहित्य पर अमिट छाप अंकित की। खड़ी बोली गद्य को व्याकरण सम्मत रूप देना, एक मानक भाषा के रूप में उसको आकार देना था। अंग्रेजी, संस्कृत, मराठी, बंगला की अच्छी कृतियों को अनूदित कर उसके माध्यम से हिंदी पाठकों का मानसिक विकास कर उनकी रुचि अधिक पुष्ट करना, समसामयिक, वैज्ञानिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक हलचलों के प्रति उन्हें जागरूक कर देना, स्वस्थ और विवेकसंपृक्त आलोचना की नींव पुख्ता करना इत्यादि महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रमुख उद्देश्य थे। "सरस्वती" पत्रिका के द्वारा एक आदर्श, परिश्रमी, समाज सेवा के प्रति प्रतिबद्ध कर्मठ संपादक के रूप में अपनी प्रतिष्ठा को स्थापित कर यह कार्य उन्होंने सिद्ध किया।

भारतेन्दु युग में खड़ी बोली के गद्य का अद्भुत विकास हुआ था परन्तु इच्छा और प्रयास के बावजूद काव्य में खड़ी बोली का उपयोग करने में सफलता प्राप्त नहीं हुई थी। महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुशासित निर्देशन में खड़ी बोली में काव्य लिखने की प्रक्रिया वेग के साथ सम्पन्न हुई। यह उस काल में इतना आवश्यक काम था कि सर्जनशील साहित्यिक दृष्टि से गौण महत्व का होने पर भी सर्वसम्मति से उन्हें युग निर्माता स्वीकार किया गया।

16.4 द्विवेदी युग के प्रमुख कवि

द्विवेदी युग का समय लगभग बीस वर्ष का है। इसके अधिकांश कवि लेखक ऐसे हैं जिनकी साहित्यिक सक्रियता मात्र इस बीस वर्ष की अवधि तक सीमित नहीं है। कुछ तो भारतेन्दु युग से साहित्य के क्षेत्र में सक्रिय चले आ रहे थे जैसे श्रीधर पाठक। शेष कवि आगे काफी समय तक सक्रिय रहे। मैथिलीशरण गुप्त और रामनरेश त्रिपाठी भी नयी कविता युग तक जीवित रहे। यद्यपि रचनाकार किस युग का प्रतिनिधित्व करता है इस बात का निर्णय उसके जीवनकाल के आधार पर न करके उसके साहित्य की प्रवृत्तियों के आधार पर किया जाता है। यही कारण है कि 19'6 में छपने के बावजूद "साकेत" को द्विवेदी युग की रचना माना जाता है।

जैसा कि हम कह चुके हैं द्विवेदी युग की साहित्यिक प्रवृत्तियों के निर्माण में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की भूमिका युग निर्माता की थी। कवियों ने उनके दिशा निर्देश के अनुशासन में काव्य रचना की थी। किंतु यहीं एक बात ध्यान देने की है कि इस युग का हर एक रचनाकार उनके अनुशासन में काव्य सृजन नहीं कर रहा था। कुछ कवि ऐसे ही थे जो द्विवेदी मंडल की काव्य भूमि से बाहर रह कर कविता लिख रहे थे। इस तरह इस युग में दो स्पष्ट धाराएँ दिखाई देती हैं — अनुशासन की धारा और स्वच्छंदता की धारा — इन दोनों धाराओं के कवियों को क्रमशः (1) द्विवेदी मंडल के कवि और (2) द्विवेदी मंडल से बाहर के कवि कहा जाता है।

द्विवेदी मंडल के कवियों में मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, सियाराम शरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय आदि आते हैं।

द्विवेदी मंडल से बाहर के कवियों में श्रीधर पाठक, मुकुटधर पांडेय, लोचन प्रसाद पांडेय, रायदेवी प्रसाद पूर्ण, रामनरेश त्रिपाठी आदि प्रमुख हैं। इन कवियों की विशेषताएँ हैं प्रकृति का पर्यवेक्षण, उसकी स्वच्छंद भंगिमाओं का चित्रण, देश भक्ति, कथागीत का प्रयोग, काव्यभाषा के रूप में खड़ी बोली की स्वीकृति आदि। स्वच्छंदतावादी काव्य की यही धारा आगे चलकर छायावाद में गहरी हो जाती है।

16.4.1 मैथिलीशरण गुप्त

महावीर प्रसाद द्विवेदी युग के शीर्षस्थ कवि हैं मैथिलीशरण गुप्त (1886-1964) हैं। उन्होंने महावीर प्रसाद जी के आशीर्वाद से काव्य क्षेत्र में प्रवेश किया और उनके प्रोत्साहन से कविता लिखी। धीरे-धीरे मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युगीन काव्य की मर्यादाओं से ऊपर उठकर द्विवेदी युग और उसके बाद आने वाले छायावादी युग के बीच की कड़ी बन गये। प्रथम कविता "हेमन्त" 1905 में "सरस्वती" में प्रकाशित हुई। 60 वर्ष के लम्बे कवि कर्म में 40 मौलिक, 6 अनूदित ग्रंथ रचे और कुछ फुटकर कविताएँ भी लिखी। 1909 में प्रकाशित लघु प्रबंध "रंग में भंग" राजपूती आन को लेकर लिखी गयी रचना है। फिर महाभारत पर आधारित उनकी रचनाएँ प्रकाशित हुई। "जयद्रथ वध" 1910 में प्रकाशित हुआ। प्राचीन कथाओं को नूतन दृष्टि में देखने की एवं प्राचीन ऐतिहासिक व पौराणिक कथाओं में मूक, उपेक्षित एवं चिन्तन प्रेरक बिंदुओं को पुष्टता, स्पष्टता और रसात्मकता दे कर प्रकाशित करने की प्रवृत्ति मैथिलीशरण गुप्त में पायी जाती है। राष्ट्रीय चेतना के उत्कर्ष के लिए महाभारत रामायण की कथाएँ सहायक सिद्ध हुई। "भारत भारती" (1914) में मैथिलीशरण गुप्त ने सद्यःस्थिति की अवनत दशा एवं आत्मोध्दार की सामूहिक आकांक्षा व्यक्त की है। वैसे मैथिलीशरण गुप्त का समूचा चिन्तन इस चिन्ता को लेकर रहा: "हम कौन थे, क्या हो गये और क्या होंगे अभी/आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी" उनके पौराणिक एवं ऐतिहासिक काव्यों के मूल में स्वदेश चिन्तन का यही सरोकार है। इसीलिए वे भारतीय संस्कृति की गरिमा का बोध देने वाले ओजस्वी प्रसंगों, विचारों और मूल्यों का संस्कार करना चाहते है। द्विवेदी युगीन मानवतावादी दृष्टि मैथिलीशरण गुप्त में सशक्त रूप में व्यंजित होती है। उनके राम भी मानवसेवा के लिए अवतरित होते हैं। साकेत में राम सीता से कहते है—मैं आया उनके हेतु कि जो शापित हैं, जो विवश, बलहीन दीन शापित हैं। "किसान" जैसा प्रबंध काव्य देश के शोषित वर्ग के प्रति उनका लगाव व्यक्त करता है (1919)। मैथिलीशरण गुप्त का भारतीय नारी विषयक सहानुभूतिशील और उदार दृष्टिकोण द्विवेदी युग के बाद विकसित होता गया। एक ओर उन्होंने अमर पंक्तियाँ लिखी— "अबला जीवन हाय। तुम्हारी यही कहानी। आंचल में है दूध और आँखों में है पानी।" दूसरी ओर उर्मिला, सीमा, यशोधरा, विधृता जैसी नारियों का विकसित व्यक्तित्व प्रस्तुत कर नारी के संबंध में गौरव भावना व्यक्त की। मैथिलीशरण गुप्त का कवि 1920 के बाद गांधीवादी कर्मठ युग में विकसित हुआ। हिंदी खड़ी बोली को काव्यभाषा का दर्जा देने के सफल प्रयासों में मैथिलीशरण गुप्त का हिस्सा महत्वपूर्ण है। खड़ी बोली का प्रसाद गुण संयुक्त, सरस और प्रवाहमय काव्यभाषा रूप मैथिलीशरण गुप्त की कविता में प्रचुर रूप में प्राप्त होता है।

16.4.2 अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

द्विवेदी युग के दूसरे महत्वपूर्ण कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" हैं (1865-1947)। मैथिलीशरण गुप्त रामभक्त थे तो हरिऔध कृष्ण के व्यक्तित्व के गायक थे, सुधारवादी आंदोलन से प्रभावित हरिऔध ने राधा को देश सेविका बनाया ('प्रिय-प्रवास' 1914)। उनके काव्य 'प्रेमाम्बु-वारिधि' (1990), 'प्रेम प्रपंच' (1900), 'प्रेमाम्बु प्रयवेक्षण' (1901), 'प्रेमाम्बु-प्रवाह' (1901) के आलम्बन कृष्ण हैं। कृष्ण की महिमा, उनका सौंदर्य, गोपियों की विरह वेदना मुक्तक शैली में की गयी है।

आलोच्यकाल में हरिऔध का महत्वपूर्ण प्रबंध काव्य "प्रिय-प्रवास" प्रकाशित हुआ। 17 सर्गों में विभाजित इस महाकाव्य के नायक कृष्ण हैं। भागवत पुराण पर आधारित कृष्ण जीवन के प्रसंगों को आवश्यकतानुसार परिवर्तित किया गया है। राधा ने पवन को दूतिका बनाकर संदेश भेजा है। राधा-कृष्ण संबंधों को द्विवेदी युगीन नैतिक और आदर्शवादी मूल्यों के प्रकाश में समाज सेवा वृत्ति के रूप में चित्रित किया गया है। राधा कृष्ण के सामीप्य का त्याग करने को तैयार हैं। उनका उद्देश्य है—

"प्यारे जीवें जग हित करें गेह चाहे न आवें।"

प्रेम के उदात्त मानवीय रूपों की अभिव्यक्ति प्रिय प्रवास में की गयी है। छंदों में रचे इस महाकाव्य में खड़ी बोली के विविध रसानुकूल रूप मिलते हैं। भाषा में प्रसाद गुण है और प्रवाह है। हरिऔध जी ने "रसकलश" में नायिकाओं के नये रूपों की जो कल्पना की वह द्रष्टव्य है। उन्होंने परंपरागत शृंगारपरक नायिका-वर्गीकरण के स्थान पर देश-प्रेमिका, जन्म-भूमि प्रेमिका, लोक-सेविका, धर्म-सेविका इत्यादि नारी के नये रूपों की उद्भावना की। यह नारी के प्रति गौरव-पूर्ण और बराबरी के दृष्टिकोण का द्योतन करती है।

16.4.3 रामनरेश त्रिपाठी

त्रिपाठी जी द्विवेदी युग में स्वच्छंदवादी धारा के प्रमुख कवि हैं। उन्होंने काव्य रचना की शुरुआत ब्रजभाषा में की। खड़ी-बोली में लिखी हुई पहली कविता "जन्मभूमि भारत" में "सरस्वती" में छपी। देश के प्रति गौरव और अभिमान की भावना इस कविता में व्यक्त हुई है।

त्रिपाठी जी का प्रथम काव्य ग्रंथ "मिलन" 1917 में प्रकाशित हुआ। काव्य का प्रमुख भाव प्रेम है। यहाँ पति-पत्नी का प्रेम और दोनों का देश के प्रति प्रेम और देश के लिए बलिदान प्रस्तुत किया गया है। यही उनका लक्ष्य है। काव्य अन्त तक अपनी सरलता, प्रवाह और प्रसाद के कारण पाठक को बाँधे रखता है। विजया कहती है—

प्रेम स्वर्ग है/स्वर्ग प्रेम है/प्रेम अशंक अशोक
ईश्वर का प्रतिबिंब प्रेम है/प्रेम सदय आलोक

व्यक्ति, समाज और राष्ट्र तीनों इकाइयों के बीच प्रेम का सूत्र है और क्रमशः विस्तृत, व्यापक और उदात्त बनता जाता है। 1920 में प्रकाशित दूसरे प्रबंध काव्य "पथिक" ने राम नरेश त्रिपाठी की कीर्ति को और व्यापक किया, इसमें प्रकृति वर्णन और प्रेम भावना की व्यंजना का दुग्धशर्करा संयोग है। यह काव्य विलक्षण प्रभावकारी है। राष्ट्रीयता की भावना "मिलन" की भाँति इस में भी गुँथी हुई है। राम नरेश त्रिपाठी प्रकृति के प्रेमी कवि हैं। सागर की उभरती लहरों का "पथिक" में वर्णन देखिए:

रेणु स्वर्ण कण सदृश देखकर तट पर ललचाती है।
बड़ी दूर से चल कर लहरें मौज भरी आती हैं।
चूम-चूम निज देश चरण वह नाच-नाच गाती हैं।
यह शोभा यह हर्ष कहाँ आँखें जग में पाती हैं।

16.4.4 नाथू राम शंकर शर्मा

पं. नाथूराम शंकर शर्मा को बचपन से कविता लिखने का शौक था। अनेक छंदों में उन्होंने कविताएँ लिखी हैं। समस्यापूर्ति में उन्हें महारत हासिल थी। शृंगारपरक कविताओं में विशेष रस लेते थे। नवीन जी ने उनके बारे में लिखा है, "वे शब्दों के स्वामी, भाषा के अधीश्वर, मुहावरों के सिरजनहार और साहित्य के अखाडे के अक्खड़ पहलवान थे। पूज्य शंकरजी में शब्द निर्माण की क्षमता-असाधारण रूप से विद्यमान थी", उनका छंदों का ज्ञान जबर्दस्त था और अनेक छंदों में कविता रच सकते थे। अनेक अनामिक छंदों का नामकरण उन्होंने किया। प्रकाशित कृतियाँ हैं—'अनुराग रत्न', 'शंकर सरोज', 'लोकमान्य तिलक'। वे उर्दू कविता के प्रेमी थे और स्वयं भी उर्दू में कविता लिखते थे—युगनी वातावरण के प्रभाव में उन्होंने देशभक्ति परक कविता भी लिखी।

16.4.5 सियाराम शरण गुप्त

गुप्त जी कवि, निबंधकार एवं उपन्यासकार के रूप में प्रसिद्ध थे, कविता उन्होंने कम लिखी। परंतु थोड़ी सी ही रचनाओं में उनके संवेदनशील हृदय का प्रकटीकरण हो गया है। "मौर्य विजय" तथा "उन्मुक्त" उनका प्रसिद्ध खंडकाव्य है। "मौर्य विजय" तीन सर्गों में सेल्युकस के आक्रमण और चंद्रगुप्त के विजय की कथा प्रस्तुत करता है। सियाराम शरण गुप्त गांधीवादी विचारधारा के कवि हैं। "उन्मुक्त" में प्रथम विश्व युद्ध के नर संहार के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त हुई है।

रूप नारायण पांडेय ने भी रसात्मक बोध से युक्त कविताएँ लिखीं। उनकी "दलितकुसुम" कविता प्रभावपूर्ण और करुण रसात्मक है। यह कविता बहुत लोकप्रिय हुई थी। "पराग" संग्रह में प्रकाशित कविताओं में "वन-विहंगम" कविता सरस है। **ठाकुर गोपालशरण सिंह** की सरल शैली में लिखी कविता सरसता, सादगी और चित्रमयता के कारण लोकप्रिय थी। ग्राम जीवन के चित्र विशेष प्रभावपूर्ण बने हैं। **पंडित गयाप्रसाद शुक्ल "सनेही"** ने बहुत सी कविताएँ "त्रिशूल" नाम से प्रकाशित कीं, "प्रेमपचीसी", "कुसुमांजलि", "कृषकक्रन्दन", "करुणा कादम्बिनी" उनके प्रसिद्ध काव्य संग्रह हैं। "उक्ति का अनूठापन", "शब्द प्रयोग का चमत्कार", छंद की बंधी हुई गति और कल्पना की रूपसर्जिनी विशेषता इनके काव्य के गुण हैं। **श्री मन्नन द्विवेदी** की कविता में मातृभूमि के प्रति अभिमान, अतीत गौरव, वर्तमान

पतनावस्था का दुख आदि विषय अभिव्यक्त हुए हैं। पं. रामचरित चिंतामणि नामक 25 सर्गों का एक काव्य लिखा। कथानक का आधार रामचरित मानस एवं वाल्मिकि रामायण है। यह काव्य पाठकों द्वारा उतना स्वीकृत नहीं हो सका। पं. राम चंद्र शुक्ल ने भी द्विवेदी युग में कविताएँ लिखीं। वे प्रकृति-प्रेमी थे, काव्य के मर्मज्ञ विद्वान थे। प्रकृति के वस्तुनिष्ठ चित्र उकेरने में उन्हें विशेष प्रसन्नता होती थी। आगे चलकर उनकी रुचि आलोचना एवं वैचारिक गद्य में अधिक हुई। शुक्ल जी का चित्रकार शब्दों के माध्यम से काव्य में प्रकृति चित्र उभारता है।

द्विवेदी युग में बड़ी संख्या में कवि व्रज और खड़ी बोली में कविता लिखते थे। सरस्वती के अतिरिक्त अन्य पत्रिकाओं में भी कवि लिखते थे। पद्मलाल पन्नालाल बख्शी, पं. शिवकुमार त्रिपाठी, माखनलाल चतुर्वेदी (इनका कवि-व्यक्तित्व द्विवेदी युग के बाद अधिक ठोस रूप में उभरा) ठाकुर जगमोहन सिंह, कामता प्रसाद गुरु थे। अन्य उल्लेखनीय नाम, जैसे प्रसाद, निराला और पंत भी काव्य का श्रीगणेश द्विवेदी युग में कर चुके थे परंतु युग परिवर्तन का श्रेय इनके कृतित्व को जाता है। ये द्विवेदी युग समाप्त होते ही साहित्याकाश में चमकने लगे। हरिऔध, रामनरेश त्रिपाठी इत्यादि कवियों ने द्विवेदी युग के बाद भी ठोस रचनाएँ दी।

बोध प्रश्न 1

1 निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर "हां" या "नहीं" पर (√) लगाकर दीजिए—

क) द्विवेदी युग का आरंभ भारतेन्दु युग की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ। (हां/नहीं)

ख) हिंदी साहित्य के आधुनिककाल की शुरुआत द्विवेदी युग से होती है। (हां/नहीं)

ग) अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण हमारा परिचय पश्चिम के ज्ञान और विचारों से हुआ। (हां/नहीं)

घ) भारतेन्दु युग में विकसित चेतना को विस्तार और प्रसार द्विवेदी युग में मिला। (हां/नहीं)

2 निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर ज्यादा से ज्यादा चार पाँच शब्दों में दीजिए—

क) द्विवेदी युग का नामकरण किसके नाम पर हुआ है?

ख) द्विवेदी युग का समय क्या है?

ग) "सरस्वती" के सुप्रसिद्ध संपादक कौन थे?

घ) द्विवेदी युग से पहले कौन सा युग था?

ङ) द्विवेदी युग के बाद कौन सा युग आया?

....

....

....

....

....

3 द्विवेदी युगीन कविता की दो धाराएं कौन सी है? दोनों के चार-चार कवियों के नाम बताइए।

....

....

....

....

....

16.5 द्विवेदी युगीन काव्य की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ

16.5.1 काव्य विषयों की व्यापकता

गद्य भाषा और पद्य भाषा के संबंध में उदार दृष्टि रखने वाले महावीर प्रसाद द्विवेदी काव्य-विषयों के बारे में भी पर्याप्त उदार थे। समसामयिक जीवन की स्थिति और गति के प्रति सजग होने के कारण काव्य-विषय के संबंध में भी वे घिसीपिटी, पुरानी, दकियानूसी विधि-निर्वाह के खिलाफ थे। इस संबंध मे द्विवेदी जी के विचार द्रष्टव्य हैं ताकि उनके द्रष्टापन को हम सही रूप में समझ सकें।

"कविता का विषय मनोरंजन एवं उपदेश-जनक होना चाहिए। यमुना के किनारे केलि कौतूहल का अद्भुत-अद्भुत वर्णन बहुत हो चुका। न परकीयाओं पर प्रबंध लिखने की अब कोई आवश्यकता है और न स्वकीयाओं के—"गतागत" की पहेली बुझाने की। चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त, भिक्षुक से ले कर राजा पर्यन्त मनुष्य, बिन्दु से लेकर समुद्र पर्यन्त

जल, अनंत आकाश, अनंत पृथ्वी, अनंत पर्वत—सभी पर कविता हो सकती है। सभी से उपदेश मिल सकता है और सभी के वर्णन से मनोरंजन मिल सकता है। यदि "मेघनाद वध" अथवा "यशवंतराव महाकाव्य" वे नहीं लिख सकते तो उनको ईश्वर की निस्सीम सृष्टि में से छोटे-छोटे सजीव अथवा निर्जीव पदार्थों को चुनकर उन्हीं पर छोटी-छोटी कविताएँ करनी चाहिए। कवि को यदि बड़ी न हो सके तो छोटी ही स्वतंत्र कविता करनी चाहिए क्योंकि इस प्रकार की कविताओं का हिंदी में अभाव है।

उपर्युक्त उद्धरण को ध्यान से पढ़ा जाये तो दिखाई देगा कि द्विवेदी जी काव्य को सीमित दायरे से आगे बढ़ाकर जीवन के विविध रूपों और विषयों से संयुक्त करना चाहते थे, काव्य के लिए विषय इस दुनियां में कोई भी चल सकता है और काव्य का आकार छोटा या बड़ा कैसा भी हो सकता है, इसी से हिंदी में मौजूद अभाव की पूर्ति की बात भी वे कह देते हैं।

इस काल में कविता संकीर्ण काव्य विषयों में छूट कर मानव जीवन की लगभग सभी समस्याओं का स्पर्श करने लगती है। कवियों ने ऐतिहासिक, पौराणिक कथानकों के चुनाव और उनकी महत्ता पर अपने आपको केन्द्रित किया जैसे "प्रिय प्रवास", "हल्दी घाटी", "जयद्रथ वध" आदि। पर इनका उद्देश्य अतीत के माध्यम से वर्तमान को प्रेरणा देना था। दूसरी प्रमुख बात यह हुई कि कवि एकांतिक प्रेम की धारा से निकल कर गृहस्थ जीवन की महिमा का आख्यान करने लगे। तीसरे, नारी के प्रति भोगवादी दृष्टि से विमुख होकर इन कवियों ने उसे प्रेरणा शक्ति के रूप में नया व्यक्तित्व दिया। उपेक्षित नारी पात्रों के उद्धार का अभियान इस युग की कविता इसी दृष्टिकोण से चलाती है। उर्मिला, यशोधरा, विष्णुप्रिया, मांडवी आदि के प्रति तो हमारी दृष्टि बदली ही, राधा और सीता को भी आधुनिक आंदोलनों की चेतना से नया व्यक्तित्व मिलता है।

मध्ययुगीन अलौकिक और अध्यात्म को पीछे धकेल कर यह कविता लौकिकता की भूमि पर दृढ़ता के साथ प्रतिष्ठित हुई और इस लौकिकता में मानवीयता और आदर्शवादी उदारता को प्रश्रय मिला।

यह काव्य नैतिक और आदर्शवादी मूल्यों के समर्थन में संघर्ष करता मिलता है। जातीय अस्मिता और लोकसेवा की इन भावनाओं के पीछे निश्चय ही नव-जागरण की प्रेरणा प्रमुख थी। मूल्य कमाए जाते हैं, जातियाँ उनके लिए अपने प्राणदान देकर उनकी रक्षा करती हैं। इसलिए इस कविता को मात्र पुनरुत्थानवादी कविता कह कर नहीं टाला जा सकता क्योंकि कवि अतीत से प्रेरणा अवश्य पाते हैं किन्तु वे अतीतोपजीवी नहीं हैं चाहे वे मैथिलीशरण गुप्त हों अथवा हरिऔध या नाथूराम शंकर शर्मा या गोपाल शरण नेपाली या गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'।

आभिजात्य और सामंतवादी स्थितियों के प्रति तिरस्कार का भाव अपनाती हुई यह कविता एक ऐसे मनुष्य को केन्द्र में लाना चाहती है जो व्यक्तिवाद अलगाववाद, जातिवाद, की सीमाओं से निकल कर देश की अखंडता और स्वाधीनता के लिए प्राणपण से संघर्ष करता है।

अब कविता का उद्देश्य हो गया लोकमंगल और लोक रक्षा। कविता के इन उद्देश्यों की अभिव्यक्ति मैथिलीशरण गुप्त के पूरे सृजन में होती है। इस दृष्टि से उन्हें युग का प्रतिनिधि कवि माना जा सकता है।

16.5.2 राष्ट्रीयता : जागरण, सुधार और देशभक्ति

द्विवेदी युग की कविता का केंद्रीय भाव राष्ट्रीयता है। यह राष्ट्रीयता अनेक रूपों में प्रकट होती है। भारतेन्दु युगीन राजभक्ति का स्वर तो समाप्त हुआ ही था। परायी सत्ता का विरोध खुलकर प्रकट न हो सकता था तो परोक्ष रूप में प्रकट होने लगा। पौराणिक, ऐतिहासिक और काल्पनिक कथाओं में ऐसे प्रसंगों का चित्रण किया जाता था जिनसे पाठक देश, समाज, अस्मिता, स्वातंत्र्य, वीरता इत्यादि के बारे में सोचने लगे। शारीरिक परिश्रम का महत्व, उच्च मूल्यों के लिए बलिदान की भावना, सादगीपूर्ण जीवन, स्वाभिमान की रक्षा इत्यादि का संस्कार करने की दृष्टि से पौराणिक या ऐतिहासिक घटनाओं, प्रसंगों, व्यक्तियों का काव्य में प्रयोग किया जाने लगा। साम्प्रदायिक वैमनस्य को मिटाने के लिए सभी धर्मों के मूल तत्वों की मान्यता पर बल दिया जाने लगा। सांस्कृतिक जागरण के लिए पौराणिक एवं ऐतिहासिक प्रसंगों का उपयोग करते हुए काव्य लिखे गये। मूल मंत्र रहा—"एक हृदय हो भारत जननी"। भारतीय राजाओं की विजय के प्रसंगों को बहुत महत्व मिला।

राष्ट्रीयता इस युग की कविता की प्रमुख प्रेरणा शक्ति है। किंतु इस राष्ट्रीयता को परिभाषित करना जरूरी है। राष्ट्रीयता का अर्थ है प्रगतिशील जीवन मूल्यों की स्वीकृति, रीतिवादी रूढ़ियों पर प्रहार, नायक-नायिका भेद वाली चमत्कारवादी कविता का खंडन। सामाजिक चेतना के विकास और परिष्कार के लिए आवश्यक कार्य था शृंगारिक दृष्टिकोण में परिवर्तन, स्वदेशी, स्वभाषा और स्वजाति गौरव का गान, भारतीय सामंतवाद पर प्रहार। भारतीय नवजागरण ने सबसे बड़ा काम यही किया कि दरबारी साहित्य की परंपरा को समाप्त करते हुए लोक जागरणवादी परंपरा की प्रतिष्ठा की। लोक जागरण का अर्थ था कविता में साधारण मनुष्य की आशाओं और आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति। 'पथिक' में रामनरेश त्रिपाठी इसी मनोभावना को व्यक्त कर रहे हैं।

तुम अपने सुख के स्वराज्य के हो न पूर्ण अधिकारी
यह मनुष्यता पर कलंक है, हे प्रिय बंधु तुम्हारी
अपना शासन आप करो तुम यही शांति है सुख है
पराधीनता से बढ़ जग में नहीं दूसरा दुख है।

द्विवेदी युगीन कविता की राष्ट्रीयता साम्राज्यवादी शोषण के उस कुचक्र का पर्दाफाश करती है। इसलिए राष्ट्रीय भावना

में युद्ध, आक्रोश और आक्रामकता की प्रवृत्ति भी बढ़ जाती है। "जयद्रथ वध" में गुप्त जी लिखते हैं—

अधिकार खो कर बैठ रहना यह महा दुष्कर्म है।
न्यायार्थ अपने बंधु को भी दंड देना धर्म है॥

इस राष्ट्रीयता की प्रबल अभिव्यक्ति है नारी जागरण की चेतना। यशोधरा पुरुष शासित समाज पर प्रश्न चिह्न लगाती है—

"मुक्ति मार्ग की बाधा नारी
फिर उसकी क्या गति है
पर मै उनसे पूछूं जिनको
मुझसे आज विरति है"

— "यशोधरा"

देशभक्ति की भावना और देश के गौरव की रक्षा इस राष्ट्रीयता का वृहत्तर भाव है। उदाहरणस्वरूप गुप्त जी की पंक्तियाँ है—

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है
वह नर नहीं है पशु निरा है और मृतक समान है।

इस प्रकार यह राष्ट्रीयता मानवमुक्ति और मानवतावाद का पर्याय है। इसकी दिशा विश्व प्रेम की ओर है और इसका विश्वास मनुष्य की जय यात्रा में है।

16.5.3 उपेक्षितों और सामान्य व्यक्तियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण

इस काल में ऐतिहासिक पौराणिक विषयों के संबंध में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि अब नायक या नायिकाएँ ईश्वरीय अवतार न रहकर कर्म को महत्व देने वाले, मानव की सेवा के हित विश्व में अवतरित होने वाले, कर्म को महत्व देने वाले मनुष्य बन गये। यह वैज्ञानिक चेतना और आधुनिक विचारों का परिणाम था। ये चरित्र लोक मंगल की प्रेरणा से परिचालित थे। अतः इनकी दृष्टि दलितों, पीड़ितों, उपेक्षितों और शोषितों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण थी। हजारों वर्षों से पुरुष की दासता से पीड़ित, उपेक्षित, शोषण की शिकार, अपमान और दमन की भाजन भारतीय नारी द्विवेदी युगीन मानवीय दृष्टि का प्रमुख केन्द्र रही। अब वह न केवल तर्कपूर्ण संवाद ही करने लगी बल्कि जीवन की समस्याओं के समाधान में सक्रिय भाग लेने लगी। मैथिलीशरण गुप्त को तो उपेक्षितों का (उपेक्षित नारियों के) कवि ही कहा गया है। करुणा और सहानुभूति की कवि-दृष्टि किसानों, मजदूरों, भिक्षुकों के प्रति उन्मुख हुई। पीड़ित और उपेक्षित लोगों का शोषण करने वालों के प्रति घृणा, तिरस्कार, क्रोध और क्षोभ की भावना प्रकट की जाने लगी। जमींदार, उच्च-ब्राह्मण वर्ग, पूँजीपति धनिक वर्ग, महाजन, पुलिस वर्ग खल नायक के रूप में चित्रित हुए। "किसान" 1915 (मैथिलीशरण गुप्त), "कृषक क्रन्दन" (गयाप्रसाद सनेही), "अनाथ" 1917 (सियाराम शरण गुप्त) इत्यादि काव्य इस बात मत के साक्षी हैं। यह समूचा विचार परिवर्तन युगीन मानवतावादी दृष्टि के विस्तार का परिणाम था। समता, बंधुता और स्वातंत्र्य पर आधारित मानवतावादी दृष्टि हर प्रकार के शोषण, पाखंड, असत्य, छल-छद्म, ढोंग और हिंसा के विरोध में स्वर बुलन्द कर रही थी। इसमें द्विवेदी युगीन हिंदी कवियों का स्वर प्रबल था।

सामान्य के प्रति भावात्मक दृष्टिपात की यह प्रवृत्ति मूलतः भारतेन्दु की कविता से चलकर द्विवेदी युग में पहुँची है। कहना चाहिए यह उसी प्रवृत्ति का क्रमिक विकास है। मध्ययुगीन कविता कुछ क्षेत्रों तक सीमित थी और विशेष रूप से रीतिकाल की कविता तो कुंजो, कूलों और कछारों में सिमिट नायिकाओं की चांदनी रातों में उलझ कर रह गयी थी। इस युग के कवि कविता को उस वातावरण से निकाल कर जीवन और जगत की वास्तविकता के क्षेत्र में लाए। इन कवियों ने परिचित वस्तुओं में सौंदर्य देखने वाली दृष्टि को पैदा किया। ज्वार-बाजरा के खेत, किसान, खेत निराती हुई युवतियों और सामान्य मनुष्य का रोजी-रोटी के लिए संघर्ष इसमें जगह-जगह व्यक्त हुआ। वस्तुतः यह कविता उस भूमिका का निर्माण कर रही थी जिसे बाद में प्रगतिवादी कवियों ने ग्रामीण नयन से देख कर विस्तृत किया। द्विवेदी युग की इस कविता में ऐसे सहज चित्रों के रूप देखिए—

कोकिल का आलाप पपीहे की बिरहा कुल बानी।
तोता मैना का विवाद बुलबुल की प्रेम कहानी।
गाती मोहनगीत तरुणियाँ खेत अखेद निरातीं।
क्या ये क्षण भर को न किसी के मन का कष्ट भुलाती॥

— पथिक

माखन लाल चतुर्वेदी ने संपूर्ण राष्ट्र का सच्चा स्वरूप हरे-भरे खेतों, स्याम चट्टानों, सुगंधित झाड़ियों, कदली वनों, नीम, कदम्ब के वृक्षों और गिरि मैदानों में भागती नदियों में देखा है। यह वास्तविक पृष्ठभूमि है जो देश के संघर्षमय जीवन को प्रस्तुत करती है यथा—

"धरा यह तरबूज है दो फांक कर दे
चढ़ा दे स्वातंत्र्य प्रभु पर अमर पानी
विश्व कह दे तू जवानी है जवानी।

फूल, पत्ती, नदी सब राष्ट्रीयता के सामान्य रंग में रंगे हैं। स्वाधीनता के लिए जन-जन में जो आकांक्षा पैदा हुई थी यह कविता उसकी अभिव्यक्ति हर कोण से करती है।

16.5.4 स्वच्छंदतावादी काव्य के आरंभिक संकेत

छायावाद में जिन स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियों का सूक्ष्म और गहन विस्तार हुआ उनके आरंभिक बीज द्विवेदी युग की स्वच्छंदतावादी कविता में स्पष्टता से देखे जा सकते हैं।

कविता में व्यापक रूप से स्वच्छंदतावाद को प्रतिष्ठित करने का श्रेय श्रीधर पाठक को है। उन्होंने अपने को स्वच्छंद कवि ही घोषित किया और मुक्त जीवन के प्रति लगाव की एक भूमिका तैयार की। अंग्रेजी कवि गोल्डस्मिथ के कई प्रबंध काव्यों का अनुवाद किया तथा मौलिक रचनाएँ कीं। इन मौलिक रचनाओं में प्रसिद्ध है "जगत सचाई सार"। इस कविता की दो पंक्तियाँ स्वच्छंदतावाद और पुनर्जागरण का मूल मंत्र मानी जाती है—

जगत है सच्चा तनिक न कच्चा
समझो बच्चा इसका भेद।

यह पंक्ति जगत को माया और प्रपंच मानने वाली विचारधारा का खंडन करने के साथ ही जीवन यथार्थ और कर्म सौंदर्य को गति देने वाली प्रगतिशील विचारधारा का समर्थन भी करती। श्रीधर पाठक की इसी स्वच्छंदतावादी धारा में राय देवीप्रसाद 'पूर्ण, मुकुटधर पांडेय, लोचन प्रसाद पांडेय और रूपनारायण पांडेय आदि रचनाकार रहे थे। स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियों का उल्लेखनीय विस्फोट पंडित रामचंद्र शुक्ल के "मधुस्रोत" और रामनरेश त्रिपाठी के "पथिक", "मिलन" और "स्वप्न" जैसे काव्यों में मिलता है। यहाँ स्वच्छंदतावाद का सहज उल्लास सर्जनात्मक खड़ी बोली में फूटता है और प्रकृति वैभव के रंग-बिरंगे चित्र संश्लिष्ट रूप से सामने आते हैं। "पथिक" में चांदनी का एक चित्र है—

मध्य निशा, निर्मल निरभ्र नभ, दिशा विराव-विहीना
विलासित था अम्बर के उर पर अद्‌भुत एक नगीना।
उसकी विशद प्रभा सर, निझर, तृणलतिका, द्रुम दल में।
करती थी विश्राम, परम अभिराम निशीथ कमल में।

स्वच्छंदतावादी धारा के इन कवियों ने लावनी, ख्याल और लोक साहित्य की भावभूमि का भी स्पर्श किया। इतना ही नहीं लोक साहित्य के कवि-अभिप्रायों को कविता में स्थान भी दिया, जैसे "पथिक" में प्रेमी का पथिक वेश धारण करना और अंत में अब तक मृत समझी जाने वाली प्रिया से योगी की कुटी पर भेंट। इन लोक अभिप्रायों को नव-विकसित राष्ट्रीयता के भावों में गूँथ कर जीवन का एक व्यापक चित्र प्रस्तुत किया है। इस प्रकार रचना प्रक्रिया और रचना स्वभाव दोनों स्तरों पर द्विवेदी युगीन कविता में स्वच्छंदतावाद को अभिव्यक्ति मिली है। हरिऔध और गुप्त जी जैसे अनुशासन की धारा में चलने वाले कवियों में भी सवैया-घनाक्षरी पद्धति तथा गीत-प्रगीत पद्धति के माध्यम से आत्माभिव्यक्ति प्रधान स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियों का अंकुरण दृष्टिगत होता है। इस दृष्टि का उदाहरण 'यशोधरा' और 'साकेत' के गीतों में स्पष्टतः देखा जा सकता है।

चरित्रों में भी स्वच्छंदतावाद की सृष्टि हुई जैसे "प्रिय प्रवास" की राधा परंपरागत विरहिणी नहीं है। वह अपने निजी दुख को सारे समाज के दुख में विलीन करती हुई समाज सेवा का संकल्प धारण करती है। 'साकेत' में गुप्त जी उर्मिला और सीता के चरित्रों में भी ऐसा ही परिवर्तन करते हैं ऐसी ही स्थिति यशोधरा की है। जैसे—

मेरे दुख में भरा विश्व सुख
क्यों न भरूँ फिर मैं हामी
बुद्धं शरणं संघं शरणं
धम्मम् शरणं गच्छामि

शताब्दियों से चले आते हुए परंपरागत चरित्रों में द्विवेदी युग के कवियों ने नई विचार भंगिमाओं की महत्व प्रतिष्ठा की है। एक ओर वे चरित्र में परिवर्तन करते है दूसरी ओर समसामयिक आंदोलनों में उनकी सक्रिय हिस्सेदारी भी दिखाते है जैसे 'साकेत' में सीता का सूत कातना—

"तुम अर्द्ध नग्न क्यों रहो अशेष समय में
आओ हम कातें बुनें मिलन की लय में।"

तत्कालीन नव जागरण के सभी सुधारआंदोलनों की प्रतिध्वनि यहाँ तक कि किसान मजदूर आंदोलनों की प्रतिध्वनि इस कविता में सुनाई देती है। कवि ने यहाँ निर्मम होकर कहा है—

"संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया"

यह धरती अपनी महिमा में स्वर्ग से बड़ी है। यह द्विवेदी युगीन कविता का सबसे बड़ा स्वच्छंदतावादी संदेश है।

16.5.5 द्विवेदी युगीन काव्य में प्रकृति का स्थान

द्विवेदी युगीन कविता में आकर प्रकृति के प्रति कवि के दृष्टिकोण में नवीनता दिखाई देती है। मध्यकाल की कविता में प्रकृति को मानवीय भावों के उद्दीपन के रूप में प्रस्तुत किया जाता था। किन्तु आधुनिक युग में इस दृष्टिकोण में बदलाव आया। द्विवेदी युग में प्रकृति को विशिष्ट भौगोलिक सीमाओं में देखने की प्रवृत्ति हिंदी कविता के लिए सर्वथा नई बात है। इसलिए इस काल में प्रकृति चित्रण में स्थानीयता का पुट एक प्रवृत्ति के रूप में उभरता है। कवियों ने किसी न

किसी प्रदेश अथवा दृश्य के प्रति कविता लिखी है। श्रीधर पाठक ने कश्मीर के सौंदर्य पर मुग्ध होकर "काश्मीर सुषमा" नामक लंबी कविता लिखी। रामनरेश त्रिपाठी ने दक्षिण यात्रा से प्रेरणा पायी और 'पथिक' में वहाँ की प्रकृति का मार्मिक वर्णन किया। माखनलाल चतुर्वेदी ने नर्मदा प्रदेश के जीवंत चित्र अपनी कविता में खींचे। राय देवीप्रसाद "पूर्ण" ने अपनी कविता "अमलतास" में ग्रीष्म की दोपहरी और आम्र मंजरी के चित्र खींचे। आलंबन रूप में प्रकृति के चित्रण की शुरुआत इस युग की महत्वपूर्ण घटना है। इस प्रकृति चित्रण में जीवन के प्रति एक विस्तृत दृष्टिकोण मिलता है। कवि की स्वच्छंद कल्पना यहाँ खुल जाती है। नीचे दो उदाहरण दिए जा रहे हैं पहला उदाहरण श्रीधर पाठक की "काश्मीर सुषमा" नामक लंबी कविता से है—

"प्रकृति यहाँ एकांत बैठि निज रूप निहारति
पल-पल पलटति भेष छनिक छवि छिन-छिन धारति"

दूसरा उदाहरण गुप्त जी की एक मुक्तक कविता से है जिसमें देश की कल्पना भारत माता के रूप में की गई है—

"नीलांबर परिधान हरित पट पर सुंदर है
सूर्य-चंद्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है
नदियां प्रेम प्रवाह फूल तारे मंडन है
बंदीजन खगवृंद शेषफन सिंहासन है"

प्रकृति चित्रण में मातृभूमि की वंदना का यह स्वर न केवल एक सजीव बिंब उपस्थित करता है बल्कि भौगोलिक, पौराणिक और सांस्कृतिक परिदृश्य को भी रूपकों के माध्यम से प्रस्तुत करता है। धरती की हरियाली और आकाश की नीलिमा का जो चित्र उपस्थित है वह भारत माता है जो हरे पर नीला परिधान पहने है। चित्र की इस विशाल पृष्ठभूमि में भारत की विराटता को प्रस्तुत किया गया है। उस समय की राष्ट्रीय भावना को प्रस्तुत करने की भी यह एक पद्धति है जिसे लगभग सभी कवियों ने किसी न किसी रूप से अपनाया है। बड़ी कविताओं में भी प्रकृति के रूप के स्वतंत्र दृश्य देखने को मिल जाते हैं।

सामाजिक स्थितियों की घुटन से मुक्त होकर प्रकृति में तदाकार हो जाने के दृश्य भी इस युग के कवियों ने खींचे हैं जैसे—

"यह इच्छा है नदी और नालों का रूप धरूँगा
गाता हुआ गीत मस्ती के पर्वत से उतरूँगा।

16.5.6 उदात्त प्रेम की संयत अभिव्यक्ति

हिंदी काव्य के रीतियुगीन संस्कारों से भारतेन्दु युगीन कवि पिंड नहीं छुड़ा पाये थे। यह कार्य सशक्त रूप में महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने किया। शृंगार कवि चेतना को उन्होंने जीवन के विविध पक्षों, वस्तुओं, एवं स्थितियों से जोड़ा। सिद्धांततया वे यह मानते थे कि काव्य के लिए अविषय कुछ भी नहीं है। बशर्ते कि कवि के पास अच्छी प्रतिभा हो। शृंगार को नारी के नखशिख वर्णन तक तथा प्रेम को दैहिक मांसल संवेदना तक सीमित न रखकर द्विवेदी जी ने प्रेम को औदात्य, व्यापकता और आदर्श के आयाम प्राप्त करा दिये। "साकेत" में राम और सीता के दांपत्य प्रेम में परस्पर साहचर्य पूर्ण आदेश प्रेम की अभिव्यंजना तो उर्मिला लक्ष्मण के प्रेम में विरह की तीव्रता और गहराई के साथ-साथ समर्पण, आत्मत्याग और समष्टि के लिए व्यष्टि को न्यौछावर करने की मंगल भावना भी समाविष्ट है। हरिऔध की राधा समाज हित के लिए अपने प्रेम को कुर्बानी को सहज रूप में स्वीकार करती है। रामनरेश त्रिपाठी की कविताओं में भी इसी तरह के भावों की अभिव्यक्ति हुई है।

16.5.7 परंपरानुवर्ती कविता की झलक

द्विवेदी युग में परंपराओं पर बौद्धिक दृष्टि से पुनर्विचार किया जा रहा था और मूल्यांकन भी हो रहा था। समय के साथ कदम रखने की कर्मठता के कारण पुरानी रूढ़ियों और जर्जर विधि-विधानों, मानव-विरोधी संकीर्ण विचारों का खंडन हो रहा था। परंतु परंपराएँ जल्दी नहीं बदलतीं साहित्यिक परंपराओं के संस्कार और भी गहरे जमे हुए होते हैं। अतः हिंदी की रीतिकालीन एवं उससे भी पुरानी भक्तिकालीन परंपराओं के चिह्न, यदाकदा परिलक्षित हो रहे थे। नई मनोवृत्ति के इस युग में इन संस्कारों ने भी उच्च श्रेणी की कविता के सृजन में योगदान दिया। इस प्रकार के काव्य में "उद्धव शतक" जैसा सुंदर और कलात्मक काव्य भी कवि जगन्नाथदास रत्नाकरजी ने लिखा है। रत्नाकरजी युग की नाड़ी को पहचानते थे और स्वीकार करते थे कि आने वाला जमाना ब्रजभाषा की कविता का नहीं, खड़ी बोली की कविता का है। फिर भी उनकी कवि-मानसिकता ब्रजभाषा के विलक्षण काव्य सौंदर्य में लीन थी। अतः पुरानी लीक पर चल कर उन्होंने "उद्धव शतक" जैसा काव्य लिखा। वे क्रांतिकारी परिवर्तन के खिलाफ थे। काव्य में विकास-प्रक्रिया के पक्षधर थे। राय देवीप्रसाद पूर्ण और वियोगी हरि भी ब्रजभाषा में रचना कर रहे थे। काल के अनुगमन से इनके विषय बदल भी गये परन्तु भाषा अधिकतर ब्रज ही रही। राष्ट्रीय भाव उन्होंने ब्रज के माध्यम से प्रकट किये। परंपरागत विषयों पर लिखते हुए भी समकालीन भावधारा से प्रभावित काव्य लेखन करने वालों में सत्यनारायण कविरत्न का नाम लेना होगा जिनकी संख्या में कम कविताएँ गुणवत्ता की दृष्टि से उल्लेखनीय है। "उनकी बड़ी कविताओं में "प्रेमकली" और "भ्रमरदूत" विशेष उल्लेखनीय हैं। यशोदा ने द्वारका में जा बसे हुए कृष्ण के पास संदेश भेजा है। उनकी रचना नन्ददास के भँवरगीत के ढंग पर की गई है। पर अंत में देश की वर्तमान दशा और अपनी दशा का भी हल्का सा आभास कवि ने दिया है। (रामचन्द्र शुक्ल हिंदी साहित्य का इतिहास) पुत्र के विरह में माँ की व्याकुल हृदय-दशा का प्रभावकारी चित्रण उल्लेखनीय है। वियोगी हरि ने पुराने कृष्ण भक्त कवियों की पद्धति पर भक्ति के पदों की रचना की। "वीर सतसई" ने उनकी कीर्ति को स्थापित किया।

16.5.8 इतिवृत्तात्मकता

द्विवेदी युगीन कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति है इतिवृत्तात्मकता। इतिवृत्तात्मकता का अर्थ है "स्थूल पदार्थ चेतना" जिसे आचार्य शुक्ल ने अंग्रेजी के Matter of factness का समानार्थक बताया है। इस युग के अधिकांश कवियों ने अपनी रागदृष्टि को वस्तुस्थिति के बोधगम्य पक्षों तक ही सीमित रखा है। यथार्थ के अनुभव जन्य जटिल स्तर इस कविता में व्यक्त नहीं हो सके हैं। भावात्मक गहराई के इस रुझान को देखते हुए शुक्ल जी ने इस युग की कविता की काव्य प्रवृत्ति को इतिवृत्तात्मक घोषित कर दिया। इस युग के कवियों में छायावादी कवियों जैसी सूक्ष्म सौंदर्य दृष्टि नहीं दिखाई देती। इस दृष्टि से इतिवृत्तात्मकता का अभिप्राय है स्थूल सौंदर्य दृष्टि। इस चेतना की अभिव्यक्ति दो रूपों में हुई है—

(1) सीधी सपाट और वस्तुपरक कविताओं के रूप में, जैसे "भारत भारती", "हल्दी घाटी" आदि में।

(2) भावुकता प्रधान पौराणिक कल्पना के रूप में, जैसे "प्रिय प्रवास", "साकेत" आदि में।

प्रथम प्रकार की कविताओं में सुधारवाद और नैतिकता की प्रवृत्ति प्रबल है और दूसरी प्रकार की कविताओं में मध्ययुगीनता को पीछे धकेल कर फूटती हुई आधुनिक या नवीन दृष्टि। दोनों तरह की कृतियों की मूल चेतना सुधारवाद, आदर्शवाद और नैतिक मूल्यों पर केंद्रित है। मानवीय संवेदना की यह सीमा इन कवियों की सीमा नहीं वस्तुतः द्विवेदी युग के ऐतिहासिक दृष्टिकोण की सीमा है।

यह भी ध्यान देने की बात है कि इसी युग में ऐसे कवि भी हुए हैं जिनकी सहज भावपूर्ण कृतियों में स्वच्छंद प्रकृति चित्र स्वतःस्फूर्त कल्पनाशीलता के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इनमें श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, माखनलाल चतुर्वेदी, जगन्नाथदास रत्नाकर,नाथूराम शर्मा शंकर, सत्यनारायण कविरत्न, मुकुटधर पांडेय आदि का नाम लिया जा सकता है। इन कवियों की कविता आचार प्रधान और लोकोन्मुख है। इस पर दयानंद, तिलक और गांधी की सामाजिक सांस्कृतिक विचारधारा की गहरी छाप है दूसरी ओर इनकी मूल संवेदना स्वच्छंदतावाद-पूर्व की संवेदना है।

बोध प्रश्न 2

निम्नलिखित कथनों में जो सही हैं, उनके सामने सही (✓) का निशान और जो गलत है उनके सामने गलत (X) का निशान लगाइए।

(1) द्विवेदी युग की कविता :

क) उपदेशात्मक है। ☐

ख) इतिवृत्तात्मक है। ☐

ग) कुछेक विषयों तक सीमित है। ☐

घ) दरबारी है। ☐

(2) कविता के माध्यम से :

क) इस युग की प्रमुख समस्याओं की अभिव्यक्ति हुई है। ☐

ख) नारी जागरण की चेतना को प्रस्तुत नहीं किया गया है। ☐

ग) देश-भक्ति को प्रमुखता दी गई है। ☐

बोध प्रश्न 3

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

क) द्विवेदी युगीन कविता में उपेक्षितों के प्रति .... दृष्टिकोण की प्रधानता है।

ख) इस युग की कविता में .... काव्य के आरंभिक संकेत मिलते हैं।

ग) इस युग में प्रेम की अभिव्यक्ति .... और .... रूप में हुई है।

घ) इस युग के कवियों मे छायावादी कवियों जैसी सूक्ष्म .... नहीं दिखाई देती।

बोध प्रश्न 4

क) लगभग चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए। द्विवेदी युग के कवियों ने कविता के लिए किन-विषयों को चुना?

....

....

....

....

(ख) द्विवेदी युगीन कविता में नारी जागरण चेतना पर पाँच पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

(ग) द्विवेदी युग की कविता में स्वच्छंदतावाद पर पाँच पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

(घ) इतिवृत्तात्मकता से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

....

16.6 द्विवेदी युगीन काव्य का अभिव्यंजना शिल्प

16.6.1 काव्य रूपों की विविधता

काव्य रूपों की दृष्टि से द्विवेदी युग को प्रमुख रूप में प्रबंध कविता का युग कहा जा सकता है। परंपरागत प्रबंध काव्य के स्वरूप में इन कवियों ने थोड़े-बहुत परिवर्तन किए। इस परिवर्तन के पीछे युग परिवेश का प्रभाव-दबाव सक्रिय था। प्रबंध काव्यों में अधिकांश देशभक्तिपूर्ण चरित्र प्रस्तुत किए गए जिनका मूल ढाँचा आदर्श पर केंद्रित था। इस युग में प्रबंध काव्यों के तीन रूप मिलते हैं—(1) महाकाव्य (2) खंडकाव्य (3) लघु पद्य प्रबंध। अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध ने खड़ी बोली हिंदी के प्रथम महाकाव्य "प्रियप्रवास" की रचना इस युग में की। उन्होंने लिखा "मैं खड़ी बोली हिंदी में एक महाकाव्य लिखने के लिए लालायित था।" इस युग में मैथिलीशरण गुप्त ने खड़ी बोली हिंदी के गौरव ग्रंथ—"साकेत" की रचना की जो अपनी नवीन उद्भावनाओं और दृष्टि की आधुनिकता के कारण इस युग की प्रबंध परंपरा की मुकुट मणि है। श्याम नारायण पांडेय ने "हल्दी घाटी" और "जौहर", रामचरित उपाध्याय ने "साकेत संत" जैसे महाकाव्यों की रचना की किंतु इन महाकाव्यों में महाकाव्य से अधिक प्रबंध-योजना ही सक्रिय रही।

यह युग प्रबंध-परंपरा में खंड काव्यों की सृष्टि का स्वर्ण युग है। एक ओर तो ऐतिहासिक पौराणिक कथाओं पर आधारित "जयद्रथ वध", "पंचवटी", "नहुष", "द्वापर", "सिद्धराज", "विष्णुप्रिया" जैसे खंडकाव्य लिखे गए दूसरी ओर कल्पित कथानकों पर आधारित स्वच्छंद प्रवृत्तियों से युक्त मार्मिक खंड काव्यों की सृष्टि इसी युग में हुई। पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने "पथिक", "मिलन" और "स्वप्न" तीनों खंड काव्यों में काल्पनिक कथानकों का ढाँचा खड़ा करके नवीन कवि प्रतिभा का परिचय दिया।

"यशोधरा" जैसे गद्य-पद्य मिश्रित चंपू काव्यों की भी सृष्टि हुई। कुछ लघु पद्य प्रबंध भी लिखे गए जैसे मैथिलीशरण गुप्त द्वारा लिखित—"कीचक की नीचता" "कुंती और कर्ण" आदि। धीरे-धीरे इन पद्य प्रबंधों ने लघु गीत प्रबंध का रूप ले लिया जैसे लाला भगवानदीन कृत "वीर पंचरत्न"।

इस युग की कविता में मुक्तक काव्य परंपरा के नूतन विधान भी दृष्टिगत होते हैं। लोकगीत परंपरा की अमर रचना "झांसी की रानी" की सृष्टि सुभद्राकुमारी चौहान ने की। श्रीधर पाठक ने लावनी, ख्याल और स्तवगीत लिखे। खड़ी बोली में कवित्त और सवैया पद्धति की समृद्ध परंपरा मौजूद रही। इस क्षेत्र में राय देवीप्रसाद पूर्ण की रचना "स्वदेशी कुंडल", रामनरेश त्रिपाठी की "मानसी", नाथू राम शंकर शर्मा की "घनाक्षरी" आदि काव्य रूप बेहद लोकप्रिय हुए।

इस युग में गद्य-काव्य लिखने की भी एक परंपरा दिखाई देती है। रायकृष्णदास ने "चेतावनी" नामक गद्य काव्य लिखा। वियोगी हरि के "पर्दा" और "वीणा" नामक प्रयोग पर्याप्त चर्चित हुए। मूलतः यह गद्य काव्य लघु प्रबंध है जिनमें देश प्रेम की अभिव्यक्ति भी है।

16.6.2 द्विवेदी युगीन काव्य भाषा : खड़ी बोली

द्विवेदी जी खड़ी बोली पद्य के प्रवर्तक थे। उन्होंने ब्रज भाषा को युगधर्म के निर्वाह के अयोग्य घोषित किया और उसके स्थान पर खड़ी बोली को काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया।

हिंदी खड़ी बोली का सफल प्रयोग भारतेन्दु युग में ही गद्य-विधाओं में होने लगा था। पद्य में यह कार्य करना अभी आवश्यक था। यह काम महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किया। यह पहले कहा जा चुका है। स्वयं अच्छे पद्यकार न होते हुए भी महावीर प्रसाद द्विवेदी को इस कार्य में सफलता मिली। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि भाषा पर उनका विशेष ध्यान था, अधिकार था और वे एक स्वयं सशक्त शैलीकार थे। वे स्वयं अच्छी तरह जानते थे कि काव्य की भाषा कैसी होनी चाहिए। वे मानते थे कि कविता बोलचाल की भाषा में होनी चाहिए। अर्थात् वे पाठक की उपस्थिति का महत्व स्वीकार करते थे और मानते थे कि कविता, कवि और पाठक के बीच का संवाद है जो हृदयंगम करने के लिए सहज होना चाहिए। उन्हें किसी परायी भाषा के शब्द के व्यवहार से परहेज नहीं था बशर्ते कि लेखन अपनी स्वाभाविकता को न छोड़े। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के निम्नांकित शब्द महावीर प्रसाद द्विवेदी के शैलीकार रूप को यथोचित व्यक्त करते हैं : "द्विवेदी जी की भाषा में न तो संस्कृत का सामासिक जंगल है और न उर्दू की कलाबाजियाँ। उनकी भाषा हिंदी का ठेठ प्रकृत रूप लिए हुए है। केवल शब्दों का प्रयोग ही भाषा नहीं है। वाक्यों की बनावट ही भाषा का असली रूप है। हिंदी में नई-नई उद्‌भावनाएँ कर के द्विवेदी जी ने हिंदी की व्यापकता को सर्वमान्य बना दिया है। जो लोग हिंदी की स्वच्छंदता के कायल नहीं है, उन्हें वे बड़े दिल से द्विवेदी जी और पंडित रामचंद्र शुक्ल की भाषा का मनन करना चाहिए। द्विवेदी जी की भाषा वैसे अनलंकृत लघुता का गुण धारण करनेवाली, आडंबरहीन, प्रवाहपूर्ण, सरल भाषा है। कभी विषय के अनुसार वह गंभीर तत्सम शब्दों से संपृक्त भी बन जाती है तो कभी व्यंग्यात्मक तेवर में हल्की फुल्की, बतरस का मजा देने वाली थी। काव्यभाषा के संबंध में भी महावीर प्रसाद द्विवेदी जी की यही मान्यता थी कि "कवि को ऐसी भाषा लिखनी चाहिए जिसे सब कोई सहज में समझ लें और अर्थ को हृदयंगम कर सकें"। वह काव्य में संस्कृत वृत्तों को अपनाने के पक्ष में थे। उन्होंने कवियों को समझाया है: "दोहा, चौपाई, सोरठा, घनाक्षरी, छप्पय, सवैया आदि का प्रयोग हिंदी में बहुत हो चुका। कवियों को चाहिए कि यदि वे लिख सकें तो इनके अतिरिक्त और भी छंद लिखा करें.... संस्कृत काव्यों में प्रयोग किए गए वृत्तों में से द्रुतविलंबित, वंशस्थ, वसन्ततिलका, आदि वृत्त ऐसे हैं जिनका प्रचार हिंदी में होने से हिंदी काव्य की विशेष शोभा बढ़ेगी.... पादान्त में अनुप्रासहीन छंद भी हिंदी में लिखे जाने चाहिए। संस्कृत ही हिंदी की माता है। संस्कृत का सारा कविता-साहित्य इस तुकान्तवाद के बखेड़े से मुक्त सा है अतएव इस विषय में यदि हम संस्कृत का अनुकरण करें तो सफलता की पूरी-पूरी आशा है।"

काव्य-भाषा परिष्कार का युग

द्विवेदी युग खड़ी बोली कविता का आरंभिक काल था। अतः द्विवेदी जी को काव्य भाषा का कायाकल्प करने के लिए काफी परिश्रम करना पड़ा। महावीर प्रसाद द्विवेदी काव्य को सामान्य पाठक तक ले जाना चाहते थे, अतः उसे अधिक सरल, अक्लिष्ट और सुबोध भी बनाना चाहते थे, उन्होंने भाषा में व्याकरण-सम्मत अनुशासन का महत्व स्वीकार किया ही था, इन दृष्टियों से वे "सरस्वती" में आने वाली रचनाओं की भाषा को काट-छाँट करके परिष्कृत करके ही छापने की अनुमति देते। यथा—

मूल	संशोधित
रव वह सब ही का हो तभी व्यर्थ हो है,	कलरव गति सबकी भास होती बुरी है
जब पिक दिखलाती शब्द की चतुरी,	जब पिक दिखलाती शब्द की चातुरी है
	(सेठ कन्हैयालाल पोद्दार)

उपर्युक्त संशोधन देखने पर द्विवेदी जी की भाषा पर पकड़ की कल्पना की जा सकती है और साथ में उनकी कर्मठता, परिश्रमशीलता और काव्य भाषा के परिष्कार के लिए उनकी व्याकुलता का परिचय मिलता है।

मूल कवि के आशय को जरा भी क्षति न पहुँचाते हुए शुद्धता, सरलता, प्रभावोत्पादकता और छंद-लय की गति की दृष्टि से इस प्रकार का परिष्कार महावीर प्रसाद द्विवेदी जी की संपादन-कला और नेतृत्व गुण का परिचायक है।

खड़ी बोली काव्य के आरंभिक काल में भाषा का रूप अव्यवस्थित तो था ही, काव्य के लिए खड़ी बोली का सफल उपयोग भी ढंग से नहीं हो पा रहा था। भाषा संकरता उसका बड़ा दोष था, कविता में प्रान्तीय प्रयोग मिलते थे जो मानक भाषा के रूप में स्वीकृत नहीं हुए थे। ब्रज भाषा के शब्दों एवं शब्दरूपों की भरमार भी थी। "निर्माया", "प्रकटायौ", "अवगाहा" जैसी क्रियाओं का प्रयोग धड़ल्ले से होता था। संस्कृत पदावली की भरमार थी तो कभी बीच में लोक भाषा का शब्द आकर वाक्यावली का वजन कम कर देता था। भाषा में आवश्यक प्रसाद गुण तिरोहित होता था। काव्यभाषा में भाव की जीवंतता के लिए मुहावरों के प्रयोग के प्रति कवि उतने सजग नहीं थे। उपसर्गों से बोझिल, समासों से क्लिष्ट, तत्सम शब्दों के बाहुल्य से कर्कश भाषा काव्य की सहजता और मधुरता को खत्म कर देती थी। मिश्र बन्धुओं ने टिप्पणी की है : "एक तो खड़ी बोली में बिना खास प्रयत्न के श्रुति-कटुत्व आ ही जाता है और दूसरे ये लोग संस्कृत शब्दावली के अनुरागी होने से और भी सम्मिलित वर्णों की भरमार रखते हैं, जिससे खड़ी बोली के छन्दों में श्रुति माधुर्य का लोप हुआ जाता है"। इस स्थिति में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भाषा परिष्कार के साथ सरल, प्रवाहपूर्ण, रस एव भावानुगामी, मुहावरों के प्रयोग से जीवन्त बनी भाषा लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। ब्रज भाषा की मधुरता की तुलना में खड़ी बोली की शुष्कता और कर्कशता का यह संग्राम उन्होंने स्वयं लड़ा। द्विवेदी जी के प्रयासों के परिणामस्वरूप कविता की भाषा पहले से अधिक सर्जनशील हुई। आगे चलकर 'भारत भारती',

'जयद्रथ वध', 'पथिक', 'पंचवटी' आदि जैसी रचनाएं आईं जिन्होंने हिंदी को लोकप्रिय बनाया। द्विवेदी युग की कविताओं में भी सभी प्रकार की भाषा का प्रयोग हुआ। एक ओर तो सरल और प्रांजल हिंदी का निरलंकार सहज सौंदर्य और दूसरी ओर संस्कृत की अलंकारिक समस्त पदावली की छटा देखने को मिलती है। कहीं तो प्रसन्न वाक्यविन्यास का सहज प्रवाह है और कहीं-कहीं छायावादी कवियों की अर्थगूढ़ व्यंजना। कहीं मुहावरों और बोलचाल के शब्दों की झड़ी लगी हुई है तो दूसरे स्थल पर उन्हें तिलांजलि भी दे दी गई है। कहीं वाच्य प्रधान, वर्णनात्मक शैली में वस्तु स्थापन किया गया है तो कहीं लक्ष्य प्रधान चित्रात्मक शैली का चमत्कार है।

16.6.3 प्रतीक और बिंब

राष्ट्रीय सांस्कृतिक जागरण के इस युग में कविता का बाह्य विधान ही नहीं उसका आंतरिक रचना संसार भी बदल गया। कवियों ने ऐतिहासिक पौराणिक प्रतीकों को नया अर्थ संदर्भ दिया। "प्रिय प्रवास" के राधा और कृष्ण लोक जागरण की सुधार चेतना के प्रतीक बन गए। "हल्दी घाटी" और "जौहर" के राणा प्रताप और पद्मावती अपने ऐतिहासिक अर्थ के साथ स्वतंत्रता की क्रांतिकारी चेतना के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किए गए। पात्र प्रतीकों के साथ स्थान प्रतीकों को भी इस कविता के महत्व के साथ ग्रहण किया। हल्दी घाटी, पाटलिपुत्र, चित्तौड़, पानीपत के मैदान, बुंदेलखंड के अनेक प्रसिद्ध स्थान इस युग की कविता में प्रतीक बनकर आए। उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित पंक्तियों देखिए—

"मुझे न जाना गंगासागर
मुझे न रामेश्वर काशी
तीर्थराज चित्तौड़ देखने
को मेरी आँखें प्यासी" ॥

— श्यामनारायण पांडेय

इसी प्रकार इस कविता ने हिमालय, यमुना, नर्मदा, बेतवा, कृष्णा और कावेरी तथा गंगा को युग चेतना की वेगवती धारा के रूप में प्रतीक बनाकर प्रस्तुत किया। हिमालय का विराट प्रतीक तो इस कविता की शक्ति ही बन गया—

(1)
है मुकुट हिमालय पहनाता
सागर जिसके पद धुलवाता
यह लदा वेणियों में सुंदर
मंदिर गुरुद्वारा मेरा है।

— माखनलाल चतुर्वेदी

(2)
मनमोहिनी प्रकृति की जो गोद में बसा है वह देश कौन सा है?
जिसका मुकुट हिमालय यह देश कौन सा है?

— रामनरेश त्रिपाठी

दिनकर की प्रसिद्ध कविता "हिमालय के प्रति" (1919) इसी चेतना के बहुभाषायी प्रतीकों का समृद्ध कोश प्रस्तुत करती है।

काव्य-बिंबों के क्षेत्र में भी इस युग की कविता में नूतन कल्पना शक्ति के दर्शन होते हैं। परिवेश, प्रकृति और राष्ट्र से संबंधित नए बिंब नई-नई स्वर धाराओं में फूट पड़ते दिखाई देते है। ये स्पष्ट, मूर्त और इंद्रिय-ग्राह्य बिंब इस कविता की मनोभूमिका स्पष्ट करते हैं। रूप, रस, स्पर्श, गंध और दृश्य बिंबों के अनेक भाव चित्र यहाँ दिखाई देते हैं। उर्मिला के सौंदर्य चित्रण में दृश्य-बिंब का उदाहरण देखिए।

"स्वर्ग का यह सुमन धरती पर खिला"

इसी तरह रामनरेश त्रिपाठी की रचना 'पथिक' में समुद्र का एक बड़ा ही मूर्त और जीवंत चित्र है—

सिंधु विहंग तरंग पंख को फड़का कर प्रतिक्षण में
है निमग्न नित भूमि अंड के सेवन में रक्षण में

श्रवण बिंबों का भी अनोखा संसार परिवेश चित्रण में दिखाई देता है जैसे—

"पंछियों की चहचहाहट हो उठी
चेतना की अधिक आहट हो उठी"

इस युग की अधिकांश बिंब योजना अप्रस्तुत विधान के रूप में होने के बावजूद ये बिंब अलंकार की कोटि से अलग हो जाते हैं। द्विवेदी युग के कवि अमूर्त भावों को मूर्त अनुभवों में बाँधने के लिए प्रसिद्ध भी रहे हैं।

समसामयिक समस्याओं से संबंधित नवीन बिंबों की सृष्टि भी इस युग की कविता में भरपूर हुई है। जनता के दैन्य, दुर्दशा और भुखमरी के चित्र भी इस कविता में मिलते हैं—

अन्न नहीं है वस्त्र नहीं है रहने का न ठिकाना
कोई नहीं किसी का साथी अपना और बिगाना

— रामनरेश त्रिपाठी

द्विवेदी युगीन कविता का संसार इस लोक व्यथा की प्रस्तुति और स्वतंत्रता की चाह के बिंबों से निर्मित हुआ है। मूल बिंब चेतना में आशा या उल्लास काफी दिखाई देता है क्योंकि इन बिंबों के पीछे सत्ता से संघर्ष और टकराहट की चेतना प्रबल है। माखनलाल चतुर्वेदी की प्रसिद्ध पंक्तियों में देश पर प्राण न्यौछावार कर देने की इच्छा ऐसे ही बिंब द्वारा प्रकट हुई है —

मुझे तोड़ लेना बन माली
उस पथ पर देना तुम फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पर जाएँ वीर अनेक।

16.6.4 उपमान योजना (अलंकार)

इस युग की कविता यद्यपि बाहरी सजधज के रीति युगीन संस्कारों में विश्वास नहीं करती फिर भी काव्यगत अनुभूति को तीव्र और मूर्त बनाने के लिए अलंकार विधान का उपयोग किया गया है। अलंकार यहाँ वाणी की सजावट के लिए न होकर भावों की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। अलंकारों का कृत्रिम और चमत्कारपूर्ण प्रयोग इन कवियों ने नहीं किया बल्कि भाव के सौंदर्य को स्पष्ट करने वाले नए उपमानों के प्रति इनका आकर्षण रहा। इन कवियों की अलंकार योजना सामान्य और परिचित अलंकारों की सीमा से बाहर कम गई। किन्तु प्रकृति की सत्ता आलंबन रूप में मानने के कारण जहाँ-तहाँ मानवीकरण अलंकार की विशिष्ट योजना हुई। इनकी कल्पनाशक्ति पर परंपरागत उपमानों का बोझ नहीं है। इसलिए रूपक, उपमा और उत्प्रेक्षा जैसे अलंकारों में ये नए ढंग का भाव चित्र उपस्थित करते हैं जैसे —

नाक का मोती अधर की कांति से
बीज दाड़िम का समझ कर भ्रांति से
देखकर सहसा हुआ शुक मौन है
सोचता है अन्य शुक यह कौन है

— मैथिलीशरण गुप्त

यहाँ पर तोते सी नाक का उपमान परंपरागत है किन्तु इस परंपरागत उपमान में नाक और नाक के साथ मोती की आभा और मोती की कांति से टकराने वाली अधर की लालिमा का रंग आदि सभी मिलकर एक नए सौन्दर्य का प्रकाश करते हैं। स्वयं हरिऔध काव्य प्रसिद्धियों के आधार पर अप्रस्तुत विधान की परिकल्पना करते हैं और सामयिक स्थितियों से जोड़कर उनके संदर्भ को बदल देते हैं जैसे —

तरू शिखा पर थी अब राजती
कमलिनी कुल वल्लभ की प्रभा

इस ... पंक्ति में ढलता हुआ सूर्य और वृक्षों के पत्तों पर उसकी बिखरती हुई लालिमा उत्प्रेक्षा अलंकार संध्या एक ... त्र बनाती है। इसी प्रकार इस युग के अन्य कवियों में रूपक की सृष्टि विशेष ढंग से हुई है। रूपक में उपमेय और उपमान का अभेद आरोप होता है। इस काल के कवियों ने रूपक अलंकार को विशिष्ट व्यापकता प्रदान की है जैसे "पंचवटी" से एक उदाहरण है —

"इसी समय पौ फटी पूर्व में
पलटा प्रकृति नटी का रंग
किरण कंटकों से श्यामांबर
फटा दिवा के दमके अंग"

यहां सीता और उषा के रूपक की अभेदता ने भाव को एक विशेष कलात्मकता में ढाल दिया है। परंपरागत उपमान भी द्विवेदी युगीन कविता में सहज रूप से आए हैं जैसे आंखों की खंजन पक्षी से तुलना कवियों का प्रिय उपमान रही है। भक्तिकाल और रीतिकाल दोनों में ही इसका प्रचुर प्रयोग देखने को मिलता है। 'साकेत' में भी इसी तरह का स्वयं गुप्त जी भी इस प्रवृत्ति से परिचालित होने लगते हैं जैसे—

"निरख सखी ये खंजन आए
फेरे उन मेरे रंजन ने नयन इधर-मन भाए"

लक्षण व्यंजना के आधार पर अमूर्त को मूर्त रूप देने वाला मानवीकरण अलंकार श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पांडेय आदि स्वच्छंद प्रकृति के कवियों में अपनी स्वाभाविकता के साथ प्रस्तुत हुआ है। पुष्प, नदी आदि जैसे प्राकृतिक उपादानों का मानवीकरण यहाँ होता है। "पथिक" से एक उदाहरण है —

प्रतिक्षण नूतन वेश बनाकर रंग-विरंग निराला।
रवि के सम्मुख थिरक रही है नभ में वारिधि बाला॥

स्वयं गुप्त जी भी इस प्रवृत्ति से परिचालित होने लगते हैं जैसे —

अरुण पट झट पहन उषा आ गई।
मुख कमल पर मुस्कुराहट छा गई॥

नितांत मौलिक उद्भावनाओं के मानवीकरण अलंकार से संबंधित अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं किन्तु मूल बात यही है कि इन कवियों की उपमान योजना भावपूर्ण अभिव्यक्तियों के लिए समर्थ मार्ग बनाती है और अरूप को रूप, अमूर्त को मूर्त, अप्रस्तुत को प्रस्तुत, अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष बनाने के लिए उपमानों या अलंकारों का साधन रूप में प्रयोग करती है। इन कवियों का साध्य है भाव और उसे मूर्त बनाने, स्पष्टता देने का साधन हैं अलंकार।

16.6.5 छंद विधान

भारतेन्दु युग के कवियों ने छंदों के क्षेत्र में नए प्रयोगों की शुरुआत की थी। द्विवेदी युग में इस प्रवृत्ति की ओर तेजी से विस्तार हुआ। अन्य क्षेत्रों की भांति इस क्षेत्र में भी आचार्य द्विवेदी ने प्रेरणा दी। परंपरागत छंदों — दोहा, चौपाई, सोरठा, घनाक्षरी, छप्पय और सवैया के अतिरिक्त अन्य छंदों में कविता करने के लिए उन्होंने कवियों को प्रेरित किया। साथ ही उर्दू के छंदों का समुचित अनुकरण करने की सलाह भी दी। संस्कृत के वृत्तों के उपयोग की ओर भी ध्यान दिलाया। इतना ही नहीं उन्होंने अतुकांत कविता के लिए भी आंदोलन किया। वे मानते थे कि जरूरी नहीं कविता तुकांत ही लिखी जाए। उनके मत से अतुकांत कविता इसलिए कम अच्छी लगती है कि कानों को तुक वाली कविता का अभ्यास हो गया है। उन्होंने संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी आदि भाषाओं का उदाहरण देते हुए हिंदी में भी इस ढंग की शुरुआत की सलाह दी। वे इस बात को समझ रहे थे कि आधुनिक युग की बदलती हुई संवेदना की अभिव्यक्ति के लिए पुराने छंद पर्याप्त नहीं हो सकते। दूसरी ओर यह बात भी स्पष्ट थी कि ब्रज भाषा कविता के छंद खड़ी बोली की प्रवृत्ति पूर्णतया अनुकूल नहीं है।

द्विवेदी जी की सलाह को न केवल द्विवेदी युगीन कवियों ने बल्कि छायावादियों ने भी किसी न किसी रूप में अपनाया। अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध ने संस्कृत के मंदाक्रांता, शिखरिणी, वंशस्थ आदि छंदों का "प्रियप्रवास" में प्रयोग किया। साथ ही अतुकांत छंद को भी मुक्त हृदय से अपनाया।

इस काल के कवियों का झुकाव यद्यपि तुकांत छंद की ओर था किन्तु वे इसकी सीमाओं को पहचानते थे। वे इसे कविता की शक्ति न मान कर उसकी विवशता ही मानते थे क्योंकि वे पहचान गए थे कि कविता की शक्ति तुकबंदी में न होकर भाव अर्थ और शब्द की लय में है। फिर भी काव्य भाषा के रूप में खड़ी बोली के विकास के इस काल में वे कई तरह के प्रयोगों और प्रयासों से गुजर रहे थे। स्वयं गुप्त जी ने नवीन चंद्र राय के "पलाशिर युद्ध" तथा माइकेल मधुसूदन दत्त के "वीरांगना" का अनुवाद अतुकांत छंद में ही किया था। गुप्त जी ने हिंदी के जातीय छंदों गीतिका, हरगीतिका, रूपमाला आदि का अपने ढंग से प्रयोग किया। "भारत भारती", "जयद्रथ वध", "नहुष" जैसी रचनाओं द्वारा गीतिका और हर गीतिका स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान सभा गोष्ठियों में बड़े ही लोकप्रिय हुए। "सिद्धराज" में उन्होंने मुक्त छंद का प्रयोग किया। 'साकेत' में नए छंदों के प्रयोग के साथ ही ब्रजभाषा के घनाक्षरी छंद की झनकार भी सुनाई देती है। घनाक्षरी वस्तुतः द्विवेदी युग के लगभग सभी कवियों का प्रिय छंद है। नाथूराम शर्मा शंकर का योगदान इस क्षेत्र में विशेष है। स्वयं रामनरेश त्रिपाठी ने गीतिका और हरगीतिका के साथ घनाक्षरी का भी प्रयोग किया है।

छंद के क्षेत्र में नवीन मौलिक प्रयोगों की दृष्टि से रामदहिन मिश्र का अमित्राक्षर छंद में लिखा "आर्यावर्त" नामक यह काव्य उल्लेखनीय है। इस युग में छंदों में रचना करते समय छंद शास्त्र हिंदी उच्चारण पद्धति के अनुरूप लघु गुरु क्रम की छूट दी गई और तुकांत का बंधन भी ठुकरा दिया गया। अंग्रेजी सॉनेट के आधार पर चतुर्दशपदी लिखी गयी। बंगला के पयार काव्य रूप ने इस दिशा में प्रभावित किया था। छायावादी कवियों ने विशेषतः निराला ने मुक्त छंद को काफी प्रोत्साहन दिया। श्रीधर पाठक, कन्हैयालाल पोद्दार, रूप नारायण पाण्डेय, रायकृष्ण दास, मुकुटधर पाण्डेय आदि ने अतुकांत रचना में उत्साह से भाग लिया। जयशंकर प्रसाद का "प्रेम-पथिक" अतुकांत रचना है। अतुकांत रचना की प्रतिष्ठा कर द्विवेदी युग ने कविता के भावों पर आने वाले अनेक बंधनों को शिथिल कर कवियों को स्वतंत्रता प्रदान की। सामान्यतः रस एवं भाव के अनुकूल छंद योजना की महत्ता स्वीकार की गयी। लावनी ख्याल आदि लोक छंदों का प्रयोग भी इस युग की कविता में मिलता है।

16.7 सारांश (द्विवेदी युगीन काव्य का मूल्यांकन)

16.7.1 प्रमुख प्रदेय

द्विवेदी युग का प्रमुख प्रदेय काव्य में खड़ी बोली की प्रतिष्ठा और ब्रज भाषा को समसामयिक काव्य संवेदना के वहन के लिए असमर्थ करार दे कर हिन्दी कवियों को खड़ी बोली में ही लिखने के लिए समर्थ बना देना है। भाषा की शुद्धता, सरलता और सरसता के लिए अद्भुत प्रयत्न और इसमें सफलता इस युग की देन है। कविता में भावों, विचारों, अर्थात् काव्यवस्तु को समकालीन राजनैतिक एवं सांस्कृतिक जीवन से जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुआ। विषयों का विस्तार भी प्रचुर मात्रा में हुआ। प्रकृति से कवि हृदय ने अपना गहरा संबंध महसूस किया और प्रकृति से संवादपूर्ण संबंध में मनुष्य जीवन की सार्थकता देखी। राष्ट्रीयता द्विवेदी युगीन कविता का प्रमुख भाव था और यह राष्ट्रीयता स्वदेश, स्वभाषा और स्वसंस्कृति के प्रति अस्मिता में व्यंजित होने लगी। पौराणिक काल की सांस्कृतिक घटनाओं एवं व्यक्तियों की स्मृति को पुनरुज्जीवित करते हुए वर्तमान की दृष्टि से उनकी अर्थवत्ता की खोज करने की परिपाटी चल पड़ी। कवि मानवतावादी मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध थे और सामान्य जनजीवन के प्रति आंतरिक लगाव इस प्रतिबद्धता का एक रूप था।

मनुष्य के हर किस्म के शोषण के विरोध में तीव्र नाराजगी की भावना उस युग का महत्वपूर्ण वैशिष्ट्य था। दलित, पीड़ित, शोषित—चाहे वह किसान हो, मज़दूर हो, नारी हो या पराधीन समाज हो—के प्रति सहानुभूति और करुणा द्विवेदी युगीन कविता का एक अंग था। स्त्री पुरुषों के बीच समानता की भावना उदित हो रही थी। कवियों के व्यक्तित्व में संयम, गंभीरता और कर्मठता थी। वे भारत के उज्ज्वल भविष्य के सपने देखते थे और आशावाद, आदर्शवाद एवं नीतिवाद उनके स्वभाव का हिस्सा बन गया था। यह कविता बहुत बार विचारों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति का रूप नहीं ले पायी परंतु अपनी प्रांजलता और निष्ठा के कारण समाज में सम्मान प्राप्त कर सकी। द्विवेदी युगीन कविता ने हिंदी पाठकों के मानसिक क्षितिज का विस्तार कर एक स्वस्थ समष्टिवाद के प्रति पाठकों में आस्था उत्पन्न की। एक ओर छंदों को तुकबंदी से अलग कर छंदों को स्वतंत्रता दी तो दूसरी ओर उसे छंद की गेयता और लय से संयुक्त रखकर उसके ध्वनि सौंदर्य की रक्षा की। द्विवेदी युग संग्राहक युग था, संस्कृत, मराठी, बंगाली, अंग्रेजी भाषाओं के साहित्यों का अनुवाद, रूपांतरण, अनुकरण इस युग में हुआ, जिससे साहित्य का क्षितिज विस्तारित हुआ।

16.7.2 सीमाएँ

व्याकरण-शुद्धि, भाषा में संस्कृत की प्रचुरता तथा संस्कृत छंदों के आग्रह के फलस्वरूप द्विवेदी युगीन कविता ने काव्य भाषा के लिए अत्यावश्यक स्वतंत्रता और प्रयोगशीलता के प्रति उदासीनता दिखायी। विषयों के विवरण, वर्णन एवं निवेदन के कारण गद्य और काव्य के बीच का अन्तर बहुत बार धूमिल हुआ और सपाटता आयी। भावों की उन्मुक्तता, वैयक्तिक अनुभूति के फलस्वरूप काव्य में आनेवाली सूक्ष्मता और ऐंद्रिय संवेदनों के कारण आनेवाली जीवन्तता काव्य पर जाने अनजाने लादे गये नैतिक बन्धनों के कारण प्रभावकारी रूप में प्रकट न हो पायी।

पंत, प्रसाद, निराला जैसे कवियों को अपनी कविता की महानता के लिए द्विवेदी युगीन बंधनों से संघर्ष करना पड़ा। कोई कवि द्विवेदी युग के समस्त बंधनों को स्वीकार कर महान नहीं बन पाया। मैथिलीशरण गुप्त को भी महानता की ओर जाने वाला रास्ता स्वच्छंदतावाद को प्रवृत्तियों को अपनाने में दिखा। गद्य और काव्य की सीमा रेखा पर विचरने वाले पद्य को शुष्कता, नीरसता और वर्णनात्मकता से बचाकर उसे भाव सामर्थ्य और अभिव्यंजना सौंदर्य से तरल और वन्यात्मक शक्ति से प्रौढ़ बनाने का कार्य छायावादी कवियों को करना पड़ा। रीतिकालीन दैहिक शृंगार की स्थूलता की प्रतिक्रिया के रूप में शृंगारिकता से परहेज करने वाली द्विवेदी युगीन कविता को छायावादी कवियों को बताना पड़ा कि मनुष्य की जीवन्त मानसिकता के लिए प्रणय की मानवोचित, गरिमामयी तरल संवेदना कितनी और कैसे आवश्यक है।

द्विवेदी युगीन कवियों की कविता काव्य सौंदर्य, भाव माधुर्य तथा रूपगोचरता की दृष्टि से संत साहित्य तथा छायावादी काव्य की समृद्धता की समकक्षता कभी नहीं कर सकती थी परंतु उसका ऐतिहासिक महत्व अमान्य नहीं किया जा सकता। उसकी सुदृढ़ नींव के अभाव में छायावाद की भव्य क्रांतिधर्मी सिद्धियाँ संभवतः अशक्य थीं। काव्य में विषयों का विस्तार और वैविध्य, खड़ी बोली का परिष्कृत और शक्तिशाली रूप का काव्य-भाषा के रूप में उपयोग—ये दो कार्य द्विवेदी युगीन काव्य के खास महत्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रदेय हैं।

बोध प्रश्न 5

i) क) द्विवेदी युग में प्रबंध काव्यों के कौन से तीन रूप मिलते हैं।

....

....

....

ख) काव्य भाषा के क्षेत्र में द्विवेदी युग की क्या विशेषता है? लगभग पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

ग) द्विवेदी जी ने काव्य भाषा के परिष्कार में किस तरह योगदान दिया? अधिक से अधिक सात पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

2) क) ऐतिहासिक-पौराणिक प्रतीकों के प्रति द्विवेदी युगीन कवियों का दृष्टिकोण क्या था ?

....

....

....

....

....

ख) निम्नलिखित बिंबों का उदाहरण काव्य पंक्ति द्वारा दीजिए :

i) श्रवण बिंब

....

....

ii) समसामयिक जीवन की समस्याओं का बिंब

....

....

....

3) क) कविता में अलंकारों के प्रयोग के प्रति रीतियुगीन कवियों तथा द्विवेदी युगीन कवियों के दृष्टिकोण में अंतर लगभग पाँच पंक्तियों में बताइए।

....

....

....

....

....

ख) इस युग की कविता में मानवीकरण और रूपक अलंकार के प्रयोग का एक-एक उदाहरण कविता की पंक्तियों द्वारा दीजिए :

मानवीकरण

....

....

....

रूपक

....

....

....

ग) द्विवेदी युग में निम्नलिखित कवि किन छंदों के प्रयोग के लिए प्रसिद्ध है —

हरिऔध

....

मैथिलीशरण गुप्त

....

घ) ब्रज भाषा के किस छंद का इस युग में अधिकांश कवियों ने प्रयोग किया —

....

बोध प्रश्न 7

1) कविता में स्वच्छंदतावाद की प्रतिष्ठा करने वाले प्रथम कवि का नाम बताइए —

....

2) द्विवेदीयुग में ब्रज भाषा में कविता लिखने वाले तीन कवियों के नाम बताइए —

....

....

....

3) यशोधरा का काव्य रूप क्या है ?

....

4) निम्नलिखित के लेखक कौन हैं ?

क) हल्दीघाटी ....

ख) पथिक ....

ग) काश्मीर सुषमा ....

घ) नहुष ....

ङ) प्रिय प्रवास ....

च) झांसी की रानी ....

5) निम्नलिखित के रचनाकारों की दो-दो प्रमुख रचनाओं के नाम बताइए —

क) सियारामशरण गुप्त ....

ख) रामनरेश त्रिपाठी ....

अभ्यास 1

अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध और उनकी रचनाओं का दस पंक्तियों में परिचय दीजिए —

....

....

....

....

....

....

....

....

....

अभ्यास 2

द्विवेदीयुग की पृष्ठभूमि पर 10 पंक्तियाँ लिखिए —

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

अभ्यास 3

द्विवेदी-युगीन कविता के प्रदेय पर विचार करते हुए उसकी सीमाओं का निर्देश कीजिए —

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

16.8 शब्दावली

परंपराबद्धता : पुरानी रूढ़ियों या लीकों का पालन

उद्दीपन : भावों को उद्दीप्त करने अथवा जाग्रत करने का माध्यम या स्थिति

हृदयंगम करना : भलीभांति समझ लेना।

तुकांतवाद : तुकांत रचना को ही वरीयता देना

भाषा संकरता : भाषा में अन्य भाषाओं के शब्दों की मिलावट

भावानुगामी : भावों का अनुसरण करने वाली

मानक भाषा : भाषा का वह रूप जो व्याकरण और साहित्य सम्मत हो।

16.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

शर्मा, रामविलास, *महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण*, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

शुक्ल, रामचंद्र, *हिंदी साहित्य का इतिहास*, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

सिंह डा. नामवर, *आधुनिक हिंदी कविता की प्रवृत्तियाँ*, लोक भारती, इलाहाबाद।

रामस्वरूप चतुर्वेदी, *हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास*, लोक भारती, इलाहाबाद।

16.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) (क) नहीं, (ख) नहीं, (ग) हाँ, (घ) हाँ

2) (क) पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी (ख) 1900-1920 (ग) पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी (घ) भारतेन्दु युग (ङ) छायावाद

3 देखें भाग 16.4

बोध प्रश्न 2

1) क) √ (ख) √ (ग) × (घ) ×

2) क) √ (ख) × (ग) √

बोध प्रश्न 3

क) सहानुभूतिपूर्ण

ख) भावानुगामी

ग) उदात्त और संयत
घ) सौन्दर्य दृष्टि

बोध प्रश्न 4

क) देखें भाग 16.5.1
ख) देखें भाग 16.5
ग) देखें भाग 16.5.4
घ) देखें भाग 16.5.8

बोध प्रश्न 5

1) क) महाकाव्य, खंड काव्य और लघु पद्य प्रबंध
   ख) देखें, भाग 16.6.2
   ग) देखें, वही

2) क) देखें, भाग 16.6.3
   ख) देखें, वही

3) क) देखें, भाग 16.6.4
   ख) देखें, वही
   ग) देखें, भाग 16.6.5
   घ) देखें, वही

बोध प्रश्न 7

1) श्रीधर पाठक

2) जगन्नाथ दास रत्नाकर, राय देवी प्रसाद पूर्ण, वियोग हरि

3) चंपू काव्य

4) क) श्यामनारायण पांडेय ख) रामनरेश त्रिपाठी
   ग) श्रीधर पाठक घ) मैथिलीशरण गुप्त
   ङ) अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध च) सुभद्रा कुमारी चौ

5) क) (1) उन्मुक्त (2) मौर्य विजय
   ख) (1) मिलन (2) पथिक

इकाई 17 मैथिलीशरण गुप्त

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य
17.1 प्रस्तावना
17.2 जीवन और साहित्य (जीवन परिचय, रचनाएँ)
17.2.1 युगीन परिवेश और भारतीय नवजागरण
17.2.2 आधुनिक हिन्दी काव्य चेतना
17.3 भाव पक्ष
17.3.1 अतीत का आधार/इतिहास बोध
17.3.2. नारी सम्मान की भावना
17.3.3 मानवतावादी दृष्टिकोण
17.3.4 राष्ट्रीय भावना और समाज सुधार का स्वर
17.4 संरचना शिल्प
17.4.1 काव्य भाषा
17.4.2 काव्य-शिल्प
17.5 काव्य वाचन
17.6 संदर्भ सहित व्याख्या
17.7 मूल्यांकन
17.8 शब्दावली
17.9 उपयोगी पुस्तकें
17.10 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

17.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप मैथिलीशरण गुप्त के काव्य का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- गुप्तजी के जीवन और उनकी रचनाओं के बारे में बता सकेंगे,
- हिन्दी नवजागरण के उद्भव और विकास के कारणों को बता सकेंगे,
- आधुनिक हिन्दी काव्य चेतना के विकास को समझ सकेंगे,
- राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक चेतना की व्याख्या कर सकेंगे,
- गुप्तजी के काव्य में हिन्दी नवजागरण की चेतना के विकास को समझा सकेंगे,
- गुप्तजी की राष्ट्रीय भावना और सामाजिक चेतना की व्याख्या कर सकेंगे,
- गुप्तजी की मानवतावादी दृष्टि का वर्णन कर सकेंगे,
- गुप्तजी की नारी सम्मान भावना का वर्णन कर सकेंगे,
- गुप्तजी के खड़ी बोली के विकास में योगदान के बारे में बता सकेंगे,
- गुप्तजी के काव्य की विशेषताओं को बता सकेंगे, और
- "साकेत" और "यशोधरा" के पठित पद्यांशों की व्याख्या कर सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

आपने इकाई 16 में "द्विवेदी युगीन काव्य का स्वरूप और विकास" शीर्षक के अंतर्गत हिन्दी काव्य का स्वरूप और विकास तथा द्विवेदी जी और उनकी शिष्य मंडली के कवियों के योगदान का अध्ययन किया है। इस इकाई में आप द्विवेदी मंडल के प्रमुख कवि मैथिलीशरण गुप्त के काव्य का अध्ययन करेंगे। भारतीय नवजागरण के विकास में गुप्तजी का योगदान और उसे निश्चित दिशा देने में उनकी जो महत्वपूर्ण भूमिका रही है, इसकी चर्चा करेंगे तथा नवजागरण से जिन विभिन्न प्रवृत्तियों का उद्भव हुआ, उनकी अभिव्यक्ति गुप्तजी के काव्य में किस रूप में हुई है। गुप्तजी के काव्य में युग-चेतना तीन स्तरों पर अभिव्यक्त हुई है। प्रथम उनकी अतीत गौरव-गान में दूसरे गांधीवादी विचारों की प्रस्तुति में और तीसरे मानवतावादी धरातल पर विश्व राज्य की कल्पना में।

अतीत गौरव गान के द्वारा गुप्तजी ने राष्ट्रीय चेतना को जगाने का कार्य किया जिसके लिए पौराणिक, ऐतिहासिक कथानकों का आधार लेकर अतीत के गौरवशाली चित्र को जनमानस के समक्ष साकार किया। जिससे हीनता की भावना से मुक्त होकर स्वाधीन भारत का सुनहरा सपना देखा जाए। राष्ट्रीय आंदोलन को जब महात्मा गांधी का नेतृत्व प्राप्त हुआ तो गांधीवादी विचारों का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा। गांधीवादी प्रभाव को ग्रहण करते हुए गुप्तजी ने राष्ट्रवादी चिन्तन को

विश्व-व्यापी मानवतावादी आयाम दिया। गांधी जी के सत्य और अहिंसा के सिद्धांत को गुप्तजी ने बीज मंत्र के रूप में ग्रहण किया है। तत्कालीन युग चेतना को स्वर देते हुए समाज में नारी की दयनीय स्थिति के प्रति चिंता व्यक्त करते हुए साहित्य में उपेक्षित नारियों की वेदना को अभिव्यक्त किया। गुप्तजी ने दबी हुई नारियों में आत्मविश्वास का भाव जगाया है, उन्हें अबला के स्थान पर सबला बनाया है। दलित, किसान, शोषितों की शोचनीय स्थिति पर प्रकाश डालकर उनके उद्धार की आवश्यकता और उनके आर्थिक, सामाजिक अधिकारों की मांग की। उत्पीड़न और शोषण के विरुद्ध उनका काव्य आक्रोश कर उठता है। सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना के रूप में सर्व-धर्म समभाव और धार्मिक एकता की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। गुप्तजी की साहित्यिक यात्रा राष्ट्रीयता और विश्व मानवता की एक लम्बी यात्रा है। आइए, हम गुप्तजी के काव्य का विस्तार से अध्ययन करें।

17.2 जीवन परिचय

मैथिलीशरण गुप्त का जन्म 3 अगस्त, सन् 1886 को चिरगांव (झांसी - उत्तर प्रेदश) के एक वैश्य परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम सेठ रामचरण और माता का श्रीमती काशीबाई था। सेठ रामचरण धार्मिक प्रवृत्ति के पुरुष थे। धार्मिक कथा-वार्ता, भजन-पूजन उनका दैनिक नियम था। स्वभावतः गुप्तजी पर भी इस वातावरण का प्रभाव पड़ा। गुप्तजी की आरंभिक शिक्षा झांसी के राजकीय विद्यालय में हुई। परन्तु उनका मन विद्यालय से अधिक घर में रमता था। अतः झांसी से लौटने पर स्वतंत्र रूप से संस्कृत, हिन्दी तथा बंगला साहित्य का अध्ययन किया। धीरे-धीरे कथा साहित्य तथा उपन्यास आदि में रुचि बढ़ने लगी। इतिहास, पुराण आदि के साथ संस्कृत के काव्य और नाटकों का भी इन्होंने अध्ययन किया। कालिदास गुप्तजी के अत्यन्त प्रिय कवि थे। अंग्रेज़ी सीखने का प्रयत्न भी किया परन्तु उसमें विशेष गति नहीं रही।

गुप्तजी के पिता की कविता करने में रुचि थी। उन्होंने "कवितावली" के अनुकरण पर कुछ सवैये लिखे थे। लिखने के बाद वे मैथिलीशरण गुप्त को पढ़ने के लिए देते, तब गुप्तजी उसे पढ़कर उसमें कुछ संशोधन सुझाते थे, उनके पिता इसपर बहुत हर्षित होते और पुत्र की बात को मानते। तभी से गुप्तजी ने कविता लेखन की प्रेरणा अपने पिता से ग्रहण की। इनके पिता भक्त, कवि, कलाविद् और छन्द-शास्त्र के ज्ञाता थे। इन सबका प्रभाव कवि के मन पर पड़ना स्वाभाविक था। उन्होंने पन्द्रह-सोलह वर्ष की अवस्था में ही अपने पिता की काव्य शैली का अनुकरण करना प्रारंभ किया।

गुप्तजी का पारिवारिक जीवन अधिक सुखी नहीं रहा। इनकी दो पत्नियों की असमय मृत्यु हुई। उनकी तीसरी पत्नी सरयू देवी थी और उनके एकमात्र पुत्र श्री उर्मिलाशरण गुप्तजी हैं, जिन्होंने प्रकाशन आदि का कार्यभार संभाला है। गुप्तजी ने अधिकतर जीवन एकान्त काव्य साधना में रहकर बिताया। उनका स्वभाव संकोचशील होने के कारण सार्वजनिक समारोह आदि से वे दूर ही रहते थे। उन्हें अपने परिवार में सभी प्रकार का मान-सम्मान प्राप्त हुआ। कवि की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर महात्मा गांधी ने उन्हें "मैथिली काव्य मान" ग्रंथ भेंट करते हुए "राष्ट्रकवि" की उपाधि से सम्मानित किया। 1936 में साकेत के लिए हिन्दुस्तानी एकेडमी पुरस्कार और 1938 में मंगलाचरण पारितोषिक प्राप्त हुआ। 1946 में "हिन्दी साहित्य सम्मेलन" ने उन्हें "साहित्य वाचस्पति" से अलंकृत किया। 1948 में आगरा विश्वविद्यालय और 1960 में काशी विश्वविद्यालय ने डी. लिट् की मानद उपाधि देकर उन्हें सम्मानित किया। 1952 में गुप्तजी राज्यसभा के सदस्य मनोनीत हुए। 1954 में "पद्मभूषण" से उन्हें सम्मानित किया गया। इसी वर्ष 12 दिसम्बर 1964 को गुप्तजी का देहान्त हुआ। सुप्रसिद्ध कवि सियारामशरण गुप्त, गुप्तजी के छोटे भाई थे।

रचनाएं :

मैथिलीशरण गुप्त की काव्य रचनाओं की संख्या 34 के आसपास है। गुप्तजी सतत रूप से 50 वर्षों तक काव्य लेखन करते रहे। मूल काव्य रचनाओं के अलावा, गुप्तजी ने उर्दू, संस्कृत और बंगला के ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद किया है। उनकी संख्या लगभग 9 है।

गुप्तजी के काव्य रचनाओं की सूची।

काव्य संग्रह

1	जयद्रथ-वध	14	झंकार	27	पृथिवीपुत्र
2	रंग में भंग	15	साकेत	28	जयभारत
3	भारत-भारती	16	यशोधरा	29	दिवोदास
4	किसान	17	मंगलघट	30	राजा और प्रजा
5	वैतालिक	18	द्वापर	31	विष्णुप्रिया
6	शकुन्तला	19	सिद्धराज	32	जयिनी
7	पंचवटी	20	नहुष	33	रत्नावली
8	अनघ	21	कुणालगीत	34	लीला
9	स्वदेश संगीत	22	विश्ववेदना	35	उच्छ्वास
10	हिन्दू	23	काबा और कर्बला	36	पद्यप्रबंध
11	त्रिपथगा	24	अजित	37	पत्रावली
12	गुरुकुल	25	प्रदक्षिणा		
13	विकटभट	26	अंजलि और अर्घ्य		

अनुवाद ग्रन्थ

विरहिणी व्रजांगना, मेघनाथ वध, प्लासी का युद्ध, रूबाइयात उमर खय्याम, स्वप्नवासवदत्ता, दूत घटोत्कच, गीतामृत वृत्र संहार, वीरांगना।

17.2.1 युगीन परिवेश और भारतीय नवजागरण

मैथिलीशरण गुप्त आधुनिक हिन्दी काव्य जगत् में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के प्रतिनिधि कवि हैं। उनका सम्पूर्ण का य उस युग के राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना विकास के प्रत्येक चरण से प्रभाव ग्रहण करता गया और हिन्दी नवजागरण को अपना योगदान देता रहा।

गुप्तजी के काव्य में व्यक्त युगीन संदर्भों को समझने के लिए उस समय की राष्ट्रीय, सांस्कृतिक और सामाजिक परिस्थितियों को समझना आवश्यक है। 19वीं शताब्दी में मध्यकालीन सामन्तवादी विचारधारा और जीवन पद्धति के विरोध में नयी विचारधारा का उदय हुआ। अंग्रेज़ी शासन द्वारा संचालित स्कूलों, कॉलेजों और ईसाई मिशनरियों द्वारा पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान और धर्म-दर्शन का प्रचार हो रहा था। इस पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के आक्रमण से शताब्दियों से कमज़ोर और सोई हुई भारतीय सांस्कृतिक चेतना को जगाया। अपने अतीत को फिर से पहचानने के लिए विवश किया। जागृत भारतीय जनमानस ने यह अनुभव किया कि पश्चिम के विचार और उसकी जीवन-पद्धति में उसके ज्ञान-विज्ञान को छोड़कर ऐसी कोई विशेषता नहीं है जिसको आत्मसात किया जाए। भारतीय आदर्श, रीति-नीति, परंपरा और गौरव के प्रति जनमानस में श्रद्धा उत्पन्न होने लगी और इस अतीत गौरव से भविष्य के लिए शक्ति प्राप्त करना आरम्भ किया। पराधीनता के कारण जो आत्महीनता का भाव जनता में आया था वह दूर होकर उनमें आत्मविश्वास पैदा हुआ। इसमें सांस्कृतिक पुनरुत्थान की प्रक्रिया को बल मिला। सांस्कृतिक तथा सामाजिक नवजागरण में सामाजिक सुधारकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। राजा राममोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना द्वारा हिन्दु धर्म को रूढ़ियों और आडम्बरों से मुक्त करके उसके शुद्ध रूप को अपनाने का आग्रह किया। प्राचीन परंपराओं से मुक्ति दिलाकर आधुनिकता की ओर ले जाने का उनका प्रयास था। समाज सुधार की दृष्टि से समाज में स्थित असामाजिक प्रथा-परंपराएँ जैसे जातिप्रथा, पर्दा प्रथा, बाल-विवाह, सतीप्रथा का विरोध किया और स्त्री-शिक्षा, विधवा-पुनर्विवाह का समर्थन किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द आदि ने अपने अतीत, साहित्य और संस्कृति के प्रति श्रद्धा और गौरव की भावना जागृत करने का प्रयास किया। विश्व मानव कल्याण के लिए भारतीय सांस्कृतिक उत्थान पर उन्होंने बल दिया। वे यह जान चुके थे कि भारत विश्व कल्याण की भूमिका तब तक नहीं निभा सकता, जब तक उसे राजनीतिक और आर्थिक शोषण से मुक्ति नहीं मिल जाती। स्वामी विवेकानन्द ने धर्म के पुनरुज्जीवन द्वारा कल्याण की भावना का प्रसार किया। नारी जागरण और नारी उद्धार पर बल देने वाले विभिन्न समाज सुधारकों ने नारी जाति के प्रति सम्मान और आदर भाव की आवश्यकता पर विशेष बल दिया। इस सामाजिक, सांस्कृतिक जागरण ने समाज को अन्धकार युग से निकालकर नवीन प्रकाश दिखाने का कार्य किया।

नवजागरण की चेतना का विकास बीसवीं शताब्दी में राष्ट्रीय चेतना के रूप में सामने आया। सन् 1885 में काँग्रेस महासभा की स्थापना, सन् 1905 में बंगाल के विभाजन और देश में चल रहे स्वतंत्रता आंदोलनों के कारण जो जागृति हुई, उसके फलस्वरूप भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय भावना का स्वर ऊंचा हुआ, जिसकी अभिव्यक्ति प्रथम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य में हुई। भारतेन्दु और उनके मंडल के कवियों ने भारत की पराधीनता और दुर्दशा के प्रति दुःख प्रकट करके भारतीय जनमानस में अंग्रेज़ी राज के विरुद्ध क्षोभ निर्माण किया। आगे चलकर गांधी जी के नेतृत्व में देशव्यापी राष्ट्रीय आंदोलन ने राष्ट्रीय चेतना का रूप लिया। नई चेतना अथवा नवजागरण के फलस्वरूप भारतीय साहित्य के स्वरूप में परिवर्तन हुआ। साहित्य में मानवतावादी दृष्टि का विकास हुआ। कवियों ने अलौकिक और पारलौकिक तत्वों से हटकर अपने चारों ओर के वातावरण और परिवेश से अपने काव्य विषय चुनना प्रारंभ किया। देश की मुक्ति के लिए साहित्य के द्वारा जन चेतना जगाने का प्रयास किया। हिन्दी साहित्य में इन प्रवृत्तियों का सूत्रपात भारतेन्दु और द्विवेदी युग में हो चुका था। द्विवेदी युग के मुख्य कवि मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नवजागरण से निर्मित सभी प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति का क्या स्वरूप है, इसका अध्ययन हम आगे कर रहे हैं।

17.2.2 आधुनिक हिन्दी काव्य चेतना

नवजागरण की चेतना ने जिस नवीन साहित्य को जन्म दिया उसका उत्तरोत्तर विकास सर्वप्रथम बंगला साहित्य में दिखाई देता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हुए प्राचीनता के अनुकरण और पूर्वजों की विरासत का संदेश दिया। सांस्कृतिक चेतना का सर्वप्रथम उद्घोष हिन्दी के भारतेन्दु युग के साहित्य में हुआ। हिन्दी साहित्य रीतिकालीन शृंगारिकता से स्वयं को मुक्त करके देशप्रेम को स्वर देने में सफल रहा। समकालीन परिवेश के प्रति कवि जागरूक हुए और काव्य विषयों का विस्तार हुआ। मातृभूमि-प्रेम, स्वदेश-प्रेम, शिक्षा-प्रचार, नारी सम्मान की भावना, मानवतावाद काव्य के विषय बनने लगे। देश की आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक दुर्दशा पर क्षोभ और रोष प्रकट होने लगा। भारतेन्दु साहित्य का मूल स्वर देशप्रेम था। इस भावना का पूर्ण विकास बीसवीं शती के प्रथम दो दशकों में द्विवेदी युग के साहित्य में दिखाई देता है। भारतेन्दु युग के कवियों ने जहाँ देश की दुर्दशा पर केवल दुःख प्रकट किया था, वहां द्विवेदी युग के कवियों ने स्वतंत्रता प्राप्ति का संकल्प व्यक्त किया और उसके लिए आत्म-बलिदान की भावनाओं को स्वर दिया। अतीत और वर्तमान के बीच की असंगति को दिखाकर नए आदर्शों और भारतीय जीवन के आधाररूपी

मूल्यों की स्थापना की। पौराणिक सामग्री और विभिन्न प्रसंगों को लेकर वर्तमान युग के संदर्भ में रखकर उनकी नई व्याख्या करने का प्रयास किया। हिंदी साहित्य में आधुनिक हिन्दी काव्य चेतना का पूर्ण विकास द्विवेदी युग में ही दिखाई देता है। आधुनिक काव्य चेतना के स्वर जैसे : उपेक्षितों के प्रति सहानुभूति, साम्प्रदायिक समन्वय, अछूतोद्धार, स्वदेश प्रेम की भावना, अंग्रेज़ी राज का विरोध हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम गूंज उठे थे। इसी युग में मैथिलीशरण गुप्त का आविर्भाव हुआ। उनके काव्य में इस काव्य चेतना को सबसे समर्थ और सशक्त वाणी मिली। श्री रामधारी सिंह दिनकर जी ने उनके बारे में कहा है "पुनरुत्थान" ने हमारी सारी संस्कृति, सम्पूर्ण इतिहास और समग्र विश्वास पर जो नया आलोक फेंका, उसकी अधिक से अधिक अभिव्यक्ति सबसे प्रथम मैथिलीशरण गुप्त की कविताओं में ही हुई। इसीलिए, हिन्दी में पुनरुत्थान के कवि वे ही माने जाएंगे, ठीक उसी प्रकार जैसे बंगला में पुनरुत्थान के कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर हुए हैं। देश और युग की समस्याओं तथा चुनौतियों को गुप्तजी भली-भाँति जान चुके थे। आप देखेंगे कि गुप्तजी की काव्य रचनाएं युगीन समस्याओं को अभिव्यक्त करती हैं। साथ ही, इन समस्याओं के समाधान का मार्ग भी प्रशस्त करती है। जन-मानस द्वारा आधुनिक विचारधारा को स्वीकार करने के लिए एक मनोभूमि तैयार करती है।

17.3 भाव पक्ष

17.3.1 अतीत का आधार (इतिहास बोध)

जन-मानस में राष्ट्रीय चेतना जगाने के लिए और वर्तमान दुर्दशा के कारणों को जानने के लिए मैथिलीशरण गुप्त ने अतीत के वैभवशाली भारत का चित्र अपनी कविताओं द्वारा प्रस्तुत किया। हम कौन थे ? हम क्या हैं ? और क्या होंगे ? यह जानने की जिज्ञासा लोगों में उत्पन्न हो और जिससे भारतीय सांस्कृतिक गरिमा और सभ्यता को वे जान सकें और गुलामी की श्रृंखलाओं को तोड़कर एक स्वतंत्र भारत के निर्माण में अपना योगदान दे सकें। गुप्तजी ने अतीत के भव्य और उदात्त चरित्रों को कथाओं के माध्यम से युग की आवश्यकता के अनुसार एक कुशल चित्रकार की भांति नया रूप देकर प्रस्तुत किया। गुप्तजी ने आज के मान्य इतिहास से नहीं बल्कि मुख्यतः रामायण, महाभारत और पौराणिक कथाओं के प्रसंगों का चुनाव किया है। स्वयं गुप्तजी ने इस बात पर बल देकर कहा है—"इस देश में असंख्य आदर्शजन हो गए है। उनकी धार्मिकता, वीरता, उदारता, परोपकारिता और न्यायप्रियता एवं शील और सौजन्य आदि गुणों से इतिहास आलोकित हो रहा है। उनके ऊपर अनेक काव्य नाटक आदि लिखे जा सकते हैं। ऐसे काव्य चरित्रगठन में सहायक ही नहीं होते बल्कि उसके कारण होते हैं।" (कविता किस ढंग की हो—मैथिलीशरण गुप्त)

गुप्तजी अतीत की वैभवशाली परंपरा में विश्वास रखते थे। उनका मानना था कि भारत की प्राचीन सभ्यता ही जनता को वह सन्देश, वह प्रेरणा दे सकती है, जिससे राष्ट्रीय भावना का निर्माण हो सके। हमारा वर्तमान उज्जवल बनेगा।

ज्यों ज्यों प्रचुर प्राचीनता की खोज बढ़ती जाएगी।
त्यों त्यों हमारी उच्चता पर ओप चढ़ती जाएगी।

(भारत-भारती, पृ. 72)

उन्होंने अपने काव्य "रंग में भंग" में पूर्वजों की बड़ाई गाने को कहा, "जयद्रथ वध" में अपने पूर्वजों के शील और सौजन्य आदि गुणों से शिक्षा लेने को कहा।

निज पूर्वजों के सद्‌गुणों को यत्न से मन में धरो।
सब आत्म परिभव तज निज रूप का चिन्तन करो।
निज पूर्वजों के सद्‌गुणों का गर्व जो रखती नहीं।
वह जाति जीवित जातियों में रह नहीं सकती कहीं।

(भारत भारती, पृ. 160)

गुप्तजी मानते थे कि पराधीनता के सुप्त वातावरण में अतीत की जय ही जागरण उत्पन्न कर सकेगी। स्वयं गुप्तजी ने "मौर्य विजय" की भूमिका में कहा है—"यदि सौभाग्य से किसी जाति का अतीत गौरवपूर्ण हो तो उस पर अभिमान करें तो उसका भविष्य भी गौरवपूर्ण हो सकता है।" (मौर्य विजय की भूमिका)

इसीलिए उन्होंने अपनी कृतियों में अतीत चित्रण को अधिकाधिक सशक्त बनाने का प्रयत्न किया। लेकिन अतीत चित्रण को महत्व देते हुए भी गुप्तजी इस बात से पूर्ण रूप से सचेत थे कि केवल अतीत चित्रण से उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी, बल्कि युगानुसार आने वाले परिवर्तन को भी वे सहज रूप से स्वीकार कर रहे थे। वे कहते हैं —

"प्राचीन बातें ही भली है यह विचार अलोक है,
जैसी अवस्था हो, जहां वैसी व्यवस्था ठीक है।"

(भारत भारती, पृ. 166)

गुप्तजी का मानना है की युगीन परिस्थितियों के अनुरूप अपने विचारों को बदलने से बहुत सी समस्याएँ दूर हो सकती हैं। इसीलिए युगीन मूल्यों के साथ उन्होंने प्राचीन गौरवपूर्ण तत्वों का संतुलन किया है। अतीतचित्रण से संबंधित गुप्तजी

की मान्यताओं को जन्म देने में युगीन परिस्थितियाँ महत्वपूर्ण रही हैं। इसके अतिरिक्त गुप्तजी की आस्तिकता और निष्ठा ने उनके अतीत प्रेम और नैतिक चेतना को दृढ़ बना दिया और अतीत चित्रण की पृष्ठभूमि में उन्होंने नवजागरण की विभिन्न प्रवृत्तियों का चित्रण किया।

गुप्तजी की अतीत के आधार पर लिखी गई रचनाएं इस प्रकार हैं —

"साकेत", "पंचवटी", "प्रदक्षिणा", "जयद्रथ वध", "सैरन्ध्री", "बकसंहार", "नहुष", "हिडिम्बा", "युद्ध", "यशोधरा", "शकुन्तला" आदि। रामायण को आधार बनाकर लिखी गई रचना "साकेत" महत्वपूर्ण रचना है। यह मुख्य रूप से मानव जीवन और मानव मूल्यों का काव्य है। गुप्तजी ने प्रचलित रामकथा को युगीन परिस्थितियों के अनुसार नया रूप प्रदान करने का प्रयत्न किया है। इसके लिए उन्होंने प्राचीन कथा को कई नूतन उद्भावनाओं से सजाया है। परंपरा की लीक पर चलते हुए भी कथा के स्वाभाविक क्रम में उन्होंने परिवर्तन अवश्य दिखाया है।

गुप्तजी ने वर्तमान युग की दैन्य दशा को सुधार और स्वाधीनता की आकांक्षा व्यक्त की है। तत्कालीन युग की परिस्थिति के प्रति किसी भी प्रकार से हीन भावना मन में नहीं रहे बल्कि देश के गौरव को बढ़ाने के लिए कर्तव्य-भावना से प्रेरित होकर जनता कार्य करें इस भावना की अभिव्यक्ति गुप्तजी की "द्वापर" रचना में इस प्रकार हुई है —

अपने युग को हीन समझना आत्महीनता होगी,
सजग रहो, इससे दुर्बलता और दीनता होगी।
जिस युग में हम हुए वही तो अपने लिए बड़ा है,
अहा! हमारे आगे कितना कर्मक्षेत्र पड़ा है।

(मैथिलीशरण गुप्त — "द्वापर", पृ. 52)

गुप्तजी की अतीत भावना के पीछे यह धारणा है कि हमारा अतीत अत्यन्त गौरवशाली और उदात्त रहा है। हमारे पूर्वजों ने भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति की ऊँचाइयों को छुआ था, और विश्व के लिए एक महान् आदर्श उपस्थित किया था। वर्तमान स्थिति में और भविष्य के लिए भी हम उनसे मूल्यवान प्रेरणा ग्रहण कर सकते हैं जिसके आधार पर मानव-संस्कृति को उज्ज्वल बना सकते हैं। इसीलिए वे कहते हैं —

जिनका कुछ भी न था अतीत,
गावें क्या वे उसके गीत,
भूलें हम क्यों उसकी याद
जिसमें है अपना आह्लाद।
वही करेगा हमें सचेत
और वही देगा संकेत,
दे सकता है वही प्रबोध
और हमें जीवन का शोध।

(हिन्दू, पृ. 51-52)

पुनर्जागरण युग के और उसके बाद के अनेक कवियों में अतीत के बारे में इस प्रकार की भावना निहित है। इन कवियों ने अतीत के पौराणिक और ऐतिहासिक सन्दर्भों के आधार पर नवयुग के अनुरूप मूल्य-आदर्शों की बात कही है। इस संदर्भ में कवि दिनकर ने कहा है —

"पौराणिक कथाओं पर इस आंदोलन ने नयी आभा बिखेरी है, एवं इसके आलोक में हमारे इतिहास की अनेक घटनाएँ और अनेक नायक नयी ज्योति से जगमगाने लगे हैं।"

(दिनकर — मैथिलीशरण गुप्त — अभिनन्दन ग्रंथ)

नये युग की आवश्यकताओं के प्रति गुप्तजी पूरी तरह सजग हैं। नये युग की व्यवस्था एक अपरिचित आधार पर खड़ी न होकर, गत युग की अच्छाइयों की आधारशिला पर खड़ी हो। इसीलिए आज के युग में "रामराज्य" की स्थापना भी उन्हें नये युग की आवश्यकताओं के अनुकूल लगती है —

आज के योग्य एक अविभाज्य,
विश्व को मिले राम का राज्य

(विश्ववेदना, पृ. 5)

17.3.2 नारी सम्मान की भावना

भारतीय नवजागरण और सुधारवादी आंदोलनों के कारण समाज में नारी की अपमानस्पद और उपेक्षित स्थिति के बारे में पहली बार विचार किया जाने लगा। शताब्दियों से उपेक्षित और प्रताड़ित नारी को घर और समाज में उचित सम्मान मिले, देश के स्वतंत्रता संग्राम और विकास में उसका समान सहयोग रहे। इस भावना से नारी जाति के लिए सदियों से चली आ रही कुप्रथाओं और रूढ़ि-रीतियों का जोरदार विरोध होने लगा। राजा राममोहन राय ने नारी जाति के लिए अपमानस्पद और अभिशाप जैसी सती प्रथा समाप्त करने के लिए आंदोलन किया। बाल-विवाह, अनमेल-विवाह,

पर्दा-प्रथा का विरोध और विधवा-विवाह का समर्थन ब्रह्म समाज, आर्यसमाज द्वारा चलाए गए आंदोलनों ने किया। मध्यकालीन सामंतवादी समाज में नारी को केवल भोग की वस्तु माना जाता था। उसका कार्यक्षेत्र केवल उसका घर था और उसे शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करने का अधिकार भी नहीं था। इस संकीर्ण मानसिकता के कारण नारी का कार्यक्षेत्र अत्यंत सीमित था। आधुनिक युग की इस विचार-दृष्टि में नारी की इस स्थिति को समाज और देश के लिए अत्यन्त हानिकारक माना। नारी की स्वतंत्र अस्मिता, कार्य करने की कुशलता और बुद्धिमता को पहचानने का प्रयास किया गया। देश के विकास में सहयोग देने वाले महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में उसे पहचाना गया।

गुप्तजी की आधुनिक काव्य चेतना पर नवजागरण की नारी संबंधी विचारधारा का बहुत ही गहरा और व्यापक प्रभाव दिखाई देता है। देश की समकालीन स्थिति में नारी की शोचनीय स्थिति पर दुःख व्यक्त करते हुए वे नारी-शक्ति की महत्ता को इस तरह व्यक्त करते हैं—

अनुकूल आद्या शक्ति की सुखदायिनी जो स्फूर्ति है,
सद्धर्म की जो मूर्ति और पवित्रता की पूर्ति है,
नर-जाति की जननी तथा शुभ शान्ति की स्रोतस्वति
हा दैव! नारी जाति की कैसी यहां है दुर्गति।"

(भारत भारती, पृ. 149)

गुप्तजी ने नारी को उदात्त दैवी जैसा रूप देकर शक्ति और पवित्रता, सात्विकता के रूप में प्रतिष्ठित किया है। परन्तु केवल पूज्य भाव जगाने की वह घड़ी नहीं थी बल्कि नारी को सहयोगिनी के रूप में स्वीकार करना समय की आवश्यकता थी। गुप्तजी ने "साकेत", "यशोधरा", "विष्णुप्रिया", रत्नावली जयिनी काव्य रचनाओं में नारी को उच्च और मधुर प्रेरणामयी सहयोगिनी के रूप में दिखाने का प्रयास किया है। हिन्दी साहित्य के काव्य क्षेत्र में भी कुछ ऐसे नारी पात्रों की उपेक्षा हो रही थी, जिनके त्याग, उदारता और वेदना की अब तक कहीं भी चर्चा नहीं हुई थी। गुप्तजी ने "साकेत" में "उर्मिला" और "यशोधरा" में राहुल जननी की वेदना को स्वर देकर नारी के अस्तित्व बोध को अभिव्यक्त किया है।

गुप्तजी ने पौराणिक कथा संदर्भ लेकर नारी की गरिमामयी, तेजस्वी प्रतिभा प्रस्तुत की, जो समय की माँग थी। उपेक्षिता उर्मिला की अनकही विरह-वेदना, त्याग, सामंजस्य और दृढ़ता को साकेत में प्रथम वाणी मिली है। राम-सीता के साथ वन जाने के लिए लक्ष्मण को योगी बनाने में उर्मिला की दृढ़ता ही कारण रही है। जाग रहा है यह कौन धर्नुधर, जबकि भुवन भर सोता है भोगी कुसुमायुध योगी-सा, बना दृष्टिगत होता है। गुप्तजी ने नारी के व्यक्तित्व के दो पक्षों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया। पहला पक्ष है, नारी का पत्नीत्व एवं मातृत्व, और दूसरा पक्ष है नारी की स्वतंत्र सत्ता और महत्ता।

ये दोनों ही पक्ष नारी जीवन को सफल और उज्ज्वल बना सकता है यदि उसे पुरुष का सहयोग प्राप्त होता है। यदि यह सहयोग नहीं मिलता है तो नारी के पत्नीत्व और स्वतंत्र सत्ता के बीच तनाव निर्माण होता है। गुप्तजी के "साकेत" की नायिका उर्मिला में इस तनाव का अभाव है, क्योंकि लक्ष्मण का उसे अनुकूल सहयोग प्राप्त है। उर्मिला की अनुमति से ही लक्ष्मण वन को गए थे, परन्तु यशोधरा, विष्णुप्रिया और रत्नावली में वह नहीं है। यशोधरा के गौतम और विष्णुप्रिया के चैतन्य महाप्रभु पत्नी को बताये बिना, आज्ञा लिए बिना सत्य की खोज में निकल पड़े थे।

साकेत के एक विनोद प्रसंग में उर्मिला जब लक्ष्मण से कहती है कि मैं अबला हूं, तो लक्ष्मण सम्पूर्ण नारी जाति को संबोधित करके कह उठते हैं—

"अवस-अबला" तुम ? सकल बल वीरता,
विश्व की गम्भीरता, ध्रुव-धीरता,

("साकेत", पृ. 23)

"उर्मिला" विरह व्यथिता होकर भी स्वाभिमान और वीर भावना से ओत-प्रोत है। सीता हरण और लक्ष्मण-शक्ति के प्रसंग को हनुमान से सुनकर जब सभी साकेतवासी रावण से युद्ध करने के लिए निकल पड़ते हैं और सीता को कारागर से मुक्त करके उसके अपमान का बदला लेने के लिए शत्रुघ्न सोने की लंका लूटने के लिये प्रजाजनों को आदेश देते हैं; तब उर्मिला माथे पर सिंदूर लगाकर और हाथ में भाला लेकर साक्षात् दुर्गा का वेश धारण करके गरजती हुई उनके सामने आकर तेजस्वी वाणी में घोषणा करती है —

नहीं, नहीं पापी का सोना
यहां न लाना, भले सिंधु में वहीं डुबोना,
जाते हो तो मान हेतु ही तुम सब जाओ।
विंध्य-हिमाचल-भाल भला। झुक जाय, धीरो,
चन्द्र-सूर्य-कुल-कीर्ति-कला रुक जाय न वीरो।

इस तरह "उर्मिला" सैनिकों में अपनी मातृभूमि के प्रति अटूट श्रद्धा, अपूर्व भक्ति और असीम प्रेम जाग्रत करती है। यही है उर्मिला का स्वाभिमानी, शक्तिरूपा और वीरांगना का रूप। आधुनिक युग में नवजागरण की चेतना के कारण नारी स्वातंत्र्य और नारी की महत्ता को मानने जैसी विचारधारा का प्रसार हुआ। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करने के लिए नारी को प्रोत्साहन दिया और उसे स्वावलम्बी बनाने की प्रेरणा नारी जागृति के

लिए कार्य कर रही संस्थाओं ने दी। "साकेत" में सीता के इन उद्‌गारों में नारी के स्वतंत्र और स्वावलम्बी जीवन की झलक मिलती है —

"औरों के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ।
श्रमवारि बिन्दु फल स्वास्थ्य शुक्ति फलती हूँ।
अपने अंचल से व्यंजन आप झलती हूँ।
तनु-लता-सफलता-स्वाद आज ही आया,
मेरी कुटिया में राज भवन मन-भाया।"

"यशोधरा" गुप्तजी की दूसरी महान कृति है। जिसमें गौतम बुद्ध, यशोधरा तथा पुत्र राहुल की कथा को विस्तार दिया गया है।

यशोधरा की गौतम के महान् लक्ष्य के प्रति पूर्ण सहानुभूति थी, परन्तु पति द्वारा निद्रावस्था में उसकी अनुमति लिए बिना गृह त्याग करने से यशोधरा अपने नारीत्व को तिरस्कृत और अपमानित अनुभव करती है, गौतम ने उसे सहधर्मिणी के सहयोग का अवसर ही नहीं दिया—नारी को उन्होंने भी सिद्धि मार्ग की बाधा माना, यशोधरा की वेदना उसके शब्दों में फूट पड़ी है —

"सिद्धि-हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात,
पर चोरी-चोरी गये, यही बड़ा व्याघात,
सखि, वे मुझसे कह कर जाते,
कह, तो क्या वे मुझको अपनी पथ-बाधा ही पाते?"

(यशोधरा पृ. 24)

यशोधरा के मन में वेदना के साथ ही नारी-जाति के अस्तित्व के प्रति जागरूकता का भाव दिखाई देता है। वह कह उठती है —

सिद्धि-मार्ग की बाधा नारी फिर उसकी क्या गति है,
पर उनसे पूछूं क्या जिनको मुझसे आज विरति है,
अर्द्ध-विश्व में व्याप्त शुभाशुभ मेरी भी कुछ मति है,
मैं भी नहीं अनाथ, जगत् में मेरा भी प्रभु पति है।

(यशोधरा, पृ. 38)

सिद्धार्थ के निर्वाण हेतु चले जाने के बाद यशोधरा शोक में डूब जाती है, फिर भी जन-कल्याण हेतु गए अपने पति के उच्च संकल्प के लिए वह त्यागमयी भावना से कह उठती है —

जाये, सिद्धि पावें वे सुख से,
दुःखी न हों इस जन के दुःख से।

यशोधरा के साथ उसका पुत्र राहुल भी है, पति की अनुपस्थिति में माता तथा पिता दोनों रूपों का यशोधरा को निर्वाह करना पड़ता है। इसीलिए यशोधरा के विरह में वेदना के साथ-साथ गम्भीरता आ गई है। वह अपनी व्याकुलता में उत्तरदायित्व को कभी नहीं भूली। नारी जीवन के उस गम्भीर पक्ष, जिसमें तप, अटल विश्वास, पारिवारिक उत्तरदायित्व और त्याग है, यशोधरा ने उसे सहज रूप से स्वीकार किया। इसीलिए वह अपने ससुर को सांत्वना देने की क्षमता रखती है —

"तात, सोचो, क्या गये वे इसी अर्थ हैं।
खोज हम लायें उन्हें, क्या वे असमर्थ हैं?"

यशोधरा की तापसी वृत्ति को अंगीकार करने के पीछे इस आतुर संसार के मोह से मुक्त होकर संसार को मुक्ति का मार्ग दिखाने वाले गौतम की पत्नी होने की योग्यता को सिद्ध करने की आकांक्षा दिखाई देती है। उनका यह तप अंत में सफल हुआ। गौतम भगवान बुद्ध बनकर उसके "इसी आंगन में" लौटकर आये, जहाँ से वे उसे छोड़कर गए थे और यशोधरा ने अपने जीवन के तप का फल प्राप्त कर लिया। यहाँ यशोधरा का मानिनी रूप अडिग दिखाई देता है। वह जानती है कि —

"यदि वे चल आये हैं इतना
तो दो पद उनको हैं कितना
क्या भारी वह, मुझको जितना
पीठ उन्होंने फेरी
रे मन। आज परीक्षा तेरी।"

यशोधरा इस परीक्षा में सफल हो जाती है। गौतम बुद्ध स्वयं आते हैं और कहते हैं —

"मानिनी, मान तजो लो, रहो तुम्हारी बान।
दानिनि, आया स्वयं द्वार पर यह तव भवान।"

और यशोधरा ने अपने जीवन के तप का फल प्राप्त कर लिया। यशोधरा ने उस भिक्षु-शिरोमणि को अपनी गोद का अमूल्य रत्न, पुत्र राहुल को देकर नारी के त्याग का अभूतपूर्व आदर्श उपस्थित कर दिया। भगवान् बुद्ध ने गोपा अर्थात् यशोधरा के नीरव-तप को और उसके महत्व को स्वीकार किया और केवल गोपा का ही नहीं, उसके त्याग से समस्त नारी-जाति की महत्ता को स्वीकार करके गोपा का मस्तक ऊँचा कर दिया —

"दीन न हो गोपे, सुनो, हीन नहीं नारी कभी
भूत-दया-मूर्ति वह मन से शरीर से।
क्षीण हुआ वन में क्षुधा से मैं विशेष जब
मुझको बचाया मातृजाति ने ही खीर से।
आया जब मार मुझे मारने को बार-बार
अप्सरा-अनीकिनी सजाये हेम-हीर से।
तुम तो यहाँ थीं, धीर ध्यान ही तुम्हारा वहाँ :
जूझा, मुझे पीछे कर, पंचशर वीर से।"

गुप्तजी ने यशोधरा में भारतीय नवजागरण से विकसित हुए नवीन विचारों को अभिव्यक्ति दी है। देवत्व के स्थान पर मानव के महत्व को प्रतिपादित करना इस कृति का मुख्य हेतु था। अन्य ग्रंथों के समान सिद्धार्थ को प्रमुखता न देकर गुप्तजी ने काव्य को यशोधरा पर केन्द्रित रखा है, क्योंकि नारी की प्रतिष्ठा समय की माँग थी।

गुप्तजी द्वारा नारी की प्रतिष्ठा को स्थापित करने की इसी काव्य-धारा की अगली कृति "विष्णुप्रिया" और "जयिनी" है। यह रचना भी गुप्तजी के उसी सिद्धान्त की बात करती हैं, जिसमें आदर्श नारियों के लिए त्याग, तपस्या और पतिव्रता होना आवश्यक माना गया है। हालाँकि यह बात आधुनिक विचारों की अपेक्षा कुछ पारंपरिक अधिक लगती है। "विष्णुप्रिया" सामान्य गृहिणी है। मध्यकालीन भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु के गृह त्याग के कारण उनकी पत्नी विष्णुप्रिया को जो व्यथा-वेदना सहनी पड़ी उसी का रेखांकन इस कृति में किया गया है।

चैतन्य महाप्रभु जब विष्णुप्रिया से प्रेम-धर्म के प्रसार हेतु गृह त्याग के लिए आज्ञा माँगते हैं तो उस समय विष्णुप्रिया समस्त नारी समाज की विवशता का प्रतिनिधित्व करती हुई कहती है —

"तो क्या करूँ कर ही क्या सकती हूँ और मैं
रो रोकर मरना ही नारी लिखा लाई है।"

परन्तु वह अपने पति की भर्त्सना भी करती है। यह कह कर —

"कौन योग पूर्ण होगा त्याग कर मुझको ?
धर्म के विरुद्ध ही तुम्हारा यह कर्म है।"

(विष्णुप्रिया, पृ. 42)

केवल इतना कह कर विष्णुप्रिया चुप नहीं रहती है तो सांसारिकता के मोह से दूर भाग रहे अपने पति के लिए आक्रोश भरा व्यंग्यपूर्ण उलाहना भी देती है। परन्तु वह स्थिति का सामना करने के लिए समर्थ भी है। स्वजनों के सहारे बैठकर वह अपना निर्वाह नहीं करती बल्कि स्वयं श्रम करके अपना और पति का पालन-पोषण करती है। स्वाभिमानी विष्णुप्रिया स्वयं श्रम करके जीवन जीना चाहती है —

"कर लेंगे हम किसी प्रकार
इतना श्रम जिससे हम दोनों, न हों किसी पर भार।"

चैतन्य महाप्रभु के लौट आने के बाद विष्णुप्रिया अपना सारा दुःख भुलकर उनका प्रेमपूर्वक स्वागत भी करती है और महाप्रभु के कहने पर भगवान का ध्यान भी करती है। परन्तु यही विष्णुप्रिया चैतन्य महाप्रभु के राजा द्वारा दी गई भेंट को स्वीकार करने पर, विद्रोहिणी के रूप में कह उठती है —

"राज-समादर के लिए ही क्या गए हैं वे?

(विष्णुप्रिया, पृ. 83)

और इस बात को स्वीकार करते हुए महाप्रभु ने विष्णुप्रिया का आभार व्यक्त किया —

"हाय! "प्यारी विष्णुप्रिये!" बोले हँसकर ही,
तुम अवरोधिनी नहीं, अब हो प्रबोधिनी।"

(विष्णुप्रिया, पृ. 84)

17.3.3 मानवतावादी दृष्टिकोण

आधुनिक युग में मनुष्य का विश्वास अलौकिक शक्तियों पर से हटता गया क्योंकि विज्ञान ने मनुष्य के सामने यह स्पष्ट कर दिया कि अलौकिक शक्ति एक कल्पना मात्र है। आस्था का केन्द्र मनुष्य ही है। मनुष्य स्वयं अपना भाग्य-विधाता है, सृष्टि के क्रम-विकास में उसका स्थान सर्वश्रेष्ठ है। यही विश्वास आधुनिक मानवतावादी विचारधारा की मूल चेतना है।

गुप्तजी के काव्य पर इस मानवतावादी विचारधारा का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। उनके काव्य के विषय अधिकतर पौराणिक कथानकों पर आधारित हैं। विशेष रूप से "नहुष" और "दिवोदास" काव्य इसी दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हैं जिसमें मानव के स्वावलम्बी बनने और विकास की ओर बढ़ने के संकल्प को व्यक्त किया है। "लीला" नामक काव्य में विश्वामित्र का यह कथन —

अमर जो न कर सके उसे नर कर सकते है
व्रत साधन पर अमर भला कब मर सकते है ?

(लीला, पृ. 24)

विकास के पथ पर आगे बढ़ने का संकल्प लिए मानव आज उस संकल्प की पूर्णता की ओर अग्रसर है। मानवीय मूल्यों की स्थापना और उनके अनुसार चलने की कटिबद्धता मानव निभा रहा है। "द्वापर" में उग्रसेन कह रहा है —

सच पूछो तो ऐसा अद्‌भुत अपना यह मानव ही,
कभी देव बन जाता है तो और कभी दानव भी।
मैं कहता हूँ यदि मनुष्य ही बने मनुष्य हमारा,
तो कट जाए देव-दैत्यों का कलह-कलुष यह सारा।

(द्वापर, पृ. 103)

सामाजिक धरातल पर मनुष्य और मनुष्य के बीच भेद उत्पन्न करने वाली सभी पुरातन रूढ़ियों और संकीर्ण मानसिकताओं को नष्ट करके मनुष्य को स्वाभिमानपूर्वक खड़े होने का साहस मानवता ही दे सकती है। "जयभारत" काव्य के परीक्षा प्रसंग में कौरवों और पाण्डवों के शस्त्र कौशल की परीक्षा के उत्सव का वर्णन है। इस उत्सव में सबको चुनौती देकर परीक्षा देने के लिए जब कर्ण उपस्थित होता है तो उसका अपमान करने के उद्देश्य से भीम उससे उसके कुल और वर्ण का परिचय माँगता है तब कर्ण के मुख से मनुष्यत्व के गौरव को व्यक्त करने वाला सत्य इस तरह फूट पड़ता है —

मैं मनुष्य हूँ, और वर्ण सब देख रहे हैं,
पूछो उनसे लोग मुझे क्या लेख रहे हैं।

(जयभारत, पृ. 63)

मनुष्य की श्रेष्ठता उसके किस जाति या वर्ण में जन्म लेने के आधार पर नहीं बल्कि उसके शौर्य, पराक्रम और योग्यता के बल पर निर्धारित होनी चाहिए। गुप्तजी ने मनुष्य के श्रेष्ठत्व को पहचानने की एक नई दृष्टि देने का प्रयास किया है। जातिभेद का विरोध करते हुए मनुष्यत्व की श्रेष्ठता को "गुरुकुल" काव्य में वे इस रूप में व्यक्त करते हैं —

"हिन्दू हो या मुसलमान हो नीच रहेगा फिर भी नीच
मनुष्यत्व सबसे ऊपर है मान्य महीमण्डल के बीच।"

(गुरुकुल, पृ. 37)

गुप्तजी ने अपने काव्य में जातिभेद, वर्णभेद जैसी सामाजिक बुराइयों का विरोध किया और इन बुराइयों के कारण मनुष्य-मनुष्य के बीच जो दरार पड़ी थी, उस दरार को मिटाने के प्रयास स्वयं मनुष्य ही करे इस उद्देश्य को पूर्ण करने हेतु गुप्तजी ने अपने "द्वापर", "गुरुकुल" काव्य संग्रहों की रचना की थी। मानवतावादी दृष्टिकोण से ही गुप्तजी ने नारी की सामाजिक प्रतिष्ठा को बढ़ाने हेतु "यशोधरा", "साकेत", "विष्णुप्रिया" काव्यों की रचना की। इन काव्यों के प्रमुख नारी पात्र त्याग, दया, करुणा, अहिंसा आदि बौद्ध धर्म के तत्वों को अपनाते हुए मानवता की स्थापना के लिए कार्यशील दिखाई देते हैं। बौद्ध धर्म के तत्व मानवतावाद की स्थापना के मूल तत्व माने गए हैं। गुप्तजी का विश्वास था कि अनेक विसंगतियों और त्रुटियों के बावजूद विश्व का विकास होगा, क्योंकि मनुष्य ही इस विकास के केन्द्र में है। कुन्ती द्वारा यह विश्वास वे प्रकट करते हैं —

"होगा इस विश्व का विकास जो अब भी।
नर से होगा वह, जैसा हुआ अब भी॥
आते हैं चढ़ाव उतार तथा आवेंगे।
तो भी हम लोग सदा बढ़ते ही जायेंगे॥

उस समय विश्व को महायुद्ध एक शाप की तरह ग्रस्त किए हुए था। दोनों महायुद्धों से संपूर्ण विश्व, दानवीय प्रवृत्तियों का तथा भीषणता का शिकार हो चुका था। गुप्तजी ने महायुद्ध की उस भयावहता को देखते हुए युद्ध के विरोध में शांति का, विषमता के मध्य समता का काव्य लिखकर दानवता के विरुद्ध मानवता का संदेश देने का भरसक प्रयास

"विश्व वेदना" जैसा काव्य लिखकर किया। अंतर्राष्ट्रीय स्पर्धाओं से त्रस्त आधुनिक युग की पीड़ा की अनुभूति से कवि हृदय कराह उठता है—

"बढ़ाकर दो देशों में द्वेष
बेच दोनों को वस्तु विशेष
लूटता एक तीसरा देश
वाणिज्य में क्यों लज्जा-लेश
राज्य पूँजीपति का ही आज
नहीं कुछ उसके लिए अकाज
लुब्ध लंपट वंचक वाचाल
चले जो जितनी गहरी चाल
बिछावे कूट कपट के जाल
वही उतने नीतिज्ञ विशाल
धनी हो जिसके कंस नृशंस
न हो धरा धाम क्यों ध्वंस।"

द्वितीय महायुद्ध के बाद विजयोत्सव मना रहे ब्रिटेन के नवयुवकों को संबोधित करके जो बात एच.जी. वेल्स ने कही थी, वही "बंगाल का अकाल" नामक कविता में गुप्तजी ने व्यक्त की है —

"शिशु जहाँ शुष्क स्तनी माँ को-
अधीर पुकारते हैं।
एक मुट्ठी अन्न पर उनको बुभुक्षित करते हैं।
आँसुओं के रूप में जीवन जहाँ राज गारते हैं।
एक के पर दूसरों के अन्तरंग उघारते हैं।।
रक्त रंजित हो यहाँ तो साँझ हो चाहे सबेरा।
क्या यही संसार मेरा।"

भूख से बिलखती जनता की आवाज़, कराह, क्रन्दन, कोलाहल, द्वेष, वैषम्य इन सभी भावनाओं की संमिश्र अभिव्यक्ति इस कविता में हुई है। द्वितीय महायुद्ध से निर्माण हुई स्थिति के कारण गुप्तजी की मानवतावादी दृष्टि के पीछे वस्तुतः सामाजिक चेतना मुख्य रूप से दिखाई देती है। इसी प्रकार, "जयिनी" काव्य रचना में समाजवादी विचारधारा के मानवतावादी तथ्य स्पष्ट हैं।

"खाता दूसरा है, कमाता श्रमजीवी है" अथवा "महाजन पूँजीपति बनके अपने सुख भोग के लिए सौ सौ का सुख भोग लूटता है। कुत्ते एक ओर मलाई सूँघते हैं तो बच्चे दूसरी ओर भूख से ऊँघते हैं।

इस तरह, गुप्तजी का काव्य मानवतावादी दृष्टि का दस्तावेज़ है। कर्म और कर्तव्य के नए धरातल को प्रस्तुत करके मनुष्यत्व को नया आयाम, नया आदर्श और नयी अर्थवत्ता प्रदान करता है।

17.3.4 राष्ट्रीय भावना और समाज सुधार का स्वर

देश में स्वतंत्रता आंदोलन एवं राष्ट्रीय भावना का उदय पुनरुत्थान के वैचारिक आंदोलन के प्रचार रूप में हुआ। स्वतंत्रता आंदोलन को आगे चलकर महात्मा गांधी का नेतृत्व प्राप्त हुआ। गांधी जी ने इस आंदोलन को नये आयाम प्रदान किए, इसे व्यापक जन-जागरण, समाज-सुधार, आर्थिक स्वावलम्बन, एवं नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों से जोड़ा। अतः अहिंसा, सत्याग्रह, अछूतोद्धार, मानवीय समानता और चर्खा-आंदोलन उनके विचार-दर्शन के प्रमुख आयाम बने। मैथिलीशरण गुप्त को हमने नवजागरण की विचारधारा का प्रतिनिधि कवि कहा है। नवजागरण स्वतंत्रता-आंदोलन और गांधीवाद के वे प्रतिनिधि कवि हैं। उन्होंने गांधीवादी विचारों को स्वर दिया।

स्वदेश की महिमा गुप्तजी ने अपनी रचनाओं के अनेक प्रसंगों में गाई। "गुरुकुल" में गुरु गोबिन्द सिंह के मुख से देश के गौरव का गान इस तरह से किया है —

'जिसके तीन ओर अर्णव है,
चौथी ओर हिमालय पीन
ऐसा देश दुर्ग पाकर भी
रह न सके हा! हम स्वाधीन।

(गुरुकुल, पृ. 220)

"स्वदेश संगीत" में संकलित गुप्तजी की कविता नीलाम्बर परिधान हरित पट पर शोभित है। स्वतंत्रता आंदोलन के युग में भारतीय जनता के कोटि-कोटि कण्ठों से गायी जाती थी। मातृभूमि को देवी अथवा मानवी रूप में अनेक कवियों ने चित्रित किया, जैसे बंकिमचन्द्र चटर्जी ने "वन्देमातरम्" गीत मे, निराला ने "भारति जय विजय करे" गीत में और जय शंकर प्रसाद ने "हिमाद्रि तुंग शृंग से...." कविता में। प्राचीन काल के कथानकों में भी गुप्तजी ने स्वदेश प्रेम और

राष्ट्रीय भावना को इस कौशल से अभिव्यक्त किया है कि वह उन प्रसंगों में अपनी सार्थकता रखते हुए आज के युग की भावनाओं को भी वाणी देने में समर्थ है। विदेशी शक्ति से देश की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए "साकेत" के राम कृत संकल्प है —

पुण्य भूमि पर पाप कभी हम सह न सकेंगे
पीड़क पापी यहाँ और अब रह न सकेंगे

(लीला, पृ. 24)

इसी प्रकार, ऐतिहासिक प्रसंगों पर आधारित रचनाओं में गुप्तजी ने अनेक पात्रों के द्वारा स्वदेश के लिए बलिदान की भावना व्यक्त की है। गुप्तजी की ऐतिहासिक कथानकों पर आधारित अनेक रचनाओं में स्वदेश के लिए प्राणार्पण की भावना व्यक्त होती है। उन मध्यकालीन कथानकों में यह भाव सीमित राष्ट्रीयता की भावना को व्यक्त करते हैं, लेकिन वर्तमान युग में भी उन भावनाओं की प्रासंगिकता थी —

जन्मदायी धायि! तुझसे उऋण अब होना मुझे,
कौन मेरे प्राण रहते देख सकता है तुझे,
मैं रहूँ चाहे जहाँ, हूँ किन्तु तेरा ही सदा,
फिर भला कैसे न रक्खूँ ध्यान तेरा सर्वदा

(रंग में भंग, पृ. 29)

विदेशी शासन के विरोध में स्वतंत्रता आंदोलन ने संघर्ष का रूप धारण कर लिया था। ऐसी स्थिति में गुप्तजी की राष्ट्र-प्रेम की भावना से लिखा गया काव्य "भारत भारती" प्रकाशित हुआ। ब्रिटिश शासन द्वारा किये जा रहे देश के आर्थिक शोषण और सांस्कृतिक-ह्रास के प्रति गुप्तजी अत्यधिक चिंतित थे, यह चिंता उनके इस काव्य में अनेक प्रसंगों में व्यक्त होती है। वे कहते है —

हम कौन थे, क्या हो गये हैं, और क्या होंगे अभी
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।

देशवासियों अपने प्राचीन गौरव का स्मरण करके, पुनः वैसी ही या उससे भी बेहतर स्थिति प्राप्ति की लालसा रखें इसलिए गुप्तजी भारत भारती द्वारा जन-चेतना जगाने के कार्य में जुटे रहे —

इस देश को है दीनबन्धो! आप फिर अपनाइए,
भगवान! भारतवर्ष को फिर पुण्यभूमि बनाइए।
....

वरमंत्र जिसका मुक्ति था, परतंत्र पीड़ित है वही,
फिर वह परम पुरुषार्थ इसमें शीघ्र ही प्रकटाइए।

(भारत भारती, पृ. 187-188)

फिर अपने को याद करो
उठो अलौकिक भाव करो।

(वैतालिक)

गुप्तजी राष्ट्रीय आंदोलन में विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों की एकता के महत्व को अनुभव करते थे। इसी उद्देश्य से उन्होंने "काबा और कर्बला" तथा "गुरुकुल" दो काव्य संग्रहों की रचना द्वारा इस्लाम धर्म और सिक्ख-धर्म के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है। "मातृ-मंदिर" नामक कविता में सभी धर्म, जाति, संप्रदाय की एकता का प्रतिपादन करते हुए वे कहते है—जाति, धर्म, या संप्रदाय का, नहीं भेद व्यवधान यहाँ। एक ने सब के लिए भेजे यहाँ निज ग्रंथ हैं। राष्ट्रीयता और विश्व प्रेम में धर्म बाधक नहीं है बल्कि धर्म का उद्देश्य विश्व-बन्धुत्व भावना बढ़ाने का होना चाहिए।

किन्तु हमारा लक्ष्य, एक अम्बर, भू-सागर,
एक नगर-सा बने विश्व, हम उसके नगर।

(राजा-प्रजा)

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का एक और प्रमुख लक्ष्य था, सामाजिक समानता अर्थात् समाज के सभी वर्ग के लोगों के साथ समानता का व्यवहार, अछूत, हरिजन एवं पिछड़ी जातियों के लोगों का उत्थान। स्वतंत्रता आंदोलन के कर्णधार गांधी जी ने यह जान लिया था कि जब तक सभी वर्ण के लोगों को सामाजिक समता प्राप्त न हो, तब तक देश की राजनीतिक स्वतंत्रता कठिन ही नहीं व्यर्थ भी है। इसीलिए स्वतंत्रता संग्राम के रचनात्मक कार्यक्रमों में हरिजनोद्धार को महत्वपूर्ण स्थान दिया और इसके लिए व्यापक कार्यक्रम तैयार किए। गुप्तजी ने अपनी रचनाओं में बार-बार "जन्मना जाति सिद्धांत" का अर्थात् जन्म के आधार पर जाति निश्चित होने का विरोध किया है। वे कर्म और आचरण को

व्यक्ति की सामाजिक मर्यादा का आधार मानते हैं। "अनघ" काव्य में मघ के अछूतोद्धार के प्रयासों की ग्रामवासी आलोचना करते हैं, तब उन्हें मघ द्वारा यह उत्तर दिया जाता है —

इसका भी निर्णय हो जाए, नहीं अछूत मनुज क्या हाय!
करें अशुचिता सबकी दूर, उनसे घृणा करें सो क्रूर।
जिनके बल पर खड़ा समाज, रहती है शुचिता की लाज
उनका त्राण न करना, खेद! है अपना ही मूलोच्छेद।

(अनघ पृ. 45-46)

अछूतों के मंदिर-प्रवेश के प्रश्न को ध्यान में रखते हुए गुप्तजी ने इसे कुछ बदले हुए रूप में "सिद्धराज" में उठाया है। सिद्धराज की माता को यह जानकर अत्यंत खेद होता है कि मंदिर प्रवेश सबके लिए उपलब्ध नहीं है। वह बिना दर्शन किए ही लौट आती हैं और मंत्री के पूछने पर स्पष्ट कह देती हैं —

मंदिर का द्वार जो खुलेगा सबके लिए,
होगी तभी मेरी वहाँ विश्वंभर भावना।

आप देखेंगे कि राष्ट्रीय भावना और समाज सुधार की आकांक्षा गुप्तजी के काव्य के दो प्रमुख स्वर थे। जिसकी अभिव्यक्ति उनके प्रत्येक काव्य रचना में हुई है। राष्ट्रीय भावना एवं राष्ट्रीय चेतना का प्रसार उनके जीवन का उद्देश्य मात्र बन गया था। जीवन के पचास वर्ष लेखन कार्य में निरंतर कार्यरत रहने के पीछे देश की स्वतंत्रता, देश की प्रगति और विकास के देखे हुए स्वप्न थे, जोकि गुप्तजी के सामने ही पूर्ण हुए और इस महान राष्ट्रकवि के इस देश कार्य को पूर्णत्व प्राप्त हुआ है।

बोध प्रश्न 1

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर संक्षेप में लिखिए।

1 भारतीय नवजागरण की चेतना का विकास राष्ट्रीय चेतना के रूप में सामने आया। स्पष्ट कीजिए।

....
....
....
....
....
....

2 निम्नलिखित में से जो सही हैं, उन पर (√) निशान लगाइए।

भारतीय नवजागरण के कारण कौन-सी प्रमुख प्रवृत्तियाँ उभर कर सामने आईं ?

i) राष्ट्रीय आंदोलन
ii) सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना का विकास
iii) आधुनिक हिन्दी काव्य चेतना का विकास
iv) विज्ञान के प्रति आस्था
v) पुरातन परंपराओं का स्वीकार
vi) अंधविश्वास आदि से मुक्ति का प्रयास।

3 रिक्त स्थान में उपयुक्त शब्द भरिए।

1 सामाजिक सुधार आंदोलन के द्वारा ...., ..., ... असामाजिक प्रथाओं का विरोध किया गया।
(बालविवाह, अनमेल विवाह, पर्दा-प्रथा, छुआछूत, सती प्रथा)

बोध प्रश्न 2

1 गुप्तजी ने अपने लेखन में किन-किन बातों पर बल दिया (किन्हीं उपयुक्त पाँच पर (√) निशान लगाइए।

1 अतीत चित्रण
2 वर्तमान दुर्दशा का चित्रण
3 गौरवपूर्ण इतिहास
4 पौराणिक/ऐतिहासिक कथानक
5 उज्ज्वल भविष्य की आकांक्षा
6 हिन्दू धर्म, वेदों, उपनिषदों का आख्यान

2 गुप्तजी ने अपनी किन-किन रचनाओं में इतिहास के उपेक्षित नारी पात्रों को प्रतिष्ठित किया है। (सही रचनाओं पर (√) निशान लगाइए।

i) साकेत

ii) यशोधरा

iii) द्वापर

iv) रंग में भंग

v) विष्णुप्रिया

vi) जयिनी

3 गुप्तजी ने विभिन्न धर्म और संप्रदायों की परस्पर एकता को बढ़ाने के लिए किन महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख किया है (संक्षेप में लिखिए)। (दस पंक्तियों में लिखें)

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

4 जाति प्रथा को नष्ट करने के लिए किन प्रयासों की ओर गुप्तजी ने संकेत किया (सही पर निशान (√) लगाइए)।

i) समानता

ii) अस्पृश्यता का विरोध

iii) मंदिर प्रवेश की अनुमति

iv) मानवीय अधिकार

v) बंधुत्व का भाव

17.4 संरचना शिल्प

17.4.1 काव्य भाषा

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद खड़ी बोली का स्वरूप निश्चित करने और उसे दिशा देने के कार्य में पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके शिष्य मैथिलीशरण गुप्त का बहुत बड़ा योगदान है। गुप्तजी ने अपने काव्य के लिए खड़ी बोली को ही स्वीकार किया था। राष्ट्रीय आंदोलन की चेतना को जनमानस तक पहुँचाने का एक प्रभावी माध्यम खड़ी बोली में रची हुई कविता को माना गया। गुप्तजी इस कार्य को पूर्ण रूप से समर्पित थे। अतः द्विवेदी युग में खड़ी बोली हिन्दी राष्ट्रीय-आंदोलन की चेतना को जगाने का माध्यम बन सकी। गुप्तजी का कहना था कि राष्ट्र-भाषा के बिना देश प्रेम की चर्चा कृत्रिमता पैदा करती है। वास्तव में खड़ी बोली का यह आंदोलन तथा उत्कर्ष देश को मानसिक पराधीनता से छुटकारा दिलाने का उसी प्रकार सर्वोत्तम साधन था जिस प्रकार राजनीतिक पराधीनता की मुक्ति का साधन सत्याग्रह था। हम देखेंगे कि मैथिलीशरण गुप्त की साहित्य साधना के विकास के साथ-साथ खड़ी बोली का भी विकास होता चला गया।

अब हम गुप्तजी की भाषा के क्रमिक विकास के संबंध में विचार करते हुए देखेंगे कि "खड़ी-बोली" उनके काव्यों में निखार पाकर किस प्रकार समृद्ध और साहित्यिक बनी है। गुप्तजी ने स्वीकार किया था कि काव्य की भाषा का आधार लोकजीवन की भाषा होनी ही चाहिए तभी वह लोक मानव के विचारों और प्रभावों को अभिव्यक्त कर सकती है। स्वयं गुप्तजी ने खड़ी बोली के संबंध में विचार व्यक्त किए थे। वे कहते हैं "मेरी-अल्पबुद्धि तो यह कहती है कि अब खड़ी बोली में ही कविता होना सर्वथा इष्ट है। जिस हिन्दी को हम राष्ट्रभाषा बनाने की कोशिश करें उसी का साहित्य कविता

से खाली पड़ा रहे यह कैसे दुःख की बात है। कविता साहित्य का प्राण है। जिस भाषा में कविता नहीं, वह भाषा कभी साहित्यवती होने का गर्व नहीं कर सकती और जिस भाषा को साहित्य का गर्व नहीं, वह राष्ट्र भाषा क्या खाक हो सकती है ? अतएव बोलचाल की भाषा में ही कविता होना इष्ट है।"

(मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ, पृ. 270-71)

मातृभाषा के संबंध में उनके मन में जो वेदना थी वह इन शब्दों में प्रकट हुई है —

अहो मातृभाषे। दशा देखी तेरी,
न हो निराशा कभी दूर मेरी।
बड़ा कष्ट है तू अभी दीन ही है,
सभी भाँति से हो रही हीन ही है।।

राष्ट्रभाषा के अनादर से गुप्तजी व्यथित थे। अतः खड़ी बोली की काव्य प्रतिष्ठा के लिए अत्यन्त परिश्रम और तपश्चर्या की आवश्यकता थी जोकि गुप्तजी की कविता में दिखाई देती है। गुप्तजी के प्रथम काव्य संग्रह "रंग में भंग" की कुछ काव्य पंक्तियों को देखते ही खड़ी बोली का एक स्वाभाविक रूप हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। रचना के प्रथम पद्य की पंक्तियाँ इस प्रकार है—

राम नाम ललाभ जिसका सर्व मंगल धाम है,
प्रथम उस सर्वेश को श्रद्धा समेत प्रणाम है।

भाषा का जो यह स्वाभाविक और भौतिक रूप गुप्तजी के काव्य में मिलता है वह आचार्य द्विवेदी, पं. श्रीधर पाठक जी और पं. अयोध्या सिंह उपाध्याय के काव्य में नहीं दिखाई देता है। इसी रचना का एक और उदाहरण देखें —

हो चुका शृंगार जब पूरा यथोचित रीति से।
ले चली वर के निकट सखियाँ उसे तब प्रीति से।।

गुप्तजी की यह रचना व्याकरण की शुद्धता और शब्दों के उचित चयन का एक उदाहरण है। "रंग में भंग" के बाद जयद्रथ-वध में खड़ी बोली का उससे भी अधिक सजीव और सुलझा हुआ रूप दिखाई देता है। इस काव्य में भाषा-लालित्य के साथ सर्वप्रथम खड़ी बोली का साहित्यिक रूप उभर कर सामने आया है। शब्द चयन, सूक्तियाँ, मनःस्थिति का चित्रण, तत्सम् शब्दावली और काव्यात्मक गुण इस काव्य में विद्यमान हैं। एक उदाहरण देखें —

रहते हुए तुमसा सहायक प्रण हुआ पूरा नहीं।
इससे मुझे है जान पड़ता भाग्य-बल ही सब कहीं।।
श्रीकृष्ण के सुन वचन अर्जुन क्रोध से जलने लगे।
सब शोक अपना भूलकर करतल युगल मलने लगे।।

भाषा को सशक्त बनाने के लिए मुहावरे और लोकोक्तियाँ का प्रयोग भी गुप्तजी ने किया। "भारत भारती" में अत्यंत सरल भाषा का प्रयोग किया जिसमें बोल-चाल की सामान्य शब्दावली स्वतः ही आ गई है। यही कारण है कि उस युग में भारत भारती इतनी अधिक लोकप्रिय हुई। "हम कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी" इस रचना की यह पंक्ति प्रत्येक व्यक्ति गा उठता था। गुप्तजी ने खड़ी बोली को काव्योपयोगी बनाकर सुघड़ रूप प्रदान किया। खड़ी बोली के स्वरूप-निर्धारण में उनका योगदान महत्वपूर्ण माना जाता है। गुप्तजी ने बोलचाल की सरल भाषा का प्रयोग भारत भारती में किया है। कुछ उदाहरण देखिए —

नर-जाति की जननी तथा शुभ शान्ति की स्रोतस्विनी।
हा देव। नारी जाति की कैसी यहां है दुर्गती।

(भारत भारती)

कोई जगत को सत्य कोई स्वप्न मात्र बता रहा।
कोई शकुनि उनमें वहां मध्यस्थ भाव जता रहा।

गुप्तजी ने भारतीय गौरव, वीरता और आदर्श को खड़ी बोली के माध्यम से प्रस्तुत कर जनमानस में राष्ट्रीय भावना जगाने का प्रयत्न किया। उनकी यह दूरदर्शिता ही थी कि उन्होंने परम्परागत रूढ़ियों को त्यागकर बदलती हुई परिस्थिति को देखते हुए खड़ी बोली को अपनाया और जीवन भर खड़ी बोली के उत्कर्ष के लिए कार्यरत रहे।

गुप्तजी की भाषा का निखार "साकेत" और "यशोधरा" में हम देख सकते हैं। इन दो रचनाओं में गुप्तजी के विचारों की गहनता और अभिव्यक्ति की उत्कृष्टता प्रकट हुई है। मानव मन की विभिन्न मनोदशाओं को दर्शाने के लिए उचित शब्दों का प्रयोग किया है। "साकेत" की रचना में गुप्तजी खड़ी बोली के माध्यम से व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक भावों को चित्रित करने में एक सिद्धहस्त कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं। मन्थरा की सीख मानकर कैकेयी का यह रूप कितना भयानक और स्वाभाविक है —

उठी तत्क्षण कैकेयी कांप, अधर दंशन करके कर चांप।
अन्त में सारे अंग समेट, गई वह वहीं भूमि पर लेट॥

कैकेयी के क्रोध और असन्तोष का चित्रण गुप्तजी ने "अधर-दंशन" तथा "अंग समेटना" आदि शब्दों के प्रयोग द्वारा प्रस्तुत किया है।

उर्मिला का लक्ष्मण को यह कहना कि —

"मेरे उपवन के हरिण आज वनचारी।
मैं बांध न लूंगी तुम्हें तजो भय भारी॥"

इन पंक्तियों में उर्मिला की भावनाओं की अत्यंत सरल अभिव्यक्ति है। प्रत्येक प्रकार के भाव को भाषा की परिधि में बांधने की क्षमता गुप्तजी की लेखनी में दिखाई देती है। इसी तरह, "यशोधरा" की रचना द्वारा "यशोधरा" के जीवन को भी भारतीय आदर्शों और मानवीय प्रवृत्तियों के आधार पर प्रस्तुत किया है।

"दीन न हो गोपे, सुनो हीन नहीं नारी कभी।

कहकर नारी की हीनता को अमान्य सिद्ध कर दिया, क्योंकि वह तो पूज्य है।

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आंचल में है दूध और आंखों में पानी"।

इन पंक्तियों द्वारा गुप्तजी ने भारतीय नारी के आसुंओं और उसकी पीड़ा का वास्तविक रूप प्रस्तुत किया है। हम देखेंगे कि खड़ी बोली के विकास का स्वाभाविक रूप यशोधरा में दिखाई देता है। गुप्तजी ने नारी का महत्व व्यक्त करने के लिए "गोपा बिना गौतम भी ग्राह्य नहीं मुझको" इस उक्ति का सार्थक प्रयोग किया है। "क्या भाग रहा हूं भार देख! तू मेरी ओर निहार देख। मैं त्याग चला निस्सार देख।"

इन पंक्तियों में सार्थक शब्दों का यथास्थान और यथा-अवसर प्रयोग किया है। गुप्तजी ने संस्कृत शब्दों का प्रचुर प्रयोग भी बार-बार किया है परन्तु उनकी भाषा संस्कृत-बहुला नहीं है। तद्‌भव और तत्सम शब्दों का प्रयोग उनकी रचनाओं में मिलता है — तद्‌भव शब्द का एक उदाहरण देखिए —

भर गया भिनय पुराधिष्ठामि,
रतिमुखाब्ज तिमिराम्बोधिस मुद्‌धृता

कुछ अप्रचलित संस्कृत शब्दों का प्रयोग भी गुप्तजी ने किया है। जैसे अरुन्तुद, त्वेष, आस्य आदि। गुप्तजी ने साकेत में कुछ देशज शब्दों का प्रयोग किया है जो बोलचाल के शब्द हैं और ब्रजभाषा, बुन्देलखण्डी, अवधी आदि में प्रचलित भी थे — जैसे मचिया, डिठौना, धुंवाधार, निगोड़ी, जल लौं, सहेजा, जूझना इत्यादि। गुप्तजी ने छोटे-छोटे समास वाले पदों के साथ-साथ दीर्घ सामासिक पदों का भी प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण देखें —

1 कवि की मानस-कोष विभूति-विहारिणी,
2 जन-सिन्धु तरंग चेष्टिता।
3 निविराम्बोधि समुद्‌धृता मही।

गुप्तजी ने सूर, तुलसी और भारतेन्दु की परम्परा को अपनाकर अपनी रचनाओं में मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग व्यापक रूप में किया है। इसका कारण था अपनी भाषा को लोक-मानस तक पहुंचाना। लोकोक्ति और मुहावरों का प्रयोग भाषा को सशक्त तथा उसमें सौंदर्य लाने हेतु भी किया है। कुछ उदाहरण देखें —

आश्चर्य है घर में उन्होंने सिन्धु को है भर दिया

(भारत-भारती)

सामने से हट अधिक न बोल, द्विजिह्वे
रस में विष मत घोल।

(साकेत)

मेरी मलिन गूंदड़ी में भी है राहुल-सा लाल।

(यशोधरा)

इसके अतिरिक्त धूल भरे हीरे, मन मारना, प्राणों पर खेलना, लहू बहाना, कागजी घुड़दौड़ आदि अनेक मुहावरों का आकर्षक प्रयोग किया है। गुप्तजी ने भाषा का सौन्दर्य बढ़ाने के लिए साथ-साथ भाषा में प्रवाह निर्माण करने हेतु लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। कुछ मुहावरों और लोकोक्तियों के वास्तविक रूप में थोड़ा परिवर्तन भी किया है लेकिन

उससे उनकी भाषा के सौन्दर्य और शुद्धता में कोई कमी नहीं आई है। गुप्तजी ने कुछ लोकोक्तियों का प्रयोग काव्य को अधिक बोधगम्य और सामान्य जन के समझने के लिए किया है। जैसे —

सिंह और मृग एक घाट पर पानी पीते है।
एक-एक दो हुए उन्हें एकादश जाने।
पापी जन का पाप उसी का भक्षक होगा।

इस तरह, हम देखते है कि गुप्तजी के काव्य का मुख्य उद्देश्य जनमानस तक पहुंचकर उनमें चेतना जगाना था।

काव्य रूप

गुप्तजी की प्रवृत्ति प्रबंध काव्य की ओर रही है। उनकी दो रचनाएँ "साकेत" और "यशोधरा" प्रबंधात्मक है। परन्तु उनके प्रबंध काव्य परम्परागत प्रबंध काव्यों से अलग हैं। उनके काव्य के नायक, संघर्षशील और वीर होते हुए भी जन-सामान्य के एक प्रतिनिधि के रूप में उभरते हैं। वे अधिक मानवीय हैं। उनके प्रबंध काव्यों में गीतात्मक प्रवृत्ति अधिक है। गुप्तजी ने संवाद शैली के द्वारा प्रबंध काव्य को गति प्रदान की है। संवादों की सहायता से विषयवर्णन सजीव और आकर्षक हो गया है। "साकेत" में उर्मिला-लक्ष्मण संवाद और कैकेयी-मंथरा संवाद "यशोधरा" में यशोधरा-संवाद, महत्वपूर्ण संवादों के उदाहरण हैं। संवाद का एक उदाहरण इस प्रकार है —

"शुभे तुम्हारे कौन उभय ये श्रेष्ठ है ?
गोरे देवर, श्याम उन्हीं के ज्येष्ठ है।

काव्य शैली के बाद हम अलंकार और छंद के बारे में विचार करें।

अलंकार योजना : गुप्तजी का काव्य अलंकारों की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध है। उन्होंने काव्य सौंदर्य की वृद्धि के लिए शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का ही प्रयोग किया है। उनकी रचनाओं का कला पक्ष अलंकारों की समुचित योजना से समृद्ध है। कुछ उदाहरण देखिए —

उपमा अलंकार का एक उदाहरण —

पड़ी थी विजली विकराल,
लपेटे थे घन जैसे बाल।

काले-काले बादलों को काले केशों की उपमा देकर रचना का सौन्दर्य द्विगुणित हो गया है।

रत्नाभरण भरे अंगों में ऐसे सुन्दर लगते थे।
ज्यों प्रफुल्ल वल्ली पर सौ सौ जुगनू जगमग जगते थे।

(पंचवटी)

इस रचना का भाव है, शूर्पणखा का शरीर पूर्ण रूप से खिली हुई लता के समान है और उसपर सोने के आभूषण जुगनुओं के समान जगमगा रहे हैं। जुगनुओं की चमक से शूर्पणखा के शारीरिक सौंदर्य की ओर भी कवि ने संकेत किया है। गुप्तजी द्वारा रूपक, श्लेष, व्यतिरेक, विरोधाभास, अनुप्रास इत्यादि अलंकारों का प्रयोग काव्य सौंदर्य को बढ़ाता है और भावाभिव्यक्ति में सहायक होकर कवि-कौशल का परिचय देता है।

गुप्तजी की भाषा की विशेषताओं को देखने के बाद हम उनकी भाषा शैली को भी देखें।

17.4.2 काव्य शिल्प

छन्द योजना

गुप्तजी का समस्त साहित्य छन्दबद्ध है। उन्होंने विशेष रूप से लयात्मक, शास्त्रीय छन्दों का प्रयोग किया है। "यशोधरा" में उन्होंने "चम्पू" पद्धति भी अपनाई है और सिद्धराज, विष्णुप्रिया में मुक्त छन्द की रचनाएं भी की है। स्वयं गुप्तजी ने छन्द के बंध को काव्य के लिए संयम ही समझा और उस मर्यादा का पालन गुप्तजी ने अपने काव्य के अंतर्गत किया है। छन्द कविता की गति को व्यवस्थित ही करते हैं। "यशोधरा" का एक उदाहरण देखिए, जिसमें रोला छन्द का प्रयोग किया गया है।

1 रोना गाना बस यही जीवन के दो अंग।
एक संग मैं ले रही दोनों का रस रंग॥

2 सिद्धि हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात।
पर चोरी चोरी गये यही बड़ा व्याघात॥

(यशोधरा)

एक गीतिका छन्द का उदाहरण भी देखिए —

1 लोक शिक्षा के लिए अवतार जिसने था लिया।
निर्विकार निरीह होकर नर सदृश कौतुक किया॥

2 राम नाम ललाम जिसका सर्व मंगल धाम है।
प्रथम उस सर्वेश को श्रद्धा समेत प्रणाम है॥

(रंग में भंग)

गुप्तजी ने विविध छन्दों का सफल प्रयोग किया है। इस सम्बन्ध में डॉ. नगेन्द्र ने कहा है —

> "इतने प्रकार के छन्दों का प्रयोग करना तो कठिन नहीं है परन्तु सर्वत्र प्रसंग का ध्यान रखना और प्रत्येक छन्द को पूर्ण सफलता से प्रयुक्त करना कौशल का परिचायक है।"

खड़ी बोली में काव्य सृजन करते समय गुप्तजी ने जो छन्दों का आधार अपनाया, वह उनकी समस्त काव्य रचना में निरंतर चलता ही रहा। इस प्रकार उनकी भाषा-शैली को "छन्दोबद्ध शैली" भी कहा जा सकता है। छन्दोबद्धता के कारण उनकी भाषा में तोड़-मरोड़ की त्रुटियां और आवृत्ति का दोष भी मिलता है परन्तु उन्होंने भाषा की शुद्धता और प्रसाद-गुण का पूरा-पूरा ध्यान रखा है।

गुप्तजी की काव्य शैली का विस्तृत अध्ययन करने के बाद यह भी देखना आवश्यक है कि गुप्तजी के काव्य पर संस्कृत के अलावा और कौन-कौन सी भाषाओं का प्रभाव पड़ा है। आचार्य द्विवेदी के शिष्य के रूप में गुप्तजी ने काव्य रचना का आरम्भ किया था तब खड़ी बोली पर कर्कशता का दोष लगाया जा रहा था। "रंग में भंग" और "जयद्रथ वध" के निर्माण के बाद गुप्तजी ने खड़ी बोली के शब्दों की कोमलता और सरसता की ओर ध्यान दिया। इसी समय बंगाल में रवीन्द्र नाथ ठाकुर के काव्य की चर्चा थी और उन्हें अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हो चुकी थी। स्वभावतः गुप्तजी का ध्यान बंगला काव्यों की ओर आकर्षित हुआ। बंगला के चार काव्य ग्रंथों का अनुवाद उन्होंने खड़ी बोली में प्रस्तुत किया। इन अनुवादों की कोमल, कर्णप्रिय शब्दावली का प्रभाव गुप्तजी की विकटभट, सिद्धराज और विष्णुप्रिया आदि रचनाओं की भाषा पर स्पष्ट दिखाई देता है। बंगला के अलावा गुप्तजी की भाषा पर संस्कृत का भी गहरा प्रभाव रहा है। संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग उनके काव्य में विशेष रूप से दिखाई देता है। कालिदास की रचना वसन्त वर्णन का गुप्तजी ने खड़ी बोली में अनुवाद किया।

कुछ अंग्रेज़ी कविताओं का भी उन्होंने हिन्दी में अनुवाद किया है। उनके काव्य पर अंग्रेज़ी का सीधा प्रभाव नहीं दिखाई देता, लेकिन कुछ अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग उन्होंने कविता में किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुप्तजी ने अन्य भाषाओं के केवल उन्हीं प्रभावों को ग्रहण किया जिससे खड़ी बोली हिन्दी का उत्कर्ष हो सके। और ब्रजभाषा को हिन्दी काव्य क्षेत्र से हटाकर उसके स्थान पर खड़ी बोली को प्रतिष्ठित किया। खड़ी बोली के माध्यम से उन्होंने भारतीय अतीत को प्रस्तुत करके जन-जन तक राष्ट्रीयता का सन्देश पहुंचाया।

बोध प्रश्न 3

खड़ी बोली को हिन्दी साहित्य की भाषा के रूप में स्थापित करने के लिए गुप्तजी ने अपने लेखन में देशज शब्दों, प्रादेशिक बोलचाल के शब्दों, मुहावरे और कहावतों का प्रयोग किया है। इनमें से प्रत्येक के दो-दो उदाहरण दीजिए।

1 देशज शब्द

1) .... 2) ....

3) .... 4) ....

2 बोलचाल के शब्द

1) .... 2) ....

3 मुहावरे और कहावतें

1) .... 2) ....

अभ्यास

1 खड़ी बोली आंदोलन द्वारा गुप्तजी ने देश को मानसिक पराधीनता से मुक्ति दिलाने का प्रयास किया। इस बारे में अपने विचार दस पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

17.5 काव्य वाचन (पाठ)

यशोधरा

सिद्धि हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात,
पर चोरी-चोरी गये, यही बड़ा व्याघात,[1]
सखि, वे मुझसे कह कर जाते,
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते ?

मुझको बहुत उन्होंने माना,
फिर भी क्या पूरा पहचाना?
मैंने मुख्य उसी को जाना,
जो वे मन में लाते।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।
स्वपन सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को, प्राणों के पण में,
हमी भेज देती हैं रण में—
क्षात्र-धर्म के नाते।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।
हुआ न यह भी भाग्य अभागा,
किस पर विफल गर्व अब जागा?
जिसने अपनाया था, त्यागा,
रहे स्मरण ही आते।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।
नयन उन्हें हैं निष्ठुर[2] कहते,
पर इनसे जो आँसू बहते,
सदय हृदय वे कैसे सहते?
गये तरस ही खाते।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।
जायें सिद्धि पावें वे सुख से,
दुखी न हों इस जन के दुख से,
उपालम्भ[3] दूँ मैं किस मुख से ?
आज अधिक वे भाते।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।
गये, लौट भी वे आवेंगे,
कुछ अपूर्व अनुपम लावेंगे,
रोते प्राण उन्हें पावेंगे,
पर क्या गाते गाते ?
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।

साकेत

निज सौध सदन में उटज पिता ने छाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।
सम्राट् स्वयं प्राणेश, सचिव देवर हैं,
देते आकर आशीष हमें मुनिवर हैं।

धन तुच्छ यहाँ,—यद्यपि असंख्य आकर हैं,
पानी पीते मृग-सिंह एक तट पर हैं।
सीता रानी को यहाँ लाभ ही लाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

क्या सुन्दर-लता-वितान[4] तना है मेरा,
पुंजाकृति गुंजित कुंज घना है मेरा।
जल निर्मल, पवन पराग-सना है मेरा,
गढ़ चित्रकूट दृढ़-दिव्य बना है मेरा।
प्रहरी[5] निर्झर[6], परिखा प्रवाह की काया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

औरों के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ,
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ।
श्रमवारिबिन्दुफल[7] स्वास्थ्यमुक्ति फलती हूँ,
अपने अंचल से व्यजन आप झलती हूँ।
तनु-लता-सफलता-स्वादु आज ही आया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

जिनसे ये प्रणयी प्राण त्राण पाते हैं,
जो भरकर उनको देख जुड़ा जाते हैं।
जब देव कि देवर विचर-विचर आते हैं,
तब नित्य नये दो-एक द्रव्य लाते हैं।
उनका वर्णन ही बना विनोद सवाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

किसलय[8]-कर स्वागत-हेतु हिला करते हैं,
मृदु मनोभाव-सम सुमन खिला करते हैं।
डाली में नव फल नित्य मिला करते हैं,
तृण तृण पर मुक्ता-भार झिला करते हैं।
निधि खोले दिखला रही प्रकृति निज माया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

कहता है कौन कि भाग्य ठगा है मेरा?
वह सुना हुआ भय दूर भगा है मेरा।
कुछ करने में अब हाथ लगा है मेरा,
वन में ही तो गार्हस्थ्य[9] जगा है मेरा।
वह वधू जानकी बनी आज यह जाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

फल-फूलों से हैं लदी डालियाँ मेरी
वे हरी पत्तलें, भरी थालियाँ मेरी।
मुनि बालाएँ हैं यहाँ आलियाँ मेरी,
तटिनी की लहरें और तालियाँ मेरी।
क्रीड़ा-सामग्री बनी स्वयं निज छाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

मैं पली पक्षिणी[10] विपिन-कुंज-पिंजर[11] की,
आती है कोटर-सदृश[12] मुझे सुध घर की।
मृदु-तीक्ष्ण वेदना एक एक अन्तर की,
बन जाती है कल-गीति समय के स्वर की।
कब उसे छेड़ यह कण्ठ यहाँ न अघाया ?
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

गुरुजन-परिजन सब धन्य ध्येय हैं मेरे,
औषधियों के गुण-विगुण[13] ज्ञेय[14] हैं मेरे।
वन-देव-देवियाँ आतिथेय हैं मेरे,
प्रिय-संग यहाँ सब प्रेय श्रेय हैं मेरे।
मेरे पीछे ध्रुव[15]-धर्म स्वयं ही धाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

नाचो मयूर, नाचो कपोत के जोड़े,
नाचो कुरंग, तुम लो उड़ान के तोड़े।
गाओ दिवि, चातक चटक, भृंग[16] भय छोड़े,
वैदेही के वनवास-वर्ष हैं थोड़े।
तितली, तूने यह कहाँ चित्रपट[17] पाया ?
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

कुछ मुझसे सीखो और मुझे सिखलाओ।
गाओ पिक, मैं अनुकरण करूँ, तुम गाओ,
स्वर खींच तनिक यों उसे घुमाते जाओ।
शुक पढ़ो,—मधुर फल प्रथम तुम्हीं ने खाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन-भाया।

अयि राजहंसि, तू तरस क्यों रोती,
तू शुक्ति-वंचिता[20] कहीं मैथिली[21] होती।

कठिन शब्दों के अर्थ

1. दुःख, कष्ट
2. निर्दय
3. उलाहना
4. लताओं का खेमा या चँदोवा
5. पहरेदार
6. फरना
7. परिश्रम से आयी पसीने की बूँदे
8. नया निकला हुआ कोमल पत्ता
9. गृहस्थी
10. मादा पक्षी
11. वन बगीचे रूपी पिंजरा
12. पेड़ का खोखला भाग जिसमें पक्षी निवास करते हैं
13. गुण दोष
14. जानने योग्य बात
15. निश्चित दृढ़
16. एक तरह का क्रीड़ा
17. वह कपड़ा जिस पर चित्र बना हो
18. चंद्रमा
19. चाँदनी
20. सीपी से वंचित
21. सीता।

अभ्यास

काव्य पाठ के लिए दी गई प्रथम कविता साकेत के पठित अंश का मूल भाव संक्षेप में लिखें।

17.6 संदर्भ सहित व्याख्या

उद्धरण 1 : औरों के हाथों नहीं यहां पलती हूँ
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ
श्रमवारि बिन्दु फल स्वास्थ्य मुक्ति फलती हूँ
अपने अंचल से व्यजन आप झलती हूँ।
तनु-लता-सफलता-स्वादु आज ही लाया।
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ मैथिलीशरण गुप्त की रचना "साकेत" से ली गई है। "साकेत" में गुप्तजी ने रामकथा को आधार बनाया है। किन्तु उनका उद्देश्य एक कथा को दोहराना नहीं है। बल्कि इस कथा के माध्यम से वह आधुनिक युग की जरूरतों, परिस्थितियों और समस्याओं की अभिव्यक्ति और समाधान प्रस्तुत करते हैं।

यही कारण है कि इन पंक्तियों में राजरानी सीता को स्वावलंबी रूप से प्रस्तुत किया गया है। महलों के सुख साधनों को छोड़कर वन में आई सीता अपनी स्थिति से प्रसन्न और संतुष्ट है। राजभवन के भोग विलास की तुलना में वन का यह स्वच्छन्द और प्रकृत जीवन उसे भाता है इसीलिए वह कहती है —

व्याख्या : वन में मैं औरों के हाथों नहीं पलती यानी दास-दासियों की सेवा पर आधारित नहीं हूँ बल्कि अपना काम स्वयं करती हूँ। अपने पैरों पर चलने का अर्थ है कि अब मैं स्वावलंबी हूँ। यहां पंखा झलने वाली दासियां नहीं हैं इसीलिए मैं अपने अंचल से स्वयं अपने ऊपर पंखा झलती हूँ यह स्वावलंबन मेरे लिए बड़ा ही उपयोगी है क्योंकि श्रम करके जो पसीना बहाती हूँ उसका समुचित फल भी मुझे मिलता है। यानी परिश्रम करने के कारण मुझे स्वास्थ्य लाभ होता है। शारीरिक श्रम से मिलने वाले आनंद को मैंने आज ही जाना है। इसीलिए मुझे अपनी कुटिया में किसी तरह का अभाव नहीं महसूस होता बल्कि राजभवन जैसा ही आनंद मिलता है। यह कुटिया मेरे मन को राजभवन से भी अधिक भाती है क्योंकि इसने मुझे स्वावलंबी बनाया और मैं मन चाहा कार्य स्वयं कर सकती हूँ।

विशेष :

1) इन पंक्तियों में लेखक ने स्वावलंबन का महत्व बताया है जो गांधी युग की विशेषता है।
2) सीता के पारंपरिक देवी रूप की बजाय उसे मनुष्य रूप में प्रस्तुत किया गया है।
3) खड़ी बोली कविता का सहज और सुंदर रूप इन पंक्तियों में मौजूद है। संस्कृत की तत्सम शब्दावली का प्रयोग है।

उद्धरण 2 : सिद्धि हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात
पर चोरी-चोरी गये, यही बड़ा व्याघात।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते,
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते?

संदर्भ : यह पंक्तियाँ गुप्तजी द्वारा रचित "यशोधरा" से ली गयी हैं। सिद्धार्थ गौतम सिद्धि प्राप्त करने के लिए जब अपनी पत्नी यशोधरा और पुत्र राहुल को निद्रावस्था में छोड़कर वन में चले गये। उसके पश्चात यशोधरा इस प्रसंग से अत्यंत दुःखी होकर सखी से अपने मन की बात कह रही है।

व्याख्या : सिद्धार्थ गौतम जीवन के सत्य की खोज में संसार सुखों का त्याग करके वन में चले गये। जन कल्याण हेतु उनका सत्य की खोज में चले जाना निश्चय ही गौरव और अभिमान की बात है। परन्तु यशोधरा कह रही है कि वे उससे छुपकर गये हैं इसीलिए उसे बहुत दुःख हुआ। वह सखी से कहती है कि यदि गौतम उससे अनुमति लेकर जाते तो वह उन्हें रोक नहीं लेती, ना ही उनके मार्ग की बाधा बनती, यशोधरा की वेदना यही है कि उस पर विश्वास नहीं किया गया और उसे भी पथ की बाधा ही माना गया। यह बात यशोधरा के मन पर बहुत बड़ा आघात कर गयी है।

विशेष : इन पंक्तियों में कवि ने उस मध्ययुगीन दृष्टि पर प्रश्न चिन्ह लगाया है जो स्त्री को मुक्ति अथवा सिद्धि मार्ग में बाधा मानती है। इस प्रकार स्त्री को पुरुष से हीन मानने की मनोवृत्ति का खंडन किया है और नारी जागरण तथा नारी आत्म सम्मान की आधुनिक दृष्टि प्रस्तुत की गई है। उपेक्षित नारी के सम्मान की प्रतिष्ठा के उद्देश्य से ही गुप्त जी ने इस काव्य रचना के केन्द्र में यशोधरा को रखा है।

प्रस्तुत पंक्तियाँ खड़ी बोली कविता का समर्थ उदाहरण हैं।

उद्धरण 3 : जायँ, सिद्धि पावें वे सुख से;
दुखी न हों इस जन के दुख से;
उपालम्भ दूँ मैं किस मुख से ?
आज अधिक वे भाते।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।
गये, लौट भी वे आवेंगे,
कुछ अपूर्व अनुपम लावेंगे,
रोते प्राण उन्हें पावेंगे,
पर क्या गाते गाते?
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।

संदर्भ : पूर्व (3) की भाँति :

....
....
....
....
....
....
....
....

प्रसंग : ....
....
....
....
....
....
....
....
....

व्याख्या : ....
....
....
....
....
....
....
....
....

विशेष :

कथा से संबंधित ....
....
....
....
....

भाषा और अभिव्यक्ति से संबंधित ....
....
....
....
....
....

17.7 मूल्यांकन

भारतीय नवजागरण के कारण हिन्दी (साहित्य) काव्य में जिन विभिन्न प्रवृत्तियों का विकास हुआ था उन सभी प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति हम गुप्तजी के काव्य में देख चुके हैं। इन्हीं प्रवृत्तियों के आधार पर हम गुप्तजी के काव्य का मूल्यांकन करेंगे।

भारतीय नवजागरण के परिणामस्वरूप जिन सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और साहित्यिक मूल्यों का विकास हुआ, उन सभी की अभिव्यक्ति गुप्तजी के काव्य में हुई है। सर्वप्रथम भारत के स्वतंत्रता आंदोलन को आगे बढ़ाने और राष्ट्रीय चेतना जागृत करने के उद्देश्य से गुप्तजी ने भारत-भारती काव्य की रचना की। इस काव्य रचना के माध्यम से भारतीय जनता के समक्ष अपने भव्य और उज्ज्वल अतीत का चित्र प्रस्तुत करके देशवासियों के मन में देश की स्वाधीनता की भावना को जगाने का महत्वपूर्ण प्रयास किया। उत्तर भारत में गुप्तजी का भारत भारती काव्य इतना अधिक लोकप्रिय हुआ कि पाठशालाओं में छात्र और सत्याग्रही आंदोलनों में इनके पद्य गाते थे। गुप्तजी की अन्य काव्य रचनाओं में जैसे द्वापर, साकेत, जयद्रथ वध, सिद्धराज भी ऐतिहासिक और पौराणिक कथानकों के आधार पर भारतीय अतीत की भव्यता का चित्रण करते हैं। भारतीय जन-मानस में देश-प्रेम की भावना को जगाने हेतु गुप्तजी ने ऐतिहासिक और पौराणिक कथानकों का आधार लिया।

गुप्तजी का हिन्दू धर्म और वैष्णव धर्म परम्परा में विश्वास था। परन्तु उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में विभिन्न धर्म और सम्प्रदायों का महत्व प्रतिपादन करने के उद्देश्य से "काबा" और "कर्बला" नाम से दो खण्ड काव्यों की रचना की और सिक्ख धर्म के गुरुओं के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के लिए "गुरुकुल" काव्य की रचना की। सर्वधर्मसमभाव के तत्व को गुप्तजी ने पूर्ण रूप से आत्मसात कर लिया था। उनकी दृष्टि में राष्ट्रीयता और विश्व प्रेम में धर्म कोई बाधा नहीं है। समाज के सभी वर्गों के लोगों की समानता और स्वतंत्रता का प्रतिपादन गुप्तजी ने अपने "स्वदेश संगीत" और साकेत तथा सिद्धराज काव्य रचनाओं में किया है। गुप्तजी ने जन्म के आधार पर जाति के निश्चित होने का विरोध किया है और कर्म तथा शील को सामाजिक मर्यादा का आधार माना है। समाज के पिछड़े वर्ग के लोगों के उत्थान के लिए कार्य करने की आवश्यकता का प्रतिपादन किया है।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सुधारवादी आंदोलन के फलस्वरूप समाज में नारी की अपमानजनक स्थिति और इसके मर्यादित अधिकारों के प्रति लोगों ने सोचना शुरू किया। पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह, बेमेल विवाह, सतीप्रथा आदि का

विरोध होने लगा और स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह को प्रोत्साहन दिया जाने लगा। स्त्री-पुरुष समानता की भावना दृढ़ होने लगी। स्वतंत्रता आंदोलन में नारी की सक्रियता पर जोर दिया जाने लगा। गुप्तजी ने अपनी महत्वपूर्ण रचनाएँ "यशोधरा" और "साकेत" में नारी के महत्व और उसके आदर्शों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। "विष्णुप्रिया" में मध्यवर्गीय परिवार की सहनशीला, पतिपरायण और गृहस्थ नारी का चित्रण किया है।

गुप्तजी ने राष्ट्रीय चेतना, धार्मिक एकता, देश प्रेम और विश्व-बंधुत्व की भावना को बढ़ाने का प्रयास किया है। साथ ही साथ शोषण के विरुद्ध भी आवाज़ उठाई है। किसानों की दुर्दशा के प्रति उन्होंने केवल सहानुभूति ही व्यक्त नहीं की है बल्कि राज्य व्यवस्था और सरकारी नीति के विरुद्ध विरोध की आवाज भी उठाई है। मार्क्सवादी विचारधारा को आधार मानकर प्रगतिशील चेतना का गुप्तजी ने "जयिनी" नामक काव्य रचना द्वारा उद्घोष किया है। श्रमजीवियों की समस्याओं की ओर भी उन्होंने संकेत किया है। उस समय की प्रत्येक सामाजिक समस्या के प्रति एक सजग रचनाकार की भांति गुप्तजी ने अपनी आवाज़ उठाई है।

गुप्तजी ने "यशोधरा" नामक रचना में बौद्ध मत के सभी सांस्कृतिक सन्दर्भों को स्पष्ट किया है, जिसके आधार पर बौद्ध मत की वैदिक मत से भिन्नता स्पष्ट हो जाती है। वेदों के आधार पर यज्ञ आदि कर्मकांडों में पशु बलि के रूप में उस समय जो हिंसा हो रही थी उसके विरोध में बौद्ध मत ने अहिंसा का मार्ग अपनाया। गुप्तजी ने बौद्ध मत के इस महत्वपूर्ण मार्ग को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति दी है। और वैदिक हिंसा पर कटाक्ष भी किया है। उन्होंने मानवता की महत्ता और समानता में अटूट विश्वास प्रकट किया है।

गुप्तजी के आविर्भाव के समय राष्ट्रीय चेतना का विकास, प्रारंभ हुआ था। सामाजिक दृष्टि से सुधारवादी आंदोलन की लहर बल पकड़ रही थी। साहित्यिक दृष्टि से स्वच्छन्दतावादी भावनाओं का विकास और नैतिक मूल्यों की स्थापना होने लगी थी। मैथिलीशरण गुप्त का काव्य उसी परम्परा की कड़ी है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए काव्य भाषा के विकास में गुप्तजी के योगदान का मूल्यांकन अपेक्षित है।

नवजागरण युग की राष्ट्रीय चेतना को उभारने में खड़ी बोली का स्वर सबसे अधिक मुखर रहा है। गुप्तजी ने खड़ी बोली को काव्य भाषा के रूप में अपनाकर भारतीय संस्कृति का गुणगान, राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति और राष्ट्रीय गौरव तथा स्वाभिमान की भावना को दृढ़ बनाने में बहुत बड़ा योगदान दिया। जो साहित्य, "ब्रजभाषा" और "अवधी" के कारण केवल आदर्शवादी बनकर रह गया था, उस साहित्य को गुप्तजी ने जन-सामान्य की भाषा के माध्यम से यथार्थ के धरातल पर प्रतिष्ठित किया। खड़ी बोली के स्वरूप निर्धारण में गुप्तजी का योगदान महत्वपूर्ण है। बोलचाल की भाषा का स्वाभाविक रूप और चित्रमय भाषा का प्रयोग करके गुप्तजी ने काव्यात्मक चित्र प्रस्तुत किए हैं। संस्कृत, ब्रजभाषा, अवधी के शब्दों का प्रयोग उन्होंने भाषा को समृद्ध बनाने के उद्देश्य से किया है। प्रचलित मुहावरे और कहावतों का प्रयोग करके भाषा को समृद्ध और सुंदर बनाया। खड़ी बोली को नवीन शब्द, उनके नवीन प्रयोग और नवीन अर्थ दिया जिनका विकास हम छायावादी कवियों की कविता में स्पष्ट रूप से देखेंगे। गुप्तजी ने काव्य शैली की सभी पद्धतियों का प्रयोग किया है। प्रबंधात्मक काव्य रचना पद्धति को अपनाकर हिन्दी काव्य को अनेक प्रकार की विशेषताओं और नवीनताओं से अलंकृत किया। वस्तु-विन्यास, भाव-व्यंजना, चरित्र-चित्रण, अभिव्यक्ति, अप्रस्तुत विधान छन्द रचना और भाषा के गठन संबंधी अनेक प्रकार के सफल प्रयोग गुप्तजी के काव्य में मिलते हैं। प्रबंध काव्य में गीति पद्धति का सफलतापूर्वक निर्वाह किया। गुप्तजी ने छन्दबद्ध रचना पर अधिक ध्यान दिया है। उनकी समस्त रचनाएं छन्दोबद्ध ही हैं। लयात्मक शास्त्रीय छन्दों का उपयोग उन्होंने किया है। यशोधरा में "चम्पू" छन्द की पद्धति अपनाई है और सिद्धराज, "विष्णुप्रिया" में मुक्त छन्द की रचनाएं भी की हैं। भाषा को विशिष्ट रूप प्रदान करने के साथ-साथ काव्य शैली के अनेक रूपों का प्रयोग अपनी काव्य रचनाओं में करने का प्रयास गुप्तजी के महत्वपूर्ण योगदान माने जा सकते हैं। गुप्तजी ने भाषा और शैली के क्षेत्र में किए इन प्रयोगों के कारण छायावादी काव्य को अपना मार्ग बनाने में सुविधा हुई।

17.8 शब्दावली

आत्मसात : भली भांति जाना और समझा हुआ

सांस्कृतिक पुनरुत्थान : प्राचीन संस्कृति को फिर से जानने समझने, अपनाने की चेष्टा

पुनरूज्जीवन : फिर से जीवित करना

साम्प्रदायिक समन्वय : विभिन्न धर्मों और संप्रदायों का मेल

मानिनी : स्वाभिमानी नायिका

कर्ण प्रिय शब्दावली : सुनने में अच्छी लगने वाली शब्दावली

सर्व धर्म समभाव: सभी धर्मों को समान समझने की स्थिति।

17.9 उपयोगी पुस्तकें

रामविलास शर्मा, *महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण*, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

मैथिलीशरण गुप्त — व्यक्ति और अभिव्यक्ति, संपादक : डॉ. सी. एल. प्रभात।

17.10 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1, 20वीं शताब्दी में नवजागरण की चेतना के कारण राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ। सन् 1885 में कांग्रेस महासभा की स्थापना, बंगाल का विभाजन और स्वतंत्रता आन्दोलन के कारण भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय भावना का स्वर ऊंचा हुआ। जिसकी प्रथम अभिव्यक्ति भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और महावीर प्रसाद द्विवेदी के साहित्य में हुई। जिसने पराधीनता के बोध से स्वाधीनता के लिए प्रयत्नशील होने की चेतना जगाई।

2 i) राष्ट्रीय आन्दोलन
ii) सामाजिक सांस्कृति चेतना का विकास
iii) आधुनिक हिन्दी काव्य चेतना का विकास
iv) विज्ञान के प्रति आस्था
v) अंधःविश्वास आदि से मुक्ति का प्रयास।

3 1 बाल विवाह, अनमेल विवाह, सती प्रथा।

बोध प्रश्न 2

1 1) अतीत चित्रण
2) वर्तमान दुर्दशा का चित्रण
3) गौरवपूर्ण इतिहास
4) पौराणिक/ऐतिहासिक कथानक
5) उज्ज्वल भविष्य की आकांक्षा।

2 i) साकेत
ii) यशोधरा
i) विष्णुप्रिया

3 पृष्ठ 26 का अंतिम पैराग्राफ देखें।

4 i) समानता का भाव
ii) अस्पृश्यता का विरोध
iii) मंदिर प्रवेश की अनुमति
iv) बंधुत्व भाव

अभ्यास

1 पृष्ठ 28 का प्रथम पैराग्राफ देखें।

बोध प्रश्न 3

1 पृष्ठ 32 देखें।

2 पृष्ठ 32 देखें।

3 पृष्ठ 32, 33 देखें।

इकाई 18 रामनरेश त्रिपाठी

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य
18.1 प्रस्तावना
18.2 युग-परिवेश
18.3 जीवन-वृत्त एवं व्यक्तित्व
18.4 रामनरेश त्रिपाठी का रचना-संसार
18.5 काव्य सौन्दर्य : प्रमुख स्वर
18.5.1 राष्ट्रीय-भावना का प्रसार
18.5.2 सामाजिक-चेतना एवं सुधार दृष्टि
18.5.3 प्रेमानुभूति की उदात्तता
18.5.4 प्रकृति-प्रेम
18.5.5 सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक चेतना
18.5.6 लोक-साहित्य का मर्म
18.6 रचना-विधान : विविध आयाम
18.6.1 काव्य-भाषा
18.6.2 लाक्षणिक एवं व्यंजनात्मक शैली
18.6.3 लोकोक्ति एवं मुहावरे
18.6.4 अप्रस्तुत-विधान
18.6.5 छन्द-विधान
18.7 रामनरेश त्रिपाठी का योगदान
18.8 काव्य-वाचन तथा संदर्भ सहित व्याख्या
18.9 सारांश
18.10 शब्दावली
18.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें
18.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

18.0 उद्देश्य

करूणा-सिक्त व्यक्तित्व, गांधीवादी विचार एवं मानवतावादी दृष्टि से सम्पन्न द्विवेदी-युगीन इस राष्ट्रीय-चेतना के ऐतिहासिक एवं शाश्वत मूल्यों वाले कवि रामनरेश त्रिपाठी पर लिखी गई इस इकाई के अध्ययन से आप :

- रामनरेश त्रिपाठी के सृजन-युग की परिस्थितियों एवं परिवेश के विषय में जान सकेंगे,
- त्रिपाठी जी के जीवन, व्यक्तित्व एवं रचना-संसार को समझ सकेंगे,
- कवि के काव्य-संसार में गूंजने वाले राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक, लौकिक, ऐतिहासिक एवं प्रेम तथा प्रकृति संबंधी स्वरों को पहचान सकेंगे,
- त्रिपाठी जी के रचना-विधान में मिलने वाले भाषा, शैली, लोकोक्ति-मुहावरे, अप्रस्तुत-विधान तथा छन्द-विधान के वैशिष्ट्य को समझ सकेंगे, तथा
- युगीन-काव्य-धारा एवं हिंदी-साहित्य में रामनरेश जी की भूमिका स्पष्ट करते हुए उनकी कुछ कविताओं का वाचन और संदर्भ सहित व्याख्या भी कर सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना

पंडित रामनरेश त्रिपाठी, द्विवेदी युगीन स्वच्छन्द-प्रेमधारा के उन प्रमुख कवियों में से एक हैं जिन्होंने आधुनिक हिन्दी-साहित्य की मज़बूत-बुनियाद भरने का अभूतपूर्व कार्य किया है। सन् 1912 से 1946 तक के अभूतपूर्व साहित्य युग में नए विषय, नई प्रतिपादन शैली, कोमलता एवं चारूतापूर्ण भाषा, भावों की गहनता एवं उनके विश्लेषण की मार्मिक अभिव्यक्ति, आदर्शों की छाया में जीवन के मर्म को छूने वाले भाषिक-चित्र तथा व्यंजना शक्ति के बल पर उदात्त विचारों का प्रतिपादन सभी को इस विकासमान-साहित्य में पग-पग पर देखा जा सकता है। श्रीधर पाठक, सियारामशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय, माखनलाल चतुर्वेदी, गोपालसिंह तथा मैथिलीशरण गुप्त आदि बहुत से कवियों ने साहित्य एवं समाज के लिए जो परिवेश तैयार किया उसमें प्रभावपूर्ण एवं भावपूर्ण कविता का सृजन हुआ। इस कविता में साधारण प्रेम राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक जागृति, लौकिक संस्पर्श, वीरता, भक्ति एवं त्याग-भावनाओं जैसी मानव

जीवन की उच्चवृत्तियों को अभिव्यक्ति मिली। प्रकृति की मनोहारी छटा अब रीतिकालीन परिवेश के बंधनमय वातावरण से निकलकर, परम्परागत रूढ़ियों को तोड़ते हुए उन्मुक्त एवं स्वच्छन्द आंगन में विहार करने लगी। महावीर प्रसाद द्विवेदी-मंडल से बाहर रहकर उत्कृष्ट सृजन की अमूल्य निधि देने वाले रामनरेश त्रिपाठी जी के काव्य में भी इन समस्त गतिविधियों का समावेश हुआ और उन्होंने इनके उत्कृष्ट वर्णन से अपनी स्वच्छन्दतावादी दृष्टि को स्पष्ट ही नहीं प्रमाणित भी किया है। द्विवेदी युगीन कविता की समस्त विषम परिस्थितियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करती यह कविता-धारा अन्याय और अपमान के प्रति विद्रोह ही नहीं करती, तत्कालीन इतिहास का सम्पूर्ण बोध एवं दस्तावेज़ी-ब्यौरा भी पाठक तक पहुँचाती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि त्रिपाठी जी का काव्य पौरुष का काव्य है। गांधीवादी विचारों का आदर्श उनके साथ है, किन्तु कायरता को बढ़ावा देने वाली शक्ति उन्हें स्वीकार्य नहीं। राष्ट्रीय भूमि, प्रकृति एवं सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों की धरोहर से त्रिपाठी जी का संस्कारगत मोह है, जिसे उनके पूरे साहित्य में देखा भी जा सकता है: काव्य एवं गद्य, चरित एवं व्यंग्य, शिक्षा एवं चित्र, इतिहास एवं समालोचना, संपादन एवं संग्रह तथा संस्कृति एवं राजनीति आदि अनेकों क्षेत्रों में उनकी सृजनात्मक प्रतिभा के अद्भुत-वैशिष्ट्य का परिचय मिलता है। अपने सम्पूर्ण रचना-संसार में वे जागृति के साहित्यकार जान पड़ते हैं। अतः जीवन का सर्वांगीण चित्रण राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक सन्दर्भ में करने वाले इस भविष्योन्मुखी कवि का विस्तृत अध्ययन हम इस इकाई में कर रहे हैं।

18.2 युग-परिवेश

यह सर्वमान्य सत्य है कि साहित्यकार व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं इन सभी के जीवन-परिवेश से बचकर नहीं चल सकता। कवि या साहित्यकार के काव्य और साहित्य-संसार को समाज की प्रत्येक घटना आन्दोलित करती है। सामाजिक प्राणी होने के कारण साहित्यकार का सामाजिक घटनाओं से प्रभावित होना सहज ही नहीं अनिवार्य भी है। इन्हीं सामाजिक अनुभवों से साहित्यकार के प्रतिपाद्य में सजीवता आती है। युगीन परिस्थितियाँ एवं परिवेश कवि को गति एवं ज्ञान प्रदान करते हैं और इन्हीं से उसे लोकहृदय की पहचान भी हो पाती है। रामनरेश त्रिपाठी का युग भी ऐसा ही युग था, जो संवेदनशील कवियों एवं लेखकों को अपने परिस्थितिजन्य परिवेश के दायरे में चाहे-अनचाहे खींचता और आकर्षित करता था। यहाँ हम त्रिपाठी जी के साहित्य-सृजन की जड़ों को सींचने वाले और बीज-प्रस्फुटन की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले उसी युग-परिवेश की चर्चा करेंगे।

राजनैतिक-परिवेश

भारतीय राजनीति एवं राष्ट्रीय जीवन में सन् 1857 की क्रांति के बाद सजीवता और साहस का प्रचार होने लगा था। देशभक्ति और राष्ट्रीय जागृति का लक्ष्य लेकर चलने वाली इस क्रांति ने समस्त देश को झकझोर कर विद्रोह एवं जन-संघर्ष की राह दिखाई। परिणामतः अंग्रेज़ों ने जनता पर अत्याचार और दमन की राह अपनाई। एक तरफ तो अन्याय, अत्याचार, अपमान और शोषण का यह चक्र था जिसमें भारत की गरीब जनता पिस रही थी और दूसरी तरफ बौद्धिक वर्ग अंग्रेज़ों के आगमन पर अपने को धन्य महसूस कर रहा था। भारतेन्दु की ये प्रशस्ति भरी पंक्तियाँ इसी का प्रमाण हैं;

> स्वागत-स्वागत धन्य तुम भावी राजाधिराज
> भई सनाथ भूमि यह परसि चरण तुव आज।

किन्तु प्रशस्ति का यह भ्रम शीघ्र ही टूटने लगा। पश्चिमी-सभ्यता के समता, बंधुत्व, स्वतंत्र्य एवं प्रजातंत्र आदि तथाकथित मानवीय मूल्यों का स्वप्न भारतेन्दु युग में ही बिखरने लगा। आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक शोषण की वास्तविकता नग्न होने लगी। अंग्रेज़ों की स्वार्थ-लिप्त व्यापारिक एवं साम्राज्यशाही नीतियाँ, उनकी शोषण करने की विविध चालें तथा धोखे भरे इरादे स्पष्ट होने लगे। ऐसे में राष्ट्रीयता की भावना धीरे-धीरे बल पकड़ने लगी। ज़मींदारी व्यवस्था को भारतीयों ने नया रूप देना प्रारम्भ कर दिया। विविध स्तरों पर आर्थिक शोषण सह रही जनता ने अपने अधिकारों को मज़बूत करने के संदर्भ में सोचना प्रारम्भ कर दिया। अंग्रेज़ों की कपट नीति ने धार्मिक स्वातंत्र्य का झांसा देकर हिन्दू-मुस्लिम जनता के बीच तनाव पैदा कर दिया। अंग्रेज़ी शिक्षा का प्रचार-प्रसार बढ़ाकर परम्परागत शिक्षा व्यवस्था को कमज़ोर बनाया जाने लगा। परिणामतः शिक्षित वर्ग में स्वाभाविक प्रतिक्रिया हुई और उनमें से कुछ विशिष्ट प्रतिभाओं ने अंग्रेज़ी शिक्षा तथा पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति से घनिष्ठ सम्पर्क रखकर भी भारतीय परतंत्रता और आर्थिक शोषण के खिलाफ असंतोष की भावना जगाना शुरू कर दिया। छोटी-मोटी बगावत और विद्रोह होने लगे। सन् 1885 में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई और धीरे-धीरे अंग्रेज़ों के दमन-चक्र तथा बौद्धिक भारतीय जनता के बीच असंतोष एवं तनाव बढ़ने लगा।

इस पूरी स्थिति एवं परिस्थितिजन्य-परिवेश ने प्रत्येक भारतीय साहित्यकार को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया। राष्ट्रीय चेतना एवं जागृति की भावना यहीं से तीव्र होकर फैलने लगी। राजनैतिक क्षेत्र में लोकमान्य तिलक, गांधी, सुभाष तथा लाजपतराय आदि अनेक जन-नेताओं ने जन-जागरण के मोर्चे संभाले। इधर साहित्यकार-सिपाही ने अपनी कलम को संभाला और हिन्दू-मुस्लिम एकता, जातीय-विरोधी भावना, हरिजन उद्धार, स्वदेशी आंदोलन, पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं की भावना, राजनैतिक जननेताओं के प्रति श्रद्धा और आदर भाव, जेल को मंदिर समझने का पवित्र-भाव, परतंत्रता की बेड़ियाँ काट फेंकने का संकल्प तथा मातृभूमि की सेवा के लिए व्याकुल देश-भक्ति — सभी को साहित्य का विषय बनाकर इस जागृति-यात्रा में भाग लिया। कवि रामनरेश त्रिपाठी ने इस जागरण-अभियान में सक्रिय भूमिका

निभाई। "यह देश कौन-सा है" जैसी लम्बी कविता तथा "पथिक", "मिलन" एवं "स्वप्न" जैसी काव्य-कृतियों में ये भाव सहज ही देखे जा सकते है।

सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अनेक सामाजिक परिवर्तन हो रहे थे। सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक आंदोलनों ने देश को उद्वेलित कर दिया था। यवनों के युग से चले आ रहे अन्धविश्वास एवं कुरीतियाँ समाज की जड़ें खोखली कर रहे थे। परतंत्रता के शिकंजे में फंसा समाज तेजी से पतन की ओर उन्मुख था। अत्यधिक धार्मिक वृत्ति ने बौद्धिक वर्ग को भी जकड़ लिया था। आर्य समाज, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, थियोसोफीकल सोसाइटी, रामकृष्ण मिशन आदि संस्थाओं ने धर्म का मूलभूत चिन्तन प्रारम्भ कर दिया था। शोषण, महामारियाँ, ज़मींदारों के जुल्म, सूदखोर-महाजनों की निर्दयता, ऋण के सागर में डूबता किसान — सभी युगीन विभीषिकाओं के साक्षी हैं। श्रमिक वर्ग भी सुनियोजित शोषण-व्यवस्था में फँस चुका था। बाल-विवाह, दहेज-प्रथा, सती-प्रथा, तांत्रिक-पूजा तथा बलि जैसी कितनी ही संकीर्णताएँ समाज को घेरे थीं। हिन्दू-मुसलमान-ईसाई आदि में पारस्परिक भेदभाव था। ऐसे में उदारता, सहिष्णुता एवं सर्वधर्म स्वभाव की प्रवृत्ति भी जन्म ले रही थी। रामनरेश त्रिपाठी की "अन्वेषण" कविता भी धर्म के इसी बुनियादी चिंतन को विषय बनाकर सृजित हुई —

तू जान हिन्दुओं में, ईमान मुस्लिमों में,
तू प्रेम क्रिश्चियन में है, सत्य तू सजन में।

वास्तव में, सामाजिक एवं आर्थिक संकट के इस दौर में साहित्यकारों के हृदय में भी असंतोष और तपन थी। उनकी यह तपन विद्रोह बनकर साहित्य में ढली। स्त्री-पुरुष के प्रणय भाव को वर्जित मानना, नारी के त्याग की पूर्व-निश्चित धारणा, समाज में पुरुष की प्रधानता तथा सामाजिक आदान-प्रदान के असंतोषजनक तौर-तरीके—सभी ने लेखक समाज को झकझोरा। एक तरफ पेट भरने से लाचार निम्न वर्ग था तो दूसरी तरफ ज़मींदार, सरकारी-वकील, मिल-मालिक तथा अन्य तथाकथित संभ्रान्त उच्च श्रेणी के व्यक्ति, जो स्वार्थ-लिप्सा में डूबे थे। त्रिपाठी जी ने विदेशी शासन से लाभ उठाने वाले इस वर्ग पर करारा व्यंग्य करते हुए लिखा है —

देश-प्रेम ऐसे पवित्र स्वर्गीय कार्य-साधन को,
बना लिया व्यापार परम आराध्य मानकर धन को,
त्रस्त भूप से मान दान पाने की अभिलाषा से,
कई प्रजा के हैं हितेच्छु निज उन्नति की आशा से।

इसी प्रकार, वे अपने तीनों प्रबंध काव्यों में स्त्री-पुरुष के प्रणय भाव को ही प्रमुखता देते हैं, जबकि इस युग में पावन भाव को वर्जित माना जाता था। "पैसा-परमेश्वर" नामक नाटक में त्रिपाठी जी इन धन-लोलुपों को नग्न करते हैं। अतः उस युग में बेरोज़गारी, गरीबी, शोषण, धनाभाव में तड़पता कृषक एवं श्रमिक, देशी व्यापार का हनन, विदेशी व्यापार का आरोपण, स्वदेशी कच्चे माल का निर्यात — सभी ने सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को दुर्व्यवस्था के कगार पर ला खड़ा किया था। ऐसी विकट स्थिति पर लिखित त्रिपाठी जी की ये पंक्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं —

धधक रही सब ओर भूख की ज्वाला है घर घर में,
मांस नहीं है, निरी सांस है शेष अस्थि पंजर में।

सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परिवेश

उन दिनों अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रचार ने हमारी संस्कृति पर आघात करना प्रारम्भ कर दिया था। हम भारतीय अपने ही घर में विदेशी या मेहमान दिखने लगे थे। डॉ. श्रीकृष्ण लाल लिखते हैं — "भारतीय, प्राचीन संस्कृति और साहित्य की ओर उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे और सभी अँग्रेज़ी वस्तुओं पर असीम श्रद्धा रखते थे। मैक्समूलर और मोनियर विलयम्स इनके संस्कृत साहित्य के समालोचक और शिक्षक थे। अंग्रेज़ी विद्वानों की सम्मतियाँ इनके लिए वेद-काव्य थीं।" (आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास; पृष्ठ-21)। अंग्रेज़ शासकों ने कपटपूर्ण नीति का प्रयोग कर भारतीय जनता को पाश्चात्य संस्कृति के रंग में ऐसा रंगा और डुबोया कि आज भी हम उससे मुक्त नहीं हो सके है। धीरे-धीरे श्रद्धा और विश्वास के धरातल पर खड़ी संस्कृति के स्थान पर बौद्धिक धरातल वाली संस्कृति छाने लगी। बंगाल और गुजरात से सांस्कृतिक नवजागरण का श्रीगणेश हुआ। डॉ. शिवदानसिंह चौहान ने लिखा भी है — "राष्ट्रीय जागरण की प्रथम चेतना सुधार आंदोलनों के रूप में मुखरित हो उठी, सांस्कृतिक नवजागरण, कला और साहित्य का अभिनव विकास और उन्मेष भी उन सुधार आंदोलनों के माध्यम से ही हुआ"। (हिन्दी गद्य साहित्य; पृष्ठ-34)। देश की इसी दशा से प्रेरित होकर साहित्य ने भी अपना रुख बदला। काव्य के लिए खड़ी बोली के प्रयोग का संघर्ष प्रारम्भ हुआ। महावीर प्रसाद द्विवेदी के नेतृत्व में चले इस अभियान ने अपार सफलता हासिल की। मैथिलीशरण गुप्त की प्रबंध रचना "जयद्रथ-वध", फिर "भारत-भारती", हरिऔध जी का महाकाव्य "प्रिय-प्रवास" और इस प्रकार अन्य कई काव्य-कृतियाँ इस दिशा में किए गए प्रयासों का सफलतम प्रमाण बनीं। द्विवेदी युगीन काव्य में आदर्शवादी, नीतिवादी, उपदेशवादी तथा भाव प्रधान प्रवृत्ति को महत्व मिला तो श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पाण्डेय, माखनलाल जी, गोपाल सिंह जी एवं सियारामशरण जी के काव्य में छायावादी साहित्य की स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति के बीज प्रस्फुटित होने लगे थे। प्रकृति-प्रेम की उत्कट अभिव्यक्ति हुई। द्विवेदी युगीन कविता और छायावादी कविता के बीच की कड़ी बना त्रिपाठी जी का साहित्य।

इस प्रकार संक्षिप्त परिवेश परिचय से यह स्पष्ट होता है कि युगीन परिस्थितियों ने कवि एवं साहित्यकार की प्रतिभा को जागृत कर संघर्ष, विद्रोह एवं चेतना से जोड़ा। अतः परिवेश और परिस्थितियों ने साहित्यकार को प्रेरित ही नहीं बाध्य भी किया और अपने साथ-साथ ले चलीं, तो दूसरी तरफ साहित्यकार ने भी परिस्थितियों के स्वरूप परिवर्तन एवं दिशा-निर्धारण में अपनी सक्रिय भूमिका निभाई।

18.3 जीवन-वृत्त एवं व्यक्तित्व

पंडित रामनरेश त्रिपाठी जी का जन्म सिंगरामऊ राज्य (जौनपुर-सुल्तानपुर मार्ग) के कोइरी नामक ग्राम में संवत् 1946 अर्थात् 4 मार्च सन् 1889 को सरयूपारीण ब्राह्मण वंश में हुआ था। इनके पिता का नाम पंडित रामदत्त त्रिपाठी था। धार्मिक वृत्ति के इस परिवार में रामकुमार, रामनाथ एवं रामनरेश नाम के तीन पुत्रों ने जन्म लिया, जिनमें रामनरेश जी सबसे छोटे थे। कृषकों का दारिद्रय और अभावों का दुखमय जीवन उनका व्यक्तिगत अनुभव था। तीनों भाइयों में अपार स्नेह था और तीनों ही अत्यन्त परिश्रमी एवं जुझारू व्यक्ति थे। आज भी उसी गांव के किनारे त्रिपाठी जी का मकान स्थित है, जहाँ उनके मझले पुत्र श्री बसंतकुमार रहते हैं।

रामनरेश त्रिपाठी के पिता खेती-बाड़ी तथा नौकरी से जीवन-यापन करते थे। वंशानुगत धर्म-विश्वास तथा मानस प्रेम इन्हें बपौती में मिला। परिवार की आर्थिक दशा अच्छी न थी। एक ही बैल था इसलिए कभी-कभी इनके बड़े भाई दूसरे बैल के स्थान पर स्वयं कंधा लगाते थे। दुःखों के इसी अनुभव-संसार ने उन्हें निर्धनों एवं कृषकों के प्रति दया-भाव-सम्पन्न बनाया :

पहले उर्दू पाठशाला में और फिर हिन्दी स्कूल में शिक्षा, पत्र-पत्रिकाओं का अध्ययन, स्वतंत्रता सेनानियों के भाषण में रुचि, पत्रिकाओं में तुकबंदी-लेखन एवं प्रकाशन, नवीं कक्षा के बाद शिक्षा से वंचित होकर भी अध्यवसाय से गुजराती, बंगाली, उर्दू, अंग्रेज़ी तथा संस्कृत आदि भाषाओं में दक्षता हासिल की। और आगे चलकर पाठशाला में अध्यापन, उदयराजी नामक कन्या से विवाह, तीन पुत्र तथा तीन कन्याओं की प्राप्ति, अस्वस्थता के कारण राजस्थान प्रस्थान और मारवाड़ी परिवार में बच्चों को पढ़ाना आदि चलता रहा। यहीं "हिन्दी महाभारत", "प्रार्थना", "मारवाड़ी मनोरंजन" तथा "कविता-विनोद" का लेखन किया और सन् 1915 में पुनः प्रयाग लौटे।

इसी प्रकार, प्रमुख नेताओं एवं स्वतंत्रता सेनानियों से मिलना-जुलना, देशभक्ति का जुनून, पिता की मृत्यु, परिवार-पालन एवं साहित्य सेवा का दायित्व निर्वाह करते हुए 1917 में पहला खंडकाव्य "मिलन" छपा। फिर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रचारमंत्री बने, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा का कार्यभार संभाला। गांधी जी एवं लाला लाजपतराय के साथ सत्याग्रह में भी भाग लिया, जेल गए और प्रसिद्ध कविता "अन्वेषण" लिखी। प्रयाग में हिन्दी मन्दिर की स्थापना, ग्राम गीतों का संग्रह, काश्मीर यात्रा, 1938 में हिन्दुस्तानी कोश लेखन तथा अन्य विधाओं में रुचि जागी। हिन्दुस्तानी अकादमी ने "पथिक" को पुरस्कृत किया। उत्तर प्रदेश सरकार ने कविता कौमुदी (पाँच भाग) के लिए पुरस्कार दिया। सुल्तानपुर जेल के निरीक्षक भी रहे। और फिर सन् 1940 के बाद कई पुस्तकें लिखीं।

इस प्रकार त्रिपाठी जी का जीवन एक संघर्षमय, साधारण व्यक्ति का असाधारण जीवन था। शालीन तथा स्वाभिमानी व्यक्तित्व वाले त्रिपाठी जी पर आदर्शवाद का गहरा प्रभाव था। गांधी जी के सिद्धांतों के वे प्रचारक थे। स्वतंत्रता से जूझ रहे भारतीयों की शक्ति एवं जीवटता का बखान करते हुए उन्होंने लिखा था —

> सत्य कहने से न रुकती जीभ है,
> कांपते क्यों हो? इसे ही काट लो।
> मैं कलम हूँ, एक मेरी जीभ से,
> क्या करोगे जब बढ़ेंगी सैंकड़ों॥

गाँव की शान्ति में सादगी का जीवन जीने वाले रामनरेश जी मुँहफट और अक्खड़ भी थे। खुशामदी उन्हें पसंद न थी। सत्यवादिता उनका मूल मंत्र था। परिश्रम बिना प्राप्त होने वाली कोई भी वस्तु उन्हें स्वीकार्य न थी। प्रकृति से उन्हें अपार प्रेम था। हँसी और व्यंग्य के कारण वे सभी को प्रिय थे। क्रोध और उद्विग्नता उनकी कमज़ोरी थे, किन्तु इसे वे साहित्यिक व्यंग्य के माध्यम से अधिक अभिव्यक्त करते थे। विनय की उदात्त भावना को मुखर करती कवि की यह प्रार्थना द्रष्टव्य है जिसने समग्र भारत ही नहीं, समग्र जगत को भी मंत्र मुग्ध कर दिया है —

> हे प्रभो आनंददाता! ज्ञान हमको दीजिए।
> शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिए।
> लीजिए हमको शरण में, हम सदाचारी बनें।
> ब्रह्मचारी, धर्मरक्षक, वीरव्रत धारी बनें।

12 जनवरी, सन् 1962 को प्रयाग में सरस्वती का हीरक-जयंती महोत्सव था। त्रिपाठी जी अस्वस्थ थे, परन्तु हिन्दी जगत से ससम्मान प्राप्त निमंत्रण को नकार न सके। दूसरे ही दिन स्वास्थ्य बिगड़ा और दिल का दौरा पड़ गया। उपचार हुआ किन्तु अन्ततः 16 जनवरी, सन् 1962 ई. को प्रातः साढ़े छह बजे उन्होंने अपना पार्थिव शरीर त्याग दिया। साहस,

सच्चाई, विनम्रता और कर्मठता का दूत चला गया। श्री इंदरराज बैद ने त्रिपाठी जी के समग्र व्यक्तित्व को ध्यान में रखकर ठीक ही कहा है —

"वस्तुतः यह एक ऐसे समर्पित रचनाकार की कहानी है, जिन्होंने लगभग पैंतीस बरसों तक भाषा और साहित्य की अविराम साधना की थी। त्रिपाठी जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार थे। वे राष्ट्रीय भावधारा के कवि थे, यथार्थ ग्राही कथाकार थे, सामाजिक चेतना के संदेशवाहक नाटककार थे। बाल साहित्य के तो वे आदि आचार्य ही माने जाते हैं। हिन्दी में ग्राम-गीतों का संग्रह उनके सारस्वत अध्यवसाय का जीवन्त प्रमाण है। प्राइमर से लेकर शब्दकोशों तक के निर्माण में उन्होंने अपनी असाधारण दक्षता का परिचय दिया था। अपनी शताधिक कृतियों से उन्होंने भारती की पुष्कल अर्चना की। साहित्य की कोई ऐसी विधा नहीं, जिसमें उन्होंने सर्जन न किया हो। वे सचमुच द्विवेदी युगीन साहित्यिक समुदाय की अग्रिम पंक्ति को सुशोभित-गौरवान्वित करने वाले मनीषी साहित्य निर्माता थे।" (रामनरेश त्रिपाठी; पृष्ठ 20)।

18.4 रामनरेश त्रिपाठी का रचना-संसार

बहुमुखी प्रतिभा के समर्थ साहित्य-सृष्टा पंडित रामनरेश त्रिपाठी जी सन् 1912 से सन् 1962 तक के 50 वर्ष लगातार लेखन से जुड़े रहे। साहित्य के अनेकानेक अंशों और विधाओं पर साधिकार लिखने वाले त्रिपाठी जी कवि, नाटककार, कहानीकार एवं उपन्यासकार, कोशकार, टीकाकार, आलोचक, सम्पादक, चरित लेखक, व्यंग्य लेखक, बाल साहित्यकार, शिक्षण-साहित्य लेखक, इतिहास लेखक, संग्राहक, सूक्तिकार, वैयाकरण एवं भाषाविद, ज्ञान साहित्यकार, यात्रावृत्तान्तकार, तो थे ही साथ ही संगीत, विज्ञान, अनुवाद, संस्कृति, राजनीति एवं ग्राम जीवन सम्बन्धी लेखन मोर्चों पर भी एकसाथ तैनात रहे। खड़ी बोली को काव्य की भाषा के रूप में सजाने-संवारने वालों में अन्यतम स्थान के अधिकारी त्रिपाठी जी निश्चित ही व्यापक फलक एवं विस्तृत भूमा के साहित्यकार हैं। आधुनिक हिन्दी काव्य में डॉ. धीरेंद्र वर्मा ने लिखा भी है — "अतः साहित्य के जितने अंगों पर त्रिपाठी जी ने रचना की है, उतने अंगों पर साहित्य के किसी लेखक की लेखनी ने काम नहीं किया। इस क्षेत्र में त्रिपाठी जी अद्वितीय हैं।" (पृष्ठ-74)

त्रिपाठी जी के इतने व्यापक रचना-संसार को वर्गीकरण के धरातल पर उतारना भी अपने आप में एक चुनौती का कार्य है। यहाँ हम उनके समग्र साहित्य को कुछ भागों में बाँटकर एक संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत कर रहे हैं :

मौलिक साहित्य-सृजन :

i) **काव्य :** क) मिलन, पथिक एवं स्वप्न जैसे खंडकाव्य।
ख) कविता-विनोद, आर्य संगीत शतक, मारवाड़ी-मनोरंजन, क्या होमरूल लोगे तथा मानसी आदि मुक्तक काव्य-संग्रह।

उपन्यास : वीरांगना, वीरबाला, मारवाड़ी और पिशाचिनी, सुभद्रा तथा लक्ष्मी आदि।

कहानी-संग्रह : आँखों देखी कहानियाँ तथा तरकस आदि।

चरित लेखन : दमयन्ती चरित, पृथ्वीराज चौहान, पद्मावती, गांधी जी कौन हैं, तीस दिन मालवीय जी के साथ तथा जमनालाल बजाज आदि।

नाटक : जयंत, प्रेमलोक, अजनबी, बा और बापू तथा कन्या का तपोवन आदि।

व्यंग्य : स्वप्नों के चित्र तथा दिमागी ऐय्याशी आदि।

ii) **बाल-साहित्य : काव्य :** बालक सुधार शिक्षा, मोहन भोग, खोजो खोज निकालो, मोतीचूर के लड्डू, तथा वानर-संगीत आदि।

गद्य : महात्मा बुद्ध, अशोक, चंद्रशेखर, हरिश्चन्द्र, चुड़ैल रानी तथा चटक-मटक की गाड़ी आदि।

चित्रात्मक रचनाएँ : गुपचुप कहानियाँ और कहानी के कलपुर्जे आदि।

शिक्षा रचनाएँ : गाँधी ताश जवाहर पत्ता, हिन्दी प्राइमर, हिन्दी ज्ञानोदय तथा कन्या बोधिनी आदि।

विवेचनात्मक साहित्य :

साहित्य-इतिहास : हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास और उर्दू जुबान का संक्षिप्त इतिहास आदि।

समालोचना : तुलसीदास और उनकी कविता तथा तुलसी और उनका काव्य आदि।

टीकाएँ : भूषण ग्रंथावली, अयोध्या काण्ड, श्रीरामचरित मानस, जानकी मंगल, सुदामाचरित तथा शिवा-बावनी आदि।

संपादन : कविता-कौमुदी (छह खंड), सूरदास की विनय पत्रिका, रहीम तथा सुकवि कौमुदी आदि।

पत्रिका-संपादन : कवि-कौमुदी, वानर तथा उद्योग आदि।

संग्रह : नीति शिक्षावली, नीति के श्लोक, नीति रत्नावली तथा मानस की सूक्तियाँ आदि।

भाषा एवं कोश : हिन्दी पद्य रचना, हिन्दी शब्द कल्पद्रुम, हिन्दी-हिन्दुस्तानी, हिन्दुस्तानी कोश तथा हिन्दी मुहावरे आदि।

यात्रा-वृत्त साहित्य : उत्तरी ध्रुव की भयानक यात्रा।

संगीत : अभिनव-संगीत।

राजनीति : देश का दुःखी अंग।

संस्कृति : हिन्दी महाभारत तथा मानस के पाँच पात्र आदि।

विज्ञान : आकाश की बातें, योग के आसन आदि।

अनुवाद : इतना जो जानो, कौन जाग रहा है आदि।

लोक साहित्य : मारवाड़ के मनोहर गीत, घाघ और भड्डरी तथा हमारा ग्राम साहित्य (तीन भाग) आदि।

आचरण-संबंधी : अंग्रेज़ी शिष्टाचार

ग्राम-जीवन : किसानों के काम की बातें, मिट्टी के सुखदायक घर और नमूने का गाँव आदि।

इन सभी में त्रिपाठी जी का सर्वाधिक मुखर एवं उभरा हुआ रूप कवि रूप ही है। इस इकाई का मूल विषय भी कवि रामनरेश त्रिपाठी का अध्ययन करना है। अतः अब हम त्रिपाठी जी के काव्य के मूल स्वरों का मूल्यांकन करेंगे। यों त्रिपाठी जी का ब्रजभाषा पर भी पर्याप्त अधिकार था, किन्तु भाव और भाषा का सरल, सहज एवं जो प्राञ्जल रूप उनके खड़ी बोली काव्य में मिलता है वह युग की आवश्यकता के अनुरूप ही था। काव्य के माध्यम से जन-जन को जगाने तथा हृदय में उत्साह का संचार करने वाले त्रिपाठी जी ने लोकमंगल, समाज सुधार और राष्ट्रोद्धार का जो बीड़ा उठाया, उसमें पूर्णतः सफलता हासिल की। सामाजिक नव-उद्बोधन के इस कवि ने काव्य के सृजनात्मक धरातल पर मानवतावादी भूमिका निभाई। डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल ने लिखा भी है—"नवयुग की चेतना से उनके काव्य ओत-प्रोत हैं। उनमें प्रातःकाल की अरुणाभ एवं वसंत की "सौरभ" श्लथ मादकता एवं मोहकता है। कवि ने प्राचीन घिसी-पिटी रूढ़ि परम्परा का अनुसरण नहीं किया है। उसने पौराणिक या ऐतिहासिक कथानकों को न अपनाकर, मौलिक नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के द्वारा काल्पिक कथानक की सृष्टि की। खण्ड काव्य में प्राचीन शास्त्रीय नियमों की संकुचित परिधि का प्रथम बार उल्लंघन किया गया, इस दिशा में आपने मार्ग निर्देशन का कार्य किया है। इस दृष्टि से त्रिपाठी जी खण्ड काव्य के क्षेत्र में एक नवीन परम्परा का प्रवर्त्तन करते हैं। मौलिक कथानक के अंतराल में विशद एवं गहन भावों को संवार कर सजा देने में उन्हें अद्भुत सफलता मिली है। वे इस क्षेत्र में अकेले हैं।" (पं. रामनरेश त्रिपाठी का काव्य; पृष्ठ 70)

ईश्वर, मातृभूमि एवं मानव की आराधना में अगाध विश्वास रखने वाले त्रिपाठी जी जितने श्रद्धालु-देशभक्त हैं, प्रकृति की सुन्दरता से भी उतने ही अभिभूत हैं। "बालक-विनय" कविता में मातृभूमि के दुख दर्द दूर करने का दर्द देखिए —

i) मन में देशभक्त बनने की उठी अटल अभिलाषा है,
सफल मनोरथ करो दयामय, हमें तुम्हारी आशा है।

ii) ईश्वर भक्ति-लोक सेवा है एक अर्थ दो नाम।
वन में बस कैसे हो सकता है, मनुजोचित काम।
पृथ्वी पर सुख-शांति बढ़ाना देकर निज श्रम शक्ति,
मनुष्यता का अर्थ यही है और यही हरि-भक्ति।

एक तरफ वे राष्ट्र को ही भगवान तथा राष्ट्र सेवा को ही सबसे बड़ा धर्म मानकर देश एवं देशवासियों के लिए प्राणोत्सर्ग करने में ही मोक्ष का अनुभव करते हैं तो दूसरी तरफ विश्व-बंधुत्व और प्रेम की उदात्तता में ही अपनी समस्त श्रद्धा का वचन दोहराते हैं। डॉ. राममूर्ति शर्मा ने लिखा भी है — "उन्होंने मानव जीवन की मूल एवं सशक्त प्रवृत्ति प्रेम को भी अत्यन्त उदात्त रूप प्रदान किया है। उनका प्रेम व्यक्ति के संकुचित घेरे से निकलकर समस्त विश्व को अपनी बांहों में समेटे हुए है। उनके प्रेमी विरह में आँसू बहाकर समस्त संसार को डूबोने की अपेक्षा, विरह के दुःख से सन्धि कर जन तथा राष्ट्र के कल्याण में जुट जाते हैं। राष्ट्रीय भावना उनके साहित्य का प्रमुख स्वर है, परन्तु वह संकीर्ण विचारों से आक्रान्त नहीं है, उसमें औदात्य है। उनका प्रकृति चित्रण भी अनेकविध एवं मौलिक है। यह छायावादी प्रकृति-वैभव के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि भी प्रस्तुत करता है। उनकी प्रकृति संघर्ष से ऊबे व्यक्ति के लिए मुँह छिपाने की आश्रयस्थली न होकर मानव को कर्मरत होने की प्रेरणा प्रदान करती है। यह केवल त्रिपाठी जी के प्रकृति-चित्रण की ही विशेषता है।" (रामनरेश त्रिपाठी और उनका साहित्य; पृष्ठ 353)

त्रिपाठी जी के काव्य में मिलने वाली इन सभी विशेषताओं पर अलग से हम आगे चलकर विचार करेंगे। यहाँ संक्षेप में उनके प्रबंध एवं मुक्तक काव्य का स्वरूपगत परिचय प्राप्त कर लेना उचित होगा।

सर्वप्रथम हम त्रिपाठी जी के प्रबंध (खंड) काव्यों का परिचयात्मक स्वरूप देखते हैं। कवि ने तीन प्रबंध काव्यों की रचना की—मिलन (1917), पथिक (1920) तथा स्वप्न (1928)। तीनों खण्ड काव्यों का प्रणयन कवि ने राष्ट्रीय पृष्ठभूमि पर ही किया है। कवि की मौलिक कल्पना से इनके कथानकों की उद्भावना हुई तथा स्वच्छन्द-प्रवृत्ति ने उन्हें सुसज्जित किया। हिन्दी साहित्य के इतिहास में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते भी हैं —"मिलन, पथिक और स्वप्न नामक इनके तीनों खंड काव्यों में इनकी कल्पना ऐसे मर्म-पथ पर चली है, जिसपर मनुष्य मात्र का हृदय स्वभावतः

ढलता आया है। ऐतिहासिक और पौराणिक कथाओं के भीतर न बंधकर अपनी भावना के अनुकूल स्वच्छंद संचरण' के लिए कवि ने नूतन कथाओं की उद्भावना की है।

"मिलन" काल्पनिक कथानक पर लिखा गया प्रेम एवं राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत खण्ड काव्य है। इसकी लोकप्रियता का कारण भी उस समाज के पाठक वर्ग का इन भावनाओं के प्रति आंतरिक झुकाव है। पाँच सर्गों में विभक्त इस काव्य में भाषा की सरलता और सहजता इसके सौंदर्य में श्रीवृद्धि करती है।

"पथिक" पाँच सर्गों में विभक्त एक सुंदर खंड काव्य है, जिसमें कर्मवाद, देश के और समाज के प्रति प्रतिबद्धता एवं कर्तव्य, भावना, त्याग तथा बलिदान की महत्ता का काव्यात्मक संदेश दिया गया है। त्रिपाठी जी का गांधीवाद के प्रति झुकाव भी यहीं परिलक्षित होता है। कवि ने रामेश्वरम की यात्रा के फलस्वरूप मन में उत्पन्न प्रकृति सौंदर्य की अद्भुत छटाएँ यहाँ अंकित की हैं।

"स्वप्न" पाँच सर्गों में लिखा गया खण्ड काव्य त्रिपाठी जी की काश्मीर-यात्रा का परिणाम है। इसमें देश के दुख-दैन्य से चिंतित नायक की पीड़ा भी है तो नायिका के शौर्य और त्याग की गाथा भी चित्रित है। नारी यहाँ पति की कर्तव्य-विमुखता पर जागृति का मूल मंत्र फूंकती है और देश की आन-रक्षा के पथ पर बलि होने की प्रेरणा देती है।

इस प्रकार तीनों ही प्रबंध रचनाओं में कवि स्वदेश की स्वतंत्रता प्राप्ति और उसकी रक्षा के लिए जूझने वाले वीर युवकों और वीरांगनाओं के प्रेरणादायी चरित्र उजागर करता है। रुचिकर, मौलिक तथा कल्पना-प्रसूत आख्यान मानवीय आदर्शों को समेटकर मर्म तक उतर जाते हैं। पात्रों का जमघट नहीं और उनका जीवन-यात्रा में प्रेम-पथ पर अग्रसर होना अत्यंत मनोवैज्ञानिक है। युवावस्था के प्रेममय स्वप्न तथा राष्ट्रीय हीन दशा जनित सेवा का अदम्य उत्साह-त्रिपाठी जी के नायकों का प्रमुख गुण है। नायिकाओं के चरित्र भी कम महत्वपूर्ण नहीं। देश-प्रेम का तूफान उनके भी हृदय में उठता है और वह घर बैठे पति की कायरता को ललकारती हुई उसे जागृति प्रदान करती हैं। "स्वप्न" की नायिका "सुमना" अपने पति से कहती है —

तुम हो वीर पिता माता के
वीर पुत्र मेरे जीवन-घन
तुम से आशायें कितनी हैं
जन्म भूमि को हे अरिमर्दन।

इसी प्रकार, "पथिक" में भी कवि देश के परतंत्र और परमुखापेक्षी लोगों को प्रताड़ित करते हुए पूछता है —

मस्तक ऊँचा हुआ तुम्हारा कभी जाति-गौरव से ?
अगर नहीं तो देह तुम्हारी तुच्छ अधम है शव से।

पथिक का तो नायक ही गांधी जी की प्रतिच्छवि बन जाता है। "साथ न दो नृप का कोई उसके अधर्म शासन में" कहकर कवि अहिंसा, क्षमा और असहयोग की बात को बल देता है। कवि इसीलिए कहता भी है —

हुए स्वतंत्र सुसभ्य सच्चरित सच्चे देश निवासी।
घर-घर में सुख-शांति छा गई रही कहीं न उदासी।
एक शुद्ध सच्चे प्रेमी ने आत्म-शक्ति-साधन से।
मुक्त कर दिया एक देश को नरक तुल्य शासन से।

"उत्साह" भाव का सुंदर प्रस्तुतिकरण "मिलन" काव्य के उस कथन में देखा जा सकता है, जहाँ नायक-नायिका देश की विफलता पर आँसू नहीं बहाते। उसे दूर करने के लिए उत्साह संजोते हैं —

देखा उसने उसी भांति के अगणित नर-कंकाल
चिपके पेट रीढ़ से जिनके चुचके पुचके जाल
विजया ने प्रण किया सुदृढ़ होकर प्रयत्न भरपूर
तन-मन से इस दीन देश का कष्ट करूंगी दूर।

इस प्रकार "ईश्वर का प्रतिबिम्ब प्रेम है, प्रेम हृदय आलोक" कहने वाले त्रिपाठी जी आदर्श प्रेम की स्थापना भी करते हैं तो —"लोहू गर्म हुआ वीरों का, फड़क उठे जब अंग। नशा वीरता का चढ़ आया देख रक्त कर रंग" जैसी उक्तियों से युवा-मन को फड़कने पर मज़बूर भी करते हैं। अतः कह सकते हैं कि त्रिपाठी जी ने अपने खण्ड काव्यों के माध्यम से एक स्वतंत्र पथ तथा नई दिशा का निर्माण किया। निश्चित ही वे राष्ट्रीय-जागरणकारों के अग्रदूत कहे जा सकते हैं।

त्रिपाठी जी की काव्य यात्रा का श्रीगणेश सन् 1911 में लिखी गई सात कविताओं वाली लघु-पुस्तिका "बालक-सुधार-शिक्षा" से माना जाता है। बालकों के लिए ईश्वर-भक्ति, देश-प्रेम, माता-पिता की सेवा, त्याग, बलिदान तथा समय का सदुपयोग आदि विषयों पर कवि शिक्षक बनकर भावाभिव्यक्ति करता है। यहीं से इनके मुक्तक काव्य लेखन का भी प्रारंभ हुआ। इसके बाद "मारवाड़ी मनोरंजन" जिसमें दस स्फुट कविताएं हैं, "मारवाड़ का प्रभात", "शरद-वर्णन" आदि में प्रकृति का सुंदर चित्रण किया गया है। "ऊष्ट्राष्टक" रेगिस्तान के जहाज ऊँट पर लिखे गए आठ छंदों का संग्रह है। कवि की "भयंकर-विवाह" नामक कविता अनमेल-विवाह के विषय को बाखूबी बखान करती है। सन् 1914 में कवि ने "कविता-विनोद" संग्रह दिया और जग प्रसिद्ध प्रार्थना "ईश्वर-वंदना" भी इसी में संकलित

है। त्रिपाठी जी मुक्तकों के माध्यम से समाज में व्याप्त अंध-विश्वासों, रूढ़ियों, कुरीतियों और जीर्ण-शीर्ण मान्यताओं पर प्रहार भी करते हैं तो बालकों-युवकों में देश-प्रेम, सदाचार तथा अनुशासन का भाव भी जाग्रत करते हैं। वे सच्चे मार्गदर्शक एवं दत्त-चित्त समाज सुधारक की भूमिका निभाते हुए दीन-दुखियों, अबल-असहायों के प्रति अपनी सहानुभूति भी व्यक्त करते हैं —

ना मन्दिर में, ना मस्जिद में, ना गिरजे के आसपास में,
ना पर्वत पर, ना नदियों में, ना घर बैठे, ना प्रवास में,
ना कुंजों में, ना उपवने के शांति-भवन या सुख-निवास में,
ना गाने में, ना बाने में, ना आँसू में, नहीं हास में,
ना छंदों में, ना प्रबंध में, अलंकार ना अनुप्रास मे,
खोज ले कोई राम मिलेंगे दीन जनों की भूख प्यास में।

इसी प्रकार त्रिपाठी जी की अन्य चर्चित मुक्त रचनाएँ "आर्य संगीत शतक" (1912 ई.), "क्या होमरूल लोगे" (1918 ई.) तथा 'मानसी" (1927 ई.) में भी जीवन की छोटी-बड़ी अनुभूतियों को अत्यंत भाव-प्रवणता से चित्रित किया गया है। वह देश कौन सा है, मातृभूमि की जय, महापुरुष, स्वतंत्रता का दीपक तथा स्वदेश गीत आदि रचनाओं में राष्ट्रीयता प्रधान है तो प्रार्थना, अन्वेषण, चमत्कार, राम कहाँ मिलेंगे, परलोक, जागरण, संसार-दर्पण तथा श्याम की शोभा आदि में आध्यात्म प्रधान है। चन्द्र, पुष्प-विकास, प्राकृतिक सौन्दर्य तथा स्वप्न में तैर रहा हूँ जैसी रचनाओं में प्रकृति की मनोरम छटा है तो उदारता, नीति के दोहे, मित्र-महत्ता, पुस्तक, मनुष्य-पशु आदि में नीति-दर्शन प्रधान है। इसी प्रकार काश्मीर, नया नखशिख तथा हैट के गुण आदि में व्यंग्य प्रधान है। ब्रिटिश सरकार पर किए गए व्यंग्य देखिए कितने जीवंत है —

i) "डिनर" "लंच" "टी" तीन हैं, राजा के हथियार
चतुर-चतुर बच के गये, घायल हुए गंवार।

× × × × × ×

ii) दृग को, दिमाग को, ललाट को, श्रवण को भी
धूप से बचाती, अति सुख पहुँचाती है।
....

सिर पर हैट रख चाहे जो अनर्थ करो,
हैट यह ईश्वर की दृष्टि से बचाती है।

अतः स्पष्ट है कि त्रिपाठी जी का जीवन ही कवितामय था। कविता सदैव उनके जीवन की प्रेरणा रही और इसी से उन्होंने जीवंतता तथा उदात्तता का मार्ग प्रशस्त किया। यही उनके साहस और शक्ति का कारण बनी तथा इसी ने उन्हें "जीवन की आग" में जलना और निरंतर आगे बढ़ना सिखाया। त्रिपाठी जी की इस काव्य-सृष्टि की प्रमुख-विशिष्टताओं को अब हम देखेंगे।

बोध प्रश्न 1

1 कवि रामनरेश त्रिपाठी के सांस्कृतिक एवं साहित्यिक युगीन-परिवेश पर सात-आठ पंक्तियाँ लिखिए।

....
....
....
....
....
....
....

2 रामनरेश त्रिपाठी की बहुमुखी प्रतिभा का काव्य से इतर किन-किन विधाओं में परिचय मिलता है। तीन पंक्तियों में लिखिए।

....
....
....

3 त्रिपाठी जी की प्रमुख प्रबंध काव्य-कृतियों के नाम एवं रचना-वर्ष लिखिए।

....
....

4 रामनरेश त्रिपाठी जी के व्यक्तित्व की तीन प्रमुख विशेषताओं का परिचय पाँच पंक्तियों में दीजिए।

....

....

....

....

....

अभ्यास 1

1 त्रिपाठी जी द्वारा विरचित "ना मंदिर में, ना मस्जिद में, ना गिरजे................." कविता का अंश आपकी इसी इकाई के भाग 18.4 में उद्धृत है। इस अंश का भावार्थ लगभग आठ पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

18.5 काव्य-सौंदर्य : प्रमुख स्वर

सत्याग्रह पथ के अथक यात्री तथा राष्ट्रीय आन्दोलनों के सक्रिय कार्यकर्त्ता रामनरेश त्रिपाठी का काव्य क्षेत्र जितना विशाल है, उसकी प्रवृत्ति उतनी ही मूल्यवान भी। त्याग और बलिदान के पथ पर लोगों को अग्रसर करने के लिए पथ-प्रदर्शक एवं उद्बोधक गीत गाकर जागरण का शंख फूंकने का जो उदात्त कार्य त्रिपाठी जी ने किया, वह हम सभी भारतीयों के लिए वरदान सिद्ध हुआ। अज्ञान, रूढ़िवाद, दासत्व और नैराश्य के व्यामोह में भटकी जनता में काव्य-माधुरी से नूतन प्राण संचरित करने वाली इस महाशक्ति ने विदेशियों के अनीति एवं अत्याचारपूर्ण शासन में झुलसती जन-सामान्य की चीत्कारों को ही वेदना की वाणी नहीं दी, स्वतंत्र एवं समृद्ध भारत की आत्मविश्वासकारी छवि को भी निखारा-संवारा। सत्य, निष्ठा, अहिंसा और प्रेम के गांधीवादी आदर्श उन्हें साम्प्रदायिक सद्भाव की प्रेरणा के लिए उत्साहित कर रहे थे —

> है एक ही सबका पिता, अल्लाह ही भगवान है,
> नाम ही का भेद है, वह राम ही रहमान है।

स्वाधीनता के इस सिपाही ने भारत की मुक्ति को विश्व मानवता की मुक्ति बनाकर मंगल कामना एवं उदात्त दृष्टि का प्रचार किया। काव्य माला में संघर्ष, बलिदान एवं त्याग की प्रेरणा के पुष्प पिरोकर कवि ने स्वतंत्रता का गलहार बनाया। अहिंसक क्रान्ति की चेतना से जागरण का बीज बोया। आज़ादी से पहले का भारत और पूरे विश्व को सभ्यता एवं आचरण की सीख देने वाली जनता का निरंतर हो रहा पतन कवि को सालता है और वह उसे प्रताड़ित भी करता है —

> शान्ति, शिक्षा शीलता, शालीनता,
> खो चुके तुम शूरता स्वाधीनता,
> जो निरूधम है भला वह क्या जिया ?
> हाय तुमने जन्म लेकर क्या किया ?

यही फटकार लगाने वाला महाकवि सन् 1920 में भावी स्वतंत्रता के पूर्व-दर्शन कर लेता है —

> शासन का सब भार लिया जनता ने अपने कर में,
> परम हर्ष, आनन्द, मोद, सुख व्याप्त हुआ घर-घर में।

इस प्रकार इस पूरी कविता सृष्टि में राष्ट्रीय भावना, सामाजिक चेतना, उदात्त प्रेम, स्पंदित प्रकृति, इतिहास एवं सांस्कृतिक चेतना तथा लोक साहित्य की मार्मिक अभिव्यक्ति आदि कई पक्षों को उकेरा गया है। यहाँ हम काव्य के इन्हीं पक्षों की सौन्दर्यानुभूति का दर्शन करेंगे।

13.5.1 राष्ट्रीय-भावना का प्रसार

त्रिपाठी जी के काव्य में राष्ट्रीय-भावना के विविध परिपार्श्व दिखाई देते हैं जिनमें देशभक्ति, देशप्रेम, राष्ट्रीय जागरण, जन उद्बोधन, नारी जागृति, देश के निर्माता एवं स्वतंत्रता सेनानियों के प्रति सम्मान, विदेशी शासन की आलोचना तथा सांस्कृतिक गौरव का मुखर गान आदि के सहज दर्शन किए जा सकते हैं। राष्ट्रीयता की उत्ताल तरंगों से तरंगायित हृदय के इस महाकवि ने मिलन, पथिक, स्वप्न या फिर मुक्तकों में भी विदेशी शासन का डटकर विरोध करते हुए सजग रहने का मूल मंत्र दिया —

जिस पर गिर कर उदर दरी से तुमने जन्म लिया है
जिसका खाकर अन्न सुधा-सम नीर-समीर पिया है
वह स्नेह की मूर्ति दयामयी माता-तुल्य मही है
उसके प्रति कर्तव्य तुम्हारा क्या कुछ शेष नहीं है।

त्रिपाठी जी के देश प्रेम में प्राकृतिक सौन्दर्य का उल्लास भी है तथा उच्च विचार और जन-सामान्य की बहुमुखी समृद्धि की मंगल भावना भी निहित है। उनके राष्ट्र प्रेम एवं राष्ट्र भावना में उन्मुक्त हृदय की वह पवित्र अभिव्यक्ति है जिसमें देश की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक हलचल का सक्रिय स्वरूप साकार हुआ है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा भी है —"स्वदेश-भक्ति की जो भावना भारतेन्दु के समय से चली आती थी उसे कल्पना द्वारा रमणीय एवं आकर्षक रूप त्रिपाठी जी ने ही प्रदान किया। त्रिपाठी जी के तीनों काव्य देश भक्ति के भाव से प्रेरित है। देश भक्ति का यह भाव उनके कई पात्रों को जीवन के कई क्षेत्रों में सौन्दर्य प्रदान करता दिखाई पड़ता है — कर्म के क्षेत्र में, प्रेम के क्षेत्र में भी। वे पात्र कई तरफ से देखने में सुन्दर लगते हैं। देश भक्ति का रसात्मक रूप त्रिपाठी जी द्वारा प्राप्त हुआ इसमें सन्देह नहीं।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास; पृष्ठ 407)

त्रिपाठी जी राष्ट्रीय कविता के क्षेत्र में भविष्य-दृष्टा एवं स्रष्टा कवि माने जाते हैं। "मिलन" एवं "पथिक" में वे स्वतंत्रता का स्वप्न ही देखते रहे हैं। मातृभूमि पर शीश चढ़ाना कवि को सौभाग्य जान पड़ता है —

देश-भक्ति का हृदय बड़ा ही होता है बलवान।
शैय्या कांटों की लगती है उसको फूल समान॥

कवि ने भावी निर्माण के लिए एक तरफ तो अतीत के गौरव गान गाकर सुप्त-क्रांति के जगाया तो दूसरी तरफ तत्कालीन दुर्दशा और अभावों का पर्दाफाश करते हुए जागृति का उद्घोष किया। शरीर एवं बुद्धि का ही नहीं, विचार एवं विवेक का परिष्कार तथा संवर्द्धन करने की प्रेरणा दी। कभी वे — "हम तो कदम मिलाए उस राह पर चलेंगे, बापू ने जो बताई सुख शान्ति की डगर है" कहते हुए देश निर्माण की त्यागमयी राह चुनते हैं तो कभी भारतीय युवकों को ललकारते हुए स्वतंत्रता प्राप्ति की गूंज पैदा करते हैं —

सब को स्वतंत्र कर दे यह संगठन हमारा,
छूटे स्वदेश की ही सेवा में तन हमारा।
हम प्राण होम देंगे, हँसते हुए जलेंगे,
हर एक सांस पर हम आगे बढ़े चलेंगे।
जब तक पहुँच न लेंगे तब तक न सांस लेंगे
वह लक्ष्य सामने है पीछे नहीं टलेंगे।

त्रिपाठी जी की राष्ट्रीय चेतना पर विचार करते हुए डॉ. अनिल उपाध्याय ने "रामनरेश त्रिपाठी के साहित्य में राष्ट्रीय भावना" शीर्षक वाले अप्रकाशित शोध प्रबंध में लिखा है — "उनकी राष्ट्रीयता का मूल रूप देशवासियों को उद्बोधित करने में दिखाई देता है, जिसके अंतर्गत उन्होंने भारतीयों को परतंत्रता जन्य दारुण दुख" को दूर करने के लिए प्रेरित किया है। इस दृष्टि से उन्होंने वाणी और साहित्य, दोनों का सहारा लिया और जेल भी गए। अपने समकालीन अनेक कवियों की तुलना में उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय धारा को देशव्यापी बनाने में विशेष महत्वपूर्ण कार्य किया और युवकों तथा युवतियों को इस कार्य के लिए तैयार किया।" (पृष्ठ 318)।

इस प्रकार त्रिपाठी जी ने राष्ट्रीय भावना के प्रचार-प्रसार में ही अपने को पूर्णतः समर्पित कर दिया। शिक्षा-दीक्षा द्वारा, भारतीयता का भावना द्वारा, अधिकार की जागृति द्वारा, शोषण के खिलाफ़ पैदा की गई गूंज द्वारा, भ्रष्ट एवं दुराचारी नीतियों पर किए गए व्यंग्य द्वारा, सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक असंतुलन पर किए गए प्रहारों द्वारा कवि अपना दायित्व निभाता रहा। ऐसे कवि की राष्ट्रीय शक्ति एवं उद्दाम चेतना को उन्हीं के शब्दों में दोहराया जा सकता है —

जिनके नस नस में विद्युत थी,
आंखों में था क्रोध प्रज्ज्वलित।
छाती में उत्साह भरा था,
वाणी में था प्राण प्रवाहित
मातृभूमि के लिए हृदय में
जिनमें भरी शक्ति थी अविरल।
ग्राम-ग्राम से निकल निकल कर,
ऐसे युवक चले दल के दल।

18.5.2 सामाजिक चेतना एवं सुधार दृष्टि

त्रिपाठी जी के युग में सामाजिक परिवेश अत्यन्त अधोमुख एवं असंतोषजनक था। निर्धनता, अभावग्रस्तता, बेरोज़गारी, मशीनी-त्रास, अनमेल विवाह, बाल-विवाह, छूआछूत, भेदभाव, दहेज प्रथा, ईर्ष्या एवं द्वेष तथा स्वार्थ-साधना आदि से नैतिक पतन हो रहा था। ज़मींदार कृषकों का खून चूस रहे थे। अशिक्षा ने लोगों को भटकाव की ओर धकेल दिया था। ऐसे भयावह एवं घातक वातावरण में राजा राममोहन राय ने सुधार की जो उल्लेखनीय भूमिका निभाई वही भूमिका साहित्य के माध्यम से निभाने वाले सृजकों में रामनरेश त्रिपाठी भी थे। समाज-उन्नति का स्वप्न वे सदैव देखते रहे। वे सामाजिक कुरीतियाँ का विद्रोह करके समाज को एक उज्ज्वल पथ की ओर उन्मुख करते रहे। अनमेल विवाह पर विचार व्यक्त करते हुए कविता-कौमदी में उन्होंने लिखा भी है — "जैसे अजगर चल फिर नहीं सकता वैसे ही वृद्ध भी। जैसे अजगर अपने शिकार को निगल जाता है वैसे ही वृद्ध पति बेचारी अबोध कन्या को निगल जायेगा।" (पाँचवां भाग; पृष्ठ 229) राष्ट्र की छोटी-छोटी सामाजिक बुराइयों को त्रिपाठी जी ने समय-समय पर आड़े हाथों लिया —

इस जाति पाँति की दूत ने प्रतिभापन यश हर लिया,
हम सब को अन्धी भेड़ कर अन्ध कूप में भर दिया।

भारतेन्दु के काव्य में यही चेतना मुखर हुई और द्विवेदी युग में आकर प्रसार पाने लगी। कवि ने "उठो और आलस को त्यागो अपनी दशा सुधारो, तेजहीन निर्बल समाज में फिर नव जीवन डारो" कहकर आलसी एवं निष्क्रिय लोगों को प्रेरित किया। तत्कालीन कृत्रिमता पर निडरता से प्रहार किया। कृत्रिमता से बढ़ रहे दंभ, पाखंड और अधर्म को चुनौती दी। हम अपने हीन भावों के कारण ही गुलाम हैं और यही कारण है कि चंद लोग हम पर राज कर रहे हैं। कवि इस तथ्य को "भूल गए अपने बड़प्पन की याद, हम मूठी भर मानवों की मूठी में समाए हैं" कहकर जन-जन को जगाता है। हिन्दू-मुसलमान तथा ईसाई में एकता स्थापित करने के लिए वे प्रयत्न-रत दिखाई देते हैं —

तू ज्ञान हिन्दुओं में ईमान मुस्लिमों में
तू प्रेम क्रिश्चियन में है सत्य तू सुजन में।

सामाजिक दुख, अभाव, निर्धनता और बेबसी भी उन्हें विकल कर देती थी। वे करोड़ों दुखियों का यथार्थ चित्रण करते हुए कहते हैं —

अन्न नहीं है, वस्त्र नहीं है, रहने का न ठिकाना,
कोई नहीं किसी का साथी अपना और बेगाना।

चारों ओर मची त्राहि-त्राहि और व्याकुल नर-नारी कवि को जनजीवन की बुराइयों से लड़ने-जूझने के लिए बाधित करते हैं। त्रिपाठी जी किसानों की दुर्दशा देखकर भी अत्यंत खिन्न हैं। अंग्रेज़ी शासन-व्यवस्था के कारण पीड़ित कृषक का दुख देखिए —

चिंतित है आश्चर्य चकित है कृषक विकल है दुख से,
कौन काढ़ लेता है उनका कौर अचानक मुख से।

"जगत के जीवन-प्राण किसान" को त्रिपाठी जी आत्मविश्वास का मंत्र देते हैं और क्रान्ति से स्वप्न बांटते हैं —

अब तुम उठो संभालो अपना गुण गौरव, सम्मान
दूर करो अविवेकी जग का यह मिथ्या अभिमान।

इसी प्रकार श्रमिक, मज़दूर, नौकरी पेशा आदि सभी लोगों की व्यथा पीड़ा को कवि ने देखा और महसूस किया। राजा-प्रजा तथा पूँजीपति-गरीब का यह असंतुलित-समीकरण त्रिपाठी जी को हमेशा बेचैन किए रहा। राजा के अत्याचार तथा प्रजा की दर्दनाक दशा, शोषण के षडयंत्र और अपराध के अत्याचार सभी ने कवि को वाणी दी —

शासक दल असहाय प्रजा को घोर कष्ट देता है।
रक्षक से भक्षक बनता है सरबस हर लेता है।

इसी प्रकार ज़मींदार, पूँजीपति राजा, शोषक तथा प्रशासनिक अधिकारियों के अन्याय अत्याचार भी कवि की लेखनी को स्वर देते हैं। सामाजिक आचरणहीनता, मानवीय गुणों का ह्रास, स्वार्थ लिप्सा, विकृत-सभ्यता तथा स्तर-भेद आदि कितने ही सामाजिक रोग हैं, जिन्हें त्रिपाठी जी निडरता एवं निर्भयता से अपनी लोह-लेखनी का शिकार बना कर प्रताड़ित करते रहे। वे इन समस्त अवगुणों को कटु-शब्दों में ललकारते रहे। कवि की इस समाज-सुधारवादी दृष्टि से ही उनके राष्ट्रप्रेम एवं मानवीय दायित्व का भी पता चलता है।

18.5.3 प्रेमानुभूति की उदात्तता

रामनरेश जी स्वच्छन्द काव्य-धारा के उन प्रमुख कवियों में हैं जिन्होंने प्रेम को ईश्वरीय वरदान के रूप में चित्रित करने का सफल प्रयास किया है। त्रिपाठी जी के युग में प्रसाद जी की "प्रेम पथिक" एवं "आँसू" तथा पंत जी की "ग्रंथि" आदि रचनाएँ भी प्रेम विषयक उदात्तता को स्थापित कर रही थीं। इसी परिवेश को समृद्ध करते हुए त्रिपाठी जी ने भी "मिलन", "पथिक" और "स्वप्न" जैसी कृतियों के माध्यम से प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा को आगे बढ़ाया। प्रेम को

जीवन का आदर्श बिन्दु तथा मानव की जीवनाकांक्षा की वरदायिनी शक्ति मानने वाले त्रिपाठी जी ने इसे सौंदर्य का कुंज तथा सक्रियता का स्रोत बनाकर प्रस्तुत किया। जीवन को गति देने वाले इस परम तत्व की महत्ता को कवि रुपायित करते हुए कहता है —

गंध-विहीन फूल हैं जैसे चन्द्र चन्द्रिका हीन।
यों ही फीका है मनुष्य का जीवन प्रेम-विहीन।
प्रेम स्वर्ग है स्वर्ग प्रेम है प्रेम अशंक अशोक।
ईश्वर का प्रतिबिम्ब प्रेम में प्रेम हृदय आलोक॥

त्रिपाठी जी सच्चे प्रेम के पक्षधर थे। भेदभाव, ऊँच-नीच तथा स्तरीय अंतर का प्रेम-लोक में कोई स्थान नहीं है। उनका प्रेम अभिन्न व्यापक एवं विस्तृत दुनिया का प्रेम है। "अति सूधों सनेह को मारग है" की विरासत तथा आत्मबलि एवं त्याग जिसमें विरह ही काम्य है, मिलन नहीं। यही कवि का लक्ष्य है। मिलन तो प्रेम का अंत है। जबकि प्रेम तो अनन्त यात्रा है —

मिलन अन्त है मधुर प्रेम का
और विरह जीवन है।
विरह प्रेम की जागृति गति है,
और सुषुप्ति मिलन है॥

त्रिपाठी जी का प्रेम नायक-नायिका को समाज और राष्ट्र से जोड़ता है। करुणा और आत्मीयता से समृद्ध करता है। देशभक्ति के संघर्ष की प्रेरणा देता है। शारीरिक सौंदर्य के प्रति सहज-स्वीकार्य भाव लेकर चलने वाला प्रेम ही "मिलन" में धीरे-धीरे उदात्तता की ओर उन्मुख हो जाता है। कवि "प्रेम विचित्र वस्तु है जग में, अद्भुत शक्ति निधान" कहकर उसकी प्रभावशीलता को अनुभूत करता है। कवि की प्रेम-दृष्टि देखिए —

i) जिस पर दया-दृष्टि करते हैं मंगलमय भगवान
पूर्ण प्रेम-पीड़ा से पीड़ित होता है वह प्राण।

ii) व्याकुल हुआ प्रेम पीड़ा से, जिसका कभी न प्राण,
भाग्यहीन उस निठुर का है, उर सचमुच पाषाण।

कवि प्रेम भरी चितवन को अमृत से सिंचित मानता है। अपरिमित शक्ति वाला यह प्रेम अत्यंत कल्याणकर है। "अहो, प्रेम में तृप्ति नहीं है, केवल है अनन्त आकर्षण।" कहने वाला कवि व्यक्तिगत प्रेम को स्वदेश प्रेम तक और फिर ईश्वर प्रेम तक ले जाता है। वासनात्मक प्रेम की चर्चा कर कवि उसकी परिणति उदात्तता में करता है। सच्चे प्रेम पथिक को "किन्तु पहुँचना उस सीमा तक जिसके आगे राह नहीं" कहकर वे स्वयं भी प्रेम को चिर-गति तथा गतिशील प्रकृति को ही स्वीकार करते हैं। अतः त्रिपाठी जी का प्रेम वर्णन लौकिक से अलौकिक को, सामान्य से विशेष की ओर फिर विशेष से जन-जन तक की यात्रा को अभिव्यक्ति देता है। प्रियतम कण-कण और जन-जन वासी बन जाता है और यही उदात्तता की चरम सीमा है—

जन जन में प्रेमी को दिखती है प्रियतम की कान्ति
इससे उसे लोक सेवा में, मिलती है अति शांति।

18.5.4 प्रकृति-प्रेम

प्रकृति के पुजारी, पंडित रामनरेश त्रिपाठी का हृदय प्रकृति के नैसर्गिक सौंदर्य से पूर्णतः आपूरित रहा है। उनके प्रत्येक काव्य का नायक प्रकृति का अनन्य-प्रेमी और उपासक है। प्रकृति के सौन्दर्य पूर्ण रूपों का वे अत्यन्त विशद् वर्णन करते हैं। द्विवेदी युग के सर्वोत्तम प्रकृति अनुरागी त्रिपाठी जी के काव्य में प्रकृति कहीं आलम्बन बन कर आती है तो कहीं उद्दीपन। कहीं प्रकृति का संवेदनात्मक रूप उभरता है तो कहीं प्रतीकात्मक। विशेषता यह है कि प्रकृति का दृश्यांकन कवि अत्यंत स्वाभाविक एवं विश्वसनीय ही नहीं, अपितु मोहक एवं आकर्षक ढंग से भी करता है —

i) कोकिल का आलाप, पपीहे की विरहाकुल बानी।
तोता मैना का विवाद, बुल-बुल की प्रेम कहानी।

ii) बार-बार बक पंक्ति गमन से उज्ज्वल फूलों वाली।
मेघपुष्प वर्षा से धूमिल घटा क्षितिज पर काली।

कवि प्रकृति वर्णन में हृदय से रम जाता है और उसकी सौंदर्यमयी आनन्दानुभूति चिरस्थायी बन जाती है। "पथिक" की रचना कवि रामेश्वर के मंदिर के निकट विस्तृत जल-राशि के तट पर करता है तो "स्वप्न" की रचना के समय वह हिम-पर्वतों से घिरे काश्मीर की घाटियों में विचरण करता है। स्फुट रचनाओं में भी प्रकृति सम्बन्धी-अनुभूति मानसिक संवेदनाओं और भावनाओं के अनुरूप ही अभिव्यक्ति पाती है। कहीं संध्या का, तो कहीं रात्रि का दृश्य मुखर होता है। कहीं वर्षा का तो कहीं लालिमा युक्त प्रभात स्वतंत्र एवं आलम्बन रूप में चित्रित होता है। "पथिक कवि" देश भ्रमण में प्रकृति के मनोहारी दृश्यों से भाव-विभोर होता जान पड़ता है -

i) कहीं श्याम चट्टान, कहीं दर्पण सा उज्ज्वल सर है।
कहीं हरे तृण खेत, कहीं गिरि श्रोत प्रवाह प्रखर है।

ii) नीचे नील समुद्र मनोहर ऊपर नील गगन है।
घन पर बैठ बीच में विचरूँ यही चाहता मन है।

कभी कवि "होने लगी वृष्टि रिमझिम कर, अविरत मूसलधार" कहते हुए अपनी मनोदशाओं को अभिव्यक्ति देता है तो कभी "पल्लव-लता कुसुम-कलियों को करती थी अति प्यार" कहकर वियोगिनी नायिका की मानसिक भावना को भी साकार रूप देता है। प्रकृति का आलंकारिक वर्णन भी त्रिपाठी जी के कल्पना-कौशल का परिचायक है। कहीं प्रकृति का अप्रस्तुत विधान, प्रस्तुत को रूपायित करता है तो कहीं प्रकृति का आलंकारिक रूप ही शोभा-वृद्धि का कारण बन जाता है। "पंकज माला सी प्रणयी के मृदु गल-बहियाँ-डाल" में उपमा की छवि मिलती है तो कहीं कहीं अतिशय-कल्पना-मोह उसे ऊहात्मक भी बना देता है। "बीती निशा उषा उठ भाई, पहन सुनहला चीर" कहकर कवि प्रकृति-नायिका का सुंदर मानवीय रूप प्रस्तुत करता है। "मानवीकरण" पर तो त्रिपाठी जी की अनूठी पकड़ है। अनेकों उदाहरण देखे जा सकते हैं —

अंशुमाली के शुभागमन की, बेला समझ समीप
नभ में बुझा चुके सूर भी निज-निज घर के दीप।

इसी प्रकार "फूल पंखुड़ी में पल्लव में, प्रियतम रूप विलोक" और "बार-बार उचक-उचक लहरों में सिन्धु" आदि उदाहरण भी देखे जा सकते हैं। प्रकृति कहीं पृष्ठभूमि बनकर काव्य में आती है तो कहीं उपदेशात्मक रूप लेकर उभरती है। कहीं "प्रतीक रूप में आती है तो कहीं रहस्यात्मक रूप में। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि प्रकृति पुत्र त्रिपाठी जी के काव्य में प्रकृति प्रेरणा बनकर कर्मपथ पर अग्रसर होने की राह प्रशस्त करती है। प्रकृति के मधुर तथा विराट बिम्ब त्रिपाठी जी की खास पहचान हैं और इसी कारण वे द्विवेदी युग के प्रमुख प्रकृति प्रेमी माने जाते हैं।

18.5.5 सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक चेतना

त्रिपाठी जी के काव्य में सांस्कृति एवं ऐतिहासिक चेतना के भी दर्शन होते हैं। राष्ट्रीय भावना एवं देश प्रेम का उद्देश्य लेकर कवि संस्कृति के सभी अंगों का विशद वर्णन करता है तो "हिमालय" आदि के संदर्भ में अपनी आध्यात्मिक दृष्टि का भी परिचय देता है। त्रिपाठी जी अंग्रेज़ी सभ्यता से दूषित "युगीन-संस्कृति" का चित्रण भी करते हैं तो भारतीय संस्कृति के प्रति पूर्ण आस्था एवं श्रद्धा का भाव भी रखते हैं। ईश्वरभक्ति को वे लोक-सेवा का पर्याय मानते हैं। "मैं ढूंढता तुझे था जब कुंज और वन में, तू खोजता मुझे था तब दीन के वतन में" कहकर वे इसे पुष्ट भी करते हैं। "मनुष्यता का अर्थ" समझाने वाला यह गांधीवादी सिपाही सेवा धर्म से बड़ा कोई धर्म नहीं मानता —

सेवा धर्म मुख्य है जग में,
लोक शान्ति प्रद काज।

"रक्त पात करना पशुता है, कायरता है मन की" कहते हुए वे धार्मिक दृष्टि के प्रति जितने सजग रहे हैं "हम भाई बहिनें हैं" कविता में भाईचारे और एकात्मभाव के प्रति भी उतने ही जागरूक जान पड़ते हैं —

आसमान है एक हमारा, एक नाव पर घर है,
है एक ही चिराग हमारा और एक बिस्तर है।

इसी प्रकार, मानवतावादी दृष्टिकोण तथा सत्य और ज्ञान का अवलंब ग्रहण करने का आग्रह भी उन्हें भारतीय संस्कृति के आख्याता रूप में स्थापित करते हैं। गीता का कवि पर गहरा प्रभाव रहा है। ज्ञान-कर्म और भक्ति के सम्मिश्रण में उनकी अटूट आस्था रही है। संसार को परीक्षा-स्थल मानने वाले त्रिपाठी जी मानव को संघर्षरत रहने की प्रेरणा देते हैं —

यह संसार मनुष्य के लिए एक परीक्षा स्थल है।
दुख है प्रश्न कठोर; देख कर होती बुद्धि विकल है।।

इसी प्रकार, "एक-एक तृण दिखलाता है जगदीश्वर की सत्ता" तथा "उसीकी ही ध्वनि गूँज रही है, अणु परमाणु गगन में" जैसी पंक्तियाँ भी कवि के इसी दर्शन को रूपायित करती हैं। पुनर्जन्म में कवि का अटूट विश्वास है। इसीलिए—"निर्भय स्वागत करो मृत्यु का, मृत्यु एक विश्राम स्थल" कहकर वे मानव को भारतीय दार्शनिक भावनाओं की ओर प्रेरित भी करते हैं। नीति संबंधी काव्य रचनाओं में भी कवि के सांस्कृतिक मूल्यों की शक्ति का परिचय सहज ही मिल जाता है।

त्रिपाठी जी ने ऐतिहासिक गरिमा को भी काव्य-बद्ध करके अपने सभ्य-देश की अतुलनीय छवि का मनोहारी चित्रण किया। ज्ञान, धर्म एवं श्रद्धामयी आस्था का प्रतीक यह भारतवर्ष कैसा अद्भुत देश है —

सबसे प्रथम जगत में जो सभ्य था यशस्वी
जगदीश का दुलारा वह देश कौन-सा है?
पृथ्वी निवासियों को जिसने प्रथम जगाया
शिक्षित किया सुधारा, वह देश कौन-सा है?

सभ्यता और गौरव का, महाभारत और रामायण का तथा त्याग और बलिदानी का अन्यतम उदाहरण है भारत। सारा संसार इसका दास था और ये सभी का स्वामी। "आह्वान" कविता में कवि कहता भी है — "क्या तुम भूल गए

जब तुम थे स्वामी और जगत था दास।" आज देश की पराधीनता से कवि दुखी है। इसीलिए वह भारतीय इतिहास के गौरव-चिह्नों को पुनः रेखांकित करते हुए विश्व-मानचित्र पर उकेरना चाहता है। कभी वह "हम थे कभी मनुष्य की संतान के मुकुट" कहकर जगाता है तो कभी देश के वीरों की स्तुति गाकर उत्साह-संचार करता है —

जिसमें दधीचि दानी, हरिश्चन्द्र कर्ण से थे,
सब लोक का हितैषी वह देश कौन सा है।"

इस प्रकार द्रोण, अर्जुन, श्रीकृष्ण एवं भीष्म जैसे कर्मयोगियों की भारत भूमि का कवि मुक्त-कंठ से प्रशस्ति गान करता है। इसी प्रकार कवि महात्मा बुद्ध, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, बल्लभ, चैतन्य महाप्रभु, नानक, कबीर, दयानन्द सरस्वती, कालिदास, माघ, तुलसीदास, सूरदास, चाणक्य एवं तानसेन आदि अनेक गौरव चिन्हों का गुणगान करते हुए उनके द्वारा प्रदर्शित पथ का स्मरण कराता है। यही नहीं कवि को भारतीय इतिहास की वीरांगनाएं भी गौरव-गान के लिए प्रेरित करती हैं और वह दुर्गा, आहिल्या, लक्ष्मीबाई, पद्मिनी, वीरमती, कौशल्या, शकुन्तला, रूक्मिणी आदि माताओं की देन को प्रणाम करता है। स्पष्ट है कि कवि समग्र काव्य में किसी न किसी रूप में भारतीय ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक गौरव का गुणगान करता ही रहा है। भारतीय संस्कृति से उन्हें अपार प्रेम था और ऐतिहासिक विरासत के प्रति वे पूर्णतः समर्पित थे।

18.5.6 लोक साहित्य का मर्म

लोक साहित्य के अंतर्गत लोक गीतों का स्थान प्रमुख होता है। इन्हीं लोक गीतों में लोक जन की, उनके परिवेश एवं परिस्थिति की, समय एवं स्थल की तथा कर्म एवं संस्कारों की लय-युक्त अभिव्यक्ति होती है। त्रिपाठी जी के लोक गीत इसी की साक्षात मिसाल हैं। उनका जन्म भी गाँव में ही हुआ। सन् 1925 में "सरस्वती" पत्रिका में सर्वप्रथम उनके दो लोकगीत प्रकाशित हुए और फिर तो कवि को प्रोत्साहन और प्रेरणा मिलती रही। इसी का परिणाम है कि त्रिपाठी जी ने "काश्मीरी ग्राम गीत", "मारवाड़ के मनोहर गीत", "राजस्थानी झीलों के लोक गीत", कविता कौमुदी (पाँचवां भाग) तथा हमारा ग्राम साहित्य (दो भाग) — जैसे ग्रंथ विशुद्ध लोक गीतों से ही सुसज्जित किए हैं।

त्रिपाठी जी के लोक गीतों को यों तो कई भागों में बाँटा जा सकता है, किन्तु स्थूलतः उन्होंने मुण्डन, जनेउ, नहछु तथा विवाह संबंधी "सोहर" (मंगल गीत) गीत लिखे हैं। यही नहीं, कवि पुत्र-कामना, पति का पत्नी से संबंध, ननद-भाभी के झगड़े, पति-परदेस-गमन, नेग-बधाई, व्रत-पूजा आदि कई विषयों पर सुन्दर एवं मनोहारी गीत लिखता है। कभी कवि अविवाहित कन्या के पिता का वह रूप चित्रित करता है, जिसमें उसे नींद नहीं आती और कन्या के कारण ही उसका सिर भी झुक जाता है —

i) कुछ रे सुतीला कुछ जागीला बेटी नींदो न आवे
जाहि घरे कन्या कुंवारि बेटी नींद कैसे आवे।

ii) गिरि नवे पर्वत नवे हम तो ना नइयो
बेटी तोहरे कारन हम जग में माथ नवाये॥

उसी प्रकार निःसन्तान व्यक्ति का उपहास, गर्भवती स्त्री के लक्षण, यज्ञोपवीत वर्णन, बेमेल विवाह, ऋतु और व्रत संबंधी गीत, मेले के गीत, विभिन्न जातियों के गीत और श्रम-परिश्रम के गीत आदि कितने ही उदाहरण देखे जा सकते हैं। सीधी-सुबोध भाषा, स्वाभाविक चित्रण, लय और गति का अद्भुत सम्मिश्रण, सुंदर उपमाएँ तथा अत्यन्त सटीक कहावतों का प्रयोग सभी कुछ गीतों की मधुर अभिव्यक्ति में चार चाँद लगा देते हैं। "बारहमासा" की कुछ पंक्तियाँ देखिए कितनी सुन्दर हैं —

प्रात में कातिक पूरा है तुसार
मोहि छोड़ि कन्त भये बनिजार
मैं न झूलौंगी।

माघ मांस घन परा है तुसार, काँपइ हाथ और काँपइ गात
काँपइ सेज तुरगहि खाट, कि मैं नाहीं जैहों झूलने तुम जाव
मैं न झूलौंगी।

कुल मिलाकर कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति एवं वातावरण से प्रभावित लोक साहित्य की मार्मिक रचना करने वाले कवियों में रामनरेश त्रिपाठी प्रमुख हैं। ग्राम गीतों का यह अद्भुत-सौन्दर्य कवि की सौन्दर्य दृष्टि एवं अनुपम कल्पना शक्ति का प्रमाण है।

बोध प्रश्न 2

1 त्रिपाठी जी की कविता में व्यक्त राष्ट्रीय भावना पर आठ पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....
....
....
....
....

2 त्रिपाठी जी की समाज-सुधार-दृष्टि को स्पष्ट करने वाले कोई दो काव्यांश लिखिए।

....
....
....
....
....
....

3 रामनरेश त्रिपाठी ने अपने काव्य में प्रेम के उदात्त रूप की स्थापना की है। लगभग आठ पंक्तियों में सिद्ध कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....

4 त्रिपाठी जी के काव्य में व्यक्त प्रकृति-चित्रण पर आठ पंक्तियाँ लिखिए।

....
....
....
....
....
....
....
....

5 त्रिपाठी जी ने लोक-साहित्य के अंतर्गत किन-किन प्रमुख विषयों को चुना? चार-पाँच पंक्तियों में लिखिए।

....
....
....
....
....

18.6 रचना-विधान : विविध आयाम

आधुनिक साहित्य के इतिहास में और विशेषतः खड़ी बोली के कवियों में त्रिपाठी जी का नाम विषय ही नहीं भाषा एवं शैली की विशिष्टता के कारण भी अत्यन्त गौरव से लिया जाता है। साहित्यिक एवं परिमार्जित भाषा तथा अभिव्यञ्जना की कलात्मक-दृष्टि के कारण ही त्रिपाठी जी ने अपनी एक विशिष्ट पहचान भी बनाई। सहज-स्वाभाविक एवं विशिष्ट-आलंकारिक—दोनों ही प्रयोग विषय एवं संदर्भ के अनुकूल करते हुए त्रिपाठी जी प्रेषणीय को रमणीय एवं प्रभावोत्पादक

बनाकर प्रस्तुत करते हैं। भाषा, शब्दशक्ति, गुण, अलंकार, मुहावरे, लोकोक्तियाँ और छंद आदि सभी उपादानों का प्रयोग इतना सुंदर एवं सार्थक बन गया है कि कवि के अभिव्यञ्जना-कौशल का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। यहाँ हम संक्षेप में इन सभी पक्षों पर विचार करेंगे।

18.6.1 काव्य भाषा

त्रिपाठी जी युगीन स्थितियों एवं आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर काव्य सृजन कर रहे थे और विषय को पूर्णतः प्रेषणीय बनाने के लिए उन्होंने जो भाषा चुनी और अपनाई—उसकी आत्मा को भली प्रकार परखा भी। सहज और सरल व्यक्तित्व वाले कवि ने यह समझ लिया कि संस्कृत-तत्सम-प्रधान भाषा हिन्दी की पर्याय नहीं बन सकती। यही कारण है कि उन्होंने अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध की भाँति संस्कृत-बहुल हिन्दी को न चुनकर **व्यावहारिक एवं लोक प्रचलित भाषा** का चयन किया। उच्चारण-सुविधा एवं सरसता को भी ध्यान में रखकर कवि पदों को तोड़ता-जोड़ता है। श्रुतिमधुर बनाने का प्रयास भी इसमें दिखाई देता है। उनकी भाषा में **अर्द्ध तत्सम** एवं **तद्भव शब्दों** का प्रयोग-बाहुल्य सहज ही देखा जा सकता है —

> नृप की **निठुर** आज्ञा में सूचित थी सब सेना।
> × × × ×
> देश प्रेम से **पूरण** प्लावित उनका उच्च हृदय है।
> × × × ×
> किया निकाल देश सीमा से बाहर बड़े **जतन** से।

वर्ण-मैत्री में "विरह-विताड़ित, "सुषमा-सौन्दर्य" तथा "विनोद-विभूषित" जैसे कई प्रयोग सरसता एवं प्रभावोत्पादकता बढ़ाते हैं। इसी प्रकार "राग-रथी, रवि-राग पथी, अविराम विनोद बसेरा" में संस्कृत पदावली का प्रयोग भी देखा जा सकता है।

त्रिपाठी जी ने **बिम्बों** के सुंदर एवं सटीक प्रयोग से भाषा को अन्यतम शक्ति प्रदान की है। ये भाव-गर्भित शब्द-चित्र सर्जक कल्पना के परिचायक ही हैं। सरल, मिश्र, जटिल तथा पूर्ण आदि कई बिम्बों के सहज-दर्शन इस काव्य में होते हैं। दुख-दैन्य के शब्द-चित्र बनाता यह बिम्ब देखिए —

> धधक रही सब ओर, भूख की ज्वाला है घर-घर में।
> मांस नहीं है निरी साँस है शेष अस्थि पंजर में।।

इसी प्रकार "जाता हूँ मैं, जल विहार को, तरसी में तरूणी को लेकर" जैसी पंक्तियों में सरल बिम्ब उभरकर आते हैं। त्रिपाठी जी ने काव्य भाषा में नाद-सौन्दर्य का भी चामत्कारिक प्रयोग किया है —

> बहता है अविराम निरन्तर कल-कल स्वर से नाला।
> × × × ×
> गिरता उठता फेन बहाता, करता अति कोलाहल हर-हर।

इस प्रकार त्रिपाठी जी ने अपनी काव्य भाषा को समृद्ध एवं शक्तिमान बनाने के लिए गुल, आमद, हुक्म, हौसला, मसोसकर, मुहताज, हाकिम, खुलासा तथा दरवाज़ा आदि कितने ही **उर्दू के शब्द** प्रयुक्त किए और पौढ़ाया अठिलाठी, ढौर मीचु, सेऊंगी, असवारी, माती, पठाऊं, वांच आदि **देशज शब्दों** का भी प्रयोग किया। उड़ीक एवं बूढ़ जैसे **पंजाबी भाषा के शब्द** भी प्रयुक्त किए। त्रिपाठी जी भाषा-सौष्ठव को निखारने के लिए **उपसर्ग-प्रत्यय** का भी सुंदर प्रयोग करते हैं। प्रसाद गुण पूर्ण, सरल और सरस भाषा के सृजक रामनरेश त्रिपाठी ने इन्हीं भाषिक गुणों से रचनाओं को भावमयी और मार्मिक बना दिया है। संयोग शृंगार, करुण और वियोग आदि भावों की अभिव्यक्ति के लिए वे कोमल कान्त पदावली का प्रयोग करते हैं तो भावनाओं में संघर्ष, विद्रोह तथा उत्साह के प्रतिपादन हेतु **पौरुष (ओज)** भाव का समाहार करते हैं —

> पथिक नाम की सुधि आते ही परम क्रोध चढ़ आया।
> दृग विस्फारित नाक प्रश्वासित हुई प्रकम्पित काया।।

इसी प्रकार **प्रसाद एवं माधुर्य** के उदाहरण भी अनेकों उपलब्ध हैं। आचार्य शुक्ल ने कहा भी है — "पंडित रामनरेश त्रिपाठी का नाम भी खड़ी बोली के कवियों में बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। भाषा की सफाई एवं कविता के प्रसाद गुण पर उनका बहुत ज़ोर रहता है।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास; पृष्ठ 704)

इस प्रकार कह सकते हैं कि खड़ी बोली पर त्रिपाठी जी का अच्छा अधिकार था और उन्होंने उसे निखारा-सँवारा भी। शब्द-शक्ति, मुहावरे-लोकोक्तियाँ तथा अलंकार-छंद पर हम अभी आगे विचार करेंगे किन्तु यहाँ इतना कहना उचित होगा कि ब्रजभाषा, अवधी, उर्दू, फ़ारसी, संस्कृत, बंगला, मराठी एवं गुजराती भाषाओं का अच्छा ज्ञान रखने वाले त्रिपाठी जी की भाषा गंभीर विषयों के प्रतिपादन में पूर्णतः सफल एवं समर्थ है।

18.6.2 लाक्षणिक एवं व्यंजनात्मक शैली

त्रिपाठी जी की शैली विषय और भाव के अनुरूप बदलती रहती है। स्वाभाविक, सहज एवं सरल शैली उनकी विशिष्ट पहचान है तो लाक्षणिक एवं व्यंजनात्मक प्रस्तुति भी उनके कलात्मक-दृष्टिकोण की परिचायक। यों अभिधा के प्रयोग

में उनका मन अधिक रमा है, किन्तु प्रकृति-चित्रण में वे लक्षणा का सुंदर प्रयोग करते हैं। "विद्युत-सी खिलखिला पड़ी वह" में "खिलखिलाना" शब्द अपनी व्यंजनात्मकता के साथ भाव-लक्षित होकर लाक्षणिक-वैचित्र्य प्रस्तुत करता है। "सरस विमल निरलस कलरवमय" जैसी पँक्तियों में कई जगह मृदुल शब्दों का स्वाभाविक सौन्दर्य भी शैली को सरस बनाता है। त्रिपाठी जी वर्णनात्मक शैली का प्रयोग भी करते हैं और भावनात्मक शैली का भी। मूलतः कवि जनजीवन को ऊँचा उठाने के लिए प्रभावोत्पादक-शैली में काव्य सृजन करता है। खण्ड काव्यों में वर्णनात्मक शैली देखी जा सकती है और मुक्तकों में भावात्मक शैली। हिन्दी के प्राचीन और नवीन छन्दों को अपनाते हुए कवि अधिकारपूर्ण प्रयोग करता है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा तथा दृष्टांत आदि अलंकार शैली को सुसज्जित कर देते हैं। कवि ने संदर्भ के अनुकूल ही सरस, अलंकृत एवं समास शैली का चयन भी किया है।

अतः त्रिपाठी जी ने अपनी शैली को अधिकांशतः मुख्यार्थ का बोध कराने वाली शक्ति "अभिधा" से ही सम्पन्न रखा है। किन्तु जहाँ कहीं भी वे लक्षणा और व्यंजना का प्रयोग करते हैं, पूरे विश्वास एवं अधिकार से करते हैं।

18.6.3 लोकोक्ति एवं मुहावरे

त्रिपाठी जी के काव्य में लोकोक्ति एवं मुहावरों का प्रयोग भाषा की शक्ति संवर्द्धन के लिए किया गया है। सरसता, जीवंतता एवं शक्तिमान बनाने का दायित्व निभाने में लोकोक्ति और मुहावरे काव्य में भावाभिव्यंजना की अद्भुत क्षमता भर देते हैं। त्रिपाठी जी ने लोक गीत और लोक कथाओं में तो लोकोक्तियों का तो हृदयस्पर्शी प्रयोग किया ही है, साथ ही खंड काव्य एवं मुक्तकों में भी इनकी रमणीयता देखी जा सकती है। इन लोकोक्तियों में गागर में सागर भरने की विशेषता तो है ही, नीति का प्रेरक पुट भी जी भर कर मिलता है। सांसारिक व्यवहार-पटुता और सामान्य बुद्धि के दुर्लभ दर्शन भी यहाँ होते हैं। मनोरंजन करने वाली पहेलियों को भी त्रिपाठी जी ने कई जगह प्रयुक्त किया है। "हमारा ग्राम साहित्य" तथा "घाघ और भड्डरी" नामक संग्रहों में लोकोक्तियों और पहेलियों का विविध विषयों की मार्मिक अभिव्यक्ति के लिए प्रयोग किया गया। कवि किसानों के वर्षा ज्ञान, खेती संबंधी, स्वास्थ्य संबंधी तथा यात्रा, शुभाशुभ, छींक, छिपकली आदि से सम्बद्ध सामाजिक साहित्यिक कहावतों का प्रयोग बहुत सुंदर ढंग से करता है। ब्रज, अवधी, भोजपुरी तथा राजस्थानी प्रदेशों की कहावतें भी संग्रह में संजोता है। अवधी की एक कहावत देखिए —

सूकरवारी बादरी, रहे सनीचर छाय
तो यों भाखे भड्डरी, बिन बरसे न जाय।

इसी प्रकार "जा दिन जेठ में बहे पुरवाई, ते दिन सावन धूरि उड़ाई", "चमके पच्छिम उत्तर और, तब जान्यों पानी है, जौर", "हथिया पूँछ डोलावे, घर बैठे गहूँ आवे", "लाग बसंत, ऊख पकंत" जैसी कई कहावतें कवि ने प्रस्तुत की हैं। सामाजिक कहावतें भी त्रिपाठी जी के समाज-ज्ञान की परिचायक है। "जो विधवा है करै सिंगार, ओहि से सदा रहयो हुशियार", "बिन घरनी घर भूत का डेरा", "बहन घर भाई कुत्ता, सासरे जमाई कुत्ता", "अति भक्ति चोर के लच्छन", "आंत भारी, माथ भारी", "ओछे की प्रीत बालू की भीत" तथा "चोर चोर मौसेरे भाई" इसी प्रकार की कहावतें हैं। इसी प्रकार, त्रिपाठी जी ने कुछ पहेलियों का भी बहुत सुंदर प्रयोग किया है। "पाजामे" संबंधी सुंदर पहेली देखिए —

दुइ मुँह छोट एक मुँह बड़ा, आधा मानुष लीले खड़ा।
बीचे बीच लगावे फांसी, नाम सुने तो आवे हांसी॥

मुहावरों का भी कवि ने संदर्भ एवं विषय के अनुकूल प्रयोग कर काव्य भाषा को अलंकृत एवं प्रभावी बनाया है। **गाल बजाना, बाट जोहना, एक पंथ दो काज, गाज गिरना, मन मसोस कर रह जाना, दूध की लाज रखना, मन की कली खिलना, कौड़ी को मुहताज होना** आदि कई प्रयोग देखे जा सकते हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है —

i) कुछ हैं वाह-वाह के प्रेमी निर्भय **गाल बजाते**।

× × × ×

ii) हार गई मैं **बाट जोहती** आये नाथ न मेरे।

× × × ×

iii) ईश्वर भक्ति लोक-सेवा है **एक अर्थ दो नाम**।

× × × ×

iv) हाय-हाय इस अधम स्वार्थ पर **पड़ी न अब तक गाज**।

× × × ×

v) किया जिन्होंने स्वर्ण भूमि को **कौड़ी के मुहताज**।

18.6.4 अप्रस्तुत विधान

त्रिपाठी जी के समग्र काव्य में अलंकार भाषा की पुष्टि एवं राग की परिपूर्णता के लिए भी प्रयुक्त हुए हैं। इनके सहज प्रयोग से भावों का उत्कर्ष ही स्पष्ट हुआ है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अनुप्रास, विरोधाभास, मानवीकरण

दृष्टान्त तथा **प्रतीक** आदि सहज एवं साधारण अलंकारों का ये शृंगार भाषा के सौंदर्य को और निखारता है। **विरोधाभास** अलंकार का सौन्दर्य देखिए —

अब जाना है प्रिये तुम्हारे तन में है वह अद्भुत पावक
समीपस्थ को शीतल है जो किन्तु दूरवर्ती को दाहक

× × ×

ii) मेरे करुणा, निधि का आसन गरम होगा,
कौन जाने कब मेरे शीतल उसास से।

इसी प्रकार, "तल-तरंगित, सरित सलिल में उसकी प्रभा ललाभ" में छेकानुप्रास की छटा है तो "प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है, प्रेम अशंक अशोक" में उपमेयोपमा का निखार। नवीन उपमानों की अद्भुत कल्पना "करूणा सी मृदु धर्म गीत सी, शुद्ध कल्पना सी सुख संकुल" में देखी जा सकती है तो "आँखें विष में बूढ़ रही-सी थीं जलहीन सजल हों" में श्लेष का चमत्कार है। "विष" यहाँ अश्रु एवं विरह-विष का अर्थ लिये है। यहाँ अलंकारों का प्रयोग अभिव्यक्ति की स्पष्टता, भावों की प्रभविष्णुता और भाषागत प्रेषणीय धर्म के निर्वाह के लिए किया गया है। सादृश्य, साधर्म्य, प्रभाव एवं विरोध मूल आदि कई प्रकार के अलंकार प्रयुक्त हुए हैं। कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं —

उत्प्रेक्षा : निकल रहा है जल निधि तल पर दिनकर बिम्ब अधूरा।
कमला के कंचन मंदिर का **मानों** कान्त कंगूरा ॥

उदाहरण : गन्ध विहीन फूल है जैसे चन्द्र चन्द्रिका-हीन।
यों ही फीका है मनुष्य का जीवन प्रेम-विहीन ॥

दृष्टान्त : आते हैं विघ्नों के झोंके बारम्बार प्रचण्ड।
गिरते हैं तरू पर रहता है गिखिर अटल अखण्ड ॥

मानवीकरण : प्रतिक्षण नूतन वेष बनाकर रंग-बिरंग निराला।
रवि के सम्मुख थिरक रही थी नभ में वारिद बाला ॥

× × × ×

हा! यह फूल किसी दिन अपनी अनुपम सुन्दरता से गर्वित
आया था जग में उमंग से किसी वासना से आकर्षित ॥

उल्लेख : प्राण वल्लभे! प्रिये! सुवदने, इन्दीवर-आयत-दल लोचनि
प्रेम-तरंगिणि। चित-विहारिणी, हे सुभगे! भव ताप विमोचिनी।

18.6.5 छन्द-विधान

कविता के लिए लयबद्ध होना उसकी अमरता का सूचक होता है। छन्द-विधान सामान्य मनोवेगों में ध्यान सम्बन्धी सजगता तथा संवेदनशीलता की अभिवृद्धि में सहायक होता है। त्रिपाठी जी ने भी इसी दृष्टि से अपने समग्र काव्य में छंदों को अपनाया है। अधिकांशतः वे मात्रिक छंदों का ही चयन करते हैं और इसी से संगीतात्मकता की अधिक संभावना बनती है। वे "पथिक" में "**सार**" छन्द का, "स्वप्न" में 16-16 मात्राओं पर यति और अन्त में एक गुरू, दो लघु वाले "समान सवाई" का तथा "मिलन" में "**सारसी**" छंद का प्रयोग करते है। कहीं-कहीं लय भंग भी होती जान पड़ती है किन्तु फिर भी छन्द विधान ने काव्य को नियमित करने की सफल भूमिका निभाई है।

त्रिपाठी जी ने "उर्दू के बहरों" को भी काव्य के नियमन के लिए अपनाया है। "अन्वेषण", "हर ही में जीत" जैसी कविताओं में यही छंद प्रयुक्त हुआ है। इनके अतिरिक्त स्फुट रचनाओं में "तोटक", "विधाता", "छप्पय" तथा "ताटंक" आदि छन्दों का भी सफलतम प्रयोग है। "शरद-तरंगिनी" कविता में संस्कृत के वर्णिक छन्दों का प्रभाव स्पष्ट है। ऐसे छन्द जिनमें क्रिया अंतिम चरण में आती है, वे भी कवि को अत्यन्त प्रिय रहे हैं। "स्वप्न" में इनका अधिक प्रयोग हुआ है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ये सभी छन्द त्रिपाठी जी की काव्य भाषा को शक्ति और नियमन प्रदान करते हैं। कुछ दोष होने पर भी छन्द विधान की संगीतात्मकता और लयात्मकता उसे ताकत देती है।

18.7 रामनरेश त्रिपाठी का योगदान

इस समग्र विवेचन के बाद यह तो स्पष्ट ही है कि कवि रामनरेश त्रिपाठी के काव्य में सत्य, शिव और सौंदर्य का सुंदर समन्वय मिलता है। युगीन स्थितियों का अनुभव कवि को प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति की प्रेरणा देता है और कवि अपने काव्य से आदर्श तथा औदात्य के संस्कार पैदा कर व्यक्ति को राष्ट्रहित एवं समष्टि कल्याण की राह दिखाता है। "मिलन" में कवि प्रेम, करुणा, साहस, आत्मबलिदान, जनसेवा तथा सर्वहारा वर्ग के लिए सहानुभूति जैसे मूल्यों की स्थापना करता है तो "पथिक" और "स्वप्न" के माध्यम से भी देश भक्ति, स्वातंत्र्य-कामना, प्रकृति प्रेम, आत्म-त्याग, व्यक्ति-स्वातंत्र्य, चरित्र की उदात्तता तथा आदर्श जीवन दृष्टि की ओर उन्मुख करने का उद्देश्य रखता है। इसी प्रकार मुक्तकों में भी जन-ऐक्य का बल जनता को दिखाया गया है। प्रेम चिन्तन में कवि औदात्य और आत्मिकता का समावेश करता है।

निष्क्रिय-समाज को कर्मयोग का संदेश देकर कवि समाज-सुधारक की भूमिका भी निभाता है। इसके अतिरिक्त राजनैतिक यथार्थ, व्यंग्य-प्रहार, नारी उद्धार, जात पांत के भेद का अंत आदि कई दायित्व कवि एक साथ निभाता है। क्रान्ति का यह दूत एक तरफ अंग्रेज़ों के अत्याचार के खिलाफ आवाज़ बुलन्द करता है तो दूसरी तरफ अहिंसक परिवर्तन की "लौ" जलाने की निष्ठा प्रदान करता है।

प्रकृति सौंदर्य, अभिव्यंजना-कौशल तथा लौकिक साहित्य की मार्मिक अभिव्यक्ति सभी कुछ कवि की मौलिक एवं अन्यतम प्रतिभा तथा सौन्दर्य-दृष्टि को प्रकाशित करते हैं। निश्चित ही त्याग और भोग, विलास और सादगी, वीरता और अहिंसा, स्वछंदता और संयम के बीच एक स्वस्थ संतुलन ही त्रिपाठी जी की कविता का प्रमुख स्वर है। त्रिपाठी जी के खंड काव्यों के कथानक एकरसता लिए हुए भी अपनी काव्य यात्रा को सफलता से पूरा करते हैं। प्रेम, विरह तथा पात्रों का आदर्श चरित्र सभी कुछ कवि की दृष्टि के परिचायक हैं। हालांकि त्रिपाठी जी का समग्र काव्य किसी विलक्षण-प्रतिभा का सूचक नहीं, किन्तु फिर भी, भावनात्मक-उद्वेलन देकर कर्तव्य-पथ की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा देने वाला यह काव्य संसार अपने आप में महान है। हिन्दी-साहित्य-संसार त्रिपाठी जी के इस योगदान को कभी विस्मृत नहीं कर सकता।

बोध प्रश्न 3

1 पंडित रामनरेश त्रिपाठी को कौन-कौन सी भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। दो पंक्तियों में लिखिए।

....

....

2 त्रिपाठी जी की काव्य-भाषा पर एक उदाहरण देकर पाँच पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

3 त्रिपाठी जी के काव्य में प्रयुक्त मुहावरे और लोकोक्तियों से काव्य सौन्दर्य में अपार वृद्धि हुई है। दो-दो उदाहरण देकर कुल आठ पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

4 त्रिपाठी जी के काव्य की शोभा वृद्धि करने वाले अप्रस्तुत विधान में से किन्हीं दो अलंकारों का उदाहरण देते हुए आठ पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

18.8 काव्य वाचन तथा संदर्भ सहित व्याख्या

द्विवेदी युगीन, किन्तु द्विवेदी-मण्डल से बाहर रहकर अपने समग्र-साहित्य द्वारा एक विशिष्ट एवं अन्यतम स्थान बना लेने वाले इस महान कवि रामनरेश त्रिपाठी के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व का गहन अध्ययन आपने अभी किया। अब आपके पाठ्यक्रम में निर्धारित त्रिपाठी जी द्वारा विरचित दो कविताएँ "अन्वेषण" एवं "वह देश कौन-सा है?" प्रस्तुत हैं। सर्वप्रथम इन कविताओं का गम्भीरता से वाचन करें और तदोपरान्त इसके प्रमुख अंशों की सप्रसंग व्याख्या। साधारण एवं सरल अंशों की व्याख्या का प्रयास आप स्वयं करें। तो आइए, सर्वप्रथम काव्य वाचन करें।

काव्य वाचन

अन्वेषण[1]

मैं ढूंढता तुझे था जब कुंज और वन में,
तू खोजता मुझे था तब दीन के वतन में;

तू आह बन किसी की मुझको पुकारता था।
मैं था तुझे बुलाता संगीत में, भजन में।

मेरे लिए खड़ा था दुखियों के द्वार पर तू,
मैं **बाट जोहता**[2] था तेरी किसी चमन में।

बन कर किसी के आँसू मेरे लिए बहा तू,
मैं देखता तुझे था माशूक[3] के बदन में।

दुख से रुला-रुलाकर तूने मुझे चिताया[4],
मैं मस्त हो रहा था तब हाय! अंजुमन[5] में।

बाजे बजा-बजाकर मैं था तुझे रिझाता,
तब तू लगा हुआ था पतितों[6] के संगठन में।

मैं था विरक्त[7] तुझसे जग की अनित्यता[8] पर,
उत्थान भर रहा था तब तू किसी पतन में।

तू बीच में खड़ा था बेबस गिरे हुओं के,
मैं स्वर्ग देखता था, झुकता कहां चरन में?

तूने दिये अनेकों अवसर न मिल सका मैं,
तू कर्म में मगन था, मैं व्यस्त था कथन में।

हरिचन्द्र और ध्रुव ने कुछ और ही बताया,
मैं तो समझ रहा था तेरा प्रताप[9] धन में।

तेरा पता सिकन्दर को मैं समझ रहा था।
पर तू बसा हुआ था **फ़रहाद कोहकन** में[10]

क्रीसस को "हाय" में था करता विनोद तू ही,
तू ही विहँस रहा था महमूद[11] के सदन में।

प्रह्लाद जानता था तेरा सही ठिकाना,
तूही मचल रहा था मंसूर की रहन में।

आखिर चमक पड़ा था गान्धी की हड्डियों में,
मैं तो समझ रहा था सुहराब पील-तन में।

कैसे तुझे मिलूँगा जब भेद इस क़दर है?
हैरान होके भगवन! आया हूँ मैं सरन में।

तू रूप है किरन में, सौन्दर्य है सुमन में,
तू प्राण है पवन में, विस्तार है गगन में।

ज्ञान हिन्दुओं में, ईमान मुसलिमों में,
बिस्वास क्रिश्चियन में, तू सत्य है सुजन में।

1. खोज 2. इंतज़ार करना 3. प्रेमिका 4. जगाना या याद दिलाना 5. महफिल या मजलिस 6. गिरे हुए 7. उदासीन 8. अस्थिरता 9. कृपा या ताकत 10. पहाड़ खोदकर नहर निकालने वाले (शीरी-फरहाद के नायक) में 11. जो स्तुत्य या प्रशंसनीय हो 12. बेचैन या धैर्यहीन।

हे दीनबन्धु! ऐसी प्रतिभा प्रदान कर तू,
देखूँ तुझे दृगों में, मन में तथा बचन में।

कठिनाइयों, दुखों का इतिहास ही सुयश है,
मुझको समर्थ कर तू बस कष्ट के सहन में।

दुख में न हार मानूँ, सुख में तुझे न भूलूँ,
ऐसा प्रभाव भर दे, मेरे अधीर[12] मन में।

(स्फुट)

वह देश कौन-सा है ?

मनमोहिनी[1] प्रकृति की जो गोद में बसा है,
सुख स्वर्ग-सा जहाँ है, वह देश कौन-सा है ?
जिसका चरण निरन्तर रतनेश[2] धो रहा है,
जिसका मुकुट हिमालय, वह देश कौन-सा है ?
नदियाँ जहाँ सुधा[3] की धारा बहा रही हैं
सींचा हुआ सलोना, वह देश कौन-सा है ?
जिसके बड़े रसीले फल, कंद, नाज, मेवे,
सब अंग में सजे हैं, वह देश कौन-सा है ?
जिसके सुगंध वाले सुन्दर प्रसून[4] प्यारे,
दिन-रात हँस रहे हैं, वह देश कौन-सा है ?
मैदान, गिरि, वनों में हरियालियाँ लहकतीं[5],
आनंदपथ जहाँ है, वह देश कौन-सा है ?
जिसकी अनंत धन से धरती भरी पड़ी है,
संसार का शिरोमणि[6] वह देश कौन-सा है ?
सबसे प्रथम जगत में जो सभ्य था यशस्वी,
जगदीश का दुलारा वह देश कौन-सा है ?
पृथ्वी निवासियों को जिसने प्रथम जगाया,
शिक्षित किया, सुधारा, वह देश कौन-सा है ?
जिसमें हुए अलौकिक तत्वज्ञ ब्रह्म ज्ञानी,
गौतम, कपिल, पतंजल, वह देश कौन-सा है ?
छोड़ स्वराज तृणवत्[7] आदेश से पिता के,
वह राम थे जहाँ पर, वह देश कौन-सा है ?
निस्वार्थ शुद्ध प्रेमी भाई भले जहाँ थे,
लक्ष्मण भरत सरीखे, वह देश कौन-सा है ?
देवी पतिव्रता श्री सीता जहाँ हुई थी,
माता-पिता जगत का, वह देश कौन-सा है ?
आदर्श नर जहाँ पर थे बाल ब्रह्मचारी,
हनुमान, भीष्म, शंकर, वह देश कौन-सा है ?
विद्वान् वीर, योगी, गुरु राजनीतिकों के,
श्रीकृष्ण थे जहाँ पर, वह देश कौन-सा है ?
विजयी बली जहाँ के बेजोड़ शूरमा थे,
गुरु द्रोण, भीम, अर्जुन, वह देश कौन-सा है ?
जिसमें दधीचि, दानी हरिश्चन्द्र, कर्ण से थे,
सब लोक का हितैषी वह देश कौन-सा है ?
वाल्मीकि व्यास ऐसे जिसमें महान् कवि थे,
श्रीकालिदास वाला वह देश कौन-सा है ?
निष्पक्ष[8] न्यायकारी जन जो पढ़े लिखे हैं,
वे सब बता सकेंगे, वह देश कौन-सा है ?
हैं तीस कोटि[9] भाई, सेवक, सपूत जिसके,
भारत सिवाय दूजा वह देश कौन-सा है!

प्रसंग एवं संदर्भ सहित व्याख्या :

"अन्वेषण"

i) मैं ढूंढता तुझे था ....पतितों के संगठन में।"

1. मन को मोहने वाली, 2. समुद्र, 3. अमृत, 4. फल-फूल, 5. लहराती, 6. मस्तक पर धारण करने योग्य, 7. तिनके के समान 8. तटस्थ या बिना किसी पक्षपात के 9. करोड़।

प्रसंग एवं संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ बहुमुखी-प्रतिभा के समर्थ-साहित्य स्रष्टा तथा द्विवेदी-युगीन काव्याकाश के उज्ज्वल नक्षत्र पंडित रामनरेश त्रिपाठी की सशक्त-लेखनी द्वारा लिखी गई है। खंड काव्य एवं मुक्तक काव्य पर विशिष्ट अधिकार रखने वाले त्रिपाठी जी की मुक्त रचना "अन्वेषण" से ली गई इन पंक्तियों में युगीन समाज को भटकाव के पथ से निकालकर सन्मार्ग पर आने की प्रेरणा दी गई है। यह कविता उन प्रभु-भक्तों को राह दिखाती है जो प्रभु-निर्मित मनुष्य एवं उसकी पीड़ा से बाहर ईश्वर को देखना चाहते या देखते हैं। कवि ईश्वर को सीधे सम्बोधित करते हुए समाज एवं राष्ट्र को जागृत करता है। कुंजों, वनों, महफिलों और मन्दिर-मस्जिदों में ईश्वर को पूजने या ढूंढने वालों पर त्रिपाठी जी व्यंग्य करते हैं। वे कहते हैं —

व्याख्या : हे प्रभु! मैं तेरा एक भक्त तुझे न जाने कब से वन-उपवन में खोज रहा हूँ और तेरा अभी तक साक्षात्कार नहीं कर सका हूँ, जबकि मेरा या वन-उपवन में तुम्हें ढूंढने वाले हम भक्तों का दुर्भाग्य है कि तुम हमें गरीब, बेसहारा एवं दीन-हीन-जनों के शहर और राष्ट्र में खोजते रहे और हमें इसका ज्ञान न हो सका। हमें ये ज्ञान न था कि भगवान दीन-हीनों की सेवा में, उनकी सहायता और सहानुभूति में ही मिलते हैं। हे ईश्वर! तुम तो किसी गरीब और दुःखी की आह, वेदना या पीड़ा का रूप धारण कर हमें अपनी ओर बुलाते रहे किन्तु हम मूर्ख और नादान तुम्हें भजन-कीर्तन एवं जागरण आदि के इस दिखावटी-आडंबर में तलाशते रहे। मैं निपट गंवार चमन की बहारों में तेरी प्रतीक्षा करता रहा था। अपने जीवन का समय नष्ट कर दिया जबकि तू दीन-दुखियों के द्वार पर मेरा इंतज़ार करता रहा। हम सांसारिक मोह-माया में डूबे काम-ग्रस्त लोग तुझे पहचान न सके। तुझे प्राप्त करने या तुझ तक पहुँचने की डगर को मैं समझ न सका वर्ना ऐसा न होता कि तुम दुखी दलितों की आंखों से आंसू बनकर गिरते-बहते और मैं तुम्हें अपनी प्रेमिका के स्वरूप में ही तलाशता रहता! हे प्रभो! मैं पथ-विचलित सांसारिक जीव हूँ और यही कारण है कि मैं तुम्हें और तुम्हारे सही स्थान की पहचान न सका। तुम मुझे बार-बार और लगातार जगाते रहे, कई बार तुमने मुझे दुःख-पीड़ा देकर याद कराया कि दुखियों और पीड़ितों की सेवा में ही साक्षात ईश्वर के दर्शन होते हैं किन्तु मैं मूर्ख इस सार को पहचान न सका और महफिलों-मजलिसों के क्षणिक सुख में डूबा रहा। हे भगवान! तरह-तरह के वाद्य-यंत्र बजाकर, शंख ध्वनि और घंटियाँ सुनाकर तुझे रिझाने के मेरे सभी प्रयास निरर्थक हो गए। मैं हार गया भगवन! तुम मुझे इस राह से भी प्राप्त न हो सके, जबकि तुम निम्न वर्ग या गिरे हुए बेसहारा लोगों को संगठित करके उनमें आत्म विश्वास भरने में लगे रहे और मैं तुम्हें पहचान न सका।

विशेष :

- रामनरेश जी ने उन कर्मकाण्डी भक्तों पर गहरा व्यंग्य किया है, जो मन्दिर-मस्जिद-गुरुद्वारे में भजन-कीर्तन कर भगवान को पाना चाहते हैं और बेसहारा-गरीबों की ओर ध्यान भी नहीं देते।
- कवि ने "तुल्योगिता" अलंकार के प्रयोग से कथ्य को अत्यंत सहज एवं सरल बना दिया है।
- कर्मकाण्डी भक्त और दीनबन्धु भगवान की खोज बराबर चलती रहती है किन्तु दोनों की राहें पूर्णतः भिन्न हैं। अंतः एक मंज़िल पर नहीं मिल पाते।
- कवि का संदेश है कि दीन-दुखियों और दलित-पतितों की सेवा में ही भगवान के दर्शन होते हैं।
- युगीन-परिवेश में भटके लोगों को कवि ने किस खूबी से सन्मार्ग दिखाया और पथ-प्रदर्शक की भूमिका निभाई, सहज ही स्पष्ट है।
- कविता में लय एवं गति भाव-प्रवणता के पूर्णतः अनुकूल है।
- "माशूक़", "चमन" और "अंजुमन" जैसे शब्द अपने अर्थ-गांभीर्य के कारण अत्यन्त सटीक लगते हैं।
- "बाट-जोहना" जैसे मुहावरे से कवि के समाज ज्ञान एवं लोक दृष्टि का भी परिचय मिलता है।
- इसी प्रकार का भाव "ना मन्दिर में ना उपवन में" कविता में भी देखा जा सकता है।

ii) कैसे तुझे मिलूँगा .... मेरे अधीर मन में।

प्रसंग एवं संदर्भ : पूर्व पद्यांश के आधार पर स्वयं लिखिए।

व्याख्या : हे प्रभो! मैं तुमसे कैसे मिल सकूँगा ? आत्मा का परमात्मा से तदाकार कैसे हो सकेगा जबकि हमारी राहों में इतना जबरदस्त अंतर है। इसीलिए हे दाता! मैं अचम्भित होकर अब तेरी शरण में आया हूँ। अपनी परम-कृपा दृष्टि से मेरा उद्धार करो। तुम तो कण-कण वासी हो। अंतर्यामी और सर्वज्ञानी हो। सूर्य भी तुम ही हो और उसकी किरण का आकार एवं स्वरूप भी तुम ही हो। उपवन के पुष्पों में बसे सौन्दर्य और उसकी गंध भी तुम ही हो। हमारी श्वास के रूप में तुम ही तो हवा बने हुए हो। इसी हवा के कारण हमारी जीवन-सांस चलती है। तुम ही इस असीम नभ की विशालता हो। अर्थात् ये सभी कुछ तुम हो और तुमसे ही ये सब है। जबकि मैं तो बहुत छोटा सा अंश मात्र हूँ।

भगवन! तुम ही हिन्दुओं में बसा ज्ञान और बुद्धि हो, तुम ही मुसलमानों का ईमान और धर्म हो, तुम ही इसाइयों का विश्वास और तुम ही सज्जनों में बसा सत्य हो। हे दीनों के बन्धु, तुम मुझे ऐसी अलौकिक-शक्ति का वरदान दो कि मैं तुम्हें ही नेत्रों में, मन में तथा कर्म और वचन में भी देखूं, महसूस करूं।

हे मालिक! मैं जान गया हूँ कि कठिनाइयों, पीड़ाओं और दुःखों की लम्बी यात्रा करके ही मनुष्य चरम सुख तक पहुँचता और यश कमाता है। इसलिए तुम मुझे शक्ति और सामर्थ्य दो कि मैं जीवन के सभी दुख-कष्ट सह सकूँ और

दुखियों-पीड़ितों को सहयोग देता रहूं। मैं दुःख के सामने कभी हार न मानूं। कभी निराश न हो सकूं। सदैव दुखों पर विजय हासिल करूं तथा सुख के क्षणों में तुम्हें कभी विस्मृत न करूं। मेरे इस धर्म-हीन मन में अपनी परम-कृपा से यही भाव भर दो। यही वरदान देकर मुझे कृत-कृत कर दो।

विशेष : स्वयं लिखिए।

टिप्पणी : शेष अंशों की व्याख्या का आप स्वयं प्रयास एवं अभ्यास कीजिए।

वह देश कौन-सा है ?

i) मनमोहिनी प्रकृति की .... दिन-रात हँस रहे हैं, वह देश कौन-सा है ?

प्रसंग एवं संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ .... देशभक्त .... देश की गरिमा पर गद्-गद् .... प्रशस्ति गान .... राष्ट्रीय जागरण .... हैं। कवि .... ।

व्याख्या : कवि भारतवर्ष के सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक गौरव गान से आनन्दित होता हुआ जन-जागरण एवं राष्ट्रीय चेतना का बीड़ा उठाता है और भारत वर्ष के मन को मोह लेने वाले प्राकृतिक सौन्दर्य पर मुग्ध होकर कहता है कि माँ-प्रकृति के आंचल में पलने-फलने वाला यह देश, जहाँ स्वर्ग का सुख सहज ही उपलब्ध है, भला कौन-सा देश है ? वह मानवीय-स्वरूप सा महान देश जिसके मस्तक पर हिमालय जैसा अडिग, विशाल एवं सबल मुकुट सुशोभित है तथा जिसके चरणों को निखारने के लिए स्वयं सागर सदैव उपस्थित रहता है, भला वह देश और कौन-सा हो सकता है ? जिस देश की नदियों में अमृत की अजस्र-धारा बहती रहती हो और उसी अमृत रूपी नदियों से जिस देश की जड़ें सिंचित होती रहती हैं, वह सलोना और प्यारा देश कौन-सा है ? जिस देश की धरती पर उगने वाले फल, फूल, कंद-मूल तथा फसलें, अनाज और मेवे आदि अत्यंत रस से भरे हों और पृथ्वी का कोना-कोना इन सभी वरदानों से सम्पन्न एवं सुसज्जित हो, जिस भूमि पर उगने और दिन-रात खिलखिलाकर हँसते रहने वाले पुष्प सुगंध एवं सुन्दरता के अन्यतम प्रतीक हों, वह देश भला और कौन-सा हो सकता है ? स्पष्ट है कि वह देश भारत ही है। और कोई नहीं।

विशेष :

- भारतीय प्रकृति, खेत, खलिहान, संपदा, इतिहास, संस्कृति एवं इतिहास-पुरुषों की स्मृति एवं प्रशस्ति में लिखी गई यह कविता एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ है।
- कवि की काव्य-कला एवं कलात्मक-प्रतिभा का परिचय प्रारंभ से अंत तक किए गए जिज्ञासापूर्ण-वर्णन से सहज ही मिल जाता है।
- राष्ट्रीय-जागरण एवं सांस्कृतिक चेतना की अन्यतम-भावना के दर्शन इस कविता में किए जा सकते हैं।
- "पहेली" के से अंदाज़ में प्रस्तुत की गई इस कविता में उत्तर भी स्वतः ही स्पष्ट होता जाता है, जिसे कवि अंत में जाकर स्वयं भी स्पष्ट करता है।
- कथ्य एवं संप्रेषण की दृष्टि से कविता अपने उद्देश्य में पूर्णतः सफल सिद्ध होती है।
- ऐतिहासिक व्यक्तियों एवं घटनाओं की स्मृति और तदनुकूल राह चुनने और गौरव गान गाने का संदेश सहज ही संप्रेषित होता है।
- शब्द-प्रयोग, भाषिक विन्यास तथा कवितात्मक तुक कविता को प्राणवान बनाते हैं।
- त्रिपाठी जी की काव्य प्रतिभा को प्रतिनिधित्व देती हुई कविता है।

टिप्पणी : शेष अंशों की व्याख्या का आप स्वयं प्रयास एवं अभ्यास कीजिए।

18.9 सारांश

- बहुमुखी-प्रतिभा से सम्पन्न, द्विवेदी-युगीन प्रमुख कवि पंडित रामनरेश त्रिपाठी अपने युग-परिवेश से प्रभावित होकर ही नहीं, उसे प्रभावित करके मार्ग-प्रदर्शन के लिए साहित्य सृजन कर रहे थे।
- राजनीति, समाज, धर्म, शिक्षा तथा संस्कृति के क्षेत्र में त्रिपाठी जी ने साक्षात तथा विविध विधाओं के माध्यम से संघर्ष करते हुए नवजागरण का बीज बोया और अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।
- एक विशाल एवं विस्तृत फलक पर साहित्य सृजन करने वाले इस संस्कृति पुत्र एवं इतिहास प्रेमी ने मनुष्य को प्रकृति की गोद में बिठाकर भारतीयता के गौरव गान का पाठ सुनाया।
- खंड काव्य एवं मुक्तककाव्य पर पूरे अधिकार एवं आत्मविश्वास से लेखनी चलाने वाले भारती-पुत्र पंडित रामनरेश त्रिपाठी जी ने राष्ट्रीय चेतना तथा सामाजिक सुधार के दायित्व को कविता के माध्यम से बाखूबी निभाया।
- उदात्त प्रेम की स्थापना, प्रकृति प्रेम का उल्लास और लोक साहित्य का मर्म इनके काव्य में कूट-कूटकर समा गया है। कवि ने नैतिक-मूल्यों और शाश्वत् सत्य की प्रतिष्ठा में ही साहित्य-समर्पण किया है।

- काव्य भाषा तथा शब्द शक्ति, लोकोक्ति-मुहावरे, अलंकार एवं छंद आदि उपादानों पर कवि का अद्भुत नियंत्रण ही नहीं गहन एवं पैनी समझ भी है। इसी कारण वे अपने मंतव्य को सफलतापूर्वक संप्रेषित कर स्वयं को मील के पत्थर की तरह स्थापित कर पाते हैं।

18.10 शब्दावली

भविष्योन्मुखी : भविष्य की ओर उन्मुख रहने वाला या सोचने वाला।

उद्विग्नता : परेशान, चिन्तित या खिन्न।

नवनवोन्मेषशालिनी : जो हर पल और जब देखें नवीन लगे।

जन-उद्‌बोधन : जन-सामान्य में जागृति की लहर जगाना।

प्रेमाख्यानक : प्रेम की कथाओं वाले।

ऊहात्मक : उबाऊ या नीरस।

संस्कृत बहुल हिन्दी : वह हिन्दी जिसमें संस्कृत के शब्दों का आधिक्य हो।

अलौकिक-शक्ति : इस लोक से परे अर्थात परलोक की शक्ति या ईश्वरीय शक्ति।

18.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

डॉ. राममूर्ति शर्मा, रामनरेश त्रिपाठी और उनका साहित्य; प्रथम संस्करण, सन् 1972, आर्य बुक डिपो, करोलबाग, नई दिल्ली-5।

डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, पं. रामनरेश त्रिपाठी का काव्य; द्वितीय संस्करण, 1976, भारती-भाषा प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली।

इंदरराज बैद "अधीर", रामनरेश त्रिपाठी, प्रथम संस्करण, 1987, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।

डॉ. अनिल कुमार उपाध्याय, पं. रामनरेश त्रिपाठी के साहित्य में राष्ट्रीय भावना (अप्रकाशित शोध प्रबंध), सन् 1969, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।

डॉ. रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल, रामनरेश त्रिपाठी : व्यक्तिगत और कृतित्व।

सम्मेलन-पत्रिका; (श्रद्धांजलि अंक)

18.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. देखिए भाग 18.2
2. देखिए भाग 18.4
3. देखिए भाग 18.4
4. देखिए भाग 18.3

बोध प्रश्न 2

1. देखिए अनुभाग 18.5.1
2. देखिए अनुभाग 18.5.2
3. देखिए अनुभाग 18.5.3
4. देखिए अनुभाग 18.5.4
5. देखिए अनुभाग 18.5.6

बोध प्रश्न 3

1. देखिए अनुभाग 18.6.1
2. देखिए अनुभाग 18.6.1
3. देखिए अनुभाग 18.6.3
4. देखिए अनुभाग 18.6.4

Notes

Notes

Notes

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

यू०जी०एच०आई०-02
हिंदी काव्य

खंड
5
छायावाद

इकाई 19

छायावाद : स्वरूप और विकास 5

इकाई 20

जयशंकर प्रसाद 27

इकाई 21

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला 62

इकाई 22

सुमित्रानन्दन पंत 90

इकाई 23

महादेवी वर्मा 108

खंड 5 का परिचय

हिंदी ऐच्छिक पाठ्यक्रम-II का यह पाँचवा खंड "छायावाद" पर है। छायावादी काव्य के स्वरूप, विकास तथा उसके चार आधार-स्तम्भ कवियों के जीवन वृत्त, व्यक्तित्व एवं काव्य की विस्तृत एवं गहन जानकारी आप इस खंड में पा सकेंगे। ये चार प्रमुख कवि हैं—महाकवि जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत तथा महादेवी वर्मा।

इस पाठ्यक्रम में पहले तीन खंडों में आप आदिकाल, भक्तिकाल तथा रीतिकाल के काव्य और कवियों का अध्ययन कर चुके हैं। चौथे खंड में आपने आधुनिक काल के पहले दो काव्य युगों (भारतेन्दु युग तथा महावीर प्रसाद द्विवेदी युग) के कवियों और काव्य-प्रवृत्तियों का भी गहन अध्ययन किया है। महावीर प्रसाद द्विवेदी युग के बाद आधुनिक हिंदी काव्य में 'छायावाद' नामक काव्यान्दोलन का आगमन हुआ। इस काव्यान्दोलन ने आधुनिक कविता के दोनों युगों से हटकर चिंतनपरक-मानवीय-मूल्यों और भाषागत सूक्ष्म व्यंजनाओं को अपनाते हुए सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय जागरण का बीड़ा उठाया। वर्णन प्रधान तथा आख्यानक-कविताओं का स्थान अब युवा मन की स्वच्छंद भावनाओं और उनके मानसचित्रों ने ले लिया। व्यक्ति-स्वातंत्र्य के स्वर तथा जन-जागरण की लहर ने काव्य को विषय एवं शिल्प दोनों ही दृष्टियों से वैशिष्ट्य प्रदान किया। स्वानुभूति, कल्पना एवं प्राकृतिक-स्वंदन, लाक्षणिक वैचित्र्य तथा आध्यात्मिक-स्पर्श ने छायावादी काव्य को अद्भुत, अनुपम तथा अपूर्व सौन्दर्य से सुसज्जित किया। सन् 1915-16 से सन् 1937-38 तक के इस काल खंड की कविता ने हिंदी-साहित्य में ही नहीं समग्र भारतीय साहित्य में भी एक क्रांति पैदा कर दी। नवजागरण और जागृति-चेतना के इसी प्राणवान काव्य का विस्तृत एवं गहन अध्ययन ही इस खंड की पाँच इकाइयों में आप करेंगे। सभी इकाइयों में छायावादी काव्य की पृष्ठभूमि और युगीन-परिवेश के परिप्रेक्ष्य में काव्य-प्रवृत्तियों का व्यापक विवेचन करने का प्रयास रहा है।

पहली इकाई (इकाई संख्या 19) "छायावाद : स्वरूप और विकास" है। इसमें छायावाद की पृष्ठभूमि की चर्चा करते हुए युगीन परिस्थितियों और साहित्यिक-परिवेश का विवेचन सर्वप्रथम किया गया है। तदोपरांत छायावाद का प्रारंभ, उसका अर्थ विस्तार तथा व्यापकता, छायावाद के गौण कवियों की चर्चा, करते हुए चारों प्रमुख कवियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। छायावाद की अन्तर्वस्तु पर चर्चा करते हुए काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों पर विचार किया गया है। अंत में छायावाद के रचना-विधान में स्वच्छंद-कल्पना, काव्य-भाषा तथा काव्य-शिल्प की चर्चा करते हुए छायावाद की शक्ति और सीमाओं का मूल्यांकन किया गया है।

इकाई संख्या 20 में छायावाद के प्रवर्तक कवि जयशंकर प्रसाद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विस्तार से विवेचन किया गया है। जीवन, व्यक्तित्व, युग-परिवेश, रचनाएँ, रचना-संसार तथा काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालते हुए कवि के रचना-विधान की समीक्षा की गई है। अंत में महाकवि प्रसाद की तीन कविताओं का वाचन एवं संदर्भ-सहित उनकी व्याख्या करते हुए व्याख्या-पद्धति को भी स्पष्ट किया गया है।

इसी प्रकार इकाई संख्या 21, 22 तथा 23 में क्रमशः सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत तथा महादेवी वर्मा के जीवन, व्यक्तित्व, युग परिवेश तथा रचनाओं आदि का विवेचन करते हुए उनकी काव्य-प्रवृत्तियों के साथ-साथ रचना-विधान की भी समीक्षा की गई है। इन तीनों कवियों की दो-दो कविताओं के वाचन एवं संदर्भ सहित-व्याख्या द्वारा काव्य की मूल-संवेदना को स्पष्ट करने का प्रयास भी रहा है।

प्रत्येक इकाई के अंत में मूल्यांकन-परक सारांश देते हुए इकाई में प्रयुक्त कठिन शब्दावली के अर्थ भी दे दिए गए हैं। इकाई संबंधी महत्वपूर्ण पुस्तकों की एक सूची भी अतिरिक्त जानकारी के लिए दी जा रही है। प्रत्येक इकाई में कुछ बोध प्रश्न/अभ्यास भी दिए गए हैं जिससे आप प्रत्येक-चरण में अपने बोध और प्रगति की जाँच कर सकें। इकाई के अंत में इन बोध प्रश्नों, अभ्यासों के उत्तर या संकेत भी दे दिए गए हैं।

इस खंड से सम्बद्ध ऑडियो/वीडियो पाठ भी तैयार किए गए हैं जिन्हें आप केंद्र से प्राप्त कर सकते हैं।

आभार
सुश्री रामकृष्ण त्रिपाठी
सुश्री शान्ति जोशी
सुश्री राघवी पांडेय

इकाई 19 छायावाद : स्वरूप और विकास

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य
19.1 प्रस्तावना
19.2 छायावाद की पृष्ठभूमि
  19.2.1 युगीन परिस्थितियाँ
  19.2.2 साहित्यिक परिवेश
19.3 छायावाद का प्रारम्भ
  19.3.1 "छायावाद" शब्द का प्रयोग
  19.3.2 अर्थ विस्तार तथा व्यापकता
19.4 छायावाद के प्रमुख कवि
  19.4.1 प्रवर्त्तक कवि जयशंकर प्रसाद
  19.4.2 सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला
  19.4.3 सुमित्रानन्दन पन्त
  19.4.4 महादेवी वर्मा
19.5 छायावाद की अन्तर्वस्तु
  19.5.1 व्यक्ति-स्वातंत्र्य का स्वर
  19.5.2 रूढ़ियों से मुक्ति का प्रयास
  19.5.3 प्राकृतिक स्पंदन
  19.5.4 गीतात्मक मधुर वेदना
  19.5.5 नारी विषयक नव्य धारणा
  19.5.6 युगीन सत्य और यथार्थ-अभिव्यक्ति
  19.5.7 राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना
19.6 छायावाद का रचना-विधान
  19.6.1 स्वच्छंद कल्पना का नवोन्मेष
  19.6.2 काव्य-भाषा
  19.6.3 काव्य-शिल्प
19.7 छायावाद का महत्व : शक्ति और सीमाएँ
  19.7.1 ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
  19.7.2 प्रासंगिकता
19.8 सारांश
19.9 शब्दावली
19.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें
19.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

19.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- छायावाद नामक काव्यान्दोलन तथा छायावादी काव्य का निर्माण करने वाली परिस्थितियों को जान सकेंगे।
- आधुनिक हिन्दी काव्य के विकास में छायावाद की सही परख और पहचान कर सकेंगे।
- छायावाद के चार आधार-स्तम्भ कवियों—जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पन्त तथा महादेवी वर्मा—का परिचय तथा उनकी कविताओं का सम्यक् अर्थबोध प्राप्त कर सकेंगे।
- छायावाद की विषय-वस्तु तथा वैचारिक पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे।
- छायावाद युग में परिवर्तित रचना-विधान का प्रामाणिक परीक्षण करते हुए उसकी शक्ति एवं सीमाओं का मूल्यांकन कर सकेंगे।

19.1 प्रस्तावना

आधुनिक हिन्दी कविता के इतिहास का दूसरा युग "द्विवेदी युग" के नाम से जाना जाता है। द्विवेदी-युगीन काव्य की वर्णनात्मक काव्य प्रवृत्तियों का अध्ययन आप कर ही चुके हैं। द्विवेदी

युगीन काव्य के अंतिम चरण में सन् 1916 के आस-पास जिस नूतन-काव्यधारा का आविर्भाव हो रहा था उसे ही आगे चलकर "छायावाद" की संज्ञा से अभिहित किया गया। द्विवेदी युगीन कविता खड़ी बोली में लिखी गई वर्णन प्रधान कविता बनकर भी लोकप्रिय तो हुई किन्तु साहित्य के अभाव तथा उपदेशात्मक पद्धति ने उस कविता में एकरूपता पैदा कर दी थी। रीति-काव्य परंपरा का अनुसरण इस युग के ब्रजभाषा-काव्य में यथावत् हो रहा था। कविता अपने युग की समस्याओं का प्रतिबिंब मात्र बनकर रह गई थी। पौराणिक आख्यानों और ऐतिहासिक कथाओं को पद्यबद्ध कर देने की इस होड़ में रचनाधर्मिता का वैशिष्ट्य कवि-कर्म से विलग होता जा रहा था। चिरन्तन मानवीय मूल्य, भाषागत बारीक-व्यंजनाएँ तथा तराशे गए शब्दों में अर्थ की नई संभावनाएँ पैदा करने की इस ज़रूरत को पूरा करने का उद्देश्य "छायावाद" ने चुना। युवा मत की स्वच्छंद भावनाएँ और उनके विकास के गतिशील मानसचित्र, राष्ट्रीय-स्वाधीनता और व्यक्ति-स्वातंत्र्य का स्वर तथा जन-जागरण की विश्वव्यापी लहर को संवार कर प्रवहमान बनाने का दायित्व निभाया छायावादी-काव्य ने। अनुपम भावभंगिमा तथा विषय एवं शिल्प का पूर्ववर्ती काव्य से पार्थक्य इस कविता की अलग पहचान बनी। इस कविता की सर्वप्रमुख विशिष्टता यह थी कि अधिकांशतः इसमें बाह्य अर्थ से भिन्न एक भीतरी सूक्ष्म-अर्थ-छवि की छाया प्रतीत हो रही थी, इसीलिए इस कविता को "छायावाद" नाम दिया गया और यही देखते-देखते एक युग-प्रवृत्ति के रूप में भी स्थापित हो गया।

स्वानुभूति, कल्पना, प्रकृति का मानवीकरण, लाक्षणिक विचित्रता, मूर्तिमत्ता तथा आध्यात्मिक-छाया आदि विशेषताओं से सम्पन्न छायावादी काव्य में व्यक्ति की स्वाधीनता की भावना से उत्पन्न सौन्दर्य को ही सम्पूर्ण समाज के स्वाधीनता-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति बनाकर प्रस्तुत किया गया है। वस्तुओं को असाधारण दृष्टि से देखने वाले छायावादी कवि की दृष्टि में उन्मादकता के साथ-साथ अंतरंगता का संस्पर्श भी रहा ही है। छायावाद की इसी विचित्र प्रकाशन-रीति के कारण उसके लिए **"मिस्टिसिज़्म"** और छायावाद जैसे शब्द तो प्रयुक्त हुए ही, साथ ही **रहस्यवाद** और छायावाद को भी कुछ लोगों ने एक ही मान लिया। इसे मान लेने का मुख्य आधार था उस अज्ञात सत्ता के प्रति प्रस्तुत जिज्ञासा का आध्यात्मिक रंग में डूबा होना। यही कारण है कि ईसाई मत में "छाया" अर्थ देनेवाला **"फैंटसमेटा"** शब्द भी प्रयोग हुआ और छायावाद पर नाम तथा भाव से यूरोप का प्रभाव भी मान लिया गया। इतना ही नहीं, कुछ समय बाद छायावाद के लिए **"रोमैण्टिसिज़्म"** शब्द का प्रयोग भी किया गया। इसी के आधार पर इसका हिन्दी अनुवाद **"स्वच्छन्दतावाद"** सामने आया। कवि तथा आलोचकों ने छायावाद और रोमैण्टिसिज़्म को पर्याय समझना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु मूलतः रहस्यवाद, छायावाद और स्वच्छन्दतावाद में सूक्ष्म अंतर है और छायावादी-काव्य में ये अन्य दो प्रवृत्तियाँ भी देखने को मिलती हैं। अतः छायावाद विदेशी पराधीनता और स्वदेशी जीर्ण-शीर्ण रूढ़ियों से मुक्त होने के मूक प्रयासों का मुखर स्वर है जिसमें राष्ट्रीय जागरण की चेतना प्रधान है। इसे विस्तार से हम इसी इकाई में आगे चलकर तो देखेंगे ही, साथ ही इस खंड की अन्य चार इकाइयों में भी देख सकेंगे। यहाँ केवल इतना जान लेना पर्याप्त है कि विवाद और आरोप-प्रत्यारोपों के कटघरे में डाले जाने पर भी इस नव्यतम-काव्यान्दोलन ने जन-जागरण और राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना की सार्वभौमिक-लहर प्रवाहित करके काव्य-प्रेमियों और रसिकों की संवेदनाओं को स्पंदित कर दिया। "इन्दु", "मतवाला" तथा "सुधा" आदि पत्रिकाओं एवं "पल्लव" और "परिमल" की भूमिकाओं के माध्यम से जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पन्त तथा महादेवी वर्मा ने छायावादी काव्य को आधुनिक हिन्दी कविता का **उत्कर्ष काव्य** कहकर स्थापित किया। अतः युवा मन की स्वच्छंद भावनाओं के विकास एवं उनकी गतिशील-चित्रात्मकता को समझने के लिए हमें पूरे मनोयोग से इस काव्य-युग का अध्ययन करना होगा। यहाँ सर्वप्रथम हम इस अनुपम काव्य-फल के पालन-पोषण में ही नहीं जन्म में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली युगीन-पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात कर लें तो उचित होगा।

19.2 छायावाद की पृष्ठभूमि

साहित्य और समाज का शाश्वत सम्बन्ध होता है। प्रत्येक सभ्य-समाज को विरेचित करने का महत्वपूर्ण कार्य करती है 'कविता'। इसी कारण उसे 'प्राणदायिनी-औषधि' भी कहा जा सकता है। समाज को कल्याण के मार्ग पर अग्रसर करके स्थायी प्रेरणा-स्रोत बनने वाली, छायावाद-युग की कविता का भी समाज से घनिष्ठ संबंध रहा है। इस सम्बन्ध की गहराई और व्यापकता को उस युग की परिस्थितियों और परिवेश से ही परखा जा सकता है।

सन् 1857 की क्रांति की चिंगारी ही धीरे-धीरे सुलगती रही और आगे चलकर यही अग्नि-पुंज

स्वतंत्रता-संघर्ष का पुण्य प्रारम्भ बना। ऐसे में आधुनिक युग तक आकर राष्ट्रीय-आकांक्षा की नवजागरणवादी-भावना, नैतिकता के साथ-साथ पुनरुत्थानवादी दृष्टि से जुड़कर अधिक सक्रिय होने लगी। द्विवेदी युग में अतीत के गौरव का स्मरण करते हुए सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विरासत को रेखांकित कर गीतों में पिरोया जाना प्रारम्भ हुआ। छायावाद तक आते-आते विवेकानन्द के प्रेरक विचारों ने, महर्षि अरविन्द के क्रांतिकारी-स्वर ने तथा महात्मा गांधी के अहिंसावादी सिद्धांतों ने क्रमशः स्फूर्ति और उत्तेजना तथा आत्मिक खोज, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक चेतना की ज्योति का प्रज्ज्वलन और राष्ट्रीय भावना के सात्विक भाव का जन-जन तक प्रचार-प्रसार करते हुए साहित्य की सुदृढ़ पृष्ठभूमि तैयार कर दी। इनके साथ-साथ रवीन्द्रनाथ टैगोर, लोकमान्य तिलक, सुभाषचन्द्र बोस तथा गोखले आदि राष्ट्र-नेताओं ने जिस राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना का आध्यात्मिक प्रसार किया छायावादी काव्य उसे अपने में आत्मसात करके साहित्य-जगत में उपस्थित हुआ। राष्ट्रीयता की इस बुलन्दी का प्रखर स्वर छायावादी काव्य के सभी प्रमुख कवियों में देखा जा सकता है। प्रसाद और निराला में तो यह चेतना अपने विशिष्ट-स्वरूप को लेकर सामने आती है। स्पष्ट है कि युग परिवेश की प्रेरणा और उत्साह का आह्वान ही छायावादी काव्य में ध्वनित होकर उपस्थित होता है। इसे हम छायावाद के चारों प्रमुख कवियों की आगामी इकाइयों में स्वतंत्रतः भी देखेंगे। सभी छायावादी कवियों ने अनुभव किया कि देश की जनता को जीवित और जागृत रखने के लिए उसमें मानवीय रागात्मक-बोध और सौन्दर्य-बोध का सम्मोहन भरना होगा। इसके लिए उन्होंने प्रकृति को अपना विषय बनाया और समूची संवेदना के साथ अपना सन्देश दिया। उन्होंने राष्ट्रीय चेतना के साथ ही विश्व दृष्टि का परिविस्तार किया और इस प्रकार एक बड़े व्यापक धरातल पर अपने काव्यान्दोलन का मंगलारम्भ किया। ऐसा विषद् आयाम छायावाद के पूर्व या परवर्ती दूसरी किसी काव्य प्रवृत्ति के साथ नहीं दिखाई देता है।

19.2.1 युगीन परिस्थितियाँ

छायावादी कविता अपने युग की अवश्यम्भावी परिणति है। 1857 के बाद भारत में ब्रिटिश शासन पूरी शक्ति के साथ स्थापित हो गया। उसकी घोषणा और आरम्भिक सुधार योजना का भारतीय जनता ने स्वागत किया, किन्तु शीघ्र ही मोहभंग भी हो गया। प्रबुद्ध कवियों को यह पूर्वाभास हो गया कि इस साम्राज्यवादी उपनिवेश में उनकी अस्मिता अर्थात भारतीय संस्कृति का अस्तित्व संकट में है। अस्तु, उनका राष्ट्रीय स्वाभिमान स्वतंत्रता के लिए छटपटाने लगा, किन्तु अंग्रेज़ों के दमनचक्र और शोषण के कारण उन्हें अभिव्यक्ति का मुक्त अवसर नहीं मिल सका। देश की युवा पीढ़ी रक्त क्रांति एवं असहयोग आन्दोलन की दिशा में सक्रिय थी। इस अवसर पर समाज के व्यापक नवजागरण की आवश्यकता थी। जन-साधारण में अपने स्वर्णिम अतीत के प्रति आस्था जागृत करनी थी, उन्हें एकता के सूत्र में बांधना था और समकालीन राजनीतिक व्यवस्था से ऊपर उठकर उच्चतर मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करनी थी। बंगाल के अकाल से जो मृत्यु की विभीषिका छा गयी थी और जलियाँवाला बाग़ के सामूहिक हत्याकाण्ड का जो आतंक जन-जीवन में भर गया था, उसे दूर करने के लिए स्वर्णिम भविष्य की मंगलाशा पैदा करनी थी, अन्यथा हताश जन-समुदाय कुंठाग्रस्त हो जाता, जिससे समूची जाति के नष्ट-भ्रष्ट हो जाने की आशंका थी।

19.2.2 साहित्यिक परिवेश

छायावाद के पूर्व द्विवेदीयुगीन—इतिवृत्तात्मक कविता कुछ वर्षों तक तो बहुत लोकप्रिय रही, किन्तु शीघ्र ही उसका प्रभाव मंद पड़ गया, क्योंकि वह अधिकतर संवेग को ऊपरी स्तर पर छूती थी। उसकी भाषा भी सरल सुबोध थी, वह गेय और छंदोबद्ध थी और सामाजिक संदर्भों से जुड़ी हुई थी। द्विवेदी युग के ही समानांतर रीतिकाव्य के अवशिष्ट के रूप में समस्यापूर्ति-कला चल रही थी, जो साहित्यानुरागी जनता का कलात्मक विनोद कर रही थी। उसमें उद्भावना का चमत्कार था, शब्दों का कलाकौतुक था, किन्तु जीवन की कोई अंतर्दृष्टि और चिन्तन की कोई गूढ़ सम्पदा न थी अतएव यह काव्य परम्परा 1920 तक पहुँचते-पहुँचते निष्प्रभ हो गयी। खड़ीबोली अब अपेक्षाकृत अधिक प्रौढ़, परिमार्जित एवं काव्योपम बन गई थी। जनमानस संचार के नए साधनों से सम्बद्ध होकर अब अधिक जानकार और जिज्ञासु हो गया था। उसकी संचेतनता के अनुकूल कविता को भी सुविचारित तथा विचारोत्तेजक बनाया जा रहा था। ज्ञान-विज्ञान की नई चुनौतियाँ इन कवियों के सामने थीं। ये कवि स्वयं चिन्तनधर्मा थे। अपने स्वाध्याय एवं चिन्तन मनन के सहारे वे नाना विचार-भूमियों से गुज़र रहे थे, फलतः ये जीवन-जगत की भावी परिकल्पना में प्रवृत्त हुए। उन्होंने सर्वप्रथम अपने युग को पौराणिकता से मुक्त किया और आधुनिकता का वरण करते हुए नूतन-पुरातन के संकट बिन्दु का सन्धान किया। छायावाद की यह भावभूमि आज के लिए भी प्रासंगिक बनी हुई है।

चिन्तन और सृजन की समस्त रूढ़ियों से मुक्त होने के कारण छायावाद ने नयी भाषा, नए छन्द, नए विषय, नए काव्य रूप, अर्थात् नए-नए मानदण्डों का निर्धारण किया। प्रतीक, बिंब एवं कल्पना-विधान में तो उनका कोई प्रतिस्पर्धी नहीं रहा। विषय-वस्तु के रूप में छायावादी कविता ने जन-चेतना से लेकर अतिमानव की लोकोत्तर चेतना की व्यथा-कथा कही अथवा उनके सपने संजोए। इसीलिए स्वच्छन्दतावादी विद्रोह और आध्यात्मिक आस्था, रहस्य एवं दर्शन, लोक-करूणा और आनन्द अर्थात् जीवन के समस्त सम-विषम सिद्धान्त छायावादी काव्य में अन्तर्निहित दिखाई देते हैं। वस्तुतः छायावाद जैसी वैविध्यपूर्ण काव्य प्रवृत्ति दूसरी नहीं है।

19.3 छायावाद का प्रारम्भ

छायावादी काव्य का प्रारम्भ कब हुआ? यह प्रश्न आज भी विवाद का विषय बना हुआ है। स्थूल रूप से यह माना जाता है कि द्विवेदी युग सन् 1920 के बाद निष्प्रभाव हो गया था। वस्तुतः आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित पत्रिका "सरस्वती" की संपादन अवधि को ही द्विवेदी युग की संज्ञा देना उपयुक्त है। उनके कार्यकाल के अन्तिम चरण में (सन् 1915 के आसपास) छायावाद का आरंभ अब लगभग सर्वमान्य हो गया है।

19.3.1 "छायावाद" शब्द का प्रयोग

छायावादी शैली से सुपरिचित एक तत्कालीन कवि श्री मुकुटधर पाण्डेय ने 70 वर्ष पूर्व जबलपुर से प्रकाशित "श्रीशारदा" नामक पत्रिका के 1920 के अंकों में "हिन्दी कविता में छायावाद" नाम से एक लेखमाला आरम्भ की और उसमें न केवल पहली बार छायावाद का नामकरण किया, बल्कि छायावादी कविता के आरम्भिक चरण-चिन्हों को अंकित भी किया। उन्होंने लिखा था— "छायावाद एक मायामय सूक्ष्म वस्तु है। इसमें शब्द और अर्थ का सामंजस्य बहुत कम रहता है।" किन्तु इस लक्षण निरूपण को परवर्ती आलोचक तथा इतिहासकार नहीं समझ पाए! शायद इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने यह अनुमान लगा लिया कि छायावाद और रहस्यवाद बंगाल के ब्रह्म-समाजियों के छायापदों और रवीन्द्रनाथ टैगोर की रहस्यानुभूतियों का नव रूपान्तरण है तथा इनकी प्रेरणा भूमि है—यूरोप के ईसाई प्रचारकों का रहस्य-दर्शन अर्थात फैंटसमाटा। उन्होंने छायावाद को वाच्यार्थ की जगह लक्षक या अन्योक्तिपरक शब्द प्रयोग को प्रश्रय देने वाली मात्र एक शैली घोषित कर दिया। आचार्य शुक्ल जैसे उद्भट समीक्षक द्वारा न पहचानी गयी इस छायावादी कविता की सही परख-पहचान अर्से तक दबी रही। परिणामस्वरूप छायावाद के प्रवर्तक कवि और छायावादी धारा का सही उल्लेख नहीं हो पाया। किसी समीक्षक को मैथिलीशरण गुप्त प्रथम छायावादी प्रतीत हुए, किसी को सियारामशरण गुप्त। इसी प्रकार माखनलाल चतुर्वेदी, प्रसाद, पन्त, निराला आदि को अलग-अलग यह श्रेय दिया जाता रहा। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे पाश्चात्य-प्रभावप्रेरित वैयक्तिक स्वातंत्र्य का काव्य कहा तो आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने इस सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक चेतना का नवोन्मेष घोषित किया। डा. नगेन्द्र इसे दमित रोमानी स्थूल वृत्ति की सूक्ष्म प्रतिक्रिया माने रहे तो शिवदान सिंह चौहान इसे पयालनोन्मुखी प्रवृत्ति कहते रहे। विडम्बना यह है कि छायावाद के प्रवर्तक महाकवि प्रसाद ने "काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध" नामक कृति में स्वयं छायावाद विषयक एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत किया था, किन्तु उसके मुख्य बिन्दुओं पर किसी का ध्यान नहीं गया।

19.3.2 अर्थ विस्तार तथा व्यापकता

छायावाद को परिभाषित करने वाले समीक्षकों में इसे रहस्यवाद, स्वच्छन्दतावाद, प्रकृतिवाद, वेदान्तवाद, सर्वोत्मवाद, पलायनवाद आदि में इस प्रकार उलझा दिया कि जहाँ कहीं प्रेम, सौन्दर्य, प्रकृति-चित्रण, अवसाद और भावोद्रेक दिखाई पड़ा, उसे छायावादी भावुकता तथा छायावादी अवसाद का नाम दे दिया गया। इस भ्रम को बढ़ावा देने का कुछ दायित्व छायावादी कवियों पर भी है। निराला जी ने इसमें दर्शन का सन्निवेश आवश्यकता से अधिक किया। महादेवी जी ने अपनी भूमिकाओं में बौद्ध करूणा तथा रहस्य वेदांत का विश्लेषण करके इसका अन्यथा अर्थ इंगित कर दिया। सम्भवतः समीक्षकों के आरोपों की प्रतिक्रिया के रूप में ही ऐसा हुआ हो। पन्त जी ने छायावाद पर सबसे अधिक लिखा और सबसे अधिक भ्रम पैदा किया। आधुनिक कवि की भूमिका में उन्होंने एक ओर तो छायावाद के अन्त की घोषणा कर दी, इसलिए कि वे प्रगतिवाद की ओर आकृष्ट थे। "छायावाद पुनर्मूल्यांकन" में उन्होंने छायावाद को जीवित काव्य प्रवृत्ति घोषित किया और उसमें मध काव्य, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नई कविता के प्रतिनिधि कवियों को सम्मिलित कर लिया।

यह उल्लेखनीय है कि प्रथम उन्मेष में छायावाद की बृहत्त्रयी (तीन बड़े कवियों का समूह) में मात्र प्रसाद, निराला तथा पन्त की मान्यता थी। इसके पश्चात् महादेवी जी को सम्मिलित करके **"बृहच्चतुष्टय"** (चार बड़े कवियों का समूह) की स्थापना हुई। अनन्तर माखनलाल चतुर्वेदी और डॉ. रामकुमार वर्मा को सम्मिलित करके बृहत्त्रयी और लघुत्रीय की चर्चा की गई। इसी के साथ-साथ उत्तर छायावाद के "गौण छायावादी" या "उपछायावादी" कवियों के रूप में मोहनलाल महतो वियोगी, जनार्दन झा "द्विज", आरसी प्रसाद सिंह, मुकुटधर पाण्डेय, हरिकृष्ण प्रेमी, इलाचन्द्र जोशी, डॉ. नगेन्द्र, चन्द्र कुंवर, उदय शंकर भट्ट, जानकीबल्लभ शास्त्री, कुंवर चन्द्र प्रकाश सिंह, रामाधार सिंह, आदि नामों की तालिकाएँ प्रस्तुत की गईं। इससे छायावाद का जहाँ अर्थ विस्तार हुआ, वहीं उसके स्वरूप-निर्धारण में विभ्रम भी उत्पन्न हुआ और इससे सही मूल्यांकन बाधित हुआ। यह ज्ञातव्य है कि "छाया" की अर्थच्छाया अथवा उसकी यह छायांकन शैली सबके लिए सहज साध्य नहीं है। स्वयं बृहच्चतुष्टय के ये सिद्ध छायावादी कवि भी आद्यंत छायावादी नहीं रहे। निराला और पन्त का बड़ा रूपान्तरण हुआ है। प्रसाद जी के आरम्भिक काव्य में छायावृत्ति का अभाव है। उनके प्रथम गीत संग्रह "झरना" में पहली-पहली बार छायावाद का स्वरूप उद्घाटित हुआ है, इसलिए छायावाद का आरम्भ 1915 ई. के आस-पास मानना समीचीन होगा। इस अभिधान की घोषण 1920 ई. में हुई और फिर इसे स्वीकार करके छायावादी कवियों तथा समीक्षकों ने इसकी विवेचना की। प्रसाद जी ने आचार्य आनंदवर्धन के ध्वनि-सिद्धांत और कुंतक के वक्रोक्ति सिद्धान्त से इसका उद्गम घोषित करते हुए इसे "स्वानुभूतिमयी विवृत्ति", "विच्छित्ति" आदि का नया रूपान्तरण सिद्ध किया। पन्त जी ने इसे "रत्नच्छायामय सौंदर्य" का दर्शन माना और महादेवी जी ने इसके लिए "छायावृत्ति" (अर्थात् एक विशिष्ट मन:संस्थान या मनोवृत्ति) का प्रयोग किया। इन सूत्रों के सहारे ही छायावाद का सही स्वरूप उभारा जा सकता है।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1 दो-तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए :

i) छायावादी कविता की अलग पहचान कैसे बनी?

....

....

....

ii) छायावादी कविता ने अपना क्या उद्देश्य चुना था?

....

....

....

iii) छायावादी कविता के युग को "छायावाद" नाम क्यों दिया गया?

....

....

....

iv) "छायावाद" के लिए अन्य कौन-कौन से शब्दों का प्रयोग भी किया गया?

....

....

....

v) छायावादी-काव्य के चार प्रमुख कवियों को लेकर "बृहच्चतुष्टय" की स्थामना की गई थी। ये चार कवि कौन-कौन से थे?

....

....

....

2 नीचे दिए गए कथनों में से कुछ सही हैं, कुछ गलत। उपयुक्त चिन्ह लगाकर स्पष्ट कीजिए।

i) पल्लव और परिमल की भूमिका तथा "इन्दु", "मतवाला" और "सुधा" आदि पत्रिकाओं में चारों प्रमुख छायावादी कवियों ने छायावादी काव्य को आधुनिक हिन्दी काव्य का उत्कर्ष काव्य कहा था। ( )

ii) छायावादी काव्य की पृष्ठभूमि में विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द, महात्मा गांधी, तिलक, बोस तथा टैगोर आदि की विचारधारा की महत्वपूर्ण भूमिका है। ( )

iii) छायावादी काव्य में वर्णन प्रधानता, उपदेशात्मकता तथा एकरसता का सम्मिश्रण है। ( )

iv) चिन्तन और सृजन की समस्त रूढ़ियों से मुक्त होने के कारण छायावाद ने नई भाषा, नए छन्द, नए विषय और नए काव्य रूपों का निर्धारण किया। ( )

v) छायावाद का आरम्भ सन् 1915 के आसपास सर्वमान्य हो गया है। ( )

3 केवल पाँच-छह पंक्तियों में उत्तर दीजिए:

i) छायावादी काव्य की युगीन परिस्थितियाँ क्या थीं?

....

....

....

....

....

....

ii) छायावाद का अर्थ विस्तार तथा उसकी व्यापकता पर प्रकाश डालिए।

....

....

....

....

....

....

4 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

i) छायावाद का आरम्भ सन् .... के आसपास सर्वमान्य हो गया है।

ii) "हिन्दी कविता में छायावाद" नामक लेखमाला सन् .... में तत्कालीन कवि श्री .... ने .... नामक पत्रिका में प्रारम्भ की थी।

iii) छायावाद के प्रवर्तक कवि .... थे तथा "छायावाद-बृहच्चतुष्टय" के अन्य तीन कवि ...., ..., ... माने जाते हैं।

iv) उत्तरछायावादी या गौण छायावादी कवियों में ...., ..., ..., ..., ..., नामक पाँच कवियों की चर्चा की जाती हैं।

19.4 छायावाद के प्रमुख कवि

"छायावाद" जैसा कि पहले ही चर्चा की गई है, अपने आप में कविता का एक ऐसा युग है जिसका सम्बन्ध भाव-जगत से है, हृदय की भूमि से है। भावलोक की तो सत्ता ही अनुभव का विषय है, हृदय से जानने, समझने और महसूस करने की वस्तु है। उसी छायावाद में समय-समय पर अनेक रचनाकारों और कवियों का समावेश होता रहा। कभी वहाँ "बृहतत्रयी" के रूप में "प्रसाद", "निराला" और "पन्त" की चर्चा की जाती रही तो कभी बृहच्चतुष्ट्य के रूप में इन तीनों कवियों के साथ "महादेवी" का नाम जोड़कर देखा जाता रहा। कुल मिलाकर छायावाद के

प्रमुख कवियों या आधार-स्तम्भों में इन चारों महाकवियों की चर्चा, किसी न किसी रूप में चलती ही रही। यह अलग बात है कि इन चार कवियों के साथ-साथ छायावाद के अन्य कवियों में, उत्तरछायावादी कवि या गौण छायावादी कवि कहकर माखनलाल चतुर्वेदी, डॉ. रामकुमार वर्मा, जानकीबल्लभ शास्त्री, हरिकृष्ण प्रेमी, जनार्दन झा "द्विज", लक्ष्मी नारायण मिश्र, इलाचन्द्र जोशी, डॉ. नगेन्द्र, चन्द्र प्रकाश सिंह, विद्यावती कोकिल, तारा पाण्डेय, मुकुटधर पाण्डेय, उदय शंकर भट्ट तथा नरेन्द्र शर्मा आदि कवियों को भी इसमें समाविष्ट किया जाता रहा। छायावाद के चार प्रमुख कवियों से इतर इन सभी कवियों के काव्य और उनकी प्रवृत्तियों को लेकर विवाद भी चलते रहे परन्तु इन्हें छायावाद के प्रमुख कवियों में सर्वमान्यता से शामिल नहीं किया जा सका। अतः यहाँ हम छायावाद के चार प्रमुख कवियों का ही संक्षिप्त साहित्यिक परिचय देकर छायावाद की मूल वस्तु पर आएंगे। इन चारों प्रमुख कवियों के संदर्भ में विस्तृत जानकारी आप अगली चार इकाइयों में हासिल करेंगे।

19.4.1 प्रवर्त्तक कवि जयशंकर प्रसाद

छायावाद के अग्रदूत या प्रवर्त्तक के रूप में हमारे सामने केवल जयशंकर प्रसाद का ही नाम उभर कर आता है। केवल भाषा या विषय-वस्तु ही नहीं, प्रसाद ने जीवन दृष्टि भी नवीन बना डाली। 20वीं शताब्दी को अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से सर्वाधिक प्रभावित और प्रेरित करने वाले इस "बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न" कलाकार ने कविता के साथ-साथ नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध तथा समीक्षा आदि विभिन्न गद्य-पद्य विधाओं में अपनी ऐतिहासिक तथा महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

सन् 1889 ई. में वाराणसी के एक प्रतिष्ठित परिवार में जन्मे "प्रसाद" का जीवन परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए प्रारम्भ हुआ। घर में ही शिक्षार्जन तथा पारिवारिक व्यवसाय का दायित्व निभाते हुए भी सरस्वती के इस लाडले पुत्र ने अपनी अप्रतिम प्रतिभा का परिचय दिया और कई काव्य-कृतियों की रचना कर डाली। प्रारम्भ में "कलाधर" के नाम से कतिपय ब्रजभाषा-छन्द भी प्रसाद ने लिखे जो आगे चलकर "चित्राधार" में संकलित किए गए। खड़ी बोली को परिष्कृत, परिमार्जित और अपनी काव्य कृतियों से पुरस्कृत करने वाले इस महाकवि की प्रारम्भिक काव्य कृतियाँ हैं– "प्रेम पथिक", "करुणालय", "कानन-कुसुम" तथा "महाराणा का महत्व"। सन् 1918 ई. में "झरना" लिखी और कवि प्रसाद छायावाद के प्रवर्त्तन की ओर अग्रसर होने लगे। इसके बाद सन् 1925 ई. में "आंसू" सन् 1933 ई. में "लहर" तथा सन् 1935 ई. में "कामायनी" का सृजन हुआ और प्रसाद काव्य-साधना के उच्चतम शिखर पर पहुँच गए।

प्रसाद की काव्य-चेतना की विविध प्रवृत्तियों से समृद्ध इन कृतियों की अन्तर्वस्तु की विस्तृत चर्चा हम आगे की इकाई में करेंगे। यहाँ केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि आधुनिक कविता के इतिहास में एक तरफ प्रेम, सौन्दर्य तथा आनन्द और दूसरी तरफ भाव, विचार तथा आनन्द का अद्भुत सामंजस्य देने वाला यह कवि मानव-मूल्यों के बहुत व्यापक फलक का कवि है। केवल 48 वर्ष की अवस्था में यक्षमा से पीड़ित इस महाकवि का 15 नवम्बर सन् 1937 को स्वर्गवास हो गया। किन्तु महाकवि जयशंकर प्रसाद सभी काव्य प्रेमियों और रसिकों को काव्य का ऐसा अद्भुत और अनुपम आस्वाद प्रदान कर गए, जो सदैव ही अतुलनीय तथा अमर बना रहेगा।

19.4.2 सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

छायावाद के प्रवर्त्तक कवि प्रसाद के बाद महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले कवि हैं महाप्राण "निराला"। अपने प्रचण्ड विद्रोह, उदग्र सौन्दर्य तथा उदात्त एवं आदर्श-जीवन दर्शन के इस कवि को हिन्दी काव्य का शलाका पुरुष कहा जाता है। सन् 1896 ई. में बंगाल के मेदिनीपुर महिषादल में जन्में इस महाकवि के जीने का अंदाज़ भी उपनाम की तरह "निराला" ही था। जीवन की विषम परिस्थितियों से जूझते और संघर्ष करते हुए भी साहित्य की महान् सेवा करने वाले इस आधार स्तम्भ ने "परिमल", "अनामिका", "तुलसीदास", "गीतगुन्ज", "कुकुरमुत्ता", "गीतिका", "अणिमा", "बेला", "नये पत्ते", "सांध्य-काकली", "अर्चना" तथा "आराधना" जैसी महानतम कृतियाँ प्रदान कीं। छायावादी काव्य को अनुपम तथा नवीनतम गति देने वाले इस विद्रोही कवि ने भाव, भाषा और छंद आदि क्षेत्रों में युगान्तरकारी परिवर्तन उपस्थित कर डाला। वेदान्त दर्शन के गहन अध्येता महाकवि निराला ने भी प्रसाद की तरह ही अपनी प्रतिभा के बल पर दर्शन और काव्य में अद्भुत समन्वय स्थापित किया। छायावाद ही नहीं हिन्दी साहित्य के इतिहास में महाप्राण निराला को उनकी भाषा तथा मुक्त-छंद के संदर्भ में युगों-युगों तक याद किया जाता रहेगा। काव्य के अतिरिक्त कहानी, उपन्यास, निबन्ध तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में भी निराला जी की विशिष्ट रुचि एवं देन रही। अक्टूबर, 1961 में भौतिक

अस्तित्व को तज देने वाले इस चिरन्तन "कवि-व्यक्तित्व" के अमर-प्रतीक पर सभी साहित्य-प्रेमियों को गर्व है।

19.4.3 सुमित्रानन्दन पन्त

छायावाद के चार आधार स्तम्भों में सुमित्रानन्दन पन्त तीसरे प्रमुख स्तंभ हैं जिनका नाम सदैव अमर रहेगा। व्यक्तित्व के अनुरूप ही काव्य को कोमलता, सरसता और सुन्दरता प्रदान करने वाले इस प्रकृति-पुत्र का जन्म 20 मई, सन् 1900 ई. में "कोसानी" में हुआ था। अनन्य प्रकृति प्रेमी तथा विदग्ध-विचारक कवि पन्त ने बाल्यावस्था से ही काव्य-सृजन प्रारम्भ कर दिया था। कवि रूप में स्थापित इस महान व्यक्तित्व ने काव्य से इतर नाटक, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, संस्मरण तथा समीक्षा के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया, किन्तु मूलतः वे कवि ही थे और अपनी विशिष्ट पहचान भी इसी क्षेत्र में बना सके। समय-समय पर गांधी, मार्क्स तथा अरविन्द आदि से प्रभावित और प्रेरित होने वाले इस प्रकृति-प्रेमी कवि की आरम्भिक रचनाएँ "वीणा" में संकलित हैं। इसके अतिरिक्त अन्य काव्य कृतियों मे "ग्रन्थि", "पल्लव", "गुंजन", "युगान्त", "ज्योत्सना", "अतिमा", "ग्राम्या", "युगवाणी", "युगान्तर", "स्वर्ण-किरण", "स्वर्ण-धूलि", "उत्तरा", "रजत-शिखर", "शिल्पी", "लोकायतन", "कला और बूढ़ा चाँद", "किरण", "पौ फटने से पहले", "गीतहंस", "समाधिता", "आस्था" तथा "सत्यकाम" आदि चिरस्मरणीय हैं। प्रकृति चित्रण का हृदयग्राही चित्रण और उसमें भी कोमल पक्ष विशेष रूप से कवि की रुचि का वैशिष्ट्य है। परिमार्जित, सरस एवं मधुर भाषा से समृद्ध कविता-कामिनी का यह सृजक कवि 31 दिसम्बर, सन् 1977 ई. को दिवंगत हो गया, किन्तु उनका साहित्य सदैव ही अमर रहेगा।

19.4.4 महादेवी वर्मा

छायावादी काव्य को संवारने-निखारने वाली गीति-लेखिका महादेवी वर्मा का नाम छायावाद के कवियों में अत्यन्त आदर से लिया जाता है। रहस्य, वेदना और गीतात्मकता की अमर-सृजक महादेवी का जन्म सन् 1907 ई. में फरुखाबाद में हुआ था। विधिवत् शिक्षा प्राप्त कर आजीवन प्रयाग-महिला विद्यापीठ की सेवा करने वाली महादेवी हृदय की अनुभूतियों और सूक्ष्मतम भावनाओं को सफलतम अभिव्यक्ति देती हैं और यह उनके कृतित्व का बेजोड़ पक्ष है। काव्य ही नहीं, रेखाचित्र, संस्मरण, निबन्ध तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान देने वाले महादेवी वर्मा के बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तित्व ने "वेदना" के मर्म से जो तादाकार किया और कराया है वह निश्चित ही उनका अपना वैशिष्ट्य है। सन् 1930 ई. में उन्होंने "नीहार" नामक काव्य संकलन प्रदान किया और उनकी प्रतिभा की धूम पूरे भारत में मच गई। इसके बाद लगातार सन् 1934 ई. में "नीरजा", सन् 1936 में "सांध्यगीत" तथा सन् 1940 ई. में "दीपशिखा" जैसी कृतियों में गीतों के माध्यम से आध्यात्मिक-वेदना और रहस्य-चेतना को मुखर बना दिया। दुखानुभूति को लेकर अज्ञात सत्ता की ओर उन्मुख होने वाली वेदना की महागायिका महादेवी वर्मा ने 11 सितम्बर, सन् 1987 को निर्वाण प्राप्त किया। भाव और कला की यह सबल और समृद्ध "प्रतिभा" भारतीय साहित्य-जगत के लिए चिरस्मरणीय है।

19.5 छायावाद की अन्तर्वस्तु

'छायावाद' एक युग प्रवृत्ति है, इसलिए उसका अपना एक विशिष्ट युग बोध भी है। छायावादी काव्य की जिस अन्तर्वस्तु की चर्चा अब हम करने जा रहे हैं वह जितनी समसामयिक परिस्थितियों से प्रभावित है उतनी ही इस युग के कवियों की अंतर्दृष्टि से भी प्रेरित है। "प्रथम वसंत के अग्रदूत" के रूप में स्वाधीनता की भावना को निमंत्रित करने वाले ये कवि नवजागरण के दूत बनकर हमारे सामने आते हैं। इसी कारण छायावादी काव्य को "शक्ति-काव्य" भी कहा जाता है। हिन्दी साहित्य में आधुनिक कविता का इतिहास देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि पहली बार छायावाद को ही विराट मानवीय-वेदाना की भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित होने का श्रेय प्राप्त होता है। यद्यपि इस काव्य को उद्दाम-वैयक्तिकता का विस्फोट माना गया है, फिर भी विश्व दृष्टि को आत्मसात करने में छायावाद ने जो पहल की है, वह किसी अन्य काव्यान्दोलन ने नहीं की। वैज्ञानिक-युग की अतिबौद्धिकता और उससे पैदा होने वाली जीवन की विभीषिकाएँ जब मनुष्य समाज को घेरने लगीं तो जनजीवन को मंगलमय-भविष्य और कल्याणकारी कल के सुनहरे स्वप्न दिखाकर कुंठित-मानसिकता के चुंगुल में जाने से बचाने का महत्वपूर्ण कार्य किया छायावाद ने। इस निबन्ध, उन्मुक्त तथा स्वच्छन्द जीवन की आकांक्षाओं पर लगाए गए सभी बंधनों को काट-फेंकने का जीवन-कार्य इस काव्य ने किया। इन सभी दिशाओं की वैचारिक प्रकृति और अनुभवी मानसिकता को हम एक-एक करके यहाँ देखेंगे।

19.5.1 व्यक्ति-स्वातंत्र्य का स्वर

छायावाद बूंद और समुद्र, व्यष्टि और समष्टि या मानव और समाज–दोनों का अपूर्व समन्वय अपने भीतर करता चलता है। खूबी यह है कि व्यक्ति स्वातंत्र्य को प्रेरित करते हुए विश्व बोध में उसका विलयन कर देना छायावाद की सफलतम उपलब्धि है। प्रत्येक देशवासी में स्वतंत्रता की भावना, आत्माभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और व्यक्तिगत स्वाधीनता की प्रतिष्ठा–यही सब छायावाद के साहित्यिक आन्दोलन को जीवन्त बनाते हैं। निराला जब यह कहते हैं–**"मैंने मैं शैली अपनाई"**–तो यहाँ **"मैं"** कहकर समूचे युग की पीड़ा को वे अपनी निधि मान कर चलते हैं। प्रसाद जी भी "आँसू" में इसी प्रकार वैयक्तिक विरह को "विश्व-वेदना" में परिणत करके यही कामना कहते हैं–**"चुन-चुन ले रे कनकन से जगती की सजग व्यथाएँ"** इसी प्रकार पन्त, निराला और महादेवी के काव्य में आत्माभिव्यक्ति का यह स्वर कई स्थानों पर देखने को मिलता है। निराला की इन अभिव्यक्तियों को देखिए :

i) "मैं अकेला! देखता हूँ आ रही, मेरे दिवस की सन्ध्या बेला।"

× × ×

ii) "ज्योति निर्झर बह गया है, रेत ज्यों तन रह गया है।"

× × ×

iii) "अभी न होगा मेरा अन्त।"

× × ×

iv) "मैं ही बसंत का अग्रदूत।"

× × ×

छायावादी कविता पुरातन-सामाजिक रूढ़ियों और झूठी नैतिकताओं के बंधनों को काट फेंकने का जागृति-गान लेकर आती है। निराला सामंती-समाज द्वारा गुलामी के जाल में जकड़ने की प्रक्रिया को निरंतर देखते रहे, और उसे ललकारने तथा उससे जूझने के जीवन-मूल्यों को भी स्थापित करते रहे। "अबे! सुन बे ओ गुलाम" कहकर वे उस सामंती-समाज को फटकारते ही नहीं, उसे समझाते भी हैं–

मानव मानव से नहीं भिन्न,
निश्चय ही श्वेत, कृष्ण अथवा,
 वह नहीं क्लिन्न;
 भेद कर पंक;
निकलता कमल जो मानव का
  वह निष्कलंक
हो कोई सर।

पन्त भी जहाँ स्व को सम्बोधित करते हैं, वहीं उनका "आत्म" मुखर हो जाता है। पहले वे प्रकृति-चित्रण करते हैं और बाद में उसी में आत्म-दर्शन करने लगते हैं। "एकतारा" में वे एकाकी नक्षत्र का रूपांकन करते-करते आत्माभिव्यक्ति करने लगते हैं तो "नौका-विहार" कविता के अंत में भी–**"इस धारा सा हो जग का क्रम"** कहकर अपनी अनुभूति को मुखर कर देते हैं। **"मैं प्रेमी उच्चादर्शों का, संस्कृति के स्वर्गिक स्पर्शों का"**– कहने वाले पन्त मूलतः जगजीवन के उल्लास के कवि बन कर सामने आते हैं–

i) "जगजीवन में उल्लास मुझे,
नव आशा नव विश्वास मुझे" ....

× × ×

ii) जीवन की लहर-लहर से, हँस खेल खेल रे नाविक
जीवन के अंतस्तल में नित बूड़-बूड़ से भाविक।

इसी स्वातंत्र्य-भाव की आत्माभिव्यक्ति महादेवी में भी सहज ही मिल जाती है। "रहने दो हे देव! अरे ये मेरे मिटने का अधिकार" कहने वाली महादेवी का पथ ही निर्वाण बन जाता है। कभी वे "मैं" का विस्तार कर देती हैं तो कभी उसे क्षणभंगुर घोषित कर उमड़ कर मिट जाने वाली बदली बना देती हैं–

मैं नीर भरी दुख की बदली
विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली।

इसी प्रकार इन कवियों ने रोमांटिक स्वाधीनता के पथ का भी वरण किया। इनकी "प्रणय के प्रलय में सीमा सब खो गई" जैसी स्वच्छन्द-भावना भी बन्धन-मुक्ति की ही परिचायक है। अत: सामाजिक विधि-निषेध के विरुद्ध प्रेम का यह उद्दाम रूप इन कवियों के सृजन में यत्र-तत्र देखा जा सकता है।

19.5.2 रूढ़ियों से मुक्ति का प्रयास

छायावादी काव्य विनत विद्रोह का काव्य है। उसने प्रथम बार पौराणिकता का निषेध किया और यूरोपीय विद्वानों द्वारा थोपे गए इतिहास को नकारकर नया राष्ट्रीय इतिहास निर्मित किया। ये कवि किसी राजनीतिक विचारधारा के अनुगत नहीं रहे, न मार्क्स के, न गांधी के। उनका अपना चिन्तन रहा है और अपनी प्रणाली भी। छायावादी कवि निराला ने हर प्रकार की रूढ़ि पर प्रहार किया और नये विषय, नयी भाषा के साथ नये छंद (मुक्त छंद) का प्रवर्तन भी किया। कवि पन्त ने ठीक ही कहा था—"कट गए छंद के बंध, प्रास के रजत पाश"। निराला जी का जय घोष था—"तोड़ो, तोड़ो, तोड़ो कारा! पत्थर की, निकले फिर गंगा जल धारा।" प्रसाद जी के शब्दों में—"पुरातनता का निर्मोक" प्रकृति को एक पल के लिए भी सह्य नहीं है। इसी ध्येय से पन्त जी ने यह कामना की—"द्रुत झरो, जगत के जीर्ण पत्र"!

निराला जी के काव्य में नवता के प्रति बड़ा आग्रह है। वे निरन्तर नवगति, नवलय, ताल छंद नव, नवल कंठ नवजलद मंद्रख के अभिलाषी रहे हैं। उनके गद्य में भी रूढ़ियों से मुक्ति पाने की छटपटाहट सर्वत्र दिखाई देती है। छायावाद के इस विद्रोही-स्वरूप के प्रति पुरातनपंथी आलोचकों की प्रतिक्रिया अनुकूल नहीं रही और उन्होंने अंध-प्रथाओं के समर्थन में इस काव्यान्दोलन का विरोध किया, किन्तु नयी युगधारा को कौन रोक सकता है? छायावाद में मानवीय प्रेम सौन्दर्य के जो रंग-बिरंगे भाव उभरे, वे द्विवेदीयुगीन कोरी नैतिकता की दृष्टि से आपत्तिजनक थे। "प्रसाद" के आंसू में कवि ने अपने संयोग-वियोग के मुक्त उद्गार व्यक्त किए। इसी प्रकार पन्त की कविता "भावी पत्नी के प्रति" या "ग्रन्थि" में चित्रित दृश्यों से, निराला के शृंगारिक गीतों से और महादेवी की रहस्यानुभूति द्वारा सड़ी-गली रूढ़ियों को गहरा आघात लगा। स्पष्ट है कि छायावाद काव्य की विद्रोही भूमिका ऐतिहासिक विकासक्रम में महत्वपूर्ण रही।

19.5.3 प्राकृतिक स्पंदन

छायावादी कविता का प्रकृति से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। प्रकृति इन कवियों के देश-प्रेम और व्यक्ति-स्वातंत्र्य की आकांक्षा की पूरक रही है। छायावादी कवियों ने प्रकृति को "सर्व सुन्दरी" कहा है। पन्त जी के कथनानुसार उन्हें कविता करने की प्रेरणा प्रकृति से मिली है। वास्तव में, ये चारों कवि "निसर्ग" कवि रहे हैं। प्रसाद जी ने अपने एक निबंध "प्रकृति सौन्दर्य" में प्रकृति को विलक्षण ईश्वरीय देन कहा है और विश्वात्मा की छाया भी माना है। उनके अनुसार, "यह प्रकृति परम रमणीय अखिल ऐश्वर्य भरी·····" (कामायनी) है। यह अनंत वर्ण रंजित मनोहारिणी छटा है, जो मनुष्य को आत्म चैतन्य की ओर अग्रसर करती है। निराला जी ने भी प्रकृति के अनेक कोमल और रौद्र रूपों को चित्रित किया है और बार-बार उसका मानवीकरण (नारीकरण) किया है। "तुलसीदास" नामक काव्य में उन्होंने प्रकृति के माध्यम से चित्त का उदात्तीकरण कराया है। तात्पर्य यह कि प्रकृति छायावादी कविता की सहचरी रही है।

बाह्य-प्रकृति के अनेक रूप छायावाद में चित्रित हुए हैं, किन्तु पर्वतीय पर्यावरण तथा सागर, सरिता और निर्झर के दृश्य अपेक्षाकृत अधिक हैं। प्रसाद जी ने हिमालयी शिखरों को शोभनतन कहा है और उसके विभिन्न रूपों को विभिन्न संदर्भों में अंकित किया है। पन्त स्वयंमेव "पर्वत पुत्र" हैं। उन्होंने "हिमाद्रि", "अल्मोड़े का पावस", "गिरि प्रान्तर", "पूर्वांचल के प्रति" आदि कविताओं में पर्वतीय प्रकृति की बार-बार परिक्रमा की है। उनका जैसा सूक्ष्म और विशद प्रकृति-चित्रण समूची हिन्दी कविता में अन्यत्र कहीं प्राप्त नहीं होता है। सागर, सरिता, निर्झर तथा जल-प्रवाह की ध्वनयात्मक व्यंजना निराला जी की कविताओं में बहुत है। "बादलराग", 'अलि घिर आये घर पावस के'। "प्रभात के प्रति", "धारा" आदि कविताएँ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। ऋतु-सौंदर्य का प्रकृति चित्रण में विशेष महत्व है। इन कवियों ने पावस, शरद् और बसंत ऋतु के मनोमुग्धकारी चित्र प्रस्तुत किए हैं। कोमल कुसुमों की मधुर रात, चांदनी, वसंतरजनी आदि कविताएँ छायावाद की गौरव-प्रतीक हैं। प्रकृति के विभिन्न काल खंड, जैसे उषाकाल (सूर्योदय), सन्ध्या, चन्द्र ज्योत्नाशाली अर्द्ध-रात्रि आदि के प्रति इन कवियों ने गहरी आसक्ति प्रदर्शित की है। प्रसाद का गीत-- "बीती विभावरी, जागरी", निराला की कविता—"संध्या सुन्दरी", पन्त की कविताएँ—"सन्ध्या के बाद", "एक तारा" आदि चिर स्मरणीय रहेंगी। इन कवियों ने प्रकृति के छोटे से छोटे तत्वों पर दृष्टि डाली है, जैसे ओस-बिन्दु,

विभिन्न पशु-पक्षी एवं वनस्पतियाँ। तात्पय यह है कि छायावादी कवियों ने [illegible] की [illegible] परिपूर्णता में ग्रहण किया है। उन्होंने सौन्दर्योपासक कलाकार रूप में प्रकृति की वन्दना की है। इन्हें यों तो प्रकृति के सभी रूप प्रिय हैं, किन्तु करुणा-कोमल रूप अपेक्षाकृत अधिक रुचिकर लगे हैं। इन्होंने प्रकृति से समात्मभाव स्थापित किया है। इनके विषय-चयन का अपना मनोवैज्ञानिक आधार रहा है। प्रकृति को इन्होंने प्रेम, सौन्दर्य, रहस्य, आनंद, अध्यात्म एकान्तप्रियता, और स्वच्छन्दता का हेतु माना है। पन्त जी ने तो इसे "देवि, माँ, सहचरिप्राण" अर्थात् अपना जीवन-सर्वस्व स्वीकार किया है। निष्कर्ष यह है कि यह 'प्रकृति' ही छायावादी काव्य-सौन्दर्य का मूलाधार है।

19.5.4 गीतात्मक मधुर वेदना

छायावादी कविता सही अर्थों में "आन्तरिक स्पर्श से पुलकित भावों" की कविता है। सृष्टि का चक्र जन्म-मरण, सुख-दुख, मिलन-विरह तथा अश्रु-हास की सीमाओं के बीच अपनी यात्रा तय करता है। कवि की पहचान उसका "वियोगी होना" और "आह के गीत सृजन करना" ही माना गया है। जीवन के इस पारस-सत्य को छूकर ही इन छायावादी कवियों की काव्य-साधना भी हृदय के अध्यात्म की गंभीर अनुभूति को प्रस्तुत करती रही। हृदय की अमर-अभिव्यक्ति करने वाले इन चारों महाकवियों में महादेवी वेदना के मधुर गीत गाने में सर्वाधिक सफल हुई और परिणामतः उन्हें "आधुनिक युग की मीरा" भी कहा गया। साधना का दिव्य-दीपक प्रज्जवलित करके सदैव-मात्रा में रहने वाली महादेवी—"अचल-पथिक" बन जाती हैं। सत्य के सहज ज्योतिर्मय स्वरूप का अस्तित्व वे सामंजस्य में देखती हैं तो कहती हैं—**"सेतु शूलों का बना बांधा विरह-वारीश का जल"** और "विरह की घड़ियाँ" भी जिस कवयित्री को **"मधुर मधु की यामिनी-सी"** प्रतीत होती हैं, सुख-दुःख का यह मेघ-द्युति खेल भी समझ जाती हैं। द्वैत, अद्वैत हो जाता है और वे जीवन के गहनतम प्रकाश को सृष्टि-समष्टि रूप में देखने लगती हैं—

> दमकी दिंगत के अधरों पर स्मित की रेखा-सी क्षितिज कोर
> आ गए एक क्षण में समीप आलोक तिमिर के दूर कोर,
> घुल गया अश्रु में अरूण हास हो गई हार में जय विलीन!

यही नहीं, **"आज वर दो मुक्ति आये बंधनों की कामना ले!"** कहने वाली महादेवी अडिग-योद्धा की तरह जीवन-संघर्ष करती रहना चाहती हैं। जीवन की इस अनोखी-कारा के कोहरे-भरे वातावरण में ही तो परमसत्य की चिदानन्द-ज्योति के दर्शन होते हैं। और एक समय ऐसा भी आता है जब वे सभी विषमताओं से ऊपर उठकर उस परम-सत्य के दिव्य संदेश को जन-जन तक पहुँचा देती हैं—

> विरह का युग आज दीखा, मिलनी के लघु पल-सरीखा,
> दुःख-सुख में कौन तीखा, मैं न जानी औ' न सीखा।
> मधुर मुझको हो गये सब मधुर प्रिय की भावना लें।

पन्त और प्रसाद के अंतर्लोक से भी अश्रु-तरल-वेदना का जो आर्द्रगान निःसृत होता है वह करुणा की साकार मूर्ति बनकर भावों को अभिव्यक्त कर देता है। "प्रिय" से उपेक्षित प्रसाद, प्रेम के अपेक्षित दान का अभाव महसूस करते हैं तो उनका कवि चातक **"धीरे से वह उठता पुकार, मुझको न मिला है कभी प्यार!"** का रुदन-गीत गाता है। आकाश का सूनापन उनके जीवन में उतर आता है तो कवि का गान फूट पड़ता है—

> कब तक और अकेले? कह दों हे मेरे जीवन बोलो?
> किसे सुनाऊँ कथा? कहो मत अपनी निधि न व्यर्थ खोलो!

कवि-प्रसाद अपने अतीत के उन अश्रु-भरे दिनों का स्मरण कर गा उठते हैं—

> वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे!
> जब सावन-धन सघन बरसते, इन आँखों की छाया भर थे।
> वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे!

सौन्दर्य-प्रेमी कवि पन्त सौन्दर्य की क्षण भंगुरता देखकर आकुल हो उठते हैं। भावों की अभिव्यक्ति की अपूर्णता, अभिलाषाओं की विफलता, सौन्दर्य की नश्वरता या प्रेयसी की निष्ठुरता आदि अनेक कारणों से वे वेदना और करुणा की राह से गुजरते हैं। विरह तुषार बनकर हृदय पर प्रहार करता है—

> मेरा पावस ऋतु सा जीवन,
> मानस सा उमड़ा अपार मन;
> गहरे, धुंधले धुले; सांवले
> मेघों से मेरे भरे नयन!

जीवन के विषम ज्वालामय अभाव कवि को विवश और निराश भी करते हैं। उनका कवि दार्शनिक बनने लगता है और वे घावों को अनुभव के मधुर लेप से भरने का प्रयास करते हैं–

i) बिना दुख के सब सुख निस्सार
बिना आँसू के जीवन भार!

× × ×

ii) आज का दुख, कल का आह्लाद
और कल का सुख आज विषाद!

"निराला" तो नूतन गेय छन्दों के भी उद्भावक बन कर सामने आते हैं। संगीत का मार्दव उनके स्वर-सामंजस्य के साथ मिल-जुलकर कलात्मक-रूप ले लेता है–

i) प्रिय यामिनी जागी,
अलस पंकज-दृग अरूण मुख
तरूण अनुरागी!

ii) मेरे प्राणों में आओ!
शत-शत शिथिल भावनाओं के
उर के तार सजा जाओ!

अतः स्पष्ट है कि विरह की कसक और मिलन का संदेश लेकर जिन गीतों का जन्म हुआ है, वह अत्यंत ही मनोरम है। निश्चित ही छायावादी-कवि, गीतों के सृजन से आधुनिक साहित्य में भावानुभूति की गहराई और जीवन-दर्शन की ऊंचाई की अद्भुत मिसाल बन गए हैं।

19.5.5 नारी विषयक नव्य धारणा

छायावादी काव्य नारी के प्रति नवीन दृष्टि रखता है। नारी के प्रति इन कवियों में न भक्तिकालान कवियों का तिरस्कार भाव है, और न रीतिकाव्य जैसा कामिक कौतुकी-कदाचार है। इन्होंने द्विवेदी-युगीन परहेजी संस्कार तथा प्रगतिवाद, प्रयोगवाद के यौनाकुल आवेशज्वार से ऊपर उठकर नारी को मानवीय सौन्दर्य की अधिष्ठात्री, मानवीय करूणा की विधात्री अर्थात् जीवन के समस्त शुभ संकेतों की निर्मात्री घोषित किया है। "प्रसाद" के मतानुसार तो नारी श्रद्धा का प्रतिरूप ही है–

नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष श्रोत ही बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।।

कवि ने नारी को दया, माया, ममता, मधुरिमा, अगाध विश्वास आदि शुभ एवं श्रेयस्कर भावों का प्रतीक घोषित किया है। छायावादी कवियों की दृष्टि में नारी विलास की सहचरी न होकर उच्चतम भूमियों तक ले चलने वाली शक्ति है। पुरुष की क्रूरता को मनुष्यता के रूप में परिणत करने का कार्य नारी शक्ति का ही है। वे कहते हैं–

"शासन करोगी तुम मेरी क्रूरताओं पर, मानस की माधुरी से।"

निराला जी ने भी नारी के प्रति सदाशयता प्रदर्शित की है। वे महाशक्ति के उपासक रहे हैं। उनके मतानुसार, जैसे तुलसीदास को रत्नावली से प्रेरणा प्राप्त हुई, उसी प्रकार स्वयं उन्हें मनोहरा देवी से प्राप्त हुई। उन्होंने नारी को पारंपरिक तथा आधुनिक, इन दोनों रूपों में अंकित किया है। पन्त की नारी तो स्वप्नलोक की मानसी प्रतिमा है। वे उसके सौन्दर्य चितेरे हैं और आदर्श नारीत्व के पूजक भी। महादेवी जी स्वयं नारी जीवन की विरह वेदना, अर्थात् भारतीय नारी की समस्त मनोभूमि की चित्रकर्त्री रही हैं। उनके गद्य में तो नारी जीवन की कुछ प्रतिक्रियाएँ यत्र-तत्र प्रकट हो गयी हैं, किन्तु उनकी कविता में किसी प्रकार का मतवाद अर्थात् "नारीवाद" नहीं उभरा है। हाँ, कवयित्री की संवेदनाएँ अवश्य मुखर हुई हैं। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि हिन्दी कविता की सुदीर्घ परम्परा में छायावादी काव्य ने प्रथम बार नारी के प्रति एक स्वस्थ एवं संयत दृष्टिकोण प्रकट किया है।

19.5.6 युगीन सत्य और यथार्थ-अभिव्यक्ति

छायावादी काव्य ने यथार्थ का वह अर्थ नहीं लिया, जिससे लघुत्वकामी दृष्टि अथवा "अधः प्रेक्षण" का मन्तव्य निकलता है। उनकी दृष्टि में यथार्थ एक व्यापक सत्य-तथ्य है। इन कवियों ने अपनी समकालीन सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्था को खुली दृष्टि से देखा था और भरसक समस्याओं का समाधान भी खोजा था। प्रसाद जी ने "कामायनी" में विगत तथा

कौड़ी के मोल बेचा जीवन का मणि कोष
और **आकाश को पकड़ने** की आशा में
हार बैठे जीवन का दाँव, जीतते जिसको मर कर वीर।
और निरूपाय मैं तो **ऐंठ उठी डोरी सी।**

प्रसाद जी की भाषा में कुछ सृजनात्मक अशुद्धियाँ या दोष देखे जा सकते हैं किन्तु यह स्पष्ट होना चाहिए कि ये दोष अनायास अथवा अनजाने में नहीं आते। सृजन और भावों का आवेग भाषा के स्वरूप को इस कदर बदल देता है कि लय और गति तथा संगीत और माधुर्य भाषिक नियमों पर हावी हो जाते हैं। बहुत सी जगह भावान्विति के कारण प्रसाद के वाक्य अधूरे ही जान पड़ते हैं और लिंग संबंधी दोष तो कई दिखाई देते हैं। 'आँख बंद कर लिया सोते', 'काली आँखों की तारा का' तथा 'शिशर कला की शीत स्रोत' आदि ऐसे ही उदाहरण हैं। परन्तु कई स्थानों पर यह दोष हैं नहीं, जान पड़ता है। जैसे, प्रेयमी को प्रसाद पुरुषवाचक सम्बोधन से संबोधित करते हैं– "कौन हो तुम वसन्त के दूत" या "फिर कह दोगे पहचानो तो मैं हूँ कौन बताओ तो" आदि प्रयोगों में ऐसा देखा जा सकता है। पर स्पष्ट हो कि ये प्रयोग दोष नहीं। ये प्रयोग तो स्व-पर की भावना से ऊपर उठकर प्रेयसी को एक प्राणी मात्र समझकर किये गए प्रयोग हैं। इन्हें दोष नहीं कहा जा सकता। कहीं-कहीं अस्पष्टता-दोष अवश्य ही देखा जाता है, किन्तु वे सब इस प्राणवान काव्य भंडार के समक्ष नगण्य ही कहे जा सकते हैं। कुल मिलाकर प्रसाद की काव्य भाषा हिन्दी साहित्य की गरिमा मंडित भाषा है। शक्तिमयी तथा प्राणवान भाषा का ऐसा दूसरा उदाहरण छायावाद से बाहर भी कहीं नहीं है।

20.6.2 शैलीगत नवीनता

प्रसाद की शैली प्रसादत्व से मंडित एक चिन्तक कवि की अपूर्व-शैली है। अभिजात-गरिमा से समृद्ध कवि की शैली में संगीत और लय का सामंज्जस्य है। लालित्य और वर्णों की भास्वरता तथा पदों के अनुसरण में मिलने वाली हल्की मिठास काव्य में एक मंजुल गूँज पैदा करते हैं। उनकी शैली में निराला की शैली का सा वैविध्य तो नहीं, पर प्रसाद के गम्भीर व्यक्तित्व की छाप इस शैली को एक विशिष्ट पहचान देती है। शश्वत और चिरंतन भावों-विचारों को वहन करने वाली भाषा तथा एक नव्यतम-रूप में ढाल कर प्रस्तुत करने वाली यह सौंदर्यमयी शैली एक 'अमर-संदेश' बनती है। प्रगीत के भावात्मक आवेशों को संगीत की पृष्ठभूमि पर थिरकाना तथा प्रेम पूर्ण-शृंगार के गीतों में उपालम्भ-शैली को समाहित कर मुग्ध कर देना प्रसाद की अन्यतम विशेषता है। यही "निधरक तूने ठुकराया तब" जैसे गीतों में सजीव हो उठी है। इसी प्रकार अन्योकित-शैली, अनुनयात्मक-शैली को भी क्रमश: "उठ-उठ री लघु-लघु लोल लहर" और "मेरी आँखों की पुतली में तू बन कर प्राण समा जा रे" में देखा जा सकता है। "अरी वरूणा की शान्त कछार" जैसी पंक्तियों में वर्णनात्मक-शैली है तो "शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण", "पेशोला की प्रतिध्वनि" और "प्रलय की छाया" आदि में आख्यानक शैली के उदाहरण भी मौजूद हैं। "मधुप गुनगुना कर कह जाता, कौन कहानी यह अपनी" कविता में आत्मकथात्मक-शैली के दर्शन भी किए जा सकते हैं।

प्रसाद ने छोटे और लम्बे-दोनों प्रकार के गीत लिखे हैं। "टेक" की पंक्ति अपेक्षानुसार छोटी-बड़ी होकर गीत के सौन्दर्य में वृद्धि करती है। प्रसाद जी की "चतुर्दशपदी" का सुंदर प्रयोग भी शैली में चार-चाँद लगाता है। "निज अलकों के अन्धकार में तुम कैसे छिप पाओगे" इसका सुंदर उदाहरण है। अत: कह सकते हैं कि पदों में गम्भीर भाव भरकर संगीत तथा लय का विधान करना प्रसाद जी की शैली की मुख्य विशेषता है। देश-प्रेम की भावना से प्रभावित होकर वे वीर-रस भरी ओजमयी शैली अपनाकर मनमोहक शब्दचित्र बना देते हैं। उनका काव्य मुक्तक काव्य, प्रबन्ध काव्य, गीति काव्य, चम्पू काव्य और खण्ड-काव्य आदि कई रूपों में मिलता है। "लहर" और "झरना" गहतिकाव्य हैं तो "कामायनी प्रबन्धकाव्य" "करुणालय" काव्य-रूपक है, "उर्वशी चम्पू काव्य, तो "आँसू" खण्ड काव्य है। "प्रेम-पथिक" को भी लघु खण्ड काव्य कहा जा सकता है। अत: कह सकते हैं कि शृंगार, वीर, करुण, शान्त तथा वात्सल्य आदि के सुन्दर उदाहरणों से समृद्ध इस रसवादी कवि का समग्र काव्य चिन्ता, लज्जा, निर्वेद तथा काम आदि अमूर्त भावनाओं को मूर्त करने वाला महान एवं अद्वितीय शैली का काव्य है।

20.6.3 प्रतीक विधान

काव्य के अभिप्रेषित अर्थ को घोषित करने के लिए जो माध्यम बनते हैं वे प्रतीक कहलाते हैं। ये प्रतीक प्रकृति, संस्कृति समाज, इतिहास तथा लोकानुभवों से किए जाते हैं। प्रसाद ने भी काव्य-सौन्दर्य की श्री वृद्धि के लिए बहुत से प्रतीकों का आश्रय लिया। संगीत कला के वीणा,

झंकार, तार, प्रभाती, भैरवी मूर्च्छना, विहाग तथा वंशी जैसे प्रतीक यहाँ हैं तो चित्रकला के चित्र, रंग, रेखा चितेरा, तूलिका आदि प्रतीक भी उपलब्ध हैं। मूर्तिकला के मूर्ति, मूर्तिकार तथा पाषाण आदि प्रतीक भी देखे जा सकते हैं। प्रकृति के फूल, काँटा, उषा, संध्या, चाँद, निशा, कामधेनु, कल्पवृक्ष, चातक, घन, दीपक आदि सैकड़ों प्रतीक भी मिलते हैं। अतः प्रसाद काव्य में सर्वभौमिक, देहागत, परम्परागत, वैभक्तिक, युगीन तथा भावात्मक आदि सभी प्रतीकों के उदाहरण देखे जा सकते हैं। "आँसू" में प्रसाद के तम, प्रकाश नवज्योति तथा मंजुल-मोती जैसे प्रतीक जीवन्त भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति करते हैं।

फिर तम प्रकाश झगड़े में
नव ज्योति विजमिनी होती
हँसता यह विश्व हमारा
बरसाता मंजुल मोती।

इसी प्रकार "घन में सुन्दर बिजली सी, बिजली में चपल चमक सी", "सूखी-सी फुलवारी में, आये तुम इस क्यारी में" प्रयोग भी द्रष्टव्य हैं जहाँ प्रतीक मुखरित हैं। "झरना" का एक उदाहरण देखिए जहाँ मलयानिक "शीतलतम" उजड़ी क्यारी (शुष्क-जीवन) तथा गुलाब (हृदय) आदि प्रतीक प्रयुक्त हैं–

मलयानिल की तरह कभी आ
गले लगोगे तुम मेरे।
फिर विकसेगी उजड़ी क्यारी,
क्या गुलाब की यह मेरे।।

प्रसाद के तो 'आँसू' और 'कामायनी' प्रतीकों की भाषा में ही लिखे गए अन्यतम ग्रंथ है। "इस करूणा कलित हृदय में; अब विकल **रागिनी** बजती", "पतझड़ था झाड़ खड़े थे, सूखे से **फुलवारी** में", जैसी पंक्तियों में रागिनी (व्यथा के स्वर), पतझड़ (शुष्कता) और फुलवारी (हृदय) जैसी प्रतीक देखे जा सकते हैं। इसी तरह झंझा, बिजली, नीरद माला, मुरली, स्फुल्लिंग, माधवी कुंज-छाया आदि प्रतीक भी दृष्टव्य हैं। कलियाँ सम्मोहन हैं, काँटे दुख हैं, आँधी हृदय की क्षुब्ध स्थिति है। प्रसाद की इस विपुल प्रतीक योजना ने मनोदशाओं का बहुत सुंदर ढंग से चित्रण किया है। "लहर" में भी प्राकृतिक प्रतीकों तथा प्रतीकात्मक अप्रस्तुतों का प्रचुर प्रयोग है। "करुणा की नव अंगड़ाई सी", "तू भूल न री पंकज बन में", "उठ-उठ री लघु-लघु लोल लहर" आदि कितने ही ऐसे प्रयोग हैं। कामायनी में तो प्रतीकों का प्रौढ़तम रूप ही देखा जा सकता है, जहाँ पात्र, सर्ग तथा कथा-क्रम भी प्रतीकात्मक हैं। मनु (मन या मनोमय कोश का जीव), श्रद्धा (हृदय), इड़ा (बुद्धि), मानव (नवमानव), देवगण (इन्द्रियाँ), त्रिलोक (भाव, कर्म और ज्ञानलोक) तथा कैलाश (आनन्दमय कोश) आदि इसी के उदाहरण हैं। अतः स्पष्ट है कि प्रसाद की प्रतीक योजना कवि के चिंतन एवं भाव व्यापार की कलात्मक पहचान बनती है।

20.6.4 बिम्ब विधान

काव्य सौन्दर्य के निर्धारक तत्वों में बिम्ब की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अंग्रेजी के "इमेज" शब्द का पर्याय है बिम्ब। इसका अर्थ है किसी वस्तु या पदार्थ का मनश्चित्र प्रस्तुत करना। इसे भावगर्भित शब्द चित्र भी कह सकते हैं। छायावाद में इसे चित्र विधान कहा गया है। अमूर्त को मूर्त करने की इस कला में प्रसाद बहुत निपुण हैं। भावों को स्थापित करने के लिए चित्रभाषा का कथात्मक प्रयोग करने वाले महाकवि प्रसाद ने बहुत से बिम्ब तैयार किए जिनमें उनकी स्वानुभूति, संस्कार, अध्ययन तथा जीवनानुभवों की स्पष्ट झलक मिलती है। इन बिम्बों में शब्द बिम्ब भी हैं, वर्ण बिम्ब भी है और व्यंजन प्रवण सामाजिक बिम्ब भी। अमूर्त को मूर्त बनाने की कथात्मक उपलब्धि प्रसाद के "कामायनी" जैसे महाकाव्य में सहज ही हो जाती है। "लज्जा" जैसे भाव का अद्भुत मूर्तिकरण देखिए :

कोमल किसलय के अंचल में
नन्हीं कलिका ज्यों छिपती सी,
गोधली के धुमिल पट में,
दीपक के स्वर में दिपती सी।

नीरव निशीथ में लतिका सी,
तुम कौन आ रही हो बढ़ती?
कोमल बाँहें फैलाये सी,
आलिंगन का जादू पढ़ती।

यहीं नहीं प्रसाद के काव्य में ऐंद्रिय बिम्बों को भी प्रचुर मात्रा में उकेरा गया है। रमणीय ...-बिम्ब की छटा "किंजल्क-जाल हैं बिखरे, उड़ता पराग है रूखा" में भी बिखर जाती है तो काली आँखों में कितनी, यौवन के मद की लाली" जैसी पंक्तियों में वर्ण-सौन्दर्य भी दर्शनीय बन जाता है। प्रसाद के व्यंजनाप्रवण सामासिक बिम्ब का एक उदाहरण देखिए –

संध्या की मिलन प्रतीक्षा
कह चलती कुछ मनमानी
ऊषा की रक्त निराशा
कर देती अन्त कहानी

प्रसाद बिम्बविधान के संदर्भ में छायावादी अन्य तीनों कवियों की तुलना में कम सावधान रहे हैं। किन्तु फिर भी यह बहुविध और पर्याप्त व्यापक गुण बन कर आया है। पंत और निराला के बिम्बों से तुलना तो नहीं हो सकती, किन्तु जहाँ-जहाँ भी काव्य सौन्दर्य की वृद्धि में इनकी आवश्यकता पड़ी है, प्रसाद ने इनका प्रयोग किया है। विराट दृश्यों को प्रस्तुत करने वाले एक उदान्त बिम्ब का दृश्य भी देखा जा सकता है। बिम्बों ने प्रसाद के कलात्मक सौख में अपार श्री वृद्धि की है–

अतलान्त महागम्भीर जलधि
तजकर अपनी मह नियत अवधि
लहरों के भीषण हासों में
आकर खारे उच्छवासों में,
युग-युग की मधुर कामना के
बन्धन को देता जहाँ ढील।

– लहर

20.6.5 अलंकार तथा छंद

छायावादी कवियों ने अलंकारों का प्रयोग काव्य में रमणीयता बनाये रखने के लिए किया है। यह प्रयोग सामास नहीं स्वतः प्रविष्ट हुआ जान पड़ता है। प्रसाद साहित्य में तो अलंकार अतिशयता के फलस्वरूप सहज एवं स्वाभाविक रूप में प्रस्फुटित हुए हैं। उनके काव्य में सादृश्य-मूल्क, वैषम्यमूलक तथा मानवीकरण आदि अलंकारों का सहज प्रयोग कई स्थानों पर देखा जा सकता है। सादृश्य मूलक अलंकारों में उपमा, रूपक श्लेष तथा रूपकातिशयोक्ति जैसे कई अलंकारों का सुंदर प्रयोग दृष्टव्य है–

उपमा : i) वसुधा **चरण-चिह्न सी बनकर** यहीं पड़ी रह जावेगी।

ii) करुणा की **नव अंगराई सी,** मलयानिल की परछाई सी।

iii) उसी **तपस्वी रो लम्बे थे** देवदारु दो चार खड़े।

इसी प्रकार "मस्तक में **स्मृति सी छाई**", "जल उठा स्नेह **दीपक सा**" तथा "बड़वानल की **ज्वाला सी**" जैसे कई उदाहरण देखे जा सकते हैं।

रूपक : नील नयन से ढुलकाती हो
तारओं की पाँत घनी रे।

बीती विभावरी जाग री
अम्बर पनघट में डुबो रही
ताराघट उषा नागरी।

पहले उदाहरण में जीवन को संध्या कहकर नील नयनों को आकाश और अश्रुओं को तारे कहा गया है। दूसरे उदाहरण में उषा को नायिका मानकर अम्बर रूपी पनघट में तारे रूपी घडों को डुबोने का सुंदर रूपक बनाया गया है। इसी प्रकार 'अलबेली-बाहुलता' और '**मानव-जीवन-वेदी**' पर जैसे प्रयोग भी देखे जा सकते हैं।

रूपकातिशयोक्ति : बाँधा था विधु को किसने
इन काली जंजीरों से
मणि वाले फणियों का मुख
क्यों जड़ा हुआ हीरों में?

सन्देह : नायिका की बाँह लता है या सौंदर्य रूपी सरोवर की कोई सुंदर लहर? सन्देह का सुंदर उदाहरण है–

अलबेली बाहुलता या तनु
छवि सर की नव लहरी।

व्यतिरेक : लहरें उठती थीं मानो चूमने को मुझको
और साँस लेता था समीर मुझे छूकर।

इसी तरह "सोने वाले जग कर देखें अपने सुख का सपना" में **वक्रोक्ति** है तो "उठ-उठ री लघु-लघु लोल लहर" में **अनुप्रास, पुनरूक्ति एवं अन्योक्ति** की छटा को एक साथ देखा जा सकता है। "किन्तु दुर्भाग्य पीछा करने में आगे था" या "कल्याणी शीतल ज्वाला" जैसी पंक्तियों में **विरोधाभास** है। "जैसे उस नील निलय में" और "मालती कुंज में जैसे" प्रयोग **उदाहरण अलंकार** के प्रमाण है। "वे कुछ दिन कितने सुंदर थे" में **स्मरण अलंकार** है। "ओ री मांनस की गहराई" में मानस के 'हृदय' और 'सागर' अर्थ होने से **श्लेष है**। "उठ-उठ गिर-गिर फिर-फिर आती" में **चित्रालंकार** है। इसी प्रकार प्रसाद ने मूर्त-उपमेयों के लिए अमूर्त-उपमानों की योजना भी की है तो अमूर्त उपमेय के लिए मूर्त उपमान की प्रस्तुति भी द्रष्टव्य है– "जल उठा स्नेह दीपक सा नवनीत हृदय का मेरा"। प्रसाद ने **मानवकीकरण** का तो अद्भुत प्रयोग किया है। अनेकों उदाहरण देखे जा सकते हैं। यहाँ एक उदाहरण देकर हम अलंकार प्रसंग की चर्चा समाप्त करेंगे–

पगली हा सम्भाल तो कैसे
टूट पड़ा तेरा अंचल
देख बिखरती है मणिराजी
अरी उठा बेसुध चंचल।

अतः स्पष्ट है कि प्रसाद के काव्य में अनिवार्य तथा अभिन्न अंग बने थे तथा अन्य कई अलंकार काव्य-सौन्दर्य में अपार वृद्धि करते हैं। इनसे भावोत्कर्ष, एवं रस-सृष्टि में सहायता ही मिलती है। ये प्रभावी बनते हैं चमत्कारी नहीं।

छंद : प्रसाद ने भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति के लिए विशिष्ट छंदों का प्रयोग किया है। पंत और निराला की तरह वे छंद-विधान में स्वतंत्रता भले ही न लेते हों किन्तु उन्होंने अंग्रेजी के "सानेट" और बंगला के "त्रिपदी" तथा "पयार" नामक छन्दों का भी बाखूबी प्रयोग किया है। स्वच्छन्दता के इस युग में प्रसाद "पेशोला की प्रतिध्वनि" में मुक्त-छन्द का प्रयोग भी करते हैं। पर अधिकांशतः प्रसाद ने नवीन और प्राचीन का सामंजस्य कर संगीत की अभिवृद्धि तथा भाव-प्रवणता के लिए ही छन्दों का चयन किया। कई तरह के छन्दों का प्रयोग उनके प्रगीतों में विद्यमान हैं। "लहर" में 'बाला' 'पीयूष पव' तथा 'श्रंगारहार' जैसे प्रयोग देखे जा सकते हैं। "महाराणा का महत्व" और "प्रेम-पथिक" में वे अनुकान्त प्रणाली को अपनाते हैं। "आँसू" में तो प्रसाद ने एक नया छन्द ही गढ़ डाला जिसका नाम भी "आँसू" छन्द ही पड़ गया। इसमें 14, 14 के विराम से 28 मात्राएँ हैं। इसका अनुकरण आगे चलकर मराठी साहित्य में भी हुआ। आँसू छन्द प्रसाद को अत्यंत प्रिय था। 'कामायनी' के अंतिम सर्ग "आनन्द" में भी वे इसी छंद का प्रयोग करते हैं–

| | | s | | s s | |
समरस थे जड़ या चेतन = 14 मात्राएँ ⎫
सुंदर साकार बना था, = 14 मात्राएँ ⎭ = 28
चेतनता एक विलसती
आनंद अखंड घना था।

प्रसाद ने छंदों के मामले में बहुत जगह पर स्वच्छन्दता भरी दृष्टि का इस्तेमाल किया है। कहीं घनाक्षरी के आधार पर द्वन्द बनाया तो उसका अन्त बदल डाला। प्रसाद ने 'प्लवंगम' नामक छंद के आधार पर अन्तमुक्त प्रयोग भी किये हैं। "कामायनी" में तो प्रसाद ताटंक, पादाकुलक, रूपमाला, सार, रोला और स्वयं प्रसाद द्वारा निर्मित छद–पादाकुलक-पद्धति, ताटंक और गेय आदि का सुंदर प्रयोग किया है। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि प्रसाद का छन्द-विधान उनकी शास्त्रीय एवं मौलिक प्रतिभा का प्रबल प्रमाण है। उनके समग्र काव्य-संसार में इसे देखा जा सकता है।

बोध प्रश्न 3

1 प्रसाद के भाषा-सौन्दर्य को काव्य-गुण तथा शब्द-शक्तियों ने अत्यन्त प्राणवान और सार्थक बनाया है। आठ पंक्तियों में उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

2 प्रसाद ने अपने काव्य के लिए कौन-कौन सी शैलियों को अपनाया? पाँच पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

3 प्रसाद ने अपने काव्य को सार्थक प्रतीत विधान से सुसज्जित ही नहीं किया उसे शक्ति भी प्रदान की है। आठ-दस पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

4 प्रसाद के बिम्ब-विधान पर पाँच-छह पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

....

5 प्रसाद का अलंकार-विधान उनके काव्य का अनिवार्य तथा अभिन्न अंग बन कर आया है। किन्हीं दो अलंकारों के उदाहरण देकर आठ पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए:

....

....

....

....

....

....

....

....

6 प्रसाद की काव्य-भाषा में प्रयुक्त मुहावरों में से किन्हीं तीन का उदाहरण सहित आठ पंक्तियों में विवेचन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

20.7 काव्य वाचन तथा संदर्भ सहित व्याख्या

अभी तक आप छायावाद के प्रवर्तक तथा बहुमुखी प्रतिभा से समृद्ध अन्यतम रचनाकार जयशंकर प्रसाद के जीवन, व्यक्तित्व, काव्य स्तर तथा शिल्प विधान का विस्तृत एवं गहन अध्ययन कर चुके हैं। अब आपके पाठ्यक्रम में निर्धारित प्रसाद की तीन कविताएँ दी जा रही हैं। सर्वप्रथम इन कविताओं का गम्भीरता से वाचन कीजिए। उसके बाद इनकी सप्रसंग व्याख्या का अध्ययन कीजिए। सुविधा के लिए कविताओं का सार भी दिया जा रहा है। जिन पद्यांशों की व्याख्या नहीं की गई है, उनकी व्याख्या का प्रयास एवं अभ्यास आपको स्वयं करना है। आइये सबसे पहले काव्य-वाचन करें।

काव्य वाचन 1

बीती विभावरी[1] जाग री।
अम्बर[2] पनघट[3] में डुबो रही—
तारा-घट[4] उषा[5] नागरी[6]।
खग-कुल[7] कुल कुल सा बोल रहा,
किसलय[8] का अंचल डोल रहा,
लो यह लतिका[9] भी भर लाई।
मधु[10] मुकुल नवल रस गागरी।
अधरों[11] में राग अमन्द पिये,
अलकों[12] में मलयज[13] बन्द किये।
तू अब तक सोई है आली[14]।
आँखों में भरे विहाग[15] री।

वाचन 2

ओ रही मानस[16] की गहराई।
तू सुप्त[17], शांत कितनी शीतल।
निर्वात[18] मेघ ज्यों पूरित[19] जल।
नव मुकुर[20] नीलमणि[21] फलक[22] अमल[23]
ओ पारदर्शिका[24] चिर चंचल।
यह विश्व बना है परछाई।
तेरा विषाद[25] द्रव तरल-तरल
मूर्च्छित न रहे ज्यों पिये गरल[26]
सुख लहर उठी री सरल-सरल
लघु-लघु सुंदर, सुंदर अविरल[27]

1. रात्रि 2. आकाश 3. पानी भरने का स्थान,या कुआ 4. तारे रूपी घड़ा 5. प्रात:कालीन वेला 6. नायिका या स्त्री 7. पक्षियों का समूह 8. नये-नये पत्ते 9. बेल 10. शहद 11. होठों 12. बालों या केशों 13. चन्दन की सुगंध 14. सखी 15. वियोग में गाया जाने वाला राग 16. मानसरोवर हृदय 17. सोई हुई 18. बिना वायु के 19. भरे हुए 20. शीशा 21. नीलम या नीला पत्थर 22. सतह, ऊपरी हिस्सा या आसमान 23. मल रहित, स्वच्छ 24. जिसमें उस पार का भी दिखाई दे 25. दुःख 26. विष 27. घना, सटा हुआ, लगातार

तू हँस जीवन की सुघराई[1]
हँस, झिलमिल हो लें तारा गन,
हँस, खिलें कुंज में सकल सुमन,
हँस, बिखरें मधु मरंद[2] के कन,
बन कर संसृति[3] के नव श्रम कन,
सब कह दें वह राका[4] आई।
हँस लें भय शौक प्रेम था या रण[5]
हँस ले काला पट ओढ़ मरण[6]
हँस ले जीवन के लघु-लघु क्षण,
देकर निज चुंबन के मधुकण
नाविक[7] अतीत[8] की उतराई।

वाचन 3

हिमाद्रि[9] तुंग[10] श्रृंग[11] से
प्रबुद्ध[12] शुद्ध भारती[13]
स्वयंप्रभा[14] समुज्ज्वला[15]
स्वतन्त्रता पुकारती।
अमर्त्य[16] वीरपुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त[17] पुण्य पंथ है—बढ़े चलो, बढ़े चलो।।
असंख्य कीर्ति-रश्मियाँ[18]
विकीर्ण[19] दिव्य[20] दाह[21] सी।
सपूत मातृभूमि के
रूको न शूर साहसी।
अराति[22] सैन्य-सिन्धु[23] में—सुवाड़वाग्नि[24] से जलो,
प्रवीन हो जयी बनो—बढ़े चलो बढ़े चलो।

कविता-सार 1

''बीती विभावरी जाग री'' शीर्षक कविता में महाकवि प्रसाद प्रात:कालीन प्राकृतिक सौन्दर्य के रूपांकन द्वारा युग-परिवेश तथा देशकाल का चित्रण करते हुए राष्ट्रीय चेतना का संदेश देते हैं। उषा अर्थात प्रात:कालीन वेला रूपी सुप्त नायिका को जागरण मंत्र देते हुए कवि कर्त्तव्यरत होने की सूचना देता है। प्रात:कालीन जागरण के इसी चित्र में प्रसाद ने रात्रिगमन तथा नवीन स्फूर्ति युक्त सुबह के आगमन की सूचना दी है। इस कविता में उषा रूपी सुप्त नायिका के माध्यम से कवि समग्र भारत को जगाना और उठाना चाहता है। मानवीकरण और रूपक का सुंदरतम उदाहरण बनी यह कविता एक अद्भुत रूपक प्रस्तुत करती है। सांस्कृतिक जागृति का आह्वान करती प्रसाद की यह कविता प्रकृति, श्रृंगार और राष्ट्रीय जागरण के अर्थों को एक साथ लेकर चलती है।

कविता-सार 2

''ओ री मानस की गहराई'' शीर्षक इस कविता में संयम और दर्शन का आधार पाकर अपने निराशा भरे जीवन में कुछ गम्भीरता से विचार करने वाला कवि अपने हृदय को मानसरोवर मानकर उसके गुणों को चित्रित करता है। मानस रूपी इस प्रतीक के माध्यम से प्रसाद अपने मन को शांत, जल युक्त एवं हवा रहित मेघ की तरह शीतल तथा साधना-पथ की पवित्रता से मुक्त मानते हैं। प्रसाद का यह मानसरोवर रूपी हृदय यहाँ द्वेष-राग से दूर, संयमी, स्वच्छ, निर्मल और विशाल अम्बर सा रूपायित होता है। जीवन के सभी विषाद इस हृदय की पवित्रता में घुल जाते हैं। प्रियतमा का विछोह अब प्रेरणा बनता है। दुख विस्मृत हो जाते हैं। विष अमृत बनता जाता है। उदात्तता की ओर निरंतर उन्मुख रहने वाला कवि हँसने खिलने को ही जीवन मानने लगता है। इसी में संसार का उज्ज्वलतम पक्ष उभरता है। प्रसाद इस कविता में साहस धारण कर भय शोक और विरह आदि पर प्रेम की विजय का मार्ग प्रशस्त करते हैं। मृत्यु नैया में भी खेलते रहने का संदेश देते हैं। आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख कवि के हृदय में अनेकों गहन एवं गम्भीर भाव

---

1. सुघड़पन, सुंदरता 2. पराग 3. संसार, आवागमन की परंपरा 4. पूर्णिमा की रात 5. संघर्ष, युद्ध 6. मृत्यु 7. मल्लाह, नाव खेने वाला 8. बीता हुआ 9. हिमालय 10. ऊँचा 11. चोटी या शिखर 12. बुद्धिमान 13. वाणी या सरस्वती 14. स्वत: प्रकाशित या तेज युक्त 15. उज्ज्वल प्रकाश युक्त 16. जो मर न सके अर्थात अमर 17. आलोकित या प्रकाशित 18. यश की किरणें 19. बिखरी हुई 20. अलौकिक 21. ज्योति या प्रकाश 22. शत्रु 23. समुद्र 24. समुद्र में लगने वाली अग्नि

उमड़ते हैं। मानस के अनेकों व्यापार को प्रतीक बनाकर प्रसाद अपने हृदय (मानसरोवर) का तथा उसमें उठने वाले भावों और विचारों का परिचयात्मक विवरण इस कविता में देते हैं।

कविता - सार 3

प्रसाद के बहुचर्चित नाटक "चंद्रगुप्त" से लिये गए इस गीत में नाटक की नायिका अलका अन्य नागरिकों के साथ मिलकर राष्ट्रीय हित एवं रक्षा के प्रति जन-जन को जागरूक करने का कार्य करती है। इस उद्बोधन गीत में कवि समग्र भारतवासियों की लुप्त चेतना को जागृत करता है। प्रसाद उन्हें उनके प्रशस्त एवं कीर्ति-रश्मियों से सुसज्जित अतीत का स्मरण कराते हुए प्रोत्साहित करते हैं। हिमालय पर्वत के सर्वोन्नत शिखर पर विराजित प्रबुद्धता और विवेक की अधिष्ठात्री देवी माँ सरस्वती का स्मरण कराते हुए कवि कर्त्तव्य प्रेरणा देता है। स्वतः प्रकाशित स्वतंत्रता निरंतर पुकार-पुकार कर भारतीयों को वीर-यौद्धाओं की अमर सन्तान बताकर उन्हें दृढ़ संकल्प और कर्त्तव्य निष्ठा की याद दिलाती है। विघ्न बाधाओं को रौंद कर तथा भय को त्याग कर निर्भीकता से इस अत्यंत प्रशस्त मार्ग पर अग्रसर होने की कामना कवि करता है। इसी कर्त्तव्य पक्ष पर विजय हासिल करने से देश-विदेश में जय-गाथाएँ गुंजरित होंगी और यश की किरणें समग्र संसार में फैलेंगी। इस भारत भूमि के शूरवीर सपुत्रों, इन क्षणिक बाधाओं विपदाओं से घबराना उचित नहीं। उठो, बढ़ो और विजय हासिल करो। शत्रुओं के सेना रूपी सागर में कूद कर बढ़वाग्नि से प्रज्ज्वलित हो जाओ। यही कवि प्रसाद की हार्दिक इच्छा है। गुलामी के युग में प्रसाद ने इस स्फूर्ति जागरण एवं स्वतंत्रता बोध के गीत से समग्र भारत में विजय भाव की अदम्य भावना भर स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त किया था।

प्रसंग एवं संदर्भ सहित व्याख्या

कविता 1

बीती विभावरी जाग री .... विहाग री।

प्रसंग एवं संदर्भ : प्रस्तुत कविता छायावाद के प्रमुख आधार स्तम्भ तथा वैविध्यमयी सृजन प्रतिभा के धनी महाकवि जयशंकर प्रसाद की शक्तिमयी लेखनी से सृजित हुई है। प्रसाद जी की अत्यंत प्रसिद्ध काव्य कृति "लहर" से ली गई इस कविता में प्रकृति की मनोरम एवं मनोहारी छटा का छायावादी शैली में अत्यंत प्रभावी अंकन किया गया है। प्रकृति के मानवीकरण का अन्यतम उदाहरण बनने वाली इस कविता में रात्रि के व्यतीत होने और प्रातःकालीन उषा नागरी को जागृत करने का अद्भुत वर्णन किया गया है। प्रकृति, शृंगार और राष्ट्रीय चेतना के अर्थों को एक साथ संजोकर चलने वाली यह कविता कवि प्रसाद की अलौकिक प्रतिभा की परिचायक भी बनती है।

रात्रि के समाप्त होने की वेला पर अम्बर के सभी तारे धीरे-धीरे लुप्त होने लगते हैं और सूर्य की प्रथम रश्मियाँ उषा के आगमन का संदेश देने लगती हैं। चारों ओर एक मोहक एवं मनोहारी वेला होती है। पक्षियों की चहकन, भँवरों की गुंजन, तितलियों की उड़ान, वृक्षों के पत्तों की मधुर ध्वनि और पुष्पों की मीठी मुस्कान सभी प्रकृति की आभा को अलंकृत करते हैं। ऐसे में एक सखी दूसरी सखी से कहती है।

व्याख्या : हे सखि रात्रि बीत चुकी है। तू अब तक सो रही है? रात्रि के सभी व्यापार समाप्त हो रहे हैं। सारा संसार जागने लगा है और तू अभी तक सोई है। उठ! जाग सखि! यह सोने की वेला नहीं। यह तो जागृति का समय है। उषा काल की इस वेला में, देख तारे भी विलीन होने लगे हैं। ऐसा जान पड़ता है जैसे उषा रूपी नायिका (युवति) अम्बर रूपी पनघट में तारे रूपी घड़ों को एक-एक कर डुबोती जा रही है। अर्थात सुबह के इस अवसर पर तारे भी छुपने जा रहे हैं। इसी से ज्ञात होता है कि रात्रि बीत रही है और सवेरा हो रहा है।

प्रातःकालीन इस वेला में पक्षियों के समूह कुला-कुल की ध्वनि से पूरे वातावरण को मोहक बना रहे हैं। चहचहाते इन पक्षियों के स्वर भी जागरण का मंत्र दे रहे हैं। सुबह की मंद शीतल और सुगंधित हवा नव-पल्लवों को हिला-डुला रही है। हवा के हिंडोले में झूलते-खेलते ये पत्ते धरती को हिला-डुला रही है। हवा के हिंडोले में झूलते-खेलते ये पत्ते धरती के लहराते आँचल से जान पड़ रहे हैं। ऐसे में लता पर सुशोभित हो रही पुष्प कलियों की रीति गागर भी मधु और पराग से भर गई है। कलियाँ अपने पूरे यौवन पर आ गई हैं। अतः हे सखि! तुम्हारे रतनार होठों से भरा यह राग क्यों शांत है? तुम्हारे केशों में समायी चन्दन की सुगंध वातावरण में अभी तक विकीर्ण क्यों नहीं हुई? तेरी आँखों में अभी तक वियोग का विहाग राग भरा है। अर्थात तेरे प्रियतम से तेरा संयोग नहीं हुआ और इसीलिए तू होठों का राग एवं केशों की सुगंध संजोए सो रही है। प्रसाद यहाँ सम्पूर्ण सृष्टि में रात्रि की जड़ता के अन्त और नवीन-स्फूर्ति के आगमन का मंत्र बाँटते हैं।

प्रश्रय देने वाले इस काव्य को व्यक्ति-स्वातंत्र्य का काव्य भी कहा गया तो सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक चेतना का नवोन्मेष भी कहा गया।

4 i) सन् 1915 में

ii) सन् 1920, श्री मुकुटधर पाण्डेय, शारदा

iii) जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पन्त और महादेवी वर्मा।

iv) मोहनलाल महत्तो, जनार्दन झा "द्विज", आरसी प्रसाद सिंह, मुकुटधर पाण्डेय, हरिकृष्ण प्रेमी, माखनलाल चतुर्वेदी, रामधारी सिंह दिनकर तथा हरिवंशराय बच्चन आदि।

बोध प्रश्न 2

1 i) कामायनी

ii) सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

iii) सुमित्रानन्दन पन्त

iv) सन् 1889 तथा सन् 1937 में

v) परिमल, गीतिका, तुलसीदास, कुकुरमुत्ता तथा बेला आदि।

2 i) छायावादी काव्य की मूल-चेतना व्यक्ति-स्वातंत्र्य की ही है। प्रत्येक देशव्यापी की स्वतंत्रता, उसे आत्माभिव्यक्ति की आज़ादी तथा व्यक्तिगत स्वाधीनता की प्रतिष्ठा के अवसर उपलब्ध कराने का कार्य ही छायावाद ने किया। "मैं शैली" अपनाकर वे स्वयं को विश्व बोध में विलय कर देते हैं और "अभी न होगा मेरा अन्त" कहकर गुलामी के बंधन काटने तथा पूंजीवादी व्यवस्था को फटकारने तक का कार्य करते हैं। इनका "आत्म" मुखर हो जाता है और नव आशा तथा नव विश्वास के स्वप्न तैयार होने लगते हैं। इस प्रकार प्रसाद, निराला, पन्त तथा महादेवी चारों में ही बन्धन-मुक्ति का यह स्वरूप देखने को मिलता है।

ii) छायावादी कविता पुरातन-सामाजिक, रुढ़ियों और झूठी-नैतिक मान्यताओं के बंधनों को काट फेंकने का साहसपूर्ण कार्य करती है। विद्रोह की यह कविता नया राष्ट्रीय इतिहास लिखती है। अपना चिन्तन, अपनी प्रणाली लेकर नये-विषय, नयी भाषा तथा नये छंदों (मुक्त छंद) का प्रवर्तन करती छायावादी कविता "तोड़ो-तोड़ो-तोड़ो कारा।" का उद्घोष करती हुई जगत के जीर्ण पत्तों को झर जाने का निमंत्रण देती है। नवगति, नवताल तथा छंद नव के अभिलाषी ये कवि अंध प्रथाओं के, कोरी नैतिकता तथा सड़ी-गली रुढ़ियों के प्रति विद्रोह करते हैं। यह विद्रोह इसकी ऐतिहासिक पहचान बनता है।

iii) छायावादी कवियों की नारी विषयक धारणा भक्तिकालीन-तिरस्कार और रीतिकालीन भोग से पूर्णतः भिन्न तथा उदात्त थी। नारी को मानवीय सौन्दर्य की अधिष्ठात्री, मानवीय करूणा की देवी तथा जीवन के समस्त संकल्पों की निर्मात्री घोषित करने वाले छायावादी कवि नारी को केवल "श्रद्धा" मानते हैं। दया, ममता, मधुरिमा तथा अगाध विश्वास एवं शुभ-श्रेयस्कर भावों की प्रतीक है नारी। विलास और भोग से परे उच्चतम भूमि (आनन्द-शिखर) पर ले जाने वाली सहचरी है नारी। छायावादी काव्य में नारी के प्रति पूर्णतः स्वस्थ एवं संयत दृष्टिकोण प्रकट किया गया।

iv) छायावादी काव्य में राष्ट्रीय-जागृति का मुखर गान प्रस्तुत करते हुए अतीत के गौरव और संस्कृति के महत्व को स्थापित करने का सफल प्रयास हुआ है। "हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती" जैसे गान नवजागरण पैदा करते हैं तो दार्शनिक विचारधाराओं का संगम, बौद्ध करूणा और अद्वैत दर्शन राष्ट्र की अमूल्य धरोहर से अवगत कराता है। "भारत जय विजय करे" तथा "भारतमाता ग्रामवासिनी" और "अरूण यह मधुमय देश हमारा" जैसे गीत राष्ट्रीय जागृति के मंत्र को जन-जन में फूंकने का कार्य करते हैं। संस्कृति के प्रति श्रद्धा-समर्पण और उसकी रक्षा के लिए उत्साह का संचार—इस कविता की प्रमुख पहचान है।

बोध प्रश्न 3

1 i) जयशंकर प्रसाद

ii) सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

iii) कामायनी

iv) महादेवी वर्मा
v) सुमित्रानन्दन पन्त

2 i) ×
ii) ×
iii) ×
iv) √
v) √

3 छायावादी कवियों ने भाषा में शब्द-विन्यास-कौशल को सौन्दर्यबोध का मुख्य आधार मानते हुए चित्रभाषा या भावावेशमायी भाषा पर विशेष बल दिया। ललित तथा कोमल कांत पदावली की भाषा, जिसमें असाधारण लक्ष्यार्थ, व्यंग्यार्थ, प्रतीकार्थ और अमूर्तन व्यापार पर बल हो, इनकी प्रिय भाषा रही। विभिन्न अर्थछायाओं से सम्पन्न भाषा में "घायल आँसू", "मधुर-व्यथा" तथा "मधुमय-अभिशाप" जैसे प्रयोग इसके प्रमाण हैं। बंगला, संस्कृत, अंग्रेज़ी तथा अन्य देशी शब्द इसमें हैं तो फेनिल, टलमल, स्वप्नोत्पल जैसे नए गढ़े गए शब्द भी। देशज तथा तद्भव शब्द भी इसमें हैं तो आंचलिक और बोलचाल की भाषा के शब्द भी। शिल्प की दृष्टि से ये मुक्तक काव्य, गीति काव्य, प्रबन्ध काव्य, लम्बी कविताएँ तथा नाट्य-काव्य आदि के सफलतम प्रयोग करते रहे। 'कामायनी' जैसा महाकाव्य इसी युग की देन है। "तुलसीदास" तथा महादेवी की गीति-योजना इसी युग की उच्चस्तरीय कृतियाँ हैं। इस युग में खण्ड काव्य, फैन्टेसी, गीति काव्य तथा रूपक आदि सभी कुछ एक साथ मिलता है। मुक्त छंद की खोज छायावाद की अन्यतम देन है। लोक धुनें भी इनके गीतों में आई तो गज़ल के स्वर भी समाहित हुए। ओज, प्रसार और माधुर्य युक्त शैलियों की विविधता भी इसमें है। अतः भाषा एवं शिल्प की दृष्टि से छायावादी-काव्य अत्यन्त प्रौढ़ एवं समृद्ध है।

इकाई 20 जयशंकर प्रसाद

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य
20.1 प्रस्तावना
20.2 जयशंकर प्रसाद : जीवन और व्यक्तित्व
20.3 युग परिवेश
20.4 रचनाएँ और रचना संसार
20.5 प्रसाद काव्य : प्रमुख स्वर
    20.5.1 इतिहास एवं संस्कृति
    20.5.2 राष्ट्रीय चेतना और मानवीयता
    20.5.3 प्रेम-व्यंजना
    20.5.4 सौन्दर्य चेतना
        — प्रकृति सौंदर्य
        — नारी भावना का सौंदर्य
        — गीति सौंदर्य
    20.5.5 रहस्य एवं दर्शन
20.6 प्रसाद काव्य : शिल्प-विधान
    20.6.1 भाषा-सौंदर्य
    20.6.2 शैलीगत नवीनता
    20.6.3 प्रतीक विधान
    20.6.4 बिम्ब विधान
    20.6.5 अलंकार तथा छंद
20.7 काव्य वाचन तथा संदर्भ सहित व्याख्या
20.8 मूल्यांकन (प्रसाद का प्रदेय)
20.9 सारांश
20.10 शब्दावली
20.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें
20.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

20.0 उद्देश्य

आधुनिक काल के हिन्दी साहित्य को अपनी अनुपम, अलौकिक एवं जन्मजात प्रतिभा से सम्पन्न, समृद्ध तथा जीवंत बनाने वाले छायावाद के प्रवर्तक एवं सर्वोपरि स्थान के अधिकारी जयशंकर प्रसाद पर लिखी गई इस इकाई के अध्ययन से आप :

- प्रसाद जी के जीवन, व्यक्तित्व एवं उसके निर्माण में सक्रिय भूमिका निभाने वाले युग-परिवेश को समझ सकेंगे।
- महाकवि प्रसाद के काव्य-संसार से अलग उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध एवं समालोचना आदि साहित्य-क्षेत्रों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रसाद के काव्य में मिलने वाले ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय-चेतना तथा मानवतावादी दृष्टिकोण को स्पष्ट करने वाली अलौकिक प्रतिभा से परिचित हो सकेंगे।
- कवि की प्रेम-व्यंजना तथा प्रकृति, नारी एवं गीति-सौन्दर्य का आस्वाद ग्रहण कर सकेंगे।
- भारतीय दर्शन, रहस्यवाद तथा मनोविज्ञान के समन्वय का निरूपण करने वाली कवि-मनीषा को जान सकेंगे।
- प्रसाद जी के शिल्प विधान की जानकारी प्राप्त करते हुए भाषा-सौन्दर्य, शैलीगत, अपूर्वता, सटीक प्रतीक-विधान तथा अलंकार एवं छंद आदि विधानों की महत्वपूर्ण भूमिका का अनुभव कर सकेंगे।
- पाठ्यक्रम में निर्धारित कवि प्रसाद की कविताओं का वाचन एवं संदर्भ सहित व्याख्या करते हुए प्रसाद जी के प्रदेय का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

20.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य में एक विद्रोह के रूप में उभर कर सम्मुख आने वाले युग को "छायावाद" की संज्ञा दी गई और छायावाद की इस अनुपम, अपूर्व एवं अद्भुत साहित्य धारा के प्रवर्तन का श्रेय मिला सरस्वती के विशिष्ट पुत्र महाकवि जयशंकर प्रसाद को। अतीत के झरोखों से वर्तमान की स्थितियों एवं समस्याओं को सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक डोर में पिरोकर स्वच्छ रूप से प्रतिष्ठित करने वाले प्रसाद निश्चित ही अलौकिक प्रतिभा के धनी व्यक्ति एवं साहित्यकार थे। काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी एवं निबन्ध आदि में एक साथ छायावाद की समस्त विभूति को स्वर देकर इस महाकवि ने साहित्याकाश में एक अन्यतम-ध्वज फहराया और इसी से कवि प्रसाद की साहित्य विद्या के हर क्षेत्र में एक विशिष्ट पहचान भी बनी। भारतीय परम्परा एवं संस्कृति-प्रेमी इस साहित्य सृष्टा ने परंपरा का अनुसरण न करते हुए भी उसमें अमूल्य योगदान दिया। उपनिषद्-दर्शन ने उन्हें प्रभावित किया तो भारत की प्रगतिशील सामाजिक परिस्थितियों ने भी उन्हें झकझोरा। राष्ट्रीय चेतना एवं मानवतावादी दृष्टि को प्रचार-प्रसार का दायित्व उन्होंने संभाला तो नारी के प्रति पूर्णतः नवीन एवं श्रद्धा-युक्त दृष्टि को भी जन्म दिया। सार्वभौमिक दृष्टिकोण के समर्थक इस प्रकृति-प्रेमी गीतकार के काव्य का भाव पक्ष जितना प्रबल है उतना ही शक्तिशाली उनका शिल्पविधान भी। प्राणवान-भाषा, शैली की नवीनता तथा प्रतीक, अलंकार एवं छंद आदि अन्य उपादानों के प्रयोग में दिखाई देने वाली कवि की कलात्मक-प्रतिभा इसी तथ्य का प्रमाण बनती है कि उनकी-सी क्षमता और शक्ति का कोई दूसरा कलाकार हिन्दी-साहित्य के इस पूरे युग में नहीं दिखाई पड़ता। युग-कवि 'प्रसाद' छायावाद को नेतृत्व देकर सफलता के चरम-शिखर तक ले जाने वाले वे महान कलाकार हैं, जो साहित्य-आकाश में सदैव ध्रुव की तरह प्रकाशित होकर आलोक फैलाते रहेंगे। भारतेन्दु युग में जन्मी नवजागरण एवं राष्ट्रीय चेतना की जो लहर द्विवेदी युग तक आते-आते जोर पकड़ने लगी थी, प्रसाद-युग या छायावाद तक आकर वही पूर्णतः पल्लवित और पोषित हो चुकी थी। भारतीय जीवन की ऐसी ही अनेक दीर्घ परंपराओं का सफल निरूपण बहुमुखी प्रतिभा के इस धनी साहित्यकार प्रसाद के पद्य एवं गद्य साहित्य में सहज ही देखने को मिलता है। साहित्य के क्षेत्र में एक क्रांति की लहर और परिवर्तन की चेतना फैलाने वाले इस प्रवर्तक कलाकार के काव्य का विस्तृत अध्ययन ही हम इस इकाई में करने जा रहे हैं। इस इकाई के बाद हम छायावाद के अन्य तीनों कवियों निराला, पन्त एवं महादेवी के काव्य पर लिखी गई इकाइयों का अध्ययन करेंगे।

20.2 जयशंकर प्रसाद : जीवन और व्यक्तित्व

महाकवि जयशंकर प्रसाद का जन्म काशी के एक समृद्ध एवं सम्पन्न वैश्य परिवार में माघ-शुक्ल दशमी, संवत 1846 अर्थात सन् 1889 ई. को हुआ था। इनके पूर्वज "सुंघनी साहू" के नाम से विख्यात शिव के अनन्य भक्त थे। शिवरत्न साहु उनके पितामह थे और वे अत्यंत दयालु तथा दानी व्यक्ति थे। तम्बाकू और सुरती के इस प्रख्यात व्यापारी-परिवार में अत्यंत व्यवहार कुशल तथा उदार हृदय व्यक्ति थे श्री देवी प्रसाद। ये ही प्रसाद जी के पिता थे। उनके घर में कवियों, गवैयों, पंडितों, वैद्यों, यात्रिकों, भाट तथा बाजीगरों एवं ज्योतिषी तथा विद्वानों का आना-जाना लगा रहता था। इनकी माता का नाम श्रीमती मुन्नी देवी था और अपने भाई-बहनों में सबसे छोटे होने के कारण माता का इनके प्रति विशेष प्रेम था। प्रसाद जी के ज्येष्ठ भाई का नाम शुम्भुरत्न था। कट्टर शैवमतावलम्बी इस परिवार में प्रसाद जी से पहले उनके कई भाई-बहनों की मृत्यु हो चुकी थी। इसीलिए प्रसाद जी की दीर्घायु के लिए गोकर्णनाथ महादेव की मनौती मानी गई थी। यही कारण है कि इनका नाम भी भगवान शंकर के प्रसाद स्वरूप "जयशंकर प्रसाद" रखा गया।

प्रसाद जी के आरम्भिक शिक्षा घर पर ही शुरू हुई थी। इसके बाद वे स्थानीय क्वीन्स-कॉलेज में सातवें दर्जे तक पढ़े। कश्मीरी प्रत्यभिज्ञा-दर्शन की विचारधारा से समृद्ध इस परिवार के धार्मिक एवं दार्शनिक वातावरण का प्रभाव तो प्रसाद जी के चिन्तन पर पड़ा ही साथ ही सहृदयता, उदारता, धर्मनिष्ठता एवं साहित्य-सृजन-क्षमता के गुण भी उन्हें उत्तराधिकार में प्राप्त हुए। इसी परिवेश में विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों से परिचय होने के फलस्वरूप ही उनके काव्य एवं अन्य साहित्य में विभिन्न मानव-स्वभावों का सफल एवं पूर्ण चित्रण भी मिलता है। सातवीं कक्षा में पढ़ते समय ही उनके पिता का स्वर्गवास हो गया। परिणामतः बारह वर्ष की अवस्था में ही स्कूल की शिक्षा से वंचित होना पड़ा। परिवार का सारा भार अग्रज श्री शम्भुरत्न जी ने संभाला। प्रसाद जी की शिक्षा का प्रबन्ध घर पर ही किया गया और उन्होंने हिन्दी, उर्दू, फारसी तथा

संस्कृत का गहन अध्ययन किया। वेद और उपनिषदों का उन्हें विशिष्ट ज्ञान था। पन्द्रह वर्ष की अवस्था हुई तो माता का देहान्त हो गया। दुर्भाग्य ने यहीं साथ न छोड़ा। दो वर्ष बाद अग्रज भाई शम्भुरत्न जी का भी स्वर्गवास हो गया और घर का पूरा दारोमदार प्रसाद जी पर आन पड़ा। छिपकर तुकबन्दियाँ लिखने वाले प्रसाद का अल्हड़-कवि पन्द्रह वर्ष की अवस्था से ही दुकान पर बैठकर बही-खातों के रद्दी कागजों पर कविता की आराधना किया करता था। सन् 1908 तक प्रसाद जी द्वारा ब्रजभाषा में रचित कविताएँ तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगी थीं।

प्रसाद जी ने 11 वर्ष की बाल्यावस्था में अपनी माता के साथ पुष्कर जी, ओंकारेश्वर, जयपुर, उज्जैन, ब्रज मण्डल तथा अयोध्या आदि स्थानों की यात्रा की थी। भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य एवं सम्पदा के अद्भुत दृश्यों का आस्वाद भी उन्होंने लिया था। पर्वतों, झरनों, लहरों और कानन-कुसुमों की चाँदनी रातों में विहार भी किया था। जगन्नाथपुरी की यात्रा में सागर की विशालता गंभीरता तथा उत्ताल तरंगों की गर्जना सुनी थी तो माँ पृथ्वी के अंचल में विराजमान हिमगिरी के उत्तुंग शिखर का आनन्द भी लिया था। इन्हीं सब अद्भुत प्रकृति-शक्तियों ने कवि-हृदय को प्रेरणा प्रदान की।

पारिवारिक बाधाओं और विपदाओं से विचलित न होकर अडिग रहने वाले प्रसाद ने अपनी महाजीवट-शक्ति से जीवन की सभी विषम परिस्थितियों का सामना किया और सदैव आनन्द को जीवन का लक्ष्य माना। उन्होंने इसी दृष्टिकोण को स्वर देते हुए विश्व के महान महाकाव्य "कामायनी" में लिखा भी है—

जिसे तुम समझे हो अभिशाप, जगत की ज्वालाओं का मूल,
ईश का वह रहस्य वरदान, कभी मत इसको जाओ भूल।

संस्कृत और अंग्रेजी के नियमित अध्ययन से उन्हें वेद-उपनिषदों के साथ-साथ पुराण, महाभारत तथा अन्य ऐतिहासिक-सांस्कृतिक महाकाव्यों एवं ग्रन्थों के अध्ययन की प्रेरणा मिली। भारतीय संस्कृति के प्रति यहीं से श्रद्धा उत्पन्न हुई तो अतीत के प्रति रुचि भी जागृत हुई।

प्रसाद जी कसरत और व्यायाम में भी नियम से लीन रहते थे। कुश्ती और दंगल तथा गरिष्ठ खुराक उनके शौक थे। माता-पिता तथा ज्येष्ठ भाई के स्वर्ग-प्रस्थान के बाद भी इस संघर्षरत कवि को दुर्भाग्य से जूझते रहना पड़ा। विवाह स्वयं किया तो कुछ ही वर्ष बाद पत्नी चल बसीं। दूसरा विवाह सम्पन्न हुआ तो पुत्र-जन्म पर पत्नी और पुत्र दोनों परलोक सिधार गए। अब कवि-हृदय पूर्णतः टूट गया। गहरी चोट उनके हृदय पर लगी और वे पारिवारिक जीवन के प्रति निराश से हो गए। दर्शन का गाम्भीर्य उन्हें घेरता गया। किन्तु नियति का खेल निराला है। भाभी और मित्रों के आग्रह पर तीसरा विवाह किया। इसी पत्नी से उन्हें "रत्नशंकर" नामक एकमात्र पुत्र की प्राप्ति हुई।

व्यक्ति की दृष्टि से उच्चकोटि के महापुरुषों में गिने जाने वाले महाकवि प्रसाद ने परिवार और व्यापार के कठिन उत्तरदायित्वों को संभालते हुए भी गहन अध्ययन एवं मनन के दृढ़ सम्बल तथा नैसर्गिक प्रतिभा के वरदान से जो कुछ भी भारतीय साहित्य को दिया, उस पर हम सभी को गर्व है। हमारा दुर्भाग्य ही है कि "छोटे से जीवन की कैसे, बड़ी कथाएँ आज कहूँ" कहने वाला बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न वह महान कलाकार-व्यक्तित्व, अधिक दिनों तक हमारा मार्गदर्शन न कर सका। जनवरी सन् 1937 में प्रसाद जी बीमार पड़ गए और चिकित्सकों ने घोषित कर दिया कि उन्हें राज्यक्ष्मा हो गया है। दिन-प्रतिदिन उनका स्वास्थ्य गिरता गया। डॉक्टरों ने उन्हें काशी छोड़कर पहाड़ों पर जाने की सलाह दी किन्तु प्रसाद जी काशी नहीं छोड़ना चाहते थे। परिणामतः सन् 1937 में 48 वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने यह शरीर छोड़ दिया। ऐतिहासिक घटनाओं के भीतर प्रविष्ट होकर तत्व-चिन्तन से उनके मर्म का उद्घाटन करने वाली ज्ञान की असाधारण-प्रतिभा से संपूर्ण-भारतीय-साहित्य वंचित हो गया। अत्यंत सौम्य, शान्त और गम्भीर व्यक्तित्व का सांसारिक संघर्ष समाप्त हो गया। विश्व साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान बनाने वाला वह आकर्षक, तथा प्रभावशील व्यक्तित्व जिसने "कामायनी" जैसा उत्कृष्ट महाकाव्य देकर सभी को हतप्रभ कर दिया, दुर्भाग्य से असामयिक-मृत्यु का शिकार हो गया। इस युगान्तरकारी भव्य-व्यक्ति के व्यक्तित्व तथा उद्देश्य को समझने के लिए उन्हीं की ये पंक्तियाँ कितनी सटीक जान पड़ती हैं—

इस पथ का उद्देश्य नहीं है,
शान्त भवन में टिक रहना।
किन्तु पहुँचना उस सीमा तक
जिसके आगे राह नहीं।

20.3 युग परिवेश

कवि अपने युग-परिवेश से प्रभावित ही नहीं होता, बल्कि अपनी युगांतरकारी दृष्टि तथा कृतियों से उसे प्रभावित भी करता है। कभी वह अतीत की प्रेरणा से नवनिर्माण का संकल्प दोहराता है तो कभी नवनिर्माण से भविष्य के लिए एक अजर-अमर अतीत का सृजन करता है। समाज और राष्ट्र की स्थिति ही नहीं, साहित्य की परंपरा भी कवि और काव्य का निर्माण करती है। जयशंकर प्रसाद भी अगर अपने पूर्ववर्ती एवं युगीन परिवेश से प्रभावित होते हैं तो परवर्ती वातावरण को दिशा एवं दृष्टि देकर एक प्रबल वर्तमान का निर्माण भी करते हैं। प्रसाद, हिन्दी साहित्य के काव्य इतिहास में जब प्रवेश करते हैं उस युग को द्विवेदी-युग के नाम से जाना जाता है। उस युग में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से क्रांतिकारी परिवर्तन हो ही रहे थे, साहित्यिक दृष्टि से भी एक बदलाव आ रहा था। गांधी, तिलक, राजा राम मोहन राय, सुभाष चन्द्र बोस, एवं पटेल आदि अनेकों क्रांतिकारी नेता स्वतंत्रता के विद्रोही स्वर को बुलन्द कर रहे थे तो साहित्य के क्षेत्र में भी विषय एवं भाषा का विद्रोह मुखर हो रहा था। प्रसाद के सामने एक तरफ तो सामाजिक-अभाव, सांस्कृतिक-विघटन, नैतिक-मूल्यों का ह्रास तथा आर्थिक एवं राजनैतिक बदलाव चुनौती बना था तो दूसरी तरफ स्वर्णिम अतीत के प्रति हो रहा अन्याय, भारतीय काव्य एवं साहित्य परंपरा के बिखरते-छूटते मूल्यों की पीड़ा और सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना के दूर होते जाने का दर्द भी प्रश्न बना हुआ था। प्रसाद ने इन सभी समस्याओं से जूझने के लिए सृजनात्मक-स्वीकृति और कलात्मक-विद्रोह को चुना। पूर्व प्रचलित दीर्घ भारतीय काव्य परंपरा के मूल्यों को चिन्तनशील-अतीतपरक-दृष्टि से संजोया और युगीन विघटन एवं पतनकारी प्रवृत्तियों का स्वच्छन्दतावादी दृष्टि से विद्रोह किया। काव्य और दर्शन का अद्भुत समन्वय कर उन्होंने युग और देश की चेतना को काव्य के माध्यम से मुखर स्वर दिया।

प्रसाद का युग वास्तव में बीसवी-शताब्दी-पूर्वार्द्ध का युग है। 18वी शताब्दी का विद्रोह तो यहाँ आकर शांत हो चुका था। भारतीयों को समानता और धार्मिक स्वतंत्रता का आश्वासन भी मिलने लगा था। किन्तु पश्चिम की धारणाएँ एवं विचारधाराएँ धीरे-धीरे देश में प्रवेश पाने लगी थीं, रूसों और वॉल्टेयर के राजनीतिक विचार फैलने लगे थे। अंग्रेजी भाषा के माध्यम से अनेक विचारधाराएँ भारत में प्रविष्ट होने लगी थीं।

ऐसे में देश ब्रहम-समाज और आर्य-समाज जैसी कई समाज सुधारक संस्थाओं के नेतृत्व में सांस्कृतिक चेतना की नई दिशा खोजने लगा था। दक्षिण भारत में थियोसाफी का आविर्भाव, बनारस में एनीबैसेन्ट की कोशिश, बंगाल में स्वामी रामकृष्ण परमहंस के लोक-संग्रह एवं समाज-सुधार जैसे कई प्रयास नई जागृति एवं चेतना को प्रसारित कर रहे थे। इन सभी आंदोलनों के मूल में देश-प्रेम एवं देश-सेवा की भावना कार्यरत थी। तिलक अपने क्रांतिकारी पत्र "केसरी" से कर्म और स्वराज्य की प्रेरणा दे रहे थे। राष्ट्रीयता की इस प्रबल भावना ने सभी देशवासियों को अतीत से प्रेरित होकर एकजुट होने की चेतना प्रदान की।

साहित्य में भी इसी आन्दोलित एवं क्रांतिकारी परिवर्तन ने प्रवेश किया। परिणामतः भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नेतृत्व में नवजागरण की नवीन परंपरा का आविर्भाव हुआ। समाज सुधार, रूढ़ियों से मुक्ति, कुरीतियों का विरोध तथा साहित्य की नई दिशा जैसे कार्यभार का दायित्व संभालते हुए भारतेन्दु युग में राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना, देश-प्रेम, समाज-सुधार तथा प्राचीन एवं नवीन का मिश्रण जैसे कई पक्ष उभरकर सामने आये। काव्य के भाव, भाषा, शैली, एवं विचार सभी में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, कविता, पत्र-पत्रिकाएँ सभी कुछ इन मिशन में कार्यरत हुए। पुनीत भावों को नेतृत्व देने का कार्य भारतेन्दु करते रहे। प्रतापनारायण मिश्र, बद्रीनारायण प्रेमधन तथा जगमोहन सिंह आदि कई लेखक इस दिशा में भारतेन्दु को सक्रिय योगदान देते रहे। परिणामतः काव्य रीतिकालीन घोर शृंगारिकता के चुंगल से निकल कर जन-जन के जीवन से जुड़ता चला गया। इस युग के साहित्य एवं साहित्यकारों ने प्रसाद जी को भी एक पृष्ठभूमि प्रदान की। भारतेन्दु के बहुमुखी व्यक्तित्व से तो प्रसाद जी अत्यंत प्रभावित हुए ही।

20वीं शताब्दी के आरम्भ में गांधी तथा मालवीय जी जैसे युग-पुरुषों ने सत्य-अहिंसा का जो मार्ग दिखाया वह भी अपने आप में एक दृष्टांत बना। अंग्रेजों द्वारा हिन्दु, मुस्लिमों, वैमनस्य पैदा करने के प्रयासों को भारतीय मार्ग-दर्शकों द्वारा प्रचार की जा रही शिक्षा एवं नीति ने काफी हद तक रोका। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की महान विभूति बने रवीन्द्रनाथ टैगोर का आगमन हुआ। हिन्दी एवं हिन्दुस्तान के प्रति पत्र-पत्रिकाओं ने सोचना-लिखना प्रारंभ किया। द्विवेदी युग की सर्वप्रमुख पत्रिका "सरस्वती" ने इस दिशा में अहम् भूमिका निभाई। विभिन्न प्रयोगशील एवं सृजनशील विचारधाराओं को पत्रिकाओं एवं साहित्य के माध्यम से स्वर मिलने लगा।

द्विवेदी युग की विशेषता यह रही कि प्रत्येक मोर्चे पर जातीय भावना का स्थान राष्ट्रीयता लेने लगी। अतीत का गौरवगान और पुराने आदर्शों की संकल्पना पुनः जागृत हुई। देवता, मनुष्य बनकर साहित्य में उतरे किन्तु अपने आदर्श एवं दृष्टांत रूप में ही। मानवता-भाव को आदर्श बनाकर इस युग के साहित्य में स्थान दिया जाने लगा। पौराणिक एवं ऐतिहासिक मूल्यों को अनुवाद और सृजन के माध्यम से उजागर किया जाता रहा। काव्य भाषा खड़ी बोली का परिमार्जन होने लगा। नये छन्द और नई शैली में काव्य ढलने लगे। यहीं पर स्वच्छन्दता का कुछ-कुछ आभास भी मिलने लगा था।

श्रीधर पाठक, अयोध्याप्रसाद उपाध्याय, महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा मैथिलीशरण गुप्त आदि कई कवि एवं साहित्यकार पत्र-पत्रिकाओं तथा काव्य-वृत्तियों के माध्यम से हिन्दी-विकास एवं परिष्कार में योगदान दे रहे थे। भारतेन्दु युग एवं द्विवेदी युग की इन सभी काव्य प्रवृत्तियों का विस्तृत अध्ययन आप पिछले खण्डों में कर चुके हैं। यहाँ केवल इतना स्पष्ट करना आवश्यक है कि राष्ट्रीयता को प्रतिनिधित्व देने वाले इस काव्य-युग में ही प्रसाद का साहित्य-क्षेत्र में आगमन हुआ। गुप्त जी के "साकेत", "यशोधरा", "जयद्रथ वध" तथा "भारत-भारती" जैसे कई ग्रन्थ, हरिऔध का "प्रिय प्रवास", रामनरेश त्रिपाठी के "मिलन", "पथिक" और "स्वप्न", सियारामशरण गुप्त का "उन्मुक्त" तथा रामदेवी प्रसाद पूर्ण के "वसंत-वियोग" आदि कई ग्रन्थ जिस युग में मानव-प्रेम, लोक-सेवा, बौद्धिक उन्नयन, लोक-रक्षा, त्याग, कर्तव्य तथा देवत्व की पृष्ठभूमि बना रहे थे, उसी युग में महाकवि जयशंकर प्रसाद आगे की बागडोर संभालने को अवतरित हो रहे थे।

दूसरी तरफ अंग्रेजी-साहित्य में जिस स्वच्छंदतावादी काव्यांदोलन तथा गीतिकाव्य का प्रचार हुआ था उसमें भी अनुभूति की तीव्रता एवं सत्यता को प्रमुख स्वर मिला था। कीट्स, शैली और बायरन आदि कई स्वच्छंदतावादी कवियों की वाणी में यौवन-आवेग के साथ-साथ विद्रोह भाव भी अभिव्यक्ति हुई थी। प्राचीन और नवीन का मिलन, रूढ़ियों के प्रति विद्रोह तथा रहस्य भावना की प्रधानता आदि कई दृष्टियाँ साहित्य में समन्वित हुई थीं। शांति और आनंद जैसे उदात्त तत्व में काव्य और साहित्य का लक्ष्य तथा आदर्श बने। मानवीयता का दर्शन आनन्द शिखर की खोज में निकल पड़ा। सन् 1915 के आसपास क्रांति का स्वर, क्रांतिकारियों के कर्म से ही नहीं साहित्यकारों के क्रांति गीतों से भी प्रस्फुटित होने लगा था। राष्ट्रीय आन्दोलन कई रूपों में उठ खड़े हुए थे। बंकिम चन्द्र के गीत जागृति की लहरियाँ फैलाने लगे थे। स्वच्छन्दतावादी-गीतात्मकता और मानवीय तथा भारतीय दर्शन एक प्रेरणा बन रहे थे। मार्क्स की समाजवादी-प्रवृत्तियाँ भी सक्रिय हो रही थीं। नारी के प्रति दृष्टिकोण बदलने लगा था। रवीन्द्र की गीतांजलि एकजुट होने का मूलमंत्र दे रही थी। ऐसे चुनौती भरे समाज और परिस्थितियों में प्रसाद जैसी महाशक्ति प्रवेश पा रही थी। कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी तथा निबन्ध आदि क्षेत्रों में अपनी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा एवं सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय चेतना परक दृष्टि लेकर नेतृत्व प्रदान करने का दायित्व संभाला जयशंकर प्रसाद ने। उनके समग्र साहित्य में इस पृष्ठभूमि को तथा इनकी निर्मात्री परिस्थितियों को देखा जा सकता है। राष्ट्र-प्रेम, अतीत के प्रति अनुराग एवं श्रद्धा, सांस्कृतिक मोह तथा मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना ही प्रसाद की पहचान बनते हैं। "कामायनी" जैसे महाकाव्यात्मक-महाग्रंथ के इस प्रणेता ने समग्र भारतीय दर्शन का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत कर इच्छा, ज्ञान एवं कर्म की जो आनन्दप्रद राह दिखाई है, वह अनन्य है, अन्यतम है, श्रद्धेय है। प्रसाद के समग्र साहित्य एवं काव्य-विशेष के संदर्भ में चर्चा हम आगे करेंगे। किन्तु, यहाँ यह स्पष्ट होना चाहिए कि समय, स्थिति, परिवेश एवं घटनाओं के इस चक्र ने जिस वैविध्यमयी पृष्ठभूमि का निर्माण प्रसाद के लिए किया, प्रसाद ने उसी के परिप्रेक्ष्य में अपने साहित्य का सृजन कर एक सार्वभौमिक दृष्टिकोण को स्थापित करने का सफल कार्य किया। अतः इस अपार क्षमता और अनन्त शक्ति के प्रतिभा सम्पन्न कलाकार के श्रेष्ठतम रचना-संसार का अध्ययन ही अब हमारा लक्ष्य होगा।

20.4 रचनाएँ और रचना संसार

भावनाओं के मधुर गायक तथा काव्य की विशिष्ट-सृष्टि के निर्माता जयशंकर प्रसाद जितने महान हैं उनका रचना संसार भी उससे कम विशाल या विराट नहीं। इस महान् कृतिकार ने कविकर्मी जीवन-साधना में संसार के अनुभवों की मार्मिक प्रतिक्रिया को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति देकर साहित्य को प्रेरणा प्रदान की तथा समूचे विश्व को एक नव्य-बोध भेंट किया। सांस्कृतिक चेतना से ओत-प्रोत साहित्य भंडार देने वाले बहुमुखी-प्रतिभा के इस धनी व्यक्तित्व ने काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी तथा निबंध जैसी कई विधाओं में एक साथ मानव, समाज,

देश तथा युग की अनेकों समस्याओं को ही उजागर नहीं किया उनके समाधान की राह भी प्रशस्त की। पद्य और गद्य में बराबर अधिकार रखते हुए इतिहास और संस्कृति के समर्थ आख्याता बने महाकवि प्रसाद पूरे हिंदी साहित्य में सबसे अलग दिखाई पड़ते हैं। अपने व्यक्तिवादी रूप में वेदना, करुणा तथा प्रेम दर्शन की अभिव्यक्ति करते हुए प्रसाद एक उच्चतम भावभूमि पर पहुँचते हैं और यहीं समग्र विश्व का आत्मवाद, आनन्दवाद तथा आध्यात्मिकता की भावना से परिचय भी कराते हैं।

इस इकाई में हमारा उद्देश्य महाकवि प्रसाद के काव्य संसार की मूल चेतना तथा उनकी काव्य-कृतियों के भाव-जगत को अनुभूत करना है। अतः काव्य-इतर अन्य विधाओं में सृजित उनकी काव्य-कृतियों का परिचय पाते हुए हम मूलतः उनके काव्य-लोक पर ही केन्द्रित रहेंगे। आइये सर्वप्रथम उनके रचना-संसार पर दृष्टि डालें--

काव्य रचनाएँ : चित्राधार, प्रेम-पथिक, करूणालय, महाराणा का महत्व, कानन-कुसुम, झरना, आँसू, लहर तथा कामायनी।

नाटक : सज्जन, कल्याणी-परिणय, प्रायश्चित, राज्यश्री, विशाख, अज्ञातशत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ, कामना, स्कन्दगुप्त, एक घूँट, चन्द्रगुप्त तथा ध्रुवस्वामिनी।

उपन्यास : कंकाल, तितली और इरावती (अपूर्ण)

कहानी-संग्रह : छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आंधी और इन्द्रजाल।

निबंध : काव्य औ: कला तथा अन्य निबंध।

इस प्रकार आनन्दवाद को जीवन का साध्य तथा समरसता को साधन मानने वाले इस विश्व-कल्याण के प्रतिनिधि कवि ने अपने साहित्य-सागर की अपार जलराशि के भीतर अमृत का एक ऐसा कलश रख दिया है जो युगों-युगों तक इस सागर की शरण में आने वालों के विष को प्रभावहीन बनाकर उन्हें अम्बर-आनन्द की कल्याणकारी एवं समरस भूमा तक ले जाता रहेगा। इच्छा, ज्ञान और कर्म की गीतात्मक राह को पुनः प्रशस्त करने वाले इस अन्वेषी ने समरसता में लय होने का संगीत दिया।

प्रसाद जी ने अपनी काव्य-यात्रा आठ-नौ वर्ष की अवस्था में प्रारंभ कर दी थी। नौ वर्ष की अवस्था में प्रसाद को संस्कार सम्पन्न कराने के लिए जौनपुर और विन्ध्याचल ले जाया गया तो पर्वतीय सुषमा और भूमा के अंक में कलकल नाद करते झरनों के प्राकृतिक सौन्दर्य ने कवि के बाल-हृदय को मुग्ध कर लिया। इसी प्राकृति वैभव पर रीझकर उन्होंने "कलाधर" उपनाम से कविता का सृजन किया था। 1906 में यह कविता "भारतेन्दु" में प्रकाशित भी हुई थी--

हारे सुरेश रमेश धनेश, गनेशहु, सेस न पावत पारे।
पारे हैं कोटिक पातकी पुंज, कलाधर" ताहि छिनोबिच तारे।
तारेन की गिनती सम नाहिं, सुवेते तरे प्रभु पापी विचारे।
चारे चले न विरंचहि के, जो दयालु है संकर नेक निहारे।।

"ब्रजभाषा" में कविता लेखन प्रारंभ करने वाले इस कवि ने "इन्दु" पत्रिका के दूसरे अंक में "प्रेम-पथिक" प्रकाशित कराया। मूलतः ब्रजभाषा में लिखी गई इस रचना को बाद में कवि ने खड़ी बोली में रूपान्तरित भी किया। "झरना" के पूर्व की सभी कृतियाँ प्रसाद जी ने द्विवेदी-युग में तैयार कीं तथा शेष छायावाद में। अधिक दिनों तक ब्रजभाषा में कविता न करने वाले प्रसाद ने अपने भावों को युग और परिवेश की अपेक्षा के अनुसार ही खड़ी बोली में ढालना प्रारंभ किया और धीरे-धीरे वे खड़ी बोली के शीर्षस्थ कवि-पद पर आ विराजे। भाषा, छन्द, भाव तथा विचार की दृष्टि से अनेक रूपता में भी समरसता पैदा करने वाला यह गंभीर-चिंतक आरंभ में अयोध्यासिंह उपाध्याय की तरह संस्कृत गर्भित शैली को अपनाकर भी उसमें आश्चर्यजनक परिवर्तन करता है और अन्तर्मुखी कल्पना से सूक्ष्म भावनाओं को व्यक्त करने का सफल प्रयास करता है।

"चित्राधार" कवि की सबसे पहली काव्य-कृति है। सन् 1909 से 1912 तक की पाँच रचनाएँ उसमें समाहित हैं। "अयोध्या का उद्धार", "वन-मिलन", "प्रेम राज्य" (पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध), "पराग" और "मकरन्द बिन्दु" नामक इन रचनाओं में "पराग" ऐसा काव्य-संग्रह है जिसमें 24 स्फुट कविताएँ संकलित हैं। इसके बाद "प्रेम-पथिक", "करूणालय", तथा "कानन कुसुम" सन् 1913 में प्रकाशित हुई। "कानन-कुसुम" में सन् 1909 से सन् 1917 तक की 49 स्फुट कविताएँ एकत्र की गई हैं। सन् 1914 में "महाराजा का महत्व" प्रकाशित हुई। फिर सन् 1918 में 55 स्फुट कविताओं का संग्रह "झरना" प्रकाश में आया। इसी प्रकार सन् 1925 में "आंसू" सन्

1933 में 33 स्फूट कविताओं का अद्वितीय काव्य संग्रह "लहर" और सन् 1935 में विश्व का अन्यतम तथा अनुपम महाकाव्य "कामायनी" प्रकाशित हुआ।

ब्रजभाषा में लिखित प्रारंभिक कविताओं में प्रसाद प्रकृति को उद्दीपन के रूप में नहीं, आलम्बन के रूप में ग्रहण करने का प्रयत्न करते हैं। इसके बाद की कविताओं में प्रसाद ने संस्कृत साहित्य के भीतर से एक सुसंस्कृत प्रेरणा प्राप्त कर कविता में अपनी नूतन भावाभिव्यक्ति के द्वारा हिंदी काव्य-संसार में ही नहीं समूचे विश्व-काव्याकाश में की अपना वैशिष्ट्य और नेतृत्व सिद्ध कर दिया। प्रसाद का अध्ययन गहन और व्यापक था। वेद, उपनिषद्, इतिहास और संस्कृति काव्य का मनन पूर्ण अध्ययन ही उनके कविता के उद्देश्य को निर्धारित करता है। "आंसू" के अन्त में कवि कहता है–

सबका निचोड़ लेकर तुम
सुख से सूखे जीवन में,
बरसों प्रभात हिमकन-सा
आंसू इस विश्व-सदन में।

मनुष्य, समाज, राष्ट्र और विश्व-सभी के कल्याण का लक्ष्य लेकर चलने वाला कवि स्वयं अपनी कविता के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए "कवि और कविता" शीर्षक लेख में कहता है– "शृंगार रस की मधुरता पान करते-करते आपकी मनोवृत्तियाँ शिथिल तथा अकुला गयी हैं। इस कारण अब आपको भावमयी उत्तेजनामयी, अपने को भुला देने वाली कविताओं की आवश्यकता है। अस्तु धीरे-धीरे जातीय, संगीतमयी, वृत्ति स्फुरणकारिणी, आलस्य को भंग करने वाली, आनन्द बरसाने वाली, धीर, गंभीर पद-विक्षेपकारिणी शांतिमयी कविता की ओर हम लोगों को अग्रसर होना चाहिए। अब देर नहीं है, सरस्वती अपनी मलिनता को त्याग रही है, और नवल रूप धारण करके प्रभातिक उषा को लजावेगी। एक बार वीणाधारिणी अपनी वीणा को पंचम स्वर में फिर ललकारेंगी। भारत की भारती फिर भी भारत की ही होगी।"

प्रसाद जी ने अपनी सभी काव्य कृतियों में ऐतिहासिक सांस्कृतिक मूल्यों को धरोहर रूप में संजोया, संवारा और निखारा है। "प्रेम पथिक" में प्रकृति का वैभव, प्रेम की अपारता तथा प्रेम का उदात्त, निर्मल एवं अलौकिक महत्व एक पथिक की यात्रा के द्वारा स्पष्ट किया गया है। "अयोध्या का उद्धार" में अयोध्यानरेश महाराजा राम के ज्येष्ठ पुत्र कुश द्वारा अयोध्या के पुनरुत्थान का वर्णन किया गया है। यह कालिदास कृत "रघुवंश" के सोलहवें सर्ग पर आधारित है। इसमें प्राकृतिक सुषमा के सुंदर वर्णन के साथ-साथ राजा के कर्त्तव्य कर्म की भी सराहनीय व्याख्या की गई है।

"वन-मिलन" "इन्दु" में "वानवासिनी बाला" नाम से प्रकाशित हो चुका है। कालिदास कृत "शाकुंतलम्" से प्रेरणा पाकर कवि ने इस कृति में प्रकृति की अनुपम छटा के साथ-साथ शकुन्तला के विरह, सखियों की आर्द्रता तथा दुष्यंत के शापमुक्त होकर शकुन्तला से मिलन आदि को अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। 'रोला' छंद और ब्रजभाषा में रचित इस कृति में प्रसाद की मौलिक एवं स्वच्छन्द कल्पना भी यत्र-तत्र दिखाई देती है। "प्रेम राज्य" ब्रजभाषा में लिखित तथा रोला और छप्पय छंदों से सुसज्जित कृति है। इसमें विजयनगर के राजा सूर्यकेतु की सेनापति के विश्वासघात से हत्या और फिर सेनापति की पत्नी के प्रायश्चित और दृढ़ संकल्प द्वारा विश्वासघाती पति के त्याग को दर्शाया गया है। स्वदेश प्रेम और राष्ट्र सेवा इसका प्रमुख स्वर हैं। इनके अतिरिक्त चित्राधार की मुक्तक कविताओं में "पराग" और "मकरंद-बिन्दु" शीर्षक संग्रह है। उनमें शरद, रजनी, चन्द्र, वर्षा, नारी, उद्यान, प्रभात तथा कुसुम आदि प्रकृति तत्वों से सम्बद्ध कविताओं को तथा प्रेम और विरह संबंधी कविताओं को रखा गया है। इस कविता संग्रह में प्रसाद बंग्ला के "पयार" और "त्रिपदी" तथा संस्कृति के मालिनी, सुंदरी और प्रियम्बदा आदि छंदों का प्रयोग करते हैं। मकरंद-बिन्दु की भक्ति परक रचनाओं में सवैयों का भी सुंदर प्रयोग किया गया है।

"कानन-कुसुम" के अंतर्गत आख्यानक, प्रकृति-विषयक, भक्ति-विषयक और प्रेम-विषयक कविताएँ संकलित की गई हैं। महापुरुषों के प्रशस्तिगान तथा कतिपय सामयिक समस्याओं को भी इन कविताओं में उजागर किया गया है। पौराणिक एवं ऐतिहासिक आधार पर लिखित चित्रकूट, भरत, श्रीकृष्ण जयंती, कुरूक्षेत्र तथा वीर बालक आदि कुछ कविताएँ इनमें प्रमुख हैं। प्रभो, नमस्कार, वंदना तथा विनय आदि कुछ कविताएँ भक्ति विषयक कविताएँ हैं। खड़ी बोली में रची गई इन कृति में ही इन्द्रधनुष, चन्द्रोदय तथा प्रभातिक-कुसुम जैसी छायावादी काव्य रचनाएँ पहली बार प्रकाश में आईं।

"करूणालय" गीति नाट्य के ढंग पर लिखी गई महत्वपूर्ण कृति है। इसमें पाँच दृश्य हैं। इसमें राजा हरिश्चन्द्र द्वारा शुनः शेष के नरमेध यज्ञ में बलि दिये जाने की कथा का सुंदर वर्णन किया

गया है। नरमेध-यज्ञ के उस युग को सामयिक समस्या के परिप्रेक्ष्य में देखने का सफलतम प्रयास प्रसाद ने किया है। भाषा खड़ी बोली ही है। "महाराणा का महत्व" शीर्षक काव्य कृति के अंतर्गत रहीम खान-खाना की बेगम को राजपूतों द्वारा बंदी बनाये जाने और महाराजा प्रताप द्वारा उन्हें मुक्त कराके उनके पति के पास ससम्मान पहुँचा देने की ऐतिहासिक घटना का मार्मिक वर्णन है। कवि प्रसाद की अनुपम कल्पना और इतिहास की वीरता भरी गाथा का बिम्बात्मक वर्णन सराहनीय बन पड़ा है। ओज भरी भाषा कविता की शक्ति बनी है।

"झरना" के अंतर्गत वैयक्तिक प्रेम और विरह की एक अविरल धारा प्रवाहित होती है और यह "आँसू" में ढलकर "लहर" में समाहित हो जाता है। मांसल अनुभूति धीरे-धीरे सूक्ष्म और छायात्मक बनती जाती है। व्यक्तिगत व्यथा धीरे-धीरे प्रकृति के कण-कण में परिवर्तित होने लगती है। युवा-मिलन की प्रेम-पगी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद तथा विरह-मिलन की हृदयस्पर्शी अभिव्यक्ति इसमें हुई है। यहीं रहस्यवादी विरह की व्यंजना भी पहली बार देखने को मिलती है। इस कृति में प्रसाद की भाषा और शैली निरंतर मंझ कर निखार पाती रही है।

आँसू में शुद्ध रहस्यात्मक अनुभूति तथा लौकिक विरह भावना का अद्भुत मिश्रण है। रहस्यवादी-भाव धारा वाली यह कृति छायावाद की अन्यतम कृति है। व्यापक प्रेम के इस अमर प्रेमी कवि ने इस कृति में सुख-दुख में एक स्वस्थ सामञ्जस्य स्थापित करना चाहा है। प्रतीक-विधान तथा 28 मात्राओं वाला "आँसू" छन्द इस कृति की विशिष्ट पहचान बनाते हैं। अनुपम तथा अनूठी कल्पना और विरह की मार्मिक अभिव्यक्ति को प्राणदा-शक्ति देते, प्रबल-शब्द छायावाद की अमूल्य निधि बन जाते हैं।

"लहर" तक आकर भावना की अश्रुधाराएँ धीरे-धीरे बौद्ध-दर्शन की वैचारिक लहरों में समाने लगती हैं। लोक-मंगल की भावना का संकल्प यहाँ आकर रूपायित होने लगता है। बौद्ध दर्शन की करुणा कवि को एक नई दृष्टि देती है। यहीं आकर कवि "आनन्दवाद" की कल्पना करता है।

आनन्दवाद की यह कल्पना "कामायनी" तक आते-आते साकार होती है। पन्द्रह सर्गों के इस अन्यतम महाकाव्य में प्रसाद की काव्य प्रतिभा अपने चरम शिखर पर पहुँचकर सम्पूर्ण-विश्व को प्रदीप्त करने लगती है। पौराणिक जल-प्लावन की घटना को आधार बनाकर कवि प्रसाद ने इस अन्योक्ति परक महाकृति में प्रकृति, प्रेम, कर्म, रहस्य, दर्शन, इच्छा, ज्ञान, वासना तथा आनंद आदि का मर्मस्पर्शी ही नहीं स्तब्ध कर देने वाला अद्भुत वर्णन प्रस्तुत किया है। प्रतीकों के माध्यम से अन्य अर्थों को सफलतापूर्वक वहन करती यह कर्मकथा भावों के अमूल्य-रत्नों की धरोहर है। आनन्द और आस्था के मार्गदर्शक प्रसाद ने कामायनी में बुद्धिवाद का विरोध और हृदय-तत्व की प्रतिष्ठा करते हुए शैव दर्शन के आनन्दवाद को ही जीवन के पूर्ण उत्कर्ष का साधन घोषित किया है।

इस प्रकार कह सकते हैं कि प्रसाद के समग्र काव्य-संसार में एक अलौकिक तथा विलक्षण शक्ति विद्यमान है और उनके प्रगीतों में यह शक्ति अपनी चरम-सीमा पर पहुँची हुई है। जीवन और दर्शन में परस्पर निर्भरता सिद्ध करते हुए इस महाकवि ने पौराणिकता एवं ऐतिहासिकता के परिप्रेक्ष्य में भारतीयता, मानवीयता, संस्कृति तथा दर्शन आदि को युगीन समस्याओं से जोड़ा ही नहीं, उनका समाधान भी खोजा और प्रस्तुत किया। इसीलिए वे समूचे संसार को उद्बोधित करते हुए कहते भी हैं-

भुनती वसुधा तपते नग
दुखिया है सारा अग जग
बह जा बन करुणा की तरंग,
जलता है यह जीवन पतंग।

बोध प्रश्न 1

1 नीचे कुछ कथन दिए जा रहे हैं। सही या गलत के चिह्न से चिह्नित कीजिए–

i) ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना तथा मानवतावादी दृष्टि के प्रचार-प्रसार का दायित्व निभाने वाले प्रसाद जैसे अन्य कई साहित्यकार हिन्दी-साहित्य में उपलब्ध है। ( )

ii) प्रसाद की अलौकिक-प्रतिभा ने गद्य और पद्य दोनों में अपनी वैविध्यमयी तथा कल्याणकारी दृष्टि की छाप छोड़ी है। ( )

iii) प्रसाद को परिवार, समाज एवं राष्ट्र के स्तर पर सदैव अनुकूल तथा सम स्थितियाँ ही मिलती रहीं। ( )

iv) प्रसाद जी के घर पर कवियों, गवैयों, पंडितों, वैद्यों, यांत्रिकों भाट-बाजीगरों तथा ज्योतिषी आदि विद्वानों का आना-जाना लगा रहता था। ( )

v) प्रसाद जी को हिंदी, उर्दू, फारसी, संस्कृत तथा अंग्रेजी का गहन ज्ञान था और उन्होंने वेद, पुराण, इतिहास तथा उपनिषदों का भी खूब अध्ययन किया था। ( )

2 नीचे दिए गए रिक्त स्थानों के लिए उपयुक्त विकल्प को चिह्नित कीजिए :

i) महाकवि प्रसाद का जन्म सन् .... में हुआ था।
(सन् 1902, 1880, 1889)

ii) प्रसाद जी के ज्येष्ठ भाई का नाम .... था।
(श्री देवी प्रसाद, श्री रत्नाशंकर, श्री शंभुरत्न)

iii) प्रसाद जी को स्कूल की शिक्षा से .... वर्ष की अवस्था में वंचित होना पड़ा था।
(12 वर्ष, 18 वर्ष, 14 वर्ष)

iv) प्रसाद की ब्रजभाषा में रचित कविताएँ सन् .... में पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगी थीं।
(1908, 1911, 1914)

3 एक-दो पंक्तियों में उत्तर लिखिए :

i) प्रसाद की पाँच काव्य कृतियों के नाम लिखिए।

....

....

....

....

ii) प्रसाद जी की मृत्यु कब और कैसे हुई?

....

....

iii) प्रसाद जी ने "कामायनी" महाकाव्य की रचना किस सन् में की? उनकी सबसे पहली काव्य-रचना कौन सी है?

....

....

iv) प्रसाद जी के पाँच प्रमुख नाटकों के नाम लिखिए।

....

....

....

....

v) प्रसाद जी के निबंध संग्रह का क्या नाम है?

....

....

vi) प्रसाद के दो प्रमुख उपन्यासों और दो कहानी संग्रहों के नाम लिखिए।

....

....

नोट : इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

20.5 प्रसाद काव्य : प्रमुख स्वर

प्रसाद का काव्य, जैसा कि अभी हमने देखा भी, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना से अनुप्राणित एक ऐसी काव्य-सृष्टि है जिसमें कई भाव, कई विचार कई दृष्टियाँ, कई समस्याएँ तथा कई चुनौतियाँ एक साथ उभर कर आती हैं और प्रसाद आस्था, निष्ठा, कर्म तथा दायित्व के माध्यम से उ...

का निर्विवाद समाधान भी खोज निकालते हैं। राष्ट्र की खोयी हुई चेतना को अतीत के गह्वरों से खोज कर सांस्कृतिक-पुनरुत्थान का सफल प्रयत्न करने वाला यह कवि वेदना, करुणा, प्रेम, प्रकृति तथा मानवता की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति का प्रतिनिधि बन कर उभरता है। राष्ट्रीय उत्थान के लिए इतिहास का पुनर्जागरण उसे सक्रिय करता है तो देश की परंपरा और सभ्यता की स्मृतियाँ उसे नवजीवन प्रदान करती हैं। आध्यात्मिक चेतना उसके विचारों को दिशा एवं दृष्टि देती हैं और वही दृष्टि समग्र संसार को आनन्द-शिखर तक पहुँचाने का मार्ग प्रशस्त करती है। अतः देश की विविध विषम परिस्थितियों में हिंदी कविता के प्रांगण में उतरने वाले इस महाकवि ने सूक्ष्म पर्यवेक्षण से हिंदी कविता को नए विषय, नई चेतना, नई पृष्ठभूमि और नई दृष्टि प्रदान की। प्रसाद के इस नव-आंदोलन वाले काव्य-संसार में कई प्रवृत्तियाँ उभरीं, जिन्होंने नवजागरण का संदेश दिया यहाँ हम प्रसाद काव्य की उन्हीं प्रमुख प्रवृत्तियों अथवा विशेषताओं पर दृष्टि डालेंगे।

20.5.1 इतिहास एवं संस्कृति

प्रसाद का आविर्भाव हिन्दी साहित्य के ऐसे युग में हुआ जब स्वतंत्रता संग्राम का जोश और ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक गरिमा को सुरक्षित रखने की छटपटाहट विदेशी सत्ता के उन्मूलन की राह खोजने को बाधित कर रहे थे। वैमनस्य एवं भेदभाव इस सम्मिलित क्रांति-यज्ञ की आहूति बन चुके थे। प्रसाद जी ने राजनीति, संस्कृति, धर्म व्यापार मूल्य तथा विचारों भावों के ऐसे उथल पुथल मचा देने वाले युग में इतिहास एवं संस्कृति के प्रति अगाध श्रद्धा भाव पैदा किया। काव्य, नाटक तथा निबन्ध आदि के माध्यम से कवि गरिमामंडित भारतीय इतिहास तथा पुनीत भारतीय संस्कृति की झांकी बार-बार प्रस्तुत करता है। प्राचीन एवं ऐतिहासिक घटनाओं का सहारा लेकर इस अन्वेषी कवि ने भारतीय संस्कृति के बिखरे अवयवों को एकत्रित कर जन-जन में इसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न की तथा भारतीय और विदेशी संस्कृति के संगम में आधुनिक मानवता को विकास देने वाली संस्कृति को भी तैयार किया। प्रसाद ने रामायण, महाभारत, पुराण, उपनिषद् तथा अन्य ऐतिहासिक एवं संस्कृत ग्रंथों का अनुशीलन करते हुए अपने समग्र साहित्य को शक्ति प्रदान की। 'चित्रकूट', 'अयोध्या का उद्धार', 'महाराजा का महत्व', 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण', 'पेशोला की प्रतिध्वनी' तथा 'कामायनी' जैसी काव्य कृतियाँ इसके प्रमाण हैं तो 'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी', 'विशाख', 'जन्मेजय का नागयज्ञ' जैसे नाटक भी इसी का उदाहरण है। इसी प्रकार कई कहानियों में भी प्रसाद की इसी दिव्यदृष्टि को देखा जा सकता है। प्रसाद के पात्र भी इतिहास एवं संस्कृति के विशिष्ट पात्र हैं। 'भरत' और 'वन-मिलन' कविता में वे कालिदास को आधार बनाते हैं तो 'कामायनी' और 'करुणालय' में पुराण कथाओं को। 'अजातशत्रु' नाटक में बौद्ध कालीन आधार को अपनाते हैं तो 'चंद्रगुप्त' में मौर्यकालीन आधार को। 'इरावती' उपन्यास में मौर्यवंश के पतन और शुंग वंश के प्रादुर्भाव को आधार बनाया गया है। 'स्कन्दगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी' में गुप्तकालीन इतिहास को उजागर करने का सफलतम प्रयास है तो 'राज्यश्री' और 'प्रायश्चित' में मध्यकालीन इतिहास आधार बना है। इसी प्रकार नूरी, दासी, चित्तौड़, गुलाम, ममता, जहांनारा, तानसेन, उद्धार तथा स्वर्ग के खण्डहर जैसी कई कहानियाँ भी ऐतिहासिक आधार रखती हैं। अतः यह तो स्पष्ट ही है कि प्रसाद ने भारतीय संस्कृति के उज्ज्वलतम रूप को प्रस्तुत करने के लिए ही इतिहास का सहारा लिया और उसे साहित्यिक स्पर्श देने के लिए कहीं-कहीं मर्मस्पर्शी कल्पना का अदभुत मिश्रण भी कर दिया। कवि इतिहास और कल्पना के बहुरंगी चित्रों से अपने साहित्य को सुसज्जित ही नहीं करता, प्राचीन भारत की स्वर्णिम झांकी प्रस्तुत कर भारतीय संस्कृति के निखरे हुए स्वरूप को भी दर्शाता है। अतः इतिहास के अंधकार युग से लेकर अंग्रेजी युग तक की सामाजिक सांस्कृतिक और ऐतिहासिक घटनाओं की आधार भित्ति पर कवि अपना "साहित्य-प्रसाद" निर्मित करता है। यही कारण है कि उनके काव्य, नाटक एवं कहानियों आदि में इतिहास के माध्य से वर्तमान की समस्याओं की आत्मा झलकती जान पड़ती है। 'प्रलय की छाया' जैसी ऐतिहासिक गीति रचना में गुर्जर प्रदेश की अनिंद्य सुन्दरी कमला का सुल्तान अलाउद्दीन द्वारा बंदी बनाया जाना सांस्कृतिक-इतिहास पर कलंक माना जाता रहा किन्तु महाकवि प्रसाद ने चित्तौड़ की रानी पद्मिनी से रूप स्पर्धा करती कमला की विवशता पर नया प्रकाश डाला—

> मैं भी थी कमला
> रूप रानी गुजरात की।
> सोचती थी
> पद्मिनी जली थी स्वयं किन्तु मैं जलाऊँगी
> वह दावानल ज्वाला
> जिसमें सुल्तान जले।
> देखें तो प्रचण्ड रूप ज्वाला सी धधकती
> मुझको सजीव वह अपने विरुद्ध

कवि ने कमला के चरित्र में आदर्श प्रतिष्ठित करने के लिए ऐतिहासिक तिथियों और कतिपय तथ्यों में व्यक्तिक्रम भी किया हो, किंतु प्रसाद का लक्ष्य एक साहित्यकार का लक्ष्य रहा। तथ्य मात्र प्रस्तुत करना उनका ध्येय न था।

इसी तरह 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' में सिख इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना को उजागर किया गया है। प्रसाद ने महाराजा रणजीत सिंह के बाद के पंजाब और रानी जिन्दन की विवशता का अत्यंत सजीव वर्णन किया है। अंग्रेजों और सिक्खों के मध्य पहला बड़ा युद्ध चिलयान वाला में हुआ और अन्तिम गुजरात (पंजाब) में। प्रसाद ने गुजरात के इस युद्ध में सिक्खों की इस वीरता का बखान किया है—

कहेगी शतद्रु शत संगरों की साक्षिणी
सिक्ख थे सजीव
स्वत्व रक्षा में प्रबुद्ध थे।
जीना जानते थे।
मरने की जानते थे सिक्ख।

स्पष्ट है कि प्रसाद इतिहास का आश्रय संस्कृति के उज्ज्वल पक्ष एवं स्परूप को हमारे सम्मुख बार-बार उजागर करने के लिए ही लेते हैं। दर्शन और आध्यात्म कभी उन्हें हिमगिरी के उत्तुंग शिखर पर जाने की प्रेरणा देते है तो कर्त्तव्य और धर्म उन्हें इतिहास के गहव्रों में उतरने की शक्ति देते हैं। प्रसाद साहित्य की मूल चेतना को स्पष्ट करती ये पंक्तियाँ देखिए :

हिमालय के आँगन में उसे, प्रथम किरणों का दे उपहार
उषा ने हँस अभिनन्दन किया, और पहनाया हीरक हार।

— स्कन्दगुप्त

औरों को हसते देखो, मनु
हँसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत कर लो
सबको सुखी बनाओ।

— कामायनी

जननी जिसकी जन्मभूमि हो, बसुन्धरा ही काशी हो।
विश्व स्वदेश, भ्रात मानव हों पिता परम अविनाश हो।

— कानन-कुसुम

इस प्रकार के गौरव गान तथा सांस्कृतिक श्रद्धा से युक्त गीत गाने वाला यह महाकवि 'मनु' जैसे आदि-पुरुष का निरूपण करके भी जीवन संघर्ष की राह दिखाता है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में कार्नेलिया विदेशी बालिका होकर भी अरूण यह मधुमय देश हमारा गीत गाकर भारत भूमि के प्रति अपने प्यार को दर्शाती है। आदि पुरुष मनु हिमालय के उत्तुंग शिखर पर विराजते हैं। निश्चित ही प्रसाद भारतीय इतिहास, सभ्यता एवं संस्कृति के पोषक-प्रहरी थे। सांस्कृतिक पुनरुत्थान की ये रेखाएँ उनके इसी अनुराग की परिचायक हैं। बाबा रामनाथ, चाणक्य तथा दाण्डयायन जैसे सांस्कृतिक प्रतीक-पात्र, धर्म और दर्शन को अद्भुत समन्वय, भारतीय आत्मवाद और सार्वभौमिकता की स्थापना और मानव संस्कृति की विजय का उदघोष-सब के सब प्रसाद जी की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक श्रद्धा के गवाह हैं।

20.5.2 राष्ट्रीय चेतना और मानवीयता

हिन्दी साहित्य के छायावादी युग में राष्ट्रीय एवं स्वातंत्र्य चेतना का मूल मंत्र पूरे देश में स्फूर्ति संचरित कर रहा था। मानवीय गुणों की स्थापना और इंसानी मूल्यों की प्रतिष्ठा प्रत्येक छायावादी कवि का लक्ष्य बन गया था। प्राचीन भारतीय गौरव और सांस्कृतिक-दार्शनिक मूल्यों की अभिव्यक्ति के प्रति कवि प्रसाद का अनुराग भी राष्ट्रीय भावना की प्रेरणा बन रहा था। अतीत की चेतना भावुक कवि को जागृति के गीत प्रदान करती रही और युगीन परिवेश उसके इन गीतों में मूल्यों की शक्ति जुटाता रहा। त्याग, एकता और आत्म-बलिदान की भावनाएँ ही नहीं, शक्ति, संगठन और शौर्य का गान भी आह्वान देने लगा। चन्द्रगुप्त नाटक में "अलका" नागरिकों को युद्ध के लिए प्रोत्साहित करती हुई राष्ट्रीय चेतना का संचार करती है—

हिमाद्रि तुंग श्रृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती –
स्वयं प्रभा समुज्जवला
स्वतंत्रता पुकारती –
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है– बढ़े चलो, बढ़े चलो।

प्रसाद के नाटकों में तो राष्ट्रीय चेतना कूट-कूट कर भरी ही है, काव्य भी इसी चेतना की जीवंत मिसाल है। कवि की राष्ट्रीयता, देश-भक्ति एवं देश प्रेम के प्रति यह दृढ़ भावना पौराणिक एवं ऐतिहासिक आख्यानों के माध्यम से अभिव्यक्त भी हुई है। विदेशियों की पराजय, देश के प्रति उल्लास, श्रद्धा, समर्पण एवं बलिदान की भावना आदि कई काव्य प्रसंग इसी आस्था के प्रमाण हैं। निराशा में आशा और विजय का मार्ग प्रशस्त करते कवि के ये भाव द्रष्टव्य है जिसमें सभर-संगिनी और रस-रंगिनी तलवार को जीवन साथी बताया गया है–

अरी रस-रंगिनी
सिक्खों के शौर्य भरे जीवन की संगिनी।
कपिशा हुई भी लाल तेरा पानी पार कर।
दुर्मद दुरन्त धर्म दस्युओं की त्रासिनी –
निकल, चली जा तू प्रतारणा के कर से।

– शेरसिंह का शास्त्र समर्पण

यह वह भारत है जहाँ के योद्धा-वीर लड़ना और मिटना जानते हैं। शस्त्र हो तो कोई बात ही नहीं और न हों तो भी निश्चिन्त। ये हाथ और व्रज शरीर ही शास्त्र बन जाते हैं। हथेली पर प्राण लिये घूमने वाले ये राष्ट्र-भक्त सदैव जय के उपासक रहे हैं–

अहा खेलता कौन यहाँ शिशु सिंह से
आर्यवृन्द के सुन्दर सुखमय भाग्य सा
कहता है उसको लेकर निज गोद में –
खोल, खोल मुख सिंह–बाल, मैं देखकर
गिन लूँगा तेरे दाँतों को हैं भले
देखूँ तो कैसे यह कुटिल कठोर हैं।

– कानन-कुसुम

प्रसाद ने भारतीय जनता के हृदय में राष्ट्रीयता की भावना को जागृत कर अत्याचारी अंग्रेज शासकों और देशद्रोहियों के प्रति खुल कर विद्रोह करने की सीख ही नहीं दी, मनुष्यता और मानवता का पाठ पढ़ा कर नैतिक एवं आदर्श मूल्यों की प्रतिष्ठा का मंत्र भी दिया। कवि की निजी दृष्टि का मानवीय बोध और इस बोध का आर्द्र स्वर जीवन के शाश्वत उपादानों के प्रति सजग करता है। मानव को सर्वोपरि मानने वाले इस महाकवि ने "मनु" को अपने इसी आदर्श मानस का प्रतीक बनाकर उसकी आन्तरिक भावनाओं में समाज की सीमाओं को रूपायित किया है। श्रद्धा "मनु" को ही जागृत सन्देश नहीं सुनाती, समस्त मानव जाति को अमन-मंत्र प्रदान करती है–

यह नीड़ मनोहर कृतियों का,
    यह विश्व कर्म-रंगस्थल है।
है परम्परा लग रही यहाँ
    ठहरा जिसमें जितना बल है।

मानवीय मूल्यों की दृढ़ स्थापना का यह संदेश सम्पूर्ण मानवता के लिए है। आधुनिक वैज्ञानिकता, भौतिकता और विषमताओं के विविध चित्रण प्रस्तुत करके भी प्रसाद स्वाभाविकता और प्रकृति के मर्म से कटने का दर्द ही व्यक्त करते हैं। दूसरों को हँसते देख सैदव प्रसन्न रहने की सीख देने वाली "श्रद्धा" सभरसता का मार्ग प्रशस्त करती हुई मानव जाति की चतुर्दिक उन्नति की कामना करती है। हृदय की वृत्तियों का विस्तार कर जीवनी शक्ति का विकास करने की प्रेरणा देने वाला यह आशावादी आनन्द के चरम शिखर पर पहुँचना और पहुँचाना चाहता है –

विधाता की कल्याणी सृष्टि
सफल हो इस भूतल पर पूर्ण
पटें सागर, बिखरें ग्रह-पुंज
और ज्वालामुखियाँ हों चूर्ण,

शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त
        विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय,
समन्वय उसका करें समस्त
        विजयिनी मानवता हो जाय।

20.5.3 प्रेम-व्यंजना

प्रसाद को यौवन और प्रेम सौन्दर्य की लहरियों का अत्यंत संयमी कवि कहा जाता है। यों तो पूरे छायावाद में ही प्रणय भावना का प्राधान्य रहा है और उसमें कवि की निजी भावात्मक दृष्टि मुख्य रही है। छायावाद की विशेषता रही है कि संस्कारशीलता के कारण उनकी प्रणयाभिव्यक्ति एक झीने आवरण में लिपटी रही और उसने लाक्षणिक भाषा शैली में अभिव्यक्ति पायी। प्रेम के आलम्बन के प्रति व्यक्त इनकी अनुभूति अत्यंत आन्तरिक, हार्दिक, सूक्ष्म एवं उदात्त बन कर उभरती है। प्रसाद के साहित्य में भी आदि से अन्त तक इसी प्रेम का स्वर थिरकता है। प्रेम का स्वच्छन्द रूप उसे एक पृथक भाव भूमि देता है तो समाज को एक व्यापक दृष्टि भी प्रदान करता है–

इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रांत भवन में टिक रहना,
किन्तु चले जाना उस हद तक जिसके आगे राह नहीं।

हे जन्म-जन्म के जीवन साथी संसृति के दुख में
पावन प्रभात हो जावे जागो आलस के सुख में
जगती का कलुष आपावन तेरी विदग्धता पावे
फिर निखर उठे निर्मलता यह पाप-पुण्य हो जावे।

"कामायनी" में प्रसाद प्रेम के तीनों रूपों राजस, तामस और सात्विक को अंकित करते हुए "प्रेम" और "वासना" की विस्तृत मीमांसा भी करते हैं। "इड़ा" वहाँ राजस प्रेम की प्रतीक है, "मनु" तामस प्रेम के और "श्रद्धा" सात्विक प्रेम की प्रतीक है।

वास्तव में कवि प्रसाद के लिए प्रेम जीवन का अत्यंत पावन, आलोकमय स्वस्थ और उदात्त उपकरण है। तभी तो वे इस उदात्त वृत्ति के संदर्भ में कहते हैं– "जिसके प्रकाश में सकल कर्म बनते उज्ज्वल उदार।" प्रेम में वह शक्ति है जिससे संसार का समस्त कलुष पुण्य में परिणत हो जाता है। "प्रेम-पथिक" इस मार्ग से आनन्द शिखर पर पहुँच जाता है। स्वार्थ से उठकर प्रेती आत्मोत्सर्ग की उच्च भूमि पर आसीन हो जाता है। सर्वोत्तम-समपर्ण का यही दूसरा नाम है। "पागल रे वह मिलता है कब, उसको तो देते ही है सब"– कहकर कवि आत्मदान के आदर्श की ओर संकेत करता है। "प्रेम-पथिक" "लहर" "झरना" और आँसू सभी में प्रसाद की उदात्त प्रेम दृष्टि के उज्ज्वल पक्ष के दर्शन होते हैं। वियोग प्रेम की कसौटी है। संयोग के मादक क्षणों की स्मृतियों का मधु प्रेमी पीता है–

खिंच जाये अधर पर वह रेखा,
जिसमें अंकित हो मधु-लेखा,
जिसको वह विश्व को देखा,
वह स्मिति का चित्र बना जा रे।
मेरी आँखों की पुतली में तू।
बन कर प्राण समा जा रे।
                – लहर

प्रसाद के प्रेम वर्णन में शील, संयम और शिष्टाचार का बाँध कभी नहीं टूटता। उनका प्रेम दिव्य और उदात्त रूप में ढल कर आध्यात्मिकता की प्रतीति करता है। "प्रेम-वेणु की लहरी में जीवन-गीत सुना जाओ" की कामना करता हुआ कवि प्रेम को मानवीय रूप देकर भी स्वर्गिक बना देता है। लौकिक सौन्दर्य से अलौकिक लावण्य की ओर अग्रसर प्रसाद के प्रेम में अनुभूति-प्रवणता है।" वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे, जब सावन घन सघन बरसते थे, इन आँखों की छाया भर थे" कहकर अपने विगत का स्मरण करने वाला स्मृति-प्रेमी अतीत की गलियों में प्रेमी को खोजता-ढूढ़ँता है। विरह भावना के वर्णन में प्रसाद पर सूफियों के प्रेम प्रभाव को भी देखा जा सकता है–

छिल छिल कर छाले फोड़े,
        मल मल कर मृदुल चरण से,
धुल धुलकर बह रह जाते,
        आँसू करुणा के कण से।
                – आँसू

कामायनी में प्रसाद काम और रति जैसी प्रेम की मूल प्रवृत्तियों को अत्यंत व्यापक धरातल प्रदान कर प्रणय भावना संबंधी अपनी नवीन दृष्टि का परिचय भी देते हैं। वास्तव में छायावाद युग ही प्रणय भावना के अत्यंत प्रगाढ़ और आवेशमय रूप का युग था। स्त्री सामाजिक स्वतंत्रता हासिल कर रही थीं। स्वच्छन्द वातावरण और इस इन्द्रजालिक परिवेश में मनु और श्रद्धा का प्रथम मिलन हृदय के पटल खोलता चला जाता है–

मधु बरसती विधु किरन हैं काँपती सुकुमार।
पवन में है पुलक मंथर, चल रहा मधुमार।
तुम समीप, अधीर इतने आज क्यों हैं प्राण
छल रहा है किस सुरभि से तृप्त होकर प्राण।

– कामायनी

स्पष्ट है कि प्रसाद का यह प्रेम दो हृदयों के पावन मिलन का प्रतीक है, जिसमें एक दूसरे का व्यक्तित्व अपनी पृथक सत्ता खो देता है। चेतना के इस उज्ज्वल वरदान के सहारे प्रेमी प्रणयी जीवन की उच्चतम भूमि तक पहुँच जाते हैं। सम्पूर्ण मानवता इसमें समा जाती है–

किन्तु न परिमित करो प्रेम
सौहार्द विश्वव्यापी कर दो

– प्रेम पथिक

अतः प्रसाद का प्रेम वर्णन मनोविज्ञान और दर्शन के मिश्रित आदर्श की स्थापना करता हुआ नारी को श्रद्धा की साकार प्रतिमा बना देता है। वह शक्तिमयी छाया शीतल बनकर अपने दिव्य रूप में चित्रित होती है। नारी और पुरुष को परस्पर पूरक मानने और स्थापित करने वाले प्रसाद ने प्रेम को घनीभूत करने वाले दृष्टिगत, शीलगत एवं मानसिक, तीनों ही प्रकार के सौंदर्य का हृदयस्पर्शी वर्णन अपने काव्य में किया है। "आलिंगन में आते-आते, मुस्क्या कर जो भाग गया", "निधरक तूने ठुकराया जब, मेरी टूटी प्याली को", "अरे कहीं देखा है तुमने, मुझे प्यार करने वालों को" "धीरे से वह उठता पुकार, मुझको न मिला रे कभी प्यार" – जैसी अनुभूतियाँ कवि को स्थूल से सूक्ष्म की ओर तथा सहज से उदात्त की ओर उन्मुख करती हैं। प्रसाद की ये प्रेम भावनाएँ "मेरी आँखों की पुतली में, तू बन कर प्राण जगा जा रे" कहती हुई मधुर प्रेम भावना का एक नवीन उत्कर्ष प्रस्तुत करती हैं।

20.5.4 सौंदर्य चेतना

छायावादी काव्य की एक अन्यतम विशेषता है रूप सौंदर्य के दायरे से निकलकर मानस सौंदर्य या आन्तर सौंदर्य पर दृष्टि को निबद्ध करना। यह सौन्दर्य प्रकृति, पुरुष, नारी, जगत तथा जीवन सभी का है। यों सौंदर्य मनुष्य मात्र के आकर्षण का केंद्र है। अतः कवि का उसके प्रति आकर्षित होना तो सहज स्वाभाविक ही है। छायावादी कवियों को तो कल्पना और सौन्दर्य लोक का ही कवि कहा जाता है। तभी तो प्रसाद सौंदर्य लोक की ओर उन्मुख होकर कहते हैं–

ले चल मुझे भुलावा लेकर मेरे नाविक धीरे-धीरे
जिस निर्जन में सागर-लहरी
अम्बर के कानों में गहरी
निश्चल प्रेम कथा कहती हो तज कोलाहल की अवनी रे।

वास्तव में प्राचीन कवियों की शक्ति अन्तर्जगत के सौन्दर्य को अनावृत करने में उस सीमा तक नियोजित न हो सकी जितनी स्थूल शारीरिक सौन्दर्य के चित्रण पर। जबकि छायावादी कविता मानस-जगत के सौंदर्य के चित्रण में विशेष रूप से प्रवृत्त हुई। छायावाद के ये सौन्दर्य चित्र अनुभूति और कल्पना से प्रेरित हैं तथा अपूर्व और अनिर्वच-सौन्दर्य के प्रति विशेष रूप से सचेष्ट थी। उसमें ससीम और असीम दोनों सौंदर्यों के प्रति जिज्ञासा भी है और कौतूहल भी। यहाँ हम सरस्वती पुत्र महाकवि प्रसाद की सौन्दर्य चेतना पर विचार करते हुए उनके प्रकृति सौन्दर्य, नारी भावना का सौन्दर्य और गीति-सौन्दर्य पर विशेष रूप से दृष्टिपात करेंगे। शिल्प एवं संरचना के सौन्दर्य पर आगे विचार किया जा सकेगा। तो सर्वप्रथम हम प्रसाद के प्रकृति सौंदर्य का विवेचन करते हैं–

प्रकृति सौंदर्य

छायावादी काव्य में प्रकृति का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है। प्रकृति मानव की चिर सहचरी रही है। प्रकृति मनुष्य के जीवन की बाह्य आवश्यकताओं की निरन्तर पूर्ति के साथ-साथ मनुष्य की आन्तरिक अनुभूतियों को भी प्रभावित, संस्कारित और रूपायित करती रही है। यही कारण है

कि मनुष्य का प्रकृति से अत्यंत जीवन्त, सम्वेदनशील तथा स्पन्दशील सम्बंध रहा है। वास्तव में छायावादी काव्य वह काव्य है जिसमें मानव और प्रकृति के मध्य साम्य का एक सूक्ष्म तन्तु कवि ने देखा था। प्रकृति को जीवन्त तथा प्राणवान मानने वाला कवि जीवन के हर्ष विषाद को उसी में देखता और ढूंढता है। उसे अलौकिक गुण सम्पन्न अनन्त सौन्दर्यमयी नारी के रूप में देखता है। महाकवि प्रसाद ने भी प्रकृति के प्रति अपने प्रगाढ़ अनुराग की व्यंजना करते हुए सूक्ष्मतम शब्दचित्र प्रस्तुत किए है। प्रसाद कभी मन की अमूर्त लहरों को "उठ उठ री लघु-लघु लोल लहर" कहकर मूर्तिमान करते हैं तो कभी लहर की उठती-गिरती तड़पन में अपने प्रेमी हृदय की व्यथा को रूपायित करते हैं—

तब लहरों सा उठकर अधीर
तू मधुर व्यथा सा शून्य चीर
सूखे किसलय का भरा पीर।
गिरजा पतझड़ का सा समीर।

यही नहीं, मानव की गहराई में मन की गम्भीरता का प्रतिरूप भी प्रसाद देखते हैं। मन की धीर-गम्भीर तहों में कवि मानसरोवर की तरह प्रतिबिम्ब देखता है। इस शान्तभाव के मन में आन्दोलित अनुभूतियाँ मुखरित हो उठती हैं—

ओ री मानस की गहराई।
....

ओ पारदर्शिका चिर चंचल
यह विश्व बना है परछाई।

गगन की नीलिमा में व्यक्ति के जीवन पर आच्छादित विषाद की नीलिमा का रूप देखते हुए प्रसाद दुख के प्रगाढ़ विस्तार में सुख की कौंध को, बादलों में कौंधती विद्युत सी मानते हैं।

प्रियतम के आगमन से नवीन स्फूर्ति आँखों में एक मादकता भर देती है पुष्प भी पंखुरिया खोलकर मकरन्द बिखेरने लगते हैं और हृदय के भाव बेकाबू होने लगते हैं—

फूलों ने पंखुरियाँ खोलीं
आँखें करने लगीं ठिठोली
हृदयों ने संभाली झोली
लुटने लगे विकल पागल मन।

इसी प्रकार— "अब जागो जीवन के प्रभात" "बीती विभावरी जाग री" "भुनती वसुधा तपते नग", "करूण गाथा गाती है, यह वायु बही जाती है" "वह लाज भरी कलियाँ अनन्त, परिमल घूँघट ढक रहा दन्त" जैसी अनेकों पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं जहाँ प्रकृति सौंदर्य की अनुपम छटा बिखरी है।

प्रसाद प्रकृति चित्रण को वर्ण्य, अवर्ण्य, रहस्यात्मक, दार्शनिक, मानवीकरण तथा अलंकरण आदि कई रूपों में एक साथ वर्णित करते हैं। कभी प्रकृति आलंबन बन जाती है तो उषा, रात्रि, बसंत, सरिता, दीप, सागर और झरनों का रूप लेकर उभरती है। "अब जागो जीवन के प्रभात" में कवि अरूण वर्ण उषा को वसुधा पर ओस के क्षोभ भरे 'हिमकण-अश्रु' बटोरती नायिका बना देता है। कभी प्रसाद सरिता को अभिसारिका बना देते हैं तो कभी कोमल-कुसुमों की मधुर रात को अपलक जगती नायिका।

प्रसाद, प्रकृति का उद्दीपन रूप में भी चित्रित करते हैं। अपने भावानुसार कवि प्रकृति को हँसते रोते भी देखता है—

लहरों ने यह क्रीडा चंचल
सागर का उद्वेलित अंचल
है पोंछ रहा आँखें छल छल
किसने यह चोट लगाई है।

वास्तव में प्रसाद प्रकृति को रहस्यात्मक, उपमान, प्रतीक, मानवीकरण, दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक कई रूपों में प्रस्तुत कर अपनी सूक्ष्म कलात्मकता का परिचय देते हैं। प्रसाद की "कामायनी" और "लहर" तो प्रकृति के मानवीकरण से समृद्ध कृतियाँ हैं ही। जल-प्लावन के कम होने पर धरती जब थोड़ी ऊपर आ जाती है तो प्रसाद मानवीकरण का रमणीय उदाहरण बना देते हैं—

सिंधु सेज पर धरा बधू अब
तनिक संकुचित बैठी सी
प्रलयनिशा की हलचल स्मृति में,
मान किये सी ऐंठी सी।

उपमान रूप में प्रकृति का प्रयोग तो प्रसाद की विशेषता है ही। इसके लिए "नील-नलिन से नेत्र चपल मद से भरे", "मकरंद मेघ माला सी वह स्मृति मदमाती आती", "ज्वालामुखी विस्फोट के भीषण", "प्रथम कंप सी मतवाली", "खिला हो ज्यों बिजली का फूल" आदि कई उदाहरण देखे जा सकते हैं। अतः कह सकते हैं कि प्रसाद का काव्य प्रकृतिमय ही है। विभिन्न रूपों में प्रकृति इनके काव्य को अनुरंजित करती है। प्रसाद के काव्य की शोभा वृद्धि का मुख्य उपकरण प्रकृति ही बनती है।

नारी भावना का सौंदर्य

छायावाद की सबसे बड़ी विशेषता है नारी के बाह्य अथवा नख-शिख वर्णन से हट कर उसकी अन्तरात्मा की शक्ति पर दृष्टि को केंद्रित करना। प्रसाद तो नव्यतम नारी भावना की उदात्त कल्पना का आदर्श रखने में सबसे आगे रहे हैं। प्रिया का स्पर्श भी उन्हें अलौकिक माधुर्य प्रदान करता है। पंत की सौन्दर्यानुभूति को प्रिया के सम्मुख त्रिभुवन की श्री को भी फीका महसूस करती है—

मूंद पलकों में प्रिया के ध्यान को,
थाम ले अब हृदय इस आह्लाद को,
त्रिभुवन की भी तो श्री भर सकती नहीं,
प्रेमसी के शून्य-पावन स्थान को।

प्रसाद जी इसी प्रकार नारी के आन्तरिक सौन्दर्य पर ध्यान देते हुए उसके हृदय की सुकुमारता, दयाशीलता, क्षमाशीलता तथा ममता आदि गुणों पर स्वयं को न्योछावर कर देते हैं। नारी का बाह्य सौन्दर्य उन्हें आकर्षित करता है पर उसकी आन्तरिक दीप्ति का प्रभाव आकर्षण को अलौकिक बना देता है। नारी ने इस युग के कवि को अपनी बहुविध शक्तियों से इतना अभिभूत कर दिया कि वह उसमें दिव्य और अतीन्द्रिय सौन्दर्य देखने लगा। निराला के "तुलसीदास" में भी ऐसी ही नारी है जहाँ उसका तेजस्वी प्रोज्ज्वल रूप उभरता है। प्रसाद नारी के उर में उषा का आवास देखते हैं तो उसके स्वभाव में चाँदनी की शीतलता। प्रसाद की कामायनी नारी के इसी आंतरिक सौन्दर्य का उत्कृष्ट उदाहरण है—

मनु ने देखा कितना विचित्र। वह मातृ मूर्ति थी विश्वमित्र।

× × ×

तुम देवि आह कितनी उदार, यह मातृ मूर्ति है निर्विकार
हे सर्वमंगले। तुम महती सबका दुख अपने पर सहती,
कल्याणमयी वाणी कहती तुम क्षमा निलय में हो रहती।

यों प्रसाद ने नारी के बाह्य रूप के उदात्त-आकर्षण के अभिनव सौन्दर्य को भी चित्रित किया है। इस दिव्य और आह्लादकारी रूप पर कवि मुग्ध होकर कहता है—

लावण्य शैल राई-सा
जिस पर वारी बलिहारी
उस कमनीयता कला की
सुषमा थी प्यारी-प्यारी।

समस्त सौन्दर्य वर्णन में सौन्दर्य के सूक्ष्मातिसूक्ष्म पक्षों का आलेखन ही छायावादी काव्य की विशिष्टता है। कभी कवि "मुख-चन्द्र चाँदनी जल से, मैं उठता था मुँह धो के" जैसी अनुभूतियों से गुजरता है तो कभी महसूस करता है—

घन में सुंदर बिजली-सी,
बिजली में चपल चमक सी
आँखों में काली पुतली,
पुतली में श्याम झलक सी,

इसी प्रकार कवि "नील परिधान बीच सुकुमार", "खिल रहा मृदुल अधखुला अंग" में नायिका के अंगों की कान्ति, कोमलता, सिहरन, कम्पन और पुलकन आदि के दर्शन भी करता है। वास्तव में प्रसाद की नारी भक्तिकाल के भक्त या सन्त कवियों की नारी से पूर्णतः भिन्न सौन्दर्य और प्रेम की

... जिसकी शांत छाया में थके पथिक के हृदय से ग्लानि और अपराध-बोध धुल जाते हैं। वह कल्याणी, मंगलकारिणी, पथ-प्रदर्शिका नारी श्रद्धेय ही नहीं, साक्षात 'श्रद्धा' का अवतार है--

नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में
पीयूष स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।

स्नेह, दया, करुणा, क्षमा, त्याग, समर्पण, ममता आदि गुणों की अजस्र धारा बनी नारी, जो सुख को विस्तृत कर किसी को भी दुखी नहीं देखना चाहती, जो प्रेयसी, पत्नी और माता के रूप में पुरुष की शुष्कता को मिटा कर अपनी आर्द्र कृपा से सिंचित करती है, जो अपने वक्षस्थल पर संसृति के ज्ञान-विज्ञान को एकत्रित कर अपने हाथों में कर्म-कलश लेकर वसुधा को जीवन रस के सार से उपकृत करती है, वह नारी पूज्या है। उसके इस स्वरूप को विस्मृत करना अपराध ही नहीं, पाप भी है। इसी तथ्य को प्रसाद बार-बार उजागर कर समस्त संसार को जागृत भी करते हैं।

काम मंगल से मण्डित श्रेय,
सर्ग, इच्छा का है परिणाम।
तिरस्कृत कर उसको तुम भूल,
बनाते तो असफल भव धाम।

अतः स्पष्ट है कि प्रसाद ने नारी को पूर्णतः नवीन, पृथक एवं विशिष्ट भूमिका पर प्रतिष्ठित किया है। यह भूमिका दिव्य है, ज्योतिर्मय है, महान प्रेरणा का अजस्र स्रोत है, शक्ति पुंज और कल्याणकारी है।

गीति सौंदर्य

गीति काव्य गीत शैली का नव्यतम विकास है और आधुनिक हिन्दी काव्य के स्वच्छन्दतावादी गीतों के लिए गढ़े गए पाश्चात्य शब्द "लिरिक" का पर्याय ही प्रगति है। गीति वस्तुतः अभिव्यक्ति की वह अवस्था है जब मन में स्थित भाव स्वयं में समा नहीं पाता और विश्व के सम्मुख प्रकट होने को आकुल-व्याकुल हो उठता है। हृदय का सहज उच्छलन अभिव्यक्ति पा जाता है, जिसमें लय, गति, ध्वनि और गुंजन समा जाते हैं। उसमें वैयक्तिकता और आवेशमयता से मुक्त आत्मोद्गार अभिव्यक्त होते हैं। भावों का सहज प्रवाह रूपायित होता चला जाता है। प्रसाद के काव्य में भी इस छायावादी विशेषता के पर्याप्त दर्शन होते हैं। प्रसाद के झरना, लहर और आँसू तो गीति काव्य के अन्यतम उदाहरण ही है। छोटे और लम्बे गीतों से सुसज्जित प्रसाद का गीतिकाव्य वास्तव में सच्ची भाव सृष्टि का ही परिणाम है, जिसमें शब्द-अर्थ तथा उपमान और प्रतीकों का मधुर लय से बराबर योग रहता है। इन गीतों में सौन्दर्याकर्षण, प्रणय-निवेदन, अतृप्ति, वेदनानुभूति तथा जीवन की मार्मिक व्यंजना सहज ही मिलती है--

वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे
जब सावनघन सघन बरसते
इन आँखों की छाया भर थे।
× × ×
निज अलकों के अंधकार में
तुम कैसे छिप जाओगे
इतना सजग कुतूहल ठहरो
यह न कभी बन पाओगे।

प्रसाद जी के गीति-काव्य सृजन में भाव प्रधान, विचार-प्रधान, प्रकृति-प्रधान, रहस्य प्रधान तथा जीवन दर्शन प्रधान गीतों का अपार भंडार है जिसमें आत्मोद्गारों की सहज अभिव्यक्ति हुई है। भारतीय इतिहास एवं राष्ट्रीय स्वर को मुखर करने वाले गीतों में तो प्रसाद निपुण है ही। जीवन की दिशादृष्टि के इन उदात्त भावों के 'पेशोला की प्रतिध्वनि' तथा 'वरूणा का शांत कछार', में देखा जा सकता है।

"झरना" का कवि यौवन के द्वार पर खड़ा जीवन के अनेक झंझावतों को देखता है। झरने की झर-झर बहती स्वच्छन्द गति उसे निर्झर गीतों में बहा ले जाती है। "आँसू" गीतिकाव्य के वैभव से समृद्ध कृति है। कवि पूरी मार्मिकता से अपने अन्तरस की पीड़ा को गीतों के स्वर में पिरो देता है। कवि की व्यक्तिगत वेदना समस्त मानव जाति की वेदना बन जाती है--

इस व्यथित विश्व पतझड़ की
तुल जलती हो मृदु होली
हे अरूणे सदा सुहागिनि
मानवता सिर की रोला।

वास्तव में झरना के गीत जिस प्रणय भावना की ओर संकेत करते हैं उसी का विकास आँसू है। लहर तक आते-आते प्रसाद के प्रगीतों की प्रौढ़ स्वरूप उभरता है। 'बीती विभावरी जाग री' में तो संगीत ही लहरियाँ ही बिछलती चलती हैं। इसी प्रकार "मेरी आँखों की पुतली में, तू बन कर प्राण समा जा रे", "उस दिन जब जीवन के पथ में, छिन्न पात्र ले कम्पित कर में", "उठ-उठ री लघु-लघु लोल लहर" तथा "निधरक तूने ठुकराया तब, मेरी टूटी प्याली को", जैसी कई कविताएँ इस संगीतमयी अनुभूति को अत्यंत प्रभावी ढंग से प्रकट करती हैं।

प्रसाद की गीत-सृष्टि की आरंभिक स्थिति किंचित शिथिल और मन्थर है। झरना के गीतों में अनुभूति की प्रवणता तो है किन्तु उसका प्रकाशन असाधारण नहीं बन पाता। जबकि 'लहर' और 'आँसू' में मनोरम कल्पना तथा प्रौढ़ अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। काव्य और दर्शन का अद्भुत समन्वय लहर के गीतों की प्रमुख विशेषता है। आख्यानक गीतों में भी सौन्दर्य का मादक वातावरण जीवित रखने का प्रयास कवि ने किया है। झरना में कवि किरण को सम्बोधित करता है, तो भी प्रेम और सौन्दर्य की सरस भावना गीति में ढल जाती है--

धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश, मधुर मुरली सी फिर भी मौन,
किसी अज्ञात विश्व की विकल, वेदना दूती सी तुम कौन।

प्रसाद के गीतों में प्रणय के विभिन्न व्यापार रूपायित होते हैं तो स्वस्थ जीवन दर्शन की नियोजना भी होती है। अपने गीतों में वे करुणा और मधु का जीवन घोल भर कर समग्र मानवता को प्रदान करते हैं। "भुनती वसुधा", "तपते नग, दुखिया है सारा अग जग" जैसी अनुभूतियाँ कवि का मधु-रस वितरित करने की प्रेरणा देती है। संगीत, आत्माभिव्यक्ति अन्विति, भावावेग, रसाभिव्यक्ति तथा गागर में सागर भरने का गुण सभी कुछ प्रसाद के गीतों में मिलता है। कभी मधुप गुनगुना कर अपनी गीतात्मक कहानी सुना जाता है तो कभी "आलिंगन में आते-आते मुस्करा कर भाग जाने वाले सुख की वेदना" मुखर हो उठती है। प्रसाद के गीति सौन्दर्य को उनके नाट्य गीतों में भी देखा जा सकता है। वहां भी नाटककार प्रसाद पर उनका गीतिकार रूप प्रबल हो उठता है और वे "भरा नैनों में मन में रूप, किसी छलिया का अमल अनूप", "तुम कनक किरण के अन्तराल में लुक छिपकर चलते हो क्यों?", "हिमाद्रि तुंग श्रृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती" तथा "अरूण यह मधुमय देश हमारा" जैसे कितने ही मर्मस्पर्शी गीतों का सृजन करते चलते हैं। अतः कह सकते हैं कि प्रसाद की संगीत चेतना का वैशिष्ट्य असाधारण गीतों की सृष्टि करवाता है और भावावेग का मिश्रण उन्हें उत्कृष्ट रूप प्रदान करता है।

20.5.5 रहस्य एवं दर्शन

अन्वेषण और प्रणय निवेदन ही रहस्यवाद है तथा जीवन संबंधी तत्व चिन्तन ही सामान्यतः दर्शन कहलाता है। प्रसाद की सम्पूर्ण साधना की सिद्धि "भूमा का सुख" है। 'मैं' और 'मेरा' के संकुचित स्वार्थ के दायरे से दूर आनन्दमयी स्थिति तक पहुँचने का प्रयास ही शिवोपासक प्रसाद का प्रेम रहा है। जीवन के कठिन से कठिन पथ में भी हंसकर संघर्ष करना, मलिनता पर विजय पा-- और जीवन को सुन्दरतम बनाना ही इस महाकवि का जीवन संदेश कहा जा सकता है। मूलतः प्रसाद तत्वदर्शी थे और इसीलिए शैव, बौद्ध, शाक्त, वैष्णव तथा गांधी दर्शन के तत्वों को वे अपने काव्य में उजागर करते हैं। वेद, उपनिषद और पुराणों की दार्शनिक प्रणालियों का अवगाहन वे करते हैं तो पाश्चात्य दार्शनिक अवधारणाओं से भी अनभिज्ञ नहीं रहते। कामायनी में प्रसाद वैदिक एकेश्वरवाद की परम-शक्ति का सन्धान करते हुए नत-शिर उसी रहस्यमयी सत्ता का आदेश मानते जान पड़ते हैं--

सिर नीचा कर किसकी सत्ता
सब करते स्वीकार यहाँ
सदा मौन हो प्रवचन करते
जिसका वह अस्तित्व कहाँ?

वेदों में प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से ईश्वरीय सत्ता की प्रतीति करायी गयी है। इसी दिव्य अनुभूति की झलक प्रसाद काव्य में जगह-जगह मिलती है। ईश्वर की अवर्णनीय और रहस्यपूर्ण सत्ता समस्त भौतिक जगत में भी परिव्याप्त है, जिसका अनुभव तो होता है पर दर्शन नहीं--

"हे अनन्त रमणीय कौन तुम? यह मैं कैसे कह सकता।"

प्रसाद, छायावाद के ऐसे कवि हैं जिन पर शैव-दर्शन का अत्यंत गहरा और गम्भीर प्रभाव है। यों प्रसाद की ब्रह्म, जीव, आत्मा विषयक धारणाएं उपनिषदों के ब्रह्मवाद और अद्वैतवाद पर ही आधारित है पर उनकी इस अद्वैतवादी धारणा पर भी उनके सामरस्य सिद्धांत की अपेक्षा शैव दर्शन का प्रभाव अधिक है। इनमें भी काश्मीरी प्रत्यभिज्ञा दर्शन का प्रसाद जी पर विशेष प्रभाव

है। इस दर्शन के अनुसार शिव (कल्याण) ही एक-मात्र तत्व है और शेष सभी कुछ इसी से अभिव्यक्त है। यही शिव आत्म तत्व या चैतन्य स्वरूप है। यह शिव जड़-जगत सभी में विद्यमान है। परम शिव ही पूर्ण आनन्द स्वरूप है– "लीला का स्पन्दित आह्लाद वह प्रभापुंज चिद्मय प्रसाद"। 'श्रद्धा' कामायनी में यही पराशक्ति बनकर उभरती है। मनु को शिवलोक ले जाने वाली शक्ति भी श्रद्धा ही है। कामायनी में समरसता सिद्धान्त का प्रतिपादन भी अद्वैत सिद्धान्त पर ही आधारित है। इच्छा, कर्म और ज्ञान का सामरस्य ही पूर्णता दिलवाता है–

> ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न है
> इच्छा क्या पूरी हो मन की
> एक दूसरे से न मिल सकें
> यह विडम्बना है जीवन की।

प्रसाद का आनन्दवाद भी शैवागम से ही लिया गया है। कामायनी का साध्य भी यही है। श्रद्धा और इड़ा का समन्वय अपरिहार्य है। प्रसाद ने प्रेम-पथिक में प्रेम का पवित्र और आध्यात्मिक स्वरूप उपस्थित करते हुए पाश्चात्य दर्शन की विचारधारा को भी स्वीकारा है– "किंतु पहुँचना उस सीमा तक, जिसके आगे राह नहीं" जैसी पंक्तियों में ऐसा देखा जा सकता है।

परम सत्ता में प्रसाद जी का पूरा विश्वास है। वह सर्वव्यापी है, नाना रूपों में विद्यमान है। अनन्त, सर्वशक्तिमान तथा असीम है। तभी वे कहते हैं–"हे विराट। हे विश्वदेव। तुम, कुछ हो ऐसा होता भान"।

यही नहीं "आँसू", "लहर" और "झरना" आदि काव्य कृतियों में भी कवि की एक विशिष्ट विचार-दृष्टि का भान होता है। "पागल रे वह मिलता है कब, उसको तो देते ही है सब" कहकर ये व्यक्ति को देने की सीख देते हैं। आनन्द की स्थिति वही है जहाँ समस्त सुख-दुःख मिल कर जीवन को सौन्दर्य प्रदान करते हैं। इसी प्रकार "अरी वरूणा की शांत कछार, तपस्वी को विराग प्यार" जैसी कविताओं में बौद्ध दर्शन प्रभावी हो जाता है। कभी वसुधा चरण चिह्नों सी बन कर यहीं पड़ी रह जावेगी जैसी तात्विक उक्तियों से वे उपनिषदों के विचार प्रसार का दायित्व निभाते हैं।

यों प्रसाद के दर्शन और रहस्यवादी चेतना पर अत्यंत विस्तार से चर्चा की जा सकती है किन्तु यहाँ निष्कर्षतः इतना ही कहना पर्याप्त है कि कवि का ध्येय मन की स्वाभाविक वृत्तियों का चित्रण करते हुए उन्हें अन्तर्मुखी बनाना और जीवन की समस्त जड़ता का अंत कर उसे आनन्दित करना है–

> एक तुम यह विस्तृत भूखंड
> प्रकृति वैभव से भरा अमंद।
> कर्म का भोग भोग का कर्म
> यही जड़ का चेतन आनन्द।

जीवन का मूल ही "श्रद्धा" है। श्रद्धा के अभाव में ही विषमता जन्म लेती है। श्रद्धा से ही प्रेम और प्रेम से ही आनन्द मिलता है। कर्म के अभाव में जड़ता और निराशा छाती है। विरोधी शक्तियों का सामरस्य कल्याणकारी सिद्ध होता है। इससे भी आनन्द मिलता है। अतः समस्त जगत को अपनाकर अपने सुख को विस्तृत करने का यह दर्शन निश्चित ही महान है–

> औरों को हंसते देखो मनु, हँसो और सुख पाओ
> अपने सुख को विस्तृत कर लो, जग को सुखी बनाओ।

बोध प्रश्न 2

1 प्रसाद-साहित्य की मूल-चेतना को स्पष्ट करने वाली प्रमुख काव्य-पंक्तियाँ कौन सी हैं?

....

....

....

....

2 प्रसाद की राष्ट्रीय चेतना पर उदाहरण सहित आठ पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

3 प्रसाद की प्रेम व्यंजना पर पाँच-छह पंक्तियाँ लिखिए।

4 प्रसाद प्रकृति का मानकीकरण करने वाले अन्यतम-प्रतिभा के कवि हैं। उदाहरण सहित आठ-दस पंक्तियाँ लिखिए।

5. प्रसाद की नारी भावना का सौंदर्य उनकी उदात्त सौंदर्य दृष्टि का सूचक है। सौदाहरण आठ पंक्तियों में स्पष्ट करें।

6 प्रसाद की गीति योजना का सौन्दर्य अनुपम, अद्भुत एवं अप्रतिम है। आठ पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

7 प्रसाद का दर्शन विषय को सम बनाकर कल्याण-पथ पर ले जाने वाला समरसता का दर्शन है। सौदाहरण आठ-दस पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

8 प्रसाद की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक चेतना पर आठ पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

20.6 प्रसाद काव्य : शिल्प-विधान

महान कवियों का कला और शिल्प पक्ष भी उतना ही प्रौढ़ तथा सुगठित होता है जितना उसका काव्य। वास्तव में भावों और विचारों का प्रतिपादन कौशल ही कवि की अभिव्यंजना शक्ति का परिचय बनता है। भावों को वहन करने वाली भाषा तथा शैली कवि के भावावेग के अनुरूप ही ढलते चले जाते हैं। महाकवि प्रसाद ने भी काव्य शिल्प अथवा अभिव्यंजना कौशल के भाषा, शैली, कल्पना, प्रतीक, बिम्ब, अलंकार तथा छंद आदि सभी विधाओं का अत्यंत कुशलता से निर्वाह किया है। यहाँ हम महाकवि प्रसाद के इसी कौशल का अध्ययन करते हुए अभिव्यंजना कौशल के उपकरणों पर अलग-अलग विचार करेंगे। सर्वप्रथम हम खड़ी बोली को उत्कर्ष शिखर पर पहुँचाने वाले इस महाकवि के भाषिक-कौशल पर दृष्टि डालते हैं। साहित्यिक एवं परिमार्जित भाषा तथा प्रस्तुति की कलात्मक दृष्टि ने जिस महाकवि की एक विशिष्ट पहचान बनाई और जिसके नाम पर युग का नाम रखा गया उसकी विषयानुकूल भाषा तथा भाषिक अंगों का सार्थक प्रयोग कैसे रमणीय एवं प्रभावोत्पादक बनता है, यही अब हम देखेंगे।

20.6.1 भाषा-सौंदर्य

छायावाद के प्रवर्तक तथा हिन्दी काव्य जगत के महाकवि जयशंकर प्रसाद की काव्य भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है। आरंभ में यह सहज और सरल है लेकिन ज्यों-ज्यों प्रसाद का अध्ययन बढ़ता गया और भावों में परिपक्वता तथा प्रौढ़ता आती गई त्यों-त्यों उनकी भाषा गम्भीर और परिष्कृत भी होती गई। मनोभावों के द्वन्द्व चित्रित करने तथा गम्भीर विषयों का विवेचन करने के लिए कवि संस्कृत गर्भित भाषा का बाखूबी प्रयोग करता है। संस्कृत तथा वैदिक-पौराणिक साहित्य का गहन अध्ययन कवि को तत्सम शब्दावली की ओर उन्मुख करता है। एक-एक शब्द नगीने की भाँति जड़ा हुआ है और इसी से एक विशिष्ट तथा अद्वितीय भाषा का निर्माण किया गया है। भावों और विचारों का सहज-अनुगमन करने वाली यह भाषा गति और क्रम के अनुसार ही बदलती, बहती और ढलती है। सूत्र भरे वाक्यों और संगीतमय गीतों में एक अद्भुत उन्माद है और यही उसका व्यावहारिक पक्ष है।

प्रसाद ने अपने प्रारंभिक साहित्य सृजन में ब्रजभाषा का भी अत्यंत आधिकारित प्रयोग किया किंतु बाद में समय की अपेक्षा को महसूस करते हुए प्रसाद ने सँधि समाज युक्त खड़ी बोली को अपनाया। समूचे भारतीय समाज के स्वच्छन्दतावादी दौर से जुड़ी प्रसाद की इस भाषा पर रवीन्द्रनाथ टैगोर के पद-चयन की झलक भी है तो परोक्षतः गुजराती और मराठी के स्वच्छन्दतावादी कवियों के साथ साधर्म्य भी। प्रसाद की भाषा में 'बीती विभावरी जाग री', 'अरे कहीं देखा है तुमने, मुझे प्यार करने वालों को' तथा 'उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊँ मधुर चाँदनी रातों की' जैसी पंक्तियाँ ही 'माधुर्य गुण' का उदाहरण नहीं। 'आँसू' और 'कामायनी' के भी अनेकों उदाहरण देखे जा सकते हैं। चित्त को स्फूर्ति से उत्तेजित करने की विशेषता 'ओज गुण' की है। प्रसाद ने ओज गुण सम्पन्न भावों को भी कविता की डोर में कुशलता से पिरोया है।

ऊर्जस्वित रक्त और उमंग भरा मन था
जिन युवकों के मणिबन्धों में अबन्ध बल
इतना भरा था
जो उलटता शताध्वनियों को
गोले जिनके थे गेंद
अग्निमयी क्रीड़ा थी।

इसी प्रकार "हिमाद्रि तुंग श्रृंग से" जैसी कविता भी देखी जा सकती है। "मेरी आँखों की पुतली में तू बनकर प्राण समा जा रे।" जैसी पंक्तियों में 'प्रसाद गुण' भी देखा जा सकता है।

वास्तव में प्रसाद की भाषा श्रम और साधना की भाषा है। ब्रजभाषा की ललित, मधुर और रस सिक्तता भरी प्रकृति की प्रतिस्पर्धा में प्रयुक्त इस भाषा को सुन्दर एवं स्वीकृत काव्य भाषा बनाने का श्रेय प्रसाद तथा अन्य छायावादी कवियों को ही जाता है। छायावाद से पूर्व खड़ी बोली अपना स्थान बनाने तो लगी थी किन्तु सौन्दर्य, सरसता, सुकुमारता, अर्थव्यंजकता तथा ध्वन्यात्मकता आदि गुणों से खड़ी बोली को समृद्ध करने का श्रेय छायावादी कवियों को, और विशेषतः प्रसाद को ही जाता है। आगे चलकर चारूता और कोमलता के गुणों से पंत जी ने इस भाषा को अपार समृद्धी दे कर सुसज्जित किया।

प्रसाद ने अपनी भाषा में तद्भव, देशज और ग्रामीण शब्दों का प्रयोग लगभग न के बराबर किया है। वे तो भाषा को कलात्मक और आभिजात्य आदि प्रवृत्तियों से समृद्ध करते रहे। प्रसाद ने काव्य-माधुर्य के लिए नए-नए शब्द भी गढ़े। उनमें चमक भी पैदा की। गढ़-घिस कर उन्हें भावों के अनुकूल ढाला। स्वपनिल, स्वर्णिम, निधरक, मुस्कया तन्द्रिल, उर्मिल जैसे शब्द इसी का प्रमाण हैं। सन्धि-समास आदि नियमों की अवहेलना भी आवश्यकतानुसार की है। रोमाण्टिक कवियों के प्रभाव स्वरूप अंग्रेजी शब्दों के आधार पर नए हिन्दी शब्द भी तैयार किए— भग्न-हृदय (ब्रोकन हार्ट), स्वर्गीय प्रकाश (हेविनली लाइट) तथा स्वर्णिम स्वप्न (गोल्डन ड्रीम) जैसे प्रयोग छायावाद में जगह-जगह देखे जा सकते हैं।

प्रसाद की भाषा में शब्द की तीनों शक्तियों का प्रयोग भी सराहनीय है। 'मधुर माधवी सन्धया में जब रागारूण रवि होता अस्त' में अभिद्या देखी जा सकती है। **"गोले जिसके थे गेंद, अग्निमयी क्रीड़ा थी", "अरी रण रंगिनी, सिक्खों के शौर्य भरे जीवन की संगिनी", "सो रहा पंचनद आज उसी शोक से", "नतमस्तक हुआ आज कलिंग" तथा "रानी तुम बन्दिनी हो मेरी प्रार्थनाओं में"**— जैसे कई उदाहरण दिए जा सकते हैं जिनमें 'लक्षणा शक्ति' मुखरित होती है। मोटे अक्षरों में लिखित शब्द यहां मुख्यार्थ में बाधा डाल किसी अन्य अर्थ का संकेत कर रहे हैं। इसी तरह अभिद्या और लक्षणा से भी आगे चलकर जो अभिप्राय स्पष्ट हो वहाँ 'व्यंजना शक्ति' होती है। **'और आकाश को पकड़ने की आशा में, हाथ ऊँचा किये सिर दे दिया अतल'** में जैसी पंक्तियों में इसे देखा जा सकता है।

प्रसाद के गीता में वाक् वैदग्ध्यपूर्ण उक्तियों के माध्यम से वक्रता के भी सुंदर उदाहरण प्रस्तुत हुए हैं। सीधी सरल उक्तियों में वक्रोक्ति एक विशेष अर्थ भर देती है। प्रसाद इस कला में अत्यंत निपुण हैं—"तपस्वी के विराग की प्यार" तथा "दूध भरी दूध सी दुलार भरी माँ की गोद" आदि पंक्तियों में प्रसाद जी की यह कलात्मकता भी देखी जा सकती है।

प्रसाद काव्य की भाषा का एक अन्य वैशिष्ट्य है 'वर्ण-संगीत' का प्रभावी प्रयोग। वर्ण-संगीत प्रसाद जी के प्रगीतों का प्राण तत्व है। "खग कुल कुल कुल सा बोल रहा", "उठ-उठ री लघु-लघु लोल लहर" जैसे कई प्रयोग इसका प्रमाण हैं। प्रसाद जी ने अपने काव्य में मुहावरे लोकोक्तियों का प्रयोग बहुत कम किया है। किन्तु फिर भी यह काव्य इनके सौन्दर्य से वंचित नहीं। "कौड़ी के मोल बेचना", "आकाश को पकड़ना", "जीवन का दाँव हारना", "डोरी से ऐंठना" आदि मुहावरों का प्रयोग दृष्टव्य है—

कौडी के मोल बेचा जीवन का मणि कोष
और **आकाश को पकड़ने** की आशा में
हार बैठे जीवन का दाँव, जीतते जिसको मर कर वीर।
और निरूपाय मैं तो **ऐंठ उठी डोरी सी।**

प्रसाद जी की भाषा में कुछ सृजनात्मक अशुद्धियाँ या दोष देखे जा सकते हैं किन्तु यह स्पष्ट होना चाहिए कि ये दोष अनायास अथवा अनजाने में नहीं आते। सृजन और भावों का आवेग भाषा के स्वरूप को इस कदर बदल देता है कि लय और गति तथा संगीत और माधुर्य भाषिक नियमों पर हावी हो जाते हैं। बहुत सी जगह भावान्विति के कारण प्रसाद के वाक्य अधूरे ही जान पड़ते हैं और लिंग संबंधी दोष तो कई दिखाई देते हैं। 'आँख बंद कर लिया सोते', 'काली आँखों की तारा का' तथा 'शिशर कला की शीत स्रोत' आदि ऐसे ही उदाहरण हैं। परन्तु कई स्थानों पर यह दोष हैं नहीं, जान पड़ता है। जैसे, प्रेयमी को प्रसाद पुरुषवाचक सम्बोधन से संबोधित करते हैं— "कौन हो तुम वसन्त के दूत" या "फिर कह दोगे पहचानो तो मैं हूँ कौन बताओ तो" आदि प्रयोगों में ऐसा देखा जा सकता है। पर स्पष्ट हो कि ये प्रयोग दोष नहीं। ये प्रयोग तो स्व-पर की भावना से ऊपर उठकर प्रेयसी को एक प्राणी मात्र समझकर किये गए प्रयोग हैं। इन्हें दोष नहीं कहा जा सकता। कहीं-कहीं अस्पष्टता-दोष अवश्य ही देखा जाता है, किन्तु वे सब इस प्राणवान काव्य भंडार के समक्ष नगण्य ही कहे जा सकते हैं। कुल मिलाकर प्रसाद की काव्य भाषा हिन्दी साहित्य की गरिमा मंडित भाषा है। शक्तिमयी तथा प्राणवान भाषा का ऐसा दूसरा उदाहरण छायावाद से बाहर भी कहीं नहीं है।

20.6.2 शैलीगत नवीनता

प्रसाद की शैली प्रसादत्व से मंडित एक चिन्तक कवि की अपूर्व-शैली है। अभिजात-गरिमा से समृद्ध कवि की शैली में संगीत और लय का सामंज्जस्य है। लालित्य और वर्णों की भास्वरता तथा पदों के अनुसरण में मिलने वाली हल्की मिठास काव्य में एक मंजुल गूँज पैदा करते हैं। उनकी शैली में निराला की शैली का सा वैविध्य तो नहीं, पर प्रसाद के गम्भीर व्यक्तित्व की छाप इस शैली को एक विशिष्ट पहचान देती है। शश्वत और चिरंतन भावों-विचारों को वहन करने वाली भाषा तथा एक नव्यतम-रूप में ढाल कर प्रस्तुत करने वाली यह सौंदर्यमयी शैली एक 'अमर-संदेश' बनती है। प्रगीत के भावात्मक आवेशों को संगीत की पृष्ठभूमि पर थिरकाना तथा प्रेम पूर्ण-शृंगार के गीतों में उपालम्भ-शैली को समाहित कर मुग्ध कर देना प्रसाद की अन्यतम विशेषता है। यही "निधरक तूने ठुकराया तब" जैसे गीतों में सजीव हो उठी है। इसी प्रकार अन्योकित-शैली, अनुनयात्मक-शैली को भी क्रमशः "उठ-उठ री लघु-लघु लोल लहर" और "मेरी आँखों की पुतली में तू बन कर प्राण समा जा रे" में देखा जा सकता है। "अरी वरूणा की शान्त कछार" जैसी पंक्तियों में वर्णनात्मक-शैली है तो "शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण", "पेशोला की प्रतिध्वनि" और "प्रलय की छाया" आदि में आख्यानक शैली के उदाहरण भी मौजूद हैं। "मधुप गुनगुना कर कह जाता, कौन कहानी यह अपनी" कविता में आत्मकथात्मक-शैली के दर्शन भी किए जा सकते हैं।

प्रसाद ने छोटे और लम्बे-दोनों प्रकार के गीत लिखे हैं। "टेक" की पंक्ति अपेक्षानुसार छोटी-बड़ी होकर गीत के सौन्दर्य में वृद्धि करती है। प्रसाद जी की "चतुर्दशपदी" का सुंदर प्रयोग भी शैली में चार-चाँद लगाता है। "निज अलकों के अन्धकार में तुम कैसे छिप पाओगे" इसका सुंदर उदाहरण है। अतः कह सकते हैं कि पदों में गम्भीर भाव भरकर संगीत तथा लय का विधान करना प्रसाद जी की शैली की मुख्य विशेषता है। देश-प्रेम की भावना से प्रभावित होकर वे वीर-रस भरी ओजमयी शैली अपनाकर मनमोहक शब्दचित्र बना देते हैं। उनका काव्य मुक्तक काव्य, प्रबन्ध काव्य, गीति काव्य, चम्पू काव्य और खण्ड-काव्य आदि कई रूपों में मिलता है। "लहर" और "झरना" गहतिकाव्य हैं तो "कामायंनी प्रबन्धकाव्य" "करुणालय" काव्य-रूपक है, "उर्वशी चम्पू काव्य, तो "आँसू" खण्ड काव्य है। "प्रेम-पथिक" को भी लघु खण्ड काव्य कहा जा सकता है। अतः कह सकते हैं कि शृंगार, वीर, करुण, शान्त तथा वात्सल्य आदि के सुन्दर उदाहरणों से समृद्ध इस रसवादी कवि का समग्र काव्य चिन्ता, लज्जा, निर्वेद तथा काम आदि अमूर्त भावनाओं को मूर्त करने वाला महान एवं अद्वितीय शैली का काव्य है।

20.6.3 प्रतीक विधान

काव्य के अभिप्रेपित अर्थ को घोपित करने के लिए जो माध्यम बनते हैं वे प्रतीक कहलाते हैं। ये प्रतीक प्रकृति, संस्कृति समाज, इतिहास तथा लोकानुभवों से किए जाते हैं। प्रसाद ने भी काव्य-सौन्दर्य की श्री वृद्धि के लिए बहुत से प्रतीकों का आश्रय लिया। संगीत कला के वीणा,

झंकार, तार, प्रभाती, भैरवी मूर्च्छना, विहाग तथा वंशी जैसे प्रतीक यहाँ हैं तो चित्रकला के चित्र, रंग, रेखा चितेरा, तूलिका आदि प्रतीक भी उपलब्ध हैं। मूर्तिकला के मूर्ति, मूर्तिकार तथा पाषाण आदि प्रतीक भी देखे जा सकते हैं। प्रकृति के फूल, काँटा, उषा, संध्या, चाँद, निशा, कामधेनु, कल्पवृक्ष, चातक, घन, दीपक आदि सैकड़ों प्रतीक भी मिलते हैं। अतः प्रसाद काव्य में सर्वभौमिक, देहागत, परम्परागत, वैभक्तिक, युगीन तथा भावात्मक आदि सभी प्रतीकों के उदाहरण देखे जा सकते हैं। "आँसू" में प्रसाद के तम, प्रकाश नवज्योति तथा मंजुल-मोती जैसे प्रतीक जीवन्त भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति करते हैं।

फिर तम प्रकाश झगड़े में
नव ज्योति विजमिनी होती
हँसता यह विश्व हमारा
बरसाता मंजुल मोती।

इसी प्रकार "घन में सुन्दर बिजली सी, बिजली में चपल चमक सी", "सूखी-सी फुलवारी में, आये तुम इस क्यारी में" प्रयोग भी द्रष्टव्य हैं जहाँ प्रतीक मुखरित हैं। "झरना" का एक उदाहरण देखिए जहाँ मलयानिक "शीतलतम" उजड़ी क्यारी (शुष्क-जीवन) तथा गुलाब (हृदय) आदि प्रतीक प्रयुक्त हैं—

मलयानिल की तरह कभी आ
गले लगोगे तुम मेरे।
फिर विकसेगी उजड़ी क्यारी,
क्या गुलाब की यह मेरे।।

प्रसाद के तो 'आँसू' और 'कामायनी' प्रतीकों की भाषा में ही लिखे गए अन्यतम ग्रंथ है। "इस करुणा कलित हृदय में; अब विकल रागिनी बजती", "पतझड़ था झाड़ खड़े थे, सूखे से फुलवारी में", जैसी पंक्तियों में रागिनी (व्यथा के स्वर), पतझड़ (शुष्कता) और फुलवारी (हृदय) जैसी प्रतीक देखे जा सकते हैं। इसी तरह झंझा, बिजली, नीरद माला, मुरली, स्फुल्लिंग, माधवी कुंज-छाया आदि प्रतीक भी दृष्टव्य हैं। कलियाँ सम्मोहन हैं, काँटे दुख हैं, आँधी हृदय की क्षुब्ध स्थिति है। प्रसाद की इस विपुल प्रतीक योजना ने मनोदशाओं का बहुत सुंदर ढंग से चित्रण किया है। "लहर" में भी प्राकृतिक प्रतीकों तथा प्रतीकात्मक अप्रस्तुतों का प्रचुर प्रयोग है। "करुणा की नव अंगड़ाई सी", "तू भूल न री पंकज बंन में", "उठ-उठ री लघु-लघु लोल लहर" आदि कितने ही ऐसे प्रयोग हैं। कामायनी में तो प्रतीकों का प्रौढ़तम रूप ही देखा जा सकता है, जहाँ पात्र, सर्ग तथा कथा-क्रम भी प्रतीकात्मक हैं। मनु (मन या मनोमय कोश का जीव), श्रद्धा (हृदय), इड़ा (बुद्धि), मानव (नवमानव), देवगण (इन्द्रियाँ), त्रिलोक (भाव, कर्म और ज्ञानलोक) तथा कैलाश (आनन्दमय कोश) आदि इसी के उदाहरण हैं। अतः स्पष्ट है कि प्रसाद की प्रतीक योजना कवि के चिंतन एवं भाव व्यापार की कलात्मक पहचान बनती है।

20.6.4 बिम्ब विधान

काव्य सौन्दर्य के निर्धारक तत्वों में बिम्ब की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अंग्रेजी के "इमेज" शब्द का पर्याय है बिम्ब। इसका अर्थ है किसी वस्तु या पदार्थ का मनश्चित्र प्रस्तुत करना। इसे भावगर्भित शब्द चित्र भी कह सकते हैं। छायावाद में इसे चित्र विधान कहा गया है। अमूर्त को मूर्त करने की इस कला में प्रसाद बहुत निपुण हैं। भावों को स्थापित करने के लिए चित्रभाषा का कथात्मक प्रयोग करने वाले महाकवि प्रसाद ने बहुत से बिम्ब तैयार किए जिनमें उनकी स्वानुभूति, संस्कार, अध्ययन तथा जीवनानुभवों की स्पष्ट झलक मिलती है। इन बिम्बों में शब्द बिम्ब भी हैं, वर्ण बिम्ब भी है और व्यंजन प्रवण सामाजिक बिम्ब भी। अमूर्त को मूर्त बनाने की कथात्मक उपलब्धि प्रसाद के "कामायनी" जैसे महाकाव्य में सहज ही हो जाती है। "लज्जा" जैसे भाव का अद्भुत मूर्तिकरण देखिए :

कोमल किसलय के अंचल में
नन्हीं कलिका ज्यों छिपती सी,
गोधली के धुमिल पट में,
दीपक के स्वर में दिपती सी।

नीरव निशीथ में लतिका सी,
तुम कौन आ रही हो बढ़ती?
कोमल बाँहें फैलाये सी,
आलिंगन का जादू पढ़ती।

यहीं नहीं प्रसाद के काव्य में ऐंद्रिय बिम्बों को भी प्रचुर मात्रा में उकेरा गया है। रमणीय [illegible]-बिम्ब की छटा "किंजल्क-जाल हैं बिखरे, उड़ता पराग है रूख" में भी बिखर जाती है तो [illegible] काली आँखों में कितनी, यौवन के मद की लाली" जैसी पंक्तियों में वर्ण-सौन्दर्य भी दर्शनीय बन जाता है। प्रसाद के व्यंजनाप्रवण सामासिक बिम्ब का एक उदाहरण देखिए –

संध्या की मिलन प्रतीक्षा
कह चलती कुछ मनमानी
ऊषा की रक्त निराशा
कर देती अन्त कहानी

प्रसाद बिम्बविधान के संदर्भ में छायावादी अन्य तीनों कवियों की तुलना में कम सावधान रहे हैं। किन्तु फिर भी यह बहुविध और पर्याप्त व्यापक गुण बन कर आया है। पंत और निराला के बिम्बों से तुलना तो नहीं हो सकती, किन्तु जहाँ-जहाँ भी काव्य सौन्दर्य की वृद्धि में इनकी आवश्यकता पड़ी है, प्रसाद ने इनका प्रयोग किया है। विराट दृश्यों को प्रस्तुत करने वाले एक उदात्त बिम्ब का दृश्य भी देखा जा सकता है। बिम्बों ने प्रसाद के कलात्मक सौख में अपार श्री वृद्धि की है–

अतलान्त महागम्भीर जलधि
तजकर अपनी मह नियत अवधि
लहरों के भीषण हासों में
आकर खारे उच्छवासों में,
युग-युग की मधुर कामना के
बन्धन को देता जहाँ ढील।

– लहर

20.6.5 अलंकार तथा छंद

छायावादी कवियों ने अलंकारों का प्रयोग काव्य में रमणीयता बनाये रखने के लिए किया है। यह प्रयोग सामास नहीं स्वतः प्रविष्ट हुआ जान पड़ता है। प्रसाद साहित्य में तो अलंकार अतिशयता के फलस्वरूप सहज एवं स्वाभाविक रूप में प्रस्फुटित हुए हैं। उनके काव्य में सादृश्य-मूलक, वैषम्यमूलक तथा मानवीकरण आदि अलंकारों का सहज प्रयोग कई स्थानों पर देखा जा सकता है। सादृश्य मूलक अलंकारों में उपमा, रूपक श्लेष तथा रूपकातिशयोक्ति जैसे कई अलंकारों का सुंदर प्रयोग दृष्टव्य है–

उपमा : i) वसुधा **चरण-चिह्न सी बनकर** यहीं पड़ी रह जावेगी।

ii) करुणा की **नव अंगराई सी,** मलयानिल की परछाईं सी।

iii) उसी **तपस्वी से लम्बे** थे देवदारु दो चार खड़े।

इसी प्रकार "**मस्तक में स्मृति सी छाई**", "जल उठा स्नेह **दीपक सा**" तथा "**बड़वानल की ज्वाला सी**" जैसे कई उदाहरण देखे जा सकते हैं।

रूपक : नील नयन से ढुलकाती हो
ताराओं की पाँत घनी रे।

बीती विभावरी जाग री
अम्बर पनघट में डुबो रही
ताराघट उषा नागरी।

पहले उदाहरण में जीवन को संध्या कहकर नील नयनों को आकाश और अश्रुओं को तारे कहा गया है। दूसरे उदाहरण में उषा को नायिका मानकर अम्बर रूपी पनघट में तारे रूपी घडों को डुबोने का सुंदर रूपक बनाया गया है। इसी प्रकार 'अलबेली-बाहुलता' और '**मानव-जीवन-वेदी**' पर जैसे प्रयोग भी देखे जा सकते हैं।

रूपकातिशयोक्ति : बाँधा था विधु को किसने
इन काली जंजीरों से
मणि वाले फणियों का मुख
क्यों जड़ा हुआ हीरों में?

सन्देह : नायिका की बाँह लता है या सौंदर्य रूपी सरोवर की कोई सुंदर लहर? सन्देह का सुंदर उदाहरण है–

अलबेली बाहुलता या तनु
छवि सर की नव लहरी।

व्यतिरेक : लहरें उठती थीं मानो चूमने को मुझको
और साँस लेता था समीर मुझे छूकर।

इसी तरह "सोने वाले जग कर देखें अपने सुख का सपना" में **वक्रोक्ति** है तो "उठ-उठ री लघु-लघु लोल लहर" में **अनुप्रास, पुनरुक्ति एवं अन्योक्ति** की छटा को एक साथ देखा जा सकता है। "किन्तु दुर्भाग्य पीछा करने में आगे था" या "कल्याणी शीतल ज्वाला" जैसी पंक्तियों में **विरोधाभास** है। "जैसे उस नील निलय में" और "मालती कुंज में जैसे" प्रयोग **उदाहरण अलंकार** के प्रमाण है। "वे कुछ दिन कितने सुंदर थे" में **स्मरण अलंकार** है। "ओ री मानस की गहराई" में मानस के 'हृदय' और 'सागर' अर्थ होने से **श्लेष** है। "उठ-उठ गिर-गिर फिर-फिर आती" में **चित्रालंकार** है। इसी प्रकार प्रसाद ने मूर्त-उपमेयों के लिए अमूर्त-उपमानों की योजना भी की है तो अमूर्त उपमेय के लिए मूर्त उपमान की प्रस्तुति भी द्रष्टव्य है– "जल उठा स्नेह दीपक सा नवनीत हृदय का मेरा"। प्रसाद ने **मानवीकरण** का तो अद्भुत प्रयोग किया है। अनेकों उदाहरण देखे जा सकते हैं। यहाँ एक उदाहरण देकर हम अलंकार प्रसंग की चर्चा समाप्त करेंगे–

पगली हा सम्भाल तो कैसे
 टूट पड़ा तेरा अंचल
देख बिखरती है मणिराजी
 अरी उठा बेसुध चंचल।

अत: स्पष्ट है कि प्रसाद के काव्य में अनिवार्य तथा अभिन्न अंग बने थे तथा अन्य कई अलंकार काव्य-सौन्दर्य में अपार वृद्धि करते हैं। इनसे भावोत्कर्ष, एवं रस-सृष्टि में सहायता ही मिलती है। ये प्रभावी बनते हैं चमत्कारी नहीं।

छंद : प्रसाद ने भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति के लिए विशिष्ट छंदों का प्रयोग किया है। पंत और निराला की तरह वे छंद-विधान में स्वतंत्रता भले ही न लेते हों किन्तु उन्होंने अंग्रेजी के "सानेट" और बंगला के "त्रिपदी" तथा "पयार" नामक छन्दों का भी बाखूबी प्रयोग किया है। स्वच्छन्दता के इस युग में प्रसाद "पेशोला की प्रतिध्वनि" में मुक्त-छन्द का प्रयोग भी करते हैं। पर अधिकांशतः प्रसाद ने नवीन और प्राचीन का सामंजस्य कर संगीत की अभिवृद्धि तथा भाव-प्रवणता के लिए ही छन्दों का चयन किया। कई तरह के छन्दों का प्रयोग उनके प्रगीतों में विद्यमान हैं। "लहर" में 'बाला' 'पीयूष पव' तथा 'श्रृंगारहार' जैसे प्रयोग देखे जा सकते हैं। "महाराणा का महत्व" और "प्रेम-पथिक" में वे अनुकान्त प्रणाली को अपनाते हैं। "आँसू" में तो प्रसाद ने एक नया छन्द ही गढ़ डाला जिसका नाम भी "आँसू" छन्द ही पड़ गया। इसमें 14, 14 के विराम से 28 मात्राएँ हैं। इसका अनुकरण आगे चलकर मराठी साहित्य में भी हुआ। आँसू छन्द प्रसाद को अत्यंत प्रिय था। 'कामायनी' के अंतिम सर्ग "आनन्द" में भी वे इसी छंद का प्रयोग करते हैं–

IIIIS IISS II
समरस थे जड़ या चेतन = 14 मात्राएँ ⎫
सुंदर साकार बना था, = 14 मात्राएँ ⎭ = 28
चेतनता एक विलसती
आनंद अखंड घना था।

प्रसाद ने छंदों के मामले में बहुत जगह पर स्वच्छन्दता भरी दृष्टि का इस्तेमाल किया है। कहीं घनाक्षरी के आधार पर द्वन्द बनाया तो उसका अन्त बदल डाला। प्रसाद ने 'प्लवंगम' नामक छंद के आधार पर अन्तमुक्त प्रयोग भी किये हैं। "कामायनी" में तो प्रसाद ताटंक, पादाकुलक, रूपमाला, सार, रोला और स्वयं प्रसाद द्वारा निर्मित छद–पादाकुलक-पद्धति, ताटंक और गेय आदि का सुंदर प्रयोग किया है। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि प्रसाद का छन्द-विधान उनकी शास्त्रीय एवं मौलिक प्रतिभा का प्रबल प्रमाण है। उनके समग्र काव्य-संसार में इसे देखा जा सकता है।

बोध प्रश्न 3

1 प्रसाद के भाषा-सौन्दर्य को काव्य-गुण तथा शब्द-शक्तियों ने अत्यन्त प्राणवान और सार्थक बनाया है। आठ पंक्तियों में उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

....

2 प्रसाद ने अपने काव्य के लिए कौन-कौन सी शैलियों को अपनाया? पाँच पंक्तियों में लिखिए।

3 प्रसाद ने अपने काव्य को सार्थक प्रतीत विधान से सुसज्जित ही नहीं किया उसे शक्ति भी प्रदान की है। आठ-दस पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

4 प्रसाद के विम्ब-विधान पर पाँच-छह पंक्तियाँ लिखिए।

5 प्रसाद का अलंकार-विधान उनके काव्य का अनिवार्य तथा अभिन्न अंग बन कर आया है। किन्हीं दो अलंकारों के उदाहरण देकर आठ पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए :

6 प्रसाद की काव्य-भाषा में प्रयुक्त मुहावरों में से किन्हीं तीन का उदाहरण सहित आठ पंक्तियों में विवेचन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

20.7 काव्य वाचन तथा संदर्भ सहित व्याख्या

अभी तक आप छायावाद के प्रवर्तक तथा बहुमुखी प्रतिभा से समृद्ध अन्यतम रचनाकार जयशंकर प्रसाद के जीवन, व्यक्तित्व, काव्य स्तर तथा शिल्प विधान का विस्तृत एवं गहन अध्ययन कर चुके हैं। अब आपके पाठ्यक्रम में निर्धारित प्रसाद की तीन कविताएँ दी जा रही हैं। सर्वप्रथम इन कविताओं का गम्भीरता से वाचन कीजिए। उसके बाद इनकी सप्रसंग व्याख्या का अध्ययन कीजिए। सुविधा के लिए कविताओं का सार भी दिया जा रहा है। जिन पद्यांशों की व्याख्या नहीं की गई है, उनकी व्याख्या का प्रयास एवं अभ्यास आपको स्वयं करना है। आइये सबसे पहले काव्य-वाचन करें।

काव्य वाचन 1

बीती विभावरी[1] जाग री।
अम्बर[2] पनघट[3] में डुबो रही—
तारा-घट[4] उषा[5] नागरी[6]।
खग-कुल[7] कुल कुल सा बोल रहा,
किसलय[8] का अंचल डोल रहा,
लो यह लतिका[9] भी भर लाई।
मधु[10] मुकुल नवल रस गागरी।
अधरों[11] में राग अमन्द पिये,
अलकों[12] में मलयज[13] बन्द किये।
तू अब तक सोई है आली[14]।
आँखों में भरे विहाग[15] री।

वाचन 2

ओ रही मानस[16] की गहराई।
तू सुप्त[17], शांत कितनी शीतल।
निर्वात[18] मेघ ज्यों पूरित[19] जल।
नव मुकुर[20] नीलमणि[21] फलक[22] अमल[23]
ओ पारदर्शिका[24] चिर चंचल।
यह विश्व बना है परछाईं।
तेरा विषाद[25] द्रव तरल-तरल
मूर्च्छित न रहे ज्यों पिये गरल[26]
सुख लहर उठी री सरल-सरल
लघु-लघु सुंदर, सुंदर अविरल[27]

---

1. रात्रि 2. आकाश 3. पानी भरने का स्थान.या कुआ 4. तारे रूपी घड़ा 5. प्रातःकालीन वेला 6. नायिका या स्त्री 7. पक्षियों का समूह 8. नये-नये पत्ते 9. बेल 10. शहद 11. होठों 12. बालों या केशों 13. चन्दन की सुगंध 14. सखी 15. वियोग में गाया जाने वाला राग 16. मानसरोवर हृदय 17. सोई हुई 18. बिना वायु के 19. भरे हुए 20. शीशा 21. नीलम या नीला पत्थर 22. सतह, ऊपरी हिस्सा या आसमान 23. मल रहित, स्वच्छ 24. जिसमें उस पार का भी दिखाई दे 25. दुःख 26. विष 27. घना, सटा हुआ, लगातार

तू हँस जीवन की सुघराई[1]
हँस, झिलमिल हो लें तारा गन,
हँस, खिलें कुंज में सकल सुमन,
हँस, बिखरें मधु मरंद[2] के कन,
बन कर संसृति[3] के नव श्रम कन,
सब कह दें वह राका[4] आई।
हँस लें भय शोक प्रेम या रण[5]
हँस ले काला पट ओढ़ मरण[6]
हँस ले जीवन के लघु-लघु क्षण,
देकर निज चुंबन के मधुकण
नाविक[7] अतीत[8] की उतराई।

वाचन 3

हिमाद्रि[9] तुंग[10] श्रृंग[11] से
प्रबुद्ध[12] शुद्ध भारती[13]
स्वयंप्रभा[14] समुज्ज्वला[15]
स्वतन्त्रता पुकारती।
अमर्त्य[16] वीरपुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त[17] पुण्य पंथ है—बढ़े चलो, बढ़े चलो।।
असंख्य कीर्ति-रश्मियाँ[18]
विकीर्ण[19] दिव्य[20] दाह[21] सी।
सपूत मातृभूमि के
रूको न शूर साहसी।
अराति[22] सैन्य-सिन्धु[23] में—सुवाड़वाग्नि[24] से जलो,
प्रवीन हो जयी बनो—बढ़े चलो बढ़े चलो।

कविता-सार 1

"बीती विभावरी जाग री" शीर्षक कविता में महाकवि प्रसाद प्रातःकालीन प्राकृतिक सौन्दर्य के रूपांकन द्वारा युग-परिवेश तथा देशकाल का चित्रण करते हुए राष्ट्रीय चेतना का संदेश देते हैं। उषा अर्थात प्रातःकालीन वेला रूपी सुप्त नायिका को जागरण मंत्र देते हुए कवि कर्त्तव्यरत होने की सूचना देता है। प्रातःकालीन जागरण के इसी चित्र में प्रसाद ने रात्रिगमन तथा नवीन स्फूर्ति युक्त सुबह के आगमन की सूचना दी है। इस कविता में उषा रूपी सुप्त नायिका के माध्यम से कवि समग्र भारत को जगाना और उठाना चाहता है। मानवीकरण और रूपक का सुंदरतम उदाहरण बनी यह कविता एक अद्भुत रूपक प्रस्तुत करती है। सांस्कृतिक जागृति का आह्वान करती प्रसाद की यह कविता प्रकृति, श्रृंगार और राष्ट्रीय जागरण के अर्थों को एक साथ लेकर चलती है।

कविता-सार 2

"ओ री मानस की गहराई" शीर्षक इस कविता में संयम और दर्शन का आधार पाकर अपने निराशा भरे जीवन में कुछ गम्भीरता से विचार करने वाला कवि अपने हृदय को मानसरोवर मानकर उसके गुणों को चित्रित करता है। मानस रूपी इस प्रतीक के माध्यम से प्रसाद अपने मन को शांत, जल युक्त एवं हवा रहित मेघ की तरह शीतल तथा साधना-पथ की पवित्रता से युक्त मानते हैं। प्रसाद का यह मानसरोवर रूपी हृदय यहाँ द्वेष-राग से दूर, संयमी, स्वच्छ, निर्मल और विशाल अम्बर सा रूपायित होता है। जीवन के सभी विषाद इस हृदय की पवित्रता में घुल जाते हैं। प्रियतमा का विछोह अब प्रेरणा बनता है। दुख विस्मृत हो जाते हैं। विष अमृत बनता जाता है। उदात्तता की ओर निरंतर उन्मुख रहने वाला कवि हँसने खिलने को ही जीवन मानने लगता है। इसी में संसार का उज्ज्वलतम पक्ष उभरता है। प्रसाद इस कविता में साहस धारण कर भय शोक और विरह आदि पर प्रेम की विजय का मार्ग प्रशस्त करते हैं। मृत्यु नैया में भी खेलते रहने का संदेश देते हैं। आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख कवि के हृदय में अनेकों गहन एवं गम्भीर भाव

---

1. सुघड़पन, सुंदरता 2. पराग 3. संसार, आवागमन की परंपरा 4. पूर्णिमा की रात 5. संघर्ष, युद्ध 6. मृत्यु 7. मल्लाह, नाव खेने वाला 8. बीता हुआ 9. हिमालय 10. ऊँचा 11. चोटी या शिखर 12. बुद्धिमान 13. वाणी या सरस्वती 14. स्वतः प्रकाशित या तेज युक्त 15. उज्ज्वल प्रकाश युक्त 16. जो मर न सकें अर्थात अमर 17. आलोकित या प्रकाशित 18. यश की किरणें 19. बिखरी हुई 20. अलौकिक 21. ज्योति या प्रकाश 22. शत्रु 23. समुद्र 24. समुद्र में लगने वाली अग्नि

उमड़ते हैं। मानस के अनेकों व्यापार को प्रतीक बनाकर प्रसाद अपने हृदय (मानसरोवर) का तथा उसमें उठने वाले भावों और विचारों का परिचयात्मक विवरण इस कविता में देते हैं।

कविता - सार 3

प्रसाद के बहुचर्चित नाटक "चंद्रगुप्त" से लिये गए इस गीत में नाटक की नायिका अलका अन्य नागरिकों के साथ मिलकर राष्ट्रीय हित एवं रक्षा के प्रति जन-जन को जागरूक करने का कार्य करती है। इस उद्बोधन गीत में कवि समग्र भारतवासियों की लुप्त चेतना को जागृत करता है। प्रसाद उन्हें उनके प्रशस्त एवं कीर्ति-रश्मियों से सुसज्जित अतीत का स्मरण कराते हुए प्रोत्साहित करते हैं। हिमालय पर्वत के सर्वोन्नत शिखर पर विराजित प्रबुद्धता और विवेक की अधिष्ठात्री देवी माँ सरस्वती का स्मरण कराते हुए कवि कर्त्तव्य प्रेरणा देता है। स्वतः प्रकाशित स्वतंत्रता निरंतर पुकार-पुकार कर भारतीयों को वीर-योद्धाओं की अमर सन्तान बनाकर उन्हें दृढ़ संकल्प और कर्त्तव्य निष्ठा की याद दिलाती है। विघ्न बाधाओं को रौंद कर तथा भय को त्याग कर निर्भीकता से इस अत्यंत प्रशस्त मार्ग पर अग्रसर होने की कामना कवि करता है। इसी कर्त्तव्य पक्ष पर विजय हासिल करने से देश-विदेश में जय-गाथाएँ गुंजरित होंगी और यश की किरणें समग्र संसार में फैलेंगी। इस भारत भूमि के शूरवीर सपुत्रों, इन क्षणिक बाधाओं विपदाओं से घबराना उचित नहीं। उठो, बढ़ो और विजय हासिल करो। शत्रुओं के सेना रूपी सागर में कूद कर बढ़वाग्नि से प्रज्ज्वलित हो जाओ। यही कवि प्रसाद की हार्दिक इच्छा है। गुलामी के युग में प्रसाद ने इस स्फूर्ति जागरण एवं स्वतंत्रता बोध के गीत से समग्र भारत में विजय भाव की अदम्य भावना भर स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त किया था।

प्रसंग एवं संदर्भ सहित व्याख्या

कविता 1

बीती विभावरी जाग री .... विहाग री।

प्रसंग एवं संदर्भ : प्रस्तुत कविता छायावाद के प्रमुख आधार स्तम्भ तथा वैविध्यमयी सृजन प्रतिभा के धनी महाकवि जयशंकर प्रसाद की शक्तिमयी लेखनी से सृजित हुई है। प्रसाद जी की अत्यंत प्रसिद्ध काव्य कृति "लहर" से ली गई इस कविता में प्रकृति की मनोरम एवं मनोहारी छटा का छायावादी शैली में अत्यंत प्रभावी अंकन किया गया है। प्रकृति के मानवीकरण का अन्यतम उदाहरण बनने वाली इस कविता में रात्रि के व्यतीत होने और प्रातःकालीन उषा नागरी को जागृत करने का अद्भुत वर्णन किया गया है। प्रकृति, शृंगार और राष्ट्रीय चेतना के अर्थों को एक साथ संजोकर चलने वाली यह कविता कवि प्रसाद की अलौकिक प्रतिभा की परिचायक भी बनती है।

रात्रि के समाप्त होने की वेला पर अम्बर के सभी तारे धीरे-धीरे लुप्त होने लगते हैं और सूर्य की प्रथम रश्मियाँ उषा के आगमन का संदेश देने लगती हैं। चारों ओर एक मोहक एवं मनोहारी वेला होती है। पक्षियों की चहकन, भँवरों की गुंजन, तितलियों की उड़ान, वृक्षों के पत्तों की मधुर ध्वनि और पुष्पों की मीठी मुस्कान सभी प्रकृति की आभा को अलंकृत करते हैं। ऐसे में एक सखी दूसरी सखी से कहती है।

व्याख्या : हे सखि रात्रि बीत चुकी है। तू अब तक सो रही है? रात्रि के सभी व्यापार समाप्त हो रहे हैं। सारा संसार जागने लगा है और तू अभी तक सोई है। उठ। जाग सखि। यह सोने की वेला नहीं। यह तो जागृति का समय है। उषा काल की इस वेला में, देख तारे भी विलीन होने लगे हैं। ऐसा जान पड़ता है जैसे उषा रूपी नायिका (युवति) अम्बर रूपी पनघट में तारे रूपी घड़ों को एक-एक कर डुबोती जा रही है। अर्थात सुबह के इस अवसर पर तारे भी छुपते जा रहे हैं। इसी से ज्ञात होता है कि रात्रि बीत रही है और सवेरा हो रहा है।

प्रातःकालीन इस वेला में पक्षियों के समूह कुला-कुल की ध्वनि से पूरे वातावरण को मोहक बना रहे हैं। चहचहाते इन पक्षियों के स्वर भी जागरण का मंत्र दे रहे हैं। सुबह की मंद शीतल और सुगंधित हवा नव-पल्लवों को हिला-डुला रही है। हवा के हिंडोले में झूलते-खेलते ये पत्ते धरती को हिला-डुला रही है। हवा के हिंडोले में झूलते-खेलते ये पत्ते धरती के लहराते आँचल से जान पड़ रहे हैं। ऐसे में लता पर सुशोभित हो रही पुष्प कलियों की रीति गागर भी मधु और पराग से भर गई है। कलियाँ अपने पूरे यौवन पर आ गई हैं। अतः हे सखि। तुम्हारे रतनार होठों से भरा यह राग क्यों शांत है? तुम्हारे केशों में समायी चन्दन की सुगंध वातावरण में अभी तक विकीर्ण क्यों नहीं हुई? तेरी आँखों में अभी तक वियोग का विहाग राग भरा है। अर्थात तेरे प्रियतम से तेरा संयोग नहीं हुआ और इसीलिए तू होठों का राग एवं केशों की सुगंध संजोए सो रही है। प्रसाद यहाँ सम्पूर्ण सृष्टि में रात्रि की जड़ता के अन्त और नवीन-स्फूर्ति के आगमन का मंत्र बाँटते हैं।

अलसाई और थकी हुई प्रियतमा को जगाना पूरे भारत को जगाना है। गुलामी के अंधकार की रात्रि बीत रही है और स्वतंत्रता के रक्षक अभी तक सो रहे हैं। कवि का यह कहना कि "लो यह सुकुमार लतिका भी अपनी कलिका रूपी गगरिया में नवल मधु के रस कण भर लाई और तुम अभी तक सो रहे हो? उत्साह का संचार कर गुलामी की नींद से जगाना ही है। कवि इस आजादी की प्रात:कालीन वेला के नैसर्गिक सौंदर्य का रसास्वाद करने को प्रोत्साहित कर रहा है। प्रसाद में डूबी और नींद में खोई आत्माओं को जगाने का यह प्रयास सराहनीय है। स्वतंत्रता सूर्य की किरणें, गुलामी के तारों को आभाहीन करती जा रही है। ऐसे सांस्कृतिक जागरण की वेला में सोते रहना कहाँ तक ठीक है? यहाँ समकालीन कवि एवं लेख की सुप्त प्रतिभा को भी जगाना चाहता है।

विशेष

- सुप्त नायिका के चित्र को प्रकृति के माध्यम से व्यक्त कर मानवीकरण का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया गया है।
- अम्बर पनघट में डुबो रही तारा घट उषा नगरी में रूपक अलंकार है।
- अन्तिम पंक्तियों में सोती हुई विरहिणी नायिका का शृंगारिक चित्र प्रस्तुत है।
- खगकुल कुल-कुल सा बोल रहा में स्वाभावोक्ति, धर्मलुप्तोपमा और यमक अलंकार है। (खग कुल-पक्षियों का परिवार या समूह, कुल-कुल ध्वनि)
- प्रगीत-प्रतिभा के अद्भुत उदाहरण बने इस गीत में अन्योक्ति अलंकार भी है।
- प्रसाद और माधुर्य गुण काव्य-सौंदर्य की श्रीवृद्धि कर रहे हैं।
- "अंचल डोल रहा" तथा "अमन्द पिये" आदि शब्दों में लक्षणा शब्दशक्ति है।
- विरह विदग्धा तथा परित्यक्ता नायिका के इस चित्रण को प्रस्तुत करता यह गीत संगीतमय भी है, भावपूर्ण भी है और शिल्पगत सौंदर्य से सम्पन्न भी। सहज, सरल और चित्रात्मक शैली इसकी अपनी एक विशेषता है।

कविता 2

ओ री मानस की .... जीवन की सुघराई।

प्रसंग एवं संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियों .... प्रसाद .... "लहर" से ....।

हृदय रूपी मानसरोवर .... प्रतीक बनाकर .... हृदय में अनेक गम्भीर तथा गहन .... भाव एवं विचार .... शान्त, शीतल, निर्मल .... पारदर्शी .... तारे, पुष्प, प्रकृति आदि का प्रतिबिम्ब मानस में ....। कवि ....।

व्याख्या : मानस हृदय की गहराई बहुत अधिक है। ठीक उसी प्रकार जैसे मानसरोवर की। जिस तरह मानसरोवर में तरह-तरह की लहरें उठती-गिरती और उछलती-कूदती हैं उसी प्रकार इस हृदय में भी अतीत की स्मृतियाँ तथा विविध भावनाएँ सदैव क्रीड़ा करती रहती हैं। प्रसाद अपने हृदय की इसी मन:स्थिति को संबोधित कर कहते हैं कि हे मन की गम्भीरता तू बहुत ही शान्त है। तेरी गहनता जब सुप्त अवस्था में होती है और सभी क्रियाओं से शून्य होती हैं तो अत्यंत शांत एवं शीतल स्थिति में होती है। तेरी यह स्थितप्रज्ञ (सुप्तावस्था) अवस्था समग्र विश्व को भी शीतलता प्रदान कर ताप से मुक्ति दिलाती है। जिस प्रकार जल से आपूरित बादल को हवा भी विदीर्ण नहीं कर सकती उसी प्रकार प्रतिकूल स्थितियों को घात-प्रतिघात भी मेरे इस शीतल-शान्त मन की आर्द्रता के समूह को विचलित नहीं कर सकते।

मेरा यह गाम्भीर्य युक्त हृदय किसी नव्यतम शीशे या नीलमणि के धरातल सा स्वच्छ और निर्मल जान पड़ता है। इसके भीतर से दूर-दूर तक के दृश्यों को देखा जा सकता है। अर्थात पारदर्शी मन नीलमणि फलक के दर्पण के समान दिखाई देता है। सम्पूर्ण विश्व को प्रतिबिम्बित करने वाली मानस की नीली गहराइयों के समान ही भावनाओं के उतार-चढ़ाव से आन्दोलित होती इस मन की गम्भीरता भी निर्मल और स्वच्छ है। दूर अतीत की स्मृतियाँ इसमें स्पष्ट हैं।

कवि के हृदय पर अच्छादित विषाद वैसा ही जान पड़ता है जैसे पूरे मानसरोवर पर जल छाया रहता है। किंतु यह विषाद जल विष का प्रतीक नहीं, अमृत का सूचक है। विषाद की विश्वव्यापी लहर से कवि निष्क्रिय और अकर्मण्य नहीं होना चाहता। इसीलिए इस विषाद में भी वह सुख की छोटी-छोटी लहरों के उठने की गति को समझता और पहचानता है। मानस में उठती जल लहरियों के समान ही हृदय में भी सुख के छोटे-छोटे क्षण आते ही रहते हैं। अत: हे हृदय। तेरी शक्ति का गाम्भीर्य भी आनन्दप्रद ही बना रहे। दु:ख से दु:खी न होकर तू क्षणिक सुख का भी आनन्द ले। तेरी हंसी से ही इस प्रकृति और विश्व को आनन्द तथा सुख की प्राप्ति हो, यह मेरी आकांक्षा है। तुम्हारी हंसी ही संसार की खुशियों के आगमन की सूचना बने।

विशेष

- "निर्वात मेघ ज्यों पूरित जल"– में "धर्मलुप्तोपमा" अलंकार है।
- आकाश के लिए प्रयुक्त "नीलमणि फलक" में "रूपक" अलंकार है।
- तरह-तरह, सरल-सरल, लघु-लघु आदि में वीप्सा है।
- इसी प्रकार छेकानुप्रास, मानवीकरण, पुनरूक्तिप्रकाश आदि अलंकार भी हैं।
- चित्रात्मक शैली है।
- कवि का दर्शन कविता के गाम्भीर्य में ढल रहा है।
- मानवतावादी एवं आनन्द-प्रद दृष्टि प्रधान है।
- भाषा भावों के पूर्णतः अनुकूल है। तत्सम शब्द प्रधान है।
- गीत में 16-16 मात्राएँ हैं और अन्त में दो गुरु हैं।
- छायावादी प्रतीकात्मकता का सफल प्रयोग किया गया है।
- कई लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग सराहनीय है।

टिप्पणी : शेष अंशों की प्रसग एव संदर्भ सहित व्याख्या का प्रयास एवं अभ्यास आप स्वयं कीजिए।

कविता 3

हिमाद्रि तुंग श्रृंग .... बढ़े चलो, बढ़े चलो।

प्रसंग एवं संदर्भ : महाकवि जयशंकर प्रसाद द्वारा नवरचित "चन्द्रगुप्त" नाटक के चतुर्थ सर्ग से .... नायिका अलका यहाँ .... नागरिकों को .... विदेशी आक्रमण के विरुद्ध .... राष्ट्रीय भावना .... स्वतंत्रता की चेतना .... जागृति .... वीरता .... ।

व्याख्या : स्वतंत्रता की पुकार है कि .... हे वीरों की अमर सन्तान .... तुम अपने यश और कीर्ति से .... कर्तव्य का मार्ग .... विघ्नों से न घबराकर .... । तुम वीरों की परम्परा के .... काँटों के पथ पर भी निरंतर अग्रसर .... देश और समाज का कल्याण .... निर्भय, निडर। तुम्हारी वीरता की अमर गाथाएँ .... सम्पूर्ण विश्व म बिखरी हैं और .... यही मार्ग प्रशस्त .... विघ्नों पर विजय .... साहसी .... शूरवीर .... माँ भारती के वीर-अमर पुत्र। माँ भारती की रक्षा .... दायित्व .... । शत्रुओं की सेना रूपी सागर में .... वीरता की बड़वाग्नि बनकर .... नष्ट कर दो। शक्ति, बुद्धि और साहस से विजय का मार्ग .... ।

विशेष

- जागृति गीत है।
- समस्त देशवासियों को अमरता, वीरता एवं कर्मण्यता का पाठ।
- विदेशियों के शासन के प्रति विद्रोह एवं दासता-मुक्ति का स्वर।
- निराश जनता में उत्साह का संचार एवं प्रशस्त अतीत की स्मृति लहरियाँ।
- नागरिकों को कर्तव्य बोध कराया है।
- कीर्ति-रश्मियाँ और सैन्य-सिन्धु आदि में रूपक अलंकार है।
- दाह सी और सुवाडग्नि से में उपमा।
- संस्कृत निष्ठ तत्सम शब्दावली उत्साहवर्द्धक भाव के पूर्णतः अनुकूल है।
- गीत में लय एवं प्रवाह का सुंदर निर्वाह है।

टिप्पणी : इस कविता के प्रसंग, संदर्भ एवं व्याख्या संबंधी पर्याप्त संकेत दे दिये गए हैं। इससे पूर्व कविता का सार भी अत्यंत विस्तार से दिया गया है। अब सप्रसंग व्याख्या का प्रयास एवं अभ्यास आप स्वयं कीजिए।

20.8 मूल्यांकन (प्रसाद का प्रदेय)

इस समग्र विवेचन के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रसाद ने अपने जीवनानुभव तथा अध्ययन को काव्य के माध्यम से प्रस्तुत किया। कल्पना और अनुभूति, इतिहास एवं संस्कृति तथा प्रेम एवं

सौन्दर्य के योग से उन्होंने जिन आदर्शों का निर्माण किया उनमें जीवन-दर्शन को सन्निहित करने का सफल प्रयत्न किया है। "कामायनी" में वे मानव जाति के उत्थान और आनन्द-शिखर की यात्रा का महाव न करते हैं। "आँसू" में प्रसाद व्यक्तिगत प्रेम भावना को एक व्यापक धरातल प्रदान कर विश्व की करुणा को अपनी वेदना में समाहित करते हैं तो लहर में बौद्ध-दर्शन से प्रभावित युग चेतना को सफलतम अभिव्यक्ति देने वाले गीतों का सृजन करते हैं। जीवन को दृढ़ता से अपनी भावना में समन्वित कर अनेकों समस्याओं का समाधान खोजने वाले इस महाकवि ने मानवता के कल्याण का पथ-प्रशस्त किया है। बौद्धिकता, भौतिकवाद तथा विज्ञानवाद की अति से त्रस्त मानवता में श्रद्धा, आस्था, विश्वास और सहृदयता का पावन भाव जागृत करने वाले इस सृजक ने भाव और कला दोनों ही दिशाओं में अपनी बहुमुखी प्रतिभा के वरदान से उपकृत किया है। इस कालजयी महाकवि की देन भारतीय साहित्य के लिए ही नहीं समग्र विश्व के लिए एक प्रेरणा बनती है। महाकवि प्रसाद छायावाद के प्रवर्तक ही नहीं विश्व साहित्य सृजन के पुण्य पथ को प्रशस्त करने वाले अप्रतिम, अद्वितीय तथा अलौकिक प्रतिभा के विश्व कवि बन जाते हैं।

20.9 सारांश

- इस इकाई के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि अतीत के झरोखों से वर्तमान की स्थितियों एवं समस्याओं को सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक डोर में पिरोकर स्वच्छन्द रूप से प्रतिष्ठित करने वाले प्रसाद अलौकिक प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। उदारता तथा धर्मनिष्ठता जैसे गुणों से सम्पन्न स्वस्थ मन मस्तिष्क और गम्भीर विचारों वाले इस महाकवि ने विषम परिस्थितियों और चुनौती भरे वातावरण में राह खोजने और समाधान ढूंढने का पाठ पढ़ाया।
- कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी तथा निबन्ध आदि गद्य विधाओं के माध्यम से प्रसाद ने सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं राष्ट्रीय चेतना का प्रसार कर वैविध्यमयी पृष्ठभूमि में कल्याणकारी साहित्य का सृजन किया। युगीन समस्याओं को इनके परिप्रेक्ष्य में उजागर कर कवि ने कल्याण का पथ प्रशस्त किया है।
- प्रसाद की कविता में इतिहास, संस्कृति, पुराण, उपनिषद तथा वेदों आदि के कल्याणकारी निष्कर्ष को संजोया गया। उसमें राष्ट्रीय चेतना का उद्बोधन गान है, प्रेम की मर्म भरी व्यंजना तथा प्रकृति और नारी सौन्दर्य के प्रति कवि की नव्यतम दृष्टि एवं अनुपम प्रतिभा का प्रामाणिक लेखा-जोखा है। प्रसाद की गीति योजना परक सौंदर्य दृष्टि ने आत्मोद्गारों की संगीतमय अभिव्यक्ति से भी काव्य में मार्मिक प्रभाव पैदा किया है।
- कवि का काव्य-संसार ब्रह्म के प्रति प्रणय और उसकी खोज यात्रा का रहस्यात्मक अभिव्यक्ति से सुसज्जित होता है तो जीवन और जग संबंधी चिन्तन परम गम्भीर दर्शन में शैव, बौद्ध, शाक्त, वैष्णव एवं गांधी दर्शन आदि का सम्मिश्रण कर कल्याण एवं आनन्द का मार्ग भी दिखाता है।
- प्रसाद काव्य शिल्प के भाषा, शैली, प्रतीक, बिम्ब एवं अलंकार छंद आदि उपकरणों के कलात्मक प्रयोग से अपने अभिव्यंजना कौशल का ही परिचय नहीं देते, खड़ी बोली को उत्कर्ष शिखर पर पहुँचाकर अपनी मौलिक कलात्मक प्रतिभा से अभिव्यक्त पक्ष को सार्थक, समर्थ, रमणीय एवं प्रभावोत्पादक भी बना देते हैं।

20.10 शब्दावली

मानवतावादी दृष्टि : वह दृष्टि जिसमें मनुष्य के हित और कल्याण को महत्व दिया जाता है।

सार्वभौमिक दृष्टि : वह दृष्टि जो पृथ्वी के हर हिस्से को ध्यान में रख कर चले।

शैवमतावलम्बी : शैव दर्शन के मत पर आधारित रहने वाले।

अनुप्राणित : प्रेरित या अनुकरण करने वाले।

चतुर्दिक उन्नति : चारों दिशाओं में उन्नति पाना।

आत्मोत्सर्ग : आत्मा का उत्सर्ग अर्थात उन्नत होना।

आन्तर सौंदर्य : भीतर का या आत्मा का सौंदर्य।

आह्लादकारी रूप : हार्दिक खुशी देने वाला रूप।

एकेश्वरवाद : एक ही ईश्वर को मानने वाला मत।

20.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

प्रसाद का काव्य, डॉ. प्रेमशंकर, भारती भंडार, सन् 1986

छायावाद के आधार स्तम्भ, सम्पादक : राम जी पाण्डेय, लिपि प्रकाशन सन् 1971

प्रसाद साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, डॉ. प्रेमदत्त शर्मा. जयपुर पुस्तक सदन, सन् 1968

जयशंकर प्रसाद, नन्ददुलारे वाजपेयी, भारती भंडार, इलाहाबाद

छायावादी काव्य, डॉ. कृष्णचंद्र वर्मा, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, सन् 1972

छायावाद की परिक्रमा, श्यामकिशोर मिश्र, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् 1985

जयशंकर प्रसाद, रमेशचन्द्र शाह, साहित्य अकादमी, दिल्ली. सन् 1984

20.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 i) ×
 ii) √
 iii) ×
 iv) √
 v) √

2 i) सन् 1889
 ii) श्री शम्भुरत्न
 iii) 12 वर्ष
 iv) सन् 1908

3 i) कामायनी, लहर, आँसू, झरना, कानन-कुसुम
 ii) सन् 1937 में, राजयक्ष्मा के कारण
 iii) सन् 1935 में, चित्राधार
 iv) स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, अजात-शत्रु तथा जनमेजय का नागयज्ञ
 v) काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध
 vi) कंकाल और तितली तथा आंधी और आकाशदीप

बोध प्रश्न 2

औरों को हँसते देखो मनु,
हँसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत कर लो,
सबको सुखी बनाओ

— कामायनी .

जननी जिसकी जन्मभूमि हो, बसुन्धरा ही काशी हो।
विश्व स्वदेश, भ्रात मानव हों पिता परम अविनाशी हो।
— कानन-कुसुम

2 देखिए, उपभाग 20.5.2
3 देखिए, उपभाग 20.5.3

4 देखिए, उपभाग 20.5.4
5 देखिए, उपभाग 20.5.4
6 देखिए, उपभाग 20.5.4
7 देखिए, उपभाग 20.5.5
8 देखिए, उपभाग 20.5.1

बोध प्रश्न 3

1 देखिए, उपभाग 20.6.1
2 देखिए, उपभाग 20.6.2
3 देखिए, उपभाग 20.6.3
4 देखिए, उपभाग 20.6.4
5 देखिए, उपभाग 20.6.5
6 देखिए, उपभाग 20.6.5
7 देखिए, उपभाग 20.6.1

इकाई 21 सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य
21.1 प्रस्तावना
21.2 युग परिवेश
21.3 निराला : जीवन और व्यक्तित्व
21.4 समर्थ-सृजक का कृतित्व
21.5 निराला-काव्य की अन्तर्वस्तु
    21.5.1 काव्य संवेदना
    21.5.2 परम्परा और आधुनिकता की टकराहट
    21.5.3 काव्यानुभूति में विद्रोह का स्वर या भाव-भूमि
    21.5.4 सौन्दर्यानुभूति के उपादान
    21.5.5 प्रयोग और प्रगति
    21.5.6 मूल्य चेतना का विस्तार
    21.5.7 काव्य कलाओं की प्रेरणा या स्रोत-भूमि
    21.5.8 छायावादोत्तर काव्य यात्रा
21.6 निराला काव्य का रचना-विधान
    21.6.1 काव्य-रूपों के नए आधार
    21.6.2 काव्य-भाषा की सृजनात्मकता
    21.6.3 काव्य की शब्दावली
    21.6.4 काव्य-प्रतीक
    21.6.5 काव्य-बिम्ब
    21.6.6 अप्रस्तुत विधान
    21.6.7 छन्द-विधान
21.7 निराला काव्य में सांस्कृतिक-सामाजिक नवजागरण
21.8 काव्य वाचन तथा सदर्भ सहित व्याख्या
21.9 मूल्यांकन
21.10 शब्दावली
21.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें
21.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

21.0 उद्देश्य

छायावाद में ही नहीं, समग्र हिन्दी साहित्य में भी अपने उपनाम की तरह 'निराला' व्यक्तित्व एवं कृतित्व रखने वाले उस महामानव से सम्बद्ध इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- छायावादी कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के व्यक्तित्व, जीवन और युग परिवेश को समझ सकेंगे।
- निराला की काव्य रचनाओं तथा उनकी विषय-वस्तु को जान सकेंगे।
- छायावाद के स्वरूप एवं विकास में निराला के योगदान तथा उनके वैविध्यपूर्ण काव्य संसार के विभिन्न पक्षों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- निराला की काव्य चेतना को आप भाषा-सौन्दर्य और अभिव्यंजना-कौशल की दृष्टि से जान सकेंगे।
- छायावादी साहित्य को निराला-काव्य की अमूल्य देन का मर्म समझ सकेंगे।
- पाठ्यक्रम में निर्धारित निराला की दो कविताओं का वाचन और व्याख्या कर सकेंगे।

21.1 प्रस्तावना

आप पहले ही जान चुके हैं कि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला छायावाद के प्रतिनिधि कवि हैं। इस इकाई में उसी प्रतिनिधि कवि निराला के काव्य को छायावादी तत्वों के आलोक में देखने की चेष्टा की गई है। महाप्राण निराला के काव्य में कोमल और कठोर पक्षों का, अध्यात्म और व्यवहार का,

भावुक एवं क्रान्तिकारी रूप का विशेष परिचय दिया गया है। निराला छायावाद के सर्वाधिक चर्चित कवि रहे हैं। उनके विराट और उदात्त व्यक्तित्व की झलक हमें उनके सम्पूर्ण साहित्य में देखने को मिलती है। निराला की तरह ही उनका काव्य जगत भी निर्बन्ध है। व्यंग्य-विनोद का तीखा और उन्मुक्त रूप, यथार्थ का जीवन्त चित्रण एवं सामाजिक जीवन की कटु अनुभूतियों का सजीव निरूपण हमें निराला काव्य में एक ओर देखने को मिलता है तो दूसरी ओर सुसंस्कृत भाव चेतना का वह रूप भी मिलता है जहाँ काव्य अध्यात्म की स्वतः ही अद्वैतपरक व्याख्या करता है।

निराला सार्वभौम-प्रतिभा-सम्पन्न कलाकार हैं। काव्य, कहानी, निबन्ध, संस्मरण तथा उपन्यास आदि साहित्य की विविध विधाओं में उनकी प्रतिभा समान रूप से शोभा पाती है। हिन्दी साहित्य में निराला को पौरुष के कवि कहकर सम्मानित किया जाता है। इस इकाई में सहृदय निराला के काव्य का अनुशीलन इन विशेषताओं को ध्यान में रखकर किया गया है।

21.2 युग परिवेश

निराला छायावादी युग के महत्वपूर्ण कवि हैं। ये युग अपने आप में नवजागरण काल कहा जाता है। उन्नीसवीं शताब्दी में राष्ट्रीय, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक नवचेतना का भारतीय जीवन में विशिष्ट प्रभाव दिखाई देता है। साहित्य का युग से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। युग की प्रवृत्तियों और आन्दोलनों का साहित्य पर भी विशेष प्रभाव पड़ता है। महाप्राण निराला ने भी अपने युग-परिवेश से प्रभावित होकर साहित्य-सृजन किया। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में भारतीय जनजीवन में राष्ट्र को स्वतंत्र देखने की बलवती भावना उजागर हो चुकी थी। सन् 1857 की क्रान्ति के असफल हो जाने के पश्चात् भी स्वतंत्रता की चिंगारी ने भारतीय जनमानस में अपना स्थान बना लिया था, जिसका प्रभाव आधुनिक काल के प्रथम चरण अर्थात् भारतेन्दु युग में हमें देखने को मिलता है। द्विवेदी युग में यह राष्ट्रीय आकांक्षा नैतिकता के साथ-साथ पुनरुत्थानवादी चेतना से जुड़कर विशेष सक्रिय हुई। द्विवेदी युगीन कवियों ने अपने अतीत को पुनः स्मरण कर राष्ट्रीय भावना के साथ-साथ सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक चेतना का गान किया और छायावादी युग तक आते-आते इस भावना ने नवजागरण का रूप अपना लिया। विवेकानन्द के प्रेरक विचारों ने उस युग में विशेष स्फूर्ति एवं उत्तेजना का संचार किया। व्यष्टि मुक्ति की अपेक्षा समष्टि मुक्ति की उन्होंने राह बतायी। पराधीनता को पटकने का मार्ग प्रशस्त किया और मानव को अपनी खोज--'आत्मिक-खोज' के लिए प्रेरित किया। दरिद्र भारत की पीड़ा को विवेकानन्द ने समझा, उसी प्रकार से महर्षि अरविन्द ने अपने क्रान्तिकारी विचारों के द्वारा एक ओर तो राष्ट्रीय जीवन में क्रान्ति के स्वर फूंके और दूसरी ओर आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना की ज्योति अपने साहित्य के द्वारा प्रसारित की। महात्मा गांधी ने भी अहिंसा के सिद्धांतों के साथ राष्ट्रीय भावना का सात्विक भाव जन-जन तक पहुँचाया। सामाजिक रूढ़ियों का विरोध करते हुए जन-जन को एकता के सूत्र में उन्होंने पिरोया। उस युग की अन्य विशिष्ट विभूतियों में टैगोर, लोकमान्य तिलक एवं गोखले भी विशेष स्थान रखते हैं। सम्पूर्ण राष्ट्र में राष्ट्रीयता के साथ-साथ सांस्कृतिक और आध्यात्मिक चेतना का जो प्रसार व्यापक रूप से हुआ उसी को अपने में समाये छायावादी काव्यान्दोलन का हिन्दी साहित्य में आगमन हुआ।

निराला के जीवन एवं साहित्य में इन सभी युगीन परिस्थितियों एवं विचारधाराओं का विशेष प्रभाव पड़ा। माँ भारती की पराधीनता से पीड़ित अवस्था को देखकर कवि के हृदय में करुणा और आक्रोश का भाव भर उठता है। वह अपने "क्लेद युक्त तन" को बलिदान करके उसे स्वतंत्र करना चाहता है। "जागो फिर एक बार" का बुलन्द स्वर फूंककर वह राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना को जन-हृदय में उत्पन्न करने का प्रयास करता है। "राम की शक्ति पूजा", "तुलसीदास", परिमल काव्य संग्रह की "तुम और मैं," "मैं", "हमें जाना जग के उस पार", "अधिवास", "पारस" एवं "कण" आदि कितनी ही कविताएँ इसी दृष्टिकोण से रची गई रचनाएँ हैं। रामकृष्ण परमहंस की विचारधारा का निराला के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा, जिस की अभिव्यक्ति उक्त रचनाओं में देखी जा सकती है।

छायावादी काव्यान्दोलन की पृष्ठभूमि में राष्ट्रीयता का स्वर भी काफी बुलन्दी पर रहा। अरविन्द, सुभाष एवं तिलक के क्रान्तिकारी विचारों ने उस युग के युवा मानस को क्रान्ति का आह्वान करने के लिए उत्साहित किया। निराला-काव्य में क्रान्ति का स्वर प्रखरता के साथ ध्वनित हुआ है। इस दृष्टि से "बादल राग" विशेष उल्लेखनीय है, जिसे विप्लव का प्रतीक मानकर कवि निराला ने प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार, "एक बार बस और नाच तू श्यामा" कहकर निराला ने चण्डी को प्रलय करने के लिए सम्बोधित किया है। निराला की राष्ट्रीयता का आधार राजनैतिक न होकर

सांस्कृतिक कोटि का अधिक रहा है। उन्होंने अपने युग में व्याप्त सामाजिक रूढ़ियों-विशेषकर विधवा की दयनीय स्थिति, पूंजीपतियों द्वारा मजदूरों का शोषण, समाज के दीनहीन वर्ग-चाहे भिक्षुक हो या मज़दूरिन, वर्ण व्यवस्था के नाम पर किए जाने वाले सामाजिक अभिशापों पर निराला ने खुली और बेबाक चोट की है। अतः कह सकते हैं कि एक जागरुक भारतीय मानस निराला के पास था, जिसने अपने युग-परिवेश से प्रेरणा एवं उत्साह ग्रहण कर साहित्य की रचना की।

21.3 निराला : जीवन और व्यक्तित्व

निराला के जीवन की संक्षिप्त जानकारी आप पहले ही हासिल कर चुके हैं। यहाँ कुछ विस्तृत जानकारी दी जा रही है। निराला का जन्म सन् 1896 ई. में बसन्त पंचमी के दिन बंगाल के मेदनीपुर ज़िले में महिषादल नामक स्थान पर हुआ। निराला की जन्म तिथि के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद भी पाये जाते हैं। निराला के पिता का नाम पण्डित राम सहाय त्रिपाठी और माता का नाम रुक्मिणी देवी था। अनुश्रुति है कि उनकी माता सूर्य का व्रत रखा करती थी और निराला का जन्म भी रविवार को हुआ। यही कारण है कि उनका नाम सूर्जकुमार रखा गया। कुछ लोगों का कहना है कि उनका जन्म महावीर हनुमान की पूजा के दिन मंगलवार को हुआ। निराला के पिता महावीर के भक्त थे, यही सोचकर पण्डित ने उनका नाम सूर्जकुमार रखा। लेकिन सन् 1917-18 के लगभग उन्होंने अपना नाम बदलकर सूर्यकान्त त्रिपाठी कर लिया और निराला उपनाम उन्होंने "मतवाला" पत्र के सम्पादन काल में रखा।

निराला के पिता पं. राम सहाय गढ़ा कोला, जिला उन्नाव के रहने वाले थे,किन्तु आर्थिक परिस्थिति अनुकूल न होने के कारण कलकत्ता में जाकर पुलिस के सिपाही बन गए। कालांतर में महिषादल राज्य में सौ सिपाहियों का जमादार और राज्य कोष का संरक्षक उन्हें नियुक्त किया गया। निराला के पिता राजा के विशेष कृपापात्र थे, यही कारण है कि उनका पालन-पोषण राजकीय परिवेश में हुआ। अल्पायु में ही इन्हें मातृ स्नेह की छाया से वंचित होना पड़ा। निराला के स्वस्थ, सुन्दर रूप एवं मातृहीन निरीहता से द्रवित होकर महिषादल राजा के छोटे भाई ने इन्हें गोद लेने का और "कॉन्वेंट" में पढ़ाने का प्रस्ताव रखा किन्तु इनके पिता ने स्वयं ही बच्चे की देखभाल करने का निश्चय किया। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा बंगाल पाठशाला में हुई और सन् 1907 ई. में उन्होंने महिषादल हाई स्कूल में आठवीं कक्षा में दाखिला ग्रहण किया। अंग्रेजी ज्ञान की शुरुआत भी यहीं से निराला ने प्रारम्भ की। हाई स्कूल से ही निराला ने द्वितीय भाषा के रूप में संस्कृत का अध्ययन किया। हिन्दी भाषा, सिपाहियों के साथ रहकर उन्होंने सीखी। घर पर बैस वाड़ी बोली जाती थी। इस प्रकार से निराला ने बंगला, संस्कत अंग्रेज़ी, हिन्दी और अवधी का ज्ञान हाई स्कूल से ही अर्जित कर लिया। हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं—विशेषकर 'सरस्वती' से—उन्हे हिन्दी के प्रति विशेष लगाव अनुभव हुआ और हिन्दी में लिखने की प्रेरणा भी उन्होंने यहीं से प्राप्त की।

शिक्षा अर्जन के साथ-साथ निराला को अपने शारीरिक विकास का अवसर भी मिला। कुश्ती लड़ने, घुड़सवारी करने एवं बन्दूक चलाने में निराला ने विशेष योग्यता अर्जित कर ली। इसके अतिरिक्त संगीत में भी उनकी गहन रुचि थी और निराला का कण्ठ-स्वर बहुत सधा हुआ था। अपनी स्कूली शिक्षा को हाई स्कूल के पश्चात् ही निराला ने विराम दे दिया। कारण, निराला को किसी ने कह दिया कि प्रतिभाशाली व्यक्ति कभी परीक्षाओं के चक्कर में नहीं पड़ते, स्वयं रवीन्द्रनाथ नवीं पास हैं। बस निराला ने ठान लिया कि वे रवीन्द्र से कम थोड़े ही हैं और उन्होंने भी परीक्षा नहीं दी ताकि नवीं कक्षा पास ही रहें।

निराला का विवाह चौदह वर्ष की आयु में मनोहरा देवी के साथ हुआ। मनोहरा देवी देखने में तो मनोहर थीं ही, गुण सम्पन्न और गृह कार्य दक्षा भी थीं। निराला को हिन्दी में साहित्य-सृजन करने की प्रेरणा भी मनोहरा देवी से मिली। निराला अपनी पत्नी के प्रति अनन्य प्रेम का भाव रखते थे किन्तु निराला का वैवाहिक जीवन चार-पाँच वर्ष की अत्यल्प सीमा पर आकर बिखर गया। पत्नी की मृत्यु से निराला का अन्तर्मन टूट गया। निराला के काव्य में इस पीड़ा की गहन अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। कवि की यह पीड़ा यहीं समाप्त नहीं हो जाती, परिवार के अनेक सदस्य इसी बीच निराला को छोड़ कर संसार से विदा हो लिए। निराला के भावुक मन के लिए पत्नी-विछोह वज्रपात से कम नहीं था, ऊपर से अपने दो बच्चों और परिवार के अन्य बच्चों के पालन-पोषण की व्यवस्था का भार भी इन्हीं पर आन पड़ा। इन सभी विषम परिस्थितियों में निराला के व्यक्तित्व का निर्माण हुआ। निराला के व्यक्तित्व में एक ओर करुणा तथा जगती की नश्वरता का भाव मिला हुआ है तो दूसरी ओर विद्रोह एवं क्रान्ति का स्वर भी।

निराला के जीवन में दुःख और अभावों का सिलसिला जीवन पर्यन्त चलता रहा। पत्नी की मृत्यु के पश्चात् जो अन्य जबरदस्त आघात उन्हें लगा, वह था पुत्री 'सरोज' का युवावस्था में अकाल मृत्यु-मुख में चले जाना। एक के बाद एक प्रिय जन के विछोह से निराला जहाँ टूटे हैं, वहीं अपने अन्तर से शक्ति ग्रहण कर जीवन-संघर्षों से जूझे भी हैं। यही कारण है कि निराला के व्यक्तित्व में हम संघर्ष-प्रियता, रुढ़ियों के विरोध तथा विद्रोह के स्वर को विशेष रूप से देखते हैं। दूसरी ओर, करुणा का ऐसा मोहक रूप पाते हैं जो दूसरे के दुःखों और अभावों में अपनी वास्तविक स्थिति को भूल जाता है। फकीरी में भी उन्हें सुख मिलता है। निराला ने कविता को ही निर्बन्ध नहीं किया, अपने आप में भी निर्बन्ध रहे। निराला स्वभाव के स्वाभिमानी और निर्भीक व्यक्तित्व के स्वामी रहे हैं। उन्हें अवढर दानी कहकर सभी सम्मानित किया करते थे और अपनी मस्ती में वे फक्कड़ थे। उनके बाह्य व्यक्तित्व की झलक कुछ इस प्रकार से थी : "कद लगभग छः फुट, चौड़ा सीना, विशाल मस्तक, दिव्य तेज से परिपूर्ण आंखें, बैल की तरह चौड़े कन्धे, विशाल बाहु, तीखी सुडौल नासिका, लम्बे बाल।" उनकी आकृति और शारीरिक संरचना ग्रीक योद्धाओं के समान थी, इसी लिए कोई उन्हें "अपोलो" कहता था तो कोई 'विवेकानन्द'।

सरस्वती के इस वरद् पुत्र ने आजीवन साहित्य साधना की। सन् 1920 ईस्वी में राज्य की नौकरी छोड़ कर पूर्ण संकल्प से निराला ने साहित्यिक जीवन में प्रवेश किया और अन्त तक उसी को ही अपना जीवन मानकर चले। 15 अक्तूबर, 1961 को महाप्राण निराला ने अपने इस नश्वर-शरीर का त्याग कर दिया।

21.4 समर्थ-सृजक का कृतित्व

महाकवि निराला का जीवन वैविध्यपूर्ण है, इसीलिए उनका काव्य भी अनेक विलक्षणताओं से भरा हुआ है। जीवन के अनेक रूपों को कवि ने देखा और भोगा है। प्रतिकूल परिस्थितियों ने उनके कवि-मानस को तराशा और उन्हें समर्थ-सृजक के रूप में साहित्य जगत में प्रतिष्ठित किया। छायावादी काव्य का प्रारम्भ सन् 1918 के आसपास माना जाता है। उन्हीं दिनों निराला साहित्य साधना में पूरी तन्मयता से लीन थे। निराला की प्रारम्भिक रचनाओं में "अनामिका" (प्रथम) (सन् 1922), "परिमल" (सन् 1930), "गीतिका" (सन् 1936) एवं "अनामिका" (द्वितीय) (सन् 1938) हैं। अनामिका (प्रथम) में केवल सात कविताएँ थीं। वे आगे चलकर अन्य संग्रहों में ले ली गईं। वास्तव में "परिमल" को ही उनकी प्रथम काव्य कृति होने का गौरव प्राप्त है। इससे पूर्व निराला "मतवाला" में "जूही की कली" नामक कविता के माध्यम से साहित्य जगत में अपने कवि रूप की पहचान बना चुके थे। "परिमल" में निराला लिखित 1930 तक की कविताएँ संकलित हैं। स्वच्छन्द छन्द की कविताएँ उनके इस प्रारम्भिक सृजन में प्राप्त हो जाती है। "परिमल" में लगभग 78 रचनाएँ हैं जिनपर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है कि उनके काव्य की अनेक धाराओं में बहने की अपरिमित सम्भावनाएँ निहित हैं। इस काव्य संग्रह के अधिकांश गीत दार्शनिकता एवं आध्यात्मिकता की भावना से परिपूर्ण हैं। कुछ कविताएँ राष्ट्रीय, सांस्कृतिक चेतना को वाणी प्रदान करने वाली हैं। समाज के दलित एवं पीड़ित वर्ग के प्रति कवि-हृदय में जो असीम करुणा का भाव रहा, वह भी "परिमल" की कविताओं में मुखरित हुआ। निराला का प्रसिद्ध गीत "तुम और मैं", "माया", "विधवा", "भिक्षुक", "बादल राग" एवं "जागो फिर एक बार", आदि "परिमल" की अनेक रचनाएँ हैं जो निराला के समर्थ कवि रूप को साहित्य लोक में स्थापित कर गई।

"परिमल" के पश्चात् निराला ने लगभग 101 गीतों के संग्रह के रूप में "गीतिका" की सृष्टि की। इस संग्रह की कविताओं में निराला ने कई प्रयोग किए हैं। अद्वैत वादी काव्य रचनाओं की संख्या यहाँ पर्याप्त मात्रा में देखी जा सकती है। "कौन तम के पार रे कह" एवं "पोस ही रे हीरे की खान" आदि गीतों में रहस्य की भावना का संस्पर्श स्पष्टतः देखा जा सकता है। कुछ गीतों का स्वर राष्ट्रीय सांस्कृतिक भावना से परिपूर्ण हैं। "वर दे वीणा वादिनी" और "भारति जय विजय करे" गीतों में कवि की राष्ट्रीय भावना का उज्जवल एवं सांस्कृतिक रूप द्रष्टव्य है। गीतिका के विषय में जयशंकर प्रसाद का निम्न कथन महत्वपूर्ण हैं—"गीतिका, हिन्दी साहित्य के लिए सुन्दर उपहार है। उसके चित्रों की रेखाएँ पुष्ट, वर्णों का विकास भास्वर है। उसका दार्शनिक पक्ष गम्भीर और व्यंजना मूर्ति मती है।"

सन् 1938 में निराला का तीसरा काव्य संग्रह अनामिका प्रकाशित हुआ। इसमें कुछ 56 कविताओं को संग्रहीत किया गया है। इसमें मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार की रचनाएँ एक साथ रखी गई हैं। "सरोज स्मृति", "वह तोड़ती पत्थर" और "राम की शक्ति पूजा" विशेष

चर्चित काव्य रचनाएँ हैं। इसमें भी "राम की शक्ति पूजा" सबसे अधिक सशक्त और प्रौढ़तम रचना मानी जाती है।

निराला के कृतित्व की एक अन्य महत्वपूर्ण उपलब्धि है–"तुलसीदास"। महाकाव्योचित शैली में रचित यह प्रबन्ध कृति निराला काव्य की अक्षय-कीर्ति का आधार है।

साहित्य में सर्वथा नये आयाम को लाने वाली रचना "कुकुरमुत्ता" निराला के सृजक रूप को एक नया मोड़ प्रदान करती है। इस की भाषिक संरचना ठेठ शब्दावली पर आधारित है। "कुकुरमुत्ता" में काव्य के परम्पारित मानदण्डों से पूर्णतः भिन्न शैली को कवि ने अपनाया है। काव्य क्षेत्र में ऐसा साहसपूर्ण विस्फोट निराला जैसा सशक्त और निर्भीक रचनाकार ही कर सकता है। इसका रचना काल सन् 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के समय का है। शैली हास्य-व्यंग्य की दृष्टि इस काव्य की विशेषता है। प्रगतिवादी युग के कवि इस काव्य रचना को अपना आदर्श और प्रेरणा केन्द्र मानते हैं।

"अणिमा", "बेला" और "नये पत्ते' आदि काव्य संग्रह प्रगतिशील एवं प्रयोगवादी रचनाओं से अनुष्ठित हैं। "अणिमा" में कवि की एकाकी भावना की पीड़ा और भक्ति का स्वर भी यत्र-तत्र देखा जा सकता है। प्रयोगवादी ढर्रे की कविता "चूंकि यहाँ दाना है" अपनी विचित्र प्रकार की संरचना के कारण उल्लेखनीय है। इस कविता में पूंजीवादी संस्कृति पर तीखा व्यंग्य प्रहार किया गया है। "बेला" में निराला ने अनेक रंगों के गीतों की सृष्टि की है। भाषा, भाव एवं प्रयोग की दृष्टि से "बेला" के गीतों में नवीनता और विविधता का रूप झलकता है। उर्दू गजलों की लोकप्रियता का प्रभाव भी कुछ रचनाओं में पाया जाता है। "नये पत्ते" में हास्य व्यंग्य का पुट लिए कई कविताएँ हैं परन्तु उनका व्यंग्य कहीं-कहीं बड़ा मार्मिक रूप अपना लेता है। इसकी पहली कविता "रानी और कानी" में चेचक के दाग, काली, नाक चिपटी, गंजा सिर, एक आँख कानी पर "माँ उसको कहती है रानी" के द्वारा माँ के हृदय की कारुणिक अवस्था को देखा जा सकता है।

"अर्चना", "आराधना" और "गीत गुंज" ये तीनों गीत संग्रह निराला को अन्तिम स्थिति हैं। निरन्तर संघर्षों से जूझने के कारण निराला का मानसिक सन्तुलन डगमगा गया, उस अवस्था का रूप इन गीतों में कहीं-कहीं देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त भक्ति भावना, विनय और प्रार्थना मिश्रित करुणा की आभा लिए कुछ गीतों की भी रचना उन्होंने की है।

काव्य के अतिरिक्त निराला ने "निरुपमा", "अप्सरा", "अलका", "प्रभावती" तथा "काले कारनामे" आदि उपन्यासों की रचना भी की है। कहानी के क्षेत्र में निराला की महत्वपूर्ण देन "लिली", "देवी", "सखी", "सुकुल की बीवी" और "चतुरी-चमार" है। "कुल्लीभाट" और "बिल्ले सुर बकरिहा" इनके प्रसिद्ध रेखाचित्र हैं। श्रेष्ठ समालोचक और समीक्षक के रूप में निराला की "रवीन्द्र कविता कानन", "पन्त और पल्लव", "चाबुक", "प्रबन्ध पद्य", "प्रबन्ध प्रतिभा" तथा "चयन" आदि कृतियों का विशेष महत्व है। इसके अतिरिक्त निराला के अनुवाद कार्य के द्वारा भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। "आनन्द मठ" के रचयिता बंकिम बाबू की "कपाल-कुण्डला", "चन्द्रशेखर" "दुर्गेश नन्दिनी", "कृष्णकान्त का बिल", "युगांगुलीय", "रजनी" तथा देवी "चौधरानी", "राजा-रानी", "विष वृक्ष" आदि उपन्यासों को हिन्दी में प्रयुक्त कर बहुत बड़ा कार्य किया।

निराला की इस साहित्य यात्रा का संक्षिप्त सा परिचय यह स्पष्ट करता है कि ये सभी रचनाएँ एक समर्थ सृजक के अन्तर्मन की अनेक स्थितियों को आभासित करती हैं। निश्चय ही महाप्राण निराला का साहित्य भी महान् है।

बोध प्रश्न 1

1 नीचे एक प्रश्न के उत्तर में एक से अधिक विकल्प दिए जा रहे हैं। सही विकल्प को (✓) के निशान से चिन्हित कीजिए।

i) निराला का जन्म सन् (1896/2001/1890) में हुआ था।

ii) निराला की प्रथम काव्य कृति होने का गौरव (अनामिका/गीतिका/परिमल) को प्राप्त है।

iii) (भिक्षुक/तुलसीदास/वह तोड़ती पत्थर) कविता निराला की महाकाव्योचित शैली में रचित प्रबन्ध कृति है।

iv) निराला की काव्य रचना (गीतिका/अनामिका/कुकुरमुत्ता) को प्रगतिवादी युग के कवियों ने अपना आदर्श तथा प्रेरणा-केन्द्र माना।

v) हिन्दी साहित्य के लिए सुन्दर उपहार कहलाने वाले गीतसंग्रह "गीतिका" का रचनाकाल सन् (1921/1930/1942) है।

2 नीचे दिए गए प्रश्नों में कुछ सही हैं तथा कुछ गलत। उपयुक्त चिन्ह से चिन्हित कीजिए :

i) "अणिमा", "बेला" और "नये पत्ते" नामक काव्य-संग्रह प्रगतिशील और प्रयोगवादी रचनाओं से अनुष्ठित संग्रह हैं। ( )

ii) निराला का वैवाहिक एवं पारिवारिक जीवन अत्यन्त सुखमय रहा है। ( )

iii) संघर्ष-प्रेमी, रुढ़ि विरोधी तथा स्वभावतः निर्भीक एवं स्वाभिमानी कवि निराला को "अपोलो" और "विवेकानन्द" भी कहा जाता था। ( )

iv) निराला एक महाकवि थे और कहानी, निबन्ध, संस्मरण या उपन्यास आदि से उनका कोई सम्बन्ध न था। ( )

v) सर्वप्रथम "मतवाला" में प्रकाशित कविता "जूही की कली" से ही निराला के कवि रूप की पहचान साहित्य जगत में बनी थी। ( )

टिप्पणी : इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

21.5 निराला-काव्य की अन्तर्वस्तु

निराला का काव्य संसार उनकी जीवन-साधना का प्रतिरूप है। सन् 1916 में "जूही की कली" जैसी सफल काव्य कृति का निराला ने सृजन किया, तब से अनवरत वे साधना लीन रहे। निराला के समग्र काव्य की अन्तर्वस्तु का परिचय प्राप्त करने के लिए हमें उनके काव्य के निम्न चरणों को ध्यान में रखना होगा।

21.5.1 काव्य संवेदना

निराला का काव्यालोक निराला के समान ही विराट उदात्त और विस्तृत है। निराला के पास महाकवि की वह सूक्ष्म दृष्टि थी जिसने अपने आस-पास के जीवन को बड़ी गहराई से देखा। निराला काव्य में छायावादी युग की अन्तर्वस्तु के सभी तत्व तो मिलते ही हैं, साथ ही प्रयोगशील एवं प्रगतिवादी विचारों की गहरी छाप भी मिलती है। किन्तु निराला सारे वादों की सीमा को पार करते चले गए हैं। उनकी काव्य सम्वेदना के लिए सारे सीमित वाद छोटे हैं। निराला काव्य में सम्वेदना के मुख्य स्वर निम्न प्रकार से देखे जा सकते हैं :

1 राष्ट्रीयता की भावना : निराला नव जागरण काल के कवि हैं। राष्ट्र को पराधीनता के बंधन से मुक्त देखने की लालसा उस काल के प्रायः सभी कवियों के काव्य का मुख्य विषय रहा है। निराला काव्य में राष्ट्रीय भावना का धरातल बड़ा विस्तृत और बहुरंगी है। निराला ने असंख्य गीतों में भारत के गौरव का गान, माँ भारती का शतशः स्मरण कर जातीय जीवन में उत्तेजना के प्राण फूंकें हैं। भारतीय जन मानस में उद्बोधन का संचार करते हुए निराला "तुलसीदास" में जागरण का सन्देश इस प्रकार से देते हैं :

"जागो, जागो आया प्रभात,
बीती वह, बीति अन्धरात।"

इसके लिए कवि आत्म बलिदान हेतु माँ भारती के चरणों में भावपूर्ण समर्पण करते हुए कहता है :

"बाधाएँ आएँ तन पर
देखूं तुझे नयन निर्भर
× × ×
क्लेदयुक्त अपना तन दूँगा
मुक्त करूँगा तुझे अटल,

तेरे चरणों पर देकर बलि
सकल श्रेय-श्रम-सिंचित फल।

2 अद्वैत भावना : राष्ट्रीयता के अतिरिक्त अद्वैत तत्व की सम्वेदना का संस्पर्श निराला काव्य की अन्तर्वस्तु में मुख्यता से गाया गया है। निराला के जीवन पर **रामकृष्ण परमहंस** एवं **विवेकानन्द** के विचारों का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। "परिमल", "अनामिका", "गीतिका", "अर्चना", "बेला" एवं "अणिमा" इत्यादि में निराला की अद्वैत भावना को देखा जा सकता है।

निराला का प्रसिद्ध गीत "तुम तुंग हिमालय श्रृंग और मैं चंचल गीत सुर सरिता" इसी भाव भूमिका की अभिव्यक्ति करता है।

3 **करुणा एवं पीड़ा :** निराला काव्य में पीड़ा एवं करुणा की गहरी व्यंजनाएँ देखने को मिलती हैं। कवि की सम्वेदना का विस्तार स्वर से लेकर जगती की विभिन्न बदलती हुई स्थितियों तक छाया हुआ है। निराला का "सरोज स्मृति", "विधवा", "मैं अकेला", "स्नेह निर्झर बह गया है" इत्यादि में कवि-हृदय की आंतरिक पीड़ा एवं करुणा का उत्कृष्ट रूप देखा जा सकता है। निराला के शब्दों में—"दुःख ही जीवन की कथा रही" इसी भाव को साक्षात्कार हम कर सकते हैं।

4 **व्यंग्य एवं आक्रोश :** निराला काव्य की सम्वेदना में व्यंग्य एवं आक्रोश का भाव बड़े पैने रूप से व्यक्त किया गया है। सामाजिक विषमताओं के प्रति निराला सदैव ही विद्रोही रहे हैं। निराला को "महाप्राण" की उपाधि से साहित्य जगत ने सम्मानित किया। उनके महाप्राण होने की प्रामाणिकता व्यंग्य एवं आक्रोश के गहरे मर्मस्पर्शी रूपों में मिलती है। निराला की सम्वेदना वह पारस है जिसके स्पर्श मात्र से जगती के सम-विषम भाव स्वर्ण के समान अमूल्य बन जाते हैं। "कुकुरमुत्ता", "गर्म पकौड़ी", "बादल राग", "दौड़ते हैं बादल यह काले काले", "कुत्ता भौंकने लगा", "घोड़ी के पेटों में बहुतों को आना पड़ा", "दगा की", "झींगुर डटकर वोलो", "डिप्टी साहब आये" और "महगूं महगा रहा" जैसी रचनाओं में व्यंग्यात्मकता का हास्य एवं आक्रोश जनित रूप काफी सशक्त बन पड़ा है। हास्य व्यंग्य का निम्न रूप निराला के उसी भाव को साकार करता है :

जमींदार का सिपाही लट्ठा कान्धे पर डाले
आया और लोगों की ओर देखकर कहा,
"डेरे पर थानेदार आये हैं;
डिप्टी साहब ने चन्दा लगाया है,
एक हफ्ते के अन्दर देना है।
चलो बात दे आओ।"

देखा जाये तो निराला की काव्य-संवेदना इतनी विराट और विस्तृत है कि उसमें उच्च से उच्च भाव भूमि एवं निम्न से निम्न क्षुद्र अंश तक समाया हुआ है। छायावादी काव्य वस्तु के सभी प्रमुख तत्व भी उसमें समाये हैं और आधुनिक कविता के समस्त नए-नए प्रयोगों की भाव भूमि भी उसी में समाविष्ट है। नारी जीवन के प्रति करुणा एवं सम्मान का भाव, प्रेम की निश्छल अभिव्यक्ति, प्रकृति के विभिन्न रूपों की भावपूर्ण प्रस्तुति, मानवतावादी दृष्टि, सर्वमंगल की कामना, परमात्मा के प्रति अटूट विश्वास, जीवन की नश्वरता का बोध, सौन्दर्यानुभूति के साथ-साथ रहस्यानुभूति के अनेक भाव निराला की काव्य संवेदना में भरे पड़े हैं।

21.5.2 परम्परा और आधुनिकता की टकराहट

निराला का व्यक्तित्व बहु-आयामी है जिसमें अनेक विरोधी तत्वों का सामंजस्य हम देखते हैं। महान काव्य की सम्वेदना भी असीम और उदात्त होती है। निराला की प्रकृति ही स्वच्छन्द थी, परंपरा के बाधक रूप से उन्होंने सदैव टक्कर ली। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का युग परम्पराओं का युग कहलाता है। ऐसे में निराला ने बंगला की स्वच्छ प्रवृत्ति को आत्मसात् कर हिन्दी काव्य में शक्ति और गति का स्वर प्रस्तुत किया। दर्शन अध्यात्म और संगीत की महत्ती प्रतिष्ठा साहित्य में की। अपने ओजस्वी रूप का परिचय परम्पराओं की जकड़न को तोड़कर दिया। काव्य में प्रेम और सौन्दर्य के उदात्त और उन्मुक्त रूप को उभारा। छायावादी कवियों में निराला सर्वाधिक स्वच्छंद प्रकृति के कवि माने जाते हैं। निराला की अभिव्यक्ति में सर्वत्र नूतनता का आह्वान देखने को मिलता है। चाहे काव्य की अन्तर्वस्तु हो या शिल्प-विधान सभी में उन्होंने नए-नए प्रयोग किए हैं। कविता को निराला ने छंदों के बंधन से मुक्ति प्रदान की एवं अपनी भाव चेतना को भी विद्रोह और क्रान्ति से शक्ति सम्पन्न किया।

निराला की अभिव्यंजना, छंदों की बनावट, भाषा की विविधता एवं बिम्ब और प्रतीकों आदि में क्रान्तिकारी नूतनता और आधुनिकता को देखा जा सकता है। "जूही की कली", "प्रेयसी", "रेखा", "जागो फिर एक बार", "बादल राग", "कुकुरमुत्ता", "काई", "बहू", "राम की शक्ति पूजा" एवं "तुलसीदास" आदि सभी काव्य रचनाओं में स्वच्छंदतावादी भावी चेतना और परंपरागत मान्यताओं के प्रति विद्रोह का भाव देखा जा सकता है।

21.5.3 काव्यानुभूति में विद्रोह का स्वर या भाव-भूमि

निराला क्रान्तिकारी कवि हैं। सामाजिक रुढ़ियों और विषमताओं के प्रति उनकी निर्भीक वाणी ने सदैव चोट की है। निरंतर दुःख और अवसाद को भोगते हुए भी निराला टूटे नहीं अपितु सामाजिक

जीवन की गलत मान्यताओं और अन्याय के प्रति अपने विद्रोही स्वर के द्वारा तीखी चोट करते रहे। विद्रोह का स्वर निराला की प्रयोगवादी कविताओं में साकार है। "बादल राग" कविता में विप्लव और विद्रोह का भाव चरम सीमा पर प्रतिष्ठित है। "कण" कविता में कवि त्रस्त मानवता को पीड़ित देखकर कह उठता है :

"पड़े हुए सहते हो अत्याचार, पद पद पर रुढ़ियों के, पद प्रहार।"

तथा रुढ़ियों का खण्डन करते हुए निराला आक्रोश युक्त वाणी में प्रेरणा का महामन्त्र फूंकते हुए कहते हैं–

"जला दे जीर्ण-शीर्ण प्राचीन,
क्या करुंगा तन-जीवन-हीन।"

कहा जा सकता है कि निराला-काव्य की भाव भूमि इसी प्रकार के असंख्य भाव रूपों का एक समृद्ध कोष है जिसमें प्रतिकूलताओं और विषमताओं से लोहा लेने की अमित शक्ति छूपी हुई है।

21.5.4 सौन्दर्यानुभूति के उपादान

कवि की निधि है–संवेदना प्रवण हृदय। जिसमें अनगिनत भावनाओं का विशाल रूप निवास करता है। विश्व के विस्तृत साम्राज्य में कवि अपनी सौन्दर्यानुभूति के रूप की ही झांकी देखता है। सौन्दर्यानुभति कवि की दृष्टि और हृदय में रहती है। क्षण-क्षण नव्यता को ग्रहण करने की भावना ही सौन्दर्य है। "परिमल" काव्य संग्रह में निराला ने सौन्दर्य को यौवन के मधुर रूप से जोड़ते हुए कहा है–

"यौवन के तीर पर प्रथम था आया जब स्रोत सौन्दर्य का
वीचियों में कलरब सुख-चुम्बित प्रणय का.
था मधुर आकर्षण मय–
मज्जना वेदन मृदु फूटता सागर में।"

कवि निराला के पास सूक्ष्म अनुभूति की वह सामर्थ्य है जो सृष्टि के नाना उपकरणों में सौन्दर्य का दर्शन करती है। नारी-सौन्दर्य का चित्रण सभी छायावादी कवियों के काव्य का अभिन्न अंग रहा है। निराला नारी-सौन्दर्य का अंकन करते हुए कहते हैं–

शिला खण्ड पर बैठी वह, नीलांचल मृदु लहराता था
मुक्त बन्ध-सन्ध्या-समीर सुन्दरी संग
कुछ चुपचाप बातें करता जाता और मुस्कुराता था।

कवि की दृष्टि केवल कोमल और बाह्य सौन्दर्य को ही नहीं देखती वह तो उस नारी में भी सौन्दर्य की छवि ढूंढती है जो मेहनतकश है। निराला की सम्वेदना "पत्थर तोड़ने वाली" के परिश्रम शील रूप में भी सौन्दर्य को ही देखती है। निश्चित ही नारी-सौन्दर्य की यह चेतना रीतिवादी सौन्दर्य-दृष्टि से पूर्णत: भिन्न रही है।

अत: स्पष्ट है कि सौन्दर्यानुभूति का संबंध कवि की उस मार्मिक दृष्टि में है जो असुन्दर को भी सुन्दर बना देती है। वह कठोर और भयानक में भी सुन्दरता की झलक पाती है। निराला ने सौन्दर्य की अनुभूति केवल आकर्षक और कोमल रूप में ही नहीं की वरन् शौर्य, उत्साह, पुरुषता, दीनता, कातरता, आदि भावों में भी की है। "राम की शक्ति पूजा" और "तुलसीदास" में निराला की सौन्दर्यानुभूति के विशाल रूप की प्रतीति हमें होती है। सौन्दर्य चेतना के उत्कृष्ट रूप का परिचय हमें इन पंक्तियों से मिलता है–

"विच्छुरित वाह्नि राजीव-नयन हत लक्ष्य बाण,
लोहित-लोचन-रावण-मद-मोचन-महीयान।"

21.5.5 प्रयोग और प्रगति

निराला काव्य का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो ही चुका है कि वे किसी एक युग का वाद के कवि नहीं है, वे सार्वभौम के कवि हैं। अवश्य ही साहित्य जगत् में निराला का आगमन छायावादी युग से माना जाता है किन्तु उनका विराट व्यक्तित्व किसी भी 'वाद' के बन्धन में कभी भी सीमित नहीं रहा। निराला काव्य में हमें जहाँ एक ओर छायावादी काव्य की सौन्दर्यानुभूति लाक्षणिक विधान, प्रकृति प्रेम, अमांसल सौन्दर्य, रहस्यवादी भावना, गीतात्मकता, राष्ट्रीयता, मानवीयकरण एवं मानवतावाद आदि की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है तो दूसरी ओर ओज पौरुषता, रुढ़ियों को नकारते हुए व्यंग्य प्रहार, नए-नए प्रयोग, भाषा में विषय के अनुरूप परिवर्तन, भाव लोक का सामान्य जीवन के छोटे-छोटे उपेक्षित रूपों तक विस्तार भी मिलता है।

निराला की मान्यता है कि कवि की मुक्ति के समान काव्य की मुक्ति भी होनी चाहिए। इसीलिए उन्होंने कविता को भी स्वच्छंद छंद से सजाया। निराला की "भिक्षुक", "तोड़ती पत्थर", "विधवा", "कुकुरमुत्ता", "बादल राग", "गर्म पकौड़ी" आदि कविताओं में प्रगतिवादी एवं प्रयोगवादी काव्य चेतना का भाव एवं शिल्प विधान देखा जा सकता है। आम बोलचाल की भाषा में निराला की सशक्त व्यंग्य कला यहाँ अपने चरम पर है।

21.5.6 मूल्य चेतना का विस्तार

कवि निराला की काव्य-गंगा ने अबाध गति से बहते हुए कई-कई रूप और आकार ग्रहण किए हैं परन्तु उनका निर्माण कवि की मूल्य-चेतना के धरातल पर ही हुआ है। समय एवं परिस्थिति के अनुरूप निराला ने अपनी मूल्य चेतना को लचीला बनाया है। यही कारण है कि निराला की काव्य चेतना बहुरंगी है। कवि की मूल्य चेतना पर विवेकानन्द की अद्वेत दृष्टि, रवीन्द्र नाथ "ठाकुर" की भाव चेतना तथा राष्ट्रीय आकांक्षा की पूर्ति के लिए स्वातन्त्र्य की पुकार का व्यापक प्रभाव भी पड़ा। निराला के पास संसार के क्षुद्र और उपेक्षित समझे जाने वाले प्राणी के लिए भी उतना ही प्यार और करुणा है जितनी विराट और महान् के लिए। कवि के अनन्त भाव ही उसकी मूल्य चेतना के उपादान है जिन्हें वह संसार के विभिन्न रूपों से ग्रहण करता है।

21.5.7 काव्य कलाओं की प्रेरणा या स्रोत भूमि

कवि अपनी काव्य कलाओं को जितने भी आकार-प्रकार प्रदान करता है उसकी प्रेरणा उसे अपने परिवेश से ही मिलती है। निराला ने सन् 1916 के आस-पास काव्य रचना प्रारंभ की जो अनवरत उनके जीवन काल तक चलती रही। निराला की काव्य कला को निखारने और प्रेरित करने वाले स्रोत एक ओर तो बाह्य जगत में हम विद्यमान देखते हैं तो दूसरी ओर उनकी भाव-भूमि है उनका अन्तस्। निराला का पालन-पोषण बंगाल की धरती पर हुआ। बंगला भाषा में ही उन्होंने अपनी सोच को प्रारम्भ में विकसित किया। काव्य कलाओं के सृजन की प्रेरणा भी निराला ने कवीन्द्र रवीन्द्र के काव्य संसार से प्राप्त की। स्वयं निराला ने "रवीन्द्र कविता कानन" पुस्तक में रवीन्द्र के प्रति अपनी श्रद्धा भावना समर्पित की है। सांस्कृतिक पुनर्जागरण काल की पृष्ठभूमि में निराला ने काव्य कलाओं का सृजन प्रारंभ किया अत: उस काल की घटनाओं ने प्रेरणा भूमि का कार्य भी किया। अपने युग की राष्ट्रीय, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक गतिविधियों से निराला ने अपनी काव्य कला को सजाया संवारा।

21.5.8 छायावादोत्तर काव्य यात्रा

जैसा कि पूर्व पृष्ठों में यह स्पष्ट किया ही जा चुका है कि निराला की काव्य यात्रा की कोई निश्चित सीमा नहीं है, वह निरन्तर प्रवहमान रही है। भले ही निराला ने काव्य का प्रणयन छायावादी काल की सीमा रेखा में रह कर किया किन्तु वह कभी भी वादों की परिधि में नहीं समाये। उनका व्यक्तित्व बहु-आयामी रहा है। वादों को निराला की आवश्यकता भले ही हो परन्तु निराला तो हर वाद से स्वच्छंद रहे हैं। छायावाद की सीमा रेखा भी 1937-38 के आसपास जाकर समाप्त प्राय: हो जाती है। तत्पश्चात् प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का आगमन साहित्य जगत में प्रारम्भ हुआ। निराला काव्य में हमें नव प्रयोग और नव विषय, दोनों ही देखने को मिलते हैं। "कुकुरमुत्ता", "बादल राग", "गर्म पकौड़ी", "नये पत्ते", "बेला" और "अणिमा" आदि में छायावादोत्तर युग की विचारधारा के विकास को देखा जा सकता है, जिन्हें साहित्य में "प्रगतिवाद" और "प्रयोगवाद" के रूप में जाना जाता है।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1 एक पंक्ति में अपना उत्तर लिखिए :

i) निराला की किन्हीं दो प्रगतिवादी रचनाओं के नाम लिखिए।

....

ii) साहित्य जगत में निराला को किस उपाधि से सम्मानित किया जाता है।

....

iii) निराला की छायावादोत्तर युग की किन्हीं तीन रचनाओं के नाम लिखिए।

....

iv) "बादल राग" कविता में बादल किस का प्रतीक है?

....

v) "कुकुरमुत्ता" कविता में कुकुरमुत्ता और गुलाब किस के प्रतीक हैं?

....

vi) निराला का पूरा नाम क्या है?

....

vii) निराला के किन्हीं दो उपन्यासों के नाम लिखिए।

....

viii) निराला मूलतः किस युग के कवि हैं?

....

2 पाँच-छह पंक्तियों में अपना उत्तर लिखिए :

i) निराला की काव्य-सम्वेदना के मुख्य आयाम क्या हैं?

....
....
....
....
....
....

ii) निराला के काव्य में प्रयोग और प्रगति का क्या स्वरूप है?

....
....
....
....
....
....

iii) निराला की कविता में मूल्य-चेतना का क्या स्वरूप है?

....
....
....
....
....
....

21.6 निराला काव्य का रचना-विधान

निराला का समूचा व्यक्तित्व ही निराला है। विरोधी तत्वों के संघाता से उनके व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है। निराला काव्य की अन्तर्वस्तु के समान ही उसका रचना विधान भी सशक्त है। निराला की अनुभूति में जितनी गहराई और पकड़ है अभिव्यक्ति में उतनी ही विलक्षणता है। कवि का रचना विधान कवि के व्यक्तित्व के अनुरूप कहीं कोमल है तो कहीं कठोर। भावों की अभिव्यक्ति के माध्यम-काव्य रूप, भाषा, बिम्ब योजना, प्रतीक-विधान एवं छंद योजना आदि सभी में निराला ने नव रचना कौशल की सृष्टि की है। यही कारण है कि निराला का रचना विधान इतना सशक्त और बोधगम्य है। आधुनिक युग के सभी नये-नये रचना शिल्पों के निर्माण में निराला बेजोड़ हैं।

21.6.1 काव्य-रूपों के नए आधार

निराला काव्य को हम मुख्यतः चार रूपों में विभक्त कर सकते हैं—गीत, प्रगीत, कथाश्रित-काव्य और गीति नाट्य। निराला ने 400 से ऊपर गीतों की रचना की है। "गीतिका" से निराला के गीत-लेखन का प्रारम्भ माना जाता है। "गीतिका" में स्वयं निराला ने अपने गीत लेखन की विवशता को स्पष्ट किया है। उनके गीतों में भाव प्रवणता के साथ-साथ संगीत का मनोहर रूप भी देखा जा सकता है। निराला के गीतों में प्रार्थना, वेदना, करुणा, प्रेम, नारी सौन्दर्य, राष्ट्रीय भावना, प्रकृति प्रेम एवं अनन्त मानवीय भावनाओं का वैविध्य हम पाते हैं।

गीतों के अतिरिक्त "प्रगीत," काव्य रूप का विस्तार भी निराला काव्य का एक अन्य विशिष्ट्य है। प्रगीत गीत की तुलना में अधिक लम्बे होते हैं। शास्त्रीय संगीत और वैयक्तिकता के स्थान पर पाठ्य तत्व और दृश्यांकन को इसमें मुख्यता दी जाती है। प्रगीत की भाषा में शब्दों की कसावट और संक्षिप्तता के स्थान पर कवि उन्मुक्तता से काम लेता है। कहीं-कहीं प्रगीतों में आख्यानक तत्व का समावेश भी हम देखते हैं। निराला की "सरोज-स्मृति", "यमुना के प्रति", "विधवा", "भिक्षुक" एवं "शिवाजी का पत्र" आदि रचनाएँ प्रगीत कोटि में आती है।

"आख्यानक काव्य" का सम्बन्ध सामान्य जनमानस में बसे लोक विश्वासों के आधार पर निर्भर करता है। भावावेश और सरल कल्पना इसकी प्रभाव क्षमता को बढ़ाते हैं। निराला काव्य में "राम की शक्ति पूजा" और "तुलसीदास" आख्यानक रचनाएँ मानी जाती हैं। इनमें **लोक-गाथा परम्परा** को अपनाया गया है। "राम की शक्ति पूजा" में प्रयुक्त लोक विश्वास को निराला ने समाज युक्त शैली में प्रस्तुत किया है। "तुलसीदास" भी लोक कथा के आश्रय पर विकास प्राप्त करती है। इन दोनों रचनाओं में महाकाव्यात्मक-औदात्य का पूर्ण विकास पाया जाता है।

"गीतिनाट्य" का रूप हमें निराला की रचना "पंचवटी" में देखने को मिलता है। नाट्य एवं गीति का मिश्रित रूप "गीतिनाट्य" कहलाता है। संक्षिप्तता स्वगत कथनों के प्रयोग द्वारा चरित्रोद्घाटन, और संवादों की मार्मिकता आदि मिलकर गीति-नाट्य को प्रभावोत्पादक बनाते हैं। इस प्रकार से हम देखते हैं कि निराला के इन चारों काव्य रूपों तथा इनसे इतर विविध काव्य रचनाओं में उनके व्यक्तित्व की अमिट छाप अंकित है। इन सीमित काव्य रूपों में निराला की असीम कल्पना शक्ति समायी हुई है और कितनी ही ऐसी रचनाएँ हैं जो इनकी प्रयोगशील प्रवृत्ति की परिचायक है।

21.6.2 काव्य-भाषा की सृजनात्मकता

निराला कुशल शब्द-शिल्पी हैं। उनकी भाषा विषय के अनुरूप कहीं-कहीं तत्सम बहुल है, तो कहीं क्लिष्ट। ठेठ देशी शब्दों के प्रयोग से उन्होंने भाषा में हास्य एवं व्यंग्य की सृष्टि की है। कहीं कहीं भाषा का रूप सरलता लिए है तो कहीं ओज से परिपूर्ण है।

कालक्रम की दृष्टि से निराला काव्य में तीन मोड़ पाये जाते हैं। प्रथम चरण की रचनाओं में—"परिमल", "अनामिका", "गीतिका" एवं "तुलसीदास" हैं। द्वितीय चरण में—"कुकुरमुत्ता", "अणिमा", "बेला" और —"नए पत्ते" एवं अन्तिम चरण में, —"अर्चना", "आराधना", और "गीत गुंज" को लिया जा सकता है। प्रथम चरण की रचनाओं में समास युक्त तत्सम बहुल शब्दावली का प्रयोग अधिक मात्रा में प्रयुक्त किया गया है। दूसरे चरण में बोलचाल की भाषा में कहीं व्यंग्य का तीखा रूप है तो कहीं हास्य-व्यंग्य की मिश्रित छाया। अंतिम चरण की रचनाओं में हिन्दी का विशुद्ध एवं सरल, स्पष्ट भक्ति-भाव सम्पन्न रूप मिलता है।

"राम की शक्ति पूजा" में निराला की भाषा का रूप समास युक्त तत्सम बहुल है। महाकाव्योचित औदात्य को कवि ने अपनी भाषा के द्वारा साकार किया है। यथा :

> विच्छुरित वाह्नि-राजीव-नयन-हत-लक्ष्यवान,
> लोहित लोचन-रावण मद-मोचन-महीयान,
> राघव-लाघव-रावण-वारण-गतयुग्म प्रहर।

सीधी सरल भाषा में भी निराला ने अपनी संवेदना को वाणी दी है। पूर्व पंक्तियों से सर्वथा विपरीत सरल भाषा का प्रयोग भी द्रष्टव्य है—

> वह तोड़ती पत्थर—
> देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर—
> वह तोड़ती पत्थर!

"अनामिका" में सरल पद-विन्यास का निराला ने अधिक प्रयोग किया है। अपनी बात को बड़ी सहजता से निराला व्यक्त करते हुए कहते हैं—

मेरे इस जीवन की है–
तू सरस साधना कविता।
मेरे तरू की है तू–
कुसुमित-प्रिय कल्पना-लतिका।

यहाँ जीवन और कविता के मध्य सरस सम्बन्ध को सरल-पद-विन्यास के द्वारा निराला ने उभारा है।

द्विरुक्ति का प्रयोग निराला का काव्य भाषा की एक अन्य विशिष्टता है। भाव को अधिक बल प्रदान करने के लिए शब्दों की आवृत्ति बड़ी सार्थक भूमिका निर्वाहित करती है। यथा–

i) दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या सुन्दरी परी-सी
धीरे .... धीरे .... धीरे।
× × ×

ii) बार .... बार .... गर्जन
× × ×

iii) सुन-सुन घोर वज्र हुंकार।

विषय के अनुरूप निराला ने शब्दों के आधार को छोटा बड़ा किया है। जहाँ छोटे शब्दों की आवश्यकता है वहाँ वे शिल्पी की सूक्ष्म कारीगरी का परिचय देते हैं–

हिल हिल
खिल खिल
हाथ हिलातें
तुझे बुलाते
विप्लव रव से छोटे ही हैं
शोभा पाते।

निराला काव्य की भाषा का एक महत्वपूर्ण रूप है उसका– पैनापन। व्यंग्य की सटीक चोट करते हुए निराला की भाषा का रूप भी तीखा हो जाता है। बेलाग भाषा में निराला को जो कहना होता है वह वे कह देते हैं। समाज के पूंजीपति वर्ग की शोषक मनोवृत्ति पर प्रहार करते हुए निराला की भाषा का आक्रामक रूप द्रष्टव्य है–

अबे सुन बे गुलाब,
भूल मत गर पाई खुशबू रंगों आब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा है कैपीटलिस्ट।

इसी प्रकार आडम्बरप्रिय व्यक्तियों की ढकोसलावृत्ति पर कटु चोट करते हुए निराला की भाषा का व्यंग्यात्मक रूप अवलोकनीय है–

मेरे पड़ोस के वे सज्जन,
करते प्रतिदिन सरिता मज्जन।
बोला मैं धन्यश्रेष्ठ मानव।

कहा जा सकता है कि निराला की सृजनशीलता को साकार करने में, उसे प्राणवान बनाने और उदात्तता की उच्च कोटि में पहुँचाने का जितना श्रेय उनकी भाव चेतना को है, उतना ही उनकी भाषा की सृजनशीलता को भी है।

21.6.3 काव्य की शब्दावली

निराला काव्य में भाषा की सृजनशीलता का जो स्वरूप उभर कर हमारे सामने आता है– उसका बहुत बड़ा श्रेय उनकी काव्य शब्दावली का है। काव्य शब्दावली में तत्सम शब्दों की समासयुक्त सरल एवं ठेठ देशी भाषा का रूप देखा जा सकता है। उर्दू एवं अंग्रेजी शब्दावली का प्रयोग भी विषय की आवश्यकता के अनुरूप निराला ने किया है। भाषा के इन विविध रूपों की जानकारी के लिए निराला काव्य की शब्द योजना का परिचय प्राप्त करना महत्वपूर्ण है।

तत्सम शब्द– निर्धूम, निरभ्र, दिगन्त, दुर्जय, प्रसर, निर्मम, निरामय, निःस्पृह, निष्णात, नीरज, गर्जितोर्मि, शरदिन्दु, मज्जनावेदन इत्यादि।

समासान्त शब्दावली— कलेदयुक्त, कामना-कुसुम, विच्छुरितन्वह्नि-राजीव-नयन-हतलक्ष्य-बाण, कुसुम-कपोलों, विरह-विटप, अलि-अलकों इत्यादि।

उर्दू शब्द— दग़दग़ा, खूब, गैर सिर्फ़, तूफ़ान, नाराज़, रंगो-आब, आसमानी, फ़व्वारे, फ़ीरोज़ी, सफ़ेद आदि।

ग्रामीण ठेठ देशी शब्दों का प्रयोग निराला ने व्यंग्य को साकार करने में किया है। शब्दों के मनमाने प्रयोग भी निराला ने बहुत किए हैं। निराला की शब्द रचना का सरल, देशी और व्यंग्यपूर्ण रूप द्रष्टव्य है—

पहले तूने मुझको खींचा,
दिल देकर फिर कपड़े-सा फींचा,
अरी, तेरे लिए घोड़ी
बाम्हन की पकाई
मैंने घी की कचौड़ी।

नाद एवं संगीत की निराला को गहरी जानकारी थी। भाषा के निर्माण में शब्दावली का संगीतमय प्रयोग उन्होंने प्रायः किया है। यथा—

नूपुरों में भी रून झुन रून झुन नहीं
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-साचुप, चुपचुप।

निराला की काव्य शब्दावली में प्रयोगशीलता असीम है। विषय के अनुरूप निराला ने इन शब्दों का भरपूर प्रयोग किया है। शब्दावली की पकड़ ही भाषा की सृजनात्मकता का मुख्य आधार है।

21.6.4 काव्य-प्रतीक

निराला का काव्य सौन्दर्य उनकी भावानुभूति पर जितना निर्भर करता है उतना ही प्रतीक-योजना पर भी। प्रतीक में भावों को साकार करने की अद्‌भुत शक्ति छुपी रहती है। निराला की काव्य चेतना ने जीवन के विविध पक्षों की मार्मिक अभिव्यक्ति की है और उसे प्रभावी बनाया है उनकी प्रतीक योजना ने।

निराला की प्रारम्भिक रचनाओं में प्रकृति और अध्यात्मक का, मिश्रित रूप देखने को मिलता है। "जूही की कली" से ही निराला ने अपनी अनुभूति को प्रतीकात्मक सजीवता प्रदान की है। माया पाश में आबद्ध व्याकुल आत्मा (कली) परमात्मा (मलय) की सहानुभूति और कृपा से बन्धन मुक्त हो आनन्दानुभव प्राप्त करती है, उसकी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति द्रष्टव्य है—

हेर प्यारे को सेज़ पास
नम्रमुखी हंसी खिली,
खेल रंग प्यारे संग।

"राम की शक्ति पूजा" और "तुलसीदास" में निराला की विराट प्रतीक योजना का स्वरूप देखने को मिलता है। महानाश के विराट प्रतीकों-आकाश, पर्वत, सागर आदि के द्वारा मन की तामसिक शक्तियों की अभिव्यक्ति निराला ने की है। रावण की आसुरी शक्ति का प्रतीकात्मक वर्णन निराला के शब्दों में इस प्रकार से वर्णित है—

रावण-महिमा श्यामा विभावरी अन्धकार
यह रूद्र राम-राम-पूजन-प्रताप तेज : प्रखार।

देखा जाए तो "राम की शक्ति पूजा" और "तुलसीदास" निराला की सर्वश्रेष्ठ प्रतीक योजना के अनुपम काव्य हैं। "कुकुरमुत्ता" और "नये पत्ते", "बेला" इत्यादि में प्रतीक योजना का सामान्य धरातल पर प्रयोग भी काफी सशक्त और व्यंग्यपूर्ण रहा है।

प्रकृति के विराट् साम्राज्य को निराला ने सन्ध्या, प्रभात, तरंगों एवं बादल के द्वारा प्रस्तुत किया है। बादल-राग में प्रतीक योजना की उत्कृष्ट छाया देखी जा सकती है—

तिरता है समीर सागर पर,
अस्थिर सुख पर दुःख की छाया—
जग के दग्ध हृदय पर
निर्दय विप्लव की प्लावित माया।

बादल को निराला ने कभी विप्लव का प्रतीक माना है तो कभी युद्ध की आकांक्षा से पूर्ण।

अन्धकार के आंगन में खेलने वाला शिशु भी बादल है और कृषक के जीवन की आशा भी बादल है। अतः कह सकते हैं कि "बादल" के द्वारा निराला ने अमित भावों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति की है।

"कुकुरमुत्ता" प्रतीक योजना की दृष्टि से निराला की सर्वाधिक क्रान्तिकारी रचना मानी जाती है। व्यंग्य शक्ति की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति का अद्वितीय रूप इस कविता की विशेषता है। महाप्राण निराला की चेतना ने जीवन के विविध रूपों को अपनी संवेदना का आधार बनाया है, यही कारण है कि उनकी प्रतीक योजना भी अनेक मुखी है। निराला के प्रतीकों में जीवन्तता और चित्रात्मकता का अद्भुत योग देखने को मिलता है।

21.6.5 काव्य-बिम्ब

निराला की बिम्ब योजना भी प्रतीक विधान के समान अनूठी है। जैसा कि आपको विदित ही है, बिम्ब दो प्रकार के माने जाते है– एक ऐन्द्रिय और दूसरे मानस। ऐन्द्रिय बिम्बों से तात्पर्य है जो हमारी किसी न किसी इन्द्रिय के आकर्षण का केन्द्र बनते हैं। दृश्य, आस्वादन, श्रवण इत्यादि की संवेदनाओं से युक्त बिम्ब इसी कोटि में आते हैं। बिम्ब की सफलता अपने भाव को साकार रूप देने में निहित है।

निराला जीवन के कुशल चितेरे हैं, जिसकी सार्थकता हम उनके बिम्ब विधान में देख सकते हैं। निराला की बिम्ब योजना का भावपूर्ण रूप "तुलसीदास" में देखा जा सकता है। रत्नावली का भावपूर्ण अंकन रूप ही नहीं अरूप को भी मूर्तिमान करने की सामर्थ्य रखता है। रत्नावली का विराट् योगिनी रूप द्रष्टव्य है –

बिखरी छूटीं शफरी अलकें
निष्पात नयन-नीरज पलकें,
भावातुर पृथु उरकी छलकें उपशमिता,
निःसंबल केवल ध्यान मग्न
जागी योगिनी अरूप-लग्न
वह खड़ी शीर्ण प्रिय भाव मग्न निरूपमिता।

पति के अनाहूत आने पर भावातुर रत्नावली के इस तेजोद्दीप्त बिम्ब के अतिरिक्त नारी की शान्त नीरव स्थित का बिम्ब भी द्रष्टव्य है। विधवा नारी की मनःस्थिति का भावपूर्ण अंकन निम्न पंक्तियों में साकार हुआ है–

वह इष्ट देव के मंदिर की पूजा सी
वह दीपशिखा सी शान्त भाव में लीन।

निराला ने जीवन के विविध पक्षों का बड़ा मार्मिक अंकन किया है। ऐसे में निराला के बिम्बों में अर्थ को साकार करने की शक्ति अपार रूप अपना लेती है। जीवन की नश्वरता को कवि ने "रेत" के बिम्ब द्वारा इस प्रकार से मूर्त्त किया है–

स्नेह निर्झर बह गया है
रेत ज्यों तन रह गया है।

इसी प्रकार से सर्वत्र ही निराला-काव्य में बिम्बों का प्रभावी रूप देखा जा सकता है। चाहे बादल राग का "बादल" हो या "कुकुरमुत्ता" और "गुलाब"। निराला की काव्य प्रतिभा ने जिस भी दिशा में पग उठाया है उसी दिशा में ससीमता के दायरे को पार कर गए हैं– जिसकी पुष्टि उनके काव्य बिम्बों के सफल चित्रण द्वारा की जा सकती है।

21.6.6 अप्रस्तुत विधान

कवि अपने काव्य को भाव और सौन्दर्य से सजाता है। भाव की गहराई, ऊँचाई और विस्तार अनुभूति की मार्मिकता से सम्बन्ध रखते हैं। कवि अपनी भाव चेतना को अभिव्यक्ति के सांचे में ढालता है। उसके लिए वह अपने शिल्प विधान की रचना करता है। शिल्प विधान में जो स्थान भाषा, प्रतीक और बिम्ब योजना का है, वही स्थान अप्रस्तुत योजना या अलंकार विधान का है। अप्रस्तुत योजना कवि की कुशल कल्पना शक्ति पर निर्भर करती है।

निराला काव्य में अनुप्रास, रूपक, पुनरुक्ति, उपमा, यमक इत्यादि अलंकारों के अतिरिक्त संगीत पर आधारित नाद जन्य सौन्दर्य का विशेष प्रयोग देखने को मिलता है। छायावादी कवियों का सर्वाधिक प्रिय अलंकार मानवीकरण भी निराला काव्य में बहुधा प्रयुक्त हुआ है। निराला काव्य में अलंकार योजना के कुछ मुख्य रूप द्रष्टव्य हैं :

अनुप्रास— पय पीयूषपूर्ण पानी से
भरा प्रीति का प्याला है।

एक वर्ण की आवृत्ति के रूप में अनुप्रास का प्रयोग "नील नयन", "सरस साधना", "सौन्दर्य सरोवर", "सुख-स्मृति", "कमल-कामिनी" इत्यादि में तथा "नव-नव", "पग-पग", "जन-जन", "सुमन-सुमन", "झर-झर", "पवन-पवन" इत्यादि में **पुनरूक्ति प्रकाश** का सौन्दर्य देखा जा सकता है।

उपमा —"वह इष्ट देव के मन्दिर की पूजा सी"
—"क्रूर काल-ताण्डव की स्मृति रेखा सी'
—"दीप शिखा सी शान्त भाव में लीन"
—"टूटे तरू की छुटी लता सी दीन"

यह उपमा अलंकार का अद्भुत-सौन्दर्य-सम्पन्न उदाहरण है।

मानवीकरण —"सन्ध्या सुन्दरी परी सी"
—"सखि वसन्त आया"
—"भारति जय विजय करे"
—"खुलती मेरी शेफाली"

इन मुख्य अलंकारों के अतिरिक्त अन्य सभी प्रमुख अलंकार निराला के अप्रस्तुत विधान में सौन्दर्य का आधान करते हैं।

21.6.7 छंद विधान

आप जानते हैं कि अक्षर, अक्षरों की संख्या एवं क्रम मात्रा, मात्रा-गणना तथा यति-गति आदि से सम्बन्धित विशिष्ट नियमों से नियोजित पद्य रचना छंद कहलाती है। निराला को छायावादी युग के कवियों में सर्वाधिक स्वच्छन्द प्रकृति का कवि माना जाता है। व्यक्ति की मुक्ति के समान वे काव्य की मुक्ति में विश्वास करते हैं। निराला ने छंद के बंध से कविता को मुक्त किया।

निराला के प्रथम काव्य संग्रह "अनामिका" का आलोचक-वर्ग ने अनादर करते हुए उसमें प्रयुक्त छन्द को "रबरछन्द", "केंचुआ छंद" कह कर हंसी उड़ाई किन्तु निराला के लिए इन सभी मान्यताओं का कोई अर्थ नहीं था। मुक्त छंद की दृष्टि से "जुही की कली" का ऐतिहासिक महत्व है। हिन्दी कविता में मुक्त छंद का प्रथम प्रभात यहीं से माना जाता है। घनाक्षरी छंद के आधार पर नया प्रयोग करते हुए निराला ने "जुही की कली" की छंद योजना बनाई। समग्र रूप में लय के कारण उनकी रचना छन्दात्मक है तथा वर्ण, मात्रा तथा तक के बन्धन के अभाव में मुक्त है।

निराला के मुक्त छंद को अपनाने के पीछे आलोचकों की अपनी-अपनी धारणायें हैं। कुछ इसे अंग्रेजी साहित्य के अनुकरण का फल मानते हैं किन्तु अधिकांश की दृष्टि में निराला को यह प्रेरणा बंगला काव्य से मिली।

21.7 निराला काव्य में सांस्कृतिक-सामाजिक नवजागरण

हम पहले ही जान चुके हैं कि छायावादी काव्यान्दोलन का उदय नवजागरण काल की बेला में हुआ। उस समय देश में सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय धरातल पर एक नयी क्रान्ति का सूत्रपात हो चुका था। भारतीय जनमानस में छायावाद या स्वच्छन्दतावाद के उदय से पूर्व आध्यात्मिक एवं राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का प्रणयन श्री अरविन्द, रानाडे, राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, स्वामी रामतीर्थ, विवेकानन्द, टैगोर एवं गांधी आदि के द्वारा प्रारम्भ हो चुका था। अपने युग की चेतना से कवि स्वतः ही प्रेरणा प्राप्त करता है। कवि निराला पर अपने युग का प्रभाव तो पड़ा ही, साथ में रामकृष्ण मिशन से बहुत साल तक सम्बद्ध रहने के कारण मिशन की विचारधारा का विशेषकर स्वामी विवेकानन्द के ओजपूर्ण व्यक्तित्व का अधिक प्रभाव पड़ा। यही कारण है कि उनका काव्य राष्ट्रीय सांस्कृतिक नवजागरण की प्रभाती का काव्य माना जाता है।

निराला की प्रारम्भिक रचनाओं में अध्यात्म के प्रति गहरी आस्था दिखाई देती है। उनकी "तुम और मैं" कविता इस दृष्टि से एक विशेष अर्थ रखती है। अद्वैत दर्शन की पीठिका पर कवि ने इसकी रचना की है किन्तु इसके साथ-साथ कवि की सांस्कृतिक भावना भी स्पष्टतया देखी जा सकती है।

अध्यात्म को आत्मसात् करने के पश्चात ही निराला ने सांस्कृतिक नवजागरण का जयघोष अपने काव्य में किया है। "गीतिका", "राम की शक्ति पूजा" एवं "तुलसीदास" में निराला की सांस्कृतिक रुचि का विशेष परिचय प्राप्त होता है। माँ भारति के गौरवपूर्ण रूप को कवि ने जिस आस्था के साथ प्रस्तुत किया है, वह अपने में एक प्रार्थना का ही रूप है–

भारति जय विजय करे।
कनक शस्य कमल धरे।
लंका पद तल-शत दल
गर्जितोर्मि सागर जल
धोता शुचि चरण युगल
स्तव कर बहु अर्थ भरे।

कवि जब भी संस्कृति के समुज्ज्वल एवं उन्नत पक्ष का उद्घाटन करता है, तब उसमें राष्ट्रीय एवं सामाजिक जीवन स्वतः ही समाये रहते हैं, क्योंकि संस्कृति का अपने राष्ट्र और समाज से गहरा एवं अटूट सम्बन्ध है। निराला "जागरण" का महामन्त्र फूंकते हैं तो वह एकांशी न होकर सम्पूर्ण अर्थ में ही जागरण है। "जागो फिर एक बार" में निराला ने भारतवासियों को उद्घोषित करते हुए कहा है–

तुम हो महान् तुम सदा हो महान्
है नश्वर यह दीन भाव
कायरता, पामरता,
ब्रह्म हो तुम
पद रज भी है नहीं
पूरा यह विश्व भार–
जागो फिर एक बार

सामाजिक नवजागरण की दृष्टि से निराला काव्य का वह अंश महत्वपूर्ण है जहाँ उन्होंने समाज में फैली रूढ़ियों और विसंगतियों पर गहरी चोट की है। ऐसे में निराला का स्वर विद्रोही रूप अपना लेता है। एक जागरुक कलाकार होने के नाते कवि को अपने समाज की पतनोन्मुख स्थिति देखकर मार्मिक पीड़ा अनुभव होती है। "सरोज स्मृति" में कवि की इसी पीड़ा को देखा जा सकता है, जहाँ कवि जाति के संकीर्ण बन्धनों पर प्रहार करता है।

सोचा मन में हत बार-बार–
"ये कान्यकुब्ज-कुल कुलांगार
खाकर पत्तल में करें छेद
इनके कर कन्या, अर्थखेद
इस विषय वेलि में विष ही फल,
यह दग्ध मरुस्थल, नहीं सुजल"!

"बादल राग" और "कुकुरमुत्ता" में भी सामाजिक जीवन के लिए अभिशाप बने व्यक्तियों पर कवि ने कटु व्यंग्य किया है। इसमें कवि का लोकहितवादी रूप विशेष उभरकर आता है। कुकुरमुत्ता में पूंजीपति की शोषक मनोवृत्ति पर चोट करते हुए निराला "अबे, सुन बे गुलाब" कहकर उसे फटकारते और दुतकारते हैं।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि निराला काव्य में सांस्कृतिक एवं सामाजिक नवजागरण का जो गान है, वह अपने राष्ट्र को गौरवपूर्ण देखने का रागात्मक भाव लिए हैं।

21.8 काव्य वाचन तथा संदर्भ सहित व्याख्या

अब तक आप निराला के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का पर्याप्त अध्ययन कर चुके हैं। यहाँ निराला की दो कविताओं के निर्धारित अंश का आप वाचन करके उनकी संदर्भ एवं प्रसंग सहित व्याख्या करना जान सकेंगे। निर्धारित अंश में कुछ पद्यांशों की व्याख्या यहाँ दी जा रही है तथा कुछ के संकेत दिए जा रहे हैं। संकेतित तथा शेष अंशों की व्याख्या का आप स्वयं अभ्यास करें। कविता के वाचन के बाद आप उसके सार एवं प्रतीकार्थ को भी जान सकेंगे। निराला की ये महत्वपूर्ण कविताएँ निराला को काफी हद तक स्पष्ट कर देती है। आशा है कि निराला को समग्रतः समझ पाने में अब आपको कोई कठिनाई न होगी। आइए "कुकुरमुत्ता" तथा "बादल राग" कविता के निर्धारित अंशों का वाचन, एवं उनकी व्याख्या करें।

काव्य-वाचन

"कुकुरमुत्ता"

आया मौसिम खिला फ़ारिस[1] का गुलाब
बाग़ पर उसका जमा था रोबोदाब[2]
वहीं गन्दे में उगा देता हुआ बुत्ता:
पहाड़ी से उठा सर ऐंठ कर बोला कुकुरमुत्ता—

"अबे, सुन बे, गुलाब
भूल मत, गर पाई ख़ुशबू रंगोआब[3]
ख़ून चूसा खाद का तूने अशिष्ट[4]
डाल पर इतरा रहा कैपीटलिस्ट[5]

कितनों को तूने बनाया है गुलाम,
माली कर रक्खा, सहाया जाड़ा-घाम[6]
हाथ जिसके तू लगा,
पैर सर पर रख वह; पीछे को भगा

जानिब[7] औरत की, मैदान जंग छोड़
तबेले को टट्टू जैसे तंग तोड़
शाहों, राजों, अमीरों का रहा प्यारा
इसलिए साधारणों से रहा न्यारा

वरना क्या हस्ती है तेरी पोच[8] तू
कांटों से ही है भरा, यह सोच तू
कली जो चटकी अभी,
सूखकर काँटा हुई होती कभी

रोज़ पड़ता रहा पानी,
तू हरामी खानदानी
चाहिए तुझको सदा मेहरून्निसा[9]
जो निकाले, इत्र-रू ऐसी दिशा;
बहाकर ले चले लोगों को, नहीं कोई किनारा,
जहाँ अपना नहीं कोई भी सहारा,
ख्वाब में डूबा चमकता हो सितारा,
पेट में डँड पेलते चूहे. ज़बाँ पर लफ़्ज़[10] प्यारा,

देख मुझको, मैं बढ़ा,
डेढ़ बालिश्त[11] और ऊँचा हूँ चढ़ा,
और अपने से उगा मैं,
बिना दाने का चुगा मैं,

क़लम मेरा नहीं लगता,
मेरा जीवन आप जगता,
तू है नकली मैं हूँ मौलिक,
तू है बकरा. मैं हूँ कौलिक[12],

तू रंगा और मैं धुला.
पानी मैं तू बुलबुला:
तूने दुनियाँ को बिगाड़ा,
मैंने गिरते से उभाड़ा

तूने रोटी छीन ली. ज़नरवा[13] बना,
एक की है तीन दीं मैंने सुना?
काम मुझ से ही सधा है.
शेर भी मुझ से गधा है।

---

1. फारस देश, जहाँ के रहने वाले अब पारसी कहलाते हैं और जहाँ की भाषा फ़ारसी है 2. झांसा या रुआब 3. रंग और चमक-दमक 4. असभ्य 5. पूंजीपति 6. सर्दी-गर्मी 7. आकर्षित और उन्मुख 8. नीच, अधम या तुच्छ 9. नूरजहाँ का वास्तविक नाम (विलासी और अभिजात परिवेश का सूचक) 10. अक्षर 11. डेढ़ हाथ 12. वह कौल वंश जो बकरे की बलि चढ़ाते थे 13. औरत की तरह बोलने या चेष्टा करने वाला, पर जो न औरत है और न पुरुष

चीन में मेरी नक्ल, छाता बना,
छत्र भारत का वहीं, कैसा तना।
सब जगह, तू देख ले,
आज फिर रूप पैराशूट ले।

विष्णु का मैं ही सुदर्शन चक्र हूँ—
काम दुनियाँ में पड़ा ज्यों वक्र हूँ—
उलट दे, मैं ही जसोदा की मथानी,[1]
और भी लम्बी कहानी।
सामने ला, कर मुझे बेंड़ा,
देख कैंड़ा—

तीर से खींचा धनुष मैं राम का,
काम का—
पड़ा कंधे पर हूँ हल बलराम का।
सुबह का सूरज हूँ मैं ही,
चाँद मैं ही शाम का।
कलजुगी मैं ढाल,
नाव का मैं तला नीचे और ऊपर पाल।

मैं ही डाँड़ी से लगा पल्ला,
सारी दुनियाँ तोलती गल्ला,[2]
मुझ से मूँछें, मुझ से कल्ला[3]।
मेरे लल्लू, मेरे लल्ला।

कहे रुपया या अधन्ना,
हो बनारस या न्यवन्ना,
रूप मेरा, मैं चमकता,
गोला मेरा ही बमकता।

लगाता हूँ पार मैं ही,
डुबाता मझधार में ही;
डब्बे का, मैं ही नमूना,
पान में ही, मैं ही चूना।

बादल राग

तिरती हैं समीर-सागर[4] पर
अस्थिर सुख पर दुख की छाया—
जग के दग्ध[5] हृदय पर
निर्दय विप्लव[6] की प्लावित[7] माया—
यह तेरी रण-तरी[8]
भार आकांक्षाओं से,[9]
घन, भेरी-गर्जन से सजग सुप्त अंकुर
उर में पृथ्वी के, आशाओं से
नवजीवन की, ऊँचा कर सिर,
ताक रहे हैं, ऐ विप्लव के बादल।
फिर फिर।
बार-बार गर्जन
वर्षण है मूसलधार,
हृदय थाम लेता संसार,
सुन-सुन घोर वज्र-हुंकार
अशनि-पात[10] से शायित[11] उन्नत शत शत वीर,

1. दही मथने का डंडा 2. अनाज 3. जबड़ा 4. हवा रूपी सागर 5. जलता हुआ या अशान्त 6. क्रान्ति 7. जिसपर पानी चढ़ गया हो 8. युद्ध रूपी नौका 9. इच्छाओं से 10. वज्रपात 11. सोया हुआ या धराशायी

क्षत-विक्षत हतें अचल शरीर
गगन-स्पर्शी स्पर्द्धा-धीर[1]।
हँसते हैं छोटे पौधे लघुभार—
शस्य अपार,
हिल हिल,
खिल खिल,
हाथ हिलाते,
तुझे बुलाते,

विप्लव-रव से छोटे ही शोभा पाते।
अट्टालिका[2] नहीं है रे
आतंक-भवन,
सदा पंक पर ही होता
जल-विप्लव-प्लावन,
क्षुद्र प्रफुल्ल[3] जलज से
सदा छलकता नीर
रोग-शोक में भी हंसता है
शैशव का सुकुमार शरीर।
रुद्ध[4] शोक, है क्षुब्ध तोष,[5]
अंगना-अंग से लिपटे भी
आतंक-अंक पर कांप रहे हैं
घनी, वज्र-गर्जन से बादल!
त्रस्त नयन-मुख ढांप रहे हैं।
जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर
चूस लिया है उसका सार,
हाड़ मात्र ही हैं आधार,
ऐ जीवन के परावार[6]!

कविता का सार

कुकुरमुत्ता :

कुकुरमुत्ता कविता में निराला की प्रगतिशील दृष्टि का स्वर मुखर है। छायावादी काव्य रचना से इसका भाव और अभिव्यक्ति शिल्प सर्वथा भिन्न है। व्यंग्य में पगे आक्रोश को कवि ने कुकुरमुत्ता और गुलाब के माध्यम से प्रकट किया है। कुकुरमुत्ता जन चेतना एवम् सर्वहारा वर्ग का प्रतीक है और गुलाब पूंजीपति संस्कृति का।

भारतीय कुकुरमुत्ता विदेशी गुलाब पर चोट करते हुए उसे अपनी तुलना में छोटा और तुच्छ मानता है। गुलाब को वह खाद का खून चूस कर बढ़ने वाला कहता है, वह शोषक और परजीवी है। कुकुरमुत्ता अपने बलबूते पर उगा है और अपनी प्रभाव सीमा को वह ब्रह्म के समान सर्वत्र विद्यमान बतलाता है। गुलाब कुकुरमुत्ता के सामने मौन भाव से खड़ा सब कुछ सुनने को विवश है। काव्य की भाषा बहुत नुकीली और तीखी है और कहीं-कहीं साहित्य की गरिमा को भी आक्रोश के आवेग में पार कर जाती है।

बादल राग :

बादल राग कविता निराला की क्रान्तिकारी रचना है। इसमें कवि के प्रगतिशील रूप का स्पष्ट अंकन मिलता है। बादल को यहाँ क्रान्ति के अग्रदूत के रूप में निराला ने बतलाया है, जिसका स्वागत सदैव छोटे व्यक्ति अहं-शून्य कृषक करते हैं। पूंजीपति बादल की क्रान्तिकारी घोर गर्जन से संत्रस्त रहते हैं। उनकी अट्टालिकाओं में आतंक का राज्य है जबकि कृषक क्षीर्ण-शरीर होने पर भी प्रसन्न है। उसके लिए बादल का अर्थ विप्लव और वीरता है। क्रान्ति का जन्म सदैव पंक से होता है। विप्लव के रव से छोटे ही शोभा पाते हैं। यही इस कविता का मूल आशय है।

---

1. होड़ में आकाश को छूने वाले वीर 2. ऊँचे भवन 3. खिला हुआ 4. रुका हुआ 5. संतोष 6. सागर

कुकुरमुत्ता

व्याख्या भाग

"आया मौसिम खिला.........................पीछे को भगा।"

प्रसंग एवं संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" की प्रगतिशील रचना "कुकुरमुत्ता" से ली गई हैं। "कुकुरमुत्ता" की रचना का स्वर और शैली सर्वथा नूतन है। छायावादी विचारधारा यहाँ से मोड़ लेती स्पष्ट होती है। इन पंक्तियों में कवि ने कुकुरमुत्ता के माध्यम से गुलाब पर कटु व्यंग्य किया है। "गुलाब" पूंजीपति संस्कृति की शोषक मनोवृत्ति का प्रतीक है और कुकुरमुत्ता सर्वहारा वर्ग का। कुकुरमुत्ता फारिस के गुलाब के समकक्ष खड़ा हो, निर्भीक वाणी में अपनी अस्मिता को व्यक्त करते हुए कह रहा है–

व्याख्या : कवि के शब्दों में–फारिस का विदेशी गुलाब बाग में खिल कर अपना प्रभुत्व जमाये शान से खड़ा है। उसकी शान को चुनौती देता हुआ कुकुरमुत्ता पास की पहाड़ी से सिर ऊँचा कर अकड़ कर कहता है –अबे! गुलाब तू यह मत भूल कि तूने जितनी भी बाह्य चमक-दमक और खुशबू प्राप्त की है वह सब तेरी है, वह तेरे बलबूते का परिणाम नहीं है। गंदगी से उत्पन्न कुकुरमुत्ते की दो टूक वाणी ने गुलाब को यह भी जता दिया है कि वह परजीवी है। गुलाब खाद का खून चूस-चूसकर बड़ा हुआ है। पुनः कुकुरमुत्ता उसे नीचा दिखाते हुए अशिष्ट और असभ्य कहता है। कुकुरमुत्ते की दृष्टि में यह विदेशी गुलाब ही पूंजीपति है। इस पूंजीपति रूपी गुलाब के क्रूर कर्मों को गिनाते हुए कुकुरमुत्ता कहता है कि कितनों को तूने गुलाम बनाकर रखा है। अपने वैभव विलास के लिए औरों को गर्मी-सर्दी की भीषणता सहने के लिए यह गुलाब विवश करता है। हे गुलाब तेरी महिमा बड़ी विचित्र है। तुझे प्राप्त करने के उन्माद ने सभी को जीवन की भटकन में लगा रखा है।

विशेष : "कुकुरमुत्ता" निराला की सर्वाधिक चर्चित रचना मानी जाती है "तुलसीदास" और "राम की शक्ति पूजा" जैसी उदात्त कोटि की उत्कृष्ट छायावादी रचनाओं के बाद एकाएक यहाँ आमूल परिवर्तन दृष्टिगत होता है। 1942 के द्वितीय युद्ध के पश्चात् विश्व-भर में पुनः जोर पकड़ रहे पूंजीवाद की कवि ने यहाँ जमकर खबर ली है।

काव्य की भाषा-शैली में ठेठ देशी शब्दों के प्रयोग पर कवि ने विशेष बल दिया है। उर्दू-फारसी के शब्दों का प्रयोग भी उन्मुक्त रूप से देखने को यहाँ मिलता है।

हास्य व्यंग्य का पैनापन इस काव्यांश की एक विशिष्टता है।

"जानिब औरत की...................इत्र-रू ऐसी दिशा।"

प्रसंग एवं संदर्भ : उपरोक्त काव्यांश सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" रचित स्वच्छंद छंद की कृति "कुकुरमुत्ता" से उद्धृत है। कुकुरमुत्ता गुलाब के प्रति अपने आक्रोश को व्यक्त करते हुए उसे अपने से हर दृष्टि में छोटा और तुच्छ बतलाता है। कवि की पूंजीपति वर्ग के प्रति तीखी टिप्पणी यहाँ विशेष अर्थ रखती है। गुलाब के दोषों को उजागर करते हुए कुकुरमुत्ता अपनी भाषा के चाबुक का प्रयोग बेलगाम भाव से करता हुआ कहता है–

व्याख्या : अबे। और सुन बे। जैसे तिरस्कारपूर्ण शब्दों से कवि पहले ही गुलाब को सम्बोधित कर नीचा दिखा चुका है। अपने कथन को आगे बढ़ाते हुए कुकुरमुत्ता गुलाब को खरी-खोटी सुनाते हुए कहता है कि तेरे आकर्षण में उच्च वर्ग के अमीर शहनशाह और राजे उसी प्रकार खिंचे चले आते हैं जैसे नारी के आकर्षण से परवश लोग लड़ाई का मैदान छोड़ कर या तबेले को टट्टू जैसे तोड़कर भाग खड़े होते हैं। यही कारण है कि गुलाब साधारण जन के दायरे से सदैव दूर रहा है। पुनः अपने आक्रोश को उड़ेलते हुए कुकुरमुत्ता व्यंग्य की भाषा में गुलाब से कहता है कि हे अधम यदि यह उच्च वर्ग तुझे अपनी शरण न देता तो सोच तेरी स्थिति कितनी दयनीय होती। अभी-अभी जो तेरी कली खिली है, वहीं सूखकर कांटा बन जाती अर्थात् तेरी चमक-दमक भी तेरे इन चाहने वालों पर निर्भर करती है जो अपने को साधारण व्यक्तियों से ऊँचा मानते हैं। उत्तेजना और आक्रोश से भरा कुकुरमुत्ता गुलाब के दोषों पर प्रहार करता हुआ "हरामी" जैसे अपशब्दों के अस्त्र का प्रयोग कर उसके खानदान अर्थात् परंपरा से चली आ रही दूसरों के अधिकार छीनने की वृत्ति पर भी चोट करता है। "रोज़ पानी पड़ना" भी यहाँ मुहावरे के व्यंग्य रूप में कवि ने प्रयुक्त किया है अर्थात् निरन्तर अपने लिए खाद पानी तू लेता रहा और तू मुझे देख मैं अपनी शक्ति पर खड़ा हूँ, मेरा कोई पोषक नहीं है। कुकुरमुत्ता पुनः गुलाब का सम्बन्ध विलासी मनोवृत्ति के लोगों से जोड़ता हुआ कहता है कि तुझे तो मेहरुन्निसा (नूरजहाँ का वास्तविक नाम) जैसे विलासी और अभिजात परिवेश वाले प्रदर्शन प्रिय व्यक्ति ही प्रिय हैं जो तेरा प्रयोग इत्र आदि के रूप में करते हैं।

विशेष : कुकुरमुत्ते की पूंजीपति वर्ग के प्रति बेलाग भाषा इस काव्यांश की मुख्य विशेषता है। पूंजीपति संस्कृति के लोगों की विलासिता और प्रदर्शन प्रिय वृत्ति को कुकुरमुत्ते ने यहाँ उधेड़ कर रख दिया है। यहाँ गुलाब की दयनीय अवस्था कुकुरमुत्ता के बड़बोले व्यक्तित्व के सामने साकार होती है। उर्दू फारसी के शब्दों का उन्मुक्त प्रयोग कथ्य को प्रभावपूर्ण बनाता है। राम विलास शर्मा जैसे मर्मज्ञ आलोचकों ने कुकुरमुत्ते की भाषा शैली को "गुलाबी उर्दू" का नाम दिया है।

कुकुरमुत्ते की भाषा यत्र तत्र साहित्यिक सीमा का भी अतिक्रमण कर जाती है जिसे आक्रोश के अतिरेक की अवस्था माना जा सकता है।

"बहाकर के चले .... मैं हूँ मौलिक।"

प्रसंग एवं संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ .... कुकुरमुत्ता .... गुलाब के दिखावटी-बनावटी रूप पर व्यंग्य करते हुए .... निराला ....

व्याख्या : तू तुच्छ और अधम अपनी मोहक-माया के भ्रम में बहाकर .... विलासी मनोवृत्ति में .... किनारा नहीं ....। तेरे ही स्वप्नों में ....। सितारे डूबे .... रूपमोह में ....। चाहे पेट की ज्वाला न बुझे पर .... मोह और आकर्षण-प्रदर्शन ....। देख मैं तुझसे कितना ....। .... बीज और खाद के बिना ही .... और तू ....। मेरे सामने तेरी हस्ती ....। मैं सर्वथा श्रेष्ठ और तू ....। मैं आत्मनिर्भर और तू परजीवी ....। मेरा कलम भी नहीं .... और तू। मैं अपने बल पर ....। मैं मूल हूँ .... असली हूँ और तू ....। तू बकरा है .... और मैं ....।

विशेष : कुकुरमुत्ता अपनी श्रेष्ठता ....। पूंजीपति संस्कृति के लोग खोखले .... पराश्रित ....। सर्वहारा वर्ग के स्वाश्रित .... सशक्त।
भाषा सशक्त .... विलक्षण ....। प्रगतिशील दृष्टि .... सामाजिक विद्रूपताओं पर ....। आक्रोश की मुखरता ....। उर्दू शब्दों का सुंदर प्रयोग ....
"तू रंगा और मैं धुला .... शेर भी मुझ से गधा है।"

प्रसंग एवं संदर्भ : उपरोक्त काव्यांश सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" रचित "कुकुरमुत्ता" नामक कविता से अवतरित है। कुकुरमुत्ता अपनी महत्ता को स्थापित करता हुआ गुलाब को अपने समक्ष प्रभाव शून्य बना देता है। अपने उन्नत रूप की तुलना में कुकुरमुत्ता गुलाब को बौना सिद्ध करते हुए कह रहा है–

व्याख्या : गुलाब का रंग भी अपना नहीं, औरों को चूसकर, उनका हक मारकर इसने अपने पर रंग चढ़ाया है। "रंगा होना" में व्यंजना-शक्ति बडी गहरी उभर कर आयी है। गुलाब की तुलना में कुकुरमुत्ता अपने को उजला और धुला हुआ मानता है और जितना धुलता जाता है उतना ही निखरता भी। वह अपने को पानी की तरह स्थिर और कुकुरमुत्ते को बुलबुले के समान अस्थिर अर्थात् क्षणजीवी मानता है। गुलाब के दोषों को गिनाते हुए कुकुरमुत्ता कहता है कि तू तो दुनिया को बिगाड़ने वाला है। यहाँ क्योंकि गुलाब शोषक पूंजीपति है, सामाजिक बुराई का प्रतीक, इसलिए वह दुनिया को अपनी बाह्य चमक-दमक से आकर्षित कर बिगाड़ता है जबकि कुकुरमुत्ता अपने को निम्न वर्ग का प्रतिनिधि मानते हुए उनको सहारा देता है। वह गिरते हुओं को सम्भालता है। गुलाब दूसरे की रोटी छीनकर उसे दरिद्र बना देता है, क्योंकि वह शोषक है, पूंजीवादी संस्कृति का पोषक है। कुकुरमुत्ता गुलाब की क़तई परवाह नहीं करता। वह तो पलट कर एक की तीन-तीन सुनाने का अभ्यस्त है। गुलाब को चेतावनी की भाषा म सुनाता हुआ कुकुरमुत्ता कहता है कि गुलाब तेरा समय चला गया, अब मुझ जैसे जन शक्ति के प्रतीक सर्वहारा जीव का युग आया है। मैं ही सबके काम आ सकता हूँ। मेरे सामने तो शेर भी गधा है अर्थात् जो अपने को शेर की तरह समझ कर दहाड़ते हैं वे मेरी शक्ति के आगे गधे के समान हैं और वह गधा तू ही है।

विशेष : "कुकुरमुत्ता" सन् 1942 के युद्ध की घटनाओं के काल की रचना है। समस्त यूरोप में पूंजीवादी वर्ग की शोषक और क्रूर मनोवृत्ति उजागर हो चुकी थी। कवि निराला ने कुकुरमुत्ता के माध्यम से जतला दिया कि गुलाब का समय अब समाप्त हो गया है और जन शक्ति के प्रतीक कुकुरमुत्ते का जीवन अब सार्थक माना जायेगा। रोटी छीनने वालों को जो अपने को शेर समझते हैं और यह मानते हैं कि हमारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता, उसे वह अपने सामने–"गधे सा" गया बीता मानता है।

भाषा में व्यंग्य और मुहावरों के चलते रूप के कारण कथ्य की सजीवता यहाँ द्रष्टव्य है।

''चीन में मेरी नकल .... हक बलराम का।''

प्रसंग एवं संदर्भ : ....

....

....

व्याख्या : कुकुरमुत्ता अपने प्रभाव की सीमा बताते हुए ....। चीन का .... भारत का ....। सर्वव्यापकता .... ब्रह्म के समान। आधुनिक पैराशूट ....। विष्णु भगवान का सुदर्शन ....। यशोदा-मैय्या की ....। राम का .... बलराम का ....।

विशेष : कुकुरमुत्ता के रूप और आकार से साम्य रखने वाले .... चर्चा की गई है। अपनी सत्ता को कुकुरमुत्ता ....। कवि की निरीक्षण शक्ति ....। कुकुरमुत्ते की इन .... गहरी व्यंजनाएँ ....। ''सुबह का सूरज मैं ही .... मैं ही चूना।''

प्रसंग एवं संदर्भ : प्रस्तुत काव्यांश सूर्यकान्त त्रिपाठी ''निराला'' की काव्य कृति ''कुकुरमुत्ता'' से उद्धृत है। कुकुरमुत्ता अपनी विशिष्टता का बखान करते हुए गुलाब को निरन्तर कुछ न कुछ सुनाता रहा है। अपने प्रभुत्व की गरिमा में उसे गुलाब एकदम गया बीता नज़र आता है। गुलाब को अपनी महिमा का ज्ञान करवाते हुए कुकुरमुत्ता कहता है–

व्याख्या : कुकुरमुत्ता अपने को प्रातःकालीन सूर्य के समान प्रभावपूर्ण मानता है जो जीवन में फैले निराशा रूपी अन्धकार को दूर करने के लिए उदित हुआ है। निम्न वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए कुकुरमुत्ता यह संकेत देता है कि अब मेरी शक्ति का सूर्य चमकेगा और गुलाब की संस्कृति के लोग पूंजीपति अन्धेरे के समान भागेंगे। शाम का चाँद मैं ही हूँ, मैं ही सुख और आशा का केन्द्र हूँ। कलयुग में मेरा ही आकार ढाल रूप में तू देख सकता है। नाव जो पार लगाती है; उसका ''तला'' भी मैं ही हूँ और नाव की गति को सही दिशा में बहने की सहायता देने वाला ''पाल'' भी मैं ही हूँ। नौका के अस्तित्व के लिए तले और पाल, दोनों का ही विशेष स्थान है, इसके बिना नौका व्यर्थ है। कुकुरमुत्ता कहता है कि मैं भी जीवन रूपी नौका का अनिवार्य भाग हूँ। मैं ही तराज़ू में लगा हुआ पलड़ा हूँ जिस पर सारी दुनिया अपना सामान (गल्ला) तौलती है। आगे की पंक्तियों में कवि ने तुकबन्दी की लगन में कुकुरमुत्ता की शक्ति और प्रभाव को ही रेखांकित किया है। कुकुरमुत्ते को अपना प्रभाव रुपये, आने, बनारस, न्यवन्ना आदि वस्तुओं और स्थानों पर छाया हुआ दिखाई देता है। अपनी शक्ति का परिचय वह गोले के समान बमकने में मानता है। अन्त में कुकुरमुत्ता गुलाब को यह बोध करा देता है कि मैं ही सब को पार लगा सकता हूँ और मैं चाहूँ तो मंझदार में डुबो दूँ। क्योंकि सर्वहारा वर्ग की शक्ति जब जाग उठती है तब वह ही जीवन को संचालित करने की अपूर्व ताकत का पर्याय बन जाती है। अन्तिम दो पंक्तियों में कुकुरमुत्ता अपने को पान का डिब्बा और चूना, दोनों ही बतलाता है। व्यंग्य की दृष्टि से देखें तो कुकुरमुत्ता अपनी पहचान को दूर-दूर तक फैला हुआ सर्वत्र देखता है। इसी क्रम में आम आदमी के जीवन का अभिन्न अंग बना ''पान'' और ''चूना'' भी वह अपने को मानता है।

विशेष : कुकुरमुत्ते की गर्वोक्ति की भाषा इस काव्यांश का महत्वपूर्ण भाग है। काव्य की भाषा ठेठ देशी शब्दों में प्रयोग, मुंहावरेदार, एवं उर्दू फारसी के शब्दों से सम्पन्न है।

कुकुरमुत्ता अपनी प्रभुता को सिद्ध करने की झोंक में बहुत कुछ अटपटा और असंगत भी कह गया है, जो आक्रोश के आवेश वश ही है। गुलाब पर कुकुरमुत्ते का रौबदाब आद्यन्त छाया हुआ है।

छंद के बन्धन से मुक्त कविता का प्रभाव हर दृष्टि से एक नयापन लिए है। व्यंग्य की दृष्टि से निराला की इसे सफलतम और क्रान्तिकारी रचना माना जाता है।

बादल राग

''तिरती है समीर सागर पर .... ताक रहे हैं, ऐ विप्लव के बादल''

प्रसंग एवं संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ सूर्यकान्त त्रिपाठी ''निराला'' रचित ''बादल राग'' नामक कविता से उद्धृत है। बादल को कवि ने विप्लव का प्रतीक माना है। विप्लव के आहवान की आवश्यकता समाज में बढ़ते अन्याय और पीड़ा के शमन और दमन के लिए होती है। कवि निराला ने कविता के प्रारम्भ में विप्लव की सारी स्थितियों का प्रतीकात्मक, संकेत दिया है। बादल को कवि ने ''रणतरी'' की संज्ञा देते हुए कहा है–

व्याख्या : ऐ विप्लव के बादल! हवा के सागर पर अर्थात् आकाश मण्डल में तेरी युद्ध रूपी पोत ऐसे ही तैरती है जैसे क्षणिक सुखों पर दुःख की छाया मंडराती है। पुनः कवि अपने भाव को स्पष्ट

करते हुए कहता है कि क्रान्ति लाने वाले बादल की माया अपने प्रभाव में सभी को बहाकर ले जाती है। कवि के दृष्टि में बादल का यह रूप दया भावना से हीन होता है। अर्थात् जब भी विप्लव रूपी प्लावन जगती के हृदय पर घटित होता है वह निःसंकोच भाव से सभी को बहाकर ले जाता है। विनाश के क्षणों में क्रान्ति के आगमन पर फिर किसी का अंकुश नहीं रहता। निराला इस युद्ध पोत को आकांक्षाओं से भरी हुई कहकर सम्मानित करते हैं क्योंकि क्रान्ति का आगमन नयी आशाओं के सुप्त अंकुरों को प्रस्फुटित होने का सुअवसर देता है। विप्लव के बादल जितना मेरी गर्जन करते हैं उतना ही जन हृदय की भूमि में नवजीवन-आगमन की सुप्त इच्छाओं के अंकुर सिर ऊंचा करने का सुयोग प्राप्त करते हैं।

विशेष : बादल को यहाँ क्रान्ति के अग्रदूत के रूप में निराला ने प्रस्तुत किया है। "तिरती है" क्रिया से काव्य का प्रारम्भ, बादल रूपी नौका की समता को साकार करने के लिए कवि ने ... है।

अस्थिर सुख पर दुःख की छाया के अरूप बिम्ब के माध्यम से कवि ने जीवन की वास्तविकता को व्यंजित किया है। जीवन में सुख के ऊपर सदैव दुःख की छाया मंडराती है तभी तो नव परिवर्तन की भावना का जन्म होता है।

कवि ने संसार के हृदय को दुःख पीड़ित बताकर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि क्रान्ति के पीछे जन-जन की पीड़ा-शक्ति का निवास होता है और यह पीड़ा ही विप्लव के बादल की जननी का कार्य करती है।

शिल्प विधान की दृष्टि से "बादल राग" कविता का अपना वैशिष्ट्य है। भाषा पर निराला की अद्भुत पकड़ है। पहला वाक्य निराला ने बहुत दीर्घ शैली में दिया है। रूपक अलंकार का प्रयोग-समीर-सागर एवं रणतरी में द्रष्टव्य है। एक-एक शब्द का प्रयोग निराला के कुशल शब्द शिल्पी रूप को साकार करता है।

फिर-फिर .... विप्लव से छोटे ही हैं शोभा पाते।

प्रसंग एवं संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" रचित .... उद्धृत है। कवि ने विप्लव के बादल को ....। सशक्त पूंजीपति वर्ग को यह .... किन्तु लघुता भाव सम्पन्न छोटे-छोटे पौधों को यह ....। बादल का उभयपशीय ....।

व्याख्या : विप्लव के बादल की निरंतर गूंज और गर्जन ध्वनि .... संसार के स्तब्ध ......। सम्पूर्ण जगत का हृदय ....। वज्रपात करते ये बादल .... वीरों, पहाड़ों, पेड़ों को धराशायी ....। जबकि अहम्-शून्य और छोटे-छोटे पौधे ....। छोटे-छोटे हाथों को हवा में हिलाते से जान पड़ते .... खिल-खिलाकर .... व्यंजित .... को आ पाते हैं।

विशेष : निराला .... शब्द शिल्पी ....। छोटे-छोटे शब्दों से .... भाव को साकार ....। क्रान्ति का जनहितकारी रूप ....। बादल का स्वयं को मिटाकर ....। बड़ी शक्तियों को चकनाचूर कर देने वाले बादल .... भाव-विभोर ....।

भाव-व्यंजना का कौशल .... भाषा के सामर्थ्य .... वैशिष्ट्य ....। अट्टालिका नहीं है रे .... ऐ जीवन के परावार।

प्रसंग एवं संदर्भ : प्रस्तुत काव्यांश सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" की काव्य रचना "बादल राग" से लिया गया है। बादल के द्वारा कवि ने क्रान्ति के स्वरूप एवं प्रभाव का जो अभी तक अंकन किया है उसी क्रम में इन पंक्तियों में भी विप्लवी बादल की विशेषताओं को रेखांकित किया गया है। कवि ने विप्लव की शक्ति को दो भिन्न दृष्टिकोणों से प्रस्तुत किया है। विप्लव के बादल को कृषक के जीवन का एकमात्र आशा केन्द्र मानते हुए कवि कहता है कि—

व्याख्या : दिखाई देने वाली बड़ी-बड़ी ऊँची हवेलियाँ मानों आतंक का ही दूसरा नाम है। इस आतंक को क्रान्ति के बादल नष्ट कर देते हैं। कवि ने यह भी स्पष्ट किया है कि विप्लव की प्रलयकारी जल वृष्टि सदैव पंक अर्थात् कीच से उत्पन्न होती है। कवि का तात्पर्य है कि विप्लव का आह्वान महलों जैसी बड़ी-बड़ी इमारतों में न होकर धरती के पंक से उत्पन्न होता है। कमल की उत्पत्ति इसी पंक से होती है जो सदा जल में अपनी आभा को बिखेरता है। ऊँची अट्टालिकायें आतंक की भयावह पीड़ा सहती हैं। शिशु समान कोमल-हृदय-प्राणी का शरीर तो रोग शोक में भी प्रसन्न रहता है क्योंकि वहाँ सरलता और निश्छलता का निवास है। वहाँ संचित धन और शक्ति के जाने की पीड़ा नहीं है। प्रतिकूल इसके जिन्होंने अपनी तिजोरियों में अपार धन

संचित किया हुआ है, वे इतने ही अशांन्त ह। नारी के प्रति आसक्ति को लिए, उस अंक में भरे हुए भी भयग्रस्त रहते हैं क्योंकि धनी वर्ग सुख भोगते हुए भी क्रान्ति गर्जन से भयभीत रहते हैं। अपने नेत्रों को वे अनिष्ट से बचाकर रखना चाहते हैं। धनी वर्ग के ठीक विपरीत स्थिति है किसान-वर्ग की जो धन बल से रहित है, शरीर ई. .जसका दुःख और अभाव से क्षीण हो चुका है, वह अधीर भाव से इन विप्लव के वीरं बादलों को बुलाता है, क्योंकि वे ही उसकी आशा के एकमात्र केन्द्र हैं।

विशेष : बादल के क्रान्तिकारी रूप का रूपक इन पंक्तियों में पूर्णता को प्राप्त हुआ है। दिखायी देने में ऊंचे भवन अन्दर से कितने छोटे और खोखले हैं इस भाव की कवि ने सफल अभिव्यक्ति की है।

क्रान्ति का स्वागत वे करते हैं जो धन बल की शक्ति से रहित है। उनके लिए ये क्रान्ति के बादल न होकर वीरता के बादल हैं जो कृषक के हृदय में नव आशा का संचार करते हैं।

प्रगतिवादी काव्य की दृष्टि से निराला की यह रचना कुकुरमुत्ता के समान ही समादरणीय और चर्चित है।

21.9 मूल्यांकन

अत: निराला सम्बन्धी इस समग्र एवं गहन अध्ययन के बाद स्पष्ट हो जाता है कि निराला के विराट् व्यक्तित्व के सामने मूल्यांकन के सारे मानदण्ड बौने रह जाते हैं। निराला का बादल के समान विराट्-व्यक्तित्व है जो दूसरे के लिए रिक्त होना जानता है। निराला के व्यक्तित्व का निर्माण विषम परिस्थिति से निर्मित है। आजीवन उन्हें संघर्ष करना पड़ा तथा संघर्ष का रूप कभी आर्थिक रहा तो कभी सामाजिक और वैयक्तिक। निराला में वह अद्भुत शक्ति थी जिसने, उन्हें फौलादी बनाया एवं "महाप्राण निराला" का गौरव प्रदान किया। उनकी संवेदना ने विराट् और महान को ही संस्पर्श नहीं किया अपितु उपेक्षित, दलित, शोषित और लघु मानव को भी साहित्य में प्रतिष्ठित किया। निराला का साहित्य विविध आयामी है जिसमें अमूल्य-मानवीय-जीवन की निधियाँ भरी पड़ी हैं। उन्होंने अपने साहित्य में जो कुछ भी सृजा है वह निराला के समान ही महान और अपरिमेय है।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1 पाँच-छह पंक्तियों में उत्तर लिखिए :

i) निराला का रचना-विधान इतना सशक्त और बोधगम्य क्यों है?

....
....
....
....
....
....

ii) निराला काव्य को हम मुख्यत: किन रूपों में विभक्त कर सकते हैं? कृतियों के आधार पर स्पष्ट कीजिए।

....
....
....
....
....
....

iii) निराला की काव्य-भाषा में शब्दावली का क्या स्वरूप है?

....

....

....

....

....

....

....

2 कविता का एक-एक उदाहरण देकर पुष्ट कीजिए :

i) निराला की कविता में भावों को साकार करने की अद्‌भुत शक्ति उनके प्रतीक-विधान में छुपी है।

....

....

....

....

....

....

....

ii) निराला-काव्य की बिम्ब-योजना अर्थ को रूपायित करके भावपूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान करती है।

....

....

....

....

....

....

iii) निराला काव्य 'प अप्रस्तुत-विधान कवि की कुशल कल्पना शक्ति का प्रमाण है। उपमा और मानवीकरण के उदाहरण से स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

....

ℑ निराला की छंद-योजना पर पाँच-छह पंक्तियां लिखिए :

....

....

....

....

....

....

....

4 निराला के काव्य में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना पर लगभग दस पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

21.10 शब्दावली

छायावादोत्तर : छायावाद के बाद का

निर्बन्ध : बन्धन रहित

अद्वैत : भारतीय दर्शन परंपरा का पारिभाषिक शब्द जिसके अनुसार अ+द्वैत अर्थात् जहाँ द्वैत (दो) न हो। आत्मा और परमात्मा मूलतः एक हैं दो नहीं।

क्लेदयुक्त तन : पसीने से तर बदन

विलक्षण : असाधारण या अलौकिक

प्रतिकूलताएँ : विपरीत स्थितियाँ

भाव-प्रवणता : भावों की प्रबल प्रधानता

आख्यानक काव्य : ऐसा काव्य जिसमें कथा को आधार बनाया गया हो अर्थात् कथात्मक-कविता

महाकाव्यात्मक-औदात्य : कविता का वह श्रेष्ठतम रूप जिसमें महाकाव्य के सभी गुण उपलब्ध हों

अनाहूत : बिन बुलाया या अनिमंत्रित

आक्रामक : आक्रमण करने वाला

मनोवृत्ति : मन की वृत्ति या विकार

चितेरे : चित्रकार

तेजोद्दीप्त : तेज से उद्दीप्त

आत्मसात : आत्मा को अपने अधिकार में कर लेना

अपरिमेय : जिसे नापा न जा सके अर्थात् असीम

21.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

महाप्राण निराला : गंगा प्रसाद पाण्डेय; लोक भारती प्रकाशन; इलाहाबाद

निराला नवमूल्यांकन : डॉ. राम रतन भटनागर; स्मृति प्रकाशन, प्रयाग

निराला की साहित्य साधना, भाग-1, 2 डॉ. रामविलास शर्मा; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1971 ई.

निराला : सं. डॉ. पद्मसिंह; राधाकृष्ण प्रकाशन; दिल्ली, 1969 ई.

निराला : व्यक्तित्व और कृतित्व : डॉ. प्रेमनारायण टण्डन

निराला आलोचकों की दृष्टि में : सं. डॉ. वचनदेव कुमार; विहार ग्रंथ कुटीर प्रकाशन, पटना, 1980 ई.

निराला की कविताएँ और काव्य भाषा : रेखा खरे; लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1989 ई.

निराला : सं. डॉ. इन्द्रनाथ मदान

अलक्षित निराला : डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित; नचिकेता प्रकाशन, दिल्ली

निराला काव्य का अध्ययन : डॉ. भगीरथ मिश्र

निराला स्मृति ग्रंथ : सं. ओंकारशरद; भारती परिषद्, प्रयाग, 1968

निराला का काव्य : डॉ. जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव

युग कवि निराला : सं. डॉ. रजनीकांत लहरी; निराला संगीत, साहित्य एवं नाट्य अकादमी उन्नाव, 1989

21.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 i) सन् 1896 में
ii) परिमल
iii) तुलसीदास
iv) कुकुरमुत्ता
v) सन् 1930 में

2 i) √
ii) ×
iii) √
iv) ×
v) √

बोध प्रश्न 2

1 i) कुकुरमुत्ता और बेला
ii) महाप्राण निराला
iii) कुकुरमुत्ता, अपरा और अर्चना
iv) विप्लव का
v) कुकुरमुत्ता सर्वहारा वर्ग का और गुलाब पूंजीपति संस्कृति का।
vi) सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला
vii) निरुपमा और अप्सरा
viii) छायावाद के

2 i) निराला की विराट, उदात्त और विस्तृत काव्य संवेदना में छायावादी अन्तर्वस्तु के साथ-साथ प्रयोगशील एवं प्रगतिवादी विचारों की छाप भी देखने को मिलती है। उसमें राष्ट्रीय-चेतना के गौरव-गान तथा जागरण का स्वर है तो करुणा, पीड़ा, वेदना एवं संघर्ष की गाथा भी है। अद्वैत भावना का संस्पर्श है तो शोषण एवं सामाजिक विषमताओं के प्रति व्यंग्य एवं आक्रोश की भावना भी मुखर है।

ii) निराला के काव्य में छायावादी कविता का लाक्षणिक, प्राकृतिक एवं अमांसल सौन्दर्य तो मिलता ही है साथ ही रूढ़ियों को नकारने की शक्ति, व्यंग्य और प्रहार का स्वर, नए-नए प्रयोगों से विषय, भाव एवं भाषिक उपकरणों का नव्यतम स्वरूप भी देखने को मिलता है। छायावादी रहस्य भावना, गीतात्मकता तथा राष्ट्रीय चेतना के साथ-साथ प्रगतिवादी, एवं प्रयोगवादी काव्य चेतना का भाव एवं शिल्पविधान भी उनके काव्य में देखा जा सकता है।

iii) निराला की कविता में मूल्यों का बहुरंगी स्वरूप देखा जा सकता है। नैतिकता, उदात्तता तथा परदुःखकातरता जैसे भावों से समृद्ध कविता के इस सृजक की मूल्य चेतना पर

विवेकानन्द की अद्वैत दृष्टि का तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर एवं रामकृष्ण परमहंस जैसे उत्तम पुरुष-संतों की विचारधारा का व्यापक प्रभाव रहा। यही कारण है कि "भिक्षुक", "विधवा" तथा "वह तोड़ती पत्थर" जैसे उपेक्षित प्राणियों के प्रति भी उनकी कविता में उतना ही प्यार और करुणा है जितनी कि विराट् और महान् के लिए।

बोध प्रश्न 3

1 i) निराला की अनुभूति में गहराई है तो अभिव्यक्ति में विलक्षण-शक्ति। व्यक्तित्व के अनुरूप ही कोमल एवं कठोर भावों-विचारों का अद्भुत सम्मिश्रण करने वाले इस महाकवि ने नए काव्य रूपों तथा भाषिक-उपकरणों से अपने रचना-कौशल का परिचय दिया है। बिम्ब योजना, प्रतीक विधान, मौलिक छंद निर्माण तथा अप्रस्तुत विधान की विलक्षणता सभी मिलकर निराला के रचना विधान को सशक्त, बोधगम्य तथा बेजोड़ बना देते हैं।

ii) निराला काव्य को हम मुख्यतः चार रूपों में विभक्त कर सकते हैं। गीत, प्रगीत, कथाश्रित-काव्य तथा गीति-नाट्य। गीतिका काव्य-संग्रह में निराला के गीति-लेखन को देखा जा सकता है। "सरोज स्मृति", "विधवा", "यमुना के प्रति", "भिक्षुक" तथा "शिवाजी का पत्र" जैसी कविताएँ प्रगति कोटि में आती हैं। "तुलसीदास" आख्यानक या कथाश्रित-काव्य का उदाहरण है तथा गीति नाट्य का एक निराला की रचना "पंचवटी" में देखने को मिलता है।

iii) निराला कुशल शब्द-शिल्पी कहे जाते हैं। विषय के अनुरूप कोमल, कठोर तथा तत्सम बहुल या क्लिष्ट शब्दावली भी निराला के काव्य में है तो ठेठ देशी शब्दों का प्रभावी रूप भी उसमें देखने को मिलता है। भाषा अपेक्षानुसार सरल और ओज से परिपूर्ण होती चलती है। प्रथम चरण की रचनाओं में तत्सम बहुल शब्दावली है तो दूसरे चरण की रचनाओं में बोलचाल की भाषा-व्यंग्य एवं आक्रोश का तीखा रूप लिए है। अन्तिम चरण में हिन्दी का विशुद्ध, सरल, स्पष्ट रूप मिलता है। "राम की शक्ति पूजा" में समाज-मुक्त तत्सम-बहुल भाषा है तो कहीं द्विरुक्ति प्रधान। कहीं-कहीं उर्दू, अंग्रेज़ी तथा ठेठ देशी शब्दों का भी सुन्दर-सटीक प्रयोग देखने को मिलता है।

2 i) देखें अनुभाग 22.6.4
ii) देखें अनुभाग 22.6.5
iii) देखें अनुभाग 22.6.6

3 निराला, छंद के बंधनों से कविता को मुक्त कराने वाले वे कवि हैं जो व्यक्ति की मुक्ति के समान ही काव्य की मुक्ति की बात भी करते रहे। आलोचकों द्वारा उनके छन्दों को "रबर छन्द" या "केंचुआ छन्द" कहे जाने पर भी निराला अपनी स्वच्छन्द-धारणा पर अडिग रहे। "जुही की कली" से मुक्त-छंद की मौलिक स्थापना करने वाले इस महाकवि ने कविता को वर्ण, मात्रा तथा तुक के बन्धनों से मुक्ति दिलाई। निराला का यह योगदान हिन्दी साहित्य में अमिट पहचान बनाए हुए हैं।

4 छायावादी-युग में फैल रही सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना की क्रांतिमयी-लहर से प्रेरणा ग्रहण करके महाकवि निराला कविता में नवजागरण का मंत्र फूंकने वाले कवि हैं। उनकी अध्यात्म के प्रति आस्था "तुम और मैं" कविता में अद्वैत-दर्शन की पुष्टि से स्पष्ट होती है तो श्री अरविन्द, स्वामी दयानन्द, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द, टैगोर एवं गांधी जैसे महान युग एवं भविष्य-दृष्टाओं की विचारधारा को कविता में ढालने से कवि की सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना का परिचय मिलता है। "राम की शक्ति पूजा" तथा "तुलसीदास" जैसी अतुलनीय रचनाएँ निराला की भारतीयता को स्थापित करती हैं तो "विधवा", "भिक्षुक" एवं "वह तोड़ती पत्थर" जैसी बहुत सी रचनाएँ कवि की सामाजिक चेतना को मुखर कर देती हैं। समाज, संस्कृति एवं साहित्य को राष्ट्र के परिप्रेक्ष्य में एक अभिन्न तथा अटूट सम्बन्ध के रूप में देखने वाले इस जागृति-दूत ने रूढ़ियों-विसंगतियों पर ही चोट नहीं की राष्ट्र के गौरव-गान गा-गाकर -- "जागो फिर एक बार" जैसे जागरण-मन्त्र भी जन-जन में फूंके। इस दृष्टि से निश्चित ही सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना का यह अग्रदूत हिन्दी साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान रखता है।

इकाई 22 सुमित्रानन्दन पंत

इकाई की रूपरेखा

22.0 उद्देश्य
22.1 प्रस्तावना
22.2 कवि-परिचय
22.3 रचनाकार-व्यक्तित्व और रचनाएँ
22.4 काव्य-चेतना का विकास
 22.4.1 काव्यानुभूति
 22.4.2 प्रकृति-सौन्दर्य
 22.4.3 नारी के प्रति नवीन दृष्टि
 22.4.4 जीवन-दर्शन
22.5 काव्य-शिल्प
 22.5.1 काव्य-रूप या प्रगीत कला
 22.5.2 काव्य भाषा
 22.5.3 बिम्ब और प्रतीक
 22.5.4 अलंकार, लय एवं छन्द विधान
22.6 काव्य वाचन तथा संदर्भ सहित व्याख्या
22.7 मूल्यांकन
22.8 शब्दावली
22.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
22.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

22.0 उद्देश्य

छायावादी कोमल-कान्त पदावली के लिए प्रमुख माने जाने वाले और प्रकृति से अनन्य प्रेम रखने वाले महत्वपूर्ण कवि सुमित्रानन्दन पंत के काव्य पर लिखी गई इस इकाई के अध्ययन के बाद आप–

- पन्त जी के जीवन तथा रचनाकार-व्यक्तित्व से परिचित हो सकेंगे।
- पन्त जी की रचनाओं पर विचार कर सकेंगे।
- उनकी काव्य-चेतना के विकास की दिशा और दृष्टि का निरूपण कर सकेंगे।
- कवि की काव्यनुभूति की विशेषताएँ बता सकेंगे।
- प्रकृति सौन्दर्य की विशिष्टताओं को जान सकेंगे।
- उनके जीवन-दर्शन से साक्षात्कार कर सकेंगे।
- पंत जी के काव्य-शिल्प की आन्तरिक विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- उनकी काव्य भाषा, उपमान, बिम्ब, प्रतीक, लय एवं छंद के कलात्मक सौन्दर्य का अस्वादन कर सकेंगे, और
- कविताओं के अर्थ-विश्लेषण के माध्यम से उनकी कविताओं के सौन्दर्य की पहचान कर सकेंगे।

22.1 प्रस्तावना

सर्जनात्मक प्रतिभा से सम्पन्न रचनाकार सुमित्रानन्दन पंत आधुनिक हिंदी कविता के जिस काल खंड में रचना कार्य करते रहे हैं, वह बीसवीं शताब्दी का सामाजिक-सांस्कृतिक आगरण-युग है। भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के दिनों का एक विशाल जागरण उनके सामने मौजूद था। राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, दादाभाई नौराजी, बाल गंगाधर तिलक, अरबिंद रवीन्द्रनाथ और गांधी जी जैसे महान व्यक्ति उस युग में सक्रिय थे। इन नेताओं दार्शनिकों और चिन्तकों में भारतीय संस्कृति की विवेक-परम्परा नया तेज प्राप्त कर रही थी। पूरा देश ब्रिटिश साम्राज्य वाद से मुक्ति के लिए संघर्ष कर रहा था और देश के बुद्धिजीवी हर कीमत पर पराधीनता की बेड़ियाँ काटना चाहते थे। इसी परिवेश में सुमित्रानन्दन पंत का आरम्भिक रचनाकार-व्यक्तित्व भी निर्मित हुआ।

बीसवीं शताब्दी का यह भारतीय नवजागरण रूढ़िवादी विरोधी नवीन दृष्टि लेकर जन्मा था। पूरी एशिया में नवजागरण की एक ऐसी हवा चल रही थी जो मानव-मुक्ति की चेतना को बढ़ाने वाली और साम्राज्यवादी शक्तियों से सीधे मुठभेड़ करने को आमादा थी। इस भारत में परम्परागत रीति वादी दृष्टिकोण में दरार डाल कर नया लोक-जागरण राजनीति और साहित्य दोनों में उभर रहा था। सन् 1917 ई० की बोलशेविक-क्रांति ने विश्व भर में मुक्ति चेतना की लहर को नई आस्था दी थी। भारतवासी भी जमींदारों-व्यापारियों, साहूकारों-पूंजीपतियों और छोटे सामन्तों से मुक्ति पाने के लिए छटपटाने लगा था। किसान-मज़दूर आन्दोलन उठ खड़े हुए थे और उनकी धमक द्विवेदी युग (1900-1916 ई०,) की हिंदी कविता में साफ सुनाई पड़ रही थी। फिरंगी सरकार ने धन की जो लूट इस देश में मचाकर पूरे देश के उद्योग धन्धों को चौपट कर दिया था – उस बर्बादी को जनता और नेता दोनों ही खुली आखों देख रहे थे। तिलक और गांधी के युग में हमारा स्वाधीनता आन्दोलन पूरी तरह जवान हो गया था और उसके हर स्वर में मानव-मुक्ति की पुकार थी। हिंदी का छायावाद (1916 ई०– 1936 ई०) भी इसी मानव मुक्ति-चेतना का संदेश लाया। हिंदी के छायावाद ने हर क्षेत्र में रूढ़ि विरोधी रुख अपनाया और इस दृष्टि से यह सच्चे स्वच्छन्दतावाद का सृजन संघर्ष भी है। सुमित्रानन्दन पंत इसी सृजन संघर्ष की मानसिकता से बने रचनाकार हैं। राजनीति में जो मुक्ति गांधीवाद खोज रहा था साहित्य में उसी मुक्ति भावना का परिणाम था छायावाद। पंत जी को छायावाद की इसी पृष्ठ भूमि में समझना उचित होगा।

22.2 कवि-परिचय

सुमित्रानन्दन पंत का जन्म 20 मई सन् 1900 ई०, रविवार को कौसानी नामक गांव के एक सम्पन्न और संस्कारी ब्राह्मण परिवार में हुआ। यह स्थान कूर्मांचल के अल्मोड़ा नगर से तिरपन किलोमीटर की दूरी पर हिमालय की सौन्दर्य-पुलकित घाटी में स्थित है। देवदार, चीड़ के सघन वनों की हरियाली, हिमकिरीट शिखरों की नयनाभिराम-शोभा, रंग-बिरंगे फूलों का सौन्दर्य और वनपक्षियों की चहकन में मग्न कूर्मांचल का सुन्दरतम स्थान है। प्रातः काल शिशु पंत को जन्म देकर मां सरस्वती सदैव के लिए संसार से विदा हो गईं। माँ के अभाव को प्रकृति की गोद ने पूरा किया। पंत के लिए प्रकृति ही धात्री माँ बन गई। पन्त जी ने स्वयं लिखा है–

> माँ से बढ़कर रही धात्रि, तू बचपन में मेरे हित,
> धात्रि कथा रूपक भर : तूने किया जनक बन पोषण।
> मातृहीन बालक के सिर पर वरदहस्त धर गोपन।।
>
> –(अतिमा)

प्रकृति ने बालक पंत को सौन्दर्यमयी अनुरागमयी गोदी में खिलाकर बड़ा किया। पन्त जी की कविताओं में प्रकृति-सौन्दर्य का विकास इसी प्रकृति अनुराग का अंग है। प्रकृति के साहचर्य ने उनकी काव्य संवेदना पर अमिट छाप छोड़ी और प्रकृति का सौन्दर्य ही उनकी सृजन प्रेरणा बन गया। यही प्रधान कारण है कि पंत जी ने महान पुरुषों की वाणी और दर्शन से ज्यादा प्रकृति के मौन-मुखर सहवास से सीखा और सिखाया है। इस मातृहीन बालक को पिता गंगादत्त पंत ने दीर्घायु की कामना करते हुए "हरिगिर बाबा" को दे दिया। बाबा जी शिव के भक्त थे–उन्होंने बालक का नामकरण किया–गोसाई दत्त। पंत जी ने बड़े होने पर "गौसाई दत्त" नाम छोड़कर नाम रख लिया सुमित्रानन्दन पंत। पंत जी के घर में प्रारम्भ से ही गीता-भागवत्-रामायण और आरती पूजा की धूम रही। पंतजी ने लिखा है–"चबूतरे पर बैठा मैं पढ़ता हूँ और गौरी बूढ़ी दादी की गोद में सिर रखकर दन्त कथाएँ और देवी-देवताओं की आरती के गीत सुनता हूँ।" (साठ वर्ष एक रेखांकन पृ०-10) इन लोक-कथाओं, पुराण-कथाओं ने बालक की कल्पनाओं को उर्वर बनाया। 1905 ई० में पंत जी गाँव की पाठशाला में पढ़ने गए और अंग्रेजी की पढ़ाई घर पर शुरू हुई। संगीत की शिक्षा भी दी गई और शास्त्रीय-संगीत के रागों का अभ्यास भी किया। "एकान्त प्रिय मैं निश्चित रूप से था, सुघर, सुकुमार और सम्भवतः सुन्दर भी।" पंत जी 1910 ई० में अल्मोड़ा गए। यहीं पन्द्रह-सोलह वर्ष की आयु से नियमित कविता लिखना शुरू किया।

आठवीं कक्षा से ही पंत जी ने हिंदी कविता और संस्कृत काव्य शास्त्र पढ़ना शुरू किया। महामना मदनमोहन मालवीय, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी रामतीर्थ तथा विवेकानन्द के सांस्कृतिक नवजागरण का प्रभाव ग्रहण किया। कविताओं पर हरिऔध, मुकुटधर-पाण्डेय और मैथिलीशरण गुप्त जी का गहरा प्रभाव पड़ा। कालिदास, रवीन्द्रनाथ और पश्चिम के स्वच्छन्दतावादी कवि खूब पढ़े। हाई स्कूल पास कर वे प्रयाग गए और प्रयाग ही उनका काव्य-साधना का मुख्य केन्द्र बना। गांधी, मार्क्स और दार्शनिक अरविंद से विश्व-दृष्टि ग्रहण की। छायावाद के इस प्रमुख

कवि ने साठ वर्षों तक निरन्तर लेखन कार्य किया गौर 29 दिसम्बर 1977 ई० को इस ससार से विदा हो गए।

22.3 रचनाकार-व्यक्तित्व और रचनाएँ

पंत जी के रचनाकार-व्यक्तित्व का निर्माण पूर्व और पशिचम दोनों के नव जागरण वादी तत्वों को लेकर निर्मित हुआ। प्राचीन भारतीय साहित्य, हिंदी का मध्ययुगीन काव्य और पश्चिमी साहित्य विशेषकर अंग्रेजी के सव्च्छन्दतावादी साहित्य का उन्होंने मनोयोग-पूर्वक अध्ययन किया। भारतीय रचनाकारों में वे वाल्मीकि और कालिदास, सूरदास और घनानन्द, रवीन्द्र नाथ और भारतेन्दु आदि से विशेष रूप से प्रभावित हुए। पशिचमी कवियों में गेटे और बर्डस्वर्थ, कॉलरिज और टेनीसन आदि के सृजन की उन पर गहरी छाप पड़ी। फलतः पन्त जी के सृजन के प्रकृति-प्रेम और सौन्दर्य बोध जैसे पक्षों पर पूर्व और पशिचम की साहित्यिक-परम्पराओं का प्रभाव साफ देखा जा सकता है। राजनीतिक सामाजिक चिन्तन में वे गांधी, मार्क्स और अरविन्द तीनों से आन्दोलित-प्रभावित होकर लिखते रहे। रीतिवादी रूढ़ियों के प्रति वे जन्मजात विद्रोही रहें हैं। "पल्लव" का प्रवेश (भूमिका) उनके इसी रूढ़ि-विरोधी क्रान्तिकारी चिन्तन का सुविचारित घोषणा पत्र है। नतीज़ा यह हुआ कि वे अपने सृजन और चिन्तन में लगातार प्रगतिशील होते रहे।

रचनाएँ

कविवर पन्त जी का रचनाकाल सन् 1916 ई. से लेकर 1977 ई. तक लगभग साठ वर्षों तक फैला हुआ है। आरम्भ में उन्होंने एक "हार" नामक उपन्यास लिखा जिसे प्रकाशित नहीं करवाया। प्रथम रचना "उच्छवास" नाम से छपी। आरम्भिक कवि पंत जी में नवीन कल्पना की सर्जनात्मकता का ऐसा विस्फोट हुआ जिससे उन्हें छायावाद के प्रवर्तकों में भी माना जा सकता है। उनकी कविताएँ "सरस्वती" पत्रिका में छपीं और उन्हें पर्याप्त लोक-प्रसिद्धि भी मिली। पन्त जी की रचनाएँ इस प्रकार एक लम्बे समय का काव्य इतिहास हैं। "वीणा" उनका आरम्भिक काव्य संग्रह (1918 ई. में और दूसरा काव्य-संग्रह "ग्रंथि" 1920 ई. में प्रकाशित हुआ। तीसरे काव्य संग्रह "पल्लव") में 1922-1926 ई. तक की बत्तीस कविताएँ हैं। चौथे काव्य संग्रह–"गुंजन" में 1926-1932 तक की 46 कविताएँ हैं। पाचवाँ संग्रह "ज्योत्सना" 1934 में छायावाद की प्रगति-कला के चरम विस्तार को लेकर आया।

पन्त जी अन्य काव्य कृतियों में "युगान्त" (1935), "युग वाणी" (1937), ग्राम्या "1939-40" "स्वर्ण किरण" (1947), "स्वर्ण धूलि" (1947), "मधु ज्वाल", उमर खैय्याम का भावनुवाद "युग पथ" (1948 ई.), "खादी के फूल" (1948), "रजतशिखर" (1951 ई.), तथा "शिल्पी" "अतिमा", "सौवर्ण", "वाणी", "कला और बूढ़ा चाँद हैं।", "लोकायतन" (1964) कवि का प्रथम महा काव्य है। इसके बाद "किरण वीणा", "पुरुषोत्तम राम", "पौ फटने से पहले", "गीत हंस", "पतझर", "एकभाव क्रांति", "शंख ध्वनि" (1971), "शशि की तरी", "समाधिता", "आस्था", "सत्यकाम", "सक्रांति" और "गीत-अगीत" (1977 ई.) जैसे कई काव्य संग्रह आते रहे हैं। किन्तु पंत जी की कविता–'पल्लव-गुंजन' के बाद चुक सी जाती है और वे कवि कम, कलाकार अधिक हो जाते हैं।

अविवाहित पंत का व्यक्तित्व आवृत्तियों से पीड़ित तो रहा, लेकिन उसने मानव के आस्थावादी जीवन-मूल्यों का साथ कभी नहीं छोड़ा। पशिचम के किसी भी आस्थावादी दर्शन से उन्होंने समझौता नहीं किया। वे अपने समस्त सृजन में मानव के कल्याण का मार्ग ही खोजते रहे हैं।

22.4 काव्य-चेतना का विकास

कविवर पन्त जी की काव्य-चेतना निरन्तर परिवर्तन और प्रगति के पथ पर अग्रसर रही है। हिंदी कविता के बहुत से काव्य आन्दोलन उनकी आँखों के सामने उठे और इतिहास बन गए। किन्तु पन्त जी छायावाद, प्रगतिवाद और फिर आध्यात्मिक चेतनावाद की ओर एकनिष्ठ होकर चलते रहे। पन्त जी की लम्बी काव्य यात्रा के विकास को हम अध्ययन की सुविधा के लिए तीन सोपानों में विभक्त कर सकते हैं। (क) छायावादी काव्य: इसे उनके सृजन युग का सौन्दर्य भी कह सकते हैं। (ख) प्रगतिवादी काव्य: इसे हम लोकमंगल वादी या शिव युग भी कह सकते हैं।
(ग) आध्यात्मिक नव चेतना का अरविन्द वादी काल: इसे सत्य से साक्षात्कार का चिन्तन युग या सत्य युग भी मान सकते हैं। साहित्य में पन्त जी के काव्य चेतना के विकास के इन युगों की प्रसिद्धि "सौन्दर्य", "शिव", "सत्य" के नाम से रही ही है।

(क) **छायावादी काव्य** (1916 ई. से 1935 ई. तक) पन्त जी के सृजन का सर्वोत्तम रूप उनके छायावादी काव्य में ही दृष्टिगत होता है। इस काल में ही वे "वीणा" लेकर आए और "ग्रंथि", "पल्लव", "गुंजन" तथा "ज्योत्स्ना" जैसे छायावादी काव्य मुहावरे की, भाव संकल्पना की। प्रकृति-सौन्दर्य-चेतना और शिल्पकला की चमत्कारी रचनात्मकता वे इसी समय दे गए। "वीणा" कवि की काव्य भावना का कोमल शिशु संसार है जिसमें प्रगीतात्मक गीत विहग कल्पना के रंगीन पंख फैलाकर उड़ते हैं। इन प्रगीतों की मूल प्रेरणा प्रकृति-सौन्दर्य है। पर कभी-कभार विवेकानंद और तिलक पर भी नवजागरणवादी रचनाएँ लिखी हैं। "ग्रंथि" असफल प्रेम की मार्मिक जीवनानुभव से भरी रचना है। "शशिकला सी एक बाला" कल्पना के आकाश को घेर लेती है। फलतः यह कोमल मधुर-सौन्दर्य की रचना है।

"पल्लव" की भूमिका का चिन्तन और प्रगीत-कला छायावादी सर्जनात्मकता का चरम उत्कर्ष है। हिंदी के सभी आलोचक "पल्लव" (1926) को ही पन्त जी की प्रतिभा का सर्वश्रेष्ठ प्रस्फुटन मानते हैं। इस संग्रह की भूमिका का वही महत्व हिंदी में है जो वर्डस्वर्थ की "लिरिकल वैलेडस" की भूमिका का पश्चिमी स्वच्छन्दतावादी काव्यशास्त्र में रहा है। "पल्लव" के बाद "गुंजन" और "ज्योत्स्ना" जैसे काव्य-संग्रह आये—पर काव्यात्मकता का वह प्रगीत संसार फिर नसीब नहीं हो सका।

(ख) **प्रगतिवादी काव्य** : छायावाद के बाद पन्त जी पर मार्क्स की विचारधारा का प्रभाव पड़ा। वे छायावाद की भाव भूमि से हटकर मार्क्सवादी भाव भूमि की कविताएँ लिखने लगे। किन्तु पन्त जी के काव्य की यह भाव दिशा सहज नहीं थी। पन्त जी "ज्योत्सना" में ही मार्क्सवाद से प्रभावित हुए। किन्तु इस प्रभाव का खुलासा "युगांत" में दिखाई दिया। "युगांत", "गुण-वाणी" तथा "ग्राम्या" में इनके काव्य स्वभाव का बदलाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। वे भाववादी-आदर्शवादी भूमि को छोड़कर यथार्थवाद की कठोर वास्तविकता-वादी भूमि पर आते हैं। उनका मूलस्वर उस प्रगतिवादी काल में "नष्ट-भ्रष्ट" हो रहे "जीर्ण पुरातन" का विद्रोही-स्वर है। "गाकोकिल बरसा पावक कण" इसी नवीन यथार्थवाद का मुखर रूप है। पंत जी ने लिखा है "ज्योत्सना तक मैं सौन्दर्य-बोध की भावना से ही जगत का परिचय प्राप्त करता रहा। उसके बाद मैं बुद्धि से भी संसार को समझाने की चेष्टा करने लगा हूँ। यह कहा जा सकता है कि यहाँ मेरी काव्य साधना का दूसरा युग आरम्भ होता है।" (आधुनिक कवि पन्त जी पृ. 11) कहना न होगा कि यह दूसरा युग कल्पनावाद से निकलकर यथार्थवाद की भाव भूमि को अपनाता है।

(ग) प्रगतिवादी काव्य में पंत जी ने प्रथम वार प्रकृति के सौन्दर्य लोक से निकल कर हाड़-मांस के आदमी को पहचानने की कोशिश की है। इस क्षेत्र में कोशिश पूरी भी न हो पाई थी कि वे अरविन्द-दर्शन के अध्यात्मवाद की ओर चले गए। पंत के काव्य विकास का यह तीसरा सोपान मूलतः उनके आत्म विकास और आत्म मंथन का काल है। उन्हें लगा अरविंद दर्शन ही मानवों की समस्याओं का हल है। उन्हें मनुष्य का आध्यात्मिक विकास भी जरूरी लगने लगा। "स्वार्ण-धूलि", "अतिमा", "रजत शिखर" और "लोकायतन" इसी अध्यात्मवादी भावलोक की रचनाएँ हैं। इसके बाद पन्त जी के बहुत से संग्रह आए पर उनसे कविता जैसे छूटती गई। वे चिन्तन की झोंक के कलाकार बनते गए। "भू जीवन हो भगवत् दर्पण" का जीवन-दर्शन उनकी कविता को निगल गया। अतिमानस को अरविंदवादी प्रवाह से वे फिर छूट न सके।

22.4.1 काव्यानुभूति

पंत जी की काव्य अनुभूति में वास्तविक जीवनानुभवों की उतनी सम्पन्नता और गहराई कभी नहीं रही है जितनी की उनके समसामयिक कवियों में जयशंकर प्रसाद और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला में रही है। पंत जी की आरम्भिक काव्य अनुभूतियों में शिशु सुलभ कोमलता मधुर-विस्मय, जिज्ञासा; प्रकृति के प्रति रहस्य भावना, व्यक्तिवादी मनःस्थितियाँ और मूलमनोदशाओं का गायन प्रमुख रहा है। इस दृष्टि से "छाया", "मौन निमन्त्रण", "नौका विहार" तथा "सान्ध्य तारा" जैसी कविताएँ उत्कृष्ट हैं। उन्होंने अपनी काव्य संवेदनाओं को सीधे-सीधे व्यक्त किया है और उनकी सौन्दर्यानुभूति में प्रकृति और मानव-सौंदर्य की अद्भुत छवियाँ अंकित होती हैं।

i) मैं झरता जीवन डाली से
साहलाद शिशिर का शीर्ण पात
फिर से जगती के कानन में
आ जाता नव मधु का प्रभात

ii) देख वसुधा का यौवन भार,
गूंज उठता है जब मधुमास,
विधुर उठ के से मृदु उदगार,
कुसम जब खुल पड़ते मोच्छवास।

न जाने सौरभ के मिस कौन,
संदेशा मुझे भेजता मौन।

छायावाद जिस स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह था उसके भावमय सूक्ष्म-गहन संसार के सच्चे प्रतिनिधि पंत जी रहे हैं। इनकी अनुभूति में आध्यात्मिक-छायाभास का रवीन्द्रीय रंग चढ़ा रहा। चूँकि छायावाद राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है और इस भाव क्षेत्र ने पंत जी की काव्यानुभूतियों को सहज और विशाल क्षेत्र दिया। इसलिए उनकी आत्माभिव्यक्ति में "एक कर दे धरती आकाश" की सहज उठान मिलती है। पंत जी की छायावादी काव्यानुभूतियों में घनता और भाव-सम्पदा खूब है। "वीणा", "पल्लवी" और "गुंजन" आदि की कविताओं में प्रकृति के सुन्दर रूपों की आनन्दमयी अनुभूति है। यहाँ पंत जी की रहस्य-भावना भी स्वाभाविक है कृत्रिम नहीं। प्रगतिवादी काव्य जैसे "युगांत", "ग्राम्या" आदि की कविताओं में वास्तविक जीवनानुभूतियों का दर्शन होने लगता है। अरविंदवादी या अन्तर चेतनावादी काव्य दौर में "स्वर्ण शिखर", "स्वर्ण धूलि" आदि में उनकी आध्यात्मिक अनुभूतियों का विस्तार प्रसार है। ये अनुभूतियाँ कृत्रिम प्रतीत होती हैं और हृदय को छूती नहीं है।

22.4.2 प्रकृति-सौन्दर्य

हिंदी के सभी आलोचक इस बात पर एकमत हैं कि पंत जी सौन्दर्य के कवि हैं। उनकी कविता में मानव तथा प्रकृति दोनों तदाकार हैं। उनकी प्रकृति-सौन्दर्य की चेतना कालिदास और वर्डस्वर्थ की स्मृति ताज़ा करती है। पंत जी के अन्तर्जगत की स्वाधीनता, प्रकृति-सौन्दर्य के चित्रण में उजागर हुई है। पंत जी को कविता कहने की प्रेरणा ही प्रकृति से मिली है। प्रकृति-सौन्दर्य ने इनके स्वच्छन्दतावादी कवि को सबसे अधिक आकृष्ट किया है—

i) पावस ऋतु थी प्रर्वत प्रदेश,
पल पल परिवर्तन प्रकृति वेश,

मेखलाकार पर्वत अपार,
अपने सहस्त्र दृग सुमन फाड़,

अवलोक रहा है बार बार
नीचे जल में निज महाकार

जिसके चरणों में पला ताल,
दर्पण-सा फैला विशाल।

× × ×

ii) हृदय के प्रणय कुंज में लीन,
मूक कोकिला का मादक गान,
बहा जब तन मन बन्धनहीन,
मधुरता से अपनी अनजान,

खिल उठी रोओं सी तत्काल,
पल्लवों की यह पुलकित डाल।

राष्ट्रीय जागरण की कविताओं में देश-प्रेम की भावना प्रकृति प्रेम से ही उत्पन्न हुई। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तो साफ कहा है —"किसी को अपने देश से प्रेम है तो उसे अपने देश के मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, गुल्म, पेड़, पत्ते, कण, पर्वत, नदी, निर्झर सबसे प्रेम होगा। सबको वह चाह भरी दृष्टि से देखेगा।" पन्त जी को शुरू से ही प्रकृति की अक्षय सुषमा से प्रेम है। "छोड़ द्रुमों की मृदु छाया तोड़ प्रकृति से भी माया, बाले तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन।" प्रकृति की तरल तरंगों से तथा इन्द्रधनुष के रंगों से उन्हें अपार मोह है।

छायावादी कवि पंत जी प्रकृति की ओर न केवल झुकते हैं बल्कि उसे महत्व देकर, उसकी स्वतन्त्र सत्ता को काव्य में प्रतिष्ठित भी करते हैं। छायावाद के कवि प्रसाद, निराला, महादेवी ने भी प्रकृति को महत्व दिया लेकिन सबसे अधिक महत्व उसे पंत जी द्वारा ही प्राप्त हुआ। "प्रथम रश्मि" ने पंत को बाल विहंगिनी का गान सुनाया। निराकार तम से निकल वे सुन्दर सृष्टि में आ जाते हैं—

खुले पलक फैली सुवर्ण छवि, जगी सुरभि, डोले मधु बाल,
स्पन्दन, कम्पन और नवजीवन, सीखा जग ने अपनाना।

इस प्रकृति-दर्शन ने पंत जी की जीवित जगत का नया आलोक दिया उनकी सम्पूर्ण जीवन-दृष्टि ही बदल दी। कालिदास का मेघ स्वयं सोच नहीं सकता, पर पंत का बादल अपनी चेतना से भाव प्रकट कर सकता है। पन्त के लिए प्रकृति सखी है, आत्मीय सखी। पंत जी ने प्रकृति को मध्ययुगीन उद्दीपन मात्र से निकाल कर आलम्बन रूप में उसका स्वतंत्र सौंदर्य प्रस्तुत किया। पहली बार पर्वतीय दृष्यों का ऐसा मधुर सौंदर्य प्रस्तुत किया कि पाठक विस्मय से मुग्ध हो गए। पंत जी ने वर्ण, ध्वनि, गंध, स्पर्श और स्वाद के एन्द्रिय बोध जगाने वाले दृष्यों से कविता भर दी। वर्ण विवेक में "लहरों पर स्वर्ण रेख सुन्दर पड़ गई नील ज्यों अधरों पर, अरुणाई प्रखर-शिशिर से डर" या फिर ध्वनि-चित्र "गुंजित अलि सा सागर अपार" या "चिड़िया करती टी.वी. टुर टुर" या फिर स्वर-मिच "झींगुर सी झीनी झंकार" जैसे कई आद्वितीय चित्र आंक दिए। पंत जी भाधावेग से उत्पन्न कल्पना को "नौका विहार", "मौन निमंत्रण" जैसी कविताओं में एक ऐसा रूप-रंग देते हैं कि अनुभूति हृदय के भीतर छा जाती है। नारी भी प्रकृति है वह देवी, माँ सहचरी प्राण, बनकर सामने आती है।

22.4.3 नारी के प्रति नवीन दृष्टि

प्रकृति की भाँति पंत जी ने नारी को नवीन भाव दृष्टि से देखा है। यह सच है कि छायावादी कविता में ही नारी की प्रधानता है। छायावाद से पहले भी नारी का चित्रण कवि कर रहे थे किन्तु उनकी दृष्टि पुरुष प्रधान थी। द्विवेदी युग की कविता में नारी उद्धार का पुरुष-दम्भ ज्यादा है, उसके प्रति करुणा कम। पर छायावादी कवियों को नारी के सहज सौंदर्य ने आकृष्ट किया। पंत जी "उच्छवास", "आँसू", "ग्रंथि" में एक बालिका के साथ अनुराग में बंधते हैं उसकी स्मृति में रूप-सौंदर्य से कल्पना भर जाती है –

स्नेह मयी, सुन्दरता मयि.
तुम्हारे रोम रोम से नारि,
मुझे है स्नेह अपार,
तुम्हारा मृदु उर ही सुकुमारि.
मुझे है स्वर्णागार

छायावादी कवियों पर नारी-सुधार-आन्दोलनों की धमक भी काफी गहरी है। इससे भी प्रसाद, पंत, निराला आदि कवियों के नारी संबंधी दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ। बीसवी शताब्दी में नारी शिक्षा का जोर बढ़ा और नवजागरण के प्रति नारियाँ भी सतर्क हो गईं। प्रथम बार नारी ने मुक्ति की सांस ली और वैयक्तिक प्रेम का उदय हुआ। नारी-प्रेम को इस काव्य में जो स्वच्छन्द दृष्टि मिली वह सम्बन्ध हीन और अद्भुत है। पुरानी नैतिकता के बंधन तोड़कर वह पुरुष से मिलने में स्वतंत्र हो गई–

मुक्त करो नारी को मानव,
चिरवंदिनी नारी को,
युग-युग की बर्बर कारा से
जननी, सखी, प्यारी को।

छिन्न करो सब स्वर्ण पाश,
उसके कोमल तन-मन के,
वे आभूषण नहीं दाम- उसके बंदी जीवन के

पंत जी ने प्रसाद की भाँति ही नारी-प्रेम की महिमा गाई। नारी ही "असीम सौन्दर्य-सिंधु" बनकर उनकी कल्पना का शृंगार कर उठी। हालांकि इसमें उनकी अव्यक्त-काम कुंठा का हाथ भी कम नहीं है।

स्त्री-पुरुष का एक नया रूप पंत में मिलता है। इसमें न तो प्रसाद की मधुचर्या है, न निराला का उद्दाम वेग। पंत के प्रेम में बालपन की सरलता का सौंदर्य है। डॉ. नामवर सिंह के शब्दों में "इसमें न तो मधु की सी प्रगाढ़ मिठास है, न ज्वार का उबाल। इसमें छोटे से पहाड़ी झरने की सी तरलता है। "बालिका की प्रेम स्मृति में पंत जी ने हृदय खोलकर रख दिया है। यथा-बालकों सा ही तो मैं हाय, याद कर रोता हूँ अनजान। पंत जी अत्यंत भोलेपन से प्रणय की अनुभूतियों को व्यक्त करते हैं। पंत की नारी कल्पना में बेहद भावा-वेग है—वह आधी नारी और आधी कल्पना है। वह कल्पनामयी और स्पर्श में पावन-गंगा स्नान लिए है। पंत जी की कविता "अप्सरा" इसी सौंदर्य की कविता है जिसमें "पल पल विस्मय" का भाव है। पंत ने स्थूल नारी सौंदर्य की ओर न

जाकर उसके भाव-सौंदर्य पर अपने कवि मन को केन्द्रित किया। यथा तुम्हारी आँखों में कर वास प्रेम ने पाया था आधार। "नारी के हृदय में झांक कर पाया– चाँदी का स्वभाव में वास, विचारों में बच्चों की सांस।" यह सौंदर्य कामोत्तेजना उत्पन्न नहीं कर सकता–पावन गंगा स्नान ही करा सकता है। पंत जी ने अपना दृष्टिकोण इस प्रकार नारी को लेकर व्यक्त किया है कभी कवि नारी को– अकेली सुन्दरता कल्याणी, सकल ऐश्वर्यों की सन्धान! देवि, माँ, सहचरी, प्राण कहता है तो कभी प्रेम की जननी मानता है।–

i) तुम जननी, प्रीति की स्रोतस्विनी,
तुम दिव्य चेतना दिव्यमना,
तुम स्वर्ण किरण की निर्झरिणी,
आभा देही, आभा बसना।
× × ×

ii) कितनी सुंदर हो तुम, शोभा के मंदिर-सी,
स्वप्नों के सुकुमार अजिर सी,
चंपक फूलों के तनु स्वर्णिम गौर-शिखर-सी।

22.4.4 जीवन-दर्शन

छायावादी काव्य दर्शन में पंत जी प्रकृति और नारी के नवजागरणवादी नवीन दृष्टिकोण को लेकर बहुत प्रसिद्ध हुए। उनके जीवन-दर्शन पर विवेकानन्द, उपनिषद्, राम-कृष्ण, रवीन्द्र और गांधी के विचारों की सीधी छाप पड़ी। अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने भी उनके जीवन दर्शन को नया रुख दिया। सन् 1934 ई. के बाद पंत जी ने मार्क्सवादी जीवन दर्शन अपना लिया और लिखा–

धन्य मार्क्स चिर तमच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर,
तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर।

कुछ समय तक मार्क्सवाद के मानववादी पक्ष को पंत जी ने ग्रहण किया किन्तु शीघ्र ही वे फिर भारतीय अध्यात्म की ओर मुड़ गए। वास्तविकता यह है कि मार्क्सवाद पंत जी के कोमल प्राण, मधुर-मधुर व्यक्तित्व में खप भी नहीं सका। भौतिक मूल्यों की अतिशयता पंत जी के संस्कारी धर्मप्राण-मन को तृप्त नहीं कर सकी। इसलिए उनका संवेदनशील मन भौतिक मूल्यों से विद्रोह करता हुआ आध्यात्मिकता की ओर बढ़ गया। मार्क्सवाद का अनात्मवाद या निरीश्वरवाद भी उनकी जीवन दृष्टि के अनुकूल नहीं पड़ा। वे आत्मा और ईश्वर की ओर अरविंद दर्शन का सहारा पाकर "स्वर्ण किरण", "अतिमा" आदि में मुड़ गए और जीवन की सभी समस्याओं का समाधान भी उन्हें अरविंद के अन्तरचेतनावादी दर्शन में ही मिला।

मुझे असत् से ले जाओ तुम सत्य ओर,
मुझे तमस से उठा, दिखाओं, ज्योति छोर,
मुझे मृत्यु से बचा, बनाओं अमृत भोर।
बार-बार आकर अन्तर में हे चिर परिचित,
दक्षिण मुख से, रुद्र करो मेरी रक्षा नित।

डॉ. नगेन्द्र का मत है कि "उन्होंने जिस आध्यात्मिक चेतना की कल्पना की है, उसमें भौतिकता का परिष्कार है, तिरस्कार नहीं है, उन्नयन है, दमन नहीं है।" जाहिर है कि पंत जी जीवन के आस्थावादी दर्शन के कवि हैं।

बोध प्रश्न 1

1 पंत जी के जीवन का पाँच पंक्तियों में परिचय लिखिए।

....

....

....

....

....

2 पंत जी के रचनाकार-व्यक्तित्व की किन्हीं दो विशेषताओं का उल्लेख तीन पंक्तियों में कीजिए।

....

3 पंत जी की काव्य चेतना के विकास पर दस पंक्तियों में विचार कीजिए।

4 पंत जी की काव्यनुभूति के वैशिष्ट पर पाँच पंक्तियाँ लिखिए।

5 पंत जी प्रकृति-सौंदर्य के कवि हैं। इस कथन पर उदाहरण देते हुए सात-आठ पंक्तियाँ लिखिए।

6 पंत जी की नारी भावना का मूल वैशिष्ट्य तीन पंक्तियों में बताइए।

7 पंत जी के जीवन-दर्शन पर सात-आठ पंक्तियों में चर्चा कीजिए।

22.5 काव्य-शिल्प

पंत जी के कथ्य और कथन के बीच किसी भी प्रकार की कोई दूरी नहीं है। उनकी काव्यानुभूति का अभिव्यक्ति पक्ष अत्यधिक समृद्ध है। अनुभूति एवं अभिव्यक्ति के अभेद ने उनकी कला को एक अखंड-सौंदर्य में ढाल दिया है। मूलतः यह कला "अपने भीतर से मोती के पानी की तरह अन्तर-स्पर्श करके भाव समर्पण करने वाली अभिव्यक्ति की छाया" का रूप है। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में पंत जी की कला तितली के पंखों से चुराई गई कला है। कवि का रचना-शिल्प कृत्रिम न होकर सहज और प्रभावशाली है। किन्तु यह उनके सहज प्रयत्न का मूर्त रूप है। पंत जी अमूर्त भावनाओं को मूर्त करने के लिए अभिव्यंजना के सभी उपकरणों का उपयोग करते हैं। उनके काव्य-शिल्प के प्रमुख उपकरण है। i) काव्य-रूप ii) काव्य भाषा iii) बिंब-विधान तथा प्रतीक विधान iv) अप्रस्तुत-योजना; तथा v) लय एवं छंद। यहां हम कला-शिल्प के इन उपकरणों का विवेचन-विशलेषण एवं मूल्यांकन प्रस्तुत करेंगे, ताकि आप पंत जी के काव्य-सौन्दर्य के कला-पक्ष और उसके कलात्मक-सौन्दर्य से परिचित हो सकें।

22.5.1 काव्य-रूप या प्रगीत कला

पंत जी ने छायावाद के प्रमुख काव्य रूप प्रगीत को अपनाया और उसे अपनी अंतर्मुखी भाव-साधना में ढालकर चमका दिया। उनमें प्रसाद जैसी महाकाव्यकार की सर्जनात्मक प्रतिभा भी नहीं है—और न ही निराला जैसी नूतन प्रयोगशील रचना-शक्ति है। महादेवी और पंत तो विशुद्ध रूप से प्रगीतकार ही हैं।

प्रगीतकाव्य (लिरिकल पोयट्री) का चर्चा पश्चिम में काव्य-चर्चा के आरंभ से ही मिलती है। यूनान में महाकाव्य, नाटक और प्रगीत काव्य के तीन रूप मौजूद मिलते हैं। किन्तु हिंदी में "प्रगीत" काव्य रूप का प्रयोग पुराना नहीं है। भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य के गेय रूप की चर्चा तो है पर इस गेय रूप का स्वरूप विवेचन नहीं किया गया है। हिंदी की आधुनिक कविता में अंग्रेजी "लिरिक" के समानार्थी "प्रगीत" जैसा नवीन शब्द गढ़ा गया है। अंग्रेजी के वर्डस्वर्थ, शैली, कॉलरिज, कीट्स, बायरन आदि प्रगीतकारों से प्रभावित होकर आधुनिक छायावादी कवियों ने नए प्रकार की प्रगीतात्मक रचनाओं की सृष्टि की है। इस प्रगीत सृष्टि में अन्तः प्रेरणा, आत्माभिव्यक्ति और प्रबल भावावेगों का विशेष योग रहता है। इसमें भाव अनुवर्तन करने वाली शब्द-अर्थ-संगीत की लय रहती है। प्रसाद, पंत और निराला के प्रगीत पश्चिम से प्रभावित होने पर भी अपनी गीति परंपरा की मूल भूमि का ही विस्तार हैं—पश्चिम की नकल नहीं। महादेवी के शब्दों में "साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख-दुःखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है जो अपनी ध्वन्मात्मकता में गेय हो सके।" छायावादी प्रगीतकारों के कथनों की भाव ध्वनि के अनुसार प्रगीत के मूल तत्व सात हैं (1) आत्मभिव्यक्ति की प्रबलता और संगीतात्मकता (2) व्यक्ति तत्व या वैयक्तिकता (3) भाव वेग (4) भावान्विति (5) सहज अन्तः प्रेरणा (6) संक्षिप्त रूपाकार; तथा (7) प्रवाहमयी शैली। पंत जी ने कविता का प्रेरणा स्रोत राग तत्व को ही माना है। उनकी समग्र कविता इसी राग तत्व की अभिव्यक्ति है। यह राग आत्म संगीत का रूप है। प्रसाद और पंत के प्रगीत आन्तरिक शब्द संगीत से अनुप्राणित हैं। "गुंजन" की तरल मधुर वर्णों की झंकार का लय युक्त रूप देखिए—

"विहग, विहग/फिर चहक उठे ये पुंज पुंज/कल कूजित कर उर का निकुंज/चिर सुभग, सुभग।" जाहिर है कि पंत का स्वर स्वभावतः संगीतात्मक है। पंत जी प्रगीतों में शब्द के आंतरिक संगीत तथा स्वर संगीत का सामंजस्य कर देते हैं।

i) झम झम झम मेघ बरसते रे सावन के,
छम-छम छम गिरती बूंदें तरुओं से छन के।

ii) पावस ऋतु थी, पर्वत प्रदेश,
पल-पल परिवर्तित प्रकृति वेश
मेघलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्र दृग सुमन फाड़।

प्रगीत मूलतः व्यक्ति प्रधान काव्य रूप है। इसमें आत्मभिव्यक्ति के अनेक रूप सक्रिय रहते हैं। वैयक्तिक भाव की अभिव्यक्ति के लिए पंत जी की कविता "उच्छवास" एक आदर्श प्रस्तुत करती है। यथा—"सरल शैशव की सुखद सुधि सी वही। बालिका मेरी मनोरम मित्र थी।" भावावेग को वे भावान्विति में बाँधते हैं। कल्पना खंड-खंड भावों को संश्लिष्ट करती है। अतः

प्रगीत का शुद्ध अन्तः स्फूर्त रूप भी पन्त जी में मिलता है :

> **अहा, अभागिन हो तुम मुझ सी**
> **सजनि, ध्यान में अब आया,**
> **तुम इस तरुवर की छाया हो**
> **मैं इनके पद की छाया।**

शब्द में गेयता, सुकुमारता, तरुल मधुरता और भाव प्रवाह "नौका विहार" जैसी रचनाओं में दर्शनीय है। प्रकृति का संगीत पन्त जी के प्रगीतों में लयबद्ध है। "मौन निमंत्रण" कविता में मधुर कोमल शब्द हीरे से जड़े हुए हैं—यथा— "न जाने, नक्षत्रों से कौन, निमंत्रण देता मुझ को मौन।" चूंकि पंत शब्द शिल्पी है—उनके शब्दों में जड़ाव-कढ़ाव अधिक है। वे एक अखण्ड लयात्मक प्रवाह-प्रगीत में संयोजित कर देते हैं। "परिवर्तन" जैसी लंबी कविता और "लोकायतन" जैसे प्रगीतात्मक महाकाव्य को छोड़कर उनके प्रगीतों का आकार संक्षिप्त है।

पंत जी ने "मौन निमंत्रण" जैसे सम्बोधन गीत, "लोकमान्य तिलक" जैसे शोक गीत, "स्मृति" जैसे सॅनिट (चतुर्दश पदी) सफलता से लिखे हैं। हिंदी की प्रगीत कला पंत जी के हाथों परिष्कृत होकर ललित रूप धारण करती है।

22.5.2 काव्य भाषा

पंत जी की काव्य भाषा के लिए स्मरण रखने की विशेष बात यह है कि उन्होंने खड़ी बोली की सर्जनात्मकता को निखार कर जो छबियाँ अंकित की हैं, वे खड़ी बोली की अनुपम-श्री-सम्पदा हैं। उन्होंने खड़ी बोली को उन्मुक्त कल्पना से रंग कर काव्य-भाषा में नवीन अर्थ का प्रकाश पैदा कर दिया है। द्विवेदी युगीन नीरस, इतिवृत्तात्मक और गद्यात्मक-भाषा को पंत जी ने तराशकर मधुर, संगीतात्मक एवं काव्यात्मक बनाया है। पंत जी ने ध्यान देकर कहा है कि "भाषा का और मुख्यतः कविता की भाषा का प्राण राग है।" उन्होंने सूक्ष्म से सूक्ष्म और गहन से गहन भावों को व्यक्त करने में सक्षम भाषा को प्रयोग के धरातल पर सिद्धि प्रदान की। उनकी काव्य भाषा से खड़ी बोली ने जागरण की चेतना, नया सौंदर्य बोध, कल्पना की नूतन चित्र शक्ति और शब्द चयन का औचित्य पाया। यह भी कह सकते हैं कि पंत जी शब्द-चयन, शब्द-प्रयोग, शब्द-संस्कार, शब्द-चित्र, शब्द-ध्वनि-झंकार के लिए अंग्रेजी स्वच्छन्दतावादी कवियों के पर्याप्त ऋणी हैं। वे भाषा की अभ्यास-जड़-रूढ़ियों को तोड़कर नए शब्दों में नया अर्थ भरते हैं "सेब के रस की तरह जिसकी लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़ी हो।" मूलतः पंत जी की भाषा चित्र-भाषा है, जिसमें स्वर और लय का सौंदर्य जन्मा है। भाषा के अर्थ विकास के लिए लक्षक-व्यंजना का प्रयोग उनकी कविता में विस्तार पाता है, जैसे "सघन मेघों का भीमाकाश। गरजता है जब तमसाकार" (मौन निमंत्रण) में कवि ने व्यंजना की स्वर संधि से तत्सम शब्दों में नयी अर्थ चेतना उत्पन्न की है। उन्होंने नए शब्दों में तत्सम तद्भव दोनों प्रकार के शब्दों में प्रत्यय लगाकर नवीनता पैदा की है—"फेनिल", "रंगिणि", "तरंगिनि", "स्वामिल", "स्वप्निल", "तन्द्रिल" आदि ऐसे ही प्रयोग हैं। भाव के अनुकूल वे अंग्रेजी शब्दों से निर्मित शब्दों का हिंदी रूपांतरण बेझिझक करते हैं यथा स्वर्णिम (गोल्डन), सुनहला-स्पर्श (गोल्डन टच), "तन्द्रिल" (ड्राउली), "भग्न-हृदय" (ब्रोकन हार्ट), "अजान" (इन्नोसेंट), "रेखांकित" (अंडर लाइन) आदि "अचल रेखांकित उसे कर रही थी। प्रमुखता मुख की सुछबि के काव्य में।" कभी कभार वे स्वर संधि से भी शब्द निर्मित करते हैं यथा शब्दोच्छल, मदिराम, स्वर्णोत्पल आदि। जाहिर है पंत में तत्सम, तद्भव, देशज शब्दों के साथ विदेशी शब्दों का मोह भी है। वे व्याकरण की कठोरता को तोड़ते है— जैसे "पल्लवों का यह सजल प्रभात" में पुल्लिंग शब्द का स्त्रीलिंग में प्रयोग। वे छायावादी कवियों में संधि समास योग के लिए विशिष्ट कवि हैं—यथा—"मरुदाकाश" (सुरभि से अस्थिर मरुदाकाश)। पंत जी ने नाद-सौंदर्य के ध्वनयात्मक-वक्र प्रयोग भी खूब किए हैं—"हैं चहक रही चिड़ियाँ। टी.वी.टी..... टुट टुट।" काव्य भाषा, के इस प्रतिमान पर वे खरे उतरते हैं कि "कविता के लिए चित्र भाषा की आवश्यकता पड़ती है, उसके शब्द सस्वर होने चाहिएँ, जो बोलते हों, जो अपने भावों को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सकें, जो झंकार, में चित्र, चित्र में झंकार हों" (पल्लव-प्रवेश) भूमिका।

22.5.3 बिम्ब और प्रतीक

पंत जी की काव्य भाषा में सांकेतिकता और प्रतीकात्मकता भाव की अभिव्यंजना के लिए एक विशेष पद्धति है। ये प्रतीकात्मकता प्रस्तुत अर्थ से भिन्न किसी विशेष अर्थ की व्यंजना करते हैं। पंत जी ने लक्षण मूलक प्रतीकों का अधिक प्रयोग किया है। और प्रभात साम्य पर विशेष बल

दिया है। आंतरिक प्रभाव साम्य के आधार पर लाक्षणिक और व्यंजनात्मक पद्धति के प्रयोगों ने असली छायावादी काव्य शैली का विकास किया है।

तुम्हारे छूने में था प्राण, संग में पावन गंगा स्नान,
तुम्हारी वाणी में कल्याणी, त्रिवेणी की लहरों की तान।

इसमें "गंगा-समान"—सात्विक पवित्रता का तथा "त्रिवेणी की लहरों का गान" "सात्विक संगीत माधुर्य" का प्रतीक है। इन प्रतीकों की मूल भाषा में लक्षण-व्यंजना का अद्भुत चमत्कार है। अतः स्पष्ट है कि भाव विचार स्थिति के सूक्ष्म प्रतीक पंत जी की काव्यात्मक क्षमता को व्यक्त करते हैं। इनमें प्रत्यक्ष अनुभूति, विस्मय, रम्यता तथा कल्पना की प्रधानता हैं। अनुभूति की सूक्ष्म रोमानी आदि व्यंजना भी इन प्रतीकों की शक्ति है। पन्त के नारी प्रतीक उनकी अतृप्प काम कुंठाओं का संकेत भी देते हैं।

पंत जी की काव्य भाषा अतिशय बिंब मूलक भाषा है। कल्पना के प्रति अतिरिक्त मोह होने के कारण कल्पना जन्म बिंबों में चमत्कार अधिक है। अतः इन बिंबों को "कल्पना द्वारा सृजित ऐन्द्रियानुभव" भी नाम दिया जा सकता है। पंत जी ने अपनी कल्पना जन्म संवेदना से वर्ण, गंध, ध्वनि, स्पर्श, आदि के बड़े ही सूक्ष्म चित्र प्रस्तुत किए। रंगीन, कल्पनामय वर्ण बिंब देखिए—

"किरन तुम क्यों बिखरी हो आज। रंगी हो तुम किसके अनुराग।"

पन्त जी की "नौका विहार" कविता में अनेक सुंदर एवं संश्लिष्ट बिंबों का एक साथ संयोजन है:

1) मृदु मंद-मंद मंथर-मंथर, लघु तरणि, हंसिनी सी सुंदर, तिर रही खोल पालों के पर।

2) माँ के उर पर शिशु सा, समीप, सोया धारा में एक द्वीप।

3) साड़ी सी सिकुड़न थी जिस पर शशि की रेशमी विभा से भर।

रूप, रस, गंध, श्रवण, स्पर्श आदि सभी बिंब पन्त के काव्य की रंगीन-चित्रशाला के अंग हैं। छायावादी कला पन्त के बिंबों में अपने पूरे वैभव के साथ मौजूद है।

22.5.4 अलंकार, लय एवं छन्द विधान

अलंकारों के संदर्भ में प्रयुक्त "अप्रस्तुत योजना" शब्द भी अपरिचित नहीं है। सामान्य रूप से "अप्रस्तुत" शब्द उपमान का पर्याय है। पन्त जी ने अनेक रूढ़ि मुक्त नवीन उपमानों की झड़ी अपनी कविता में लगा दी है यथा—

"मोती की लड़ियों, से सुन्दर। झरते हैं झाग भरे निर्झर।"

"मोती की लड़ियों", की पूरी शक्ति नवीन बिंब की भाव सृष्टि में है। पंत जी रूप और भाव प्रभाव के नए बिंब भी उपमानों के माध्यम से लाने में कुशल हैं यथा—

तड़ित सा सुमुखि तुम्हारा ध्यान। प्रभा के पलक भार उर चीर।

प्रेयसी के रूप की विद्युत सी कौंध उठाने वाली स्मृति का समग्र प्रभाव पाठक की चेतना को कस लेता है। मूर्त्त के लिए मूर्त्त और अमूर्त्त की अप्रस्तुत योजना इस कला का वैचित्र्य है। भारतीय शब्द-अर्थ पर आधारित अलंकारों के साथ वे पश्चिम के प्रसिद्ध अलंकारों का डटकर प्रयोग करते हैं—

1) सैक्त शैया पर दुग्ध धवल। तन्वंगी गंगा ग्रीष्म विरल (मानवीकरण अलंकार) जड़ को चेतन, अशरीरी को शरीरी बनाने वाला वह अलंकार (परसॉनिफिकेशन) मानवीकरण पन्त जी को अत्यंत प्रिय है। विशेषण विषय (ट्रान्सफर्ड एपिथेड) का प्रयोग वे नए बिंब के लिए करते हैं, यथा—"निज अब तरु उरके स्वप्नों से" जैसे प्रयोग द्रष्टव्य हैं। निष्कर्ष यह है कि अलंकार योजना के द्वारा पंत जी ने अपनी कला शक्ति के अर्थ संवेदन का विस्तार किया है।

पन्त जी ने अर्थ के अनुकूल नूतन लयों का काव्य में प्रयोग किया है तथा प्राचीन छन्द शास्त्र के रूढ़ि बंधनों को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने "खुल गए छन्द के बंध, प्रास के रजत पाश" कहकर ठीक ही कहा था।

पन्त जी ने मात्रिक छन्दों को स्थान दिया तथा प्राचीन छंदों के स्वरूप को परिष्कृत किया। भावानुकूल नए छंदों का आविष्कार किया। "रोला" पन्त जी का प्रिय छंद है। लय को मूलाधार बनाकर वे उच्छवास तथा "परिवर्तन" में इस छन्द का निर्झर प्रवाहित कर देते हैं। 'रोला' की पुरानी यति गति में परिवर्तन कर उसे भावानुरूप ढाल लिया। 24 मात्राओं का 'रूपमाला' और

22 मात्राओं का 'राधिका' छंद थिरकता हुआ पंत-काव्य में आता है। अराल्ली, पीयूष-वर्ष, चौपाई जैसे छन्द नयी गति से आते हैं। 16 मात्राओं के छन्द 'चौपाई' का उदाहरण लीजिए:

गिरिवर के उर से उठ उठ कर
उच्चाकांक्षाओं के तरुवर।

सखी, गोपी और चौपाई छंद भाषा के कदम खोलते हैं। 15 मात्राओं के गोपी छन्द का उदाहरण लीजिए--

गिरा हो जाती सनयन
नयन करते नीरव भाषा।

अतः पन्त जी ने (1) शास्त्रीय छन्दों को नया रूप दिया (2) मुक्त छंद में स्वर लय के अद्भुत प्रयोग किए (3) अनेक नूतन छंदों का भाव के अनुसार आविष्कार किया (4) अतुकांत छन्द में "ग्रंथ" लिखकर,सफलता प्राप्त की। कहा जा सकता है कि पन्त जी की छन्द योजना-नूतन, समृद्ध तथा वैविध्यपूर्ण है। उन्होंने भाव-लय तथा अर्थ-लय प्रवाह के अनुकूल नए से नए छन्द प्रयोग किए हैं। अंग्रेजी की सॉनेट शैली का प्रभाव भी पन्त जी पर दृष्टिगत होता है।

बोध प्रश्न 2

1 पन्त जी की प्रगति-कला की विशेषताओं को पाँच पंक्तियों में लिखिए?

....

....

....

....

....

2 पन्त जी की काव्य भाषा पर सात-आठ पंक्तियों में विचार कीजिए?

....

....

....

....

....

....

....

....

3 बिंब और प्रतीक की कला ने पन्त के काव्य सौन्दर्य में किस हद तक वृद्धि की है? पाँच पंक्तियों में लिखिए?

....

....

....

....

....

....

4 पन्त जी नूतन छन्दों का प्रयोग करते हैं। इस कथन पर पाँच पंक्तियों में विचार कीजिए?

....

....

....

....

....

5 पन्त जी के काव्य-बिम्ब काव्य में शोभा मात्र है या काव्य की शक्ति? तीन-चार पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

22.6 काव्य वाचन तथा संदर्भ सहित व्याख्या

अब आप प्रकृति-प्रेमी तथा छायावादी काव्य के चार प्रमुख कवियों में महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले कोमल एवं सहज भावों के प्रणेता सुमित्रानंदन पन्त के काव्य का विस्तृत विवेचन एवं अध्ययन कर चुके हैं। यहाँ आपके पाठ्यक्रम में निर्धारित पन्त जी की दो कविताएं "प्रथम रश्मि" तथा "मौन निमन्त्रण" दी जा रही हैं। पहले इन कविताओं का गंभीरता से वाचन कीजिए तथा फिर प्रकृति-प्रेम एवं प्रकृति की अनुपम छटा का आनन्द देकर मर्म को छूने वाली इन अन्यतम कविताओं की प्रसंग एवं संदर्भ सहित व्याख्या का अभ्यास कीजिए। कविताओं के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या की जा रही है। शेष आप स्वयं करने का प्रयास करें। आइए काव्य-वाचन करें--

काव्य वाचन 1 प्रथम रश्मि

प्रथम रश्मि का आना, रंगिणि!
तूने कैसे पहचाना?
कहाँ, कहाँ हे बाल विहंगिनि[1]!
पाया तूने यह गाना?
सोई थी तू स्वप्न-नीड़[2] में
पंखों के सुख में छिपकर,
झूम रहे थे, घूम द्वार पर,
प्रहरी[3]-से जुगनू नाना;
शशि किरणों से उतर उतर कर
भू पर कामरूप नभचर[4]
चूम नवल कलियों का मृदु मुख
सिखा रहे थे मुसकाना;
स्नेहहीन तारों के दीपक,
श्वास शून्य थे तरु के पात,
विचर रहे थे स्वप्न अवनि में,
तम ने था मंडप ताना;
कूक उठी सहसा तरु-वासिनि[5]!
गा तू स्वागत का गाना,
किसने तुझको अंतर्यामिनी[6]!
बतलाया उसका आना?
निकल सृष्टि के अंध-गर्भ से
छाया-तन बहु छाया-हीन,
चक्र रच रहे थे खल निशिचर[7]
चला कुहुक, टोना-माना,
छिपा रही थी मुख शशि बाला
निशि के श्रम से हो श्री-हीन[8],
कमल क्रोड़ में बंदी था अलि[9],
कोक शोक से दीवाना;
मूर्छित थीं इन्द्रियाँ, स्तब्ध जग,
जड़-चेतन सब एकाकार,

1. चिड़िया 2. सपनों के घोंसले में 3. पहरेदार 4. आकाश में उड़ने वाले 5. कोयल या चिड़िया 6. भीतर की बात जानने वाली 7. रात्रि में विचरण वाले (राक्षस) 8. शोभा रहित 9. भंवरा

शून्य विश्व के उर में केवल
सांसों का आना जाना;
तूने ही पहिले बहु दर्शिनि!
गाया जागृति का गाना,
श्री-सुख-सौरभ का, नभचारिणी!
गूंथ दिया ताना बाना!
निराकार तम मानो सहसा
ज्योति-पुंज में हो साकार,
बदल गया द्रुत जगतजाल में
धर कर नाम-रूप नाना;
सिहर उठे पुलकित हो द्रुम-दल
सुप्त समीरण हुआ अधीर,
झलका हास कुसुम-अधरों[1] पर
हिल मोती का सा दाना;
खुले पलक, फैली सुवर्ण छवि,
जगी सुरभि, डोले मधु बाल,
स्पंदन कम्पन औ' नव जीवन
सीखा जग ने अपनाना;
प्रथम रश्मि का आना, रंगिणि!
तूने कैसे पहचाना?
कहाँ, कहाँ, है बाल विहंगिनि!
पाया यह स्वर्गिक गाना?

काव्य वाचन 2 मौन-निमन्त्रण

स्तब्ध ज्योत्सना में जब संसार
चकित रहता शिशु सा नादान,
विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान;
न जाने, नक्षत्रों[2] से कौन
निमन्त्रण देता मुझको मौन!
सघन मेघों का भीमाकाश[3]
गरजता है जब तमसाकार,
दीर्घ भरता समीर निःश्वास,
प्रखर झरती जब पावस धार;
न जाने, तपक तड़ित् में कौन
मुझे इंगित[4] करता तब मौन!

देख वसुधा का यौवन-भार
गूंज उठता है जब मधुमास[5],
विधुर उर के-से मृदु उद्गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास,
न जाने सौरभ के मिस कौन
संदेशा मुझे भेजता मौन!
क्षुब्ध जल-शिखरों को जब वात
सिन्धु में मथ कर फेनाकार,
बुलबुलों का व्याकुल संसार
बना, बिथुरा देती अज्ञात;
उठा तब लहरों से कर[6] कौन
न जाने मुझे बुलाता मौन!

स्वर्ण, सुख, श्री, सौरभ में भोर[7]
विश्व को देती है जब बोर[8]

1. पुष्प रूपी होंठ 2. तारे 3. विशालकाय-नभ 4. संकेत 5. बसन्त 6. हाथ 7. प्रातः वेला 8. डुबाना

विहग कुल की कल कण्ठ हिलोर
मिला देती भू-नभ के छोर;
न जाने अलस पलक दल कौन
खोल देता तब मेरे मौन!

तुमुल तम से में जब एकाकार
ऊंघता एक साथ संसार,
भीरु भींगुर-कुल की भनकार
कंपा देती तन्द्रा के तार;
न जाने खद्योतों[1] से कौन
मुझे पथ दिखलाता तब मौन!
कनक-छाया में जब कि सकाल
खोलती कलिका उर के द्वार,
सुरभि-पीड़ित मधुपों के बाल
तड़प, बन जाते हैं गुञ्जार;
न जाने ढुलक ओस में कौन
खींच लेता मेरे दृग मौन!
बिछा कार्यों का गुरुतर भार
दिवस को दे सुवर्ण अवसान,
शून्य शय्या में श्रमित अपार,
जुड़ाती जब मैं आकुल प्राण;
न जाने मुझे स्वप्न में कौन
फिराता छाया-जग में मौन
न जाने कौन, अये छबिमान,
जान मुझको अबोध, अज्ञान,
सुझाते हो तुम पथ अनजान,
फूंक देते छिद्रों में गान;
अहे सुख दुख के सहचर मौन
नहीं कह सकती तुम हो कौन!

संदर्भ एवं प्रसंग सहित व्याख्या

कविता एक--"प्रथम रश्मि"

i) प्रथम रश्मि का ....उसका आना।

संदर्भ : प्रस्तुत पद्य अवतरण "प्रथम रश्मि" शीर्षक कविता से लिया गया है। इस कविता के रचनाकार छायावाद के प्रमुख कवि सुमित्रानन्दन पंत जी हैं।

प्रसंग : "प्रथम रश्मि" कविता पंत जी के प्रथम काव्य-संग्रह "वीणा" की प्रसिद्ध कविताओं में से एक है। स्वयं कवि के अनुसार यह कविता उनके सृजन कर्म के अन्त: सूत्रों को समझने में सहायक है। छायावाद की मूल प्रवृत्ति कल्पनातिरेक, रम्य और अद्भुत तत्व, नवजागरण की चेतना-ध्वनि का, यह कविता प्रतिनिधित्व करती है। स्वच्छन्दतावादियों की शिशु सुलभ जिज्ञासा और विस्मय की इसमें सर्जनात्मक अभिव्यक्ति मिलती है। द्विवेदी युगीन कविता के बाद की नवजागरण चेतना "प्रथम रश्मि" में आलोकित है। कवि विस्मित है कि जब संसार निन्द्रा और अंधकार में सोया-खोया हुआ था तब भोली चिड़िया को जागरण के प्रकाश की रश्मि का ज्ञान कैसे हुआ।

व्याख्या : विस्मय-विमुग्ध कवि-मन चिड़िया से पूछना चाहता है कि जब वह अपने पंजों को समेटकर घोंसले में आनन्द से सो रही थी, अंधकार में चमकने वाले जुगनू पहरेदार से झूमकर जग रहे थे, चन्द्रमाँ की किरणों से सहरि धरती पर मायावी--जो अपनी इच्छा से रूप धारण कर सकते हैं--धरती पर उतरकर कोमल-कलियों का मुख चूमकर उन्हें मुसकाना सिखा रहे थे। उस समय प्रकृति प्रशान्त थी, आकाश में तारों के दीपक जिन्हें स्नेह प्राप्त नहीं हुआ था और जो स्नेह पाने के आकांक्षी थे--प्रकाश छोड़ रहे थे। वृक्षों के पत्ते मौन थे और चेतन जगत अपने स्वप्नों की मधुर मादकता में निमग्न था। धरती पर अन्धकार की एकछत्र सत्ता थी। ऐसे प्रशान्त वातावरण में ओ भोली चिड़िया तू किसके स्वागत में प्रसन्न होकर कूक उठी है। हे अन्तर्यामिनी, तुझे यह ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ कि अन्धकार को बेंधकर रश्मिरथी-सूर्य की किरणें धरती की ओर आ रही हैं।

1. जुगनू

विशेष : i) कवि ने कल्पना की शक्ति से विशेष शब्दों का प्रयोग किया है। जैसे "रंगिणि"—आनन्दमग्न रहने वाली और "विहंगिनी"—मादा पक्षी, "नीड़" घोंसला, कामरूप—इच्छानुसार रूप धारण करने वाले, नभचर—आकाश चारी।
सभी काव्य पंक्तियाँ छायावाद को कोमल और नवीन अर्थ बोधक शब्दावली से भरपूर है।

ii) प्रकृति-चेतना की पक्षी को स्वाभाविक पहचान होती है। दर्शन में पक्षी ज्ञान चेतना का प्रतीक कहा गया है।

iii) स्वच्छन्दतावाद में कल्पना, विस्मय और रम्य का संयोग रहता है। यह विशेषता इस पद्य में विद्यमान है।

iv) स्वाधीनता आन्दोलन में आती हुई शक्ति और मुक्ति चेतना से देश निराश था। अन्धकार के भीतर से आशा उल्लास पा रहा था। "प्रथम रश्मि" उसी भाव-चेतना का संश्लिष्ट बिम्ब है। ध्वनि, रूप एवं गति के बिम्ब यहाँ एक साथ सक्रिय हैं।

v) छायावादी भावावेग ने प्रगीतात्मकता को नया रचाव दिया है

vi) छायावादी कविता का वयः संधि का प्रेम "चूम नवल कलियों" से व्यक्त है।

2) निराकार तम .... कैसे पहचाना?

संदर्भ एवं प्रसंग : ऊपर की भाँति ही लिखिए।

व्याख्या : यह काव्य खंड दार्शनिक दृष्टि से प्रकृति के परिवर्तनशील कार्य व्यापार को उद्घाटित करता है। कवि का कथन कि रात के प्रशांत अंधकार में नाम—रूपात्मक जगत अपने अस्तित्व को लीन किए मौन था—वही जगत सहसा प्रथम रश्मि के स्पर्श से नाम-रूप के नाना या निराकार ब्रह्म रूप से मानो साकार ब्रह्म रूपी प्रकाश में बदल गया। इस नाना नाम रूपात्मक जगत की सही पहचान प्रकाश ही देता है। यदि प्रकाश न होता तो सृष्टि अंधकार की अक्षय सत्ता होती—जिसका ज्ञान सम्यक नहीं था। प्रकाश के स्वागत में वृक्ष प्रसन्नता से झूमने लगे, सोई हुई वायु जगकर उमंग से उछल पड़ी। कलियाँ किरन का स्पर्श पाकर चटकने लगीं या खिलने लगीं। फूलों के ओठों पर हँसी फूट पड़ी और ओंस कण मोती से चमकने लगे। फूलों के साथ ही सोया हुआ पूरा संसार जग गया, चारों ओर प्रभात की स्वर्णिम आभा फैल गई। मधुपान करते हुए भ्रमर झूमते-मंडराते हुए दृष्टिगत होने लगे। प्रकृति के इस अपूर्व उल्लास से जगती तल में नवजीवन का स्पन्दन हो उठा।

विशेष : i) दर्शन में कहा गया है कि आरम्भ में सृष्टि अंधकार में डूबी हुई थी। उसने अपने को बाद में अव्यक्त से व्यक्त किया। इस अभिव्यक्तिवाद से नाम रूपात्मक सगुण साकार संसार प्रत्यक्ष हुआ। उपनिषदों के इस सत्य को कवि ने यहाँ वाणी दी है।

ii) सौन्दर्य परक ऐन्द्रिय बिम्बों से प्रकृति के आह्लाद को फूल, भ्रमर समीर से मूर्त्त किया है। अमूर्त्त को मूर्त्त उपमानों से प्रत्यक्ष किया है।

iii) चाक्षुष्य बिंबों का भावावेग से प्रगीतों के स्वर-सौन्दर्य में साकार किया है।

iv) काव्य-भाषा में शब्दों की अर्थ-रीति और लक्षणां-व्यंजना का सर्जनात्मक चमत्कार निष्पन्न किया है। "सुवर्ण छवि" "गोल्डन लाइट" के लिए नवनिर्मित शब्द है।

v) स्वच्छन्दतावादी या रोमैन्टिसिज्म का सौन्दर्य-बोध प्रकृति पर आधारित है। इसी आधार पर छायावादी प्रकृति-बोध को प्रकृति-वाद भी नाम दिया गया है। कविता में "चित्र भाषा" और स्वर संगीत का प्रवाह पैदा किया गया है।

vi) प्राकृतिक चेतना के आश्रय से छायावादी कला सौन्दर्य की लगभग सभी विशेषताएँ इस पद्य के कथ्य, संवेदना और रूप में विद्यमान हैं। "स्पंदन", "कंपन", "मधु-बाल" जैसी कोमल और अर्थबोधक शब्दावली ने काव्यात्मकता की कोमल-भाव-उष्मा को रचकर प्रस्तुत किया है।

कविता-दो—"मौन निमन्त्रण" :

स्तब्ध ज्योत्सना .... मुझको मौन!

संदर्भ : प्रस्तुत पद्य अवतरण "मौन निमंत्रण" शीर्षक कविता में से लिया गया है। इसके रचयिता कविवर "सुमित्रानन्दन पन्त" हैं।

प्रसंग : पन्त जी ने "मौन निमंत्रण" कविता की रचना 1923 ई. में की है। यह "पल्लव" काव्य-संकलन की बहुचर्चित कविता है। पन्त जी के भाव-लोक की मनोदशाओं, मनःस्थितियों को यह कविता पूरी तरह उजागर करती है। प्रकृति सौंदर्य और प्रकृति-प्रेम की अभिव्यंजना "पल्लव" में परिपक्व रूप में व्यक्त हुई है। अब "वीणा" के शिशु सुलभ चकित संसार से कवि बाहर निकल आया है, और "ग्रंथि" की प्रेम-वेदना की टीस उसके भीतर पल गई है। अब वह मुक्त रूप से प्रकृति का साक्षात्कार करता है। उसे प्रतीत होता है जैसे एक विराट सत्ता प्रकृति के संकेतों से उसे मौन-निमन्त्रण दे रही है। कविता प्राकृतिक रहस्यवाद की धमक है, पर यह रहस्य भावना अपने प्रकृति या स्वाभाविक रूप से व्यक्त होने के कारण कृत्रिम नहीं है। कवि चाँदनी से नहाती रात के सौंदर्य का वर्णन करते हुए कहता है कि--

व्याख्या : जिस समय प्रकृति का सौंदर्य पूरे संसार पर छा जाता है रात में खिलती चाँदनी की आभा, नीरवता और प्रेमाकुलता को देख-देखकर मन चकित होता है। ऐसा अनुभव होता है जैसे कोई भोला शिशु सुख-स्वप्नों में मग्न हो। इस विश्व शिशु की पलकों में भोले रंगभरे चित्र स्वप्न में घूम रहे हों। उस प्रशांत परिवेश में न जाने कौन-सी शक्ति मुझे नयनों के संकेत से अपने पास आने का आमंत्रण देती है। जब घनघोर अंधकार में काले भयंकर भीमाकार से बादल गर्जना करते हुए संसार पर गरजते हैं तब उस भयानक वातावरण से भयभीत होकर वायु भी गहरी लम्बी सांस छोड़ती प्रतीत होती है, जब बादल उमड़-घुमड़कर मूसलाधार पानी बरसाते हैं, जब प्रखर झरती-पावस-धार के बीच बादलों के टकराने से बिजली कौंधती है, तब ऐसा लगता है कि बिजली की कौंध के प्रकाश में कोई मुझे बुला रहा है। पानी बरसने से धरती का उल्लास उमड़ता है वह हरी भरी हो जाती है ऐसा लगता है जैसे कोई युवती अपने यौवन-सौन्दर्य से खिलकर आकर्षक हो गई हो। वसुन्धरा के इस यौवन को देखकर बसन्त-नायक संगीतमय हो उठता है। मधुमास का यह गुंजन ही प्रकृति की ओर आकृष्ट होते पुरुष का संकेत है। वियोगिनी वसुधा के हृदय से फूल ऐसे खिलते हैं मानों विरही डर के मधुर भाव व्यक्त हुए हों। इच्छाओं से भरी कलियाँ चटखकर फूल बन जाती हैं। तब ऐसा लगता है—पवन के झरोखों के संकेत से कोई मुझे बुला रहा है, पर मैं यह नहीं जान पाता कि इस निमंत्रण का अर्थ क्या है।

विशेष : i) पुरातन रहस्यवाद से विद्रोह करते हुए प्राकृतिक रहस्यवाद की स्थापना की गई है।

ii) जड़ को चेतन बनाकर मानवीकरण के द्वारा प्रकृति दर्शन को वाणी मिली है। प्रकृति ही सुन्दर है, वही पुरुष को अपने संकेतों पर नचाती है।

iii) इस कविता का रहस्यवाद अज्ञान के प्रति जिज्ञासा का रूप है--यही छायावाद की मूल प्रकृति का आधार है।

iv) प्रेम का रूप अतीन्द्रिय और अमांसल होने से रीतिकालीन प्रेम से भिन्न है।

v) छायावादी काव्य भाषा में चित्रात्मकता, प्रतीकात्मकता और लक्षणों का चमत्कार है।

22.7 मूल्यांकन

छायावादी काव्य की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति सम्पदा को पन्त जी ने परिष्कृत करते हुए विकसित किया है। पन्त जी सौन्दर्य के कवि हैं और उनका सौन्दर्य बोध देश और काल के अनुसार लगातार परिवर्तनशील एवं गतिशील रहा है। प्रकृति-सौन्दर्य की सूक्ष्म से सूक्ष्म संवेदना की पकड़ में छायावाद का कोई भी कवि उनका मुकाबला नहीं कर सकता। प्रगीत-कला की स्वतः स्फूर्त शक्ति का वे साहसिक और सर्जनात्मक उपयोग करते हैं। रूढ़ियों को तोड़कर उनकी कविता का स्वच्छन्दतावाद भाव एवं भाषा दोनों क्षेत्रों में अभिनव क्रान्ति उपस्थित कर देता है। खड़ी बोली की नीरसता को तोड़कर वे काव्यभाषा की काव्यात्मकता में नया रचाव लाते हैं। प्रकृति से प्राप्त ताज़े उपमानों और नूतन छंद भंगिमाओं के कारण पन्त जी की काव्य आधुनिक हिंदी कविता की विशिष्ट उपलब्धि है। कथ्य और शिल्प की उत्साहमय प्रयोगशीलता में वे निराला जी या प्रसाद जी का मुकाबला तो नहीं कर पाते, किन्तु खड़ी-बोली-भाषा की सर्जनात्मक ताकत को उनकी कविता से प्रयोग और प्रगति का नया काव्य-मुहावरा मिलता है।

22.8 शब्दावली

छायावाद : हिन्दी क्षेत्र में 'छायावाद' शब्द का प्रचलन सन् 1918-20 ई. के आसपास हुआ। छायावाद को 'स्वच्छन्दतावाद' का पर्याय माना गया है और कहा गया कि छायावाद अनुभूति और अभिव्यंजना की नूतन-पद्धति है।

व्यक्ति प्रधान : जब कवि अन्तर्मुख होकर अपने भावों-विचारों, वृत्तियों को काव्य विषय के रूप में रचता है जब व्यक्ति-प्रधान काव्य की सृष्टि होती है। उसमें उसका अपना 'व्यक्ति' प्रधान हो जाता है।

सम्बोधन गीति : हिन्दी में सम्बोधन गीति अंग्रेजी के "ओड" के रूप में स्वीकृत है।

प्रगीत : हिन्दी में "लिरिक" के लिए प्रचलित शब्द रूप है। यह "ल्यूरा" नामक तंत्रीवाद्य के सहयोग से गाए जाने वाले गीत का यूनानी अभिधान है।

शोक गीति : अंग्रेजी के "एलेजी" का पर्याय।

सॉनेट : हिन्दी में "चतुर्दशपदी"। हिंदी के कवियों ने इस विधा को बंगला के माध्यम से ग्रहण किया। बंगला ने इसे अंग्रेजी से लिया।

ध्वनि-चित्र : एक प्रकार के श्रावणिक बिम्ब होते हैं। ये वर्ण्य के ध्वनि एवं स्वरगत वैशिष्ट्य को उभारते हैं।

22.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

नगेन्द्र-सुमित्रानन्दन पंत-नेशनल प्रब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

सिंह-नामवर-*छायावाद*-राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

पालीवाल-कृष्णदत्त-सुमित्रानन्दन पंत, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली।

शुक्ल रामचन्द्र-हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।

शारदा लाल-सुमित्रानन्दन पंत : कवि और काव्य, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली।

21.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 देखिए, भाग 21.2
2 देखिए, भाग 21.3
3 देखिए, भाग 21.4
4 देखिए, अनुभाग 21.4.1
5 देखिए, अनुभाग 21.4.2
6 देखिए, अनुभाग 21.4.3
7 देखिए, अनुभाग 21.4.4

बोध प्रश्न 2

1 देखिए, अनुभाग 21.5.1
2 देखिए, अनुभाग 21.5.2
3 देखिए, अनुभाग 21.5.3
4 देखिए, अनुभाग 21.5.4
5 देखिए, अनुभाग 21.5.3

इकाई 23 महादेवी वर्मा

इकाई की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य
23.1 प्रस्तावना
23.2 युग परिवेश
23.3 महादेवी वर्मा : जीवन वृत्त
23.4 सृजनात्मक व्यक्तित्व
23.5 महादेवी वर्मा और उनकी रचनाएँ
23.6 काव्य सौंदर्य : अन्तर्वस्तु
23.6.1 प्रणय एवं वेदनानुभूति
23.6.2 जड़-चेतन का एकात्म्य भाव
23.6.3 सौन्दर्यानुभूति
23.6.4 मूल्य-चेतना
23.6.5 काव्य-संवेदना का विस्तार या शक्ति
23.7 काव्य सौन्दर्य : रचना विधान
23.7.1 काव्य-रूप
23.7.2 काव्य-भाषा
23.7.3 प्रतीक योजना
23.7.4 बिम्ब योजना
23.7.5 अप्रस्तुत-विधान
23.8 छायावादी काव्य और महादेवी वर्मा
23.9 काव्य-वाचन तथा संदर्भ सहित व्याख्या
23.10 सारांश
23.11 शब्दावली
23.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें
23.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

23.0 उद्देश्य

छायावादी-काव्य की गंभीर विचारक महान-कवयित्री विद्रोही गद्य-लेखिका तथा प्रतिष्ठा संपन्न महिला—महादेवी वर्मा के काव्य की समग्र समीक्षा से संपन्न इस इकाई के अध्ययन से आप—

- महादेवी वर्मा के जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व की विस्तृत एवं प्रामाणिक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- छायावादी काव्य में महादेवी वर्मा की भूमिका और स्थान को जान सकेंगे।
- महादेवी के काव्य की अन्तर्वस्तु, उसकी शक्ति और उनकी सौन्दर्य-दृष्टि से अवगत हो सकेंगे।
- महादेवी के भाषिक-कौशल, काव्य-रूप एवं उनकी अभिव्यक्ति के प्रतीक एवं बिम्ब आदि उपकरणों के संदर्भ में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- महादेवी की कुछ कविताओं का वाचन एवं उनकी सप्रसंग व्याख्या की पद्धति जान सकेंगे।

23.1 प्रस्तावना

अभी तक आप छायावाद तथा उसकी तीन प्रमुख कवियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का गहन अध्ययन कर चुके हैं। इसी छायावाद की आधार-भूमि का सर्वाधिक साथ निभाने और जीवटता से निर्वाह करने का महत्वपूर्ण कार्य किया कवयित्री महादेवी वर्मा ने। किसी ने महीयसी कहकर उनकी प्रतिभा को आंका तो किसी ने "आधुनिक युग की मीरा" कहकर मूल्यांकित किया। किन्तु महादेवी पूरे साहित्य की कवयित्रियों में मूर्द्धन्य स्थान रखती हैं इस तथ्य को सभी ने स्वीकारा। पृथ्वी सा व्यक्तित्व और हिमालय सा कृतित्व—उनके काव्य एवं गद्यकार रूपों में एक साथ देखा जा सकता है। इसी आस्था, निष्ठा और समर्पण ने महादेवी को "निराला वैशिष्ट्य" प्रदान किया है। भावना का सहज और स्वतः स्फूर्त उच्छलन उनकी कविता का शृंगार है तो अनुभूति का

तमतमाता-ताप उनकी अभिव्यक्ति की सज्जा। चिंतन के गहराते ही प्रतीक उनके काव्याकाश में घिर आते हैं और महादेवी उन्हें खराद कर चढ़ाकर ढाल देती है। एक विशिष्ट मानसिक-स्थिति द्वारा भी साधारणीकृत करने की शक्ति जिस कवयित्री में है। उसकी कविता में किसी अलौकिक जादू का आभास होना सहज स्वाभाविक ही है। अश्रु और मुस्कान धीरता और गंभीरता तथा करुणा और परदुख-कातरता की इसी साकार प्रतिमा के गरिमामंडित व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विवेचन एवं अध्ययन ही हम इस इकाई में करने जा रहे हैं।

23.2 युग परिवेश

महादेवी मानती हैं कि काव्य ही मानस के सुख-दुखात्मक संवेदनों की ऐसी कथा है जो उक्त संवेदनों को संपूर्ण परिवेश के साथ दूसरे की अनुभूति का विषय बना देती है। महादेवी का कविता-संसार एक तरफ तो परिवेश से सिकत होकर निखार पाता है तो दूसरी ओर एक विशिर्ष-परिवेश का निर्माण कर जग को राह दिखाता है। महा-व्यक्तित्व वाली महादेवी अपने काव्य को भी युग और परिवेश की अपेक्षानुसार ही एक महाशक्ति से समृद्ध कर उसे जीवन्तता प्रदान करती है। प्रसाद का आनंद निराला का आजे तथा पंत का मार्दव जिस कल्याणकारी-त्रिशुल का निर्माण करते हैं, उसके तेज को बहुत लंबे समय तक अपने बाहुबल की मजबूत पकड़ से सहेजे रहने की शक्ति महादेवी ही बनती है। छायावाद के जिस "प्रासाद" को ये तीनों कवि मिलकर तैयार करते हैं, महादेवी वर्मा ही उत्कर्ष काव्य में उसे सजा-संवार कर ऐश्वर्य प्रदान करती है।

ऐसा युग जब मनुष्य वैज्ञानिक तथा बौद्धिक उन्नति से अहम् ग्रस्त होकर जीवन्तता के स्रोत (प्रकृति) से अपने संबंध विच्छिन्न कर बैठा तथा स्वयं को महाविजेता मानने लगा तो रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं छायावादी कवियों ने ही इस अनर्थकारी भौतिकता के विरुद्ध विद्रोह के स्वर का शंखनाद किया था। महादेवी उसी युग की कवयित्री है। देश का सामाजिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक जीवन, संयुक्त रूप से एक ही दुंदुभी-नाद से मुखरित हो रहा था—और वह नाद था प्रथम विश्व युद्ध की विनाशकारी समाप्ति तथा द्वितीय विश्वयुद्ध की भयावह संभावना से जन्म ले रही भौतिकता के विरुद्ध भावात्मक तथा आध्यात्मिक चेतना की जागृति। अतः युग-चेतना के इस प्रतीक ने पूरे विश्व जीवन के विकास का स्वर-संधान किया। परम तत्व की भावात्मक तथा रहस्यमयी-सत्ता के इसी उद्घाटन का बीड़ा उठाया, महादेवी वर्मा ने।

कहा जाता है कि महादेवी वर्मा की कविता एकान्त क्षणों की वाणी है। किन्तु इन एकान्त-क्षणों में जब महादेवी स्वयं से साक्षात्कार करती है तो युग एवं जीवन की कटुता, विषमता, दरिद्रता, तथा उसमें व्याप्त अत्याचार, शोषण और उत्पीड़न के अनुभव को ही अपने काव्य का विषय बना देती है।

महादेवी संस्कारों से आबद्ध होने के कारण युगीन-मर्यादाओं और आदर्शों को तोड़ना या छोड़ना नहीं चाहतीं पर वे आत्मानुभवों को वैयक्तिक संदर्भों से अलग कर अमूर्त रूप में प्रस्तुत करती हैं।

पराधीन भारतवासियों को स्वतंत्रता के स्वागत हेतु संघर्ष की जो राह महर्षि अरविन्द, महात्मा गांधी, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द तथा रवीन्द्रनाथ टैगोर आदि महान आत्माओं ने दिखाई उसी पर महादेवी ने भी अथक-यात्रा की। अंधकारमय-क्षितिज पर निर्मल ज्योति की प्रभा-विकीर्ण करते रहने के लिए उन्होंने मधुर-मधुर तथा अकम्पित दीप की प्रज्जवलित जीवन ज्योति को बुझने से ही नहीं रोका, अपितु उसे अपनी श्वासें प्रदान कर "सदाजीवि" भी बना दिया। अतः महादेवी का युग-बोध छायावाद के उत्कर्ष का युग-बोध है। प्रसाद, पंत और निराला छायावाद के जिन मूल्यों, स्थापनाओं और संदेशों की धरोहर सौंप कर जा रहे थे, उनकी रक्षा तथा पालन पोषण का दायित्व महादेवी को मिला था, और महादेवी ने श्वास छोड़ी पर दायित्व नहीं छोड़ा।

23.3 महादेवी वर्मा : जीवन वृत्त

महादेवी वर्मा का जन्म होली के दिन सन् 1907 ई. में उत्तर प्रदेश के अंतर्गत फर्रुखाबाद नामक नगर में हुआ था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा इन्दौर में हुई तथा प्रयाग से मैट्रिक स्कूल में उत्तीर्ण होकर प्रयाग विश्वविद्यालय से ही महादेवी ने संस्कृत में एम.ए. भी किया। उनके पिता का नाम श्री गोविन्द प्रसाद वर्मा था तथा भक्त-हृदय वाली हेमरानी उनकी जन्मदात्री थीं। पिता

एम.ए., एल.एल.बी करके कचहरी में वकालत करते थे। वे कर्मनिष्ठ और दार्शनिक प्रकृति के व्यक्ति थे तो माता धार्मिक प्रवृत्ति की एक विदुषी महिला थी।

बचपन से ही चित्रकला, संगीतकला तथा काव्यकला में रुचि और पारंगतता हासिल कर लेने वाली महादेवी विद्यार्थी जीवन से ही साहित्य-जगत में प्रर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुकी थी। सात वर्ष की अवस्था में "आओ प्यारे तारे आओ, मेरे आँगन में बिछ जाओ" जैसी कविता लिखने वाली महादेवी के जीवन और साहित्य–दोनों में ही माता पिता तथा पारिवारिक परिवेश को संस्कार रूप में देखा जा सकता है। नाजुक मिजाज तथा नफासत पसंद लड़की आँगन लीपने और गेहूँ फटकने से लेकर रसोई बनाने और परोसने तक के कामों में भी सिद्धहस्त थी। सफाई उन्हें अत्यंत प्रिय थी। संस्कार और परिवेश से प्राप्त प्रेरणा एवं प्रतिभा को वे स्वयं स्वीकारते हुए लिखती भी हैं–"एक व्यापक विकृति के समय निर्जी संस्कारों के बोझ से जड़ीभूत वर्ग में मुझे जन्म मिला है। परन्तु एक ओर साधनापूत, आस्तिक और भावुक माता तथा दूसरी ओर सब प्रकार की सांप्रदायिकता से दूर, कर्मनिष्ठ और दार्शनिक पिता ने अपने-अपने संस्कार देकर मेरे जीवन को जैसा विकास दिया, उसमें भावुकता बुद्धि के कठोर धरातल पर, साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय, पर किसी वर्ग या संप्रदाय में न बंधने वाली चेतना पर ही स्थित हो सकती थी। जीवन की ऐसी पार्श्वभूमि पर, माँ से पूजा आरती के समय सुने गाए मीरा, तुलसी आदि के तथा स्वरचित पदों के संगीत पर मुग्ध होकर मैंने ब्रजभाषा में पद-रचना आरंभ की थी।"

माता-पिता की पहली संतान "महादेवी" का जन्म बहुत लंबी प्रतीक्षा और मनौती के पश्चात हुआ था। बाबा ने ही इन्हें कुलदेवी दुर्गा के विशेष अनुग्रह का "प्रसाद" मानकर इनका नाम महादेवी रख डाला था। कौन जानता था कि आने वाले समय में "महादेवी" अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व से इस नाम की सार्थकता को भी सिद्ध करेंगी।

नौ वर्ष की अवस्था में महादेवी का विवाह हो गया तथा एक सप्ताह के लिए महादेवी की विदाई भी कर दी गई। परन्तु इसके तत्काल बाद महादेवी ने शिक्षा की राह चुनी और प्रथम श्रेणी में मिडिल पास कर पूरे प्रान्त में प्रथम स्थान हासिल किया। राजकीय छात्रवृत्ति भी प्राप्त होने लगी। महादेवी पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगीं। काव्य रचना का सृजन अबाध गति से चलता रहा। ग्यारहवाँ दर्जा पास करते-करते कविता सम्मेलनों तथा वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में भाग लेकर सैंकड़ों तमग़ों और पुरस्कारों से सुशोभित हुई। उस समय की प्रचलित प्रसिद्ध कविताएँ प्रकाशित होने लगी तो काव्य मर्मज्ञों का ध्यान भी इस नवीन प्रांज्जल-प्रतिभा की ओर आकर्षित होने लगा।

नारी-शिक्षा, नारी-जागृति और नारी आत्मसम्मान के प्रति सदैव सजग रही हैं। गरीब विद्यार्थियों की आर्थिक सहायता में उन्हें आनन्द मिलता था। सुभद्र कुमारी चौहान से आपकी प्रगाढ़ मैत्री थी तो निराला, पंत और प्रसाद के प्रति आत्मीय अगाध-श्रद्धा। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने महादेवी के प्रति समादर व्यक्त करते हुए लिखा है –"मेरी प्रयाग-यात्रा केवल संगम-स्नान से पूर्ण नहीं होती। उसको सर्वथा बनाने के लिए मुझे सरस्वती के दर्शनों के लिए प्रयाग महिला-विद्यापीठ भी जाना पड़ता है।"

"महादेवी" वर्षों तक प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्राचार्या रही हैं। इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाली "चाँद" मासिक पत्रिका की संपादिका भी रही हैं तो साहित्यकारों के साहित्य-सृजन हेतु इन्होंने प्रयाग में गंगा तट पर "साहित्यकार संसद" नामक संस्था की स्थापना भी की है। जीवन की विविधता का यही वैशिष्ट्य महादेवी की साहित्यिक और कलात्मक अभिव्यक्तियों में भी देखा जा सकता है। कविता, गद्य, चित्र, संगीत, राष्ट्रीय आंदोलन, नारी चेतना आदि-आदि कितने ही क्षेत्र हैं जिनमें वे अपने महीयसी-जीवन का पुण्य स्पर्श देती हुई उसे अमरता प्रदान करती चली गई। सौंदर्य और माधुर्य की छटा बिखेरती हुई ही प्रकृति-पुत्री महादेवी 11 सितम्बर सन् 1987 को प्रकृति के अंचल में जा सोई। लेकिन उनका अमर-साहित्य सदैव जागरण का दायित्व निभाता रहेगा। महादेवी की इसी सृजनात्मक अमरता से अब हम साक्षात्कार करेंगे।

23.4 सृजनात्मक व्यक्तित्व

कवयित्री के साथ-साथ विद्रोही-गद्य-लेखिका का दायित्व निभाने वाली महादेवी कुशल चित्रकर्त्री भी रही हैं। "दीपशिखा" नामक काव्य कृति के प्रथम संस्करण की साज-सज्जा तथा कविता के भावानुकूल चित्र-योजना करने वाली इस अप्रतिम-विदुषी ने हिन्दी, संस्कृत, पालि, प्राकृत, बंगला गुजराती, उर्दू तथा अंग्रेजी भाषाओं पर पूरे अधिकार से अपनी ज्ञान-तूलिका का सार्थक प्रयोग

किया। वेदों और उपनिषदों के साथ बौद्ध-दर्शन में गहन रुचि रखने वाली महादेवी की काव्यधारा की मूल प्रवृत्ति चिरन्तन पीड़ा, करुणा और व्यथा से आपूर्त्त रही तो अतीत के चलचित्रों और स्मृति की रेखाओं से पथ के साथियों को रूपायित करने वाली गद्य भाषा में उनका एक अमर चित्रकार तथा अक्षय स्मृति-कोशकार का स्वरूप भी उभरकर सामने आया।

श्वेत-वस्त्र-धारण किए रहने से महाश्वेता कहलाने वाली महादेवी, विद्यार्थी जीवन से ही अत्यंत सहज, सरल और सादे पहनावे में विश्वास रखती थी। उनकी इसी सादगी भरी आत्मीयता, निर्मलता, निश्कलता तथा अकृत्रिमता में आदर, श्रद्धा तथा स्नेहिल भाव समर्पित करवा लेने की अद्भुत अलौकिक शक्ति भी थी। उनके गीतों और चित्रों के मूल में एक ही भाव विद्यमान रहता है, किन्तु अभिव्यक्तिगत अनिवार्य-प्रथकता के कारण गीतों में एकाग्रता और तनम्यता मिलती है तो चित्रों में संपूर्ण परिवेश, वातावरण और परिस्थिति भी साकार तथा सजीव हो उठते हैं। यह उनके सृजनात्मक-व्यवितत्व का ही वैशिष्ट्य है कि कला के सूक्ष्म तथा गहन-संसार से उतर कर वे सहज ही हृदय तक चली आती है।

बातचीत में मोह-लेने वाला स्नेहिल व्यक्तित्व, वात्सल्य, करुणा और ममत्व-मिश्रित-पवित्रता, निर्झर की तरह अबाध गति एवं स्वर से प्रस्फुटित मुक्त हास्य, पर दुःख कातरता, पशु एवं प्रकृति-परिवार की सदस्यता, हिरण और बिल्ली की मित्रता, निर्धन, असहाय तथा दुःखी लोगों से आत्मीयता– सभी महादेवी के विशाल संसार तथा उनकी सुरुचिमय दुनिया के परिचायक हैं। महादेवी जी के व्यक्तित्व में श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय ने लिखा है –"महादेवी जी के व्यक्तित्व से तुलना करने के लिए हिमालय ही सबसे अधिक उपयुक्त जांन पड़ता है। उनके व्यक्तित्व का वही उन्नत और दिव्य रूप, वही विराट और विशाल प्रसार, वही अमल धवल तथा अचल-अटल धीरता-गंभीरता, वही करुणा एवं तरलता और सबसे बढ़कर सुखकर शुभ ह्रास। यही तो महादेवी है।" (आजकल, जुलाई 1951)

एकान्तप्रिय और अन्तर्मुखी व्यक्तित्व वाली तथा आत्मपरक भावभूमि पर विचरण करने वाली महादेवी बाल्यावस्था में फूलों को इसलिए न तोड़ती थीं कि वे मुरझा जाएंगे। पशु-पक्षियों का लालन-पालन, आहत जीवों की सेवा-सुश्रुषा, बहेलियों द्वारा पकड़े गए पक्षियों को खरीदकर पिंजर-मुक्त कर देने का दायित्व, प्रकृति की जड़ता में चेतना को संचरित करने की अतृप्त-लालसा–सभी महादेवी की आन्तरिक शक्ति तथा उसके अक्षय-कोष के परिचायक हैं।

ब्रहम्-वियुक्त-आत्मा के आर्द्र-क्रन्दन तथा दृढ़ अडिग और अकंपित आस्था के उज्ज्वल प्रकाश से जिसका समस्त जीवन और काव्य आलोकित है– वह महादेवी निःसंदेह महान है। आठ वर्ष की अवस्था में जो प्रतिभा इन पंक्तियों का सृजन करती है, उस सर्जनात्मक-व्यक्तित्व के विषय में और कहा भी क्या जा सकता है–

धूलि से निर्मित हुआ है यह शरीर,
और जीवन-वर्ति भी प्रभु से मिली अभिराम।
प्रेम का ही तेल भर जो हम बने निःशोक,
तो नया फैले जगत के तिमिर में आलोक।

नारी वर्ग के प्रति हो रहे अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध आवाज़ बुलन्द कर उसकी सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं का एक समाज-शास्त्री की भांति विश्लेषण-विवेचन करने वाली महादेवी की गद्य रचनाओं में गाम्भीर्य, प्रौढ़ता तथा उनके व्यक्तित्व की ही प्रांजलता देखी जा सकती है। विधवाओं, वैश्याओं और अवैध सन्तानों के प्रति सहानुभूति के पुण्य अर्पित करने वाली महादेवी, कारण बनने वाले समाज को क्रान्ति के स्वर में ललकारती भी हैं। विवेक, दूर-दृष्टि, गहन अध्यवसाय तथा व्यापक एवं विस्तृत अनुभव के आधार पर वे तटस्थ होकर विचार प्रस्तुत करती हैं –"स्त्री में माँ का रूप ही सत्य, वात्सल्य ही शिव और ममता ही सुन्दर है। जब वह इन विशेषताओं के साथ पुरुष के जीवन में प्रतिष्ठित होती है तब उसका रिक्त स्थान भर लेना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता है।"

इस प्रकार संगीत, चित्र, काव्य, गीत, रेखाचित्र, संस्मरण, संस्मरणात्मक रेखाचित्र, निबन्ध, अनुवाद, काव्यमय चित्र, चित्रमय काव्य तथा चित्रगीत जैसी अनेक विधाएँ, जिनमें अन्य कई विधाएँ भी समा जाती हैं –महादेवी के सृजनमय-व्यक्तित्व की पहचान हैं। भाव हो या कला–सभी स्थानों पर महादेवी अप्रतिम हैं, अतुलनीय हैं, श्लाघनीय हैं। नीरजा, सान्ध्यगीत और प्रौढ़तम-कृति –"दीपशिखा", सब के सब मील के पत्थर बनते चले जाते हैं।" "दीपशिखा" को देखकर ही निराला और राष्ट्रकवि गुप्त जी ने भी मुक्त-कंठ से प्रशंसा की थी–

हिन्दी के विशाल मन्दिर की वीणा-वाणी,
स्फूर्ति-चेतना-रचना की प्रतिभा कल्याणी।
— निराला

× × ×

सहज भिन्न दो महादेवियों एक रूप में मिली मुझे,
बता बहन साहित्य-शारदा या काव्यश्री कहूँ तुझे।
—मैथिलीशरण गुप्त

स्पष्ट है कि जिसका कृतित्व भूमि सा महान तथा व्यक्तित्व अम्बर सा असीम ठहरता है, वह महादेवी हिन्दी साहित्य में ही नहीं, विश्व साहित्य में "ओज के शंख" तथा "आस्था की वंशी" की तरह सदैव गुंजरित होती रहेंगीं।

23.5 महादेवी वर्मा और उनकी रचनाएँ

भाव विचार और कर्म के सौन्दर्य से सहज ही आकर्षित हो जाने वाली महादेवी गद्य और पद्य में बराबर अधिकार रखती हैं। अपनी जीवन यात्रा निरंतर साहित्य-सृजन की राह से पूर्ण करने वाली महादेवी वर्मा की प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं– नीहार (1930), रश्मि (1932), नीरजा (1935), सांध्य गीत (1936), इन्हीं कृतियों के 185 गीतों का संग्रह यामा (1936), दीपशिखा (1942), साधिनी (1964), तथा प्रथम आयाम (1984)। इसके अतिरिक्त "सप्तपर्णा" (1959), एक ऐसा काव्य संग्रह है जिसमें ऋग्वेद के आधार पर तथा अन्य भाषाओं से अनूदित कुछ कविताएँ संकलित की गई हैं। बाल्मीकी, कालिदास, अश्वघोष तथा भवभूति जैसे कवियों के मार्मिक एवं महत्वपूर्ण काव्यांशों का काव्य-बद्ध अनुवाद महादेवी ने स्वयं किया है। "बंग-दर्शन" (1943-44), नामक काव्य संग्रह में बंगाल के अकाल पर विभिन्न कवियों की कविताओं को संकलित किया गया है। प्राचीन काल से आधुनिक काल तक के कवियों की हिमालय पर लिखी राष्ट्रीय गौरव और साहस जुटाने वाली कुछ कविताएँ "हिमालय" (1963) नामक संग्रह में संकलित की गई हैं।

महादेवी की गद्य रचनाओं में "अतीत के चलचित्र" (1941), शृंखला की कड़ियाँ (1942) "स्मृति की रेखाएँ तथा "विवेचनात्मक गद्य" (1943), "पथ के साथी" एवं "क्षणदा" (1956) और आलोचनात्मक निबंध संग्रह "साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध (1962) प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त महादेवी जी द्वारा लिखित भूमिकाएँ, उनके द्वारा दिए गए भाषण एवं साक्षात्कार भी उनके गद्य-गौरव की घोषणा करते हैं। विवेचनात्मक एवं आलोचनात्मक नारी-समस्या प्रधान तथा संस्मरण और रेखाचित्र विषयक गद्य में महादेवी अपने अनूठे और अप्रतिम रूप में सामने आती हैं। पाठक वर्ग की चेतना को झकझोर कर हृदय के मर्म को छू लेना उनकी सूक्ष्म एवं प्रखर गद्य लेखिका का महानतम गुण है।

महादेवी की काव्य-यात्रा उनकी काव्य कृतियों तक पहुँचकर अव्यक्त के प्रति जिज्ञासा या विस्मय का अनुभव करते हुए प्रिय वियोग की वेदना को अभिव्यक्त करती है तो कभी प्रिय के अभाव में विवल होकर प्रिय-मिलन को आतुर हो उठती है। कल्पना, चिंतन और अनुभूति का अद्भुत मिश्रण करती हुई आनन्द की ओर अग्रसर महादेवी अश्रुमुखी वेदना के कणों को भी आत्मानन्द के मधु में कर इस शुष्क जग का आर्द्र-सिंचन कर देती है। सघनतम-अनुभूति की पूर्णतम-तपस्या, जीवननिष्ठा तथा आध्यात्मिक आस्था की ऊर्जा बनकर महादेवी के निष्काम-कर्म और द्वन्द्वरहित प्रेमभाव का "प्रसाद" तैयार करती है। अहंभाव से ऊपर उठकर सर्वव्यापी आत्मा की "व्यक्ति-रहित" स्थिति विकसित होती है और परमसत्ता के साथ भावनात्मक एक्य स्थापित करती हुई असीम प्रेम के दिव्यानन्द तक पहुँच जाती है। अतः प्रौढ़ से प्रौढ़तम तथा असीम से असीमतम तक की इस काव्य यात्रा में भाषा के अनुपम, अद्भुत और अप्रतिम उपकरण "दीपशिखा" लेकर कवयित्री का मार्ग प्रशस्त करते चलते हैं और महादेवी कामलतम स्वर लहरियों की नौका पर सवार होकर इस महायात्रा को संपन्न करती हैं। छायावादी साहित्य के जाने-माने आलोचक डॉ० नगेन्द्र ने महादेवी जी की कविता का मूल्यांकन करते हुए कहा भी है –"महादेवी के काव्य में हमें छायावाद का शुद्ध अमिश्रित रूप मिलता है। छायावाद की अंतर्मुखी अनुभूति, अशादीदी प्रेम जो वाह्य-तृप्ति न पाकर अमांसल-सौंदर्य की सृष्टि करता है, मानव की प्रकृति के चेतन संस्पर्श, रहस्य-चिन्तन (अनुभूति नहीं), तितली के पंखों और फूलों की पंखड़ियों से चुराई हुई कला और इन सबके ऊपर स्वप्न-सा पूरा हुआ एक पायवी वातावरण –ये सभी तत्व जिसमें धुले मिलते हैं, वह है महादेवी की कविता।" (विचार और अनुभूति पृ० 130)

महादेवी की कृतियों की और इनमें मिलने वाली संवेदना की इस संक्षिप्त चर्चा के बाद अब हम महादेवी के काव्य-सौंदर्य पर सौदाहरण विचार करेंगे।

कुकुरमुत्ता

व्याख्या भाग

"आया मौसिम खिला.........................पीछे को भगा।"

प्रसंग एवं संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" की प्रगतिशील रचना "कुकुरमुत्ता" से ली गई हैं। "कुकुरमुत्ता" की रचना का स्वर और शैली सर्वथा नूतन है। छायावादी विचारधारा यहाँ से मोड़ लेती स्पष्ट होती है। इन पंक्तियों में कवि ने कुकुरमुत्ता के माध्यम से गुलाब पर कटु व्यंग्य किया है। "गुलाब" पूंजीपति संस्कृति की शोषक मनोवृत्ति का प्रतीक है और कुकुरमुत्ता सर्वहारा वर्ग का। कुकुरमुत्ता फारिस के गुलाब के समकक्ष खड़ा हो, निर्भीक वाणी में अपनी अस्मिता को व्यक्त करते हुए कह रहा है–

व्याख्या : कवि के शब्दों में–फारिस का विदेशी गुलाब बाग में खिल कर अपना प्रभुत्व जमाये शान से खड़ा है। उसकी शान को चुनौती देता हुआ कुकुरमुत्ता पास की पहाड़ी से सिर ऊँचा कर अकड़ कर कहता है –अबे! गुलाब तू यह मत भूल कि तूने जितनी भी बाह्य चमक-दमक और खुशबू प्राप्त की है वह सब तेरी है, वह तेरे बलबूते का परिणाम नहीं है। गंदगी से उत्पन्न कुकुरमुत्ते की दो टूक वाणी ने गुलाब को यह भी जता दिया है कि वह परजीवी है। गुलाब खाद का खून चूस-चूसकर बड़ा हुआ है। पुनः कुकुरमुत्ता उसे नीचा दिखाते हुए अशिष्ट और असभ्य कहता है। कुकुरमुत्ते की दृष्टि में यह विदेशी गुलाब ही पूंजीपति है। इस पूंजीपति रूपी गुलाब के क्रूर कर्मों को गिनाते हुए कुकुरमुत्ता कहता है कि कितनों को तूने गुलाम बनाकर रखा है। अपने वैभव विकास के लिए औरों को गर्मी-सर्दी की भीषणता सहने के लिए यह गुलाब विवश करता है। हे गुलाब तेरी महिमा बड़ी विचित्र है। तुझे प्राप्त करने के उन्माद ने सभी को जीवन की भटकन में लगा रखा है।

विशेष : "कुकुरमुत्ता" निराला की सर्वाधिक चर्चित रचना मानी जाती है "तुलसीदास" और "राम की शक्ति पूजा" जैसी उदात्त कोटि की उत्कृष्ट छायावादी रचनाओं के बाद एकाएक यहाँ आमूल परिवर्तन दृष्टिगत होता है। 1942 के द्वितीय युद्ध के पश्चात् विश्व-भर में पुनः जोर पकड़ रहे पूंजीवाद की कवि ने यहाँ जमकर खबर ली है।

काव्य की भाषा-शैली में ठेठ देशी शब्दों के प्रयोग पर कवि ने विशेष बल दिया है। उर्दू-फारसी के शब्दों का प्रयोग भी उन्मुक्त रूप से देखने को यहाँ मिलता है।

हास्य व्यंग्य का पैनापन इस काव्यांश की एक विशिष्टता है।

"जानिब औरत की...................इत्र-रू ऐसी दिशा।"

प्रसंग एवं संदर्भ : उपरोक्त काव्यांश सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" रचित स्वच्छंद छंद की कृति "कुकुरमुत्ता" से उद्धृत है। कुकुरमुत्ता गुलाब के प्रति अपने आक्रोश को व्यक्त करते हुए उसे अपने से हर दृष्टि में छोटा और तुच्छ बतलाता है। कवि की पूंजीपति वर्ग के प्रति तीखी टिप्पणी यहाँ विशेष अर्थ रखती है। गुलाब के दोषों को उजागर करते हुए कुकुरमुत्ता अपनी भाषा के चाबुक का प्रयोग बेलगाम भाव से करता हुआ कहता है–

व्याख्या : अबे। और सुन बे। जैसे तिरस्कारपूर्ण शब्दों से कवि पहले ही गुलाब को सम्बोधित कर नीचा दिखा चुका है। अपने कथन को आगे बढ़ाते हुए कुकुरमुत्ता गुलाब को खरी-खोटी सुनाते हुए कहता है कि तेरे आकर्षण में उच्च वर्ग के अमीर शहनशाह और राजे उसी प्रकार खिंचे चले आते हैं जैसे नारी के आकर्षण से परवश लोग लड़ाई का मैदान छोड़ कर या तबेले को टट्टू जैसे तोड़कर भाग खड़े होते हैं। यही कारण है कि गुलाब साधारण जन के दायरे से सदैव दूर रहा है। पुनः अपने आक्रोश को उड़ेलते हुए कुकुरमुत्ता व्यंग्य की भाषा में गुलाब से कहता है कि हे अधम यदि यह उच्च वर्ग तुझे अपनी शरण न देता तो सोच तेरी स्थिति कितनी दयनीय होती। अभी-अभी जो तेरी कली खिली है, वहीं सूखकर कांटा बन जाती अर्थात् तेरी चमक-दमक भी तेरे इन चाहने वालों पर निर्भर करती है जो अपने को साधारण व्यक्तियों से ऊँचा मानते हैं। उत्तेजना और आक्रोश से भरा कुकुरमुत्ता गुलाब के दोषों पर प्रहार करता हुआ "हरामी" जैसे अपशब्दों के अस्त्र का प्रयोग कर उसके खानदान अर्थात् परंपरा से चली आ रही दूसरों के अधिकार छीनने की वृत्ति पर भी चोट करता है। "रोज़ पानी पड़ना" भी यहाँ मुहावरे के व्यंग्य रूप में कवि ने प्रयुक्त किया है अर्थात् निरन्तर अपने लिए खाद पानी तू लेता रहा और तू मुझे देख मैं अपनी शक्ति पर खड़ा हूँ, मेरा कोई पोषक नहीं है। कुकुरमुत्ता पुनः गुलाब का सम्बन्ध विलासी मनोवृत्ति के लोगों से जोड़ता हुआ कहता है कि तुझे तो मेहरुन्निसा (नूरजहाँ का वास्तविक नाम) जैसे विलासी और अभिजात परिवेश वाले प्रदर्शन प्रिय व्यक्ति ही प्रिय हैं जो तेरा प्रयोग इत्र आदि के रूप में करते हैं।

विशेष : कुकुरमुत्ते की पूंजीपति वर्ग के प्रति बेलाग भाषा इस काव्यांश की मुख्य विशेषता है। पूंजीपति संस्कृति के लोगों की विलासिता और प्रदर्शन प्रिय वृत्ति को कुकुरमुत्ते ने यहाँ उधेड़ कर रख दिया है। यहाँ गुलाब की दयनीय अवस्था कुकुरमुत्ता के बड़बोले व्यक्तित्व के सामने साकार होती है। उर्द फारसी के शब्दों का उन्मुक्त प्रयोग कथ्य को प्रभावपूर्ण बनाता है। राम विलास शर्मा जैसे मर्मज्ञ आलोचकों ने कुकुरमुत्ते की भाषा शैली को "गुलाबी उर्दू" का नाम दिया है।

कुकुरमुत्ते की भाषा यत्र तत्र साहित्यिक सीमा का भी अतिक्रमण कर जाती है जिसे आक्रोश के अतिरेक की अवस्था माना जा सकता है।

"बहाकर के चले .... मैं हूँ कौलिक।"

प्रसंग एवं संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ .... कुकुरमुत्ता .... गुलाब के दिखावटी-बनावटी रूप पर व्यंग्य करते हुए .... निराला ....

व्याख्या : तू तुच्छ और अधम अपनी मोहक-माया के भ्रम में बहाकर .... विलासी मनोवृत्ति में .... किनारा नहीं ....। तेरे ही स्वप्नों में ....। सितारे डूबे .... रूपमोह में ....। चाहे पेट की ज्वाला न बुझे पर .... मोह और आकर्षण-प्रदर्शन ....। देख मैं तुझसे कितना ....। .... बीज और खाद के बिना ही .... और तू ....। मेरे सामने तेरी हस्ती ....। मैं सर्वथा श्रेष्ठ और तू ....। मैं आत्मनिर्भर और तू परजीवी ....। मेरा कलम भी नहीं .... और तू। मैं अपने बल पर ....। मैं मूल हूँ .... असली हूँ और तू ....। तू बकरा है .... और मैं ....।

विशेष : कुकुरमुत्ता अपनी श्रेष्ठता ....। पूंजीपति संस्कृति के लोग खोखले पराश्रित ....। सर्वहारा वर्ग के स्वाश्रित .... सशक्त। भाषा सशक्त .... विलक्षण ....। प्रगतिशील दृष्टि .... सामाजिक विद्रूपताओं पर ....। आक्रोश की मुखरता ....। उर्दू शब्दों का सुंदर प्रयोग ......: "तू रंगा और मैं धुला .... शेर भी मुझ से गधा है।"

प्रसंग एवं संदर्भ : उपरोक्त काव्यांश सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" रचित "कुकुरमुत्ता" नामक कविता से अवतरित है। कुकुरमुत्ता अपनी महत्ता को स्थापित करता हुआ गुलाब को अपने समक्ष प्रभाव शून्य बना देता है। अपने उन्नत रूप की तुलना में कुकुरमुत्ता गुलाब को बौना सिद्ध करते हुए कह रहा है–

व्याख्या : गुलाब का रंग भी अपना नहीं, औरों को चूसकर, उनका हक मारकर इसने अपने पर रंग चढ़ाया है। "रंगा होना" में व्यंजना-शक्ति बडी गहरी उभर कर आयी है। गुलाब की तुलना में कुकुरमुत्ता अपने को उजला और धुला हुआ मानता है और जितना धुलता जाता है उतना ही निखरता भी। वह अपने को पानी की तरह स्थिर और कुकुरमुत्ते को बुलबुले के समान अस्थिर अर्थात् क्षणजीवी मानता है। गुलाब के दोषों को गिनाते हुए कुकुरमुत्ता कहता है कि तू तो दुनिया को बिगाड़ने वाला है। यहाँ क्योंकि गुलाब शोषक पूंजीपति है, सामाजिक बुराई का प्रतीक, इसलिए वह दुनिया को अपनी बाह्य चमक-दमक से आकर्षित कर बिगाड़ता है जबकि कुकुरमुत्ता अपने को निम्न वर्ग का प्रतिनिधि मानते हुए उनको सहारा देता है। वह गिरते हुओं को सम्भालता है। गुलाब दूसरे की रोटी छीनकर उसे दरिद्र बना देता है, क्योंकि वह शोषक है, पूंजीवादी संस्कृति का पोषक है। कुकुरमुत्ता गुलाब की क़तई परवाह नहीं करता। वह तो पलट कर एक की तीन-तीन सुनाने का अभ्यस्त है। गुलाब को चेतावनी की भाषा में सुनाता हुआ कुकुरमुत्ता कहता है कि गुलाब तेरा समय चला गया, अब मुझ जैसे जन शक्ति के प्रतीक सर्वहारा जीव का युग आया है। मैं ही सबके काम आ सकता हूँ। मेरे सामने तो शेर भी गधा है अर्थात् जो अपने को शेर की तरह समझ कर दहाड़ते हैं वे मेरी शक्ति के आगे गधे के समान हैं और वह गधा तू ही है।

विशेष : "कुकुरमुत्ता" सन् 1942 के युद्ध की घटनाओं के काल की रचना है। समस्त यूरोप में पूंजीवादी वर्ग की शोषक और क्रूर मनोवृत्ति उजागर हो चुकी थी। कवि निराला ने कुकुरमुत्ता के माध्यम से जतला दिया कि गुलाब का समय अब समाप्त हो गया है और जन शक्ति के प्रतीक कुकुरमुत्ते का जीवन अब सार्थक माना जायेगा। रोटी छीनने वालों को जो अपने को शेर समझते हैं और यह मानते हैं कि हमारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता, उसे वह अपने सामने– "गधे सा" गया बीता मानता है।

भाषा में व्यंग्य और मुहावरों के चलते रूप के कारण कथ्य की सजीवता यहाँ द्रष्टव्य है।

"चीन में मेरी नकल .... हक बलराम का।"

प्रसंग एवं संदर्भ : ....

....

व्याख्या : कुकुरमुत्ता अपने प्रभाव की सीमा बताते हुए .... । चीन का .... भारत का .... । सर्वव्यापकत्व .... ब्रह्म के समान। आधुनिक पैराशूट .... । विष्णु भगवान का सुदर्शन .... । यशोदा मैया की .... । राम का .... बलराम का .... ।

विशेष : कुकुरमुत्ता के रूप और आकार से साम्य रखने वाले .... चर्चा की गई है। अपनी सत्ता को कुकुरमुत्ता .... । कवि की निरीक्षण शक्ति .... । कुकुरमुत्ते की इन .... गहरी व्यंजनाएँ .... । "सुबह का सूरज मैं ही .... मैं ही चूना।"

प्रसंग एवं संदर्भ : प्रस्तुत काव्यांश सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" की काव्य कृति "कुकुरमुत्ता" से उद्धृत है। कुकुरमुत्ता अपनी विशिष्टता का बखान करते हुए गुलाब को निरन्तर कुछ न कुछ सुनाता रहा है। अपने प्रभुत्व की गरिमा में उसे गुलाब एकदम गया बीता नज़र आता है। गुलाब को अपनी महिमा का ज्ञान करवाते हुए कुकुरमुत्ता कहता है–

व्याख्या : कुकुरमुत्ता अपने को प्रातःकालीन सूर्य के समान प्रभावपूर्ण मानता है जो जीवन में फैले निराशा रूपी अन्धकार को दूर करने के लिए उदित हुआ है। निम्न वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए कुकुरमुत्ता यह संकेत देता है कि अब मेरी शक्ति का सूर्य चमकेगा और गुलाब की संस्कृति के लोग पूंजीपति अन्धेरे के समान भागेंगे। शाम का चाँद मैं ही हूँ, मैं ही सुख और आशा का केन्द्र हूँ। कलयुग में मेरा ही आकार ढाल रूप में तू देख सकता है। नाव जो पार लगाती है; उसका "तला" भी मैं ही हूँ और नाव की गति को सही दिशा में बहने की सहायता देने वाला "पाल" भी मैं ही हूँ। नौका के अस्तित्व के लिए तले और पाल, दोनों का ही विशेष स्थान है, इसके बिना नौका व्यर्थ है। कुकुरमुत्ता कहता है कि मैं भी जीवन रूपी नौका का अनिवार्य भाग हूँ। मैं ही तराजू में लगा हुआ पलड़ा हूँ जिस पर सारी दुनिया अपना सामान (गल्ला) तौलती है। आगे की पंक्तियों में कवि ने तुकबन्दी की लगन में कुकुरमुत्ता की शक्ति और प्रभाव को ही रेखांकित किया है। कुकुरमुत्ते को अपना प्रभाव रुपये, आने, बनारस, न्यवन्ना आदि वस्तुओं और स्थानों पर छाया हुआ दिखाई देता है। अपनी शक्ति का परिचय वह गोले के समान बमकने में मानता है। अन्त में कुकुरमुत्ता गुलाब को यह बोध करा देता है कि मैं ही सब को पार लगा सकता हूँ और मैं चाहूँ तो मंझदार में डुबो दूँ। क्योंकि सर्वहारा वर्ग की शक्ति जब जाग उठती है तब वह ही जीवन को संचालित करने की अपूर्व ताकत का पर्याय बन जाती है। अन्तिम दो पंक्तियों में कुकुरमुत्ता अपने को पान का डिब्बा और चूना, दोनों ही बतलाता है। व्यंग्य की दृष्टि से देखें तो कुकुरमुत्ता अपनी पहचान को दूर-दूर तक फैला हुआ सर्वत्र देखता है। इसी क्रम में आम आदमी के जीवन का अभिन्न अंग बना "पान" और "चूना" भी वह अपने को मानता है।

विशेष : कुकुरमुत्ते की गर्वोक्ति की भाषा इस काव्यांश का महत्वपूर्ण भाग है। काव्य की भाषा ठेठ देशी शब्दों में प्रयोग, मुंहावरेदार, एवं उर्दू फारसी के शब्दों से सम्पन्न है।

कुकुरमुत्ता अपनी प्रभुता को सिद्ध करने की झोंक में बहुत कुछ अटपटा और असंगत भी कह गया है, जो आक्रोश के आवेश वश ही है। गुलाब पर कुकुरमुत्ते का रौबराब आद्यन्त छाया हुआ है।

छंद के बन्धन से मुक्त कविता का प्रभाव हर दृष्टि से एक नयापन लिए है। व्यंग्य की दृष्टि से निराला की इसे सफलतम और क्रान्तिकारी रचना माना जाता है।

बादल राग

"तिरती है समीर सागर पर .... ताक रहे हैं. ऐ विप्लव के बादल"

प्रसंग एवं संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" रचित "बादल राग" नामक कविता से उद्धृत है। बादल को कवि ने विप्लव का प्रतीक माना है। विप्लव के आह्वान की आवश्यकता समाज में बढ़ते अन्याय और पीड़ा के शमन और दमन के लिए होती है। कवि निराला ने कविता के प्रारम्भ में विप्लव की सारी स्थितियों का प्रतीकात्मक, संकेत दिया है। बादल को कवि ने "रणतरी" की संज्ञा देते हुए कहा है–

व्याख्या : ऐ विप्लव के बादल! हवा के सागर पर अर्थात् आकाश मण्डल में तेरी युद्ध रूपी पोत ऐसे ही तैरती है जैसे क्षणिक सुखों पर दुःख की छाया मंडराती है। पुनः कवि अपने भाव को स्पष्ट

करते हुए कहता है कि क्रान्ति लाने वाले बादल की माया अपने प्रभाव में सभी को बहाकर ले जाती है। कवि के दृष्टि में बादल का यह रूप दया भावना से हीन होता है। अर्थात् जब भी विप्लव रूपी प्लावन जगती के हृदय पर घटित होता है वह निःसंकोच भाव से सभी को बहाकर ले जाता है। विनाश के क्षणों में क्रान्ति के आगमन पर फिर किसी का अंकुश नहीं रहता। निराला इस युद्ध पोत को आकांक्षाओं से भरी हुई कहकर सम्मानित करते हैं क्योंकि क्रान्ति का आगमन नयी आशाओं के सुप्त अंकुरों को प्रस्फुटित होने का सुअवसर देता है। विप्लव के बादल जितना भेरी गर्जन करते हैं उतना ही जन हृदय की भूमि में नवजीवन-आगमन की सुप्त इच्छाओं के अंकुर सिर ऊंचा करने का सुयोग प्राप्त करते हैं।

विशेष : बादल को यहाँ क्रान्ति के अग्रदूत के रूप में निराला ने प्रस्तुत किया है। "तिरती है" क्रिया से काव्य का प्रारम्भ, बादल रूपी नौका की समता को साकार करने के लिए कवि ने किया है।

अस्थिर सुख पर दुःख की छाया के अरूप बिम्ब के माध्यम से कवि ने जीवन की वास्तविकता को व्यंजित किया है। जीवन में सुख के ऊपर सदैव दुःख की छाया मंडराती है तभी तो नव परिवर्तन की भावना का जन्म होता है।

कवि ने संसार के हृदय को दुःख पीड़ित बताकर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि क्रान्ति के पीछे जन-जन की पीड़ा-शक्ति का निवास होता है और यह पीड़ा ही विप्लव के बादल की जननी का कार्य करती है।

शिल्प विधान की दृष्टि से "बादल राग" कविता का अपना वैशिष्ट्य है। भाषा पर निराला की अद्भुत पकड़ है। पहला वाक्य निराला ने बहुत दीर्घ शैली में दिया है। रूपक अलंकार का प्रयोग-समीर-सागर एवं रणतरी में द्रष्टव्य है। एक-एक शब्द का प्रयोग निराला के कुशल शब्द शिल्पी रूप को साकार करता है।

फिर-फिर .... विप्लव से छोटे ही हैं शोभा पाते।

प्रसंग एवं संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" रचित .... उद्धृत है। कवि ने विप्लव के बादल को ....। सशक्त पूंजीपति वर्ग को यह .... किन्तु लघुता भाव सम्पन्न छोटे-छोटे पौधों को यह ....। बादल का उभयपशीय ....।

व्याख्या : विप्लव के बादल की निरंतर गूंज और गर्जन ध्वनि .... संसार के स्तब्ध .....। सम्पूर्ण जगत का हृदय ....। वज्रपात करते ये बादल .... वीरों, पहाड़ों, पेड़ों को धराशायी ....। जबकि अहम्-शून्य और छोटे-छोटे पौधे ....। छोटे-छोटे हाथों को हवा में हिलाते से जान पड़ते .... खिल-खिलाकर .... व्यंजित .... को आ पाते हैं।

विशेष : निराला .... शब्द शिल्पी ....। छोटे-छोटे शब्दों से .... भाव को साकार ....। क्रान्ति का जनहितकारी रूप ....। बादल का स्वयं को मिटाकर ....। बड़ी शक्तियों को चकनाचूर कर देने वाले बादल .... भाव-विभोर ....।

भाव-व्यंजना का कौशल .... भाषा के सामर्थ्य .... वैशिष्ट्य ....। अट्टालिका नहीं है रे .... ऐ जीवन के परावार।

प्रसंग एवं संदर्भ : प्रस्तुत काव्यांश सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" की काव्य रचना "बादल राग" से लिया गया है। बादल के द्वारा कवि ने क्रान्ति के स्वरूप एवं प्रभाव का जो अभी तक अंकन किया है उसी क्रम में इन पंक्तियों में भी विप्लवी बादल की विशेषताओं को रेखांकित किया गया है। कवि ने विप्लव की शक्ति को दो भिन्न दृष्टिकोणों से प्रस्तुत किया है। विप्लव के बादल को कृषक के जीवन का एकमात्र आशा केन्द्र मानते हुए कवि कहता है कि—

व्याख्या : दिखाई देने वाली बड़ी-बड़ी ऊँची हवेलियाँ मानों आतंक का ही दूसरा नाम है। इस आतंक को क्रान्ति के बादल नष्ट कर देते हैं। कवि ने यह भी स्पष्ट किया है कि विप्लव की प्रलयकारी जल वृष्टि सदैव पंक अर्थात् कीच से उत्पन्न होती है। कवि का तात्पर्य है कि विप्लव का आह्वान महलों जैसी बड़ी-बड़ी इमारतों में न होकर धरती के पंक से उत्पन्न होता है। कमल की उत्पत्ति इसी पंक से होती है जो सदा जल में अपनी आभा को बिखेरता है। ऊँची अट्टालिकायें आतंक की भयावह पीड़ा सहती हैं। शिशु समान कोमल-हृदय-प्राणी का शरीर तो रोग शोक में भी प्रसन्न रहता है क्योंकि वहाँ सरलता और निश्छलता का निवास है। वहाँ संचित धन और शक्ति के जाने की पीड़ा नहीं है। प्रतिकूल इसके जिन्होंने अपनी तिजोरियों में अपार धन

संचित किया हुआ है, वे इतने ही अशान्त ह। नारी के प्रति आसक्ति को लिए, उस अंक में भरे हुए भी भयग्रस्त रहते हैं क्योंकि धनी वर्ग सुख भोगते हुए भी क्रान्ति गर्जन से भयभीत रहते हैं। अपने नेत्रों को वे अनिष्ट से बचाकर रखना चाहते हैं। धनी वर्ग के ठीक विपरीत स्थिति है किसान-वर्ग की जो धन बल से रहित है, शरीर भी जिसका दुःख और अभाव से क्षीण हो चुका है, वह अधीर भाव से इन विप्लव के वीरं बादलों को बुलाता है, क्योंकि वे ही उसकी आशा के एकमात्र केन्द्र हैं।

विशेष : बादल के क्रान्तिकारी रूप का रूपक इन पंक्तियों में पूर्णता को प्राप्त हुआ है। दिखायी देने में ऊंचे भवन अन्दर से कितने छोटे और खोखले हैं इस भाव की कवि ने सफल अभिव्यक्ति की है।

क्रान्ति का स्वागत वे करते हैं जो धन बल की शक्ति से रहित है। उनके लिए ये क्रान्ति के बादल न होकर वीरता के बादल हैं जो कृषक के हृदय में नव आशा का संचार करते हैं।

प्रगतिवादी काव्य की दृष्टि से निराला की यह रचना कुकुरमुत्ता के समान ही समादरणीय और चर्चित है।

21.9 मूल्यांकन

अतः निराला सम्बन्धी इस समग्र एवं गहन अध्ययन के बाद स्पष्ट हो जाता है कि निराला के विराट् व्यक्तित्व के सामने मूल्यांकन के सारे मानदण्ड बौने रह जाते हैं। निराला का बादल के समान विराट्-व्यक्तित्व है जो दूसरे के लिए रिक्त होना जानता है। निराला के व्यक्तित्व का निर्माण विषम परिस्थिति से निर्मित है। आजीवन उन्हें संघर्ष करना पड़ा तथा संघर्ष का रूप कभी आर्थिक रहा तो कभी सामाजिक और वैयक्तिक। निराला में वह अद्भुत शक्ति थी जिसने, उन्हें फौलादी बनाया एवं "महाप्राण निराला" का गौरव प्रदान किया। उनकी संवेदना ने विराट् और महान को ही संस्पर्श नहीं किया अपितु उपेक्षित, दलित, शोषित और लघु मानव को भी साहित्य में प्रतिष्ठित किया। निराला का साहित्य विविध आयामी है जिसमें अमूल्य-मानवीय-जीवन की निधियाँ भरी पड़ी हैं। उन्होंने अपने साहित्य में जो कुछ भी सृजा है वह निराला के समान ही महान और अपरिमेय है।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1 पाँच-छह पंक्तियों में उत्तर लिखिए :

i) निराला का रचना-विधान इतना सशक्त और बोधगम्य क्यों है?

....
....
....
....
....
....

ii) निराला काव्य को हम मुख्यतः किन रूपों में विभक्त कर सकते हैं? कृतियों के आधार पर स्पष्ट कीजिए।

....
....
....
....
....
....

iii) निराला की काव्य-भाषा में शब्दावली का क्या स्वरूप है?

....

....

....

....

....

....

....

2 कविता का एक-एक उदाहरण देकर पुष्ट कीजिए :

i) निराला की कविता में भावों को साकार करने की अद्भुत शक्ति उनके प्रतीक-विधान में छुपी है।

....

....

....

....

....

....

....

ii) निराला-काव्य की बिम्ब-योजना अर्थ को रूपायित करके भावपूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान करती है।

....

....

....

....

....

....

iii) निराला काव्य ण अप्रस्तुत-विधान कवि की कुशल कल्पना शक्ति का प्रमाण है। उपमा और मानवीकरण के उदाहरण से स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

....

3 निराला की छंद-योजना पर पाँच-छह पंक्तियां लिखिए :

....

....

....

....

....

....

....

4 निराला के काव्य में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना पर लगभग दस पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

21.10 शब्दावली

छायावादोत्तर : छायावाद के बाद का

निर्बन्ध : बन्धन रहित

अद्वैत : भारतीय दर्शन-परंपरा का पारिभाषिक शब्द जिसके अनुसार अ+द्वैत अर्थात् जहाँ द्वैत (दो) न हो। आत्मा और परमात्मा मूलतः एक हैं दो नहीं।

क्लेदयुक्त तन : पसीने से तर बदन

विलक्षण : असाधारण या अलौकिक

प्रतिकूलताएँ : विपरीत स्थितियाँ

भाव-प्रवणता : भावों की प्रबल प्रधानता

आख्यानक काव्य : ऐसा काव्य जिसमें कथा को आधार बनाया गया हो अर्थात् कथात्मक-कविता

महाकाव्यात्मक-औदात्य : कविता का वह श्रेष्ठतम रूप जिसमें महाकाव्य के सभी गुण उपलब्ध हों

अनाहूत : बिन बुलाया या अनिमंत्रित

आक्रामक : आक्रमण करने वाला

मनोवृत्ति : मन की वृत्ति या विकार

चितेरे : चित्रकार

तेजोद्दीप्त : तेज से उद्दीप्त

आत्मसात : आत्मा को अपने अधिकार में कर लेना

अपरिमेय : जिसे नापा न जा सके अर्थात् असीम

21.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

महाप्राण निराला : गंगा प्रसाद पाण्डेय; लोक भारती प्रकाशन; इलाहाबाद

निराला नवमूल्यांकन : डॉ. राम रतन भटनागर; स्मृति प्रकाशन, प्रभाग

निराला की साहित्य साधना, भाग-1, 2 डॉ. रामविलास शर्मा; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1971 ई.

निराला : सं. डॉ. पद्मसिंह; राधाकृष्ण प्रकाशन; दिल्ली, 1969 ई.

निराला : व्यक्तित्व और कृतित्व : डॉ. प्रेमनारायण टण्डन

निराला आलोचकों की दृष्टि में : सं. डॉ. वचनदेव कुमार; विहार ग्रंथ कुटीर प्रकाशन, पटना, 1980 ई.

निराला की कविताएँ और काव्य भाषा : रेखा खरे; लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1989 ई.

निराला : सं. डॉ. इन्द्रनाथ मदान

अलक्षित निराला : डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित; नचिकेता प्रकाशन, दिल्ली

निराला काव्य का अध्ययन : डॉ. भगीरथ मिश्र

निराला स्मृति ग्रंथ : सं. ओंकारशरद; भारती परिषद्, प्रयाग, 1968

निराला का काव्य : डॉ. जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव

युग कवि निराला : सं. डॉ. रजनीकांत लहरी; निराला संगीत, साहित्य एवं नाट्य अकादमी उन्नाव, 1989

21.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 i) सन् 1896 में
ii) परिमल
iii) तुलसीदास
iv) कुकुरमुत्ता
v) सन् 1930 में

2 i) √
ii) ×
iii) √
iv) ×
v) √

बोध प्रश्न 2

1 i) कुकुरमुत्ता और बेला
ii) महाप्राण निराला
iii) कुकुरमुत्ता, अपरा और अर्चना
iv) विप्लव का
v) कुकुरमुत्ता सर्वहारा वर्ग का और गुलाब पूंजीपति संस्कृति का।
vi) सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला
vii) निरुपमा और अप्सरा
viii) छायावाद के

2 i) निराला की विराट, उदात्त और विस्तृत काव्य संवेदना में छायावादी अन्तर्वस्तु के साथ-साथ प्रयोगशील एवं प्रगतिवादी विचारों की छाप भी देखने को मिलती है। उसमें राष्ट्रीय-चेतना के गौरव-गान तथा जागरण का स्वर है तो करुणा, पीड़ा, वेदना एवं संघर्ष की गाथा भी है। अद्वैत भावना का संस्पर्श है तो शोषण एवं सामाजिक विषमताओं के प्रति व्यंग्य एवं आक्रोश की भावना भी मुखर है।

ii) निराला के काव्य में छायावादी कविता का लाक्षणिक, प्राकृतिक एवं अमांसल सौन्दर्य तो मिलता ही है साथ ही रूढ़ियों को नकारने की शक्ति, व्यंग्य और प्रहार का स्वर, नए-नए प्रयोगों से विषय, भाव एवं भाषिक उपकरणों का नव्यतम स्वरूप भी देखने को मिलता है। छायावादी रहस्य भावना, गीतात्मकता तथा राष्ट्रीय चेतना के साथ-साथ प्रगतिवादी, एवं प्रयोगवादी काव्य चेतना का भाव एवं शिल्पविधान भी उनके काव्य में देखा जा सकता है।

iii) निराला की कविता में मूल्यों का बहुरंगी स्वरूप देखा जा सकता है। नैतिकता, उदात्तता तथा परदु:खकातरता जैसे भावों से समृद्ध कविता के इस सृजक की मूल्य चेतना पर

स्पष्ट है कि महादेवी के काव्य में अभिव्यक्ति के समर्थ माध्यम के रूप में गीति का प्रयोग हुआ है और यह अपने आंतरिक एवं बाह्य सौंदर्य की रश्मियों से उनके काव्य को आलोकित भी करता है। उनके गीतों में व्यापत अलौकिक प्रेम के स्वरूप में साधना और भावना का अद्भुत समन्वय मिलता है। नितान्त वैयक्तिक अनुभूतियों पर आधारित उनके गीत भावना की चरम सीमा का स्पर्श करते हैं। महादेवी स्वयं कहती है –"साधारणत: गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख-दुखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेम हो सके।" इस आधार पर भी महादेवी सफलतम गीतकार ठहरती हैं। स्वर-संगीत तथा शब्द-योजना की लय का समवेत-संयोजन, गति-नियम, ग्रति बन्धन एवं तुक पालन की सावधानी आरोह-अवरोह का कुशल निर्वाह तथा इन सभी के अनुकूल स्वरों का उतार चढ़ाव, विचित्र सौन्दर्य निर्मित करता है।

महादेवी के गीतों में भावों के अनुकूल ही भाषिक व्यवस्था भी बनती चलती है। भाषा, गीतों की छन-झुन-नयी लय को अपने प्रवाह के संगीत में पिरोती चलती है। बिहंगम के मधुर स्वरों की तुलना महादेवी अपनी वीणा के हर मंदिर तार से करती हुई चलती हैं तो माधुर्य और मादकता का सन्निवेश पल्लवित होता जाता है–

उड़ा तू छन्द बरसाता,
चला मन स्वप्न बिखराता,
अमित छबि की परिधि तेरी,
अचल रस-पार है मेरा।

बिछी नभ में क्या झीनी,
धुली भू में व्यथा भीनी,
तड़ित उपहार तेरा, बादलों,
सा प्यार है मेरा।

इसी प्रकार "ओ चिर नीरव", "सपने जगाती आ", "मैं चिर पथिक वेदना का", तथा "मिट चली घटा अधीर" आदि बहुत से गीत देखे जा सकते हैं जहाँ ध्वन्यात्मकता और संगीतात्मकता की लयपूर्ण योजना सहज़ ही उपलब्ध है। "यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो" जैसे गीतों में वर्ण, अर्थ और ध्वनि का अनुपम सौन्दर्य विराजमान है। आध्यात्मिकता में लौकिक-गीतों की लय का बरसाती-मिश्रण गीतों को भाव प्रवण बना देता है। आवेश से कोसों दूर शान्त, सहज और नीरवता के परिवेश में सत्य की अभिव्यक्ति का मार्मिक साहस अत्यंत प्रभावित करता है। संयम और चिंतन का अनुशासन तथा बिम्ब और प्रतीकों का शृंगार उनकी अनुभूति को स्पंदित करता है "क्या पूजा क्या अर्चन रे?", "पंथ रहने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला", "पूछता क्यों शेष कितनी रात", तथा "मैं नीर भरी दुख की बदली" जैसे कितने ही गीत देखे जा सकते हैं जहाँ गीतों की आर्मिकता के लिए अपेक्षित सभी विशेषताएँ सहज ही उपलब्ध हैं। अत: कह सकते हैं कि महादेवी गीति मुक्तक लिखने वाली हिन्दी साहित्य की अतुलनीय गीत लेखिका हैं। उनके गीतों में आत्मानुभूति की गहराई, वेदना की व्यापक करुणा, संगीत की मधुर लहरियाँ तथा साहित्यिक स्तर की भावमिश्रित भाषा का अनुपम एवं अद्भुत मिश्रण है और इसी के कारण महादेवी का गीति काव्य एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

23.7.2 काव्य-भाषा

महादेवी के कवि रूप की इस अपूर्व सफलता का मुख्य कारण उनकी गीतोपयुक्त मधुर तथा कोमल भाषा ही है। महादेवी छायावाद द्वारा प्रदत्त अनेक कला-विषयक विशेषताओं को ग्रहण करते हुए अपनी भाषा का सहज शृंगार करती हैं। कहा जाता है कि खड़ी बोली को काव्योचित भाषा का रूप देने का श्रेय प्रधानत: पंत जी को है किन्तु यह भी सत्य है कि उसे सुकोमल मार्मिकता देने का गौरव जितना महादेवी को है उतना अन्य किसी को नहीं। महादेवी प्रत्येक शब्द को ध्वनि, वर्ण और अर्थ की दृष्टि से नाप-तोल और काट-छाँटकर सूक्ष्मतम भावनाओं को कोमलतम कलेवर देती हैं। उनकी शैली में तरलता और मार्दव है तो भाषा संस्कृत गर्भित खड़ी बोली होकर भी अत्यन्त परिष्कृत, शिल्वित तथा मधुर कोमल हैं। व्याकरणिक नियमों से स्वच्छन्द रहने वाली महादेवी कभी शब्दों का अंग-भंग, रूप-परिवर्तन और अंग-वार्द्धक्य कर नए शब्द गढ़ लेती है तो कभी शब्दों के निरंतर प्रयोग से उसमें एक विशिष्ट अर्थ कर देती है। "पंत और महादेवी" निबंध में छायावाद के जाने-माने आलोचन शांतिप्रिय द्विवेदी लिखते हैं –"पंत ने जिस खड़ी बोली को रमणीयता दी, महादेवी ने उसे मार्मिकता देकर प्राण प्रतिष्ठा कर दी। ताजमहल के भीतर उन्होंने दीपक जला दिया। भाषा के सौंदर्य में पंत बेजोड़ हैं, अभिव्यक्ति की मार्मिकता में महादेवी।"

शब्द-निरूपण, **वर्ण-विन्यास**, **नाद-सौन्दर्य** एवं **उक्ति सौन्दर्य**–सभी दृष्टियों से महादेवी का भाषा पर सहज अधिकार है। शब्द-कवयित्री महादेवी के शब्द-शब्द में काव्य के दर्शन होते हैं।

साधना की उष्मा से दमकते शब्द-माणिक्य कविता के परिवेश एवं वातावरण को जीवन्त बना देते हैं। **"शलभ मैं शापमय वर हूँ" या गई वह अधरों की मुस्कान मुझे मधुमय पीड़ा में बोर"** जैसी अनेकों पंक्तियाँ जिनका प्रत्येक शब्द अपने में एक चित्र को समेटे हैं– वास्तव में सराहनीय है। "नीहार" से "दीपशिखा" तक की यात्रा में तत्सम, तद्‌भव, देशज तथा विदेशी शब्दों का सटीक प्रयोग महादेवी के संयमी शिल्पी होने का प्रमाण है। महादेवी भाव तथा चित्रों के अनुरूप वर्णों का संकलन एवं परिमार्जन करती हैं। भीर (भीड़), पंखुरियाँ (पंखुड़ियाँ), सपने (स्वप्न) आदि अनेकों ऐसे उदाहरण दिए जा सकते हैं जो लालित्य-विधान में सहायक होते हैं। पीड़ा और करुणा को माधुर्य-गुण से संचालित करने की कला निश्चित ही अनोखी है–

> रूपसि तेरा-धन-केश-पाश
> श्यामल-श्यामल कोमल-कोमल
> लहराता सुरभित केश-पाश

करुण, मधुर, सुन्दर, श्यामल आदि शब्दों की द्विरुकित माधुर्य गुण को भी द्विगुणित कर देती है। इसी प्रकार "गया गया क्या-क्या उत्पात", "भरकर छलक-छलक जाती", "चाह-चाह थक-थक कर", "सिहर-सिहर उठता सरिता उरे तथा पलक-पलक, रोम-रोम, साँस-साँस, वुझ-वुझ, फैला-फैला, घुल-घुल, घिर-घिर कन-कन, झूम-झूम तथा पल-पल" जैसे अनेकों प्रयोग देखे जा सकते हैं।

महादेवी की कविता में ओज तथा प्रसाद गुण के दर्शन भी होते हैं। जागरण का एक गीत देखिए, जिसमें पौरुष पूर्ण "ओज गुण" प्रशंसनीय है–

> बाँध लेंगे क्या तुझे यह मोम के बंधन सजीले?
> पंथ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रंगीले?

इसी प्रकार चातक, दीपक, कुल बुल एवं कांह अभी अप्रस्तुतों द्वारा जिस करुण भाव को वे व्यंजित करती है, उसमें सरलता एवं बोधगम्यता से प्रसाद गुण का निर्वाह हो जाता है। 'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल' कहकर वे प्रसाद-गुण की अभिव्यक्ति को सहज-सरल बना देती है। देशज शब्दों का सुन्दर प्रयोग देखिए –"मुखर पिक हौले-हौले बोल, हठीले हौले-हौले बोल।" शब्दावली में समान कोटि के वर्णों के प्रयोग से जो समता आ जाता है, उसे वर्णमैत्री कहते हैं। महादेवी ने सजल, धवल, अलज, चरण जैसे शब्दों का एक साथ प्रयोग कर "स", "ज", "ल" तथा "ध", "व", "ल" और "अ", "ल", "स" तथा "च", "र", "ण" आदि सम-मात्रिक तथा समानधर्मी वर्णों का प्रयोग कर अलंकारी भाषा का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार, वर्णमैत्री, विपरीत ध्वनि वाले वर्ण-प्रयोग एवं नाद सौंदर्य आदि के भी अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं। नाद सौंदर्य में तो संगीत का पुट भी है जो अर्थ ध्वनन में भी सहायक होता है। "सजल लोचन, तरल चितवन, सरल भू विरल श्रम कण" जैसे पंक्तियों में सजल, सरल, तरल, विरल जैसे वर्णों के प्रयोग से यहाँ तरल संगीत के साथ-साथ एक विराट बिम्ब भी उभरता है। इसी प्रकार–सुनहले, सजीले, रंगीले, छबीले, किंकिण, मर्मर, झंकार नुपुर, कम्पन आदि शब्द भी नाद सौन्दर्य के निर्माता बनते हैं।

इसके अतिरिक्त महादेवी की भाषा में उक्ति सौन्दर्य, वक्रोकित-सौन्दर्य लिगात्मकता, ध्वन्यात्मकता एवं व्यंग्य सौन्दर्य आदि के भी दर्शन होते हैं। "घोरतम छाया चारों ओर, घटाएँ घिर आई घनघोर।" में अभिधा का सुंदर प्रयोग है तो "कौन है वह सम्मोहन राग, खींच लाया तुमको सुकुमार?" में सुंदर लाक्षणिक प्रयोग देखा जा सकता है। "खींच लाना" सजीव का ही काम है और यहाँ मुख्यार्थ बाधित है। किसी व्यक्ति विशेष की ओर संकेत है। इसी प्रकार लक्ष्मार्थ से आगे व्यंजित होने वाला व्यंग्यार्थ भी उनकी कविता में कई स्थानों पर मखर है। परिवेश को चित्रित कर महादेवी प्रेमिका के मिलन क्षणों की सुखद अनुभूति को व्यंजित करने में कितनी सिद्धहस्त है, देखिए–

> गुलालों से रवि का पथ लीप
> जला पश्चिम में पहला दीप
> विहँसती संध्या भरी सुहाग
> दृगों से झरना स्वर्ण पराग।

भाव विह्वलता के अनेकों उदाहरणों में प्रेमी-हृदय की दशाओं को चित्रांकित करने की कुशलता भी द्रष्टव्य है। वे स्वयं एक कुशल चित्रकत्री भी हैं और इस श्रेणी में उन्हें सफलता भी खूब हासिल हुई है–

> पुलक पुलक कर सिहर सिहर तन
> आज नयन आते क्यों कर भर।

प्रसिद्ध आलोचक प्रकाश चन्द्र गुप्त ने "महादेवी की काव्य साधना" नामक निबंध में कहा भी है –"दीपशिखा के गीतों में भाषा मोती के समान स्वच्छ और निर्मल है। उसके शब्द चित्र अनायास ही हृदय मथ डालते हैं किन्तु इस प्रौढ़ काव्य प्रेरणा के पीछे किसी प्रबल झंझावत का अनुभव भी देखा जा सकता है–

i) झुक-झुक, झूम-झूम कर लहरें
भरती बूंदों के मोती।
× × ×

ii) चल अचल से झर-झर झरते
पथ में जुगनू के स्वर्ण फूल।

शब्दावली की चर्चा हम पहले कर चुके हैं। किंतु यहाँ इतना स्पष्ट करना अभी बाकी है कि ग्रामीण, लौकिक तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग भी उनके काव्य को सहज-स्वाभाविक स्पर्श देता है। रैन (रात्रि), बतास (वायु), लीप, चितचोर, बिछोह, होले, करतार, मरम, बिछलना तथा धावा आदि ग्रामीण और ब्रजभाषा के शब्द भी यहाँ मिलते है तो अरबी-फारसी के बन्दीखाना, दाग, साकी, अरमान, बेहोश, परदा, बेहाल, तूफान तथा निशानी आदि शब्दों का प्रयोग भी काव्य भाषा को समृद्ध करता है। गद्य में तो महादेवी ने अंग्रेजी के भी बहुत से शब्दों का प्रयोग किया है किन्तु काव्य में यह कम है। शब्दावली में महादेवी ने "मय" युक्त शब्दों का अधिक प्रयोग किया है। मधुमय, विषमय, श्रवणमय, जलकणमय, कविमय, परिमलमय, नयनमय रहस्यमय, विषादमय तथा स्वप्नमय आदि अनेक ऐसे शब्द देखे जा सकते हैं। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि महादेवी की भाषा किसी अनमोल एवं बेजोड़ सांचे में ढली एवं गढ़ी हुई भाषा है। भाषा का यह सौष्ठव और गंभीर्य ही उन्हें कुशल-शिल्पी ठहराता है।

23.7.3 प्रतीक योजना

कवि के सूक्ष्मतम भावों को लाक्षणिक प्रयोग द्वारा ही वाणी प्राप्त होती है। महादेवी ने भी अपने काव्य की समृद्धि के लिए प्रतीकात्मक संकेत-भाषा का आश्रय लिया। महादेवी छायावादी प्रतीकों के साथ-साथ मौलिक प्रतीकों का प्रयोग भी सकुशल करती है। आंतरिक वेदना की मुखर अभिव्यक्ति बना "दीपक" प्रतीक तो महादेवी की पहचान ही बन गया है। यों महादेवी ने सैंकड़ों प्रतीकों का प्रयोग एवं निर्माण भी किया है। छायावाद में पूर्व-प्रचलित कली, भ्रमर, झंझा, इन्द्रधनुष, ऊषा, चंचला, मेघ, पवन, दीपक आदि प्रतीकों को तो वे ग्रहण करती ही हैं साथ ही दीपक को साधनारत आत्मा, करुण जीवन के अर्थ में भी प्रयोग करती हैं।
"सांध्यगगन"–लौकिकता के प्रति विराग का प्रतीक है, यामिनी सेवारत साधिका है, गोधूलि-करुण मिलन की बेला है तथा सरिता-करुणा की अविरल धारा है।

इनके अतिरिक्त तेल-आंतरिक स्नेह, झंझावत-विघ्न बाधाएँ, अंधेरा-विषाद, बदली-संतों या भक्तों की गंभीरता में सेवा करने वाली, वर्षा-करुणा, मकरन्द-आँसू, नभ की दीपावली-तारागण, वीणा-हृदय, वीणा के तार-हृदय के भाव, गायक-साधक, प्याली-जीवन का प्रतीक, कालिन्दी-अश्रुधारा, पतवार-साहस भाव, लहर-हृदय का भावावेग, शृंगार-मन का उत्साह, सागर-संसार चक्र तथा इन्द्रधनुष-मधुर मिलन की स्मृतियाँ आदि कई प्रतीक महादेवी के काव्य सौन्दर्य को समृद्ध करते हैं।

महादेवी के ऋतु तथा लौकिक-भावों संबंधी प्रतीक भी मौलिक एवं सराहनीय हैं। वे प्रतीकों का प्रयोग रूपक, उपमान तथा लक्षणा के रूप में अलग-अलग ढंग से भी करती हैं। "मैं नीर भरी दुख की बदली" में रूपक का प्रयोग है तो "धूप सा तन दीप सी मैं" में उपमान का सुन्दर प्रयोग दृष्टव्य है। कहीं-कहीं महादेवी की प्रतीक योजना दुरूह भी हो गई है किन्तु भाव-भिव्यंजना को वह सशक्त एवं समर्थ भी बनाती है। आध्यात्मिक एवं भावात्मक प्रतीकों का बाहुल्य महादेवी की सूक्ष्म एवं गहन कल्पना शक्ति का तो परिचायक है ही उनकी मनोवैज्ञानिक पकड़ को भी वह स्पष्ट करता है। लौकिक प्रतीकों से वे अलौकिक को व्यक्त कर देती हैं। काव्य संग्रहों के शीर्षक तक महादेवी ने प्रतीकात्मक रखे हैं। यथा नीहार (नैराश्यपूर्ण वातावरण का प्रतीक), रश्मि (आशा, उल्लास का प्रतीक), नीरजा (मर्म अर्थात्, परमतत्व की ओर उन्मुख रहने वाली आत्मा का प्रतीक), सान्ध्यगीत (साधना के विकास और आस्था के प्रतीक) तथा दीपशिखा (विरह-निशा को झेलती एवं साधना प्रारंभ करती आत्मा का प्रतीक) आदि ऐसे ही शीर्षक हैं। "दीपक" प्रतीक से जलन, पीड़ा, वेदना का ही अर्थ स्पष्ट नहीं होता अपितु स्वयं जलकर जग को प्रकाश देने का अर्थ भी प्रमाणित होता है–

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल।
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर।

इसी प्रकार–

पंथ रहने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला।

× × ×

मधुर राग तू मैं स्वर संगम।

× × ×

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।

जैसे भावात्मक, मनोवैज्ञानिक, रूपात्मक, प्रकृति संबंधी, पौराणिक-ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक तथा कला संबंधी क्षेत्रों से भी बहुत से प्रतीक लेकर काव्य-सौन्दर्य को समृद्ध किया गया।

23.7.4 बिम्ब योजना

मानव के मानस में अनेक मूर्त-अमूर्त रूप भाव व्यापार अप्रत्यक्षता भी रहते हैं। इन्हें आकार (फार्म) प्रदान करने के लिए ही बिम्बों का विधान करना आवश्यक होता है। किसी भी वस्तु को अपनी किसी इन्द्रिय के द्वारा अनुभव करने पर हमारा हृदय जो प्रभाव ग्रहण करता है और उससे जिस प्रकार की मानस अभिव्यक्ति होती है, उसे "बिम्ब" कहा जाता है। स्पष्ट है कि बिम्ब किसी व्यक्ति, वस्तु या यथार्थ की ऐसी प्रतिच्छवि है जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है। छायावादी कवियों ने बिम्ब को चित्र-शब्द (चित्रविधान) भी कहा है। छायावाद की इसी चित्रभाषा पर आलोचक मुकुटधर पाण्डेय लिखते भी हैं–"छायावाद में किसी दृश्य का ज्यों का त्यों चित्र उभारा जाता है, पर शब्द ऐसे वेग वाले प्रयुक्त किये जाते हैं कि भाषा उड़ती है। पाठक उस चित्र को पकड़ना चाहता है, पर अभी वह उसकी आँखों के सामने हुआ ही था कि न जाने कहाँ अनन्त आकाश में लीन हो जाता है। ...... ऐसी कविताओं में शब्द सजीव होते हैं। वे आदमियों की तरह चलते-फिरते और इशारा करते हैं, बोलते भी हैं...... उनमें रूप-रंग और छाया तथा प्रकाश भी पाये जाते हैं।" (श्री शारदा, खण्ड 1, पृष्ठ 341)

अतः यह तो स्पष्ट है कि छायावादी काव्य में प्रारंभ से अंत तक बिम्बों (चित्रों) की प्रचुरता है। महादेवी के काव्य का तो वास्तविक सौन्दर्य ही बिम्ब हैं। उनकी भावाभिव्यंजना का तो सौन्दर्य ही इन बिम्बों में निहित है। महादेवी तो सौन्दर्य के मूल की खोज ही सार्थक बिम्बों की रूपांतरित अभिव्यक्ति में करती है। जीवन की गोधूली, रजनी का पिछला पहर, स्वप्न संध्या, नक्षत्र, बदली, रजनी, प्रभात, पवन तथा बसंत आदि के अनेकों चित्र महादेवी के काव्य में मिलते हैं। दीपशिखा की भूमिका में महादेवी लिखती हैं–"व्यक्तिगत रूप से मुझे मूर्तिकला विशेष आकर्षित करती है, क्योंकि उसमें कलाकार के अंतर्जगत का वैभव ही नहीं, बाह्य आभास भी अपेक्षित रहता है। ....कुछ अजन्ता के चित्रों पर विशेष अनुराग के कारण और कुछ मूर्तिकला के आकर्षण से चित्रों में यत्र-तत्र मूर्ति की छाया आ गई है। यह गुण है या दोष, यह तो मैं नहीं बता सकती, पर इस चित्रमूर्ति-सम्मिश्रण ने मेरे गीत को भार से नहीं दबा डाला है, ऐसा मेरा विश्वास है।" (पृष्ठ 22)

महादेवी का वर्ण-परिज्ञान उनके बिम्ब-विधान की प्रमुख विशेषता है। रंग बोध की इसी सूक्ष्मता से बिम्बें में एन्द्रियता और अभिव्यक्ति में व्यंजक वक्रता तो आती ही है कवि की आंतरिक मनोवृत्ति भी स्पष्ट हो जाती है। "गुलाबों से रवि का पथ लीप" कविता में संध्या का कितना सुंदर, मार्मिक और साकार बिम्ब उभर कर आता है। यहाँ गुलाल, दीप, स्वर्ण पराग आदि में उपमेय दिया है और महादेवी उपमान मात्र के माध्यम से स्वयं को सौभाग्यवती मानकर आनन्दानुभूति में लीन नायिका चित्र अंकित करती हैं। महादेवी के काव्य-बिम्बों में राकेश, चाँदनी, ओस, मोती ~~और~~ चाँदी आदि श्वेत रंग वाले यथार्थों का प्रचुर प्रयोग है :

मधुर चाँदनी धो जाती है,
खाली कलियों के प्याले।

× × ×

निशा को धो देता राकेश, चाँदनी में जब अलकें खोल
कली से कहता था मधुमास, बता दो मधु मदिरा का मोल।

महादेवी की "मोम सा तन धुल चुका, अब दीप सा मन जल चुका है" जैसी कई रचनाओं में व्यापार-विधायक बिम्बों की भी प्रचुरता है। जलने-धुलने के ये व्यापार विरह की वेदना और बेचैनी को व्यंजित कर देते हैं। इसी प्रकार महादेवी ने प्रकृति के चित्रों में कल्पना की उदात्त संयोजन शक्ति का प्रयोग कर सूक्ष्म भावों को गोचर बना दिया है। महानुभूति के व्यापार को चित्रित करते हुए "मत" शब्द के प्रयोग से सहानुभूति की वर्जना का कितना सहज और मार्मिक बिम्ब है देखिए–

अब तरी पतवार लाकर
तुम दिखा मत पार देना
आज गर्जन में मुझे बस
एक बार पुकार लेना।

"चाह की मृदु उँगलियों" का गोचर-विधान देखिए महादेवी के सूक्ष्म भाव विधान को कैसे साकार कर देता है—

चाह की मृदु उँगलियों से छू हृदय के तार,
जो तुम्हीं ने छेड़ दी, मैं हूँ वही झंकार।

महादेवी के काव्य में जीर्ण तथा विशृंखल बिम्ब भी मिलते हैं पर वस्तुओं और व्यापारों की संश्लिष्ट योजना में उनका कोई जवाब नहीं। कहीं-कहीं अस्पष्टता भी है जिसका कारण लाक्षणिकता के प्रति अधिक मोह रहा है। किन्तु कुल मिलाकर बिम्ब इतने प्रभावी हैं कि अनायास ही पाठक भाव-विभोर हो उठता है। चित्रोद्धत-शैली का सुंदर बिम्ब देखिए—

मैं नीर भरी दुख की बदली
विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी, मिट आज चली।

वास्तव में महादेवी के बिम्ब जहाँ-जहाँ भी टूटते या बिलगते लगते हैं वहाँ चित्र मोह ही कारण बनता है, काव्यानुभूति की सच्चाई का अभाव नहीं। महादेवी स्वयं दीपशिखा में लिखती भी हैं – मेरे गीत और चित्र दोनों के मूल में एक ही भाव का रहना जितना अनिवार्य है, उनकी अभिव्यक्तियों में अंतर उतना ही स्वाभाविक। गीत में विविध रूप, रंग, भाव, ध्वनि सब एकत्र हैं; पर चित्र में इन सबके लिए स्थान नहीं रहता।

इसमें प्रायः रंगों की विविधता और रेखाओं के बाहुल्य में भी एक ही भाव अंकित हो पाता है, इसी से मेरा चित्र गीत को एक मूर्त पीठिका दे सकता है, उसकी संपूर्णता बाँध लेने की क्षमता नहीं रखता। (पृष्ठ 61)

महादेवी के काव्य में यों तो सभी प्रकार के बिम्बों का विधान किया गया है किन्तु उनकी विशेष रुचि चाक्षुष, श्रव्य और स्पार्शिक बिम्बों की ओर रही है। इसी प्रकार स्मृति बिम्ब भी यहाँ हैं तो परंपरागत, सांस्कृतिक एवं सामाजिक बिम्ब को भी महादेवी ने रूपायित किया है। महादेवी के रूप बिम्ब का एक सुंदर उदाहरण देखिए—

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ बसंत रजनी।
तारकमय नव वेणी बंधन
शीश फूल कर शशि का नूतन,
रश्मि वलय सित घन अवगुंठन
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
        चितवन से अपनी।
        पुलकित आ बसन्त रजनी।

इस प्रकार कुल मिलाकर कह सकते हैं कि लघु बिम्ब हो या विराट बिम्ब महादेवी अनुभूति को मार्मिक अभिव्यंजना देती है। यों बिम्ब विधान के अंतर्गत महादेवी के अन्य सैंकड़ों उदाहरण भी दिए जा सकते हैं किन्तु वह इतना महत्वपूर्ण नहीं। "आज मेरे नयन के तारक हुए जलजात देखो" या "यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो" जैसी अनेकों पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि महादेवी की काव्याभिव्यंजना बिम्ब मूलक ही है। ऐसा जान पड़ता है जैसे "यामा" में बनाये गये चित्र ही कविताओं में ढल जाते हैं और इसी से भाव सौन्दर्य समृद्ध होता जाता है। शब्द चित्रों के माध्यम से भी महादेवी लघु विराट बिम्बों का निर्माण करती हैं। सक्रिय बौद्धिकता और उर्वर कल्पना का अद्भुत मिश्रण यहाँ देखने को मिलता है। निश्चित ही महादेवी के बिम्बों में कवयित्री का सौन्दर्य बोध उभर कर आता है।

23.7.5 अप्रस्तुत विधान

सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति के लिए मूर्त तथा मूर्त के लिए अमूर्त की योजना छायावादी काव्य शैली की प्रमुख विशेषता मानी जाती है। महादेवी के काव्य में उपमेय-उपमान के अमूर्त रूप पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया है। काव्य में अलंकारों का प्रयोग (प्रस्तुत का अप्रस्तुत) सौन्दर्य

उपादान के रूप में ही होता रहा है। महादेवी की तो मूल वृत्ति ही सौन्दर्य वृत्ति है इसीलिए वे अलंकारों को आंतरिक सौन्दर्य के रूप में ही अधिक ग्रहण करती हैं। अप्रस्तुत के द्वारा प्रस्तुत के साम्य गुणों का अधिक चित्रण उनकी खास पहचान बनती है। रूपक, अन्योकित, समासोकित तथा उपमा उनके प्रिय अलंकार रहे हैं इनके अतिरिक्त प्रतीप, व्यक्तिरेक, उल्लेख, भमक, वैषम्य मूलक, अवनुति तथा विशेषण विपर्यय आदि के कई उदाहरण हैं जो काव्य कला के साधक के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। यहाँ कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं–

उपमा : बिखर जाती जुगनुओं की पाँति भी
जब सुनहले आँसुओं के हार सी।

रूपक : प्रिय सान्ध्य गगन मेरा जीवन।
× × ×
मैं नीर भरी दुख की बदली।
× × ×
शून्य मंदिर में बनूंगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी।
× × ×
मैं बनी मधुमास आ ली।

समासोक्ति : थोड़े में बहुत कुछ कह देने की शक्ति समासोक्ति में निहित है महादेवी के काव्य में समासोक्ति सौन्दर्य सृष्टि का प्रमुख साधन है। "गुलालों से रवि का पथ लीप" पंक्तियों में तो ये है ही यहाँ भी देखिए–

निशा की धो देता राकेश
चाँदनी से जब अलकें खोल।

विभावना : वृन्त बिन नभ के खिले थे
तारकों के वे सुमन
मत चयन कर अनमोल ही।

वृन्त बिन अर्थात् बिना कारण के नभ में तारक सुमन का खिलना प्रदर्शित है। अतः विभावना स्पष्ट है।

उल्लेख : चित्रित तू मैं हूँ रेखा-क्रम
मधुर राग तू मैं स्वर संगम
तू असीम मैं सीमा का भ्रम

"तू तथा मैं" का उल्लेख कई रूपों में किया गया है।

यमक : "जगती जगती की मूक प्यास"

एक ही शब्द के दो भिन्न अर्थ हैं। पहला जगती "जागृति" के लिए प्रयुक्त है तथा दूसरी "संसार" के लिए।

विशेषण-विपर्यय : किरणों के प्यासे चुम्बन में।
× × ×
आँखों की नीरव भिक्षा में।

यहाँ "प्यासे" और "नीरव" क्रमशः "चुम्बन" और भिक्षा के विशेषण बन कर आए हैं और यह वक्रतापूर्ण व्यंजना की दृष्टि से किया गया है। किन्तु वास्तव में ये विशेषण है नहीं। इसी प्रकार "जिन चरणों की नखज्योति ने हीरक जाल लजाये" में **प्रतीप** अलंकार है, "रूपसि तेरा घन-केश-पाश" में **पुनरुक्ति** भी है और **अनुप्रास** भी है। "रजत रश्मियों के तारों पर बेसुध सी गाती थी रात" आदि में **मानवीयकरण** देखा जा सकता है। "कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो" में **अन्योक्ति** है। अतः स्पष्ट है कि महादेवी की अप्रस्तुत योजना अत्यंत सहज, स्वाभाविक एवं सौन्दर्य-वर्द्धक है और इसका श्रेय उनका सृजनात्मक-कल्पना शक्ति एवं सूक्ष्म सौन्दर्य-दृष्टि को ही जाता है।

इस प्रकार, महादेवी के रचना-विधान के इस विस्तृत अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि महादेवी की मार्मिक अनुभूति के अनुकूल ही उसमें लाक्षणिकता, व्यंजकता, प्रतीकात्मकता, भावानुकूल भाषा तथा शब्द-भंडार बिम्बात्मकता तथा चित्रात्मकता की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। ये सभी साधक तत्व महादेवी के काव्य-सौंदर्य को समृद्ध करते हैं। बिम्बगत उपलब्धि एवं नव्यतम प्रतीकों का सुंदरतम प्रयोग कवयित्री की प्रौढ़ दृष्टि एवम् अनूठी समझ का परिचायक है। गीतिकाव्य की मार्मिक एवं व्यापक करुणाभिव्यक्ति के कारण ही उन्हें आधुनिक युग की मीरा भी कहा जाता रहा है।

23.8 छायावादी काव्य और महादेवी वर्मा

इस प्रकार हम देखते हैं कि महादेवी वर्मा छायावाद की अंतिम किंतु सशक्त स्तम्भ हैं, जो छायावाद का सबसे अधिक साथ निभाती हैं। छायावादी-वृहत्चतुष्टयी की एक कड़ी बनकर महादेवी पंत और निराला की तरह काव्य-चेतना के पड़ाव नहीं बदलती, छायावादी शहतीर को आधार दिये रहने में ही अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देती हैं। यही उनके वैशिष्ट्य और निरालेपन का भी सूचक है। छायावादी शैली को सभी प्रमुख-विशेषताओं की सफलतम अभिव्यक्ति उनके काव्य में मिलती है किंतु रहस्य भावना, आध्यात्मिक चेतना, वेदना की व्यापकता तथा रचना-विधान की कुशल-प्रस्तुति उनके वैशिष्ट्य को रेखांकित करते हैं। पंश विनय मोहन शर्मा ने सत्य ही कहा है कि छायावाद ने महादेवी वर्मा को जन्म दिया और महादेवी ने छायावाद को जीवन। अतः कह सकते हैं कि प्रेम की उदात्ता, वेदना की गहराई एवं व्यापकता तथा रहस्य भावना की जीवंतता का यह अद्‌भुत मिश्रण अन्यत्र दुर्लभ है। निःसंदेह महादेवी की सौंदर्य भावना एवं सौंदर्य दृष्टि सहज रूप में ही छायावादी काव्य के भावजगत एवं कला-जगत को सौंदर्य एवं गरिमा मंडित कर हिंदी साहित्य के इतिहास को समृद्ध ही नहीं, उपकृत भी किया है। अनूठी काव्य-शैली, कल्पना का एश्वर्य, मुक्तक काव्य की गीति-दृष्टि एवं अनुभूति की गहराई के कारण महादेवी को और महादेवी के कारण छायावाद को सदैव याद रखा जाएगा।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी : i) अपने उत्तरं के लिए नीचे दिए गए स्थान का उपयोग कीजिए।
ii) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइये।

1 लगभग आठ-दस पंक्तियों में उत्तर लिखें। महादेवी सफलतम गीतिकाव्य का सृजन किस प्रकार कर सकीं?

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2. महादेवी की काव्य-भाषा किन विशेषताओं से सम्पन्न थी?

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

3 महादेवी के प्रतीक उनकी विशिष्ट पहचान बनाते हैं। बताइये कैसे?

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

4 महादेवी के बिम्ब-विधान का एक सुंदर उदाहरण दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

5 महादेवी के अप्रस्तुत-विधान से किन्हीं तीन अलंकारों के उदाहरण दीजिए?

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

23.9 काव्य-वाचन तथा संदर्भ सहित व्याख्या

इस इकाई के विस्तृत अध्ययन से अब आप महादेवी वर्मा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व संबंधी वैशिष्ट्य को जान चुके हैं। महादेवी के काव्य से हमने दो कविताएँ चुनी हैं जो आपके अध्ययन के लिए निर्धारित हैं। इन दोनों कविताओं का वाचन करके कविताओं के मूल-कथ्य को पढ़े-समझें। इसके बाद कविताओं के कुछ अंशों की प्रसंग एवं संदर्भ सहित व्याख्या भी दी जा रही है। इसी के अध्ययनेदरांत आप शेष संकेतिक अंशों की व्याख्या स्वयं करने का प्रयास करें। हमें विश्वास है कि अब आपको महादेवी के काव्य अध्ययन संबंधी कोई कठिनाई न होगी। आइये कविताओं का वाचन एवं व्याख्या करें :

काव्य वाचन

कविता 1

महादेवी

पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला
घेर ले छाया अमा[1] बन,
आज कज्जल[2] अश्रुओं में रिमझिमा से यह घिरा घन :
और होंगे नयन सूखे,
तिल[3] बुझे औ! पलक रूखे,
आर्द्र-चितवन[4] में यहां
शत-विधुतों में दी खेला!

अन्य होंगे चरण हारे,
और हैं जो लौटते दे, शूल[5] को संकल्प सारे,
दुखव्रती निर्माण उन्मद,
यह अमरता नापते पद,
बांध देंगे अंक-संसृति[6]
से तिमिर में स्वर्ण बेला!
दूसरी होगी कहानी,
शून्य[7] में जिसके मिटे स्वर, धूलि में खोई निशानी

आज जिस पर प्रलय[8] विस्मित[9]
मैं लगाती चल रही नित,
मोतियों की हाट[10] औ
चिनगारियों[11] का एक मेला!

हास का मधू-दूत[12] भेजों,
रोष की भ्रू-भंगिमा[13] पतझार[14] को चाहे सहेजो!

ले मिलेगा उर अचंचल
वेदन-जल[15], स्वप्न-शतरल[16],
जान लो यह मिलन एकाकी
विरह में हैं दुकेला!
पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला!

कविता 2

यह मंदिर का दी इसे नीख[17] जलने दो।
रजत शंख[18] घड़ियाल स्वर्ण वंशी-वीणा स्वर,
गये आरती बेला को शत-शत लय से भर,
जब था कल कंठों का मेला,
विहंसे[19] उपल [20] तिमिर था खेला,
अब मंदिर में इष्ट अकेला।
इसे आजर[21] का शून्य[22] गलाने तक गलने दो।
चरणों से चिन्हित अलिंद[23] की भूमि सुनहली,
प्रणत शिरों[24] के अंक लिये चंदन की दहली,
झरे सुमन बिखरे अक्षत सित[25]
धूप-अर्घ्य-नैवेध[26] अपरिमित[27]
तममें सब होंगे अंतर्हित[28],
सबकी अर्चित कथा इसी लौ में पकने दो।
पल के मनके[29] फेर पुजारी-विश्व सो गया,
प्रतिध्वनि का इतिहास प्रस्तरों बीच[30] खो गया।

1. अमावस्या या अंधेरा 2. काजल 3. पुतली 4. नम या गीली दृष्टि 5. कांटे या बाधा 6. संसार की गोद 7. आकाश 8. महाविनाश 9. चकित, 10. अश्रु रूपी मोतियों का बाजार 11. विरह की ज्वालाएं 12. बसंत रूपी दूत 13. भौंहों की वक्रता 14. पतझड़, नाश 15. विरह-रूपी आंसू 16. स्वप्नमय प्रणयभावों के कमल पत्र 17. खामोश, चुपचाप 18. चांदी के शंख 19. हंसते थे 20. पत्थर (मंदिर की दीवारों के) 21. शरीर रूपी आंगन 22. अंधेरा 23. दरवाजे के बाहर का चबूतरा 24. प्रणाम करने को झुके सिरों वाली 25. सफेद चावल पूजा के 26. पूजा की सामग्री 27. अपार 28. समा जाना 29. एक-एक क्षण रूपी मोती 30. पत्थरों के बीच

सांसों की समाधि सा जीवन,
मसि-सागर[1] का पंथ गया बन,
रुका मुखर कण-कण का स्पंदन
इस ज्वाला में प्राण रूप फिर से ढलने दो।

झंझा[2] है दिग्भ्रांत[3] रात की मूर्च्छा गहरी,
आज पुजारी बने ज्योति का यह लघु प्रहरी,
तब तक लौटे दिन की हलचल,
तब तक यह जागेगा प्रतिपल,
रेखाओं में भर आभा-जल[4]
दूत सांझ का इसे प्रभाती तक चलने दो।

कविता का सार

कविता 1

"पंथ रहने दो अपरिचित" "प्रपण रहने दो अकेला" का भाव प्रकट करती इस औजस्वी कविता में महादेवी अपने आराध्य (प्रियतम) के प्रति अपनी भावना अर्पित करती हैं किंतु अपने अकेलेपन को छोड़ना या खोना नहीं चाहतीं। प्रियतम का साधना पथ अज्ञान और अपरिचित है तो प्रेमी की साधना भी अन्नत और अपक है। विपदाओं और बाधाओं के अंधियारे बादलों से वह घबराती नहीं। वेदना की अभिव्यक्ति ही मुख्य है, प्रियतम की प्राप्ति नहीं। प्रियतम को तो प्राप्त करते ही वेदना का मधुर-भाव छूट जायेगा। इसी वेदना में तो प्रियतम निहित हैं और इसे वे छोड़ना नहीं चाहती। ब्रह्म से अलग हुआ जीव जब ब्रह्म-प्राप्ति की इच्छा में लीन रहता है तो आनंद की तीव्रता को अनुभूत करता है परंतु ब्रह्म के मिलते ही जीव का अस्तित्व समाप्त हो जाता है और वह उसी में समाहित हो जाता है। महादेवी यह नहीं चाहती। अब तक देखते और प्राप्ति के निरंतर प्रयास में लीन रहने का आनंद ही उन्हें सर्वप्रिय है। अत: जीवन के इस अपरिचित सफर और एकाकी पथ पर वे निडर-योद्धा की तरह निरंतर चलते रहने का संदेश देती हैं।

कविता 2

"यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो" कविता महादेवी के प्रिय प्रतीक दीप या दीपक के भाव-लोक को अभिव्यक्ति करती है। प्राण-दीपक को निरंतर जला कर आराध्य (प्रियतम) का पथ-प्रशस्त करती महादेवी इस शरीर रूपी मंदिर में आशा और निराशा रूपी प्रकाश और अंधियारे का खेल देख कर कहती हैं कि इस अंधियारे को केवल प्राणों के (संकल्प के) दीपक से ही मिटाया जा सकता है। शरीर को मंदिर का रूपक देकर वे स्पष्ट करती हैं कि इस मंदिर के प्रांगण में रखी सभी वस्तुओं को प्रकाशित करने के लिए भी दीपक का जलना अनिवार्य है अर्थात् यह प्राण-दीपक जितना तप-साधना करेगा, उतना ही आलोकित होकर जग का भग प्रशस्त करेगा। सुप्त-संसार को जागृति की राह दिखाने का और प्राणों की ज्वाला में नई चेतना को संचरित करने का दायित्व महादेवी इस कविता में निभाती हैं। वे प्राण-दीपक को पुजारी कहकर प्रियतम को पूज्य ठहराती हैं। उनका प्राणदीपक प्रकाश का रखवाला-पहरेदार है जो सुबह के आगमत तक अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करता है।

प्रसंग एवं संदर्भ सहित व्याख्या

कविता 1

1 पंथ होने दो अपरिचित .... विद्युतों में दीप खेला।

प्रसंग एवं संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ छायावाद की अमर-गायिका महादेवी वर्मा द्वारा लिखित कविता से ली गई हैं जिसमें वे प्रियतम के विरह को लेकर निरंतर साधना रत रहने की घोषणा करते हुए एकाकी पथ के अंधकार को "शक्तिशाली-प्राण" को चुनौती देती हैं। वे विपदाओं-बाधाओं को ओज-भरे-स्वर में ललकारते हुए कहती हैं—

व्याख्या : आराध्य (प्रियतम) की प्राप्ति का पथ (साधना पथ) भले ही अपरिचित हों, और चाहे जितनी भी विपदाएं-बाधाएं मेरे इस साधना पथ में आ जाएं, वे इस निडर-साधिका को रोक नहीं सकतीं। साधना-पथ पर वे निरंतर आगे बढ़ती रहेंगी। महादेवी वर्मा कहती हैं जीवन के इस अज्ञात एवं अपरिचित सफर में अमावस्या की कालिमा-रज्जित रात्रि का निराशजन्य अंधकार भी क्यों न घेर ले, कठिनाइयों और रुकावटों के भयावह बादल भी

1. कालिमा का सागर 2. वायु 3. दिशा से भटकी हुई 4. प्रकाश का जल

घिरकर रिमझिम करते काजल के समान काले आँसुओं की वर्षा क्यों न करें, मैं सभी संकटों का सामना करती हुई इस कष्टमय पथ पर एकाकी और अनंत यात्रा करूंगी। निरंतर आगे बढ़ती रहूंगी।

महादेवी के अनुसार वे कोई और होंगे जो कायरों और भीरू-साधकों की तरह मार्ग की बाधाओं से विचलित होकर साधना-पथ पर चलना छोड़ देते हैं, या जिनकी आँखों की ज्योति इन विपत्तियों को देख फीकी पड़ जाती है और पुतलियां धूमिल तथा रुखी होने लगती हैं। प्रियतम की शाश्वत-वेदना से मेरी आंखे तो सदैव आर्द्र (नम) रहती हैं। विरह की यह पीड़ा तो ईश्वर का रहस्यावादी वरदान हैं। प्रेम के अभाव और शुष्कता वाली आंखें तो कोई और ही हैं अर्थात् किसी और की ही होंगी—मेरी नहीं। मैं तो इस साधना पथ की वह निडर-पथिक हूं जो अश्रुपूरित-सजल-दृष्टि में भी अटूट-आत्मविश्वास रखती है। मैं तो प्राण दीपक जलाती हूं जो निराशा के क्षणों में भी आकाश में टिमटिमाते सैकड़ों सितारों को देख जीवन में हर्ष और उल्लास का अनुभव कर अडिग-अकम्पित प्रज्जवलित होता रहता है। संकल्प रूपी दीपक का आत्मविश्वास रूपी प्रकाश मेरी आंखों में विद्यूत के समान चमकता रहता है।

विशेष : महादेवी वर्मा का साधनात्मक-रहस्यवाद इन पंक्तियों में चित्रित है।
जीवात्मा की अचर एवं अनंत-साधना में कवयित्री का आत्मविश्वास एवं दढता का स्वर सराहनीय है।
छाया, अमा, कज्जल, अश्रुआ तथा घिरा घन आदि में प्रतीकों का सुंदर प्रयोग हुआ है।
और होंगे नयन सूखे .... पलक रूखे में भेदकातिशयोक्ति अलंकार है।
"पथ" और "प्राण" दोनों ही ओजस्वी शब्द हैं। कवयित्री ने अहं को स्पृहणीय बनाकर विरही साधिका के स्वाभिमान और दृढ़ता की मनोहर अभिव्यक्ति की है।

अन्य होंगे चरण .... में स्वर्ण बेला।

प्रसंग एवं संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां .... महादेवी .... विरहिणी साधिका .... चुनौती .... विपदाएं .... ओज भरा स्वर ....।

व्याख्या : महादेवी वर्मा को साधना-पथ पर चलने वाले अपने चरणों पर अटूट विश्वास .... कठिनाइयों से विचलित नहीं .... संकल्पों को त्यागते नहीं .... निराश .... हो लौटते नहीं .... कांटों से घबराकर .... संकल्प ....। संसार के नवनिर्माण को .... आतुर ....। दुख का व्रत तो स्वेच्छा से ....। ये पद तो अमरत्व की ओर .... प्रिय दर्शन की ओर .... पथ निर्माण ....। स्नेह ज्योति से निराशा में आश ....।

विशेष : भाव में रहस्यवादी और शैली में छायावादी ....। "शूल" पीड़ा का, रुकावट का ....। अटूट-साधन स्वर ....। रूपक अलकार ....।
.....................।

दूसरी होंगी कहानी .... का एक मेला।

प्रसंग एवं संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां छायावादी काव्य-भावना के अंतर्गत वर्मा की कविता .... हैं। आस्था और विश्वास की प्रतिमा बनी, दृढ़ता का चौला पहने महादेवी ....।

व्याख्या : कवयित्री कहती हैं कि वो कोई और कहानी होगी जिसका मूल कथ्य और प्रतिध्वनि भी मिट गई हो, नष्ट हो गई हो। मेरी कहानी के शब्द तो ब्रहम हैं और वह अमर है। धूल-माटी में उसके अवशेष मिलकर नष्ट हो गए हों वह कोई और ही कहानी होगी। मेरी नहीं हो सकती। अटूट एवं अगाध विश्वास है महादेवी का। मेरी साधना की कथा तो अनश्वर है। मेरी साधना के स्वर न तो शून्य में मिल सकते हैं और न ही अस्तित्व की धूल में। आग मिलन की जो प्रलन आने वाली है, उससे मैं चकित या विस्मित नहीं। मैं निडर हूं। मैंने तो समुद्र को किनारों को बांध लिया है। मेरा हर शब्द मोती है और मेरी आंख से गिरने वाला हर अश्रु भी मोती। मोतियों की दुकान और विरह-ज्वालाओं का मेला रखने वाला भला मौत से क्यों डरेगा। मेरी श्वास में ही अग्नि बसी है फिर भला वो मुझे क्या जलाएगी मेरी इन अश्रुलड़ियों और ज्वाला-पुंजों को देखकर तो स्वयं संसार विस्मित है। मैं अपने साधना-पथ से विचलित नहीं हो सकती। मुझे तो सृष्टि करनी है।

विशेष : विरह-व्यंजना की मार्मिक अभिव्यक्ति का चित्रण है।
मोतियों, हाट तथा चिनगारियों में लाक्षणिक प्रयोग का अद्भुत सौंदर्य है।

भावानुकूल भाषा में ओज गुण प्रधान है।
प्रलय का मानवीयकरण कवयित्री की सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है।

4 ह्रास का मधुदूत .... रहने दो अकेला।

प्रसंग एवं संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां ....
....।

व्याख्या : महादेवी कहती हैं हे प्रियतम आप चाहे अपनी प्रसन्नता के द्योतक वसंत को सौरभ सहित भेजें उससे मेरा जीवन आनंदमय हो जाए या फिर अपने भौंहो की वक्रता से बरसते रोष का सूचक पतझड़, मैं दोनों का समभाव से स्वागत करुंगी। मेरा चित्त स्थिति प्रज्ञ की भांति शांत और स्थिर बना रहेगा। मेरा दृढ़ हृदय वेदनाजन्य अथाह अश्रु प्रवाह को तथा मिलन के सुख स्वप्न रूपी कमल (शतदल) को समान रूप से अंगीकार करेगा। मिलन तो एकाकी ही होता है क्योंकि साधक का अस्तित्व तो पूर्णत: साध्य में विलिन हो जाता है, परंतु विरह में यह दुकेला रहता है अर्थात् द्वैत बना रहता है। यही कारण है कि विरह मिलन से अधिक वांछनीय है। ईश्वर दूत लेने भी आएगा तो महादेवी वेदना का जल (अर्घ्य) लेकर उसका स्वागत करेंगी। अत: हे आराध्य तुम मुझे अकेले ही रहने दो क्योंकि इसी विरह में संयोग है। मैं अपने संकल्प और प्राण-शक्ति के सहारे निरंतर आगे बढ़ती रहूंगी। मुझे मिलन की राह नहीं पूछनी। मेरा पंथ अपरिचित ही रहने दो।

विशेष : कवयित्री द्वैत मिटाकर अद्वैत नहीं चाहती।
वेदना युक्त अश्रु-जर्क (अर्घ्य) एवं कमल-पुष्प (नैत्र) से आराध्य का स्वागत करना चाहती हैं। ईश्वर पर यही चढ़ाये जाते हैं।
ह्रास का मधुदूत, रोष की भ्रूभंगिमा तथा स्वप्न शतदल आदि में सुंदर लाक्षणिक प्रयोग हैं।
यहां भाषा में माधुर्य-गुण की छटा देखी जा सकती है।
रूपक अलंकार का सुंदर प्रयोग है।

कविता 2

1 यह मंदिर का दीप .... तक गलने दो।

प्रसंग एवं संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां साधना-पथ की चिर-साधिका महीमानी महादेवी वर्मा के वेदना-गीत से ली गई है। कवयित्री गीत के निष्कम्प और खामोश जलने की बात ही नहीं करती उसके निरंतर साधना-रत रहने कर उद्घोष भी करती है। शरीर रूप मंदिर के प्राण रूपी दीपक को साधना एवं संकल्प रूपी स्नेह से निरंतर जलाये रखने की विनती करती हुई महादेवी कहती है–

व्याख्या : इस शरीर रूपी मंदिर में प्राण रूपी दीपक जल रहा है। इस साधना-पथ में चिर-साधक को चुपचाप जलते रहने दो। इसके इस प्रकाशित एवं प्रज्जवलित होने में बाधा न डाले। महादेवी के प्राण आराध्य (प्रियतम) के विरह में निरंतर जलते रहते हैं। चुपचाप तथा खामोश साधना-रत ये प्रज्जवलित प्राण निराशा के अंधकार को मिटाने के अथक-प्रमाण में लीन हैं।

कवयित्री कहती हैं कि मंदिर में आरती एवं पूजा के समय दीपक के साथ-साथ चांदी का शंख, घड़ियाल, सोने की बांसुरी तथा वीणा आदि अन्य कई बाद्य यंत्र भी होते हैं जो एक साथ मिलकर मनमोहक स्वर और लय का वातावरण तैयार करते हैं। अर्थात् इस संसार के नाना-विद्या शोरगुल में, जबकि चारों तरफ एक व्यस्तता एवं भागदौड़ है, मंदिर की दीवारों के पत्थर भी मुस्करा रहे हैं, एक अकेला दीपक (प्राण) है जो इस शोर-गुल के बीच होकर भी इससे पृथक है, खामोश है, नीरव है और निरंतर जलकर मन रूपी आंगन के अंधकार को मिटाने का प्रण-साधे है। अत: इस प्राण दीपक को चुपचाप तब तक जलने दो, जब तक मैं अंधेरे को मिटाकर विजय हासिल न कर ले।

विशेष : प्राण-दीपक, शरीर-मंदिर आदि की सुंदर अभिव्यक्ति भाव को प्राणवान बनाती है।

- महादेवी निरंतर साधना रत रहकर तथा स्वयं को जलाकर प्रकाश-विकीर्ण करने का संकल्प दोहराती है।
- रूपक अलंकार एवं लाक्षणिक प्रयोग का सौंदर्य कवयित्री के दृश्य विधान का सूचक है।
- प्रतीकात्मक-शैली अंधकार एवं, प्रकाश को अर्थ-गांभीय देती है।
- शूल्य गलाने को गलने दो में संकल्प-शक्ति का तथा आत्मदान का दृढ़ भाव है। इसी प्रकार ''इष्ट अकेला'' में भी निराशा नहीं, आत्मविश्वास है।
- भाषा अर्थ-वहन करने में पूर्णत: लक्षण है।

2. चरणों से चिह्नित .... में पलने दो।

प्रसंग एवं व्याख्या : प्रस्तुत पंक्तियां ....जीवन दीपक की अथक यात्रा .... मंदिर ....परिवेश .... पूजा अर्चन के सभी तत्वों की .... कहती हैं

व्याख्या : मंदिर के बरामदे की भूमि .... सुनहरी .... जो चरण-चिन्हों से .... नत-मस्तकों के चंदन-तिलक से ....। प्रागण में बिखरे पुष्प .... पूजा के सफेद अक्षत .... धूप, अर्घ्य तथा नैवेध .... प्रज्जवलित दीपक के अभाव में ये .... अंधकार .... अत: सभी पूजा की वस्तुओं को .... प्रकाशित .... दीपक को जलने दो ....।

विशेष : "प्रणत शिरो के अंक दिये चंदन की दहलीज में महादेवी की अद्भुत कल्पना शक्ति का परिचय मिलता है।

- पूजा के उपयोग की सभी-सामग्री का सुंदर ढंग से प्रयोग एवं बखान कर अपनी बात स्पष्ट की है।
- सबकी चर्चित कथा को प्रतिनिधित्व देती है "लौ" और यही लौ लगन, संकल्प तथा नैरंतर्य का प्रतीक है।
- भाषा भावानुकूल गांभीर्य एवं अर्थ-नैतिहय के लिए है।

3 पल के मनके .... से ढ़लने दो।

प्रसंग एवं संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां ....।

व्याख्या : महादेवी कहती हैं कि यह मंदिर में जलता, खामोश-यात्रा करता साधक रूपी प्राण-दीपक अपना दायित्व निभा रहा है। निराशा के अंधकार को मिटाने की जिद्द लेकर यह लगातार जलते रहने वाला कर्मयोगी इस गहन अंधियारे भरी रात्रि में, जबकि संसार रूपी पुजारी भी पथ रूपी माला मनको को फेरता-फेरता सो गया है, अपना कर्त्तव्य पूरा कर रहा है। जागरण-गीत की तरह उद्‌बोधित होने वाला यह प्राण-दीपक, बाध-यंत्रों के खामोश हो जाने पर भी, आरती की ध्वनि एवं सभी स्वरों-प्रतिध्वनियों के दीवारों में समा कर शांत हो जाने पर भी निरंतर और चुपचाप जल रहा है। सोई हुई चेतना को जगाने का अथक-प्रमाण कर रहा है। ऐसे में जब जीवन श्वासों की समाधि सा निर्जीव हो गया है अर्थात् चारों ओर नीरवता और सुनसान का वातावरण है। साधना-पथ काली-स्याही में डूबा समुद्र सा बन गया है। निराला ने अपना जाल बिछा दिया है। संसार की प्रत्येक वस्तु, और यहां तक की कण-कण की चेतना निस्पंद हो गई है —ऐसे भयावह और संकट भरे समय में प्राणों के इस नीरव-दीपक को जले रहकर फिर से नई चेतना का संचार करने दो। इनमें प्राण-रूपी ज्वाला का संचार करने दो।

विशेष : पल के मनके, विश्व-पूजारी, मीन-सागर ....

लाक्षणिक प्रयोग .... भाषा ....

4 झंझा है .... तक चलने दो।

प्रसंग एवं संदर्भ : ....

व्याख्या : वायु की दिशा भूलकर .... अंधड़ बनकर ....। रात की मूर्च्छा और गहरी ....। अत: प्रकाश (आशा) का यह छोटा सा पहरेदार .... प्राण रूपी यह दीपक ही .... प्रिय का पुजारी ....। सुबह होने तक यह .... दायित्व .... प्रदीपक .... निरंतर ....। प्रकाश के जल से ....। सायंकाल का यह दूत .... सुबह की बागडोर संभालकर ....।

विशेष : ....

पूरी आशा है कि अब आप महादेवी की कविताओं की मूल चेतना को समझ गए होंगे। अब आपको इनकी कविताओं की व्याख्या करने में भी कोई असुविधा न होगी। अब आप स्वयं सप्रसंग व्याख्या का अभ्यास भी कीजिए।

23.10 सारांश

इस इकाई में आपने छायावादी की अंतिम आधार-साम्य महीयसी महादेवी वर्मा के युग-परिवेश, जीवन, कृतित्व एवं उनकी रचनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त की। इसके बाद महादेवी के काव्य की अंतर्वस्तु का अध्ययन करते हुए उनकी प्रेमानभूति, वेदनानुभूति, प्रकृति वर्णन, सौंदर्यनुभूति, मूल्य-चेतना, तथा कथ्य-संवेदना के विस्तार के भी समझा। इसके साथ ही रचना-विधान के बिम्ब, प्रतीक, अप्रस्तुत विधान भाषा तथा काव्य रूप आदि के सौंदर्य का अध्ययन करते हुए महादेवी की दो कविताओं की सप्रसंग व्याख्या करना भी जाना। छायावाद का यह खंड यहीं समाप्त होता है। हमें विश्वास है कि अब आप "छायावाद" को पूरी तरह समझ गए होंगे।

23.11 शब्दावली

गरिमामंडित : गौरव से सुशोभित।

पर दुःख कातरता : दूसरों के दुख से दुःखी होने वाला।

आत्मपरक कविता : स्वयं तक (अपनी आत्मा तक) केन्द्रित रहने वाली कविता।

पार्श्वभूमि :आसपास या निकट की पृष्ठभूमि।

अंतर्मुखी व्यक्तित्व : ऐसा व्यक्तित्व जो अपने भीतर की ओर उन्मुख रहता है। अर्थात् कम बोलने वाला।

अतृप्त लालसा : ऐसी लालसा या इच्छा जिसकी तृप्ति न हुई हो।

आर्द्र-क्रंदन : रूदन और करुणा से भरा हुआ शोर।

प्राज्जवलता : लालसा एवं सुबोधता से युक्त।

अमांसक सौंदर्य : वह सौंदर्य जिसमें शारीरिकता की बू नहीं होती अर्थात् भीतरी सौंदर्य।

वायवीय-वातावरण : ऐसा वातावरण जो हवामय जान पड़ता हो अर्थात् हवाई।

पार्थिव : पृथ्वी संबंधी या पृथ्वी से उत्पन्न।

प्रणायानुभूति : प्रेम संबंधी अनुभूति।

अनिर्वचनीय सौंदर्य : ऐसा सौंदर्य जिसका बखान ही न किया जा सके अर्थात् अलौकिक सौंदर्य।

समात्मभाव : एक आत्मा का दूसरी आत्मा के अनुकूल भाव रखना या महसूस करना।

इंद्रीयातीत : इन्द्रियों से परे।

अन्योन्याश्रित : परस्पर एक दूसरे पर आश्रित।

संस्कृत गर्भित : जिसमें संस्कृत भाषा का पुट अधिक हो।

चित्रोद्‌धृत-शैली : ऐसी शैली जिसमें वर्णन करते समय एक चित्र सा उद्‌धृत हो जाए।

23.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

महादेवी, सम्पादक डॉ. परमानंद श्री वास्तव : लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

महादेवी : नया मूल्यांकन, डॉ. गणपति चंद्रगुप्त : भारतेन्दु भवन, शिमला

साहित्यकार महादेवी. हर्षनन्दिनी भाटिया, कन्दर्प प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली

महीयसी महादेवी, गंगाप्रसाद पांडेय, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
छायावाद के आधार स्तम्भ, गंगाप्रसाद पांडेय, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद
महादेवी वर्मा के काव्य में सौंदर्य भावना, डॉ. गोविंद पाल सिंह लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद।

23.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 1) √
2) ×
3) √
4) ×
5) √

2 1) महीयसी महादेवी और आधुनिक युग की मीरा
2) "चांद" पत्रिका
3) "साहित्य का संसद", प्रयाग में
4) हिंदी, संस्कृत, पालि, प्राकृत, बंगला, गुजराती, उर्दू तथा अंग्रेजी
5) चित्रकला, रेखाचित्र, संस्मरण, निबंध, अनुवाद, गीत तथा संगीत आदि

3 1) 1907 ई.
2) 9 वर्ष
3) सन् 1942 में
4) सन् 1962 में
5) मैथिलीशरण गुप्त

बोध प्रश्न 2

1 महादेवी की कविता में समग्रत: प्रियतम मिलन की अमर-प्रतीक्षा का अलौकिक-आनंद मिलता है। मिलन और विरह के दो किनारों की भी निरंतर बहते रहने वाली महादेवी आंसू के कणों को अपना पाथेय बना कर चलती चली जाती है। उनके विरह रूपी जीवन के मूल में जो जल हैं वह अश्रुजल है। "विरह का जलजात जीवन" कहकर वे कभी "नीर भरी दुख की बदली" बन जाती है तो कभी आराध्य की प्रतीक्षा में इन नयनों के अश्रुनीर का अर्घ्य चढ़ाती हैं। विरह-साधिका महादेवी मिलन का तिरस्कार करती हैं। मिलन तो अद्वैत का सूचक है और महादेवी द्वैत बनाये रखना चाहती हैं। वे "प्राणों" के अंतिम पाहुन का आजीवन इंतजार करने वाली अमर साधिका हैं। उनका विरह जीवन की मौलिक अनुभूति की मार्मिक एवं प्रामाणिक अभिव्यक्ति है।

2 आराध्य को प्रकृति में और प्रकृति को आराध्य में देखने-समझने वाली महादेवी मानवीयकरण की कला में परम-निपुण है। "प्रिय सांध्य गगन मेरा जीवन" या "मैं नी भरी दुख की बदली" जैसे कई उदाहरण हैं जिनमें प्रकृति को वे अपने व्यक्तित्व में समाहित करके देखती हैं और मन:स्थिति की आयत-स्नेहिल-अभिव्यक्ति करती हैं। "मैं बनी मधुमारा आंधी" कहकर वे प्रकृति से तादात्म्य स्थापित कर लेती है। "बसंत रजनी" को वे नायिका बनाकर क्षितिज से उतरने का निमंत्रण देती है। उनकी रात्रि नायिका तारों के बेणी-बंधन तथा चंद्रमा के शीश-फल से सुसज्जित रहती है। प्राकृतिक प्रतीकों और बिम्बों का अद्भुत प्रयोग तथा निर्माण महादेवी की कलात्मक समझ का ही परिचायक है। अत: प्रकृति महादेवी की भावनाओं की सुदृढ़ पृष्ठभूमि बनकर अनंत-मात्रा में पूरा साथ देती है।

3 महादेवी की काव्य-संवेदना में जो भाव, शक्ति बनकर सम्पादित होते हैं उनके मूल में लौकिक प्रेमानुभूतियों के साथ रहस्यात्मक आध्यात्मिकता भी घुली-मिली है। अखंड चेतन को पष्प व्यक्तित्व के रूप में रखने वाली महादेवी भारतीय नारी के आत्म सम्मान एवं उसकी श्रद्धेय पवित्रता को कविता की ऊर्जा बना कर उसमें त्याग और तप का आलोक भर देती हैं। उनके संकल्प की अनुभूति भारतीय नारी के स्नेह भरे आत्मदानी-व्यक्तित्व को, अंधकार से टकराने वाली महाशक्ति को तथा दीपक के प्रकाश पुंज की भांति अकम्पित एवं नीरव प्रज्जवलित होते रहने वाली सांस्कृतिक चेतना को मार्मिक अभिव्यक्ति देती है। "प्यासे का जान ग्राम, झुलसे का पूछ नाम" कहकर अपने सेवा-दायित्व को निभाने वाली महादेवी का काव्य निश्चित ही शक्ति का और मूल्य वत्ता का शाश्वत काव्य है।

बोध प्रश्न 3

1 महादेवी के काव्य का मुख्य शृंगार उसका काव्य-रूप ही है और वह है सफलतम गीतिभोजन। इसी के कारण वे आधुनिक युग की मीरा भी कहलाई। उनका गीतिकाव्य एक कोमल मेघ खंड की तरह बरसता है और युक की सभी ज्वालाओं को शीतलता प्रदान करता है। यह अभिव्यक्ति का समर्थ माध्यान बनकर यहां आता है। आत्मानुभूति का चित्रांकन, स्वर संगीत और शब्द-योजना की लाभ कर संयोजन, आरोह-अवरोह का निर्वाह तथा भावानुकूल भाषा एवं शैली विधान सभी उनकी व्यापक-करुणा को शक्ति प्रदान करते हैं। निश्चित ही महादेवी का काव्य गीतिकाव्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

2 महादेवी की काव्य भाषा अनेकों गुणों एवं विशेषताओं का भंडार है। गीतोपयुक्त इस कथा कोमल भाषा में खड़ी बोली का परिष्कृत एवं काव्योचित एवं सहज ही देखा जा सकता है। नए शब्दों का सृजन, विशिष्ट अर्थ भरने की कला, लाक्षणिकता, रमणीय बिम्ब एवं प्रतीक विधान की अभिव्यक्ति, शब्द, निरूपण, वर्ण-विन्यास, नाद-सौंदर्य एवं उक्ति सौंदर्य का मार्मिक निर्वाह उनकी कविता के प्राण है। तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी तथा प्रतीक शब्दों का कौशल उन्हें संचयी-शिल्पी ठहराता है। दिरुक्ति और पुनरुक्ति के साथ अन्य अलंकारों का सुंदर प्रयोग भी उनकी भाया की प्रमुख विशेषताएं हैं।

3 महादेवी की प्रतीकात्मक-संकत भाषा ही उनकी विशिष्ट पहचान है। दीपक का प्रतीकार्य तो महादेवी की मौद्रिक देन है। इसके अतिरिक्त छायावाद के पूर्व-प्रयादित प्रतीक इंद्रधनुष, झंझा, उषा, मेघ तथा पवन आदि है तो सांध्यगगन, यामिनी, गोधूलि, वदली, वर्षा, पतवार आदि प्रतीक भी उनके काव्य-सौंदर्य को समृद्ध करते हैं। जीवन के विविध क्षेत्रों के लिए गए प्रतीक निश्चित ही महादेवी की सूक्ष्म एवं गहन कल्पना शक्ति के परिमापक हैं। इन्हीं से उनकी मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ का भी पता चलता है। प्रकृति, पुराण एवं संस्कृति के प्रतीकों के प्रति उनका विशिष्ट झुकाव रहा।

4 देखिए, अनुभाग 23.7.4

5 देखिए, अनुभाग 23.7.5

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

यू०जी०एच०आई०-02
हिंदी का ऐच्छिक पाठ्यक्रम

खंड
6
प्रगतिवाद

इकाई 24
प्रगतिवाद: स्वरूप और विकास 5
इकाई 25
केदारनाथ अग्रवाल 19
इकाई 26
नागार्जुन 38

यह हिंदी के ऐच्छिक पाठ्यक्रम 2 (हिंदी काव्य) का दूसरा खंड है। इससे पहले का खंड 'छायावाद' से संबंधित था, जिसमें आप छायावादी कविता के स्वरूप और प्रकृति के बारे में तथा छायावाद के प्रमुख कवियों के बारे में अध्ययन कर चुके हैं।

इस खंड में आप हिंदी काव्य की प्रगतिशील काव्यधारा और दो प्रगतिशील कवियों का अध्ययन करेंगे। खंड की पहली इकाई में हिंदी के प्रगतिवाद काव्य आंदोलन के स्वरूप और विकास का परिचय दिया गया है। इससे आप प्रगतिवाद के बारे में पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर सकेंगे और प्रगतिशील कवियों की कविताओं को समझने में यह इकाई सहायक होगी।

इकाई दो,प्रगतिशील कवि केदारनाथ अग्रवाल के बारे में है। उनके,जीवन परिचय, पृष्ठभूमि के बाद उनके काव्य की सामान्य विशेषताओं की चर्चा की गयी है जिससे उनकी कविताएँ विश्लेषित करने में आपको मदद मिलेगी। अंत में उनकी दो कविताएँ काव्यपाठ के लिये इकाई में संकलित हैं। उनकी कविता के एक अंश की व्याख्या भी की गयी है। एक पद्यांश की व्याख्या आप करेंगे।

इससे अगली इकाई कवि नागार्जुन पर है। इसमें भी आप कवि के जीवन परिचय, पृष्ठभूमि के बाद काव्य की विशेषताएँ पढ़ेंगे और काव्यपाठ के लिये दी गयी कविताओं का काव्यपाठ करेंगे। एक कवितांश की व्याख्या हमने की है। एक कवितांश की आप करेंगे। खंड के अंत में 'शब्दावली' में कठिन शब्दों और परिभाषिकों के अर्थ दिये गये हैं। बाकी कठिन शब्दों के लिये आप शब्दकोष देख सकते हैं।

इकाई 24 प्रगतिवाद : स्वरूप और विकास

इकाई की रूपरेखा

24.0 उद्देश्य
24.1 प्रस्तावना
24.2 प्रगतिवाद: पृष्ठभूमि
24.2.1 युगीन परिस्थितियाँ
24.2.2 साहित्यिक पृष्ठभूमि
24.3 प्रगतिवाद शब्द का प्रयोग और अर्थ
24.4 प्रगतिवाद की अन्तर्वस्तु
24.4.1 ऐतिहासिक चेतना
24.4.2 सामाजिक यथार्थदृष्टि
24.4.3 परिवेश और प्रकृति के प्रति लगाव
24.4.4 जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण
24.4.5 मानवीय संबंधों में समानता
24.4.6 भविष्योन्मुखी दृष्टि
24.5 प्रगतिवाद का अभिव्यंजना शिल्प
24.5.1 रूप या शिल्प
24.5.2 भाषा : काव्य भाषा (अलंकार, बिंब, प्रतीक)
24.5.3 मूर्तिविधान : ऐतिहासिक मूर्त्तता
24.5.4 छंद-लय
24.6 प्रगतिवाद के प्रमुख कवि
24.6.1 नागार्जुन
24.6.2 केदारनाथ अग्रवाल
24.6.3 शमशेर बहादुर सिंह
24.6.4 गजानन माधव मुक्तिबोध
24.6.5 त्रिलोचन
24.7 प्रगतिवाद का महत्व
24.8 सारांश
24.9 अभ्यास
24.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें
24.11 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

24.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप बता सकेंगे कि :

- प्रगतिवाद आंदोलन का क्या अर्थ है?
- प्रगतिवाद के आरंभ होने के पीछे क्या कारण रहे हैं?
- प्रगतिवाद आंदोलन की सीमा क्या है?
- प्रगतिवाद की अन्तर्वस्तु में ऐतिहासिक चेतना, वर्गचेतन प्रधान दृष्टि, और जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का क्या अर्थ है?
- प्रगतिवाद काव्य का रूप और शिल्प कैसा है? और
- प्रमुख प्रगतिवादी कवि कौन-कौन हैं?

24.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप हिंदी साहित्य में प्रगतिवाद आंदोलन के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। हम आपको यह स्पष्ट कर दें कि "प्रगतिवाद" एक साहित्यिक आंदोलन तो है किन्तु सभी "वाद"

आंदोलन के रूप में विकसित नहीं होते। जैसे "छायावाद" एक व्यापक साहित्य प्रवृत्ति है तो "प्रयोगवाद" एक काव्य प्रवृत्ति। किन्तु प्रगतिवाद एक साहित्यिक आंदोलन के रूप में ही विकसित हुआ। अतः उसे कथा साहित्य, काव्य, आलोचना अर्थात् समस्त साहित्यिक विधाओं में अभिव्यक्ति मिली। इस इकाई में हम "प्रगतिवाद" के स्वरूप और विकास की चर्चा कविता के संदर्भ में करेंगे। अतः प्रगतिवादी काव्य की सामान्य विशेषताओं को बताते हुए हम प्रमुख प्रगतिवादी कवियों का परिचय भी देंगे। आप देखेंगे कि किस प्रकार एक साहित्यिक आंदोलन पैदा होता है, कैसे उसका विकास होता है और समाज से उसका कैसा रिश्ता बनता है।

24.2 प्रगतिवाद : पृष्ठभूमि

प्रगतिवाद की पृष्ठभूमि के रूप में हम उस युग की उन परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे जिनके कारण प्रगतिवाद एक साहित्यिक आंदोलन के रूप में पैदा हुआ।

24.2.1 युगीन परिस्थितियाँ

प्रगतिवाद का उदय सन् 1930 के बाद हुआ। सन् 1930 तक विश्व में प्रथम महायुद्ध और रूस की क्रांति जैसी घटनाएँ घट चुकी थीं। रूस में ज़ारशाही के खिलाफ की गई सफल क्रांति का प्रभाव धीरे-धीरे विश्व में बाकी जगह पड़ना शुरू हो गया था। भारत में आज़ादी का आंदोलन जोर पकड़ रहा था और 1930 तक राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस में वामपंथी दल कायम हो चुका था। किसान, मजदूर आंदोलन एकजुट होकर शक्तिशाली हो रहे थे। साहित्य में प्रेमचंद "गबन" (1930) में यह उम्मीद बंधा रहे थे कि पांच-दस बरस बाद समाज और राजनीति में किसानों, मजदूरों की जगह महत्वपूर्ण होगी। सविनय अवज्ञा आंदोलन, लगान बंदी आंदोलन, किसान सभा की स्थापना की दिशा में प्रयत्न – ये घटनाएँ भारतीय समाज में हो रहे सक्रिय बदलाव को सूचित कर रहीं थीं। इसके बाद विश्व और भारत में घटने वाली प्रमुख घटनाओं (द्वितीय विश्व युद्ध से उत्पन्न संकट, बंगाल का अकाल, नौ सेना विद्रोह, हिंदुस्तान-पाकिस्तान का विभाजन, मुस्लिम सांप्रदायिक दंगे, कांग्रेस के हाथों में शासन सत्ता का आना) के बारे में डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं – "इन घटनाओं ने कमोबेश हमारी आर्थिक, सामाजिक और नैतिक स्थिति को भी प्रभावित किया। निम्न मध्य वर्ग की स्थिति पहले से भी अधिक खराब हुई और किसान मज़दूरों में भयंकर असंतोष फैला।" (आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृष्ठ 92)। इन्हीं युगीन परिस्थितियों के कारण वर्ग चेतना और वर्ग संघर्ष की भावना पैदा हुई और यही भावना प्रगतिवाद की यथार्थ दृष्टि की प्रेरक तत्व बनी तथा साहित्य में प्रगतिवाद के विकास का आधार भी।

24.2.2 साहित्यिक पृष्ठभूमि

प्रगतिवाद जब शुरू हुआ उस समय साहित्य में छायावाद एक साहित्य प्रवृत्ति के रूप में अपने विकास के बाद अब उतार पर था। यह तो आप जानते ही हैं कि कोई भी साहित्यिक आंदोलन या साहित्यिक प्रवृत्ति एकाएक प्रकट नहीं हो जाती। उसके लक्षण पहले से ही साहित्य में प्रकट होने लगते हैं। इसी प्रकार प्रगतिवाद से पहले छायावाद में सामाजिक यथार्थ की चेतना प्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त होने लगी थी। कविता कवि के मन की गुफा से बाहर निकल कर अपना यथार्थपरक सामाजिक उत्तरदायित्व महसूस कर रही थी। 1921 में निराला ने कविता लिखी: "जब कड़ी मारें पड़ीं, दिल हिल उठा"। 1929 में "परिमल" की भूमिका में निराला ने कविता की मुक्ति को मनुष्य की मुक्ति के प्रश्न से जोड़ा। छायावादी धीरे-धीरे सूक्ष्मता की ओर बढ़ता हुआ दुर्बोध होता जा रहा था। यह सही है कि छायावादी काव्य ने यदि एक ओर द्विवेदी युगीन अभिधात्मकता के विरोध में सांकेतिकता, कल्पना और भाषा के धरातल पर काव्य को गरिमा प्रदान की तो दूसरी ओर व्यक्ति और प्रकृति और प्रेयसी नारी को तथा व्यक्ति के भीतरी संसार को तथा उसके अस्तित्व के प्रश्न को भी काव्य का विषय बनाया किन्तु व्यक्ति के सामाजिक यथार्थ को वह साहित्य का विषय नहीं बना सका। पंत ने भी स्वीकार किया कि छायावाद में युग को वाणी देने की शक्ति नहीं रह गयी थी। "ग्राम्या", "युगवाणी" के पीछे नये यथार्थ की चेतना स्पष्ट है। निराला ने आगे चलकर "कुकुरमुत्ता" और "नये पत्ते" में प्रगतिवादी काव्य दृष्टि को मज़बूत आधार दिया। अतः कविता की अन्तर्वस्तु और रचनाविधान में परिवर्तन करके व्यक्ति सीमित या रहस्यमय रूमानी वृत्ति का त्याग करके छायावादी कवियों ने ही प्रगतिवाद का रास्ता तैयार किया।

24.3 'प्रगतिवाद' शब्द का प्रयोग और अर्थ

कुछ लोग प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य में विरोध करते हैं। इनका मानना है कि प्रगतिशील शब्द अधिक व्यापक है — और इसमें मानव के व्यापक सरोकार जुड़ते हैं और प्रगतिवाद शब्द केवल उस साहित्य का बोध कराता है जो मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित होकर या उसके आधार पर लिखा गया हो। वस्तुतः प्रगतिवाद और प्रगतिशील शब्द का झगड़ा कोरा बुद्धिविलास है। आज प्रगतिवाद शब्द से अभिप्राय उस साहित्यिक प्रवृत्ति से है जिसमें एकप्रकारकी इतिहास चेतना, सामाजिक यथार्थ दृष्टि, वर्गचेतन विचारधारा, प्रतिबद्धता या पक्षधरता, गहरी जीवनासक्ति, परिवर्तन के लिये सजगता और एक प्रकार की भविष्योन्मुखी दृष्टि मौजूद हो। रूप के स्तर पर प्रगतिवाद एक सीधी-सहज-तेज-प्रखर, कभी व्यंग्यपूर्ण आक्रामक काव्यशैली का वाचक है।

वैसे प्रगतिशील साहित्य अंग्रेज़ी के "प्रोग्रेसिव लिटरेचर" का अनुवाद है। अंग्रेज़ी में इस शब्द का प्रयोग 1935 ई. के आसपास हुआ जब पेरिस में "प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन" नामक संस्था का पहला अधिवेशन हुआ। हिंदुस्तान में इसके एक वर्ष बाद ही 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन लखनऊ में हुआ जिसके अध्यक्ष थे — प्रेमचंद।

प्रगतिवाद : सीमा और व्याप्ति

प्रगतिवाद का विरोध करने वाले ही उसकी सीमा यह बताते रहे हैं कि वह मार्क्सवाद का साहित्यिक रूपांतर मात्र है। पर यह सब जानते हैं कि यदि प्रगतिवाद नाम से परिचित काव्य प्रवृत्ति के महत्वपूर्ण कवियों में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, गजानन माधव मुक्तिबोध और त्रिलोचन जैसे बड़े कवि हैं तो उनका काम केवल मार्क्सवाद के सिद्धांत विवेक के जरिए नहीं चल सकता। मार्क्सवाद में उनकी आस्था जहाँ व्यापक जीवन ज्ञान में और गहरी जीवनासक्ति में सहायक हुई है वहीं वे प्रगतिवाद को समर्थ काव्य प्रवृत्ति के रूप में विकसित करने के लिये, यथार्थ के नये रूपों की समझ के अनुरूप, नयी काव्य शैली का विकास करते रहे हैं।

वैसे एक साहित्यिक आंदोलन के रूप में प्रगतिवाद का इतिहास मोटे तौर पर 1936 से शुरू होने के बाद के लगभग बीस वर्षों का इतिहास है किन्तु यह "साहित्य में स्वस्थ सामाजिकता, व्यापक भावभूमि और उच्च विचार के निरंतर विकास का इतिहास है, जो न केवल राजनीतिक जागरण से आरंभ होकर क्रमशः जीवन की व्यापक समस्याओं की ओर, आदर्शवाद से आरंभ होकर क्रमशः यथार्थवाद की ओर और यथार्थवाद से आरंभ होकर क्रमशः स्वस्थ सामाजिक यथार्थवाद की ओर अग्रसर होता जा रहा है"। (आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृष्ठ 84)।

अतः व्यापक अर्थों में प्रगतिवाद न स्थिर मतवाद है न स्थिर काव्य रूप। उसमें निरंतर विकास हुआ है। आज प्रगतिशीलता के व्यापक अर्थ में ऐतिहासिक चेतना, जीवन विवेक, जीवनानुभवों के विस्तार, यथार्थ के मूल रूपों की समझ, जीवनधर्मी सौन्दर्यबोध, प्रकृतिबोध का उल्लेख किया जाता है, फिर भी जीवन को देखने की यथार्थवादी दृष्टि विशेष अर्थ में मार्क्सवादी दृष्टि को यहां प्रमुखता प्राप्त है। प्रगतिवाद के विकास में अपना योगदान देने वाले परवर्ती कवियों में केदारनाथ सिंह, धूमिल, कुमार विमल, अरुण कमल, राजेश जोशी के नाम उल्लेखनीय हैं।

बोध प्रश्न 1

सही उत्तर पर चिह्न लगाइये।

1) प्रगतिवाद एक ....
   क) प्रवृत्ति है
   ख) आंदोलन है

2) प्रगतिवादी साहित्यिक आंदोलन ......
   क) विदेशी विचारधारा का प्रतिफलन है।
   ख) युगीन परिस्थितियों की देन है

3) प्रगतिवाद किसे कहते हैं, चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

24.4 प्रगतिवाद की अन्तर्वस्तु

प्रगतिवाद की अन्तर्वस्तु में ऐतिहासिक चेतना अर्थात् अपने समय, अपने युग की समझ, सामाजिक यथार्थदृष्टि जिसे वर्गचेतन प्रधान दृष्टि भी कहा जाता है तथा अपने परिवेश और प्रकृति के प्रति लगाव, जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण प्रमुख बिन्दु हैं। इसके अतिरिक्त प्रगतिवादी कवि मानवीय संबंधों में समानता का पक्षधर है। वर्ग विभाजित समाज में वो परिवर्तन की भी कल्पना करता है अतः भविष्य के प्रति वो आशावान है। प्रगतिवाद की अन्तर्वस्तु की इन विशेषताओं को, आइये विस्तार से समझें।

24.4.1 ऐतिहासिक चेतना

प्रगतिवादी काव्य की अन्तर्वस्तु में ऐतिहासिक चेतना महत्वपूर्ण है। प्रगतिवाद कवि को कालातीत होने की छूट नहीं देता। अपने समय का विवेक, अपने समय की राजनीतिक, सामाजिक वास्तविकता का बोध यही ऐतिहासिक चेतना है। प्रगतिवाद में कविता और राजनीति का जो घनिष्ठ संबंध दिखाई देता है वह इसी चेतना का परिणाम है। "शासन की बन्दूक" नागार्जुन की प्रसिद्ध कविता है। इसमें सत्ता द्वारा किए जा रहे बर्बर दमन का चित्र है और कवि में पैदा हुई विद्रोह भावना का भी संकेत है। यह दमन यदि निश्चित ऐतिहासिक समय का संकेत करता है तो विद्रोह भाव भी एक समय-विशेष की सूचना देने वाला है।

खड़ी हो गयी चांपकर कंकालों की हूक
नभ में विपुल विराट सी यह शासन की बन्दूक
उस हिटलरी गुमान पर सभी रहे हैं थूक
जिसमें कानी हो गयी शासन की बन्दूक।

सत्य स्वयं घायल हुआ, गयी अहिंसा चूक
जहां तहां दगने लगी शासन की बन्दूक
जली ठूंठ पर बैठ कर गयी कोकिला कूक
बाल न बांका कर सकी शासन की बन्दूक।

वह तानाशाही व्यवस्था अपने ही समय की है जिसके आगे लम्बे संघर्ष से प्राप्त मूल्य (अहिंसा/सत्य) व्यर्थ हो गये हैं। कोकिला भी इसी अपने समय की है जो दमनचक्र का प्रतिरोध करती है – वह जली ठूंठ पर बैठकर कूकती है अर्थात् दमन चक्र की धज्जियाँ उड़ाती है। मुक्तिबोध जैसे कवि के यहाँ यह ऐतिहासिक चेतना अधिक सघन जटिल होकर आती है।

24.4.2 सामाजिक यथार्थ-दृष्टि

प्रगतिवादी कवि के पास सामाजिक यथार्थ को देखने की विशेष दृष्टि होती है। एक **वर्गचेतन प्रधान दृष्टि**। नागार्जुन यदि दुखरन झा जैसे प्राइमरी स्कूल के अल्पवेतनभोगी मास्टर का यथार्थ चित्र अंकित करते हैं तो सामाजिक विषमता के यथार्थ को ध्यान में रखते हुए इस सरल यथार्थ को कविता में व्यक्त करने के लिए भी यथार्थ रूपों की समझ जरूरी है। कवि का वास्तव बोध और वस्तुपरक निरीक्षण दोनों पर ध्यान जाना चाहिए।

घुन खाये शहतीरों पर की बारह खड़ी विधाता बाँचे
फटी भीत है छत चूती है आले पर बिसतुइया नाचे
बरसा कर बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट में पाँच तमाचे
इसी तरह से दुखरन मास्टर गढ़ता है आदम के साँचे।

नागार्जुन जैसे प्रगतिशील-यथार्थवादी कवि की दृष्टि सामाजिक यथार्थ के अनेक रूपों की ओर जाती है। कभी सामाजिक यथार्थ का वह भयानक रूप सामने आता है जो बहुत अधिक विक्षुब्ध कर जाता है। यह प्रखर सात्विक क्रोध भी ध्यान देने योग्य है – (सामाजिक विषमता से पैदा होने वाली पीड़ा पर ध्यान जाना चाहिए)।

कहना न होगा कि प्राचीन मुक्तकों से प्रगीत काव्य को भिन्न समझना चाहिए। इसका कारण है कि प्रबंध काव्य और मुक्तक काव्य से भिन्न गीतिकाव्य की एक समृद्ध परम्परा निरन्तर मिलती है। गीति काव्य का मूल स्रोत जनता के बीच स्वतः स्फूर्त, आत्माभिव्यक्ति प्रधान, संगीतमय मनोराग हैं जो चिरकाल से जनता में प्रचलित लोग गीतों के रूप में रहे हैं। किसी भी देश की मूल आन्तरिक लय को ठीक-ठीक समझने के लिए इन गीतों पर ध्यान देना आवश्यक है। तुलसी की "विनय पत्रिका" कबीर की "रमैनी" सूर का "सूरसागर" और मीरा के पद इस दृष्टि से दर्शनीय हैं।

आधुनिक हिन्दी कविता में प्रगीत मुक्तकों (lyrics) का प्रचार प्रसार पश्चिम के अनुकरण पर बढ़ा है। मैथिलीशरणगुप्त के "साकेत" की चर्चा में आचार्य शुक्ल ने कहा है कि उसकी रचना उस समय हुई जब उनकी प्रवृत्ति देखा देखी अंग्रेजी ढंग के फुटकल प्रगीत काव्य (lyric) की ओर हो चुकी थी। हिन्दी के छायावाद की मूल प्रवृत्ति प्रगीतों की ओर है और प्रगीतों के भेदों-प्रभेदों पर कवियों ने मूल ध्यान केंद्रित किया है।

केवल पद्यबद्ध अथवा सर्गबद्ध होने से ही कोई काव्य प्रबंध काव्य नहीं हो जाता। क्योंकि इतिहास, पुराण, दर्शन और शास्त्र के ग्रन्थ भी पद्यबद्ध तथा सर्गों में विभक्त होते हैं, किन्तु वे काव्य नहीं कहलाते। काव्य कहलाने के लिए उनका रसात्मक होना बहुत आवश्यक है। प्रबन्धात्मक कथाएँ भी यदि अनलंकृत, अरसात्मक या इतिवृत्तात्मक हों तो उन्हें काव्य नहीं कहा जा सकता। डा. शंभूनाथ सिंह के अनुसार "प्रबंध काव्य कथा काव्य के अधिक निकट है क्योंकि दोनों में अलंकृत शैली और रसात्मक कथा होती है, किन्तु इन दोनों काव्य रूपों में भी उद्देश्य, दृष्टिकोण और विषयवस्तु संबंधी मौलिक भेद होता है। इन दोनों काव्य रूपों में जितनी बाह्यः समानता दिखाई पड़ती है, उनकी अंतरात्मा में उतना ही अंतर भी है" रामचन्द्र शुक्ल ने प्रसंगात लिखा है "प्रबंध काव्य में मानव जीवन का पूर्ण दृश्य होता है। उसमें घटनाओं की संबद्ध श्रृंखला और स्वाभाविक क्रम के ठीक-ठीक निर्वाह के साथ हृदय को स्पर्श करने वाले उसे नाना भावों का रसात्मक अनुभव कराने वाले प्रसंगों का समावेश होना चाहिए। इतिवृत्त मात्र के निर्वाह से रसानुभव नहीं कराया जा सकता"। इस परिभाषा से प्रबंध काव्य और इतिवृत्तात्मक कथासाहित्य–धर्मकथा, सकलकथा, खंडकाव्य आदि का भेद तो स्पष्ट हो जाता है, पर प्रबंध काव्य और रसात्मक कथाकाव्य का मौलिक भेद स्पष्ट नहीं होता है। संस्कृत के आचार्यों में केवल रुद्रट ने इस भेद की ओर ध्यान दिया है और स्पष्ट रूप में प्रबंध के भेद–प्रबंध काव्य और कथा आख्यायिका निर्दिष्ट किए हैं और कथाकाव्य की रोमांसिकता, उसके प्रेमाख्यानक स्वरूप तथा उसके कथा शरीर के जटिल विधान की ओर संकेत कर दिया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रकार के रोमानी कथाकाव्य से भिन्न जो रसात्मक प्रबंध हों, उन्हें ही प्रबंध काव्य कहना चाहिए।

35.2.3 प्रबंध काव्य की विशेषताएँ

भारतीय काव्यशास्त्र में प्रबंध काव्य को परिभाषित करने का प्रयत्न प्रायः नहीं हुआ है लेकिन उसके स्वरूप के विश्लेषण का प्रयास किया गया है। सबसे पहले वामन ने मुक्तक को अनिबद्ध तथा प्रबन्ध को निबद्ध कहा है और यह विश्लेषण अत्यंत सार्थक है–"अनिबद्ध मुक्तक निबद्ध प्रबन्ध रूपमिति प्रसिद्धिः।" निबद्धता से तात्पर्य है कथा का बंधन और यह प्रबंध के अस्तित्व के लिए पहली शर्त है। कथा सूत्र में बँधे रहने के कारण छन्दों का पूर्वापर क्रम से निबद्ध रहना भी स्वतः सिद्ध हो जाता है इस प्रकार प्रबन्ध काव्य को निबद्ध मान लेने पर उसके मूलभूत तत्वों का उसमें अपने आप समाहार हो जाता है। भोज ने प्रबन्ध काव्य के स्वरूप का अपेक्षया विस्तार से विश्लेषण किया है, किन्तु प्रबन्ध काव्य को महाकाव्य मान लेने के कारण यह सारा विश्लेषण महाकाव्य का होकर रह गया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रबन्ध काव्य के लिए इतिवृत्त को स्वीकार करते हैं–"रसानुकूल परिस्थिति तक श्रोता को पहुँचाने के लिए बीच-बीच में घटनाओं के सामान्य कथन या उल्लेखमात्र को ही शुद्ध इतिवृत्त की गति इस ढंग से होनी चाहिए कि मार्ग में जीवन की ऐसी बहुत सी दशाएँ पड़ जाएँ जिनमें मनुष्य के हृदय में भिन्न-भिन्न भावों का स्फुरण होता है और जिनका सामान्य अनुभव प्रत्येक मनुष्य स्वभावतः कर सकता है" "जायसी ग्रंथावली" भूमिका। शुक्लजी ने इतिवृत्त के अतिरिक्त प्रबन्धकाव्यों में उसके विन्यास पर भी उतना ही बल दिया है। उन्हें, प्रबन्ध काव्य में कथा के वर्णन के प्रसंग में जीवन के विविध पक्षों आंतरिक एवं बाह्य–का चित्रण अभीष्ट है।

रखता है। गजानन माधव मुक्तिबोध के यहाँ अंधकार,संकट, निराशा और भय के बिंब बार-बार आते हैं पर वहीं सार्थक भविष्य की आकांक्षा भी अभिव्यक्ति प्राप्त करती है –

आत्म विस्तार यह
बेकार नहीं जायेगा
ज़मीन में गड़ी हुई देहों की खाक से
शरीर की मिट्टी से, धूल से
खिलेंगे गुलाबी फूल।
सही है कि हम पहचाने नहीं जाएँगे।
दुनिया में नाम कमाने के लिए
कभी कोई फूल नहीं खिलता है
हृदयानुभव-राग-अरुण
गुलाबी फूल, प्रकृति के गन्ध-कोष
काश, हम बन सकें।

(एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्मकथन)

24.4.5 मानवीय संबंधों में समानता

इसे भी स्पष्ट अर्थ में देखना चाहिए। बिना भेद किए सभी मनुष्यों के प्रति प्रेम – यह प्रगतिवादी कवि को स्वीकार्य नहीं है। शोषक शोषित वर्गों का भेद उपेक्षणीय नहीं है। पर व्यापक अर्थ में मानवीय संबंधों में समानता उसके लिए आदर्श है। "नगई महरा" काव्यनायक हो सकते हैं। देवी सरस्वती भद्रकुलीन विद्वानों के यहाँ ही नहीं, किसानों के यहाँ भी आ सकती हैं। संघर्ष में स्त्री-पुरुष समानता महत्व की चीज है। इससे प्रगतिवादियों के वस्तु बोध, सौन्दर्य बोध में भिन्नता आई है। हरिजनगाथा (नागार्जुन) में नवजातक को जो गौरव दिया गया है, संत गरीबदास द्वारा उसका जो भविष्य लेख पढ़ा गया है, महत्वपूर्ण और साभिप्राय संकेत है –

होगा यह भारी उत्पाती
जुलुम मिटायेंगे धरती से
इसके साथी और संघाती।

केदारनाथ अग्रवाल ने पत्नी के प्रति सहज स्वरूप आकर्षण या प्रेम को जो अभिव्यक्ति दी है, वह इसी समानता के विवेक से आलोकित है।

24.4.6 भविष्योन्मुखी दृष्टि

प्रगतिवादी कवि यथास्थितिवादी नहीं है। वे सामाजिक परिवर्तन के पक्ष में हैं। सामाजिक परिवर्तन की उनकी कल्पना स्वच्छन्द स्वेच्छाचारी या अराजक नहीं है। वे वांछित दिशा में ही परिवर्तन की कल्पना करते हैं या प्रयत्न करते हैं। कविता उनके लिए सक्षम माध्यम है। भविष्योन्मुखी दृष्टि के अभाव में परिवर्तन की कामना का कोई अर्थ नहीं। यह नागार्जुन और मुक्तिबोध जैसे कवि बखूबी जानते हैं। भविष्योन्मुखी दृष्टि के अभाव में यह साहसपूर्ण स्वर अकल्पनीय है।

अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे
उठाने ही होंगे
तोड़ने होंगे ही मठ और गढ़ सब
पहुँचना होगा दुर्गम पहाड़ों के उस पार
तब कहीं देखने मिलेंगी हमको
नीली झील की लहरीली थाहें
जिसमें कि प्रतिपल काँपता रहता
अरुण कमल एक।

अरुण कमल भविष्य की ही कल्पना है, भविष्य का ही प्रतीक है।

बोध प्रश्न 2

1 कोष्ठकों में दिये गये शब्दों में से उपयुक्त शब्द चुनकर वाक्य पूरा करें।

क) प्रगतिवादी काव्य की अनवरत में .... चेतना महत्वपूर्ण है
/वैयक्तिक/दार्शनिक/ऐतिहासिक

ख) प्रगतिवादी काव्य दृष्टि .... दृष्टि है।
(व्यक्तिचेतना प्रधान/वर्गचेतना प्रधान/वर्गहीन)

ग) प्रगतिवादी कवि का प्रकृतिबोध .... से अनुप्राणित है।
(वैयक्तिक यथार्थ बोध/सामाजिक यथार्थ बोध)

घ) प्रगतिवादी कवि .... मानववादी हैं।
(सर्वथा/विवेकपूर्वक)

च) प्रगतिवादी कवि .... हैं।
(यथार्थवादी/यथास्थितिवादी)

24.5 प्रगतिवाद का अभिव्यंजना शिल्प

24.5.1 रूप या शिल्प

प्रगतिवाद के संबंध में यह धारणा बहुत प्रचलित है कि इस धारा के कवि वस्तु या कथ्य को ही महत्व देते हैं, रूप या शिल्प को नहीं। पर सच्चाई यह है कि रूप या शिल्प का विकास उन्हीं कवियों के यहाँ दिखाई देता है जो वस्तु की तरह शिल्प या रूप की चिन्ता भी करते रहे हैं। नागार्जुन के यहाँ रूप की जो आश्चर्यजनक विविधता है वह किसी से छिपी नहीं। वे दोहा भी लिखेंगे तो पूरी शक्ति के साथ। गीत जैसे रूपप्रकार के भीतर भी उन्होंने दुर्लभ संगठन का प्रमाण दिया है। केदारनाथ अग्रवाल ने गीतों और सुगठित चित्रों में अपने काव्य विवेक का प्रमाण दिया है। त्रिलोचन ने अवधी में बरवै लिखे हैं। शमशेर गजलों के लिए प्रसिद्ध हैं। मुक्तिबोध ने लंबी कविता को जो महाकाव्योचित संगठन दिया वह रूप के प्रति असावधान रहकर संभव नहीं। प्रगतिवादी कवियों ने लोक काव्य रूपों का भी आश्रय लिया। आल्हा या लावनी जैसे रूपों को अपनाया। पर ध्यान रहे कि रूपगत परिष्कार प्रगतिवादी कवियों का लक्ष्य नहीं है न रूपप्रकारवाद जैसी बारीकी। प्रगतिवादी कवियों का बल उस रूप या शिल्प पर है जो कथ्य या विषयवस्तु के संप्रेषण के लिए धारदार साबित हो। केदारनाथ अग्रवाल की "युग की गंगा" नागार्जुन की "युगधारा", त्रिलोचन की "धरती" आदि कविताओं में जो रूपगत प्रयोग हैं वे एक विशेष दृष्टि या विचारधारा या जीवनविवेक के अंतर्गत ही सार्थक बन पड़े हैं। त्रिलोचन ने "जीवन का एक लघु प्रसंग" कविता एकदम गद्य के विन्यास में लिखी है। यह रूप की दृष्टि से विलक्षण प्रयोग है जिसकी नवीनता पर पहले किसी का ध्यान नहीं गया।

तब मैं बहुत छोटा था, स्कूल जाने का समय हो आया था
मैंने कहा बूआ यह कैसे हो सकता है, वह दर्जा पास कर
चुका हूँ मैं, अब नयी लेनी हैं किताबें पुरानी बेकार हैं।

प्रगतिशील कवियों ने साधारण रूप से असाधारण काम लिया है। निराला ने "नये पत्ते" में जो रूप या शिल्प अपनाया था, प्रगतिवादियों ने उसका अनेक रूपों में अनेक स्तरों पर विकास किया है।

24.5.2 भाषा : काव्य भाषा (अलंकार, बिम्ब, प्रतीक)

प्रगतिवादी कवियों ने भाषा का आदर्श गुण माना है – संप्रेषणीयता। उनकी काव्य भाषा में भी अलंकार, बिम्ब, प्रतीक मिल जाएँगे पर अलंकरण बन कर नहीं, भाषा की सादगी, सरलता, क्षमता और जीवनीशक्ति का प्रमाण बनकर। स्पष्टता, सहजता, प्रखरता, व्यंग्यविदग्धता, उग्रता, साहस, मूर्तता ये सभी प्रगतिवादी काव्यभाषा के गुण हैं। त्रिलोचन के शब्द लेकर कहें, प्रगतिवादी कवियों की भाषा सार्थक वहाँ है जहाँ वह "जीवन की हलचल" में संपन्न है। यहाँ भाषा की ऐन्द्रिक क्षमता भी ... है, तद्भवता में मिली शक्ति या ऊर्जा भी –

मेंहदी की अरधान उड़ी। देखा, फिर ठहरा,
कपिश गहगहे विमल फूल खिलखिला रहे हैं
  पिला रहे हैं
अमृत घ्राण को।

वर्षा सीकर भरी हवा, मेंहदी की मँह-मँह
  जी करता है मैं अंजलि भर कर पी जाऊँ

वृक्ष लताएँ पौधे तृण धरती पर डह-डह
करप रहे हैं। मेघ-नगर में ज्योत्सना टह-टह
उग आई अब। आँखें सहस कहाँ से लाऊँ।
(दिगंत/त्रिलोचन)

प्रगतिवादियों की भाषा में नये अप्रस्तुत मिल जाएँगे पर अलंकृति भर के लिए नहीं। यहाँ बिम्ब भी सीधे सादे अनलंकृत है। सजावट नहीं मूर्त्तता उनका गुण है। प्रगतिवादी कवियों व प्रतीक भी एक निश्चित विचारधारा या दृष्टि के अधीन ही सार्थकता प्राप्त करते हैं। मुक्तिबोध के जटिल प्रतीक उदाहरण हैं। जैसे "ब्रह्मराक्षस"।

24.5.3 मूर्तिविधान : ऐतिहासिक मूर्त्तता

छायावादी कवियों ने भी भाषा की मूर्तिमत्ता पर बहुत बल दिया है पर छायावाद में यह गुण आगे चलकर विरल होता गया। प्रगतिवादियों ने इस पर यथार्थ दृष्टि के अनुसार ही विशेष बल दिया। प्रगतिवादी काव्यरूप में यह मूर्त्तता ऐतिहासिक चेतना के फलस्वरूप ही प्रकट हुई है। "धरती का शक्तिपत्र" कविता में केदारनाथ अग्रवाल संघर्ष का एक मूर्त्त चित्र उपस्थित करते हैं। यहाँ अप्रस्तुत महत्वपूर्ण नहीं हैं उनके प्रयोग से संभव ऐतिहासिक मूर्त्तता महत्वपूर्ण है।

अभियुक्त क्रोध से पागल हो
कर चला जिरह उन लोगों में,
जैसे गयन्द चीरे कदली का वन का वन
जैसे जनता सामन्ती गढ़ को करे ध्वस्त
जैसे समुद्र की बड़ी लहर
मारे छापा
छोटे जहाज को करे त्रस्त।

यहाँ पूरी स्थिति या वातावरण की मूर्त्तता उल्लेखनीय है।

24.5.4 छन्द-लय

रूप के अंतर्गत कई चीजें आती हैं। छन्द-लय भी। छन्द या लय का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है। छन्दों में प्रगतिवादियों ने खूब लिखा है। लोकछन्दों में भी और साहित्यिक महत्व के छन्दों में भी। दोहा, बरवै, ग़ज़ल, आल्हा, लावनी से अलग भी लय का विन्यास प्रगतिवादी कविता में देखने योग्य है। कहीं तुकें लय के निर्वाह में सहायक हैं, कहीं वाक्यांशों के विलक्षण उतार-चढ़ाव। मुक्तिबोध की काव्य लय एक ही जान पड़ती है पर उसमें भी जहाँ-तहाँ भेद है और जहाँ एकरूपता है वहाँ भी कथ्य का दबाव नाटकीय गति या लय को प्रभावित करता है। नागार्जुन की कविता में आवृत्ति के नियम से जो लय बनती है उसका एक उदाहरण देखें -

चन्दू मैंने सपना देखा, उछल रहे तुम ज्यों हिरनौटा
चन्दू मैंने सपना देखा, भभुआ से हूँ पटना लौटा
चन्दू मैंने सपना देखा, तुम्हें खोजते बद्री बाबू
चन्दू मैंने सपना देखा, खेल कूद में हो बेकाबू
चन्दू मैंने सपना देखा, कल परसों ही छूट रहे हो
चन्दू मैंने सपना देखा, खूब पतंगें लूट रहे हो
चन्दू मैंने सपना देखा, लाये हो तुम नया कैलेण्डर
चन्दू मैंने सपना देखा, तुम हो बाहर मैं हूँ बाहर
चन्दू मैंने सपना देखा, इतिहास में बैठे हो तुम
चन्दू मैंने सपना देखा, पुलिसभान में बैठे हो तुम।

प्रगतिवादी कवियों ने रूप-तिरस्कार नहीं किया, न छन्द लय के निर्वाह में निष्क्रिय या उदासीन रहे हैं। नागार्जुन की कविता "तीन दिन तीन रात" में लय का विन्यास भिन्न है — बातचीत की लय ही यहाँ आदर्श रूप में काव्य की लय है। प्रगतिवादी परंपरा का विकास जिन नये कवियों में है वे उन्हीं की तरह लय और छन्द के विविध रूपों के प्रति सजग हैं और उन्हें अपना रहे हैं।

बोध प्रश्न 3

1 कोष्ठकों में दिये गये शब्दों में से उपयुक्त शब्द चुनकर वाक्य पूरा करें।

क) रूपगत ………………………… प्रगतिवादी कवियों का लक्ष्य नहीं है।
(विकास/परिष्कार)

ख) प्रगतिवादी काव्यभाषा का आदर्शगुण है ……………………………
(साधारणता/सम्प्रेषणीयता)

ग) प्रगतिवादी काव्य रूप में मूर्तता ………………………… चेतना का फल है।
(वैयक्तिक/ऐतिहासिक)

घ) प्रगतिवादी कवियों ने काव्य-लय को ………………………… दी है।
(एकरसता/विविधता)

24.6 प्रगतिवाद के प्रमुख कवि

24.6.1 नागार्जुन

प्रगतिवादी काव्यधारा के महत्वपूर्ण कवियों में प्रमुख नागार्जुन के बारे में आज यह बात सहज ही कही जा सकती है कि समकालीन हिन्दी काव्य परिदृश्य में भी उन्हें केन्द्रीयता प्राप्त है। मैथिली काव्य रचनाओं के लिए साहित्य अकादमी द्वारा सम्मानित नागार्जुन खड़ी बोली हिन्दी कविताओं में भी मूल काव्य ऊर्जा, गहरी आंचलिकता, ठेठपन, तद्भवता, व्यंग्यपूर्ण आक्रामकता और गहरी जीवनासक्ति का प्रमाण देते हैं। राजनीतिक कविताएँ नागार्जुन के यहाँ बड़ी संख्या में हैं। उनमें जो सपाट तात्कालिक या इकहरी नहीं हैं, नागार्जुन की बड़ी कवि-प्रतिभा का प्रमाण देती हैं। कविता के लिए जो विषय अकल्पनीय या असंभव माने जाते हैं उनपर भी नागार्जुन ने कविताएँ लिखी हैं और असाधारण सफलता प्राप्त की है। जीवन के प्रति प्रगाढ़ राग की कविताएँ भी उनके यहाँ कम नहीं हैं। पर उनकी कविता का एक रंग वह है जहां नफरत, प्यार, विक्षोभ, जिज्ञासा घुलमिल जाते हैं – उनमें फर्क करना मुश्किल हो जाता है।

नागार्जुन का कविता की अंतर्वस्तु, रूप और भाषा पर अनोखा नियंत्रण दिखाई देता है। एक उदाहरण, उनकी समग्र काव्य क्षमता देखने के लिए प्रकृति से शुरू होकर एक दम सरल विन्यास वाली कविता कैसे राजनीतिक कविता हो जाती है, यह देखने के लिए शीर्षक है – "काले काले":

काले काले ऋतु रंग
काली काली घन घटा
काले काले गिरि शृंग
काली काली छवि घटा
काले काले परिवेश
काली काली करतूत
काली काली करतूत
काले काले परिवेश
काली काली महँगाई
काले काले अध्यादेश।

वाक्य क्रम के बदलाव में एक संयुक्त पद "काले काले" की आवृत्ति में कला भी अपना काम कर रही है और वर्ग संघर्ष या व्यवस्था से संघर्ष का ऐतिहासिक विवेक भी। नागार्जुन को आधुनिक कबीर कहा गया है, वह उनके फक्कड़ क्रांतिकारी व्यक्तित्व को देखते हुए। उनकी कला में भी यही व्यक्तित्व समाया है।

24.6.2 केदारनाथ अग्रवाल

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवादी काव्यधारा के प्रतिनिधि तथा महत्वपूर्ण कवि हैं। रूमानी आदर्शवाद से यथार्थवाद तक, रूपासक्ति से जीवनासक्ति तक और कोमल रागात्मकता से खुरदुरे वस्तुचित्रण तक केदार की कविता के अनेक रंग हैं। भावुकता केदार के यहाँ आत्मीयता का पर्याय है। पत्नी प्रेम पर जैसी अकुण्ठ कविताएँ केदारनाथ अग्रवाल ने लिखी हैं, किसी ने नहीं लिखीं। प्रेम, सौन्दर्य, प्रकृति के गहरे लगाव के साथ केदार संघर्षशील जनता के कठोर जीवन, कठिन श्रम और दृढ़ आस्था की ओर बराबर सजग रहे हैं। "चन्द्रगहना से लौटती बेर" तथा "बसंती हवा" से केदार की खास पहचान बनी। यह सहजता, यह स्वाभाविकता सच्ची जीवनासक्ति से ही पैदा होती है।

एक बीते के बराबर
यह हरा ठिगना चना
बाँधे मुरैठा शीश पर
छोटे गुलाबी फूल का
सजकर खड़ा है।

और सरसों की न पूछो
हो गयी सबसे सयानी
हाथ पीले कर लिये हैं।

केदारनाथ अग्रवाल स्वीकार करते हैं कि मार्क्सवादी विचारधारा के कारण ही उन्हें नयी जीवन दृष्टि और नयी काव्यदृष्टि मिली। "देवली के नरसंहार" जैसी तात्कालिक घटनाओं पर भी केदार ने कविताएँ लिखी हैं और अपनी वर्ग चेतना का प्रमाण दिया है।

24.6.3 शमशेर बहादुर सिंह

शमशेर बहादुर सिंह को प्रगतिवादी काव्यधारा से सम्बद्ध करने में उन्हें कठिनाई होती है जो प्रगतिवाद को स्थिर मतवाद ही मानते हैं, उसकी काव्यात्मक संभावनाओं को महत्व नहीं देते। शमशेर को रूपवादी या प्रयोगशील मानकर अलग कर दिया जाता है। शमशेर विचारधारा की दृष्टि से मार्क्सवादी हैं और मार्क्सवाद को विशेष महत्व देते हैं। जनता के प्रति उनकी सहानुभूति किसी से कम नहीं है। पर कविता को वे उसकी मुक्त संभावनाओं में देखते हैं। रूप और शिल्प उन्हें जीवन की प्रकट सच्चाइयों की तरह ही जरूरी जान पड़ते हैं। "लेकर सीधा नारा" शमशेर की वह महत्वपूर्ण कविता है जो प्रगतिवादी आंदोलन के दौर में विशेष चर्चित हुई।

लेकर सीधा नारा
कौन पुकारा
अंतिम आशाओं की सन्ध्याओं से
मैं समाज तो नहीं, न मैं कुल
जीवन
कण समूह में हूँ मैं केवल
एक कण
कौन सहारा।

शमशेर मानते रहे हैं कि उनकी असली जमीन रोमानी ही थी पर "अमन का राग", "यह शाम है" जैसी कविताएँ वे अपनी आस्था के अनुरूप लिखते रहे हैं। सांप्रदायिक दंगों पर उन्होंने बाद में जो कविताएँ लिखी हैं वे प्रगतिशील विचारधारा, जीवन दृष्टि के बगैर असंभव है।

24.6.4 गजानन माधव मुक्तिबोध

मुक्तिबोध की कविता का प्रगतिशील यथार्थवादी काव्यधारा से सहज संबंध बिठाने में डॉ. रामविलास शर्मा तक को कठिनाई होती है। अब शायद यह बात अधिक स्पष्टतापूर्वक कही जा रही है कि प्रगतिशील यथार्थवादी कविता की ही कम से कम दो परंपराएँ हैं – एक में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल आते हैं, दूसरी में शमशेर, मुक्तिबोध। मुक्तिबोध ने सीधे-सीधे स्वीकार किया है कि एक कला सिद्धांत के पीछे विशेष जीवन दृष्टि होती है, उसके पीछे एक जीवन दर्शन होता है और उसके पीछे एक राजनैतिक दृष्टि भी होती है। मुक्तिबोध की महत्वपूर्ण लम्बी कविताएँ राजनैतिक दृष्टि से वंचित नहीं हैं। यह राजनीतिक दृष्टि मार्क्सवाद ही है जो व्यापक अर्थ में विश्वदृष्टि भी है। "अन्तःकरण का आयतन" कविता में मुक्तिबोध अपना पक्ष स्पष्ट करते हैं –

पृथ्वी के प्रसारों पर
जहाँ भी स्नेह या संगर
वहाँ पर एक मेरी छटपटाहट है
वहाँ है जोर गहरा एक मेरा भी
सतत मेरी उपस्थिति
नित्य सन्निधि है।

मुक्तिबोध ने यथार्थ चित्रण के लिए फैन्टेसी का भी उपयोग किया और इस प्रकार एकरस

जान पड़ने वाले काव्यरूप में विविधता, नाटकीयता, गति पैदा की। अँधेरी दुनिया के रहस्यों को भेदते हुए मुक्तिबोध के जो विचार स्फुलिंग सामने आते हैं वे एक निश्चित विचारधारा या जीवन दृष्टि का प्रमाण देते हैं। वे सत्ता को किस तरह बेनकाब करते हैं इसका सटीक उदाहरण है "भूलगलती" नाम कविता – जिसमें भूलगलती सिंहासन पर बैठी है और "सच" नाम का पात्र गिरफ्तार करके लाया जाता है। "अँधेरे में" मुक्तिबोध की सबसे महत्वपूर्ण कविता है – आधुनिक कविता की विशिष्ट उपलब्धियों में एक।

24.6.5 त्रिलोचन

त्रिलोचन की एक अलग पहचान है। परम्परा में ही उन्हें रखना हो तो वे तुलसी और निराला की परंपरा को आगे बढ़ाने वाले कवि हैं। उन्होंने राजनीतिक विषयों पर कविताएँ नहीं लिखी हैं कि उनकी विचारधारा तक सीधे पहुँचना आसान हो। पर साधारण विषयों पर, जीवन के बहुत मामूली प्रसंगों पर लिखते हुए भी वे अपनी दृष्टि का प्रमाण देते हैं। सानेट त्रिलोचन का अपना आविष्कार है। सानेटों में जितनी सहजता से वे आत्मकथा या सामाजिक संदेश बिखेरते चलते हैं, उसी से उनकी साफ दृष्टि और असाधारण काव्यक्षमता का पता चलता है। त्रिलोचन की कविताएँ सीधे जीवन को पकड़ती हैं।

त्रिलोचन के सानेटों में आत्मभर्त्सना के जो अकुंठ संकेत हैं उनसे उनकी जीवनशक्ति प्रकट होती है। "भीख माँगते उसी त्रिलोचन को देखा कल/जिसको समझे था है तो है यह फौलादी", "नगई महरा" जैसे इतिवृत्त में उनका ढंग दूसरा है – बतकही वाला ढंग –। कृत्रिमता, बनावटीपन से मुक्त यह सहज आत्मीयता त्रिलोचन का काव्यवैशिष्ट्य है।

> शब्दकार इन शब्दों में जीवन होता है
> ये भी चलते फिरते और बात करते हैं।

बोध प्रश्न 4

1) कोष्ठकों में दिए शब्दों में से उपयुक्त शब्द चुनकर वाक्य पूरा करें।
   - क) जीवन के प्रति प्रगाढ़ .... की कविताएँ नागार्जुन के यहाँ कम नहीं हैं। (भाव/राग)
   - ख) भावुकता केदार के यहाँ .... का पर्याय है। (सरलता/आत्मीयता)
   - ग) शमशेर विचारधारा की दृष्टि से .... हैं। (भाववादी/मार्क्सवादी)
   - घ) मुक्तिबोध की लम्बी कविताएँ .... दृष्टि से वंचित नहीं हैं। (सांस्कृतिक/राजनीतिक)
   - च) त्रिलोचन का अपना आविष्कार है .... । (प्रगीत/सानेट)

24.7 प्रगतिवाद का महत्व

ऐतिहासिक महत्व

प्रगतिवादी का एक काव्य प्रवृत्ति के रूप में और व्यापक साहित्यिक आंदोलन के रूप में ऐतिहासिक महत्व है। जिस समय अतिशय सूक्ष्मता और अति-कल्पनाशीलता के नाम पर हिन्दी कविता गूढ़ रहस्योन्मुख होती जा रही थी, प्रगतिवाद ने कविता को अपने समय के यथार्थ से, यथार्थ-बोध के अनेक रूपों से जोड़ा और कविता और राजनीति के बीच ऐसा घनिष्ठ संबंध विकसित किया जिससे आगे की कविता भी लाभान्वित हुई। प्रगतिवाद ने कविता संबंधी अवधारणा बदली और अपने समय के तीखे सवालों की गूँज कविता में पैदा की। प्रगतिवाद ने एक नये ही संदर्भ में 'कविता किसके लिए' – जैसा सवाल उठाया। प्रगतिवाद अपनी ऐतिहासिक भूमिका के लिए साहित्य में स्थायी महत्व का विषय हो गया है।

साहित्यिक महत्व

प्रगतिवादी कविता उदाहरण है कि उसने साहित्य भूमि का विस्तार किया। कविता का संसार अधिक यथार्थ, प्रामाणिक, व्यापक और विश्वसनीय लगने लगा। कविता की अंतर्वस्तु और रचनाविधान में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। उपेक्षित जान पड़ने वाले विषयों, चरित्रों को काव्यात्मक प्रतिष्ठा मिली। कविता ने प्रत्यक्ष जीवन, लोकरूपों, लोक प्रचलित छन्दों का नया उपयोग किया और नयी संभावनाएँ खोजीं।

बोध प्रश्न 5

1 कोष्ठकों में दिये शब्दों से उपयुक्त शब्द चुनकर वाक्य पूरा करें।

क) प्रगतिवाद की ऐतिहासिक .... है
(भूमिका, ,

ख) प्रगतिवाद ने .... का विस्तार किया।
(साहित्य बोध/साहित्य भूमि)

24.8 सारांश

"प्रगतिवाद" केवल काव्य प्रवृत्ति नहीं, व्यापक काव्यान्दोलन या साहित्यिक आंदोलन है। उसके पीछे मार्क्सवादी विचारधारा है जो राजनीतिक दृष्टि से आगे विश्वदृष्टि के रूप में भी महत्वपूर्ण है। प्रगतिवाद या प्रगतिशील साहित्य शब्द का प्रयोग 1936 के आसपास हुआ जब प्रगतिशील लेखक संघ स्थापित हो चुका था पर साहित्य में 1930 के बाद ही यह रूझान प्रकट होने लगा था जिसके पीछे बदली हुई राजनीतिक, सामाजिक वास्तविकता थी। प्रगतिवाद एक अर्थ में छायावाद का विकास है दूसरे अर्थ में छायावाद के विरुद्ध विकसित काव्यप्रवृत्ति। अन्तर्वस्तु की दृष्टि से प्रगतिवाद में ऐतिहासिक चेतना सामाजिक यथार्थ दृष्टि, परिवेश या प्रकृति के प्रति लगाव, जीवन के प्रति स्वीकृति का भाव, मानवीय संबंधों में समानता का आग्रह और भविष्योन्मुखी दृष्टि का महत्व है। रचनाविधान की दृष्टि से प्रगतिवाद में यथार्थबोध के अनुरूप नये रूपों की खोज, जीवन की हलचल से भरी भाषा, यथार्थ ज्ञान से प्रेरित ऐतिहासिक मूर्तता, लोकरूपों या छन्दों का आवश्यकतानुसार उपयोग, सहजता का शिल्प आदि महत्वपूर्ण हैं। प्रगतिवाद प्रयोगवाद या अन्य आधुनिकतावादी प्रवृत्ति के उभार के कारण कभी बीच में केन्द्र में न रह गया हो किंतु विकास उसका कभी स्थगित नहीं हुआ। यही कारण है कि आज भी जो नयी कविता लिखी जा रही है उसे प्रगतिवाद का ही विकास कहा जाएगा। प्रगतिवाद के प्रमुख कवि हैं : नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर, मुक्तिबोध और त्रिलोचन। बाद के कवियों में केदारनाथ सिंह, धूमिल, कुमार विकल, अरुण कमल के नाम लिये जा सकते हैं। यों, ऐसे नामों की सूची बड़ी हो सकती है क्योंकि यह प्रवृत्ति आज पुनः केन्द्रीयता प्राप्त कर चुकी है।

24.9 अभ्यास

1 निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त (तीन वाक्य) उत्तर लिखिए:

क) प्रगतिवाद की किस व्यापक आंदोलन से तुलना की गयी है?

....
....
....

ख) किस अर्थ में प्रगतिवाद का चरित्र अखिल भारतीय है?

....
....
....

ग) निराला ने कविता की मुक्ति की व्याख्या किस प्रकार की है?

....
....
....

घ) निम्नलिखित काव्यांश की विशेषताएँ इस दृष्टि से स्पष्ट कीजिए कि प्रगतिवाद का स्वरूप सामने आ सके।

जली ठूँठ पर बैठकर गयी कोकिला कूक
बाल न बाँका कर सकी शासन की बंदूक

....

....

....

24.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

प्रगतिवाद: विजय शंकर मल्ल
आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ: नामवर सिंह
प्रगतिवाद: रेखा अवस्थी
मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य: राम विलास शर्मा
इतिहास और आलोचना: नामवर सिंह
शब्द और मनुष्य: परमानंद श्रीवास्तव

24.11 बोध प्रश्न/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 ख) 2 ख)

3 प्रगतिवाद से अभिप्राय उस साहित्यिक प्रवृत्ति से है जिसमें एक प्रकार की इतिहास चेतना, सामाजिक इतिहासदृष्टि, वर्गचेतन विचारधारा, प्रतिबद्धता या पक्षधरता, गहरी जीवनासक्ति, परिवर्तन के लिए सजगता और एक प्रकार की भविष्योन्मुखी दृष्टि मौजूद हो।

बोध प्रश्न 2

1 क) ऐतिहासिक ख) वर्ग चेतना प्रधान ग) सामाजिक यथार्थ बोध
घ) विवेकपूर्वक च) यथार्थवादी

2 अपने समय का विवेक और अपने समय या युग की राजनीतिक, सामाजिक वास्तविकता का बोध होना ही ऐतिहासिक चेतना है।

बोध प्रश्न 3

1 क) परिष्कार ख) सम्प्रेषणीयता ग) ऐतिहासिक घ) विविधता

बोध प्रश्न 4

1 क) राग ख) आत्मीयता ग) मार्क्सवादी घ) राजनीतिक च) सानेट

बोध प्रश्न 5

1 क) भूमिका ख) साहित्यभूमि

अभ्यास 1

क) प्रगतिवाद केवल काव्य प्रवृत्ति नहीं, व्यापक साहित्यिक आंदोलन है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उसकी व्यापकता पर विशेष बल दिया है। उन्होंने व्यापकता की दृष्टि से प्रगतिवाद को केवल भक्ति आंदोलन से तुलनीय बताया है।

ख) प्रगतिवाद का चरित्र एक विशेष अर्थ में अखिल भारतीय है। उसको अभिव्यक्ति हिन्दी के साथ बँगला, मराठी, पंजाबी, मलयालम, कश्मीरी, उर्दू आदि अनेक भाषाओं में मिली।

ग) निराला ने कहा है कि कविता की मुक्ति मनुष्यों की मुक्ति के ही समकक्ष है। वे मुक्त छंद का महत्व बता रहे थे। इसी संदर्भ में कविता की मुक्ति का प्रश्न उठाया गया।

घ) जली ठूँठ पर बैठकर गयी कोकिला कूक
बाल न बाँका कर सकी शासन की बंदूक

नागार्जुन ने दोहा छन्द में यह कविता लिखी है – "शासन की बन्दूक"। यहाँ सत्ता या व्यवस्था के बर्बर दमन चक्र की ओर संकेत है। "जली ठूँठ पर" संकेत है उस गोली कांड का, जो हो चुका है। संघर्ष थमने वाला नहीं है। कोयल जली ठूँठ पर बैठ जो कूक जाती है, मानो दमनकारी शक्तियों की धज्जियाँ उड़ा जाती है। शासन की बन्दूक बाल बाँका नहीं कर पाती। प्रगतिवादी कविता में संघर्ष का ही पक्ष लिया जाता है। यहाँ भी सब कुछ सीधे नहीं कहा जाता। संकेत, बिम्ब प्रतीक की सहायता से भी कहा जाता है पर संकेत भी इतने स्वाभाविक सहज होते हैं कि अलग से उनकी ओर ध्यान नहीं जाता। ऐतिहासिक चेतना और सामाजिक यथार्थदृष्टि के बल पर ही इतना सार्थक सटीक काव्यचित्र संभव हो पाता है।

इकाई 25 केदारनाथ अग्रवाल

इकाई की रूपरेखा

25.0 उद्देश्य
25.1 प्रस्तावना
25.2 जीवन परिचय एवं कृतित्व
25.3 पृष्ठभूमि
25.4 केदारनाथ अग्रवाल के काव्य की अन्तर्वस्तु
    25.4.1 ऐतिहासिक चेतना और राजनीतिक कविताएँ
    25.4.2 सामाजिक यथार्थ और श्रम सौंदर्य का चित्रण
    25.4.3 परिवेश और प्रकृति के प्रति लगाव
    25.4.4 प्रेम संबंधी कविताएँ
25.5 संरचना शिल्प
25.6 काव्य पाठ एवं व्याख्या
25.7 सारांश
25.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
25.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

25.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- केदारनाथ अग्रवाल के जीवन परिचय एवं कृतित्व की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- केदारनाथ अग्रवाल की युगीन पृष्ठभूमि के बारे में जान सकेंगे,
- केदारनाथ अग्रवाल के काव्य की विशेषताएँ जान कर बता सकेंगे कि केदारनाथ अग्रवाल एक महत्वपूर्ण प्रगतिशील कवि हैं,
- जान सकेंगे कि कैसे केदारनाथ अग्रवाल, गहरी जीवनासक्ति के कवि हैं, मानव और प्रकृति से उन्हें कितना लगाव है, और
- केदारनाथ अग्रवाल के काव्य शिल्प के बारे में बता सकेंगे।

25.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में आप प्रगतिवाद के बारे में पढ़ चुके हैं। इस इकाई में आप प्रगतिशील कवि केदारनाथ अग्रवाल के बारे में पढ़ेंगे। सबसे पहले हम केदारनाथ जी का जीवन परिचय और उनके कृतित्व की जानकारी हासिल करेंगे। केदारजी का जीवन एक मध्यवर्गीय जीवन रहा है। पेशे से वे वकील रहे हैं किन्तु किसानों, मजदूरों से उनका संबंध बहुत करीबी रहा है। उनका सारा कृतित्व व्यापक अर्थों में आम आदमी के सुख: दुःख,उसकी तकलीफों, शोषण और शोषण को दूर करने की चिंताओं से सरोकार रखता है। केदारनाथ अग्रवाल. लगभग पचास वर्षों से साहित्य सर्जना में रत हैं। पृष्ठभूमि में हम उनके युग के राजनीतिक-सामाजिक वातावरण का विश्लेषण करेंगे। केदारजी की युगीन पृष्ठभूमि में स्वतंत्रता आंदोलन और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आजाद भारत का आज तक का युग समाहित हो जाता है।

केदारजी प्रगतिशील कवि हैं। उन्होंने जीवन को मार्क्सवादी चिंतन द्वारा प्राप्त वैज्ञानिक प्रगतिशील दृष्टि से अपने विवेक द्वारा विश्लेषित, विवेचित करते हुए देखा और कलम बद्ध किया है। इसलिए जहाँ वे अपनी राजनीतिक कविताओं में इस देश की राजनीति के अंतर्विरोधों पर तीखी टिप्पणियाँ करते हैं वहीं शोषित मनुष्य के जीवन के अंतर्विरोध, संघर्ष और उसकी अदम्य शक्ति को भी नजरंदाज नहीं करते। केदारजी ने प्रेम और प्रकृति पर भी

ढेरों कविताएँ लिखी हैं, जो इस बात का प्रमाण है कि वे सिर्फ राजनीतिक कवि नहीं हैं। इसके अलावा श्रमशील मनुष्य पर भी उन्होंने बहुत लिखा है। वास्तव में वे गहरी जीवनासक्ति के कवि हैं। वे मानवीय संबंधों में समानता के पक्षधर हैं। पिछली इकाई में आप यह पढ़ चुके हैं कि प्रगतिशील कवि ऐतिहासिक चेतना से युक्त होता है अर्थात् वह समाज को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में, वर्गचेतन प्रधान दृष्टि से देखता है, प्रकृति के प्रति उसका सहज और स्वाभाविक लगाव होता है। केदारनाथ अग्रवाल ऐसे ही प्रगतिशील कवि हैं। उनके काव्य की अंतर्वस्तु का अध्ययन करते हुए आप केदारजी के काव्य की इन विशेषताओं को विस्तार से जानेंगे।

संरचना शिल्प शीर्षक के अंतर्गत हम केदारजी के काव्य शिल्प और काव्यभाषा का विश्लेषण करेंगे। केदारजी की काव्यभाषा सरल और सहज है किंतु कलाहीन नहीं है। भाषा की सरलता और सहजता का यह गुण उन्हें जनता से जुड़े होने के कारण प्राप्त हुआ है। ऐन्द्रियकता, चित्रात्मकता और बिंब उनकी काव्य भाषा को कलात्मक बनाते हैं। सरल और सहज होने के कारण उनकी काव्यभाषा अत्यधिक संप्रेषणीय है। वस्तुतः संप्रेषणीयता उनकी काव्य भाषा और काव्यशिल्प का सबसे बड़ा गुण है। आइये केदारजी के जीवन और कृतित्व की जानकारी प्राप्त करें।

25.2 जीवन परिचय एवं कृतित्व

केदारनाथ अग्रवाल का जन्म 1 अप्रैल 1911 को बाँदा जिले के बबेरू तहसील के कमासिन नामक ग्राम में हुआ था। उनकी माँ का नाम घसिट्टो और बाप का नाम श्री हनुमान प्रसाद था जो शुरू से ही रसिक प्रवृत्ति के कला प्रेमी व्यक्ति थे और कविता भी लिखते थे। शिक्षा दीक्षा के ग्रामीण माहौल में भय और आतंक के बल पर पढ़ाई होती थी। केदार भी ऐसे माहौल में गाँव के अन्य बच्चों की तरह कक्षा तीन तक पढ़े और उसके बाद रायबरेली आ गये। फिर पिता के कटनी जाने पर कक्षा छह की पढ़ाई कटनी में हुई। कटनी में एक साल रहने के बाद ये अपने पिता जी के साथ जबलपुर चले गये और सन् 1927 में इलाहाबाद। यहीं रह कर उन्होंने बी.ए. किया और कानून पढ़ने कानपुर चले गये। 1938 में लॉ की डिग्री ले कर बाँदा लौटे और वकालत करने लगे।

केदार जी का विवाह बहुत छोटी उम्र में ही हो गया था, जब वे सातवीं में ही थे। इंटर में उन्हें एक कन्या प्राप्त हो चुकी थी।

केदार जी के घर पर माहौल आम तौर पर धार्मिक था। घर के लोग हिंदू रीति, धार्मिक परंपराओं, रूढ़ियों और टोने-टोटकों का भरपूर पालन करते थे। होली, दशहरा, दीवाली, ईद, मुहर्रम पूरे गाँव में मनाए जाते थे। हिंदू-मुसलमान दोनों एक दूसरे के त्योहारों में बराबर शरीक होते थे। गाँव में सांस्कृतिक माहौल के साथ-साथ प्राकृतिक वातावरण भी था। ढाक का जंगल पास ही था। केदार अक्सर जंगल में निकल जाते और हिरनों का चौकड़ी भरना देखते या रात में सियारों की हुँआ-हुँआ सुनते। स्कूल के अखाड़े में कसरत और कुश्ती में भी वे भाग लेते। केदार के मन पर भेदभाव के संस्कार बचपन ही से न थे। गाँव में अधिकांश लोग गरीब थे। उच्च या मध्यमवर्ग के लोग बहुत कम थे। केदारजी गरीब बच्चों के साथ खेलते, उनके घर आते-जाते और इस तरह एक-एक घर की गरीबी से बहुत अतरंग रूप से परिचित होते रहे। "इस परिचय का उनके बालपन पर ऐसा अमिट प्रभाव पड़ा कि बाद को जब उनका कवि प्रकट हुआ तब यह दुख-दर्द और संघर्ष, हाड़तोड़ मेहनत, अमीरी की ओढ़ी हुई ठसक की तुलना में गरीबी की सहजता, निर्मलता आदि उनकी कविता में हजार-हजार कंठों से फूट पड़ी" (केदारनाथ अग्रवाल सं. अजय तिवारी, पृष्ठ 226)।

प्रकृति से लगाव के कारण ही केदार जब रायबरेली स्कूल में पढ़ते थे तो अंग्रेज़ी आदि कक्षाओं में उनका मन नहीं लगता था, उन्हें "नेचर स्टडी" और "मैनुअल ट्रेनिंग" की कक्षाएँ अधिक प्रिय थीं, नेचर स्टडी की कक्षा में क्यारियाँ बनाते, आलू बोते, सब्जी लगाते, सिंचाई गुड़ाई करते। उन्हें नरम-नरम मिट्टी बहुत अच्छी लगती। कॉपी पर पत्तियाँ चिपकाना इस कोर्स का हिस्सा था जिसने वनस्पतियों से केदार का घनिष्ठ परिचय कराया।

केदार के पिता स्वयं कवि थे किन्तु केदार को साहित्यिक माहौल जबलपुर और इलाहाबाद में मिला। छुटपन से ही कविता लिखने में ये रुचि लेने लगे थे। जबलपुर में रहते हुए इनके पिता वैद्यकी भी करते थे और रुचि के अनुसार काव्य चर्चा और काव्य रचना में समय भी देते थे। जबलपुर में उन दिनों अच्छा साहित्यिक माहौल था। विभिन्न साहित्यिकार इनके पिता के

घर पर जमा होते, साहित्य चर्चा होती, समस्यापूर्ति होती। यहीं पर केदारजी ने निराला विरोध का स्वर सुना। निराला द्वारा संपादित "मतवाला" पढ़ा और देखा। इसके बाद सन् 1927 में केदार आठवीं पास करने के बाद अपने पिता जी के साथ इलाहाबाद आए और लाए ब्रजभाषा और निराला के विरोध का स्वर। यहाँ उनके पिता के मित्र "रसालजी" थे, जिन्होंने "रसिक मंडली" स्थापित की हुई थी। इसमें "कवित्त सवैया" और समस्यापूर्ति वाले ब्रजभाषा के कवि आते थे। केदारजी इन गोष्ठियों के असर से ब्रजभाषा की ओर झुके। 'सरस्वती' के माध्यम से यहाँ खड़ी बोली काव्य से भी केदारजी का परिचय स्थापित हुआ। नरेन्द्र जैसे कवियों से केदारजी का यहीं परिचय हुआ और मित्रता बनी।

कानपुर में बिताया समय केदार के जीवन में महत्वपूर्ण है। मजदूर जीवन की परिस्थितियों और मजदूर वर्ग की विचारधारा – मार्क्सवाद से उनका परिचय और आत्मीयता कानपुर में ही हुई। बालकृष्ण बलदुआ के इर्द-गिर्द प्रगतिशील विचारों और साहित्यिक संस्कारों का माहौल था। उनके संपर्क में केदार ने बहुत सा विदेशी साहित्य भी पढ़ा

जब 32 में केदार बाँदा आ कर वकालत करने लगे तो अदालत के कटु यथार्थ जीवन से और आदमी के स्वभाव के सच्चे-झूठे पक्षों के एक-एक रगरेशे से उनका साक्षात्कार हुआ।

इस प्रकार घर के साहित्यिक माहौल, गाँव के श्रमशील जीवन, प्रकृति से गहरा लगाव और समाज के प्रति गहन मानवीय संवेदना के द्वारा केदार का व्यक्तित्व और कवि व्यक्तित्व बना।

कृतित्व: केदारजी ने काव्यरचना के अलावा छिटपुट गद्य रचना भी की हैं। केदार का पहला काव्य संग्रह "युग की गंगा" 1947 में प्रकाशित हुआ था। तब से लेकर आज तक केदारजी के बहुत से संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें गुलमेंहदी, युग की गंगा, फूल नहीं रंग बोलते हैं, कहें केदार खरी-खरी, जमुन जल तुम, हे मेरी तुम! प्रमुख हैं।

गद्य रचनाएँ: केदारजी ने एक उपन्यास "पतिया" और वैचारिक गद्य भी लिखा है जिसमें साहित्य से संबंधित प्रश्न, कई कवियों पर लेख, कविता, विश्लेषण, समीक्षाएँ, साक्षात्कार और साहित्येतर विषयों पर भी लेख शामिल हैं। उनका गद्य उनके तीन निबंध संकलनों में संकलित है। इसके अलावा उन्होंने एक यात्रा-संस्मरण, विदेशी कवियों की कविताओं के अनुवाद भी किये हैं।

काव्य रचनाएँ

युग की गंगा
नींद के बादल
गुलमेंहदी
फूल नहीं रंग बोलते हैं
लोक और आलोक
कहें केदार खरी-खरी
आग का आइना
जो शिलाएँ तोड़ते हैं
जमुन जल तुम
मार प्यार की थापें
पंख और पतवार
हे! मेरी तुम
अपूर्वा
बस्ती खिले गुलाबों की

उपन्यास

"पतिया"

वैचारिक गद्य: निबंध

समय-समय पर (1970)
विचार बोध (1980)
विवेक विवेचन (1981)

यात्रा संस्मरण

बस्ती खिले गुलाबों की

25.3 पृष्ठभूमि

आज़ादी से पूर्व: प्रगतिशील काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि केदार जी का आजादी से पूर्व साहित्यिक जीवन जब प्रारंभ हुआ उस समय देश अंग्रेज़ों की गुलामी से छुटकारा पाने का प्रयास कर रहा था। देश में कांग्रेस पार्टी की बागडोर गाँधी जी के हाथ में थी। 1930 में कांग्रेस द्वारा चलाए गए आंदोलन की असफलता के बाद बहुत से लोग गाँधीवादी रास्ते का विकल्प ढूँढने लगे थे। कांग्रेस के भीतर सोशलिस्टों का एक दल संगठित हुआ, इस दल ने कांग्रेसी नेताओं का विरोध करते हुए किसान सभाएँ कीं, अनेक कम्युनिस्टों ने मजदूर सभाएँ बनायीं – जिनमें कानपुर की मजदूर सभा उल्लेखनीय है।

फिर भी, अंग्रेज़ों से अखिल भारतीय स्तर पर लोहा लेने के लिये कांग्रेस ही एक मात्र ऐसी पार्टी थी, जिसे व्यापक स्तर पर जनता का समर्थन प्राप्त था। कम्युनिस्ट अभी अपना सुदृढ़ आधार नहीं बना पाए थे। किन्तु समय-समय पर कांग्रेस की बुर्जुआ नीतियों और दृष्टिकोण की आलोचना करते रहते थे। वाम पक्ष के अधिकांश नेताओं का यह मानना था कि किसानों को संगठित किए बिना, उनका सामंत विरोधी संघर्ष चलाए बिना स्वाधीनता आंदोलन में सफलता नहीं मिल सकती। दूसरी ओर कांग्रेस, गाँधी जी के नेतृत्व में अहिंसात्मक तरीके से, सभी को अपने साथ लेकर स्वाधीनता प्राप्ति का मार्ग खोज रही थी।

दूसरे महायुद्ध में जर्मनी और जापान की हार के बाद दक्षिणी पूर्वी एशिया में जबर्दस्त क्रांतिकारी जन उभार आया। भारत में बंबई का नाविक विद्रोह (1946) इस जन उभार का प्रतीक है। इस जन उभार के बारे में वामपंथियों का मानना है कि कांग्रेस ने इस जन उभार का समर्थन नहीं किया क्योंकि कांग्रेस क्रांति और सशस्त्र संघर्ष नहीं चाहती थी। यहाँ तक यह बात सही है कि गाँधी जी अहिंसक तरीकों द्वारा ही आजादी प्राप्त करने के प्रयास कर रहे थे। इस प्रयास में वे किसानों, मजदूरों, जमींदारों, पूँजीपतियों सभी को साथ ले रहे थे। वाम पक्ष उनकी इस अहिंसक नीति का विरोध करता रहा है। वस्तुतः कांग्रेस और वाम पक्ष के दृष्टिकोण की भिन्नता ही इस कांग्रेस और वाम पक्ष का केन्द्रबिंदु थी।

सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ: आजादी से पूर्व के भारत में एक नया मध्यमवर्ग उभरने लगा था, जो नयी दिशा-दीक्षा प्राप्त कर अपना अलग से अस्तित्व बना रहा था,फिर भी समाज के ढाँचे में कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं हुआ था। कई समाज सुधार आंदोलन चल चुके थे किंतु बाल विवाह, सती प्रथा, जैसी कुप्रथाएँ अभी भी समाज में विद्यमान थी। अंग्रेज़ी शिक्षा-दीक्षा अंग्रेज़ों के हितों के लिए केवल बाबू वर्ग का ही निर्माण कर रही थी। किसान मजदूरों की दशा दयनीय थी। किन्तु स्वाधीनता प्राप्ति की लहर में सभी लोग अपना समर्थन दे रहे थे। यह सामाजिक चेतना जनता में पनप चुकी थी कि अंग्रेज़ों से छुटकारा पाए बिना इस देश और समाज का उद्धार नहीं हो सकता। अनपढ़ता, गरीबी, कुप्रथाएँ, इन सबको मिटाने के लिए स्वतंत्र भारत का आज़ाद होना आवश्यक है।

देश की आर्थिक दशा बहुत खराब थी। अंग्रेज़ों ने शोषण के बल पर इस देश को गरीबी के मुहाने पर ला पटका था। किसान की फसल का आधे से अधिक हिस्सा जमींदार, नवाब और अंग्रेज़ की जेब में पहुँच जाता था। किसानों मजदूरों की दशा इस अर्थ में भी बहुत दयनीय थी कि उन्हें अंग्रेज़ हाकिमों और जमींदारों दोनों के शोषण तले पिसना पड़ता था।

साहित्यिक पृष्ठभूमि: पिछली इकाई में आप पढ़ चुके हैं कि हिंदी में "प्रगतिवाद" का आरंभ 1936 के आसपास हुआ था। केदार जी के साहित्य में प्रवृत्त होने का लगभग यही समय है। उस समय हिंदी कविता में छायावाद सिमटने लगा था और यथार्थ जीवन की अभिव्यक्ति के रूप में प्रगतिवाद आंदोलन उभरने लगा था।

इस प्रकार केदार के साहित्यिक जीवन का आरंभ ऐसे राजनीतिक,आर्थिक और साहित्यिक माहौल में हुआ जब अंग्रेज़ों से देश को आजाद करवाने के लिए स्वतंत्रता आंदोलन जोर पकड़ रहा था। आर्थिक रूप से देश जर्जर स्थिति में था और साहित्य में छायावादी कविता की जगह प्रगतिशील कविता ले रही थी।

आजादी के बाद: देश आज़ाद हुआ। राजनीतिक रूप से शासन सत्ता अपने लोगों के हाथ में आयी। पूरे देश की जनता ने ये उम्मीदें बाँधी हुई थीं कि आजाद होने पर उनके दुःख-दर्द दूर

होंगे। किसान, मजदूरों को आशाएँ थीं कि उन्हें जमींदारों, मिल मालिकों के शोषण से छुटकारा मिलेगा, सामाजिक कुप्रथाओं का अंत होगा, किंतु जनता की सारी आशाएँ पूरी नहीं हो सकीं। इसी दौरान सन् 1962 तथा 1965, 1971 में भारत को तीन युद्धों का भी सामना करना पड़ा जिससे देश की अर्थव्यवस्था पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। जाति प्रथा, शोषण, गरीबी, अशिक्षा जैसी सामाजिक बुराईयाँ अभी तक हमारे समाज में व्यापक स्तर पर विद्यमान हैं। आज़ादी के बाद का यह भारत भी केदार जी के कृतित्व की पृष्ठभूमि रहा है। साहित्य में प्रगतिवाद आंदोलन जब शुरू हुआ, उसके समानांतर ही व्यक्तिवादी कविता लिखने का भी एक दौर चला – जिसका नामकरण ''प्रयोगवाद'' हुआ। 1936 में जिस प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई थी – आजादी के बाद वह धीमा पड़ता गया। व्यक्तिवादी कविता ही विभिन्न स्वरों में फूटती रही। प्रगतिशील कविता पृष्ठभूमि में चली गयी। इसका कारण शायद यही रहा कि अधिकांश साहित्यकारों का संबंध सामान्य जनता – किसानों, और मजदूरों से नहीं रहा। अधिकांश लेखक मध्यमवर्ग से ही आए। मध्यमवर्ग ही साहित्य लेखन का मुख्य सरोकार बनता गया। किंतु ऐसी परिस्थितियों में भी प्रतिबद्ध प्रगतिशील रचनाकार नागार्जुन, शील, केदारनाथ, त्रिलोचन आदि निर्द्वन्द भाव से अपने लेखन कर्म में जुटे रहे।

1962 में देश की कम्युनिस्ट पार्टियों में भी विभाजन हो गया। जनवादी संघर्ष के कमजोर होने का एक राजनीतिक कारण यह भी रहा।

बोध प्रश्न 1

क) केदारनाथ अग्रवाल ने काव्य के अतिरिक्त साहित्य की और किन-किन विधाओं में रचना की है?

....

....

ख) केदारजी के चिंतन पर किस विचारधारा का प्रभाव पड़ा है?

....

25.4 केदारनाथ अग्रवाल के काव्य की अंतर्वस्तु

केदार ने अपनी लेखन यात्रा का आरंभ चौथे दशक से किया था। प्रारंभ में इन्होंने प्रेम और सौंदर्य की कविताएँ लिखीं लेकिन धीरे-धीरे युग के यथार्थ से जुड़ कर उनका प्रेम एक व्यापक आधार लेकर श्रमशील जनता से जुड़ता गया। किसान और मजदूर, प्रकृति और मनुष्य उनके काव्य के मुख्य सरोकार बनते चले गये। इसलिए केदारजी के काव्य की अन्तर्वस्तु का दायरा बहुत व्यापक है। इनके काव्य की विशेषताओं पर विचार करते हुए आलोचकों ने उनकी विभिन्न विशेषताओं को रेखांकित किया है। प्रख्यात प्रगतिशील आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार ''पिछले तीस-चालीस साल में जिन कवियों की रचनाओं में राजनीति की निर्णायक भूमिका रही है, वो हैं – केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन। दूसरे महायुद्ध के दौरान और दूसरे महायुद्ध के बाद, मोटे तौर से 1957 तक भारत के स्वाधीनता आंदोलन और भारत की जनवादी क्रांति, इनके उतार-चढ़ाव से जो सबसे ज्यादा गहरायी से संबद्ध रहे हैं, वे हैं केदारनाथ अग्रवाल और इस उतार-चढ़ाव को जिस कवि ने सबसे शक्तिशाली ढंग से अपने साहित्य में, अपनी कविता में प्रतिबिम्बित किया है, वह भी हैं केदारनाथ अग्रवाल''। केदारजी की कविता में राजनीति की निर्णायक भूमिका तो है ही किंतु साथ ही उसमें बुंदेलखंड और बुंदेलखंड की प्रकृति, प्राकृतिक परिवेश और जन-जीवन की धड़कनें और रंग भी हैं – इसलिए एक आलोचक इनकी कविता का सबसे बड़ा गुण मानते हैं लोकरूपता को। केदार ने किसानों और श्रमशील जनता पर बहुत लिखा है इसलिए डॉ. शिव कुमार मिश्र इन्हें मूलतः किसानी संवेदना का कवि मानते हैं। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र केदार की प्रकृति संबंधी कविताओं के आधार पर केदार की कविता को ''प्रकृति के साहचर्य में मुक्ति की तलाश'' की कविता मानते हैं – ''केदारनाथ अग्रवाल अपनी सौंदर्य चेतना और सूक्ष्म चित्रण शक्ति के कारण प्रगतिवाद के दायरे को लांघ जाते हैं और अपना एक दूसरा काव्य संसार भी उजागर करते हैं।''

आलोचकों के ये सारे मत इस बात के गवाह हैं कि केदारनाथ अग्रवाल रूढ़िबद्ध प्रगतिशीलता के पक्षधर नहीं हैं और न ही उनकी कविता केवल राजनीति की अभिव्यक्ति तक ही सीमित है

बल्कि राजनीति को वे जीवन को सुंदर, व्यवस्थित और शोषण से मुक्त करने के हथियार के रूप में देखते हैं। प्रकृति, प्रेम, किसान, मजदूर ये सब केदारजी के काव्य के व्यापक सरोकार हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि केदारजी व्यक्तिवाद के दायरे में कभी नहीं फंसे। बल्कि सामाजिक जीवन और समाज से जुड़कर ही अपनी काव्य यात्रा का विकास करते रहे।

आइए, केदार के काव्य की अंतर्वस्तु को विस्तार से जानें।

25.4.1 ऐतिहासिक चेतना और राजनीतिक कविताएँ

यह आप पढ़ चुके हैं कि ऐतिहासिक चेतना संपन्न प्रगतिशील कवि अपने समय, अपने युग की राजनीतिक, सामाजिक वास्तविकता के प्रति प्रतिबद्ध रूप से जागरूक होता है। केदारनाथ अग्रवाल ने आजादी से पूर्व और आजादी के बाद की भारत की राजनीतिक, सामाजिक वास्तविकताओं का साक्षात्कार किया है। उनकी इस ऐतिहासिक चेतना को उनकी राजनीतिक कविताओं में देखा जा सकता है। डॉ. रामविलास शर्मा का यह कथन कि भारत के चालीस वर्षों की राजनीति का प्रगतिशील इतिहास यदि किसी कवि की रचनाओं में संपूर्ण रूप से अभिव्यक्त हुआ है तो वे कवि केदारनाथ अग्रवाल हैं, बहुत सार्थक है।

प्रत्येक कवि की एक राजनीतिक दृष्टि होती है – केदारजी की भी राजनीतिक दृष्टि है जिसे आप व्यापक शब्दों में प्रगतिशील राजनीतिक दृष्टि कह सकते हैं। यह दृष्टि उन्होंने मार्क्सवादी दर्शन के अध्ययन चिंतन और भारत की जनता के दुःख-दर्द का अनुभव करके प्राप्त की है। मार्क्सवादी दर्शन के अनुसार उन्होंने जो राजनीतिक दृष्टि प्राप्त की है, उसके अनुसार उनका यह विश्वास बना है कि भारत में ऐसा राजनीतिक वातावरण होना चाहिए, ऐसी राजनीति होनी चाहिए, जो किसानों, मजदूरों और श्रमशील जनता को समाज में उनके अधिकार दिला सके, उनका शोषण दूर कर सके। ऐसी राजनीति की वे जनवादी सरकार के रूप में कल्पना करते हैं जो जनता की सरकार होगी, न कि पूँजीपतियों, जमींदारों और बड़े-बड़े इजारेदारों की। यह केदारजी की राजनीतिक दृष्टि है, जो उनकी कविताओं में, गीतों में अभिव्यक्त होती है।

आजादी से पूर्व, आजादी की लड़ाई में कांग्रेस के सक्रिय नेताओं की नीतियों की आलोचना, उनके समझौतावादी रुख का विरोध तथा अंग्रेज़ी राज की भर्त्सना – केदार इसी दृष्टि के तहत करते हैं।

वे मानते हैं कि जब तक जनता की राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भागेदारी नहीं होती – जब तक पूँजीपतियों, साम्राज्यवादियों, बड़े-बड़े जमींदारों, इजारेदारों और अंग्रेज़ी राज के खिलाफ एक साथ संघर्ष नहीं किया जाता – तब तक हमें पूर्ण आजादी नहीं मिल सकती। इसलिए जब-जब इस देश में व्यापक जन उभार आया, केदार की राजनीतिक चेतना प्रखरता के साथ उसका समर्थन करती रही, ऐसे जन उभारों के समय लिखी गयी केदार की कविताएँ चाहे प्रचारात्मक अधिक हैं किंतु वे अपने युग, अपने समय की राजनीतिक स्थिति में उनका साथ देती हैं, जो संघर्ष कर रहे हैं, जो शोषित हैं – और जो वास्तव में इस देश और समाज की रीढ़ हैं।

1947 में देश आज़ाद हुआ। देश का बंटवारा हुआ। लेकिन जनक्रांति नहीं हुई। अक्तूबर 47, में केदार ने "शपथ" कविता लिखी – आज़ादी मिलने के बाद भी –

वही जमींदारों का छल है
मानव से मानव शोषित है
अतः आज हम हँसते-हँसते
नयी शपथ यह ग्रहण करेंगे
जनवादी सरकार करेंगे

(कहें केदार खरी-खरी, पृ. 47)

अर्थात् केदार यह मानते हैं कि हमें जो आज़ादी मिली, वो पूरी आज़ादी नहीं थी। पूरी आज़ादी तब मिलेगी जब जमींदारों के शोषण तले गरीब किसान नहीं पिसेगा। आदमी-आदमी का शोषण नहीं करेगा। और यह आज़ादी तभी संभव है जब जनवादी सरकार बने, समाजवादी व्यवस्था की स्थापना हो। केदारजी की राजनीतिक समझ है, जो आज़ादी से पूर्व और आज़ादी के चालीस वर्षों के बाद आज भी, उतनी ही दृढ़ता से सार्थक और अपरिवर्तनशील है।

आज़ादी मिलने के बाद कांग्रेस ने सत्ता संभाली। केदार सत्ताधारी कांग्रेसी नेताओं को अपनी रचना द्वारा बार-बार आगाह करते रहे हैं कि हमें साम्राज्यवादी और पूँजीवादी शक्तियों के हाथों नहीं बिकना है, उनकी सहायता ले कर आगे नहीं बढ़ना है बल्कि आत्मनिर्भरता का

यहाँ हमारी जन्मभूमि पर यदि आएगा डालर
वह अपने साम्राज्यवाद के घोर नशे में
भारतीय पूँजीपतियों से साँठ-गाँठ कर
क्रय दिल्ली की राजनीति को कर लेगा
नेहरू और पटेल की मति को हर लेगा
(कहें केदार खरी-खरी, पृ. 50)

यह आप जानते ही हैं कि आज़ादी मिलने के बाद पंचवर्षीय योजनाएँ आयीं। जनता की आशाएँ मोहभंग की स्थितियों से गुज़रीं, जनसंघर्षों के दौर धीमे पड़ते चले गये, कम्युनिस्ट पार्टी का विभाजन हो गया . . . ऐसी स्थितियों में केदार का राजनीतिक स्वर भी धीमा पड़ा किन्तु जनता के श्रम, संघर्ष और आशाओं में उनका विश्वास कम नहीं हुआ, वे निराश नहीं हुए बल्कि किसानों-मज़दूरों और मेहनतकश जनता को वे बराबर धैर्य बंधाते रहे —

हल चलते हैं फिर खेतों में
फटती है फिर काली मिट्टी
फिर उपजेगा उन्नत मस्तक सिंह अयाली नाज
फिर गरजेगी कष्ट विदारक धरती की आवाज़
(फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. 155)

25.4.2 सामाजिक यथार्थ और श्रम सौंदर्य का चित्रण

प्रगतिशील कवि होने के कारण केदारजी की सामाजिक यथार्थ को देखने की जो दृष्टि है वो वर्ग चेतन प्रधान दृष्टि है। अर्थात् वे समाज में शोषित और शोषक वर्ग में भेद करते हैं और अपनी प्रतिबद्धता शोषितों, मेहनतकश किसानों और मजदूरों के प्रति जाहिर करते हैं। किंतु केदारजी की कविताओं की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि उसमें जनता के पिछड़ेपन को, उसके अंधविश्वासों को नजरअंदाज नहीं किया गया है। सन् 1946 का जन उभार अपनी तर्कसंगत परिणति तक नहीं पहुंचा, इसका कारण वामपक्ष की कमजोरी के अलावा जनता का पिछड़ापन भी था —

अधिकांश जनता का
रद्दी की टोकरी का जीवन है
संज्ञाहीन, अर्थहीन
बेकार चिरे-फटे टुकड़ों सा पड़ा है।
देरी है — एक दिन, एक बार, आग के छूने की
राख हो जाना है।
(गुलमेंहदी, पृ. 29)

कानपुर के मजदूर दिन भर काम करके
काँखते हाँफते
रोज़ की बदबू में मड़ते हैं दुनियां की
(गुलमेंहदी, पृ. 44)

एक मजदूर है चैतू
सूरज डूबे, छुट्टी पाके
जिंदा रहने से उकता के
ठर्रा पीता है और सो जाता है
(गुलमेंहदी, पृ. 47)

इससे बढ़कर है चंदू
कहीं एक कोने में बैठा
हाथ चरस की चिलम दबाए
गुपचुप, गुपचुप फूँक उड़ाता
शेष आयु का धुँआ उड़ाता
(गुलमेंहदी, पृ. 46)

वर्तमान समाज-व्यवस्था में जनशक्ति कैसे बरबाद होती है, इसकी ओर केदार ने बार-बार ध्यान दिया है। उधर मध्यम वर्ग के बाबू का यह हाल है कि छह दिन काम किया है,

सातवाँ दिन अब मिला है
आज तो सुस्ता रहा हूँ

सुस्ता रहे हैं, शान से लेटे हुए हैं,
स्वप्न देखते हैं लंदन से
तीन देवता आ रहे हैं
हिंद अब आज़ाद होने जा रहा है

(गुलमेंहदी, पृ. 60)

केदारजी ने जनता के पिछड़ेपन और अंधविश्वासों पर तो लिखा ही है किंतु श्रम करते हुए मनुष्यों पर बहुत लिखा है। रामविलास शर्मा ने ऐसी कविताओं को "श्रम का सूरज" कहा है। केदार की श्रम के सौंदर्य पर लिखी गयी कविताओं में किसान अक्सर काम करते हुए दिखाया गया है –

पैनी कुसी खेत के भीतर
दूर कलेजे तक ले जा कर
जोत डालता है मिट्टी को

मेरे खेत में हल चलता है
फाड़ कलेजा गड़ जाता है
तड़-तड़ धरती तड़काता है
राह बनाता बढ़ जाता है

(गुलमेंहदी, पृ. 55, 67)

श्रम पर ही केदारजी की एक बहुत सुंदर कविता है "छोटे हाथ"। सुन्दर मुख, सुंदर हाथों की उपमा कमल से दी गयी है लेकिन खेत जोतने वाले किसान के हाथ? केदार के लिए वे कमल जैसे हैं, लाल कमल जैसे, जो सवेरा होते ही काम में लग जाते हैं। हाथ का काम में लगना कमल का खिलना है –

छोटे हाथ
सबेरा होते
लाल कमल से खिल उठते हैं
करनी करने को उत्सुक हो
धूप हवा में हिल उठते हैं

(गुलमेंहदी, पृ. 135)

श्रम के प्रति अपनी इसी निष्ठा के कारण केदार अवकाश भोगी वर्ग का निकम्मापन बर्दाश्त नहीं कर पाते। "डाँगर" को इस वर्ग का प्रतीक बना कर कहते हैं –

ये कामचोर
आरामतलब
मोटे तोंदियल भारी भरकम
हट्टे-कट्टे सब डाँगर ऊँघा करते हैं
हम चौबीस घंटे हाँफते हैं

(गुलमेंहदी, पृ. 50)

केदार के लिए जनता कोई अमूर्त धारणा नहीं है – वह खेतों, खलिहानों में काम करती हुई भिन्न और स्पष्ट आकृतियों वाली जनता है। बुंदेलखंड के आदमी –

हट्टे-कट्टे हाड़ों वाले
चौड़ी चकली काठी वाले

(फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. 73)

युगों से जनता को सिखाया गया है कि उसका दुःख-दर्द उसके पूर्व जन्म के कर्मों का फल है। मेहनत करनी पड़ती है फिर भी खाने को नहीं मिलता, क्योंकि पूर्वजन्म में पाप किये थे। केदार इसके विरोध में नया जीवन-दर्शन लेकर आए हैं। श्रम कभी व्यर्थ नहीं जाता, और श्रम करने वाले लोग ही इस व्यवस्था को बदलेंगे –

खो सकता है
मेरा-तेरा
रत्ती-रत्ती जोड़ा सोना
हो सकता है
पूर्ण असंभव
का भी पूरा संभव होना

किंतु नहीं श्रम
मेरा-तेरा
इन हाथों का खो सकता है
इनके द्वारा
कर्म असंभव
पूरा संभव हो सकता है।

(गुलमेंहदी, पृ. 159)

बोध प्रश्न 2

1 केदारनाथ अग्रवाल किस प्रकार की राजनीति की तरफदारी करते हैं – चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....
....
....
....

2 सामाजिक यथार्थ को देखने की केदारजी की दृष्टि कैसी है, सही पर निशान लगाइए।

क) वर्गहीन
ख) वर्गचेतन प्रधान
ग) व्यक्तिवादी

केदारजी किसानों, मजदूरों की सामाजिक, आर्थिक हालत की चर्चा करते हुए भी उनके पिछड़ेपन को नजरदाज नहीं करते, कोई उदाहरण दीजिए।

....
....
....
....

25.4.3 परिवेश और प्रकृति के प्रति लगाव

केदारजी ने प्रकृति पर ढेरों कविताएँ लिखी हैं। बुंदेलखंड की प्रकृति और प्राकृतिक परिवेश उनकी कविताओं में जीवंत होकर आया है। अपने परिवेश और प्रकृति से केदार का यह लगाव जीवन के प्रति गहरी आसक्ति का ही सूचक है। प्रकृति के बारे में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए केदार कहते हैं – "प्रकृति में हम रहते हैं जो हमारे लिए माँ है – उसी को हमने अपने आज के साहित्य से निष्कासित कर दिया है और हम हो गए हैं प्रकृतिविहीन निस्संग आदमी। प्रकृति और जीवन से उद्भुत हुआ करता है सौंदर्य"। यह सौंदर्य केदार की प्रकृति संबंधी कविताओं में बिखरा पड़ा है। एक प्रगतिशील कवि प्रकृति पर कविताएँ लिखता है तो प्रकृति को भी वो सामाजिक यथार्थ से भिन्न करके नहीं देखता। केदार का प्रकृति चित्रण भी सामाजिक वास्तविकता और यथार्थ के अनुभव से विच्छिन्न नहीं है। इसलिए गेहूँ की लहलहाती फसल केदार को हिम्मत वाली लाल फौज की याद दिलाती है।

आरपार चौड़े खेतों में
चारों ओर दिशाएँ घेरे
लाखों की अगणित संख्या में
ऊँचा गेहूँ डटा खड़ा है
ताकत से मुट्ठी बाँधे है
नोकीले भाले ताने है
हिम्मत वाली लाल फौज सा
मर मिटने को झूम रहा है।

(गुलमेंहदी पृष्ठ 21)

बुंदेलखंड की प्रकृति और किसानी परिवेश केदार की कविताओं में इतना रच बस कर आता है कि मानो यही उनकी रचनादृष्टि का प्रेरक तत्व है। चंद्रगहना से लौटती बार वे एक मेड़ पर बैठ जाते हैं और देखते हैं –

एक बीते के बराबर
यह हरा ठिगना चना
बाँधे मुरेठा शीश पर
छोटे गुलाबी फूल का
सज कर खड़ा है

(फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृष्ठ 2)

केदार को प्रकृति के वे रूप अधिक भाते हैं जिनमें गीत, जीवन, खुलापन, उत्साह और उमंग की अभिव्यक्ति होती है। इसलिए उन्हें धूप, नदी, पहाड़, बादल, हवा, फसलें बहुत आकृष्ट करती हैं।

धूप धरा पर उतरी
जैसे शिव के जटाजूट पर
नभ से गंगा उतरी

केदार को जैसे उगते सूरज की धूप बहुत प्रिय हैं, उसी तरह बसंत ऋतु भी बहुत प्रिय है। सरसों और फागुन उनकी कविता में एक साथ दिखाई देते हैं।

और सरसों की न पूछो
हो गयी सबसे सयानी
हाथ पीले कर लिये हैं
ब्याह मंडप में पधारी
फाग गाता मास फागुन
आ गया है आज जैसे

(फूल नहीं, पृष्ठ 17-18)

प्रकृति के प्रति गहरे लगाव के कारण बसंत ऋतु में खिले फूल ही केदार को आकृष्ट नहीं करते बल्कि छोटे से पोखर के तले उगी हुई घास देखकर भी वे उल्लसित होते हैं —

और पैरों के तले है एक पोखर
उठ रही इसमें लहरियाँ
नील तल में जो उगी है घास भूरी
ले रही वह भी लहरियाँ

(फूल नहीं, पृष्ठ 18)

केदार की एक बहुत प्रसिद्ध कविता है — "बसंती हवा", जिसमें मुक्ति की कामना बड़े उदात्त ढंग से अभिव्यक्त हुई है।

अनोखी हवा हूँ, बड़ी बावली हूँ
बड़ी मस्तमौला, नहीं कुछ फिकर है
बड़ी ही निडर हूँ, जिधर चाहती हूँ
उधर घूमती हूँ, मुसाफिर अजब हूँ
न घर-बार मेरा, न उद्देश्य मेरा
न इच्छा किसी की, न आशा किसी की
न प्रेमी, न दुश्मन
जिधर चाहती हूँ, उधर घूमती हूँ
हवा हूँ, हवा मैं बसंती हवा हूँ

आपने देखा कि केदार का प्रकृति चित्रण उनके प्राकृतिक परिवेश, स्थानिकता, उनकी सामाजिक विचारधारा और यथार्थबोध से गुंथा हुआ है।

25.4.4 प्रेम संबंधी कविताएँ

कुछ लोगों का यह मानना है कि प्रगतिशील कवि केवल मजदूर और किसानों के बारे में ही लिखता है — जीवन के अन्य पक्षों के बारे में वो नहीं लिखता। यह बात उन कवियों के बारे में सही हो सकती है, जो प्रगतिशीलता को एक वाद या नारे के रूप में अपनाते हैं किंतु सच्चे प्रगतिशील कवि जीवन को उसकी समग्रता में ग्रहण करते हैं और जीवन का कोई भी पक्ष उनके लिए त्याज्य नहीं होता। प्रगतिशीलता उनकी जीवन दृष्टि का भाग होती है। केदारजी ने प्रेम और प्रकृति पर ढेरों कविताएँ लिख कर इस बात को सिद्ध किया है कि वे रूढ़ अर्थों में प्रगतिशील नहीं हैं।

बल्कि केदारजी ने अपने कवि जीवन का प्रारंभ ही प्रेम और श्रृंगार के रोमानी कवि के रूप में किया था। और आज तक वे निरंतर प्रेम कविताएँ लिखते रहे हैं जो मुख्यत: "नींद के बादल", "गुलमेंहदी", "जमुन जल तुम", "जो शिलाएँ तोड़ते हैं" और "हे मेरी तुम!" आदि काव्य संग्रहों में संकलित हैं।

केदारजी का प्रेम रोमांटिक कवियों की तरह भावुकता से सना-पगा और काल्पनिक नहीं रहा है। उनका प्रेम अपनी प्रेमिका को एक व्यापक परिवेश में देखने की सामर्थ्य रखता हुआ विकसित हुआ है। उनके प्रेम की दूसरी विशेषता यह है कि उन्होंने स्वकीया प्रेम किया है, परकीया प्रेम नहीं। अर्थात् उन्होंने अपनी पत्नी से ही प्रेम किया है, वे आरंभ ही से सामाजिक मर्यादित प्रेम के हिमायती रहे हैं।

स्वकीया प्रेम की यह विशेषता होती है कि आठों पहर मधुचर्या करने की बजाए प्रेमी एक-दूसरे के जीवन के विभिन्न अनुभवों में हिस्सा बँटाते हैं जब कि परकीया प्रेम में सामाजिक मर्यादा के साथ-साथ व्यक्ति अपने दायित्वबोध को भी भुला बैठता है। केदार ने मानवीय भूमि पर स्वकीया प्रेम की स्वस्थ भावना को खड़ा किया है।

केदार की प्रेम कविताओं में प्रेम व्यंजना के साथ-साथ सामाजिक प्राकृतिक परिवेश भी अपने यथार्थ के साथ गुंथ कर आता है, जैसे :

सिर्फ प्रेम व्यंजना वाली कविता

हे मेरी तुम!
यह जो लाल गुलाब खिला है, खिला करेगा
यह जो रूप अपार हँसा है, हँसा करेगा
यह जो प्रेम-पराग उड़ा है, उड़ा करेगा।

(जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृष्ठ 158)

प्रेम के साथ यथार्थ प्राकृतिक परिवेश

हे मेरी तुम!
काले-काले छाये बादल उड़ जाएँगे
गाँवो-खेतों मैदानों को, तज जाएँगे

(जो शिलाएँ तोड़ते हैं,, पृष्ठ 166)

केदार अपनी "तुम" को याद करते हुए अपने गाँव, अपने परिवेश, अपनी आंचलिक प्रकृति को नहीं भूलते। हिंदी में शायद ही किसी कवि ने प्रेम संबंधी कविताओं में अपने गाँव को इतने विस्तार से याद किया हो –

प्यारी। मेरे जन्म गाँव में
प्यारी। उसी लड़कपन वाले गाँव में
प्यारी। उसी पढ़ाई वाले गाँव में
प्यारी। उसी रामलीला वाले गाँव में
प्यारी। उसी कमासिन गाँव में
अपने प्यारे गाँव में
नैनी से तुमको लाया हूँ।

(जमुन जल तुम, पृष्ठ 59-63)

केदार की प्रेम संबंधी कविताओं में प्रकृति का प्रेम, कविता का प्रेम, पत्नी का प्रेम इनका संगम हो जाता है। यह विशेषता उनके अपने व्यक्तित्व के विकास से ही संभव हुई है। जैसे-जैसे उम्र ढलती है, शेष जीवन के लिए प्रेम उतना ही महत्वपूर्ण होता जाता है। केदार की सहज भाव से लिखी हुई प्रेम कविताएँ कवि की मनोदशाओं के उतार-चढ़ाव को बहुत अच्छी तरह से प्रकट करती हैं। इनमें करुणा की ऐसी अंतर्धारा है जो प्रेम को और भी मूल्यवान बना देती है। मृत्यु से भय है, चिड़ीमार ने चिड़िया मारी, किसी तरह कवि उसे जिलाए हुए हैं। काल बड़ा क्रूर है,

लेकिन अपना प्रेम प्रबल है। सुख-दुख दोनों
साथ पियेंगे
काल क्रूर से नहीं डरेंगे
नहीं डरेंगे
नहीं डरेंगे

(हे मेरी तुम, पृष्ठ 14)

केदार जी की प्रेम कविताओं की यह विशेषता है कि उनमें कवि की सामाजिक यथार्थ दृष्टि अभिव्यक्त होती है। इसीलिए प्रेम कविताओं में प्राकृतिक परिवेश, आँचलिक प्रकृति और प्रेम की उदात्तता, गरिमा और व्यापक मानवीय संदर्भ गुंथे रहते हैं।

बोध प्रश्न 3

1) केदार का प्रकृति चित्रण सामाजिक वास्तविकता और यथार्थ के अनुभव से विच्छिन्न नहीं है — कोई उदाहरण देकर बताइये।

....
....
....
....
....
....

2) केदार को प्रकृति के कौन से रूप अधिक भाते हैं और क्यों? चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....
....
....
....

3) केदार का प्रेम वर्णन सामाजिक यथार्थ दृष्टि से विच्छिन्न नहीं है? उदाहरण सहित दस पंक्तियों में टिप्पणी कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

4) केदारजी के प्रेम की दो तीन विशेषताएँ बताइये

....
....
....
....

25.5 संरचना शिल्प

केदारजी की काव्य विशेषताओं को पढ़ते हुए आपने उनके काव्य के उदाहरण भी पढ़े हैं। आपने देखा कि केदार की कविताएँ बहुत सहज, सरल हैं और आसानी से समझ में आ जाती हैं। कविता में सहजता और सरलता का यह गुण केदार को लोकजीवन से गहरे रूप में संबद्ध रहने के कारण मिला है। उनकी कविताओं की संरचनात्मक पद्धति और शिल्प की सबसे बड़ी विशेषता है संप्रेषणीयता।

यह शिल्प छायावादी कविता, और प्रयोगवादी कविता के शिल्प से भिन्न है। छायावादी भाषा जहाँ संस्कृतनिष्ठ, रोमानी और सायास गढ़े हुए शब्दों से आकार ग्रहण करती थी – वहीं प्रयोगवाद और आधुनिक कविता की भाषा में भी उलझाव जटिलता बहुत है। इसका कारण शायद वैचारिक दृष्टि और कथ्य के चुनाव पर है। छायावादी कवियों का कथ्य रोमानी एवं वायवी अधिक रहा है। इसी कारण भाषा और कला रूप पर अधिक ध्यान दिया गया है। प्रयोगवादी कविता का कथ्य भी मध्यवर्गीय जीवन की कुछ जटिलताओं को प्रयोगधर्मिता के आधार पर देखना रहा है – इसलिए भाषा और काव्य संरचना भी जटिल होती रही है। केदार के काव्य का कथ्य संपूर्ण मानव और जीवन को वैचारिक दृष्टि से संवेदनात्मक धरातल पर ग्रहण करके अभिव्यक्ति देता है। फलत: केदार के यहाँ भाषा कथ्य को छिपाती या उलझाती नहीं बल्कि पूरी संवेदना और वैचारिक स्पष्टता के साथ पाठक के सामने उद्घाटित करती है। चाँद प्रकृति का नैसर्गिक सौंदर्य हो, प्रेम कविताएँ हों, किसान-मजदूर के श्रम को उद्घाटित करती हुई रचनाएँ हों या राजनीतिक कविताएँ – यह स्पष्टता और सहजता बराबर बनी रहती है।

केदार की काव्य भाषा में ऐन्द्रियकता, चित्रात्मकता और लोकजीवन के विभिन्न रंग बहुत साफ होकर उभरते हैं। वे अपनी कविता में जिन बिंबों और प्रतीकों को लेते हैं, वे मानव संसार से जुड़े हुए बिंब और प्रतीक हैं। प्राकृतिक बिंब और प्रतीक भी मनुष्य की मुक्ति आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति देने के लिए आते हैं – जैसे –

दहका खड़ा है
सेमल का पुरनिया पेड़
टपाटप टपकाता
जमीन पर
लाल लाल फूली आग

(हे मेरी तुम, पृष्ठ 55)

यहाँ सेमल के पुरनिया पेड़ से लाल-लाल फूली टपकती आग क्रांति का संकेत बन गयी है।

केदार जीवन को कभी भी एक दृश्यपटल में बदल कर उसका वर्णन नहीं करते बल्कि जीवन के बीच में अपने आपको रखकर यथार्थ से साक्षात्कार करते हैं – इसीलिए उनकी भाषा के कई तेवर हैं – जन आंदोलनों के समय लिखी गई राजनीतिक कविताएँ प्रचारात्मक हैं – किंतु प्रकृति के नैसर्गिक सौंदर्य का चित्रण करते हुए उनकी भाषा में ऐन्द्रियकता, चित्रात्मकता इस खूबी के साथ गुंथ कर आती है कि संपूर्ण कविता प्रकृति के सौंदर्य की कलात्मक अभिव्यक्ति बन जाती है। उनकी एक प्रसिद्ध कविता है "बसंती हवा" – जिसमें हवा की मुक्ति की आकांक्षा कविता के खत्म होते – मानव मुक्ति के स्वप्न से जुड़ कर और भी अर्थगर्भित हो जाती है।

लयात्मकता उनकी भाषा की एक अन्य खूबी है जो उनकी लोकजीवन और जातीय संस्कृति की गहरी पहचान की सूचक है। उनकी भाषा में लोकजीवन के शब्द उनकी इसी पहचान को बढ़ाते हैं।

सरल और सहज भाषा में कविता रचते हुए केदार जन के करीब और अपने तो रहते ही हैं किंतु शब्दों, बिंबों का सचेत प्रयोग वे इस प्रकार करते हैं कि यह सरलता और सहजता ही विशिष्ट बन जाती है। जैसे उनकी कविता की एक पंक्ति है – "पानी की देह में सूरज उगा है" सूर्योदय का यह दुर्लभ और जीवंत चित्र है। इससे भाषा की व्यंजना शक्ति भी बढ़ी है और प्रकृति सौंदर्य भी।

प्रगतिशील कवियों के शिल्प की एक अन्य खूबी यह है कि उनके विशेषण, बिंब प्रतीक आदि क्रिया से जुड़े रहते हैं क्योंकि प्रगतिशील कविता निरंतर संघर्ष की कविता है, इसीलिये उसमें क्रिया की प्रधानता है। केदार की कविता में भी देखना, सुनना बहुत अधिक है – वह प्रत्येक अनुभव को क्रिया से जोड़कर ही अभिव्यक्त करते हैं, जैसे –

मैंने उसको देखा
जब-जब देखा
लोहा देखा
लोहा जैसा
तपते देखा
गलते देखा
ढलते देखा

मैंने उसको
बोली जैसा
चलते देखा।

पहले जब देखा था, सावन था, बादल थे
इससे कम देखा था
अब तो यह फागुन है
फूलों में देखा है
रंगों से
गंधों से बाँधे तन देखा है
इससे अब देखा है

कुल मिलाकर केदार की काव्य भाषा सरल सहज है, उसमें चित्रात्मकता ऐन्द्रियकता है उसमें लोकगीतों की अनुगूंज है - और यह भाषा देश की मेहनतकश जनता के सुख दुःख एवं जीवन से सरोकार रखती है।

बोध प्रश्न 4

1) केदारजी की कविताओं के शिल्प की सबसे प्रमुख विशेषता कौन-सी है?

....

2) केदारजी की काव्य भाषा की विशेषताएँ संक्षेप में बताइए।

....

....

....

....

25.6 काव्य पाठ एवं व्याख्या

यहाँ हम आपको केदारनाथ अग्रवाल की दो कविताएँ दे रहे हैं जिन्हें पढ़कर आप केदारजी की कविता से परिचित हो सकेंगे। इसके बाद इन्हीं कविताओं में से हम आपको एक कवितांश की संदर्भ सहित व्याख्या करके बताएँगे कि इन कविताओं को आप कैसे विश्लेषित कर सकते हैं। एक कवितांश की व्याख्या आप करें जिसमें हम आपकी सहायता करेंगे।

"यह धरती है उस किसान की"

यह धरती है उस किसान की
जो बैलों के कंधों पर
बरसात घाम में,
जुआ भाग्य का रख देता है,
खून चाटती हुई वायु में
पैनी कुसी खेत के भीतर
दूर कलेजे तक ले जाकर
जोत डालता है मिट्टी को
पाँस डाल कर
और बीज फिर बो देता है
नये वर्ष में नयी फसल के।
ढेर अन्न का लग जाता है।
यह धरती है उस किसान की।

नहीं कृष्ण की
नहीं राम की
नहीं भीम, सहदेव, नकुल की
नहीं पार्थ की
नहीं राव की, नहीं रंक की

नहीं तेग, तलवार,धर्म की
नहीं किसी की, नहीं किसी की
धरती है केवल किसान की।

सूर्योदय, सूर्यास्त असंख्यों
सोना ही सोना बरसा कर
मोल नहीं ले पाए इसको
भीषण बादल
आसमान में गरज-गरज कर
धरती को न कभी हर पाये
प्रलय सिंधु में डूब-डूब कर
उभर-उभर आयी ऊपर।
भूचालों-भूकम्पों से यह मिट न सकी है।
यह धरती है उस किसान की
जो मिट्‌टी का पूर्ण पारखी
जो मिट्‌टी के संग साथ ही
तप कर
गल कर
जी कर
मर कर
खपा रहा है जीवन अपना
देख रहा है मिट्‌टी में सोने का सपना
मिट्‌टी की महिमा गाता
मिट्‌टी के ही अन्तः स्थल में
अपने तन की खाद मिला कर
मिट्‌टी को जीवित रखता है
खुद जीता है
यह धरती है उस किसान की।

(इस कविता में कवि केदारनाथ अग्रवाल कहते हैं कि यह धरती उस किसान की है जो इस पर हल चलाता है और अन्न उपजाता है। कवि कहता है कि यह धरती न तो ईश्वर की है, न ही राजाओं महाराजाओं की, न ही धर्म की – यह धरती केवल किसान की है जो अपना खून-पसीना बहा कर इस धरती को भी जीवित रखता है और धरती पर रहने वाले मनुष्यों को भी।)

"धूप चमकती है चाँदी की साड़ी पहने"

धूप चमकती है चाँदी की साड़ी पहने
मैके में आयी बेटी की तरह मगन है
फूली सरसों की छाती से लिपट गयी है
जैसे दो हमजोली सखियाँ गले मिली हैं
भैया की बाहों से छूटी भौजाई-सी
लहँगे की लहराती लचती हवा चली है
सारंगी बजती है खेतों की गोदी में
दल के दल पक्षी उड़ते हैं मीठे स्वर के
अनावरण यह प्राकृत छवि की अमर भारती
रंग-बिरंगी पंखुड़ियों की खोल चेतना
सौरभ से मँह-मँह महकाती है दिगन्त को
मानव मन को भर देती है दिव्य दीप्ति से
शिव के नन्दी-सा नदिया में पानी पीता
निर्मल नभ अवनी के ऊपर बिसुध खड़ा है
काल काग की तरह ठूँठ पर गुमसुम बैठा
खोयी आँखों देख रहा है दिवास्वप्न को।

(इस कविता में कवि ने प्रकृति का मनोहर चित्रण किया है। उसे लगता है कि धूप मानों मायके में आयी बेटी की तरह मगन हो कर खिली हुई सरसों से ऐसे गले लिपट गयी है, जैसे

दो सहेलियाँ गले मिल रही हों। और हवा ऐसे चल रही है जैसे भैया की बाहों से भौजाई शर्म से छूट कर भाग खड़ी हुई हो। खेतों में हवा के चलने से मानों सारंगी बज रही है, पक्षियों के झुंड के झुंड मीठे स्वर गाते हुए उड़ रहे हैं। प्रकृति की यह छवि चारों दिशाओं को महका रही है – आसमान धरती के ऊपर उसी भाँति खड़ा दीख रहा है जैसे शिव का नांदी नदिया में पानी पी रहा हो।)

व्याख्या

यह धरती है उस किसान की
जो मिट्टी का पूर्ण पारखी
जो मिट्टी के संग साथ ही
तप कर
गल कर
जी कर
मर कर
खपा रहा है जीवन अपना
देख रहा है जीवन अपना
देख रहा है मिट्टी में सोने का सपना
मिट्टी की महिमा गाता
मिट्टी के ही अन्तः स्थल में
अपने तन की खाद मिलाकर
मिट्टी को जीवित रखता है
खुद जीता है
यह धरती है उस किसान की।

संदर्भ: केदारनाथ अग्रवाल की कविता "यह धरती है उस किसान की" से उद्धृत ये पंक्तियाँ डॉ. रामविलास शर्मा द्वारा संपादित पुस्तक "प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल" नामक पुस्तक में संकलित कविता से ली गयी हैं।

प्रसंग: केदारनाथ अग्रवाल ने किसानी जीवन पर लिखा है। डॉ. शिवकुमार मिश्र तो उन्हें किसानी संवेदना का कवि ही मानते हैं। केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिशील कवि हैं – वे यह जानते हैं कि इस देश की 80% जनता किसानी या मजदूरी करके पेट पालती है। जनता के जीवन को उन्होंने बहुत करीब से देखा और अनुभव किया है। इन पंक्तियों में कवि धरती और उस पर हल चला कर अन्न उपजाने वाले किसान के बारे में कहता है कि यह धरती केवल उसी की है जो उस पर अन्न उपजाता है।

व्याख्या: कवि कहता है कि यह धरती उस किसान की है जो मिट्टी का पूर्ण पारखी है अर्थात् जो इस मिट्टी में अन्न उगाना जानता है, जो इस मिट्टी के साथ ही गल कर, खप कर, जी कर, मर कर अपना जीवन खपा रहा है – अर्थात् इतनी मेहनत करने के बाद भी किसान की स्थिति ऐसी नहीं है कि वह सुख से रह सके। यहाँ कवि का इशारा भारतीय किसान की आर्थिक, सामाजिक स्थिति की ओर है। किसान सब लोगों के लिए अन्न उपजाता है, मेहनत करता है किंतु फिर भी जमींदार, सामंत आदि के शोषण तले पिसता रहता है। कवि आगे कहता है कि ऐसी स्थितियों में भी किसान मिट्टी में सोना उपजाने का सपना देखता है अर्थात् उसे उम्मीद है कि स्थितियाँ बदलेंगी और उसकी मेहनत का सच्चा फल उसे ही मिलेगा। इसलिए उसे अपनी मेहनत पर विश्वास है, इस धरती पर, मिट्टी पर विश्वास है – वो मिट्टी की महिमा के गीत गाता है। वह अपने तन की खाद मिट्टी में मिलाकर मिट्टी को जीवित रखता है अर्थात् अपनी संपूर्ण शक्ति और मेहनत वो मिट्टी को उपजाऊ बनाने में लगाता रहता है। इसी तरह वह खुद जीता है और मिट्टी को भी जिंदा रखता है। यह धरती उसी किसान की है जो मिट्टी को उपजाऊ बनाता है, उससे अन्न उपजा कर लोगों तक पहुँचाता है।

विशेष: केदारजी ने किसानी जीवन पर बहुत लिखा है। किसानों के सुख दुःख, उनके जीवन और उनकी समस्याओं को उन्होंने बहुत करीब से देखा और जाना है। इन पंक्तियों में कवि सिर्फ यह नहीं कहना चाहता कि धरती और किसान का अटूट रिश्ता है बल्कि वो यह बात जोर देकर कहना चाहता है कि इस रिश्ते का जमींदारों, सामंतों और सत्ताधारियों द्वारा जो शोषण किया गया है, किया जा रहा है, वो खत्म होना चाहिए। धरती को भगवान की संपत्ति

बताकर ऐसे लोग किसानों का शोषण करते हैं और गरीब किसान अपनी मेहनत के फल से वंचित रह जाता है, उसकी सारी मेहनत बड़े-बड़े लोग हड़प जाते हैं।

भाषा: इन पंक्तियों की भाषा सरल और संप्रेषणीय है। केदारजी की काव्य भाषा की यह बहुत बड़ी विशेषता है कि कविता को समझने में दूर की कौड़ी का सहारा नहीं लेना पड़ता।

व्याख्या 2

यहाँ हम केदार जी की इसी कविता का एक अन्य काव्यांश दे रहे हैं, जिसकी व्याख्या आप स्वयं करेंगे। व्याख्या के लिए आप ऊपर दी गयी व्याख्या से सहायता ले सकते हैं।

यह धरती है उस किसान की
जो बैलों के कंधों पर
बरसात घाम में
जुआ भाग्य का रख देता है
खून चाटती हुई वायु में
पैनी कुसी खेत के भीतर
दूर कलेजे तक ले जाकर
जोत डालता है मिट्टी को
पाँस डाल कर
और बीज फिर बो देता है
नये वर्ष में नयी फसल के
ढेर अन्न का लग जाता है
यह धरती है उस किसान की।

संदर्भ: ये पंक्तियाँ केदारनाथ अग्रवाल की कविता "यह धरती है उस किसान की" कविता से ली गयी हैं। यह कविता रामविलास शर्मा द्वारा संपादित पुस्तक "प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल" नामक पुस्तक में संकलित हैं।

प्रसंग:

....
....
....
....
....
....

व्याख्या:

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

विशेष:

....
....
....

....

....

....

25.7 सारांश

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिशील काव्यांदोलन के एक प्रमुख कवि हैं। आज़ादी के पूर्व से लेकर आज तक वे अपनी काव्य यात्रा में लगे हुए हैं। उनकी राजनीतिक दृष्टि मार्क्सवादी विचार दर्शन के चिंतन-मनन से प्राप्त की हुई प्रगतिशील राजनीतिक दृष्टि है। केदारनाथ ने राजनीतिक कविताएँ लिखी हैं, जिनमें इस देश के चालीस वर्षों का राजनीतिक इतिहास कैद है। राजनीतिक कविताओं के अलावा केदार ने प्रकृति, प्रेम और श्रम करते हुए तथा संघर्षशील मानव के बारे में बहुत लिखा है। वास्तव में केदारनाथ अग्रवाल आम जनता के कवि हैं, केदारनाथ अग्रवाल की भाषा सरल, सहज अतः संप्रेषणीय है। प्रगतिशील कवियों की भाषा का सबसे बड़ा गुण संप्रेषणीयता ही होता है। किंतु सरल होते हुए भी यह भाषा बहुत कलात्मक है। केदार अधिकतर मानव संसार के बिंबों का प्रयोग करते हैं। प्राकृतिक बिंब और प्रतीक भी वे मानवीय अनुभूतियों और संवेदनाओं को व्यक्त करने के लिए लाते हैं। केदार में एक खास तरह की स्थानिकता, आँचलिकता है, जिसमे उनकी रचनाओं में एक सहजता, अपनी जमीन से जुड़े होने का एहसास और लोकजीवन के विभिन्न रंग मिलते हैं। सारांशतः केदारनाथ अग्रवाल इस देश के श्रमशील मनुष्य के सुख-दुःख की वाणी देने वाले प्रमुख प्रगतिशील कवि हैं।

25.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

डॉ. रामविलास शर्मा: प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद।

अजय तिवारी (सं.): केदारनाथ अग्रवाल, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद।

भगत रावत, राजेन्द्र शर्मा, मनोहर देवलिया (सं.): जिऊँगा अभी और अभी और, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद।

25.9 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

क) उपन्यास, अनुवाद, यात्रा संस्मरण
ख) मार्क्सवादी विचारधारा का

बोध प्रश्न 2

1 केदारजी ऐसी राजनीति की तरफदारी करते हैं जो समाज में शोषित जन को उनके अधिकार दिला सके, समाज में भेदभाव को समाप्त करे, मनुष्य मनुष्य का शोषण न करे।

2 (ख)

3 एक मजदूर है चैतू
सूरज डूबे, छुट्टी पाके
जिंदा रहने से उकता के
ठर्रा पीता है और सो जाता है

बोध प्रश्न 3

1 आर पार चौड़े खेतों में

चारों ओर दिशाएँ घेरे
लाखों की अगणित संख्या में
ऊँचा गेहूँ डटा खड़ा है
ताकत से मुट्ठी बाँधे है
नोकीले भाले ताने है
हिम्मत वाली लाल फौज सा
मर मिटने को झूम रहा है।

इसलिए उन्हें प्रकृति के वे रूप अधिक भाते हैं जिनमें गति, जीवन, खुलापन, उत्साह और उमंग की अभिव्यक्ति होती है। (क्योंकि केदार जीवनासक्ति के कवि हैं, वे जीवन को सकारात्मक दृष्टि से देखते हैं।)

केदार का प्रेम वर्णन सामाजिक यथार्थ दृष्टि से विच्छिन्न नहीं है। अपनी प्रिया पर कविता लिखते हुए वे सामाजिक परिवेश, गाँव, खेत-खलिहान, आँचलिक प्रकृति और अपने परिवेश को नहीं भूलते। बल्कि ये सब उनकी कविता का अंग बन जाते हैं जैसे अपनी प्रिया को गाँव में लाने के वर्णन में उनका गाँव अपने यथार्थ रूप में चित्रित हुआ है।

प्यारी। मेरे जन्म गाँव में
प्यारी। उसी लड़कपन वाले गाँव में
प्यारी। उसी पढ़ाई वाले गाँव में
प्यारी। उसी रामलीला वाले गाँव में
प्यारी। उसी कमासिन गाँव में
अपने प्यारे गाँव में
नैनी से तुमको लाया हूँ।

3 ● केदारजी का प्रेम स्वकीया प्रेम है
● वो सामाजिक यथार्थ से विच्छिन्न नहीं है
● केदार जी का प्रेम भावुकता से सना-पगा नहीं है।

बोध प्रश्न 4

1 संप्रेषणीयता केदारजी की कविताओं के शिल्प की प्रमुख विशेषता है

2 ऐन्द्रियकता, चित्रात्मकता, लयात्मकता

इकाई 26 नागार्जुन

इकाई की रूपरेखा

26.0 उद्देश्य
26.1 प्रस्तावना
26.2 पृष्ठभूमि
26.3 जीवन परिचय एवं कृतित्व
26.4 नागार्जुन के काव्य की अन्तर्वस्तु
    26.4.1 सामंती व्यवस्था के खिलाफ
    26.4.2 जीवन की विसंगतियों और अंतर्विरोधों का चित्रण
    26.4.3 राजनीतिक व्यंग्य की कविताएँ
    26.4.4 निजी जीवन प्रसंगों पर लिखी कविताएँ
    26.4.5 प्रकृति-चित्रण
26.5 संरचना शिल्प
    काव्य रूप, काव्य भाषा
26.6 काव्य वाचन और संदर्भ सहित व्याख्या
26.7 सारांश
26.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
26.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

26.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- प्रगतिशील कवि नागार्जुन के युग की पृष्ठभूमि एवं उनके जीवन और कृतित्व के बारे में जान सकेंगे,
- नागार्जुन की विषयगत काव्य विशेषताओं के बारे में बता सकेंगे,
- नागार्जुन की कविता की व्याख्या कर सकेंगे, और
- उनकी कविताओं की शिल्पगत विशेषताओं को जान सकेंगे।

26.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने प्रगतिशील कवि केदारनाथ अग्रवाल के बारे में अध्ययन किया था। इस इकाई में आप एक और प्रगतिशील कवि नागार्जुन के बारे में अध्ययन करेंगे। सबसे पहले हम नागार्जुन की युगीन पृष्ठभूमि को देखेंगे। नागार्जुन की युगीन पृष्ठभूमि भी वही रही है, जो केदारनाथ अग्रवाल की रही है। नागार्जुन भी आजादी से पूर्व से लेकर आज तक रचना कर्म में संलग्न हैं। इसके बाद आप नागार्जुन के जीवन परिचय और कृतित्व की जानकारी हासिल करेंगे। नागार्जुन का जीवन बहुत वैविध्यपूर्ण रहा है। यायावरी और फक्कड़पन उनके जीवन और व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषताएँ हैं। नागार्जुन ने लगभग सारा देश घूमा है, देश और जनता को बहुत करीब से जाना है। गरीब परिवार में पैदा होकर नागार्जुन ने गरीबी को, अभावों को, जीवन की कठिनाइयों को स्वयं झेला है।

अन्तर्वस्तु में आप नागार्जुन की काव्य विशेषताओं के बारे में पढ़ेंगे। नागार्जुन के काव्य की अन्तर्वस्तु का दायरा बहुत बड़ा है। उन्होंने अपने कवि जीवन के लगभग पचास वर्षों में हजार के आसपास कविताएँ लिखी हैं। अरुण कमल उन के काव्य की अन्तर्वस्तु के बारे में लिखते हैं – "एक-एक कतरे को एक-एक कविता को जोड़ने से जो नक्शा बनता है, वह इतना विस्तृत, इतना जन संकुल है कि किसी एक बिंब या सूत्र में उनके काव्य लोक को व्यक्त नहीं किया जा सकता। यह हजार-हजार बाहों वाली कविताएँ हैं, हजार दिशाओं को इंगित करती, हजार वस्तुओं को अपनी मुट्ठियों में थामे।' वास्तव में नागार्जुन की काव्य भूमि इतनी व्यापक है कि उसे खंड-खंड करके देख पाना संभव नहीं है। नागार्जुन का काव्य संसार 'मिथिला के रुचिर भूभाग से लेकर मुलुण्ड के अति सुदूर प्रदेश तक फैली हुई काव्य

भूमि, बिहार के सामंती उत्पीड़न से लेकर अमरीकी साम्राज्यवाद तक की शोषण-शृंखला, भूमिहीन मजदूरों के दुर्दम संघर्ष से लेकर जूलियन रोजनबर्ग की महान संघर्ष गाथा और नितांत व्यक्तिगत जीवन-प्रसंगों से प्राप्त सुख-दःख से लेकर बाकी सारे जगत के सुख-दुःख मोतिया नेवले और मधुमती गाय तक के, यह चौहद्दी है नागार्जुन के काव्य-महादेश की।" (अरुण कमल, आलोचना, अंक 56-57, पृष्ठ 27)।

संक्षेप में नागार्जुन की कविताओं का हम राजनीतिक व्यंग्य की कविताएँ, सामंती व्यवस्था के उत्पीड़न के खिलाफ लिखी गयी कविताएँ और मानवीय, निजी संबंध और प्रकृति संबंधी कविताएँ शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन करेंगे।

संरचना शिल्प के अन्तर्गत आप नागार्जुन के काव्य शिल्प, काव्य भाषा के बारे में पढ़ेंगे। नागार्जुन जैसे विषय-वस्तु के संदर्भ में वैविध्यपूर्ण हैं, वैसे ही शिल्प और भाषा के संदर्भ में भी हैं। उनके बात करने के हजार ढंग हैं। जितने मुँह, उतनी बोली। कभी तो वे निपट पारंपरिक छंद में लिखते हैं तो कभी शुद्ध 'गद्य कविता' लिखते हैं। छंदों के अनेक प्रकार हैं, एक ही छंद की अनेक लयें हैं। एक ही कविता में बार-बार छंद बदल सकता है इसी तरह उनकी भाषा के भी अनेक तेवर हैं।

आइये, नागार्जुन की युगीन पृष्ठभूमि देखें।

26.2 पृष्ठभूमि

पिछली इकाई में हमने प्रगतिशील कवि केदारनाथ अग्रवाल को प्राप्त जिस राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक पृष्ठभूमि की विस्तार से चर्चा की थी – लगभग वही पृष्ठभूमि नागार्जुन की भी है। वैसे भी ये दोनों कवि हमउम्र हैं, दोनों के सरोकार एक हैं, दोनों कवि भारत की शोषित, पीड़ित और अत्याचार सहती जनता के पक्षधर हैं – दोनों कवि अपने युग, इतिहास को प्रगतिशील चेतना से संस्कारित रचना दृष्टि से अभिव्यक्ति दे रहे हैं। इसलिए हम यहाँ दुबारा उस पृष्ठभूमि की विस्तार से चर्चा नहीं करेंगे। किन्तु इतना आप ध्यान में रखें कि पृष्ठभूमि एक ही होते हुए भी, प्रत्येक कवि अपने समय को, अपने विवेक, अपनी चेतना, अपनी दृष्टि से देखता है। प्रत्येक कवि की रचना-प्रक्रिया भिन्न होती है। नागार्जुन ने अपने युग, अपने समाज को अपनी दृष्टि से देखा है – अपने ढंग से परखा और अभिव्यक्त किया है। यहीं पर प्रत्येक कवि दूसरे कवि से भिन्न और विशिष्ट होता है।

26.3 जीवन परिचय एवं कृतित्व

'बाबा' नाम से पुकारे जाने वाले प्रगतिशील जनकवि नागार्जुन (मूल नाम श्री वैद्यनाथ मिश्र) का जन्म कब हुआ उन्हें भी ठीक से नहीं मालूम। 1911 की जून में वे किसी दिन पैदा हुए ऐसा मान लिया जाता है। माँ का देहांत बचपन में ही हो गया, पिता की कई संताने नहीं बचीं। वैद्यनाथ की मान्यता से ये अकेले बचे। नागार्जुन मैथिली ब्राह्मणों के संस्कृत पंडित घराने से हैं। परदादा, पिता सब खेती करते थे, बिहार के दरभंगा प्रांत में। नागार्जुन की प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही संस्कृत पाठशाला में हुई। फिर काशी और कलकत्ता में संस्कृत का अध्ययन किया। काशी में रहते हुए ही नागार्जुन ने अवधी, ब्रज, खड़ी बोली का भी अध्ययन किया, मैथिली में वैदेह उपनाम से लिखना भी शुरू कर दिया। पहली बार 1930 में मैथिली में पहली कविता छपी, इसी दौरान 1932 में नागार्जुन का अपराजिता से विवाह हो गया।

घूमने और इधर-उधर भटकने की आदत नागार्जुन को बचपन से ही पड़ गयी थी, सो वे बड़े होकर बहुत घूमे – 1934 से 1941 तक लगभग घुमंतू जीवन ही रहा, इस बीच देशाटन किया। लंका गये, बौद्ध धर्म में शिक्षा-दीक्षा ली और बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन किया। 'नागार्जुन' नाम यहीं धारण किया सन् 1936 में। काम चलाऊ अंग्रेज़ी और पालि भाषा भी यहीं सीखी। 1938 में भारत वापिस आए। बिहार में चल रहे किसान आन्दोलन में शिरकत की। तीन बार जेल गये, जेल से छूट कर 1941 में फिर गृहस्थ बने। उन्हें गाँव में रहने के लिए बाध्य किया गया। पड़ोस के शहर मधुबनी, दरभंगा तक उन्हें जाने की इजाज़त नहीं थी कि कहीं फिर वे भाग न जाएँ। समाज में सब लोग उन्हें पत्नी त्याग, बौद्ध धर्म में दीक्षित

होने और पुनः गृहस्थाश्रम में लौटने पर लांछन लगाते, उनकी कटु आलोचना करते और दूसरी ओर खुफिया पुलिस की निगाह भी उन पर हमेशा लगी रहती।

इसी बीच नागार्जुन ने मैथिली में आठ-आठ पृष्ठों की छोटी-छोटी कविता पुस्तक लिख कर ट्रेन में खुद ही बेचनी शुरू की। जनता क्या चाहती है – यह ठीक से नागार्जुन ने ऐसे ही पहचाना। संस्कृत, पालि, मैथिली में पांडित्य हासिल करने के बाद उन्होंने खुद को जनता से जोड़ लिया। मौखिक परंपरा से भाषा कैसे संस्कारित होती है, यह जाना।

जीविका के लिए पत्नी को लेकर वे फिर पंजाब पहुँचे। 1943 में पिता का स्वर्गवास हो गया तब गाँव में घर का सारा उत्तरदायित्व पत्नी ने अपने कंधों पर ले लिया। नागार्जुन घुमक्कड़ी करते रहे और साहित्य जीवी बन गए। तीन-तीन साल में एक बार गाँव गये, नहीं गये किन्तु घर की जिम्मेवारियों के विषय में हमेशा चिंतित रहे।

कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्यता भी धारण की किन्तु 1962 में चीनी आक्रमण के बाद सदस्यता छोड़ दी। वे कट्टर मार्क्सवादी नहीं हैं, राजनीतिक अर्थ में तो नहीं किन्तु उनकी प्रतिबद्धता बहुत स्पष्ट है। वे शोषित, पीड़ित जनता के खुले पक्षधर हैं। बिहार के जयप्रकाश नारायण के आंदोलन में उन्हें फिर जेल हुई।

"नागार्जुन" आज भी वही घुमंतु जीवन जी रहे हैं, जहाँ भी उत्पीड़न होता है, जनता का प्यार मिलता है वे तुरंत वहाँ पहुँच जाते हैं। 79 वर्ष की आयु हो जाने पर भी वे साहित्य सृजन और घुमक्कड़ी में व्यस्त हैं।

कृतित्व

नागार्जुन ने मैथिली, संस्कृत और हिन्दी में काव्य रचना के अलावा उपन्यास,कहानी, निबंध भी लिखे हैं और कुछ अनुवाद भी किए हैं। उनकी प्रकाशित काव्य रंचनाएँ निम्नलिखित हैं।

बूढ़वर	(मैथिली 1941)
विलाप	(मैथिली 1941)
शपथ	(हिन्दी 1948)
चित्रा	(मैथिली 1949)
चना ज़ोर गर्म	(हिन्दी 1952)
युगधारा	(हिन्दी 1953)
खून और शोले	(हिन्दी 1955)
प्रेत का बयान	(हिन्दी 1957)
सतरंगे पंखों वाली	(हिन्दी 1957)
प्यासी पथराई आंखें	(हिन्दी 1962)
पत्रहीन नग्न गाछ	(मैथिली 1967)
अब तो बंद करो हे देवी	(हिन्दी 1971)
तालाब की मछलियाँ	(हिन्दी 1974)
चंदना	(हिन्दी 1976)
तुमने कहा था	(हिन्दी 1980)
हजार-हजार बाहों वाली	(हिन्दी 1981)
पुरानी जूतियों का कोरस	(हिन्दी 1983)
रत्न गर्भ	(हिन्दी 1984)
ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या	(हिन्दी 1985)
आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने	(हिन्दी 1986)

उपन्यासः रतिनाथ की चाची (1984), बलचनमा (1952), वरुण के बेटे (1954), बाबा बटेसर नाथ (1954), दुखमोचन, इमरितिया, उग्रतारा, जमनिया के बाबा, कुंभीपाक (1970), अभिनंदन (1970), नई पौध, पारो मैथिली एवं हिन्दी दोनों में (1970).

कहानी संग्रहः आसमान में चंदा तेरे (1982).
निबंध संग्रहः अन्नहीनम्, क्रियाहीनम् (1983).
अनुवादः मेघदूत, गीत गोविंद, विद्यापति की पदावली।

इन ग्रंथों के अलावा नागार्जुन की ढेरों कविताएँ यहाँ-वहाँ पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी पड़ी हैं, जिनका संकलन होना अभी बाकी है।

नागार्जुन के काव्य का रचनाकाल लगभग पचास वर्षों में फैला हुआ है। इनकी लिखी कविताओं में मुख्य रूप से इस देश की शोषित-पीड़ित जनता के संघर्षों की तमाम-तमाम कथाएँ उनके सुख-दुःख, सत्ता वर्ग के लोलुप भ्रष्टाचारी चेहरों की नंगी सूरतें, भ्रष्ट राजनेताओं पर तीखी टिप्पणियाँ विभिन्न काव्यशैलियों व रूपों में अभिव्यक्त हुई हैं। इसके अलावा प्रेम, प्रकृति जैसे काव्य के शाश्वत माने जाने वाले विषयों पर भी नागार्जुन ने लिखा है। अपने प्रिय मित्रों, अग्रजों और देश-विदेश की कई महान विभूतियों पर भी नागार्जुन ने कविताएँ लिखी हैं। कुल मिला कर इनका कृतित्व इस उपमहाद्वीप की तमाम-तमाम जनता के सरोकारों का महाकाव्य है। वास्तव में वे जनकवि हैं। उन्होंने अपने बारे में खुद भी कहा है – जनकवि हूँ मैं/साफ कहूँगा, क्यों हकलाऊँ।

26.4 नागार्जुन के काव्य की अन्तर्वस्तु

जनकवि नागार्जुन के काव्य की अन्तर्वस्तु का दायरा बहुत बड़ा है। भारतीय जनजीवन में आजादी से पहले से लेकर आज तक जो कुछ भी घटा है – वह सब नागार्जुन की कविता में कैद है। सैकड़ों बर्बर गोलीकांड, शोषण, हिंसा, राजनीतिक भ्रष्टाचार, सामाजिक दुराचार्य – सब नागार्जुन की वर्गचेतन दृष्टि का निशाना बने हैं। एक ओर तो उन्होंने ऐसी राजनीतिक कविताएँ लिखी हैं जिन्हें तात्कालिक घटना पर आधारित कविताएँ कहा जा सकता है। दूसरी ओर संघर्षशील मनुष्य की सुख-दुःख गाथा पर अपेक्षतया गंभीर कविताएँ हैं, उन्होंने प्रकृति पर, प्रेम पर भी खूब लिखा है। नागार्जुन की राजनीतिक कविताओं में और सामंतों, पूँजीपतियों और भ्रष्ट बुद्धिजीवियों पर लिखी हुई कविताओं में व्यंग्य की जो पैनी मार है – वे उन्हें अग्रज व्यंग्यकारों की श्रेणी में ला खड़ा करती हैं – नागार्जुन ने व्यक्तियों, साहित्यकारों, राजनीतिज्ञों पर भी कविताएँ लिखी हैं।

यहाँ हम नागार्जुन की विभिन्न विषयों पर लिखी हुई कविताओं का जायजा लेंगे।

26.4.1 सामंती व्यवस्था के खिलाफ

आजादी से पूर्व भारत में लगभग पतनशील सामाजिक ढाँचा था जो नयी शिक्षा-दीक्षा और ज्ञान-विज्ञान की आग से झुलस कर टूट रहा था। फिर भी बड़े-बड़े सामंत, जमींदार, किसानों, मजदूरों का निरंतर खून चूस रहे थे और राष्ट्रीय आंदोलन के बावजूद किसी तरह अपनी सत्ता बनाए रखने का प्रयास कर रहे थे, इसमें उन्हें अंग्रेज़ों से भी बराबर मदद मिलती थी।

नागार्जुन ने सामंती व्यवस्था के उत्पीड़न, वैभव प्रदर्शन और पतन को अभिव्यक्त करने वाली कई कविताएँ लिखी हैं। निराला पर लिखी एक कविता में उन्होंने निराला की ही दो पंक्तियाँ उद्धृत की हैं –

खुला भेद विजयी कहाये हुए जो
लहू दूसरों का पिये जा रहे हैं

यही दो पंक्तियाँ नागार्जुन काव्य की भावात्मक नींव हैं। पूरा नागार्जुन काव्य 'विजयी कहाये हुओं' का भेद खोलता है। नागार्जुन की ऐतिहासिक चेतना और दृष्टि बहुत स्पष्ट और खरी है, जब-जब भी और जहाँ कहीं भी जनता का शोषण होता है, जनता पर अत्याचार होते हैं, नागार्जुन उसकी खिलाफत ही नहीं करते, अपना पक्ष जनता के साथ जाहिर करते हैं।

उनकी एक कविता है 'विजयी के वंशधर', यह कविता पूरी गहराई के साथ सामंती समाज के वैभव प्रदर्शन और उत्पीड़न को अभिव्यक्त करती है, विजयादशमी के दिन का वर्णन है। आज बाबू-बबुआन की जययात्रा निकली है। तेल से पोसी हुई लाठियाँ, जिन्हें लठैत थामे हैं। नीलकण्ठ का दर्शन आज के दिन शुभ माना जाता है, इसलिये बहेलिये नीलकण्ठ को पिंजरे में लाये हैं। राजा राम के वंशज यानि सामंत आज सजधज कर निकलेंगे और पीछे-पीछे रैयत यानि किसान-मज़दूर चलेंगे, अर्थात् वानरी सेना। नागार्जुन वर्णन करते हैं –

गुलाबी धोती
सीप की बटनों वाला रेशमी कुर्ता
मलमल की दुपलिया, फूलदार टोपी,
बाटा के पम्प शू

नेवले के मुँह सी मूठ की नफीस छड़ी
बड़ा और छोटा सरकार
लाल साहेब, हीराजी,
मानिक जी, मोती साहेब
बुच्चन जी, बबुअन जी
नुनू जी, बचोल बाबू
हवेली से निकले बनकर सँवर कर।

ये हैं जमींदार। इनकी वेशभूषा का एक-एक ब्यौरा सामंती व्यवस्था को खोल कर रख देता है। गुलाबी, शुभ मानी जाने वाली धोती, सीप के बटनों वाला कुर्ता, नफीस घड़ी। ये बबुअन जो लाठी तक नहीं उठा सकते, आज रावण को मारेंगे, इस तरह नागार्जुन सामंतों की वास्तविक शक्तिहीनता, आडंबर और खोखलेपन को दिखाते हैं। वास्तव में नागार्जुन की यह कविता सामंती व्यवस्था और उसके इतिहास का पूर्ण आकलन करती है।

नागार्जुन की एक और कविता है – 'तालाब की मछलियाँ', जिसके माध्यम से वे नारी की दासता का बहुत ही मार्मिक वर्णन करते हुए सामंती व्यवस्था की सड़ांध भरी सच्चाईयों का पर्दाफाश करते हैं। कोसी की बाढ़ ने पोखर का मिण्डा तोड़ दिया है और पोखर का पानी कोसी के पानी में मिला जा रहा है। मिथिलावासी पोखर की मछलियों पर टूट पड़े हैं। अचानक बाँध टूटने से ये मछलियाँ कोसी के विराट जल में व्याकुल हो गयी हैं। इस आकस्मिक मुक्ति से वे हतप्रभ हैं, अपनी स्वाभाविक गति ही भूल गयी हैं।

इसके बाद नागार्जुन पोखर का पूरा इतिहास बताते हैं। फिर मछलियाँ जमींदार के अन्तःपुर में पहुँचती हैं। वे अधेड़ मथुरा पाठक की हवेली में पहुँचती हैं जहाँ पाठक की अठारह वर्षीय तीसरी पत्नी उन्हें तलने बैठती है। यहाँ दृश्य बदलता है। कड़ाही में तल रही मछलियाँ पाठक जी की पत्नी से कहती हैं –

हम भी मछली, तुम भी मछली
दोनों ही उपभोग वस्तु हैं

इसके बाद नारी की दासता का पूरा इतिहास है। मछलियाँ मुक्त हो गयीं किन्तु नारी अभी भी गुलाम है। मछलियाँ कहती हैं –

बहुत दिनों पर
पाई हमने छूट
मचने दो यदि मची हुई है हत्या अथवा लूट
वन्या के प्लावन से सहसा पुष्करिणी की
परिधि गयी है टूट

यह सक्रांति का समय है। मुक्ति से ठीक पहले की उथल-पुथल है। इसी तरह नागार्जुन सामंती व्यवस्था का अपनी कविता में भेद खोलते हैं।

26.4.2 जीवन की विसंगतियों और अन्तर्विरोधों का चित्रण

नागार्जुन ने यदि जीवन की ठोस विसंगतियों का सीधा सच्चा चित्रण किया है तो दूसरी ओर जीवन के अन्तर्विरोधों को भी अभिव्यक्ति दी है। उनकी एक कविता है – 'शालवनों के निविड टापू में', इसमें एक प्रसंग है, एक आदिवासी से दियासलाई मांगने का, यह प्रसंग, एक साधारण सी घटना हमारे राजनीतिक और सामाजिक जीवन के अनेक अन्तर्विरोधों को खोलती हैं। इसमें दो शब्द आते हैं – राजा और शबरपुत्र। दोनों शब्द हमें इतिहास में राजतंत्र के युग में ले जाते हैं। यह आदिवासी लोकनृत्य पेश करने दिल्ली गया था। नागार्जुन उससे दिल्ली के राजा का नाम पूछते हैं? उसे नहीं मालूम। उसे यह भी नहीं मालूम वो दिल्ली क्यों गया था। उसकी इस स्थिति का जिम्मेवार कौन है? इसके बाद कवि इस आदिवासी के साथ कुछ दिन रहने की इच्छा प्रकट करता है ताकि इसके बारे में कुछ जान सके किन्तु वह इतनी देर में 'जा चुका था गहरे निविड़ अरण्य की अतल झील के अंदर' इस पंक्ति का एक-एक शब्द उसे इस समाज से उसकी दूरी, अजनबीपन का तीव्र एहसास करा देता है और कवि इसी दुनिया में रह जाता है –

'स्टार्ट हुई हमारी जीप
बेलाडीला वाली उस सड़क पर
दन्तेवाड़ा से 55 किलोमीटर आगे'

नागार्जुन की एक दूसरी कविता है – 'नथुने फुला-फुला के', जीवन में जो कुछ सुंदर है, और जिसका निरंतर व्यवसायीकरण होता जा रहा है, यह कविता उस की भर्त्सना करती है।

चलते-चलते अचानक कवि के मित्र उसे बाँह से पकड़ लेते हैं और बताते हैं कि यहाँ मुलुण्ड में किसी मराठी व्यवसायी ने इत्र का कारखाना खोला है, जिससे शाम के वक्त बीसियों किलोमीटर इत्र की सुगंध से नहा उठते हैं। कवि के यह मित्र उस सुगंध से आनंदित हैं लेकिन कवि को बिल्कुल निस्पंद देख कर विस्मित रह जाते हैं। फिर उनसे कहते हैं:

'आप की गंध चेतना ठस तो नहीं हुई
अभी तो सत्तर के न हुए होंगे आप'

यह एक साधारण प्रसंग है। वातावरण में एक कृत्रिम सुगंध फैली है और अध्यापक जैसे लोग सुगंध से विह्वल हैं, आनंदित हैं किन्तु कवि संज्ञाशून्य हो गया है। उसे चिंता है कि भाव और इन्द्रियबोध के धरातल पर भी हमारा व्यवसायीकरण किया जा रहा है, सच्चा सौंदर्य नष्ट हो रहा है। एक कृत्रिम सौंदर्य की अभिरुचि धीरे-धीरे सभी पर हावी होती जा रही है। नयी पीढ़ी का सांस्कृतिक पतन हो रहा है। कविता की अंतिम पंक्तियाँ बहुत हिकारत से पतनशील बुद्धिजीवी को प्रस्तुत करती हैं –

अपने तईं भरपूर सांस खींची
नथुने फुला-फुला के
वो मुअत्तर हवा भर ली अंदर

नथुने फुला-फुला के – ये शब्द भयंकर तिरस्कार और घृणा से भरे हुए हैं। नागार्जुन ने शुरू में और बाद में भी ऐसी कविताएँ लिखीं जो सामाजिक अन्तर्विरोधों और जीवन की विसंगतियों का पर्दाफाश करती हैं किन्तु बाद में उनकी ऐसी कविताओं की संख्या कम होती गयी। पूंजीवाद शोषण आरंभ हुआ, जीवन और जटिल हुआ। बाद की अपनी कविताओं में उन्होंने प्रमुख रूप से राजनीतिक घटनाओं को अपनी कविता का विषय बनाया है।

बोध प्रश्न 1

1) नागार्जुन की किन्ही चार काव्य रचनाओं के नाम बताइये।

....

....

....

....

2) नागार्जुन ने काव्य के अलावा और साहित्य की किन-किन विधाओं में रचना की है?

....

3) नागार्जुन ने किस कविता में नारी की दासता का वर्णन किया है?

....

4) नागार्जुन की राजनीतिक कविताएँ दो प्रकार की हैं, ये दो प्रकार कौन-कौन से हैं?

....

....

5) नागार्जुन की राजनीतिक कविताएँ किसी विशेष विचारधारा के आधार पर नहीं बल्कि कामनसेंस पर आधारित हैं। संक्षेप में टिप्पणी कीजिये।

....

....

....

....

....

6) नागार्जुन किस राजनीतिक विचारधारा को मानते हैं?

....

7) 'मेले नाम तेले नाम' काव्य पंक्तियाँ नागार्जुन ने किस देश की जनता के संघर्षों के पक्ष में लिखी हैं?

....

....

26.4.3 राजनीतिक व्यंग्य की कविताएँ

नागार्जुन की राजनीतिक व्यंग्य की कविताएँ आज़ाद भारत के राजनीतिक जीवन की लगभग पूर्ण अभिव्यक्ति है अर्थात् आज़ाद भारत के राजनीतिक वातावरण में आज तक जो कुछ भी महत्वपूर्ण घटा है, ये कविताएँ उसका पूरा-पूरा लेखा-जोखा प्रस्तुत करती हैं। यदि कविता वास्तव में समकालीन जीवन में कोई प्रत्यक्ष भूमिका अदा करती है तो नागार्जुन की राजनीतिक कविताओं ने यह काम बखूबी किया है। दूसरी बात यह है कि यदि कविता की कोई तात्कालिक भूमिका होती है तो हिन्दी कविता में उसी तरह की होगी, जिस तरह की भूमिका नागार्जुन की कविता निभाती है। मायकोव्स्की का कहना था कि कविता नाटकघरों और स्टेडियम में गूँजनी चाहिए, रेडियो से लगातार फटनी चाहिए, अखबारों की सुर्खियाँ बननी चाहिए, पर्चों, पोस्टरों और यहाँ तक कि मिठाई के डब्बों पर मौजूद रहनी चाहिए। नागार्जुन ने हिन्दी कविता को इस योग्य बनाया कि मायकोव्स्की की यह इच्छा वह पूरी कर सके। उन्होंने बार-बार अपने को जनकवि कहा है। उनकी कविता को हज़ारों लोगों ने जनसभाओं में सुना है, उनकी कई काव्य पंक्तियाँ नारा बन चुकी हैं और सबसे बड़ी बात यह है कि उनकी कविताएँ बहुत आसानी से जनता की जुबान पर चढ़ जाती हैं।

नागार्जुन की राजनीतिक कविताएँ दो प्रकार की हैं – एक सरकार और शोषण तंत्र के तमाम भागीदारों के खिलाफ लिखी गयी कविताएँ और दूसरी मेहनतकश, संघर्षरत जनता और उस के संघर्षों के पक्ष में।

क) **शोषण के खिलाफ:** शोषण तंत्र के खिलाफ लिखी गयीं अपनी राजनीतिक कविताओं में नागार्जुन शोषण समर्थक चरित्रों के लिये अक्सर जानवरों के बिम्बों का प्रयोग करते हैं। वे एक दूसरे से कुर्सी के लिए लड़ते-झगड़ते हैं। नागार्जुन ने शासन के ऐसे जन-प्रतिनिधियों का व्यंग्य चित्र नौटंकी की परिचित धुन और शब्दावली में खींचा है –

स्वेत-स्याम-तरनार अँखियाँ निहार के
सिण्डकेटी प्रभुओं की पग धूर झार के
लौटे हैं दिल्ली से कल टिकट मार के
खिले हैं दाने ज्यूँ अनार के
आये दिन बहार के।

ये जनप्रतिनिधि चापलूसी करते (दुम में बल दो, गालियाँ बकते, वह अंदर से बांस करेंगे, मैं बाहर से बांस करूँगा, अवसरवादी) एक दूसरे का गुह्य अंग सूंघ रहे हैं, गंदगी से घिरे लोग (फैल गया है दिव्य मूत्र का लवण सरोवार) कुत्सित लोग हैं।

नागार्जुन ने शासकों के सभी छल-छद्मों का पर्दाफाश किया है, नेहरू से लेकर इंदिरा गांधी और मोरारजी देसाई तक के छल-छद्मों की इस व्यवस्था में वह सड़न देख चुके हैं। इसलिये बड़े विश्वास के साथ वे घोषणा करते हैं, "ताशों में ही बचेंगे रहेंगे अब तो राजा-रानी।"

नागार्जुन ने राजनीतिक घटनाओं और व्यक्तियों पर इस तरह से लिखा है मानों वे व्यक्ति, व्यक्ति नहीं, कोई जीवन प्रसंग है या घटना है। स्वातंत्र्योत्तर भारत के अनेक नेता उनके काव्य अलबम में अनेक मुद्राओं में मौजूद हैं। न सिर्फ भारतीय नेताओं की, बल्कि उनके विदेशी आकाओं की छवि भी इन्होंने आंकी है – आइजन हावर, जॉन्सन इत्यादि की। टीटो और हुआ और रजनी पामदत्त को भी नहीं छोड़ा। नागार्जुन को जहाँ कहीं भी शक हुआ कि इस नेता की छवि जनता के हक में नहीं जा रही है – वे तुरंत उसके खिलाफ खड़े हो गये।

नागार्जुन की तमाम राजनीतिक कविताएँ किसी विशेष विचारधारा के आधार पर नहीं बल्कि बहुत ही जबरदस्त कॉमनसेंस पर आधारित हैं। ऐसा नहीं है कि वे किसी विचारधारा पर विश्वास नहीं करते – करते हैं – बहुत ही मोटे शब्दों में कहें तो उन्हें मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित प्रगतिशील कवि कहा जा सकता है। किन्तु वे विचारधारा में बद्ध नहीं हैं इसलिये बहुत बार उनकी राजनीतिक दृष्टि साफ नहीं रही है। 'तुम रह जाते दस साल और' कविता में उनकी सहानुभूति ऐसे लोगों के साथ भी है जो घोर प्रतिक्रियावादी हैं।

ख) **जन संघर्ष और जनता के पक्ष में**: नागार्जुन ने बहुत बड़ी संख्या में मेहनतकश लोगों की तबाह जिंदगी और उनके राजनीतिक संघर्षों पर कविताएँ लिखी हैं। जहाँ कहीं भी जनता शोषण, हिंसा का प्रतिकार करती है या संघर्ष में कूदती है, वे पूरे मन से उसे समर्थन देते हैं। चाहे वह सन् 1948 का तेलंगाना विद्रोह हो, नक्सलवादी आंदोलन हो या एमरजेंसी से मुक्त होने के लिये जनता का संघर्ष और छटपटाहट हो। देश में ही नहीं, विदेशी जनता के प्रति भी उनकी सहानुभूति बराबर रही है। जूलियन रोजनबर्ग का संघर्ष, नेपाली जनता का संघर्ष – नागार्जुन इनके साथ रहे हैं – इन्हें अपना समर्थन देते रहे हैं। वियतनामी जनता के संघर्षों का भी नागार्जुन ने साथ दिया। नागार्जुन का यह साधारण सा सिद्धांत रहा है – दुश्मनों के लिये घृणा और दोस्तों से प्यार। जनता उनकी दोस्त है और जनता के शोषक उनके दुश्मन।

नागार्जुन की आशाओं का प्राण केंद्र है जनता, जनता में इतने गहरे विश्वास के कारण ही नागार्जुन सर्वहारा का, शोषण में पिसती हुई जनता की मुक्ति का स्वप्न देखते हैं। उनकी एक कविता है 'वह कौन था'। उसमें वे कहते हैं –

आज बंधन-मोक्ष के त्यौहार का आरंभ होता है
उपद्रव-उत्पात कह कर कुबेरों का वर्ग रोता है

यह कविता सन् 1948 में कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा कई जगह किये गये सशस्त्र विद्रोह का समर्थन करती है –

हे अपरिचित भूमिगत, अज्ञातवासी
निष्कण्टक करो इस कण्टकावृत भूमि को
अपनी परिधि का करो तुम प्रस्तार
हे नवशक्ति!

सन् 1971 में वियतनाम की जनता के संघर्ष में वे अपना पक्ष और अपनी सहानुभूति देते हैं –

सुने इन्हीं के कानों से तुतलाहट में गीले बोल
तीन साल वाले बच्चों के प्यारे बोल, रसीले बोल

"मेले नाम तेले नाम
बिएनाम बिएनाम
मेले नाम तेले नाम
बिएनाम बिएनाम"

मैंने सोचा:
निर्भय होकर शोषण की बुनियादें यह खोदेंगे

मैंने सोचा:
बेबस बूढ़े विप्लवियों का कालिख यह धो देंगे ('रहे गूँजते बड़ी देर तक')

जनता की अदम्य शक्ति में उनका पूरा विश्वास है। जनता कष्ट में है, तबाह है, फिर भी उसका जो चित्र उनमें मिलता है, वह उदात्त है। जनता अपनी पूरी गरिमा के साथ उनके काव्य में मौजूद है। उनकी एक अन्य कविता है – 'शासन की बंदूक' जिसमें सत्ता द्वारा किये जा रहे दमन का आतंक तो है ही किन्तु जनता और जनता के अदम्य साहस की अभिव्यक्ति भी है –

खड़ी हो गयी चाँप कर कंकालों की हूक
नभ में विपुल विराट-सी शासन की बंदूक

उस हिटलरी गुमान पर सभी रहे हैं थूक
जिसमें कानी हो गयी शासन की बंदूक

सत्य स्वयं घायल हुआ, गई अहिंसा की चूक
जहाँ-तहाँ दगने लगी शासन की बंदूक

जली ठूँठ पर बैठ कर गई कोकिला कूक
बाल न बाँका कर सकी शासन की बंदूक

26.4.4 निजी जीवन-प्रसंगों पर लिखी कविताएँ

नागार्जुन ने निजी जीवन प्रसंगो पर भी अनेक कविताएँ लिखी हैं। जैसे 'सिंदूर तिलकित भाल', 'प्रत्यावर्तन' ये दोनों कविताएँ पति-पत्नी संबंधों को लेकर लिखी गयी कविताएँ हैं। पत्नी प्रेम और गृहस्थ जीवन के आंतरिक सौंदर्य की इनमें अद्भुत ढंग से अभिव्यक्ति हुई है। वर्षों तक पत्नी और गृहस्थी की चिंता न करने से उत्पन्न घोर ग्लानि और पश्चाताप, घर की याद और स्थिर शांत जीवन की इच्छा इन दोनों कविताओं में पूरी शक्ति से अभिव्यक्त हुई है—

तभी तो तुम याद आती प्राण
हो गया हूँ नहीं पाषाण!
याद आते स्वजन
जिनकी स्नेह से भीगी अमृतमय आँख
स्मृति विहंगम की कभी थकने न देगी पाँख (सिंदूर तिलकित भाल)

आज तेरी गोद में यह शीश रख कर
क्या बताऊँ मैं कि जो विश्राम पाया। (प्रत्यावर्तन)

एक अन्य कविता है 'यह दंतुरित मुस्कान' जो पुत्र-प्रेम की कविता है —

यह दंतुरित मुस्कान
मृतक में भी डाल देगी जान

नागार्जुन को बच्चों और तरूणों से बहुत प्रेम है। 'तरूण' शब्द बार-बार उनकी कविताओं में आता है। वे नौजवानों के लिए सब कुछ करने के लिए तैयार हैं। उन्होंने यहाँ तक लिखा है —

इन निर्बल बाहों का यदि उपहास तुम्हारा
क्षणिक मनोरंजन करता हो
खुश होंगे हम

इससे बढ़ कर प्रेम और त्याग की अभिव्यक्ति दुर्लभ है।

एक कविता है 'क्या अजीब नेचर पाया है'। यह कविता एक युवती की आंतरिक उदासी, अकेलेपन और अकेलेपनें से लड़ने की कोशिश को बहुत ही गहरायी से व्यक्त करती है। 'आओ प्रिय आओ' में मित्र के प्रति प्रेम की उत्कट अभिव्यक्ति हुई है। मित्र से बोलचाल बंद है और नागार्जुन उदास हैं।

26.4.5 प्रकृति चित्रण

नागार्जुन ने बहुत सारी कविताएँ प्रकृति पर, विशेष कर बादलों और वर्षा ऋतु पर लिखी हैं। बादल उन्हें पागल कर देते हैं। बादलों को उन्होंने अनेक रूपों में देखा है। उनकी एक बहुत प्रसिद्ध कविता है — 'बादल को घिरते देखा है' जिसमें हिमालय, हिमालय की घाटी का वर्णन और बादलों के आने और बरसने का स्वाभाविक वर्णन है। यह वर्णन काल्पनिक नहीं है बल्कि अनुभव पर आधारित है।

तुंग हिमालय के कंधों पर
छोटी-बड़ी कई झीले हैं
उनके श्यामल-नील सलिल में
समतल देशों से आ-आ कर
पावस की उमस से आकुल
तिक्त मधुर विसतन्तु खोजते
हँसों को तिरते देखा है
बादल को घिरते देखा है

प्रकृति से नागार्जुन को इतना प्रेम है कि कई बार तो यह प्रेम पूजा की हद तक पहुँच जाता है।

उनकी एक अन्य कविता है — 'सिन्धु नद' जिसमें सिंधु नदी के माध्यम से वे मुक्ति का, विराटता का स्वप्न देखते हैं —

हम पराधीन तुम हो स्वतंत्र
सिखलाते जाओ नया मंत्र
हे हिमगिरि के साकार भाव
डूबे न हमारी भरी नाव

नागार्जुन की प्रकृति संबंधी रचनाओं में प्रकृति अपने सारे रंगों, मुद्राओं के साथ आई है। प्रकृति के साधारण-असाधारण सारे रूप उनके यहाँ हैं, उसका सौंदर्य और उसकी कुरूपता दोनों ही उन्हें प्रिय है, बसंत, शरद और हेमंत ऋतु ही नहीं बल्कि ग्रीष्म, शिशिर और पावस मे भी उन्हें उतना ही प्रेम है। पावस तो उन्हें बहुत प्रिय है। उसके कारण आने वाली बाढ़ तथा महमारियों का चित्रण भी वे करते हैं, जनता के कष्ट से व्यथित भी होते हैं, परन्तु पावस के प्रति उनकी ममता कम नहीं होती।

26.5 संरचना शिल्प

नागार्जुन की कविताओं की संरचना और शिल्प बहुत वैविध्यपूर्ण है। वे अपनी कविताओं में और कभी-कभी एक ही कविता में इतने छंद, इतने ढंग और इतनी शैलियों का इस्तेमाल करते हैं कि यह जानना कठिन हो जाता है कि उनके शिल्प की केन्द्रीय प्रकृति कौन सी है। व्यंग्य की तेज धार उनकी राजनीतिक कविताओं के शिल्प की प्रमुख विशेषता है। नामवर सिंह नागार्जुन के व्यंग्य को देख कर उन्हें कबीर के बाद हिन्दी का सबसे बड़ा व्यंग्यकार मानते हैं। अपनी एक कविता में नागार्जुन स्वयं भी कहते हैं 'हमने कबीर का पद ही तो घोखा है।' नागार्जुन के व्यंग्य के विषय ही नहीं काव्य रूप भी विविध हैं। जैसे लोक धुनों की तर्ज पर रचे गये व्यंग्य, जैसे –

तीनों बंदर बापू के
बापू के भी ताऊ निकले तीनों बंदर बापू के

या सन् 1954 में लिखे गये झंडा गीत का उदाहरण –

'दस हजार, दस लाख मरें, पर झंडा ऊँचा रहे हमारा।
कुछ हो, कांग्रेसी शासन का डण्डा ऊँचा रहे हमारा।

शासन के ऐसे जनप्रतिनिधियों का व्यंग्य चित्र नौटंकी की परिचित धुन और शब्दावली में इस प्रकार खींचा गया है –

लौटे हैं कल दिल्ली से टिकट मार के
खिले हैं दाँत ज्यों अनार के
आये दिन बहार के।

नागार्जुन के व्यंग्य को उनका आत्म व्यंग्य और भी विश्वसनीय बनाता है। नागार्जुन जितने निर्मम औरों के प्रति हैं, उससे किसी तरह कम निर्मम अपने प्रति नहीं हैं। 'पछाड़ दिया मेरे अस्तित्व ने' शीर्षक कविता में बहुत दिनों के बाद गाँव में उगते सूरज को देखकर कहते हैं.– 'सोते ही बिता देता हूँ शत-शत प्रभात/छूट सा गया है जनपदों का स्पर्श।' (हाय रे आंचलिक कथाकार) अंतिम पंक्ति का व्यंग्य आत्मग्लानि की भावुकता को और गहरा कर देता है।

नागार्जुन के यहाँ आपको गीत भी मिलेंगे, छंदों में लिखी गई कविताएँ भी, विभिन्न शैलियों में किये गये अनेकों प्रयोग भी। वस्तुतः नागार्जुन के काव्य का कोई एक रूप नहीं है। इस देश की भौगोलिक, सांस्कृतिक विभिन्नताओं की तरह ही उनके अनेकों काव्य रूप हैं। दोहे, गीत, छंदबद्ध कविता, मुक्तक और विभिन्न लोकधुनों पर रचे गये व्यंग्यों की उनके यहाँ भरमार है। छंदबद्ध कविता में कभी तो पूरी कविता में एक ही छंद और लय मिल जायेगी, कभी एक ही कविता में छंद बदल जायेगा किन्तु ये सारे काव्य रूप कविता को पाठक और जन-समुदाय तक सम्प्रेषित करने के लिए, अर्थ को उन तक सारगर्भित ढंग से पहुँचाने के लिए ही नागार्जुन इस्तेमाल करते हैं।

नागार्जुन की काव्य भाषा भी उनके काव्य रूप और शिल्प की तरह बहुत वैविध्यपूर्ण है। अरुण कमल के शब्दों में – 'नागार्जुन को पढ़ने का अर्थ है हिन्दी भाषा के वास्तविक जगत में लौटना, हिन्दी के निजी स्वरूप और संस्कारों से परिचित होना। भाषा के इतने रूप,

बोलियों के इतने 'मिक्सचर' उनकी कविताओं में मिलते हैं कि यदि उनके काव्य के अन्य प्रसंगों को छोड़ भी दें तो सिर्फ अपनी भाषा के लिये वे हमेशा-हमेशा के लिये महत्वपूर्ण बने रहेंगे। शब्दों को वे इस तरह फेंटते हैं, जैसे ताश के पत्ते। फेंट कर कहीं से काट लिया।, (आलोचना, अंक 55-56, पृ. 28) नागार्जुन की भाषा में बोलियों, संस्कृत, उर्दू, अंग्रेज़ी के अनेक शब्द आते हैं। ये वे शब्द हैं जो विभिन्न अंचलों में बोली जाने वाली खड़ी बोली में घुल-मिल गये हैं। इस अर्थ में उनकी भाषा बेहद लचीली और समावेशी है। उसके तल में बोलियों की सहस्रधारा का अन्तरप्रवाह मौजूद है। वह निरंतर विस्तृत और समृद्ध होती भाषा है। डॉ. रामविलास शर्मा ने बहुत सटीक शब्दों में नागार्जुन की काव्यभाषा की विशेषताओं को एक ही पंक्ति में बहुत संक्षेप में बता दिया है – 'हिन्दी भाषी प्रदेश के किसान और मजदूर जिस तरह की भाषा आसानी से समझते और बोलते हैं, उसका निखरा हुआ काव्यमय रूप नागार्जुन के यहाँ है'। भारतेंदु पर लिखी कविता में नागार्जुन ने स्वयं स्पष्ट कर दिया है – हिन्दी की है असली रीढ़ गवाँरू बोली।

बोध प्रश्न 2

1 'सिंदूर तिलकित भाल' और 'प्रत्यावर्तन' नागार्जुन की ये तीनों कविताएँ किस विषय को लेकर लिखी गयी हैं?

....

2 नागार्जुन का प्रकृति-चित्रण अनुभव पर आधारित है, काल्पनिक नहीं, संक्षेप में टिप्पणी कीजिये।

....

....

....

....

....

3 नागार्जुन ने अपनी कविताओं में किस काव्य रूप को अपनाया है और क्यों? संक्षेप में बताइये।

....

....

....

....

....

4 नागार्जुन की काव्य भाषा कैसी है? संक्षेप में बताइये।

....

....

....

....

....

26.6 काव्य-वाचन और संदर्भ सहित व्याख्या

यहाँ हम आपको काव्य पाठ के लिये नागार्जुन की दो कविताएँ "कालिदास" और "अकाल और उसके बाद" दे रहे हैं। हम आपको इन में से कुछ अंश लेकर व्याख्या करना भी सिखायेंगे। कुछ अंशों की व्याख्या आप करेंगे।

कालिदास

कालिदास, सच-सच बतलाना।
इंदुमती के मृत्यु शोक से
अज रोया या तुम रोये थे?
कालिदास, सच-सच बतलाना।

शिवजी की तीसरी आँख से
निकली हुई महाज्वाला में
धृतमिश्रित सूखी समिधा-सम
कामदेव जब भस्म हो गया
रति का क्रंदन सुन आँसू से
तुमने ही तो दृग धोये थे?
कालिदास, सच-सच बतलाना
रति रोई या तुम रोये थे।

वर्षा ऋतु की स्निग्ध भूमिका
प्रथम दिवस आषाढ़ मास का
देख गगन में श्याम घन घटा
विधुर यक्ष का मन जब उचटा
खड़े-खड़े तब हाथ जोड़कर
चित्रकूट के सुभग शिखर पर
उस बेचारे ने भेजा था
जिनके ही द्वारा संदेशा
उन पुष्कशवर्त मेघों का
साथी बन कर उड़ने वाले
कालिदास, सच-सच बतलाना

परपीड़ा से पूर-पूर हो
थक-थक कर औ चूर-चूर हो
अमल-धवल गिरी के शिखरों पर
प्रियवर, तुम कब तक सोये थे?
रोया यक्ष कि तुम रोये थे?
कालिदास, सच-सच बतलाना।

(कालिदास को संबोधित इस कविता में कालिदास के काव्य की संवेदना से कवि नागार्जुन इतने प्रभावित हैं कि उन्हें लगता है इंदमती की मृत्यु शोक पर अज नहीं कालिदास ही रो पड़े थे। अर्थात् कालिदास ने अपने काव्य में अज के शोक को जिस वेदना और गहरायी के साथ अभिव्यक्त किया है उससे यह आभास होता है कि कालिदास ने मानो अज की वेदना को स्वयं भोगा हो। आगे की पंक्तियों में कामदेव के भस्म होने पर उसकी पत्नी रति के क्रंदन, और यक्ष के विरहाकुल होने के बारे में कवि कालिदास से यही प्रश्न करता है कि इनकी वेदना की अभिव्यक्ति भी इतनी मार्मिक और जीवंत बन पड़ी है मानो कालिदास ने स्वयं रति की पीड़ा और यक्ष का विरह भोगा हो।)

"अकाल और उसके बाद"
कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त

दोनों आए घर के अंदर कई दिनों के बाद
धुआँ उठा आँगन से ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठीं घर भर की आँखें कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद

(यह कविता बिहार में पड़े उस अकाल के बारे में है जिसमें लाखों लोग मर गये थे। अकाल पड़ने पर खेती पर निर्भर लोगों की दशा कितनी दयनीय और खराब हो जाती है और अकाल के बाद कैसे उनके जीवन में आशा की किरण फूटती है — इसका वर्णन और चित्रण कवि नागार्जुन ने इस कविता में किया है।)

उद्धरण 1
कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त

संदर्भ: ये पंक्तियाँ नागार्जुन द्वारा लिखित कविता "अकाल और उसके बाद" नामक कविता से ली गयी हैं। सन् 1951, 52 में जो अकाल पड़ा था, उस पर नागार्जुन ने यह कविता लिखी है। नागार्जुन प्रगतिशील एवं जनकवि के रूप में जाने जाते हैं। उन्होंने देश की शोषित जनता के बारे में ही लिखा है। वास्तव में वे एक प्रतिबद्ध कवि हैं और उनकी प्रतिबद्धता शोषित, गरीब और दुःख झेल रही जनता के साथ है। इसलिये जनता पर जहाँ कहीं भी अत्याचार होते हैं, प्राकृतिक विपदाएँ आती हैं, नागार्जुन उनकी तकलीफों को, उनके दुःख-दर्दों को अपनी रचना के माध्यम से अभिव्यक्ति देते हैं। देश में जब अकाल पड़ा, तो इसका सबसे अधिक प्रभाव गरीब लोगों पर ही पड़ा, भूखों मरने की नौबत आ गयी। नागार्जुन ने अकाल के प्रभाव से पीड़ित गरीब लोगों की दयनीय स्थिति को अपनी इस कविता में अभिव्यक्ति दी है।

व्याख्या: कवि कहता है कि अकाल पड़ने पर कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की उदास रही, अर्थात् फसलें नष्ट हो गयीं, घरों में कई दिनों तक न तो अनाज पीसा गया और न ही चूल्हा जला। अर्थात् घर भर भूखा रहा। अगली पंक्ति में कवि कहता है कि कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास। अर्थात् चक्की और चूल्हा इंसानों के काम की वस्तुएँ नहीं रह गयीं। खाना न मिलने से घर के सारे काम ठप्प पड़ गये। दीवारों पर छिपकलियाँ घूमने लगीं और चूहों को भी खाने को अनाज का एक भी दाना नहीं मिला।

विशेष: चारों पंक्तियों में शाब्दिक लय है और "कई दिनों तक" की आवृति समय बोध को और गहरा करती है और इस एहसास को पुख्ता करती है कि अकाल का समय कितना भयानक एवं दारूण होता है।

- चूल्हे का रोना और चक्की के उदास होने में कवि ने चूल्हे और चक्की का मानवीयकरण कर दिया है।
- चूल्हा, चक्की, कानी कुतिया, छिपकलियाँ और चूहे गाँव के गरीब परिवार का वातावरण बनाते हैं।

अभ्यास: यहाँ हम आपको एक और काव्यांश दे रहे हैं, इसकी व्याख्या करने का प्रयास आप स्वयं करें।

उद्धरण 2

दाने आये घर के अंदर कई दिनों के बाद
धुआँ उठा आँगन से ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की आँखें कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद

प्रसंग: ये पंक्तियाँ नागार्जुन द्वारा लिखित कविता "अकाल और उसके बाद" नामक कविता से ली गयी हैं। जब अकाल का असर दूर हुआ, तब घरों में जीवन शुरू हुआ।

व्याख्या:

....
....
....
....
....
....

26.7 सारांश

नागार्जुन आजादी से पूर्व से रचनाकर्म में संलग्न हैं। उन्होंने काव्य रचना के साथ-साथ उपन्यास भी लिखे हैं। प्रकृति से वे घुमक्कड़ और यायावर हैं। उन्होंने लगभग सारे देश का भ्रमण किया है। उन्होंने मैथिली में लिखना शुरू किया था किन्तु बाद में वे हिंदी में लिखने लगे। किसी भी राजनीतिक विचारधारा का हूबहू अनुकरण न करते हुए भी उनकी प्रतिबद्धता व्यापक रूप से मार्क्सवादी विचारधारा में है क्योंकि यह विचारधारा वर्गाधारित समाज में उनका पक्ष लेती है, जो शोषित हैं। इसलिये नागार्जुन ने राजनीतिक कविताओं में

सत्ताधारी, शोषण में लिप्त एवं अपने लाभ के लिये गरीबों का खून चूसने वाले नेताओं, को अपने व्यंग्य का निशाना बनाया है। चरमराती सामंती व्यवस्था के अवशेष – जमींदार, सामंत, बड़े-बड़े ताल्लुकेदार एवं नवाब भी उनके व्यंग्य का निशाना बने हैं। नागार्जुन की ऐतिहासिक चेतना और सामाजिक यथार्थ को परखने की दृष्टि बहुत पैनी है। वे किसानों, मजदूरों का पक्ष तो लेते हैं किन्तु उनके जीवन के अन्तर्विरोधों को भी नजरदांज नहीं करते। सामाजिक अन्तर्विरोधों को उघाड़ती उनकी कविताओं में मध्यवर्ग एवं बुद्धिजीवी वर्ग भी शामिल है। नागार्जुन ने भारतीय नेताओं एवं अन्तर्राष्ट्रीय नेताओं तथा अपने मित्रों को भी अपनी कविताओं में याद किया है। इसके अलावा प्रकृति पर नागार्जुन ने बहुत कविताएँ लिखी हैं। प्रकृति में उन्हें बादल एवं वर्षा बहुत प्रिय हैं क्योंकि बादल ही किसान के जीवन की आस है। पत्नी, पुत्र, मित्र अर्थात् निजी संबंधों पर भी उन्होंने लिखा है।

नागार्जुन की कविता के अनेकों काव्य रूप हैं। उन्होंने कई-कई छंदों, शैलियों में लिखा है। उनके शिल्प की सबसे बड़ी खूबी व्यंग्य है। उनकी काव्य भाषा इतनी संप्रेषणीय है कि रामविलास शर्मा का यह कथन कि उनकी भाषा वही भाषा है जो किसान-मजदूरों की समझ में आती है, अक्षरशः सार्थक है। वस्तुतः नागार्जुन सही अर्थों में जनकवि हैं।

26.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अजय तिवारी, नागार्जुन और उनकी कविता।

26.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 सतरंगे पंखों वाली, प्रेत का बयान, चना जोर गरम, तालाब की मछलियाँ

2 उपन्यास, कहानी, निबंध, अनुवाद

3 तालाब की मछलियाँ

4 क) सरकार और शोषण तंत्र के भागीदारों के खिलाफ
ख) मेहनतकश संघर्षरत जनता के पक्ष में

5 नागार्जुन की कविताएँ किसी भी राजनीतिक विचारधारा का अनुसरण करते हुए नहीं चलती हैं। जिस विचारधारा को वे सही मानते हैं यदि वो विचारधारा भी जनता के विरोध में जाने लगे तो वे सीना तान कर उसका भी विरोध करते हैं। अर्थात् उनकी कविताएँ इस कॉमनसेंस पर आधारित हैं कि जनता और शोषण को दूर करने के लिये किए गए जनसंघर्षों का जो भी विचारधारा साथ देती है, वे उसी के साथ होते हैं। इसीलिये जब बिहार में जयप्रकाश नारायण का आंदोलन एक व्यापक जनआंदोलन में बदल गया तब नागार्जुन ने उसका पक्ष लिया।

6 मार्क्सवादी

7 वियतनाम

बोध प्रश्न 2

1 ये दोनों कविताएँ पति-पत्नी संबंधों को लेकर लिखी गयी हैं।

2 नागार्जुन यायावर हैं, घुमक्कड़ हैं – उन्होंने लगभग सारा देश घूमा है। इसलिये उनका प्रकृति चित्रण भी उनके अपने अनुभवों पर आधारित है। जैसे "बादल को घिरते देखा है" कविता में वे हिमालय पर्वत पर फिरते हुए बादलों का ही चित्रण नहीं करते बल्कि हिमालय की घाटी की वनस्पति, वहाँ के लोगों के ब्यौरे भी देते चलते हैं। अर्थात् नागार्जुन अपने अनुभवों को ही कविता में ढाल कर प्रस्तुत करते हैं।

3 नागार्जुन की कविताओं का कोई प्रमुख काव्य रूप नहीं है। उनके यहाँ विभिन्न काव्य रूप मिलते हैं। गीत, मुक्तक, लम्बी कविताएँ, छंदों बद्ध कविताएँ अर्थात् वे किसी एक काव्यरूप में बंध कर नहीं लिखते। इसलिए छंदोबद्ध कविता में वे अपनी इच्छा से छंद

बदल सकते हैं, एक ही कविता कई-कई छंदों में हो सकती है। वास्तव में नागार्जुन की कविताओं के काव्य रूप वैविध्यमय हैं।

4 नागार्जुन की काव्यभाषा सरल, सहज और ऐसी संप्रेषणीय भाषा है जो आम जनता की समझ में आ जाए। उनकी भाषा में कई बोलियों के, अंग्रेज़ी, संस्कृत और हिंदी के शब्द गुंथे हुए हैं। वास्तव में यह मजदूरों, किसानों की समझ में आने वाली भाषा है।

शब्दावली

वामपंथी दल: आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में मेहनत करने वालों का समर्थन करने वाले राजनीतिक दल, जो पूँजी पर कुछ व्यक्तियों के अधिकार के विरोधी होते हैं।

सविनय अवज्ञा आंदोलन: गाँधी जी द्वारा 1930 में चलाया गया आंदोलन।

लगान बंदी आंदोलन: 1930 के आंदोलन के दौरान देश के कुछ प्रांतों में जैसे संयुक्त प्रांत और गुजरात में किसानों ने जमींदारों को लगान देना बंद कर दिया था।

किसान सभा: 1936 में स्थापित किसानों का अखिल भारतीय संगठन।

बंगाल का अकाल: 1943 में पड़ा बंगाल का प्रसिद्ध अकाल जिसमें लाखों लोग मारे गये थे।

नौ सेना विद्रोह: 1946 में बंबई में भारतीय नौ सेना के सैनिकों ने अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध विद्रोह किया था -- यही इतिहास में नौ सेना विद्रोह कहलाता है।

अभिधा: शब्द का वह अर्थ जो कोश के अनुसार हो, उसे वाच्यार्थ कहते है और शब्द की शक्ति को अभिधा कहते हैं।

जीवनासक्ति: जीवन के प्रति आसक्ति।

आदर्शवाद: जीवन और जगत को देखने की भाववादी दृष्टि। हिंदी साहित्य में आदर्शवाद यथार्थवाद की विरोधी विचारधारा भी मानी जाती है। यहाँ जीवन के यथार्थ की बजाए आदर्श रूप पर बल दिया जाता है।

यथार्थवाद: जीवन की वास्तविकता को उसके पूरे परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने वाली विचारधारा।

कालातीत: काल से परे

विपुल: बहुत

सामाजिक विषमता: समाज के विभिन्न समुदायों में आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आधार पर जो अंतर होता है उसे ही सामाजिक विषमता कहते हैं।

अगस्त्य: हिंदू पौराणिक ऋषि जिनके बारे में माना जाता है कि उन्होंने एक ही घूंट में सारा समुद्र पी लिया था।।

पांडुर: पीला

मनहर: मनोहर

यथास्थितिवादी: जो परिवर्तन का विरोधी हो।

स्वेच्छाचारी: जो सामाजिक नियमों, आचारों को न मानता हो और अपने मन के अनुसार कार्य करता हो।

वांछित: जो स्वीकार्य हो।

ऐन्द्रिक क्षमता: इंद्रियों द्वारा ग्रहण करने की क्षमता।

कपिश: हनुमान

ज्योत्स्ना: चाँदनी

कदली: केला

अकुण्ठ: बिना कुण्ठा के।

आत्मभर्त्सना: अपनी आलोचना करना

बुर्जुआ नीति: पूँजीवाद की पक्षधर नीति

समाजवादी व्यवस्था: ऐसी व्यवस्था जिसमें पूँजी पर समाज का अधिकार हो।

साम्राज्यवादी शक्तियाँ: वे देश जो राजनीतिक, आर्थिक या भौगोलिक दृष्टि से दूसरे देशों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करते हों।

पूँजीवादी शक्तियाँ: वे देश जो पूँजी पर समाज के आधिपत्य के खिलाफ हों। तथा जहाँ पर पूँजी पर व्यक्तिगत अधिकार की मान्यता प्राप्त हो।

त्याज्य: त्यागा हुआ

स्वकीया प्रेम: अपनी पत्नी से प्रेम

परकीय प्रेम: पत्नी के अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री से प्रेम करना

अवनी: धरती

वन्या: वन की

पुष्करिणी: छोटे तालाब

Notes

Notes

Notes

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

यू०जी०एच०आई०-02
हिंदी ऐच्छिक पाठ्यक्रम-2
हिंदी काव्य

खंड

7

प्रयोगवाद और नयी कविता

इकाई 27
प्रयोगवाद और नयी कविता : स्वरूप और विकास 5

इकाई 28
अज्ञेय 25

इकाई 29
गजानन माधव मुक्तिबोध 46

इकाई 30
भवानी प्रसाद मिश्र 65

इकाई 31
सर्वेश्वरदयाल सक्सेना 84

इकाई 32
नरेश मेहता 109

इकाई 33
समकालीन कविता : स्वरूप और विकास 128

इकाई 34
धूमिल 145

खंड परिचय

हिन्दी ऐच्छिक पाठ्यक्रम-2 के आठवें खंड में आप प्रबंध काव्य के बारे में पढ़ेंगे। यह खंड आपको पिछले खंड से थोड़ा भिन्न प्रतीत होगा। पिछले खंडों में आप हिन्दी काव्य के किसी युग विशेष और उससे संबंधित प्रमुख रचनाकारों के बारे में पढ़ते रहे हैं। इस प्रक्रिया के दौरान आपने आदिकाल से लेकर वर्तमान समय तक की हिन्दी कविता के विभिन्न काव्यांदोलनों, उनकी सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों, प्रमुख कवियों तथा काव्यगत विशेषताओं का अध्ययन किया है। इस खंड में हमने एक कवि (रामधारी सिंह दिनकर) और उनकी एक ही रचना ("कुरुक्षेत्र") को लिया है। इस कवि केन्द्रित अथवा रचना केन्द्रित अध्ययन का निश्चित उद्देश्य है। इससे कृति विशेष अथवा रचनाकार विशेष का गहन अध्ययन करने का अवसर तो आपको मिलेगा ही, प्रबंध जैसे वृहत और महत्वपूर्ण काव्य रूप की संकल्पना, स्वरूप और विकास का परिचय भी मिलेगा। प्रबंध काव्य की रचना सभी समृद्ध साहित्यों में देखने को मिलती है। यही कारण है कि साहित्य चिंतक और आचार्य प्राचीन समय से ही इसके स्वरूप का चिंतन-विवेचन और विश्लेषण करते आए हैं। किसी समाज और संस्कृति विशेष के जातीय जीवन का समग्र चित्र उसके प्रबंध काव्यों में मौजूद होता है। उदाहरण के लिए संस्कृत की इस कहावत पर गौर किया जाना चाहिए–"यन्न भारते तन्न भारते" (जो महाभारत में नहीं है वह भारत में नहीं है) अर्थात भारतीय जीवन का समग्र चित्र महाभारत में प्रस्तुत हुआ है।

साहित्य का अत्यंत प्राचीन और महत्वपूर्ण रूप होने के नाते प्रबंध काव्य की जानकारी साहित्य के विद्यार्थी के लिए अपेक्षित है। प्रस्तुत खंड इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए तैयार किया गया है। प्रबंध काव्य की थोड़ी बहुत चर्चा पिछले खंडों में यत्र-तत्र होती रही है। इस खंड में इसकी विस्तृत और क्रमबद्ध विवरण दिया गया है। प्रबंध काव्य के स्वरूप और विकास से परिचित होने के साथ ही विद्यार्थी के लिए यह जानना भी आवश्यक है कि काव्य-रूप विशेष की रचना के जो सिद्धांत अथवा उसका जो स्वरूप एक बार निर्धारित हो जाता है वह हमेशा-हमेशा के लिए अंतिम नहीं होता। परिवर्तनशील होना विकास का लक्षण है। यही कारण है कि प्रबंध रचना का जो स्वरूप प्राचीन काल और मध्यकाल में निर्धारित हुआ था उसके साँचे और ढाँचे में देश और काल के दबाव से निरंतर परिवर्तन होते रहे। इन परिवर्तनों का एक रूप हमें यह दिखाई देता है कि कथात्मक प्रबंध काव्यों को पीछे धकेलते हुए आधुनिक युग में वैचारिक प्रबंध काव्यों का सृजन हुआ। इन वैचारिक प्रबंध काव्यों ने परंपरागत प्रबंध काव्य के सभी मान्य नियमों या अनुशासनों को चुनौती के स्तर पर तोड़ डाला। रामधारी सिंह दिनकर की कृति "कुरुक्षेत्र" के प्रबंधत्व के साँचे में एक ऐसी नवीनता, मौलिकता और अर्थवान वैचारिक प्रबंधात्मकता के दर्शन होते हैं, जिसे नवीन वैचारिक आंदोलनों की प्रबंध क्षमता का प्रमाण माना जा सकता है। जाहिर है कि "कुरुक्षेत्र" परंपरागत प्रबंध काव्य नहीं है। उसके प्रबंधत्व की एकता उसमें निहित विचारों को लेकर है कथात्मकता को लेकर नहीं।

इस खंड में 35 से 39 तक कुल पाँच इकाइयाँ हैं। इकाई 35 में प्रबंध काव्य की विस्तृत चर्चा है.शेष चार इकाइयाँ दिनकर के काव्य और कुरुक्षेत्र पर केन्द्रित हैं। इकाई 36 में मूल पाठ का वाचन है। इकाई 37 में इसके वस्तु पक्ष अनुभूति और संवेदना तथा इकाई 38 में इसके शिल्पगत सौंदर्य को समग्रता में प्रस्तुत किया गया है। कृति के आंतरिक वैचारिक सौंदर्य को प्रस्तुत करने के लिए इकाई 39 में इसके प्रतिपाद्य पर विस्तार से विचार किया गया है। दृष्टि यही रही है कि 'कुरुक्षेत्र' के कथ्य अथवा उद्देश्य को स्पष्टता से प्रस्तुत करते हुए उसकी युगीन प्रासंगिकता पर भी विचार हो सके। 'कुरुक्षेत्र' की बनावट और बुनावट पाठकों का ध्यान आकृष्ट करती रही है इस दृष्टि से शिल्प पक्ष पर विचार करते समय इसके काव्य रूप, काव्य भाषा, बिंब एवं प्रतीक विधान अप्रस्तुत योजना, छंद एवं लय पर समग्रता से विचार किया गया है।

कृति के इस गहन अध्ययन के दौरान परंपरागत प्रबंध स्थापत्य में कवि द्वारा किए गए नवोन्मेष के विभिन्न पक्षों को रेखांकित किया गया है। इससे विद्यार्थी समझ सकेंगे कि परंपरागत प्रबंध के ढाँचे को तोड़ती हुई नवीन प्रबंध चेतना किस रूप में विकसित हुई है।

इकाई 27 प्रयोगवाद और नयी कविता : स्वरूप और विकास

इकाई की रूपरेखा

27.0 उद्देश्य
27.1 प्रस्तावना
27.2 प्रयोगवाद की पृष्ठभूमि
27.3 प्रयोगवाद का स्वरूप
27.4 प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
- 27.4.1 विचारधारा से मुक्ति
- 27.4.2 सत्य के लिए निरंतर अन्वेषण
- 27.4.3 व्यक्तिवाद
- 27.4.4 यथार्थ-दृष्टि

27.5 प्रयोगवाद का शिल्प-विधान
- 27.5.1 काव्य-भाषा
- 27.5.2 छंद और लय
- 27.5.3 प्रतीक और बिंब

27.6 प्रयोगवादी काव्य का विकास
27.7 नयी कविता की पृष्ठभूमि
27.8 नयी कविता का अर्थ
27.9 नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
- 27.9.1 व्यक्ति स्वातंत्र्य
- 27.9.2 आस्था और अनास्था
- 27.9.3 औद्योगिक सभ्यता
- 27.9.4 अनुभूतिपरकता
- 27.9.5 प्रकृति प्रेम

27.10 नयी कविता का शिल्प विधान
- 27.10.1 काव्य-भाषा
- 27.10.2 छंद और लय
- 27.10.3 प्रतीक और बिंब

27.11 नयी कविता का विकास
27.12 सारांश
27.13 शब्दावली
27.14 उपयोगी पुस्तकें
27.15 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

27.0 उद्देश्य

हिंदी के ऐच्छिक पाठ्यक्रम-2 के खंड-7 से संबंधित इस इकाई में आधुनिक हिंदी काव्य से संबंधित दो प्रमुख काव्यधाराओं प्रयोगवाद और नयी कविता का परिचय प्रस्तुत किया गया है।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- प्रयोगवाद और नयी कविता के उद्भव की पृष्ठभूमि बता सकेंगे,
- प्रयोगवाद और नयी कविता के स्वरूप का विवेचन कर सकेंगे,
- प्रयोगवाद और नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों का उल्लेख कर सकेंगे,
- प्रयोगवाद और नयी कविता की भाषा और शिल्प पक्ष की विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे, और
- प्रयोगवाद और नयी कविता के विकास का वर्णन कर सकेंगे।

27.1 प्रस्तावना

हिंदी के ऐच्छिक पाठ्यक्रम-2 के अंतर्गत आप हिंदी काव्य का परिचय प्राप्त कर रहे हैं। आधुनिक हिंदी काव्य परंपरा में प्रयोगवाद और नयी कविता का परिचय आप इस इकाई में प्राप्त करेंगे। आधुनिक हिंदी काव्य के विकास में इन दोनों धाराओं का महत्व यह है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की स्थितियों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति इन्हीं के माध्यम से हुई है। हम इस पाठ्यक्रम में इन धाराओं के कुछ प्रमुख कवियों के काव्य का अध्ययन करेंगे। इनके काव्य को समझने के लिए यह आवश्यक है कि आप इन धाराओं की काव्यगत विशेषताओं से भली-भांति परिचित हों।

प्रयोगवाद का आरंभ कब और क्यों हुआ? यह काव्यधारा अपने पूर्व की काव्यधाराओं से किन अर्थों में भिन्न थी। वस्तु और रूप दोनों दृष्टियों से इस काव्य की क्या विशिष्टताएँ हैं इन सभी बातों का अध्ययन आप इस इकाई में करेंगे। हम आपको यह भी बतायेंगे कि इस काव्यधारा के प्रमुख कवि कौन-कौन हैं और उनका क्या योगदान है? प्रयोगवाद के बाद हिंदी में "नयी कविता" नामक काव्यधारा का उदय हुआ। प्रयोगवाद और नयी कविता के अंत:संबंधों की चर्चा करते हुए हम उपर्युक्त सभी पहलुओं की चर्चा नयी कविता के संदर्भ में भी करेंगे।

आशा है इस इकाई को ध्यान से पढ़ने के बाद नयी कविता तक के हिंदी काव्य के विकास की एक पूर्ण तस्वीर आपके सामने आ चुकी होगी। भारतेन्दु युग से लेकर समकालीन कविता तक का विकास इस बात का द्योतक है कि इस अवधि में हिंदी कविता में तेजी से बदलाव आये हैं। अंतर्वस्तु, रूप, भाषा और शैली सभी दृष्टियों से हिंदी कविता लगातार बदलती और विकसित होती रही है। यह विकास इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि इसके माध्यम से तत्कालीन स्थितियों में आये परिवर्तनों को समझा जा सकता है क्योंकि हिंदी कविता उन्हीं स्थितियों के बदलाव को ही किसी-न-किसी रूप में व्यक्त करती रही है। प्रयोगवाद और नयी कविता के अध्ययन से आपको यह समझने में मदद मिलेगी कि तत्कालीन स्थितियों का कवियों पर किस रूप में प्रभाव पड़ रहा था और वे अपनी भावनाओं को कैसे व्यक्त कर रहे थे।

27.2 प्रयोगवाद की पृष्ठभूमि

हिंदी के प्रख्यात कवि अज्ञेय के संपादन में "तार सप्तक" नाम का एक काव्य-संग्रह सन् 1943 में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में सात कवियों की कविताएँ संग्रहीत थीं : गजानन माधव मुक्तिबोध, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, भारत भूषण अग्रवाल, नेमिचन्द्र जैन, रामविलास शर्मा और स्वयं अज्ञेय। जब यह संग्रह प्रकाशित हुआ था, तब इनमें अज्ञेय को छोड़कर शेष सभी कवि प्रगतिवादी विचारधारा से प्रभावित थे, कुछ तो सीधे-सीधे अपने को कम्युनिस्ट कहते थे। अज्ञेय भी प्रगतिवादियों से बहुत दूर नहीं थे। इसके बावजूद इस संग्रह में काव्य में प्रयोग की चर्चा आरंभ हुई। इसका कारण था — इस पुस्तक की अज्ञेय द्वारा लिखित "भूमिका"।

अज्ञेय ने "तार सप्तक" की भूमिका में लिखा था कि "संग्रहीत कवि सभी कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं — जो यह दावा नहीं करते कि उन्होंने काव्य का सत्य पा लिया है, केवल अन्वेषी ही अपने को पाते हैं। .... वे किसी स्कूल के नहीं हैं, किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं हैं, अभी राही हैं, राही नहीं राहों के अन्वेषी।" अज्ञेय के इन कथनों से "प्रयोगवाद" और प्रयोगशीलता की चर्चा होने लगी। "दूसरा सप्तक" में अज्ञेय द्वारा यह कहे जाने के बावजूद कि "प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे, नहीं हैं। न प्रयोग अपने आप इष्ट या साध्य है। प्रयोगवाद शब्द रूढ़ हो गया। इस प्रकार एक धारणा यह बनी कि प्रयोगवाद का आरंभ 'तार सप्तक' से हुआ।"

सन् 1947 में अज्ञेय के संपादन में "प्रतीक" नामक साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ तथा इस पत्रिका में प्रकाशित होने वाली कविताओं को प्रयोगवादी कहा जाने लगा। इसके बाद से लगातार प्रयोगवाद की चर्चा होती रही, यद्यपि अज्ञेय ने दूसरा सप्तक (1951) की भूमिका में प्रयोग के वाद से इन्कार किया, इसके बावजूद यह शब्द रूढ़ हो गया। इस प्रकार प्रयोगवाद का आरंभ "तार सप्तक" (1943) से नहीं बल्कि "प्रतीक" (1947) के प्रकाशन माना जा सकता है, यह मत भी रखा गया। वैसे भी 46-47 से पहले तक प्रगतिशील और गैर-प्रगतिशील कवियों के बीच वैसी खाई नहीं थी, जैसी बाद में देखी गयी। 1946-47 के बाद ही प्रगतिशील कवियों-लेखकों और गैर प्रगतिशील कवियों-लेखकों के बीच मतभेद बढ़ा और प्रयोगवाद, प्रगतिवाद के विपरीत रूप पक्ष पर बल देता हुआ आगे बढ़ा।

प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का अंत:संबंध

"प्रतीक" (1947 के प्रकाशन के समय प्रगतिशील कहे जाने वाले कई कवियों के दृष्टिकोणों में परिवर्तन होने लगा था। नेमिचन्द्र जैन, प्रभाकर माचवे, नरेन्द्र शर्मा, भारत भूषण अग्रवाल, गिरिजाकुमार माथुर आदि कुछ ऐसे ही प्रगतिशील कवि थे। इन कवियों ने इस प्रक्रिया में प्रगतिवाद पर दो आरोप लगाये — एक तो यह है कि प्रगतिवाद साहित्य का संकीर्णतावादी आंदोलन है जो लेखकों की स्वतंत्रता का अपहरण कर उसे खास विचारधारा के घेरे में बांध देता है। दूसरा आरोप यह लगाया गया कि प्रगतिवाद साहित्य के रूप व कला पक्ष की उपेक्षा करता है तथा विषय-वस्तु के संबंध में भी संकीर्ण दृष्टिकोण रखता है। अज्ञेय प्रगतिवाद की सामूहिकता के विरुद्ध व्यक्ति की स्वतंत्रता के समर्थक बनकर आगे आये। अतः जब "प्रतीक" का प्रकाशन आरंभ हुआ तो वे सभी पुराने प्रगतिशील कवि जो प्रगतिवाद से असंतुष्ट तथा वे नये कवि जो अभी अपनी दिशा निर्धारित नहीं कर पाये, अज्ञेय और "प्रतीक" के इर्द-गिर्द इकट्ठे होने लगे। इस प्रकार अज्ञेय प्रयोगवाद के प्रवर्तक बन कर उभरे।

अज्ञेय ने प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के अंतर को स्पष्ट किया है। अज्ञेय के अनुसार मानव के प्रति दो दृष्टिकोण मिलते हैं। एक में मानव-व्यक्ति पर आग्रह है अर्थात् व्यक्ति के रूप में मनुष्य केन्द्र में है, दूसरे में मानव सामाजिक इकाई के रूप में है। पहले में विषय के प्रति आग्रह है, साथ ही सौन्दर्य और रूप-विधान के प्रतिमानों को अस्वीकार करते हुए चलती है। जबकि दूसरे का आग्रह विषय पर नहीं विषय की स्थिति पर है और वह रूप-विधान की परवाह नहीं करता। अज्ञेय के कथन का तात्पर्य यह है कि प्रगतिवाद में विषय के प्रति संकीर्ण दृष्टिकोण रहता है और कला-पक्ष की उपेक्षा रहती है जबकि प्रयोगवाद में रचना का कलात्मक उद्देश्य कभी संदिग्ध नहीं रहता।

वस्तुतः प्रगतिवाद सामाजिक यथार्थ से साहित्य को संपृक्त करते हुए उसे संघर्ष का माध्यम बनाता है जबकि प्रयोगवाद साहित्य के रूप-संबंधी नवीन प्रयोगों पर बल देता है तथा साहित्य के सामाजिक पक्ष की उपेक्षा करता है। प्रगतिशील आंदोलन और साहित्य का संबंध राष्ट्रीय स्वाधीनता से घनिष्ठ रूप से जुड़ा था। जबकि प्रगतिवाद शुद्ध रूप से एक साहित्यिक काव्य आंदोलन था। उसकी प्रतिबद्धता किसी विशेष विचारधारा से नहीं थी और काव्य के कलापक्ष के प्रति उसमें आग्रह अधिक था।

प्रयोगवादकालीन परिस्थितियाँ

साहित्य में प्रयोगवाद की प्रवृत्ति के उदय के क्या कारण है? प्रगतिवाद का आंदोलन राष्ट्रीय स्वाधीनता के संघर्ष से घनिष्ठ रूप से जुड़ा था, लेकिन जब आजादी हासिल हो गयी तो मध्यवर्ग के सम्मुख कोई ऐसा आदर्श नहीं रहा जो उन्हें किसी बाह्य सामाजिक आदर्श से जोड़ पाता। देश के नव निर्माण ने उनमें नवीन आकांक्षाओं को जगाया। सामूहिकता की भावना के शिथिल पड़ने के साथ व्यक्तिवाद ने जोर पकड़ना शुरू किया। दूसरी ओर विश्व पैमाने पर अमरीका के नेतृत्व में साम्राज्यवादी शिविर और सोवियत संघ के नेतृत्व में समाजवादी शिविर के बीच बढ़ते तनाव ने भी लेखकों के एक बड़े हिस्से को प्रभावित किया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद साम्राज्यवादी देशों ने कम्युनिस्ट देशों और मार्क्सवादी विचारधारा के विरुद्ध प्रचार किया। इस प्रचार ने लेखकों और बुद्धिजीवियों को भी प्रभावित किया। इस बात को प्रमुखता दी जाने लगी कि व्यक्ति की स्वतंत्रता ही सर्वोत्तम मूल्य है। साम्यवाद व्यक्ति की स्वतंत्रता का अपहरण करता है। समाजवादी देशों में व्यक्ति को कोई स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है। वहाँ लोकतंत्र और मानव मूल्य सुरक्षित नहीं है। प्रयोगवाद के उदय में इन परिस्थितियों ने भी अपनी भूमिका निभाई। प्रयोगवाद के उदय का एक कारण यह भी था कि प्रगतिवादी आंदोलन में धीरे-धीरे संकीर्णतावादी दृष्टिकोण का प्रवेश होने लगा। जीवन के व्यापक अनुभवों की बजाए कुछ खास तरह के जीवन यथार्थ की अभिव्यक्ति पर अधिक बल दिया जाने लगा। कलात्मक श्रेष्ठता की बजाए प्रचार को अधिक प्रश्रय दिया गया। इस स्थिति ने नये कवियों-लेखकों में असंतोष उत्पन्न किया। उन्होंने नये मार्ग की तलाश आरंभ की। प्रयोगवाद इसी नये सोच का वाहक बनकर प्रवर्तित हुआ।

27.3 प्रयोगवाद का स्वरूप

"तार सप्तक" की भूमिका में अज्ञेय ने काव्य को प्रयोग का विषय माना था। उनके इस कथन से ही काव्य में प्रयोग को लेकर चर्चा बढ़ने लगी और धीरे-धीरे प्रगतिवादी काव्य से भिन्न कविताओं को प्रयोगवादी कविता कहा जाने लगा। लेकिन इससे यह नहीं समझा जाना चाहिए कि प्रयोगवादी कवि केवल प्रयोगशीलता को ही काव्य का धर्म मानते हैं। काव्य के कला पक्ष और रूप पक्ष पर बल देते हुए भी प्रयोगवाद सिर्फ काव्य का कलावादी आंदोलन नहीं है बल्कि इससे अधिक यह काव्य के क्षेत्र में नये विचारों और मतों का वाहक भी है। अज्ञेय ने कहा था, "प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं, रहे, नहीं हैं।" अज्ञेय के इस कथन में केवल प्रयोग को वाद मानने से ही इंकार नहीं है बल्कि किसी विचारधारा विशेष के प्रति प्रतिबद्धता को भी वे अनावश्यक मानते हैं। अज्ञेय का मानना है कि काव्य में किसी विचारधारा के प्रति आग्रह से व्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन होता है। धर्मवीर भारती, रघुवंश, विजयदेव नारायण साही आदि कवियों, समीक्षकों की दृष्टि में भी "प्रयोगशील कविता कई अर्थों में टेकनीक और अभिव्यंजना का आंदोलन है।"

अज्ञेय यह मानते है कि प्रयोग दोहरा साधन है। "एक तो उस सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है, दूसरे वह उस प्रेषण की क्रिया को और उसके साधनों को जानने का भी साधन है। अर्थात् प्रयोग द्वारा सत्य को अधिक अच्छी तरह जान सकता है और अच्छी तरह अभिव्यक्त कर सकता है।" अज्ञेय एवं अन्य लेखकों के उपर्युक्त कथनों से हम निम्नलिखित निष्कर्ष निकाल सकते हैं :

क) प्रयोगवाद में विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता का आग्रह नहीं है।

ख) प्रयोगवाद में विषयवस्तु की अपेक्षा रूप और शिल्प को अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है।

ग) प्रयोग का संबंध नयी विषय-वस्तु की खोज से भी है और उस विषय-वस्तु को प्रेषित करने के ढंग से भी है।

अगर हम उपर्युक्त बातों पर गौर करें तो स्पष्ट हो जाएगा कि प्रयोगवाद काव्य में नये दृष्टिकोण को लेकर सामने आया जो पूर्ववर्ती काव्यधारा प्रगतिवाद से भिन्न था।

27.4 प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

प्रयोगवाद का उदय प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया में हुआ इसलिए यह स्वाभाविक था कि प्रयोगवाद समाज की तुलना में व्यक्ति को, विचारधारा की तुलना में अनुभव को, विषयवस्तु की तुलना में कलात्मकता को श्रेयस्कर मानता। प्रयोगवाद की प्रवृत्तियों पर विचार करते हुए हमें उपर्युक्त बातों को दृष्टि में रखना चाहिए। प्रयोगवाद के स्वरूप को समझने के लिए हम उसकी प्रमुख प्रवृत्तियों पर विचार करेंगे।

27.4.1 विचारधारा से मुक्ति

प्रख्यात आलोचक डॉ. नामवर सिंह ने 'वाद के विरुद्ध विद्रोह' को योगवाद की सर्वप्रथम विशेषता माना है। स्वयं अज्ञेय ने कहा था "प्रयोग का कोई वाद नहीं है।" प्रयोगवादी कवियों का मानना था कि कोई भी वाद या विचारधारा मनुष्य को सत्य तक नहीं पहुँचा सकती है। राजनीतिक पक्षधरता को वे अनावश्यक मानते हैं। अज्ञेय के अनुसार "हमारा जन्म लेना ही पक्षधर होना है।" जीवन संघर्ष में वह किसी बाह्य सत्य, किसी वैज्ञानिक दर्शन की उपयोगिता को स्वीकार नहीं करते। उनका प्रश्न है कि जिस विचार दर्शन के सहारे हम जीवन-पथ पर चलने का निर्णय करते हैं वह कब तक हमें सहारा देगा। उसका कितना भरोसा किया जा सकता है :

यह जो दिया लिये तुम — चले खोजने सत्य, बताओ
क्या प्रबंध कर चले
कि जिस बाती का तुम्हें भरोसा
वही जलेगी सदा
अकम्पित, उज्ज्वल, एकरूप, निर्धूम?

(साधना का सत्य, कितनी नावों में कितनी बार)

27.4.2 सत्य के लिए निरंतर अन्वेषण

डॉ. नामवर सिंह ने "सत्य के लिए निरंतर अन्वेषण" को प्रयोगवाद की दूसरी विशेषता माना है। जब एकबार प्रयोगवादी कवि ने विचारधारा से अपने को अलग कर लिया तब सत्य को जानने के लिए निरंतर अन्वेषण आवश्यक हो गया। अज्ञेय ने "दूसरा सप्तक" की भूमिका में कहा था, "प्रयोग दोहरा साधन है, क्योंकि एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है, जिसे कवि प्रेषित करता है, दूसरे उस प्रेषण की क्रिया को और उसके साधनों को जानने का भी साधन है। अर्थात् प्रयोग द्वारा कवि अपने सत्य को अधिक अच्छी तरह जान सकता है और अधिक अच्छी तरह अभिव्यक्त कर सकता है।"

अज्ञेय के विचारों का तात्पर्य यह है कि प्रयोगवाद कवि उस सत्य की भी खोज करता है, जिसे वह काव्य में व्यक्त करना चाहता है और उस माध्यम की भी खोज करता है जिसके द्वारा सत्य व्यक्त होता है। इस प्रकार सत्य का अन्वेषण प्रयोगवाद की एक प्रमुख विशेषता है। प्रयोगशीलता की पहचान इसी प्रवृत्ति में अंतर्निहित है।

27.4.3 व्यक्तिवाद

प्रयोगवादी कवियों ने व्यक्ति के एकांत महत्व पर विशेष बल दिया है। "नदी के द्वीप" कविता में अज्ञेय ने व्यक्ति और समाज के संबंधों पर विचार किया है। उनके अनुसार व्यक्ति द्वीप के समान है जो काल रूपी नदी के बीच दृढ़ता से अवस्थित रहता है जो समाज रूपी भूखंड की तरह नदी को गंदला नहीं करता। "नदी के द्वीप" कविता में व्यक्ति और समाज अलग-अलग है। उनकी अन्य कई कविताओं में भी व्यक्ति के स्वतंत्र अस्तित्व पर बल दिया गया है।

व्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रति यह आग्रह मध्यवर्ग की मानसिकता की अभिव्यक्ति है जो वैयक्तिक असंतोष से उपजी है। छायावाद में भी मध्यवर्ग का ही व्यक्ति केन्द्र में था परन्तु वहाँ उसकी चेतना ऊर्ध्वमुखी थी, वह आत्म-विकास की ओर अग्रसर था, उसकी व्यक्ति-चेतना सामंती रूढ़ियों और बंधनों से मुक्त होना चाहती थी। प्रगतिवाद ने इस मध्य वर्ग के व्यक्ति को समाज से और सामूहिक चेतना से जोड़ा। इसके कारण मध्यवर्ग के व्यक्ति में व्यक्तिवादिता का उदय नहीं हुआ। परंतु प्रयोगवादी दौर में मध्यवर्ग का असंतोष सामाजिक धरातल पर व्यक्त होने की बजाए वैयक्तिक धरातल पर व्यक्त हुआ। समाज से कटा हुआ व्यक्ति केवल अपने दर्द को व्यक्त करने लगा। आशा और विश्वास की जगह निराशा और अनास्था ने ले ली। इस प्रकार प्रयोगवादी कविता में व्यक्ति की भावनाएँ ही प्रमुख होती चली गयीं।

27.4.4 यथार्थ-दृष्टि

प्रयोगवादी कविता में भावुकता की बजाए बौद्धिकता का आग्रह अधिक है। जीवन के यथार्थ को रंगीन मोहक और भावमय रूप में प्रस्तुत करने की बजाए प्रयोगवाद ने उसे सहज और साधारण रूप में प्रस्तुत किया। यद्यपि प्रयोगवादी कवि की जीवनानुभूति बहुत सीमित थी, परन्तु यह सीमित अनुभव यथार्थपरक रूप से ही व्यक्त हुआ। इसका उदाहरण हम प्रकृति और नारी संबंधी कविताओं में देख सकते हैं।

छायावादी और प्रयोगवादी कविता में नारी-चित्रण की तुलना करते हुए डॉ. नामवर सिंह ने लिखा है कि "छायावादी कवि प्रायः प्रकृति की मोहक पृष्ठभूमि में अथवा सुंदर प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से नारी की छाया-प्रतिमा निर्मित करते रहे, लेकिन प्रयोगवादी कवि ने यहाँ भी अप्सरामयी नारी को स्वप्न स्थित गरिमामय पद से उबारते हुए सामान्य भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित कर दिया।" अज्ञेय आधुनिक युग के साधारण व्यक्ति को यौन-वर्जनाओं का पुंज मानते हैं। शायद यही कारण है कि प्रयोगवाद में प्रेम की अभिव्यक्ति कहीं-कहीं प्रकृतिवाद के धरातल पर हुई है। यह अवश्य है कि प्रयोगवादी कविताओं में प्रेम भावुकतापूर्ण और लिजलिजे रूप में व्यक्त नहीं हुआ है बल्कि बौद्धिक धरातल पर व्यक्त हुआ है। उदाहरण के लिए "हरी घास पर क्षण भर" कविता में अज्ञेय प्रेमाभिव्यक्ति करते हुए सामाजिक वास्तविकता को नहीं भूलते। प्रेम की भावना का एक आयाम यह भी है कि व्यक्ति प्रेम में डूबकर दुनिया की सुधबुध खोने की बजाय वह समाज के प्रति उदात्त और जीवन के प्रति अधिक संघर्षशील बने गिरिजाकुमार माथुर की "तैंतीसवीं वर्षगाँठ"

में यहां भावना व्यक्त हुई है। कवि कहता है कि उम्र की उस मीनार पर केवल प्रिय का प्यार ही शक्ति देता है जिससे कि संसार के जुल्म से लड़ा जा सके। कवि अपनी प्रिया से कामना करता है :

लाल आंचल से पसीना पोंछ दो
बाल पतली उंगलियों से ओंछ दो
उम्र की सारी थकान उतार दो
देह पर हथियार नये संवार दो।

प्रयोगवादी कवियों ने प्रकृति-चित्रण में भी इसी यथार्थ-दृष्टि का परिचय दिया है। प्रकृति की सूक्ष्म गतिविधियों के उसके रूप, रस, स्पर्श, गंध और स्वर के अनुभवों को शब्दबद्ध करने की कोशिश करते हैं। अज्ञेय, शमशेर, गिरिजाकुमार माथुर आदि की कविताओं में हम प्रकृति के विभिन्न रूप देख सकते हैं।

प्रात नभ था बहुत नीला शंख जैसे,
भोरे का नभ
राख से लीपा हुआ चौका
अभी गीला पड़ा है।
बहुत काली सिंल जरा से लाल केसर से
कि जैसे धुल गयी हो
स्लेट पर या लाल खड़िया चाक
मल दी हो किसी ने
नील जल में यो किसी की
गौर झिलमिल देह
जैसे हिल रही हो।
और.....
जादू टूटता है इस उषा का अब
सूर्योदय हो रहा है।
(उषा : शमशेर)

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइए।

1 प्रगतिवाद और प्रयोगवाद में कुछ अंतर नीचे बताये गये हैं। इनमें जो अंतर सही नहीं हो उनके आगे × का चिह्न लगाइए।

क) प्रगतिवाद में समाज केंद्र में होता है जबकि प्रयोगवाद में व्यक्ति। ( )

ख) प्रगतिवाद में कला पक्ष का अधिक महत्व होता है जबकि प्रयोगवाद में विषय-वस्तु का। ( )

ग) प्रगतिवाद में व्यक्ति की समस्याओं की प्रधानता होती है जबकि प्रयोगवाद में व्यक्ति की समस्याओं का चित्रण नहीं होता। ( )

घ) प्रगतिशील आंदोलन का संबंध स्वाधीनता संघर्ष से था जबकि प्रयोगवाद केवल साहित्यिक, आंदोलन रहा। ( )

2 निम्नलिखित विशेषताओं में से जो प्रयोगवाद पर लागू न हो, उनके आगे × का चिन्ह लगाइए।

क) प्रयोगवाद मार्क्सवाद के प्रति पक्षधरता का समर्थक है। ( )

ख) प्रयोगवाद में "वाद" का आग्रह नहीं है। ( )

ग) प्रयोगवाद की कविता में शिल्प पक्ष पर विशेष ध्यान रखा जाता है। ( )

घ) प्रयोगवाद में सत्य की सतत खोज पर अधिक बल दिया जाता है। ( )

3 प्रयोगवाद में व्यक्ति के प्रति दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए। उत्तर लगभग पाँच पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

अभ्यास

1 प्रयोगवादी कविता का जन्म किन परिस्थितियों में हुआ और ये परिस्थितियाँ पूर्व से किन रूपों से भिन्न थीं? लगभग 100 शब्दों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

27.5 प्रयोगवाद का शिल्प-विधान

प्रयोगवाद में वस्तु-पक्ष की अपेक्षा रूप-पक्ष पर अधिक बल दिया गया है, यह पहले कहा जा चुका है। अज्ञेय ने भी कहा था कि प्रयोगवादी कविता में सौन्दर्य-पक्ष और रूप-विधान उत्कृष्ट होता है। किंतु हम यह भी बता चुके हैं कि प्रयोगवाद केवल कलापक्ष पर ही जोर नहीं देता बल्कि अंतर्वस्तु की दृष्टि से भी वह पहले की कविताओं से भिन्न है। इस भिन्नता को निश्चिय ही हम भाषा और शिल्प दोनों स्तरों पर भी देख सकते हैं।

27.5.1 काव्य-भाषा

प्रयोगवादी काव्य की भाषा छायावाद से भिन्न तो है ही, वह प्रगतिवादी कविता से भी भिन्न है। छायावादी कविता की भाषा में कोमलता और सुकुमारता के गुण थे तो प्रगतिवादी कविता में पहली बार कविता की भाषा को बोल-चाल के निकट लाने की कोशिश की गयी। प्रयोगवाद में शब्द प्रयोग की ओर विशेष ध्यान दिया गया। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार यद्यपि प्रयोगवादी कवियों की भाषा में आरंभ में दुरूहता और अनगढ़पन अधिक था परंतु बाद में भाषा अधिक सहज और सरल बनी। उसमें अधिक पारदर्शिता और संप्रेषणीयता आई। भाषा में गेयता और आलंकारिकता कम हुई। सभी प्रयोगवादी कवियों की भाषा एक-सी नहीं है। अज्ञेय की भाषा आरंभ में दुरूह और बौद्धिक अधिक थी, बाद में भाषा बोलचाल के नजदीक आई। गिरिजाकुमार माथुर की भाषा में गेयता का तत्व अधिक रहा है। तो आरंभ में उनकी भाषा पर छायावाद का असर देखा जा सकता है। बाद में उनकी कविता की भाषा में बोलचाल का ज्यादा स्वाभाविक रूप दिखाई देता है। शमशेर के शब्द प्रयोग यद्यपि सरल हैं परंतु अर्थ की दृष्टि से अधिक गहन हैं। वे सिर्फ शब्दों तक ही अपनी कविता के अर्थ को नहीं बांधते बल्कि उससे आगे शब्दों के बीच के मौन अंतराल में काव्यार्थ छिपा होता है।

27.5.2 छंद और लय

छंदबद्ध कविता से मुक्ति का आरंभ छायावाद के समय से ही हो गया था, लेकिन गद्य और पद्य की भाषा के मूल में अंतर क्या हो, यह लगातार विवाद का विषय रहा है। कविता पहले छंद से मुक्त हुई, फिर तुक से, फिर शब्द की लय से। अज्ञेय ने काव्य को "शब्द" माना है। उनके अनुसार ध्वनि, छंद लय आदि के सभी प्रश्न शब्द में से निकलते और शब्द में विलय होते हैं। अज्ञेय कविता में किसी-न-किसी रूप में गेय तत्व को आवश्यक मानते हैं।

डॉ. नामवर सिंह ने लिखा है कि "छायावाद-युग में जो मुक्त छंद वैकल्पिक था, वह प्रयोगवादी कविता का मुख्य स्वर हो गया। मुक्तछंद को ही विशेष रूप से अपनाने के कारण प्रयोगवादियों ने इसमें नये-नये स्वरों और नयी-नयी लयों के प्रयोग किये। छायावाद में प्रायः रोला और घनाक्षरी की लय पर ही मुक्तछंद लिखे गये, लेकिन प्रयोगवाद में सवैया तथा अन्य प्राचीन छंदों की लय का मुक्त ढंग से प्रयोग किया गया।"

प्रयोगवादी कवियों ने गीत भी लिखे हैं लेकिन डॉ. नामवर सिंह के विचार में "छायावादी गीतों की तुलना में प्रयोगवादी गीत कम मोहक और अधिक सपाट प्रतीत होते हैं।" विशेष रूप से अज्ञेय के गीत में लय की रक्षा अंत तक नहीं हो पाती। गिरिजाकुमार माथुर में अज्ञेय की तुलना में गेयता अधिक है परंतु अर्थ की दृष्टि से वह गहनता नहीं है जो अज्ञेय में है।

27.5.3 प्रतीक और बिंब

अज्ञेय काव्य में प्रतीकों का महत्वपूर्ण स्थान मानते हैं। उनके अनुसार "कोई भी स्वस्थ काव्य-साहित्य प्रतीकों की, नये प्रतीकों की सृष्टि करता है और जब वैसा करना बंद कर देता है तब जड़ हो जाता है — या जब जड़ हो जाता है

तब वैसा करना बंद करके पुराने प्रतीकों पर ही निर्भर करने लगता है।" अतः प्रतीक को सत्यान्वेषण का साधन मानते हैं। उनकी चर्चित कविता सोन-मछली इसका श्रेष्ठ उदाहरण है :

हम निहारते रूप
कांच के पीछे हांफ रही मछली।
रूप-तृषा भी
(और कांच के पीछे) है जिजीविषा।

(अरी ओ करूणा प्रभामय)

प्रयोगवादी कविता में प्रतीक "लाक्षणिक वक्रता" से आगे बढ़कर सांकेतिक अर्थ की अभिव्यक्ति में सहायक होते हैं। अज्ञेय के यहाँ प्राकृतिक प्रतीकों का अधिक प्रयोग है। यद्यपि उनमें विविधिता कम है। भारत भूषण अग्रवाल और गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में प्रायः परंपरागत प्रतीकों का ही प्रयोग हुआ है। इनके यहाँ प्रतीकों के प्रयोग में किसी गहरी सर्जनात्मकता और वैचारिक ऊर्जा के दर्शन नहीं होते। शमशेर के प्रतीक अधिक दुरूह हैं जबकि मुक्तिबोध में मिथकीय, प्राकृतिक और आधुनिक जीवन से लिए गए विभिन्न तरह के प्रतीकों का प्रयोग मिलता है।

काव्य बिंब का संबंध भाषा की सर्जनात्मक शक्ति से है तथा इसका निर्माण मनुष्य के ऐन्द्रिक बोध का ही प्रतिफल है। शब्द, भाव और विचार के अमूर्त संकेत तो हैं लेकिन इन अमूर्त संकेतों में यह शक्ति भी होती है कि वह अमूर्त संकेतों के माध्यम से एक मूर्त चित्र निर्मित कर सकता है। यही बिंब निर्माण की प्रक्रिया है। प्रयोगवादी कविता बिंब निर्माण की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है। अज्ञेय के यहाँ बिंब अधिक हैं, सामाजिक जीवन से लिए गये बिंब कम हैं। मुक्तिबोध के यहाँ मानव-स्थितियों से जुड़े बिंब अधिक हैं। मुक्तिबोध नयें तरह के बिंबों का अधिक प्रयोग करते हैं। अज्ञेय के काव्य-बिंब प्रायः सामान्य और सरल होते हैं लेकिन वह कभी-कभी उनके द्वारा जीवन की किसी ऐसी समस्या को प्रतीकात्मक रूप में व्यक्त करते है जो उतनी सरल और सामान्य नहीं होती। अज्ञेय की अपेक्षा शमशेर के यहाँ सौंदर्य-बिंबों का रूप अधिक संश्लिष्ट और सूक्ष्म है। उन्होंने कई कविताओं में प्रकृति के बिंबों को अपनी भावनाओं के साथ इस तरह अंतर्ग्रथित किया है कि वह केवल वस्तु का चाक्षुष बिंब न होकर कवि का मानसिक प्रतिबिंब बन जाता है ऐसा मानसिक प्रतिबिंब जिसमें स्वयं कवि का "मैं" घुलमिल रहता है। उदाहरण के लिए "एक पीली शाम" कविता को लिया जा सकता है :

एक पीली शाम
पतझर का जरा अटका हुआ पत्ता
शांत
मेरी भावनाओं में तुम्हारा मुख कमल
कृश म्लान हारा-सा
"कि मैं हूँ वह
मौन दर्पण में तुम्हारे कहीं?

(कुछ कविताएँ)

27.6 प्रयोगवादी काव्य का विकास

आरंभ में "तार सप्तक" की चर्चा करते हुए हमने लिखा था कि यद्यपि अज्ञेय ने प्रयोग की चर्चा "तार सप्तक" (1943) से आरंभ की थी परंतु तार सप्तक को प्रयोगवाद की शुरुआत का आधार नहीं बनाया जा सकता। प्रयोगवाद को विधिवत् मान्यता "प्रतीक" (1947) और "दूसरा सप्तक" (1951) से मिली और इन दोनों के प्रकाशन के केंद्र में अज्ञेय रहे; इसलिए अज्ञेय को प्रयोगवाद का प्रवर्तक भी माना जाता है। वैसे भी अब तक के अध्ययन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि अज्ञेय की अवधारणाओं का प्रयोगवाद से गहरा संबंध है। अज्ञेय के अतिरिक्त जिन कवियों को प्रयोगवादी माना जाता रहा है, उनमें प्रमुख हैः गिरिजाकुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचंद्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता आदि। इन कवियों में सभी प्रयोगवाद की उपर्युक्त अवधारणाओं से पूर्णतः सहमत नहीं है। उदाहरण के लिए मुक्तिबोध और शमशेर में प्रयोगशीलता की ओर झुकाव तो रहा परंतु उन्होंने मार्क्सवाद का विरोध या विचारधारा के प्रति विद्रोह कभी नहीं किया बल्कि वे हमेशा मार्क्सवादी कवि के तौर पर ही पहचाने गये।

एक काव्यधारा के रूप में प्रयोगवाद अल्पजीवी ही रहा। "तार सप्तक" (1943) में प्रयोग की चर्चा होते हुए भी प्रगतिवाद की विरोधी काव्यधारा रूप में प्रतिष्ठा उसे 1947 में ही मिल सकी। लेकिन 53-54 तक आते-आते प्रयोग से अधिक चर्चा नयी तरह की कविता, जिसे नयी कविता नाम दिया गया की होने लगी। प्रयोगवादी दौर में जो काव्य प्रवृत्तियाँ उभरनी शुरू हुई थीं उन्होंने स्पष्ट रूप-आकार 53-54 के बाद ही ग्रहण किया। यही कारण है कि प्रयोगवादी दौर में जो कवि सक्रिय थे वे नयी कविता मे भी उतने ही सक्रिय रहे। यहाँ हम इन कुछ कवियों की चर्चा कर रहे है जिन्होंने प्रयोगवाद को सुदृढ़ करने में योग दिया :

अज्ञेय (1911-1987) को प्रयोगवाद का प्रवर्तक कहा जा सकता है। प्रयोगवादी काव्य की जो भी विशेषताएँ सीमाएँ हैं उन्हें हम श्रेष्ठ रूप में अज्ञेय के काव्य में देख सकते हैं। अज्ञेय का पहला काव्य संग्रह "भग्नदूत" 1933 में प्रकाशित हुआ। चिंता (1942) और इत्यलम् (1946) तक की कविताओं में प्रयोगवादी रूझाव बहुत साफ उभरकर सामने नहीं आया था। लेकिन 1949 में प्रकाशित "हरि घास पर क्षण भर" में प्रयोगवाद को स्पष्ट पहचाना जा सकता है। अज्ञेय की आरंभिक कविताओं पर छायावाद का प्रभाव भी देखा जा सकता है। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के अनुसार "मुक्ति और जीने की लालसा या कहें स्वतंत्रता की खोज ही अज्ञेय के काव्य की सही जमीन है। अज्ञेय की कविताओं में प्रकृति के प्रति विशेष लगाव के दर्शन होते हैं। उनके अधिकांश प्रिय प्रतीक भी प्राकृतिक हैं जैसे नदी, तट, मछली, सागर, चिड़िया, चाँदनी, इन्द्रधनु, साँझ आदि। इसके विपरीत उनकी कविताओं में शहरी जीवन के प्रति गहरी वितृष्णा के दर्शन भी होते हैं। औद्योगिक सभ्यता के प्रति उनके गहरे अलगाव को व्यक्त करने वाली कविताएँ हैं। अज्ञेय ने अपनी कविताओं में काव्य सत्य पर विचार किया है। जिजीविषा और सत्य की निरंतर खोज उनकी कविताओं के प्रिय विषय रहे हैं। उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं : बावरा अहेरी (1954), इन्द्रधनु रौंदे हुए ये (1957), अरी ओ करुणा प्रभामय (1959), आंगन के पार द्वार (1961), कितनी नावों में कितनी बार (1967) आदि।

अज्ञेय ने काव्य संबंधी समस्याओं पर भी निरंतर लेखन किया है। त्रिशंकु (1945), आत्मनेपद (1960) और हिंदी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य (1967) में उनके साहित्य संबंधी लेखों को संग्रहीत किया गया है।

गिरिजाकुमार माथुर (1919) ने काव्य यात्रा की शुरुआत "मंजीर" (1941) से की थी। उनके काव्य की जमीन प्रेम और सौंदर्य है। "नाश और निर्माण" (1946), "धूप के धान" (1955), "जो बँध नहीं सका" (1968) उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं। नारी-प्रेम और प्रकृति प्रेम उनकी कविताओं के मुख्य विषय हैं। गेयता उनके काव्य की खास पहचान है। वे काव्य में नाद-सौंदर्य को प्रमुख स्थान देते हैं। अज्ञेय की तरह उनकी सौंदर्य-चेतना सामाजिक जीवन से निरपेक्ष नहीं है। प्रेम और सौंदर्य दोनों ही संसार के बीच आकार लेते हैं। उनकी कविता में दैहिकता अधिक है कल्पनाशीलता कम है। प्रयोगवादी कवियों में रूमानियत का सबसे अधिक प्रभाव गिरिजाकुमार माथुर पर ही रहा है। नयी कविता के दौर तक आते-आते उनमें यह रूमानियम कम हुई है।

भारतभूषण अग्रवाल (1919-1975) का प्रथम काव्य संग्रह "छवि के बंधन" (1941) पर छायावाद का और दूसरे काव्य संग्रह "जागते रहो" (1942) पर प्रगतिवाद का प्रभाव था। तीसरा संग्रह 'मुक्तिमार्ग' (1947) में उन्होंने अपना अलग रास्ता खोजा। भारत भूषण अग्रवाल की कविताओं में मुख्यतः दर्द की अभिव्यक्ति हुई है अपनी भी और जगत की भी। इस दर्द की अभिव्यक्ति कहीं त्रासद रूप में तो कहीं व्यंग्य रूप में है। प्रयोग की प्रवृत्ति भारतभूषण अग्रवाल में भी है लेकिन उनकी कविताएँ वक्तव्य प्रधान अधिक हैं। प्रतीक भी सामान्य और सरल है। कविता में भावनाओं की गहराई या जटिल वैचारिकता का अभाव है। उनके अन्य प्रमुख काव्य संग्रह हैं : "ओ अप्रस्तुत मन" (1959), "अनुपस्थित लोग" (1965), "एक उठा हुआ हाथ" (1979) तथा "उतना वह सूरज है" (1977) आदि।

श्री नरेश मेहता (1924) प्रयोगवाद के अन्य प्रमुख कवि हैं। इन पर भी आरंभ प्रगतिवाद का प्रभाव था। नरेश मेहता की कविता में भी प्रकृति के प्रति गहरे लगाव के दर्शन होते हैं। उनकी कविताओं में प्रकृति अपने विविध रूपों में आती है। नदी, झील, आकाश, बादल, सूरज, चाँद, चिड़िया, फूल, वसंत, पहाड़, घाटी, सावन आदि। कई रूपों में प्रकृति उनकी कविताओं में मौजूद हैं। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के अनुसार "नरेश जी की कविता में असंख्य प्रकृति चित्रों को देखकर लगता है जैसे कवि-मन पर प्रकृति का जादू हो। जहाँ भी प्राकृतिक दृश्य आते हैं उनका वर्णन कवि बड़े उल्लास के साथ करता है।" नरेश मेहता की कविता में उषा, धूप और किरन का वर्णन सबसे अधिक हुआ है "दूसरा सप्तक" में नरेश मेहता की कविताएँ संकलित हैं। "संशय की एक रात" (1962) प्रसिद्ध काव्य रचना है। "समय देवता" उनकी लंबी कविता है। उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं "वन पाखी सुनो" (1957), "बोलने दो चीड़ को" (1961), "मेरा समर्पित एकांत" (1962)।

शमशेर और मुक्तिबोध दोनों का संबंध प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता तीनों से रहा है। इन दोनों कवियों में यद्यपि प्रयोगशीलता की प्रवृत्ति काफी मुखर रही है परंतु वैचारिक दृष्टि से इन्हें प्रयोगवादी नहीं कहा जा सकता।

शमशेर बहादुर सिंह (1911) यद्यपि वैचारिक दृष्टि से मार्क्सवादी कवि हैं परन्तु उनका कवि सौंदर्यवादी है। शमशेर में प्रयोग की प्रवृत्ति अधिक है। उनकी कविता में सूक्ष्म और संश्लिष्ट अनुभवों की अभिव्यक्ति अधिक हुई है। उनका झुकाव अमूर्तन की ओर अधिक है यही कारण है कि कहीं-कहीं उनकी कविता दुरूह भी हो जाती है। लेकिन परिष्कृत बिंब, उत्कृष्ट शिल्प और आत्मीयता का भाव उनकी कविताओं को असामान्य भी बनाता है। शमशेर भी "दूसरा सप्तक" के कवि हैं। इसके अतिरिक्त उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं "कुछ कविताएँ" (1959), "कुछ और कविताएँ" (1961), "चुका भी हूँ नहीं मैं" (1975)।

मुक्तिबोध (1877-1964) आत्मसंघर्ष के कवि हैं। उनकी कविताएँ उनके आत्मसंघर्ष का ही प्रतिफलन है लेकिन यह आत्मसंघर्ष बाहरी संघर्ष से उत्प्रेरित है, इसके पीछे वैयक्तिक आकांक्षा या अहम् का भाव नहीं है। मुक्तिबोध वस्तुतः तीखे सामाजिक अनुभवों के कवि हैं। सामाजिक संघर्ष उनके आत्मसंघर्ष का कारण है। सामाजिक यथार्थ उनकी कविताओं में "अंधेरे" के रूप में मौजूद है। अंधेरा उनकी कविताओं में बार-बार भिन्न-भिन्न रूपों में आता है। यथार्थ उनके यहाँ भयावह खबर की तरह है। उनकी कविताएँ प्रायः बहुत लंबी होती है जिनमें सामाजिक यथार्थ और

आत्मसंघर्ष मिल कर ऐसी फैंटेसी का निर्माण करते हैं जो हिंदी कविता की अमूल्य निधि हैं। उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं — "चाँद का मुँह टेढ़ा है" और "भूरी-भूरी खाक धूल"।

बोध प्रश्न

4 प्रयोगवाद की काव्य भाषा की निम्नलिखित विशेषताओं में से जो सही न हो उन पर × का चिन्ह लगाइए।

क) कोमलता और सुकुमारता प्रयोगवाद की काव्य भाषा की प्रमुख पहचान है। ( )

ख) प्रयोगवाद की काव्य भाषा बोलचाल के अधिक नजदीक है। ( )

ग) प्रयोगवाद की भाषा छायावादी काव्य भाषा के अधिक नजदीक है। ( )

घ) प्रयोगवाद की भाषा में आलंकारिता की प्रवृत्ति कम है। ( )

5 निम्नलिखित कथन में से जो सही हो उसके आगे √ और जो गलत हो उसके आगे × का चिह्न लगाइए।

क) प्रयोगवाद की कविता मुक्त छंद की कविता है। ( )

ख) प्रयोगवाद में प्रतीक लाक्षणिक वक्रता तक सीमित है। ( )

ग) अज्ञेय की कविताओं में सामाजिक संघर्ष की अभिव्यक्ति अधिक हुई है। ( )

घ) मुक्तिबोध आत्मसंघर्ष के कवि हैं। ( )

ङ) नरेश मेहता की कविता में प्रकृति पूर्णतः अनुपस्थित है। ( )

अभ्यास

2 अज्ञेय और मुक्तिबोध की काव्यगत विशेषताओं की निम्नलिखित आधार पर तुलना कीजिए।

क) विचारधारा के संबंध में

....

....

ख) सामाजिक यथार्थ के संबंध में

....

....

ग) बिंब के संबंध में

....

....

27.7 नयी कविता की पृष्ठभूमि

नयी कविता का आरंभ कब से हुआ, इसके बारे में स्वयं नयी कविता के कवि भी आपस में सहमत नहीं हैं। कुछ कवि आलोचक प्रयोगवाद और नयी कविता को अलग-अलग काव्यधारा मानते हैं, जबकि कुछ के अनुसार प्रयोगवाद का ही विकास नयी कविता के रूप में हुआ। 'दूसरा सप्तक' (1951) के प्रकाशन से नयी कविता की चर्चा आरंभ हुई और कई कवि-आलोचक 'दूसरा सप्तक' को नयी कविता का प्रस्थान विंदु मानते हैं जबकि डॉ. रामविलास शर्मा नयी कविता की शुरुआत "नयी कविता" नामक पत्रिका के प्रकाशन से मानते हैं, जिसके प्रथम अंक का प्रकाशन सन् 1954 में हुआ था। गिरिजाकुमार माथुर प्रयोगवाद और नयी कविता को अलग-अलग कृत्रिम वर्गों में देखना असंगत मानते हैं। उनके अनुसार प्रयोगवाद और नयी कविता आधुनिकता की भिन्न स्टेज है। तीसरा सप्तक (1959) की भूमिका में अज्ञेय प्रयोगवाद या प्रयोगशीलता शब्दों की अपेक्षा नयी कविता शब्द का प्रयोग करना अधिक उचित समझते हैं।

नयी कविता के उदय पर विचार करने से पूर्व हमें इस बात पर विचार करना चाहिए कि 1947 में उत्पन्न काव्यधारा 1954-55 तक आते-आते विलुप्त क्यों होने लगी। हिंदी साहित्य में प्रयोगवाद की धारा बहुत दूर तक न चल सकी। इसके कारण को स्पष्ट करते हुए समीक्षक रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा कि "कुल मिलाकर प्रयोगवाद ने अधिक बल कविता के शिल्प विधान पर दिया था। अनुभूतियों के क्षेत्र में भी उसने कुछ नवीनता का संचरण किया। परंतु समस्त जीवन के संबंध में उसका अपना कोई सुस्पष्ट दृष्टिकोण नहीं था। यह भी सही है कि प्रयोगवाद के लिए यह बहुत इष्ट न था। अंततः वह अनुभूतियों के चित्रण तथा शिल्प-विधान के क्षेत्र में एक प्रयोग ही था। अतः उसकी सार्थकता

भी इसी रूप में है। प्रयोगवाद का हमारे इतिहास में स्थायी होना बहुत कुछ स्पृहणीय न था। इतने लंबे समय तक प्रयोग की स्थिति रहना प्रवृत्तिगत अस्थिरता का द्योतक होता।"

प्रयोगवाद और नयी कविता

प्रयोगवाद और नयी कविता का संबंध जटिल नहीं है। प्रगतिवाद के उत्तर काल में जब काव्य क्षेत्र में ऐसी प्रवृत्तियाँ पनपने लगीं की काव्य की सामाजिक भूमि की बजाए व्यक्ति की स्वानुभूति पर अधिक बल देती थी, जो काव्य में वस्तु पक्ष की बजाए रूप-पक्ष पर बल देती थी, जो काव्य की किसी बनी बनाई शैली का अनुसरण करने की बजाए नये प्रयोगों पर बल देती थी, ऐसी स्थिति में प्रगतिवाद के बढ़ते अंतर्विरोधों के साथ ही इन प्रवृत्तियों ने अपना प्रभुत्व बढ़ाना शुरू किया। ये ही प्रवृत्तियाँ बाद में प्रयोगवाद के रूप में जानी जाने लगी। आरंभ में प्रयोग की चर्चा का अर्थ प्रगतिवाद का विरोध नहीं था। इसीलिए "तार सप्तक" के प्रकाशन से लेकर "प्रतीक" के प्रकाशन के बीच के दौर में प्रयोगों की चर्चा होते हुए भी इसने वाद का रूप-ग्रहण नहीं किया था। लेकिन जब अज्ञेय ने "प्रतीक" का प्रकाशन आरंभ किया और उसके माध्यम से प्रगतिवाद का विरोध किया जाने लगा, तब प्रयोगवाद की चर्चा प्रगतिवाद की विरोधी काव्य प्रवृत्ति के रूप में होने लगी। अज्ञेय आरंभ से ही प्रयोगवाद शब्द को उचित नहीं मानते थे। उन्होंने 1952 में इलाहाबाद से प्रसारित रेडियो वार्ता में प्रथम बार "नयी कविता" शब्द का प्रयोग किया। 1954 में "नयी कविता" (संपादक : जगदीश गुप्त) पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ तो "नयी कविता" शब्द प्रचलित हो गया। "नयी कविता" आंदोलन के सूत्रधार कवियों — आलोचकों (जगदीश गुप्त, विजय देव नारायण साही, धर्मवीर भारती रघुवंश, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लक्ष्मीकांत वर्मा) ने अपनी काव्य-सृजन की परंपरा का संबंध प्रयोगवाद व अज्ञेय से जोड़ा तथा "मार्क्सवाद" और प्रगतिवाद का विरोध किया। नयी कवितावादी आरंभ में अपनी कविता को प्रयोगवाद और अज्ञेय से जोड़ने में गर्व महसूस करते थे, लेकिन धीरे-धीरे वे अपने काव्य को प्रयोगवाद के साथ जोड़ते हुए भी उससे भिन्न व विशिष्ट बताने लगे तथा बाद में अपनी विशिष्टता पर अधिक बल देने लगे।

नयी कविता कालीन परिस्थितियाँ

हमने प्रयोगवादकालीन परिस्थितियों की चर्चा करते हुए लिखा था कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद साम्राज्यवादी शिविर और समाजवादी शिविर के बीच बढ़ते तनाव का असर तत्कालीन लेखकों और बुद्धिजीवियों पर भी पड़ रहा था। इन दोनों शिविरों के बीच बढ़ते तनाव ने शीतयुद्ध को जन्म दिया। इस दौर में ऐसे सांस्कृतिक और साहित्यिक संगठनों ने जन्म लिया जिन्होंने मार्क्सवादी विचारधारा और समाजवादी देशों का दृढ़तापूर्वक विरोध किया। यह कहा गया कि मार्क्सवाद हर तरह की स्वतंत्रता का अपहरण करता है। समाजवादी देशों में न जनता को न ही बुद्धिजीवियों — लेखकों को स्वतंत्रता प्राप्त है। यह भी कहा गया कि पूंजीवाद और समाजवाद तथा वाम और दक्षिण जैसे भेद आज अनावश्यक है व्यक्ति की स्वतंत्रता सर्वोच्च मूल्य है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की स्थिति को लेकर भी नये लेखकों और कवियों में असंतोष का भाव था। प्रगतिवादी लेखकों ने तो स्वतंत्रता को अधूरा बताया ही था, नयी कवितावादी भी स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की स्थिति से असंतुष्ट थे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राज्य सत्ता जिन वर्गों के हाथ में आई उससे जनता की समस्याओं का समाधान संभव नहीं था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के वर्षों में जनता का असंतोष बढ़ा, देश में आर्थिक विषमता बढ़ी और बेरोजगारी पनपी। असंतुलित विकास हुआ तथा राष्ट्रीय एकता और बाहरी दबावों की समस्याओं का विस्तार हुआ। इस राष्ट्रीय स्थिति ने मध्यवर्ग के बुद्धिजीवियों को निराश और कुंठित किया। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चलने वाले शीतयुद्ध ने उन्हें दिग्भ्रमित भी किया। नयी कविता का आंदोलन इसी पृष्ठभूमि में उदित हुआ।

27.8 नयी कविता का अर्थ

यह विवाद का विषय रहा है कि नयी कविता नाम से जानी जाने वाली कविता किन अर्थों में नयी है और इस काल की कविता को ही नयी कविता कहना कहाँ तक उचित है। जबकि क्या यह सच नहीं है कि छायावादी कविता भी अपनी पूर्ववर्ती काव्यरूपों से नयी ही थी। अगर नयी कविता का तात्पर्य यह है कि वह पूरी तरह से नयी है और उसमें अपने पूर्ववर्ती काव्य रूपों की कोई छाया नहीं है तो यह कहना भी सही नहीं है। नयी कविता पर प्रगतिशील और प्रयोगवाद ही नहीं बल्कि छायावाद के प्रभाव को भी स्वीकारा गया है। डॉ. जगदीश गुप्त इस बात पर बल देते हैं कि "कविता में नवीनता की उत्पत्ति सच्ची कविता लिखने की आकांक्षा से ही होती है।" नयी कविता को परिभाषित करते हुए अनुभूति की अभिव्यक्ति पर विशेष बल दिया गया। अज्ञेय ने अनुभूति की साधारणता को ही विशिष्ट माना है। डॉ. जगदीश गुप्त ने नयी कविता को अपने युग की नयी वास्तविकता के अनुरूप बताया। धर्मवीर भारती ने नयी कविता को पुराने और नये मानव मूल्यों के टकराव से उत्पन्न तनाव की कविता कहा है। नयी कविता में व्यक्ति स्वतंत्रता की भावना भी प्रबल रही है। मुक्तिबोध के अनुसार नयी कविता की अपनी कोई विशेष दार्शनिक धारा या विचारधारा नहीं रही। उनके अनुसार नयी कविता मूलतः एक परिस्थिति के भीतर पलते हुए मानव हृदय की पर्सनल सिचुएशन की कविता है।"

नयी कविता की उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि नयी कविता की कोई सुनिश्चित परिभाषा प्रस्तुत करना असंभव है। यहाँ तक तो सही है कि संपूर्ण नयी कविता का संबंध अपने युग के यथार्थ से है लेकिन इस यथार्थ को व्यक्त करने वाली दृष्टियाँ भिन्न-भिन्न हैं। इनमें कई दृष्टियाँ एक दूसरे से नितांत विरोधी भी हैं। नयी कविता पर विचार करते

हुए जहाँ एक ओर इस बात ध्यान में रखना होगा कि उसका संबंध तत्कालीन यथार्थ से है वहीं उसमें अंतर्निहित विभिन्न दृष्टियों, काव्याभिरुचियों एवं कवि की वैयक्तिक क्षमताओं को भी ध्यान में रखना होगा।

27.9 नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

नयी कविता पर जैसा कि कहा जा चुका है द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की राष्ट्रीय परिस्थितियों का प्रभाव था। इस दौर में पश्चिम में अस्तित्ववाद जैसे नये दर्शन की लोकप्रियता बढ़ी। आधुनिकतावाद की भी व्यापक चर्चा होने लगी। नयी कविता के रचनाकारों पर इन दोनों विचारधाराओं का प्रभाव पड़ा। युद्धों की विभीषिका ने यूरोप के जन-जीवन को बुरी तरह से झकझोर दिया। मृत्यु और विनाश का भय जीवन की वास्तविकता बन गया इसके कारण लोग भोगवाद की ओर भी प्रवृत्त हुए। विश्व बाजार की होड़ और युद्धों की जघन्यता के बीच व्यक्ति को यह लगने लगा कि सत्य केवल मृत्यु है शेष सब कुछ मिथ्या है। आस्था, मूल्य, समाज, आदर्श भविष्य सब मिथ्या हैं। अस्तित्ववाद के उपर्युक्त सोच का असर नयी कविता के रचनाकारों पर भी दिखाई देता है।

आधुनिकतावाद का संबंध पूंजीवादी विकास से है। पूंजीवादी विकास के साथ उभरे नये जीवन मूल्यों एवं नयी जीवन-पद्धति को आधुनिकतावाद की संज्ञा दी जा सकती है। आधुनिकता ने जहाँ एक ओर स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसे मानव मूल्य दिए, वहीं दूसरी ओर औद्योगिक सभ्यता और मशीनीकरण ने कई नयी समस्याएँ भी उत्पन्न कर दी। मशीनों के सामने व्यक्ति अपने को निरूपाय समझने लगा। शहरीकरण और भीड़-भाड़ ने मनुष्य को अकेला कर दिया। उपर्युक्त परिस्थितियों और सोच ने नयी कविता की विषय वस्तु को निर्धारित करने में अहम भूमिका निभाई।

नयी कविता पर मार्क्सवाद का भी प्रभाव रहा है। नयी कविता में वस्तुतः दो तरह की धारा रही है एक धारा जो अस्तित्ववाद-आधुनिकतावाद से प्रभावित थी, दूसरी धारा जो मार्क्सवाद से प्रभावित थी। कई नये कवि ऐसे भी थे जिन्होंने स्पष्ट रूप से कोई पक्ष ग्रहण नहीं किया।

27.9.1 व्यक्ति स्वातंत्र्य

व्यक्ति स्वातंत्र्य नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्ति कही जा सकती है। नयी कविता आंदोलन के दौरान नये कवियों ने नये मनुष्य की प्रतिष्ठा का नारा दिया। यह नया मनुष्य कैसा हो इसको लेकर उनमें तीव्र मतभेद था। कोई इसे लघु मानव (लक्ष्मीकांत वर्मा) की संज्ञा दे रहा था तो कोई इसे सहज मानव (विजयदेव नारायण साही) कोई इसे स्वतंत्रता का असली प्रवक्ता बता रहा था तो कोई इसे भीड़ से घिरा अकेला और एकाकी। लेकिन यह मानव मध्यवर्ग का ही प्रतिनिधि था। यह मध्यवर्गीय व्यक्ति अपने को व्यक्ति की निजी स्वतंत्रता का प्रबल पक्षधर मानता था। समाज की मृत मान्यताओं और रूढ़ियों से घिरा यह व्यक्ति अपने को हीन, दीन, अकेला, कुंठित, पीड़ित और उपेक्षित समझता था। यह "भीड़ से घिरा" परंतु अपने निजी विवेक के प्रति अत्यधिक सजग था। नयी कविता में इसी व्यक्ति विशेष की आशाओं, निराशाओं, आस्थाओं, अनास्थाओं की अभिव्यक्ति हुई है।

मध्यवर्गीय व्यक्ति की स्वतंत्र इयत्ता का प्रतिपादन सभी कवियों ने एक ढंग से नहीं किया है। लक्ष्मीकांत वर्मा के यहाँ व्यक्ति की एकांतप्रियता के प्रति विशेष आग्रह है। व्यक्ति की लघुता के महत्व का प्रतिपादन भी उन्होंने अपनी कविताओं में किया है। डॉ. धर्मवीर भारती के अनुसार वैयक्तिकता और सामूहिकता दोनों ही असत्य और छल है इसलिए सामूहिकता के छल में व्यक्ति अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को खोए, इससे कहीं बेहतर है कि वह अपनी वैयक्तिकता की रक्षा करे। डॉ. भारती अपने काव्य नायक को पराजित, उत्पीड़ित, टूटा हुआ, जर्जर, कुंठित और त्रासदी झेलते हुए एक अकेले शहीद के रूप में पेश करते हैं।

नयी कविता में भीड़ बनाम अकेला व्यक्ति का विवाद भी प्रमुख रहा है। लक्ष्मीकांत वर्मा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आदि कवियों ने भीड़ बनाम व्यक्ति के द्वंद्व को कविता में वयक्त किया है। भीड़ के मुकाबले में खड़े व्यक्ति को उससे अलग और लघु भी मानते हैं। जनता को भीड़ समझना और व्यक्ति की कथित लघुता को महिमामंडित करना मध्यवर्गीय व्यक्ति के व्यक्तिवादी सोच का ही तार्किक परिणाम है। परंतु नयी कविता के दौर में ही जन के प्रति पूर्ण आस्था की अभिव्यक्ति हम मुक्तिबोध की कविता में देख सकते हैं। रघुवीर सहाय और केदारनाथ सिंह की कविता में जनता के प्रति वैसा अनादर व्यक्त नहीं हुआ है जैसा हम कई अन्य नये कवियों में देखते हैं।

27.9.2 आस्था और अनास्था

नयी कविता के दौरान आस्था का प्रश्न भी महत्वपूर्ण रहा। नये कवियों का कहना था कि हमारा काव्य अगर अनास्थावादी लगता है तो इसलिए कि आज की सच्चाई यही है। उनके अनुसार नयी कविता वादों, विचारधाराओं, रूढ़ियों, सामूहिक निर्णयों पर झूठी आस्था का विरोध करती है। वह नियतिवादी भविष्य के भ्रमजालों और आशा के झूठे जंजालों पर विश्वास नहीं करती। नयी कविता व्यक्ति के अपने विवेक पर आस्था व्यक्त करती है, क्योंकि व्यक्ति का विवेक ही उसे सही दिशा दे सकता है न कि बाह्य सत्य। धर्मवीर भारती निजी विवेक के अतिरिक्त आस्था का और कोई बाह्य आधार

नहीं स्वीकारते। 'अंधायुग' का प्रत्येक पात्र आस्था विहीन है किसी को भी भविष्य पर भरोसा नहीं है। मनुष्य का भविष्य उन्हें मृत नजर आता है, केवल आत्महत्या ही उन्हें दर्शन, धर्म, कला, संस्कृति तथा शासन में व्यक्त होती नजर आती है :

यह आत्महत्या होगी प्रतिध्वनित
इस पूरी संस्कृति में,
दर्शन में, धर्म में, कलाओं में
शासन व्यवस्था में
आत्मघात होगा बस अंतिम लक्ष्य मानव का।

(अंधायुग)

कुँवरनारायण ने भी "आत्मजयी" में आस्था का प्रश्न उठाया है। "आत्मजयी" में उन्होंने सामाजिक रूढ़ियों से संघर्ष को जिस परिणति तक पहुँचाया है इससे यही सिद्ध होता है कि वह व्यक्ति के बाह्य संघर्ष को आत्मचेतस स्तर पर हल कर लेना चाहते हैं। नये कवियों में सभी इतने आस्थाविहीन नहीं है। मुक्तिबोध की कविता इस बात का प्रमाण है। अज्ञेय के यहाँ भी परंपरा के प्रति एक आदर भाव मिलता है जिसे हम असाध्यवीणा में देख सकते हैं।

27.9.3 औद्योगिक सभ्यता

पूँजीवादी विकास में तकनीकी प्रगति का बहुत बड़ा हाथ रहा है। इसने बड़े उद्योगों की स्थापना को संभव बनाया जिसके कारण बड़े-बड़े नगर बसे। पारिवारिक ढांचे, सामाजिक संबंधों, जीवन मूल्यों में ऐसे परिवर्तन हुए जिसकी कल्पना इससे पहले के मनुष्य ने नहीं की थी। ये परिवर्तन सकारात्मक भी थे और नकारात्मक भी। बढ़ते औद्योगीकरण और मशीनीकरण ने मनुष्य को भावात्मक स्तर पर अकेला और असहाय बनाया, स्वार्थी और लोभी भी बनाया। इसलिए कवियों ने औद्योगिक सभ्यता की आलोचना भी की। अज्ञेय की ऐसी कविताएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यंत्र व्यक्ति को केवल सुविधाएँ ही नहीं देता वह व्यक्ति से उसकी संवेदन शक्ति भी छीन लेता है। कुँवरनारायण के शब्दों में "पहियों और पंखों वाली इस बेसिर पैर की सभ्यता में" यह पता लगाना मुश्किल है कि यहाँ आदमी मशीन को चला रहा है या मशीन आदमी को। और तब ऐसे में मनुष्य की जो तस्वीर उभरेगी वह कुछ-कुछ ऐसी होगी :

अपने ही हथियारों से घबराया मानव
पत्थर का देव और लोहे का दानव
यह युग
अपनी ही ताकत से हारा मनुष्य
अपने अतीत को दुहराता अंधा भविष्य
शहरों का कूड़ा झोंपड़ियों में फैलाया
अपनी जरूरतों को कोड़ों से पिटवाया
इंसान। मगर बेजान। मकानों सा ढहाता
अपने से दूर पास बस्ती के रहता
सभ्यता। लगी नाखूनों पर पालिश जैसे
हम ठाठ फकीरी। बिकता जो पैसे-पैसे

(परिवेश : हम-तुम)

नगरीय जीवन की आलोचना अज्ञेय के अतिरिक्त लक्ष्मीकांत वर्मा, विजयदेव नारायण साही, विपिनकुमार अग्रवाल, सर्वेश्वर की कविताओं में भी है। साही के यहाँ शहरी जीवन की आलोचना संवेदनात्मक धरातल पर की गई है। इन कवियों की कविताओं में जीवन के प्रति जिस ऊब, खीझ, निराशा और कुंठा की अभिव्यक्ति हुई है उसके मूल में शहरी जीवन की विषमताएँ हैं। मुक्तिबोध ने भी शहरी जीवन की वास्तविकता को उजागर किया है लेकिन इसके लिए वे विज्ञान और मशीन को नहीं बल्कि "शोषण की सभ्यता के नियमों" को दोषी ठहराते हैं जिसके "सियाह चक्रव्यूह" में मनुष्य के प्राण फँसे हुए हैं।

27.9.4 अनुभूतिपरकता

नयी कविता में अनुभूति की अभिव्यक्ति पर विशेष बल दिया गया है। अज्ञेय यह मानते हैं कि संसार की अनुभूतियाँ और घटनाएँ साहित्यकार के लिए मिट्टी है जिनसे वह प्रतिमा बनाता है। लेकिन नये कवि अनुभूति की विशिष्टता पर विशेष बल देते हैं। इन कवियों के लिए अनुभूति की विशिष्टता का अर्थ किसी नवीन अनुभव से नहीं बल्कि अनुभव को अभिव्यक्त करने के नये अंदाज से है। इसे ही वे सौंदर्यानुभूति भी कहते हैं।

किसी कवि का सौंदर्य बोध दूसरे कवि से किस रूप में भिन्न है इसका पता उन कवियों के विषय चयन से लेकर भाववस्तु को अभिव्यक्ति के उपकरणों के चयन तक से लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए; अज्ञेय मूलतः प्रकृति गौरव के कवि हैं और आरंभ से ही जनरव से दूर प्रकृति के वैविध्य रूपों के सौंदर्य को विभिन्न कोणों रूपों एवं रंगों में बाँधते रहे हैं। शमशेर एवं केदारनाथ सिंह भी प्रकृति और प्रेम के कवि हैं लेकिन उनकी प्रवृति कविताओं में जन जीवन का निषेध नहीं है। इन तीनों कवियों में यद्यपि सामाजिक जीवन के अंतर्विरोधों की अभिव्यक्ति प्रधान है। सामाजिक जीवन को प्रधानता से अभिव्यक्त करने वाले कवियों के भिन्न जीवन दर्शन के कारण उनकी कविताओं में भी भिन्नता

नजर आती है। धर्मवीर भारती और रघुवीर सहाय के जीवन दर्शन की भिन्नता ने उनके काव्य के स्वरूप को दूर तक प्रभावित किया है। यही अंतर मुक्तिबोध और रघुवीर सहाय में देखा जा सकता है। कहने का अर्थ यही है कि प्रत्येक कवि के सौंदर्य बोध के अंतर के मूल में उन कवियों की जीवन दृष्टि, सौंदर्याभिरुचि सामाजिक यथार्थ से स्वीकृत, कलात्मक क्षमता आदि का हाथ रहता है।

27.9.5 प्रकृति प्रेम

प्रकृति संबंधी कविताएँ प्रायः सभी कवियों ने लिखी हैं। लेकिन प्रकृति के संबंध में इन कवियों का दृष्टिकोण छायावाद से भिन्न है। छायावादी कवि प्रकृति की ओर उन्मुख हुआ था — एक नए भावबोध के साथ। यह भावबोध था — स्वतंत्रता। जिस समाज में छायावादी कवि रहता था, वहाँ बंधन ही बंधन थे। लेकिन स्वयं उसके हृदय में स्वतंत्रता का बीजारोपण हो चुका था। स्वतंत्रता और स्वच्छंदता की प्रतीति उसे समाज में तो नहीं प्रकृति में होती थी। इसलिए प्रकृति की उन्मुक्तता में उसे अपने हृदय की उन्मुक्तता के दर्शन होते थे। लेकिन नए कवि के सम्मुख दासता और बंधन की ऐसी जकड़न नहीं थी। देश स्वतंत्र हो चुका था, पुराने मूल्य टूट रहे थे। देश का तेजी से औद्योगीकरण हो रहा था लेकिन इस औद्योगीकरण ने प्रकृति के उन्मुख सौंदर्य को मानव-जीवन से दूर कर दिया था। प्रकृति और मानव के बीच की दूरी को नए कवियों ने भिन्न-भिन्न रूपों में ग्रहण किया। अज्ञेय के प्रकृति लगाव की चर्चा हम पहले कर चुके हैं। लेकिन उनके काव्य में प्रकृति चित्रण समाज निरपेक्ष अधिक है। गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, धर्मवीर भारती, कुँवरनारायण, हरिनारायण व्यास आदि कवियों ने भी प्रकृति चित्रण के लिए सामान्य जीवन के अनुभव जगत् से बिंब ग्रहण किए हैं। श्री साही की प्रवृत्ति भी शहरी जीवन से जुड़े प्रकृति रूप की ओर है लेकिन सर्वेश्वर के प्रकृति गीतों का गहरा संबंध ग्रामीण जीवन से है।

रघुवीर सहाय ने अपनी प्रकृति कविताओं में केवल प्रकृति के बिंब ही प्रस्तुत नहीं किए हैं बल्कि वह अपने मन पर प्रकृति के किसी रूप विशेष के प्रभाव को भी व्यक्त करते हैं। "पानी के संस्मरण" कविता में उन्होंने विभिन्न काल-खंडों में पानी के भिन्न-भिन्न स्मृति बिंबों को प्रस्तुत किया है।

कौंध : दूर घोर वन में मूसलाधार वृष्टि
दुपहर : घना ताल : ऊपर झुकी आम की डाल
बयार : खिड़की पर खड़े, आ गई फुहार
रात : उजली रेती की पार, सहसा दिखी
शांत नदी गहरी
मन में पानी के अनेक संस्मरण हैं।

(सीढ़ियों पर धूप में)

केदारनाथ सिंह के यहां भी प्रकृति का कोई एक दृश्य-चित्र नहीं कौंधता बल्कि कई दृश्य-चित्र एक के बाद एक मानस पटल पर उतरते चले जाते हैं जिन्हें कवि काव्यबद्ध करता है। केदारनाथ सिंह की प्रकृति कविताओं में कृषक चेतना के दर्शन होते हैं। शमशेर बहादुर सिंह और मुक्तिबोध के प्रकृति काव्य के संबंध में आप पहले पढ़ चुके हैं।

बोध प्रश्न

6 निम्नलिखित प्रश्नों के दिये गये उत्तरों में से जो सही उत्तर होंगे उनको कोष्ठक में लिखिए।

1) नयी कविता का आरंभ
   - क) "तार सप्तक" से माना जाता है।
   - ख) "प्रतीक" के प्रकाशन से माना जाता है।
   - ग) "नयी कविता" के प्रकाशन से माना जाता है।
   - घ) 1947 से माना जाता है। ( )

2) नयी कविता पर
   - क) स्वातंत्र्योत्तर राष्ट्रीय स्थितियों का प्रभाव पड़ा।
   - ख) शीतयुद्ध का प्रभाव पड़ा।
   - ग) अस्तित्ववाद का प्रभाव पड़ा।
   - घ) उपर्युक्त तीनों का प्रभाव पड़ा। ( )

7 निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत, बताइए।

- क) नयी कविता व्यक्ति स्वातंत्र्य की पक्षधर कविता है। ( )
- ख) नयी कविता में क्षण के अनुभव को महत्वपूर्ण माना गया है। ( )
- ग) अज्ञेय की कविता में प्रकृति समाज सापेक्ष रूप में व्यक्त हुई है। ( )
- घ) नये कवियों ने औद्योगिक सभ्यता का विरोध किया है। ( )

अभ्यास

3 नयी कविता में प्रकृति चित्रण की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

27.10 नयी कविता का शिल्प विधान

नयी कविता आंदोलन छायावादी और प्रगतिशील आंदोलनों से भिन्न था। जैसा कि डॉ. नामवर सिंह का मानना है, छायावाद के सभी कवि एक ही तरह की "व्यापक भावभूमि" पर तथा प्रगतिवादी एक ही तरह की "व्यापक विचारभूमि" पर अवस्थित थे, लेकिन नयी कविता के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता। विचारों और अनुभूतियों के स्तर पर दो भिन्न ध्रुवों पर रहने वाले कवि नयी कविता आंदोलन में शरीक थे। लेकिन काव्य के रूप और शिल्प की दृष्टि से उनमें ऐसा ध्रुवीकरण नहीं था। नये कवि काव्य की प्रचलित शैलियों और रूढ़ माध्यमों में परिवर्तन चाहते थे। परिवर्तन की यह आकांक्षा नये जीवन मूल्यों और जीवन स्थितियों से जुड़ी हुई थी। इसने नयी कविता को नये शिल्प और नयी भाषा की खोज की ओर प्रवृत्त किया।

27.10.1 काव्य-भाषा

जगदीश गुप्त ने खड़ी बोली का विकास परंपरा पर विचार करते हुए नयी कविता के भाषागत वैशिष्ट्य पर प्रकाश डाला है। उनके अनुसार खड़ी बोली का विकास अन्य भाषाओं के अनुकरण द्वारा हुआ। छायावाद युग में भाषा में सृजनशीलता का प्रथम बार सक्रिय विकास हुआ। उत्तर छायावादी गीतकार खड़ी बोली को बोलचाल के निकट लाए। प्रगतिवाद ने उसे गेयता के रोमांटिक वातावरण से निकालकर सहसा सड़कों और पगडंडियों पर चलने को मजबूर किया। प्रयोगवाद ने शब्द प्रयोग की विविध चेष्टाओं द्वारा उसको अर्थवत्ता को सर्वर्धित किया तथा नयी कविता ने उत्तराधिकार में प्राप्त समस्त प्रभावों के प्रति सजगता व्यक्त करते हुए शब्दार्थ की आंतरिक अन्विति पर आधारित एक ऐसा सौंदर्य बोध विकसित किया जिसमें खड़ी बोली का खड़ापन बाधक न होकर साधक तत्व बन गया। जगदीश गुप्त का मानना है कि नयी कविता में गद्य और पद्य की भाषा इतनी अधिक निकट आ गई है कि दोनों की विभाजक रेखा कहीं-कहीं सर्वथा विलुप्त होती हुई दिखाई देती है। दूसरे शब्दों में नयी कविता बोलचाल की भाषा के निकट है। नयी कविता के प्रायः सभी कवियों ने इसे स्वीकार किया है।

नयी कविता की भाषा को बोलचाल की भाषा के नजदीक मानते हुए उसे सृजनात्मक स्वरूप प्रदान करने की प्रक्रिया के संबंध में उनमें मतभेद हैं। अज्ञेय अपने पूर्ववर्ती भाषा प्रयोगों से संतुष्ट नहीं थे और उनमें उन्हें सर्जनशीलता की संभावना नज़र नहीं आई। इसीलिए वे कहते हैं :

> ये उपमान मैले हो गये हैं
> देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच
> कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।

इससे स्पष्ट है कि अज्ञेय नयी काव्य भाषा तलाश करना चाहते हैं। अज्ञेय तद्भव शब्दावली का अधिक प्रयोग करते हैं। उनकी कई श्रेष्ठ रचनाओं में इसे देखा जा सकता है। बास, सौंधी, मिट्टी, असाढ़, आसन, हिया जैसे प्रयोग काफी मिलते हैं। अज्ञेय ने काव्य-भाषा में मौन के महत्व को भी स्वीकार किया है। "एक मौन ही है जो अब भी नयी कहानी कह सकता है"। मौन से तात्पर्य है जो कविता में नहीं कहा गया परंतु जो सांकेतिक रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

नये कवियों के बोलचाल की भाषा एक सी नहीं है बोलचाल की भाषा का जो रूप भवानीप्रसाद मिश्र की कविताओं में है वह रघुवीर सहाय के यहाँ नहीं है। भवानी प्रसाद मिश्र का आदर्श है "जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख।" सरल और सहज भाषा लिखना आसान नहीं है। नये कवियों की काव्य भाषा मूलतः उनकी काव्य प्रवृत्ति से निर्धारित हुई है। काव्य प्रवृत्ति में बदलाव के साथ भाषा में भी बदलाव आया है। गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण

अग्रवाल, नरेश मेहता पर यह बात विशेष रूप से लागू होती है। नयी कविता में बिंब निर्माण की प्रवृत्ति के साथ-साथ विचार वक्तव्यों की प्रवृत्ति भी रही है। इन दोनों में भाषा का रूप अलग मिलता है। बिंब निर्माण में भाषा का अधिक सर्जनात्मक रूप मिलता है। विचार वक्तव्यों की दृष्टि से धर्मवीर भारती के "अंधायुग" की भाषा अधिक सर्जनात्मक है। शमशेर, मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, केदार नाथ सिंह की काव्य भाषा के रूप अलग-अलग हैं परंतु उन्होंने भाषा का सर्जनात्मक इस्तेमाल किया है, रघुवीर सहाय की भाषा में निजता के साथ-साथ सरलता और सहजता है। केदारनाथ सिंह की काव्य चेतना मूलतः गीतकार की है, साथ ही बिंबात्मकता की ओर अधिक झुकाव होने के कारण उनकी भाषा पारदर्शी दर्पण की तरह "चमकीली उजली" है।

27.10.2 छंद और लय

नयी कविता ने मुक्त छंद पर अधिक बल दिया है इसका परिणाम यह हुआ कि नयी कविता में गद्यात्मकता की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला है। रामस्वरूप चतुर्वेदी का मानना है कि कविता में तुक या छंद हो या न हो लेकिन लय अवश्य होनी चाहिए। अगर लय नहीं है तो कविता के गद्य होने की पूरी संभावना है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के अनुसार कविता की लय छंद की लय या शब्द की लय से अनुशासित हो यह अत्यावश्यक नहीं है। नये कवियों ने शब्द की लय की बजाय "अर्थ की लय" को महत्वपूर्ण माना है जगदीश गुप्त के अनुसार "जिस प्रकार ध्वनि अथवा शब्द खंडों का फिर-फिर कर आना क्रमिक रूप से लय के विभिन्न प्रकारों को जन्म देता है. उसी प्रकार अर्थ खंडों का क्रमिक, ग्रंथित आवर्तन प्रत्यावर्तन अर्थ की लय के विविध रूपों की सृष्टि करता है।"

अर्थ की लय पर बल देने वाले रचनाकारों ने संगीत पक्ष की उपेक्षा की है तथा संगीत से मुक्त कविता को "शुद्ध कविता" कहा है। लेकिन केदारनाथ सिंह की कविता संगीत तत्व से न केवल प्राणवान हुई है बल्कि अर्थवान भी। रघुवीर सहाय ने संगीत के महत्व को स्वीकारते हुए 'आत्महत्या के विरुद्ध' में कहा है कि संगीत आधुनिक संवेदना का एक आवश्यक अंग है।

27.10.3 प्रतीक और बिंब

नयी कविता में प्रतीक का महत्वपूर्ण स्थान है। डॉ. केदारनाथ सिंह के अनुसार प्रतीक स्वयं गौण होता है, प्रमुखता उस दिशा की होती है जिधर वह संकेत करता है। प्रतीक का एक पक्ष बराबर परंपराजीवी और समाज स्वीकृति सापेक्ष होता है। कोई भी नया प्रतीक अपने इच्छित की प्राप्ति के लिए एक ऐतिहासिक प्रवाह की अपेक्षा रखता है। वह निरंतर प्रयुक्त होते-होते ही नियत अर्थ और निश्चित आकार ग्रहण करता है। नये कवियों ने पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग भी काफी किया है। मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, कुँवरनारायण, दुष्यंत कुमार, लक्ष्मीकांत वर्मा आदि की कविताओं में वेदों, उपनिषदों, महाभारत, रामायण तथा अन्य पौराणिक ग्रंथों से प्रसंगों एवं पात्रों का प्रतीक रूप में इस्तेमाल किया है। "संशय की एक रात" काव्य में नरेश मेहता ने रामकथा का उपयोग युद्ध और शांति के संदर्भ में किया है, लेकिन इस प्रसंग की प्रस्तुति आधुनिक ही है। इसी तरह धर्मवीर भारती के "अंधायुग" के कृष्ण, युयुत्सु, अश्वत्थामा, आधुनिक मानव और मूल्यों के ही प्रतीक है। कुँवरनारायण के "आत्मजयी" का नचिकेता आधुनिक आदर्शवादी मध्यवर्गीय व्यक्ति है। लेकिन इन सारे प्रतीकों को जिन कथानकों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है, वह पौराणिक होते हुए भी कवि का दृष्टिकोण, उसका परिप्रेक्ष्य तथा उसकी व्याख्या पौराणिक नहीं है। नये कवियों ने प्रकृति और जीवन के विविध रूपों से भी प्रतीक ग्रहण किये है।

प्रतीकों का प्रयोग नये कवियों में उनकी प्रवृत्तियों के अनुकूल हुआ है। उदाहरण के लिए लघुमानव या मध्यवर्ग के व्यक्ति के महत्व को स्थापित करने के लिए उसकी लघुता की श्रेष्ठता को स्थापित करने के लिए वैसे ही प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। गिरिजाकुमार माथुर के यहाँ व्यक्ति बौने के रूप में हैं:

> हम सब बौने हैं, मन से, मस्तिष्क से भी
> भावना से, चेतना से भी
> बुद्धि से, विवेक से भी
> क्योंकि हम जन हैं
> साधारण हैं
> हम नहीं हैं विशिष्ट

(बौनों की दुनिया, जो बंध नहीं सका)

लक्ष्मीकांत के यहाँ व्यक्ति "भेड़" के रूप में है तो श्रीकांत वर्मा के यहां "काकरोच" के रूप में।

नये कवि बिंब को कितना महत्वपूर्ण मानते थे यह अब केदारनाथ सिंह के वक्तव्य से स्पष्ट है जिन्होंने कहा था कि "कविता में मैं सबसे अधिक ध्यान देता हूँ बिंब विधान पर"। डॉ. केदारनाथ सिंह ने बिंब की परिभाषा करते हुए कहा कि "बिंब वह शब्द चित्र है जो कल्पना के द्वारा ऐंद्रिय अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है। नयी कविता में बिंब विधान की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। केदारनाथ सिंह की कविताओं में प्रकृति बिंबों का सुंदर प्रयोग मिलता है। उनके यहाँ प्रकृति बिंब ऐंद्रिक विलास के लिए नहीं बल्कि प्रायः किसी मानवीय अनुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए

प्रयुक्त हुए हैं। जैसे 'अपनी छोटी बच्ची के लिए एक नाम' शीर्षक कविता में धूप के बिंब के लिये बच्ची के प्रति पिता की ममत्व भावना को अभिव्यक्ति मिली है :

ओस भरे
कांपते गुलाब की टहनी पर
सितली के पंखों सी सटी हुई
धूप
एक नाम है हल्का सा
मेरे संस्कार धुले होंठों पर
तेरे लिए

(अभी बिल्कुल अभी)

काव्य बिंबों में मानव जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति केदारनाथ सिंह, मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकांत वर्मा, सर्वेश्वर, श्रीकांत वर्मा आदि कवियों के काव्य में है लेकिन सभी कवियों में यथार्थ का स्वरूप और स्थितियाँ एक सी नहीं हैं। यथार्थ का फलक इन कवियों के यहाँ व्यापक है यद्यपि मध्य वर्ग के जीवन की प्रधानता भी है। कई कवियों ने काव्य बिंब को ऐंद्रिय बोध की सीमाबद्धता से मुक्त कर उसे व्यापक अर्थवत्ता भी प्रदान की है। अंत में, यह कहा जा सकता है कि नयी कविता को उत्कृष्ट रूप देने में उनके नवीन और संश्लिष्ट काव्य बिंबों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

27.11 नयी कविता का विकास

पचास के आस-पास लेखन आरंभ करने वाले कवि नयी कविता आंदोलन से मुख्य रूप से जुड़े थे परंतु अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर, गिरिजाकुमार माथुर, भारत भूषण अग्रवाल को भी नयी कविता आंदोलन के अंतर्गत शामिल किया जाता है। नयी कविता में सक्रिय कवियों में से सभी एक से नहीं थे। अगर उनमें शमशेर, मुक्तिबोध जैसे प्रतिबद्ध मार्क्सवादी कवि थे, तो अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, नरेश मेहता जैसे प्रयोगवादी कवि भी लक्ष्मीकांत वर्मा, विजयदेव नारायण शाही, कुँवरनारायण, धर्मवीर भारती, सर्वेश्वर, श्रीकांत वर्मा जैसे नये कवि भी थे जिन्होंने मार्क्सवाद और प्रगतिवाद का दृढ़तापूर्वक विरोध किया तो केदारनाथ सिंह, रघुवीर सहाय आदि पर शीतयुद्ध का प्रभाव औरों की अपेक्षा काफी कम था। आम तौर पर दूसरा सप्तक और तीसरा सप्तक के कवियों को नयी कविता में शामिल किया जाता है, लेकिन भवानीप्रसाद मिश्र भी हैं जिनमें नयी कविता की काव्यगत प्रवृत्तियों का सबसे कम प्रभाव है।

नयी कविता की व्यक्तिवादीधारा बाद में और अधिक विकास (या कहना चाहिए पतन) हुआ। व्यक्तिवादिता, समाज-निरपेक्षता, आत्मलीनता, आक्रोश और संत्रास आदि प्रवृत्तियाँ और पनपी। इनके बढ़ने से आगे आने वाली पीढ़ी के सामने एक तरह की अराजकता की स्थिति पैदा हो गई। मूल्यों और आदर्शों के प्रति अस्वीकार का भाव यहाँ तक बढ़ा कि कविता को भी खारिज करना आरंभ कर दिया गया। इसीलिए नयी कविता के बाद के दौर को अकविता नाम दिया गया। अकविता के ह्रास के बाद नयी कविता को प्रगतिशीलधारा की पुनः स्थापना सातवें दशक के अंत में हुई। प्रयोगवाद और नयी कविता ने व्यक्तिवाद को जो महत्व प्रदान किया वह अकविता में पूर्णतः विघटित होकर विलीन हो गया। यहाँ पर नयी कविता से जुड़े कुछ ऐसे प्रमुख कवियों की चर्चा करेंगे जिनकी हमने पूर्व की किसी धारा के अंतर्गत चर्चा नहीं की है।

धर्मवीर भारती (1926) नयी कविता के प्रमुख कवियों में से हैं। उन्होंने पद्य के अतिरिक्त गद्य भी लिखा है। काव्य में उनका गीति नाट्य "अंधा युग" सर्वाधिक चर्चित रचना है जिसमें महाभारत के अठारहवें दिन की घटनाओं के आधार बनाया गया है.। "कनुप्रिया" डॉ. भारती द्वारा रचित खंड काव्य है जिसमें राधा-कृष्ण के प्रेम को कथा का आधार बनाया गया है। 'ठंडा लोहा' और 'सात गीत वर्ष' उनके चर्चित काव्य संग्रह हैं। डॉ. भारती की कविताएँ "दूसरा सप्तक" में भी संग्रहीत की गयी हैं। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के अनुसार "भारती का रचनाकार एक अर्थ पाने के लिए बेचैन है और इसके लिए वह किसी नयी भावभूमि की खोज करना चाहता है।" भारती ने अपने काव्य द्वारा "अंधे संशय, दासता पराजय से मानव भविष्य को बचाने के लिए मानवीय संभावनाओं की खोज" की है। इसके लिए उन्होंने मिथकों की नयी व्याख्याएँ की हैं। धर्मवीर भारती ने नारी प्रेम और प्रकृति के संबंध में भी कविताएँ लिखी हैं। प्रकृति और नारी प्रेम दोनों के प्रति उनकी दृष्टि रूमानी है। "अंधायुग" को छोड़कर उनके प्रायः संपूर्ण काव्य की भाषा पर रूमानीपन का प्रभाव देखा जा सकता है।

कुँवरनारायण (1927) के काव्य को विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने बृहत्तर जिज्ञासा का काव्य कहा है। वस्तुतः कुँवरनारायण ने अपने काव्य में ऐसे सवालों को उठाया है जिसका संबंध मनुष्य के संपूर्ण अस्तित्व से है। उनका खंड काव्य "आत्मजयी" इसका ज्वलंत उदाहरण है जिसमें नचिकेता की कथा के माध्यम से जीवन मृत्यु के शाश्वत प्रश्नों पर विचार किया गया है। कुँवरनारायण की प्रवृत्ति चिंतन की ओर अधिक है। इसलिए उनकी काव्य भाषा में भी हम यह बात देख सकते हैं। आत्मजयी के अतिरिक्त उनके महत्वपूर्ण काव्य संग्रह हैं : चक्रव्यूह (1956) परिवेश : हम तुम (1961)। कुँवरनारायण की कविताएँ तीसरा सप्तक में भी संग्रहीत हैं।

रघुवीर सहाय (1929) नयी कविता के उन कवियों में हैं जिनका प्रभाव समकालीन कविता पर सबसे अधिक पड़ा है। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के अनुसार रघुवीर सहाय का काव्य संसार मामूली, प्रभावग्रस्त और उपेक्षित जिंदगी का संसार है। उनकी कविताओं में बदलाव का बड़ी-बड़ी बातें तो नहीं है परंतु वे हमारे समकालीन यथार्थ को तल्खी और संवेदना के साथ पेश करते हैं। रघुवीर सहाय की कविताएँ संकीर्ण अर्थों में राजनीतिक नहीं हैं। किसी मत विशेष के प्रति आग्रही न होने के बावजूद उनकी कविताएँ प्रबल रूप से जनपक्षीय हैं। भाषा को भी उन्होंने नया तेवर दिया है। व्यंग्य, सपाटबयानी और बिंबात्मकता तीनों का उन्होंने सर्जनात्मक प्रयोग किया है। उनके प्रमुख संग्रह हैं : सीढ़ियों पर धूप में (1960), आत्महत्या के विरुद्ध (1967), हंसो-हंसो जल्दी हंसों (1975), लोग भूल गये हैं (1981), रघुवीर सहाय की कविताएं दूसरा सप्तक (1951) में भी संग्रहीत हैं।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना (1927) की कविता यात्रा में कई मोड़ आये हैं। आरंभ में उन पर नयी कविता की व्यक्तिवादी धारा का प्रभाव था, बाद में वे प्रगतिशील काव्यधारा की ओर झुके। सर्वेश्वर की कविताओं में एक प्रकार की निजता और आत्मीयता हमेशा रही है। वे सामाजिक जागरूकता के कवि हैं और सामाजिक यथार्थ के विभिन्न पक्षों को अपनी कविताओं का विषय बनाते हैं परंतु संवेदना और विचार दोनों दृष्टियों से उनकी कविताओं में वह गहराई नहीं आ पाई जो हम रघुवीर सहाय की कविताओं में पाते हैं। सर्वेश्वर की कविताएँ अधिक सरल और संप्रेषणीय हैं, परंतु यह सरलता कई बार सपाटता में भी बदल जाती है। सर्वेश्वर का "तीसरा सप्तक" (1959) के कवि हैं। उनका पहला संग्रह काठ की घंटियाँ (1959) में भी कविताएं संग्रहीत हैं। इनके अतिरिक्त गर्म हवाएँ (1969), जंगल का दर्द (1976) आदि प्रमुख काव्य संग्रह है।

केदारनाथ सिंह (1932) भी तीसरा सप्तक के कवि हैं। तीसरा सप्तक के अतिरिक्त उनकी कविताएँ "अभी बिल्कुल अभी" संग्रह में संकलित हैं जो 1960 में प्रकाशित हुआ था। इसके बीस साल बाद "जमीन पक रही है" (1980) नामक नया काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ है। परमानंद श्रीवास्तव के अनुसार, "केदारनाथ सिंह का काव्य संसार आज के भारतीय समाज के प्रति गहरी संवेदनात्मक उन्मुखता या लगाव प्रमाणित करने वाला संसार है।" केदारनाथ सिंह भी उन कवियों में हैं जिन पर नयी कविता की नकारात्मक प्रवृत्तियों का प्रभाव लगभग न के बराबर रहा है। यही कारण है कि केदारनाथ सिंह आज भी उतने ही सक्रिय, सृजनशील और सार्थक नजर आते हैं। केदारनाथ सिंह की काव्य यात्रा धीरे-धीरे नयी कविता की व्यक्तिवादी धारा से मुक्त होती हुई जनपक्षीय प्रगतिशील धारा की ओर बढ़ती जा रही है। केदारनाथ सिंह बिंबों को काव्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण मानते रहे हैं। काव्य भाषा की दृष्टि से भी उनकी कविता में ताजगी, पारदर्शिता और सर्जनात्मकता के दर्शन होते हैं। उनके नवीनतम काव्य संग्रह हैं : यहाँ से देखो और अकाल में सारस ।

श्रीकांत वर्मा (1931) का पहला काव्य संग्रह "भटका मेघ" (1957) है जिसमें कवि का धरती और मनुष्य के प्रति लगाव व्यक्त हुआ है। लेकिन बाद के संग्रहों में उनमें व्यक्तिवादी प्रवृत्ति प्रबल होती गई है। मध्यवर्ग के व्यक्ति की आत्मबद्धता, निराशा, विफलता, पराजय और अपराधबोध के भावों को श्रीकांत वर्मा ने अपनी कविताओं में अत्यंत तीखेपन से व्यक्त किया है। श्रीकांत वर्मा के काव्य में वक्तव्य और सपाटबयानी की प्रमुखता है जो नयी कविता के बाद की प्रमुख विशेषता है। "भटका मेघ" के अतिरिक्त प्रमुख काव्य संग्रह हैं: दिनारंभ (1967), माया-दर्पण (1967), जलसाघर (1973), मगध, गरूड़ किसने देखा है (1987)।

बोध प्रश्न

8 नयी कविता की भाषा की निम्नलिखित विशेषताओं में से जो सही हो उस पर √ सही का चिह्न लगाइए।

क) नयी कविता की भाषा बोलचाल की भाषा के आदर्श को स्वीकारती है। ( )

ख) नयी कविता की भाषा में रोमानियत का प्रभाव अधिक है। ( )

ग) नयी कविता की भाषा में बिंब विधान पर अधिक बल दिया गया है। ( )

घ) नयी कविता की भाषा छायावाद के अधिक नजदीक है। ( )

9 नयी कविता में प्रयुक्त पौराणिक प्रतीकों की विशेषता लगभग पाँच पंक्तियों में व्यक्त कीजिए।

....

....

....

....

....

10 नयी कविता के कुछ प्रमुख कवियों और कविता पुस्तकों के नाम नीचे दिये गये हैं। जो कविता पुस्तक जिस कवि द्वारा रचित हो उसे मिलाइए।

पुस्तक का नाम	कवि का नाम
1) आत्महत्या के विरुद्ध	क) केदारनाथ सिंह

2)	भटका मेघ	ख)	धर्मवीर भारती
3)	अभी बिल्कुल अभी	ग)	श्रीकांत वर्मा
4)	चक्रव्यूह	घ)	रघुवीर सहाय
5)	अंधायुग	ङ)	कुँवरनारायण

अभ्यास

4 नयी कविता में व्यक्ति और समाज के द्वंद्व को किस रूप में ग्रहण किया गया है? स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

27.12 सारांश

इस इकाई मे आपने प्रयोगवाद और नयी कविता नामक काव्य प्रवृत्तियों का अध्ययन किया है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी काव्य की ये दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। प्रगतिवाद के बाद उभरी इन काव्य-प्रवृत्तियों का संबंध तत्कालीन परिस्थितियों से है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद मध्यवर्ग में उभरी आकांक्षाओं, आशाओं और निराशाओं की अभिव्यक्ति ही इन काव्य प्रवृत्तियों में है। दोनों काव्य धाराओं पर यद्यपि व्यक्तिवादी अंतर्मुखी काव्य प्रवृत्तियों का प्रभाव अधिक है, लेकिन इन धाराओं में ऐसे कवि भी सक्रिय रहे हैं जिन पर व्यक्तिवादी विचारधाराओं का प्रभाव नहीं था, और जिन्होंने इनका दृढ़तापूर्वक विरोध भी किया है। शमशेर और मुक्तिबोध इनमें प्रमुख हैं।

प्रयोगवाद का आरंभ "प्रतीक" (1947) के प्रकाशन से और नयी कविता का आरंभ "नयी कविता" (1954) पत्रिका के प्रकाशन से माना जाता है। प्रयोगवाद में विषयवस्तु की अपेक्षा कविता के कलापक्ष पर विशेष बल दिया गया है। किसी विचारधारा विशेष के प्रति पक्षधरता को अनावश्यक माना गया तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता के महत्व को स्वीकार किया गया। प्रयोगवादी कवि का कविता संसार यद्यपि मध्यवर्ग के जीवनानुभवों तक ही सीमित था परंतु उसने अपने सीमित अनुभवों को संवेदनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया। प्रकृति के प्रति भी उसमें गहरा लगाव था। नारी के प्रति इसकी दृष्टि यथार्थपरक थी। प्रयोगवाद ने भाषा में बोलचाल को महत्व दिया और छंदमुक्तता पर बल दिया। इसका आग्रह बिंबात्मकता की ओर था। प्रयोगवाद का प्रवर्तक अज्ञेय को माना जाता है। गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, शमशेर, मुक्तिबोध, नरेश मेहता आदि प्रमुख प्रयोगवादी कवि हैं।

नयी कविता प्रयोगवाद का विकास है। यद्यपि नये कवियों ने काव्य को प्रयोग का विषय नहीं माना परंतु व्यक्ति की स्वतंत्रता, वाद-विशेष का विरोध नयी कविता की भी विशेषता रही है। यह अवश्य है कि नयी कविता में प्रगतिशील धारा का भी प्रभाव रहा है और कई कवियों पर व्यक्तिवाद का प्रभाव रहा है तो कई कवियों पर मार्क्सवाद का भी प्रभाव था। नयी कविता पर शीत युद्धीय विचारधाराओं का विशेष असर था। इसी कारण व्यक्ति की स्वतंत्रता, जनता को भीड़ समझना, मानव की लघुता को महिमामंडित करना, वैयक्तिक अनुभूति को ही प्रामाणिक मानना, इतिहास और परंपरा के बजाय क्षण के बोध को ही सार्थक समझना, नयी कविता की खास पहचान है। नयी कविता पर अस्तित्ववाद और आधुनिकतावाद का भी असर रहा है। शिल्प की दृष्टि से नयी कविता में बोलचाल की भाषा, बिंबात्मकता, पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग, अर्थ की लय आदि का विशेष आग्रह रहा है। नयी कविता में यद्यपि अनास्था, निराशा, विफलता, कुंठा, टूटन जैसे भावों की प्रधानता रही है परंतु यह हमारे सामाजिक यथार्थ की ही मध्यवर्गीय अभिव्यक्तियाँ थीं। मुक्तिबोध जैसे कवि सक्षम थे, जिन्होंने इन मध्यवर्गीय भावनाओं पर आत्मसंघर्ष द्वारा विजय प्राप्त की। नयी कविता ने कई प्रमुख कवि और काव्य पुस्तकें दी हैं। अज्ञेय, शमशेर, मुक्तिबोध के अतिरिक्त धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकांत वर्मा, सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय, विजयदेव नारायण साही, जगदीश गुप्त, बालकृष्ण राव, कुँवरनारायण, केदारनाथ सिंह, दुष्यंत कुमार, श्रीकांत वर्मा, हरिनारायण व्यास, आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त इकाई को पढ़ने के बाद आप प्रयोगवाद और नयी कविता के स्वरूप और विकास का उल्लेख कर सकते हैं।

27.13 शब्दावली

कलावाद : कला, कला के लिए का सिद्धांत अर्थात् जो कलाकार यह मानता हो कि कला की रचना का अन्य कोई बाह्य उद्देश्य नहीं होता।

आंतरिक अन्विति : आंतरिक संबद्धता। शब्दार्थ की आंतरिक अन्विति का अर्थ है शब्द और अर्थ की ऐसी संबद्धता जो स्वाभाविक लगे।

अर्थ खंडों का क्रमिक ग्रंथित आवर्तन-प्रत्यावर्तन : तात्पर्य यह है कि कविता मे प्रयुक्त शब्दों से जो अर्थ व्यक्त होते हैं उनमें क्रमबद्धता हो तथा उनमें आवर्तन के कारण अर्थ में लय उत्पन्न हो।

मानव-मूल्य : मानव-मूल्य उन नैतिक मानदंडों को कह सकते हैं जो मनुष्य के लिए आदर्श रूप में स्वीकार किए जा सकते हैं।

व्यक्तिवाद : एक ऐसा सिद्धांत जो प्रत्येक व्यक्ति को उसके कार्यों और विश्वासों में पूर्ण स्वतंत्रता देने का समर्थन करता है। व्यक्तिवाद व्यक्ति के जीवन में राज्य और समाज के हस्तक्षेप का विरोधी होता है।

प्रकृतवाद : कला और साहित्य का एक ऐसा सिद्धांत जिसका मानना है कि लोगों को और वस्तुओं को ठीक उसी रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए जिस रूप में वे वास्तव में हैं न कि आदर्श या अप्रकृत रूप में।

रोला और घनाक्षरी : छंद के प्रकार।

लाक्षणिक वक्रता : शब्द के सामान्य अर्थ से भिन्न अर्थ से उत्पन्न वक्रता जिसके कारण काव्य में विशेष अर्थ व्यक्त होता है।

अंतर्ग्रथित : गुंथा हुआ।

स्पृहणीय : जिसकी इच्छा की जाये।

आधुनिकतावाद : आधुनिकता से संबंधित सिद्धांत अर्थात् जो पूंजीवादी विकास से पूर्व के विचारों और मान्यताओं से भिन्न हो तथा आधुनिक जीवन से उत्पन्न हुए हों।

अस्तित्ववाद : यूरोप में उत्पन्न एक आधुनिक दार्शनिक मत जिसमें यह विश्वास किया जाता है कि मनुष्य के अनुभव महत्वपूर्ण होते हैं और प्रत्येक अपने कार्यों के लिए स्वयं उत्तरदायी होता है।

नियतिवाद : एक ऐसा दार्शनिक मत जिसके अनुसार व्यक्ति अपने कार्यों के लिए स्वतंत्र नहीं है, उसके कार्य बाह्य स्थितियों से निर्धारित होते हैं।

27.14 उपयोगी पुस्तकें

अज्ञेय : *तार सप्तक*, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली।

अज्ञेय : *दूसरा सप्तक*, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली।

अज्ञेय : *तीसरा सप्तक*, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली।

नामवर सिंह : *आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ*, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

डॉ. रामविलास शर्मा : *नयी कविता और अस्तित्ववाद*, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

अज्ञेय : *आधुनिक हिंदी साहित्य*, राजपाल एंड संस, नयी दिल्ली।

नगेंद्र (संपादक) : *हिंदी साहित्य का इतिहास*, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।

27.15 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1 क) √ ख) × ग) × घ) √

2 क) × ख) √ ग) √ घ) √

3 देखिए उपभाग 25.3.3

4 क) × ख) √ ग) × घ) √

5 क) √ ख) × ग) × घ) √ ङ) ×

6 1) ग 2) घ

7 क) √ ख) √ ग) × घ) √

8 क) √ ख) × ग) √ घ) ×

9 देखिए उपभाग 25.8.3

10 1 घ 2 ग 3 क 4 ङ 5 ख

अभ्यास

1 देखिए उपभाग 25.2.2

2 संकेत :

क) अज्ञेय व्यक्तिवादी और मार्क्सवादी विरोधी जबकि मुक्तिबोध मार्क्सवादी।

ख) अज्ञेय सामाजिक यथार्थ का चित्रण कम करते हैं जबकि मुक्तिबोध की कविताओं का यह केंद्रीय विषय है।

ग) अज्ञेय मुख्यतः प्रकृति से बिंब चुनते हैं जबकि मुक्तिबोध प्रकृति के साथ-साथ सामाजिक जीव से भी बिंब चुनते हैं।

3 देखिए उपभाग 25.7.5

4 देखिए उपभाग 25.7.1

इकाई 28 अज्ञेय

इकाई की रूपरेखा

28.0 उद्देश्य
28.1 प्रस्तावना
28.2 कवि परिचय
- 28.2.1 जीवन परिचय
- 28.2.2 रचनाकार-व्यक्तित्व
- 28.2.3 रचनाएँ

28.3 काव्य संवेदना
- 28.3.1 काव्य-यात्रा का विकास
- 28.3.2 काव्य संवेदना की गहराई
- 28.3.3 आस्था और अनुभूति का संस्कारी प्रभाव
- 28.3.4 नव्य रहस्यवाद
- 28.3.5 प्रयोग, प्रगति और परम्परा
- 28.3.6 आधुनिकता और समसामयिकता
- 28.3.7 मानव-मूल्यों के संदर्भ में नए व्यक्तित्व की खोज
- 28.3.8 प्रकृति की लय का उल्लास
- 28.3.9 जीवन-दर्शन

28.4 अभिव्यंजना-शिल्प का सौन्दर्य
- 28.4.1 काव्य-भाषा की सर्जनात्मकता
- 28.4.2 बिंब विधान
- 28.4.3 प्रतीक-विधान
- 28.4.4 उपमान योजना
- 28.4.5 छंद एवं लय

28.5 काव्य वाचन और संदर्भ सहित व्याख्या
28.6 मूल्यांकन
28.7 विचार-संदर्भ और शब्दावली
28.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
28.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

28.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- अज्ञेय के सृजन संघर्ष की मनोभूमि तथा युग-परिवेश से परिचित हो सकेंगे,
- जीवन परिचय, रचनाकार व्यक्तित्व तथा रचनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- काव्य-यात्रा के तनावों, द्वंद्वों, उतार-चढ़ावों की आन्तरिक मानसिकता का परिचय प्राप्त कर सकेंगे,
- कवि की मूल-संवेदना, परम्परा, प्रगति , प्रयोग, सांस्कृतिक-बोध, सौन्दर्य-बोध की अवधारणा, मानव-प्रकृति से प्राप्त राग-संस्कार तथा काव्य-प्रवृत्तियों से साक्षात्कार कर सकेंगे,
- काव्य रूप काव्य-भाषा, बिंब, प्रतीक, उपमान, लय-छंद आदि के शिल्पगत प्रयोगों को गहराई से समझ सकेंगे,
- अज्ञेय की काव्यानुभूति की बनावट तथा नई कविता, अन्य कवियों की काव्यानुभूति की बनावट में पार्थक्य के कारणों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे,
- कवि अज्ञेय का समग्रता में विचार-विश्लेषण, आस्वाद और मूल्यांकन कर सकेंगे।

28.1 प्रस्तावना

छायावादोत्तर काव्य की सर्जनात्मक सम्भावनाओं को उजागर करने की दृष्टि से अज्ञेय एक ऐसा दुर्निवार ऐतिहासिक व्यक्तित्व है, जिसने नवीन काव्य आंदोलनों तथा प्रवृत्तियों का पूरे आत्मविश्वास से प्रवर्तन किया है। उन्होंने छायावाद के भावावेगप्रधान काव्य मुहावरे को छोड़ते हुए रोमांटिक भाव-बोध से विद्रोह किया है। फलतः अज्ञेय का काव्य-सृजन पूरे संघर्ष के साथ गैर-रोमांटिक कविता की सम्भावनाओं को स्पष्टता से प्रकाश में लाता है। भारतेन्दु और निराला के बाद काव्य-प्रयोगों के क्षेत्र में वे सर्वाधिक सक्रिय रहे हैं। अज्ञेय ने निराला की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए भावना के साथ विचार को कलात्मक सर्जनात्मकता के स्तर पर प्रतिष्ठित किया। उनके सृजन की प्रयोगधर्मी पृष्ठभूमि में परम्परा की लीकों, रूढ़ियों और प्राचीन जीर्ण मनोवृत्तियों के प्रति खुली ललकार है। प्रयोग के स्तर पर वे नई राहों के अन्वेषी

हैं और नई काव्य-संवेदना के प्रवक्ता, भाष्यकार और चिंतक सिद्धान्तकार। उन्होंने पूरी निष्ठा से प्रयोगवाद, नयी-कविता के आन्दोलन ही नहीं चलाए है, बल्कि इस कविता को समझने-समझाने का नया काव्य-शास्त्र भी निर्मित किया है। देश-विदेश की कविता को छानकर हिंदी की नयी कविता परम्परा के सांस्कृतिक संवेदन से ऐसी कविता का सृजन किया है जो टी.एस. इलियट एवं उनके साथियों का काव्यानुवाद नहीं है, बल्कि उसमें भारतीय परिवेश की गहरी पुकार है। अपनी अनेक क्रान्तिकारी स्थापनाओं के कारण वे सर्वाधिक चर्चित पर अधिकाधिक विवादों के केन्द्र में रहे हैं। शायद ही किसी नए कवि ने इतने प्रहार झेले हों, जितने अज्ञेय को झेलने पड़े हैं।

28.2 कवि परिचय

28.2.1 जीवन परिचय

अज्ञेय का पूरा नाम है — सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय। श्री हीरानंद वात्स्यायन उनके पिता का नाम है। इस रचनाकार को जेल यात्राओं के दौरान गुप्त नाम से लिखने के लिए "अज्ञेय" नाम जैनेन्द्र कुमार का दिया हुआ है, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। जीवन भर वे "अज्ञेय" नाम से ही सृजन-कार्य में प्रवृत्त रहे। पिता पुरातत्व विभाग में खुदाई-शिविरों के अधिकारी थे। अज्ञेय का जन्म कसया (जिला देवरिया) के एक खुदाई शिविर में 7 मार्च 1911 को हुआ। कसया (कुशी नगर) का संबंध गौतम बुद्ध के निर्वाण स्थान से जोड़ा जाता है। अज्ञेय ने बौद्ध धर्म की दीक्षा तो न ली पर बुद्ध ने अज्ञेय को भीतर से प्रभावित किया। वे जीवन-भर एक जगह टिककर न रहे। यायावर बने रहे और आत्मान्वेषण, जिज्ञासा तथा आत्म-दान के प्रति खुले मन से झुके रहे। माँ से अधिक पिता के व्यक्तित्व का प्रभाव ग्रहण किया। बचपन से ही अन्तर्मुखी और सच बोलने के कारण उनका घरेलू नाम "सच्चा" भी रहा।

उन्हें घर पर पुराने ढंग से शिक्षा-दीक्षा दी गई। उन्होंने स्वयं कहा है — "एक तो मेरी शिक्षा-दीक्षा भी पुराने ढंग से आरम्भ हुई थी जिसमें पटिया और लेखनी का काम भी होता था — लेकिन पुस्तकों का विशेष प्रयोग नहीं होता था। पुस्तक का काम स्मृति ही देती थी। यों घर में पुस्तकें बहुत थीं, लेकिन उन किशोर वर्षों में मेरा काम श्रुति परंपरा से ही चल जाता था, पिता जी भी जब घर पर होते थे तो अक्सर संस्कृत श्लोकों का स्वरपाठ करते थे और उनकी अनुपस्थिति में बड़ी बहिन प्रायः हिंदी के काव्य-ग्रंथ या तो सस्वर पढ़ा करतीं या हम भाइयों को बिठाकर सुनाया करतीं।" (स्मृति लेखा, (पृ. 24) । अज्ञेय ने गायत्री मंत्र,अष्टाध्यायी, कालिदास के सृजन के साथ-साथ अंग्रेजी की मौखिक शिक्षा ली। "और अक्षर-ज्ञान से पहले ही मैं दो-ढाई सौ अंग्रेजी शब्द सीखकर वह भाषा वैसे बोलने लगा था जिसे फर्र-फर्र अंग्रेजी कहते हैं। अंग्रेजी में ही कुछ हल्की कविताएं और तुगबन्दियाँ रट ली थीं।" बचपन में टेनीसन पढ़ा और भारत के स्वाधीनता आंदोलन के प्रभाव में आए। अज्ञेय एकान्तप्रिय, प्रकृति प्रेमी और जिज्ञासु रहे। हिंदी उन्होंने काफी बाद में सीखी और इस क्षेत्र में वे मैथिलीशरण गुप्त को अपना काव्य-गुरु घोषित तौर पर मानते हैं। गुप्त जी के साथ श्रीधर पाठक, हरिऔध, मुकुटधर पाण्डेय, रामनरेश त्रिपाठी की कविताओं को मनोयोगपूर्वक पढ़ा। तुकों-लयों का अभ्यास किया। रवीन्द्रनाथ और जयशंकर प्रसाद, सरोजिनी नायडू और निराला में लम्बे समय तक मन को रमाये रहे।

अज्ञेय का बचपन श्रीनगर, नालंदा, पटना, लाहौर, लखनऊ, बड़ौदा, मद्रास, उटकमंड आदि कई स्थानों पर बीता। उनकी शिक्षा एक स्थान पर न हुई। श्रीनगर, जम्मू में अंग्रेजी शिक्षा तथा नालंदा-पटना में राखाल दास के संपर्क में आकर बंगला पढ़ी। सन् 1925 में हाई स्कूल पंजाब से, इण्टर (साइंस) 1927 में मद्रास से, बी.एस.सी. 1929 में फोरमन कॉलेज लाहौर से उत्तीर्ण की। एम.ए. अँग्रेजी में दाखिला लिया ही था कि क्रांतिकारियों के सम्पर्क में आ जाने के कारण पढ़ाई न चल सकी। पर अज्ञेय प्राचीन नवीन भारतीय साहित्य तथा पश्चिमी साहित्य को डटकर पढ़ते रहे। अनेक बार यूरोप की यात्राएँ कीं। फ्रांस के कैथोलिक पादरी पियेर दानियेलू के सहयोग से मसीही साधना की गहराई में प्रवेश किया। इसी बीच उन्होंने पहली पत्नी को छोड़कर कपिला वात्स्यायन से विवाह किया। कपिला जी के व्यक्तित्व ने अज्ञेय जी को ललित कलाओं का गहरा संस्कार दिया। वे एक संस्कारी रचनाकार के रूप में उभरे और उनमें विश्व दृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ।

28.2.2 रचनाकार-व्यक्तित्व

अज्ञेय का रचनाकार-व्यक्तित्व छायावादोत्तर काल में 'आधुनिक भाव बोध' के प्रवर्तक के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। वे नए काव्य आंदोलनों, प्रवृत्तियों के सूत्रधार कवि, मौलिक निबंधकार, उपन्यासकार, कहानीकार, सम्पादक, हिंदी में नवीन आलोचनाशास्त्र के निर्माता, तुलनात्मक साहित्य के प्रतिष्ठापक, काव्य-संकलनों, पत्र-पत्रिकाओं के यशस्वी सम्पादक और सांस्कृतिक मनीषी एक साथ रहे हैं। नए सृजन की लगभग सभी नवीन विधाओं पर उनके विचारों के रंग और रूप की अमिट छाप है। वे बुद्ध और जैन-दर्शन, वैष्णव चिंतन परम्परा, मानवेन्द्र राय के रेडिकल ह्यूमेनिज्म, परम्परा विरोधी, क्रांतिकारी के रूप में भी चर्चित रहे हैं। नवीन हिंदी साहित्य में छायावाद और प्रगतिवाद से अलग हटकर नए सृजन को दिशा-दृष्टि देने के प्रयास के लिए उनका नाम सदैव स्मरण किया जाएगा। अपने रचनाकार व्यक्तित्व की शक्ति से उन्होंने हिंदी काव्य की 'नवीन कविता को पुनः संभव' बनाया। अज्ञेय साम्यवादी विचारधारा से सहमत नहीं रहे, उन्होंने भारतीय चिंतन के लोकतन्त्रवादी मूल्यों का समर्थन किया। कहना न होगा कि अज्ञेय उन विरल रचनाकारों में से हैं जिनका व्यक्तित्व कला-सौन्दर्य के नवीन निर्माता और नयी राहों के अन्वेषी दोनों ही प्रतिमानों पर खरा उतरा है। वे एक ओर चिंतनशील अंतर्दृष्टि के रचनाकार हैं, दूसरी ओर दृष्टि सम्पन्न आलोचक। "तार सप्तक" (1943 ई.), 'दूसरा

सप्तक' (1951 ई.), 'तीसरा सप्तक' (1959 ई.), 'चौथा सप्तक' (1969 ई.) की योजना, 'प्रतीक' पत्रिका का सम्पादन तथा "दिनमान" साप्ताहिक पत्रिका का सम्पादन, प्रकाशन, प्रसारण, गोष्ठी आयोजन आदि सभी कोणों से अज्ञेय की दृष्टि और नए-बोध के विकास की दिशा का ऐतिहासिक महत्व है। साहित्य के इतिहास के विद्यार्थी के लिए यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि अज्ञेय के प्रखर और चिंतनशील, प्रयोगशील और संस्कारी, विद्रोही व्यक्तित्व ने नवी-न सर्जनात्मकता को आच्छादित नहीं किया — बल्कि उसके विकसित होने में पूरा योगदान दिया है।

उन्होंने अपने छात्र जीवन से ही भारतीय स्वाधीनता-संग्राम में मानव-मुक्ति के लिए सक्रिय हिस्सेदारी की। सन् 1927 में भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद के साथ सशस्त्र क्रांति का आह्वान किया। वे "हिंदुस्तानी समाजवादी प्रजातंत्र सेना" के सदस्य बने। अँग्रेजी साम्राज्यवाद को खदेड़ने के लिए उन्होंने लाहौर से दिल्ली तक बम ढोए। बम बनाने वाली फैक्ट्री के अज्ञेय वैज्ञानिक सलाहकार रहे और 1930 ई. में गिरफ्तार हुए। कई वर्षों तक जेल की यातना भरी ज़िंदगी व्यतीत की। 'चिंता', 'शेखर एक जीवनी', 'कोठरी की बात' जैसी कृतियों की रचना जेल में ही की। "दुःख सभी को माँजता है" — यह आत्म-ज्ञान का दर्शन उन्होंने अनुभव से प्राप्त किया। जेल से छूटकर किसान आंदोलनों में काम किया, देश-विदेश की खाक छानी तथा 'सैनिक', 'विशाल भारत' जैसे पत्रों के सम्पादन विभागों में नौकरी की। भारत के कला तीर्थों की बार-बार यात्राएँ कीं। 1955 में पश्चिमी यूरोप की यात्रा की तथा कवियों, चित्रकारों, दार्शनिकों के व्यक्तिगत सम्पर्क में आए। जापान-फिलीपीन की यात्रा पर निकले। फ्रांस गए तथा दार्शनिक पियेर से मठ में दीक्षा ली। 1961 में कैलिफोर्निया में भारतीय साहित्य-संस्कृति पढ़ाने के लिए नियुक्त हुए। अमेरिका घूमे, आस्ट्रेलिया के सेमिनारों में भाग लिया। कुछ समय जोधपुर विश्वविद्यालय में भारतीय भाषा-विभाग के निदेशक रहे फिर आकाशवाणी में रहे। 'दिनमान' 'नवभारत टाइम्स' के सम्पादक रहे और सब छोड़कर साहित्य सेवा को समर्पित हो गए। छायावादी भावावेग और आसक्ति उनके व्यक्तित्व का गुण कभी नहीं रहा, न जीवन में, न रचना में।

28.2.3 रचनाएँ

अज्ञेय की रचनाओं का छायावाद युग से ही आरम्भ हो जाता है। उनकी प्रकाशित रचनाओं का क्रम इस प्रकार है — काव्य संकलन — भग्नदूत (1933), चिंता (1942), इत्यलम् (1946), हरी घास पर क्षण भर (1949), बावरा अहेरी (1954), इन्द्र धनुष रौंदे हुए ये (1957), अरी ओ करुणा प्रभामय (1959), आँगन के पार-द्वार (1961), सुनहले शैवाल (1965), प्रिज़न डेज एण्ड अदर पोयम्स (अंग्रेजी में 1946), कितनी नावों में कितनी बार (1966), क्योंकि मैं उसे जानता हूँ (1968), सागर मुद्रा (1969), पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ (1973), ऐसा कहीं कोई घर 'आपने देखा है'? आदि। अज्ञेय की सम्पूर्ण कविताओं का संकलन दो खंडों में 'सदानीरा' नाम से प्रकाशित है।

सम्पादित ग्रंथ — तार सप्तक (1943 ई.), दूसरा सप्तक (1951 ई.), तीसरा सप्तक (1959), चौथा सप्तक (1969), पुष्करिणी भाग-2, रूपाम्बरा (1960), आज का भारतीय साहित्य, नए ऐकांकी (1952), नेहरू अभिनंदन ग्रंथ संयुक्त रूप से (1949), हिंदी की प्रतिनिधि कहानियाँ (1952)।

अनूदित — श्रीकान्त — (शरत्चन्द्र, अंग्रेजी में 1944), द रेजिगनेशन (जैनेन्द्र कुमार के उपन्यास "त्यागपत्र" का अंग्रेजी में — 1946); नीलाम्बरा (अंग्रेजी में)।

भ्रमण वृतान्त — अरे यायावर रहेगा याद (1953), एक बूँद सहसा उछली (1961), जन-जनक-जान की (सम्पादित)।

कहानियाँ — विपथगा (1937), परम्परा (1944), कोठरी की बात (1945), शरणार्थी (1948), जयदोल (1951), ये तेरे प्रतिरूप (1961)।

उपन्यास — शेखर एक जीवनी भाग-1 (1941), भाग-2 (1944), नदी के द्वीप (1952), अपने-अपने अजनबी (1961), बारह खम्भा (सम्पादित)।

निबन्ध संग्रह — त्रिशंकु, आत्मनेपद, हिंदी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य, सबरंग और कुछ राग, भवन्ती, अन्तरा, लिखि कागद कोरे, जोग लिखी, आलवाल अद्यतन, संवत्सर, कहां है द्वारका, आत्मपरक, सर्जना और संदर्भ आदि।

बोध प्रश्न 1

i) अज्ञेय के जीवन-परिचय की चार महत्वपूर्ण विशेषताओं को लिखिए।

....

....

....

....

....

ii) रचनाकार अज्ञेय पर किन तीन प्रमुख रचनाकारों का प्रभाव है?

....

....

....

....

iii) अज्ञेय द्वारा सम्पादित तीन संग्रहों के नाम लिखिए।

....

....

....

iv) सही ✓ गलत × का निशान लगाकर बताइए कि अज्ञेय :

क) छायावादी कवि ( )

ख) प्रगतिवादी कवि ( )

ग) प्रयोगवादी कवि ( )

घ) नयी कविता के कवि ( )

v) अज्ञेय और "तार सप्तक" के संबंध का निरूपण तीन पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

vi) अज्ञेय का पूरा नाम लिखिए।

....

29.3 काव्य संवेदना

29.3.1 काव्य-यात्रा का विकास

अज्ञेय की सर्जनात्मक-प्रतिभा का उन्मेश भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की साम्राज्यवाद-विरोधी चेतना को लेकर होता है। उनके काव्य में "मानव मुक्ति" तथा "आत्मदान" की आकांक्षा का स्वर सर्वत्र सुनाई देता है। उनके ऊपर भारतेन्दु, मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक, मुकुटधर पाण्डेय, हरिऔध, प्रसाद और निराला के काव्य-प्रभाव का गहरा असर है। खड़ी बोली के देशी-संस्कारों की शक्ति को ग्रहण करने और पचाने में उनके काव्य गुरु मैथिलीशरण गुप्त रहे हैं। प्रसाद के सांस्कृतिक-बोध की सम्पन्नता, निराला की ओजस्वी गतिशील संवेदना और काव्यप्रयोग शक्ति के प्रति उनमें गहरा आकर्षण है। अपनी बौद्धिक जागरूकता तथा विवेक-संयत दृष्टि के कारण वे छायावादी भावावेग को कभी भी स्वीकार नहीं कर सके। उन पर पश्चिम का असर है — विशेषकर टी.एस. एलियट तथा डी.एच. लारेन्स का। पर पश्चिमी विचार के प्रति व्यवहार उनका अपना है। वे 'साधारण' से ज्यादा 'सहज' में विश्वास करते हैं। "भग्नदूत", 1933 ई. में किशोर मन पर पड़े आघात की अभिव्यक्ति है। उन्हें विश्वास है "यदि वीणा टूट भी गई तो उसके प्राण झनक उठेंगे।" यहाँ घनीभूत इच्छाओं के अंगार दहक रहे हैं। पर अभिव्यक्ति पर छायावाद का हल्का रंग है। "चिंता" में "विश्वप्रिया" और "एकायन" दो खण्डों में नर-नारी के बीच आकर्षण-संघर्ष का द्वंद्व है। 'चिंता' पर डी.एच. लारेन्स के विचारों की धमक है जिसमें प्रेम को परिभाषित करने की कोशिश की गई है। किन्तु छायावादी प्रणय-संस्कार भी यहाँ चुप-चुप झिलमिला रहे हैं।

"तार सप्तक" (1943 ई.) अज्ञेय की कवि-कीर्ति का ऐतिहासिक प्रतीक है। इस सम्पादन को आधुनिक भाव-बोध का नया दस्तावेज माना जाता है और प्रयोगवाद का आधार स्तम्भ। इस सम्पादन में प्रकाशित उनकी कविताएँ "इत्यलम्" में मौजूद हैं। अज्ञेय कविता को ही कवि का चरम वक्तव्य मानते हैं और काव्य-विषय, काव्य संवेदना, कवि के दायित्व, प्रयोग, परम्परा जैसी समस्याओं को यहाँ नए ढंग से उठाते हैं। "योजना विश्वासी" अज्ञेय का स्वर है "संगृहीत सभी कवि ऐसे होंगे जो कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं जो यह दावा नहीं करते कि काव्य का सत्य उन्होंने पा लिया है।" 'तार सप्तक' में "राही नहीं, राहों के अन्वेषी" सात कवि हैं जो नयी काव्य-प्रवृत्तियों का भरपूर संकेत देते हैं। सभी महत्वपूर्ण विषयों पर इन कवियों की राय अलग-अलग है। किन्तु अन्वेषी का दृष्टिकोण इन सभी को एक अंतःसूत्र में बाँधता है।

"इत्यलम्" में "भग्नदूत" की चुनिन्दा कविताओं के अतिरिक्त चार भागों में "बंदी स्वप्न", "हियहारिल", "वंदना के दुर्ग", "मिट्टी की ईहा" शीर्षक से फुटकर कविताएं हैं। प्रथमवार "हियहारिल" में कवि के नव्य रहस्यवाद का परि

मिलता है। प्रेम और मौन जो उनकी परवर्ती कविताओं में विस्तार पाते हैं उनके बीज भाव भी यहाँ मौजूद हैं। यौन कुंठाओं की पुकार है पर मिट्टी से प्रेम की ललक बढ़ी है। "हरी घास पर क्षण भर" की कविताएँ नए काव्य का प्रवर्तन और भाव विस्तार करतीं है। "कलगी बाजरे की" तथा "नदी के द्वीप" जैसी चर्चित कविताएँ इसी संग्रह में हैं। "हरी घास" मुक्ति का प्रतीक है और प्रकृति के साथ मानव के हरे भरे जीवंत रिश्ते का रंग। "बावरा अहेरी" का अर्थ है — सूर्य। कवि उससे कालिमा धोने की प्रार्थना करता है। यह कवि की सन्त भावभूमि है और अदम्य उत्साह का विस्फोट। यहाँ यौन-कुंठाओं का स्थान आत्मान्वेषण ने ले लिया है। प्रेमानुभूति, प्रकृति, दर्शन तथा व्यंग्य कला का ताजा सौन्दर्य इस संग्रह की कविताओं की विशेषता है। "आज तुम शब्द न दो", "देह वल्ली", "वहाँ रात", "बावरा अहेरी" जैसी बहुचर्चित कविताएँ यहाँ मौजूद हैं। "यह दीप अकेला" तथा "काँगड़े की छोरियाँ" जैसे लोक गीत, नयी शैली और नयी भाव भूमि की आन्तरिक लय का लोक-उल्लास हैं।

"इन्द्रधनु रौंदे हुए ये" की कविताओं में "इतिहास चेतना" की ध्वनि है। कवि अखण्ड आस्था की मशाल जलाकर सामाजिक अनुभूति में नया सृजनात्मक अर्थ जोड़ता है। "अरी ओ करुणा प्रभामय" की कविताएँ चार खण्डों में विभाजित हैं — 'रोपयित्रि', 'रूपकेकी' 'एक चीड़ का खाका' और 'द्वार हीन द्वार'। रोपयित्री खण्ड में आत्मानुभाव के काव्य-द्वीप हैं — नए कवि का आत्मस्वीकार है जो हर भाव सत्य को नए सन्दर्भ से जोड़ देता है। कवि अपने को खुले तौर पर 'आधुनिक' घोषित कर देता है —

> यों मैं कवि हूँ, आधुनिक हूँ नया हूँ,
> काव्य तत्व की खोज में कहाँ नहीं गया हूँ?

यहाँ कवि 'ठाठ फकीरी' को अच्छा समझता है — किन्तु उसे 'साँचे ढला' समाज नहीं चाहिए। देश की विडम्बना के चित्र "देश तो हरा भरा है पर खलिहान खाली है।" जैसी कविताएँ हैं। "रूपकेकी" खंड प्रकृति-सौन्दर्य का प्रकृतरूप है। "एक चीड़ का खाका" में जापानी कविताओं के अनुवाद है। "द्वारहीन द्वार" खण्ड में रहस्यवाद की गूँज है। अब कवि में सागर, मछली और आत्मान्वेषण का विस्तार हो गया है।

"आँगन के पार द्वार" में भाव-परिष्कार से प्राप्त सौन्दर्यानुभूति की कविताएँ हैं। इसी संग्रह पर 1964 ई. में साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला है। "बना दे चितेरे", "मेरे भीतर दाता जागा" जैसी कविताओं में आत्मदान और / आत्मउन्मोचन के भाव हैं। "चक्रांत शिला" खंड की कविताओं में बौद्ध-साधना का तत्त्व-दर्शन है। इन कविताओं में शून्य और मौन एकाकार हैं पर रहस्य-योगी काकचौंच जाग गया है। इस काव्य की सबसे प्रसिद्ध रचना "असाध्य वीणा" है जो स्वयं कवि की सृजन प्रक्रिया और सृजन कर्म का साधना का प्रतीक है। मूलकथा भारतीय बौद्ध कथा मिश्रित जापानी कथा है। सच बात है कि नयी कविता की असाध्य वीणा, अज्ञेय जैसे साधक के हाथों ही बजी। इस कविता को मसीही दर्शन की उतरन कहना भूल है। क्योंकि यह काव्य सृजन की भारतीय 'समाधि' का साकार बिंब है। इसमें आध्यात्मिकता खोजना दिमागी सनक ही कहलायेगी। कारण सृजन-प्रक्रिया की यह वास्तविकता का अनुभव क्षेत्र है। 'कितनी नावों में कितनी बार' की कविताएँ कवि में बढ़ती हुई अन्तर्मुखता को व्यंजित करती हैं। 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ' की कविताओं में काल मुक्त क्षणों का तत्त्व दर्शन अधिक है। पर सामाजिक चेतना का विकास-परिष्कार 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ' जैसी कविताओं में जारी है। देश के सिर पर रखा अलगाववाद, जातिवाद, नस्लवाद, साम्प्रदायिकतावाद का कोल्हू कवि को बेचैन किए है।

"सागरमुद्रा" कवि संवेदना की प्रौढ़ता का प्रतीक है। अनेक कविताएं 'काल' की अवधारणा को विषयवस्तु बनाकर रची गई हैं। सागर व्यापकता तथा गहराई का प्रतीक है। सागर कवि को घेरता है, भाता है, मुक्त करता है। "पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ" की कविताओं में वन झरने की धार है, खुले में खड़ा पेड़ है, नंदा देवी है। कुमाऊंनी की प्रकृति सुंदरी अज्ञेय के काव्य की प्रेरणा रही है। इसी प्रेरणा की उदात्त भाव भूमि "महावृक्ष के नीचे" काव्य-संग्रह की कविताओं में है जहाँ कवि वृक्षों से जीवन का राग सुनता है। कला-साधना में लोक-जीवन, लोक संवेदना और लोक-भाषा की लय घुल जाती है। अब अज्ञेय एक फकत आदमी हैं, पाण्डित्य के भार से मुक्त भारतीय सर्जक। कविता अब सामाजिक परिवर्तन का अस्त्र है जिसका काम कुछ कहना नहीं, कुछ करना है। कवि अपनी मिट्टी की जड़ों से जुड़ता है और महावृक्ष अब बोधिवृक्ष साबित हुआ है। यहाँ काव्य-संवेदना को चीरती जिन्दगी की ललकार उठ रही है। ऐसा कहीं कोई घर 'आपने' देखा है जिसमें परायापन न हो सब मानव मुक्त हों, यहाँ समानता, समता की भावभूमि पर अज्ञेय का काव्य-विस्तार पाया जाता है।

सारांश यह है कि अज्ञेय की काव्य-यात्रा में ठहराव नहीं है। कला, भाव, रूप और चिंतन का लगातार विकास परिष्कार हुआ है। कवि ने एक ऐसी विश्वदृष्टि पा ली है जो उसे सागर का दर्शन देती है। एक संदेश इस काव्य-यात्रा में (कमाया हुआ सत्य) गूँज रहा है —

> बढ़े चाहे बोध जितना
> शास्त्र का, इतिहास का,
> रूढ़ि के विन्यास का या मुक्ति का
> कम नहीं ललकार होती जिंदगी की
> मोड़ आगे और भी हैं —

"नदी की बांक पर छाया" की कविताओं में जीवन का आलोक है, [illegible] का प्रसार है। कहना न होगा कि [illegible] की आधुनिकता के लिए अज्ञेय की काव्य यात्रा का ऐतिहासिक मूल्य है।

28.3.2 काव्य संवेदना की गहराई

अज्ञेय की काव्य संवेदना के स्वरूप विवेचन से पहले यह जरूरी है कि थोड़ा-सा "संवेदना" शब्द पर विचार करें। सामान्य रूप से "संवेदना" शब्द को अँग्रेजी के शब्द "सेन्सीबिलिटी" (ईमानदारी) के पर्याय के रूप में ग्रहण किया जाता है। किन्तु संवेदना को मात्र सेन्सीबिलिटी का पर्याय इसलिए नहीं माना जा सकता। क्योंकि इस संवेदना शब्द में अनुभूति की ईमानदारी तथा अनुभव की प्रमाणिकता भी समाहित है। इस प्रकार एक सीमा तक बौद्धिक चेतना भी संवेदना के भीतर आ जाती है। कवि अज्ञेय "संवेदना" के शब्दार्थ को स्वयं स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि संवेदना वह यंत्र है जिसके सहारे जीवन दृष्टि अपने से इतर सब कुछ के साथ संबंध जोड़ती है — वह संबंध एक साथ ही एकता का भी और भिन्नता का भी (हिंदी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य, पृ. 17)। इस कथन का अर्थ है कि संवेदना में भौतिक और आंतरिक जीवन-जगत् के अनुभव सक्रिय रहते हैं। जिसमें युग-विशेष की मानसिकता और सौन्दर्य दृष्टियाँ निहित रहती हैं। इसी प्रक्रिया के कारण मूल राग (क्रोध, भय, घृणा) वही रहने पर भी रागात्मक संबंधों की प्रणालियाँ बदलती रहती हैं।

अज्ञेय द्वारा लिखी गई प्रयोग-प्रगतिमूलक नयी कविता की मूल संवेदना भूमि को समझने में उनके कुछ कथन हमारी सहायता करते हैं।

1) "अभिधेयार्थ युक्त शब्द तो वह कथा का माल है जिससे वह रचना करता है ऐसी रचना जिसके द्वारा वह अपना नया अर्थ उसमें भर सके. उसमें जीवन डाल सके। वही वह प्रतिपत्ति है जिसके लिए कवि 'वागर्थाविवसम्पृक्त' पार्वती परमेश्वर की वन्दना करता है।"

2) "जब चमत्कारिक अर्थ मर जाता है और अभिधेय बन जाता है तब उस शब्द की रागोत्तेजक शक्ति भी क्षीण हो जाती है, उस अर्थ से रागात्मक संबंध नहीं स्थापित होता। कवि तब उस अर्थ की प्रतिपत्ति करता है, जिससे पुनःराग का संचार हो, पुनःरागात्मक संबंध स्थापित हो। साधारणीकरण का अर्थ यही है।"

3) "क्या है जो कविता को आवृत्ति नहीं, सृष्टि का गौरव दे सकता है? कवि नए तथ्यों को उनके साथ नए रागात्मक संबंध जोड़ कर नए सत्यों का रूप दे, उन नए सत्यों को प्रेष्य बनाकर उनका साधारणीकरण करे, यही नयी रचना है। इसे नयी कविता को कवि नहीं भूलता।"

4) "साधारणीकरण का आग्रह भी उसका कम नहीं है, बल्कि यह देखकर कि आज साधारणीकरण अधिक कठिन है, वह अपने कर्तव्य के प्रति अधिक सजग है और उसकी पूर्ति के लिए अधिक बड़ा जोखिम उठाने को तैयार है। किसी हद तक ठीक है कि जहाँ कवि की संवेदनाएँ अधिक उलझी हुई हैं वहाँ ग्राहक या सहृदय में भी उन्हीं परिस्थितियों के कारण वैसा ही परिवर्तन हुआ है" (दूसरा सप्तक भूमिका पृ. 12)। ज़ाहिर है कि जटिल होते हुए जीवन-जगत के कारण कविकर्म कठिन और जटिल हो गया है। आज की नयी कविता में जटिल संवेदनाओं को कवि अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है। इसी अर्थ में अज्ञेय की कविता नयी भाव सम्पदा विचार सम्पदा और मनःस्थिति का विस्फोट है या प्रतिबिंब है। उदाहरण के लिए शहर की विषैली स्थिति के प्रति अज्ञेय की संवेदना अधिक तीखी होती गई है। यह कविता महानगर के नरक पर तीखा व्यंग्य है —

> साँप!
> तुम सभ्य तो हुए नहीं —
> नगर में बसना —
> भी तुम्हें नहीं आया।
> एक बात पूछूँ — उत्तर दोगे?
> तब कैसे सीखा डसना
> विष कहाँ पाया?

अज्ञेय के इस कथन में न छायावादी "भावावेग" है न प्रगतिवादी "आवेश" — बहुत ठंडे मिजाज में आधुनिक भाव बोध का प्रकाश है।

अज्ञेय की काव्य संवेदना को जीवन के बृहत्त अर्थ की तलाश है। वह मानवीय संवेदना को सहज और संस्कारी कवि दृष्टि से पकड़ते हैं। व्यक्तिवाद के जाल को तोड़कर वे कहते हैं :

> यह दीप अकेला स्नेह भरा
> है गर्व भरा मदमाता पर
> इसको भी पंक्ति को दे दो
> यह जन है : गाता गीत जिन्हें फिर और कौन गाएगा?
> पनडुब्बा : ये मोती सच्चे फिर कौन कृती लाएगा?
> यह समिधा : ऐसी आग हठीला बिरला सुलगाएगा।
> यह अद्वितीय : यह मेरा : यह मैं स्वयं विसर्जित।
>
> (बावरा अहेरी)

अज्ञेय में अनुभूति की अद्वितीयता का अर्थ सामाजिक अनुभूति से विरक्त होना नहीं है। उन्हें कुंठायुक्त, सन्धि ढला । कृत्रिम जीवन नापसंद है।'' अच्छे अनुभव की भट्ठी में पके हुए कण दो कण अन्तदृष्टि' को उन्होंने आदर दिया है। इसीलिए उनकी काव्यसंवदना में सहज अनुभूति का अंश प्रमुख है। उनके भीतर का दाता आत्म-दान और आत्मसमर्पण में ही सुख पाता है –

घर भीतर फिर जागा दाता
और मैंने फिर नीरव संकल्प किया
लो यह हरी भरी धरती, यह सवत्सा कामधेनु मैंने तुम्हें दी
यह अनुभव अद्वितीय, जो केवल मैंने लिया
सब तुम्हें दिया।

(आंगन के पार द्वार)

अज्ञेय का कवि लगातार दाता की मुद्रा में रहता है। नदी या परम्परा प्रवाह के प्रति उनमें श्रद्धा, समर्पण और माता का भाव है। यथा —

नदी तुम बहती चलो।
भूखण्ड से जो दाय हमको मिला है मिलता रहा है
माँजती-संस्कार देती चलो।

(नदी के द्वीप)

यह कहना कि अज्ञेय में जन से कटकर रहने का पलायनवादी-व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन है — अन्याय है, साथ ही "नदी के द्वीप" कविता की गलत और भ्रामक व्याख्या है। ध्यान देने की बात यह है कि अज्ञेय जन की व्यथा को काव्य-संवेदना की मूल दृष्टि में रचते हैं —

यह जो मिट्टी गोड़ता है
कोदई खाता है और गेहूँ खिलाता है
उसकी मैं साधना हूँ।
यह जो मिट्टी फोड़ता है
मड़िया में रहता और महलों को बनाता है
उसकी मैं आस्था हूँ।

(मैं वहाँ हूँ)

खूब सोचने-समझने के बाद पुरानी और नयी पीढ़ियों में अज्ञेय सेतु-संवाद कायम करते हैं। उनकी संवेदना की नदी में आत्म-विस्तार और आत्म-उन्मोचन का भाव है वे अपने को दूसरों के लिए पूरा उलीच देना चाहते हैं। सागर उन्हें टेरता है और एक अन्तःसलिला उनमें निसर्गजात प्रवहमान है —

अरे! अन्तः सलिल है रेत
अनगिनत पैरों तले रौंदी हुई अविराम
फिर भी घाव अपने आप भरती

(अंतः सलिला)

इसलिए जन की अर्चना में उनका व्यष्टि अभिमान बाधक नहीं हुआ। कवि अज्ञेय को पता है कि संकीर्णता की नाली में कीड़े ही पल सकते हैं। मुक्त जीवन की सक्रिय अभिव्यंजना का तेजादीप्त प्रवाह ही जीवन की गति है। इसलिए "स्वरति", "अंतर्गुहावासी", "अहंकारी", "अकेला", "जीवन-विरोधी" कहना कवि अज्ञेय के अनुभव सत्य से आँख मूँद लेना है।

28.3.3 आस्था और अनुभूति का संस्कारी प्रभाव

अज्ञेय के काव्य पर पश्चिम का प्रभाव है। पर वह पश्चिम की कोरी नकल नहीं है। उसमें भारतीय जीवन का सांस्कृतिक संवेदन और आस्था का स्वर है। एक ऐसी आस्था जिसकी अखण्डता को कोई खंडित नहीं कर सकता। यह कहना कि अज्ञेय मरणधर्मा, निराशावादी-अनास्थावादी-अस्तित्ववाद के भाव-बोध की कविता रचते हैं, एकदम गलत बात है। उन पर बौद्धदर्शन की छाप है और प्रार्थना भी उस भाव-संस्कार की है —

दुःख सबको माँजता है
स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने
किन्तु जिनको माँजता है
उन्हें वह सीख देता है कि
सबको उससे मुक्त रखें।

सभी को कष्टों से मुक्त रखने की सीख देने वाला रचनाकार अस्तित्ववादी कैसे हो सकता है? कारण —

मुझको दीख गया
हर-आलोक-छुआ अपनापन
है उन्मोचन
नश्वरता के राग से।

(एक बूँद सहसा उछली)

प्रसिद्ध कवि-आलोचक विजयदेव नारायण साही ने "लघु मानव के बहाने हिंदी कविता पर एक बहस" शीर्षक अपने निबन्ध में अज्ञेय का संबंध जयशंकर प्रसाद की काव्य-परम्परा से जोड़ा है। यह आकस्मिक नहीं है कि हिंदी की नयी कविता के दोनों बड़े कवि अज्ञेय और मुक्तिबोध के मन में प्रसाद के प्रति गहरा आकर्षण है। कारण, प्रसाद का बौद्धिक-सांस्कृतिक चिंतन दोनों को चुनौती भी देता है और प्रेरणा भी। इसीलिए प्रसाद-परम्परा के प्रवाह में अज्ञेय और मुक्तिबोध एक दूसरे के विरोधी न रहकर पूरक बन जाते हैं। जीवन को काँच में से देखने का आग्रह दोनों कवियों में नहीं है, दोनों जीवन-यथार्थ में सीधा साक्षात्कार करते हैं। प्रसाद जी तथा अज्ञेय जी की अनुभूति में मूल अन्तर यह है कि 'कामायनी में जो अनुभूति दर्शन में परिवर्तित हो जाती है उसे अज्ञेय फिर दर्शन से अनुभूति में परिवर्तित करते हैं।' यह क्रिया काफी कठिन है। हल्की अस्तित्ववाद की अनुभूति को वे सहजता से काव्यात्मकता में खपा देते हैं। किन्तु अखंड, अद्वैत, अद्वंद्व वाले रस-सिद्धांत का अज्ञेय समर्थन नहीं करते है, क्योंकि आज के मानव की चेतना में द्वंद्व, तनाव और खिंचाव है और यह कविता तनाव की ऊर्जा पर पल कर ही बढ़ी है।

28.3.4 नव्य रहस्यवाद

अज्ञेय में नव्य रहस्यवादी रुझान की प्रवृत्ति शुरू से ही मिलती है। अपने एक लेख "चेतना के संस्कार" में वे गांधी विचारदर्शन की भाँति सोचते मिलते हैं। उन्हें लगता है कि भौतिकता-यांत्रिकता के अतिशय विस्तार ने मानव की आन्तरिक और आध्यात्मिक शक्ति का ह्रास किया है। "मानव विकास सोद्देश्य होना चाहिए और यह सोद्देश्यता परमपिता, ब्रह्म या अनादि चेतना को किसी रूप में माने बिना सिद्ध नहीं होती। विकास सोद्देश्य क्यों है? आधुनिक जीव-विज्ञान के पास इस प्रश्न का उत्तर नहीं है।" किन्तु जो उत्तर विज्ञान के पास नहीं है वे उत्तर आत्मा में डूबकर विचार करने वाले चिन्तक के पास है। आज जब "आत्मा" में हमारा विश्वास नहीं है तब "आत्मा" का अर्थ है — अन्तश्चेतना। अज्ञेय मानते हैं कि पश्चिम के वैज्ञानिक एक सीमा के बाद रहस्यवाद की बात करने लगते हैं। उन्हें थोथी वैज्ञानिकता से संतोष कहां है?

पहले अज्ञेय जी अरविन्द दर्शन की ओर मुड़े थे। सन् 1939 के "हंस" अंक में उनकी कविता छपी है, शीर्षक है "रहस्यवाद"। कविता के आरम्भ में कहा है कि "मेरा रहस्यवाद ईश्वर की ओर नहीं है।" यह रहस्यवाद सीमित अणु में विराट की शक्ति समा लेना चाहता है। अज्ञेय का भाव-सत्य पर आधारित रहस्यवाद "सत्य से साक्षात्कार" है। इसीलिए इसे "नव्य रहस्यवाद" नाम देना सार्थक प्रतीत होता है। मूल बात यह है कि अज्ञेय का नव्य रहस्यवाद, हिंदी के मध्यकालीन सिद्धों-नाथों-संतों के रहस्यवाद से एक दम अलग है।

28.3.5 प्रयोग, प्रगति और परम्परा

अज्ञेय काव्य में नए प्रयोगों के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। हिंदी की आधुनिक कविता में भारतेन्दु, श्रीधर पाठक जयशंकर प्रसाद और निराला के काव्य-प्रयोगों ने प्रगति का एक नया पथ-निर्मित किया है और नवीन काव्य-राहों की खोज की। इसी परम्परा को अज्ञेय विस्तार एवं गहराई देते हैं। प्रयोगों की इसी आन्तरिक निष्ठा के कारण उन्हें "प्रयोगवादी काव्य-प्रवृत्ति" का प्रवर्तक कवि माना जाता है। प्रयोग, कविता में नयी दिशा की खोज है। अज्ञेय ने कहा है कि:

i) प्रयोग का कोई वाद नहीं है, हम वादी नहीं रहे, नहीं हैं। न प्रयोग अपने आप में इष्ट या साध्य है।

ii) आत्माभिव्यक्ति चाहने वाले कवि को अधिकार है कि वह उस माध्यम का अपनी आवश्यकता के अनुरूप श्रेष्ठ उपयोग करे, उसी प्रकार आत्म-सत्य के अन्वेषी कवि को, अन्वेषण के प्रयोग रूपी माध्यम का उपयोग करते समय उस माध्यम की विशेषताओं को परखने का भी अधिकार है।

iii) जो लोग प्रयोग की निंदा करने के लिए परम्परा की दुहाई देते हैं, वे यह भूल जाते है कि परम्परा कम से कम कवि के लिए कोई पोटली बांधकर अलग रखी हुई चीज नहीं है जिसे वह उठाकर सिर पर लाद ले और चल निकले।

iv) प्रयोग अपने आप में साध्य नहीं है। वह साधन है। वह सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है।

v) प्रयोग निरंतर होते आए हैं और प्रयोगों के द्वारा हो कविता या कोई भी कला या कोई भी रचनात्मक कार्य आगे बढ़ सका है।

निष्कर्ष यह है कि नवीन रचनात्मकता के लिए प्रयोगों की अनिवार्यता से इनकार नहीं किया जा सकता।

प्रगति का अर्थ है मानवीय संवेदना का विकास, परिष्कार और विस्तार। मानव की जड़ी-भूत सौन्दर्याभिरुचियों को तोड़कर नवीन सौन्दर्य दृष्टि विकसित करना और नवीन मूल्यों की महत्व प्रतिष्ठा।

'परम्परा' शब्द की नवीन व्याख्या और प्रतिष्ठा अज्ञेय ने हर संभव प्रयत्न से की है। उन्होंने टी.एस. इलियट के निबन्ध "ट्रेडीशन एंड इंडिविजुल टेलेन्ट" का "रूढ़ि और मौलिकता" नाम से भावानुवाद करके परम्परा की ओर हिंदी की नयी पीढ़ी का ध्यान आकृष्ट किया है। साथ ही यह भी स्पष्ट किया है कि परम्परा न तो रूढ़ि है न लीक है न परिपाटी है न मात्र स्मृति है। परम्परा कवि को कमानी पड़ती है और इस दृष्टि से परम्परा ही कवि का इतिहास-बोध है। इसी में अतीत की वर्तमानता और वर्तमान की अतीतता विद्यमान रहती है। इस दृष्टि से परम्परा काव्य में प्राचीन नमक का स्वाद है और निरन्तरता का पर्याय । कहना न होगा कि यह निरन्तरता की अनुभूति ही ऐतिहासिक चेतना है और इस चेतना का अनवरत स्पन्दनशील विकास ही परम्परा का ज्ञान है। काल की प्रवाहमानता के इस ज्ञान के बिना कविकर्म चल नहीं सकता। इसी दृष्टि से कवि अज्ञेय परम्परा को आत्मसात करते हैं, संग्रह-त्याग का ज्ञान अर्जित करते हैं और कहते हैं —

1) मैं वह धनु हूँ जिसे साधने में प्रत्यंचा टूट गयी है
स्खलित हुआ है बाण यद्यपि ध्वनि दिगदिगन्त में फूट गयी है।
यह ध्वनि ही परम्परा की टंकार है — "नया कवि : आत्मस्वीकार" करता है कि

2) किसी का सत्य था मैंने संदर्भ से जोड़ दिया।
कोई मधुकोष काट लाया था मैंने निचोड़ दिया।

× × ×

यों मैं कवि हूँ आधुनिक हूँ नया हूँ
काव्यतत्व की खोज में कहां नहीं गया हूँ।

28.3.6 आधुनिकता और समसामयिकता

अज्ञेय जी के काव्य में आधुनिकता का अर्थ है — नवीनता और मौलिकता, दृष्टि से मध्ययुगीन श्रद्धावादी संस्कारों से मुक्ति तथा नवीन संवेदना की बौद्धिक आग के प्रति लगाव। वास्तव में, नए काव्य में आधुनिकता का अर्थ है — "आधुनिक संवेदना" । प्रश्न उठता है कि क्या संवेदना के साथ "नयी" या "पुरानी" जैसा कोई भी विशेषण लगाना उचित है? क्या संवेदना अपने आप बदलती है या युग दृष्टि ही संवेदना को बदलने के लिए विवश करती है? फिर आधुनिकता इस दृष्टि से मूल्य नहीं है, प्रक्रिया है आप चाहें तो उसे इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं कि कथ्य को नवीन अंतर्दृष्टि से सम्पन्न करने वाली और रचनात्मकता को युग की मनोभूमिका से जोड़कर अभिव्यक्ति देने वाली प्रक्रिया ही आधुनिकता है। नारी के प्रति, सामाजिक शोषण के प्रति, विज्ञान और तकनीकी युग के प्रति, बौद्धिक चुनौतियों के प्रति बदलती दृष्टि आधुनिकता है। नारी को प्राचीन सम्बोधनों से दूर रखकर वे कहते हैं: "मैं कहूँगा हरी बिछली घास हो तुम।" आधुनिकता की दृष्टि के कारण ही उन्हें कहना पड़ता है — "ये उपमान मैले हो गए हैं।"

समसामयिकता का आग्रह तात्कालिकता का आग्रह नहीं है। समसामयिकता का अर्थ है — वर्तमान का आग्रह। एक प्रकार समसामयिकता का आग्रह भी अज्ञेय में बदलते संदर्भों में नवीन सर्जनात्मकता का आग्रह है। ध्यान रखना होगा कि यहाँ समसामयिकता भी अतीत की वर्तमानता से जुड़कर ही रचना में आई है।

28.3.7 मानव-मूल्यों के संदर्भ में नए व्यक्तित्व की खोज

साहित्य की सम्पूर्ण रचनात्मकता का केन्द्र बिन्दु है — मनुष्य। नयी कविता में मानव की रचनात्मकता के परिवेश से उपजा नया इतिहास भूगोल है। अज्ञेय का सृजन इस नए मानव को परिभाषित करने का प्रयत्न करता है। प्रश्न उठता है यह नया मनुष्य कौन है? क्या वह आदर्श नायक, महा-मानव, लघु मानव या साधारण जन है या फिर अहंग्रस्त, यौन विकृतियों का पुंज, मूल्यों के खोखलेपन से बेचैन कोई आत्मनिर्वासित व्यक्ति है? अज्ञेय इसे "लघु मानव" कहते हैं। जिसका अर्थ है अहंग्रस्त आत्मनिर्वासित व्यक्ति, आधुनिक यान्त्रिक समाज ने जिसे "अंगूठा कटा एकलव्य" बना दिया है। मानव-मूल्यों तथा मानव व्यक्तित्व की व्याख्याओं में अज्ञेय भारतीय दर्शन का सहारा लेते हैं, पर पूरी तरह उसी को सब कुछ नहीं मानते हैं उनकी दृष्टि में श्रमरत, कर्मरत मानव के प्रति आस्था है 'नर जिसकी अनझिप आँखों में नारायण की व्यथा भरी है'। नए मानव की विवेक वयस्कता में अज्ञेय की आस्था है — 'भीड़ में दिख जाता मानव' भी उनकी दृष्टि से ओझल नहीं है —

रुई धुनता है गारा सानता है खटिया बुनता है
मशक से सड़क सींचता है
रिक्शों में अपना प्रतिरूप लादे खींचता है
जो भी जहाँ भी पिसता है —
पर हारता नहीं, न मरता है
पीड़ित श्रमरत मानव
अविजित दुर्जेय मानव
कमकर, श्रमकर, शिल्पी, स्रष्टा
उसकी मैं कथा हूँ।

(मैं वहाँ हूँ)

28.3.8 प्रकृति का लय का उल्लास

अज्ञेय की प्रकृति-दृष्टि स्वतंत्र मानव-चेतना का उल्लेख है। स्वतंत्र व्यक्ति की अवधारणा ही वह केन्द्र बिन्दु है जहाँ से अज्ञेय शक्ति संचय करते हैं। मानव और प्रकृति के गोचर अनुभवों को वे मूल से पकड़ते हैं — विशेषकर प्रकृति के चित्रों में। प्रकृति के दुर्लभ चित्र वे आंकते हैं। उनके कवि की आँख से देखी जाकर हर चीज विशिष्ट हो उठती है। सागर, नदी, निर्झर, फूल, पत्ते, वनपाखी, बादल, वसंत, फूल-पौधे, वृक्ष, पर्वत, गाँव आदि सभी के चित्र बड़े ही विशिष्ट हैं — "महावृक्ष के नीचे" (1973) बैठकर वे प्रकृति का गान सुनते हैं। पर्वतीय प्रकृति के चित्रों की यह काव्य रंगशाला है। अज्ञेय प्रकृति से तदाकार हैं और जीवन की कालिदासीय लय "आषाढ़ की निशानी" कविता में सुनते हैं —

घास हरी झुलसानी
मानिक के झूमर सी
  झूमी मधु मालती
झर पड़े जीते पीले अमलतास
चातकी की वेदना विरानी
बादलों का हाशिया है आसमान —
बीच कूँचों की डार कि, लिखी पांत काली बिजली की
आसाढ़ की निशानी! ओ पिया पानी!

अज्ञेय को सागर टेरता है, नदियाँ दुलारती हैं, बादल माथा सहलाते हैं, वृक्ष दुलराते हैं। किरीटी तरु की "असाध्य-वीणा" इस प्रियवंद के हाथों ही बजती है। प्रकृति मानव को सभी भीतरी-बाहरी बंधनों से खोलती है और मुक्त रहने का संदेश देती है।

28.3.9 जीवन-दर्शन

अज्ञेय के जीवन-दर्शन पर भारतीय वेदान्त और मानववाद का गहरा प्रभाव है। इस चिंतक को बौद्ध-दर्शन की करुणा दृष्टि में भी आस्था है। किन्तु इनका जीवन-दर्शन अनास्थावादी-अस्तित्ववादी नहीं है। भारतीय जीवन-दृष्टि में उनकी गहन आस्था है। वे मानते हैं कि विद्या वही है जो मुक्त करती है। यही सन्तदर्शन उनमें रच-रच गया है। उनके विचार से जीवन का सबसे बड़ा मूल्य है — मानवीय स्वतंत्रता। इसी मूल्य के लिए पीढ़ियाँ युद्ध करती हैं, प्राण गंवाती हैं। आज तक मानव लगातार पराधीनता के खिलाफ संग्राम लड़ता चला आ रहा है। अज्ञेय में मार्क्सवादी जीवन-दर्शन के प्रति आस्था नहीं है। वे उसे सतही भौतिकता और छिछले चिंतन की दृष्टि कहकर नकार देते हैं। अज्ञेय का विचार है कि मार्क्सवादी एक ढंग से व्यक्ति की स्वतंत्रता छीनता है और सामूहिकता के नामपर एक खास ढंग से सोचने को विवश करता है। वह लोकतांत्रिक मूल्यों को दबाता है। उनकी जीवन-दृष्टि में मानव वही है जो स्वाधीन होकर समाज के विषय में सोच सके। वह नहीं जो 'पार्टी', 'वाद' या किसी 'साम्प्रदायिक गठबंधन का झंडा' उठाये घूमता फिरे। अज्ञेय क्षण और काल पर सोचते हैं पर क्षणवादी नहीं है। भारतीय सांस्कृतिक संवेदना की विश्व-दृष्टि ही अज्ञेय के जीवन-दर्शन का पर्याय है।

बोध प्रश्न 2

i) अज्ञेय का काव्य-यात्रा के विकास की विशेषताओं का दस पंक्तियों में निरूपण कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

ii) अज्ञेय की काव्य संवेदना पर पाँच पंक्तियों में विचार कीजिए।

....
....
....

....

....

iii) अज्ञेय की अनुभूति पर किन विचार-दृष्टियों का प्रभाव है? सात-आठ पंक्तियों में विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

iv) "अज्ञेय का नव्य रहस्यवाद आध्यात्मिक नहीं है" इस कथन पर चार पंक्तियों में अपने विचार लिखिए।

....

....

....

....

v) प्रयोग, प्रगति तथा परम्परा से संबंधित अर्थों पर आठ वाक्यों में टिप्पणी कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

vi) नए व्यक्तित्व की खोज पर चार वाक्यों में अपना मत व्यक्त कीजिए।

....

....

....

....

vii) अज्ञेय के जीवन-दर्शन पर सात वाक्यों में अपने विचार लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

viii) "प्रकृति लय का उल्लास अज्ञेय की मूल चेतना है" इस कथन पर चार वाक्यों में विचार कीजिए।

....

....

....

....

28.4 अभिव्यंजना-शिल्प का सौन्दर्य

अज्ञेय को आरंभिक काव्य-शिल्प पर छायावादी प्रभाव है लेकिन धीरे-धीरे उनकी कविता ने भावावेग के स्थान पर संयम, बौद्धिकता, शब्द का सही प्रयोग, शब्द की आत्मा से साक्षात्कार आदि को अपनाकर गैर-रोमांटिक काव्य की सम्भावनाओं को उजागर किया है। इलियट की भाँति अज्ञेय यह स्वीकार करते हैं कि हमारा ध्यान कवि पर नहीं कविता पर रहना चाहिए। वे मानते हैं कि कविता में वस्तु और रूप अभिन्न होते हैं। इसलिए रचनाकार का संघर्ष वस्तु और रूप दोनों से निरंतर चलता है। व्यक्तित्व का उत्सर्ग उसका विनाश नहीं है, क्योंकि उसके द्वारा वह उस परम्परा को परिवर्तित कर रहा है। जिस पर वह निछावर है। हमें निरंतर मन की उस धातु को ठीक से परखना होगा जिससे सृजन उद्भूत है। ध्यान रहे रचने वाले प्राणी और भोगने वाले में अन्तर होता है — यह अन्तर जितना अधिक होता है रचनाकार उतना ही बड़ा होता जाता है। कला के प्रति निर्वैयक्तिकता और जीवन के प्रति निस्संगता का भाव अज्ञेय की काव्य-कला को छायावादी-कला से अलग करता है।

शिल्प सिर्फ "फार्म" नहीं है। यह कथ्य को सम्प्रेषित करने का अनिवार्य माध्यम है। इसलिए अपने से पहले के कवियों की तुलना में उन्होंने शिल्प को अधिक महत्व दिया है। कुछ आलोचकों ने इस बात को ठीक से न समझने के कारण अज्ञेय को रूपवादी (फ़ॉर्मलिस्ट) तक कह दिया है। काव्य में शब्द के माध्यम से अर्थ का प्रकाश होता है और शब्द-विधान का संबंध शिल्प से है। अज्ञेय नवीन काव्य संवेदना के राग दीप्त सत्य को व्यक्त करने के लिए एक कुशल कलाकार की भाँति शिल्प-उपकरणों का प्रयोग करते हैं। उन्हें ज्ञान है कि मौन भी अभिव्यंजना है। पर वे कोरे शिल्प की बात नहीं करते हैं। उनमें पुराने शिल्प का नया संस्कार परिष्कार और नए शिल्प उपकरणों की खोज का क्रम जारी है। शिल्प का प्रथम प्रभावशाली उपकरण है — काव्य-भाषा।

28.4.1 काव्य-भाषा की सर्जनात्मकता

अज्ञेय ने खड़ी बोली काव्य-भाषा की सर्जनात्मकता का हर संभव तरीके से विस्तार किया है। उन्होंने शब्द को नए भाव-बोध से जोड़कर कहा है —

i) आज के कवि की सबसे बड़ी समस्या है — कवि अनुभव करता है कि भाषा का पुराना व्यापकत्व उसमें नहीं है — शब्दों के साधारण अर्थ से बड़ा अर्थ हम उसमें भरना चाहते हैं, पर उस बड़े अर्थ को पाठक के मन में उतार देने के साधन अपर्याप्त हैं। वह या तो अर्थ कम पाता है या कुछ भिन्न पाता है"। (तार सप्तक-वक्तव्य)

ii) नयी कविता की प्रयोगशीलता का पहला आयाम भाषा से संबंध रखता है।

iii) नयी कविता के कवि को यह मानने में कोई कठिनाई नहीं होती है कि कोई शब्द किसी दूसरे शब्द का सम्पूर्ण पर्याय नहीं हो सकता, क्योंकि प्रत्येक शब्द के अपने वाच्यार्थ के अलावा अलग-अलग लक्षणाएँ और व्यंजनाएँ होती हैं — अलग संस्कार और ध्वनियाँ।

vi) प्रत्येक शब्द का समर्थ उपयोक्ता उसे नया संस्कार देता है। इसी के द्वारा पुराना शब्द नया होता है। यही उसका कल्प है।

v) जरा भाषा के मूल प्रश्न पर शब्द और उसके अर्थ के संबंध पर ध्यान दीजिए शब्द में अर्थ कहाँ से आता है, क्यों और कैसे बदलता है, अधिक या कम अर्थ कहाँ से पाता है? चमत्कार मरता रहता है और चमत्कारिक अर्थ अभिधेय बनता रहता है। यो कहें कि कविता की भाषा निरंतर गद्य की भाषा होती जाती है। इस प्रकार कवि के सामने हमेशा चमत्कार सृष्टि की समस्या बनी रहती है। वह शब्दों को निरंतर नया संस्कार देता चलता है और ये संस्कार क्रमशः सार्वजनिक मानस में पैठकर ऐसे हो जाते हैं कि उस रूप में कवि के काव्य के नहीं रहते। 'बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है'। (दूसरा सप्तक : वक्तव्य)

अज्ञेय ने काव्य-भाषा में नए अर्थ के रागात्मक संबंध को स्थापित करने में महत्वपूर्ण कार्य किया है। वे उस अर्थ की शब्द में प्रतिपत्ति करते हैं जो नए-रागात्मक संबंध को स्थापित करें और भाव को सम्प्रेषित करते हुए उसका पाठक से साधारणीकरण भी।

महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि अज्ञेय की काव्य-भाषा पर उनका ही बनाया हुआ काव्य-भाषा प्रतिमान खरा उतरता है। काव्य के जो भी गुण बताए जाते हैं या बताये जा सकते हैं, अन्ततोगत्वा भाषा के ही गुण हैं। "काव्य सबसे पहले शब्द है और सबसे अन्त में भी यहीं बात बच जाती है कि काव्य शब्द है। सारे कवि धर्म इसी परिभाषा से निःसृत होते हैं। शब्द का ज्ञान, शब्द की अर्थवत्ता की सही पकड़ ही कृतिकार को कृती बनाती है। ध्वनि, लय, छंद आदि के सभी प्रश्न इसी से निकलते हैं और इसी में विलय होते हैं। इतना ही नहीं सारे सामाजिक-संदर्भ भी यहीं से निकलते हैं— (सीढ़ियों पर धूप में — भूमिका)।

अज्ञेय संवेदना और भाषा के तनाव को झेलकर काव्य रचते हैं और अनुभव को शब्द में भरते हैं ताकि पाठक तक उसका ठीक-ठीक अर्थ संप्रेषित हो सके। वे "शब्द और सत्य" कविता में यही बात अपने पाठक से कहते हैं —

दोनों जो अपने बीच एक दीवार बनाये रहते हैं
मैं कब, कैसे, उनके अनदेखे इनमें सेंध लगा दूँ
या भर विस्फोटक उसे उड़ा दूँ
× × × ×
कब, कैसे, किस आलोक स्फुरण में इन्हें मिला दूँ
दोनों जो हैं बन्धु, सखा, चिर सहचर मेरे।

(अरी ओ करुणा प्रभामय)

डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी का अज्ञेय की काव्य-भाषा के लिए यह निष्कर्ष सही है कि काव्य-भाषा के लिए उन की जागरूकता वैचारिक और रचनात्मक दोनों स्तरों पर दिखाई देती है।

दरअसल, वह काव्य भाषा-छायावादोत्तर काव्य-भाषा के विकास का साक्ष्य प्रस्तुत करती है। निराला जी को छोड़कर सभी छायावादियों की काव्य-भाषा की ताजगी कुम्हलाती चली गई। निराला ने सही शब्द प्रयोग के लिए तत्सम शब्दावली का "राम की शक्ति पूजा" जैसी लम्बी कविता में रचनात्मक उपयोग किया। प्रगतिवादी 'सामान्य भाषा' की बात करते रहे पर सहज सर्जनात्मक भाषा को जन्म न दे सके। यह ठीक बात है कि अज्ञेय की आरंभिक काव्य-भाषा सादी, रंगहीन और कमजोर है किन्तु "हरी घास पर क्षण भर" की कविताओं के बाद वह प्रौढ़ समर्थ और सर्जनात्मक सम्भावनाओं से भर जाती है।

"तार सप्तक" के बाद काव्य-भाषा के क्षेत्र में अज्ञेय क्रांति उपस्थित करते है। उनकी भाषा में तद्‌भव शब्दों का प्रयोग बढ़ जाता है और भाषा प्रयोग-विधि में ठेठ ग्रामीण जीवन की "शब्दावली", "शोषक भैया", "बावरा अहेरी", "हमने पौधे से कहा", "मैं वहाँ हूँ"। जैसी कविताओं में तद्‌भव शब्दावली की भरमार हो उठती है। यहाँ गद्य-पद्य की भाषा का अंतर कम हो गया है। "ठाठ फकीरी", "मँगनी", "हुनरमंद", "मनियारी" जैसे लोक जीवन के शब्द बढ़ जाते हैं। कविता में तद्‌भव देशज शब्दों ने अर्थ की सहज अभिव्यक्ति का रूप-रंग निखार दिया है। अज्ञेय के कथा साहित्य और निबन्धों में अंग्रेजी-संस्कृत के तत्सम शब्दों की अधिकता है। पर काव्य-भाषा में सहज ठेठ देशी मिठास का स्वाद है।

अज्ञेय की असाधारण भाषा क्षमता का ही प्रमाण है कि वे बिंबभरी, प्रतीकमय, लक्षणा-व्यंजना प्रधान भाषा का आलोक पैदा करते हैं। पूरी शक्ति से अज्ञेय छायावादी-प्रगतिवादी भाषा से अलग किस्म की भाषा की खोज करते हैं। जैसे— "फिर छनेंगे हम/जमेंगे हम/कहीं फिर पैर टेकेंगे।" (नदी का द्वीप) कविता की इन काव्य-पंक्तियों में गद्य की वैचारिकता ध्वनित होती है। "असाध्य वीणा" नामक लम्बी कविता में जीवन की सम्पूर्ण शब्दावली "बटुली में बहुत दिनों के बाद अन्न की सौंधी खुदबुद" सुनाई देती है। इतना ही नहीं यह भाषा अर्थ-अनुभूति की लय-लहजे का अनुसरण करती है। भाषा में राग और आवेग का संयम है और वाक्यों में अनेक अर्थच्छायाओं का बोध, जैसे — "दुःख सबको माँजता" में है। गति और लहजे की उमंग से कवि अनुभूति को सम्प्रेषित करता है —

भिगो दो आह! ओ रे मेघ, क्या तुम जानते हो
तुम्हारे साथ कितने हियों में कितनी असीसें उमड़ आयीं हैं?

मुक्तिबोध की तुलना में अज्ञेय की काव्य-भाषा संस्कारी, चिकनी, संगीतमय, नाद-मधुर तथा परिष्कृत है। मुक्तिबोध ऊबड़-खाबड़ भाषा से कविता निचोड़ते हैं और अज्ञेय भाषा को रगड़कर-माँजकर चमकाकर। कहना न होगा कि भाषा प्रयोग का यह अन्तर दोनों के कवि व्यक्तित्वों का अन्तर भी है। पर एक समानता भी दोनों में है दोनों ही छायावादी काव्य-भाषा के अभिजात्य को तोड़कर लोक-जीवन की भाषा को काव्यात्मकता में ढाल देते हैं। तत्सम शब्दावली अज्ञेय में प्रसाद से कम नहीं है पर उसका संदर्भ नया है। अज्ञेय को शब्द का गहरा ज्ञान है वे शब्द-शिल्पी, वाक सिद्ध कवि है। नयी कविता की काव्य-भाषा को उनकी काव्य-भाषा सहज ही समृद्ध और समर्थ बनाकर नयी अर्थ दीप्ति का मार्ग खोल देती है।

28.4.2 बिंब विधान

अज्ञेय की काव्य-भाषा की शक्ति उनके बिंब विधान में देखी जा सकती है। आरम्भ से ही वे बिंब प्रयोग के प्रति सतर्क-सावधान रहे हैं। यौन प्रतीकों की बिम्बमाला "इत्यलम्" की कविताओं में बहुत है —

सो रहा है झोंप अँधियारा नदी की जांघ पर।

किसी भी भाव या विचार को मूर्त करने के लिए प्रकृति के नाना रूपों के बिंबों से यह काव्य-भाषा समृद्ध हुई है। ऋतुराज वसंत का एक ताजा बिंब देखिए —

गंध वह उड़ रहा पराग धूल-झूल
काँटों का किरीट धारे बने देवदूत
पीत वसन दमक उठे तिरस्कृत बबूल।

(ऋतुराज)

वसंत की महिमा से तिरस्कृत बबूल देवदूत बन गया। तब अन्यों का तो कहना ही क्या।

कविताओं में प्रकृति बिंब कहीं अलंकृत है कहीं मानवीय, कहीं प्रकृति का ही रूप। रूप, रंग, रस, गंध, स्पर्श आदि के ऐन्द्रियता भरे चित्र अज्ञेय में जड़े-पड़े हैं —

तुम्हारी देह मुझको कनक चम्पे की कली है
दूर से ही स्मरण में जो गंध देती है

(देहगंधा)

संवेदनात्मक दृश्य बिंब इस पूरी कविता के सौन्दर्य लोक हैं जैसे —

पति सेवारत शाम
उचकता देख पराया चाँद
लला कर ओट हो गई।

नारी का यह लज्जा भरा चित्र बेहद रूप-भरा है।

सागर, मछली, नदी, पेड़, पहाड़, पर्वत, वसंत, घास, पर्वतीय शाम, सांवरी गोरी के बिंब बार-बार आदिम रूपों में आते हैं। अवचेतन मन के आदिम बिंब प्रकृति-चित्रों में दमकते हैं। यथा —

बादलों का हाशिया है आसमान।

पौराणिक मिथिकल बिंब कम आए हैं पर जहाँ आए हैं वहाँ अर्थ-दीप्ति के साथी बनकर यथा —

लो यह हरी भरी धरती यह सवत्सा कामधेनु मैंने तुम्हें दी।

"कामधेनु" का बिंब यहाँ पुराण-स्मृतियों की कौंध है।

प्रायः भाव को मूर्त और पारदर्शी बनाने के लिए अज्ञेय बिंब माला रचते हैं। नाद और लय के बिंब तक उनकी काव्यात्मकता में सहज रूप से प्रवेश पाते हैं। उनकी प्रसिद्ध कविता "असाध्य वीणा" से एक उदाहरण लीजिए —

हाँ मुझे स्मरण है
बदली कौंध पत्तियों पर वर्षा बूँदों की पट-पट
घनीरात में महुए का चुपचाप टपकना।
चौंके खग शावक की चिहुक।
शिलाओं के दुलराते पन झरनों के
द्रुत लहरीले जल का कल-निनाद।
[illegible] में छनकर आती पर्वती गाँव के उत्सव-ढोलक की थाप

× × ×

झिल्ली दादुर, कोकिल, चातक की झंकार पुकारों की यति में
संसृति की साँय-साँय।

गति, नाद, तड़प, चिंता, नागर, ग्रामीण संवेदना के बिंब अज्ञेय काव्य को एक नया आयाम देते हैं। रूप-रंग, ध्वनि-गंध और भाव-रस के संश्लिष्ट-बिंब प्रयोग अज्ञेय ने सफलता से किए हैं।

28.4.3 प्रतीक-विधान

प्रतीक-विधान ने अज्ञेय की काव्य-भाषा को सम्पन्न बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। अज्ञेय ने पश्चिमी प्रतीकवादी आंदोलन को लेकर शोर नहीं किया। किन्तु भारतीय प्रतीक परम्परा की आदिम शक्ति का उन्हें अहसास है। रचनाकार अज्ञेय मानते हैं कि "कोई भी स्वस्थ साहित्य प्रतीकों की, नये प्रतीकों की सृष्टि करता है, और जब वैसा करना बंद कर देता है तब जड़ हो जाता है या जब जड़ हो जाता है तब वैसा करना बंद करके, पुराने प्रतीकों पर ही निर्भर रहने लगता है।" (आत्मपरक पृ. 37) लोक-काव्य और लोकगाथाओं ने हजारों प्रतीकों की सृष्टि की है और मानवीय रचनात्मकता को नया अर्थ दिया है। अज्ञेय जी यह भी जानते हैं कि "जो सीधे-सीधे अभिधा में नहीं बंधता उसे आत्मघात करने या प्रेषित करने के लिए प्रतीक काम देते हैं। × × × सत्य के अथाह सागर में वह (कवि) प्रतीक रूपी कंकड़ से उसकी थाह का अनुमान करता है।" (आत्मनेपद पृ. 45)

अज्ञेय ने प्रतीकों की अनेकार्थता का सर्जनात्मकता में मुक्त मन से उपयोग किया है। प्रतीकों के प्रति उनमें एक ऐसा जन्मजात अनुराग है कि अपने सभी काव्य-संकलनों के नाम भी प्रतीकों पर रखें हैं, यथा — "हरी घास पर क्षण भर", "बावरा अहेरी", "आँगन के पार द्वार", "सागर मुद्रा", "नदी की बाँक पर छाया", "महावृक्ष के नीचे" आदि।

अज्ञेय ने प्रकृति, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, राजनीति, धर्म, दर्शन, पुराण, संस्कृति आदि विभिन्न क्षेत्रों के प्रतीकों का काव्य में भरपूर प्रयोग किया है। प्रतीकों की सृष्टि करने में अज्ञेय वैदिक ऋषियों की तरह पटु हैं। उनका काव्य-जगत् प्रकृति के नए-पुराने प्रतीकों से भरा पड़ा है। अज्ञेय के प्रिय प्रतीक हैं — सागर, मछली, हारिल, पौधा, वन, वृक्ष आदि। "सागर" के प्रति उनका आकर्षण कालिदास तथा जयशंकर प्रसाद की याद दिलाता है। वे कहते है

1) मैंने देखा एक बूँद सहसा उछली सागर के झाग से

2) खुल गयी नाव संझा, सूरज डूबा सागर तीरे।

3) जब-जब सागर में मछली तड़पी तब-तब हमने उसकी गहराई को जाना।

4) मटियाया सागर लहराया।

तरंग की पंखयुक्त वीणा पर पवन ने भर उमंग से गाया
फेन झालरदार मखमली चादर पर मचलती किरण अप्सराएँ भारहीन पैरों से थिरकीं।

अज्ञेय के काव्य में सागर उन्मुक्तता, विराटता, विशालता, मर्यादा, गहराई, आत्म-विस्तार का प्रतीक है और सागर में उछलती मछली अस्तित्व आकांक्षा और जिजीविषा का प्रतीक। क्योंकि —

"अर्थ हमारा जितना है, सागर में नहीं, हमारी मछली में है
सभी दिशा में सागर जिसको घेर रहा है।"

मछली, अज्ञेय का प्रिय प्रतीक है, जल से बाहर निकालते ही वह तड़पती है। यह मछली जीना और जीवन दोनों का प्रतीक है। अज्ञेय की एक प्रसिद्ध कविता है — "सोन मछली"। यह कविता आलोचकों को वाद-विवाद के लिए पसंद रही है और अज्ञेय को जीवनदर्शन की अभिव्यक्ति के लिए।

हम निहारते रूप/काँच के पीछे/हाँप रही मछली/
रूप तृषा भी/और काँच के पीछे/है जिजीविषा।

मुक्ति और जीने की लालसा की प्रतीक छवियाँ अज्ञेय में हर जगह चमकती-दमकतीं मिलतीं हैं। अज्ञेय में खोज का अर्थ है — मानवीय गरिमा और स्वतंत्रता की खोज। मछली को सागर घेरता है और "हारिल" की वाचालता को मौन घेरता है। पर हर सामाजिक वर्जना के विरोध में अज्ञेय की कविता विद्रोह करती है। स्वयं अज्ञेय विद्रोही रूप में प्रसिद्ध रहे हैं, प्रकृति उन्हें बन्धनों से खोलती है। मौन भी कहता है —

कहा सागर ने चुप रहो। मैं अपनी अबाधता जैसे सहता हूँ अपनी मर्यादा तुम सहो।
मौन भी अभिव्यंजना है, जितना तुम्हारा सच उतना ही कहो, कहा नदी ने भी।

"नदी" अज्ञेय काव्य का प्रिय प्रतीक रही है। जिसका प्रतीकार्थ है — परम्परा, प्रवाह, निरन्तरता, सदानीरा, जीवनदामिनी, इतिहास, स्मृति आदि। नदी प्रतीक के अनगिनत अर्थ उनकी कविता में मौजूद हैं। वे प्रार्थना करते रहे हैं —

नदी तुम बहती चलो।
भूखंड से जो दाय हमको मिला है मिलता रहा है
माँजती संस्कार देती चलो।

(नदी के द्वीप)

नदी, सागर, चाँद, साँझ, वृक्ष, पौधा, वसंत, हेमन्त, पर्वत, गाँव, फूल, चिड़िया जैसे सैंकड़ों प्रतीक इस काव्य-सर्जना का सौन्दर्य है, पर इन प्रतीकों के प्रति उनका अनुराग रहस्यवादी अनुराग नहीं है। इनमें प्रकृति के मुक्त साहचर्य, सहयोग का भाव है जो यांत्रिकता, शहरी जीवन की भीड़-संस्कृति के विरोध से जन्मा है। वे नगर सभ्यता पर व्यंग्य करने के लिए "साँप" जैसे प्रतीक का प्रयोग करते हैं। यौन प्रतीकों को भी अज्ञेय ने भाव-परिष्कार की दिशा दी है — कारण "आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन वर्जनाओं का पुंज है"। (तार सप्तक) इस कुंठित व्यक्ति को मुक्त करना है—इसे हरी घास, धूप, चाँदनी का अर्थ समझाना है। वे पौधे से गरमाई, मिठास, हरियाली, उल्लास, गंध, मुक्त खुलापन सभी कुछ माँगते हैं। इस काव्य में यायावरी मुद्रा की अधिकता ही नहीं है, यायावरी भाव-प्रतीक बहुत हैं। यही यायावर भाव कहता है —

अच्छी कुंठारहित इकाई साँचे ढले समाज से
अच्छा अपना साज़ फकीरी मँगनी के सुख साज से।

(अरी ओ करुणा प्रभामय)

मेघ, ज्वार, निदाघ, रावण-अहिल्या, राम, गरुड़, नृत्यरत मयूर, पशु, चातक, केकी, क्रौंच, कीर, हारिल, गुलाब, पलास, मधुमालती, कचनार, टेसू आदि सभी प्रतीक बनकर आये हैं। नयी कविता में प्रतीकों का इतना बड़ा स्रष्टा कोई दूसरा कवि नहीं है।

28.4.4 उपमान योजना

"उपमान" में "अप्रस्तुत" से ज्यादा व्यापक अर्थ है। अलंकार योजना के अन्तर्गत उपमेय-उपमानों में उपमान का विशिष्ट महत्व है। नया भाव, नया उपमान खोजता है और नया उपमान नए सौन्दर्य बोध को जन्म देता है। उपमानों से ही सर्जना नयी होती है, यह जानते और मानते हुए अज्ञेय ने नए उपमानों के लिए जोरदार आंदोलन ही खड़ा कर दिया। इस संबंध में उनकी प्रसिद्ध कविता "कलगी बाजरे की" नए उपमानों की महत्व-प्रतिष्ठा का घोषणा-पत्र ही बन गई। इस कविता ने निरंतर प्रयोग से पुराने उपमानों के घिस जाने की चर्चा को केन्द्र में रखा और कहा कि निरंतर उपयोग से परम्परागत उपमानों का अर्थ सौन्दर्य नष्ट हो जाता है तब कवि को नवीन अनुभव-अनुभूति के लिए नए उपमानों की आवश्यकता पड़ती है। यदि कवि प्रेयसी को "ललाते नभ की अकेली तारिका" या शरद के भोर की

नीहार न्हाई टटकी कली" नहीं कहता तो इसका कारण यह नहीं है कि उसके हृदय में प्रेम नहीं है या प्रेम की धनता कम हो गई है या विकृति आ गई है। कारण है —

> ये उपमान मैले हो गए हैं,
> देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच --
> कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।

नए उपमान या अप्रस्तुत को लाकर कवि ने अपनी प्रेयसी का रूप-बिंब "हरी बिछली घास हो तुम" या "शरद के सांझ के सूने गगन की पीठिका पर दोलती कलगी अकेली बाजरे की" कहा है। इसी प्रकार अज्ञेय ने अपने समस्त काव्य में नए उपमानों का प्रयोग किया है। परम्परागत उपमानों को लाने में वे हिचके नहीं हैं पर परम्परागत उपमानों का भी नए ढंग से नया संस्कार कर दिया है। "इत्यलम्" काव्य-संग्रह में झंझा, सांध्य रश्मि, तारा, निकुंज, उच्छवास आदि बहुत से पुराने छायावादी उपमान आए हैं। कहना न होगा कि अज्ञेय की उपमान योजना, अर्थ-व्यंजक, एवं नवीन संवेदना के सम्प्रेषण के लिए महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

28.4.5 छंद एवं लय

अज्ञेय छंदों की शास्त्रबद्ध परिपाटी के खिलाफ खुला विद्रोह करते हैं। उनके अनुसार "छंद का अर्थ केवल तुक या बँधी हुई समान स्वर मात्रा या वर्ण संख्या नहीं है।" छंद भाव योजना को संगठित करने और नियंत्रित करने का काम करता है। छापाखाने के आविष्कार के युग से पहले कविता वाचिक परम्परा की चीज थी। वह गाकर सुनाने से याद हो जाती थी। इसीलिए वह "श्रव्यकाव्य" कहलाती थी। पर मुद्रण युग ने नयी स्थिति उत्पन्न कर दी। अब कविता विराम-संकेतों, चिह्नों से छपने और पढ़ी जाने लगी। इस क्रिया में कान का काम आँख से ज्यादा लिया जाने लगा। फलतः आज की कविता "पाठ्य कविता" होकर अपनी इन्द्रिय बदल रही है। कविता के इस इन्द्रियगत बदलाव का कविता की छंद योजना, वाक्य गठन, रूप-संरचना, यति-गति विस्तार, व्याकरणिक-ढाँचे पर गहरा प्रभाव पड़ा है। मुद्रित कविता में मनोगत भावों की मनोभूमिका को स्पष्ट करने के लिए विराम-संकेतों, मौन लकीरों, चिह्नों का प्रयोग बढ़ गया है। अज्ञेय अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिए कोलन, कोमा, विस्मयबोधक चिह्न, उद्धरण, पंक्तियों के बीच गैप तथा अनेक प्रकार के विराम-चिह्नों का उपयोग करते हैं ताकि उनका मूल भाव मूर्त हो सके, पाठक तक पहुंच सके। एक सीमा तक अज्ञेय ने परम्परागत छंद शास्त्र से काव्य को मुक्ति दी है या नए छंदों के "अर्थलय", "नादलय", "गद्यलय", "भाव की आन्तरिकलय" वाले छंद प्रयोग किए हैं। उनके छंद भाषा की ध्वनियों का संगठन करते हैं साधारण बोलचाल की गद्यलय को अपनाते हैं और अभिप्रेत को उनमें भर देते हैं। लय को अज्ञेय आदर देते हैं और 'भाव-लय' की पकड़ को कविता की सिद्धि मानते हैं। अज्ञेय ने "मुक्त छंद" की मुक्त लय को सच्चा अर्थ "असाध्यवीणा" जैसी लंबी कविता में दिया है। लोक-धुनों लोक-लयों के आधार पर अज्ञेय ने नए गीत लिखे हैं — उनका एक गीत —

> ओ पिया पानी बरसा
> ओ पिया पानी बरसा।
> घास हरी हुलसानी —
> मानिक के झूमर सी —
> झूमी मधुमालती
> झर गए जीते पीत अमलतास
> चातक की वेदना विरानी

लोक गीतों की जिस अदा को केदारनाथ अग्रवाल, भवानीप्रसाद मिश्र आदि ने उठाया है उसकी एक अदा का नाम अज्ञेय भी है।

बातचीत का लय को हू-ब-हू कविता में उतराने के लिए अज्ञेय भाषा की तद्भावना-देशजता में पूरी तरह डूबकर "अकेली न जैयो राधे जमुना के तीर" जैसी कविता में नर-नारी संवाद का कौशल दिखा सकते हैं। गद्य की लय को ठीक से लहजे में बांधकर रच सकते हैं —

> "उस पार चलो ना! कितना अच्छा है नरसल का झुरमुट"

"आन्तारक भाव, संगीत की लय को कविता में उतारने में अज्ञेय को भारतेन्दु, श्रीधर पाठक, निराला, पन्त जी, केदारनाथ अग्रवाल जैसी सफलता मिली है। वाक्य व्यवस्था जहां टूटी-फूटी है वहां आधुनिक जीवन की टूट-फूट का भाव ही व्यक्त हुआ है। यदि इन छंदों में संगीत-संगति की कमी है तो आज के सामाजिक-राजनीतिक जीवन में ही तुक, व्यवस्था और संगति कहाँ है? अव्यवस्था अज्ञेय की अधिकांश कविताओं — गीतों में मिलती है। उसका कारण हमारी सामाजिक अव्यवस्था में ही खोजा जाना चाहिए।

बोध प्रश्न 3

i) अज्ञेय के अभिव्यंजनाशिल्प की विशेषताएँ चार-पाँच वाक्यों में निरूपित कीजिए।

....

....

....

....

....

ii). अज्ञेय की काव्य-भाषा की पाँच विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

....

....

iii) अज्ञेय के बिंब विधान की सात पंक्तियों में चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

iv) अज्ञेय के प्रिय प्रतीक कौन से है? उनके प्रकृति संबंधी प्रतीकों की मूल प्रवृत्ति पर संक्षेप में लिखिए।

....

....

....

....

v) 'अज्ञेय की उपमान में नयापन है'। इस कथन पर साथ-आठ वाक्यों में विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

28.5. काव्य वाचन और संदर्भ सहित व्याख्या

काव्य वाचन

कलगी बाजरे की

हरी बिछली घास।
दोलती कलगी छरहरी बाजरे की।
अगर मैं तुम को ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता,
या शरद के भोर की नीहार-न्हायी कुँई,
टटकी कली चम्पे की, वगैरह तो
नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है।

बल्कि केवल यही : ये उपमान मैले हो गये हैं।
देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच।

कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।
मगर क्या तुम नहीं पहचान पाओगी :
तुम्हारे रूप के — तुम हो, निकट हो, इसी जादू के —
निजी किस सहज, गहरे बोध से, किस प्यार से मैं कहा रहा हूँ —
अगर मैं यह कहूँ —

बिछली घास हो तुम
लहलहाती हवा में कलगी छरहरी बाजरे की?

आज हम शहरातियों को
पालतू मालंच पर सँवरी जुही के फूल से
सृष्टि के विस्तार का — ऐश्वर्य का — औदार्य का —
कहीं सच्चा, कहीं प्यारा एक प्रतीक
बिछली घास है,
या शरद की साँझ के सूने गगन की पीठिका पर दोलती कलगी अकेली
बाजरे की
और सचमुच, इन्हें जब-जब देखता हूँ
यह खुला वीरान संसृति का घना हो सिमट आता है —
और मैं एकान्त होता हूँ समर्पित।

शब्द जादू हैं —
मगर क्या यह समर्पण कुछ नहीं है?

शब्द और सत्य

यह नहीं कि मैंने सत्य नहीं पाया था
यह नहीं कि मुझको शब्द अचानक कभी-कभी मिलता है :
दोनों जब-तब सम्मुख आते ही रहते हैं।
प्रश्न यही रहता है :
दोनों जो अपने बीच एक दीवार बनाये रहते हैं
मैं कब, कैसे, उनके अनदेखे
उसमें सेंध लगा दूँ
या भरकर विस्फोटक
उसे उड़ा दूँ।

कवि जो होंं, जो कुछ करते हैं करें,
प्रयोजन मेरा बस इतना है —
ये दोनों जो
सदा एक-दूसरे से तनकर रहते हैं,
कब, कैसे, किस आलोक-स्फुरण में
इन्हें मिला दूँ—
दोनों जो हैं बन्धु, सखा, चिर सहचर मेरे।

संदर्भ सहित व्याख्या

अब आप अज्ञेय की काव्य प्रवृत्तियों से परिचित हो चुके हैं। यहाँ पर पाठ्यक्रम में निर्धारित कविताओं के महत्वपूर्ण काव्यांशों की संदर्भ-प्रसंग सहित व्याख्या की जा रही है :

उद्धरण 1

यह नहीं कि मैंने सत्य नहीं पाया था
यह नहीं कि मुझको शब्द अचानक कभी-कभी मिलता है :
दोनों जब-तब सम्मुख आते ही रहते हैं।
प्रश्न यही रहता है :
दोनों जो अपने बीच एक दीवार बनाये रहते हैं
मैं कब, कैसे, उनके अनदेखे
उसमें सेंध लगा दूँ
या भरकर विस्फोटक
उसे उड़ा दूँ।

कवि जो हों, जो कुछ करते हैं करें,
प्रयोजन मेरा बस इतना है—
ये दोनों जो
सदा एक-दूसरे से तनकर रहते हैं,
कब, कैसे, किस आलोक-स्फुरण में
इन्हें मिला दूँ —
दोनों जो हैं बन्धु, सखा, चिर सहचर मेरे।

संदर्भ : प्रस्तुत पद्यांश "शब्द और सत्य" शीर्षक कविता से लिया गया है। इसके रचयिता अज्ञेय जी हैं।

प्रसंग : प्रयोगवादी तथा नयी कविता में अज्ञेय जी शब्द के सबसे बड़े पारखी माने जाते हैं। सही शब्द की तलाश ही सर्जन-समस्या की मूल जड़ है। कविता में उनकी खोज भाषा की खोज नहीं है, शब्द की खोज है। कारण गद्य भाषा में लिखा जाता है और पद्य शब्द में। भारतीय परम्परा एक स्वर से मानती रही है कि कविता शब्द-विधा है। शब्द में अर्थ देश और काल भरता है और उसके बदलते ही शब्द का अर्थ बदल जाता है। निरंतर प्रयोग से शब्द घिस जाते हैं, उनका चमत्कार मर जाता है। कवि की समस्या शब्द मे फिर नया अर्थ चमत्कार पैदा करने की होती है।

व्याख्या : काव्य की रचना-प्रक्रिया में शब्द की तलाश और उसके संदर्भ सामाजिक संस्कार, ध्वनि, लय आदि पर कवि को जाने-अनजाने ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है। यह नहीं कि उसे समय और जीवन के समग्र सत्य को व्यक्त करने वाले शब्द नहीं मिलते हैं, यह भी नहीं कि मैं सत्य से साक्षात्कार नहीं करता हूँ। वस्तुस्थिति यह है एक रचना कर्म में शब्द और सत्य दोनों से सामना होता है, पर सर्जक मन के सामने प्रश्न यही रहता है कि दोनों जो एक दीवार बनाये या दूरी रखते हैं, मैं कब, कैसे अनजाने में उसे दीवार में सेंध मारकर या विस्फोटक प्रतिभा से दीवार तोड़कर दोनों को मिला दूँ। दोनों में अद्वैत-एकरूपता उत्पन्न कर दूँ। मैं अपने को कवि नहीं कहता, न कवि होने का दम्भ है पर इतना उद्देश्य अवश्य है कि शब्द और सत्य जो सदा एक-दूसरे से तनकर चलते हैं, या मेल नहीं करते हैं। कब किस तरह सर्जनात्मक प्रतिभा के स्फुरण के साथ इनमें मेल करा दूँ या अद्वैतता स्थापित कर दूँ। क्योंकि यही तो कवि की सृजन-शक्ति का सर्वस्व है — इनसे बन्धु, सखा तथा चिर सहचर का भाव रचनाकार रखता है। रचनाकार की शब्द के प्रति यह आत्मीयता ही हृदय-संवाद स्थापित कर सकती है।

विशेष

1) यह कविता "अरी ओ करुणा प्रभामय" नामक काव्य-संग्रह से है।
2) शब्द और शब्द की आत्मा का ज्ञान ही कृतिकार को कृती बनाता है। इसलिए शब्द-साधना ही काव्य-साधना है।
3) इस कविता में अज्ञेय ने अपने काव्य-प्रयोजन की दृष्टि को स्पष्ट किया है कि वे शब्द में सत्य का आलोक भरना चाहते हैं।
4) भारतीय परम्परा में "कवि" शब्द का अर्थ है — सृष्टा, द्रष्टा, विधाता ईश्वर आदि। "अपारे काव्य संसारे कविरेव प्रजापति।"
5) शब्द को ब्रह्म कहा गया है। काव्य शब्द है और अन्त में यही बात बच जाती है कि काव्य शब्द है।
6) सर्जन-प्रक्रिया के दौरान कवि जिस मानसिकता से गुजरता है उस स्थिति का संकेत है।
7) भाव की अर्थ लय का शब्दों में संकेत दिया गया है।

उद्धरण 2

हरी बिछली घास।
दोलती कलगी छरहरी बाजरे की।

अगर मैं तुम को ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता,
या शरद के भोर की नीहार-न्हायी कुंई,
टटकी कली चम्पे की, वगैरह तो
नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है।

बल्कि केवल यही : ये उपमान मैले हो गये हैं।
देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच।

कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।

संदर्भ : यह काव्य पंक्तियाँ "कलगी बाजरे की" शीर्षक कविता में से ली गई है। इसके रचनाकार अज्ञेय जी हैं।

प्रसंग : अज्ञेय जी की यह सर्वाधिक प्रख्यात कविता है। इस कविता में नए सौन्दर्य बोध में आने वाले बदलाव के कारणों की चर्चा की गई है। काव्य के रचनाकर्म में मौलिकता तथा नूतनता का प्रश्न नवीन उपमानों से जुड़ा है। जिस

प्रकार प्राचीन परम्परागत उपमान निरन्तर प्रयोग में आने के कारण घिस जाते हैं उनका अर्थ-सौन्दर्य अपनी ताजगी, जीवन्तता खो देता है। नया कवि अपनी नवीन सौन्दर्य चेतना के अनुरूप नए उपमानों को खोलता है और उनमें नए भाव का राग-सत्य का नया आकर्षण पैदा करना चाहता है। नवीन सर्जनात्मक कल्पना नवीन बिंब योजना से भाव का विकास करती है। कवि अपनी प्रेयसी को इस कविता में नए भावों-बिंबों उपमानों से सम्बोधित करता है।

व्याख्या : कवि अपनी प्रेयसी को नए सौन्दर्य की छवि के रूप में तृप्तिदायक "हरी बिछली घास" कहना पसंद करता है क्योंकि यह सम्बोधन प्रेमिका के रूप सौन्दर्य की ताजगी का चित्र मूर्त कर देता है। या फिर प्रेयसी को वह छरहरी बाजरे की दोलती कलगी कहना पसंद करता है। बाजरे का हरापन और कलगी की कोमल शोभा अनुपम है। इसीलिए नया कवि अपनी प्रेयसी को छायावादी कवियों की भांति "ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका" नहीं कहता, न ही वह शरद के भोर की ओस भरी कुँई या चम्पे की टटकी कोकली आदि कहना चाहता है। वह स्पष्टता से कहता है कि पुराने उपमानों को न लाने का अर्थ यह नहीं है कि उसके प्रेम में कोई कमी आ गई है, हृदय दर्पण की स्वच्छता पर मैल जम गया है, बल्कि मूल बात यह कि पुराने उपमान अधिक प्रयोग से घिस गए हैं, उन प्रतीकों में अब नए अर्थ भरने की शक्ति ही नहीं रही है। देवता कूच कर गए अर्थात् शक्ति चली गई। पुराने उपमानों की शक्ति ऐसे समाप्त हो गई है जैसे बर्तन को बार-बार आग पर चढ़ाने, उपयोग मे लाने से उसकी कलई उतर जाती है और फिर मांजने पर भी वह गँदला ही दिखाई देता है। अतः जब तक उस बर्तन पर नई कलई न की जाए उसमें चमक नहीं आती है।

विशेष

1) यह कविता नयी कविता की सिद्धांत दृष्टि प्रस्तुत करती है कि परंपरागत उपमानों को त्यागकर नवीन उपमानों के ग्रहण की आवश्यकता है।
2) अज्ञेय रोमानी बिंबों को छोड़कर नए भाव बोध के अनुकूल नए बिंबों के सृजन पर बल देते हैं। "हवा में लहलहाती छरहरी कलगी बाजरे की" आज के अनुभव के अधिक निकट है तथा युवती के छरहरे व्यक्तित्व, कोमल, देह गठन, रूप क्रांति की ताजगी के लिए यह नया उपमान एकदम अनुकूल है।
3) बुद्धि प्रेरित उपमानों की तलाश "कलगी बाजरे की" का बिंब है। "चम्पे की कली" मे पुरानी कल्पना की या "नीहार न्हाई कुँई" में भारतीय कवियों की रमणीय कल्पना लिपटी हुई है — जिनके संचित प्रभाव से वह इन फूलों के साथ युवती को मिलाकर मनोहर भाव से छबियाँ उत्पन्न करता रहा है।
4) इसी ढंग से रूढ़ उपमानों की निंदा करते हुए रीतिमुक्त धारा के कवि ठाकुर ने लिखा था "सीखि लीन्हों मीन मृग खंजन कमल नैन"। नतीजा यह है कि कविता का सौन्दर्य नष्ट हो रहा है और कविता तमाशा बन गई है—"लोगन कवित कीन्हों खेल करि जानौ है"।
5) मुक्त छंद की भावानुकर्तनी लय में यह कविता काफी आकर्षक है।
6) नए उपमानों से ही कविता में मौलिकता तथा नवीनता आती है यह बात व्यवहार में सिद्ध भी है।

28.6 मूल्यांकन

हिंदी की आधुनिक काव्य-धारा में, भारतेन्दु, श्रीधर पाठक, जयशंकर प्रसाद, निराला जी की दिशा-दृष्टि को सांस्कृतिक संवेदन और संस्कार के साथ रचनात्मकता में ढ़ालने वालों में अज्ञेय का नाम स्मरणीय है। वे हमारी परम्परा की आधुनिकता है, तथा काव्य भाषा की रचनात्मक सम्भावनाओं को भारतीयता के मूल स्रोतों से जोड़ने वाले रचनाकार। टी.एस. इलियट, डी.एच. लारेन्स तथा पश्चिम के चिंतकों से प्रभावित होने पर भी अज्ञेय की मूल काव्य संवेदना, काव्य मूल्य-दृष्टि एकदम भारतीय है। वे वस्तु और शिल्प के नए से नए प्रयोगों से हिंदी कविता को समर्थ और सक्षम बनाते हैं। नवीन प्रवृत्तियों, नवीन आंदोलनों की अगुवाई करने के कारण उनके सृजन का ऐतिहासिक महत्व है। कहना न होगा कि मुक्तिबोध बाहर से नयी कविता को और अज्ञेय भीतर से नयी कविता को नया सौन्दर्य बोध देते हैं। मार्क्सवादी मुक्तिबोध और मनोविश्लेषणवादी अज्ञेय दोनों का काव्य-व्यक्तित्व मिलकर ही नयी कविता को भरा पूरा बनाता है। अज्ञेय को व्यक्तिवादी-क्षणवादी, भोगवादी कहकर आभिजात्यवादी भी सिद्ध किया गया है, पर इन आरोपों से वे बाहर के कवि हैं। छायावादोत्तर कविता में अज्ञेय का काव्य-चिंतन एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है और काव्य-सृजन नवीन भाव-बोध की सशक्त अभिव्यक्ति है।

28.7 विचार-संदर्भ और शब्दावली

तार सप्तक (1943) : सम्पादक अज्ञेय। सात कवि हैं — गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा और अज्ञेय। प्रयोगवाद की आधारभूत दस्तावेज।

नव्य रहस्यवाद : ईश्वर की ओर न जाकर जीवन-जगत् की जिज्ञासा का आत्मदर्शन।

साधारणीकरण : भारतीय रस-सिद्धांत में रस निष्पत्ति के भीतर इस सिद्धांत का जन्म। साधारणीकरण का अर्थ है — विशेष का सामान्य हो जाना। वैयक्तिक भाव का निर्वैयक्ति हो जाना।

अस्तित्ववाद : द्वितीय विश्वयुद्ध (1939-1942) के पश्चात् पश्चिम में पैदा होने वाला अनास्थावादी दर्शन। इसे हेडेगर, कामू, सार्त्र, नीत्से जैसे दार्शनिकों ने बढ़ावा दिया।

बिंबवाद : अंग्रेजी साहित्य का "इमेजिस्ट मूवमेंट। 1913 ई. में एफ.एल. फ्लिंट ने "बिंववाद" शीर्षक एक टिप्पणी लिखी। एरापाउण्ड ने सिद्धांत रूप में चर्चा की।

प्रतीकवाद : पश्चिम का "सिम्बालिस्ट मूवमेंट" जिसे रेम्बों, मलार्मे ने स्थापित किया।

वाचालता : असंयम, चपलता।

वाचिक परम्परा : इस परंपरा में शिष्य सुनकर याद रखते थे। भारत में लम्बे समय तक काव्य-गायन की परम्परा रही। जिसे मुद्रण-कला के आविष्कार ने धक्का दिया।

भावावेग : छायावादी कविता का एक दोष। भाव के आवेग में बह जाना।

गैर-रोमांटिक : रोमांटिक काव्य की दृष्टि से छूटने की दिशा। रोमांटिक भाव-बोध में अतिशय भावुकता तथा कल्पनातिरेक रहता है।

28.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

रामस्वरूप चतुर्वेदी : *अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या* : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।

नन्द किशोर आचार्य : *अज्ञेय की काव्य तितीर्षा* : सूर्य प्रकाशन, मंदिर बीकानेर।

नामवर सिंह : *कविता के नए प्रतिमान* : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

रमेशचन्द्र शाह : *वागर्थ*, सम्भावना प्रकाशन, हापुड़।

स.ही. वात्स्यायन : *आत्मपरक*, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, नयी दिल्ली।

28.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) देखिए 29.2

ii) देखिए 28.3

iii) "चिंता", "भग्नदूत", "इत्यलम्"।

iv) प्रयोगवादी तथा नयी कविता के कवि।

v) अज्ञेय ने सन् 1943 ई. में सात कवियों की कविताओं का एक काव्य संकलन सम्पादित किया। इस काव्य-संकलन का हिंदी काव्य में ऐतिहासिक महत्व है। इसने "प्रयोगवाद" की प्रतिष्ठा की।

vi) देखिए 28.2

बोध प्रश्न 2

i) अज्ञेय की काव्य यात्रा का आरंभ छायावाद युग के उत्तरार्ध से हुआ। देखिए 28.5

ii) देखिए 28.6

iii) देखिए 28.7

iv) नव्य रहस्यवाद, 28.8

v) देखिए 28.9

vi) देखिए 28.13

vii) देखिए 28.12

बोध प्रश्न 3

i) अज्ञेय के अभिव्यंजना शिल्प में शिल्प शब्द "फार्म" या "टेकनीक" से ज्यादा व्यंजक अर्थ रखता है।

ii) देखिए 28.4.1

iii) देखिए 28.4.2

iv) देखिए 28.4.3

v) देखिए 28.4.5

इकाई 29 गजानन माधव मुक्तिबोध

इकाई की रूपरेखा

29.0 उद्देश्य
29.1 प्रस्तावना
29.2 जीवन परिचय और कृतित्व
29.3 युगीन पृष्ठभूमि
29.4 अन्तर्वस्तु
  29.4.1 साहित्य संबंधी विचार
  29.4.2 कविताओं में व्यक्त राजनीति
  29.4.3 सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति
  29.4.4 भीतरी और बाहरी संघर्ष का चित्रण
29.5 संरचना शिल्प
  29.5.1 काव्य रूप और शैली, प्रतीक योजना
  29.5.2 बिंब तथा आद्य बिंब, काव्य-भाषा
29.6 काव्य-पाठ एवं व्याख्या
29.7 सारांश
29.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
29.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

29.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- गजानन माधव मुक्तिबोध के जीवन परिचय एवं कृतित्व के बारे में जान सकेंगे,
- मुक्तिबोध की युगीन पृष्ठभूमि की संक्षिप्त जानकारी हासिल करेंगे,
- मुक्तिबोध के काव्य की अन्तर्वस्तु और कथ्य को समझ सकेंगे,
- मुक्तिबोध के काव्य रूप और शैली, प्रतीक योजना, बिंब तथा आद्यबिंब तथा काव्य-भाषा के बारे में जान सकेंगे।

29.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में आपने नयी कविता के प्रमुख कवि अज्ञेय का अध्ययन किया था। इस इकाई में आप नयी कविता की प्रगतिशील धारा के कवि मुक्तिबोध का अध्ययन करेंगे। मुक्तिबोध को दुनियावी अर्थों में "जीने का तरीका" कभी नहीं आया। इसलिए वे कभी इस काबिल नहीं हो सके कि रोजी-रोटी का सही जुगाड़ कर पाते। पुराने प्रगतिवादी आंदोलन ने भी उन्हें नहीं स्वीकारा। कारण, वे ऐसी कविता लिख ही नहीं सकते थे जिसके कंगूरों पर लाल रूमाल या किसान-मजदूर की घोषित तस्वीरें सजी हुई हों। और उस समय प्रगतिवाद इसी घोषित नारे का शिकार हुआ पड़ा था। मुक्तिबोध गहरे अन्तर्द्वंद्व और तीव्र सामाजिक अनुभूतियों के कवि हैं ··· यह हमारे समाज का दुर्भाग्य ही है कि जीते-जी मुक्तिबोध को सम्मान, इज्जत, पहचान जो कुछ भी नहीं मिला जिसके वे हकदार थे। उन्हें पहचानने वाले लोग थे किन्तु वे सत्तासीन नहीं थे, ईमानदार थे ··· फलतः व्यक्ति की या एक साहित्यकार की पहचान के रास्ते, जो पूँजीवादी समाज में सत्ता के गलियारों, पैसों और मीडिया की चकाचौंध से होकर जाते हैं, मुक्तिबोध को न स्वीकार्य थे, न प्राप्त। जिस व्यवस्था के खिलाफ वे सीना तानकर खड़े थे, उसके चक्कर वे कब भी कैसे सकते थे;

मुक्तिबोध को जानने-समझने की शुरुआत उनकी मृत्यु और पहले काव्य संग्रह "चाँद का मुँह टेढ़ा है" के प्रकाशन के बाद हुई। इस शुरुआत में बड़े-बड़े दिग्गज प्रगतिशील आलोचक भी न तो मुक्तिबोध के व्यापक गहरे सरोकारों को समझ पाए और न ही उनके काव्य का सही विश्लेषण ही हो पाया। उन पर दुरुह, रहस्यवादी, कंफ्यूज्ड, जैसे आरोप चस्पा किए जाते रहे ··· किन्तु मुक्तिबोध का काव्य एक चुनौती की तरह सामने खड़ा रहा। आज मुक्तिबोध को समझना, उनके काव्य में से गुजरना एक भयानक, त्रासद अनुभव है क्योंकि इस अनुभव का साक्षात्कार करने के बाद व्यक्ति पूँजीवादी व्यवस्था की बर्बरता का, उसके शोषण का और व्यक्ति की मानसिकता को कुंद करते जाने के तरीकों से नंगा साक्षात्कार करता है और यह साक्षात्कार भयानक और त्रासद ही हो सकता है।

मुक्तिबोध के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने एक ही लम्बी कविता लिखी है या उनके कथ्य में कोई विविधता नहीं है या उनकी कविताएं पढ़ते हुए एकरसता का बोध होता है। यह बात इस रूप में सही है कि मुक्तिबोध ने अपना मोर्चा पूँजीवादी, साम्राज्यवादी शक्तियों और व्यवस्था के किले के खिलाफ बनाया था। इस किले में घुस कर इस

व्यवस्था के भीतरी संसार को उजागर करना और उसके प्रति जनता को जागरूक करने का काम अपने-आप में इतना बड़ा, इतना कठिन और दुरुह था कि मुक्तिबोध इसके सिवा और दूसरा कोई शाश्वत मोर्चा संभाल ही नहीं सकते थे। कठिन, दुरुह, जटिल इस रूप में कि कविता में अपने समय के इतिहास के प्रश्नों को खोल कर रखना उपन्यास, कहानी की अपेक्षा जटिल और असंभव प्रायः होता है। और मुक्तिबोध ने इस असंभव को संभव बनाने का बीड़ा उठाया और कविता को भी हिंदी साहित्य में वो ऊँचाई दी जो उससे पहले सिर्फ निराला में मिलती है।

इस इकाई में सबसे पहले आप मुक्तिबोध के जीवन-परिचय और कृतित्व के बारे में संक्षिप्त जानकारी हासिल करेंगे। उसके बाद मुक्तिबोध को प्राप्त सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक परिस्थितियों की संक्षिप्त चर्चा की गयी है। अन्तर्वस्तु में आप मुक्तिबोध के काव्य की विशेषताओं का अध्ययन करेंगे। मुक्तिबोध ने काव्य लेखन के साथ-साथ साहित्य संबंधी सैद्धान्तिक चिंतन भी किया है। वस्तुतः मुक्तिबोध एक राजनीतिक कवि हैं — क्योंकि समाज को दिशा-निर्देश देने या उसे बनाने संवारने का सबसे बड़ा उपकरण राजनीति और राजनीतिक व्यवस्था ही होती है और मुक्तिबोध पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ खड़े हो कर उसके कारनामों से हमें परिचित कराते हैं और यह भी बताते हैं कि कैसी राजनीति और राजनीतिक व्यवस्था की हमें आवश्यकता है।

संरचना शिल्प में हम मुक्तिबोध के काव्य की कतिपय संरचनात्मक विशेषताओं — काव्य रूप, शैली, प्रतीक योजना, बिंब और काव्य भाषा का विश्लेषण करेंगे। अंत में काव्य पाठ और व्याख्या में आप मुक्तिबोध की दो कविताओं के दो अंशों का पाठ करेंगे और उनकी व्याख्या करना भी सीखेंगे। आइए मुक्तिबोध के जीवन परिचय की जानकारी हासिल करें।

29.2 जीवन परिचय और कृतित्व

गजानन माधव मुक्तिबोध का जन्म 13 नवम्बर, 1917 को श्योपुर, जिला मुरैना में हुआ था। इनके पिता माधवराव पुलिस में इंस्पेक्टर थे। माँ पार्वती पढ़ी-लिखी, भावुक और खुद्दार महिला थीं। महाराष्ट्रीय होने के कारण मुक्तिबोध की मातृभाषा मराठी थी किंतु उन्होंने हिंदी में लिखा। इनके भाई शरच्चंद्र माधव मुक्तिबोध मराठी के महत्वपूर्ण कवि हैं।

मुक्तिबोध के पिता उज्जैन में थानेदार थे। यहीं मुक्तिबोध की पढ़ाई हुई। उनके सहपाठी शांताराम को कुछ दिनों के बाद गश्त लगाने की नौकरी मिल गयी और मुक्तिबोध को उसके साथ रात भर गश्त देने में मज़ा आने लगा। रहस्य, चुप्पी और अनाम आतंक का वातावरण जो उनकी कविताओं में है, इन्हीं रात्रिकालीन मटरगश्तियों का रूपांतरण है।

मुक्तिबोध के पिता उन्हें वकील बनाना चाहते थे, किन्तु मुक्तिबोध की रुचि स्वतंत्रता संग्राम में और उससे उत्पन्न राजनीतिक स्थितियों में थी। जल्द ही वे माखनलाल चतुर्वेदी और वीरेन्द्र कुमार जैन, रमाशंकर शुक्ल जैसे कवियों के संपर्क में आ गये और साहित्यिक, दार्शनिक प्रश्नों से उलझने लगे। मार्क्स से फ्रायड और गांधी से दॉस्तायवस्की उनकी रुचि के विषय बन गये। धीरे-धीरे उनमें अपनी जनता के प्रति गहरी सहानुभूति और सामाजिक बदलाव की आकांक्षा पैदा होने लगी। इस समय वे 21 वर्ष के थे। इसी वर्ष मुक्तिबोध ने परिवार के विरोध के बावजूद प्रेम विवाह किया और सदियों के मानसिक बंधन तोड़ डाले। उसी वक्त उन्हें साधारण सी अध्यापक की नौकरी मिल गयी। इसी वर्ष प्रभाकर माचवे उज्जैन में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक हो कर आए, दोनों में गहरी मित्रता हो गयी। 1941 में माचवे जी की सहायता से मुक्तिबोध शारदा शिक्षा सदन में आये, जहाँ नेमिचन्द्र जैन, माचवे जी की ही वजह से पहले ही आ चुके थे।

मुक्तिबोध और नेमिचन्द्र जैन की दोस्ती हिंदी कविता के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसी दोस्ती की वजह से "तार सप्तक" (1943) का प्रकाशन संभव हुआ जिसमें सात युवा कवि संकलित थे। सम्पादक थे — अज्ञेय। इन्हीं कवियों ने कविता को एक नया मोड़ दिया, जिसे नयी कविता कहा जाता है।

बाद में नेमिचन्द्र कलकत्ता चले गये और मुक्तिबोध 'हंस' में काम करने बनारस। लेकिन वहाँ बिताए दो वर्ष उनके लिए प्रसन्नता के नहीं थे। उबाऊ और थका देने वाले काम के अलावा वे मध्य भारत के खुले आकाश के लिए तरसते थे इसलिए 1947 में हितकारिणी हाई स्कूल में पढ़ाने के लिए वे जबलपुर वापिस आ गए। सन् 1947 से 1964 में वेतनभोगी होने तक मुक्तिबोध मध्य प्रान्त में ही रहे। उन्होंने अपने जीवन में लगातार नौकरियाँ बदलीं। कभी प्रेस में प्रूफ रीडरी की, कभी आकाशवाणी में प्रसारण, कभी अखबार के संवाददाता बने और कभी साहित्यिक-मासिक का संपादन किया। अर्थात् आर्थिक रूप से वे हमेशा तंगहाली में ही रहे। सिर्फ जीवन के अंतिम वर्षों में 1959 में उन्हें राजनांद गाँव में व्याख्याता की नौकरी मिली. जब वे तुलनात्मक रूप से शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत कर पाने की कोशिश कर रहे थे लेकिन अस्वस्थ हो गये। स्थानीय चिकित्सा प्रभावकारी न होने पर उन्हें भोपाल लाया गया जहाँ लकवे ने उन पर आक्रमण कर दिया। कुछ हिंदी लेखकों के प्रयासों से तत्कालीन प्रधानमंत्री ने दिल्ली में उनकी चिकित्सा की व्यवस्था करायी. लेकिन वे अधिक दिन तक जीवित नहीं रह सके। 11 सितंबर, 1964 को अस्पताल में ही उनकी मृत्यु हो गयी।

मुक्तिबोध का जीवन विभिन्न स्तरों पर लगातार संघर्ष का जीवन रहा है। मार्क्सवादी विचारधारा और सामाजिक बदलाव के आंदोलन के प्रति उनकी प्रतिबद्धता ने उन्हें किसी ऐसी नौकरी से नहीं जुड़ने दिया, जहाँ अच्छा वेतन मिलता और उनकी आर्थिक तंगी दूर होती। अपनी निर्धनता से लड़ने और स्थितियों को बेहतर बनाने की उन्होंने कोशिशें कीं

लेकिन उनका आदर्शवाद और प्रतिबद्धता हमेशा आड़े आए। एक पत्र में नेमिचन्द्र जैन को उन्होंने लिखा था कि बिना पी-एच.डी. के उन्हें किसी कालिज में काम नहीं मिल सकता। वे केवल हिंदी के द्वितीय श्रेणी के एम.ए. थे।

जीवन के अंतिम काल में एक बार भाग्य ने उनका साथ दिया। एक छोटे प्रकाशक ने भारतीय इतिहास पर एक पाठ्य-पुस्तक तैयार करने के लिए उनसे संपर्क किया। मुक्तिबोध तैयार हो गये और अपनी मार्क्सवादी समझ के अनुसार उन्होंने एक पुस्तक तैयार कर दी। चयनकर्ता अक्सर पुस्तकें पढ़ कर स्वीकार नहीं करते, अतः यह पुस्तक भी स्वीकृत हो गयी। मुक्तिबोध को रॉयल्टी मिलने की आशा बँधी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। पुस्तक के कुछ अंशों को लेकर कठमुल्लों ने अखबारों में वावेला खड़ा कर दिया ··· पुस्तक पाठ्यक्रम से निकाल दी गयी। इससे मुक्तिबोध में असुरक्षा और भय की भावना घर कर गयी। इस निजी क्षति से उन्हें बहुत बड़ा धक्का पहुँचा। उनकी "अंधेरे में" कविता का परिप्रेक्ष्य यही समय है।

कृतित्व

मुक्तिबोध मूलतः कवि हैं किन्तु कविता के साथ-साथ अथवा अपनी कविता को और प्रखर बनाने के लिये उन्होंने कहानी, उपन्यास, आलोचना भी लिखी हैं।

काव्य संग्रह

- चाँद का मुँह टेढ़ा है (1964)
- भूरी-भूरी खाक धूल (1980)

कथा साहित्य

- काठ का सपना
- विपात्र
- सतह से उठता हुआ आदमी

आलोचनात्मक पुस्तकें

- कामायनी : एक पुनर्विचार
- नयी कविता का आत्मसंघर्ष
- नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र
- समीक्षा की समस्याएँ
- एक साहित्यिक की डायरी
- भारत : इतिहास और संस्कृति

29.3 युगीन पृष्ठभूमि

मुक्तिबोध के साहित्य और उनके व्यक्तित्व के निर्माण में उनके युग की राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। आइए, उस युग की परिस्थितियों या पृष्ठभूमि का आकलन करें।

राजनीतिक पृष्ठभूमि : मुक्तिबोध ने जब लिखना शुरू किया था, यह समय देश में स्वतंत्रता आंदोलन का समय था। दूसरा विश्व युद्ध, उसमें भारत की शिरकत, भारत छोड़ो आंदोलन, फिर देश के बंटवारे के साथ देश का आजाद होना आदि स्वतंत्रतापूर्व की महत्वपूर्ण राजनीतिक घटनाएँ थीं, इसके बाद कांग्रेसी नेताओं ने सत्ता संभाली, नेहरू युग का प्रारंभ हुआ, नेहरू जी ने समाजवाद लाने के अपने वायदे को दोहराया। देश के विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाएँ प्रारंभ हुईं, किन्तु जल्दी ही देश की जनता का अपने सत्ताधारियों से मोह भंग हो गया। वास्तव में जो आजादी हमें मिली, उस समय की परिस्थितियों में चाहें वो ठीक भी, किन्तु बाद की परिस्थितियों ने यही साबित किया कि हमें सिर्फ राजनीतिक आजादी प्राप्त हुई है, वास्तविक आज़ादी नहीं। क्योंकि देश की आम जनता की जो दारुण दशा अंग्रेजी काल में थी, कांग्रेसी युग में उसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। जाति प्रथा, भ्रष्टाचार और गरीबों का शोषण, अनपढ़ता जैसी बीमारियों को दूर करने का कोई इलाज किसी के पास नहीं था। फलतः राजनीतिज्ञों पर से जनता का विश्वास डिगने लगा। दूसरे विश्व युद्ध के बाद विश्व दो प्रमुख खेमों — समाजवादी और साम्राज्यवादी में बंट गया। और शीत युद्ध का दौर शुरू हुआ। साम्राज्यवादी शक्तियों का पुरोधा अमरीका था ··· उसने नव-स्वाधीन और आजादी के लिए संघर्ष कर रहे देशों में अपना प्रभुत्व स्थापित करने और वहाँ क्रांति की परिस्थितियों को खत्म करने के प्रयास जोरो-शोरों से शुरू कर दिये। फासिज्म, साम्राज्यवादी शक्तियों और पूँजीवादी शक्तियों के गठजोड़ न सिर्फ राजनीतिक रूप से सक्रिय हुए बल्कि इन्होंने भाषा, संस्कृति, धर्म जैसे नाजुक और किसी भी समाज के आधारभूत स्तंभों के जरिये अंध विश्वास, भ्रष्टाचार और अलगाववाद फैलाना शुरू कर दिया। यह सारे काम साम्राज्यवाद पैसा, हथियार और किसी भी देश में सांस्कृतिक, साहित्यिक, धार्मिक स्तर पर घुसपैठ करके करता है। भारत भी इसका अपवाद नहीं रहा। फासिज्म शक्तियाँ यहाँ भी सक्रिय थीं। और जनवादी शक्तियाँ कमजोर पड़ रही थीं। कम्युनिस्ट पार्टियों के आपसी झगड़े और कच्ची समझ ने जनवादी आंदोलन को आजादी के बाद मजबूत करने की बजाए कमजोर ही किया।

सामाजिक और साहित्यिक पृष्ठभूमि : आजादी से पूर्व जनता को विश्वास था कि यदि देश आजाद हुआ तो एक ऐसे समाज की रचना हमारे नेता करेंगे जिसमें रोटी-कपड़ा-मकान सबको मुहैय्या करवाया जाएगा, जाति, भाषा, रंग के

आधार पर किसी से कोई भेदभाव नहीं होगा। किन्तु यह सब आदर्श थे, यथार्थ तो यह था कि राष्ट्रीय आंदोलन के लगभग सभी नेता जिस वर्ग से आए थे, वो समाज का खाता-पीता वर्ग था ··· यह स्वाभाविक था कि वो समाज के उस वर्ग के और पूँजीपति वर्ग के हितों की सुरक्षा करें। आजादी के बाद की सामाजिक संरचना को यदि आप देखें तो आपको वर्गविभाजित समाज में एक ओर किसानों और मजदूरों की सामंती शोषण के तले पिसती हुई जाति मिलेगी, एक नया नौकरी पेशा मध्यम वर्ग मिलेगा और एक नव धनाढ्य और नेताओं का वर्ग मिलेगा। मतलब यह कि आजादी मिलने पर हमारी सामाजिक संरचना में कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं हुआ। शोषण बरकरार रहा। आजादी के दस वर्षों में ही लोगों का अपने नेताओं से मोहभंग हो गया। भ्रष्टाचार, शोषण, मूल्य विघटन की प्रक्रिया शुरू हो गयी। यही वह सामाजिक परिदृश्य था जो नयी कविता के कवियों और मुक्तिबोध को मिला।

आप छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद और नयी कविता के विषय में अध्ययन कर चुके हैं। मुक्तिबोध ने जब लिखना शुरू किया था तब छायावाद का युग समाप्त हो चुका था और प्रगतिवादी कवियों की विषयवस्तु पर अधिक से अधिक बल देती हुई प्रचारात्मक कविताएँ फूट रही थीं। बहुत से कवि इस प्रचार और कविता के सतहीपन से संतुष्ट नहीं थे। मुक्तिबोध उनमें से एक थे। वे अपना रास्ता स्वयं तलाश कर रहे थे। उनकी कविताएँ जटिल, संकुल प्रतीत होती थीं। "तारसप्तक" के कवियों में से वे एक थे।

"प्रयोगवाद", "तारसप्तक" के सात कवियों की रचनाओं को आधार बनाकर ही चला और "नयी कविता" में रूपांतरित हो गया। वस्तुतः "तारसप्तक" में ही दो काव्यधाराएँ अपने बीज रूप में स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। एक धारा है अज्ञेय की जो व्यक्ति और समाज में व्यक्ति को, कला, रूप और कला-विषय में कला रूप को, क्षण की अनुभूति को प्राथमिक मानती है और दूसरी धारा है मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, रामविलास शर्मा, शमशेर और रघुवीर सहाय की जो व्यक्ति और समाज को, विषय और रूप को द्वंद्वात्मक रूप में देखती है। इस प्रकार नयी कविता के प्रमुख कवि होते हुए भी मुक्तिबोध प्रगतिशील काव्य की उस धारा का प्रतिनिधित्व करते हैं जो काव्य को सीधे-सीधे आम जनता के सुख-दुख, शोषण की अभिव्यक्ति नहीं मानते अपितु उनके सुख-दुख, शोषण की जड़ों को तलाशने का वृहत्त कार्य करते हैं। मुक्तिबोध सत्य को एक स्तरीय नहीं मानते, न वो एक स्तरीय होता है — इसलिए उनकी कविता भी जटिल और लंबी होती गयी हैं। इस बात की हम आगे चर्चा करेंगे। यहाँ हम इसी बात की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं कि मुक्तिबोध को जो साहित्यिक पृष्ठभूमि मिली, उसमें सभी कवि प्रचलित काव्य-धाराओं से संतुष्ट न होकर अपना-अपना रास्ता तलाश कर रहे थे।

29.4 अन्तर्वस्तु

मुक्तिबोध के काव्य की अंतर्वस्तु जितनी व्यापक है, उससे ज्यादा गहरी है। अपनी रचनाओं के माध्यम से वे समाज जीवन और युग के जिस यथार्थ का साक्षात्कार करते हैं और जिसे अभिव्यक्त करते हैं, वह वस्तुतः जटिल, संकुल और इतना उलझा हुआ और षडयंत्रों से पटा हुआ है कि उसे सीधे-सीधे पकड़ पाना या अभिव्यक्त कर पाना मुक्तिबोध के लिए स्वभावतः ही संभव नहीं था। उनकी अन्तर्वस्तु में राजनीति की उलझी हुई, पेंचदार बाजियों, नेताओं के भ्रष्टाचार और इसकी जड़ें, समाज में रह रहे मध्यवर्गीय, बुद्धिजीवी व्यक्ति के मन के बाह्य और भीतरी संघर्ष, निरंतर विघटित होते मूल्यों के बीच में, जिंदा रहने की छटपटाहट में फंसे हुए जन तथा इसके साथ ही साहित्य, साहित्य से जुड़े हुए तमाम-तमाम सवाल भी हैं।

मुक्तिबोध ने साहित्य संबंधी सैद्धांतिक निबंधों द्वारा अपने जागरूक रचनाकार के प्रखर और संवेदनशील चिंतन को प्रस्तुत किया है। एक रचनाकार की रचना-प्रक्रिया क्या और कैसी होती है, उसे किन-किन कठिनाईयों, उलझनों का सामना करना पड़ता है, एक रचना में वस्तु एवं रूप का क्या संबंध होता है, साहित्यकार का समाज से क्या रिश्ता होता है, सामाजिक विकास में साहित्य की क्या भूमिका होती है, जनता का साहित्य किसे कहते हैं — इस तरह के सवालों से मुक्तिबोध अपने निबंधों में साक्षात्कार करते हैं।

आइए, उनके काव्य की अन्तर्वस्तु को विस्तार से देखें।

29.4.1 साहित्य संबंधी विचार

मुक्तिबोध ने अपने निबंधों में साहित्य संबंधी विचार प्रकट किए हैं। मुक्तिबोध के काव्य को समझने के लिये आवश्यक है कि साहित्य के प्रति उनकी क्या धारणाएं हैं, उन्हें समझ लिया जाए।

"जनता का साहित्य" किसे कहते हैं। शीर्षक लेख में मुक्तिबोध यह बताते हैं कि जनता का साहित्य क्या है? यह सवाल यहाँ इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि मार्क्सवादी और प्रगतिशील कवियों से अमूमन यह अपेक्षा की जाती है कि उनकी रचनाएँ या कविताएँ भाषा और शैली की दृष्टि से इतनी सरल हों कि वे आम जनता की समझ में आ जाएं। मुक्तिबोध मार्क्सवादी भी हैं और समझने के स्तर पर दुर्बोध भी। किन्तु यह विरोधाभास नहीं है। मुक्तिबोध का साहित्य जनता का साहित्य है, उसी प्रकार जैसे दास कैपिटल (मार्क्स) भी जनता का साहित्य है। अर्थात् जो साहित्य "जनता के जीवन मूल्यों को, जनता के जीवनादर्शों को प्रतिष्ठापित करता हो, उसे अपने मुक्तिपथ पर अग्रसर करता हो — जनता का साहित्य है।" साहित्य में सांस्कृतिक भाव होते हैं, सांस्कृतिक भावों को ग्रहण करने के लिये बुलंदी, बारीकी

और जटिलताओं को पहचानने के लिये पाठक को शिक्षित होना चाहिए, सुसंस्कृत होना चाहिए। साहित्य का उद्देश्य है — सांस्कृतिक और मानसिक परिष्कार। किन्तु यह परिष्कार तभी संभव है जब जनता इतनी शिक्षित हो कि उसे पढ़ सके, समझ सके। अतः जनता का साहित्य वो होता है जो जनता के लिये हो। अतः जनता का साहित्य वह नहीं होता जिसे जनता तुरंत समझ ले, वो भी होता है, जिसे वो अपनी अशिक्षित दशा के कारण समझ तो नहीं पाती, किन्तु यह उसी की भलाई के लिये कार्य करता है।

मुक्तिबोध ने रचना प्रक्रिया पर भी गहराई से विचार किया है। उनका मानना है कि प्रत्येक रचनाकार की अपनी-अपनी रचना-प्रक्रिया होती है, प्रत्येक विधा की रचना प्रक्रिया भिन्न होती है, किन्तु बुद्धि, भावना, कल्पना और माध्यम (शब्द, भाषा, चित्र आदि) एक समान यही तत्व होते हैं। मुक्तिबोध ने रचना-प्रक्रिया की चर्चा करते हुए इसके तीन क्षण माने हैं। कला का पहला क्षण है जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव क्षण। दूसरा क्षण है इस अनुभव का अपने कसते-दुखते हुए मूलों से पृथक हो जाना और एक फैंटेसी का रूप धारण कर लेना मानो वो फैंटेसी अपनी आँखों के सामने खड़ी हो। तीसरा और अंतिम क्षण है, इस फैंटेसी के शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया का आरंभिक क्षण और उस प्रक्रिया की परिपूर्णावस्था तक की गतिमानता।

मुक्तिबोध ने वस्तु एवं रूप पर भी विचार किया है। वे वस्तु को रूप से या रूप को वस्तु से अलग नहीं मानते। वस्तु जैसी होगी, जैसा विषय होगा, उसके रूप का निर्धारण वह वस्तु ही करेगी — या इन दोनों में द्वंद्वात्मक संबंध है।

मुक्तिबोध ने लगभग लंबी कविताएँ लिखी हैं। इसके बारे में उनका कहना है कि यथार्थ जो होता है, वो गतिशील होता है, उसके तत्व परस्पर गुंफित होते हैं। गतिशील यथार्थ को अभिव्यक्त करने में रचना भी लंबी से लंबी होती चली जाती है। मुक्तिबोध का मत है कि यह युग आवेगों या भावनाओं को अभिव्यक्ति देकर छुटकारा पाने का युग नहीं है बल्कि संवेदनात्मक ज्ञान को ज्ञानात्मक संवेदना से जोड़कर अभिव्यक्त करने का है। ऐसे में कोई भी अनुभव संवेदना के धरातल पर उद्वेलित होकर अभिव्यक्त नहीं होता बल्कि वह ज्ञान से जुड़ता है, विचारों से जुड़ता है और संपूर्ण जीवन-जगत से जुड़ता है — ऐसा अनुभव चाहे कितना ही आवेग भरा हो, वह विचार में परिवर्तित होगा ही। इसलिए मुक्तिबोध की कविताएँ वैचारिक कविताएँ हैं, लम्बी कविताएँ हैं।

29.4.2 कविताओं में व्यक्त राजनीति

मुक्तिबोध व्यापक अर्थों में राजनीतिक कवि हैं। किन्तु उनका उद्देश्य राजनीति पर व्यंग्य, कटाक्ष करने का या राजनीतिक परिदृश्य को अभिव्यक्ति देने का नहीं रहा है। बल्कि मुक्तिबोध ने राजनीति और राजनीतिक व्यवस्था के आतंक, भय, भ्रष्टाचार, रहस्य और जन-जीवन को समाप्त करती जा रही राजनीतिक संस्कृति के किले में घुस कर उसे नंगा करने का प्रयत्न किया है। राजनीति और व्यवस्था और इनका यथार्थ इतना सरल नहीं होता, जितना हम मान लेते हैं। इस यथार्थ की सही पहचान और पकड़ के लिये मुक्तिबोध को जो कलात्मक रास्ता अपनाना पड़ा, वो भी उतना ही जटिल, प्रतीक और बिंबों में उलझा हुआ जान पड़ता है। किंतु एक बार इनकी तह में जाने पर सब कुछ साफ-साफ दिखाई पड़ने लगता है।

मुक्तिबोध की राजनीतिक समझ बहुत साफ और दृढ़ है। वे मार्क्सवादी विचारधारा के प्रतिबद्ध कवि हैं। वे मानते हैं कि समाज और मानव का उद्धार तब तक नहीं हो सकता जब तक कि शोषण और आतंक में पिसती हुई जनता पूँजीवादी और साम्राज्यवादी शक्तियों के विरुद्ध एकजुट होकर क्रांति के लिये तैयार न हो जाए। मुक्तिबोध यह भी मानते हैं कि इस वर्ग विभाजित समाज में बुद्धिजीवी वर्ग का कर्तव्य, इस जन शक्ति को क्रांति के दिपदिपाते विचारों से लैस करने का है। और जनता को उसके शोषण, शोषण के हथियारों से वाकिफ करवा कर उसमें चेतना जगाने का है। इसलिए अपनी कविताओं में वे बार-बार अपनी प्रतिबद्धता इस जनता के पक्ष में रखते हैं — उसे सुविधाभोगी, भ्रष्टाचारी वर्ग से आगाह करते हैं, उनमें आत्मविश्वास जगाते हैं। मुक्तिबोध की एक कविता है — "गुंथे तुमसे, बिंधे तुमसे"।

"वेदना में हम विचारों की
गुंथे तुमसे
बिंधे तुमसे
व आवेष्टित परस्पर हो गये
× × ×
कोई नहीं थे हम तुम्हारे किंतु
सहचर हो गये
चाहे जलधि, पर्वत, हजारों मील की दूरी
हमारे बीच में आ जाए
फिर भी मानसिक अदृश्य सूत्रों से
हमारी आत्माएँ परस्पर बात करती हैं"

(मुक्तिबोध रचनावली, भाग-दो, पृ. 27)

यह जो "तुम" है, जिससे कवि विचारों की वेदना में गुंथने-बंधने की बात कर रहा है, यह आम, कर्मशील, जनता ही है — विचारों की वेदना या चिंतन में कवि ने यही पाया है कि यदि समाज में किसी के साथ होना है, यदि समाज का उद्धार करना है तो इसी शोषित पीड़ित, अशिक्षित जन के प्रति प्रतिबद्ध होना पड़ेगा।

द्वितीय विश्वयुद्ध में पूँजीवादी साम्राज्यवादी शक्तियों ने आतंक, मौत, भय का जो खेल खेला, सारे विश्व को, धरती को युद्ध की आग में झोंक कर जो तमाशायी बने, उसका वर्णन मुक्तिबोध ने "जमाने का चेहरा" कविता में किया है —

"साम्राज्यवादियों के बदशक्ल चेहरे
एटमिक धुएँ के बादलों से गहरे
क्षितिज पर छाए हैं,
जापान को ध्वस्त कर
ईरान को मार कर
ईजिप्त के खात्मे के लिये हैं उतावले
अरब के खात्मे के लिये हैं बावले ।।

साम्राज्यवादी शक्तियाँ भारत में भी सक्रिय हैं — यहाँ भी वे अपने पाँव पसार रही हैं —

साम्राज्यवादियों के
पैसों की संस्कृति
भारतीय आकृति में बंध कर

दिल्ली को
वाशिंगटन व लंदन का उपनगर
बनाने पर तुली है ।।

भारतीय धनतंत्री
जनतन्त्री बुद्धिजीवी
स्वेच्छा से उसी का ही कुली है ।।

मुक्तिबोध सीधे-सीधे पूँजीवादी संस्कृति, सभ्यता और राजनीति का भी विश्लेषण करते हैं, इसके द्वारा मानव जाति पर जो अत्याचार किये जाते हैं, जिस आतंक, भय से व्यक्ति के जीवन, उस के सोचने की शक्ति पर प्रहार किये जाते हैं, और जिसके बारे में वे सचेत नहीं रह पाता, उसका चित्रण भी मुक्तिबोध ने किया है। छायावाद का चमकीला, प्रेमिका के मुखड़े जैसा सुंदर चाँद मुक्तिबोध के यहाँ आकर पूँजीवाद का प्रतीक बन जाता है। सौन्दर्यबोध का यह दूसरा छोर है। एक छोर तो सौन्दर्यबोध का वह होता है जहाँ सुंदर, कमनीय, लावण्य; कोमलता और आनंद है और दूसरा छोर वह है, जहाँ भय, आतंक, पीड़ा, त्रासदी और किमाकार है। मुक्तिबोध सौंदर्यबोध के इसी दूसरे किन्तु यथार्थ छोर पर खड़े दिखाई देते हैं।

मीनारों के बीचों बीच चाँद का है टेढ़ा मुँह
लटका,
मेरे दिल में खटका —
कहीं कोई चीख, कहीं बहुत बुरा हाल रे ।।

अजीब है ।।
गगन में करफ्यू
धरती पर चुपचाप जहरीली छीः थूः
पीपल के सुनसान घोंसलों में पैठे हैं
कारतूस छर्रे
जिससे कि हवेली में
हवाओं के पल्लू भी सिहरे।
गंजे सिर चाँद की संवलाई किरनों के जासूस
साम-सूम नगर में धीरे-धीरे घूम-घाम
नगर के तिकोनों में छुपे हुए
करते हैं महसूस
गलियों की हाय-हाय ।।

चाँद की कनखियों की किरनों ने
नगर छान डाला है।
अंधेरे को आड़े-तिरछे काट कर
पीली-पीली पट्टियाँ बिछा दीं
समय काला-काला है।

यह "चाँद का मुँह टेढ़ा है" कविता में से जो उद्धरण हमने ऊपर दिया है — इसे पढ़ कर आप इस बात का अंदाज लगा पाएंगे कि कवि कितनी भयाकुल, आतंक पैदा करने वाली और त्रासद स्थिति का चित्रण कर रहा है। सुनसान घोंसले, चुपचाप जहरीली छीः थूः कारतूस, छर्रे, हवेली, हवाओं के पल्लू, पीली-पीली पट्टियाँ, काला-काला समय — एक ऐसे भयानक और वीरान वातावरण का निर्माण करते हैं, जिससे कविता एक स्तर पर इसी भयानकता

की सृष्टि करती जान पड़ती है। लेकिन कवि का उद्देश्य डराना नहीं बल्कि उस आतंक, भय से परिचित कराना है, जो पूँजीवादी राजनीति और संस्कृति के कारण पनपता है, जो मनुष्य के मूलभूत विश्वासों और मूलभावों पर प्रहार करके उन्हें तोड़ता है, जो मनुष्य को जड़ मशीन में बदलने लगता है। इसके बाद मुक्तिबोध अपनी कविताओं में इस व्यवस्था से छुटकारा पाने, इस जहर को समाप्त करने के लिये, इसके प्रति जागरूक होने के लिये जनशक्ति से वैचारिक, भौतिक और संवेदनात्मक स्तर पर जुड़ने का आह्वान भी करते हैं।

29.4.3 सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति

मुक्तिबोध की कविताओं में तत्कालीन सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति विभिन्न रूपों में हुई है। इतना तो आप जान ही गये होंगे कि मुक्तिबोध के लिये यथार्थ या सामाजिक यथार्थ एक घटना मात्र नहीं होता बल्कि वो सम्पूर्ण जीवन में गुंथा हुआ ऐसा यथार्थ होता है जिसके कई सिरे होते हैं और जिसकी जड़ें दूर गहरे तक जीवन के कई-कई संदर्भों में धंसी हुई होती हैं। इस यथार्थ को मुक्तिबोध गतिशील यथार्थ कहते हैं जिसकी कलात्मक अभिव्यक्ति के लिये वे फैंटेसी का इस्तेमाल करते हैं, फलतः उनकी कविताएँ दीर्घ होती जाती हैं।

मुक्तिबोध सुविधाभोगी जमात के लोगों की झूठी उपलब्धियों को रेखांकित करने के बहाने इस वर्ग के लोगों की असलियत को नंगा करते हैं। वे यह बताते हैं ये लोग वस्तुतः अवसरवादी, झूठे, स्वार्थी और जनता के उतने ही दुश्मन हैं, जितने वे लोग जो सत्ता हाथ में ले कर जनता का शोषण करते हैं। मुक्तिबोध की एक कविता है "भाग गयी जीप"। इसमें वे बताते हैं कि बस (सुविधाओं की) छूट जाती है और कुछ लोग इसमें चढ़ जाते हैं। इसमें चढ़ने वाले आज के अवसरवादी सुविधाभोगी लोग हैं जो "बस में ही ठुंस जाने को जिन्दगी की जीत" मानते हैं। मुक्तिबोध लिखते हैं —

तुममें कुछ
अच्छाई ही शेष थी
इसीलिए घबरा गये
पकड़ न सके बस
और वह छूट गयी
पीछे रह गये तुम।।

× ×

बस मिस हो गयी
कर गये मिस तुम
बहुत अच्छा हुआ यह
प्राणों में हमारे
समासीन पूर्ण तुम
समय के मारे तुम
केवल हमारे हो
केवल हमारे हो।।

(मुक्तिबोध रचनावली, खंड-दो, पृ. 133)

मुक्तिबोध यहाँ सुविधाभोगी, अवसरवादी लोगों के समकक्ष अपना पक्ष भी स्पष्ट करते हैं, वे इन लोगों में शामिल हो कर अपने वर्ग से अलग नहीं होना चाहते। "कहने दो उन्हें जो कहते हैं" शीर्षक कविता में मुक्तिबोध इस तथाकथित सफलतावादी, सुविधाभोगी वर्ग के लोगों का घटियापन और कमीनापन उघाड़ते हुए बताते हैं कि ये लोग अपने ही (मध्यम वर्ग) वर्ग के होते हुए भी उस मरणशील व्यवस्था का साथ देते हैं जो शोषण, भ्रष्टाचार और मूल्यहीनता की बुनियाद पर टिकी है। सफलता, भद्रता, कीर्ति और यश की यह रेशम की पूनों की चाँदनी —

सूखे हुए कुओं पर झुके हुए झाड़ों में
बैठे हुए घुग्घुओं व चमगादड़ों के हित
जंगल के सियारों और
घनी-घनी छायाओं छिपे हुए
भूतों और प्रेतों तथा
पिशाचों और बेतालों के लिये ही —
मनुष्य के लिए नहीं — फैली यह

× × ×

ये सुविधापरस्त लोग जो सुविधाएँ और सफलता के सिक्के बटोरने के लिए घुग्घु, सियार, पिशाच और बेताल बन जाते हैं। मुक्तिबोध उन्हें ललकारते हैं और स्वयं को उनसे अलग करते हैं —

सामाजिक महत्व की
गिलौरियाँ खाते हुए
असत्य की कुर्सी पर
आराम से बैठे हुए

मनुष्य की त्वचाओं का पहने हुए ओवरकोट,
बंदरों व रीछों के सामने
नयी-नयी अदाओं से नाच कर
झुठाई की तालियाँ देने से, लेने से
सफलता के ताले ये खुलते हैं

× × ×

जवाब यह मेरा है
जा कर उन्हें कह दो कि सफलता के जंग-खाये
तालों और कुंजियों
की दुकान है कबाड़ी की।

मुक्तिबोध की एक और कविता है "एक रंग का राग"। इसमें वे बताते हैं कि आज के युग में तो बुराईयों, भ्रष्टाचार, झूठ, बेईमानी, धोखाधड़ी इस व्यवस्था के कारण रेत के कणों सी समाज में फैल गयी हैं और वे केवल व्यंग्य का विषय है, और उसके लिये तर्क दिया जाता है कि यह तो अंग रूप है, हमारे जीवन का अटूट हिस्सा है —

पूर्व युगों में भी खूब बुराइयाँ रही आयीं
किंतु, वे भीमाकार शक्ति रूप
दिखलायी जाती थीं,
रावण व कुम्भकर्ण, शैतान
उनका ही रूप था।
उनसे डरा जाता था, उनसे लड़ा जाता था।

× × ×

किंतु उसी अमंगल को आज सिर्फ
सहा जाता हास कह
आज वह मात्र व्यंग्य रूप है
तर्क यह —
हाय! यह सबका अंग रूप है।

29.4.4 भीतरी और बाहरी संघर्ष का चित्रण

मुक्तिबोध गहन मानसिक अन्तर्द्वंद्वों और तीखे सामाजिक अनुभवों के कवि हैं। मुक्तिबोध की कविताओं में जिन शब्दों का बहुत इस्तेमाल हुआ है उनमें से एक शब्द है — "अंधेरा", इसी से मिलते-जुलते और शब्द भी हैं — स्याह, काला, श्याम, साँवला, रात, तम-अंतराल, तिमिर आदि। यहाँ तक कि कुछ प्रसिद्ध फूलों को भी कवि इसी रंग में देखता है —

काले गुलाब व स्याह सिवन्ती
स्याह चमेली
सँवलाये कमल

यह अंधेरा क्या है? कवि इससे इतना घिरा हुआ क्यों है? वास्तव में यह अंधेरा मन का और मन को बनाने वाली बाह्य परिस्थितियों का है। भीतर और बाहर के इसी अंधेरे में मुक्तिबोध अपने आत्मरूप की, आत्माभिव्यक्ति की खोज करते हैं। डायरी में कवि लिखता है —

"मुझे लगता है, मन एक रहस्यमय लोक है। उसमें अंधेरा है। अंधेरे में सीढ़ियाँ हैं। सीढ़ियाँ गीली हैं। सबसे निचली सीढ़ी पानी में डूबी हुई है। वहाँ अथाह काला जल है। उस अथाह जल से स्वयं को ही डर लगता है। इस अथाह काले जल में कोई बैठा है — वह शायद मैं ही हूँ।" मैं का यह रहस्यमय लोक मुक्तिबोध की कविताओं में बार-बार आता है। गड्ढा, बावड़ी, तालाब, तिलिस्मी खोह, तह आदि जैसे प्रयोग मन के इसी रहस्यमय लोक की ओर ले जाते हैं —

चला जा रहा हूँ
सूखे हुए झरने की पथरीली गली में
भयानक गुफाओं में घुसता हूँ काँप कर
मन मार
उतरता हूँ गड्ढों में, खोहों के तले में।

मन के भीतर इन अंधेरों में आत्मा का सत्य छिपा बैठा है जो सौ-सौ पहरों में बंधा हुआ है। ये पहरे मनुष्य की आत्मा पर सदियों में इस शोषणवादी — सामंती, पूँजीवादी व्यवस्था की देन हैं। इसलिए कवि बार-बार भीतर की ओर भागता

है जहाँ ज्ञान, वीर्य, ओज, प्रकाश, जहरीली आग, स्वर्ण स्फुलिंग, अंगारी धूप, किरण, सूर्य मिलते हैं —

सच, हृदय रक्त के लाल थाल
में डूबा, गहरे डूबा है
जीवन विवेक
दुर्दान्त ज्ञान का मणि अशोक

(भूरी-भूरी खाक धूल, पृ. 121)

यह जो जीवन विवेक है, आत्म सत्य है, इस को चरितार्थ करना, इसे कर्म में ढालना ही विचारों को आचार में परिणत करना है। मुक्तिबोध के आत्मसंघर्ष की यह एक मुख्य दिशा है। विचार और कर्म का द्वंद्व, रचनाकर्म और नागरिक कर्म। मुक्तिबोध के अपराध-बोध को इस संदर्भ में समझा जा सकता है और इसी संदर्भ में उसकी चरम अभिव्यक्ति की बेचैनी भी समझी जा सकती है — अपने अनुभव सत्य को जन तक पहुंचाने की बेचैनी —

तब हम भी अपने अनुभव के
सारांशों को उन तक पहुंचाते हैं जिसमें
जिसे पहुंचाने के द्वारा हम, सब साथी मिल
दण्डक बन में से लंका का पथ खोज निकाल सकें।

(भूरी-भूरी खाक धूल, पृ. 171)

मुक्तिबोध के इस भीतरी भयानक मनः संघर्ष को बनाने वाली परिस्थितियाँ बाहर हैं। पूँजीवादी व्यवस्था और समाज में हैं, इसलिए उनके काव्य में जितना संत्रास है, उतना ही विद्रोह भी है। मुक्तिबोध की कविताओं में अंधेरे के अलावा जो दूसरा शब्द और रंग बहुतायत में प्रयुक्त हुआ है वह है — "लाल"।

लाल-लाल चादरें
सिंदूरी झंडियाँ
सुनहरी पताकाएँ फरफरा रही हैं।
और आसमान में
कत्थई गेरुए धुएँ की बड़ी-बड़ी लहरें
तैरती हैं हवा में।

(चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ. 225-226)

घुसती है लाल-लाल मशाल अजीब सी,
अन्तराल-विवर के तम में
लाल-लाल कुहरा
कुहरे में, सामने, रक्तालोक-स्नात पुरुष एक
रहस्य साक्षात्

(चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ. 246-247)

धरती ने खिलाये हैं ज्वलंत लाल-लाल
नये-नये फूल कैसे लगते हैं आग भरे
जीवन-सुहाग-भरे।

(भूरी-भूरी खाक धूल, पृ. 218)

इसके अतिरिक्त लाल चिंता की रुधिर-धारा, किरणों के रक्त मणि, रक्तिम तितलियाँ, गेरूआ, ज्वाला, आभ्यंतर का अग्नि-सरोवर आदि कविताओं में प्रयुक्त शब्द "अंधेरे" के विरुद्ध अपनी आभा का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह आभा क्रांति की आशा और आकांक्षा की है —

भारतीय अंधेरी गहरी-गहरी गलियों में आजकल
सर्दी की भयानक काली-काली रातें हैं
व उनके किनारों पर
विद्रोह के जल रहे लाल-लाल
धधकते अंगार

(भूरी-भूरी खाक धूल, पृ. 187)

यह लाल रंग क्रांति का सूचक है। मुक्तिबोध ने यह अनुभव किया है कि क्रांति के द्वारा ही परिवर्तन लाया जा सकता है, राजनीतिक परिवर्तन, सांस्कृतिक परिवर्तन और सामाजिक परिवर्तन।

बोध प्रश्न 1

क) मुक्तिबोध के दो काव्य संग्रह हैं — नाम लिखिये।

1) ....

2) ....

ख) मुक्तिबोध जब लेखन में प्रवृत्त हुए, उस समय हिंदी काव्य में कौन-कौन सी काव्य प्रवृत्तियाँ उभार पर थीं।

ग) मुक्तिबोध के अनुसार "जनता का साहित्य" का क्या अर्थ है? संक्षेप में बताइए।

घ) वर्ग विभाजित समाज में मुक्तिबोध बुद्धिजीवी वर्ग का क्या कर्तव्य मानते हैं? संक्षेप में लिखिए।

च) मुक्तिबोध पूँजीवादी व्यवस्था का विरोध कैसे करते हैं? संक्षेप में लिखिए।

छ) मुक्तिबोध के काव्य में दहशत, आतंक, भय और सन्नाटे का गहरा वातावरण हर समय छाया रहता है — संक्षेप में बताइए — यह वातावरण किस कथ्य की सृष्टि करता है?

ज) मुक्तिबोध के काव्य में घुग्घु, सियार, कुत्ते, बिल्ली, पिशाच किस के प्रतीक बन कर आते हैं?

झ) मुक्तिबोध एक ओर अंधेरा और अंधेरे से मिलते-जुलते शब्दों का तथा दूसरी ओर लाल तथा इससे संबंधित शब्दों का बहुत प्रयोग करते हैं। संक्षेप में बताइये यह अंधेरा और लाल रंग मुक्तिबोध के काव्य में किस बात की ओर संकेत करते हैं?

....

....

29.5 संरचना शिल्प

मुक्तिबोध कथ्य के आत्म संघर्ष के समानांतर ही अभिव्यक्ति संघर्ष से भी जूझते रहे हैं। पारंपरिक काव्य, काव्य शैली, बिंब, रूपक, काव्य भाषा को छोड़कर उन्होंने अपने लिये जटिल किंतु नया, अनगढ़ रास्ता चुना, अपनी सामाजिक चेतना और अंतः बाह्य के संघर्ष को प्रामाणिक और ईमानदार बनाकर प्रस्तुत करने की प्रक्रिया में उन्होंने भाषा के आभिजात्य को तोड़ा, फैंटेसी का शिल्प अपनाया, बिंबों की एक नयी दुनिया से अर्थ को सारगर्भित बनाया और प्रतीकों को भी नया प्रयोग और अर्थ दिया। यहाँ हम मुक्तिबोध के शिल्प में काव्यरूप, काव्यभाषा, प्रतीक योजना और बिंब विधान का विश्लेषण करेंगे।

काव्य रूप और शैली

मुक्तिबोध की "कविताएँ बड़े परिश्रम से लिखी गयी कविताएँ हैं जैसे बढ़ई रंदे और बसूले से लकड़ी की छील-छाल करता है"। (विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, मुक्तिबोध, पृ. 87) नेमिचन्द्र जैन को लिखे पत्रों में मुक्तिबोध लिखते हैं — "आप विश्वास नहीं करेंगे, एक कविता को दुरुस्त करने के लिये छह घंटे लगते हैं।" एक दूसरे पत्र में — "कविता सुधारते नाक में दम आ गई है। कैसी विपत्ति मोल ले ली।" (आलोचना-6, पृ. 37) डायरी में मुक्तिबोध लिखते हैं — "यथार्थ के तत्व परस्पर गुंफित होते हैं, साथ ही पूरा यथार्थ गतिशील होता है। अभिव्यक्ति का विषय बन कर जो यथार्थ प्रस्तुत होता है वह भी ऐसा ही गतिशील है, और उसके तत्व भी परस्पर गुंफित हैं। यही कारण है कि मैं छोटी कविताएँ नहीं लिख पाता और जो छोटी होती हैं वे वस्तुतः छोटी न होकर अधूरी होती हैं।" (एक साहित्यिक की डायरी, पृ. 27)

मुक्तिबोध की लगभग कविताएँ लम्बी हैं और एक-एक कविता लिखने के लिये वे महीनों उस पर काम करते रहते थे। काव्य की जो अन्तर्वस्तु, कथ्य होता है, वो काव्य रूप के निर्धारण में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और दूसरी और काव्य रूप भी कथ्य को निर्धारित करता है। वास्तव में वस्तु एवं रूप का संबंध द्वंद्वात्मक होता है। फिर भी, यदि मुक्तिबोध अपने युग की भयंकर त्रासदी, दहशत, आतंक और व्यवस्था के शोषण और सत्ता की बर्बरता के साथ अपने भीतर के आत्मसंघर्ष की छटपटाहट को काव्य रूप में अभिव्यक्ति देना चाहते थे और यथार्थ को परस्पर गुंफित और गतिशील रूप में अनुभव करते थे तो उनका काव्य रूप लंबी कविता के रूप में ही सामने आ सकता था।

दूसरी बात जो मुक्तिबोध ने कही है — वह बात यह है कि यह परस्पर गुंफित और गतिशील यथार्थ अपने कलात्मक रूप में फैंटेसी का सहारा लिये बिना अभिव्यक्त नहीं हो सकता। फलतः उनकी कविताएँ फैंटेसी अथवा फंतासी में यथार्थ को पिरो कर चलती है। यह फंतासी प्रतीक धर्मी और बिंबधर्मी होती है। इसमें बिंबों की माला गुंथी रहती है। इन प्रतीकों और बिंबों को खोलना पड़ता है तब कविता समझ में आती है। मुक्तिबोध के प्रतीक और बिंब एक नयी भयानक, त्रासद दुनिया को ही खोल कर सामने रखते हैं। उन्होंने संस्थाओं के भ्रष्टाचार और सत्ताधारी वर्ग के आंतक को खण्डहरों, घुग्घुओं, उल्लुओं, बिल्लियों और जासूसों के जरिए उभारा है।

मुक्तिबोध की काव्य शैली नाट्यात्मक है, मानों कि वे फिल्म टेकनीक का इस्तेमाल करते हैं — जैसे फिल्मों में दृश्य बदलते हैं, वैसे ही मुक्तिबोध की कविता चित्रों की अनवरत लड़ी में गुंथी हुई प्रतीत होती है। एक के बाद एक चित्र आता रहता है। कभी-कभी वे संबोधन शैली का भी इस्तेमाल करते हैं, स्वयं बोलने लगते हैं, समझाने लगते हैं — शायद इसलिए भी कि कहीं बिंब, प्रतीक अबूझ न हो जाएँ। उनकी सबसे लंबी और महत्वपूर्ण कविता "अंधेरे में" इस नाट्य शैली या फिल्मी तकनीक का बेहतरीन उदाहरण है —

> जिन्दगी के —
> कमरों में अंधेरे
> लगाता है चक्कर
> कोई एक लगातार
> आवाज पैरों की देती है सुनायी
> बार-बार, बार-बार,
> वह नहीं दीखता — नहीं ही दीखता,
> किंतु, वह रहा घूम
> तिलिस्मी खोह में गिरफ्तार कोई एक
> भीत-पार आती हुई पास से
> गहन रहस्यमय अंधकार-ध्वनि सा
> अस्तित्व जनाता
> अनिवार कोई एक
>
> (अंधेरे में)

प्रतीक योजना

आपने यह पहले भी पढ़ा है कि मुक्तिबोध के काव्य में दो शब्द बार-बार आते हैं — "अंधेरा" और "लाल"। "अंधेरा" और अंधेरे से मिलते-जुलते शब्द जैसे स्याह, काला, श्याम, साँवला और "लाल" से मिलते-जुलते शब्द जैसे अग्नि, रुधिर, रक्तमणि, रक्तिम तितलियाँ आदि। वस्तुतः "अंधेरा" प्रतीक है व्यवस्था के आतंक, दमन, बर्बरता और शोषण का और लाल रंग प्रतीक है — क्रांति, परिवर्तन और खुशहाली का, अन्तर्मन की सच्चाईयों का, प्रकाश का और युद्धरत लोकजीवन का।

मनोविज्ञान के अनुसार मस्तिष्क में वस्तु जगत के दृश्यों के प्रतिबिंब बनते हैं। कवि इन प्रतिबिंबों को अपने संवेदनात्मक उद्देश्य के लिये सह-संयोजन द्वारा मूर्त रूप देता है। यह मूर्त रूप ही कवि के संवेदनात्मक उद्देश्य से जुड़ी हुई प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। उदाहरण के लिये मुक्तिबोध के एक प्रतीक "चाँद" को लीजिए। कवि के मस्तिष्क में "चाँद" के बारे में कई प्रतिबिम्ब चुने हुए हैं जो समाज, परंपरा, शिक्षा-दीक्षा, अनुभव द्वारा पोषित हैं। चाँद परंपरा से रूप का प्रतीक रहा है। रूप का संबंध चाँदी से है। और चाँदी का अर्थ है पूँजी। पूँजीवादी व्यवस्था ने जो पीड़ा कवि को दी, इसके कारणों को जानने-समझने के दौरान कवि की प्रतिबद्धता सामने आई। अतः चाँद का रुपये से संबंध होने के कारण काव्य की रचना प्रक्रिया में, यह पूँजीवादी उद्योगवादी व्यवस्था का प्रतीक बन गया। मुक्तिबोध ने इसी दृष्टि से अपने काव्य में प्रतीकों का प्रयोग किया है। इसलिए उनके प्रतीक मौलिक और नये होते हुए भी थोपे हुए नहीं लगते।

मुक्तिबोध के प्रतीकों को मुख्य रूप से दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। स्थितिपरक प्रतीक जो अपना अर्थ विभिन्न स्थितियों या संदर्भों में देते चलते हैं। संदर्भों में ही उनके प्रत्येक अर्थ की छाया में अन्य अर्थ झलकते हैं। और आत्म चैतन्य के प्रकाश के प्रतीक जिन्हें अन्तर्निहित या आवर्ती प्रतीक कहा जा सकता है।

बरगद मुक्तिबोध का प्रिय प्रतीक है, जिसकी आवृत्ति कई कविताओं में हुई है। कहीं तो वह ह्रासशील पूँजीवादी व्यवस्था से उत्पन्न सांस्कृतिक शून्यता का साक्षात् कराने वाला प्रतीक है, कहीं जनमानस का आदर्शीकृत रूप है। कहीं वह मार्क्सवादी अक्षयवट बनता है।

"युगान्तरकारी,.आस्थाओं का एक विशाल भव्य अक्षयवट" इसी अक्षयवट या बरगद की छत के नीचे सर्वहारा वर्ग को आश्रय मिल सकता है, अन्यत्र नहीं। "वन तुलसी" पुरानी रुढ़िवादी परंपरा की प्रतीक है तथा 'बबूल' सर्वहारा वर्ग का।

अन्य प्रतीकों में "ब्रह्मराक्षस", निष्क्रिय, निस्संग बुद्धिजीवी का प्रतीक है, जो निष्क्रिय रह कर समाज के रोगों की छानबीन तो करता रहा, आक्रोश दिखाता रहा — किंतु कुछ क्रियान्वित नहीं कर पाया। "अंधेरे में" इसी ब्रह्मराक्षस की भर्त्सना "सिरफिराजन" करता है — "ओ मेरे आदर्शवादी मन/ओ मेरे सिद्धांतवादी मन/अब तक क्या किया/जीवन क्या जीया?"

"बरगद" की तरह ही "टीला" कवि का अन्य महत्वपूर्ण प्रतीक है, जो मध्यमवर्ग का परिचायक है। अंधेरी घाटियों के गोल टीलों, घने पेड़ों में कहीं खो गया है। यह अंधेरी घाटियाँ-टीले अज्ञान, अंधकार की घाटियों में रहने वाले मध्यमवर्ग के लोग हैं। जो वर्ग चेतना के अभाव में जड़ता के शिकार बने हुए हैं। इसी कारण वे समाजवादी समाज के मार्क्सवादी दर्शन के सत्य को स्वीकारते नहीं हैं किंतु वर्गापसरण होने पर ये टीले निम्न वर्ग से मिलकर आत्मपरिचय पार जाते हैं।

निष्कर्षतः मुक्तिबोध के प्रतीक बड़े सधे हुए हैं। और उनके विचार-चिंतन के ताप में तपकर निकले हैं।

बिंब तथा आद्य बिंब

मुक्तिबोध की कविता बिंबधर्मी है, वे बिंबों का बहुत इस्तेमाल करते हैं। उनकी कविता में बिंब कथ्य को प्रखरता प्रदान करते हैं और भाषा को कलात्मक भी बनाते हैं। उदाहरण के लिये "अंधेरे में" कविता का यह प्रारंभिक अंश देखिये —

> जिन्दगी के ....
> कमरों में अंधेरे
> लगाता है चक्कर
> कोई एक लगातार,
> आवाज पैरों की देती है सुनाई
> बार-बार ..... बार-बार,
> वह नहीं दीखता .... नहीं ही दीखता
> किंतु, वह रहा घूम
> तिलिस्मी खोह में गिरफ्तार कोई एक,
> भीत-पार आती हुई पास से,
> गहन रहस्यमय अंधकार-ध्वनि सा
> अस्तित्व जनाता
> अनिवार कोई एक

यह वैचारिक बिंब रहस्यमयता और आतंक की ही सृष्टि नहीं करता बल्कि पाठक को मन के भीतर की हलचल से भी परिचित कराता है और संकेत देता है कि कौनसा मन के भीतर की उथल-पुथल से प्रारंभ हो रही है।

मुक्तिबोध के बिंबों को प्राकृतिक बिंब, मानव संसार के बिंब, विशिष्ट वैचारिक बिंबों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

प्राकृतिक बिंब : मुक्तिबोध प्रकृति से चाँद, सूरज, बरगद, अक्षयवट, बावड़ी आदि बिंब चुनते हैं किंतु ये बिंब प्रकृति का चित्र नहीं प्रस्तुत करते बल्कि बृहत्तर सामाजिक और मानवीय सरोवरों से जुड़ कर आते हैं। इस अर्थ में मुक्तिबोध के प्राकृतिक बिंब अज्ञेय के प्राकृतिक बिंबों से भिन्न हैं। अज्ञेय के प्राकृतिक बिंब केवल प्रकृति का ही वर्णन या चित्रण करते हैं। चाँद मुक्तिबोध के यहाँ पूँजीवादी व्यवस्था का प्रतीक है, बरगद — कभी मार्क्सवादी विचारधारा का और कभी अक्षयवट का, बावड़ी अन्तर्मन का।

मानव संसार के बिंब : सबसे अधिक बिंब मुक्तिबोध के यहाँ मानव संसार के हैं —

"सामने मेरे
सर्दी में बोरे को ओढ़ कर
कोई एक अपने
हाथ-पैर समेटे
काँप रहा — हिल रहा — वह मर जाएगा।"

(चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ. 11)

तिलक, गाँधी, तॉलस्ताय, शिशु का वे बिंबों में प्रयोग करते हैं। सुअर, घुग्घु, सियार, बिल्ली, उल्लू, कुत्ते, जासूस आदि भी उनके बिंब विधान में शामिल हैं।

विशिष्ट वैचारिक बिंब : मुक्तिबोध पारंपरिक बिंबों को अपने काव्य में एक नये वैचारिक अर्थ से पोषित करते हैं। ऐसे बिंबों में हम ब्रह्मराक्षस, ओरांग-ओटांग को ले सकते हैं।

इसके अलावा मुक्तिबोध के बिंबों का स्थिर बिंब, गतिशील बिंब, ध्वनि बिंब आदि के आधार पर भी वर्गीकरण किया जा सकता है।

आद्य बिंब : आद्य बिंब आर्केटाईपल बिंब हैं। ये ऐसे बिंब होते हैं जो जातीय समूह के मन में युगों से स्थानांतरित होते रहते हैं और सब के लिये इनका एक ही अर्थ होता है। कार्ल युग ने मन की चेतन, अचेतन क्रियाओं का अध्ययन करते हुए बताया है कि हमारे मन के चेतन और अचेतन दो भाग होते हैं। अचेतन के भी दो स्तर होते हैं — व्यक्तिगत तथा सामूहिक। सामूहिक अचेतन में जातीय इच्छाएँ, स्वप्न, रूप सुरक्षित रहते हैं। सामूहिक अचेतन को समूह मन भी कहते हैं। समूह मन की यही इच्छाएँ, स्वप्न, आकांक्षाएँ आद्य बिंबों, प्रतीकों के द्वारा कला में अभिव्यक्त होती हैं। मुक्तिबोध ने अपने काव्य में अचेतन के आद्य बिंबों का सफल प्रयोग किया है। मुक्तिबोध द्वारा प्रयुक्त आद्य बिंबों को सुविधा के लिये निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जा सकता है — जल के आद्य बिंब, अंधकार के आद्य बिंब, धरातल के आद्य बिंब, धरा के आद्य बिंब तथा अन्य आद्य बिंब।

जल के आद्य बिंब : जल अचेतन का एक सामान्य प्रतीक है। प्राचीन भारतीय साहित्य तथा ग्रीक साहित्य में भी यह अचेतन के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त होता रहा है। जल के आद्य बिंब मुक्तिबोध के काव्य में प्रचुरता से इस्तेमाल हुए हैं। "ब्रह्मराक्षस", "एक स्वप्न कथा", "चकमक की चिनगारियाँ", "अंधेरे में", कविताओं में इन्हें देखा जा सकता है। "ब्रह्मराक्षस" कविता में बावड़ी व पुराना जल इसी अचेतन के प्रतीक हैं।

अंधकार के आद्य बिंब : युंग ने रात्रि और अंधकार को अचेतन के प्रतीक माना है। मुक्तिबोध ने स्वतंत्र रूप से अंधेरे के चित्र बहुत कम खींचे हैं। अंधेरे को विभिन्न अर्थों में कवि ने प्रयोग किया है। फिर भी "चम्बल की घाटी में", "अंधेरे में", "चकमक की चिनगारियाँ", "चाँद का मुँह टेढ़ा है" आदि कविताओं में अंधेरा और रात्रि अचेतन के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं —

अंधेरे में रहता था अब तक छिपा हुआ।
जो निज-संदर्भ,
जो निज-संबंध
जो गुप्त प्रक्रिया गहन निजात्मक
वह देह धर कर
दस्यु रूप
बैठ गयी उर पर

(चम्बल की घाटी में)

यहाँ अंधकार व्यक्तिगत अवचेतन को प्रतीकित करता है।

धरातल के आद्य बिंब: मुक्तिबोध के काव्य में धरांतर के आद्य बिंब भी बहुत हैं। इनमें कवि को "गुहा" के बिंब अत्यधिक प्रिय हैं। "गुहा" भी अचेतन का ही प्रतीक है। इस दृष्टि से "ओ काव्यात्मक फणिधर", "मेरे सहचर मित्र", "अंधेरे में", "चम्बल की घाटी में" आदि कविताएँ महत्वपूर्ण हैं। "चाँद का मुँह टेढ़ा है" में यह बिंब —

क्रौंच की गुहाओं का मुँह खोले
शक्ति के पहाड़ दहाड़ते हैं

यहाँ पर कवि ने जिस शक्ति का बिंब प्रस्तुत किया है उसका स्रोत अचेतन चित ही है। इस बिंब की तुलना "अंधेरे में" के निम्नलिखित बिंब से की जा सकती है —

वृक्षों के अंधेरे में छिपी हुई किसी एक
तिलिस्मी खोह का शिला द्वार
खुलता है धड़ से।

दोनों बिंबों में गुहा द्वार अकस्मात खुलता है। कवि यह व्यंजना करना चाहता है कि अंतर गुहा का द्वार आयास नहीं अनायास खुलता है। कारण, अचेतन पूर्णतया स्वायत्त है।

धरा के आद्य बिंब : मुक्तिबोध के काव्य में धरा के आद्य बिंब भी पर्याप्त हैं। इनमें धरती, नगर, गाँव, वृक्ष, जंगल, झाड़ियाँ आदि विशेष महत्व के हैं। धरती अचेतन का प्रतीक है। "ओ काव्यात्मक फणिधर" में गाँव अचेतन के सृजनात्मक पक्ष का प्रतीक बना है।

निष्कर्षतया मुक्तिबोध के काव्य में अचेतन के आद्य बिंब विपुल संख्या में हैं। समुद्र, बावड़ी, तालाब, रात्रि, अंधकार, गुहा, विवर, घाटी, झाड़ियाँ, खड्ड, खाई, कुआँ, ज्वालामुखी, धरती, नगर, गाँव, वृक्ष, प्रकोष्ठ आदि के माध्यम से कवि ने मानवीय व्यक्तित्व के उस अंधकार पक्ष को अभिव्यक्ति की है, जिसकी यात्रा किये बगैर कोई भी सृजनात्मक प्रतिभा कृतकार्य नहीं हो सकती।

काव्य-भाषा

मुक्तिबोध की काव्य-भाषा सरल नहीं है, जटिल है। इस जटिलता के कारण उन्हें समझने में पाठकों आलोचकों को कठिनाई भी होती रही है। वस्तुतः मुक्तिबोध की काव्य-भाषा पारंपरिक काव्य-भाषा के सपनों को तोड़ती है, उसमें कोमल, दृढ़, मृदु, तद्भव शब्दावली नहीं है — उसे आप तब तक नहीं छू सकते, जब तक आप मुक्तिबोध के मानसिक संसार, उसके अभिप्रेत के बारे में कोई संकेत न हासिल कर लें। मुक्तिबोध का कथ्य एक ही रहा है — व्यवस्था के शोषण किले में घुस कर बर्बरता, आतंक, भयानक ज्यादतियों को नंगा करना, जो मानवीय संसार को दहशत का आदी बना कर उसे नपुंसक और खोखला बना रही हैं। इस यथार्थ को अभिव्यक्ति देने के लिये उन्होंने जिस काव्य भाषा को अपनाया उसमें, फंतासी, प्रतीक, बिंबों की भरमार है। तत्सम शब्दों की विपुल वर्षा है। एक स्तर पर तो यह भाषा गद्यात्मक लगती है किंतु कविता की आंतरिक लय उसे पठनीय बना कर ग्राह्य बनाती है। उनकी भाषा कितनी भी जटिल क्यों न हो — वह जीवनानुभवों से जुड़ी हुई भाषा है।

सृजन के स्तर पर मुक्तिबोध ने हिंदी काव्य को असंख्य नये शब्द दिये हैं। मुक्तिबोध की कविता में आते ही शब्दों का पारंपरिक अर्थ टूट जाता है और वे नये अर्थों के प्रकाश से चमकने लगते हैं। जैसे 'ओरांग ओटांग" या 'ब्रह्मराक्षस'।

मुक्तिबोध की काव्य भाषा में अंग्रेजी, उर्दू, मराठी, तत्सम, तद्भव शब्दों का बहुत प्रयोग किया है। जैसे —

अंग्रेजी शब्द — स्क्रीनिंग, ड्रैस, टैंक, आर्टिलरी, थियोरम, इलेक्ट्रान, किंग्जवे।

उर्दू शब्द — जमाना, मुफलिसी, अजीब, वारदात, जिस्म, सुलतान, शनाख्त।

मराठी शब्द — नक्षीदार, नक्षे, बास, हकाल दिया, गजर, कंदील, पूर।

तत्सम शब्द — ऊर्ध्वश्वस, आगमिष्यत, प्रभा, जातवेदस्, प्राक्तन, आत्मचेतस्, उद्भ्रांत, रूधिर-स्नात, मंत्रोच्चार, प्रकोष्ठ।

तद्भव शब्द — भीत, कंडा, रिवाउ, दलिदर, अगामी, धुधलवे, खूँटा आदि।

इसके अतिरिक्त मुक्तिबोध की काव्य-भाषा में मुहावरों का भी प्रयोग हुआ है —

अपना गणित करना, मछलियाँ फसाना, दिल की बस्ती
उजाड़ना, मूठ मारना, केंचुली उतारना, ईसा के पंख
झड़ना, नक्शा रंग आदि।

निष्कर्षतया मुक्तिबोध की भाषा अनगढ़, बेडोल अवश्य लगती है किन्तु प्राणवता, तेवर और विशिष्ट अर्थवता उसे व्यंजक और विशिष्ट बनाते हैं। ललित न होने के कारण वह भयानक यथार्थ को अभिव्यक्ति देने में सक्षम हुई है। मुक्तिबोध वास्तव में भाषा चुनते नहीं, गढ़ते हैं, इसलिए भाषा की यह खोज मुक्तिबोध के लिए वस्तुतः जीवन की खोज है।

बोध प्रश्न 2

1 मुक्तिबोध ने लम्बी कविताएँ ही लिखी हैं। वे छोटी कविताएँ लिख पाने में असमर्थता अनुभव करते थे। संक्षेप में टिप्पणी कीजिए।

....

....

....

....

2 मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं में प्रमुख रूप से किस शैली का इस्तेमाल किया है?

....

....

3 "ब्रह्मराक्षस" और "बरगद" मुक्तिबोध की कविताओं में किनके प्रतीक बन कर आए हैं? संक्षेप में बताइये।

....

....

....

....

4 मुक्तिबोध के बिंबों और आद्य बिंबों को कौन-कौन सी श्रेणियों में बाँटा जा सकता है?

....

....

....

....

5 आद्य बिंब का क्या अर्थ है?

....

....

....

....

6 मुक्तिबोध की काव्य-भाषा में किन-किन भाषाओं के शब्दों का बाहुल्य है?

....

....

29.6 काव्य पाठ एवं व्याख्या

यहाँ हम आपको पढ़ने के लिए मुक्तिबोध की दो कविताओं (अंधेर में तथा भूल गलती) के प्रारंभिक अंश दे रहे हैं। इनमें से कुछ पंक्तियों की हम व्याख्या करके आपको व्याख्या करना भी सिखाएंगे। कुछ पंक्तियों की व्याख्या आप स्वयं करेंगे, जिसमें हम भी आपकी सहायता करेंगे —

काव्य अंश

अंधेरे में

जिन्दगी के ····
कमरों में अंधेरे
लगाता है चक्कर
कोई एक लगातार,
आवाज पैरों की देती है सुनायी
बार-बार ···· बार-बार
वह नहीं दीखता ···· नहीं ही दीखता,
किंतु, वह रहा घूम
तिलिस्मी खोह में गिरफ्तार कोई एक,
भीत-पार आती हुई पास से,
गहन रहस्यमय अंधकार-ध्वनि सा
अस्तित्व जनाता
अनिवार कोई एक,
और, मेरे हृदय की धक-धक
पूछती है — वह कौन
सुनायी जो देता, पर नहीं देता दिखायी।

इतने में अकस्मात् गिरते हैं भीत से
फूले हुए पलस्तर
खिरती है चूने भरी रेत

खिसकती हैं पपड़ियाँ इस तरह —
खुद-ब-खुद
कोई बड़ा चेहरा बन जाता है,
स्वयमपि
मुख बन जाता है दिवाल पर,
नुकीली नाक और
भव्य ललाट है,
दृढ़ हनु,
कोई अनजानी अन-पहचानी आकृति।
कौन वह दिखायी जो देता, पर
नहीं जाना जाता।।
कौन मनु?

(ये पंक्तियाँ कविता के कथ्य की ओर संकेत करती हैं। इन पंक्तियों में जिस आत्मसंघर्ष और अन्तर्द्वंद्व की स्थिति निर्मित हुई है वह आगे चलकर और गहरी होती है। दूसरी ओर फूली हुई पपड़ियाँ, चूने भरी रेत और अंधेरे से जिस भयानक वातावरण का निर्माण हुआ है — यह भयानकता आगे चल कर अर्थ ग्रहण करती है।)

भूल गलती

भूल गलती
आज बैठी है ज़िरहबख्तर पहन कर
तख्त पर दिल के,
चमकते हैं खड़े हथियार उसके दूर तक,
आँखें चिलकती हैं नुकीले तेज पत्थर-सी
खड़ी हैं सिर झुकाये
सब कतारें
बेजुबाँ बेबस सलाम में,
अनगिनत खम्भों व मेहराबों — थमे।
दरबारे आम में।
सामने
बेचैन घावों की अजब तिरछी लकीरों से कहा
चेहरा
कि किस पर काँप
दिल की भाफ उठती है ···
पहने हथकड़ी वह एक ऊँचा कद,
समूचे ज़िस्म पर लत्तर
झलकते लाल लम्बे दाग
बहते खून के।
वह कैद कर लाया गया ईमान ···
सुलतानी निगाहों में निगाहें डालता
बेखौफ नीली बिजलियों को फेंकता
खामोश!!
सब खामोश
मनसबदार,
शायर और सूफी,
अलग़ज़ाली, इब्ने सिन्ना, अलबरूनी,
आलिमो फ़ाज़िल सिपहसालार, सब सरदार
हैं खामोश!!

(मुक्तिबोध की प्रत्येक कविता में उनका आत्मसंघर्ष चलता है। वे मन के भीतर उतर कर समस्याओं के अन्तर्द्वंद्वों को उद्घाटित करते हैं। "भूल गलती" कविता इसी तरह के आत्मसंघर्ष की एक अभिव्यक्ति है। व्यक्ति जीवन में स्वार्थ वश तरह-तरह की भूल गलतियाँ करता चलता है और उन भूल-गलतियों को सत्यापित करने के लिये तरह-तरह के बहाने गढ़ लेता है और अपने आप को समझाने के प्रयास करता रहता है। इसके लिये वह तरह-तरह के झूठ बोलता

है और गलतियों को बढ़ावा देता रहता है। इस कविता में भूल-गलती का ज़िरह बख़्तर पहनना, इसी तरह के झूठों से घिरे होकर सुरक्षित होने का भ्रम पालना है। उसके हथियार यही झूठ हैं।

किंतु दूसरी ओर व्यक्ति का आत्मचेतम् मन या आत्मा या चेतना, जो इन झूठों, भूलों और गलतियों को स्वीकार नहीं कर पाती — और इनसे द्वंद्व की स्थिति में रहती है, अत्यधिक दब जाने पर छिलती रहती है इसीलिये इस कविता में उसे खून से लथपथ बताया गया है। मन या चेतना की आवाज स्वार्थ के कारण व्यक्ति नहीं सनता या उसे अनसुनी करता रहता है।

कवि या लेखक या सर्जक का कर्त्तव्य होता है कि वे सच बोले किंतु स्वार्थ, और झूठे मोह, पदोन्नति, यश-नाम की आकांक्षा के कारण वे भी खामोश रहते हैं और ईमान की बात नहीं करते।)

उद्धरण : उद्धरण के रूप में हम यहाँ "अंधेरे में" कविता का वह पूरा अंश ले रहे हैं, जिसे अभी आपने पढ़ा है।

जिन्दगी के ··········

··················

कौन मनु?

प्रसंग : यह उद्धरित अंश गजानन माधव मुक्तिबोध की कविता "अंधेरे में" से लिया गया है। यह कविता सबसे पहले मुक्तिबोध के प्रथम काव्य संग्रह "चाँद का मुँह टेढ़ा है" में प्रकाशित हुई थी। यह काव्य संग्रह तब प्रकाशित हुआ था, जब मुक्तिबोध दुर्भाग्य से मृत्युशय्या पर थे। "अंधेरे में" कविता मुक्तिबोध की सबसे लम्बी कविता है। इसमें लगभग पंद्रह सौ पंक्तियाँ हैं। यह मुक्तिबोध की अंतिम कविता भी कही जाती है।

संदर्भ : मुक्तिबोध के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने अपने सारे काव्य में एक ही कविता लिखी है और उनकी समस्त कविताएँ उस एक कविता के ही भिन्न-भिन्न खंड हैं। और "अंधेरे में" उस कविता का चरम बिन्दु है। फिर भी "अंधेरे में" कविता मुक्तिबोध की समस्त कविताओं में एक विशिष्ट कविता है। यहाँ व्याख्या के लिए जो अंश हमने लिया है, वह कविता का प्रारंभिक अंश है। कविता एक रहस्यमय वातारण का निर्माण करती हुई प्रारंभ होती है।

व्याख्या : कवि कहता है कि जिंदगी के अंधेरे कमरों में कोई लगातार चक्कर लगाता है। जिसके पैरों की आवाज बार-बार सुनायी पड़ती है किंतु वह दिखायी नहीं पड़ता है। वह किसी तिलिस्मी खोह में गिरफ्तार घूम रहा है। दीवार के दूसरी ओर से आती हुई गहन रहस्यमय अंधकार की ध्वनि उसके होने का प्रमाण देती है। वह अनिवार है अर्थात् उसे रोक पाना असंभव है।

कवि आगे कहता है कि मेरे दिल की धड़कन पूछती है कि वह कौन है? जिसके होने का एहसास उसके चलने और घूमने से हो रहा है, किंतु जो दिखाई नहीं दे रहा। इसके बाद अचानक दीवार का फूला हुआ पलस्तर गिरने लगता है, चूने भरी रेत झड़ने लगती है और दीवार से पलस्तर की पपड़ियाँ इस तरह गिरती हैं कि दीवार पर एक चेहरा बन जाता है, जिसकी नुकीली नाक और भव्य ललाट है, दृढ़ हनु (ठोडी) है। कवि कहता है कि यह आकृति अनजानी और अपहचानी है। कवि उसे जानने की कोशिश करता है ···· क्या वह मनु है?

मुक्तिबोध की अन्य कविताओं में भी इसी प्रकार का रहस्यमयी विराट पुरुष आता है। "मेरे सहचर मित्र" में —

घुसती है लाल-लाल मशाल अजीब-सी
अंतराल विवरतम में
लाल-लाल कुहरा
कुहरे में, सामने, रक्तालोक-स्नात पुरुष एक
रहस्य साक्षात्

"मुझे याद आते हैं" कविता में भी —

निहाई से उठती हुई लाल-लाल
अंगारी तारिकाएँ बरसती हैं
जिसके उजाले में कि
एक अति भव्य देह
प्रचंड पुरुष श्याम
मुझे दीख पड़ता है

"पता नहीं" कविता में यह रहस्य पुरुष —

होता है प्रकट एक
वह शक्ति पुरुष
जो दोनों हाथों आसमान थामता हुआ
आता समीप
अत्यंत निकट।

वास्तव में यह रहस्यमयी, विराट पुरुष जो मुक्तिबोध की कविताओं में अचानक प्रकट होता है, जो रूप बदल-बदल कर आता है — वह मुक्तिबोध की वो आत्माभिव्यक्ति है, जिसकी खोज वे एक ओर तो आत्मसंघर्ष में करते हैं, दूसरे — बाह्य परिस्थितियों में। मनोविज्ञान का सहारा ले कर कहें तो वस्तुतः यह विराटकाय पुरुष अचेतन का प्रतीक है, अचेतन अनायास ही प्रकट होता है, अचेतन जिसमें मनुष्य की सारी संभावनाएँ एक बंद गुफा में कैद की तरह सोयी हुई हैं। इसलिए अचेतन से जब कुछ इच्छाएँ, संभावनाएँ, आकांक्षाएँ चेतन में आती हैं, तो उनका कोई क्रम नहीं होता, कोई निश्चित आकार नहीं होता। इसीलिए मुक्तिबोध का यह काव्यनायक भी कभी विराट होता है, कभी आसमान को हाथों में उठाकर प्रकट होता है। और जब भी वह प्रकट होता है — तब या तो बिजलियाँ चमकती हैं, पेड़ टूटते हैं या पलस्तर झड़ते हैं। अचेतन उस दीवार को तोड़कर ही प्रकट हो सकता है जो उसे चेतन से अलग करती है।

यह उद्धरण जिस भयानक सन्नाटे और रहस्यमय वातावरण की सृष्टि करता है — उससे कवि पाठक को एक संकेत तो यह देता है — कि यहाँ मन के तीव्र अंतर्द्वंद्व की स्थिति चल रही है। जिन्दगी के कमरों में अंधेरे/लगता है चक्कर/कोई एक लगातार। दूसरे इससे भयावह कथ्य की ओर भी संकेत मिलता है जिसे कविता आगे उद्घाटित करती है।

विशेष:

- यह उद्धरण एक ऐसे वैचारिक बिंब से निर्मित है जिससे मन के अंतर्द्वंद्व और संघर्ष का पता चलता है।
- इसमें फिल्मी तकनीक का इस्तेमाल हुआ है जैसे फिल्म में चित्र आते हैं वैसे ही यहाँ एक भयानक फिल्म की चित्र गति बनती हुई दिखाई पड़ती है।
- अंधेरा मुक्तिबोध के यहाँ "अचेतन" के आद्य बिंब के रूप में प्रयुक्त हुआ है। यहाँ भी "अंधेरा" अचेतन का प्रतीक बना है।
- काव्य भाषा में ज़िंदगी, अंधेरा, अचानक, चूने भरी रेत और भीत की पपड़ियों का खिसकना एक भयानक वातावरण की सृष्टि करते हैं।

29.7 सारांश

इस इकाई में आपने नयी कविता की प्रगतिशील धारा के प्रमुख कवि गजानन माधव मुक्तिबोध के काव्य के बारे में पढ़ा। मुक्तिबोध गहरे अंतर्द्वंद्व और तीव्र सामाजिक अनुभूतियों के कवि हैं। मुक्तिबोध मानते हैं कि यथार्थ एक स्तरीय नहीं, बहुस्तरीय होता है और गतिशील होता है। इस यथार्थ को अभिव्यक्त करने के लिये मुक्तिबोध ने फंतासी का इस्तेमाल किया है इसलिये उनकी कविताएँ लंबी कविताएँ हैं।

मुक्तिबोध के काव्य की अन्तर्वस्तु गहरी और व्यापक है। उन्होंने पूँजीवादी व्यवस्था के शोषण, बर्बरता और मनुष्य की मानसिकता को कुंद करते जाने के तरीकों का अपने काव्य में पर्दाफाश किया है। मुक्तिबोध का अभिव्यक्ति का आत्मसंघर्ष उनकी कविताओं में हर जगह मौजूद है। वे समाज में गली-सड़ी पूँजीवादी व्यवस्था के परिवर्तन के पक्षधर हैं।

मुक्तिबोध की काव्य भाषा सरल नहीं है। उसमें कठिन तत्सम शब्दों, अंग्रेजी-उर्दू के बहुत शब्द हैं। उनकी काव्य-भाषा नये प्रतीकों, बिंबों और आद्य बिंबों से गुंथी हुई है। नाट्यात्मक शैली उनकी काव्य शैली की एक प्रमुख विशेषता है।

निष्कर्षतः मुक्तिबोध का काव्य अपने समय के इतिहास के प्रश्नों को कविता में ढालने का प्रयास करता है।

29.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी (सं.) : *मुक्तिबोध*, ज्ञान भारती प्रकाशन, नई दिल्ली।

डॉ. लक्ष्मणदत्त गौतम (सं.) : *गजानन माधव मुक्तिबोध*, विद्यार्थी प्रकाशन, नई दिल्ली।

29.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

क) 1) "चाँद का मुँह टेढ़ा है", 2) "भूरी-भूरी धूल"।

ख) प्रगतिवादी और प्रयोगवादी प्रवृत्तियाँ।

ग) मुक्तिबोध के अनुसार "जनता का साहित्य" वह है जो जनता के जीवन मूल्यों को, जनता के जीवनादर्शों को प्रतिष्ठापित करता हो, उसे अपने मुक्तिपथ पर अग्रसर करता हो। अर्थात् जनता का साहित्य वह है जो जनता के लिये हो — चाहे वो अपनी अशिक्षित दशा के कारण उसे न समझ सके, किंतु यह उसी की भलाई के लिये कार्य करता हो।

घ) वर्ग-विभाजित समाज में बुद्धिजीवी का कर्तव्य है कि सर्वहारा का वह दिशा-निर्देश करके उसे परिवर्तन के लिये तैयार करे।

च) मुक्तिबोध पूँजीवादी व्यवस्था का विरोध, इस व्यवस्था द्वारा सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्तर पर किए जा रहे अमानुषिक शोषण, अत्याचार, आतंक और सत्ता की बर्बरता का पर्दाफाश करके करते हैं।

छ) यह वातावरण पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा निर्मित आतंक, शोषण और जनता की मानसिकता को नपुंसक बनाते चले जाने के कथ्य को बताता है।

ज) मध्यवर्गीय सुविधाभोगी बुद्धिजीवी वर्ग के।

झ) अंधेरा — शोषण, आतंक, भ्रष्टाचार और कुव्यवस्था का प्रतीक है और लाल — परिवर्तन का।

बोध प्रश्न 2

1 मुक्तिबोध का मानना था कि यथार्थ के तत्व परस्पर गुंफित होते हैं, साथ ही पूरा यथार्थ गतिशील होता है अभिव्यक्ति का विषय बन कर जो यथार्थ प्रस्तुत होता है वह भी ऐसा ही गतिशील है और उसके तत्व भी परस्पर गुंफित हैं। यही कारण है कि वे छोटी कविताएँ नहीं लिख पाते थे।

2 नाट्यात्मक शैली

'ब्रह्मराक्षस' निष्क्रिय, निस्संग बुद्धिजीवी का प्रतीक है जो निष्क्रिय रह कर समाज के रोगों की छानबीन तो करता है किंतु कुछ कर नहीं पाता। 'बरगद' मुक्तिबोध की कविताओं में भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रतीक बना है। कहीं वह ह्रासशील पूँजीवादी व्यवस्था से उत्पन्न सांस्कृतिक शून्यता का साक्षात् कराने वाला प्रतीक है, कहीं जनमानस आदर्शीकृत रूप है और कहीं मार्क्सवादी दर्शन का।

4 मुक्तिबोध द्वारा प्रयुक्त बिंबों को प्रमुख रूप से दो श्रेणियों — बिंब तथा आद्य बिंब में बाँटा जा सकता है। बिंब को प्राकृतिक बिंब, मानव संसार के बिंब तथा विशिष्ट वैचारिक बिंबों में वर्गीकृत किया जा सकता है। और आद्य बिंबों को जल, अंधकार, धरातंर, धरा के आद्य बिंबों में।

5 ये ऐसे बिंब होते हैं जो जातीय समूह के मन में युगों से स्थानांतरित होते रहते हैं और सबके लिये इनका एक ही अर्थ होता है।

6 संस्कृत के तत्सम् शब्द, अंग्रेजी शब्द, मराठी और उर्दू के शब्द।

इकाई 30 भवानी प्रसाद मिश्र

इकाई की रूपरेखा

30.0 उद्देश्य
30.1 प्रस्तावना
30.2 कवि परिचय
  30.2.1 जीवन-परिचय
  30.2.2 रचनाकार-व्यक्तित्व
  30.2.3 कृतियाँ
30.3 काव्य संवेदना
  30.3.1 काव्यानुभूति
  30.3.2 कविता की मूल्य दृष्टि
  30.3.3 मानव और प्रकृति
  30.3.4 जन जीवन के संघर्षों की वाणी
  30.3.5 विसंगति और विडम्बना
  30.3.6 जीवन दर्शन
30.4 काव्य-शिल्प
  30.4.1 काव्य-रूप
  30.4.2 काव्य-भाषा और सर्जनात्मकता
  30.4.3 काव्य प्रतीक और काव्य बिंब
  30.4.4 लय और छंद
30.5 काव्य वाचन और संदर्भ सहित व्याख्या
30.6 मूल्यांकन
30.7 विचार संदर्भ और शब्दावली
30.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
30.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

30.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- छायावादोत्तर कविता की पृष्ठभूमि में भवानीप्रसाद मिश्र की काव्य संवेदना से साक्षात्कार कर सकेंगे,
- कवि-परिचय, रचनाकार-व्यक्तित्व के बुनियादी सरोकारों से परिचित होने के साथ उनकी कृतियों के विषय में बता सकेंगे,
- कवि की काव्यानुभूति की बनावट में गांधी विचार-दर्शन की भूमिका से परिचित करा सकेंगे,
- नयी कविता के अनास्थावादी तेवर से अलग हटकर आस्थावादी मूल्यों की खुली वकालत के कारणों को बता सकेंगे,
- भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य-स्वभाव, काव्य-प्रेरणा, काव्य-दृष्टि और उद्देश्य का परिचय दे सकेंगे,
- कवि की अभिव्यक्ति-सम्पदा के सहज-सौन्दर्य की मार्मिकता से आत्मीय संवाद कर सकेंगे।

30.1 प्रस्तावना

कवि-जीवन के आरंभ से ही भवानी प्रसाद मिश्र छायावादी कविता की मूल दृष्टि और काव्य-शिल्प के मुहावरे के प्रति विद्रोही बनकर काव्य-सर्जना में प्रवृत्त हुए। उन्होंने अपनी कविता की स्वतंत्र राह स्वयं निर्मित की और किसी भी तरह की देशी-विदेशी काव्य प्रवृत्तियों के अनुकरण से दूर रहे। उनके कवि-मन का निर्माण वाल्मीकि-कालिदास, कबीर और सूर, भारतेन्दु और पं. रामनरेश त्रिपाठी की स्वच्छन्दता प्रिय दृष्टि ने किया। राष्ट्रीय जागरण ने उनकी सर्जनात्मकता में देश-प्रेम के संस्कारों को बलिष्ठ बनाया और मध्य प्रदेश की प्रकृति ने उनमें नया अनुराग पैदा किया। वे एक प्रकार से नर्मदा की तप-त्याग-धारा के परशुराम तेज वाले सन्त-कवि हैं। इस आधुनिक संत कवि को सत्य कहने और लिखने में ही जीवन की सार्थकता दिखाई देती है। वे किसी भी साहित्यिकवाद के भीतर बंधकर नहीं लिखते। दरअसल, पराधीनता उन्हें किसी तरह की स्वीकार न थी — न वाद की, न अंग्रेज की, न परायी भाषा की, न अभिव्यक्ति की, न पद-सत्ता की। वे सदैव स्थापित व्यवस्था के विरोध में रहे। दलितों-उपेक्षितों, दुर्भाग्य के मारे ग्रामीण बच्चों के लिए उन्होंने सदैव संघर्ष किया। फलस्वरूप उनकी कविता आत्माभिव्यक्ति के भीतर आत्मदान और आत्मप्रसार की कविता है। कहना न होगा उनमें इकबाल और निराला दोनों की अनुगूंज सुनाई देती है।

30.2 कवि परिचय

30.2.1 जीवन-परिचय

कविवर भवानी प्रसाद मिश्र का जन्म (29 मार्च 1913 ई.) टिगरिया ज़िला होशंगाबाद (म. प्र.) में हुआ। उनके पिता सीताराम मिश्र संस्कारवान व्यक्ति थे और हिंदी-संस्कृत अंग्रेज़ी तीनों का ज्ञान रखते थे। रात-दिन रामायण का पाठ करते थे और बालक भवानी प्रसाद को कविता सुनाते और याद कराते थे। भवानी प्रसाद की माँ गोमती देवी परोपकारी वैष्णव संस्कारों की महिला थीं। मातृ-संवेदनाओं और पिता के काव्य-संस्कारों का प्रभाव भवानी प्रसाद के काव्य-संस्कारों पर गहरा है। उनकी मानसिकता का गठन गाँव-नदी-पर्वत से हुआ। "छोटी सी जगह में रहता था, छोटी-सी नदी नर्मदा के किनारे, छोटे से पहाड़ विन्ध्यांचल के आंचल में साधारण लोगों के बीच। एकदम घटना विहीन अविचित्र मेरे जीवन की कथा है। साधारण मध्य वित्त के परिवार में पैदा हुआ, साधारण पढ़ा-लिखा और काम भी किए वे भी असाधारण से अछूते। मेरे आस-पास के तमाम लोगों की-सी सुविधाएँ-असुविधाएं मेरी थी। नरसिंह पुर में रहे और पूरे देश को वहीं से पाया। सन् 1934-35 में बी.ए. किया और माखनलाल चतुर्वेदी से भेंट की। चतुर्वेदी जी का प्रभाव ऐसा पड़ा कि लिखना राष्ट्रीय जागरण का पर्याय बन गया। माखनलाल ने इनका नाम रखा, 'बाल मोहन' पर अपने निर्णय से उस नाम से मुक्ति पाई। "मैंने बहुत छोटी उम्र में लिखना शुरू कर दिया था और जो लिखना शुरू कर देता है वह समकालीन साहित्य को पढ़ता है। 'प्रभा' की फाइलें पढ़ डाली थीं और 'कर्मवीर' हमेशा पढ़ते थे। 'सरस्वती', 'चाँद', 'सुधा', 'माधुरी' और 'विशाल भारत' के अध्येता थे।"

30.2.2 रचनाकार-व्यक्तित्व

छायावादोत्तर कविता में भवानी प्रसाद मिश्र का नाम अपनी अलग राह और अलग काव्य-खोज, भावचेतना के कारण एक दम विशिष्ट है। "मुझ पर किन कवियों का प्रभाव पड़ा, यह भी एक प्रश्न है। किसी का नहीं। पुराने कवि मैंने कम पढ़े, नये कवि जो मैंने पढ़े मुझे जंचे नहीं। मैंने लिखना शुरू किया तब अगर श्री मैथिलीशरण गुप्त और सियाराम शरण गुप्त को छोड़ दें तो छायावादी कवियों की धूम थी। 'निराला', 'प्रसाद' और 'पन्त' फैशन में थे। मेरी कम्बख्ती (जिसे कहने में भी डर लगता है) ये तीनों ही बड़े कवि मुझे लकीरों में अच्छे लगते थे। किसी एक की भी एक पूरी कविता बहुत नहीं भा गई।" अंग्रेज़ी स्वच्छन्दतावाद के कवियों मे वर्ड्सवर्थ और ब्राउनिंग को खूब पढ़ा — इधर रवीन्द्रनाथ प्रिय कवि रहे। वाल्मीकि-कालिदास तथा भक्ति काल के सन्त कवियों में इनका मन रमा और यह प्रभाव इनके कवि कर्म पर साफ झांकता है। वर्ड्सवर्ड की एक बात उन्हें बहुत जँची कि "कविता की भाषा यथासंभव बोलचाल की भाषा हो।" यह आदर्श उन्होंने अपने रचना-कर्म में जीवन भर पालन किया है कि —

> जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख,
> और उसके बाद भी हमसे बड़ा तू दिख।

मिश्र जी को सन् 1943 ई. में तीन साल की जेल हुई। इसी बीच उन्होंने बंगला सीखी तथा बंगला साहित्य के महत्वपूर्ण ग्रंथों का अध्ययन किया। किन्तु वे भारतेन्दु, मैथिलीशरण, माखन लाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन और पं. रामनरेश त्रिपाठी की परंपरा के रचनाकार रहे हैं। फलतः ईश्वर और आध्यात्म के चक्कर में कभी नहीं पड़े। जो मूर्त और प्रत्यक्ष मानव है वही उनके सृजन का लक्ष्य है। कविता में वही लिखा जो उनके काव्यानुभव का विषय रहा। झूठी काव्य-गप्प से सदैव दूर रहे। उनके व्यक्तित्व पर नर्मदा और तप-तेज के प्रतीक परशुराम की परंपरा का गहरा प्रभाव पड़ा। किसी भी वाद, दर्शन या टैकनीक के प्रति आकर्षण नहीं रहा। "संकल्प यही रहा कि दर्शन में अद्वैत, वाद में गांधी और टैकनीक में सहज ही लक्ष्य मेरे बन जायें, यही कोशिश है।" भवानी भाई पत्रकारिता और कविता में गांधी-विचार दर्शन के जीवन भर श्रद्धावान व्याख्याता रहे। उन्होंने माखन लाल जी की एक बात गांठ बांध ली कि "तुम्हारा आसान लिखना छूट न जाए, इसकी सावधानी रखना। किन्तु यह भी ध्यान रखना कि आसान लिखना ध्येय नहीं है। ध्येय है लिखना, मन की बात, भीतर की बात, भीतर से भीतर की बात, और वह इस तरह कि वह न तो सूत्रबद्ध हो न भाष्य। जो मन में न समा सके, उसे वाणी तक लाओ। किन्तु जुबांदराजी मत करो। कलम को जीभ मत बनने देना।" इस संकल्प ने ही ब्रिटिश साम्राज्यवाद पर चोट की और फ्रायड तथा मार्क्स के आंतक से मुक्त रखा। "गांधी के प्रेम, सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह को हर कीमत पर काव्याभिव्यक्ति दी और देशभक्ति के आंदोलनों को निर्भय वाणी। गरीब, किसान-मजदूर जनता के लिए जीवन भर संघर्ष किया और आपातकाल (इमर्जेन्सी) में सरकार की कटु आलोचना की। सच बात यह है कि भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य-व्यक्तित्व एक "खरे संत योद्धा" के काव्य-व्यक्तित्व का पर्याय रहा है। उनका निधन 20 फरवरी 1985 को नरसिंहपुर में हुआ।

30.2.3 कृतियाँ

मिश्र जी ने सन् 1930 ई. से काव्य-सृजन शुरू किया और तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में खूब छपते रहे। कवि रूप में उनकी ख्याति 1940 ई. तक फैल गई पर एक साथ बहुत सी कविताएँ "दूसरा सप्तक" (1951 ई. सं. अज्ञेय) में छपी जिनको पर्याप्त आदर मिला। प्रथम काव्य-संग्रह "गीत फरोश" सन् 1956 ई. में प्रकाशित हो पाया। इस अकेले काव्य संकलन की कविताओं ने उनके कवि की धाक जमा दी। आधुनिक हिंदी कविता की विकास-यात्रा का यह संकलन एक ऐतिहासिक दस्तावेज है। गांधी-विचार दर्शन से ओतप्रोत पाँच सौ कविताओं का संकलन "गांधी पचंशती"

के नाम से आया। "चकित है दुख", "अंधेरी कविताएँ", "बुनी हुई रस्सी", "व्यक्तिगत", "खुशबू के शिलालेख", "परिवर्तन जिए", "त्रिकाल संध्या", "अनाथ तुम आते हो", "इदं न मम", "शरीर कविता फसलें और फूल", "मान सरोवर दिन", "सम्प्रति", "तुकों के खेल" "नीली रेखा तक" तथा "तूस की आग" आदि अन्य प्रसिद्ध काव्य-संकलन हैं। इन्होंने एक प्रबंध काव्य की रचना भी की है। 'कालजयी' नामक यह प्रबंध कृति अशोक की कथा पर आधारित होने से ऐतिहासिक प्रबंध काव्यों की श्रेणी में आती है। इसमें ऐतिहासिक कथा के माध्यम से कवि ने प्रेम-अहिंसा के मानवीय मूल्यों की स्थापना की है।

भवानी प्रसाद मिश्र का सम्पूर्ण काव्य-सृजन मानवीय मूल्यों की विश्व-दृष्टि का अक्षय भण्डार है। देश और काल की सीमाओं को अतिक्रान्त करते हुए वे प्रगतिशील चेतना के तेजस्वी रचनाकार हैं। "कवि" शीर्षक कविता में उन्होंने कहा है "कलम अपनी साथ/और मन की बात बिल्कुल ठीक कह एकाध/यह कि तेरी भर न हो तो कह/और बहते बने सादे ढंग से तो बह/" कहना न होगा कि अन्याय और अत्याचार के सक्रिय विरोध में खड़े इस कवि की वाणी में तलवार से ज्यादा पैनी धार है।

बोध प्रश्न 1

1 भवानी प्रसाद मिश्र के जीवन का पाँच पंक्तियों में परिचय दीजिए।

....

....

....

....

....

2 भवानी प्रसाद मिश्र के रचनाकार-व्यक्तित्व की दो विशिष्टताओं का उल्लेख कीजिए।

....

....

3 सही ✓ गलत × पर निशान लगाइये।

भवानी प्रसाद मिश्र के प्रबंध काव्य का नाम —

i) गीत फरोश ( )

ii) कालजयी ( )

iii) नीली रेखा तक ( )

iv) तूस की आग ( )

4 भवानी प्रसाद मिश्र की रचनाओं की सृजन-दृष्टि पर तीन पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

30.3 काव्य संवेदना

30.3.1 काव्यानुभूति

मिश्र जी चिंतन को अनुभूति में फेंटकर प्रस्तुत करने में दक्ष हैं। नतीजा यह है कि उनकी आत्माभिव्यक्ति में भाव उष्मा के साथ आत्म-विस्तार और आत्म-परिष्कार के तत्व प्रधान रहते हैं। मूलतः उनकी काव्य संवेदना में गांधी-विचार दर्शन के मूलाधारों का विस्फोट है और यह विस्फोट गीतात्मक है। नयी कविता में वे एक मात्र ऐसे कवि हैं जिनकी काव्यानुभूति में किसान, मजदूर, बच्चे और नारी इन सभी की समस्याओं का दर्द मूल संवेदना में जज्ब होकर सहजता से बोलता है। उन्होंने अपनी काव्यानुभूति का संस्कार स्वाधीनता आंदोलन की मुक्ति चेतना से किया है। अंग्रेज और अंग्रेजियत, पूँजीवाद और उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद और रूसी साम्यवाद सभी पर चोट की है। उनका कथन है "मैंने अपनी कविता में प्रायः वही लिखा है जो मेरी ठीक पकड़ में आ गया है। दूर की कौड़ी लाने की महत्वाकांक्षा भी मैंने कभी नहीं की।" बहुत मामूली रोजमर्रा के सुख-दुःख मैंने इनमें कहे हैं जिनका एक भी शब्द किसी को समझाना नहीं पड़ता

— "शब्द टप-टप टपकते है फूल से/सही हो जाते हैं मेरी भूल से"। लोकजीवन की खरी संवेदना ही उनकी काव्य-वस्तु का मूलाधार है। काव्यानुभूति में लोक-वेदना का यही संसार घुमड़ता रहता है जैसे —

तंग गलियों में कहीं बच्चे खड़े हैं
लाल हैं पर भाग पत्थर से अड़े हैं
भूल के हीर नहीं अब धूल है ये
फूल जंगल के नहीं अब शूल हैं ये।

यह काव्यानुभूति उस व्यवस्था और सत्ता की विसंगतियों पर व्यंग्य करती है जिसमें बच्चे तक दरिद्रता में मर रहे हैं उनका बचपन सिसक रहा है 'हाय रे बचपन तलक सुख से न बीता, वाह रे, दारिद्र तूने खूब लूटा।'

उन्होंने झोपड़ी और महलों की लड़ाई को समझते हुए लिखा है कि यदि झोपड़ी मिटेगी तो महल भी नहीं बचेगा —

एक दिन होगी प्रलय भी
मत रहेगी झोपड़ी मिट जायेगा नीलम निलय भी।

पूँजीपतियों, मुनाफाखोरों, देशद्रोहियों के खून सने जबड़ों की उन्हें सच्ची पहचान है। इसलिए उनकी काव्यानुभूति का दर्द सच्चा है। व्यंग्य और वक्रोक्ति से कवि मन खौलता मिलता है —

आप सभ्य हैं क्योंकि धान से भरी आपकी कोठी
आप सभ्य है कि क्योंकि वक्त पर कटवा देते बोटी!

उनके गांधी-दर्शन की काव्यानुभूति में हर सत्य को निर्भयता से कहने की गजब की ताकत है। 'आपात काल' के दिनों में वे 'त्रिकाल सन्ध्या' लिखते हैं और सत्ता के क्रूर चरित्र को उधेड़कर रख देते हैं। नयी कविता में उनकी काव्यानुभूति का तेवर कबीरनुमा रहा है। बैनों के बान मारकर वे हर जोखिम झेलने की तैयारी करते हैं।

उनकी काव्यानुभूति में प्रकृति की लय है। भारतीय जीवन की सन्त-लय ने उनकी कविताओं में स्थान पाया है। "गीत फरोश", "सतपुड़ा के जंगल", "सन्नाटा", "शब्दों के तल्प पर", "घर की याद", "त्रिकाल सन्ध्या", "नीली रेखा तक", "तूस की आग" आदि उनकी ऐसी ही श्रेष्ठ कविताएं हैं। उनकी काव्य-यात्रा अंत तक गांधी जी के विचारों का काव्यानुवाद करती रही। हालांकि आजादी के बाद की निराशा, लूट का अंधेरा उनकी काव्यानुभूति में दर्द बनकर बना रहा है। किन्तु इस काव्यानुभूति में अस्तित्ववादी दर्शन की वह अनास्थावादी दृष्टि नहीं है जिससे नयी कविता के अधिकांश कवि समझौता किए रहे हैं। वे मानवीयता और अखंड आस्था के भारतीय कवि हैं। इसलिए उनकी काव्यानुभूति में भारतीय लोक जागरण की परंपरा बिजली-सी कौंध रही है। अहिंसा की प्रेम धारा का पवित्र जल इस काव्यानुभूति को सींच कर शक्ति देता रहा है। यहाँ कविता में नर्मदा का परशुराम तेज तपड़ता है और कविता का स्रोत सतपुड़ा की कठोर चट्टानों को फोड़कर उमड़ पड़ता है।

भवानी प्रसाद मिश्र भावाडम्बर, बौद्धिक दुरूहता और व्यक्तिवादी चिंतन के रचनाकार नहीं हैं। बृहत्तर मानव समाज से कटने वाली अनुभूति का उनके लिए कोई मूल्य नहीं है।

30.3.2 कविता की मूल्य दृष्टि

उनकी कविता का प्रधान मूल्य है मानव की मुक्ति, शोषण मुक्त सामाजिकता, गंवई संवेदना की भावभूमि का खरापन, सन्त-भाव की करुणा और गांधी-विचार दृष्टि की मूल्य चेतना। इन जीवन मूल्यों को उन्होंने जूझकर कमाया है। इन्हीं मूल्यों की रक्षा के लिए उन्होंने अंग्रेज पर चोट की है और सत्ता के साँड़ों को काबू में करने वाली नकेल डालनी चाही है। जन के सम्बोधन और प्रश्नाकुलता इस काव्यात्मकता में बहुत है और यह इस बात का प्रमाण है कि वे सामाजिकता की व्यापक भूमि पर कविता को रचते हैं। उन्होंने बार-बार दुहराया है —

सच कहो कवि आत्मा से पूछकर
सच कहो कवि मन किसी का भय करो।

यहाँ "आत्मा" शब्द से डरने की जरूरत नहीं है। भारतीय दर्शन का यह शब्द यहाँ अन्तर्मन के अर्थ में आया है — आत्मा के दार्शनिक चिंतन-प्रपंच को लेकर नहीं। उनकी कविताओं में गाँव की गरीबी और खेतिहर किसान की पीड़ा है। फिर भी कहा यही है —

सहो
और बेहतर बातों के लिए
रहो।

उनके काव्य के मूल्य, गांधी-विचार दर्शन में धुले खादी के मूल्य हैं। एक प्रकार से यह खादी की कविता है जिसमें एक संस्कृति का इतिहास बोलता है। वे भोले कवि हैं पर शंकर का क्रोध उनमें रंग दिखा देता है। इसलिए उनके काव्य के बोलों का असरदार हाशिया है —

और न जाने क्या-क्या बोला। पिछले साल भवानी भोला।

इस कविता के स्वाधीनता परक मूल्य दृष्टि और प्रेरणा-शक्ति पर माखन लाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी और बालकृष्ण शर्मा नवीन तीनों की छाप है। उन्होंने नए मानव की हर बात कही है पर ऐसे सांचे में ढालकर कि उसके भीतर

छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता का सांचा छोटा पड़ा है। फलतः कविताओं में उनका बल "नयी" पर कम "कविता" पर ज्यादा है। वे कहते रहे हैं —

अगर गा न पाये तो हल्ला करेंगे
इस हल्ले में मौत आ गई तो मरेंगे।

(गांधी पंचशती)

जन-जीवन का हर कोना वे छानते हैं, हर आंख के आंसू पर उनकी दृष्टि अटकी है और सत्ता की हर हरकत पर उनकी लेखनी तलवार की तरह चली है।

30.3.3 मानव और प्रकृति

इस कविता के सौन्दर्य संसार में मानव तथा प्रकृति दो नहीं हैं — दोनों में अद्वैत है। यही उनके चिंतन का काव्यात्मक अद्वैतवाद है। वे नदी की तरह बहना, फूल की तरह खिलना, धूप की तरह फैलना चाहते हैं। विन्ध्य पर्वत और नर्मदा के वन उनमें विस्तार पाए हुए हैं। मध्य प्रदेश की आदिम जातियाँ जिन वनों में रहती हैं उन सतपुड़ा के वनों में उनकी दृष्टि का प्रवेश है। फलतः जन-मन से एकाकार होकर ही इस कविता में शक्ति आई है —

वे ऐसा गाँव देखते रहे हैं —

गांव जिसमें झोपड़ी है घर नहीं है
झोपड़ी की फटकियां हैं दर नहीं है,
धूल उठती है, धुएं से दम घुटा है
मानवों के हाथ से मानव लुटा है।

पर इस कविता में जो मनुष्य परिभाषित हुआ है वह एकदम मस्त, निर्भय और श्रमी आदमी है।

भवानी भाई के काव्य में प्रकृति की संवेदना का विस्तार है। फूल-पत्ते, नदी, मैदान, पर्वत, लताएँ, जंगल, खेत, पशु-पक्षी यह सब मिल कर बनाते हैं उनका काव्य संसार। कालिदास का मन इस कवि में नए ढंग से खुलता है। मेघ, बूंद, धूप सबके साथ उनका सौन्दर्य बोध तदाकार है। आधुनिक भाव-बोध के इस कवि के लिए यह एक आंतरिक जरूरत थी कि वह प्रकृति की मुक्तता में अपनी वैयक्तिक स्वाधीनता और सामाजिक स्वाधीनता की खोज करे। इस मुक्ता-कांक्षी कवि के लिए प्रकृति की स्वच्छन्दता का आकर्षक इसलिए भी था कि वह रूढ़ियों को तोड़कर चैन से जीवन जी सके। इसलिए भवानी भाई ने अपने प्रकृति-प्रेम को देश प्रेम में एकाकार कर दिया है। इस प्रेम का आत्म प्रसाद देश में मनुष्य, नदी, पर्वत, निर्झर, सरोवर, फूल, पत्ते, लता गुल्म, पशु-पक्षी सभी तक है। भवानी प्रसाद मिश्र मानते हैं कि फूल हमारे वनस्पति जगत् की संवेदनात्मक पहचान हैं। प्रकृति सृजन के लिए पतझड़ के बाद नव पल्लवन करती है। पल्लवों में फूल और फल आते हैं। मूल बात यह है कि हमारी सांस्कृतिक अवधारणा में पेड़-पौधे कई अर्थों में मनुष्य के समान हैं। पुराने पत्तों का झर जाना जीर्ण संस्कारों से मुक्ति पाना है। पुनः नये पत्तों का आना नए जीवन का उदित होना है। पूजा में नए पत्तों और फूलों का महत्व इसीलिए अधिक है कि हम प्रकृति सुन्दरी के मनोभाव को व्यक्त करते हैं। केवल फूल ही चढ़ा दें तो पूरी पूजा सम्पन्न हो जाती है। आगम परंपरा मानती हैं कि फूल आकाशतत्व है — फूल चढ़ाकर हम अपने लघु अस्तित्व को किसी महत्तर के प्रति अर्पित कर देते हैं। भवानी भाई अपनी कविता में इस प्रकृति सन्दर्भ को जगह-जगह अभिव्यक्ति देते हैं —

फूल लाया हूँ कमल के क्या करूँ इनका
पसारें आप आंचल छोड़ दूं हो जाए जी हलका।

भारतीय कविता का प्रसिद्ध उपमान है — कमल का फूल। यहाँ तक कि हमारे देवी-देवता कमल नयन, राजीव लोचन, कमलासन, करकमल, और पदकमल हैं। उनके मुख में कमल की गंध है, आँखों में कमल का रंग और आकार, हाथ में कमल की जागरूकता और चरणों में कमल की गति है। कमल में भक्तियोग, ज्ञान योग, कर्मयोग तीनों का एकांतवास है। साधना से साधक कमल को हृदय में खिलाता है। पार्वती के हाथ में लीला कमल है। पूजा में घट जाने पर कमल ही राम का दक्षिण नयन है। विष्णु की दाहिनी आँख सूर्य है। कमल सूर्य से खिलता है। मूल बात यह है कि हमारी जातीय चेतना कमल से पड़ी है। यहां तक कि प्रत्येक ऋतु का एक अलग फूल है, शरद का कमल है वसन्त का कुरंवक। इन सभी फूल प्रतीकों में हमारी सौन्दर्य बोध की अवधारणा के बीच-भाव मौजूद हैं। स्वाधीनता आंदोलन के दिनों में फूल के साथ उत्सर्ग और अर्पण का देशभक्ति भाव जुड़ गया। भारतेन्दु, श्रीधर पाठक, माखनलाल चतुर्वेदी की इसी भाव परंपरा में भवानी प्रसाद मिश्र के प्रकृति प्रेम को देखा जा सकता है। विशेष बात यह है कि मिश्र जी की कविता में कालिदास की तरह जल बहुत है, जल के प्रतीक अनेक हैं। यहाँ नर्मदा का जल भीतर के तप का प्रवाह है।

नदी का भारतीय संस्कृति में गुणगान बहुत है। संस्कृति में इसका महत्व क्यों है? कारण, नदी हमारी पूरी जीवन प्रणाली रही है। नदियां ही नाड़ी हैं जो भौगोलिक एकता को बनाए रखती हैं। नदियों का जल हमारी समष्टि चेतना का अविरल प्रवाह है। फिर भवानी भाई के काव्य की प्रेरणा की नदी नर्मदा है। नर्मदा क्वारी नदी है, इसलिए बहुत प्रबल है और अनियन्त्रित भी। फिर यह गंगा से विपरीत दिशा में बहती है। नर्मदा, क्रोध, तप और टकराव की धारा है। नर्मदा का इतिहास परशुराम से जुड़ा है। इसी नदी की चोट से पत्थर शंकर हो गए। इसके गेड़ों से ओंकारेश्वर बनाए गए। यदि हम नर्मदा की उपेक्षा करेंगे तो हमारी प्रवाह धर्मी संस्कृति के मूल्य चुक जायेंगे हमारा सांस्कृतिक मन बीमार और विकृत

हो जायेगा। इसलिए भवानी प्रसाद के काव्य में आने वाली नदी नर्मदा का अर्थ विस्तृत है और गहरा भी। नर्मदा नदी के इस भावार्थ की उपेक्षा करने पर हम भवानी प्रसाद मिश्र के काव्यार्थ को नहीं समझ सकते हैं। क्योंकि उनकी कवि मानसिकता का निर्माण इसी नदी की भावभूमि ने किया है।

भवानी प्रसाद मिश्र का प्रकृति के प्रति विशेष लगाव रखना व्यक्तिगत स्वच्छन्दता की आकांक्षा का तो प्रतीक है ही, वह मानव की प्रकृत स्वाधीनता का भी संदेश रूप है। मिश्र जी का प्रकृति सौन्दर्य की महिमा का गान करना, प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता मानना वाल्मीकि-कालिदास की परंपरा का प्रभाव भी है। स्वयं रवीन्द्रनाथ को नया आलोक-प्रकृति से ही मिला था। भवानी भाई पर रवीन्द्रनाथ की "निर्झर स्वप्न भंग" कविता का असर दूर तक मिलता है, रवीन्द्र उनके प्रिय कवि थे। निराला का "बादल राग" केदारनाथ अग्रवाल की कविता "घन गरजे जन गरजे" की धमक भी भवानी की काव्य-चेतना पर सीधी छाप छोड़ती रही है। विन्ध्यांचल, सतपुड़ा का परिवेश उनमें रचा पचा है और इसे उनका काव्य विविध रूपों में चित्रित करता रहा है।

30.3.4 जन जीवन के संघर्षों की वाणी

मूलतः भवानी प्रसाद मिश्र गांव की संवेदना के कवि हैं। जन जीवन की विषमताओं विडम्बनाओं और विसंगतियों को ये वाणी देते हैं। उनके गांधीवादी स्वर में साम्यवादी आक्रोश शुरू से ही रहा है। यदि श्रमिक के श्रम को हड़पने का यह लूटतन्त्र चलता रहा तो जनक्रांति हो जायेगी। "दूसरा सप्तक" में "प्रलय" कविता इसी मनोभूमिका को व्यक्त करती है —

> एक दिन होगी प्रलय भी
> मत रहेगी झोपड़ी,
> मिट जायेंगे, नीलम निलय भी।

यदि श्रम का सही बंटवारा न हुआ तो हिमालय की बर्फ से आग फूट पड़ेगी। बर्फीली सतह अन्यायी का खून पीकर लाल हो जाएगी और

> काल होगी तारिणी गंगा
> तरणिजा व्याल होगी,
> और शिव होंगे न शंकर
> कंठगन जय माल होगी
> कर न पायेगा हमें आश्वस्त
> जननी का अभय भी।
> एक दिन होगी प्रलय भी।

भारत में आजादी के सूर्य के उदित होने के बाद भी गाँव में अंधेरा है। छोटे-बच्चे अभाव और भूख, अशिक्षा और शोषण में बर्बाद हो रहे हैं। खेतिहर किसान-मजदूर फसलों को उगाकर भी भूखा है। थोड़े से सफेद पोश लोग रंग, भाषा, नस्ल, जाति और व्यवस्था के साम्राज्यवादी हितों को पालकर भोग रहे हैं शोषण के साँप की जीभ बढ़ती ही जाती है — उसका कोई अन्त नहीं है। इस गरीब जनता की व्यथा के लिए मिश्र जी की कविता में व्याप्त मानववाद एक मूल्यवान जीवन दृष्टि है। भारत के आपातकाल के दिनों में वे "त्रिकाल सन्ध्या" की कविताएँ लिखते हैं और सत्ता के जुल्म-जोर को खुली चुनौती देते हैं। सत्ता हथिया कर जो सभ्यता-संस्कृति और शांति का नारा लगाता है, जनता को गुमराह करता है — यह कविता उसके विरोध में खड़ी होती है। माखनलाल से भवानी प्रसाद ने यही सीखा है कि वे देश और जनता के लिए सत्ता को खुली चुनौती देते हैं और उनकी कविता अन्याय के प्रति एक तेज ललकार बन जाती है। उनकी कविता में झूठी करुणा का नाटक नहीं है उसमें कवि का युग संघर्ष बोलता है।

30.3.5 विसंगति और विडम्बना

भवानी भाई की सर्जनात्मकता में विद्यमान विसंगति और विडम्बना को लेकर नयी कविता के कवि आलोचक अज्ञेय जी ने लिखा है कि वे गंभीर से गंभीर बात को निहायत सरल, सादा, स्पष्ट और गंभीर ढंग से कहने की कला में दक्ष हैं। गंभीर विषय को वस्तु बनाते समय उन्हें प्रयास नहीं करना पड़ता। जैसे डाली पर फूल खिलता है वैसी ही उनकी कविता प्रकृत भाव-भूमि से उपजाती है। व्यंग्य और वक्रोक्ति की पैनी धार का भरपूर वार भी वे काफी सधे हाथों से करते हैं। उनकी कला का यह आदर्श "गीत फरोश" कविता में देखा जा सकता है। इस कविता को लेकर अज्ञेय जी ने लिखा "मैं इस बात को कुछ दूसरे ढंग से कहूँ? नाटकीयता तो खैर इसमें है, पर असल विशेषता यह है कि इसकी गंभीर बातों को हल्के ढंग से कहा गया है। नयी कविता में यह भी है और इससे ठीक उल्टा भी है, बहुत हल्की बात को गंभीरता से कहना या कम से कम चमत्कारपूर्वक कहना या कह लीजिए छोटी बात में से चमत्कार खोज लेना। बल्कि उसका एक सिद्धांत यह हो सकता है कि छोटी बात कोई है ही नहीं। उसे देखने में ही सारा चमत्कार निहित है।" (आधुनिक साहित्य : एक परिदृश्य पृ. 152) विषय को प्रस्तुत करने की अदा तो "गीत फरोश" में है पर कविता पूरी तरह विषयवस्तु पर ही केन्द्रित है रूप का चमत्कारी रूझान उसमें नहीं है। इस बात को "कविता के नए प्रतिमान" (पृ. 165) में नामवर सिंह ने स्वीकार करते हुए कहा है कि "इसका कवित्व एक गंभीर बात को निहायत अगंभीर ढंग से कहने में है और यह अगंभीरता कविता के स्वर (टोन) में है।" गंभीरता के आडम्बर में भवानी भाई काव्यात्मकता को गायब नहीं करते। ज्ञान उनके लिए बोझ नहीं है, सहज प्राप्त सम्प्रेषण है। नई कविता में विसंगति-विडम्बना के

दृश्य दिखाने के लिए सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, विजयदेव नारायण साही, शमशेर और केदारनाथ सिंह इस तकनीक का प्रायः प्रयोग करते रहे हैं और इन सभी को इन प्रयोगों में सफलता मिली है। नितांत भिन्न और असम्बद्ध समझी जाने वाली वस्तुओं का ये कवि सफल ढंग से संयोजन कर देते हैं और एक नया अर्थ-सूर्य निकल पड़ता है। हिंदी के ये कवि क्रीड़ा-कौशल का खूब और अनेक रूपों मुद्राओं, स्थितियों, प्रकरणों, मिथकों, में उपयोग कर लेते हैं। पर इन सभी में सामंजस्य से ज्यादा द्वंद्व है और तनाव का भीतरी परिवेश। इसलिए यह कविता एक नयी मनः स्थिति का जटिल बिंब है — एक नए राग संबंध का नया उद्घाटन। किन्तु भवानी प्रसाद की ईमानदारी यह है कि वे दूर की कौड़ी लाने के लिए नहीं भटकते। उन पर पश्चिम का ऋण नहीं है और वे अस्तित्वादी अनुभूति को पास नहीं फटकने देते। उनकी अनुभूति की प्रामाणिकता भारतीय परंपरा के मूल स्रोतों से जुड़कर ही सिद्धि पाती है।

30.3.6 जीवन दर्शन

वास्तव में मिश्र जी का जीवन दर्शन गांधी-विचार दर्शन पर केन्द्रित है। जीवन के छिछले-हल्के विकृत बाह्य भौतिकवादी मूल्य उनकी कविदृष्टि को परितोष नहीं दे पाते। गांधी पर लिखीं अपनी अनेक कविताओं में उन्होंने साम्यवादी मित्रों को संबोधित करते हुए कहा है कि गांधी-विचार दर्शन को प्रतिगामी दृष्टि घोषित करना अपनी सांस्कृतिक परंपरा से ही मुँह फेर लेना है। कारण, गांधी-विचार दर्शन में हमारी सन्त-परंपरा कबीर, नानक, रैदास, तुलसी का विचार प्रदीप्त है। हमारे स्वाधीनता संग्राम के अन्तिम दौर ने भी यही सिद्ध किया है कि गांधी ही भारत की गरीब जनता के सच्चे जननायक थे और उन्होंने एक खास ढंग से जनता को संगठित करके ब्रिटिश साम्राज्यवाद के पैर उखाड़ दिए। गांधी ने जाति, धर्म, सम्प्रदाय, रंग, वर्ग, वर्ण आदि से ऊपर उठकर जन आकांक्षाओं को साकार किया और हमारे इतिहास की दिशा बदल दी। उन्होंने सिद्ध किया कि अहिंसा, प्रेम और सत्याग्रह में जो ताकत है उसके सामने हिंसा, तोप, तलवार, बम की शक्ति तुच्छ है। गांधी आधुनिक भारत की मुक्ति और लोकमंगल की सिद्धि हैं। हमारा दुर्भाग्य यह रहा है कि हमने अपनी हर चीज को तुच्छ मानकर पश्चिम का मुँह ताका है और अपनी सभी समस्याओं का हल पश्चिम से माँगा है। पर पश्चिम हमारी समस्याओं का हल नहीं दे सकता। क्योंकि हमारी सामाजिक-सांस्कृतिक परंपराएँ पश्चिम से भिन्न है। अपने इतिहास के हाशिए में ही हम अपनी समस्याएँ हल कर सकते हैं। मिश्र जी ने बराबर कहा है —

> लेकर समूची मानवता की परम्परा में
> अब तक के सबसे सीधे-सादे निर्भय और स्नेही आदमी
> गांधी का नाम।

उनका प्रबंध काव्य "कालजयी" अशोक की ऐतिहासिक कथा के माध्यम से गांधी-विचार दर्शन की महत्व-प्रतिष्ठा करता है। सच बात यह है कि नयी कविता की मध्यवर्ती अन्तर्धारा में गांधी विचार प्रवाह से जो काव्यात्मक तेज उत्पन्न हुआ है उसकी सबसे अधिक विश्वसनीय अभिव्यक्ति मिश्र जी के काव्य में हुई है। गांधी विचार-चेतना के वे नयी कविता में प्रतिनिधि कवि हैं।

बोध प्रश्न 2

1 भवानी प्रसाद मिश्र की काव्यानुभूति पर विचार कीजिए। अपना उत्तर आठ पंक्तियों में दीजिए।

....
....
....
....
....
....
....

2 भवानी प्रसाद मिश्र की कविता की मूल्य-दृष्टि की चर्चा तीन पंक्तियों में कीजिए।

....
....
....

3 मिश्रजी के काव्य को ध्यान में रखते हुए मानव एवं प्रकृति के रिश्ते पर विचार कीजिए।

....
....
....
....
....

4 भवानी प्रसाद मिश्र का कवि जन-जीवन के संघर्षों को किस रूप में व्यक्त करता है? चार पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

5 भवानी प्रसाद मिश्र की जीवन-दृष्टि पर सही ✓ गलत × का निशान लगाकर बताइये कि किस विचारधारा का प्रभाव है ?

1) समाजवाद ( )

2) मार्क्सवाद ( )

3) गांधी विचार दर्शन ( )

4) अस्तित्ववाद ( )

30.4 काव्य-शिल्प

भवानी प्रसाद मिश्र को चमत्कृत करने वाले कृत्रिम काव्य-शिल्प का मोह नहीं है। उनकी नैसर्गिक प्रतिभा में सर्जनात्मकता सहज-स्वच्छ रूप में निखार पाती है। उनके काव्य का मुहावरा किसी भी पूर्ववर्ती या समकालीन कवि का न तो अनुकरण है न मेल खाता है। उन्होंने कविता को आम आदमी का संवाद बनाया है, उसमें बोली की लय का संगीतात्मक राग बजता है। उनके कहने की अदा एकदम मौलिक, अद्वितीय और सहज स्फूर्त है। उनके "अंदाजे बयां और" में व्यंग्य और कथन भंगिमा की विचित्रता का विशेष महत्व है और उनकी काव्य शैली नितांत उनकी है जिसे एक काव्य पंक्ति से पहचाना जा सकता है — वे लीक पर कभी नहीं चलते। यथा

नये ठाठ से नई राह पर कदम धर दिया है
खाहमख्वाह टहलना हमने बंद कर दिया है।

सन्नाटा, गिरगिट, साँप, खण्डहर, पहाड़, मैदान सभी का अंतरंग स्पर्श वे कर सकते हैं। वे "सन्नाटा" और "खण्डहर" पर भी मजे से कविता लिख सकते हैं —

मैं सन्नाटा हूँ फिर भी बोल रहा हूँ
मैं शांत बहुत हूँ फिर भी डोल रहा हूँ।

सपाट बयानी को कविता बना देना चुनौती होता है पर भवानी भाई उसे कविता बना देने में सक्षम रहे हैं। "सतपुड़ा के जंगल" कविता में उनकी यही वर्णन शक्ति काम करती है —

उतर कर बहने अनेकों, कल कथा कहते अनेकों,
नदी, निर्झर और नाले, इन वनों ने गोद पाले।
लाख पंछी सौ हिरन दल चाँद के कितने किरन दल
झूमते वन फूल फलियाँ, खिल रही अज्ञात कलियां।

इस काव्य-शिल्प की सपाट बयानी में प्रयोग के स्तर पर विशेष बात यह है कि कवि भाव-भूमि पर प्रकृत-चित्रण, लोक-गीतों का प्रयोग और प्रचलित लोक-धुनों की ओर विशेष झुकाव रखता है। यह उसकी महत्वपूर्ण प्रवृत्तिगत उपलब्धि भी कही जा सकती है, उदाहरणार्थ —

पीके फूटे आज प्यार से पानी बरसा री।
हरियाली छा गई, हमारे सावन सरसा री।
फर-फर उड़ी फुहार अलक हल मोती छाये री।
खड़ी खेत के बीच किसानिन कजरी गाए री।
झर झर झरना झरे, आज मन प्राण सिहाये री।
कौन जन्म के पुण्य कि ऐसे शुभ दिन आए री।

(मंगल वर्षा)

लोकमन की भावुक संवेदना से कविता में रचने वाला उनका शिल्प ऐसा है कि उसे आसानी से किसी "वाद" के चौखटे में फिटकर पाना मुश्किल काम है। उन्होंने लगातार अपने युग संघर्ष की बात कही है पर सांचों को तोड़कर ही लिखा है।

30.4.1 काव्य-रूप

प्रबंध और मुक्तक दोनों काव्य रूपों के प्रचलित साँचे को तोड़कर उन्होंने अपना नया-काव्य साँचा निर्मित किया है। इसमें लोक शैली के गायन और संवाद के रूप मिलते हैं। सहज बयानी में वे उर्दू की कोई भी शैली उठा सकते हैं— उनकी रचना बातचीत की लय में बन जाती है —

दर्द जब घिरे बहाना करो
नाना ना, ना ना ना ना करो
हँसों खेलो, मस्ती के संग
दर्द को लगे कि यह क्या ढंग?
दर्द भीतर हैरान रहे
ओठ पर अपने गान रहे

भवानी लोक गीतों के रूप में सामूहिक प्रार्थनाएँ लिखते हैं। स्वाधीनता आंदोलन की निर्भय भाव भरी प्रभात फेरिया गाते हैं —

अगर गा न पाये तो हल्ला करेंगे
इस हल्ले में मौत आ गई तो मरेंगे।

लोक गीत और प्रगीत दोनों ही भवानी भाई की कलम से नया संस्कार पा कर, मंजते और चमक उठते हैं। उनकी कविताएँ माली की कैंची से काटकर नहीं संवारी गई हैं — न वे कटे-छटे कला गीत हैं। वन-पर्वत पहाड़ खण्डहर, नदी की कछारों में अपने आप उगने वाले पेड़-पौधों लताओं की भांति वे जन्मे हैं — वन्य-सौन्दर्य की अकृत्रिम आभा ही इन गीतों का राग रंग है। "गीत फरोश", "त्रिकाल सन्ध्या", "तूस की आग", "नीली रेखा तक" जैसे संग्रहों में ऐसे अनेक गीत हैं।

नयी कविता में कथात्मक प्रबंध को तोड़कर लम्बी कविता लिखने का चलन हुआ। भवानी प्रसाद मिश्र ने "शब्दों के तत्पर", "सतपुड़ा के जंगल", "नीली रेखा तक", "जिंदगी की धारा में", "जलवा चीजों का" जैसी लम्बी विचार कविताएँ लिखीं हैं। मूलतः यह कविताएँ नाटकीय एकालाप हैं — जिनमें संरचनात्मक अन्विति की अन्तर्योजना है।

छोटे-छोटे भाव-गीत लिखने में भवानी भाई का मन बहुत रमता है। उन्हें तनकर कहने में दिलचस्पी रहती है —

सहो
और बेहतर बातों के लिए
रहो।

उनका एक मात्र प्रबंध काव्य है — "कालजयी"। इसे अशोक की कथा पर आधारित ऐतिहासिक काव्य या खण्ड काव्य भी कहा जा सकता है। किन्तु इसमें पुराने प्रबंध की क्रमबद्ध कड़ियाँ तोड़ दी गई हैं। नतीजा यह हुआ है कि इसे भी परंपरागत प्रबंध-काव्य नहीं कहा जा सकता है।

कवि की मूल प्रतिज्ञा यह रही है कि वह काव्यरूपों को लेकर लकीर का फकीर नहीं बनना चाहता। फलतः वह अनेक प्रकार के लोक-रूपों और लयों से काव्य का ठाठ खड़ा करता है।

30.4.2 काव्य-भाषा और सर्जनात्मकता

अज्ञेय जी का यह कथन भवानी प्रसाद मिश्र की कविता पर एकदम खरा सिद्ध होता है कि "काव्य सबसे पहले शब्द है। और सबसे अन्त में भी यही बात बच जाती है कि काव्य शब्द है। सारे कवि धर्म इसी परिभाषा से निःसृत होते हैं। शब्द का ज्ञान — शब्द की अर्थवत्ता की सही पकड़ ही कृतिकार को कृती बनाता है। ध्वनि, लय, छंद आदि के सभी प्रश्न इसी में से निकलते हैं और इसी में विलय होते हैं। इतना ही नहीं सारे सामाजिक संदर्भ भी यहीं से निकलते हैं।" (सीढ़ियों पर धूप की भूमिका) ध्यान देने की बात है कि भवानी प्रसाद मिश्र ने शब्द — साधना को हर कीमत पर बनाये रखा है — उनकी प्रतिज्ञा रही है —

शब्दों का सही उपयोग योग है
और कल्याणकारी है योग की तरह
शब्द का मनमाना उपयोग भोग है
और विनाशकारी है भोग की तरह।

कहना न होगा कि शब्द की आत्मा और ध्वनि की सही पकड़ को लेकर ही भवानी ने सृजन कर्म किया है। उनके शब्दों ने अपनी ताकत से 'नाराज अंग्रेज' पर चोट की है और धूप-पानी-तूफान को आराम से झेला है —

वाणी को बुनने में
कंकर के चुनने में

* * *

केवल स्वभाव है
चुनने का चाव है।

मिश्र जी के काव्यकथन उनकी काव्य-भाषा की विशेषताएँ स्वतः कह देते हैं :

(1) अभी बैन
अभी बान
अभी बानों के सिलसिले

(2) याने मैं और मेरे शब्द
अलग-अलग नहीं हैं
एक हैं।
मैं सिर्फ उन्हें बरतूँ नहीं
उन्हें जिऊँ—

(3) कलम अपनी साथ
और मन की बात बिल्कुल ठीक कह एकाध
जिस तरह हम बोलते हैं, उस तरह तू लिख।
और इसके बाद भी हम से बड़ा तू दिख।
चीज़ ऐसी दे कि जिसका स्वाद सिर चढ़ जाए
बीज ऐसा बो कि जिसकी बेल वन बढ़ जाए।
फल लगें ऐसे कि सुख रस, सार और समर्थ
प्राण संचारी कि शोभा भर न जिसका अर्थ।

(4) सवाल यह है कि जो आग छिपी है
शब्दों में उसे हम इस अंधेरी रात में
सुलगा सकते हैं कि नहीं।

भवानी प्रसाद मिश्र शब्दों की कुटिया में ऐसे समाधिस्थ रहे हैं कि उनकी चार दशकों की रचना यात्रा ने शब्दों में भावों की लपट उठा दी है। उनकी काव्य-भाषा में एक ऐसी सर्जनशीलता उत्पन्न हुई है कि वह शब्द-ब्रह्म की भारतीय अवधारणा को साकार करती है। उनकी काव्य-भाषा सबसे पहले एक आत्मीय संवाद है, बातचीत का भरोसेमंद तरीका है, एक ऐसी शैली है जिसका लहजा केवल उनका है। "बुनी हुई रस्सी" (1971 ई.) की भूमिका में उन्होंने लिखा है "लिखने में आविष्कार मेरा बोलना है। मैं जो लिखता हूँ उसे जब बोलकर देखता हूँ और बोली उसमें बजती नहीं है तो मैं पंक्तियों को हिलाता डुलाता हूँ। बोलचाल की हिंदी ही मेरी ताकत है।" वास्तविकता यह है कि बोलचाल की दूसी ताकत का वे पूरी कवि शक्ति से उपयोग करते हैं। उनकी भाव मुद्रा कभी सम्बोधन की है, कभी प्रश्नकुलता की है, कभी बच्चे सी भोली सहजता भरी है कभी व्यंग्य की चुटकी है, वक्रोक्ति की चोट है। कभी मजाक में भी गहरी अर्थध्वनि की मार है। यह काव्य-भाषा गद्यभाषा के एकदम निकट है "जी हाँ! हुजूर", "यानि कि", "देखो", "बोली", "करो", "चाहिए" जैसे प्रयोगों की कविता के बीच में सीधी उपस्थिति है। भाषा में अमूर्त को मूर्त करने की सृजन शक्ति है। नाटकीयता, सपाटबयानी, कथन का बांकपन और एक व्यापक आत्मीयता से यह काव्य-भाषा निर्मित है। उनके वाक्य कभी शेर की अदा में पूँछ उठाकर चलते हैं, कभी हिरन सी छलांग मारते हैं, कभी बिल्ली की भाँति चुपके-चुपके सधे पावों शिकार पकड़ते हैं. कभी नर्मदा की धार की तरह गति पाते हैं, कभी कमल की तरह खिल जाते हैं। इसलिए उनकी कविताएँ पढ़ने से ज्यादा सुनने-गाने में मजा देती है। बोलचाल की भाषा में गहन-गंभीर बात कह जाना उनका काव्य-भाषा की प्रमुख विशेषता है। छायावाद के कवियों के पास भाषा का यह सहज संसार न था पर प्रगतिवाद के पास सहजता के नाम पर एक ईमानदार संकल्प था। इसी सहज जनभाषा की लोकमय धारा को भवानी प्रसाद मिश्र ने आगे बढ़ाया है। उनकी तथा केदारनाथ अग्रवाल की काव्य-भाषा में एक अद्भुत साम्य है। दोनों बोलचाल की लोकभाषा से कविता को दुहते हैं। चूंकि दोनों का अनुभव स्पष्ट है फलतः दोनों की भाषा में अस्पष्टता, क्लिष्टता तथा उलझावन ही है। फिर भवानी की काव्य-भाषा में शब्दों की नर्मदा प्रवाहित है। तत्सम-तद्भव, देशज सभी प्रकार के शब्द रगड़ खाकर उनकी काव्यात्मकता में चमक उठते हैं। उनकी अर्थदीप्ति में अभिधा का मनोरम जगत है और लक्षणा-व्यंजना का चमत्कार भी। कभी विक्षोभ-विद्रोह और प्रहार की भाषा है तो कभी भाषा की धूप-चाँदनी का प्यार भरा दुलार है। घोषित तौर पर उनकी कविता जनसामान्य की व्यथा को वाणी देती है और उसी की भाषा में वाणी देती है। उनकी कथनी-करनी एक है।

यह काव्य-भाषा अपनी काव्य संवेदना में हृदयस्पर्शी एवं गीतात्मक है उसमें तुक और लय का मोहक जादू है और अप्रचलित, जटिल-दार्शनिक संकल्पना वाले शब्दों का निषेध है। बिना कोश की सहायता से यह भाषा समझ में आती है। इस काव्य-भाषा की सम्प्रेषणीयता को हिंदी के सभी आलोचकों ने एक मत से सराहा है। सार-संक्षेप यह कि उनकी भाषा की सपाट बयानी कविता में विशेष स्वाद देती है और मिठास का स्वर पाठकों के प्राणों में प्यार का उद्वेलन भर देता है।

30.4.3 काव्य प्रतीक और काव्य बिंब

छायावादोत्तर काल में राजनीतिक-सामाजिक परिवेश के बदलाव से कविता के भीतरी और बाहरी ढांचे में भारी परिवर्तन हुआ है। भवानी प्रसाद मिश्र ने अपने देश और काल की इस चेतना को बातचीत की लय से पकड़ा है। इस बातचीत की लय का आत्मीय संवाद ही उनकी अभिव्यक्ति की खोज है। इसकी खोज की ताकत से उन्होंने भाषा की गठन,

उसकी प्रतीक योजना को बदला है। इन प्रतीकों ने गुस्सा, खीझ, भय, आतंक, संतुलन, विसंगति, विद्रूपता और अवसाद आदि अमूर्त भावों को मूर्त करने का प्रयास किया है। प्रायः मिश्र जी ने प्रकृति के प्रतीकों से अपना अभिप्रेत अर्थ स्पष्ट किया है। उनके प्रिय प्रतीकों में कमल, नर्मदा, जंगल, शेर-चीता, बादल, कोकिल, वसंत, फूल-पौधे, बच्चे, खेतिहर किसान हैं। ऐतिहासिक व्यक्तियों में वे अशोक, गांधी को बार-बार मानवता का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रतीक के अर्थ में लाते हैं। झंडा, खादी, चरखा, चन्दन, आकाश आदि सत्याग्रह-युग के प्रतीक बार-बार आए हैं —

हो गया झंडा हमारा तय
हमें कोई अब नहीं है भय।

कविता में तिरंगा-झंडा पूरी शक्ति एवं मर्यादा से आता है, पर नदी के प्रतीक सांस्कृतिक परंपरा के प्रतीक बनकर आते हैं। इन प्राकृतिक, ऐतिहासिक, पौराणिक और राष्ट्रीय आंदोलन के प्रतीकों ने उनकी काव्य-भाषा में अर्थध्वनि की गहनता, गरिमा और उदात्तता पैदा की हैं।

इस सृजन में काव्यबिंब डाल पर फूल की तरह सजहता से खिलते हैं, पर उनके प्रति भवानी के कवि का कोई अतिरिक्त मोह नहीं है। वे सबसे ज्यादा ध्यान बिंब पर केन्द्रित न करके भाव के पारदर्शी, सम्प्रेषण व्यापार पर देते हैं। अपने पाठक से हृदय संवाद करते हुए वे छायावादियों की भाँति चित्र मोह में नहीं पड़ते। अनायास ही वे सन्नाटा का बिंब ला सकते हैं और नींद में ऊँघते सतपुड़ा के जंगल, नर्मदा के गति बिंब भी। आजादी के बाद के मोह-भंग को वे शब्द बिंबों में आंक सकते हैं जैसे —

1) बन्द गलियों में कहीं बच्चे खड़े हैं।

2) हाय रे, बचपन तलक सुख से न बीता।

3) जी, लोगों ने तो बेच दिए ईमान।

4) फूल लाया हूँ कमल के क्या करूँ इनका।

5) आप सभ्य हैं क्योंकि धान से भरी आप की कोठी।

6) मैं असभ्य हूँ क्योंकि चीर कर धरती धान उगाता।

इन बिंबों में समय और समाज की व्यथा-कथा का पूरा संदर्भ बोल रहा है। बिखरे बिंबों की एक माला उनकी कविता में रहती है इस दृष्टि से "गीत फरोश", "सन्नाटा", "प्रलय", "सतपुड़ा के जंगल", "मंगल वर्षा" जैसी कविताएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। हमारी ऐन्द्रिय संवेदना को अपने मर्म से पकड़ने वाली कविताएं उन्होंने अधिक लिखी हैं — यथा

बूँद टपकी एक नभ से
किसी ने झुक कर झरोखे से
कि जैसे हँस, दिया हो
हँस रही सी आँख ने जैसे
किसी को कस दिया हो,

अनुभव और अनुभूति के सरल-तरल बिंब उनकी कविता की शक्ति है। ग्रामीण संवेदना के ताजे बिंब अर्थदीप्ति की गति से भरे हैं। अमूर्त अगोचर और अलौकिक अनुभूति की बात वे कम करते हैं, वे मूर्त जीवन-जगत के व्यापार को काव्यात्मक बिंब में उजागर करते हैं। पर उनकी कविता बिंब का पर्याय नहीं है, सपाट बयानी में भी वे अपनी बात खुलकर कह लेते हैं। बोलचाल की लय शक्ति के कारण उनकी कविताएँ जनता में प्रसिद्ध रही हैं।

30.4.4 लय और छंद

प्रायः भवानी प्रसाद मिश्र ने तुकांत छंद में रचनाएँ की हैं, पर मुक्त छंद का अभ्यास भी उन्हें अच्छा है। उनके छंद, भाव को आकार देते हैं, वाक्य को तरासते हैं और तुक-अर्थ को सँवारते हैं। इसलिए जिसे "तुकबंदी करना" कहते हैं, वह काम वे कभी नहीं करते हैं, तुक को भाव-संगीत, ध्वनि संगीत की आंतरिकता के लिए ठीक से मिलाते हैं। जैसे "घर की याद" कविता की दो काव्य पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं —

पिता जी जिनको बुढ़ापा
एक क्षण भी नहीं व्यापा।

यहाँ "बुढ़ापा" और "व्यापा" का लाना मात्र तुक मिलाने के लिए नहीं किया गया है फलतः दोनों तुकों ने अर्थ प्रकाश किया है। इस अर्थ लय की सिद्धि भी कहा जा सकता है। यह लय भाव वैचित्र्य से रमणीयता में ढाली गई है और उपमान योजना — चन्द्र, सूर्य, नर्मदा, संत आदि ने इसमें भाव प्रसार किया है।

भवानी प्रसाद के काव्य में शास्त्रीय विधान के प्राचीन छंद खोजने पर भी नहीं मिलते। उन पर प्राचीन छंदों की महिमा का आतंक कभी नहीं रहा। माखनलाल चतुर्वेदी की भाँति वे लोक जीवन की लोकलय को लेकर अपना छंद गढ़ते हैं। उनके गीतों में कजरी, मल्हार-आल्हा, लावनी जैसे लोक-रागों की रागनियाँ निर्झर की भांति स्वतः फूटती हैं। कभी-कभार बंगला का पयार छंद "सन्नाटा" जैसी कविता में चमक छोड़ता है — पर अन्य कविताओं के लिए लय, छंद का अन्वेषण वे स्वयं करते रहे हैं। "राही नहीं, राहों के अन्वेषी" जैसा प्रयोग उनके लिए बेधड़क किया जा सकता

है। रचना की लयात्मक सहजता, भावगति की तीव्रता और प्रखरता काव्यात्मकता को कैसे चमका देती है, यह कला भवानी भाई की अपनी विशिष्ट है जिससे बहुत कुछ सीखा जा सकता है।

बोध प्रश्न 3

1 भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य शिल्प की विशेषताओं पर पाँच पंक्तियों में विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

2 मिश्र जी के काव्य में प्रयुक्त काव्य-रूपों पर पाँच पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

3 मिश्र की काव्य-भाषा की विशेषताओं पर दस पंक्तियों में विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

4 मिश्र जी के काव्य प्रतीकों तथा काव्य बिंबों की मूल विशिष्टताओं पर सात पंक्तियों में विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

5 मिश्र जी के लय विधान एवं छंदों पर चार पंक्तियों में अपने विचार लिखिए।

....

....

....

....

30.5 काव्य वाचन और संदर्भ सहित व्याख्या

काव्य वाचन

कमल के फूल

फूल लाया हूँ कमल के।
क्या करूँ इनका।
पसारें आप आँचल,
छोड़ दूँ,
हो जाय जी हल्का।

किन्तु होगा क्या कमल के फूल का?
कुछ नहीं होता
किसी की भूल का —
मेरी कि तेरी हो —

ये कमल के फूल केवल भूल हैं।
भूल से आँचल भरूँ ना
गोद में इनका सँभाले
मैं वजन इनके मरूँ — ना।

ये कमल के फूल
लेकिन मानसर के हैं
इन्हें हूँ बीच से लाया,
न समझो तीर पर के हैं।

भूल भी यदि है
अछूती भूल है,
मानसर वाले
कमल के फूल हैं।

गीत फरोश

जी हाँ, हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ।
मैं तरह-तरह के
गीत बेचता हूँ,
मैं किसिम-किसिम के गीत
बेचता हूँ!

जी, माल देखिए दाम बताऊँगा,
बेकाम नहीं हैं, काम बताऊँगा;
कुछ गीत लिखे हैं मस्ती में मैंने,
कुछ गीत लिखे हैं *पस्ती*[1] में मैंने;
यह गीत सख्त सरदर्द भुलायेगा;
यह गीत पिया को पास बुलायेगा।
जी, पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको
पर पीछे-पीछे अक्ल जगी मुझको
जी, लोगों ने तो बेच दिये ईमान।
जी, आप न हों सुनकर ज्यादा हैरान।
मैं सोच-समझकर आखिर
अपने गीत बेचता हूँ
जी हाँ, हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ।

यह गीत सुबह का है, गाकर देखें;
यह गीत ग़ज़ब का है, ढाकर देखें;
यह गीत ज़रा सूने में लिक्खा था,
यह गीत वहाँ पूने में लिक्खा था,
यह गीत पहाड़ी पर चढ़ जाता है,
यह गीत बढ़ाये से बढ़ जाता है,

1. पतन

यह गीत भूख और प्यास भगाता है,
जी, यह मसान में भूत जगाता है,
यह गीत भुवाली की है हवा हुजूर
यह गीत तपेदिक की है दवा हुजूर
मैं सीधे-सादे और अटपटे
गीत बेचता हूँ
जी हाँ, हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ।

जी, और गीत भी हैं दिखलाता हूँ;
जी, सुनना चाहें आप तो गाता हूँ,
जी, छंद और बेछंद पसंद करें —
जी, अमर गीत और वे जो तुरंत मरें,
ना, बुरा मानने को इसमें क्या बात,
मैं पास रखे हूँ कलम और दवात''
इनमें से भाये नहीं नये, लिख दूँ
जी, नए चाहिये नहीं, गये लिख दूँ।
इन दिनों कि दुहरा है कवि धन्धा,
हैं दोनों चीजें व्यस्त, कलम, कन्धा।
कुछ घंटे लिखने के, कुछ फेरी के
जी, दाम नहीं लूँगा इस देरी के,
मैं नये पुराने सभी तरह के
गीत बेचता हूँ।
जी हाँ, हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ।

जी, गीत जन्म का लिखूँ, मरने का लिखूँ,
जी, गीत जीत का लिखूँ, शरन का लिखूँ;
यह गीत रेशमी है, यह खादी का।
यह गीत पित्त का है, यह बादी का।
कुछ और डिजाइन भी हैं, ये इल्मी —
यह लीजे चलती चीज़, नयी फ़िल्मी,
यह सोच-सोच कर मर जाने का गीत,
यह दुकान से घर जाने का गीत,
जी नहीं, दिल्लगी की इसमें क्या बात?
मैं लिखता ही तो रहता हूँ दिन-रात!
तो तरह-तरह के बन जाते हैं गीत,
जी, रूठ-रूठकर मन जाते हैं गीत,
जी, बहुत ढेर लग गया, हटाता हूँ,
गाहक की मर्जी — अच्छा, जाता हूँ।
मैं बिल्कुल अन्तिम और दिखाता हूँ —
या भीतर जाकर पूछ आइये, आप,
है गीत बेचना वैसे बिल्कुल पाप;
क्या करूँ मगर लाचार हार कर
गीत बेचता हूँ।
जी हाँ, हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ।

संदर्भ सहित व्याख्या

उद्धरण 1

फूल लाया हूँ कमल के।
क्या करूँ इनका।
पसारें आप आँचल,
छोड़ दूँ,
हो जाए जी हल्का।

किंतु होगा क्या कमल के फूल का?
कुछ नहीं होता
किसी की भूल का —
मेरी कि तेरी हो —

ये कमल के फूल केवल भूल हैं।
भूल से आँचल भरूँ ना
गोद में इनका सँभाले
मैं वजन इनके मरूँ — ना।

ये कमल के फूल
लेकिन मानसर के हैं
इन्हें हूँ बीच से लाया,
न समझो तीर पर के हैं।

संदर्भ : रचना का नाम ....

....

रचनाकार का नाम ....

....

रचनाकार के विषय में ....

....

प्रसंग : भवानी प्रसाद मिश्र ने मानवीय आस्था परक मूल्यों पर कविता लिखी है। उनकी काव्य-संवेदना में वनस्पति जगत् की चेतना का आदर है। वे मानव तथा प्रकृति के "तदाकार भाव" के प्रति समर्पित रहे हैं। प्रकृति के भावों का उत्तमांश है — फूल। फूल ही भारतीय परंपरा के मूल भावों का आंतरिक संस्कार रहे हैं। उसी संस्कार से जोड़ते हुए उन्होंने यह मंगलाचरण लिखा है।

व्याख्या : कवि का कहना है कि मैं अपनी भावनाओं को कमल के फूल के रूप में मानव को देना चाहता हूँ। इन कमल के फूलों को प्राप्त करने के लिए मैंने मानसर की गहराई में प्रवेश किया है। हर जोखिम उठाकर इन्हें लाया हूँ। इन्हें मैंने किनारे से नहीं, बीच में धँसकर प्राप्त किया है। यदि इन फूलों का लाना एक भूल भी मानी जाती है तो भी यह भूल अनुपम है कारण, यह भूल कवि मन के पूरे भावबोध का अनिवार्य हिस्सा रही है। यहाँ ध्यान दिलाना चाहता हूँ कि ये कमल के फूल हृदय के मान-सरोवर के भीतर डूबकर तोड़े गए हैं।

विशेष

1 कमल का फूल भारतीय परंपरा में सर्वाधिक आदर और समर्पण का भाव व्यक्त करता रहा है। हमारी पूरी जातीय चेतना के मिथक कमल से पटे पड़े हैं। कमल विष्णु की एक आँख है, विष्णु कमलों से ही माँ दुर्गा की पूजा करते हैं।

2 इस मंगलाचरण को कवि ने "दूसरा सप्तक" 1951 ई. सं. अज्ञेय के सहयोगी संकलन में प्रथम कविता के रूप में दिया है। यहां कवि ने देवता की वंदना नहीं की, अपितु मानव की महिमा के लिए वस्तु निर्देशात्मक रूप को व्यक्त किया है।

3 मानसरोवर भारतीय मिथक परंपरा में वह पवित्र जल का निर्मल सरोवर है जिसमें हंस मोती चुगते हैं और ज्ञानी का ज्ञान कमल यहीं खिलता है।

4 कमल प्रतीक है — भाव की उज्ज्वलता का, आंतरिक अनुभूति के संस्कार का। फलतः यह सांस्कृतिक प्रतीक है।

5 पूरा पद्य खण्ड ऐसे काव्यात्मक बिंब को जन्म देता है जो प्रार्थना की भावमुद्रा को मूर्त करता है।

6 "इन्हें धँस बीच से लाया" काव्य पंक्ति कवि संघर्ष या कवि कर्म के संघर्ष तथा अनुभूति की ईमानदारी का संकेत देती है।

उद्धरण 2

जी हाँ, हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ।
मैं तरह-तरह के
गीत बेचता हूँ,
मैं किसिम-किसिम के गीत
बेचता हूँ!

जी, माल देखिए दाम बताऊँगा,
बेकाम नहीं हैं, काम बताऊँगा;
कुछ गीत लिखे हैं मस्ती में मैंने,
कुछ गीत लिखे हैं पस्ती में मैंने;
यह गीत सख्त सरदर्द भुलायेगा;
यह गीत पिया को पास बुलायेगा।

संदर्भ : रचना का नाम ....

....

रचनाकार का नाम ....

....

रचनाकार के विषय में ....

....

प्रसंग : "गीत फरोश" कविता भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य व्यक्तित्व को परिभाषित करती है। जीवन की जटिल स्थितियों के कारण कवि कर्म कठिन होता गया। इतना ही नहीं, पूंजीवादी-व्यवसायी युग में हर चीज विकाऊ हो गई। तीखे व्यंग्य का यह कविता उदाहरण है इस कविता मे महत्वपूर्ण यह स्थिति है कि कवि को कैसे जीने के लिए गीत बेचने वाला बन जाना पड़ा। ऐसी हालत के अभिव्यक्त करने के कारण यह कविता कला और समाज दोनों पर व्यंग्य है।

व्याख्या : कवि कहता है कि स्थिति-परिस्थिति से लाचार होकर मुझे गीत बेचने वाला बनना पड़ा है। मैं तरह-तरह के अनेक दिलचस्प भावों, कार्यों को करने वाले गीत बेचता हूँ। मैं हर किस्म के हर रंग के गीत बेचता हूँ। आप इन गीतों को छांटकर पसंद करें, फिर मैं कीमत मागूँगा। इनका दाम अधिक नहीं लूँगा। वे गीत निरर्थक नहीं हैं, इनका सार्थक होना भी बताऊँगा। मैंने कुछ गीत आनंद और जीवन के उल्लास में लिखे हैं और कुछ गीत मुझे निराशा, अवसाद, पराजय की मनःस्थिति में लिखने पड़े हैं। किन्तु मेरे गीतों का उद्देश्य है मानव की भीतरी तकलीफों को कम करना, तनाव को कम करना, मसलन सिर दर्द भगाकर चैन देना और गीतों से प्रियतम को प्रिया के पास लाना रहा है। जाहिर-तौर पर मैंने अभाव को हटाकर भाव की स्थिति के लिए सृजन कर्म किया है। अतः मेरे गीतों का कार्य जन जीवन की लोकमंगल की ओर ले जाना है।

विशेष

1 "गीत फरोश" एक ऐसी प्रसिद्ध कविता है जिसने कवि को अपार लोकप्रियता प्रदान की है।

2 इस कविता ने गंभीर बात को निहायत सरल-सहज ढंग से अभिव्यक्त करने का एक नया ढंग ईजाद किया है यह एक नया प्रयोग है काव्य तकनीक और कविमर्म की परख का। इस शैली की हि ते में यह अकेली ही कविता है।

3 इस कविता का व्यंग्य कवि को "टोन" या लहजे में है और गीत बेचने वाले की लाचारी का कारण भी दिया गया है।

4 गरीबी से तंग आकर कुछ दिनों तक मिश्र जी ने पूना फिल्म इंस्टीट्यूट के लिए गीत लिखकर बेचे थे। उन्हें यह स्थिति असहनीय लगती थी। इस कविता में उसी व्यथा का यथार्थ चित्र है।

5 नयी कविता पर भाव एवं भाषा की क्लिष्टता का दोष लगाया जाता है पर इस कविता के भावों को व्यक्त करने वाले प्रतीक बिंब "मस्ती", "पस्ती" एकदम स्पष्ट एवं सरल हैं।

6 काव्य का प्रयोजन है — आनन्द और भाव-परिष्कार, आत्मविस्तार। कवि लोक-संवेदना से अपनी व्यथा को आत्म-प्रसार की ओर मोड़ देता है। कविता की इस विश्व-दृष्टि ने उसे विशिष्ट बनाया है।

7 यह व्यंग्य भी है कि जब कला बेचनी पड़े और उसके लिए गीतकार को झटकना पड़े तो समझना चाहिए कि संस्कृति खतरे में है।

8 यह कविता भाव और लय के कारण पढ़ने और गाने का मधुर सौन्दर्य प्रस्तुत करती है तथा काव्य-भाषा की सहज सर्जनात्मकता का 'मॉडल' भी सामने लाती है।

9 कविता तनाव की ऊर्जा से जन्मती है, वह कवि के मानस का मूल्यवान अंश है। उसे बेचने में कष्ट होता है, क्योंकि वह अनुभव की कन्या है।

उद्धरण 3

जी, पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको
पर पीछे-पीछे अक्ल जगी मुझको
जी, लोगों ने तो बेच दिये ईमान।
जी, आप न हों सुनकर ज्यादा हैरान।
मैं सोच-समझकर आखिर

अपने गीत बेचता हूँ
जी हाँ, हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ।

यह गीत सुबह का है, गाकर देखें;
यह गीत ग़ज़ब का है, ढाकर देखें;
यह गीत ज़रा सुने में लिक्खा था,

यह गीत वहाँ पूने में लिखा था,
यह गीत पहाड़ी पर चढ़ जाता है,
यह गीत बढ़ाये से बढ़ जाता है,
यह गीत भूख और प्यास भागता है,
जी, वह मसान में भूत जगाता है,
यह गीत भुवाली की है हवा हुजूर
यह गीत तपेदिक की है दवा हुजूर
मैं सीधे-सादे और अटपटे
गीत बेचता हूँ
जी हाँ, हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ।

संदर्भ : रचना का नाम ....
....

रचनाकार का नाम ....
....

रचनाकार के विषय में ....
....

प्रसंग : "गीत फरोश" कविता भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य व्यक्तित्व को परिभाषित करती है। जीवन की जटिल स्थितियों के कारण कविकर्म कठिन होता गया। पूँजीवादी व्यवसायी युग में हर चीज बिकाऊ हो गई। तीखे व्यंग्य का महत्वपूर्ण उदाहरण इस कविता में यह स्थिति है कि कवि को जीने के लिए गीत बेचने वाला बन जाना पड़ा। ऐसी हालत के कारण यह कविता कला और समाज दोनों पर व्यंग्य है।

व्याख्या : कवि अपनी मनोव्यथा को व्यक्त करता हुआ कहता है कि शुरू-शुरू में तो मुझे गीत बेचने में बेहद लज्जा का अनुभव हुआ। मुझे बराबर लगता रहा कि कोई अपने अन्तर्जगत के संवेदनानुभवों को भी क्या बेच सकता है? कविता तो आत्मदान की वस्तु है, वह व्यापार या नफा कमाने की चीज़ नहीं। उसे बाजार की वस्तु बनाना उसके मूल्य को गिराना है। किन्तु कुछ दिन बाद मुझे अक्ल आई कि इस देश में लोग अपना ईमान या चरित्र बेच रहे हैं। उन्हें किसी भी बुरे काम पर पश्चाताप नहीं होता है। हर बार गलत काम पर लोग आदर्श का वर्क चढ़ा देते हैं और पैसा कमाने के नाम पर अन्धे होकर कुछ भी कर सकते हैं। देश में मूल्यों का यह अन्धापन सब जगह व्याप्त हो गया है। इसलिए जो लोग ईमान बेचने की बात सुनकर हैरानी जताते हैं या आश्चर्य करने का नाटक करते हैं — उनकी कलई खुल गई है। अब मैं इस व्यक्तिवादी-भोगवादी समाज की नब्ज पहचान चुका हूँ। मुझे पता है कि गीत बेचना बुरा नहीं है। खूब सोच-समझ कर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि गीत बेचकर यदि जीवन यापन हो सके तो हर्ज क्या है?

विशेष

1 कविता में मूल व्यंग्य उस पूँजीवादी-सामन्तवादी व्यवस्था पर है जिसमें "लोगों ने तो बेच दिए ईमान" की हालत पहुँच चुकी है। देश-भक्ति, मानव-सेवा का उपदेश देने वाले लोग देश को लूट रहे हैं।

2 रचना कर्म में प्रवृत्त होने वाला रचनाकार क्या करे जब चारों ओर मूल्यान्धता फैली हो। विवश होकर उसे कला को बाजार देना पड़ता है।

3 कवि का गांधी विचार-दर्शन अपने समय की विसंगति और विडम्बना पर निर्भयता से 'बेच दिए ईमान' का दर्द कह देता है। पूरी स्थिति का यह भयावह बिंब है।

4 ईमान बेचने का अर्थ सन्दर्भ भारतेन्दु के नाटक के 'जातवाला' की याद दिलाता है, जो टके के लिए जात बेचने को तैयार है। आर्थिक मूल्यों की प्रधानता वाले समाज में हर वस्तु बिकाऊ हो जाती है क्यों? भवानी भाई और भारतेन्दु की चिंता इस विचार-बिन्दु पर एक हो गई है।

5 आधुनिक समाज की विषम स्थितियों पर यह कविता सटीक टिप्पणी करती है। भारतेन्दु के नाटक "अंधेर नगरी" में चूरन और चने बेचने वालों के लटकों और बोलियों का सर्जनात्मक उपयोग है। "गीत फरोश" में दवा, मेवा, ईमान फरोशों की बोली, लहजे और लटकों को कविता में ढाल दिया गया है।

6 प्रयोग के स्तर पर कवि ने बोलचा ी की शब्दावली से भी ज्यादा बोली के लहजे को चुना है।

30.6 मूल्यांकन

छायावादोत्तर हिंदी कविता में भवानी प्रसाद मिश्र को संतों की लोक जागरण परंपरा में रखकर हीं परखा जा सकता है। उनका कवि-स्वभाव कबीर से मिलता है। सत्य कहने के लिए वे हर तरह का जोखिम उठाने को हर समय तैयार रहते

हैं। व्यवस्था-विरोध में उनका विद्रोही निर्भय रहता है। उनकी कविता का संकल्प यही रहा है कि शब्द को तलवार से ज्यादा पैना बनाना है। गाँव के प्राणी की व्यथा को जन-भाषा में अभिव्यक्त करना है। शब्द की रक्षा ही मानव की रक्षा है —

शब्दकार को
अगर जरूरत पड़े
तो अपने शब्दों पर
मरना चाहिए।

नयी कविता में, गांधी विचार-दर्शन में आस्था रखने वाले वे अकेले कवि हैं। उनकी कविता में कालिदास की प्रकृति संवेदना का नए भाव बोध के साथ विस्तार एवं प्रसार है। सामाजिक विषमता, अन्याय-शोषण का चित्रण करने में वे कभी पीछे नहीं रहते। पर उनकी कविता में पश्चिम की नकल नहीं है, ठेठ लोक लय की सर्जनात्मकता है। लोक संवेदना और लोक वेदना को लोक-भाषा में निर्भयता से अभिव्यक्ति देने वाला यह कवि अपने कविकर्म में एक विशिष्ट है।

भवानी प्रसाद मिश्र की काव्यसर्जना का अर्थ विधान और बिंब विधान कई स्तरों पर अपने समकालीनों से विशेषकर अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर आदि से विशिष्ट और अलग दृष्टिगत होता है। वे सामान्य आदमी की व्यथा को रचना की केन्द्रीय संवेदना से उजागर करते हैं। इस सामान्य जन में गाँव के किसान-मजदूर की स्थितियों-चिंताओं के यथार्थ चित्र हैं। आजादी के बाद का मोहभंग भवानी प्रसाद मिश्र में स्पष्टतः अभिव्यक्त होता है। प्रगति प्रयोग युग के अधिकतर रचनाकार — वैचारिक स्तर पर साम्यवाद समाजवाद के अधिक निकट रहे हैं, पर भवानी प्रसाद मिश्र ने एकनिष्ठ आस्था के साथ खुले रूप में गांधी विचार-दर्शन को व्यक्त किया है। बोलचाल की काव्य-भाषा, प्रतीक विधान छंद और लय में भी उनका स्वर अलग सुनाई देता है। वे रूप विधान से ज्यादा विषयवस्तु की महत्ता को स्थान देते हैं। वैचारिक स्तर पर अस्तित्वाद, अलगाववाद के पश्चिमी दर्शन को अपनी कविता में भटकने तक नहीं देते। एकदम सहज गद्य विन्यास, बोलचाल का लहजा और छंदों का खनकता प्रयोग करते हैं। उनकी बुनियादी चिंताओं में भारतेन्दु, निराला और केदारनाथ अग्रवाल की लोकपरंपरा जीवन्तता से धड़कती है। अपनी सर्जनात्मक मौलिकता से उन्होंने नयी कविता को नया काव्य मुहावरा दिया है।

30.7 विचार संदर्भ और शब्दावली

प्रभा : सं. माखन लाल चतुर्वेदी, सन् 1913 ई. में, खंडवा, मध्य प्रदेश से निकलने वाली क्रांतिकारी विचारों की पत्रिका।

कर्मवीर : सं. माखन लाल चतुर्वेदी — जबलपुर से 1919 ई. में निकलने वाला पत्र। क्रांतिकारी विचारों के लिए प्रसिद्ध।

सरस्वती : भारतीय भाषा एवं साहित्य की अमर पत्रिका। इसका सम्पादन आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लम्बे समय तक किया। इस पत्रिका ने अनेक लेखक बनाए।

वर्ड्सवर्थ : अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद के कवि (1770-1850 ई.) लिरिकल बैलेड्स की भूमिका (1798 ई.)। इस भूमिका ने काव्य विषय तथा काव्य भाषा दोनों को लेकर नव्य अभिजात्यवादियों (नियो-क्लासिकल) पर निर्मम आक्रमण किया। सन् 1800 ई. में इसका दूसरा संस्करण आया।

अतिभावुकता : (सेन्टिमेन्टलिज्म) एक ऐसा खतरा है जिसमें भावुकता के अतिरेक से मानसिक संतुलन नहीं रह पाता।

रिचर्ड्स (1893-1979 ई.) : ने भाषा के दो भेद किए — वैज्ञानिक तथा रागात्मक भाषा। वैज्ञानिक भाषा का प्रयोग तथ्य कथन के लिए होता है तथा रागात्मक भाषा का भाव संचार के लिए।

कलात्मक अनुभूति : उस अनुभूति को कहते है जिसमें संघटन सामान्य अनुभूतियों की तुलना में अधिक होता है।

टी.एस. इलियट (1888-1965 ई.) : का मूर्त विधान सिद्धांत (आब्जेक्टिव कोरिलेटिव) भारतीय रस सिद्धांत का विभावन व्यापार है। कविगत भाव की अभिव्यक्ति का प्रधान और अनिवार्य साधन है विभाव। भाव के कारण को विभाव कहते हैं;

नर्मदा : मध्य प्रदेश की प्रसिद्ध नदी। यह क्वारी नदी है। इसकी गति और प्रवाह में अपार शक्ति है। माना जाता है कि परशुराम ने इसी के तट पर तपस्या की थी।

30.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी : *समकालीन हिंदी कविता*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

कृष्णदत्त पालीवाल : *भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य संसार*, साहित्य निधि, सी-38, ईस्ट कृष्णा नगर, दिल्ली-110051।

प्रेम शंकर रघुवंशी : *भवानी भाई*, सरला प्रकाशन, नई दिल्ली।

30.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 देखिए भाग 30.2.1

2 देखिए भाग 30.2.2

3 एवं 4 देखिए भाग 30.2.3

बोध प्रश्न 2

1 देखिए 30.3.1 (काव्यानुभूति)

2 देखिए 30.3.2 (मूल्य दृष्टि)

3 देखिए 30.3.3 (मानव और प्रकृति)

4 देखिए 30.3.4 (ज़न जीवन के विषय संघर्षों की वाणी)

5 गांधी विचार दर्शन

बोध प्रश्न 3

1 देखिए 30.4 (काव्य-शिल्प)

2 देखिए 30.4.1 (काव्य-रूप)

3 देखिए 30.4.2 (काव्य-भाषा)

4 देखिए 30.4.3 (काव्य प्रतीक और काव्य बिंब)

5 देखिए 30.4.4 (लय और छंद)

इकाई 31 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

इकाई की रूपरेखा

31.0 उद्देश्य

31.1 प्रस्तावना

31.2 युग परिवेश

31.3 कवि परिचय

- 31.3.1 जीवन-परिचय
- 31.3.2 कवि व्यक्तित्व
- 31.3.3 रचनाएँ

31.4 काव्य संवेदना

- 31.4.1 अनुभूति पक्ष की सामाजिकता
- 31.4.2 ग्रामीण संवेदना
- 31.4.3 आधुनिक भाव-बोध
- 31.4.4 सत्ता का विरोध और क्रांतिकारी आवाज
- 31.4.5 परम्परा और प्रयोग
- 31.4.6 विचारधारा और प्रभाव
- 31.4.7 व्यंग्य वक्रोक्ति की ओर रुझान
- 31.4.8 प्रकृति और जीवन दृष्टि

31.5 अभिव्यंजना शिल्प

- 31.5.1 काव्य रूप
- 31.5.2 काव्य-भाषा
- 31.5.3 बिंब और प्रतीक
- 31.5.4 नवीन उपमान योजना
- 31.5.5 छंद और लय

31.6 काव्य वाचन और संदर्भ सहित व्याख्या

31.7 सारांश (मूल्यांकन)

31.8 शब्दावली

31.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

31.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

31.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व के बारे में बता सकेंगे,
- उनके युग-परिवेश की जानकारी दे सकेंगे,
- सर्वेश्वर की कविता की संवेदना यानी उनकी कविता के कथ्य, अनुभूति की सामाजिकता, विचारधारा उन पर आए प्रभावों की चर्चा कर सकेंगे,
- उनके द्वारा परंपरा की स्वीकृति और उसमें किए गए प्रयोगों का विश्लेषण कर सकेंगे,
- सर्वेश्वर की कविता के क्रांतिकारी स्वर और व्यंग्यात्मकता को पहचान सकेंगे,
- उनकी काव्य-भाषा और बिंब-विधान की चर्चा कर सकेंगे,
- सर्वेश्वर की उपमान योजना और छंदों के बारे में बता सकेंगे,
- हिन्दी कविता को उनके योगदान का उल्लेख कर सकेंगे।

31.1 प्रस्तावना

इस खंड की पिछली इकाइयों में आप प्रयोगवाद और नयी कविता के स्वरूप और विकास के बारे में पढ़ चुके हैं। इस तरह आप पाँचवे दशक और उसके बाद की हिंदी कविता के कथ्य, शिल्प और संवेदना में आए बदलाव से भली भाँति परिचित हो चुके हैं। नयी कविता के दो प्रमुख कवि — अज्ञेय और मुक्तिबोध के बारे में भी आपने पिछली दो इकाइयों में अध्ययन किया है। हिंदी कविता के ब ने हुए मुहावरे और सामाजिक सरोकारों के बारे में आप जान गए हैं। इस इकाई में आप नयी कविता के एक अन्य महत्वपूर्ण कवि सर्वेश्वरदयाल सक्सेना और उनकी कविता के

बारे में पढ़ेंगे। सर्वेश्वरदयाल जी ने कविता लिखना सन् 1950-51 के आस-पास शुरू किया था। पिछली इकाइयों में आपने अज्ञेय द्वारा संपादित "तार सप्तक", "दूसरा सप्तक" तथा "तीसरा सप्तक" के बारे में पढ़ा है। आप जानते हैं कि इन तीन काव्य-संग्रहों का प्रकाशन हिंदी कविता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण घटनाएँ रहीं हैं। ये तीनों संग्रह नए काव्यांदोलनों को लेकर आए। सर्वेश्वर जी तीसरे सप्तक के कवि हैं यद्यपि उन्होंने कविता लेखन काफी पहले ही शुरू कर दिया था।

31.2 युग परिवेश

स्वाधीनता प्राप्ति से पहले का साहित्य राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जागरण की चेतना का साहित्य है। मुक्ति की आकांक्षा इसका प्रबल स्वर है। यह मुक्ति रचनाकार जीवन के सभी क्षेत्रों में चाहता है। राजनीतिक गुलामी की समाप्ति के साथ-साथ वह मनुष्य को सामाजिक-नैतिक-आर्थिक-सांस्कृतिक हर स्तर पर उन बंधनों से मुक्त कराना चाहता है जो मनुष्य की प्रगति के मार्ग की बाधा थे। भारतेन्दु युग से लेकर द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद तक के साहित्य में यह आकांक्षा अपने-अपने ढंग से व्यक्त हुई है। एक तरफ विदेशी साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के शोषण के खिलाफ आवाज दिखाई देती है तो दूसरी तरफ सामाजिक कुरीतियों और गैर बराबरी के प्रति। कहीं नारी जागरण का स्वर दिखाई देता है तो कहीं हरिजन उद्धार और किसान-मज़दूरों के उन्नयन की इच्छा का। कविता के विषय और शिल्प-संरचना में भी तेजी से नए-नए बदलाव सामने आते हैं।

राष्ट्रव्यापी स्वाधीनता आंदोलन ने जन-मानस में विभिन्न प्रकार के स्वप्नों की सृष्टि की थी। हम सोच रहे थे कि आजादी के बाद ऐसे राष्ट्र का निर्माण हो सकेगा जो मानवतावादी मूल्यों की सर्वोपरि स्थापना करता हुआ "बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय" समाज की सृष्टि कर सकेगा। गाँधी, तिलक, सुभाष, भगतसिंह आदि के आदर्शों पर निर्मित समाज की कल्पना हमें पूरी होती दिखाई दे रही थी। किन्तु आजादी के बाद का यथार्थ इन आदर्शों के विपरीत साबित हुआ। आजादी का सवेरा देश के बँटवारे और सांप्रदायिक दंगों के भीषण रक्तपात और वैमनस्य में हुआ। अलगाववादी ताकतें प्रबल होती दिखाई दीं। संकट के बादलों से घिरे भविष्य की ओर संकेत करते हुए कवि ने लिखा —

> ऊँची हुई मशाल हमारी आगे कठिन डगर है
> शत्रु हट गया लेकिन उसकी छायाओं का डर है
> आज प्रलय की रात पहरुए सावधान रहना।
>
> — गिरिजाकुमार माथुर

जिन छायाओं का डर था वे प्रत्यक्ष मंडराती हुई सामने आयीं और हमें भाषा, जाति, धर्म, प्रांतीयता आदि के नाम पर बढ़ती हुई सांप्रदायिकता का सामना करना पड़ा।

आजादी के सपनों से हमारा मोहभंग हुआ। हमने महसूस किया कि हमें केवल राजनीतिक आजादी मिली है। आर्थिक शोषण से हम मुक्त नहीं हुए हैं। देश का औद्योगीकरण तो हुआ किन्तु न तो किसान-मजदूर की हालत में सुधार होता दिखाई दिया और न ही निम्न मध्यवर्ग का शोषण रुका। गोरे साहबों के चले जाने पर जो देशी साहब कुर्सी पर आए वे भी अन्याय और लूट में अंग्रेजी साहबों से पीछे नहीं थे। गाँधी की हत्या केवल एक घटना मात्र नहीं रही। उसके साथ जीवन मूल्यों की भी हत्या होती दिखाई दी। राष्ट्रीय विकास कार्यों, पंचवर्षीय योजनाओं, सुधार कार्यक्रमों के बावजूद आम आदमी पर अभावों-पीड़ाओं का बोझ कम न हुआ। भ्रष्टाचार और पूँजीवाद का प्रसार होता दिखाई दिया। राष्ट्रीयता के नाम की दुहाई देने वालों के चेहरों के पीछे का जो असली चेहरा सामने आया उसने हमारे जीवन में कुंठा और घुटन की सृष्टि की। मोहभंग से पैदा इस संत्रास और पीड़ा ने साहित्यकार को संघर्ष की ओर अग्रसर किया। कवि ने अपने सामाजिक दायित्व को पहचाना और यथार्थ जीवन के संघर्षों से जूझने के लिए कलम उठाई।

दूसरी ओर देश में औद्योगीकरण के साथ ही शहरीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई जिसके साथ समाज में मध्यवर्ग का उदय हुआ। बात यह नहीं कि मध्यवर्ग पहले था ही नहीं। लेकिन अब इसमें एक निश्चित तरह का बदलाव था। पुरानी समाज व्यवस्था मूलतः कृषि-व्यवस्था और हस्तशिल्प पर केन्द्रित थी। आजादी से पहले अंग्रेजों ने अपने लाभ के लिए जो थोड़े बहुत उद्योग यहाँ स्थापित किए थे या सरकारी नौकरियों पर नियुक्तियाँ की थीं उनके कारण ही गाँवों से लोग शहरों की तरफ मुड़े थे। लेकिन आजादी के बाद स्वतंत्र रूप से स्थापित उद्योगों तथा उद्योग नगरों में बड़ी मात्रा में मजदूर वर्ग गाँवों से शहरों में आया। पुराने शहरों का विस्तार हुआ और नए शहर, कस्बे तथा उद्योग-नगर बसने लगे। परिणामस्वरूप कृषि से इतर वर्ग भी रोजगार की तलाश में शहरों की ओर चल पड़ा। इस तरह बदलते हुए उत्पादन संबंधों ने समाज व्यवस्था में बुनियादी परिवर्तन उत्पन्न किए। महानगरों का विकास हुआ।

इस बदलती हुई सामाजिक व्यवस्था ने एक जागरूक मध्यवर्ग को जन्म दिया जो अपने साधनों की सीमाओं को जानता था और उन सीमाओं के कारणों के प्रति भी सचेत था। यही वह वर्ग था जो ऊपर तथा नीचे के वर्ग को जोड़ता था, किन्तु अपनी व्यथा के भीतर संत्रस्त था। इस मध्यवर्ग की घुटन, कुंठा और आक्रोश की अभिव्यक्ति भी इस युग के साहित्य में हुई है। इस आक्रोश और घुटन का एक आयाम श्रम का परायापन, आत्मनिर्वासन, अवमानवीकरण और अकेलापन (Alienation) था। गाँव उससे छूट तो गया था, किंतु उसकी चेतना में जीवित था। वह गाँव और शहर के बीच की आर्थिक दूरी के प्रति भी जागरूक था। विकास के नाम पर किए जा रहे प्रयासों और उनसे प्राप्त होने वाले लाभ में किसान-मजदूरों के अल्पांश की हिस्सेदारी को भी देख रहा था। कहना चाहिए कि असलियत से वह

काफी वाकिफ था और उसे बेनकाब कर उसके खिलाफ संघर्ष के लिए उत्सुक। नयी कविता का सृजन इसी मनोभूमिका में हुआ है।

31.3 कवि परिचय

31.3.1 जीवन-परिचय

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का जन्म 15 सितंबर, 1927 को बस्ती, उत्तर प्रदेश में हुआ था। आरंभिक शिक्षा बस्ती में तथा उच्च शिक्षा क्वींस कालेज वाराणसी और इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हुई। सन् 1949 में उन्होंने हिंदी में एम. ए. किया। आरंभ में कुछ समय स्कूल में शिक्षक रहे। फिर सरकारी कार्यालय में नौकरी की। थोड़े दिन के लिए आकाशवाणी के दिल्ली तथा अन्य केन्द्रों में कार्य किया। सन् 1969 से 1982 तक हिंदी साप्ताहिक "दिनमान" में काम किया। उसके बाद बाल पत्रिका "पराग" के संपादक बने। किन्तु पराग की सेवा बहुत थोड़े ही दिन कर पाए। 23 सितंबर 1983 को 56 वर्ष की अल्पायु में उनका देहांत हो गया।

31.3.2 कवि व्यक्तित्व

सर्वेश्वर के कवि व्यक्तित्व की बनावट में दो तत्वों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई—भारतीय ग्राम्य जीवन की संवेदना और समाजवादी विचारधारा। उनका बचपन गाँव के जिस हरे-भरे उन्मुक्त वातावरण में बीता था उसने उनकी सृजन चेतना को इतने गहरे तक प्रभावित किया कि महानगर उनको हमेशा पराया ही लगता रहा। ग्राम्य चेतना से वह जुड़ाव वस्तुतः कोई मोह न होकर भारतीय जन-जीवन से जुड़ाव है। उनकी कविता जिस मामूली आदमी की पीड़ा को प्रस्तुत करती है उसकी संवेदना का निर्माण इन्हीं ग्राम्य संस्कारों से हुआ है। इसीलिए वे खेतिहर मजदूरों, किसानों, चरवाहों, ग्रामीण बच्चों, खेत की मेड़ों, मैदानों, नदियों और पोखरों के चित्र उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र मिलते हैं। लोहियावादी समाजवादी विचारों के संस्कार उन्हें विद्यार्थी जीवन में मिले। उनका परिचय समाजवादी कवि समीक्षक विजयदेव नारायण साही से हुआ। तभी वे प्रयाग की साहित्यक संस्था "परिमल" के संपर्क में आए। समाजवादी विचारधारा का प्रभाव उनके जीवन तथा लेखन पर अंत तक रहा। कुछ समय तक वे "परिमल" के कार्यवाहक सचिव भी रहे।

31.3.3 रचनाएँ

सर्वेश्वर जी कवि, कथाकार, नाटककार, साहित्य चिन्तक, संस्मरणकार, पत्रकार तथा कला समीक्षक थे। उनकी पहली रचना सन् 1944 में "माधुरी" में छपी थी। उसके बाद कभी-कभार कहानियाँ लिखते रहे और विद्यार्थी जीवन में ही कहानीकार के रूप में अपनी पहचान बना ली। उनका प्रथम काव्य संग्रह 'काठ की घंटियाँ' सन् 1959 में छपा। इसमें सन् 1949 से 1957 तक की कविताएँ संकलित हैं। इसी वर्ष अज्ञेय जी के संपादकत्व में छपे "तीसरा सप्तक" में भी सर्वेश्वर की कविताएँ छपीं। काव्य लेखन में सक्रियता सन् 1951 से आई। इन्हीं दिनों वे "परिमल गोष्ठी" में तेजी से चर्चित हुए और उनकी कविताओं में नयी कविता की पर्याप्त संभावनाएं दिखायी दीं। इसके बाद उनके अगले **काव्य संग्रह** क्रमशः इस प्रकार छपे — "बाँस का पुल" (1963), "एक सूनी नाव" (1966), "गर्म हवाएँ" (1969), "कुआनो नदी" (1973), "जंगल का दर्द" (1976), "खूँटियों पर टँगे लोग" (1982)। उनके **नाटकों** में "बकरी" (1974), "लड़ाई" (1979), "अब गरीबी हटाओ" (1981), "रूपमती बाज बहादुर" तथा "होरी धूम मचा री" विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। **उपन्यासों** में "पागल कुत्तों का मसीहा", "सोया हुआ पल", "सड़क" आदि उल्लेखनीय हैं। सर्वेश्वर जी ने बच्चों के लिए कई पुस्तकें लिखीं। उनके बाल साहित्य में "बतूता का जूता", "मँहगू की टाई", "भौं-भौं खों-खों" तथा "लाख की नाक" प्रमुख हैं। पत्रकार के रूप में उनकी खास पहचान "दिनमान" साप्ताहिक के "चरचे और चरखे" नामक व्यंग्य कालम के लिए तथा विविध पत्र-पत्रिकाओं में साहित्य रंगमंच, नृत्य और संस्कृति पर समीक्षात्मक लेखन के लिए है।

उनके कविता संग्रह "खूँटियों पर टंगे लोग" को सन् 1983 के साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

अभ्यास 1

सर्वेश्वर के काव्य लेखन के समय के युग परिवेश की विशेषताएँ लगभग 10 पंक्तियों में बताइए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

बोध प्रश्न 1

अधिक से अधिक चार-पाँच शब्दों में उत्तर दीजिए :

1 सर्वेश्वर कौन से सप्तक के कवि है ?

....

2 सर्वेश्वर के पहले काव्य संकलन का नाम क्या है ?

....

3 सर्वेश्वर ने कविता के अलावा और किस क्षेत्र में लेखन किया ?

....

4 सर्वेश्वर को कौन-सी कृति पर साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला ?

....

31.4 काव्य संवेदना

31.4.1 अनुभूति पक्ष की सामाजिकता

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना नयी कविता की प्रगतिशील धारा के कवि हैं। आजादी के बाद हिंदी साहित्य में शब्द को कर्म की अर्थवत्ता से जोड़ने के लिए रचनाकार ने जो दायित्व अपने ऊपर लिया और जिसे पूरा करने के लिए वह निरंतर संघर्षरत रहा, सर्वेश्वर उसी संघर्ष के प्रति प्रतिबद्ध रचनाकार हैं। अपनी कविता में उन्होंने अपने समय और समाज की समस्याओं, चिंताओं, मनोदशाओं, विसंगतियों और विद्रूपताओं, आत्म-निर्वासन और पराएपन को वाणी दी। वे अकेले में बैठ अपनी व्यक्तिगत समस्याओं से जूझने या उन्हें मुखर करने वाले कवि नहीं हैं। सम सामयिक जीवन-संदर्भों और समस्याओं से सीधे जुड़ने के कारण उनकी संवेदनात्मक क्षमता ने उनकी कविता को निरंतर नवीन विचारों और दृष्टियों से संपन्न बनाया है। उनके काव्य संकलन उनकी इस विकास यात्रा के परिचायक हैं।

नयी कविता ने जीवन के यथार्थ संघर्षों को पहचानते हुए राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों में सांस्कृतिक विघटन के कारण विघटित मूल्यों के विरुद्ध समर लड़ा है। यह समर सर्वेश्वर ने संवेदना, विषयवस्तु और काव्य-भाषा तीनों के स्तर पर जम कर लड़ा। वे मानते थे कि जरूरी नहीं कि कविता ऐतिहासिक-पौराणिक विषयों पर ही लिखी जाए — वह किसी भी विषय पर लिखी जा सकती है। कवि की दृष्टि इतनी व्यापक होनी चाहिए कि वह विषय को उस कोण से देख सके जहाँ से वह संवेदना को छूता हो। अपनी इस दृष्टि के कारण ही सर्वेश्वर की कविता के केन्द्र में विशिष्ट व्यक्ति न होकर आम आदमी रहा है। मामूली आदमी की पीड़ा के चित्र उनकी कविता में बहुत मिलते हैं —

> जिन्दगी को अर्थ देने के चक्कर में
> वह व्यर्थ हो गया है
> मंदिरों में झाड़ू लगाते
> और कीर्तन सभाओं की दरियाँ बिछाते-बिछाते
> वह किसी भी काम के लिए असमर्थ हो गया है।
>
> — 'गर्म हवाएँ'

मौजूदा समाज की व्यवस्था में शोषित व्यक्ति का यह चित्र मानवीय अनुभूति की गहराई को छूने के साथ ही साथ वर्गों में बँटे समाज की व्यथा को मुखर करता है। इसी तरह का एक और चित्र है जो सामाजिक शोषण और अन्याय से पिसते हुए मनुष्य को प्रस्तुत करता है —

> यह खेतिहर मजदूर भूख से मर गया
> यह चौपाए के साथ बाढ़ में बह गया,
> यह सरकारी बाग की रखवाली करता था
> लू में टपक गया।
>
> — 'कुआनो नदी'

उनकी कविता में निजी सुख-दुख के साथ समाज का विशेषरूप से उसके दलित शोषित वर्ग का सुख-दुख भी व्यक्त हुआ। आरंभिक कविताओं में व्यक्त निजी सुख-दुख का स्थान धीरे-धीरे परवर्ती कविताओं में जीवन जगत की वास्तविकताएँ लेती गई। परिवेश के साथ कवि का लगाव दृढ़तर होता गया है।

31.4.2 ग्रामीण संवेदना

सर्वेश्वरदयाल मूलतः ग्रामीण संवेदना के रचनाकार हैं। शहरी या कस्बाई जीवन और संवेदना भी उनकी कविता में हैं किन्तु गाँव वहाँ हर क्षण मौजूद है। गाँव की पगडंडी, कच्ची सड़क, भुजैनिया का पोखरा, कीचड़ में खड़े चौपाए, पीठ पर बस्ता लिए ईंट चलाते बच्चे, कुआनो नदी, पनियल साँपों के रेंगने की आहट, काछी-किसान-मजदूर के विभिन्न चित्र वहाँ मिलते हैं। लोक जीवन के विविध रूप उनके इन ग्राम्य जीवन के चित्रों में मिलते हैं। ग्राम्य परिवेश उनकी कविता में संवेदना और भाषा दोनों के स्तर पर मौजूद रहता है। ग्रामीण शब्दावली, मुहावरों, कहावतों का प्रयोग उनकी कविता में खुलकर हुआ है। कुछ कविताएँ तो ग्राम-गीतों की तर्ज पर लिखी गई हैं जैसे — "सावन का गीत", "चरवाहों को युगल गान", "चुपाई मारौ दुल्हन", "झाड़े रौ महकुआ", "गरीबा का गीत" आदि जैसी समर्थ कविताएँ ग्राम गीतों की तर्ज पर ही हैं। इनके माध्यम से कवि पाठक को गाँव के जीवन का करीबी अहसास कराना चाहता है। उसके जीवन के अभावों, तकलीफों और उपेक्षा का निकट से अनुभव कराना चाहता है। सर्वेश्वर की कविता में व्यक्त मामूली आदमी की पीड़ा मूलतः गाँव के जीवन से जुड़ी है।

महानगर की यंत्रणा से वे बेचैन हैं। महानगर की पीड़ा-कराह का स्वर उनमें दर्द की मरोड़ पैदा करता है। यहाँ का पराएपन का अहसास उन्हें रूलाता है। लेकिन जब शहर गाँव में घुस पड़ता दिखाई देता है तो कवि को अपना इतिहास भी छिनता दिखाई देता है और बीता हुआ अपनापन भी छूटता दिखाई देता है। जब वह कहते हैं —

सुनो! सुनो!
यहीं कहीं एक कच्ची सड़क थी
जो मेरे गाँव को जाती है।

कच्ची सड़क की जगह बनी पक्की सड़क उस तबाही का ध्यान दिलाती है जो महानगर ने आम आदमी के लिए पैदा कर दी है। यह तबाही है गैर बराबरी की, प्रतिस्पर्धा की, बेरोजगारी और भुखमरी की, मूल्यों के विघटन की। पुराने मूल्यों को हम छोड़ चुके हैं, नए मूल्यों की स्थापना नहीं कर पाए हैं। आधुनिकीकरण के नाम पर हुए पश्चिमीकरण ने जीवन में जो संत्रास और घुटन पैदा की है उसको गाँवों की ओर बढ़ते देख कवि के मन में पीछे छूटे हुए गाँव की "हुड़क" उठती है। नीम की निबौलियों, आम की डालों, महुआ, इमली, जामुनों और काँसे की चूड़ियों के प्रति यह हुड़क एक तरह का व्यामोह नहीं है, वरन् इसमें ग्रामीण जन-मानस की व्यथा बोलती है और कवि महसूस करता है कि शहरीकरण की इस प्रक्रिया से इस व्यथा का उद्धार नहीं होने वाला है। वह जानता है कि जो उपभोक्ता संस्कृति पनपी है उसमें गाँव शहरों की जरूरतों को पूरा करने के साधन मात्र रह गए हैं। राष्ट्रीय विकास कार्यों से मिलने वाले लाभ का बड़ा भाग शहरों ने पाया है, गाँवों को उनका पूरा भाग नहीं मिला है। गाँवों में विकास के नाम पर जो सुविधाएँ पहुँचाई गई हैं उसका भोक्ता भी संपन्न वर्ग है। किसान-मजदूर अब भी [illegible] शोषित हैं। शहर द्वारा गाँव के शोषण से वह व्यथित हैं। कवि संपूर्ण संकल्प से किसानों और मजदूरों में मिल जाना चाहता है — "उनका और उनके लिए होना चाहता है"। सदियों से दलित-शोषित, अनपढ़ खेतिहर मजदूर को क्रांति के अंगारों का सामूहिक आग का मतलब समझाना चाहता है। अभावों से ठंडे उनके चूल्हों में धधकना चाहता है —

वह आग मेरे करीब आती जा रही है।
कभी मैं किसानों की चिलमों में अंगारे की तरह दमकने की कामना करता था,
मजदूरों की बीड़ियों में सुलगने के ख्वाब देखता था।

आजादी के बाद तेजी से गाँवों से शहरों की ओर प्रवास हुआ। रोजी की तलाश में आए आदमी ने अपना संघर्ष अकेले झेला। एक बार आने के बाद वह वापस न जा सका। उसकी चेतना गाँव और शहर के बीच खींचतान की बनी रही। शहरी जीवन ने उसे अपने में ऐसा लपेट लिया कि मुड़कर वापस जाना उसके लिए संभव न रहा। यह चेतना अधिकांश शहर आए जनों की है चाहे वे यहाँ आकर चार पैसे कमाकर संपन्न हो गए हों, चाहे यहाँ भी तसला ढोने और फुटपाथ पर सोने के लिए मजबूर हों।

31.4.3 आधुनिक भाव-बोध

सर्वेश्वर की आरंभिक कविताओं में अज्ञेय और धर्मवीर भारती की तरह रोमांटिक भावबोध की प्रधानता है किंतु धीरे-धीरे यह रोमांटिक भावबोध जीवन-जगत की विषमताओं से टकरा कर टूट जाता है। "गर्म हवाएँ" संकलन इसी ठंडे सवेरे के खो जाने का प्रतीक है। आगे के सभी संग्रहों में "गर्म हवाएँ" की यह ज्वलनशील चेतना बलवती होती जाती है। "जंगल का दर्द", "कुआनो नदी" और "खूँटियों पर टँगे लोग" में अनुभव की सामाजिक व्याप्ति और सामाजिक दायित्व लोक-संस्कृति का भाव बन जाते हैं।

नयी कविता की प्रगतिशीलधारा के प्रतिनिधि कवि सर्वेश्वर ने सामंतवादी, साम्राज्यवादी, उपनिवेशवादी, अलगाववादी शक्तियों के प्रति जनता को सावधान किया। देश में राजनीतिक और आर्थिक दोनों क्षेत्रों में सक्रिय संकट की ओर आगाह किया। आजादी के बाद का मोह-भंग उनकी पूरी काव्य-संवेदना में भीतर-बाहर व्याप्त है। स्वाधीनता संघर्ष के

दौरान जो स्वप्न हमने देखे थे वे एक-एक कर मिटते दिखाई देते हैं। आदर्शों का खोखलापन वादों का ढोंग, नारों की अर्थ-शून्यता उन्हें प्रत्यक्ष दिखाई देती है। "यह खिड़की" नामक कविता में वे लिखते हैं —

अब मैं यह खिड़की नहीं खोलूँगा
× × × ×
यह बंद कमरा
सलामी मंच है
जहाँ मैं खड़ा हूँ —
पचास करोड़ आदमी खाली पेट
ठठरियाँ खड़ खड़ाते
हर क्षण मेरे सामने से गुजर जाते हैं
झाँकियाँ निकलती हैं
ढोंग की विश्वासघात की
बदबू आती है हर बार
एक मरी बात की
लोकतंत्र को जूते की तरह
लाठी में लटकाये
भागे जा रहे हैं सभी
सीना फुलाए।

यहाँ "लोकतंत्र को जूते की तरह लटकाना" लोकतंत्र की निरर्थकता का बड़ा ही सजीव बिंब प्रस्तुत कर देता है। जूता यदि पैर में पहना जाए तो पैर की सुरक्षा करता है। किन्तु यदि पैरों में पहनने की बजाय इसे लाठी के ऊपर लटका दिया जाता है तो केवल अपने होने का अहसास कराता है। लोकतंत्र भी यदि केवल सिद्धांत रूप में अपना लिया जाए, उन सिद्धांतों पर अमल न किया जाए तो वह लाठी पर लटके जूतों के समान ही दिखावटी होता है। मोहभंग की स्थितियों से उत्पन्न, अवसाद और विवशता सर्वेश्वर की कविता में शुरू से दिखाई देती हैं। धीरे-धीरे यह निजी से सामान्य और सामाजिक होती जाती है। उनकी दृष्टि आत्मपरक से वस्तुपरक होती जाती है। यह बदलाव नीचे दिए गए दो उदाहरणों से स्पष्ट है। उदाहरण 'क' की निजता उदाहरण 'ख' की सामाजिकता में बदल जाती है —

(क) "बोलना चाहता है, अपनी पग ध्वनि से बोल
दर्द की गाँठ तू अपने ही छालों पर खोल"

(ख) "मैं जानता हूँ मेरे दोस्त
कि हमारे-तुम्हारे
और सबके आँसू
इस धरती पर गिरेंगे
और सूखते चले जाएँगे।"

कविता में व्याप्त निराशा, घुटन, आत्म-निर्वासन, परायेपन और अकेलेपन की स्थितियों के कारण कभी-कभी सर्वेश्वर पर अस्तित्ववाद का प्रभाव भी स्वीकार कर लिया जाता है। "कुआनो नदी" का "मुर्दाघाट का पाट" तथा कविताओं में जगह-जगह टूटन, पराजय या पस्ती के चित्रों के आधार पर या लाश, मृत्यु, सड़ाँध, केंचुओं, केकड़ों, गुबरलों आदि को प्रतीक के रूप में इस्तेमाल करने के कारण कभी-कभी उन पर अस्तित्ववाद के प्रभाव का भ्रम हो जाता है। किन्तु जन-शक्ति में आस्था रखने के कारण सर्वेश्वर पश्चिम की अस्तित्ववादी और अनास्थावादी विचारधारा के कवि नहीं हैं। कविताओं में पस्ती-पराजय के अंकन और भदेस प्रतीकों के इस्तेमाल के बावजूद वे आस्था के कवि हैं, क्रांति और परिवर्तन में विश्वास रखते हैं। वह स्थितियों को उनके क्रूर, निर्मम यथार्थ रूप में प्रस्तुत करना चाहते हैं।

31.4.4 सत्ता का विरोध और क्रांतिकारी आवाज

उनकी कविता का मूल भाव बोध व्यवस्था के विरोध का भावबोध है जो धीरे-धीरे तल्खी में बदलता जाता है। यह राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था के विरुद्ध क्रांति की आवाज उठाता है और चेतावनी देता है —

लेकिन याद रखो
अन्याय और यातना की सीमा
जब पार हो जाती है
तो बेजान में ही सबसे पहले जान आती है।

"जंगल का दर्द" संकलन की कविताओं में वे अंधेरे के बर्फीले माहौल को विचारों की आग की रोशनी से चीरने के लिए आश्वस्त दिखाई देते हैं। यह आग आपातकाल के अंधेरे में काले तेंदुए को खदेड़ने के लिए लगाई गई है —

इतिहास के जंगल में
हर बार भेड़िया माँद से निकाला जाएगा
आदमी साहस से एक होकर
मशाल लिए खड़ा होगा।

यहाँ वे निराला और माखनलाल चतुर्वेदी के क्रांतिकारी स्वर के बहुत निकट दिखाई देते हैं। धीरे-धीरे विद्रोह और बगावत का स्वर उनकी कविता का मूल स्वर बनता जाता है। अन्याय और शोषण की काली चट्टान पर बैठे सत्ता के काले तेंदुए को भारतीय जनता पहचानती है और कवि उसे प्रेरित करता है कि खूँखार तेंदुए से डरने की बजाए उसको खदेड़ने का प्रयास करो —

तेंदुआ गुर्राता है
तुम मशाल जलाओ
क्योंकि तेंदुआ गुर्रा तो सकता है
मशाल नहीं जला सकता।

कवि जन सामान्य को उसकी शक्ति का अहसास कराता है कि क्योंकि उसे आम आदमी की ताकत पर बड़ा भरोसा है। वे जानते हैं कि आम आदमी की यह लड़ाई जारी रहेगी भले ही इसे शुरू करने वाला इसके परिणाम को न देख पाए। कवि सामान्य मनुष्य के साथ अपने को एकाकार कर देता है और उसकी अभिव्यक्ति की अनुभूति की प्रामाणिकता को स्वतः सिद्ध करती है। आम आदमी की व्यथा को व्यक्त करते हुए वह कहीं भी भाव का आरोप नहीं दिखाई देता. सहे हुए, झेले हुए अनुभव की अभिव्यक्ति करता है —

हल की तरह
कुदाल की तरह
या खुरपी की तरह
पकड़ भी लूँ कलम को
तो भी फसल काटने को
मिलेगी नहीं हमको
हम तो जमीन ही तैयार कर पाएँगे
क्रांति बीज बोने कुछ बिरले ही आएँगे
हरा-भरा वे ही करेंगे मेरे श्रम को
सिलसिला मिलेगा आगे मेरे क्रम को।

आगे आने वाली पीढ़ी के लिए क्रांति की जमीन तैयार करने का विश्वास और उनमें अपने श्रम और क्रम को सिलसिला मिलने का अहसास यह सिद्ध कर देता है कि सर्वेश्वर "आस्था" के कवि हैं। जब वे कहते हैं कि "नहीं-नहीं प्रभो/तुमसे शक्ति नहीं माँगूंगा" तो वहाँ जो मूल स्वर है वह अनास्था का न होकर आत्मविश्वास का है। अपने भीतर की शक्ति को पहचानने का प्रयास वहाँ स्पष्ट दिखाई देता है —

हर क्षण यह जान सकूँ क्या मुझको खोना है
कितना सुख पाना है, कितना दुख रोना है
अपने सुख-दुख की प्रभु
इतनी पहचान रहे

अन्याय और शोषण किसी भी स्तर का हो वे उसके विरुद्ध आवाज अवश्य उठाते हैं। यही कारण है कि "कुआनो नदी" में वे महानगरों द्वारा गाँवों के शोषण के खिलाफ आवाज उठाते हैं और कुआनो नदी एक साधारण नदी न रहकर व्यापक अर्थ संकेत देने वाला प्रतीक बन जाती है। जन-क्रांति की शक्ति का विश्वास उभरता दिखाई देता है।

31.4.5 परम्परा और प्रयोग

इस इकाई के पिछले भागों में आप पढ़ चुके हैं कि सर्वेश्वर की कविता में भारतीय जीवन और समाज के यथार्थपरक सरोकार और ग्रामीण संवेदना की प्रधानता है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनका कवि भारतीय काव्य और हिंदी कवियों की परंपरा से जुड़ा है। प्रश्न यह है कि वे किन कवियों की परंपरा को अपनाते हैं तथा कहाँ तक अपनाते हैं।

आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साम्राज्यवादी शोषण के विरुद्ध बगावत की जो चिनगारी अपनी रचनाओं में उठाई वह आगे के रचनाकारों में दिए की लौ के रूप में जगी। जन-सामान्य की गरीबी, दीनता और दुर्दशा की ओर समाज का ध्यान दिलाने और उसे दूर करने के लिए कवि उद्वेलित हो उठा। बालकृष्ण शर्मा, नवीन, माखन लाल चतुर्वेदी, सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला", गजानन माधव मुक्तिबोध, केदारनाथ अग्रवाल आदि के काव्य में यही क्रांति का स्वर विद्यमान है। सर्वेश्वर की रचनात्मक प्रतिमा इसी क्रांतिकारी परंपरा से जीवंतता पाती है। किसान-मजदूर की पीड़ा, आम आदमी की हिम्मत और शक्ति में विश्वास उन्हें इसी विरासत से मिलता है।

यथार्थ पर विशेष आग्रह रखने की प्रवृत्ति के कारण उन्हें निराला और मुक्तिबोध की परंपरा का कवि कहा जा सकता है तो लोक-भाषा और लोक-संस्कार की पकड़ के कारण उन्हें कबीर, सूर और तुलसी की लोक परंपरा से जोड़ा जा सकता है। निराला और मुक्तिबोध की विद्रोही परंपरा को उन्होंने काव्य के नए मुहावरे से आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया। यह नया मुहावरा सन् 1960 के बाद की कविता में काफी प्रख्यात हुआ और इसने आगे आने वाले काफी कवियों को

प्रभावित किया। मुक्तिबोध के काव्यादर्श उनकी चेतना को भीतर तक उद्वेलित करते हैं। "कवि मुक्तिबोध के निधन पर" नामक उनकी कविता में वे इसे स्वीकार भी करते हैं —

तुम थे —
हम सब के अधिक तेजस रूप
अधिक प्रखर आकृति
तुम्हारा टूटना
हम सब के आकारों का टूटना है।

निराला और केदारनाथ अग्रवाल की कविता की उदात्तता और मैथिलीशरण गुप्त की कविता की स्पष्टता और सादगी दोनों ही उन्हें विरासत में मिली हैं। किन्तु परम्परा की इस विरासत को ग्रहण करने के साथ सर्वेश्वर नए प्रयोगों में विश्वास रखने वाले कवि हैं। लीक पर चलने की बजाए वे अपना रास्ता स्वयं बनाने में विश्वास रखते हैं। यही कारण है कि कथ्य, संवेदना, भाषा और शिल्प सभी के स्तर पर वे नए प्रयोग करते हैं और स्वातंत्र्योत्तर कविता में अपना ऐतिहासिक स्थान बनाते हैं। लोक जीवन के नए से नए चित्र उनकी कविता में मिलते हैं। इस संदर्भ में "सुहागिन का गीत", "गाँव की शाम का सफर", "नए साल पर", "कुआनो नदी", "भुजैनिया का पोखरा", "बाँस गाँव" आदि कविताएँ विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें प्रस्तुत ग्राम्य परिवेश का चित्रण किसी अतिरिक्त मोह के कारण नहीं है, बल्कि वहाँ के अभावों, तकलीफों को उजागर करने के लिए है। गाँव उनके मन में इतना गहरा बैठा है कि कविता में अचानक प्रकट हो जाता है। भारतीय जीवन और समाज का यथार्थ उनकी कविता के माध्यम से उभरकर सामने आता है।

इस संवेदना को चित्रित करने का उनका ढंग भी बिल्कुल नया और अपना है। इसीलिए उनकी कविता में व्यंग्य का एक खास पैनापन मिलता है —

मेरे दोस्तो!
तुम मौत को नहीं पहचानते
चाहे वह आदमी की हो
या किसी देश की
चाहे वह समय की हो
या किसी वेश की।
सब कुछ धीरे-धीरे ही होता है
धीरे-धीरे ही बोतलें खाली होती हैं
गिलास भरता है,
हाँ, धीरे-धीरे ही
आत्मा खाली होती जाती है
आदमी मरता है

प्रकृति को आँकते समय भी सर्वेश्वर दयाल नए-से-नए चित्र प्रस्तुत करते है। कहीं नए उपमान प्रयोग करते हैं तो कहीं पुराने उपमानों में नए अर्थ भरते हैं। बिंबों का नयापन उनकी कविता में हर जगह मिलता है चाहे प्रसंग राजनीति पर व्यंग्य का हो, छद्म बुद्धिजीवियों के ढोंग का। गांधी को सम्बोधित "पंच धातु" नामक कविता का उदाहरण है —

मैं जानता हूँ
क्या हुआ तुम्हारी लंगोटी का
उत्सवों में अधिकारियों के
बिल्ले बनाने के काम आ गयी
× × × ×
और तुम्हारी लाठी?
उसी को टेककर चल रही
एक बिगड़ी दिमाग डगमगाती सत्ता
× × × ×
और घड़ी
देश के नब्ज की तरह बंद है।

भाषा और शिल्प के स्तर पर भी उनकी कविता प्रयोगों से भरी पड़ी है। लोक भाषा की शक्ति को उन्होंने पहचाना और उसे संप्रेषण का समर्थ माध्यम बनाया। लोक लयों और लोक छंदों का उन्होंने अपनी कविताओं में सार्थक उपयोग किया है। इतना ही नहीं, अपनी लंबी कविता "कुआनो नदी" में उन्होंने प्रबंधात्मकता का पुराना ढाँचा तोड़ते हुए नया प्रबंधात्मक शिल्प विकसित किया है।

कथ्य और संवेदना के स्तर पर भी नयापन उनकी कविता में मिलता है। नीचे हम उनकी "प्रार्थना" नामक कविता से उदाहरण दे रहे हैं। इसमें रचनाकार नयी अभिव्यक्ति संपदा तथा दृष्टि तो खोजता ही है साथ ही अपने दुखते, कसकते,

तड़पते अनुभवों को वाणी देता है। पर ऐसा करते समय घुटने नहीं टेकता, समझौता नहीं करता। वह कहता है

नहीं नहीं प्रभु तुमसे
शक्ति नहीं मागूँगा
अर्जित करूँगा उसे मर कर बिखर कर
आज नहीं कल सही आऊँगा उबरकर
कुचल भी गया तो लज्जा किस बात की
रोकूँगा पहाड़ गिरता
शरण नहीं माँगूंगा
नहीं नहीं प्रभु तुमसे
शक्ति नहीं माँगूंगा

ईश्वर के सामने घुटने न टेकने की यह बात दंभ न होकर आत्मविश्वास और मनुष्य की श्रम शक्ति का प्रतीक है। उसमें मध्ययुगीन दैन्य के स्थान पर आत्मबल की दृढ़ता है जो मानवीय गरिमा की सूचक है। ईश्वर के साथ ही यह "प्रभु" संबोधन समाज के मठाधीशों और प्रभुता सम्पन्न वर्ग के लिए भी प्रयुक्त है जिनसे कवि न तो समझौता करना चाहता है और न ही उनकी दया पर जीना चाहता है।

31.4.6 विचारधारा और प्रभाव

सर्वेश्वर की कविता में राजनीतिक पाखंड, ढोंग और भ्रष्ट व्यवस्था और आज की विसंगतिया का चित्रण तो मिलता है किन्तु किसी दल विशेष के मतवाद के प्रति प्रतिबद्धता नहीं मिलती। जाने-अनजाने तौर पर वे राममनोहर लोहिया और जयप्रकाश नारायण की समाजवादी विचारधारा से प्रभावित हैं। वे मानते हैं कि लोहिया के नए क्रांतिकारी विचारों ने युवा-मानस को नए चिंतन की मशाल दी। उनकी कविता "लोहिया के न रहने पर" इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।

विचारधारा के स्तर पर लोहिया से प्रभावित होने पर भी गांधी और मार्क्स दोनों के प्रति उनके मन में प्रबल आकर्षण था। गांधी की निमर्म हत्या और उसके बाद उनके आदर्शों के अनुसरण के नाम पर हो रहे ढोंग के प्रति वे सचेत हैं। उनके राजनीतिक झुकाव उनकी कविता को विचार की ऊर्जा तो प्रदान करते हैं किन्तु उनके सृजन की भीतरी शक्ति नहीं बनते। इसलिए वे कभी किसी विचारधारा विशेष के प्रचारक नहीं बनते। विसंगतियों और विद्रूप के चित्रण की सम्पन्नता के कारण उन पर पश्चिम के अस्तित्ववाद और अनास्थावाद का प्रभाव भी बताया जाता है। किन्तु "लीक पर वे चलें" तथा "गर्म हवाएँ" संकलन की "प्रार्थना 1, 2, 3" आदि कविताएँ या ऐसी अन्य कविताएँ स्पष्ट रूप से सिद्ध करती हैं कि सर्वेश्वर आस्था के कवि हैं। इसलिए सर्वेश्वर को किसी एक विचारधारा का कवि न कह कर प्रगतिशील सामाजिक विचारधाराओं का कवि कहा जाना चाहिए।

जहाँ तक साहित्यकारों के प्रभाव का सवाल है सर्वेश्वर अज्ञेय के काफी निकट रहे। किन्तु उनकी काव्य दृष्टि को स्वीकार नहीं किया। काव्य दृष्टि के लिहाज से वह मुक्तिबोध के ज्यादा निकट हैं। मुक्तिबोध के सृजन कर्म में सर्वेश्वर की आस्था और उनकी राह पर चलने के संकेत हमें उनकी "मुक्तिबोध के निधन पर" नामक कविता में स्पष्ट देखने को मिलते हैं —

"तुम्हारी मृत्यु में
प्रतिबिंबित है हम सब की मृत्यु
कवि कहीं अकेला मरता है।
× × × ×
तुम्हारे हाथों से जड़े हैं असंख्य हाथ
वे निष्प्राण कैसे हो सकते हैं
बनी-बनायी लीकों पर न चलने वाले की
यात्रा का अंत
पूर्ण विराम में कहाँ होता है।
× × × ×
नहीं नहीं
जीवित हैं हम सब अभी भी
और हम सब में जीवित हो तुम
ये लहरें जाने कहाँ से आती हैं
जो हमारी पसलियों पर
अपने को तोड़ती चली जाती हैं
हमें निरंतर गढ़ती जाती हैं।

31.4.7 व्यंग्य वक्रोक्ति की ओर रुझान

समसामयिक यथार्थ की विद्रूपताओं को उभारने के लिए सर्वेश्वर व्यंग्य और वक्रोक्ति को एक औजार के रूप में इस्तेमाल करते हैं। उनकी ज्यादातर कविताएँ व्यंग्यपरक हैं जिनमें आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक जीवन की विसंगतियों और

विडंबनाओं पर तीखा प्रहार किया गया है। ढोंगी राजनीतिक नेता और नकलची बुद्धिजीवी देव पर व्यंग्य के दो उदाहरण हैं —

(क) घंतमंत दुइ कौड़ी पावा
कौड़ी लै के दिल्ली आवा,
दिल्ली हम का चाकर कीन्ह
दिल दिमाग भूसा भर दीन्ह,
भूसा लै हम शेर बनावा,
ओह से एक दुकान चलावा,
देख दुकान सब किहिन प्रणाम
नेता बनेन कमाएन नाम

(ख) दूसरों के कपड़े पहनकर
सड़क पर मिले एक प्रोफेसर।
बोले :
जिस्म तो अपना है
कपड़े भी अपने हों
क्या जरूरी बात है?
उद्देश्य तो केवल
चाहिए होना आधुनिक
देखिए लगता हूँ न ठीक?

विदेशी विचारधारा को ओढ़कर आधुनिक और क्रांतिकारी कहलाने वाला यह वर्ग अपने भीतर से बिल्कुल खोखला और आत्म-सम्मान विहीन है। वस्तुतः यह बात भारतीय समाज और संस्कृति, विकास की प्रक्रिया और प्रगति सभी क्षेत्रों में इसी प्रकार लागू होती है। धर्म के नाम पर होने वाली बर्बरता और नृशंस हत्याओं पर भी कवि ने ऐसे ही पैने व्यंग्य किए हैं "दंगों के बाद" नामक कविता से एक उदाहरण है —

ऐसा क्यों होता है?
कि धर्मग्रंथ छूकर भी
किसी आदमी के हाथ
जंगली जानवर के पंजे में बदल जाते हैं
जहरीले नाखून से वह
इंसान की सूरत नोचने लगता है,
और ईश्वर का नाम लेते ही
जीभ लपलपाने लगती है।
× × × ×
मंत्रों और आयतों की जगह
दहाड़ सुनाई देती है

(वहशी दहाड़)

इन व्यंग्यों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें बात सहजता या कोमलता से कहने की बजाए धारदार ढंग से कही गयी है। सर्वेश्वर अपने इस लहजे के प्रति पूर्ण सचेत हैं। "तीसरा सप्तक" के कवि वक्तव्य में उन्होंने कहा भी है — "जब चारों ओर लोग इस बात पर कमर बाँधे हों कि वे आपकी बात नहीं समझेंगे तब आपके सामने दो ही रास्ते रह जाते हैं, या तो चुप रहें, अपनी बात न कहें या फिर उसे इस ढंग से कहें कि सुनने वाला तिलमिला उठे, उसकी कलई उतर जाय।" यही कारण है कि आम आदमी का दुख दर्द भी उनकी कविता में तीखे व्यंग्य के माध्यम से उभर कर आता है "भुजैनियों का पोखरा" कविता से एक उदाहरण है —

भाड़ के सामने काली भूतनी-सी
आज भी वह बैठी है
पसीने से चिपचिपाती देह लिए
चुप खामोश,
एक-एक चने से अपना भाग्य जोड़ती
दुखती रगें तोड़ती
उसके अधनंगे बच्चे
भाड़ झोंकने के लिए
दिन भर सूखी पत्तियाँ बटोरते हैं
और शाम को मक्के की रोटी
और नरई का साग अगोरते हैं।

31.4.8 प्रकृति और जीवन दृष्टि

नयी कविता में प्रकृति की प्रस्तुति का स्वरूप बदला। छायावादी युग में प्रकृति को जिस कल्पनातिरेक और भावमय संसार के रूप में प्रस्तुत किया गया था उसे नयी कविता ने स्वीकार नहीं किया। नयी कविता के कवियों ने इसे आम आदमी की जागरूक संवेदना-शक्ति के साथ जिया और व्यक्त किया है। विशेष रूप से सर्वेश्वर की कविता में यह आम जीवन का जिया-भोगा प्रकृति का रूप ही अपनी भरपूर संप्रेष्यता के साथ व्यक्त हुआ है। इसलिए यहाँ प्रकृति किसी सुदूर कुतूहलपूर्ण रहस्यमयी सत्ता का नाम नहीं बल्कि दिनोंदिन जीवन में हमारे साथ चल रही वास्तविक स्थितियाँ और छवियाँ है। "नये साल पर" कविता में कवि कहता है —

खेतों की मेड़ों पर
धूल भरे पाँव को
कुहरे में लिपटे उस छोटे से गाँव को
नये साल की शुभ कामनाएँ।

प्रकृति के विभिन्न उपादानों को भी एक विशेष गति, थिरकन और लय के साथ प्रस्तुत किया गया है —

वक्ष खोले डोलती अमराइयाँ
गर्व से आकाश थामे खड़े
ताड़ के ये पेड़,
हिलती क्षितिज की झालरें,
झूमती हर डाल पर बैठी,
फलों से मारती
खिलखिलाती शोख अल्हड़ हवा,
गायक-मंडली से थिरकते आते गगन में मेघ,
वाद्य यंत्रों से पड़े टीले।

यहाँ बनने वाले बिंबों में एक तरह का जाना-पहचानापन या निकटता का बोध होता है। दूसरी ओर प्रकृति के उन रूपों को भी अपने वास्तवपन में प्रस्तुत किया गया है जो मानवीय मन को सहलाते, गुदगुदाते नहीं बल्कि आम आदमी के लिए तबाही खड़ी कर देते हैं। "कुआनो नदी" से कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं —

फिर बाढ़ आ गई होगी उस नदी में
पास का फुटहिया बाजार बह गया होगा
पेड़ की शाखाओं पर बँधे खटोले पर
बैठे होंगे बच्चे किसी काछी के
और नीचे कीचड़ में खड़े होंगे चौपाए
पूँछ से मक्खियाँ उड़ाते।

(कुआनो नदी)

व्यंग्य-वक्रोक्ति के लिए प्रकृति का प्रतीकात्मक उपयोग बड़ी ही सुघड़ता और सफलता के साथ किया गया है।

(1) पानी चढ़ रहा है
खून खौल रहा है,
बहुत करीब आ गया है
खतरे का निशान

(कुआनो नदी)

(2) चट्टानों पर सो रहा है काला तेंदुआ
चट्टानों का रंग काला है
चट्टानों पर अंगड़ाई ले रहा है
काला तेंदुआ
चट्टानों का रंग बदल रहा है
× × × ×
चट्टानों पर झिंझोड़ रहा है अपना शिकार
काला तेंदुआ
चट्टानें, चट्टानें नहीं रहीं
तेंदुआ में बदल गई हैं।
एक तेंदुआ
सारे जंगल को
काले तेंदुआ में बदल रहा है।

(जंगल का दर्द)

छायावादी कवि अपने व्यक्तित्व को सीधा प्रकट न करके उसे प्रकृति की रहस्यात्मक कुहेलिका के माध्यम से अभिव्यक्त करते थे। वे प्रकृति को ही सब कुछ मानते थे, उसी से सृजन प्रेरणा पाते थे। नयी कविता में यह दृष्टिकोण बदला। कवि ने प्रकृति से प्रेरणा तो पायी है किन्तु अपने कवि-व्यक्तित्व को समर्पित करके नहीं। प्रकृति के प्रति यह बदला हुआ दृष्टिकोण वस्तुतः जीवन-दृष्टि के बदलाव का परिणाम है। परंपरा-स्वीकृत सोच पर प्रश्न चिह्न लगाने का परिणाम ही कि सर्वेश्वर डार्विन के विकासवाद के सिद्धांत पर प्रश्न चिह्न लगाते हैं जिसके अनुसार बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है —

> ताकतवर ने सब खा लिया
> कमजोर ने उच्छिष्ट से
> संतोष कर, दर्द से मुँह छिपा लिया।

कवि इसी क्रम को तोड़ना चाहता है कि ताकतवर ही "सब कुछ" खाता रहे। वह इस व्यवस्था को बदल कर नई व्यवस्था कायम करना चाहता है जिसमें गैर-बराबरी या छोटे-बड़े का फर्क कम हो सके। कवि व्यक्तिवादी भावों की बलि नहीं देता। कविता में परिवर्तनकारी नए विचारों की मशाल जलाता है। इसीलिए वह उत्पीड़ित जन-सामान्य को क्रांति के लिए प्रोत्साहित करता है —

(1) "ऐसी कोई जगह नहीं
जहाँ तुम पहुँच न सको
ऐसा कोई नहीं
जो तुम्हें रोक ले।"

(2) विपत्ति में
तुम अकेले नहीं हो
असंख्य सोते कुलबुलाते हैं
चट्टानों में
मिलकर धारा बनने को
इसे पहचानो
राह निकलेगी निश्चय।

बोध प्रश्न 2

"हाँ" या "नहीं" में उत्तर दीजिए।

i) सर्वेश्वर की कविता ग्रामीण संवेदना की कविता है।	हाँ/नहीं
ii) उन्होंने विशिष्ट व्यक्तियों को ही अपने काव्य का विषय बनाया है।	हाँ/नहीं
iii) उनकी कविता में गाँवों की प्रगति और खुशहाली के चित्र हैं।	हाँ/नहीं
iv) उनकी कविता में मोहभंग से उत्पन्न अवसाद, पीड़ा और घुटन के चित्र मिलते हैं।	हाँ/नहीं
v) उन्होंने सत्ता के यशोगान की कविता लिखी है।	हाँ/नहीं

बोध प्रश्न 3

i) सर्वेश्वर की कविता के केन्द्र में निम्नलिखित में से कौन है?

क) बुद्धिजीवी
ख) राष्ट्रीय नेता
ग) आम आदमी
घ) साहित्यकार वर्ग

ii) उनकी कविता का स्वर —

क) क्रांति की चेतना का है
ख) समझौते का है
ग) शांति की स्थापना का है

iii) वे अपनी कविता में किस-किस स्तर पर नए प्रयोग करते हैं?

....

....

....

....

बोध प्रश्न 4

i) सर्वेश्वर पर किन राजनीतिक विचारधाराओं का प्रभाव माना जाता है?

....

....

....

....

ii) सर्वेश्वर के व्यंग्य की दो विशेषताएँ बताइए।

....

....

iii) प्रकृति के प्रति सर्वेश्वर के दृष्टिकोण की दो विशेषताएँ बताइए।

....

....

31.5 अभिव्यंजना शिल्प

31.5.1 काव्य रूप

सर्वेश्वर ने प्रमुख रूप से मुक्तक कविताएँ ही लिखी हैं। उनके काव्य-संकलनों की अधिकांश कविताएँ सीमित आकार की और अपने आप में पूर्ण हैं। लोक गीतों की तर्जपर भी उन्होंने कुछ कविताएँ लिखी हैं जैसे — "झाड़े रे महकुआ" "गरीबा का गीत" आदि। तुकांत होने के साथ ही इन कविताओं में गेयता है। "कुआनो नदी" का काव्य रूप उनकी अन्य कविताओं से भिन्न है। यह एक लंबी कविता है। लंबी कविता आधुनिक हिंदी काव्य का विशिष्ट काव्य रूप है। छायावाद युग में प्रसाद की "प्रलय की छाया", पंत की "परिवर्तन", निराला की "राम की शक्ति पूजा" और "तुलसीदास" आदि लंबी कविताएँ लिखी गई हैं। नयी कविता के दौर में अज्ञेय की "असाध्य वीणा", मुक्तिबोध की "अंधेरे में", नरेश मेहता की "समय देवता", सर्वेश्वर की "कुआनो नदी" आदि लंबी कविताएँ लिखी गई। ये कविताएँ केवल अपने आकार के लिए ही विशिष्ट नहीं है बल्कि शिल्पगत और विचारगत विशिष्टता के कारण लंबी कविता को एक पृथक काव्यरूप माना गया है। हालाँकि छायावादी युग और नयी कविता युग की लंबी कविताओं का रचना विधान आयाम में पर्याप्त भिन्न है। एक बात निश्चित है कि लंबी कविता का अपना प्रबंधात्मक शिल्प होता है इस शिल्प का विधान परंपरागत प्रबंधात्मकता के पालन के लिए बाध्य नहीं होता। रचनाकार उसे अपनी जरूरत के अनुरूप गढ़ता है। सर्वेश्वर ने कुआनो नदी में पुराने प्रबंध शिल्प को छोड़ते हुए चिंतनात्मक प्रबंध शिल्प को अपनाया है। कविता तीन खंडों में रखी गई है — (1) कुआनो नदी, (2) कुआनो नदी के पार, (3) कुआनो नदी — खतरे का निशान। तीसरे खंड तक आते-आते कविता फैंटेसी, व्यंग्य-कथा, आत्म-कथन आदि कई शैलियों में आ जाती है। कविता में एक तरह का नाटकीय मोड़ आता है। नदी का पानी चढ़ना जन-क्रांति का प्रतीक बन जाता है।

31.5.2 काव्य-भाषा

कवि की संवेदना की संपूर्ण वाहक उसकी काव्य-भाषा होती है। उसके अनुभवों, भावों और विचारों को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति मिलती है। इसीलिए काव्य-भाषा किसी भी कवि की संपूर्ण रचना प्रक्रिया को जानने का सर्वाधिक प्रामाणिक माध्यम होती है। नयी कविता जीवन के व्यापक संदर्भों को उजागर करने के लिए अपनी पूरी शक्ति के साथ सक्रिय रही है और यह कार्य उसने काव्य-भाषा के माध्यम से काफी हद तक किया है। सर्वेश्वर का रचना कर्म नयी कविता के समस्त काल विस्तार तक फैला है और उसे दिशा देने में भी समर्थ हुआ है। अतः सर्वेश्वर की कविता का मुहावरा जानना नयी कविता के मुहावरे को समझने के लिए जरूरी है।

सर्वेश्वर ने परंपरागत काव्य-भाषा को स्वीकार नहीं किया क्योंकि वह उन्हें जन-जीवन के पर्याय की अनुभूतियों को वहन करने में समर्थ नहीं प्रतीत हुई। भाषा के पांडित्य या ऊपरी सजधज का बहिष्कार करते हुए उन्होंने आम बोलचाल की भाषा को अपनी काव्य-भाषा के रूप में अपनाया। उनकी काव्य-भाषा शब्द, पदबंध और वाक्य विन्यास की जटिलता को दूर रखते हुए नित्यप्रति की जीती-जागती शब्दावली, लोक-लयों और लोक मुहावरों का जीवंत संसार बन गई। खेत-खलिहान, गली-मोहल्ले, चूल्हे-चौपाल से आयी यह भाषा सर्वेश्वर की कविता की मूल संवेदना-ग्रामीण संवेदना की प्रामाणिकता की पहचान है। लोक जीवन और लोकचिंत से उनका जुड़ाव उनकी भाषा में प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त है। "काठ की घंटियाँ" की आरंभिक कविताओं की भाषा पर जो भावुकता और रोमानीपन का दबाव था वह भी धीरे-धीरे

अनुभवों और विचारों की आँच में पक कर लोक सवदना में बदलता गया है। आम आदमी के व्यक्तित्व और अस्तित्व को रोजमर्रा की जानी पहचानी अनुभूतियों और बिंबों के माध्यम से व्यक्त करती हुई उनकी भाषा में खीझ-रीझ, पीड़ा अवसाद और आंतरिक संघर्ष की तसल्ली तो मिलेगी किन्तु चमत्कार या शास्त्रीयता का कोई दबाव नहीं मिलेगा। इस दिशा में उनका दृष्टिकोण भवानी प्रसाद मिश्र से मिलता दिखाई देता है। भवानी प्रसाद मिश्र का कहना था —

जिस तरह हम बोलते हैं
उस तरह तू लिख
और उसके बाद भी
हमसे बड़ा तू दिख

यहाँ हम से बड़ा दिखने की बात का अर्थ है भाषा में अर्थ की गहनता होना, व्यंजनात्मकता होना। बोलचाल की भाषा को जब कवि काव्य-भाषा के रूप में अपनाता है तो इसका मतलब यह नहीं होता कि वह "सपाट बयानी" करता है। बल्कि इसका मतलब यह होता है कि बोलचाल की भाषा की स्पष्टता और सरलता तो कविता में होती ही है साथ ही उसमें अर्थ की विशिष्ट गहनता और व्यापकता भी होती है। उदाहरण के लिए इस इकाई में आगे आप एक कविता पढ़ रहे हैं — "धीरे-धीरे"। इस कविता में जीवन मूल्यों के विघटन की बात बड़ी ही सरल सहज किंतु व्यंजनाश्रित भाषा में कह दी गई है। इसी तरह का एक अन्य उदाहरण है —

कुछ इतना बड़ा न हो
जो मुझ से खड़ा न हो
सामने पहाड़ हो
लेकिन अड़ा न हो

("गर्म हवाएँ" प्रार्थना-3)

भाषा को वे कवि कर्म की ईमानदारी का प्रतीक और कवि संवेदना की पहचान या स्वरूप मानते हैं। "छीनते आए हैं वे" नामक कविता में वे लिखते हैं —

एक गलत भाषा में
गलत बयान देने से
मर जाना बेहतर है
यही हमारी टेक है
और अब छीनने आए हैं वे
हम से — हमारी भाषा
यानी हम से हमारा रूप
जिसे हमारी भाषा ने गढ़ा है।

सर्वेश्वर की काव्य-भाषा में खड़ी बोली, अवधी और उर्दू का अच्छा मेल तो है ही आजकल की बोलचाल की भाषा की अंग्रेजी मिश्रित शब्दावली और उपमाएँ भी मौजूद हैं —

तुम
जिसके बालों में बनावटी कर्ल नहीं
जिसकी आँखों में न गहरी चटक शोखी है
थर्मामीटर के पारे से
चुपचाप जिसमें भावनाएँ चढ़ती-उतरती हैं
× × × ×
आपरेशन थियेटर सी
जो हर काम करते हुए चुप है"

(तुम कहो)

भाषा की शक्ति को समझते हुए उसे सर्वेश्वर ने वैचारिक और रचनात्मक दोनों स्तरों पर सृजित किया।

31.5.3 बिंब और प्रतीक

सर्वेश्वर की काव्य-भाषा बिंब प्रधान काव्य-भाषा है। किंतु कविता में बिंबों की बहुतायत के कारण उन्हें रूपवादी कवि नहीं मान लिया जाना चाहिए। उनकी कविता में प्रतीकों और बिंबों की बहुतायत का कारण यह है कि नए अनुभवों और विचारों को पुराने प्रतीकों और बिंबों के माध्यम से कह पाना असंभव होता है। अतः बिंब उनकी कविता में चमत्कार की सृष्टि अथवा फैशन के लिए नहीं आए हैं बल्कि उसकी आंतरिक जरूरत के रूप में आए हैं। सामाजिक यथार्थ की विसंगतियों को प्रगट करने के लिए कवि ने भाषा का जो व्यंजनाश्रित और व्यंग्यात्मक प्रयोग किया है और ये बिंब सहज ही बन पड़े है। सामंती अत्याचार में भूख से पीड़ित दलित वर्ग का सहज चित्र इन पंक्तियों में है —

"एक ओर भूखी गौरैय्या
एक ओर नीला अजगर"

विभिन्न प्रकार के जीवनानुभवों से कवि यथार्थ को प्रस्तुत करता है और बिंब इसी पुनर्रचना की प्रक्रिया के प्रधान अंग हैं। बिंब की यह प्रक्रिया भाषा की समूची प्रक्रिया में स्थान पा जाती है। प्रतीक और बिंब काव्य-भाषा की सृजनात्मक प्रक्रिया के अनिवार्य किंतु विशिष्ट तत्व होते हैं। सूक्ष्म अर्थ-छायाओं को बिंब में ढालने के लिए कवि अपने कुछ प्रतीक निर्धारित करता है। ये प्रतीक परंपरा स्वीकृत भी हो सकते हैं और कवि द्वारा निर्मित भी। नए प्रतीक भाषा में नयी अर्थवत्ता का संचार करते हैं। सर्वेश्वर की कविता में ़िड़िया, तेंदुआ, गुबरैला, अजगर, साँप, बंदूक, संदूक, लालटेन, आदि बहु प्रयुक्त प्रतीक हैं। उनके अधिकांश प्रतीक प्रकृति और ग्रामीण जीवन से आए हैं। शहरी जीवन के प्रतीकों का भी बहिष्कार नहीं है। जहाँ भी व्यंग्य-वक्रोक्ति के लिए जरूरत हुई है उनका खुल कर प्रयोग हुआ है।

नए प्रतीकों को सर्वेश्वर मे एक समृद्ध बिंब प्रक्रिया में रूपांतरित किया है। उनके अधिकांश बिंब काव्य-वक्रोक्ति के रूप में प्रकट हुए हैं और अपने प्रभाव की मार में काफी असरदार हैं जैसे आयात स्थिति पर अप्रत्यक्ष व्यंग्य के दो उदाहरण हैं —

(1) एक तेंदुआ
सारे जंगल को
काले तेंदुए में बदल रहा है

(2) अब मैं कवि नहीं
एक काला झंडा हूँ
तिरपन करोड़ भौंहों के बीच मातम मे
खड़ी है मेरी कविता

"चुपाई मारौ दुलहिन" नामक कविता में गरीब औरत के चित्र के माध्यम से प्रस्तुत सामाजिक व्यभिचार का, व्यवस्था के चरित्र की तस्वीर कवि की सफल बिंब सृष्टि की परिचायक है —

लाला के बाजार में
मिली दुअन्नी
पर वह भी निकली खोटी
दिन भर सोई
बीच बाजार में बैठ के रोई
साँझ को लौटी
ले खाली झौआ

इसी तरह "धीरे-धीरे" नामक कविता में गिलास और बोतल के प्रतीकों के माध्यम से राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक मूल्यों के विघटन के बिंब बड़े ही कौशल से प्रस्तुत किए गए हैं।

प्रकृति के साहचर्य के बिंबों में सर्वेश्वर की कविता में एक खास तरह की ताजगी मिलती है। तकलीफों की भीषण मार प्रकृति के परंपरागत प्रतीकों को भी नए रूप में रखने को प्रेरित करती है। वसंत और फूलों से लदी डालियाँ मात्र सुख ही नहीं प्रदान करतीं —

फूलों की भरी डाल
जिसको था पकड़ इतराता
फूल गिरी मुझ पर अजगर सी
ठंडी एक लपेट ने
मुझे आज फिर कसा
फिर वसंत ने मुझे डसा

लेकिन जहाँ कवि प्रकृति के सौंदर्य को आँकता है वहाँ बिंबों की एक खास तरह की ताजगी प्रस्तुत होती है —

आकाश का साफा बाँधकर
सूरज की चिलम खींचता
बैठा है पहाड़
घुटनों पर पड़ी है नदी चादर सी

बिंबों का यह नयापन छायावादी या प्रयोगवादी कविता के प्राकृतिक दृश्यों से बिल्कुल अलग अपनी छवि प्रस्तुत करता है। प्रतीकों के नए उपयोग और बिंबों की बहुतायत के बावजूद ध्यान रखने की बात है कि कवि उन्हें कभी सजावट के सामान या कौतूहल सृष्टि के औजार के रूप में इस्तेमाल नहीं करता क्योंकि उसका प्रमुख उद्देश्य संप्रेषणीय भाषा में कविता लिखना है। यह बात कविताएँ तो स्पष्ट करती ही हैं, स्वयं कवि भी इस ओर सचेत है। इसका प्रमाण निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं —

बिंब और प्रतीक को
मारिए गोली
बोलिए मेरे साथ
खड़ी फर्रूखाबादी बोली

(गर्म हवाएँ)

31.5.4 नवीन उपमान योजना

सर्वेश्वर के काव्य का सर्वाधिक समृद्ध पक्ष है उनकी नूतन उपमान योजना। इस उपमान योजना ने कवि की दृष्टिगत नवीनता को उजागर करने की एक पद्धति ही विकसित कर ली है। छायावाद का कवि अमूर्त उपमानों से काम चला लेता था। लेकिन परंपरागत उपमान प्रणाली उसे पसंद न थी। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद में भाव को स्पष्ट करने के लिए मूर्त उपमानों की ओर झुकाव बढ़ा। इस झुकाव के मूल में जटिल यथार्थ के संप्रेषण की समस्या भी थी। सर्वेश्वर ने आरंभ में ही विषयवस्तु के स्तर पर बदलती हुई काव्य भूमि को नवीन संवेदना से ग्रहण किया। उसी के भीतर से नवीन उपमानों और बिंबों को वे रचने लगे। प्राकृतिक परिवेश और परिचित वस्तुओं के प्रति भी उनका दृष्टिकोण बदल गया और वे नयी कविता के काव्य मुहावरे में काव्य-बिंब और काव्य-मूल्य के स्तर पर संघर्ष करने लगे। सर्वेश्वर ने अनुभव किया कि परंपरागत उपमान निरंतर प्रयोग के कारण इतने घिस गए हैं कि नयी अर्थ दीप्ति उनसे पैदा नहीं की जा सकती। फलतः नवीन सौंदर्य चेतना के अनुरूप नए उपमानों की खोज की। इस खोज का उनकी उपमान योजना में विशेष महत्त्व है। एक उदाहरण है —

मन मेरा
स्मृति के कब्जे पर
कसे हुए खिड़की के पल्ले सा
खुलता, बंद होता रहा,
छड़ और दीवार के बीच
सिर पटकता रोता रहा।

"रात भर" शीर्षक इस कविता में कवि ने अमूर्त दर्द को मूर्त स्थिति और उपमान से संप्रेषित किया है। अर्थ व्यापार अधिक प्रभावी इसलिए है कि खिड़की के खुलने और बंद होने में एक मानवीय हलचल है जिसे वह सिर पटकता रोता रहा के संकेतों से व्यक्त करता है। "स्मृति के कब्जे पर कसा हुआ खिड़की के पल्ले सा" एक ऐसा उपमान है जो इससे पूर्व हिंदी कविता में नहीं मिलता। सर्वेश्वर मनोरागों, मनःस्थितियों, आघातों और तनावों के लिए जिन नई स्थितियों को सामने लाते हैं उनमें कई बार विद्रूप उपमान भी होते हैं जैसे —

मैं तुम्हारे पीले होंठों की
दम तोड़ती हुई गर्मी का कफ़न ओढ़कर
सदा के लिए सो सकता हूँ।

(एक प्यासी आत्मा का गीत)

"पीले ओठ", "दम तोड़ती गर्मी" और उनमें "कफन ओढ़कर सोने की प्रक्रिया" विरोधाभास की स्थिति का सीधा उपमान है। ओठों का ठंडापन और हरकत रहित स्थिति की विडंबना का उपमान कफन के अतिरिक्त हो भी क्या सकता है। सर्वेश्वर ऐसी ही स्थितियों के लिए कल्पना को तार्किक ढंग से सक्रिय भी करते हैं उनकी प्रसिद्ध काव्य-पंक्तियों की उपमान योजना दृष्टव्य है —

जिंदगी मरा हुआ चूहा नहीं है
जिसे मुख में दबाए
बिल्ली को तरह हर शाम गुजर जाए
और मुंडेर पर कुछ खून के दाग छोड़ जाए।

(यह खिड़की)

जिन्दगी की विशालता और निरंतरता को कवि व्यंजना के संकेत से सामने लाता है। मरा हुआ चूहा जिंदगी का पर्याय नहीं हो सकता और न शाम चूहे को बिल्ली की तरह मुँह में दबाए गुजर सकती है। तर्क यह है कि जिंदगी अपनी मूल गति में इतिहास चक्र को रचती है। इसलिए बिल्ली की तरह शाम का उपमान पूरी स्थिति की विडंबना पर व्यंग्य करता है। इस उपमान से नया बिंब सामने आया है। इस विचार शृंखला का सारांश यह है कि सर्वेश्वर के बिंब विधान में ताजगी और नवीनता नवीन उपमानों ने पैदा की है। इतना ही नहीं इन नवीन उपमानों में उनके काव्य-शिल्प का, काव्य-भाषा की सर्जनात्मकता का विकास किया है। इन उपमानों में बुद्धि का चमत्कार कम आधुनिक वैचारिक युग की प्रेरणा अधिक है। नयी कविता में कल्पना का जिस ढंग से बदलाव हुआ सर्वेश्वर की उपमान योजना उसी का साक्ष्य प्रस्तुत करती है।

31.5.5 छंद और लय

लीक को छोड़कर अनिर्मित पंथ पर चलने वाले कवि सर्वेश्वर कविता में छंद को लेकर भी काफी प्रयोगधर्मी हैं। यों तो छायावाद के जमाने से "छंद के बंध" खुल गए थे, फिर भी कविता में पुराने अनुशासन को न मानते हुए भी छंद का नया अनुशासन स्थापित किया गया था। प्रयोगवाद और नयी कविता के कवियों के इस दिशा में और भी छूट ली।

शब्द की लय के स्थान पर अर्थ की लय पर जोर दिया जाने लगा। कविता तुकांत हो अथवा अतुकांत यह महत्वपूर्ण नहीं था। महत्वपूर्ण यह माना गया कि उसमें अर्थ की कितनी गहनता और व्यापकता है। यह जरूरी नहीं था कि वह कानों को बहुत मधुर लगे। जरूरी यह था कि वह अपने अर्थ को संप्रेषणीय बनाए और पाठक पर वांछित प्रभाव डाले

उसकी संवेदना को तीर की तरह चीरता गुजर जाए। सर्वेश्वर की कविता में छंदों का पारंपरिक ढाँचा नहीं अपनाया गया है। गद्य की आवेग सर्जित लय को अपनाता हुआ कवि अर्थ की लय से कविता में नाद-सौंदर्य पैदा करता है। मुक्त छंद के प्रयोग में सर्वेश्वर निराला की परंपरा में दिखाई देते हैं। ग्रामीण संवेदना और लोक भाषा के साथ उनकी कविता में लोक छंदों और लोक लयों का भी समावेश हुआ है। लोक गीतों की तर्ज पर उन्होंने "सुहागिन का गीत", "गरीबा का गीत", "झाड़े रौ महकुआ", "चरवाहों का युगल गीत" आदि कविताएँ लिखी हैं।

बोध प्रश्न 5

i) "कुआनो नदी" का काव्य रूप क्या है ?

....

ii) नीचे दिए गए कथनों पर सही (√) या गलत (×) का निशान लगाएँ।

सर्वेश्वर की काव्य भाषा —

क) दुरुह है।

ख) बोलचाल की है।

ग) व्यंग्यात्मक है।

घ) बिंब प्रधान है।

ङ) अस्पष्ट है।

च) पंडिताऊ है।

छ) लोक भाषा है।

iii) उनकी काव्य-भाषा में किन बोलियों और भाषाओं का मेल है ?

....

....

....

....

iv) सर्वेश्वर द्वारा बहु-प्रयुक्त चार प्रतीक बताइए।

....

....

....

....

v) "धीरे-धीरे" नामक कविता में किन चीजों को प्रतीक के रूप में लिया गया है?

....

....

....

vi) सर्वेश्वर के छंद विधान में, उनकी ग्रामीण संवेदना किस तरह प्रकट हुई है?

....

....

....

....

....

31.6 काव्य वाचन और संदर्भ सहित व्याख्या

आगे हम सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की दो कविताएँ दे रहे हैं। ये दोनों उनके काव्य संकलन "कविताएँ-2" में संकलित है। इनके कुछ अंशों की व्याख्या हम आपको करके देंगे। शेष की व्याख्या आपको स्वयं करनी होगी। इन कविताओं के विषय में कुछ बातें जानना आपके लिए आवश्यक है। ये दोनों ही सर्वेश्वर की सामाजिक-राजनीतिक व्यंग्यपरक कविताएँ हैं। किन्तु दोनों के व्यंग्य के स्वर में अंतर है। पहली कविता "लीक पर वे चलें" में उत्साह और विश्वास है। परंपरा से हटकर नए रास्ते बनाने के संकल्प की दृढ़ता है, जबकि दूसरी कविता यानी "धीरे-धीरे" में मोहभंग का स्वर प्रधान है। स्वप्नों के टूटने, आस्थाओं के बिखरने की पस्ती और निराशा है। आजादी के बाद देश में जो मूल्य-विघटन हुआ उसकी पीड़ा और अवसाद है।

भाषा के स्तर पर इन कविताओं में सरलता और सहजता मिलेगी। लोक जीवन से आए प्रतीक और बिंब इनकी विशेषता है। कवि ने बिंबों के क्षेत्र में पर्याप्त प्रयोगशीलता बरती है। प्रकृति के चित्र संवेदना की गहराई और कल्पना की नवीनता के परिचायक हैं। पहली कविता में नए रास्ते बनाते वक्त सामने आने वाले सभी प्राकृतिक उपादानों में जो स्पंदन दिखाई देता है वह अपने आप में काफी नया है जैसे — आकाश में मेघों का गायक समूह की तरह थिरकते हुए आना या ताड़ के पेड़ों का आकाश को थामे खड़े होना आदि।

इसी तरह "धीरे-धीरे" नामक कविता में बोतल और गिलास को विशिष्ट प्रतीक के रूप में प्रयोग किया गया है। बार-बार गिलास को भरे जाने और खाली किए जाने में दूसरों द्वारा बार-बार इस्तेमाल किए जाने पर भी अपनी कोई स्वायत्त सार्थकता न हो पाने की कसमसाहट है। देश और समाज में धीरे-धीरे मूल्यों के विघटन की पीड़ा को देश की मौत के प्रतीक से व्यक्त किया गया है। साहस, विश्वास और संकल्प के चुक जाने की स्थिति का संकेत घुन लगे अनाज से तुलना के माध्यम से दिया गया है।

लीक पर वे चलें

लीक पर वे चलें जिनके
चरण दुर्बल और हारे हैं,
हमें तो जो हमारी यात्रा से बने
ऐसे *अनिर्मित*[1] *पन्थ*[2] प्यारे हैं

साक्षी हों राह रोके खड़े
पीले बाँस के *झुरमुट*[3]
कि उनमें गा रही है जो हवा
उसी से लिपटे हुए सपने हमारे हैं।

शेष जो भी हैं —
वक्ष खोले डोलती *अमराइयाँ*[4],
गर्व से आकाश थामे खड़े
ताड़ के ये पेड़,
हिलती *क्षितिज*[5] की झालरें,
झूमती हर डाल पर बैठी
फलों से मारती
खिलखिलाती *शोख*[6] *अल्हड़*[7] हवा,
गायक-मण्डली से थिरकते आते गगन में मेघ,
वाद्य-यन्त्रों[8] से पड़े टीले,
नदी बनने की प्रतीक्षा में, कहीं नीचे
शुष्क नाले में नाचता एक *अँजुरी*[9] जल,
सभी, बन रहा है कहीं जो विश्वास
जो संकल्प हम में
बस उसी के ही सहारे हैं।

लीक पर वे चलें जिनके
चरण दुर्बल और हारे हैं,
हमें तो जो हमारी यात्रा से बने
ऐसे अनिर्मित पन्थ प्यारे हैं।

1. जो पहले से बना हुआ न हो; 2. रास्ता; 3. झाड़ियाँ; 4. आम के बाग; 5. वह स्थल जहाँ धरती और आकाश मिलते दिखाई दें; 6. तेज; 7. भोला और लापरवाह; 8. बजाए जाने वाले बाजे या यंत्र; 9. अंजलि, दोनों हाथ मिलाने पर बना कटोरे सा आकार।

धीरे-धीरे

खाली बोतलों के पास
खाली गिलास-सा
मैं रख दिया गया हूँ।

धीरे-धीरे अँधेरा आयेगा
और लड़खड़ाता हुआ
मेरे पास बैठ जायेगा।
वह कुछ कहेगा नहीं
मुझे बार-बार भरेगा
खाली करेगा,
भरेगा—खाली करेगा,
और अन्त में
खाली बोतलों के पास
खाली गिलास-सा
छोड़ जायेगा।

मेरे दोस्तो!
तुम मौत को नहीं पहचानते
चाहे वह आदमी की हो
या किसी देश की
चाहे वह समय की हो
या किसी वेश की।
सब कुछ धीरे-धीरे ही होता है
धीरे-धीरे ही बोतलें खाली होती हैं
गिलास भरता है,
हाँ, धीरे-धीरे ही
आत्मा खाली होती जाती है
आदमी मरता है।

उस देश का मैं क्या करूँ
जो धीरे-धीरे लड़खड़ाता हुआ
मेरे पास बैठ गया है।

मेरे दोस्तो!
तुम मौत को नहीं पहचानते
धीरे-धीरे अँधेरे के पेट में
सब समा जाता है,
फिर कुछ बीतता नहीं
बीतने को कुछ रह भी नहीं जाता
खाली बोतलों के पास
खाली गिलास-सा सब पड़ा रह जाता है —
झंडे के पास देश
नाम के पास आदमी
प्यार के पास समय
दाम के पास वेश,
सब पड़ा रह जाता है
खाली बोतलों के पास
खाली गिलास-सा।
'धीरे-धीरे' —
मुझे सख्त नफ़रत है
इस शब्द से।
धीरे-धीरे ही घुन लगता है
अनाज मर जाता है,
धीरे-धीरे ही दीमकें सब-कुछ चाट जाती हैं
साहस डर जाता है।
धीरे-धीरे ही विश्वास खो जाता है
संकल्प सो जाता है।

मेरे दोस्तो!
मैं उस देश का क्या करूँ
जो धीरे-धीरे
धीरे-धीरे खाली होता जा रहा है
भरी बोतलों के पास
खाली गिलास-सा
पड़ा हुआ है।

धीरे-धीरे
अब मैं ईश्वर भी नहीं पाना चाहता,
धीरे-धीरे
अब मैं स्वर्ग भी नहीं जाना चाहता,
धीरे-धीरे
अब मुझे कुछ भी नहीं है स्वीकार
चाहे वह घृणा हो चाहे प्यार।

मेरे दोस्तो!
धीरे-धीरे कुछ नहीं होता
सिर्फ़ मौत होती है,
धीरे-धीरे कुछ नहीं आता
सिर्फ़ मौत आती है,
धीरे-धीरे कुछ नहीं मिलता
सिर्फ़ मौत मिलती है,
मौत —
खाली बोतलों के पास
खाली गिलास-सी।

सुनो,
ढोल की लय धीमी होती जा रही है
धीरे-धीरे एक *क्रान्ति-यात्रा*[1]
शव-यात्रा में बदल रही है।
सड़ाँध फैल रही है —
नक्शे पर देश के
और आँखों में प्यार के
सीमान्त[2] धुँधले पड़ते जा रहे हैं।
और हम चूहों-से देख रहे हैं।

संदर्भ सहित व्याख्या

उद्धरण 1

लीक पर वे चलें..............................हमारे हैं।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविता "लीक पर वे चलें" से उद्धृत की गई हैं। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना नयी कविता के प्रमुख कवियों में से एक हैं। वे अपनी कविता में अनुभूति की प्रामाणिकता, ग्रामीण संवेदना और व्यंग्य के पैनेपन के लिए प्रसिद्ध हैं। उन्होंने समाज और राजनीति पर तीखे व्यंग्य किए हैं। आम आदमी की पीड़ा और अवसाद को उनकी कविता में वाणी मिली है। सर्वेश्वर ने अपनी संवेदना और शिल्प के माध्यम से नयी कविता को नया मुहावरा दिया है। उनकी कविता के विषय और भाषा दोनों ही लोक जीवन से आए हैं इसलिए उनमें जीवन का यथार्थ शिल्प की अनगढ़ता के साथ प्रस्तुत हुआ है।

प्रसंग : प्रस्तुत कविता में कवि बनी-बनाई लीक पर न चलकर स्वयं अपने प्रयास से नया मार्ग बनाने की बात करता है। लीक का अर्थ होता है बना बनाया रास्ता। सांकेतिक रूप से यहाँ बने बनाए रास्ते से तात्पर्य है चली आती हुई परंपरा की रूढ़ियाँ।

व्याख्या : चली आई हुई रूढ़ियों को यथावत मानने की बजाए कवि स्वयं नए रास्ते बनाने में विश्वास रखता है। इसलिए वह मानता है कि बने-बनाए रास्तों को उन लोगों के चलने के लिए छोड़ दें जिनके पैर चलते-चलते थक गए या कमजोर हो गए हैं अर्थात् जिनमें इतनी शक्ति और सामर्थ्य नहीं कि अपना रास्ता बना सकें। वह उन बने बनाए रास्तों पर न चल कर अपनी यात्रा के लिए खुद नया रास्ता बनाना चाहता है। वह रूढ़ियों का पालन न करके नए

1. क्रांतिकारियों का जलूस, 2. सीमाएँ, सीमा रेखाएँ।

प्रयोग, नई शुरुआत करना चाहता है। इस नए रास्ते में आने वाली कठिनाइयों को स्वयं दूर करने का आत्म-विश्वास उसमें है। आगे वह कहता है कि इन रास्तों को बनाने में जो वह करेगा उसकी गवाह उस रास्ते की वे बाधाएँ स्वयं होंगी जिन्हें रास्ता बनाते समय दूर किया जाएगा। पीले बाँसों के जो झुरमुट बीच में राह रोके खड़े होंगे वे उन अनिर्मित पंथों को बनाने के साक्षी होंगे। हवा उन बाँसों के झुरमुटों से ऐसे आकर टकराएगी जैसे गाना गा रही हो। हमारे सपने उसी हवा से लिपटे होंगे। यानी हमारे सपने, हमारी आशाएँ और आकांक्षाएँ भी वैसे ही उन्मुक्त और जीवंत है जैसे कि हवा।

विशेष

1 प्रस्तुत पंक्तियों में कवि-मानस में परंपरा की रूढ़ियों के बंधन को यथावत स्वीकार न करके मुक्त प्रयोगशीलता की ललक दिखाई देती है।

2 अनिर्मित पंथों पर चलने में संकल्प और आत्म-विश्वास के भाव हैं।

3 प्रकृति का कवि ने एकदम नए ढंग से चित्र खींचा है।

4 बिंब नए ढंग के हैं।

5 भाषा सहज और सरल है।

उद्धरण 2

मेरे दोस्तों..............................मेरे पास बैठ गया है।

संदर्भ : यथापूर्व (केवल कविता का नाम बदला है)। अंश को मूल कविता से पढ़े।

....

....

....

....

....

प्रसंग : "धीरे-धीरे" कविता में सर्वेश्वर विघटित जीवन मूल्यों और आस्थाओं की पीड़ा को व्यक्त करते हैं। आधुनिक जीवन में जागरूक मनुष्य जिस संत्रास, घुटन और परायेपन को अनुभव कर रहा है उसको बड़ी ही यथार्थ और जीवंत अनुभूति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। भरी हुई बोतलों के पास रखे हुए खाली गिलास के बिंब द्वारा यहाँ दूसरों द्वारा निरंतर इस्तेमाल किए जाने और स्वयं अपनी कोई सार्थक और समर्थ पहचान न रख पाने की विवशता व्यक्त हुई है। "मौत" शब्द का भी यहाँ बड़ा ही व्यंजनाश्रित प्रयोग किया गया है। यहाँ पर निष्प्राण हो जाने मात्र का पर्याय न हो कर व्यापक अर्थ में प्रयुक्त है। यहाँ मौत से तात्पर्य है सार्थकता खो देना। वह सब खो देना जो मूल्यवान है, श्रेष्ठ और वरेण्य है। इसका अर्थ मानवीय मूल्यों और आस्थाओं को खो देना है, आत्मसम्मान को खो देना है। आजादी के बाद भारतीय समाज के बौद्धिक रूप से जागरूक वर्ग ने महसूस किया कि हम एक दिशाहीनता की स्थिति से गुजर रहे हैं जो सपने और आदर्श हमने आजादी के संघर्ष के दौरान संजोए थे उनको रक्षित रखने में हम समर्थ न हुए। हमें केवल राजनीतिक आजादी मिली, सामाजिक-आर्थिक और बौद्धिक रूप से हम स्वतंत्र और आत्म-निर्भर न हो सके। उस दिशा में बृहत्तर प्रयास की बजाए समाज में एक उपभोक्ता संस्कृति पनपी जिसने सब मूल्यों को ताक पर रख दिया। "धीरे-धीरे" नामक कविता इस मनःस्थिति को प्रस्तुत करती है।

व्याख्या : कवि इन पंक्तियों में अपने पाठक को संबोधित करते हुए कहता है कि हे मेरे दोस्तो हम में से काफी लोग ऐसे हैं जो मौत के इस व्यापक रूप को नहीं पहचान पाए हैं। यह मौत धीरे-धीरे आती है और न केवल व्यक्ति को बल्कि संपूर्ण देश को, एक पूरे समय को उस समय की पूरी शक्ल और स्वरूप को निगल जाती है यानी कि पूरा का पूरा समाज, उसमें मौजूद हर चीज धीरे-धीरे मूल्यहीनता और पशुता का शिकार हो जाती है। जीवन मूल्य, परम्पराएँ, विशिष्ट पहचानें आदि सभी खो जाती हैं। जिस तरह बार-बार गिलास भरने पर शराब की बोतल धीरे-धीरे खाली हो जाती है उसी तरह धीरे-धीरे व्यक्ति की आत्मा रिक्त होती जाती है और उसकी इंसानियत समाप्त होती जाती है। मनुष्य के भीतर का इंसान मर जाने पर वह केवल पशु शेष रह जाता है।

आगे कवि आधारों से उखड़े, आंतरिक शक्तियों—सामाजिक, नैतिक और सांस्कृतिक शक्तियों से क्षीण अपने देश की स्थिति को ले कर चिंतित है। उसे प्रतीत होता है कि शक्तिविहीन देश खड़े रहने या आगे बढ़ने में असमर्थ है और लड़खड़ा कर बैठ गया है। वह समझ नहीं पा रहा कि इस देश का वह क्या करे, इसे किस प्रकार फिर से सबल बनाए?

विशेष

1 प्रस्तुत पद्यांश में कवि समाज में विघटित होते हुए जीवन मूल्यों के कारण चिंतित है।

2 भाषा स्पष्ट और सरल होने के साथ ही व्यंजनागर्भित और प्रतीकात्मक है। मौत, गिलास, बोतल आदि सभी शब्दों का प्रतीकात्मक प्रयोग हुआ है।

अभ्यास 1

निम्नलिखित पंक्तियों की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए —

झूमती हर डाल पर बैठी
फलों से मारती
खिलखिलाती शोख हवा,
गायक मंडली से थिरकते आते गगन में मेघ,
वाद्य यंत्रों से पड़े टीले,
नदी बनने की प्रतीक्षा में, कहीं नीचे
शुष्क नाले में नाचता एक अँजुरी जल,
सभी, बन रहा है कहीं जो विश्वास
जो संकल्प हम में
बस उसी के ही सहारे हैं।

संदर्भ : कवि का नाम ....

रचना का नाम ....

कवि की सामान्य विशेषताएँ ....

....

....

....

प्रसंग : प्रस्तुत रचना का संदर्भ ....

....

उसकी विशेषताएँ ....

....

....

....

....

....

व्याख्या : ....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

विशेष : ....

....

....

....

....

....

अभ्यास 2

निम्नलिखित पंक्तियों की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए :—

सुनो,
ढोल की लय धीमी होती जा रही है
धीरे-धीरे एक क्रांति यात्रा
शव-यात्रा में बदल रही है
सड़ाँध फैल रही है —
नक्शे पर देश के
और आँखों में प्यार के
सीमांत — धुँधले पड़ते जा रहे हैं
और हम चूहों से देख रहे हैं।

संदर्भ : ....

प्रसंग : ....

व्याख्या : ....

विशेष : ....

31.7 सारांश (मूल्यांकन)

सन् 1960 के बाद की हिंदी कविता में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का नाम कई दृष्टियों से बहुत ही महत्वपूर्ण है। हिंदी कविता को भारतीय जीवन और समाज के यथार्थ और ज्वलंत समस्याओं से जोड़ने का काम यों तो भारतेंदु युग से ही शुरू हो गया था और हर युग के रचनाकार इसे अपनी विशिष्ट क्षमताओं और प्रवृत्तियों के अनुरूप एक महत्वपूर्ण दायित्व के रूप में निभाते आ रहे थे। फिर भी, चालीस के दशक और उसके बाद की कविता पर विदेशी प्रभाव और अनुकरण का आरोप लगाया जाने लगा था। सर्वेश्वर ने हिंदी कविता में निराला और मुक्तिबोध की परंपरा को आगे बढ़ाने का प्रयास किया। कविता को आम आदमी — किसान-मजदूर की पीड़ा से जोड़ते हुए उसके लिए जिम्मेदार व्यवस्था पर कटु-तिक्त व्यंग्य किए। काव्य बिंबों की सामाजिकता, भाषा की लोक संवेदना, व्यंजनाधर्मी प्रतीक विधान, बिंब विधान की नवीनता, लोक छंदों और लयों की स्वीकृति के माध्यम से उन्होंने नयी कविता में सशक्त व्यंग्य काव्य की सृष्टि की, जो अपने आप में तो पर्याप्त महत्वपूर्ण है ही इस दृष्टि से भी काफी महत्वपूर्ण है कि इसने समसामयिक और अगली पीढ़ी के हिंदी कवियों को तेजी से प्रभावित किया। धूमिल, मलयज, लीलाधर जगूड़ी आदि समकालीन कवियों पर सर्वेश्वर का प्रभाव काव्य और शिल्प दोनों स्तर पर काफी स्पष्ट और गहरा है।

समसामयिक कविता पर उनकी कविता के प्रभाव का साक्ष्य देते हुए डा. जगदीश गुप्त ने लिखा है — "सर्वेश्वर उन कवियों में सर्वप्रमुख हैं जिनकी कविताओं ने छठे दशक के आरंभ में ही मुझे "नयी कविता" की शक्ति-सामर्थ्य के प्रति गहराई से आश्वस्त किया था। जो विश्वास आधुनिक युग-बोध से युक्त उनकी सच्ची और मार्मिक अभिव्यक्ति ने मुझे उस समय और बाद में दिया, उसके सहारे मैंने निर्भीक हो कर नयी कविता को लड़ाई लड़ी जिसका फल भला-बुरा जैसा भी माना जाए सामने है। × × × इस दृष्टि से सर्वेश्वर के कृतित्व का नयी हिंदी कविता के संदर्भ में ऐतिहासिक महत्व माना जाएगा, इसमें संदेह नहीं।" (नयी कविता : स्वरूप और समस्याएँ, पृ. 271)

उनके सृजन कर्म ने सन् 1960 के बाद की हिंदी कविता को नया काव्य मुहावरा दिया है। नयी कविता को विलायती नकल मात्र कहकर खारिज कर देने वालों की बात सर्वेश्वर की कविता ने बेमाने सिद्ध कर दी। उनकी काव्य-संवेदना को नयी कविता के विरोधियों के विरुद्ध अस्त्र के रूप में खड़ा किया गया।

सर्वेश्वर में परिवेशगत सजगता अपने समकालीन कवियों से अधिक है, ढोंग और अविश्वास को वे पहचानते हैं और वैविध्यमयी प्रतीकों द्वारा व्यक्त करते हैं। स्थिति की अराजकता और बेढंगा सत्तावाद "जंगल का दर्द" बन जाता है तो "कुआनो नदी" का मुर्दाघाट-पाट दिल्ली की सड़कों तक फैला दिखाई देता है। वे स्थिति के बदलाव के लिए तुरंत प्रयास करने की प्रेरणा देते हैं। उनके चिंतन पर लोहिया का प्रभाव है — इसी से वे "इंतजार" और "धीरे-धीरे" जैसे शब्दों से "सख्त-नफरत" करते हैं। उनके आरंभिक काव्य में अज्ञेय और धर्मवीर भारती जैसा रोमानी भाव-बोध मिलता है किंतु जीवन जगत की विषमताओं की टकराहट जल्दी ही इसे चूर कर देती है और यथार्थ का दबाव प्रबल हो जाता है। सर्वेश्वर के काव्य पर विचार करते हुए डा. रामविलास शर्मा ने लिखा है — "बच्चे जिस तरह सपने देखते हैं, यथार्थ संसार को जिस तरह सपने में मिला देते हैं, वैसे ही कल्पना सर्वेश्वर दयाल की अनेक कविताओं में है। यह यथार्थ को मोहक आवरण से ढकने वाली कल्पना नहीं है, यथार्थ से खेलने वाली, उसे सर के बल उलट कर देखने वाली, काव्य के लिए सार्थक कल्पना है।" (नयी कविता और अस्तित्ववाद, पृ. 68)

31.8 शब्दावली

विद्रूपता : भोंडा, बेढंगा।

आत्म-निर्वासन : पश्चिम के 'alienation' शब्द का अनुवाद श्रम के पराएपन से प्रायः आत्म-निर्वासन पैदा होता है। आत्म-निर्वासन व्यक्ति को भीतर से तोड़ देने वाला अकेलापन है जो ऊब और त्रास को जन्म देता है।

भदेस : भोंडा, बेढंगा।

अर्थच्छाया : काव्यशास्त्र में उसे व्यंजना शब्दशक्ति कहा जाता है। इसका अर्थ है अनेकार्थता।

श्रम का परायापन : मार्क्सवादी चिंतन का शब्द। पूंजीवादी व्यवस्था का एक दुखद पहलू कि इस व्यवस्था में श्रमिक जो श्रम करता है उसका लाभ मालिक को मिलता है। जब श्रमिक में यह भावना पैदा हो जाती है तो यह परायापन या तो विद्रोह में फूटता है या आत्महंता स्थिति अपनाता है।

31.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

डॉ. जगदीश गुप्त : *नयी कविता : स्वरूप और समस्याएँ*, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली।

डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी : *समकालीन हिंदी कविता*, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल : *सर्वेश्वर और उनकी कविता*, लिपि प्रकाशन, दिल्ली।

श्री गिरिजा कुमार माथुर : *नयी कविता : सीमाएँ और संभावनाएँ*, नेशनल पब्लिसिंग हाऊस, दिल्ली।

31.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास 1

देखें भाग 31.2

बोध प्रश्न 1

1) तीसरा सप्तक
2) काठ की घंटियाँ
3) उपन्यास, नाटक, बाल साहित्य, पत्रकारिता
4) खूँटियों पर टँगे लोग

बोध प्रश्न 2

i) हाँ ii) नहीं iii) नहीं iv) हाँ v) नहीं

बोध प्रश्न 3

i) ग ii) क iii) निराला, मुक्तिबोध, माखनलाल चतुर्वेदी, केदारनाथ अग्रवाल
iv) कथ्य, भाषा, छंद, बिंब आदि।

बोध प्रश्न 4

i) लोहिया की समाजवादी विचारधारा, गांधीवाद और मार्क्सवाद
ii) 1) सामाजिक-राजनीतिक व्यंग्य है।
    2) व्यंग्य बहुत तीखे और चुभने वाले हैं।
iii) 1) प्रकृति के प्रति पारंपरिक दृष्टिकोण रखने की बजाए उसे दैनिक जीवन के संदर्भ में देखते हैं।
    2) प्रकृति के नए और जीवंत बिंब प्रस्तुत करते हैं।

बोध प्रश्न 5

i) लंबी कविता
ii) क) × ख) √ ग) √ घ) √ ङ) × च) × छ) √
iii) खड़ी बोली, अवधी और उर्दू
iv) तेंदुआ, गुबरैला, बंदूक, साँप
v) बोतल, गिलास और मौत
vi) लोक लयों और लोक गीतों की तर्ज में।

इकाई 32 नरेश मेहता

इकाई की रूपरेखा

32.0 उद्देश्य
32.1 प्रस्तावना
32.2 कवि परिचय
32.2.1 रचनाकार व्यक्तित्व
32.2.2 रचनाएँ
32.2.3 काव्ययात्रा
32.3 काव्य संवेदना
32.3.1 ऐतिहासिक सांस्कृतिक अनुभूति का खरापन
32.3.2 मानव और प्रकृति
32.3.3 युद्ध, आधुनिकता और पीड़ा
32.3.4 विचारधारा और जीवन-दर्शन
32.4 अभिव्यंजना शिल्प
32.4.1 काव्यरूप
32.4.2 काव्य-भाषा
32.4.3 बिंब-प्रतीक
32.4.4 उपमान योजना
32.4.5 छंद और लय
32.5 काव्य वाचन और संदर्भ सहित व्याख्या
32.6 मूल्यांकन
32.7 विचार संदर्भ और शब्दावली
32.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
32.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

32.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- नरेश मेहता के काव्य-परिवेश का परिचय दे सकेंगे,
- कवि के जीवन, रचनाकार व्यक्तित्व एवं रचनाओं के विषय में जानकारी दे सकेंगे,
- नरेश मेहता की काव्य-संवेदना तथा काव्यानुभूति से गहराई में जाकर साक्षात्कार करा सकेंगे,
- उनके धरती, प्रकृति, संस्कृति, परंपरा संबंधी दृष्टिकोण की झांकी प्रस्तुत कर सकेंगे,
- कवि की मूल वैचारिक भूमि बता सकेंगे,
- कवि के अभिव्यंजना शिल्प, काव्यरूप, काव्य-भाषा, काव्य बिंब-प्रतीक, उपमान योजना, छंद एवं लय का अध्ययन-आस्वादन कर सकेंगे,
- नयी कविता के अन्य कवियों से तुलना करते हुए उनके काव्य की विशिष्टताओं की एक समग्र छवि बना सकेंगे।

32.1 प्रस्तावना

नयी कविता के कवियों में नरेश मेहता सर्वाधिक सशक्त और समृद्ध सांस्कृतिक मनोभाव के रचनाकार हैं। कवि-कर्म के संबंध में उनका दृष्टिकोण मूलतः मानव स्वाधीनता और मुक्ति का हिमायती है। युग-परिवेश के दबावों, द्वन्द्वों, संघर्षों और आंतरिक टकराहटों के बीच उनकी जीवन-आस्था और मूल्य-दृष्टि अडिग रहती है। उनके रचना-कर्म की आस्था और गरिमा का सारा वातावरण भारतीय इतिहास, पुराण, मिथक और ऋषि कल्पनाओं की शक्ति से निर्मित होता है। आदिम प्रकृति का मुक्त सौन्दर्य और जीवन का प्रकृत उल्लास, रूप, रस, अनुभव, यथार्थ और मूलरागों को मूल से गहने की अद्भुत क्षमता है। वे अपने समसामयिक कवियों में कुँवर नारायण, धर्मवीर भारती आदि की भाँति इतिहास और पुराण के चरित्रों, घटनाओं को नए सन्दर्भों, समस्याओं, प्रश्नाकुलताओं और चिन्ताओं को व्यंजित करते हैं। हिंदी की उदात्त मूल्यवादी क्लासिक संवेदना की परंपरा उनके रचना कर्म में प्रतिफलित होती है। उनकी कविता के कथ्य और रूप दोनों पर वैदिक उपनिषद्-परंपरा की संस्कारी ध्वनि का गहरा प्रभाव है।

32.2 कवि परिचय

नरेश मेहता ने जीवन के अभावों अवहेलनाओं और संघर्षों में जझकर जीवन की शक्ति अर्जित की है। उनका जन्म 1924 में मालवा (शाजापुर) के एक गुजराती परिवार में हुआ। आस्तिक पिता बिहारीलाल शुक्ल के घर में जन्मे नरेश बचपन में ही मातृविहीन हो गए। उन्हें कष्ट और कड़वाहट दोनों का अर्थ जल्दी समझना पड़ा। इसी मनोभूमिका ने वैष्णव भाव दृष्टि को उनके व्यक्तित्व में एकाकार कर दिया। काशी विश्वविद्यालय से एम. ए. किया। इसी बीच "केन्द्रीय प्रशिक्षण संस्थान, देहरादून से सेकिण्ड लेफ्टीनेंट का प्रशिक्षण प्राप्त किया। यहीं पर प्रथम उपन्यास "ट्रेन्चेज के पीछे" लिखा जिसे राजनीतिक विचारों की उग्रता के कारण जब्त कर लिया गया। लखनऊ, प्रयाग, नागपुर के आकाशवाणी केन्द्रों पर नौकरी की पर मन न रम सका। दिल्ली से "साहित्यकार" पत्रिका का सम्पादन किया और कुछ समय तक "अखिल भारतीय मजदूर संघ" के मुखपत्र "भारतीय श्रमिक" का सम्पादन भी किया श्रीकान्त वर्मा के साथ "कृति" नामक साहित्यिक पत्रिका का सम्पादन किया। सन् 1957 में विवाह किया और प्रयाग में बस गए। स्वतंत्र लेखन को जीविका का आधार बनाया और यह काम आज तक जारी है। नरेश मेहता मूलतः कवि है और नयी कविता के कवियो में उनके काव्य-सृजन की एक विशिष्ट पहचान बनी है। उनकी आरम्भिक कविताएँ "प्रगति-भारती" तथा "नयी कविता" नामक प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई और "दूसरा सप्तक" (1951 (सं. अज्ञेय)) की कविताओं से वे विशेष चर्चित हुए।

32.2.1 रचनाकार व्यक्तित्व

नरेश मेहता का रचनाकार व्यक्तित्व स्वाधीनता आन्दोलन की मुक्ति चेतना, भारतीय वैष्णव चिन्तन-परंपरा और सन्तों की लोकमंगल भावना के तत्वो से निर्मित हुआ। उन पर अहंवादी व्यक्तिवादी होने का सन्देह भी किया गया जिसे सच सिद्ध नहीं किया जा सका। अपनी बात पर अड़ जाना और दूसरे की गलत बात में "हाँ, हाँ" करना उनका स्वभाव नहीं रहा। उन्हें चालाक-कपटी, बुद्धिजीवी, शहरी असभ्यों से ज्यादा, ग्रामीण पसंद आते है। खानाबदोश लुहारों की तरह घूमना और प्रकृति-सौन्दर्य के प्रति विशेष अनुराग रखना, उनके व्यक्तित्व में रमा हुआ भाव है। अपने रचनाकार व्यक्तित्व की मानसिकता का परिचय "दूसरा सप्तक" के "वक्तव्य" में इस प्रकार दिया है — "अनाम अवस्था ने मुझे लोहे की सी प्रेरणा भी दी है। जबकि साहित्य के छायावादी और प्रगतिवादी खेमे में लगातार भगदड़ मची हुई थी। वे दिन छायावाद की पदच्युति के दिन थे और प्रगतिवादी सिंहासन रूढ़ हो रहा था। अवसरवादी पनपे और खूब पनपे। अवसरवादी रोमांस का मोह छोड़ न सके थे, इसलिए वे वापस 'कसकन', 'भमकन' गाने लगे है। उन क्रांतिकारी कवियों के घर या तो बांसुरियाँ बज रही हैं या फिर हंसों की टोलियाँ उड़ रही हैं।" मार्क्सवादी मोह-भंग और कवि अज्ञेय के विचारों के प्रति आस्था नरेश के रचनाकार व्यक्तित्व का अंग रही है। काव्य लिए वे वेद-उपनिषद् की परंपरा को अपनाते हैं और उसे ही आगे बढ़ाते रहे है। वास्तविकता यह है कि नरेश अपने रचनाकार व्यक्तित्व मे छायावादी-रहस्यवादी भ्रामक कुहेलिका से मुक्त रहे हैं। वे नए प्रयोगों के द्वारों में बंद नहीं हुए हैं। "हिंदी में प्रयोगों की आवश्यकता दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। विगत अनुकरणीय नहीं हो सकता। हाँ, शोभालंकार बनकर रह सकता है। नया तो मेरा युग हे, मेरी प्रकृति है तथा सबसे नया मैं हूँ।" (दूसरा सप्तक वक्तव्य) कहना न होगा कि भारतीय मूलचिंतन धारा के स्रोतों से जुड़कर ही नरेश जी के रचनाकार व्यक्तित्व का रचनात्मक परिष्कार और भाव-उन्नयन हुआ है। वे कवि, उपन्यासकार, नाटककार, सम्पादक और आलोचक एक साथ रहे हैं, पर मूलतः कवि हैं।

32.2.2 रचनाएँ

नरेश मेहता ने छायावादी युग से लिखना शुरू किया। प्रगतिवाद-प्रयोगवाद नयी कविता के युगों में निरंतर लिखा और समसामयिक कविता में भी उनकी सक्रियता का विशेष महत्व है। वे प्रवंध और मुक्तक दोनों काव्य धाराओं को आत्मसात करते हुए सृजनकर्म में आगे बढ़े हैं।

प्रबन्ध कृतियाँ : (1) संशय की एक रात, (2) शबरी, (3) महाप्रस्थान, (4) प्रवाद पर्व।

मुक्तक कृतियाँ : "वन पाखी सुनो" (1957), "उत्सवा" (1979), "तुम मेरा मौन हो" (1982), "मेरा समर्पित एकान्त" (बोलने दो चीड़ को), "समय का भिक्षु", "पुनः भिक्षु", "अरणया" (साहित्य अकादमी पुरस्कार 1989), (दूसरा सप्तक) की कविताएँ।

उपन्यास : डूबते मस्तूल, यह पथ बन्धुता, धूमकेतुः एक श्रुति, दो एकान्त, नदी यशस्वी, प्रथम फाल्गुन, पुनः एक युधिष्ठिर, उत्तरगाथा आदि।

कहानी संग्रह : "तथापि", "एक समर्पित महिला", "बन्ध छबि"।

एकांकी नाटक : "सनोवर के फूल"।

नाटक : "सुबह के घण्टे" तथा "खंडित यात्राएँ"।

सम्पादन : "वाग्देवी", "गांधी गाथा"।

निबंध : "काव्य का वैष्णव व्यक्तित्व"।

नरेश मेहता ने "संशय की एक रात", "शबरी" तथा "प्रवाद पर्व" तीनों प्रबंध काव्यों में राम-काव्य परंपरा का आधुनिक संदर्भों में उपयोग किया है। केवल "महाप्रस्थान" महाभारत के धर्मराज की नैतिक गाथा है। इन चारों प्रबंध काव्यों में

विशेष बात यह है कि उनमें प्राचीन मिथकों को सुरक्षित रखते हुए उसके भीतर नए अर्थ की प्रतिष्ठा की गई है। अपने देश और काल के नए प्रश्नों को इन कृतियों ने वैचारिक धरातल पर उठाया है। "संशय की एक रात" मानव की ऐतिहासिक-सामाजिक चिंता का रचनात्मक अनुभव है और नयी कविता की सृजनात्मक उपलब्धि।

32.2.3 काव्ययात्रा

नरेश मेहता ने सन् 1937 ई. से लिखना शुरू किया, लेकिन उनकी कविताओं का संकलित रूप "दूसरा सप्तक" 1951 ई. (सं. अज्ञेय) में सामने आया। "चाहता मन", "अहं", "किरन घेरुए", "उषस-1-4", "जन गरवा चरैवित", "उषस", "अश्व की बल्गा" और "समय/देखता" जैसी कविताओं के नए काव्य-मुहावरे ने कवि को प्रसिद्धि दी तथा आदिम आग से साक्षात्कार कराया। उन्होंने कहा "संस्कृति" भ्रामक शब्द है। फिर भी संस्कृति की शोध तो की ही जा सकती है और हम मनुष्य के आदिकाल के काव्य से भावों की विराटता ग्रहण करके सुन्दर कल्पना प्रधान साहित्य रच सकते हैं। इस प्रकार के प्रयोगों के उदाहरण रूप में मेरी "उषस" है। ऋतु की इस नित्य कौमार्य कन्या का मैं प्रतिदिन अपने क्षितिज पर आह्वान करता हूँ। वह हमारे खेतों में अपने पति सूर्य के साथ हमारे बीजों में गरम-गरम किरनें बोकर गेहूँ उपजाती है। इस दृष्टि से कवि मन में आदिम संवेदना के मूल राग बीज-भाव बनकर कविता में मौजूद हैं।

वे अपनी काव्ययात्रा में छायावादी रहस्यवादी भाव-लोक से शीघ्र ही मुक्ति पा जाते हैं और जीवन-वास्तव की वास्तविकता को रचना-कर्म में निष्पन्न करने लगते हैं। प्रकृति और नारी के प्रति प्रेम की स्थिति "चाहता मन", "तुम यहाँ बैठी रहो", "उड़ता रहे चिड़ियों सीखा वह तुम्हारा श्वेत आंचल" विवरण और वर्णन की पुरानी लीक को छोड़कर उनका कवि मन सृजन-सौन्दर्य के नए बिंबों से अपने तथा अपने युग के मनोभावों को अभिव्यक्ति देने लगता है। उनके संवेदनशील कवि हृदय को युग यथार्थ मथने लगता है। 'वनपाखी सुनो' की रचनाओं में कवि हृदय फैलना चाहता है, आत्मविस्तार के साथ जीवन को रचना चाहता है। प्रकृति संवेदना ही इस प्रथम काव्यसंग्रह की कविताओं की मूल प्रेरणा है। कवि बदली, मेघ, वर्षा, डूबती संध्या, वनपाखी, मालवी फाल्गुन, पीले फूल कनेर के लेकर मालवा की गंध से कविता निचोड़ता है। कवि लोक गीतों की संवेदना "दौड़ी हिरना, बन-बन अंगना, बैन वनों की चोर मुरलिया, कांगा बोले मोरी अटरिया" जैसी लोक धुनों में गाता है। "बोलने दो चीड़ को" लेकर "अरण्या" तक की लम्बी काव्ययात्रा प्राकृतिक संवेदना और प्रकृति लय की चेतना का विस्तार है। यह पूरी कविता धूप-चांदनी-फूलों का स्तबक दृष्टिगत होती है। साथ ही वेद-उपनिषद की भावधारा गीतों से डूबकर पाठकों के हृदय में प्रवेश कर रही है।

नरेश मेहता की काव्ययात्रा का एक पथ प्रबंध कविता की ओर जाता है। वे परंपरागत कथाकाव्य से समझौता नहीं करते। इतिवृत्त को तोड़-मरोड़कर नया रूप देते हैं और नए प्रबंध को स्थापित करते हैं। "संशय की एक रात", "शबरी" "प्रवाद पर्व" तथा "महाप्रस्थान" परंपरागत अर्थ में प्रबंध के पुराने अनुशासनों को तोड़ देते हैं। हरिऔध के प्रियप्रवास और मैथिलीशरण गुप्त के "जयद्रथ वध" वाली इतिवृत्तात्मकता उनमें नहीं है। उनके सभी प्रबंध काव्य कथा के वैचारिक आधार को सूक्ष्मता से ग्रहण करते हैं। पौराणिक आख्यानों को लेकर वे युद्ध, राजनीति, सामाजिक-सांस्कृतिक संकट का संकेत देते हैं। "संशय की एक रात" राम के माध्यम से आधुनिक मानव के द्वन्द्व तनाव की मनःस्थिति को व्यक्त करती है। राम का प्रश्नाकुल और द्विधाग्रस्थ विभाजित व्यक्तित्व आज के मानव का यथार्थ प्रतीक है। "प्रवाद पर्व" 1975 की स्थिति परिस्थितियों के बीच रचा गया काव्य है। सीता के लोक प्रवाद को लेकर वे राजतंत्र और राजनीति के ज्वलंत प्रश्नों को उठाते हैं। "शबरी" काव्य में वे मानवीय समस्या को वर्ण व्यवस्था के संदर्भ में उठाते हैं और उसे आधुनिक दृष्टि से समाधान देते हैं। कवि का चौथा प्रबंध काव्य "महाप्रस्थान" मूलतः 'महाभारत' के "महाप्रस्थानिक पर्व" से कथा को उठाता है। कथा से युद्ध और राजनीति के अमानवीय, विकृत पहलुओं पर काव्यात्मक टिप्पणी करता है।

नरेश मेहता की काव्ययात्रा परिवेश के साथ जूझती चलती है। प्रकृति सौन्दर्य चेतना की केन्द्रीयता, दृष्टि विकास का संकेत है और यांत्रिकता, शहरीकरण, विज्ञान की आमानवीयता से मानव को बचाने का प्रयास भारतीय जीवन मूल्यों को अनुभवों के आलोक में यह काव्ययात्रा निरंतर परिभाषित करती चली आ रही है और मानव को संहार करने वाली आधुनिकता से बचाना चाहती है। वे आज भी सर्जना के क्षेत्र में सक्रिय हैं और सांस्कृतिक संवेदना की मूल्य दृष्टि या मानववादी दृष्टि के प्रति अपने कविकर्म में प्रतिबद्ध हैं।

बोध प्रश्न 1

1 सही √ गलत × का निशान लगाकर उत्तर दीजिए।

i) नरेश मेहता रोमाण्टिक संवेदना के कवि हैं। ( )

ii) नरेश मेहता उदात्त क्लासिक संवेदना के कवि हैं। ( )

iii) नरेश मेहता रहस्यवादी चेतना के कवि हैं। ( )

2 नरेश मेहता के जीवन का पाँच पंक्तियों में परिचय दीजिए।

....

....

....

....

....

3 रमेश मेहता के रचनाकार व्यक्तित्व की किन्हीं दो विशेषताओं को लिखिए ।

....

....

4 "संशय की एक रात" की मूल संवेदना का तीन वाक्यों में उल्लेख कीजिए ।

....

....

....

5 नरेश मेहता किस सप्तक के कवि हैं, सही √ गलत × का निशान लगाकर बताइये —

i) तारसप्तक (1943) ( )

ii) दूसरा सप्तक (1951) ( )

iii) तीसरा सप्तक (1959) ( )

32.3 काव्य संवेदना

नरेश मेहता की कविताएँ काव्य संवेदना की दृष्टि से एक नए दौर की शुरुआत का संकेत देती है। मानव, प्रकृति दोनों को व्यक्त करने वाली संवेदना का आधार तत्व है — उदात्त प्रेम। इस प्रेम में देश, जाति, धर्म, संस्कृति की संकीर्णता नहीं है। यह प्रेम मानव मात्र को व्यापक, मुक्त एवं उदात्त बनाता है, उसके हृदय को विश्वहृदय से मिला देता है। प्रेम की घनता ने भाव को गहराई दी है और हृदय का प्रसार किया है। प्रकृति प्रेम नरेश के कवि को जीवन की गहन संवेदनात्मक ज्ञान दृष्टि देता है — पूरी कवि मानसिकता पर करुणा का सूर्य चमकता है —

सृष्टि प्रिया पीड़ा है
कल्प वृक्ष दान समझ
शीश झुका स्वीकारो
ओ मन करपात्री! मधुकरी स्वीकारो

भारतीय संस्कृति की व्यापक भावभूमि कवि को आकृष्ट करती है और वह जीव-मात्र के प्रति करुणा और प्रेम से भर जाता है। सबसे जुड़ने और सबके हो जाने की यह आकांक्षा कवि को वैयक्तिक भावभूमि से ऊपर उठाकर निर्वैयक्तिक भाव भूमि पर खड़ा कर देती है। जीवन-जगत से यह मुक्त-हृदय का साधारणीकरण आत्म-दान और आत्म-विस्तार के कारण ही संभव हो पाया है। छायावादी रूमानियत का व्यक्तिवाद इस कविता में नहीं है — लोकमंगल की संवेदना के सूर्य-चन्द्र उदित होते हैं। कवि-संवेदना में प्रकृतिलय की वंशी बज रही है —

आओ ऋतुपति चन्द्र-सूर्य तुम
अपनी धूप चाँदनी के सौ-सौ चीवर फैलाते
मनुज घाव पर चैन शरद की चाँदनियों को
रेशम पल के हवा कर सके।
गगन आम पर स्वर्ग कहीं बैठा-बैठा
तारों की वंशी मुझे सुनाये।
धरती नीले तारों का परिवार बन सके।
इसीलिए खेतों में सन्ध्या केसर बरसे।

(समय देवता)

नए मानव के श्रम को इस काव्य-संवेदना में आदर है और मानव की जय-यात्रा में अखण्ड आस्था। घोर आत्मीयता के संवाद में कवि-कंठ फूट कर कहता है —

नए मनुज के हाथों में श्रम की रेखाएँ
आल्प्स रचेगा नए रूप में
राइन, वोल्गा, गंगा के वह इस धरती पर आज नये
जल-छंद रचेगा।
उसके श्रम के नवल क्षितिज की ओर दौड़ते सूरज थोड़े आलोकों
की उल्काएँ लें।
समय देवता! आज विदा लो,
किन्तु तुम्हारे रेशम में इस चमक वस्त्र में मिट्टी का विश्वास
बाँधकर भेज रहा हूँ।

मेरी धरती पुष्पवती है
और मनुज की पेशानी के चरागाह पर दौड़ रही हैं तूफ़ानों की
नयी हवाएँ।

लम्बी कविता "समय देवता" में नरेश मेहता की काव्य-संवेदना दृष्टि विश्व दृष्टि का पर्याय हो जाती है। कवि एक वैदिक ऋषि की भाँति प्रार्थना की मुद्रा में दिखाई देता है और वह धरती के मनुष्य को सुखी देखना चाहता है। इस काव्य-संवेदना का झुकाव कृषिजीवी ग्रामीण समाज की ओर है कवि "मिट्टी का विश्वास" लेकर धरती की महिमा का गान करता है। मानव के घावों पर चाँदनी का ठंडा लेप लगाना चाहता है। अभिप्राय यह है कि नरेश मेहता धरती के साथ गहन लगाव रखते हैं। मानववादी विश्वदृष्टि, मानवीय आस्था ही उनकी संवेदना का प्रधान स्वर है। भारतीय सांस्कृतिक दृष्टि भेदों को मिटाकर अभेद की ओर बढ़ती है और यही दृष्टि इस कविता की आंतरिक पुकार है।

32.3.1 ऐतिहासिक सांस्कृतिक अनुभूति का खरापन

नरेश मेहता में काव्य-सृजन के संघर्ष की आंतरिक जागरूकता उन्हें एक ओर तो प्रकृति और संस्कृति की आदिम संवेदना से जोड़ती है दूसरी ओर परंपरा "प्रवाह" के नैरन्तर्य से। इसका प्रधान कारण यह है कि पन्त-प्रसाद-निराला की भाँति नरेश मेहता ऐतिहासिक अनुभूति के कवि हैं। यह ऐतिहासिक अनुभूति उन्हें सांस्कृतिक धड़कन का पूरा अता-पता देती है और उनके अनुभव का देश और काल व्यापक हो जाता है। प्राकृतिक सौन्दर्य उन्हें नए प्रतीक-बिंब उपमान ही नहीं देता है बल्कि गहरे स्तर पर वह उन्हें जीव-मात्र से प्रेम की ओर प्रवृत्त कर देता है। प्रकृति संवेदना के मूल स्रोतों की ओर नरेश जी उन्मुख है और कल्पना में क्लासिकल प्रकृति दर्शन का राग झंकृत है। यह प्रकृति सौन्दर्य उनका मूल मनोभाव है। आप इसे कवि का "काव्य-स्वभाव" भी कह सकते हैं। उनका अधिकांश काव्य स्वर निवेदनात्मक है, जिसमें प्रकृति चित्रों के अतिरिक्त मनोदशाओं और मनःस्थितियों का गायन है। कवि शहरी जीवन की यान्त्रिकता, खोखली आधुनिकता और विकृत संयम-भावना की पाशविकता के प्रति लगातार खबरदार करता रहता है। वैज्ञानिक अस्त्रों की भयावहता से भयभीत मन के लिए प्रकृति ही शांति का वरदान है —

1

एक स्तवक की तरह
मेरे हाथों में
मेरे पास रखा फूलों वाला
धूप भरा पूरा एक फाल्गुनी दिन है।

(बोलने दो चीड़ को)

2

मछलियों की गंधवाला जल है।
कैसा छुट्टियों का-सा मन लिए आया
हूँ।

(वही)

इस ऐतिहासिक अनुभूति में कृषिजीवन के आदिम बिंब झिलमिलाते मिलते हैं —

1

उदयाचल से किरन-धेनुएं
हाँक ला रहा वह प्रभात का ग्वाला।
× × × × × ×
बरस रहा आलोक दूध है
खेतों खलिहानों में
जीवन की नव किरण फूटती
मकई के धानों में।

2

गगन गड़रिया अपने सुंदर कन्ट टेट में जिसे खोंस कर
बैठा हुआ आल्पस पर्वत पर अपनी भेड़ें चरा रहा है।

(किरण धेनुएँ)

इस अनुभूति में मनुष्य का आदिम मन काफी सुरक्षित रूप से व्यक्त हुआ है। पूरा सांस्कृतिक संस्कार अखण्ड भाव परंपरा में प्रवाहित है। वैदिक, बौद्ध, जैन जैसी कृत्रिम श्रेणियाँ यहाँ नहीं है। केवल समग्र भारतीय संस्कृति के भाव-सौन्दर्य की गंध इस काव्यानुभूति में महक रही है।

32.3.2 मानव और प्रकृति

नरेश मेहता ने अपने सृजन कर्म में निरंतर साधना से हमारे वनस्पति जगत् की संवेदना को पहचानते हुए नया अर्थ दिया है। पश्चिम ने मानव को भौतिक आध्यात्मिक खण्डों में बाँट कर देखा और प्रकृति को अपनी दासी बनाकर। पर भारतीय चिंतन-परंपरा ने प्रकृति और मानव को एक और अखण्ड माना। एक के बिना दूसरे की सत्ता ही नष्ट हो जाएगी। आदमी यदि प्रकृति के साथ सहयोग-सहभाव रखेगा तो विकसित होगा, किन्तु यदि अपने को प्रकृति का स्वामी मानते हुए उसे दुहना चाहेगा तो नष्ट हो जायेगा — विकास नहीं कर सकता। पूरी भारतीय सांस्कृतिक अवधारणा में पेड़-पौधे कई अर्थों में मनुष्य के समान हैं। इस बुनियादी चिंतन को कोई चाहे तो [illegible] परंपरा भी कह सकता है। नरेश जी इसी चिंतन के प्रति समर्पित हैं। नरेश मेहता के काव्य में प्रकृति विविध रूपों में आती है — पेड़ों-फूलों की मधुर

दुनिया है। नदी, झील, आकाश, पहाड़, घाटी, जंगल, बादल, बसन्त, सावन, सन्ध्या आदि के रंग-बिरंगे चित्रों से कविता भरी पड़ी है। उषा, धूप, फूल, किरन का वर्णन तो कवि हर राग, हर मास में करता है। एक प्रकार से यह प्रकृति भाव जीवन की संकीर्णता के खिलाफ मुक्तता तथा मानवीय स्वतंत्रता-स्वाधीनता का प्रतीक है। कवि की आकांक्षा है कि वह मस्त गीतमय अधरों से सोमरस का पान करता रहे और अपने पूर्वजों की भांति चिंता मुक्त जीवन जिए —

1

सुख, यश, श्री बरसाओ, आओ व्योम कन्यके! सरल नयन
अरूण अंशुक ले जायें तुम्हें उस सोम देव के राज महल
नयन रागमय, अधर गीतमय, यहां सोम का कर फिर पान।

(महाप्रस्थान)

2

कपिला दूध-सी वह धूप
धूप का नाम ही कैसा उत्सव है —

3

ओ अप्सरा की आँख की तरह के
धूप भरे फाल्गुनी दिन।
आज मेरे पास कोई काम नहीं है
मैं अभी इस झील में नहाऊँगा
उसके बाद
उसके बाद ये झर बेरिया हैं
चेरियों के गुच्छे हैं
हिमनी शिखरों की श्रेणियाँ हैं
केवल इन्हें देखता रहूँगा।

(बोलने दो चीड़ को)

"समय देवता" मानव के इतिहास का गवाह है। उसके संवादों में जीवनलय का मर्म दिया है —

गेहूँ के सोने जल पर "केरल सी" की हवा तैरती।
घोड़े की छाती तक ऊँची स्वर्ण बालियाँ
श्वेत सूर्य से बात कर रहीं।

इस कवि-कर्म में मीलों लम्बे चरागाह में ऊन लपेटे भेड़ों का दल चला आ रहा है। इन कविताओं में गाय को हाँकता ग्वाला, बैलों की बजती घंटिया, खेत, खलिहान, अमराई, गेहूँ की बालो, धानों के खेत बार-बार आते हैं। धरती की महिमा के गीत नदियाँ-झरने गाते चले जा रहे हैं। इस धरती को "विश्वम्भरा" सम्बोधन से कवि पुकारता है। वैदिक शब्दावली राग-रथी के साथ चली आ रही है — सोम, उषस, इन्द्र, पूषा, सविता, वरूण, भूमा, सीता, सामगान, शुचि, समिधा, किरन धेनुएँ आदि शब्द पूरे संस्कार-सन्दर्भ और इतिहास के साथ मौजूद मिलते हैं। वैदिकदर्शन प्रकृति और धरती की महिमा का जैसे गान करता था—वैसे ही नरेश जी उसका गान-स्मरण स्तुति करते हैं। कवि को पता है कि यांत्रिक सभ्यता मानव का चैन छीन रही है—मानव को प्रकृति की अनुरागमयी गोद ही शांति दे सकती है —

विश्व शांति का आह्वान इन राजनीति के भवनों में तो सदा असंभव
वह जनरव से दूर हँस रही दूब बिछाये धरती माता,
विश्वम्भरा रूपमयी यह
सरित सोम के कलश भरे बैठी पुत्रों की आस लगाये।

यह प्रकृति प्रेम पलायन नहीं है, अपनी ही जड़ों से जुड़ना है और अपने ही सही रूप से आंतरिक खोज है। यंत्र, मानव की संवेदना को मारते हैं और प्रकृति मानव-संवेदना को पल्लवित-पुष्पित करती है। प्रकृति के रंग कवि मन में "स्वर्ण किरन तुम", "से बसी लाल", "सोने की मेघ चील", "पीली वसुधा", "सन्ध्या केसर", "सेरनपर्वी दिन", "कपिला-दूध सी", "धूप की पली तितली", "चम्पक बाहें", "गोरी रेत"—जैसे अनेक प्रयोगों से उभरते हैं। हर बार कल्पना नया रंग भरती है। प्रकृति पूजा की सांस्कृतिक शब्दावली से कविता भरी पड़ी है यथा कुंकुम, कीर्तन, धूप, मंत्र, तोरण, वन्दनवार, अक्षत, अर्घ्य देना, अभिषेक करना आदि। कवि की काव्यात्मक संवेदना में मानवीय मन की उर्ध्वचेता आकांक्षा उमड़ती-घुमड़ती रहती है। फलतः यह कविता नयी कविता के रेगिस्तान में शीतल जल की मधु धारा है। आप चाहे तो इसे प्राचीन भारतीय चिंतन परंपरा निरंतरता के पर्वत से फूटा आधुनिक प्रवाह भी कह सकते हैं।

32.3.3 युद्ध, आधुनिकता और पीड़ा

दोनों आधुनिक विश्व युद्धों की कराह और अमानवीयता को अभिव्यक्ति देना नरेश के काव्य की एक प्रवृत्ति है। पर एक विवशता है, आंतरिक बेचैनी है, मानव को यन्त्र दानव के विनाश से बचा लेने की कोशिश है। संहारक युद्धों के आतंक की थर्राहट "समय देवता" जैसी लम्बी कविता का सम्पूर्ण सच है। कवि देशों में झाँक-झाँककर संजय दृष्टि से कमेन्ट्री करता है। यह पूरी कविता एक सफल काव्यात्मक कमेन्ट्री ही है —

1

समय देवता! बम के गोलों से भी धरती बांझ हुई है
चीन देश के नगर-ग्राम, घाटी जंगल में भरा हुआ धुँआ ही धुँआ
गोबी की मंगोल रेत पर युद्ध लाश दुर्गन्ध दे रही।

युद्धों में मूल्यों का अन्थापन, विकृति, पाशवीकरण का दर्द इस कवि ने 'संशय की एक रात" हो या "समय देवता" में खुलकर व्यक्त किया है। नरेश मेहता कोमल सपनों के कवि नहीं हैं, आधुनिकता से उत्पन्न आधुनिकबोध की पीड़ा के कवि भी हैं —

1 पेकिंग का पिकनी सड़कों पर पिछला जीवन मरा पड़ा है।

2 दूर छिपकली सा वह छोटा टापू है जापान देश का,
जो कि मर चुका एटम बम से।
डूब गई बूटों की टापें, सिसक रहा कोढ़ी सा जीवन
विज्ञान, धुंए के अजगर सा है लील रहा सब रंग रेशमी मनु-श्रद्धा का
हिरोशिमा में मनुज मर गया।

3 वही सृष्टि श्री मनुज आज विज्ञान कब्र में मरा पड़ा है
दौड़ रही है गंधक और फासफोरस की पीली लपटें।

आधुनिकता का नरेश मेहता के सृजन में अर्थ है — विज्ञान के द्वारा किया गया मानव संहार और अवमूल्यन। इस आधुनिकता ने मानव को पीड़ा, दर्द, अवसाद दिया है। जबकि नरेश मेहता अंधेरे में सूर्य का प्रकाश, जीवन की ताजगी, हरियाली के कवि हैं।

32.3.4 विचारधारा और जीवन-दर्शन

नरेश मेहता की विचारधारा पर भारतीय आस्थावादी मूल्यों का गहरा प्रभाव है। वे पश्चिमी नस्लवाद, अलगाववाद, व्यक्तिवाद, अस्तित्ववाद की विचारधारा से सदैव दूर रहे हैं। मार्क्सवाद-भौतिकवाद भी उन्हें सन्तोष नहीं देता। वे आध्यात्मवाद और रहस्यवाद की विचारधारा को भी प्रश्रय नहीं देते। मूलतः उनकी विचारधारा पर वैष्णव-चिंतन-परंपरा के व्यापक मानवतावादी दृश्य और दृष्टि की छाप है। वैष्णव का अर्थ है—बहुजनहिताय, लोक मंगल के लिए जीने वाला प्राणी, भेद बुद्धि से अलग। उत्सवा (1979 ई.) की भूमिका में उन्होंने लिखा है — "व्यक्ति विस्तार के बहुस्याम हो जाने की निष्पत्ति औपनिषदिकता है — जो व्यक्ति समर्पण की निष्णात प्रतिश्रुति वैष्णवता। एक में परम विराट हो जाने की चिति है, तो दूसरे में एकांत के सानिध्य की दृष्टि। एक में ब्रह्माण्ड है तो दूसरे में वृन्दावन। एक में ताण्डव है तो दूसरे में लास्य। एक में यज्ञभाव है तो दूसरे में लीलाभाव।" यह वैष्णवता कृष्णभाव है, सन्त भाव से जीवन का तप। पराई पीर को जानने का भाव। अतः नरेश मेहता की सर्जनात्मकता को समझने के लिए उनकी इस वैष्णव-चिंतन धारा को भीतर-बाहर से समझना जरूरी है। उनकी दृष्टि में वेद-उपनिषद की सांस्कृतिक संवेदना का जीवन-रंग है और मानव की महिमा में अखण्ड विश्वास। धरती की पूजा ही जीवन की शक्ति-साधना है —

1 धरती को कहीं से छुओ
एक बच्चा की प्रतीति होती है।

2 चलते-चलो, चलते चलो
सूरज के संग-संग चलते चलो।
मानव जिस ओर गया, नगर बने, तीर्थ बने।
तुम से है कौन बड़ा? गगन, सिंधु मित्र बने।
भूमि का भोगो सुख, नदियों का सोम पियो
त्यागो सब जीर्ण वसन, नूतन के संग-संग चलते चलो।

(दूसरा सप्तक)

"चरैवेति" अर्थात चलते रहो की वह विचारधारा ही नरेश मेहता का जीवन-दर्शन है। गति ही जीवन है और ठहराव मरण। इसलिए अँधेरे पथों पर चलकर सवेरे की ओर चलते रहो। उनकी जीवनदृष्टि को ठीक-ठीक समझने के लिए उनके इस कथन पर ध्यान देना होगा — "वैष्णवी ऊर्ध्वोन्मुखता ही शिवत्व है और शिवत्व की अवतारणा ही वैष्णवता है।" भारतेन्दु ने एक निबंध लिखा है — "वैष्णवता और भारत वर्ष" — इस निबंध की विचारधारा का नरेश मेहता के सृजन-कर्म पर गहरा असर है।

बोध प्रश्न 2

1 नरेश मेहता की काव्ययात्रा के विकास का परिचय सात-आठ वाक्यों में दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

2 नरेश मेहता की मूल काव्य-संवेदना की विशिष्टताओं पर चार वाक्यों में प्रकाश डालिए :

....

....

....

....

3 'ऐतिहासिक सांस्कृतिक अनुभूति को नरेश मेहता कविता बनाते हैं'। इस कथन पर चार-पाँच वाक्यों में विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

4 'मानव और प्रकृति नरेश मेहता की काव्य सर्जना में एकाकार हैं'—यह कहना कहाँ तक उचित है ? तीन-चार वाक्यों में उत्तर लिखिए।

....

....

....

....

5 युद्ध और आधुनिकता ने इस सांस्कृतिक मनोभाव के कवि को कहाँ तक प्रभावित किया है ? (पाँच वाक्यों में)

....

....

....

....

....

6 नरेश मेहता की विचारधारा तथा जीवन-दर्शन दृष्टि पर सात वाक्यों में विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

32.4 अभिव्यंजना शिल्प

नरेश मेहता उन नए रचनाकारों में से हैं जो वस्तु के साथ शिल्प का अभिन्न संबंध मानते हैं। वस्तु के संवेदनात्मक-ज्ञान को शिल्प ही रूपाकार देता है। यही कारण है कि जैसे रक्त को त्वचा से अलग नहीं किया जा सकता है वैसे ही वस्तु को रूप से अलग नहीं किया जा सकता। हर वस्तु अपना रूप स्वयं चुनती है। हर कविता अपनी काव्यानुभूति के सम्प्रेषण का शिल्प-रूप अपने साथ लाती है। इसलिए मेहता जी की काव्यात्मकता में रूप मात्र "फार्म" मात्र नहीं है वह कथ्य को मूर्त करने का समर्थ साधन है। भाषा, बिंब-प्रतीक, मिथक, उपमान, लय उसके उपकरण हैं। इसलिए इस सृजन में वस्तु और रूप का सामंजस्य है। कवि के कथ्य का पूरा सांस्कृतिक संवेदन-सांस्कृतिक भाषा से प्रतीकों मिथकों में अभिव्यक्ति पाता है। संवेदना के उदात्त स्वरों को गरिमा रखने के लिए वे ऐसी दार्शनिक सांस्कृतिक महिमा

की शब्दावली चुनते हैं, जिसमें भाव को आलोकित करने की कलात्मक क्षमता है। मिथक का वे बेहद सर्जनात्मक उपयोग करते हैं जिसमें अतीत और वर्तमान दोनों के अर्थस्वर साफ अनुगूंज छोड़ते मिलते हैं।

32.4.1 काव्यरूप

नरेश मेहता में प्रबंधक्षमता और मुक्तक की संगीतात्मकता, गीतात्मकता दोनों का अद्भुत योग है। "संशय की एक रात", "प्रवाद पर्व", "शबरी" तथा "महाप्रस्थान" आदि उनकी प्रबंध कृतियाँ हैं। किन्तु इन्हें पुराने ढंग का कथाकाव्य नहीं कहा जा सकता। रामायण-महाभारत के मिथकों को वे अपने ढंग से सृजन में लाते हैं और नवीन दृष्टि का प्रवेश कराते हुए उसे नए अर्थ-सन्दर्भ से जोड़ देते हैं। इसी दृष्टि से वे नए कवि हैं। उनकी प्रबंध क्षमता हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद और निराला की प्रबंध-कला से भिन्न दिखाई देती है। इसलिए नरेश मेहता का प्रबंध स्थापत्य नया है—जो प्रबंध काव्य के पुराने अनुशासनों को तोड़कर विकसित होता है। इन कृतियों को महाकाव्य—खंड-काव्य नहीं कह सकते। कहना ही चाहे तो लम्बी प्रबंध-कविताएँ नाम दिया जा सकता है। क्योंकि यहाँ विचार, कथा को बढ़ाता है जबकि पुराने प्रबंधकाव्यों में कथा, विचार को बढ़ाती थी। दूसरे, इन प्रबंधात्मक कविताओं में देश और काल की द्वन्द्व चेतना, तनाव, संघर्ष, पीड़ा, अवसर, विडम्बना और कड़वाहट है जोकि आधुनिक भाव-बोध का सम्पूर्ण सत्य है।

विशेष बात यह है कि कवि ने "समय देवता" जैसी सफल नाटकीय लम्बी कविता का सृजन किया है। नयी कविता की सफलतम लम्बी कविताओं में "समय देवता" का एक विशिष्ट स्थान है। पूरी कविता "कमेन्ट्री" शैली में है। यह अनुभव को अनुभव कराने की कविता है। अपनी संरचना में यह अप्रगीतात्मक लम्बी कविता है।

नरेश मेहता की छोटी-छोटी कविताएँ बहुत हैं इनमें राग-सत्य पूरी कविता को कलात्मकता से "अन्विति" में बाँध देता है। पूरी कविता प्राणी की तरह गठित, रूप के साँचे से मोहती है फलतः इन कविताओं को काव्य के आवयविक सिद्धान्त (आर्गेनिक थ्योरी) से समझा जा सकता है। आवयविक सिद्धांत को समझाते हुए निराला जी ने "प्रबंध प्रतिमा" में लिखा है—"फूल का कला वाला रूप मिलाइये। तने से डालें भिन्न होकर भी जुड़ी हैं, इसी तरह डालों से पत्ते, पत्तों से फूल, फूलों से खुशबू। खुशबू अपने तत्व में सारे पेड़ को ढके हुए है। तने का रूखापन, डालों की थोड़ी-थोड़ी हरियाली, पत्तों की पूरी, फूलों का एक या अनेक रंगों—केसर पराग आदि से विकसित रूप, सुगंध सारे पेड़ के उच्चतम विकास को स्पष्ट करती हुई — उसी में उसी से ढके हुए वह कला है।" यही बात नरेश मेहता की छोटी कविताओं में है। उनकी कविता हरा-भरा पेड़ है जिसके फूलों फलों पर चिड़िया चहकती है और घोंसला बनाती हैं। नरेश मेहता अपनी कविताओं में अर्थ-सौन्दर्य पूरी तरह भरते हैं। अज्ञेय की कविता "कलगी बाजरे" की भांति "चाहता मन" कविता भी प्रेयसी को सम्बोधित करके लिखी गई है—पर कविता के बिंब-उपमान एकदम उजली ताजगी लिए है जो पुरानी कविताओं में नसीब नहीं है। देखिए —

> वह गया वह नीर
> जिसको पदों से तुमने छुआ था।
> कौन जाने धूप उस दिन की कहाँ है,
> जो तुम्हारे कुन्तलों में गरम, फूली, धुली, धौली लग रही थी।
> चाहता मन,
> तुम यहाँ बैठी रहो
> उड़ता रहे चिड़ियों सरीखा वह तुम्हारा श्वेत आँचल।
>
> (चाहता मन)

पूरी कविता में नयापन, भाव का उजलापन, नारी तन का आलोक दीपित है। नए छवि-चित्रों से पूरी कविता तैयार की गयी है। कविता का भीतरी गठन और योजना में सामंजस्य बैठाया गया है। इस एक कविता में ही नहीं अनेक कविताओं में यह कला-सौन्दर्य पूरे निखार की तरह या धूप-चाँदनी की तरह खिला मिलता है। प्रगीतों में कवि शब्द संगीत निष्पन्न करता है पर यह सब ऐसे होता है जैसे फूल में रंग आता है, रंग-गंध उठती है। गद्य के सहज विन्यास से काव्यात्मकता को दुहना नरेश मेहता की शक्ति है।

32.4.2 काव्य-भाषा

नरेश मेहता की सर्जनात्मक शक्ति लोकभाषा के शब्द-प्रयोगों से फूटी है। वे लोक-प्रचलित शब्दों को खोज खोजकर कविता में लाते हैं। वे उन कवियों में से हैं जिनके लिए आ. रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि 'जब पंडितों की काव्यभाषा स्थिर होकर उत्तरोत्तर आगे बढ़ती हुई लोकभाषा से दूर पड़ जाती है और जनता पर प्रभाव डालने की उसकी शक्ति क्षीण पड़ जाती है तब शिष्ट समुदाय लोकभाषा का सहारा लेकर अपनी काव्यपरंपरा में नया जीवन डालता है'। नरेश की काव्य-भाषा में कृषि-जीवन के शब्द और दृश्य द्रष्टव्य हैं —

1 उदयाचल से किरण धेनुएँ हाँक ला रहा वह प्रभात का ग्वाला।

2 किरन धेनुओं का समूह वह आया अंधकार चरता।

3 नभ की आम्र छाँह में बैठा बजा रहा वंशी रखवाला

4 जीवन की नव किरन फूटती मकई के धानों में
सरिताओं में सोम दुह रहा, वह अहीर मतवाला।

काव्य-भाषा में प्रकृति अपने पूरे चित्र-परिधान के साथ मौजूद है। नदी, झील, आकाश, पहाड़, पर्वत, घाटी, जंगल, बादल, सूरज, धूप, फागुनी, दिन, फूल, बसंत, सन्ध्या के साथ पेड़ों-फूलों के नाम की भरमार है। उषा, धूप किरन, सूर्य ऐसे शब्द हैं जो बार-बार कविता में आते हैं पर हर बार अर्थ ध्वनि नई पैदा करते हैं। यह काव्य-भाषा भाव-स्थितियों, मनोभावों की ताजगी, खुलापन, स्फूर्ति एवं सहज शोभा धारण करती है।

कवि ने सभी जगह लक्षणा-व्यंजना के चमत्कार से भाषा में नया अर्थप्रकाश उत्पन्न किया है। रूपकों की भाषा में व्यंजना की चमक रहती है जैसे —

1 धूप, एक सम्भावित सिम्फनी है आकाश की

2 जो हमारे मुखों की रात्रि पोंछ कर दीपित कर जाता है

3 मनुज चल रहा, इसीलिए तो अंधकार में सूर्य चल रहा।

मूलतः यह काव्य-भाषा चित्र भाषा का पर्याय है और चित्र अपने रूपाकार में आकर्षक और सजीव हैं। जैसे कपिला गाय सी यह धूप। कपिला गाय का सीधापन और उसके दूध की गुणवत्ता दोनों का अर्थ-विस्तार एक साथ एक चित्र में भर दिया है।

संस्कृत की तत्सम शब्दावली भाव-प्रवाह में सहज रूप से चली आती है और भाषा की उदात्त संस्कारी-संवेदना की छाप छोड़ जाती है जैसे —

1 एक स्तवक की तरह मेरे हाथों में

2 धूप भरा फाल्गुनी दिन है

उनमें भाषा को विशेषणों से सजाने-सँवारने की आदत है जैसे शस्य-श्यामला, विश्वम्भरा, रूपमयी, पुष्पवती आदि। कवि ने इस क्षेत्र में बंगला-काव्य का अनुकरण किया है। किन्तु यह अनुकरण उनकी काव्य-भाषा की सहज स्थिति के अनुकूल नहीं है।

इस काव्य-भाषा की विशेष बात यह है कि कवि ने इसमें वैदिक शब्दावली का मुक्त-हृदय से प्रयोग किया है। ज्यादातर शब्द घोर पारिभाषित है जिन्हें "कोश" की सहायता से भी समझना कठिन पड़ता है। इस तरह के प्रयोगों से अप्रचलित शब्दों को प्रचलित बनाने का संकल्प दुहराया है — दूसरी ओर भाषा में क्लिष्टता बढ़ी है और कवि का साधारणीकरण व्यापार खतरे में पड़ गया है। उदाहरणार्थ उपस, इन्द, पूषा, भूमा, सोम, सामगान, ऋचा, समिधा, सविता, सीता, वरूणदेव आदि इस प्रकार के शब्द हैं। सीता का अर्थ धरती है और मिथक भाषा को खोलकर इसका अर्थसंदर्भ स्पष्ट करना पड़ता है। वैदिक सभ्यता यज्ञों और प्रकृति वन्दनाओं, कृषि देवियों और मिथक सर्जकों की सभ्यता थी। वैदिकदर्शन प्रकृति और धरती की महिमा का है।

नरेश मेहता की काव्य-भाषा में जीवन के चटकीले रंग हैं हँसती हुई धरती का लास्य नर्तन है। भाव-भंगिमाओं, वक्रताओं, ध्वनियों नाट्यम संगीत के स्वरों को यह भाषा मूल से पकड़ती है। काव्य के छोटे-बड़े विस्तार में गद्य लय सुनाई देती है, जैसे —

सोने की वह मेघ नील,
अपने चमकीले पंखों में ले अंधकार अब बैठ गयी दिन के अंडे पर।
नदी वधू की नथ का मोती चील ले गई।

विचार के दबाव ने भाषा के भावावेग को कम करते हुए गद्य की ओर प्रवृत्त कर दिया है। रंगों में कवि जीवन छवियों को उभारता है—श्वेत रंग और स्वर्ण कवि को खास रूप से पसंद है। "स्वर्ण किरण", "स्वर्णमयी", "स्वर्ण धूप", "गोली रेत", "कंचन सी बाँहें", "मोती के धान", "चम्पक सी बांहें", "कंचन रथ", "धूप की पीली तितली", कहना न होगा कि इन प्रयोगों ने भाषा की भाव-आभा को चमका दिया है। एक ओर तो भाषा पर लोकभाषा की तद्भव देशज शब्दावली की धमक है दूसरी ओर आभिजात्य प्रयोगों से भरी असहज भाषा। काव्य-भाषा का यह विरोधाभासी प्रयोग नरेश की काव्य-भाषा की शक्ति और सीमा दोनों ही है।

नरेश मेहता "पीले फूल कनेर के" जैसे लोकगीत लिखते हैं तो भाषा में लोक ध्वनि का संगीत शब्दों से फूट रहा होता है। लहजा, स्वर, बंदिश सभी में ठेठ देशीपन आ जाता है। नयी कविता में नरेश मेहता एक ऐसे कवि हैं जो काव्य-भाषा के प्रयोग में अज्ञेय की ओर झुकते हैं और कथ्य के अनुकूल उदात्त संस्कारी, सांस्कृतिक संवेदना से भीगी और मिथकों के अर्थों से सम्पन्न काव्य-भाषा रचते हैं। शब्द के अर्थ की आंतरिक पकड़ और उसकी आत्मा की खोज नरेश में निरंतर रही है। यह काव्य-भाषा परंपरा की आधुनिकता के लिए बराबर याद की जायेगी।

32.4.3 बिंब-प्रतीक

नरेश मेहता के काव्य और काव्य-भाषा की जो विशेषता पाठकों को सर्वाधिक आकृष्ट करती है — वह है उनकी बिंब-विधान की शक्ति। काव्य-भाषा में बिंब सृजन पर उनका ध्यान केन्द्रित रहता है। ये बिंब विषयवस्तु, भाव-संवेदना को मूर्त-गोचर एवं स्पष्ट बनाते हैं। मिथकों को बिंब में ढाल लेने का उनमें सर्जनात्मक उत्साह है। रूप, रस, गंध,

वर्ण, श्रवण-दृष्टि के बिंबों की यह कविता चित्रशाला है। प्रकृति के बिंब-सौन्दर्य से कविताएँ पटी पड़ी है। उदाहरणार्थ —

1 पूछते हंसों के ये बाल
स्वर्ग से दिखती है यह झील
हिमालय लगता होगा पाल।

2 पुष्ट चितृटे वृषभों को देख लगेगा दिन बन आया बैल
चोर भूमा को उर आधार उगे सीता में जीवन बेल

3 नदी वधू की नथ का मोती चील ले गई।

4 सांद्र, दिवस की पत्नी, अपने नील महल में बैठी कात रही है
बादल ऋषि की चारों कन्याएँ है माँग रही तारों की गुड़ियां।

5 यूनानी मुनि प्लेटो की मुद्रा में बैठे समय सनातन
सूर्या को हो ब्याह दिया दिन ने अपने प्रिय मित्र वरूण को।

6 हाथों में नवजीवन की उल्काएँ लेकर मनुज खड़ा है कुतुब सरीखा।

7 मोर पंख सी सजी रमणियाँ

सभी चित्र जाने-पहचाने है, किन्तु अनुभव-अनुभूति से उनमें नया बिंब पैदा किया गया है। सृजन के साथ विनाश के बिंब एकदम तीखे और दर्द भरे हैं। जैसे —

1 गोबी की मंगोल रेत पर युद्ध लाश दुर्गन्ध दे रही।

2 पेकिंग की चिकनी सड़कों पर पिछला जीवन मरा पड़ा है।

3 वही सृष्टि श्री मनुज आज विज्ञान-कब्र में मरा पड़ा है।

कवि की प्रतीक-योजना में प्रकृति-प्रतीकों की भरमार है। धूप, सूर्य, किरन, धेनुएँ कवि के प्रिय प्रतीक है। वैदिक प्रतीक सोम, ऋचा वरूण, इन्द्र, सविता बार-बार आए हैं। इन प्रतीकों में मिथक (पुराख्यानों) का विशिष्ट स्थान है। दार्शनिक-सांस्कृतिक चेतना के भारतीय प्रतीक मनु श्रद्धा, वरूण, सविता, भूमा, सीता निरंतर आते रहे हैं। "शबरी" यदि नारी की व्यथा का प्रतीक हैं—"प्रवाद पर्व" नारी की तपगाथा का। प्रतीकों को जो जाति जितना अधिक सृजित करती है वह उतनी ही उर्वर होती है। प्रतीकों का सृजन हमारे प्राचीन काल की विशेषता है। क्योंकि चिंतन का प्रकृत रूप उसी में था। लोकमन या आदिममन इन प्रतीकों से (भारतीय जाति का) समझा जा सकता है। इन प्रतीकों में हमारी जाति का सामूहिक अवचेतन मौजूद है और आद्य बिंब चमकते हैं। निष्कर्ष यह है कि यह काव्य-बिंब प्रतीक योजना का अनुपम सृजन-विस्तार है।

32.4.4 उपमान योजना

"उपमान" शब्द "अप्रस्तुत" का पर्याय कहा जा सकता है। आजकल की आलोचना में उपमेय-उपमान के स्थान पर "प्रस्तुत-अप्रस्तुत" का अधिक प्रयोग होता है। आलंकारिक योजना का पूरा महल ही प्राचीन आचार्यों ने उपमेय-उपमान पर खड़ा किया है। राधा का मुख-उपमेय और मुख का उपमान-चन्द्रमा, कमल आदि। उपमान का महत्व नवीन भाव-योजना में बहुत अधिक है। परंपरागत उपमानों से नया भाव बोध व्यक्त नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में नए सौन्दर्य बोध को सामने लाने के लिए नए उपमानों की खोज नयी कविता ने पूरा ताकत से की है। यह भी कहना अनुचित न होगा कि नयी काव्य-संवेदना के लिए नया उपमान ही चाहिए। मूलतः नया उपमान एक नया बिंब या प्रतीक ही है। नरेश मेहता के पास ऐसी समृद्ध समर्थ सर्जनात्मक कल्पना है कि वे रूप के नए-ताजे और संश्लिष्ट चित्र खींचते हैं। यथा —

1) तुम यहाँ बैठी हुई थीं अभी उस दिन!
सेब-सी बन लाल।

प्रेयसी का सेब-सी बन लाल बनकर प्रिय के सामने बैठना राग का रंग-बिंब है। साथ ही पुरुष मन की इच्छा को कवि कितनी सूक्ष्म पकड़ से मूर्त करता है। पूरा मांसल विधान नया रूप लेकर आया है।

तुम यहाँ बैठी रहो
उड़ता रहे चिड़ियों सरीखा वह तुम्हारा श्वेत आँचल

(चाहता मन)

यहाँ कविताओं से ऐसे अनेक उदाहरण सहज ही दिए जा सकते हैं जहाँ कवि ने नवीन भाव-संवेदना के लिए काव्यानुभूति में नए उपमान को गूंथ दिया है —

1) अमराई में दमयन्ती सी पीली पूनम कांप रही है।

2) अभी महल का चाँद किसी आलिंगन में ही डूबा होगा।

3) डमरू जैसा देश दिख रहा अमरीका का।

4) किसी फ्रेंच युवती सा पेरिस, चमकीली किरनों का गाउन पहने सबसे पूछ रहा है, कल की बासी छाया मेरे कुन्तल में तो शेष नहीं है।

5) हलेन सी डेन्यूब किनारे गाउन जैसे बिछ जाते हैं
नाइन्टैंगल बैठी पाइन पर।

6) खाकी वर्दी का युग मेरा

7) घोड़े की छाती से ऊँची स्वर्ण बालिया श्वेत सूर्य से बात कर रही।

नरेश मेहता की काव्यात्मक संवेदना में मानवीय हस्तक्षेप बहुत हैं। प्रकृति के मानवीकरण अलंकार इस कविता की शोभा हैं। ध्यान देने की बात है कि हिंदी की प्रयोगवादी कविता (1043-51 ई.) के काल में नए उपमानों की चर्चा जोर-शोर से चली थी। इस क्षेत्र में नयी कविता के कवि खुलकर आगे आए और नवीन उपमान योजना से नयी कविता को समृद्ध किया। नरेश जी ऐसे ही कवियों मे अग्रणी रहे हैं।

32.4.5 छंद और लय

इस कवि की खुली काव्य-संवेदना ने परंपरागत छंदशास्त्र के अनुशासनों को अस्वीकार किया है। अक्षरों की संख्या और वर्ण-गाथा के नियमों के प्रति उनमें शुरू से ही उपेक्षा मिलती है। "खुल गए छंद के वन्ध, प्रास के रजतपाश" की घोषणा का नयी कविता ने आदर किया है। नरेश मेहता के लिए छन्द, विचार, भाव, भाषा की गति को नियन्त्रित करते हैं और भाव अपने साथ लय को, छंद को कर्ण के कवच-कुंडल की भाँति जन्म के साथ ही लाते हैं। विशेष बात यह है कि नरेश मेहता ने अज्ञेय, भवानी प्रसाद मिश्र की भाँति ही वाचिक परंपरा पर ध्यान दिया है। इस परंपरा में कविता को गाकर सुनाने का प्रचलन था। किन्तु मुद्रण युग ने कविता के सामने समस्या खड़ी कर दी और वह 'गाने' से ज्यादा 'पढ़ी' जाने लगी। नयी कविता मे छन्द ने अपनी इन्द्रिय बदली है—पहले वह कानों के रास्ते हृदय में उतरती थी — अब आंखों के माध्यम से। वह छोटे-लम्बे वाक्यों, गद्य विन्यासों, विराम संकेतों, चिन्हों, डेशों आदि से अर्थ को स्पष्ट करने की ओर बढ़ती है। प्रश्न, विस्मय, भय, उल्लास, के लिए चिन्ह लगाये जाते हैं—जो कवि के मनोगत भावों को स्पष्ट करते हैं। नरेश मेहता मुक्तछंद और लोकगीतों दोनों में इन चिन्हों का प्रयोग करते हैं। उनकी प्रसिद्ध कविता "समय देवता" मुक्तछंद के गद्य-विन्यास में जीवन के उतार-चढ़ाव की लय को बुनती है। "नाद-लय", "अर्थ-लय", "आंतरिक-लय", "पढ़ने-बोलने की वाक-लय" सभी को नरेश अपनाते हैं। साधारण बोलचाल के गद्य की लयँ को उन्होंने आदर से अपनाया है एक उदाहरण लीजिए —

समय देवता! आज विदा लो,
किन्तु तुम्हारे रेशम के इस चमक वस्त्र में मिट्टी का विश्वास बाँधकर
भेज रहा हूँ।
मेरी धरती पुष्पवती है,
और मनुज की पेशानी के चरागाह पर दौड़ रही है तूफानों की
नयी हवाएँ।

गद्य के काव्यप्रवेश ने भावावेग को हटाकर यहाँ वैचारिक जीवन-संग्राम की यथार्थ भाषा और लय को जन्म दिया है। नरेश मेहता अनुभूति को ठीक उसी रूप में पकड़कर भाव में निहित लय के अनुसार ज्यों का त्यों उतार डालना चाहते हैं। मानसिक भावों के यथातथ्य अंकन की यह प्रवृत्ति ज्यादातर नए कवियों में है। बातचीत की लय यहाँ तक की नाद की अनुकृति तक "किरन धेनुएँ", "अहं", "उषस" जैसी कविताओं में लाई गई है। कुल मिलाकर कवि मन वास्तविकता के हर कोण और लहजे को छंद में गह लेने का आकांक्षी है। उल्लास अवसाद के गीत, नरेश ने कम नहीं गाएँ हैं पर उनमें लोकधुनों का अनुसरण किया है।

32.5 काव्य वाचन और सन्दर्भ सहित व्याख्या

आप नरेश मेहता के काव्य की प्रवृत्तियों से साक्षात्कार कर चुके हैं। यहाँ पर पाठ्यक्रम में निर्धारित दो कविताएँ और उनके महत्वपूर्ण अंशों की सन्दर्भ सहित व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है।

किरन धेनुएँ[1]

उदयाचल[2] से किरन धेनुएँ,
हाँक ला रहा वह प्रभात का ग्वाला।
  पूँछ उठाये, चली आ रही
  क्षितिज जंगलों से टोली,
  दिखा रहे पथ, इस भूमि का

1. गायें; 2. पूर्व का एक (कल्पित) पर्वत जिसके पीछे से सूर्य का उगना माना जाता है।

सारस सुना-सुना कर बोली,
गिरता जाता फेन मुखों से
नभ में बादल बन तिरता,
किरन धेनुओं का समूह
यह आया अन्धकार चरता,
नभ की आम्र छाँह में बैठा, बजा रहा बंशी रखवाला।
ग्वालिन सी ले दूब मधुर
बसुधा हँस-हँस कर गले मिली,
चमका अपने स्वर्ण सींग वे
अब शैलों से उतर चलीं,
बरस रहा आलोक दूध है,
खेतों खलिहानों में,
जीवन की नव किरन फूटती
मकई के धानों में,
सरिताओं में सोम दुह रहा, वह अहीर मतवाला।

अहं

अहं की चट्टान को यह फोड़ती
आ रही आवाज किसकी
एक गहरी चुप सभी के ओठ सीखें।
बाँसुरी की कब्र पर चुप का कफन मैं।
मुट्ठियों, पत्थर किये हैं बन्द।
कौन?
चुप के वस्त्र को,
तेज सूई की तरह है छेदता?
विश्व के इस रेत वन पर
मैं अहं का मेघ हूँ।
उन दिशा की दासियों के संगमरमर के करों में,
जय वस्त्र मेरा है थमा।
कौन हो तुम?
चाहते किसके पलक असगुन?
क्या नहीं तुम देखते?
आज मेरे अहं कन्धों पर गगन बैठा हुआ।
अहं पर ये अश्रु किसके?
हुंकार से मैं घाटियों की गोद को भरता रहूँगा
जब तलक इस प्रश्न का उत्तर न होगा।
क्या?
मेरी अहं की मीनार की ही नींव में
इस पत्थर हिचकियाँ हैं ले रहा
एक हिचकी?
प्रतिध्वनित हो चाहती इतिहास होना?
आह! मैं ऊँचा गगन,
"औ" नींव का पाताल, आँसू की नदी में।

उद्धरण 1

उदयाचल से किरन धेनुएं,
हांक ला रहा वह प्रभात का ग्वाला।
पूंछ उठाये, चली आ रही
क्षितिज जंगलों से टोली,
दिखा रहे पथ, इस भूमि का
सारस सुना-सुना कर बोली,
गिरता जाता फेन मुखों से
नभ में बादल बन तिरता,
किरन धेनुओं का समूह
यह आया अन्धकार चरता,

संदर्भ : रचना का नाम..

....

लेखक का नाम...

....

लेखक के बारे में...

....

प्रसंग : नरेश मेहता ने सृजन पर वैदिक काव्य के सौन्दर्य की अमिट छाप है। वेदों में प्रकृति सौन्दर्य की उपासना है और प्रकृति वहाँ मानव के साथ एकरूप, और एकाकार है। मानव और प्रकृति की यह सहभागिता ही विकासयात्रा का एक जीवनदर्शन प्रस्तुत करती है। प्रकृति में बादल, सूर्य, चन्द्र, तारागण नदी, किरन, निर्झर आदि को देखकर विस्मय-विमुग्ध होने का प्रकृत उल्लास से भरा भाव है। नरेश मेहता मानते हैं कि आज की यान्त्रिकता से मानव की रक्षा जरूरी है और मानव की रक्षा तभी की जा सकती है जब वह प्रकृति के साथ जीने का भाव उत्पन्न करे। यही मूल भाव इस कविता की मनोभूमिका में व्यक्त हुआ है।

व्याख्या : कवि प्रकृति के सौन्दर्य-दर्शन में जीवन की गति और उल्लास पाता है। सबेरे निकलने वाले सूर्य की किरणों को देखकर वह वैदिक ऋषि की भाव मुद्रा में कहता है कि पूर्व दिशा के पर्वत उदयाचल से निकलने वाले सूर्य की किरणें धरती की ओर बढ़ती है ऐसा लगता है मानो गाय चराने वाला सूर्य ग्वाला अपनी किरण रूपी गायों को धरती की ओर हाँक कर ला रहा है। पूरा दृश्य ऐसी दृष्टि देता है मानो दूर-दूर तक फैले हरियाली के जंगलों से जहाँ धरती आसमान मिलते से दिखाई देते हैं – उस क्षितिज से गाय समूह पूँछ उठाये भागता चला आ रहा है। धरती पर गीत गाते सारस-पक्षी की बोली इस भूमि के अभिनन्दन का संकेत दे रही है। उन गायों के मुखों की रौंध (गाय की जुगाली) से आनंद में जो फेन उठाया है मानो वही बादलों में रूप धारण कर तैरता रहता है और सूर्य की किरन रूपी गायों के द्वारा अन्धकार चर लिया गया है यानी नष्ट कर दिया जाता है। प्रकाश और आनन्द की ताजगी से भरा पुलकती धरती को देखकर गायों का रखवाला अमिताभ या सूर्य (विष्णु का रूप कृष्ण) मानों नभ के नीचे आम्रमंजरी की छाया में बैठकर आनन्द की तान छेड़ता है।

विशेष

1 कृष्ण का संबंध गायों से है और गायों का समूह कृष्ण की वंशी पर मोहित होकर उनके साथ चलता है।
2 सूर्य-गाय के वैदिक मिथक को कवि ने एक नए बिंब में प्रस्तुत कर दिया है।
3 सूर्य-आदिम प्रकाश का प्रतीक है। जो मानव को अन्धकार से निकालकर प्रकाश की ओर ले जाता है। वैदिक कृषि-जीवी समाज ने किरण-धेनुओं को ऐसी ही कला दृष्टि में ढाला है।
4 मानवीकरण अलंकार के द्वारा कवि ने सूर्य को ग्वाला और वंशीवादक कृष्ण (विष्णु) के रूप में प्रस्तुत किया है।
5 चरवाहे आम के वृक्षों की छाया में बैठकर निश्चित होकर गाय चराते थे और चैन की वंशी बजती थी। गायों के दूध से जीवन पलता था और किरणों से धरती की हरियाली हंसती थी। इस तरह से यह आदिम अवचेतन का बिंब है।
6 काव्य-भाषा ने प्रकृतिपूजक समाज की सहज चेतना को रूपकों से साकार किया है।

उद्धरण 2

ग्वालिन सी ले दूब मधुर
वसुधा हँस-हँस कर गले मिली
चमका अपने स्वर्ण सींग वे
अब शैलों से उतर चलीं

बरस रहा आलोक दूध है,
खेतों खलिहानों में,
जीवन की नव किरन फूटती
मकई के धानों में,
सरिताओं में सोम दुह रहा, वह अहीर मतवाला।

संदर्भ : रचना का नाम..

....

लेखक का नाम...

....

लेखक के बारे में...

....

प्रसंग : नरेश मेहता ने सृजन पर वैदिक काव्य के सौन्दर्य की अमिट छाप है। वेदों में प्रकृति सौन्दर्य की उपासना है और प्रकृति वहाँ मानव के साथ एकरूप, और एकाकार है। मानव और प्रकृति की यह सहभागिता ही विकास-यात्रा का एक जीवन दर्शन प्रस्तुत करती है। प्रकृति में बादल, सूर्य, चन्द्र, तारागण नदी, किरन, निर्झर आदि को देखकर विस्मय-विमुग्ध होने का प्रकृत उल्लास से भरा भाव है। नरेश मेहता मानते हैं कि आज की यान्त्रिकता से मानव की रक्षा जरूरी है और मानव की रक्षा तभी की जा सकती है जब वह प्रकृति के साथ जीने का भाव उत्पन्न करे। यही मूल भाव इस कविता की मनोभूमिका में व्यक्त हुआ है।

व्याख्या : कृषि जीवी समाज का जीवन गाय पर निर्भर था। इसीलिए कवि ने वसुधा (धन धारण करने वाली धरती) को ग्वालिन के रूप में देखा है जो मीठी दूब-घास खिलाकर इन गायों को हृदय से प्यार करती है। हरी घास मानों गायों के स्वागत के लिए, उनकी भूख मिटाने के लिए ही धरती रूपी ग्वालिन उगाती है। किरण धेनुएँ अपने सींगों को सोने से मढ़े हुए हैं। सूर्य के आलोक में स्वर्ण का दृश्य उपस्थित है और हरे-भरे शैलों से उतर कर धरती की ओर आती गायों का समूह मनमोहक दिखाई देता है। खेतों खलिहानों में सूर्य किरणें फैलकर फसल को हरामरा करती हैं. अन्न उगता है। अतः उसे खेतों में दूध बरसना या जीवन वर्षा कहा है। मकई के हरे-भरे खेतों की हरीतिमा जीवन की नयी उमंगों का संकेत बन जाती है। सरिताएँ विराट प्रकृति की सृजन-आकाक्षाएँ हैं। इन से ऐसा लगता है कि मतवाला अहीर या कृष्ण (विष्णु) इन सरिताओं से सोमरस का दोहन कर रहा हो। ध्यान देने की बात यह है कि प्राचीन काल में सोमरस मधुर पेय था। उसे अमृत तुल्य माना जाता है।

विशेष

1 रूपक के द्वारा ग्वालिन रूपी वसुधा के उल्लास का चित्र प्रस्तुत किया है।

2 खेतों में अन्न काट कर खलिहानों में रखा जाता था। धरती पर अन्न है तो जीवन का रस है।

3 सोम — एक प्राचीन पेय जिसे पीकर मानव और देवता अमृत का स्वाद चखते थे। प्राचीन साहित्य में सोमरस की चर्चा अनेक रूपों में की गई है।

4 वेदों में गाय और ग्वालों का संकेत पाकर ही विद्वान मानते हैं कि कृष्ण कथा प्राचीन है और यह समाज कृषि जीवी रहा होगा।

5 ग्वालिन एक प्राचीन जाति जो दूध, दही, का व्यापार करती थी। इसी जाति ने कृष्ण को अपनाया तथा लोकप्रसार दिया।

6 लोकभाषा में वैदिक काव्य-संवेदना की निष्पति का सराहनीय प्रयास।

7 "दूसरा सप्तक" में यह कविता संगृहीत है।

उद्धरण 3

अहं

अहं की चट्टान को यह फोड़ती
आ रही आवाज किसकी
एक गहरी चुप सभी के ओठ सीखें।
बाँसुरी की कब्र पर चुप का कफन मैं।
मुट्ठियों, पत्थर किये हैं बन्द।
कौन?
चुप के वस्त्र को,
तेज सूई की तरह है छेदता?
विश्व के इस रेत कन पर
मैं अहं का मेघ हूँ।
उन दिशा की दासियों के संगमरमर के करों मे,
जय वस्त्र मेरा है थमा।
कौन हो तुम?
चाहते किसके पलक असगुन?
क्या नहीं तुम देखते?
आज मेरे अहं कन्धों पर गगन बैठा हुआ।
अहं पर ये अश्रु किसके?
हुंकार से मैं घाटियों की गोद को भरता रहूँगा
जब तलक इस प्रश्न का उत्तर न होगा।
क्या?
मेरी अहं की मीनार की ही नींव में,
इस पत्थर हिचकियाँ हैं तो रहा?
एक हिचकी?
प्रतिध्वनित हो चाहती इतिहास होना ?
आह! मैं ऊँचा गगन,
"औ" नींव का पाताल, आँसू की नदी में।

संदर्भ : कविता का नाम ....

....

लेखक का नाम ....

....

लेखक के विषय में ....

....

प्रसंग : आधुनिक मनुष्य की सबसे प्रबल समस्या अपना "अहं" है। यह अहं या अहंकार भरा मन हर जगह आड़े आता है और व्यक्ति और व्यक्ति के बीच में एक दीवार खड़ी कर देता है। यह दीवार जितनी ही चट्टानी होती जाती है उतना ही मानव अपने सहज या प्रकृत स्वरूप को खोता चला जाता है। अहं से मुक्ति ही जीवन के प्रति सच्चा समर्पण है और जन-मन से मिलने की खुली इच्छा का परिणाम है।

व्याख्या : कवि अपने वैयक्तिक अवचेतन की आवाज सुनता है। उसे ही सुन-समझकर वह कहता है कि अहंकार की कठोर चट्टान को तोड़कर किसकी आवाज आ रही है? इसी प्रश्नाकुलता से उसे पता चलता है कि अहं के कठोर अहसास ने सभी के ओंठ सिल दिए हैं। कोई मुँह खोलने को तैयार नहीं है ऐसा लगता है जीवन की बाँसुरी का राग मर गया है और उसकी कब्र पर मौन का कफन पड़ा है। लेकिन मौन में भी एक प्रश्न गूँज रहा है कौन पुकारता था — क्यों पुकारता था। यह प्रश्न सुई की नोक की तरह चुभ रहा है और खोजने पर पता चलता है कि विश्व में प्रेम की बंजरता का कारण या राग-संबंधों के रेत हो जाने का कारण मानव का अहं है जो एक दूसरे के बीच अलगाव पैदा करता है। अहं, मेघ की भाँति मन के वन पर घुमड़ता रहता है। सभी दिशाओं का संगमर्मरी पत्थर का कठोर रूप है जिस पर संहारक वज्र का प्रहार होना अभी शेष है। बार-बार मन प्रश्न पूछता है तुम हो कौन — जो चेतना पर घिराव-तनाव डाले हुए हो। क्या तुम्हें मानव के हँसते नेत्रों से प्यार नहीं है क्या तुम नहीं जानते समानता और बन्धुत्व में ही जीवन है। किन्तु हो क्या? आधुनिक मनुष्य ने अपने अहं को इतना बढ़ा लिया है कि वह उसके कन्धों पर सवार हो गया है और उसका विस्तार जगत की तरह अनंत है। कौन है — जो इस झूठे अहं पर आँसू बहा रहा है यह यक्ष प्रश्न मानव की सहज मन की घाटियों में गूँज रहा है। जब तक इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिलेगा मन की ऊँची मीनारों की नींव दबी सहज मीठी स्मृतियों की हिचकियाँ निरंतर आतीं रहेंगी और हर हिचकी में यह अर्थध्वनि उठेगी कि मानव पत्थर नहीं था — कठोर नहीं था — उसका मन मोम सा मुलायम था। इसलिए वह इच्छा जो इतिहास में अपना असर छोड़ना चाहती है वह कठोर है, उसकी कठोरता ही धरती को रौंद कर आसमान छूना चाहती है। किन्तु मीनार सत्य नहीं होती, सत्य होती है वह नींव जो मीनार को थामे खड़ी रहती है और जिसके अश्रुओं की नदी में करुणा का जल प्रवाहित है — जो मानव को जीवन दान देती है।

विशेष

1 इस पूरी कविता में "अहं" के आधुनिक विस्फोट की समस्या को मनोविश्लेषणशास्त्र के संदर्भ में उठाया गया है।

2 कविता को गद्य-लय की वैचारिक पीठिका से उठाया गया है और जीवन की वैचारिकता को नये आयाम में दृष्टि दी गई है।

3 कविता का पूरा बिंब अहं की स्थिति-परिस्थिति के टकराव को सामने लाता है।

4 नयी कविता में इस तरह की बारीक समस्याओं को मूल रागों के साथ प्रायः उठाया गया है।

32.6 मूल्यांकन

उपनिषद् वैष्णव-चिंतन परंपरा, सांस्कृतिक संवेदना मूल्य-दृष्टि और मिथक प्रयोग की शक्ति के कारण नरेश मेहता की नयी कविता में एक बिल्कुल अलग पहचान बनती है। प्राचीन भारतीय संस्कृति का सारवान अंश छन-छन कर उनकी अर्थ-सजग दृष्टि में आता रहा है। वे वेद-उपनिषद् का अनुवाद नहीं करते हैं, बल्कि उसके भावों-विचारों की काव्यात्मकता को नवीन अर्थ सौन्दर्य की संवेदना में निखार देते हैं। उनकी कविता का अर्थ, जीवन की विसंगति-विडम्बना, संशय, तनाव और श्रम के परायेपन को लेकर खुलता है और प्राचीन का नवीन संस्कार करते हुए जीवन के आस्थावादी-मानवतावादी मूल्यों की महत्व-प्रतिष्ठा करता है। समकालीन कविता के चालू नारों और काव्यमुहावरों से वे अपने को अलग करते हैं और परंपरा की सर्जनशीलता को नचिकेता-भाव से नया चिंतन देते हैं। पश्चिम का अनुकरण तो उनमें है ही नहीं, अस्तित्ववादी हवा भी उन्हें कहीं नहीं लगी है। नयी कविता को संस्कारी भाव-बोध, भाषा-दर्शन नरेश मेहता की मौलिक देन है और प्रकृति-सौन्दर्य और भारतीय मिथकों से तदाकार होकर रचना-कर्म में प्रवृत्त होना उनकी काव्य-शक्ति का विश्वास फलतः उनका काव्य आज की चालू काव्य-प्रवृत्ति से अलग एक विशिष्ट व्यक्तित्व रखता है जिसका सौन्दर्य और स्वाद निराला है।

बोध प्रश्न 3

1 नरेश मेहता क अभिव्यंजना शिल्प की कोई सी दो विशेषताएं लिखिए ।

....

....

2 नरेश मेहता क प्रबंध काव्यों तथा मुक्तक काव्यों की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। (पाँच वाक्यों में)

....

....

....

....

....

3 नरेश की काव्य-भाषा की विशिष्टताओं का सात-आठ वाक्यों में उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

4 नरेश मेहता के बिंब-प्रतीक दोनों पर प्रकृति, दर्शन और वैष्णवता की छाप है। इस कथन पर सात-आठ वाक्यों में विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

5 नरेश की उपमान-योजना की तीन विशेषताएं लिखिए।

....

....

....

6 नरेश मेहता के छंदों एवं लयों के प्रयोग की विशेषताओं का पाँच वाक्यों में उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

....

32.7 विचार संदर्भ और शब्दावली

अग्नि : तेज का देवता। इसकी पत्नी व नाम स्वाहा है। ब्रह्म का ज्येष्ठ पुत्र।

सोम : अमृत, देवताओं का पेय पदार्थ, सोम नामक पौधे का रस।

संश्लिष्ट : साथ-साथ मिला हुआ, जुड़ा हुआ।

सीता : वेदों के अनुसार कृषि की अधिष्ठात्री देवी, पुराण के अनुसार आकाश गंगा की धारा, रामायण के अनुसार राम की पत्नी का नाम।

इन्द्र : शौर्य, युद्ध और वैभव के वैदिक देवता। इनका स्थान अंतरिक्ष है। देवताओं के राजा, नन्दन वन के स्वामी।

उत्सवगीत : लोक गीतों की परंपरा में उत्सवगीतों का महत्वपूर्ण स्थान है। विभिन्न संस्कारों के लिए इन गीतों का लोक प्रचलन।

उमा : शाब्दिक अर्थ है — प्रकाश। शिव की पत्नी का एक नाम।

तांडव : शिव का अत्यंत प्रिय नृत्य।

लास्य : पार्वती द्वारा किया जाने वाला कोमल भाव-भंगिमा का नृत्य।

वेद : चार ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। वेदों के रचनाकाल का निश्चित रूप से ज्ञान नहीं है पर ऐसा विश्वास है कि ये प्राचीनतम ग्रंथ हैं। इनका विस्तार वाचिक परंपरा में हुआ। अतः इन्हें "श्रुति" भी कहा जाता है।

वैष्णव : इस सम्प्रदाय के अनुयायी विष्णु की उपासना करते हैं, महाभारत में इसे नारायणी धर्म कहा गया है। तदुपरांत इसमें कृष्ण की उपासना प्रधान हो गई एवं इसे 'भागवत धर्म' भी कहा गया।

उपनिषद् : इनकी संख्या 108 मानी जाती है। ईशावस्य, केन, कठ, प्रश्न, मुण्ड, छान्दोग्य, ऐतरेय आदि।

32.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी : *समकालीन हिंदी कविता*, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

नामवर सिंह : *कविता के नए प्रतिमान*, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

रामकमल नरेश मेहता राय : *कविता की उर्ध्व यात्रा*, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

32.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 नरेश मेहता उदात्त क्लासिकल संवेदना के कवि हैं।

2 देखिए 32.2

3. देखिए 32.3

4 "संशय की एक रात" की मूल संवेदना का आधार राम के मन में चलने वाले द्वन्द्व में है। तनाव और संघर्ष में वे घबराते हैं और उनका आचरण मानव की तरह बेचैनी उत्पन्न करता है। कवि ने राम के धीरोदात्त रूप की चादर उतार दी है और उन्हें स्थिति-परिस्थिति के झंझावात में डांवाडोल व्यक्ति चित्रित किया है।

5. ii)

बोध प्रश्न 2

1 देखिए 32.2.3

2 देखिए 32.3

3 देखिए 32.3.1

4 देखिए 32.3.2

5 देखिए 32.3.3

6 देखिए 32.3.4

बोध प्रश्न 3

1 इस अभिव्यंजना शिल्प की प्रथम विशेषता है कि यह वस्तु को कलात्मकता से प्रस्तुत करता है। दूसरी बात यह इस शिल्प में कोरा रूपवादी चमत्कार नहीं है। वस्तु और रूप अभिन्न हैं।

2 देखिए 32.4.1

3 देखिए 32.4.2

4 देखिए 32.4.3

5 देखिए 32.4.4

6 देखिए 32.4.5 । कवि ने जीवन की विसंगतियों, विडम्बनाओं को गद्य-लय में ढाल कर प्रस्तुत किया है। बोलचाल की लय, संवाद, विराम-संकेतों, चिह्नों आदि से भी वे अपने अर्थ को सम्प्रेषित करते हैं। प्रगीतों में 'नाद-लय' या 'वाक्-लय' के विधान में वे कुशल हैं और शब्द के संगीत को आदर देते हैं।

इकाई 33 समकालीन कविता : स्वरूप और विकास

इकाई की रूपरेखा

33.0 उद्देश्य
33.1 प्रस्तावना
33.2 समकालीन कविता : स्वरूप और दृष्टि
- 33.2.1 समकालीनता, तात्कालिकता एवं परम्परा
- 33.2.2 समकालीन परिवेश एवं सर्जना
- 33.2.3 समकालीन कविता एवं आधुनिकता
- 33.2.4 समकालीन कविता में यथार्थ से साक्षात्कार

33.3 समकालीन कविता और नयी कविता
33.4 समकालीन कविता का विशाल परिदृश्य (प्रमुख कवि)
33.5 समकालीन कविता की काव्यगत अथवा संवेदनागत प्रवृत्तियाँ
- 33.5.1 कविता में जन संघर्ष की यथार्थ छवि
- 33.5.2 जन सामान्य के आत्म-विश्वास मे आस्था
- 33.5.3 आत्म-विस्तार और जीवन विवेक का सौंदर्य
- 33.5.4 आधुनिकता के प्रचलित प्रतिमानों को चुनौती
- 33.5.5 कविता में राजनीतिक संदर्भों की प्रमुखता
- 33.5.6 परिवेश के प्रति गहरी आत्म-सजगता
- 33.5.7 अस्वीकृति, विद्रोह और आंदोलनों की अर्थ-ध्वनियाँ

33.6 समकालीन कविता की शिल्पगत प्रवृत्तियाँ
- 33.6.1 परंपरागत शिल्प से छुटकारे का प्रयास
- 33.6.2 काव्य-भाषा
- 33.6.3 बिंब, प्रतीक और मिथक
- 33.6.4 नवीन काव्य लय

33.7 मूल्यांकन
33.8 शब्दावली
33.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
33.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

33.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- समकालीन हिंदी कविता के संपूर्ण परिवेश एवं यथार्थ को पहचान सकेंगे,
- प्रयोगवाद और नयी कविता से समकालीन कविता का रिश्ता समझ सकेंगे तथा उनमें समानता-असमानता के तत्वों को पहचान सकेंगे,
- समकालीनता, तात्कालिकता, आधुनिकता तथा परम्परा का अर्थ और संदर्भ ज्ञात कर सकेंगे,
- समकालीन कविता की विभिन्न काव्य-धाराओं के विषय में निश्चित अवधारणाओं का उल्लेख कर सकेंगे,
- समकालीन कविता में आंदोलनों, वादों और प्रवृत्तियों को बारीकी से जान सकेंगे,
- समकालीन कविता की संवेदना और शिल्प की उपलब्धियों और सीमाओं की चर्चा कर सकेंगे, और
- तुलनात्मक दृष्टि से समकालीन कविता की मूल्य-दृष्टि के ग्रहण और मूल्यांकन में समर्थ हो सकेंगे।

33.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आप पढ़ चुके हैं कि स्वाधीनता प्राप्ति के साथ देश में जीवन के हर क्षेत्र में नयी आकांक्षाओं ने जन्म लिया। किन्तु आर्थिक-सांस्कृतिक स्वाधीनता के अभाव में देश की इच्छाओं को सही दिशा न मिल सकी। गांधीजी की हत्या के पश्चात् मूल्यविहीन राजनीति का रास्ता खुला दिखाई देने लगा। मूल्यों के विघटन के कारण धीरे-धीरे जनता की उमंगों पर अवसाद के बादल मँडराने लगे। परिणामस्वरूप आस्थावादी जीवन-दृष्टि के स्थान पर अनास्थावादी मूल्य, जीवन और सर्जन में प्रबलता पाने लगे। हिंदी कविता के क्षेत्र में प्रयोगवाद के बाद जन्मी नयी कविता का संपूर्ण आन्दोलन मोह भंग, अवसाद, खिन्नता, श्रम के पराएपन की पीड़ा, आत्म-निर्वासन, अकेलापन, ऊब, विसंगति, विडम्बना, विद्रूपता, अंधेरा, संत्रास, कुंठा, घुटन अस्तित्व के संकट आदि का भावबोध लेकर आया। लेकिन कविता का यह ताजा

दिखाई देने वाला मुहावरा 1960 के बाद बासी महसूस होने लगा। किसी समय में नई लगने वाली राहें जड़ लीकों का रूप लेती हुई अपना आकर्षण खोने लगीं। उधर राजनीति में भी एक खौलता परिवेश दृष्टिगत हुआ। परिणामस्वरूप कविता को नयी कविता से अलग पहचान बनानी पड़ी। इस साठोत्तरी कविता को नया नाम दिया गया — "समकालीन कविता"। समकालीन कविता के केन्द्र में मामूली आदमी की पीड़ा और शक्ति, स्थितियों और मनःस्थितियों की टकराहट, परिवेश की पुकार तथा स्थापित व्यवस्था की मूल्यांधता से विद्रोह और बगावत के तत्व प्रमुख हो गए। इस कविता में संवेदना, काव्य-भाषा, प्रतीक, मिथक, बिंब आदि के स्तरों पर बुनियादी परिवर्तन घटित हुआ।

33.2 समकालीन कविता : स्वरूप और दृष्टि

समकालीन कविता को नयी कविता के बाद की 'विद्रोही कविता' भी कहा जाता है। काल चेतना के प्रति सजग आलोचक समकालीन कविता को "साठोत्तरी कविता" कहना अधिक संगत मानते हैं। ऐसे भी आलोचक हैं जो कथ्य और संवेदना की दृष्टि से समकालीन कविता को "संपूर्ण यथार्थ" की कविता कहना अधिक उचित समझते हैं। समकालीन कविता का दावा है कि वह न तो भावना मात्र है न कल्पना का अतार्किक आधार। मूलतः यह कविता विचारों के गहरे तनावों-दबावों से विवश हो कर रची जाती है। जीवन से उपजी स्थितियों का तनाव समकालीन कविता में इतना अधिक बढ़ गया है कि कवि स्वयं से ही लड़ कर लहू-लुहान दिखाई देता है। उसकी कविता खुद से, अपने परिवेश से मुठभेड़ करती कविता है। व्यापक अर्थों में कह सकते हैं कि परिवेश ही इस काव्य सर्जना की मूल प्रेरणा है। यहाँ महामानव और लघु मानव की बहस को समाप्त करता हुआ सामान्य मानव केन्द्र में आ गया है। वस्तुतः हर युग की कविता अपने युग के मनुष्य को परिभाषित करने की कोशिश करती है। इसलिए कविता या सृजनकर्म में निरंतर परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से बदलती हुई मनोभूमिका का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है। नयी कविता का युग नेहरू युग की राजनीति का दस्तावेज है तो समकालीन कविता में चीन-पाकिस्तान युद्ध की ध्वनि और गुर्राहट तथा लाल बहादुर शास्त्री, इन्दिरा गांधी और उनके बाद के युग की चेतना का यथार्थ विस्फोट है। रचना अपने युग के यथार्थ की टकराहट से ही राह बनाती है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि समकालीन कविता अपने परिवेशगत यथार्थ की ईमानदार अभिव्यक्ति है। इस युग के मनुष्य के भीतर पैठे संघर्ष, द्वंद्व, तनाव, आत्म-मंथन, उत्पीड़न, शोषण से उत्पन्न दर्प, व्यंग्य विद्रूप, टूटते हुए मूल्यों और गलते सपनों की चीख इस कविता की संवेदना के रेशे-रेशे में बिंधी हुई है। एक प्रकार से आज के मामूली आदमी का हाड़ फोड़ कर निकला हुआ दर्द ही रचनात्मकता में ढल कर समकालीन कविता के स्वरूप को निर्मित करता है। किन्तु यह समझना भूल होगी कि समकालीन कविता में पश्चिम के आत्महत्या के दर्शन वाला अस्तित्ववादी काव्य-मुहावरा सक्रिय है। यह कविता निराशा, अनास्था, गलते मूल्यों की कविता अवश्य है पर यह मूल्यों के स्तर पर अनास्थावाद की महत्वप्रतिष्ठा नहीं करती। अपनी दिशा और दृष्टि में यह नयी पीढ़ी के अनास्थावादी मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध कविता है।

33.2.1 समकालीनता, तात्कालिकता एवं परम्परा

समकालीन कविता मात्र सांप्रतिक कविता का पर्याय नहीं है। यहाँ समकालीनता का अर्थ है सन् 1960 के बाद की कविता। इस संदर्भ में "समकालीन" शब्द को "समसामयिक" के पर्याय रूप में ग्रहण नहीं किया जाता। क्योंकि अगर ऐसा अर्थ लिया जाए तो प्रत्येक कविता, अपने समय में समसामयिक होगी। इसी तरह इस शब्द से "तात्कालिकता" का अर्थ भी नहीं लिया जाता है। मूलतः यह काल (समय) को अपने से पहले की कविता की तुलना में ज्यादा सतर्कता, प्रखरता और चौकन्नेपन के साथ ग्रहण करती है। इसी सतर्कता के कारण समकालीन कविता अपने समय के प्रमुख अंतर्विरोधों, विरोधाभासों, द्वंद्वों और विसंगतियों की कविता है। कवि को यह मालूम है कि कष्ट और शोषण का वास्तविक रूप क्या है और उनका कारण क्या है ? वह उन्हें जीवनानुभवों से पहचान कर लिखता है। वह "कल्पित" और अद्वितीय के लिए संघर्ष न कर साधारण जन के लिए संघर्ष करता है। सामाजिक-राजनीतिक स्तरों पर क्षुब्ध कवि ठोस यथार्थ के अनुभव की कविता लिखता है। फलतः समकालीन कविता "जो हो रहा है" उसका सीधा खुलासा है। इसलिए इसे वर्तमान से सीधे साक्षात्कार की कविता भी कहा जाता है क्योंकि इसमें नेहरू युग के बाद के लड़ते-झगड़ते, दुखते-कसकते, तड़पते-बौखलाते, सोचते-झींकते आदमी का परिदृश्य है। इस परिदृश्य को समकालीन कविता के प्रमुख कवि धूमिल मुकम्मल रूप में प्रस्तुत करते हैं। "संसद से सड़क तक" नामक उनके काव्य-संकलन की प्रसिद्ध कविता "मोचीराम" की पंक्तियां हैं —

> मेरे लिए हर आदमी एक जोड़ी जूता है।
> जो मरम्मत के लिए खड़ा है।

उपर्युक्त मनोभूमिका को बड़े ही सजीव बिंब के साथ प्रस्तुत करती हैं। समकालीन जीवनानुभव की त्रासदी यहाँ क्षण या क्षणांश के रूप में न आकर काल प्रवाह के रूप में प्रस्तुत हुई है। इसी विशेषता के कारण समकालीन कविता में सामरस्य या क्लासिक पूर्णता नहीं है। अपने मूल अनुभव में यह आघातों और सूचनाओं के विस्फोटों की कविता है, मृदुल दल वाले कोमल किसलय नहीं, यहाँ विचार की खुरदुरी कठोर चट्टानें हैं। संघर्षों का अंधड़, उपहास, व्यंग्य और राजनीति का नरक है। अपने ग्राम नगर में यह अपनी परिस्थितियों से झगड़ते-जूझते आदमी की कविता है।

वस्तुतः यह नयी कविता की परम्परा के सहज विस्तार और विकास की कविता है। कवि ने इसमें परम्परा की लीकों को छोड़ा है और उसके लोक-स्वर को आगे बढ़ाया है। इसीलिए समकालीन कविता के कवि अज्ञेय का मार्ग छोड़कर, मुक्तिबोध का मार्ग संकल्प के साथ ग्रहण करते दिखाई देते हैं।

33.2.2 समकालीन परिवेश एवं सर्जन

समकालीन परिवेश "सशस्त्र राजनीति" और "सशस्त्र मनोदशा" का वातावरण बनाता है। एक तरह की हिंसा और घृणा मानव वृत्ति में पनप रही है। इस परिवेश के भीतर जन्मा साहित्य छापामार मनोवृत्ति का साहित्य है जिसमें सामाजिक क्रांति का एक दरवाजा नक्सलपंथ की ओर खुलता है। सामाजिक मूल्यों के लिए ये सभी रचनाकार गांधी, नेहरू, इन्दिरा, जयप्रकाश, राममनोहर लोहिया आदि किसी को आदर्श नहीं मानते। चे गुवेवारा, माओ, हो ची मिन्ह, मार्क्स, लेनिन, कोहन वेंदो आदि की विचारधारा ही इस कविता का आदर्श है। इन्हीं के विचारों को ले कर यह सृजन एक क्रांतिकारी मानवमूर्ति गढ़ता है इसमें अब वह गुरिल्ला मनःस्थिति भी बरकरार है जो 1970 के बाद तीव्र हुई है। भारत में इसी अवधि में नक्सलपंथी आंदोलन की क्रांतिकारिता का तूफान आया था। बंगाल, असम, बिहार, आंध्र, केरल और देश के अन्य भागों में किसी न किसी रूप में सशस्त्र कार्रवाई को बढ़ावा मिला। कुल मिलाकर इस परिवेश से व्यवस्था-विद्रोह युग का जन्म हुआ। मार्क्सवादी दलों ने "प्रतिबद्ध कविता" का वातावरण बनाया। सरदार भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद आदि इस कविता में पुनर्जीवित किए गए। सामंतवाद और पूँजीवाद के विरुद्ध जन आंदोलन उठे और पुराने साम्राज्यवादी ढाँचे को तोड़ने का हर संभव प्रयास किया गया। यह विचार खुलकर सामने आया कि अधिकारी तंत्र और लालफीताशाही को बढ़ावा देने वाली और विभाजनकारी राजनीति को अपनाने वाली व्यवस्था को लोकतंत्र नहीं कहा जा सकता। पश्चिम से तकनीक उधार लेकर जो पश्चिमीकरण हुआ उसने हमारे अर्थतंत्र की कमर तोड़ दी। देश के भीतर भ्रष्टाचार और लूट ने लोकतंत्र में निराशा को जन्म दिया। देश में सफेदपोश उपभोक्तावादी संस्कृति की जड़ें मजबूत हुईं और शहरों ने गाँव के शोषण पर जीना शुरू कर दिया। यह शहरीकरण और पश्चिमीकरण ही आधुनिकीकरण का पर्याय बन गया। इस दिखावटी आधुनिकीकरण को असांस्कृतिकीकरण तथा अवमानवीकरण का नाम दिया गया। इसी परिवेश के भीतर से बहुत से आन्दोलन फूटे जिनमें प्रमुख हैं — समकालीन कविता, अकविता, किसिम-किसिम की कविता, पोस्टर कविता, विचार कविता, युयुत्सावादी कविता, दिगंबरी कविता, विद्रोही कविता, जन कविता आदि।

उपर्युक्त राजनीतिक और व्यवस्थापरक परिवेश के अतिरिक्त महँगाई, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, **कुलकवाद**, परिवारवाद, प्रांतीयतावाद, व्यक्तिवाद और भोगवाद ने जीवन के अंतर्विरोधों के लिए आग में घी का काम किया। परिणामस्वरूप समकालीन कविता के सभी नए पुराने कवियों में व्यवस्था-विरोध का स्वर प्रबल हो गया। "चुनाव प्रहसन" नामक कविता में नागार्जुन ने स्पष्ट शब्दों में कहा —

> हरिजन, गिरिजन, नंगे भूखे हम तो डोलें वन में
> खुद तुम रेशम साड़ी डाटे उड़ती फिरो गगन में
> महँगाई की सूर्पनखा को ऐसे पाल रही हो
> शासन का गोबर जनता के सिर पर डाल रही हो।

यहाँ जनता का दर्द परिवेश की तड़प बनकर कविता बन गया है। "अकविता" के एक कवि सौमित्र मोहन ने "लुकमान अली" नामक लंबी कविता में लिखा है —

> "लुकमान अली के लिए स्वतंत्रता उसके कद से केवल तीन इंच बड़ी है।
> वह बनियान की जगह तिरंगा पहन कर कलाबाजियाँ खाता है।
> वह चाहता है कि पाँचवें आम चुनाव में बौनों का प्रतिनिधित्व करे।
>
> उन्हें टाफियाँ बाँटे।
> जाति और भाषा की उन्हें कसमें खिलाए
> वह आज, नहीं कल, नहीं तो परसों, नहीं तो किसी दिन
> फ्रिज में बैठकर शास्त्रों का पाठ करेगा।

आजादी के बाद की विषमता, विद्रूपता का यथार्थ ही समकालीन कविता की केन्द्रीय संवेदना रहा है।

33.2.3 समकालीन कविता और आधुनिकता

धूमिल, श्रीकांत वर्मा, जगदीश चतुर्वेदी, कैलाश वाजपेयी, केदारनाथ सिंह, रघुवीर सहाय, उदय प्रकाश, अरुण कमल आदि कवियों का सृजनकार्य साक्षी है कि इस सृजन में आधुनिकता एक थकी हुई दृष्टि का पर्याय बन गई है। जैसी कि पहले चर्चा की जा चुकी है, आज आधुनिकता का सामान्य अर्थ हो गया है — पश्चिम की नकल, तकनीकी गुलामी यानी पश्चिमी पराधीनता का सीधा स्वीकार। इसलिए समकालीन कविता का उद्देश्य इस आधुनिकता की दृष्टि का सीधा विरोध है। इस कविता में सहज और सामान्य आदमी की भारतीय अस्मिता, स्वाभिमान और शक्ति की महत्व-प्रतिष्ठा है। कविता के नायक अब मोचीराम हो जाते हैं और "नेताराम" को कोई नहीं पूछता। स्थिति के यथार्थ को कहने-जानने में कवि कल्पना के तिलिस्म से दूर होकर कहता है कि वह जीवन के हर क्षेत्र के नरक का साक्षी है। कविता में वह समय और समाज के इतिहास, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और राजनीति शास्त्र का हाशिया प्रस्तुत करता है। उसके सामने

एक ओर तो अकेले मनुष्य, अव्यवस्थित समाज और परायेपन की समस्या का भीषण रूप है तो दूसरी ओर साम्राज्यवाद और समाजवाद की टकराहट तीव्र हुई है। अब "जनतंत्र", "स्वतंत्रता" और "समाजवाद" का वैचारिक त्रिकोण कायम हुआ है। राष्ट्रीयता का अर्थ भी आर्थिक, राजनीतिक स्वतंत्रता की ओर झुक गया है। फलतः आधुनिक जीवन-मूल्य और आधुनिकता, वर्तमान-बोध और समसामयिकता एक द्वंद्वात्मक स्थिति के रूप में उपस्थित हुए हैं।

विश्व-पूँजीवादी व्यवस्था में प्रौद्योगिकी (टैक्नॉलॉजी) का वास्तविक लाभ पूँजीपति वर्ग को मिला। श्रमिक तो इस प्रक्रिया में माध्यम भर रहा। दुनिया की इस व्यवस्था के साथ चलाने वाला हर देश आधुनिकीकरण की इस यंत्रणा से ग्रस्त होता गया। इसी आधुनिकता और आधुनिकीकरण के प्रभाव ने मनुष्य में आत्म-परायापन (self-alienation) और अमानवीयकरण (dehumanization) को जन्म दिया। हिन्दी की समकालीन कविता में धूमिल की कविताएँ इसी परिदृश्य का प्रामाणिक दस्तावेज हैं। श्रीकांत वर्मा "मायादर्पण" और "जलसाघर" जैसे काव्य-संग्रह की कविताओं में इसी स्थिति से जूझते हैं। बीसवीं शताब्दी के मनुष्य का यही "घाव" राजकमल चौधरी की कविताओं में "कंकावती" की शक्ल ले लेता है। धूमिल प्रश्नानुकूल मुद्रा में पूछते हैं —

> क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है —
> जिन्हें एक पहिया ढोता है
> या इसका कोई खास मतलब होता है।
>
> — "बीस साल बाद" — "संसद से सड़क तक"

राजनीतिक स्थितियों की अर्थहीनता इसी संग्रह के 'पटकथा' नामक कविता में व्यक्त होती है —

> दरअसल अपने यहाँ प्रजातंत्र
> एक ऐसा तमाशा है
> जिसकी जान
> मदारी की भाषा है
> × × × ×
> अपने यहाँ संसद
> तेल की वह घानी है
> जिसमें आधा तेल है
> और आधा पानी है
>
> (पटकथा)

अपनी लंबी कविता "पटकथा" में धुमिल ने समकालीन हिन्दुस्तान की विसंगतियों और विडम्बनाओं का "असली चरित्र" प्रस्तुत कर दिया है। कवि ने "संस्कृति", "स्वतंत्रता", "संसद", "आजादी", "आस्था", "शांति", "भाषा", "कानून", "जनतंत्र", "त्याग", "मनुष्यता", "झंडा" आदि शब्दों की अर्थवत्ता को खोजे जाने और इनकी भीतरी नियति का भंडाफोड़ कर दिया है। वे घोषित करते हैं कि "हर ईमान का एक चोर दरवाजा है" और आदमी की हालत यह है कि —

> सड़कों में होता हूँ
> बहसों में होता हूँ
> रह-रह कर चहकता हूँ
> लेकिन हर बार वापस घर लौटकर
> कमरे के अपने एकांत में
> जूते से निकाले गए पाँव सा महकता हूँ।

चूँकि समकालीन कवि का काम है स्थिति का खुलासा। अतः समकालीन कविता में आधुनिकता का अर्थ है — वास्तविकताओं से सीधा साक्षात्कार।

33.2.4 समकालीन कविता में यथार्थ से साक्षात्कार

समकालीन कविता को यथार्थ की द्वंद्वमूलक गतिशीलता का इतिहास कहा जा सकता है। मुक्तिबोध और नागार्जुन, सर्वेश्वर और रघुवीर सहाय, विजयदेव नारायण साही और नरेश मेहता, धूमिल और केदारनाथ सिंह से लेकर उदय प्रकाश और मंगलेश डबराल तक की कविता यात्रा का मुक्त और संभावनापूर्ण चित्र है। यथार्थ को आत्मग्रस्त, कुंठित और रुग्ण मानसिकता से न अपनाकर समकालीन कवियों ने स्वरूप दृष्टि की वस्तुपरकता से अपनाया है। अमूर्त को मूर्त बनाने की कोशिश का नतीजा यह हुआ कि उस यथार्थ पर हम भरोसा कर सकते हैं। मुक्तिबोध ने ठीक कहा था कि यथार्थ के तत्व परस्पर संश्लिष्ट या गुंफित होते हैं और पूरा यथार्थ स्थिर नहीं वरन गतिशील होता है। "आज की कविता किसी न किसी प्रकार से अपने परिवेश के साथ द्वंद्व की स्थिति में उपस्थित होती है जिसके फलस्वरूप यह आग्रह दुर्निवार हो उठता है कि कवि-हृदय द्वंद्वों का भी अध्ययन करें। अर्थात वास्तविकता में बौद्धिक दृष्टि द्वारा भी अंतःप्रवेश करें और ऐसी विश्व-दृष्टि का विकास करें जिससे व्यापक जीवन-जगत की व्याख्या हो सके।"

यह अनुभव समकालीन कविता के बारे में एकदम सत्य है। समकालीन कविता की पृष्ठभूमि में गजानन माधव मुक्तिबोध की सामाजिक चिंताएँ और सरोकार तथा नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल और शमशेर बहादुर सिंह के कविता के प्रगतिशील तत्त्व हैं। ध्यान देने की बात यह है कि समकालीन यथार्थ को समझने-समझाने का ढंग सभी कवियों का अलग-अलग है। समकालीन यथार्थ कुँवरनारायण की कविता में वही नहीं है जो नागार्जुन की कविता में है। कुँवरनारायण में समाज के यथार्थ को रचने का ढंग शांत और आत्मदीप्त है, नागार्जुन में व्यंग्यपरक और उत्तेजक। रघुवीर सहाय यथार्थ से आत्मीय संवाद करते हैं तो केदारनाथ सिंह उसे निरन्तर स्थितियों के केन्द्र में रखकर परखते हैं। शमशेर यथार्थ का कविता में अतिक्रमण करते हैं और त्रिलोचन इतिहासबोध मे फैलाकर रचते हैं।

33.3 समकालीन कविता और नयी कविता

विचार करने की बात यह है कि समकालीन कविता "नयी कविता" का ही विस्तार है या उसकी नयी कविता से कोई अलग पहचान है। समकालीन कविता में यथार्थ की कई धाराएँ टकरातीं, कोलाहल करतीं सक्रिय हैं। इनके अनेक रूप और स्तर हैं। स्वयं नयी कविता एक सी नहीं है उनमें अनेक धाराएँ और प्रवृत्तियाँ हैं। मुक्तिबोध की कविता यथार्थ की जिस गतिशीलता के लिए चिंतित है उसी के लिए रामदरश मिश्र, श्रीराम वर्मा, रमेशचन्द्र शाह, नंद किशोर आचार्य, लीलाधर जगूड़ी तथा अरुण कमल जैसे कवि चिंतित दिखाई देते हैं। स्वयं सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा और विजयदेव नारायण साही की कविता में सामाजिक सरोकारों की गहरी तड़प है। इसलिए यह कविता गतिशीलता को बढ़ा रही है। इसका मुख्य बल जीवन के बहु-स्तरीय बहु-आयामी यथार्थ की पकड़ पर है।

बोध प्रश्न 1

i) समकालीन कविता में सक्रिय बदलाव की प्रमुख स्थितियों पर पाँच पंक्तियो में विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

ii) समकालीन कविता "सम्पूर्ण यथार्थ को व्यक्त करने वाली है।" इस कथन पर तीन पंक्तियों में प्रकाश डालिए।

....

....

....

iii) सही (✓) गलत (×) का निशान लगाकर बताइये कि समकालीन कविता किस तरह के मनुष्य को सामने लाती है?

(1) महामानव (2) लघुमानव (3) सामान्य मानव

iv) समकालीन कविता के संवेदनात्मक तत्त्वों पर दो पंक्तियों में विचार कीजिए।

....

....

v) समकालीनता से क्या तात्पर्य है? इसे कल्पित अनुभवों की कविता क्यों नहीं कहा जाता है? चार पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

vi) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लगभग पाँच पंक्तियों में दीजिए —

क) समकालीन कविता में परिवेश की विसंगतियाँ ही व्यक्त हुई हैं।

....

....

....

....

....

ख) समकालीन कविता में आधुनिकता की दृष्टि का अस्वीकार क्यों है ?

....

....

....

....

....

ग) समकालीन कविता में यथार्थ की स्थिति पर प्रकाश डालिए।

....

....

....

....

....

33.4 समकालीन कविता का विशाल परिदृश्य (प्रमुख कवि)

अज्ञेय के काव्य-मुहावरे के चुक जाने के बाद नयी कविता का युग भी समाप्त हो गया। अज्ञेय ने कविता के लिए एक सौन्दर्यशास्त्र का निर्माण किया था पर वह भी इतिहास की वस्तु बन गया। उनके समानांतर प्रगतिशील यथार्थ की कविताधारा चल रही थी और उसी में से आधुनिकतावादियों के व्यक्तिगत स्वातंत्र्य, अनुभूति की अद्वितीयता, क्षणवाद, नव्य रहस्यवाद, शीत युद्ध के प्रभाव आदि को छोड़कर नयी राह बनाई गई। प्रगतिशील विचारधारा को केन्द्र में रखकर महत्वपूर्ण कविता रची गयी।

एक प्रकार से समकालीन कविता निराला-मुक्तिबोध की दिशा-दृष्टि का नया विस्तार है, जिसमें प्रतिगामी शक्तियों से निरंतर जूझने की चाह है। समकालीन कविता में कई धाराएँ सक्रिय हैं। इनमें प्रमुख हैं —

1) **प्रगतिशील यथार्थ की धारा :** इसमें मुक्तिबोध, त्रिलोचन, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर, सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय, धूमिल, श्रीकांत वर्मा, कुमार विमल, रमेशचन्द्र शाह, मंगलेश डबराल, प्रयाग शुक्ल, गिरधर गोपाल, लीलाधर जगूड़ी, अरुण कमल आदि कवियों का विशाल कवि मंच है।
2) **प्रयाग के "परिमल" विचार मंच से जुड़े कवि :** लक्ष्मीकांत वर्मा, जगदीश गुप्त, विजय देव नारायण साही, धर्मवीर भारती आदि का सृजन भी समकालीन कविता की एक महत्वपूर्ण धारा का अंग है।
3) **तार सप्तक के कवियों** में गिरिजाकुमार माथुर, नरेश मेहता, भवानी प्रसाद मिश्र, शकुंत माथुर, हरि नारायण व्यास आदि ने भी समकालीन जीवन के यथार्थ को खास ढंग से परिभाषित किया है।
4) **स्वाधीनता आंदोलन से जुड़े कवियों** में माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन आदि की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा भी इस काल में सक्रिय रही है।
5) **नवगीत आंदोलन** भी समकालीन कविता की एक धारा है जिसमें ठाकुर प्रसाद सिंह, रमानाथ अवस्थी, रमेश रंजक, चंद्रदेव सिंह, श्रीकांत जोशी, राजेन्द्र किशोर, हरीश मदानी, परमानन्द श्रीवास्तव, विजय किशोर मानव आदि का नाम उल्लेखनीय है।
6) **अकविता आंदोलन** का समकालीन कविता आंदोलन में एक महत्वपूर्ण हाशिया है। इसमें जगदीश चतुर्वेदी, चंद्रकांत देवताले, श्याम परमार, सौमित्र मोहन, गंगा प्रसाद विमल, राजकमल चौधरी आदि के सृजन का विशेष स्थान है।
7) **विचार कविता** आंदोलन की धारा के कवियों में नरेन्द्र मोहन, हरदयाल, विनय, सुखवीर सिंह, कृष्णदत्त पालीवाल, रमेश दिविक, प्रताप सहगल, कुसुम कुमार आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।
8) **समकालीन विद्रोही कविता** की एक अन्य धारा है जिसमें उदय प्रकाश, गोरख पांडेय, विनोद शुक्ल, विनोद भारद्वाज, राजेन्द्र उपाध्याय, मलयज, डा. देवराज, ऋतुराज, दुष्यंत कुमार, कुमार विमल, वीरेन्द्र कुमार जैन, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, नंद किशोर आचार्य, श्रीराम वर्मा, कमलेश, वेणु गोपाल, बलदेव वंशी, मणि मधुकर, कन्हैया लाल नंदन, इंदु जैन आदि अनेक नवीन संभावनाओं के कवि हैं।

महत्वपूर्ण बात यह है कि इन सभी कवियों ने बौद्धिक चिंता का सृजनशीलता से सीधा रिश्ता कायम किया है। इन सभी की काव्य संवेदना में न केवल राजनीतिक भ्रष्टाचार पर तेज टिप्पणियाँ, व्यंग्य-वक्रोक्तियाँ हैं वरन मानवीय सार्थकता के प्रमुख सरोकार भी सक्रिय हैं। समय और समाज के जटिल यथार्थ को समझने के लिए इन सभी काव्यधाराओं, आंदोलनों और प्रवृत्तियों के कवियों ने अपनी गहन संवेदना शक्ति का सार्थक उपयोग किया है। क्रूर विसंगतियों और हादसों के बयानों में समय का सच पूरी ईमानदारी के साथ मौजूद है। नए बिंबों, प्रतीकों मिथकों और सपाटबयानी के कथनों ने भाषा की सर्जनशीलता में लोकभाषा की चौकसी का सहज रूप प्रस्तुत किया है। आगे हम समकालीन कविता की मूल प्रवृत्तियों की चर्चा करेंगे ताकि आप इस कविता के स्वरूप को समझ सकें।

33.5 समकालीन कविता की काव्यगत अथवा संवेदनागत प्रवृत्तियाँ

33.5.1 कविता में जन संघर्ष की यथार्थ छवि

समकालीन कविता का कथ्य जन संघर्ष की चेतना को अनेक स्तरों पर सृजित करता है। प्रगतिवादी कवियों की व्यवस्था विरोध की प्रवृत्ति इस काल में विद्रोह का रूप धारण कर लेती है। देश में फैला "काला-काला परिवेश", "काला-काली महँगाई" तथा "काले-काले अध्यादेश" नागार्जुन को क्षुब्ध करते हैं। उनके कथ्य में व्यवस्था से संघर्ष का ऐतिहासिक विवेक फूट पड़ता है। केदारनाथ अग्रवाल ने मानव के प्रति प्रकृत राग को नया अर्थ दिया है — उन्हें "आँख मूँद" पेट पर सिर टेके बैठा आदमी तकलीफ देता है। उनकी काव्यानुभूति में यथार्थ का नया संसार जन्म लेता है। प्रगतिशील यथार्थ की धारा के सभी कवियों की काव्य-संवेदना एक-दूसरे के काफी निकट है और समय तथा समाज के जटिल यथार्थ को कविता में सामने लाती है। शब्द युद्ध में बदल जाते हैं और कवि कहता है —

साधो, आज मेरे सत की परीक्षा है
आज मेरे सत की परीक्षा है ।
    बीच में आग जल रही है,
    उस पर बहुत बड़ा कड़ाह रखा है
    कड़ाह में तेल उबल रहा है।
    उस तेल में मुझे सबके सामने
    हाथ डालना है
    साधो आज मेरे सत की परीक्षा है।
        ("सत की परीक्षा" — विजय देव नारायण साही)

इस कविता में राजनीतिक-सामाजिक परिवेश और विसंगतियों के खौलते यथार्थ की अभिव्यक्ति है। ऐसी ही अभिव्यक्ति धूमिल की निम्नलिखित पंक्तियों में है —

मैं रोज देखता हूँ कि व्यवस्था की मशीन का
एक पुर्जा गरम होकर
अलग छिटक गया है और
ठंडा होते ही
फिर कुर्सी से चिपक गया है
उसमें न दया है
न हया है
नहीं --
अपना कोई हमदर्द
यहाँ नहीं है। मैंने एक एक को
परख लिया है
मैंने हरेक को आवाज दी है
हरएक का दरवाजा खट-खटाया है
मगर बेकार ………।

यह पूरा यथार्थ इस पीड़ा की अभिव्यक्ति है कि कथनी-करनी से दूर जा पड़ी है। लोकतंत्र या समाजवाद या ऐसी ही अन्य मानवीय मूल्यों और समानता पर आधारित व्यवस्थाएँ मात्र नारा बनकर रह गई हैं जो भ्रष्टाचार और शोषण तंत्र में ढाल का काम कर रही हैं। इस दृष्टि से समकालीन कविता का दर्शन यथार्थ की सच्चाई में आग का दर्शन है। समकालीन कविता ने स्वच्छंदतावादी-छायावादी काव्य-रुझानों को समूल नष्ट करने की ओर कदम उठाया है। कुँवर नारायण, केदारनाथ सिंह, धूमिल, नेहरू युग के अंत के काव्य-मुहावरे को काव्य में परिभाषित करते हैं। इन्हीं के कदमों पर आगे बढ़ती हुई पूरी युवा पीढ़ी की कविता में गुस्सा, खीज और युयुत्सा भर गई है। कवि अराजकता और पूँजीवादी लूट-तंत्र के खिलाफ संघर्ष कर रहे हैं।

इसी दौर में आधुनिकतावादियों और अकवितावादियों ने यौन-क्रांति की कविता भी लिखी थी जो "चालू मुहावरे" के रूप में ही रही। उसका स्वागत नहीं किया गया। अकवितावादियों की निराशा, हताशा और यौन कुंठाओं को उजागर करने वाली यह कविता इतीहास के पन्नों में ही खो गई। आरंभ में धूमिल, राजकमल चौधरी, श्याम परमार आदि ने अकवितावादियों का साथ दिया था किन्तु जल्दी ही उन्होंने दूसरी राह पकड़ ली। अकेले जगदीश चतुर्वेदी "इतिहासहंता" काव्य-संकलन में अकविता आंदोलन का ध्वज थामे रहे।

प्रगतिशील जन-दृष्टि के अभाव में अकविता की काव्य-ऊर्जा समाप्त होती चली गई।

33.5.2 जन-सामान्य के आत्म-विश्वास में आस्था

विरोध, विद्रोह और विद्रूपता को प्रमुख स्थान देने वाली समकालीन कविता अनास्थावादी दिखाई देने के बावजूद जन-सामान्य के अखंड विश्वास का रूप है। इसके कवि मानसिक तथा भावनात्मक यथार्थ को वस्तुगत यथार्थ के रूप में देखने का संकल्प करते हैं। व्यक्ति केन्द्रित असहाय आत्म-मुग्धता को इस काव्य में कहीं भी स्थान नहीं है। इसी तरह नयी कविता में स्वीकृत निराशावाद, अस्तित्ववाद, कुंठावाद अथवा यौनवाद आदि को इधर के कवियों ने विचारधारा के स्तर पर ग्रहण नहीं किया है। भारतीय मध्यवर्ग की खिन्नता और अवसाद का चित्रण ये कवि डटकर करते हैं किन्तु खिन्नता और निराशा को स्थायी भाव के रूप में प्रतिष्ठित नहीं करते। जनशक्ति की आग से अँधेरा भागता है और इससे पूँजीवाद का अजगर भी थरथराता है। गाथा प्रसंगों, नाटकीय दृश्यालेखों, वक्तव्यों, एकालापों, प्रश्नाकुल संवादों में यह काव्यात्मकता निर्भय होकर प्रवेश करती है। कुमार विकल की निम्नलिखित पंक्तियाँ इस काल के मनोभाव का प्रतिनिधित्व करती हैं —

जनता एक बहुमुखी तेज हथियार है
जो अकेली गहराइयों को आपस में जोड़ता है

(मिथक/एक छोटी सी लड़ाई)

कुमार विमल की "एक छोटी सी लड़ाई", विनोद कुमार शुक्ल की "बाजार की सड़क", चंद्रकांत देवताले की "रोशनी के मैदान की तरफ", लीलाधर जगूड़ी की "बची हुई पृथ्वी", ज्ञानेन्द्र पति की "आँख बनते हुए", मंगलेश डबराल की "पहाड़ पर लालटेन", विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की "बेहतर दुनिया के लिए", अरुण कमल की "उर्वर प्रदेश" जैसी कविताओं में जन-जीवन के आत्म-विश्वास को व्यक्त किया गया है। व्यापक अर्थ में कहा जा सकता है कि समकालीन कविता में जीवनधर्मी लगाव है। यह प्रेम, करुणा, उत्साह, कर्म, सौन्दर्य, साहस, प्रकृति से लगाव, इतिहास बोध, वर्ग चेतना, प्रतिबद्धता, जनपक्षधरता के साथ विश्वास दृष्टि की कविता है। जीवनराग का स्वर इसका बीजभाव बनकर आया है —

मैं जब लौटा तो देखा
पोटली में बँधे हुए बीजों ने
फेंके हैं अंकुर।

("उर्वर प्रदेश" — अरुण कमल)

33.5.3 आत्म-विस्तार और जीवन विवेक का सौन्दर्य

नया कवि जीवन-यात्रा में कर्म-सौन्दर्य या संघर्ष के सौन्दर्य को महत्त्व देता रहा है। समकालीन कविता ने भी इस कर्म-सौन्दर्य को खुलेमन से स्वीकार किया है। इसीलिए वह बासी, जड़ सौन्दर्याभिरुचियों पर प्रहार करते हुए ताजी दृष्टि विकसित करता है। इस सौन्दर्यानुभूति में जीवन की अर्थभूमि का छायावादी संकोच भी नहीं है। वस्तुतः यह समय से सच्चे साक्षात्कार और आत्म-विस्तार की रचना यात्रा है। और गहराई में जाकर कहें तो यह कविता-यात्रा निराला की काव्य-परम्परा का प्रकृत सौन्दर्य लिए हुए है। उगता हुआ सूर्य, गीत गाते बच्चे, किरणदल, भूसी की आग, तूस की आग आदि इन कविताओं में अक्सर मौजूद होते हैं। यहाँ कवि प्रार्थना की मुद्रा में आने पर भी यही कहता है कि उसे शक्ति का सौन्दर्य चाहिए। इस संदर्भ में विजयदेव नारायण साही के "साखी" नामक काव्य-संकलन से एक कविता द्रष्टव्य है —

परम गुरु,
दो तो ऐसी विनम्रता दो
कि अंतहीन सहानुभूति की वाणी बोल सकूँ
और यह अंतहीन सहानुभूति
पाखंड न लगे।
दो तो ऐसा कलेजा दो
कि अपमान महत्वाकांक्षा और भूख
की गाँठों में मरोड़े हुए
उन लोगों का माथा सहला सकूँ
और इसका डर न लगे
फिर कोई हाथ ही काट जाएगा।

(प्रार्थना : गुरु कबीर दास के लिए)

दिलचस्प बात यह है कि समकालीन कविता के पूरे या दोनों पक्ष के कवियों के मन में कबीर के प्रति असीम आस्था का भाव है। यह भी कहा जा सकता है कि इन कवियों के प्रेरणा गुरु ही कबीर दास बने हैं। कबीर से प्रेरणा लेने का अर्थ है सामाजिक विकृतियां — ढोंगों को तत्काल या तोड़ने का साहस।

33.5.4 आधुनिकता के प्रचलित प्रतिमानों को चुनौती

इस कविता की एक विशेष प्रवृत्ति है — आधुनिकता के प्रचलित प्रतिमानों को चुनौती के स्तर पर तोड़ने का साहस। यहाँ कवि न तो पश्चिमी अर्थ में "आधुनिक" होना चाहता है न "यांत्रिक मानव" और न ही "खोखला दर का आदमी।" न ही वह "मरियल पीला बुद्धिजीवी" बनना चाहता है। आधुनिकता के पश्चिमी अस्तित्ववादी मुहावरे से भी वह नफरत करता है। इसलिए समकालीन कविता का रचना-कर्म अपनी जमीन की जड़ों से जुड़ना चाहता है और उसी के भीतर उग कर अपनी गंध फैलाने का आकांक्षी है। मूलतः उसे लोक चिंता और जनमानस की संवेदना से लगावभरी आधुनिक दृष्टि पसंद है। नागार्जुन अकेलेपन और अनास्था के आधुनिकतावादी दर्शन को तोड़-फोड़ कर चलना चाहते हैं और सशक्त संघर्षपूर्ण मुद्रा में कहते हैं —

मैं न अकेला कोटि-कोटि हैं मुझ जैसे तो
सब को तो अपना-अपना दुख है वैसे तो
पर दुनिया को नरक नहीं रहने देंगे हम।

(पुरानी जूतियों का कोरस)

33.5.5 कविता में राजनीतिक संदर्भों की प्रमुखता

राजनीति इधर की कविता का प्रधान संदर्भ इसलिए है कि सारी जीवन-व्यवस्था, सामाजिक-सांस्कृतिक ढाँचा, आर्थिक नीतियों के नियामक तत्त्व इसी में से निकलते हैं। आज राजनीति ने जो अमानवीय स्वार्थांधता विकसित की है वह सच्चे सहज मनुष्य के श्रम को निगल रही है। समकालीन कवि इस स्थिति पर कबीराई अंदाज में व्यंग्य करते हैं। नागार्जुन, सर्वेश्वर, धूमिल, मलयज, लीलाधर जगूड़ी, श्रीकांत वर्मा, उदयप्रकाश आदि की कविताओं में राजनीति के इसी नरक से जन सामान्य को उभारने-बचाने की इच्छा व्यक्त होती है। लीलाधर जगूड़ी की "इस व्यवस्था में" नामक कविता से कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं —

नौकरी के लिए पढ़कर
सिफारिश से कुर्सी पर चढ़कर
इस दरमियान
मैंने जाना है
जनतंत्र में
बिल्कुल नया जमाना
नागरिकता पर
सबसे बड़ा रंदा थाना है

× × ×

कुटुमदारी निबाहते हुए
चारों ओर जो शोर है
इसका जो भी मतलब हो
इस व्यवस्था में
हर आदमी कहीं न कहीं चोर है

× × ×

जहाँ एक चढ़ाता है
दूसरा उतारता है
नोट और वोट का तख्ता
पेट से टाँग अड़ाता है
पराजय और निराशा के बीच
आदर्श एक चालाकी है
लूटने के अनुशासन में। पुलिस की तरह
सबकी वर्दी खाकी है।

धूमिल भी इसी परम्परा की शक्तिशाली कविता लिखते हैं—

ओ देश के पोर-पोर में दुखते हुए गूँगे जुगनू
क्रोध की अकेली मुद्रा में
उफनते हुए सात्विक खून
आ, बाहर आ ...।"

भाषा की रात — संसद से सड़क तक

आखिरकार वे यहाँ तक कहते हैं कि "लोहे का स्वाद लुहार से नहीं, उस घोड़े से पूछो जिसके मुँह में लगाम है।"

राजनीति ने आजादी के बाद जनता के सुख-स्वप्नों में आग लगा कर जो आतिशबाजी खेली है, पूरी समकालीन कविता उस दर्द का सार्थक बयान है। यह एक ऐतिहासिक हलफनामा है और समय की डायरी पर लिखी गई एक सच्ची इबारत भी। इस कविता को राजनीतिक चेतना की कविता भी कहा जा सकता है क्योंकि राजनीति ने जिस-जिस स्तर पर जो ढोंग और पाखंड विकसित किए हैं उनसे जन्मी पीड़ा का यह बेबाक बयान बेझिझक भाषा में लिखा साक्ष्य तो है ही उनके विरुद्ध जन-रुचि जगाने का हथियार भी है।

33.5.6 परिवेश के प्रति गहरी आत्म-सजगता

समकालीन कविता के रचनाकर्म में परिवेश के प्रति गहरे लगाव का भाव निरंतर बढ़ा है। जटिल अराजकता में जीवन की छटपटाहट को पकड़ने की कोशिश कवि फिकरेबाजी के झटके से न कर अंतःसंघर्ष की मुद्रा में करता है। यह कविता परिवेश के प्रति "अहसास" और उसकी "समझ" दोनों है। अपनी संवेदनात्मक ऐंद्रियता में कवियों ने विचारों और उनके टकरावों को उनके मूल से पकड़ने का प्रयास किया है। धूमिल, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, सर्वेश्वर आदि कवियों को भारतीय समाज में मूल्यों के विघटन के कारण मनुष्य के चारों और भीषणता से बढ़ते अंधकार के घिराव का अहसास है। इसलिए कविता भावात्मक स्तर पर नहीं बौद्धिक स्तर पर संयोजित होती है।

काव्यात्मक स्तर पर कविताओं की नाटकीय संरचना में परिवेश की पूरी हिस्सेदारी है। परिवेश का आतंक, भय, विद्रूपता, आत्मनिर्वासन को कवियों ने नए-नए अंदाज में उजागर किया है। कविता के कथ्य में परिवेश का रंग गाढ़ा है। अकेले धूमिल का ही उदाहरण लें तो "पटकथा", "मोचीराम", "राजकमल चौधरी के प्रसंग में", "अकालदर्शन", "गाँव", "प्रौढ़ शिक्षा" जैसी कविताएँ परिवेश का इतिहास-भूगोल पूरी प्रामाणिकता से प्रस्तुत करती है। "अकाल में सारस" में केदारनाथ सिंह या "खूँटियों पर टंगे लोग" में सर्वेश्वर परिवेश को ही कविता बनाते दृष्टिगत होते हैं। परिवेश के साथ तदाकार होने की स्थितियाँ समकालीन कवियों में नयी कविता से कहीं ज्यादा है। परिवेश से तदाकार होने के कारण ही यह कविता समकालीन मानव चरित्रों की दुनिया को ठोस रूप-रंगों में, चारित्रिक मुहावरों में व्यक्त कर सकी है। परिवेश की यह सही समझ ही उसकी प्रासंगिकता का ठोस आधार भी बनी है। धूमिल का "मोचीराम" इस सच्चाई को कहता है —

> जो असलियत और अनुभव के बीच
> ख़ून के किसी कमजात मौके पर कायर है
> वह बड़ी आसानी से कह सकता है
> यार तू मोची नहीं शायर है।

यह प्रश्न उठ सकता है कि दूसरे प्रजातंत्र की तलाश में व्यस्त युवा कवियों से क्या उम्मीद करनी चाहिए। उ...होगा कि अपनी त्रासद भूमिका में ज्यादातर कविताएँ जन सामान्य की हालत का साक्षात्कार हैं, भले ही उनमें बड़बोला विद्रोह, आत्मस्फीति या सामान्यीकरणों के चालू मुहावरे हों। समकालीनता पर वक्तव्य देते हुए कविताएँ लंबी हो जाती हैं, पर यह कवि की लाचारी है। समकालीन दृश्यालेख इतनी सूचनाओं से भरा है कि कवि हैरानी में है। इसलिए कवि परिवेश को रचता-रचता एक पैगंबराना स्वर अपना लेता है। कविता का चरित नायक समय की व्यथा-कथा को सुनाता है क्योंकि व्यथा की मार उसे तोड़ रही है।

33.5.7 अस्वीकृति, विद्रोह और आंदोलनों की अर्थध्वनियाँ

समकालीन कविताओं में पूर्व परम्पराओं के लिए अस्वीकृति की मुद्रा है। सभी युवा कवि "विद्रोही कंठ के पुकार" की कविता लिखते हैं। लेकिन उसके भीतर अपनी पहचान के लिए कवियों ने "अकविता", "न कविता", "सही कविता" "विचार कविता", "युयुत्सावादी कविता", "श्मशानी कविता", "जन कविता", "आक्रोशी कविता" आदि कई आंदोलन चलाए हैं। ये आंदोलन बहुत थोड़े-थोड़े समय के लिए ही चल सके हैं क्योंकि कविता के क्षेत्र में हर नए से नया लिखने वाला अपने आपको दूसरे कवियों से एकदम अलग दिखाने की कोशिश में रहता है। यह सिद्धांत भी पेश करता है कि पिछली पीढ़ी के काव्य से उसके काव्य के तत्व और रूप अलग हैं। वैचारिक, कलात्मक, मूल्यगत दृष्टिकोण का संवाद सेतु वह पुरानी काव्य पीढ़ी से जोड़ना नहीं चाहता। पर शोर मचाने पर भी वह अलग कहाँ है? कहीं न कहीं उसमें मुक्तिबोध, सर्वेश्वर, श्रीकांत वर्मा, गिरिजाकुमार माथुर, नरेश मेहता, भवानी भाई, रघुवीर सहाय, कुँवर नारायण या विजयदेव नारायण साही आदि की गहरी धमक सुनाई देती है। उदय प्रकाश, मंगलेश डबराल, ऋतुराज आदि कवियों में प्रगतिशील कवियों की परंपरा को ललकार और स्वीकार का भाव है। इतिहास की प्रक्रिया से उत्पन्न विडम्बना का स्वर और राजनीतिक पतन पर अफसोस जो शमशेर, साही और सर्वेश्वर में है वही स्वर इन युवा कवियों में मिलता है। मुक्तिबोध की भाँति आदमी के टूटने की गहरी ट्रेजडी का भाव उदय प्रकाश के "सुनो कारीगर" और "अबूतर-कबूतर" जैसे काव्य-संग्रहों में साफ दिखाई दे जाता है। नए काव्य-आंदोलनों से जाहिर है कि समकालीन कविता में मामूली आदमी का गहरा आत्म-विश्वास गैर-रोमांटिक ढंग से व्यक्त हुआ है। मूलतः यह परिवेश और मामूली आदमी के प्रति गहरे लगाव की कविता है।

बोध प्रश्न 2

1 समकालीन कविता के विशाल परिदृश्य पर दस पंक्तियों में प्रकाश डालिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2 समकालीन कविता की चार प्रमुख प्रवृत्तियों पर आठ-पंक्तियों में विचार कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....

3 समकालीन कविता में तीव्र विद्रोह या आग का दर्शन है? चार पंक्तियों में विचार कीजिए।

....
....
....
....

4 समकालीन कविता में आस्था के स्वर के उदाहरण तीन कविताओं के शीर्षक बताकर दीजिए।

....
....
....

5 "समकालीन कविता की सौन्दर्यानुभूति में छायावादी अर्थ भूमि का संकोच नहीं है जीवन का मुक्त विस्तार है।" इस कथन को ध्यान में रखकर उत्तर दीजिए (पाँच पंक्तियों में)।

....
....
....
....
....

6 समकालीन कविता में राजनीतिक सन्दर्भों की प्रमुखता है। चार पंक्तियों में विचार कीजिए।

....
....
....
....

7 सही √ गलत × का निशान लगाकर उत्तर दीजिए — समकालीन कविता में

क) परिवेश के प्रति उदासीनता ( )

ख) परिवेश के प्रति आत्म-सजगता ( )

ग) परिवेश के प्रति तटस्थता ( )

8 समकालीन कविता के भीतर अपनी पहचान बनाने वाले किन्हीं चार आंदोलनों के नाम लिखिए।

....

....

....

....

33.6 समकालीन कविता की शिल्पगत प्रवृत्तियाँ

33.6.1 परंपरागत शिल्प से छुटकारे का प्रयास

शिल्प की दृष्टि से समकालीन कविता का एक मूल्यवान पक्ष यह है कि यह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा चमत्कार रहित सहजता का समर्थन करती है। समकालीन कवि कविता को प्रासंगिक बनाने के लिए उसे तथाकथित काव्यत्व से छुटकारा दिलाने की कोशिश करता है। कभी पारंपरिक नियमों और अनुशासनों को चुनौती देकर तोड़ता है तो कभी भाषा, बिंब, प्रतीक लय आदि के स्तर पर चतुर वाक्य संयोजन करता है। परम्परागत काव्य रूप — मुक्तक प्रबंध आदि को वह स्वीकार नहीं करता। क्योंकि वह मानता है कि हर समर्थ कवि अपने लिए एक अलग टेकनीक विकसित करता है। जीवन में मूल्यगत विक्षेप का जो भाव आया उसने इस कविता के रूप-विधान पर भीतर-बाहर से असर डाला। अनियमित जीवन को इन कवियों ने अनियमित गद्य की लय में ढाल कर कविता रची। गहन "काव्यात्मकता" और "कलात्मकता" का स्थान गद्यात्मकता और विद्रोही सपाटबयानी ने ले लिया। कवि ने प्रगीत के मूड को छोड़कर तल्ख व्यंग्योक्ति और विद्रूप से पूर्ण नाटकीय कविता की सीधे काव्य यात्रा की। इस दृष्टि से अधिकांश कवि मुक्तिबोध की काव्य दिशा की ओर उन्मुख हुए। कुछ में तो फंतासी (Fantasy) की ओर झुकाव भी दिखाई देता है। अनुभव और विचारों की सघनता लंबी कविताओं के दौर को सामने लाती है। धूमिल की "पटकथा" और मोचीराम, राजकमल चौधरी की "मुक्ति प्रसंग" भवानी प्रसाद मिश्र की "शब्दों के तल्प पर" सर्वेश्वर की "कुआनो नदी" आदि इस दौर की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं।

इन लम्बी प्रबन्धात्मक कविताओं के अलावा इस युग में प्रबन्ध काव्य रचनाएँ भी हुईं जिनमें भवानी प्रसाद मिश्र का "कालजयी", जगदीश गुप्त का "गोपिका", नरेश मेहता का "महाप्रस्थान", जगदीश चतुर्वेदी का "सूर्यपुत्र", विनय का "एक पुरुष और" आदि उल्लेखनीय हैं।

इस दौरान लिखे गए नवगीतों में पुराने गीतों से संवेदना और शिल्प के स्तर पर बदलाव दृष्टिगत होता है। नवगीतों में लोक संवेदना को लोकभाषा की तद्भवता में उसकी मूल ध्वनि और राग चेतना के साथ ग्रहण किया गया है। गीत की टेक और तर्ज़ की तरन्नुम का जो आग्रह था उसे नवगीत ने स्वीकार नहीं किया। नवगीत भाव लय के प्राण रागों का गायन है। इसलिए उसकी प्रकृत भाव चेतना पाठक के प्राणों को छूती है। ठाकुर प्रसाद सिंह, शंभूनाथ सिंह, चंद्रदेव आदि के नवगीतों को इस दृष्टि से देखा जा सकता है।

33.6.2 काव्य-भाषा

समकालीन कविता में यथार्थ का दबाव और यथार्थ से साक्षात्कार भाषा के साथ कविता के नए तरह के संबंध का द्योतक है। यह भाषा और समाज के उस रिश्ते की परिचायक है जिसमें भाषा यथार्थ को प्रस्तुत ही नहीं करती उसके मर्म का भी उद्घाटन करती है अमानवीय शक्तियों के दबाव के विरुद्ध अपने ढंग से कारगर होती है। इस संबंध में लीलाधर जगूड़ी का यह कथन ध्यान देने योग्य है — "समकालीन कवियों की कविता ने केवल भाषा की शक्ति को नया नहीं बनाया, बल्कि स्थिति का विश्लेषण भी किया है। यहाँ शब्द बुलेट का काम करते हैं। आम आदमी तक पहुँचने वाला मुहावरा युवा कविता ने रचा। बल्कि यों कहें कि आज की कविता आम आदमी की कविता है।" — 'आवेग', पृ. 13.

सर्जनात्मक प्रक्रिया और काव्य-प्रक्रिया की प्रश्नकुलता भी लीलाधर जगूड़ी की कविता में दिखाई देती है —

फौजी दस्ते की तरह अंधेरे में
एक भाषा खाइयाँ बदल रही है
और शब्दों को गोलियों की जगह
भर रही है

चीजों की व्यवस्था में
तुम्हारा इस तरह गायब हो जाना
मेरे लिखने की भाषा है
अब निरंतर अपने भीतर सुन रहा हूँ खुर-खुर
भाषा को जो आघात पहुँच रहा है
मेरी मरम्मत के बहाने।

काव्य-भाषा के आभिजात्य से मुक्ति का एक जोरदार अभियान धूमिल ने चलाया। उन्होंने पैनी कटखनी, व्यंग्य प्रधान और सीधी मार करने वाली भाषा में कविता लिखी। "कविता" और "भाषा" शब्दों का इस्तेमाल उनकी कविता में बार-बार हुआ है। इससे उनकी रचनात्मक जिम्मेदारी की सजगता प्रकट होती है। उनकी शब्दावली पर गौर करें तो सचमुच यह कहीं एकालाप लगती है, कहीं वार्तालाप, कहीं हलफनामा और कहीं वक्तव्य — एक जागरूक कवि का समकालीन जिंदगी पर दिया गया सार्थक वक्तव्य।

समकालीन कविता की काव्य-भाषा में गुस्सा, नफरत, घृणा, आक्रोश, अन्याय की पीड़ा, विकृत राजनीति से विद्रोह की अर्थअच्छायाएँ साफ-साफ उभरी हैं। कलावाद-रूपवाद की काव्य-भाषा से हटकर समकालीन कविता ने भाषा को जनता तक पहुँचाने के लिए भरसक प्रयास किया है। इसलिए वहाँ काव्य-भाषा में स्थानीय रंग की शब्दावली का बहुतायत प्रयोग हुआ है। "चमरौधा", "डबरे", "चूल्हे का कोयला", "चौका", "पाला लगी मटर", "सोहर", "कउवन" जैसे शब्द कवि की देशी संवेदना के सहज रूप में आते हैं। भाषा में लोक-रंगों की चमक पैदा होती है।

शब्द वाक्य और विराम चिह्नों के स्तर पर भी इस कविता में कहीं-कहीं तोड़-मरोड़ की प्रवृत्ति दिखाई देती है जैसे —

1) इतनी उजली
इतनी बलाकाएं
बोलतीं इतनी कराकुलें ना
चतें इतने मयूर आ
समानों तक
उठी हरी पर दूब
पर
धुनी इतनी रुई
तने नये परवने

—श्रीराम वर्मा

2) देश एक लंगड़ाता हुआ वृद्ध मरीज····
देश प्रेम एक अय्याशी का
दिया हुआ महामंत्र। दुखती है कोई कनपटी की नस और
बाजुओं में रक्तपात की इच्छा पनपने लगती है — एक पाखंड

— जगदीश चतुर्वेदी
(एक लंगड़ा आदमी का बयान)

समकालीन कविता ने लोक जीवन के मुहावरे और लोकोक्तियों का समर्थ अनुभव संसार गढ़ने का समर्थ प्रयास किया है। व्यंग्य में गँवई संवेदना का लट्ठमारपन भी वहाँ मौजूद है। "भाषा में भदेस" के प्रयोग के कारण पारंपरिक सौन्दर्य बोध को भी फटकारा गया है। साथ ही यह कविता भद्दे और विद्रूप शब्दों से एक अर्थवान संसार को निर्मित करती है। भूख की पीड़ा व्यंग्यों और प्रतीकों में मरोड़ के साथ प्रस्तुत होती है —

चूल्हे की राख से
सपने सब शेष हुए।
बच्चों की सिसकियाँ
गीतों पर चढ़ती
छिपकलियों सी बिछल गईं

— श्रीकांत वर्मा
"भटका मेघ", पृ. 6

अकविता के कवियों की भाषा में उत्तेजना प्रधान उद्विग्न स्वर मिलता है, चौंकाने वाले शब्द प्रयोग और अति कथनों में कहीं-कहीं अतार्किक विस्तार और बड़बोलापन भी है, जिससे भाषा अनुभव की ओर ले जाने की बजाए सही फिकरे बाजी की ओर ले जाती प्रतीत होती है।

33.6.3 बिंब, प्रतीक और मिथक

नयी कविता में चमकते-खनकते बिंबों, प्रतीकों का प्रयोग काव्य-विलास की सामग्री बन गया था। एक दो नए बिंबों के प्रयोग मात्र को ही कविता कहा जाने लगा था। इस चमत्कारी बिंब प्रतीक की प्रवृत्ति को समकालीन कविता ने

झटके से तोड़ा। उसने सपाटबयानी की शक्ति का वर्णन किया और इनके भीतर से कविता निचोड़ी। यह नहीं कि वहाँ प्रतीक हैं ही नहीं लेकिन वे चौंकाने के लिए नहीं आम आदमी की पीड़ा और संत्रास को कविता उन रोज़मर्रा के प्रतीकों से कहती है जो अपनी सुपरिचितता के कारण बेहद सम्प्रेषणीय हैं — जैसे केदारनाथ सिंह की "बैल" शीर्षक कविता में बैल उस मजबूर आदमी का प्रतीक हो जाता है जो दूसरों की इच्छा से संचालित होने के लिए विवश है —

> वह चल रहा है और सिर्फ एक पगडंडी
> उसे याद है जो उसकी पूँछ की तरह
> उसे हाँके लिए जा रही है।
>
> × × ×
>
> वह ऐसा जानवर है जो दिन भर
> भूसे के बारे में सोचता है
> रात भर ईश्वर के बारे में

समकालीन कविता में कुछ शब्द अक्सर प्रतीक रूप में उभर कर आए हैं। यद्यपि इनका प्रतीकार्थ अलग-अलग कवियों ने अलग-अलग ढंग से लिया है, जैसे — जंगल, शब्द सर्वेश्वर में समाज और इतिहास चेतना का प्रतीक है तो धूमिल की कविता यह अक्सर अव्यवस्था का प्रतीक होकर आया है जो भारतीय जनतंत्र की अराजकता का अर्थ देने लगता है। 'जंगल' के साथ ही दलदल, भेड़िये तथा अन्य बनैले पशुओं का जिक्र भी है। लीलाधर जगूड़ी की कविता में भी 'जंगल' अक्सर आता है। कभी-कभी अर्थ की नई चमक भी उसमें कौंधती है किन्तु लगातार पुनरावृत्ति और सदैव उसमें नया अर्थ भरने की चेष्टा इस समर्थ प्रतीक को अर्थहीनता के अंधकार में ले जाती है।

ऐतिहासिक-पौराणिक मिथकों का समसामयिक कविता में बखूबी प्रयोग हुआ है। इतिहास के पात्र भी मिथक के रूप में आए हैं। मिथकों के इस प्रयोग से जातीय अस्मिता और वर्तमान स्थितियों के बीच संवाद स्थापित किया गया है। श्रीकांत वर्मा की "जलसाघर" नामक कविता में इतिहास प्रसिद्ध बर्बर विजेताओं के नाम लगातार कौंधते हैं। हत्या, लूटपाट और बलात्कार से भरे पूरे संग्रह में व्यापक युद्धोन्माद के बीच —

> केवल अशोक लौट रहा है
> और सब
> कलिंग का पता पूछ रहे हैं
> केवल अशोक सिर झुकाए है
> और सब विजेता की तरह चल रहे हैं।

राजकमल चौधरी की कविता मुक्ति प्रसंग में "उग्रतारा" के पौराणिक मिथक के माध्यम से आधुनिक मनुष्य के मन की स्वाधीनता की घोषणा और संस्कारों की जकड़न की उलझन को व्यक्त करती है —

> अब तुम मेरी पूजा करो उग्रतारा में सोया हुआ वर्तमान हूँ, शिव हूँ
> तुम्हारा संपूर्ण आत्म निवेदन
> स्वीकारने का एकमात्र मुझको रह गया है अधिकार

समकालीन कविता के बिंबों अथवा शब्द चित्रों में भदेस की अनगढ़ता भी है और बिल्कुल मामूली रोजमर्रा की जिन्दगी की निकटता भी। कहीं असंबद्ध बिंब प्रतीकों का अतिशय विस्तार केवल जटिलता और बड़बोलेपन से आगे नहीं बढ़ पाता। असंबद्ध शब्दों के संशोधन में कवि कितनी ही चतुराई बरते वह भाषा के अवमूल्यन से आगे नहीं बढ़ पाता। यद्यपि भाषा के सामाजिक-राजनीतिक संस्कारगत अवमूल्यन के प्रति कवि काफी सचेत भी है।

33.6.4 नवीन काव्य लय

समकालीन कविता ने छंद को हर तरह से छीलकर गद्य लय में ढाल दिया है। आज कविता बोलचाल के वैचारिक गद्य और कविता के पार्थक्य को समाप्त कर रही है। नीचे एक उदाहरण दिया गया है —

> "इससे अधिक हम कुछ नहीं बता सकते महाराज! हमारे बिके
> हाथों में जो ऐंठन होती है उसे जाना ही जा सकता है।
> द्वारपाल के लिए बनी बुर्जियों से कूदकर अब हम गिरफ्तार
> करने के लिए उनके हाथ थमते हैं तभी वह होता है हाँ
> महाराज! तभी उसके काले हाथों पर जगह-जगह अंधेरे के
> गाढ़े चकत्ते होते हैं। ....
>
> (पता — ज्ञानेन्द्र प्रति)

समकालीन कविता की अनेक कविताएं गद्य की लय का विस्तार कवि मानते हैं कि कविता अब वक्तव्य है और तुक-तान की संगीत लहरी से मुक्त है। जब जीवन में संगीत नहीं तो कविता में कहाँ से आए। इसलिए समकालीन कविता अपने शिल्प की टेकनीक से जीवन वास्तविकता को रचती है। उसका नया काव्यात्मक मुहावरा गद्य-पद्य के कृत्रिम बंधन की पहचान मिटाकर सर्जनात्मकता में सक्रिय है। तर्क और बौद्धिकता, विज्ञान और प्रौद्योगिकी की भाषा के प्रभाव-दबाव से वह जीवन का यथार्थ उद्घाटित कर रही है।

33.7 मूल्यांकन

समकालीन कविता की संवेदना में जीवन जगत का कोई क्षेत्र वर्जित नहीं है। इस तरह वह पूरा खुलापन अपनाती हुई राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्रों की विद्रूपताओं-विकृतियों को व्यंग्य और सपाटबयानी दोनों से ही अभिव्यक्त करती है। अपने समग्र प्रभाव में समकालीन कविता परिवेश की विकृतियों की तीव्र प्रतिक्रिया है। खोखले मूल्यों के प्रति उसमें निषेध का भाव है। पर मामूली आदमी की शक्ति एवं संगठन में उसकी अटूट आस्था है। उसमें अस्तित्ववाद, क्षणवाद, कुंठावाद, भोगवाद, व्यक्तिवाद के लिए जगह नहीं है। मार्क्सवादी-समाजवादी विचारों के प्रगतिशील पक्ष की वह समर्थक है। किन्तु कथ्य तथा रूप विधान में वह विदेशी नारों और आंदोलनों की नकल नहीं है। उसमें अपनी जमीन और देश पूरी परिस्थिति के साथ मौजूद है। यह हमारी जमीन की जड़ों से फूटी कविता है, जिसमें जन-जन के कंठ को व्यथा-कथा, आशा-निराशा को वाणी मिली है। मानव की स्वतंत्रता को यह कविता बुनियादी मूल्य के रूप में अपनाती है और यही इसकी सार्थकता है।

बोध प्रश्न 3

i) 'समकालीन कविता' की शिल्पगत प्रणालियों में सहजता की ओर झुकाव है — चमत्कार की ओर नहीं।' इस कथन पर प्रकाश पाँच पंक्तियों में डालिए।

....

....

....

....

....

ii) समकालीन काव्य-भाषा की किन्हीं दो विशेषताओं का संकेत कीजिए।

....

....

iii) समकालीन कविता के दो प्रमुख प्रबन्ध काव्यों और उनके कवियों के नाम लिखिए।

....

....

iv) समकालीन कविता की बिंब और प्रतीक चेतना पर तीन पंक्तियों में विचार कीजिए।

....

....

....

बोध प्रश्न 4

i) निम्नलिखित में से कौन-सा समकालीन कविता के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है —

1) नयी कविता

2) साठोत्तरी कविता

3) प्रयोगवादी कविता

ii) समकालीन कविता में निम्नलिखित में से क्या नहीं है?

1) परिवेश के प्रति सजगता

2) विषमता और विद्रूपता का चित्रण

3) शृंगारिक परिवेश

iii) निम्नलिखित में से किसे समकालीन कविता का कवि नहीं कहा जा सकता?

1) धूमिल

2) मलयज

3) केदारनाथ सिंह
4) महादेवी वर्मा

iv) निम्नलिखित रचनाओं के लेखक कौन है?
1) संसद से सड़क तक
2) इतिहासहंता
3) जलसागर
4) मुक्ति प्रसंग

v) निम्नलिखित कवि समकालीन कविता की किस धारा से जुड़े हैं?
1) रमानाथ अवस्थी
2) सौमित्र मोहन
3) रघुवीर सहाय

33.8 शब्दावली

सांप्रतिक कविता : आज की कविता।

लघुमानव : अमरीकी अस्तित्ववादी दर्शन का सिद्धांत है। नयी कविता में लघुमानव सिद्धांत का प्रचार कवितावादी, सौंदर्यवादी और अनास्थावादी मूल्यों के प्रचार करते रहे हैं। मुक्तिबोध इस सिद्धांत की निंदा करते हैं।

तात्कालिकता : रचना में तात्कालिकता आमने-सामने घटित होने वाले दृश्यों को चमकीले प्रतीकों में बांध कर व्यक्त करती है।

सशस्त्र राजनीति : अधिकार के लिए हिंसा का समर्थन करने वाली राजनीति।

अवमानवीकरण : मनुष्य को उसकी प्रकृत स्थितियों से नीचे गिरा कर उसका अवमूल्यन कर देना। मानवीय गरिमा का सम्मान न करना।

कुलकवाद : खानदानवाद।

क्षणवाद : अस्तित्ववादी दर्शन का पारिभाषिक शब्द यह दर्शन निरंतरता में विश्वास नहीं रखता इसलिए यह इतिहास बोध के विपरीत होता है।

कुंठावाद : मनोविश्लेषण शास्त्र का पारिभाषिक शब्द। अभावों से कुंठा का जन्म होता है। कुंठाएँ मनुष्य के व्यक्तित्व के स्वस्थ विकास को रोकती है।

33.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव, *समकालीन कविता का यथार्थ*, हरियाणा साहित्य अकादेमी, चंडीगढ़।

डॉ. रघुवंश, *समसामयिकता और आधुनिक हिंदी कविता*, केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा।

डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव, *समकालीन कविता का व्याकरण*, शुभदा प्रकाशन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32।

डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, *समकालीन हिंदी कविता*, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

डॉ. सुखवीर सिंह, *कविता का वैचारिक वर्तमान*, जयश्री प्रकाशन, दिल्ली-32।

33.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) देखिए उप-भाग 33.2.2 तथा 33.2.4

ii) देखिए उप-भाग 33.2.4

iii) 1) × 2) × 3) √

iv) समकालीन कविता के संवेदात्मक तत्वों में तात्कालिकता और आधुनिकता की विशेष भूमिका है। इन दोनों तत्वों ने मिलकर समकालीन कविता को नयी संवेदात्मक दिशा दी है।

v) समकालीनता से तात्पर्य है सन् 1960 के बाद विकसित होने वाली कविता। सन् 1960 के बाद की हिंदी कविता में अनुभवों को अभिव्यक्ति में ढाला गया। फलतः कविता जीवन अनुभवों के यथार्थ से उपजी कविता है। इसे हम कल्पित कविता का नाम नहीं दे सकते।

vi) क) देखिए उप-भाग 33.2.2
ख) देखिए उप-भाग 33.2.3
ग) देखिए उप-भाग 33.2.4

बोध प्रश्न 2

1 देखिए भाग 33.4

2 देखिए भाग 33.5

3 देखिए उप-भाग 33.5.1

4 1) कुआनो नदी 2) शब्दों के तट पर 3) पटकथा

5 देखिए उप-भाग 33.5.3

6 देखिए उप-भाग 33.5.5

7 क) × ख) √ ग) ×

8 1) अकविता 2) विचार कविता 3) युयुत्सावादी कविता 4) जन कविता

बोध प्रश्न 3

i) समकालीन कविता जीवन की वैचारिक स्थितियों को बोलचाल की संप्रेषणीय भाषा में प्रस्तुत करती है। इसकी लंबी कविताओं में भी गद्य की ओर झुकाव वैचारिकता के कारण ही है। इन कवियों के बिंब और प्रतीक ऐसे हैं जिनमें जटिलता नहीं हैं। प्रायः वे अनुभव से उभरे बिंब और प्रतीक हैं। गीत, नवगीत और मुक्तछंद परक खुली कविताओं में अपने आसपास के अनुभव को कवियों ने स्वाभाविकता से प्रस्तुत कर दिया है। इसलिए इन कवियों को चमत्कार प्रदर्शन करने वाले कलावादी कवि नहीं कहा जा सकता है।

ii) देखिए उप-भाग 33.6.2

iii) क) कालजयी — भवानी प्रसाद मिश्र
ख) महाप्रस्थान — नरेश मेहता

iv) देखिए उप-भाग 33.6.3

बोध प्रश्न 4

i) 1) × 2) √ 3) ×

ii) 1) × 2) × 3) √

iii) 1) √ 2) √ 3) √ 4) ×

iv) 1) धूमिल 2) जगदीश चतुर्वेदी 3) श्रीकांत वर्मा 4) राजकमल चौधरी

v) 1) नवगीत 2) अकविता 3) प्रगतिशील यथार्थ की धारा

इकाई 34 धूमिल

इकाई की रूपरेखा

34.0 उद्देश्य
34.1 प्रस्तावना
34.2 जीवन परिचय एवं कृतित्व
34.3 युगीन पृष्ठभूमि
34.4 अन्तर्वस्तु
  34.4.1 समकालीन राजनीतिक व्यवस्था
  34.4.2 विषमता एवं शोषण पर आधारित आर्थिक ढाँचा
  34.4.3 धूमिल का व्यंग्य बोध
  34.4.4 नारी जीवन के चित्र
  34.4.5 कविता विषयक धारणा
34.5 संरचना शिल्प
34.6 काव्य पाठ एवं व्याख्या
34.7 सारांश
34.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
34.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

34.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' का जीवन परिचय और कृतित्व जान सकेंगे,
- उनके युग की राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- उनके काव्य की अन्तर्वस्तु में काव्य की विषयगत विशेषताओं के बारे में पढ़ सकेंगे,
- उनके काव्य की शिल्पगत विशेषताएँ जान सकेंगे, और
- उनकी कविताओं की व्याख्या करना सीख सकेंगे।

34.1 प्रस्तावना

इससे पहले की इकाई में आपने समकालीन कविता का अध्ययन किया था। इस इकाई में आप साठोत्तरी कविता के महत्वपूर्ण कवि सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' के काव्य का अध्ययन करेंगे। धूमिल नयी कविता के बाद की हिंदी कविता के उस दौर के कवि हैं जब हिंदी कविता बिंब, प्रतीकों के जाल में उलझकर अत्यधिक कलात्मक, मूर्त और व्यक्तिवादी होती जा रही थी और जीवन के ठोस, जीवंत यथार्थ से उसका सम्पर्क टूटता जा रहा था। दूसरी ओर देश आज़ादी के बाद एक ऐसे मोह भंग से गुज़र रहा था जिसमें सामाजिक, नैतिक, राजनीतिक मूल्य टूट रहे थे, भ्रष्टाचार, बेईमानी, चोर बाज़ारी का बाज़ार गर्म था, यानि कि चारों ओर अव्यवस्था फैली हुई थी। ऐसे में हिंदी कविता भी कुछ लोगों की कलात्मक रुचि का पर्याय बन कर रह गयी थी। धूमिल ने अपनी कविता को नयी कविता की इस अभिजात और व्यक्तिवादी धारा के विरोध में जनता के साथ और समाज के आम और व्यापक सरोकारों से जोड़ा, भाषा को उसके अभिजात्य से मुक्ति दिला कर जीवन के ठोस, वीभत्स और कड़वे यथार्थ की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। उनकी कविता में आयी हुई यौन शब्दावली व्यवस्था और झूठी नैतिकता के पुरज़ोर विरोध की कलात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम बनी।

यहाँ सब से पहले हम धूमिल के जीवन परिचय और कृतित्व की जानकारी हासिल करेंगे। उसके बाद उनके युग की पृष्ठभूमि में उस समय की सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक परिस्थितियों का विश्लेषण करेंगे। अन्तर्वस्तु में आप धूमिल के काव्य की विषयवस्तु की विशेषताओं के बारे में पढ़ेंगे और संरचना शिल्प में उनकी काव्य भाषा, प्रतीक एवं बिंब के बारे में पढ़ेंगे। अंत में उनकी कविताओं के कुछ पद्यांशों की व्याख्या की जाएगी, जिसके आधार पर आप उनकी कविताओं की व्याख्या करना सीख सकेंगे।

आइए, उनके जीवन परिचय एवं कृतित्व की जानकारी हासिल करें।

34.2 जीवन परिचय एवं कृतित्व

सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' का जन्म 9 नवम्बर, 1936 को श्री शिवनायक पाण्डेय के घर बनारस के पास खेवली में हुआ था। उनकी माँ का नाम रजवंती देवी था, जो एक धर्मपरायण महिला थीं। धूमिल अपने चारों भाइयों में बड़े थे। पिता की मृत्यु के बाद घर-भर की जिम्मेदारी इन्हीं को संभालनी पड़ी।

धूमिल ने 1953 में हाई स्कूल की परीक्षा पास की। अपने गाँव में वे पहले व्यक्ति थे, जिसने इतना अध्ययन किया। वे इससे आगे भी पढ़ना चाहते थे किन्तु घर की समस्याओं के कारण उच्च अध्ययन की उनकी आकांक्षा पूरी नहीं हो सकी। उनका विवाह पिता की मृत्यु के एक वर्ष के बाद ही हो गया था। तब वे सिर्फ बारह वर्ष के थे। उनकी पत्नी का नाम मूरतदेवी था। रोजी-रोटी की तलाश में धूमिल गाँव छोड़ कर एक मित्र के बुलाने पर कलकत्ता पहुँचे। किन्तु वहाँ पैर नहीं जमे। तीन वर्ष तक एक लकड़ी के ठेकेदार के साथ काम करने के बाद वे नौकरी छोड़ कर बनारस आ गये। किन्तु इस नौकरी में उन्होंने हिमालय की तराई से ले कर असम के जंगलों तक की सैर कर डाली। बनारस आकर धूमिल ने 1958 में "औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान" से प्रथम श्रेणी में विद्युत डिप्लोमा प्राप्त किया और इसी वर्ष, यहीं पर वे विद्युत अनुदेशक के पद पर कार्य करने लगे। भ्रष्ट अधिकारियों के कारण उन्हें बार-बार स्थानांतरित किया जाता रहा। बनारस में रह कर वे घर गाँव की खेती की देखभाल कर सकते थे। किन्तु बनारस से बाहर रह कर यह काम कठिन था। 1974 में जब गाँव में चकबंदी हो रही थी, उनका तबादला सीतापुर कर दिया गया। धूमिल के लिए इस वक्त गाँव में रहना जरूरी था। इसलिए उन्होंने लंबी छुट्टी की अर्जी भेज दी और बनारस में ही रहने लगे। इन्हीं दिनों उनके सिर का भयंकर दर्द फिर उभर आया। डॉक्टरों ने उन्हें ब्रेन ट्यूमर हो जाने की सूचना दी। नवम्बर 1974 में उन्हें लखनऊ ले जाया गया। ऑपरेशन के बाद 10 फरवरी 1975 को उनकी वहीं मृत्यु हो गयी।

धूमिल में ज्ञान की गज़ब की भूख थी जिसे वह परिश्रम करने की क्षमता में मिटाता था। हर वक्त वह कुछ न कुछ सीखने की फिराक में रहता था — इसके लिए उसने एक तरीका ढूँढ निकाला था — असहमति का। वह जिस किसी से कुछ सीखना चाहता, जानना चाहता, उससे असहमत होते हुए बात करता, तब तक जब तक कि वह व्यक्ति पूरी तरह खाली न हो जाए। पूर्ण रूप से अराजक और व्यक्तिवादी होने से पूर्व ही वह नामवर सिंह के कारण मार्क्सवादी दर्शन की ओर मुड़ गये।

धूमिल कविता का कारीगर था। वह कविता लिखता नहीं, बनाता था। उसकी जेब में हमेशा कागज-पेंसिल रहती थी। धूमिल की कविताएँ "जनयुग", आलोचना, आरंभ, कल्पना, नयी धारा में छपने लगीं थीं और "संसद से सड़क तक" ने उसे साठोत्तरी कविता में एक अलग पहचान भी दे दी थी।

कृतित्व

धूमिल के कुल चार काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं —

संसद से सड़क तक
कल सुनना मुझे
बाँसुरी जल गयी
सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र

इसके अतिरिक्त धूमिल विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख भी लिखते रहे।

34.3 युगीन पृष्ठभूमि

धूमिल की कविता को समझने के लिए उसकी युगीन पृष्ठभूमि जानना आवश्यक है जिसने उस के काव्य को माँजा, तराशा और एक नयी पहचान दी।

राजनीतिक पृष्ठभूमि : धूमिल जब काव्य रचना में प्रवृत्त हुए तब देश आज़ादी प्राप्त कर चुका था और नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेस ने देश की सत्ता संभाली हुई थी। नेहरू देश में समाजवादी व्यवस्था लाने का स्वप्न देख रहे थे। इसी दौरान देश को एक साथ दो युद्धों का सामना करना पड़ा। 1962 में चीन के साथ और 1965 में पाकिस्तान के साथ। जनता के मोहभंग की शुरुआत भी इसी समय हुई। आज़ादी से जो कामनाएँ, जो आकांक्षाएँ जनता ने पाली थीं, वे धूमिल होने लगीं। रोटी-कपड़ा-मकान की समस्या, अशिक्षा, बेरोज़गारी आदि की समस्याएँ मुँह खोले खड़ी थीं। 1967 के आम चुनावों में जनता का असंतोष व्यक्त हुआ। कांग्रेस को कई राज्यों में हार का सामना करना पड़ा। केंद्र में भी उसकी शक्ति कमजोर हुई। देश में जगह-जगह जन-आंदोलनों द्वारा जनता ने सरकार की नीतियों के विरुद्ध अपनी नाराज़गी जाहिर की। आंध्र प्रदेश, प. बंगाल, बिहार में हिंसात्मक आंदोलन भी हुए, जो नक्सलवादी आंदोलन के नाम से जाने गये। 1971 में एक बार फिर देश को एक और युद्ध का सामना करना पड़ा। लेकिन राजनीति और राजनेताओं के प्रति जनता के मन में अविश्वास लगातार बढ़ता जा रहा था। सन् 1974 तक आते-आते देश में व्यवस्था के खिलाफ एक बार फिर तूफान उठ खड़ा हुआ। गुजरात से चला विद्यार्थी आंदोलन बिहार में फलीभूत हुआ। सर्वोदय नेता जय प्रकाश नारायण ने पूर्ण क्रांति के लिए संघर्ष का नारा दिया। इसने हिंदी काव्य को एक नयी प्रेरणा दी।

आज़ादी के बाद के इस राजनीतिक फलक पर राजनेताओं के भ्रष्ट चेहरे, दोगली नीतियाँ जनता के सामने खुल कर आयीं। जनता का चुनाव प्रणाली पर से लगभग विश्वास उठ गया। परिणामस्वरूप निराशा, हताशा, मूल्यविहीनता, बेकारी, अत्याचार, हिंसा और अव्यवस्था का माहौल बन गया।

साहित्यिक परिस्थिति : धूमिल ने जब लिखना शुरू किया उस समय हिंदी कविता में प्रयोगवाद और नयी कविता का दौर खत्म हो चुका था। नयी कविता में दो प्रकार की काव्यधाराएँ थीं — एक प्रगतिशील काव्यधारा जिसमें मुक्तिबोध, शमशेर आदि कवि थे और दूसरी काव्यधारा व्यक्तिवादी कविता की थी जिसके पुरोधा अज्ञेय थे। इसके समानांतर ही साठोत्तरी कविता में काव्यधाराओं के कुछ ऐसे क्षणिक दौर भी चले जो युग की निराशा, मोहभंग, हताशा के कारण उपजे थे, किन्तु जिसके पास कोई जीवनदृष्टि नहीं थी। अकविता, विचार कविता, युयुत्सु भूखी पीढ़ी की कविता जैसी काव्यधाराएँ ऐसी ही थीं।

धूमिल की कविताओं पर भी अकविता का प्रभाव पड़ा। यौन से संबंधित शब्दावली इसी अकविता के प्रभाव से उनकी कविता में आयी।

धूमिल का समकालीन काव्य परिदृश्य अकविता आदि क्षणिक आवेगों से भरी नकारात्मक कविता से भरा पड़ा था। ऐसे में धूमिल ने कविता को सार्थकता से जोड़ने की बात कर कविता को इस हताशा, निराशा से बाहर निकाला, कविता के प्रति लोगों का ध्यान खींचा। और कविता को व्यक्तिवादी सरोकारों से बाहर निकालकर उसे बृहत्तर सामाजिक सरोकारों से जोड़ने का प्रयास किया।

34.4 अन्तर्वस्तु

धूमिल के काव्य की अन्तर्वस्तु अत्यंत व्यापक है। उसके भीतर सारा देश है। देश की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति-परिस्थिति है। व्यक्ति और समाज की अनेकों समस्याएँ हैं। कांग्रेसी समाजवाद और उसके खोखले जनतंत्र का भंडाफोड़ है। भाषा आंदोलन का चित्र है, तो अकाल का चित्र भी है और उसके कारणों का मार्मिक उद्घाटन भी है। वस्तुतः धूमिल का काव्य स्वाधीन भारत की व्यथा-कथा है, स्वाधीन भारत की आशा, आकांक्षा, निराशा की जीती-जागती तस्वीर है। आइए: धूमिल की कविता के व्यापक सरोकारों को देखें —

34.4.1 समकालीन राजनीतिक व्यवस्था

धूमिल साठोत्तरी कविता के कवि हैं। साठोत्तरी कविता मोहभंग की कविता है। यह मोहभंग जनता का अपने राजनेताओं, राजनीति और व्यवस्था से उपजा मोहभंग है। मोहभंग से पहले मोह या आशा की स्थिति होती है। वर्षों तक अनवरत संघर्ष के बाद जनता ने आज़ादी मिलने के बाद देश के कर्णधारों से इतनी अपेक्षा की थी कि वे आम आदमी को रोटी-कपड़ा-मकान मुहैय्या करवाएंगे, बेकारी दूर होगी, सब को शिक्षा, सब को काम मिलेगा। किंतु आज़ादी मिलने के बीस वर्षों के बाद जनता ने यह देखा कि उनके सब्र का बाँध टूटता जा रहा है, पंचवर्षीय योजनाएँ, हरित क्रांति, पंचशील के सिद्धांत, नेहरू का समाजवाद सब आदमी की सामान्य जरूरतें पूरी करने में नाकाम रहे हैं और राजनेताओं ने राजनीति को अपने स्वार्थ का अखाड़ा बना लिया है और समाज में व्यक्ति की दशा दुर्दशा में बदलती जा रही है। ऐसे में जनता का राजनीतिक व्यवस्था और राजनेताओं से मोहभंग होता है। धूमिल अपनी एक कविता "बीस साल बाद" में इसी मोहभंग को अभिव्यक्ति देते हैं —

> बीस साल बाद
> मैं अपने-आपसे एक सवाल करता हूँ
> जानवर बनने के लिए कितने सब्र की ज़रूरत होती है।

क्योंकि देश में हिंसा का वातावरण है -- कर्फ्यू, गोलियों से जनता को भरमाया जा रहा है, उनका ध्यान उनकी समस्याओं से परे खींचा जा रहा है स्थिति इतनी बदतर है कि धूमिल का स्वर आक्रोश से पैना हो कर इस विसंगत स्थिति की त्रासदी को इस शब्दों में व्यक्त करता है —

> हवा से फड़फड़ाते हुए हिंदुस्तान के नक्शे पर
> गाय ने गोबर कर दिया है।

यह भदेस अभिव्यक्ति बौखलाए हुए व्यक्ति की मानसिक दशा का परिणाम है — जो मूल्यहीनता को बरदाश्त नहीं कर पाता। किन्तु इस आक्रोश और बौखलाहट से परे भी जब वह सोचने की कोशिश करता है तो यही सोचता है —

> क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
> जिन्हें एक पहिया ढोता है
> या इस का कोई खास मतलब होता है?

और उसे इस चरमराती और सड़ाँध भरी हुई व्यवस्था में कोई उत्तर नहीं मिलता। आजादी के झण्डे के तीन रंग — लाल, जो कि परिवर्तन और क्रांति का संकेत है, सफेद — जो कि शांति का प्रतीक है और हरा — जो खुशहाली का प्रतीक है — ये तीनों रंग थके हुए हैं क्योंकि देश में न परिवर्तन हुआ है, न खुशहाली आई है और न ही शांति। इस प्रकार "बीस साल बाद" कविता आजादी के बाद के मोहभंग और निराशा से भरे हुए माहौल को अभिव्यक्ति देती है।

धूमिल की एक और कविता है "जनतंत्र के सूर्योदय में"। इसमें कवि ने हमारे प्रजातंत्र के चेहरे को बेनकाब किया है। हमारे नेता किस प्रकार नौकरशाही के साथ मिल कर आम जनता का शोषण करते हैं, कैसे देश के नौजवानों का भविष्य फाइलों में बंद कर काले दराजों में दफन कर दिया जाता है। सारा देश नेताओं की नींद और नौकरशाही की नफरत का शिकार हो रहा है।

"अकाल दर्शन" कविता में कवि देश के चालाक नेताओं से सीधा प्रश्न पूछता है कि "भूख कौन उपजाता है"? जनसंख्या में वृद्धि या नेताओं की जनता के प्रति घृणा, जो हमें बार-बार निरर्थक बातों में उलझा कर बेबस कर देती है।

धूमिल अपने राजनीतिक परिवेश के प्रति पूरी तरह सजग थे। स्वाधीनता प्राप्ति से लेकर सन् 1975 तक की आपातकालीन घटनाओं तक का ब्यौरा उनकी कविताओं में दर्ज है। देश में बढ़ते भ्रष्टाचार, हिंसा, आतंक, भाई-भतीजावाद, चुनावी धाँधलियाँ, राजनीतिक हत्याएँ, दक्षिणपंथी शक्तियों की साजिश — अर्थात् धूमिल पूरी राजनीतिक व्यस्था का विरोध करते हैं। धूमिल की राजनीतिक चेतना अव्यवस्था को पूरी तरह नंगा करती है।

34.4.2 विषमता एवं शोषण पर आधारित आर्थिक ढांचा

धूमिल ने सामाजिक यथार्थ का बेबाक ढंग से अपनी कविताओं में चित्रण किया है। शहर और गाँवों में आर्थिक विषमता एक समान है किन्तु उनके कारण अलग-अलग हैं। शोषकों के चेहरे गाँव और शहर में एक जैसे होते हैं। आर्थिक विषमता और शोषण का चित्रण करती हुई उनकी प्रमुख कविताएँ है — "अकाल दर्शन", जिसमें धूमिल बुनियादी सवाल उठाते हैं कि "भूख कौन उपजाता है"। वे देखते हैं कि बेशक भूख उपजाने में नेताओं की दोगली नीतियाँ, भ्रष्टाचार और शोषण ही जिम्मेदार हैं किन्तु धूमिल की निगाह में जनता की जड़ता और सारी स्थिति के प्रति गहरी उदासीनता भी इसके लिए जिम्मेदार है। क्योंकि शोषण के तले पिसती हुई जनता यथास्थिति को स्वीकार करके शोषण को अपना भाग्य मान लेती है। धूमिल लिखते हैं —

लोग बिलबिला रहे हैं (पेड़ों को नंगा करते हुए)
पत्ते और छाल
खा खड़े हैं
मर रहे हैं, दान
कर रहे हैं।

जलसों-जुलूसों की भीड़ में पूरी ईमानदारी से
हिस्सा ले रहे हैं और
अकाल की मोहर की तरह गा रहे हैं।
झुलसे हुए चेहरों पर कोई चेतावनी नहीं है।

(संसद से सड़क तक, पृ. 16)

34.4.3 धूमिल का व्यंग्य बोध

धूमिल ने समकालीन राजनीति और व्यवस्था के भ्रष्टाचार और खोखलेपन को उभारने के लिये व्यंग्य का सहारा लिया। उनकी कविताओं में सबसे अधिक राजनीतिक व्यंग्य ही उभरा है। वैसे धूमिल ने अपने व्यंग्य का लक्ष्य हर उस वस्तु को बनाया है जिसे वह ठीक नहीं समझते। धूमिल ने इस देश की संसद, समाजवाद, आज़ादी, चुनाव, नेता, राजनीति, जनतंत्र, क्रांति, सभी पर व्यंग्योक्तियाँ लिखी हैं कुछ उदाहरण देखिए —

हिमालय से लेकर हिंद महासागर तक फैला हुआ
जली हुई मिट्टी का ढेर है
जहाँ हर तीसरी जुबान का मतलब-नफरत है
साजिश है
अंधेर है
यह मेरा देश है

× × ×

घृणा में
डूबा हुआ सारा का सारा देश
पहले की ही तरह आज भी
मेरा कारागार है

(संसद से सड़क तक, पृ. 114)

जयशंकर प्रसाद के "अरुण यह मधुमय देश हमारा" और धूमिल के "जली हुई मिट्टी का ढेर" और "अपना कैदखाना" के देश बोध की विभिन्नता का कारण और कुछ नहीं — यह राजनीति ही है, जो देश की दुर्दशा के लिए जिम्मेदार है। धूमिल की नजर में आज़ादी के बाद के जनतंत्र ने देश को बर्बाद कर दिया है। इस जनतंत्र में यथा राजा तथा प्रजा वाला पोस्टर बड़े विश्वासपूर्वक चिपका हुआ है। धूमिल की नजर में देशभक्ति की परिभाषा क्या है?

हर तरफ धुँआ है
हर तरफ कुहासा है
जो दाँतों और दलदलों का दलाल है
वही देशभक्त है

(संसद से सड़क तक, पृ. 115)

जनतंत्र, समाजवाद, आज़ादी और क्रांति की बदले हुए समय में धूमिल की ये परिभाषाएँ हैं —

जनतंत्र

एक गूंगा तमाशा है
जिस की जान
मदारी की भाषा है

समाजवाद

"मगर मैं जानता हूँ कि मेरे देश का समाजवाद
मालगोदाम में लटकी हुई
उन बाल्टियों की तरह है जिस पर आग लिखा है
और उनमें बालू और पानी भरा है।"

आज़ादी

"सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिसे एक पहिया ढोता है"

राजनीति के अलावा धूमिल ने तथाकथित अवसरवादी बुद्धिजीवियों पर, शोषण को स्वीकार कर रही जनता की कायरता पर, शहरी और कस्बाई जीवन पर, मूल्यगत ह्रास पर भी व्यंग्योक्तियाँ लिखी हैं। धूमिल के शब्दों में जनता क्या है —

"जनता क्या है?
एक शब्द — सिर्फ एक शब्द है
कुहरा और कीचड़ और काँच से बना हुआ।
एक भेड़ है
जो दूसरों की ठंड के लिए
अपनी पीठ पर ऊन की फसल ढो रही है।"

वस्तुतः धूमिल की कविता का स्वर ही व्यंग्यात्मक है। धूमिल की कविताएँ पढ़ते हुए एक खास तरह की उद्विग्नता, खीझ, आत्मग्लानि, असहायता और हताशा का अनुभव होने लगता है।

34.4.4 नारी जीवन के चित्र

धूमिल की कविताओं में नारी जीवन के भी चित्र मिलते हैं। इन चित्रों में कोमलता और सौंदर्य बोध के मधुर पक्ष का अभाव है। ये चित्र धूमिल ने अपने आसपास के जीवन और समाज से लिए हैं, जिसमें नारी संबंधों की अनेकरूपता है। वहाँ अगर व्यभिचार है तो प्यार भी है — किन्तु धूमिल ने व्यभिचार और विकृतियों को ही अधिक चुना है। क्योंकि धूमिल जीवन की विकृतियों को उघाड़ कर, अपना असंतोष और आक्रोश प्रकट करना चाहते हैं — बदलती हुई नैतिकताओं, सड़ते हुए जीवन मूल्यों और नैतिक मूल्यों पर उंगली रखना चाहते हैं और जनता में आग पैदा करना चाहते हैं ताकि जनता अपनी यथास्थिति को तोड़ कर परिवर्तन की दिशा में सोच सके। धूमिल के यौन चित्रण में आरंभ से ही अस्वीकार का स्वर है, स्वीकार का नहीं। सत्य के एक ही पहलू को उन्होंने चित्रित किया है। लेकिन यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि नारी जीवन के उज्ज्वल पक्ष पर उन्होंने कहीं भी चोट नहीं की है।

धूमिल पर अकविता की व्यक्तिवादी-अराजकतावादी दृष्टि का भी प्रभाव था। स्त्री के प्रति उनका दृष्टिकोण इसी प्रभाव का परिचायक है। कविता में यौन-संबंधों का उन्मुक्त और विकृत चित्रण धूमिल यद्यपि आमतौर पर प्रतीकात्मक अर्थ में करते हैं, फिर भी इससे नारी के प्रति उनके दृष्टिकोण का आभास तो मिलता ही है। उदाहरण के लिए उनकी 'कविता' शीर्षक कविता लें, जिसमें उन्होंने कविता संबंधी अपनी अवधारणा को स्त्री की सामाजिक दशा से तुलना करके प्रस्तुत किया है। परंतु यहाँ जिस शब्दावली में उन्होंने यह प्रसंग प्रस्तुत किया है, वह स्त्री-जाति के लिए बहुत सम्मानजनक नहीं कहा जा सकता।

धूमिल ने अपनी कविताओं में कई बार कई ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जो आम बोलचाल में भी शिष्ट नहीं समझे जाते। धूमिल ने संभवतः उन्हें इसलिए प्रयुक्त किया है क्योंकि वे जीवन और कविता दोनों में अभिजातवादी-नैतिकवादी दृष्टिकोण को उचित नहीं मानते थे। इस वर्ग की हिपोक्रेसी को तोड़ने के लिए उन्होंने इस अतिवादी मार्ग को अपनाया। यहाँ इतना तो कहा ही जा सकता है कि इस अभिजातवर्ग के प्रति धूमिल का गुस्सा और आक्रोश उचित था क्योंकि आम आदमी के कष्ट उन्हीं की देन थे, लेकिन उस दौर में इस क्रोध और आक्रोश की अभिव्यक्ति संतुलित भाषा में नहीं हो पा रही थी और कवियों के उबाल का शिकार स्त्रियों को भी होना पड़ता था। खास बात यह है कि धूमिल ही ऐसे कवि थे जिन्होंने अकविता के दृष्टिहीन दौर से निकलकर जनोन्मुखी दृष्टिकोण को अपनाने की सार्थक कोशिश की। यही कारण है कि नारी के प्रति उनके दृष्टिकोण में बाद में सकारात्मक बदलाव आया।

34.4.5 कविता विषयक धारणा

धूमिल ने कविता के विषय में गहराई तक विचार किया है। कविता की सार्थकता उसके लिए महत्वपूर्ण मसला रहा है। काशीनाथ सिंह का कथन है कि "वह कविताएँ नहीं, पंक्तियाँ लिखता था। उसकी जेब में हमेशा कागज और कलम होती थी। सड़क, चायघर, दुकान, पार्क, सिनेमाघर, कचहरी — हर जगह उसे जो भी मतलब की चीज नज़र आती, जो भी काम का जुमला उसके कान में पड़ता, वह टाँक लेता।" (आलोचना, अंक-33) अपनी कविता के बारे में स्वयं धूमिल ने अपने एक लेख "कविता पर एक वक्तव्य" में लिखा है — "मेरी कविताएँ गुस्से व ग्लानि की इन्हीं स्थितियों में लिखी गयी हैं, जिनमें मेरी कविताओं का मूल स्वर-बोध को उसके सही डायमेंशनों में रखता है। साथ ही एक चौथे डायमेंशन की शिनाख्त भी करनी है। अब तक चौथे डायमेंशन की धारणा में असीम व अलक्ष्य की अभिव्यक्ति हुई है। चीज की लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई के बाहर के किसी शक्ति विशेष की बात होती रही है। चौथे डायमेंशन से मेरा तात्पर्य चीज के उस निजी सामर्थ्य से है, जो उसमें है और जिसकी मध्यस्थता के कारण वस्तु और व्यक्ति अपनी-अपनी स्थितियों में सुरक्षित एक तनाव के बावजूद एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। इस का तात्पर्य यह कदापि नहीं कि हम चीज के प्रति प्रतिबद्ध हैं। बल्कि ऐसा केवल इसलिए है कि हम कहीं न कहीं संलग्न हैं और यह संलग्नता किसी हद तक हमें प्रतिबद्ध होने की कोशिश तक जरूर ले जाती है। ..... मैं जान गया हूँ कि बम गिरने की पीड़ा से चाय के ठंडे होने का दुःख कितना बड़ा है। कोई चीज कहाँ है और कैसे है का सही बोध ही मेरी रचना का धर्म है। क्रम में चीज के निर्वासन करने की बात भी महत्वपूर्ण है। चीज को नंगा करना उद्देश्य नहीं, बल्कि उसके सही "कद" को प्रस्तुत करने की एक प्रक्रिया मात्र है।"

धूमिल ने अपनी कविताओं में जगह-जगह कविता पर वक्तव्य दिये हैं —

"हर सार्थक कविता
पहले एक सार्थक वक्तव्य होती है"

"इस वक्त जब कान नहीं सुनते हैं कविताएँ
कविता पेट से सुनी जा रही है"

वास्तव में धूमिल कविता के विषय में पूरी तरह सचेत व जागरूक था। कवि और कविता की सारी शक्ति और सीमाओं को जानता हुआ भी वह उसकी सामाजिक आवश्यकता के प्रति आस्थावान था। जितनी स्पष्टता उसकी कविताओं में है उसका कारण चीजों के प्रति उसकी स्पष्ट धारणा है।

बोध प्रश्न 1

1 धूमिल के प्रकाशित काव्य संग्रहों के नाम लिखिए।

....

....

2 धूमिल जब काव्य रचना में प्रवृत्त हुए, तब देश का राजनीतिक वातावरण कैसा था? पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

3 क्या धूमिल की राजनीतिक चेतना व्यवस्था का विरोध करने के अलावा उसमें परिवर्तन लाने की किसी स्पष्ट राजनीतिक दृष्टि से परिपूर्ण है? संक्षेप में पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

4 जनतंत्र, समाजवाद, आजादी और देशभक्ति की धूमिल द्वारा दी गयी परिभाषाएँ लिखिए।

....

....

....

....

....

34.5 संरचना शिल्प

यहाँ हम धूमिल की काव्य-भाषा, बिंब, प्रतीक पर चर्चा करेंगे। धूमिल नयी कविता के बाद हिंदी कविता के उस दौर में काव्य रचना में प्रवृत्त हुए थे, जब हिंदी कविता की काव्य-भाषा बिंबों, प्रतीकों के जाल में उलझी हुई थी — और जन-जीवन से उसका नाता टूटा हुआ था। अस्पष्टता, दुरूहता कविता की खूबी और खामी दोनों मानी जा रही थीं। धूमिल ने काव्य-भाषा को अभिजात्य की इस दलदल से बाहर निकालने का प्रयास किया। काव्य-भाषा पर उनका चिंतन उनकी कविताओं में भी व्यक्त होता रहा। "संसद से सड़क तक" की पहली कविता में ही वे कविता की बिंबों एवं सूक्ष्म प्रतीकों से लदी हुई भाषा को नकार देते हैं —

> "नहीं — अब वहाँ कोई अर्थ खोजना व्यर्थ है
> पेशेवर भाषा के तस्कर — संकेतों
> और बैलमुती इबारतों में
> अर्थ खोजना व्यर्थ है।"

यहाँ जिस पेशेवर भाषा की बात धूमिल कर रहे हैं, यह वही कृत्रिम भाषा है, जो नयी कविता के कुछ कवियों की व्यवस्था बन गयी थी और जिसका संबंध जीवन से नहीं के बराबर हो गया था। नयी कविता की इस कलात्मक, मंजी हुई किंतु जीवन से असंपृक्त भाषा को धूमिल ने स्वीकार नहीं किया। धूमिल ऐसी काव्य-भाषा की तलाश करते हैं जो यथार्थ को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त कर सके। काव्य-भाषा के नाम पर वस्तु और व्यक्ति के बीच में एक दीवार खड़ी की जाती रही है। धूमिल इस दीवार को तोड़ना चाहते हैं ताकि कवि अपने पाठक से सीधे मिल सके। वे लिखते हैं —

"इस संदर्भ में पहला काम कविता को 'भाषाहीन' करना है — कभी-कभी या अधिकांशतः प्रतीकों और बिंबों के कारण कविता की स्थिति उस औरत जैसी हास्यास्पद हो जाती है जिसके आगे एक बच्चा हो, गोद में एक बच्चा हो और पेट में एक बच्चा हो। आज महत्व शिल्प का नहीं, कथ्य का है। सवाल यह नहीं कि आपने किस तरह कहा है, सवाल यह है कि आपने क्या कहा है? इसके लिए आदमी की ज़रूरतों के बीच की भाषा का चुनाव करना और राजनीतिक हलचलों के प्रति सजग दृष्टिकोण कायम रखना अत्यंत आवश्यक है।" (धूमिल, नया प्रतीक, फरवरी 1978, पृ. 4-5)

धूमिल की काव्य-भाषा में अश्लील शब्द, ग्रामीण जीवन के शब्द, कोर्ट-कचहरी के शब्द बहुत हैं। भाषिक चमत्कार का उनकी भाषा पर आरोप भी लगा है। आइए देखें — धूमिल की काव्य-भाषा कैसी है?

अश्लील शब्दों का प्रयोग

धूमिल ने यौन से संबंधित शब्दों का काव्य में प्रयोग किया, जिससे उन पर अश्लीलता के आरोप भी लगे। किन्तु, धूमिल ने इन शब्दों का प्रयोग उत्तेजना प्रदान करने या चमत्कार लाने के लिए नहीं किया है। विद्यानिवास मिश्र लिखते हैं — "यौन और ऊपर से वीभत्स लगने वाले बिंब, प्रतीक और सादृश्य विधान तो उनकी भाषा को चौखटा देने वाले हाशिया मात्र हैं। धूमिल मन से इतने स्वस्थ थे कि समूची सामाजिक व्यवस्था के अस्वास्थ्य को, दबाव को अस्वीकार करते रहे।" (कल सुनना मुझे, प्रस्तावना, पृ. ख)

ग्रामीण जीवन के शब्द

धूमिल की काव्य-भाषा में ग्रामीण जीवन से जुड़े हुए शब्द, बिंब, प्रतीक सहज रूप से आते हैं। पुतड़ा, सीवान, गर्वे-गर्वे, पोटली, कठवत, आंगड़-बांगड़ आदि। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का कथन है — "वे अपनी जमीन पर खड़े हो कर अपनी जमीन को अपनी मिट्टी का शब्द देते हैं। उनकी कविता का तेवर एक देहाती कवि का बेलाग, मुँहफट तेवर है। यह तेवर उनका अपना है।" (विश्वनाथ तिवारी, समकालीन हिंदी कविता, पृ. 203)। वास्तव में धूमिल की भाषा में ग्रामीण शब्दावली का इस्तेमाल चौंकाने के लिये नहीं हुआ है, न आँचलिक छौंक देने के लिये, बल्कि यही उनकी असली जमीन है।

कोर्ट-कचहरी के शब्द

धूमिल को अपनी गाँव की जमीन की मुकदमेबाजी के कारण कोर्ट-कचहरी से बहुत पाला पड़ा। इसलिए उनकी कविता मे कोर्ट-कचहरी के बहुत से शब्दों का इस्तेमाल हुआ है — अपराधी, हलफनामा, बेकसूर, कटघरा, मुजरिम, बहस, जिरह, नवैयत, नालिश, जमीन जैसे बीसियों शब्द धूमिल की कविताओं में मिल जाएंगे।

लोकोक्तियां और मुहावरे

धूमिल की कविता मे लोक में प्रचलित लोकोक्तियां और मुहावरे भी बहुत आए हैं। उन्होंने कुछ नये मुहावरे भी गढ़े हैं जैसे — "धर्मशाला होना", "हरी आँख", "चेहरा टटोलना", "गीली मिट्टी की तरह हाँ-हाँ करना", "दुनिया के व्याकरण के खिलाफ होना", "महुए पर मूतना", "आँखों मे कुत्ते भौंकना" आदि।

भाषिक चमत्कार

धूमिल की काव्य-भाषा में चमत्कार पैदा करने की जो प्रवृत्ति है, उस पर काफी विवाद हुआ है। धूमिल जिन सूक्तियों, वक्तव्यों या जुमलों का इस्तेमाल करते हैं, वे सार्थक तो होते हैं किन्तु एकबारगी पाठक को चौंका भी देते हैं। चौंकाने वाली यह प्रवृत्ति कितनी स्थायी होगी, या ये वक्तव्य बात की गहराई को पकड़ पाते हैं या सिर्फ चौंका भर कर एक चमक छोड़ते हैं — इस पर विवाद रहा है। कुछ ने इसे लटकेबाजी कहा — "यह लटका उस बात से निःसृत नहीं होता, वह चौंकाने के लिये, प्रभावित करने के लिये ऊपर से जोड़ा जाता है। लटका किसी चुस्त कथन के रूप में तो होता ही है, तुकों का विरोध करते हुए तुकों के प्रति भयानक आसक्ति के रूप में भी होता है। आज के बहुचर्चित कवि धूमिल स्वयं इस लटकेबाजी के सर्वोत्तम उदाहरण हैं। शायद इसलिए वे हर एक कविता को एक वक्तव्य मानते हैं। (रामदरश मिश्र, आधुनिक हिंदी कविता, सर्जनात्मक संदर्भ) और कुछ ने इसे पाठकों को चौंकाने की तरकीब माना। किंतु वास्तव में यह न लटकेबाजी थी, न चौंकाने की तरकीब — वरन् नयी कविता की संदनहीन कलात्मक भाषा का मोहभंग था, जो कुछ लोगों को धूमिल की खरी, दुरुस्त और धारदार भाषा को स्वीकार करने में दिक्कत पैदा कर रहा था। धूमिल की कविताओं में से ऐसे कुछ वक्तव्य उदाहरण के लिये आप देख सकते हैं और खुद अंदाजा लगा सकते हैं कि वे जीवन के अनुभव को कितनी संवेदना की गहराई से पकड़ते हैं —

"क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इस का कोई खास मतलब होता है"

(संसद से सड़क तक, पृ. 10)

"मेरे लिये, हर आदमी एक जोड़ी जूता है
जो मेरे सामने
मरम्मत के लिये खड़ा है।"

(संसद से सड़क तक, पृ. 37)

"मगर मैं जानता हूँ कि मेरे देश का समाजवाद
माल गोदाम में लटकती हुई
उन बाल्टियों की तरह है जिस पर "आग" लिखा है
और उनमें बालू और पानी भरा है।"

(संसद से सड़क तक, पृ. 39)

"गीली मिट्टी की तरह हाँ-हाँ मत करो
तनो
अकड़ो
अमरबेलि की तरह मत जियो
जड़ पकड़ो

(संसद से सड़क तक, पृ. 48)

बिंब और प्रतीक

हालांकि कविता पर बातचीत करते हुए धूमिल ने कविता को बिंबों-प्रतीकों से मुक्त करने की बात कही है किंतु उनका तात्पर्य नयी कविता की बोझिल काव्य-भाषा और वैसे ही सूक्ष्म बिंब-प्रतीकों से छुटकारा पाने का था। क्योंकि नयी कविता के बिंब और प्रतीक अर्थ को उलझा कर संप्रेषण में बाधा ही पैदा करते हैं।

धूमिल ने अपनी कविता में बिंबों का बहुत इस्तेमाल किया है किन्तु ये बिंब जीवन के ठोस और जीवंत यथार्थ को अभिव्यक्त करने में सहायक हैं और पाठक पर इनका गहरा प्रभाव पड़ता है। जैसे — माँ का चेहरा/झुर्रियों की झोली बन गया है, या "हवा में फड़फड़ाते हुए हिंदुस्तान के नक्शे पर/गाय ने गोबर कर दिया है", या अभावग्रस्त किसान के चेहरे का यह बिंब — "एक ठंडी और गांठदार अंगुली माथा टटोलती है/सोच में डूबे हुए चेहरों और/वहाँ दरकी हुई ज़मीन में कोई फर्क नहीं है।"

वास्तव में धूमिल की कविता में जितने भी बिंब आते हैं वे जीवन के कटु यथार्थ को और धारदार बना कर पेश करते हैं। धूमिल का मकसद भी यही है कि यथार्थ को उसके नंगे रूप में, इस तरह पेश करना कि वह पाठक को कहीं विचलित करे, सोचने पर विवश करे कि इस कुव्यवस्था के लिये कौन जिम्मेदार है।

धूमिल की कविता में प्रतीक भी हैं। जैसे जंगल अव्यवस्था का प्रतीक है, भेड़ियां शोषक का, घास निरीह जनता की और रोशनी साहस की प्रतीक है। किन्तु धूमिल ने बहुत अधिक प्रतीकात्मक भाषा का इस्तेमाल नहीं किया है। जितने भी प्रतीक उन की कविता में आते हैं, वे सहज और सरल ढंग से समझ में आ जाते हैं।

काव्य-भाषा की विशेषताएँ

संक्षेप में धूमिल की काव्य-भाषा की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं —

1 यह भाषा जन-जीवन से पूरी तरह संपृक्त है
2 इसमें कोर्ट-कचहरी, यौन संबंधी शब्दों की बहुतायत है।

3 यह भाषा जीवन के ठोस यथार्थ को अभिव्यक्त करने में तथा संप्रेषित करने में सक्षम है।

4 इसमें प्रतीक और बिंब हैं किन्तु वे कथ्य को अधिक धारदार बना कर उसे संप्रेषित करने में सहायता करते हैं।

5 यह काव्य-भाषा सपाट है किन्तु सतही नहीं है। अर्थात् बात को सीधे-सीधे ढंग से अभिव्यक्त तो करती है किन्तु उस में कलात्मकता का अभाव नहीं है।

बोध प्रश्न 2

1 धूमिल कैसी काव्य-भाषा को अस्वीकार करते हैं और काव्य-भाषा का कौन-सा रूप उन्हें स्वीकार्य है? पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

2 धूमिल की काव्य-भाषा की कोई तीन विशेषताएँ लिखिए।

....

....

....

3 काव्य-भाषा में बिंब और प्रतीकों के बारे मे धूमिल के क्या विचार हैं? छह पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

34.6 काव्य पाठ एवं व्याख्या

अभी तक आपने धूमिल के काव्य की सामान्य विशेषताओं का अध्ययन कर लिया है। अब हम आपको धूमिल की एक कविता "पटकथा" का एक अंश काव्य पाठ के लिये दे रहे हैं। हम इस के एक अंश की व्याख्या भी करेंगे और बाकी अंशों की व्याख्या आप स्वयं करेंगे।

"पटकथा" का अंतिम अंश

मैं रोज़ देखता हूँ कि व्यवस्था की मशीन का
एक पुर्जा गरम हो कर
अलग छिटक गया है और
ठण्डा होते ही
फिर कुर्सी से चिपक गया है
उसमें न हया है
न दया है

नहीं — अपना कोई हमदर्द
यहाँ नहीं है। मैंने एक-एक को
परख लिया है।
मैंने हरेक को आवाज दी है
हरेक का दरवाज़ा खटखटाया है
मगर बेकार — मैंने जिसकी पूँछ
उठाई है उस को मादा
पाया है
वे सब के सब तिजोरियों के
दुभाषिये हैं।

वे वकील हैं। वैज्ञानिक हैं।
अध्यापक हैं। नेता हैं। दार्शनिक
हैं। लेखक हैं। कवि हैं। कलाकार हैं।
यानी कि —
कानून की भाषा बोलता हुआ
अपराधियों का एक संयुक्त परिवार है
भूख और भूख की आड़ में
चबायी गयी चीजों का अक्स
उनके दाँतों पर ढूँढ़ना
बेकार है। समाजवाद
उनकी जुबान पर अपनी सुरक्षा का
एक आधुनिक मुहावरा है।
मगर मैं जानता हूँ कि मेरे देश का समाजवाद
मालगोदाम में लटकती हुई
उन बाल्टियों की तरह है जिस पर "आग" लिखा है
और उनमें बालू और पानी भरा है।

यहाँ जनता एक गाड़ी है
एक ही संविधान के नीचे
भूख से रिरियाती हुई फैली हथेली का नाम
"दया" है
और भूख में
मुट्ठी का नाम
नक्सलबाड़ी है

मुझसे कहा गया कि संसद
देश की धड़कन को
प्रतिबिम्बित करने वाला दर्पण है
जनता को
जनता के विचारों का
नैतिक समर्पण है
लेकिन क्या यह सच है?
या यह सच है कि
अपने यहाँ संसद —
तेली की वह घानी है
जिसमें आधा तेल है
और आधा पानी है
और यदि यह सच नहीं है
तो वहाँ एक ईमानदार आदमी को
अपनी ईमानदारी का
मलाल क्यों है?
जिसने सत्य कह दिया है
उसका बुरा हाल क्यों है?

मैं अक्सर अपने-आपसे सवाल
करता हूँ जिसका मेरे पास
कोई उत्तर नहीं है
और आज तक —
नींद और नींद के बीच का जंगल काटते हुए
मैंने कई रातें जाग कर
गुजार दी हैं
हफ्तों पर हफ्ते तह किये हैं। उम्र के
निर्मम अकेले और बेहद अनमने क्षण
जिये हैं।
मेरे सामने वही चिरपरिचित अंधकार है
संशय की अनिश्चयग्रस्त ठण्डी मुद्राएँ हैं
हर तरफ
शब्दभेदी सन्नाटा है।
दरिद्र की व्यथा की तरह

उचाट और कूथता हुआ। घृणा में
डूबा हुआ सारा का सारा देश
पहले की ही तरह आज भी
मेरा कारागार है।

उद्धरण :

"वे सब के सब तिजोरियों के
दुभाषिये हैं।
वे वकील हैं। वैज्ञानिक हैं।
अध्यापक हैं। नेता हैं। दार्शनिक
हैं। लेखक हैं। कवि हैं। कलाकार हैं।
यानि कि —
कानून की भाषा बोलता हुआ
अपराधियों का एक संयुक्त परिवार है
भूख और भूख की आड़ में
चबायी गयी चीजों का अक्स
उनके दाँतों पर ढूँढ़ना
बेकार है। समाजवाद
उनकी जुबान पर अपनी सुरक्षा का
एक आधुनिक मुहावरा है।
मगर मैं जानता हूँ कि मेरे देश का समाजवाद
मालगोदाम में लटकती हुई
उन बाल्टियों की तरह है जिस पर "आग" लिखा है
और उनमें बालू और पानी भरा है।"

प्रसंग : उपर्लिखित उद्धरित अंश धूमिल की कविता "पटकथा" से लिया गया है। यह कविता धूमिल के प्रथम काव्य संग्रह "संसद से सड़क तक" में संकलित है।

यह कविता आज़ादी के बाद के भारत की स्थितियों का आकलन करती है। कवि का मानना है कि आज़ादी के बाद हमारे राजनेताओं ने जनता से किये गये वायदों को ताक में रख दिया और जनता की समस्याओं की तरफ से मुँह मोड़ लिया। फलतः जो आज़ादी हमें मिली और जिस आज़ादी से देश के लोगों ने यह आशाएँ बाँधी थी, कि हमें रोटी-कपड़ा-मकान मिलेगा, बेरोज़गारी दूर होगी, और देश खुशहाल बनेगा, आज़ादी के दस पंद्रह वर्षों में ही उनकी इन आशाओं पर पानी फिरगया। देश में भ्रष्टाचार, बेईमानी, झूठ, अनैतिकता, काला-बाज़ार महंगाई और मूल्यविहीनता की स्थितियाँ सिर चढ़ कर बोलने लगीं।

इन पंक्तियों में कवि ने देश की इन्हीं परिस्थितियों पर टिप्पणी की है।

व्याख्या : कवि कहता है कि सब के सब राजनीतिज्ञ, और बुद्धिजीवी वर्ग के लोग, जिनमें वकील, अध्यापक, दार्शनिक, कलाकार, लेखक, कवि और वैज्ञानिक शामिल हैं, अपने स्वार्थ से ही बंधे हुए हैं। उन्हें देश की, समाज की, मूल्यों की या संस्कृति की कोई चिंता नहीं है। ये सब ऐसे अपराधियों के संयुक्त परिवार के सदस्य हैं, जो बात तो न्याय और सत्य की करते हैं किंतु अंदर से भ्रष्टाचारी हैं, बेईमान हैं, उनके किसी प्रकार की ऐसी आशा करना कि ये समाज को सही दिशा देंगे — पूरी तरह बेकार है। और समाजवाद जैसी नारेबाजी कि इस देश में समाजवाद लाएँगे, वास्तव में जनता के साथ किया जा रहा धोखा है। क्योंकि कहने को तो ये लोग समाजवाद की बात करते हैं, देश में समाजवाद लाने के स्वप्न दिखाते हैं और माथे पर समाजवाद का बिल्ला लगाए हुए घूमते हैं, किंतु वास्तव में काम ये लोग प्रतिक्रियावादी करते हैं, भ्रष्टाचार, बेईमानी को बढ़ावा देते हैं। इसलिये कवि कहता है कि समाजवाद की बात करना बेकार है क्योंकि इस देश में समाजवाद उन बाल्टियों की तरह है जिन पर लिखा तो "आग" है किंतु उनके अंदर पानी और बालू भरा हुआ है। अर्थात् कवि कहना चाहता है कि इस देश में समाजवाद के नाम का भी स्वार्थ के लिये इस्तेमाल हो रहा है।

34.7 सारांश

इस इकाई में आपने साठोत्तरी कविता के महत्वपूर्ण कवि "धूमिल" के बारे में अध्ययन किया।

धूमिल जब रचनाकार्य में प्रवृत्त हुए, उस समय देश के सामने रोटी-कपड़ा-मकान, अशिक्षा, बेरोज़गारी आदि समस्याएँ मुँह बाए खड़ी थीं। भ्रष्टाचार, बेइमानी मूल्य विघटन का बाज़ार गर्म था। और राजनेता अपनी कुर्सी से चिपके हुए स्वार्थवंश देश की समस्याओं से आँखें मूंदे हुए थे। हिंदी कविता की "नयी कविता" धारा अभिजात पन के कारण जीवन की इन कठोर वास्तविकताओं को साफ-साफ अभिव्यक्त कर पाने में अक्षम थी। कविता और समाज का रिश्ता

चरमरा कर टूट चुका था। ऐसे में धूमिल ने कविता को उसके अभिजातपन से बाहर निकाल कर आम आदमी के सुख-दुख के साथ जोड़ने का प्रयत्न किया। कविता की सार्थकता के प्रति धूमिल बहुत चिंतित रहे।

धूमिल ने अपने काव्य के द्वारा राजनीतिक, सामाजिक स्थितियों में व्याप्त भ्रष्टाचार, अनैतिकता, बेईमानी को उघाड़ कर ... शब्दों में अभिव्यक्त किया। संसद, देश, समाजवाद, क्रांति, आदि हर विचार व चीज़ पर धूमिल ने अविश्वास प्रकट करते हुए प्रश्न चिन्ह लगाया। इस तरह धूमिल की कविता व्यवस्था से विद्रोह की कविता भी कही जा सकती है।

धूमिल का विद्रोही स्वर मूलतः व्यंग्यात्मक है। उन की व्यंग्योक्तियाँ एक बारगी पाठक को चौंका जाती है। किंतु धूमिल की कविता का लक्ष्य सिर्फ विद्रोह की नहीं है, अपितु इस विद्रोह के द्वारा वह इस बात के लिये आगाह करते हैं कि देश की इस दारूण, अव्यवस्था के प्रति हमें जागरूक होना चाहिए। निश्चिय रूप से धूमिल ने उस समय हिंदी कविता को सार्थकता के सवाल से जोड़ा जब हिंदी कविता अपनी सार्थकता व्यक्तिवाद के बंद घेरे में खोज रही थी।

भाषा के स्तर पर धूमिल की भाषा आम आदमी की भाषा है — बिंबों प्रतीकों से मुक्त जनजीवन की भाषा। इसीलिए वह संप्रेषणीय भी है। धूमिल की भाषा में गाँव, कचहरी, उर्दू-फ़ारसी के शब्द सहज रूप से आते हैं।

विचारधारा के स्तर पर धूमिल की कविता का झुकाव प्रगतिवाद की ओर है। हालाँकि धूमिल की विचारधारा बहुत स्पष्ट नहीं है किंतु वे व्यक्तिवादी तो नहीं ही हैं।

हिंदी कविता में धूमिल अपने नयेपन और विद्रोही तेवर के कारण अपना एक अलग स्थान रखते हैं।

34.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

संसद से सड़क तक, धूमिल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

दूसरे प्रजातंत्र की तलाश में धूमिल, कुमार कृष्ण, साहित्य निधि, नयी दिल्ली।

सुदामा पाण्डे की कविता में यथार्थबोध, डॉ. चमन लाल गुप्ता, भावना प्रकाशन, नयी दिल्ली।

34.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 संसद से सड़क तक, कल सुनना मुझे, सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र।

2 तब देश के राजनीतिक वातावरण में अव्यवस्था का बोलबाला था। आम आदमी का चुनाव, नेता और नेताओं की नीतियों पर से विश्वास उठ चुका था। क्योंकि चुनावों में धांधलियों, और नेताओं की दोगली नीतियों से जनता क्षुब्ध हो चुकी थी। संक्षेप में यह मोहभंग की स्थिति थी।

3 धूमिल की राजनीतिक चेतना अव्यवस्था, लोकतंत्र के भ्रष्टाचार, चुनाव, संसद, समाजवाद यानी कि सभी कुछ का विरोध करती है — किंतु इस व्यवस्था को कैसे परिवर्तित किया जाए इसके बारे में उनकी दृष्टि साफ नहीं है। क्योंकि समाजवाद और क्रांति का स्वप्न देखने वाले भी धूमिल की नजर में अकर्मक हैं।

4 **जनतंत्र**
जनतंत्र एक ऐसा तमाशा है
जिसकी जान
मदारी की भाषा है

समाजवाद
मगर मैं जानता हूँ कि मेरे देश का समाजवाद
मालगोदाम में लटकी हुई
उन बाल्टियों की तरह है जिस पर "आग" लिखा है
और उसमें बालू और पानी भरा है

आज़ादी
सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिसे एक पहिया ढोता है

देशभक्ति
जो दाँतों और दलदलों का दलाल है
वही देशभक्त है।

बोध प्रश्न 2

1 धूमिल प्रतीकों और बिंबों से लदी हुई ऐसी काव्य-भाषा को अस्वीकार करते हैं, जो जीवन के यथार्थ से कटी हुई हो और काव्य-भाषा को वह रूप उन्हें स्वीकार्य है जो जीवन को इसकी सम्पूर्णता में अभिव्यक्त कर सके।

2 1 यह भाषा जन-जीवन से सम्पृक्त है।
  2 यह भाषा जीवन के ठोस यथार्थ को अभिव्यक्त करने और संप्रेषित करने में सक्षम है।
  3 इसमें कोर्ट कचहरी और यौन संबंधी शब्दों की बहुतायत है।

3 काव्य-भाषा में बिंब और प्रतीक के बारे में धूमिल का विचार है कि काव्य-भाषा को बिंबों और प्रतीकों से मुक्त होना चाहिए तभी वह आम आदमी के सुख-दुख के साथ जुड़ सकती है और उसे अभिव्यक्ति दे सकती है। वास्तव में धूमिल नयी कविता की कलात्मक, मंजी हुई, बिंबों से उलझी हुई उस काव्य-भाषा को सामने रखकर यह विचार दे रहे थे जो व्यक्तिवादिता के घेरे में फंसी हुई शिल्प को ही मांजने में व्यस्त थी और जीवन से उसका नाता टूटता जा रहा था।

Notes

Notes

Notes

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

यू०जी०एच०आई०-02
हिन्दी में ऐच्छिक पाठ्यक्रम

खंड
8
प्रबंध काव्य

इकाई 35

प्रबंध काव्य : स्वरूप और विकास 5

इकाई 36

"कुरुक्षेत्र" का वाचन 24

इकाई 37

"कुरुक्षेत्र" का वस्तुपक्ष 57

इकाई 38

"कुरुक्षेत्र" का अभिव्यंजना शिल्प 72

इकाई 39

"कुरुक्षेत्र" का प्रतिपाद्य 89

खंड परिचय

हिन्दी ऐच्छिक पाठ्यक्रम-2 के आठवे खंड में आप प्रबंध काव्य के बारे में पढ़ेंगे। यह खंड आपको पिछले खंड से थोड़ा भिन्न प्रतीत होगा। पिछले खंडों में आप हिन्दी काव्य के किसी युग विशेष और उससे संबंधित प्रमुख रचनाकारों के बारे में पढ़ते रहे हैं। इस प्रक्रिया के दौरान आपने आदिकाल से लेकर वर्तमान समय तक की हिन्दी कविता के विभिन्न काव्यांदोलनों, उनकी सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों, प्रमुख कवियों तथा काव्यगत विशेषताओं का अध्ययन किया है। इस खंड में हमने एक कवि (रामधारी सिंह दिनकर) और उनकी एक ही रचना ("कुरुक्षेत्र") को लिया है। इस कवि केन्द्रित अथवा रचना केन्द्रित अध्ययन का निश्चित उद्देश्य है। इससे कृति विशेष अथवा रचनाकार विशेष का गहन अध्ययन करने का अवसर तो आपको मिलेगा ही, प्रबंध जैसे वृहत और महत्वपूर्ण काव्य रूप की संकल्पना, स्वरूप और विकास का परिचय भी मिलेगा। प्रबंध काव्य की रचना सभी समृद्ध साहित्यों में देखने को मिलती है। यही कारण है कि साहित्य चिंतक और आचार्य प्राचीन समय से ही इसके स्वरूप का चिंतन-विवेचन और विश्लेषण करते आए हैं। किसी समाज और संस्कृति विशेष के जातीय जीवन का समग्र चित्र उसके प्रबंध काव्यों में मौजूद होता है। उदाहरण के लिए संस्कृत की इस कहावत पर गौर किया जाना चाहिए—"यन्न भारते तन्न भारते" (जो महाभारत में नहीं है वह भारत में नहीं है) अर्थात भारतीय जीवन का समग्र चित्र महाभारत में प्रस्तुत हुआ है।

साहित्य का अत्यंत प्राचीन और महत्वपूर्ण रूप होने के नाते प्रबंध काव्य की जानकारी साहित्य के विद्यार्थी के लिए अपेक्षित है। प्रस्तुत खंड इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए तैयार किया गया है। प्रबंध काव्य की थोड़ी बहुत चर्चा पिछले खंडों में यत्र-तत्र होती रही है। इस खंड में इसकी विस्तृत और क्रमबद्ध विवरण दिया गया है। प्रबंध काव्य के स्वरूप और विकास से परिचित होने के साथ ही विद्यार्थी के लिए यह जानना भी आवश्यक है कि काव्य-रूप विशेष की रचना के जो सिद्धांत अथवा उसका जो स्वरूप एक बार निर्धारित हो जाता है वह हमेशा-हमेशा के लिए अंतिम नहीं होता। परिवर्तनशील होना विकास का लक्षण है। यही कारण है कि प्रबंध रचना का जो स्वरूप प्राचीन काल और मध्यकाल में निर्धारित हुआ था उसके साँचे और ढाँचे में देश और काल के दबाव से निरंतर परिवर्तन होते रहे। इन परिवर्तनों का एक रूप हमें यह दिखाई देता है कि कथात्मक प्रबंध काव्यों को पीछे धकेलते हुए आधुनिक युग में वैचारिक प्रबंध काव्यों का सृजन हुआ। इन वैचारिक प्रबंध काव्यों ने परंपरागत प्रबंध काव्य के सभी मान्य नियमों या अनुशासनों को चुनौती के स्तर पर तोड़ डाला। रामधारी सिंह दिनकर की कृति "कुरुक्षेत्र" के प्रबंधत्व के साँचे में एक ऐसी नवीनता, मौलिकता और अर्थवान वैचारिक प्रबंधात्मकता के दर्शन होते हैं, जिसे नवीन वैचारिक आंदोलनों की प्रबंध क्षमता का प्रमाण माना जा सकता है। जाहिर है कि "कुरुक्षेत्र" परंपरागत प्रबंध काव्य नहीं है। उसके प्रबंधत्व की एकता उसमें निहित विचारों को लेकर है कथात्मकता को लेकर नहीं।

इस खंड में 35 से 39 तक कुल पाँच इकाइयाँ हैं। इकाई 35 में प्रबंध काव्य की विस्तृत चर्चा है शेष चार इकाइयाँ दिनकर के काव्य और कुरुक्षेत्र पर केन्द्रित हैं। इकाई 36 में मूल पाठ का वाचन है। इकाई 37 में इसके वस्तु पक्ष अनुभूति और संवेदना तथा इकाई 38 में इसके शिल्पगत सौंदर्य को समग्रता में प्रस्तुत किया गया है। कृति के आंतरिक वैचारिक सौंदर्य को प्रस्तुत करने के लिए इकाई 39 में इसके प्रतिपाद्य पर विस्तार से विचार किया गया है। दृष्टि यही रही है कि 'कुरुक्षेत्र' के कथ्य अथवा उद्देश्य को स्पष्टता से प्रस्तुत करते हुए उसकी युगीन प्रासंगिकता पर भी विचार हो सके। 'कुरुक्षेत्र' की बनावट और बुनावट पाठकों का ध्यान आकृष्ट करती रही है इस दृष्टि से शिल्प पक्ष पर विचार करते समय इसके काव्य रूप, काव्य भाषा, बिंब एवं प्रतीक विधान अप्रस्तुत योजना, छंद एवं लय पर समग्रता से विचार किया गया है।

कृति के इस गहन अध्ययन के दौरान परंपरागत प्रबंध स्थापत्य में कवि द्वारा किए गए नवोन्मेष के विभिन्न पक्षों को रेखांकित किया गया है। इससे विद्यार्थी समझ सकेंगे कि परंपरागत प्रबंध के ढाँचे को तोड़ती हुई नवीन प्रबंध चेतना किस रूप में विकसित हुई है।

"काव्य वाचन" के लिए कुरुक्षेत्र के दो ही सर्ग दिए गए हैं शेष सर्गों का कथासार दिया गया है। परीक्षा में व्याख्या आपको इन दो सर्गों से ही करनी है। लेकिन आपको पूरी रचना कम से कम एक बार पढ़नी अवश्य चाहिए। यह आप अपने अध्ययन केन्द्र से अथवा अन्यत्र कहीं से प्राप्त करके पढ़ सकते हैं। उपयोगी पुस्तकों की सूची खंड के अंत में दी गई है। यह सभी इकाइयों से संबंधित है।

इस खंड से संबंधित ऑडियो पाठ "अन्याय के विरोध में खड़ा कवि दिनकर" भी तैयार किया गया है। इसे आप अध्ययन केन्द्र पर सुन सकते हैं।

इकाई 35 प्रबंध काव्य: स्वरूप और विकास

इकाई की रूपरेखा

35.0 उद्देश्य
35.1 प्रस्तावना
35.2 प्रबंध काव्य की अवधारणा और आधार
35.2.1 प्रबंध काव्य में कथा की स्थिति
35.2.2 प्रबंध और मुक्तक काव्य
35.2.3 प्रबंध काव्य की विशेषताएँ
35.3 प्रबंध काव्य के भेद
35.3.1 महाकाव्य के लक्षण
35.3.2 खंड काव्य परिभाषा और स्वरूप
35.4 महाकाव्य के दो प्रकार
35.5 संस्कृत महाकाव्य
35.6 हिंदी महाकाव्य परंपरा
35.7 आधुनिक युग के महाकाव्य
35.8 हिंदी में खंड काव्य परंपरा
35.9 नवीन प्रबंध चेतना
35.10 मूल्यांकन
35.11 सारांश
35.12 शब्दावली
35.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

35.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- प्रबंध काव्य की सैद्धांतिक-व्यावहारिक अवधारणाओं के विषय में बता सकेंगे
- प्रबंध काव्य में इतिवृत्त की भूमिका और कथागठन के सौंदर्यपरक आधारों से परिचय दे सकेंगे
- प्रबंध तथा मुक्तक काव्य के भेदों का उल्लेख कर सकेंगे
- प्रबंध काव्य की विशेषताएँ बता सकेंगे
- महाकाव्य तथा खंडकाव्य के स्वरूप तथा प्राचीन परंपरा की जानकारी दे सकेंगे
- हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में प्रबंध चेतना के बदलते हुए परिप्रेक्ष्य की जानकारी दे सकेंगे।

35.1 प्रस्तावना

इस पाठ्यक्रम के पिछले खंडों में आप हिंदी कविता और कवियों के बारे में विस्तार से पढ़ चुके हैं। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक के महत्वपूर्ण काव्यान्दोलनों और प्रवृत्तियों की जानकारी आप पा गए हैं। इन आंदोलनों से जुड़े प्रमुख कवियों और उनकी रचनाओं का परिचय भी आपको मिल गया है। इस अध्ययन के दौरान विभिन्न कवियों की रचनाओं के बारे में पढ़ते समय आपका परिचय प्रबंध काव्य और मुक्तक काव्य जैसे शब्दों से अवश्य हुआ होगा। आपने यह भी पढ़ा होगा कि भक्तिकाल में तुलसी, जायसी आदि कवियों ने श्रेष्ठ प्रबंध काव्यों की रचना की आपके मन में कहीं न कहीं यह जिज्ञासा अवश्य

होगी कि प्रबंध काव्य से वास्तव में तात्पर्य क्या है? मुक्तक काव्य से यह किस तरह भिन्न है? और फिर महाकाव्य, खंडकाव्य आदि जैसे शब्द किस बात के द्योतक हैं? वस्तुतः आपकी ऐसी ही जिज्ञासाओं का समाधान हमारी इस इकाई में मिलेगा। प्रबंध काव्य क्या है यह जानने के साथ ही आप प्राचीन भारतीय और पश्चिमी प्रबंध काव्य संबंधी दृष्टिकोणों से परिचित होंगे। इसके अलावा हिंदी की प्रबंध काव्य परंपरा का भी ज्ञान प्राप्त करेंगे। इस परंपरा के अध्ययन के दौरान आपको समय के साथ बदलती हुई प्रबंध दृष्टि और शिल्प का भी परिचय मिलेगा। आप यह समझ सकेंगे कि आधुनिक युग में आकर प्रबंध काव्य की अवधारणा और स्वरूप में किस तरह व्यापक परिवर्तन हुए हैं।

35.2 प्रबन्ध काव्य की अवधारणा और आधार

भारतीय काव्यशास्त्र में रचना बन्ध को दृष्टि में रखते हुए काव्य के दो भेद किए गए हैं—प्रबंध काव्य और मुक्तक काव्य। आचार्य वामन (740 ई.) ने प्रबंध काव्य को निबद्ध काव्य और मुक्तक को अनिबद्ध काव्य नाम दिया है। प्रबंध काव्य को सन्दर्भ काव्य भी कहा गया है। इस तथ्य को यहां अत्यंत आग्रह के साथ सामने रखा गया है कि प्रबंध काव्य ही काव्य का सर्वश्रेष्ठ रूप है। प्रबंध काव्य ही महाकवियों का कीर्तिकंद अर्थात उनके यश का मूल आधार है। भारतीय परम्परा ने आरम्भ से ही प्रबंध काव्य के अन्तर्गत महाकाव्य, प्रबंध काव्य, एकार्थकाव्य, कथाकाव्य तथा चरितकाव्य का अन्तर्भाव माना है साथ ही यह घोषित तौर पर कहा है कि मुक्तक रचना में सिद्धि प्राप्त करने के उपरान्त ही समर्थ कवि प्रबंध रचना में सफलता प्राप्त कर सकता है। जीवन की आवश्यकता और वैविध्य को समाहित करने के कारण प्रबन्ध काव्य में नाना भावों और रसों का वर्णन सम्भव है, मुक्तक काव्य में यह सम्भव नहीं है। जीवन की अनेक परिस्थितियों, चित्त वृतियों, अवस्थाओं का विस्तृतः वर्णन प्रबंध में सम्भव है, किन्तु एक साथ परिस्थिति और मनः स्थिति के विस्फोट वाले मुक्तक में यह सम्भव ही नहीं है। प्रबंध निरन्तर प्रवाहमान रसधारा है और मुक्तक इसके एक घूँट का आस्वाद। मुक्तक एक मनः स्थिति की गहन अभिव्यक्ति है, प्रबंध सम्पूर्ण जीवन की।

प्रबंध काव्य में कथा और अन्य उपकरणों का पूर्वापर तारतम्य रहता है किन्तु मुक्तक में तारतम्यता का अभाव। प्रबंध काव्य और मुक्तक के पार्थक्य और महत्व पर विचार करते हुए आचार्य रामचन्द शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास में एक जगह लिखा है "मुक्तक में प्रबंध के समान रस की धारा नहीं रहती जिसमें कथा प्रसंग की परिस्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक मगन हो जाता है और हृदय में एक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता है इसमें तो रस के ऐसे छीटे पड़ते हैं जिनसे हृदय कलिका थोड़ी देर के लिए खिल जाती है यदि प्रबंध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता" इस प्रकार रामचन्द्र शुक्ल ने जिस काव्य रूप की अनेक विशेषताओं का निरूपण करते हुए सबसे अधिक महत्व दिया है—वह है प्रबंध काव्य।

इतिवृत्त (कथा और विचार) का आधार लेकर ही प्रबंध काव्य का निर्माण होता है। यही कारण है कि सबसे प्रथम विचारणीय वस्तु वही है। "प्रबंध काव्य में इतिवृत्त की गति इस ढंग से होनी चाहिए कि मार्ग में जीवन की ऐसी बहुत सी दशाएँ पड़ जाएँ जिनमें मनुष्य के हृदय में भिन्न भिन्न भावों का स्फुरण होता है और जिनका सामान्य अनुभव प्रत्येक मनुष्य स्वभावतः कर सकता है"। —आचार्य शुक्ल "जायसी ग्रंथावली" की भूमिका। यदि भावों को उत्कर्ष प्रदान करने वाले ऐसे हृदय संवादी प्रसंग किसी इतिवृत्त में सन्निविष्ट रहेंगे तो उसमें रसोद्बोधन की अच्छी क्षमता का परिचय मिलेगा। यदि प्रबंध काव्य में मार्मिक स्थान पर्याप्त होंगे तो बीच-बीच में आने वाले नीरस इतिहास वर्णन भी सम्पूर्ण प्रबंध की शक्ति से रसवान हो उठेंगे।

35.2.1 प्रबंध काव्य में कथा की स्थिति

प्रबंध काव्य की कला के संगठन में सबसे अधिक महत्वपूर्ण और अनिवार्य तत्व हैं—घटनाओं-प्रसंगों, चरित्र के वृत्तों का संबंध निर्वाह। सम्बन्ध निर्वाह में पहले तो यह देखना चाहिए कि प्रारंभिक कथाओं का जोड़ अधिकारिक वस्तु के साथ अच्छी तरह मिला हुआ है या नहीं अर्थात् उनका आधिकारिक वस्तु के साथ ऐसा संबंध है कि नहीं जिससे उनकी गति में कुछ सहायता पहुँचती हो" प्रासंगिक वस्तु ऐसी होनी चाहिए जो

आधिकारिक कथा की गति को आगे बढ़ाए तथा कथा को नाटकीय मोड़ दे। कथा का सीधा संबंध नायक से है और नायक के कार्य व्यापार की सिद्धि ही प्रधान रस का निर्धारण करती है।

यूनानी आचार्य अरस्तू ने जिसे त्रासदी तथा महाकाव्य दोनों में कार्यान्विय (अन्विति त्रयी या यूनिटी ऑफ एक्शन) कहा है उसका निर्वाह जितना नाटक में आवश्यक है उतना ही प्रबंधकाव्य में। जैसे दृश्य काव्य का वैसे ही प्रत्येक घटनाप्रधान प्रबंधकाव्य का एक कार्य होता है जिसके लिए घटनाओं का सारा आयोजन होता है जैसे "रामचरित मानस" में रावण का वध। अरस्तू के अनुसार कथावस्तु के आदि, मध्य और अन्त तीनों का गठित कलात्मक ढाँचा कार्यान्वियन के अन्तर्गत ही स्पष्टता के आना चाहिए। आचार्य शुक्ल भी इस व्यवस्था से पूरी तरह सहमत हैं।

प्रबंध काव्य के भीतर नियोजित कार्य की सामाजिकता और नैतिकता में मानव को दिशा दृष्टि देने वाली संदेश योजना (Vision) हो। प्रबंध काव्य किसी जाति के सांस्कृतिक संवेदनात्मक मूल्यों का प्राण प्रतिबिंब होता है अतः मानव के चेतन अवचेतन के अखण्ड और खण्डित बिंब उसमें माला के मोतियों की भांति गुँथे होते हैं। गतिशील परम्पराओं का इतिहास, दर्शन आदि उसमें धड़कता मिलता है। इसलिए प्रबंध काव्य का विचारणीय विषय है—पौराणिक, ऐतिहासिक, अर्द्ध-ऐतिहासिक, काल्पनिक कथाओं, विराट मिथकों द्वारा जातीय स्मृतियों को खटखटाकर जगाना और सक्रिय करना। इस अर्थ में प्रबंध काव्य का एक भेद महाकाव्य जातीय चेतना का सम्पूर्णता में प्रतिनिधि होता है।.

प्रबंध काव्य के अन्तर्गत विशेष रूप से विचारणीय बात है—इतिवृत्त (कथा) के अन्तर्गत आए सभी प्रसंगों, प्रकरणों का उचित निर्वाह अर्थात् वर्णन कौशल द्वारा उनकी मानसिकता या आन्तरिकता का पूर्ण उद्घाटन। "प्रबंधकार कवि की भावुकता का सबसे अधिक पता यह देखने में चल सकता है कि वह किसी आख्यान के अधिक मर्मस्पर्शी स्थलों को पहचान सका है या नहीं।" प्रबंधकार कथा गठन के साथ मार्मिकता और कथा की नवीन उद्भावनाओं को आदर देता है। एक ही कथा हर युग में परिवेश के दबाव से नए नए रूप धारण करती रहती है जो रामकथा बाल्मीकि रामायण में है वह महामानव राम की कथा है। पर जो कथा तुलसीदास के "रामचरितमानस" में है वह दिव्य, भक्तवत्सल, उद्धारक भक्ति-रस-सागर राम की कथा है। वही रामकथा सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला की "राम की शक्ति पूजा" नामक रचना में आधुनिक अंतर्द्वंदों तनावों से ग्रस्त साधारण मानव की अपराजेय शक्ति की प्राण गाथा है।

प्रबंधकाव्य में मार्मिक प्रसंगों का विस्तार अनेक रूपों में होता है। समग्र कथा विधान कलात्मकता से गठित रूप प्रबंध है और उसके एक अंग या अंश का नाम प्रसंग या प्रकरण है। कथा में प्रसंग विशेष के उत्कर्ष से सम्पूर्ण प्रबंध चमक उठता है—जैसे रामचरित मानस में लक्ष्मण परशुराम के संवाद की योजना। प्रायः कवि कथा में भावपूर्ण स्थिति की उदभावना करता है—जैसे लक्ष्मण के मूर्छित हो जाने पर भाई के लिए राम का विलाप।

प्रबंध काव्य के सम्पूर्ण कौशल को प्रबंध वक्रता के अन्तर्गत आचार्य कुन्तक ने प्रस्तुत किया है। प्रबंध वक्रता की इस परिधि में—प्रबंधकाव्य—(महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक आदि) का वस्तु कौशल निहित है। इसका आधार इतना व्यापक है कि इसमें प्रबंध कल्पना का समग्र सौन्दर्य समाहित है।

प्रायः समर्थ प्रबंध काव्य अपनी मौलिक प्रतिभा से प्रसिद्ध कथा के रस या ध्वन्यर्थ में परिवर्तन करने के अभिप्राय से समस्त कथा विधान में आमूल परिवर्तन करता है और ऐसा करते ही समस्त प्रबंध कल्पना में नवीनता का उदय होता है। उदाहरणार्थ "रामायण" का प्रधान रस करुण अथवा शान्त है। किंतु तुलसी के "रामचरितमानस" का प्रधान रस भक्ति रस है। केशव की "राम चन्द्रिका" का वीर और मैथिलीशरणगुप्त के "साकेत" का श्रृंगार।

चरित्र प्रधान प्रबंध काव्य में कुशल कवि कथा को एक नाटकीय मोड़ के साथ समाप्त कर देता है—जैसे भारवि के किरातार्जुनीयम में अर्जुन किरातवेशधारी शिव से युद्ध में पराक्रम प्रदर्शित करके पाशुपत अस्त्र को पाते हैं—वहीं नायक के चरमोत्कर्ष पर कथा समाप्त हो जाती है। ऐसे ही मैथिलीशरणगुप्त ने "जयद्रथवध" नामक खंडकाव्य में अर्जुन द्वारा जयद्रथ वध दिखाकर कथा को समाप्त कर दिया। जयद्रथवध के उपरांत दुर्योधन के नाश की अन्य कथाओं का स्पर्श तक नहीं किया है।

प्रबंधकार कथा के मध्य में ही किसी अन्य कार्य द्वारा प्रधान कार्य की सिद्धि दिखाकर कथा में आकस्मिकता, एकाग्रता, नाटकीय मोड़ ला देता है–जैसे महाकवि माघ ने "शिशुपाल वध" महाकाव्य में नाटकीय चमत्कार से शिशुपाल वध दिखाकर कथा को समाप्त कर दिया है।

कभी-कभार प्रधान कथा के द्योतक नामकरण में ही कवि प्रबंध चमत्कार दिखा देता है। कई बार वह कथा का नामकरण इस कौशल से करता है कि नाम में ही कथा का मूल रहस्य निहित रहता है जैसे जयशंकर प्रसाद की कृति "कामायनी" रामधारीसिंह दिनकर की कृति "उर्वशी" और "कुरुक्षेत्र" आदि। उदाहरण के लिए कामायनी में "काम" अर्थात् जीवन के मंगल की इच्छा। यह इच्छा ज्ञान, भाव और कर्म के सामंजस्य से ही सम्भव है और यही कामायनी का प्रधान संदेश है। "कुरुक्षेत्र" नाम कथा के स्थान ऐक्य का ध्वन्यर्थ लिए हुए है–पूरा संवाद वही घटित होता है। सार-संक्षेप यह कि एक ही कथा का आश्रय लेकर प्रबंधकवि प्रतिभा के चमत्कार से एक दूसरे से सर्वथा विलक्षण प्रबंध काव्य रचते हैं। इसे ही प्रबंध-ध्वनि भी कहा जाता है। आचार्य आनंदवर्धन का प्रसिद्ध मत है कि कवि का इतिवृत्त निर्वहण में कोई प्रयोजन नहीं। काव्य का प्राण तो वह ध्वन्यर्थ है जिसके माध्यम से कवि कथा का उपयोग करता है।

कथा के इन मार्मिक प्रसंगों का विस्तार प्रबंध काव्यों में दो प्रकार से होता है (1) कवि द्वारा वस्तु वर्णन के रूप में (2) पात्र द्वारा भाव-व्यंजना के रूप में। वस्तु वर्णन में सच्चा कवि अर्थ ग्रहण के साथ बिंब ग्रहण भी करता है, केवल अर्थ बोध करने से उसका कार्य नहीं चलता। किन्तु पात्र या पात्रों के द्वारा जो भाव व्यंजना की जाती है उसका संबंध मानव जीवन के भावों की व्यापकता, वास्तविकता और संवेदनात्मक क्षमता से है।

ध्यान देने की बात यह भी है कि हिन्दी प्रबंध काव्य का आदर्श है "रामचरित मानस" जिसे कवि ने स्वयं "सप्त प्रबंध सुभग सोपाना" कहा है। इसीलिए "रामचरित मानस" पर विचार करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रबंध काव्य के एक महत्वपूर्ण अवयव के रूप में "संवाद" पर ध्यान केंद्रित किया है। कारण, प्रत्येक प्रबंध काव्य में पात्रों की योजना के साथ संवादों का गहन विनियोग कवि को करना ही पड़ता है। यदि इन संवादों में केवल "चमत्कार" रहता है तो ये रचना का उत्कर्ष नहीं करते। पर यदि वो भाव प्रेरित हों और चमत्कारों के साथ पात्रों की भाव व्यंजना में भी समर्थ हों तो उनमें कवि प्रतिभा का सर्जनात्मक सौन्दर्य दिखाई देता है। उदाहरणार्थ, रामधारीसिंह दिनकर के प्रबंधकाव्य "कुरुक्षेत्र" में भीष्म पितामह तथा धर्मराज युधिष्ठर के संवादों को देखा जा सकता है इन्हीं संवादों पर कृति की वैचारिकता केन्द्रित है। फलतः कुरुक्षेत्र के प्रबंध की एकता उसके विचारों पर केंद्रित है स्थूल कथा पर नहीं।

प्रबंध काव्य में कथा का परिवेश ही कथा की गति को नियंत्रित करता है। वह मानव जीवन की अनेक दशाओं के साथ जीवन जगत की अनेक वास्तविक झलकियाँ प्रस्तुत करता है। दृश्यों को इसी विविधता से वास्तविक जीवन के अर्थ सन्दर्भ, परिवेशगत कोण खुलते हैं ध्यान रहे यह कार्य कथात्मक प्रबंध और वर्णात्मक प्रबंध दोनों ही करते हैं। आधुनिक युग में आकर "वैचारिक प्रबंध" को स्थान मिला है, जिसमें निराला का "तुलसीदास", दिनकर का "कुरुक्षेत्र", पन्त का "लोकायतन" आदि उल्लेखनीय हैं। आचार्य शुक्ल ने विस्तार और दृष्टि को ध्यान में रखकर प्रबंध काव्य के दो भेद ही स्वीकार किए–महाकाव्य और खण्डकाव्य।

35.2.2 प्रबंध और मुक्तक

मुक्तक और प्रबंध काव्य के अंतर पर भी विचार करना आवश्यक है। मुक्तक में कथाक्रम नहीं रहता है–प्रबंध काव्य में रहता है। मुक्तक में जीवन चर्चा का संगठित क्रम लक्षित नहीं होता, केवल एक भाव की गहनता या सघन खण्ड दृश्य ही सामने आता है। किन्तु वह भाव दृश्य बहुत मार्मिक एवं प्रभावी होता है। साथ ही पाठक का हृदय पूरी तरह इसमें लीन हो जाता है। विस्तार के अभाव में मुक्तक "मनोरम वस्तुओं और व्यापारों का एक छोटा सा स्तबक कल्पित करके अत्यंत संक्षिप्त और सशक्त भाषा में प्रदर्शित करना पड़ता है" यही बात है कि सफल मुक्तकों की रचना के लिए जहाँ कवि में समर्थ रूप विधायिनी कल्पना की समाहार शक्ति होनी चाहिए–वहीं भाषा की पकड़, गठन, चयन और समास शक्ति भी। प्रबंध पक्ष में विभाव पक्ष का विस्तार रहता है, मुक्तक में भाव विस्फोट की गहराई। प्रबंध काव्य भाव की स्थायी दशा है मुक्तक क्षणिक दशा।

कहना न होगा कि प्राचीन मुक्तकों से प्रगीत काव्य को भिन्न समझना चाहिए। इसका कारण है कि प्रबंध काव्य और मुक्तक काव्य से भिन्न गीतिकाव्य की एक समृद्ध परम्परा निरन्तर मिलती है। गीति काव्य का मूल स्रोत जनता के बीच स्वतः स्फूर्त, आत्मभिव्यक्ति प्रधान, संगीमय मनोराग हैं जो चिरकाल से जनता में प्रचलित लोग गीतों के रूप में रहे हैं। किसी भी देश की मूल आन्तरिक लय को ठीक-ठीक समझने के लिए इन गीतों पर ध्यान देना आवश्यक है। तुलसी की "विनय पत्रिका" कबीर की "रमैनी" सूर का "सूरसागर" और मीरा के पद इस दृष्टि से दर्शनीय हैं।

आधुनिक हिन्दी कविता में प्रगीत मुक्तकों (lyrics) का प्रचार प्रसार पश्चिम के अनुकरण पर बढ़ा है। मैथिलीशरणगुप्त के "साकेत" की चर्चा में आचार्य शुक्ल ने कहा है कि उसकी रचना उस समय हुई जब उनकी प्रवृत्ति देखा देखी अंग्रेजी ढंग के फुटकल प्रगीत काव्य (lyric) की ओर हो चुकी थी। हिन्दी के छायावाद की मूल प्रवृत्ति प्रगीतों की ओर है और प्रगीतों के भेदों-प्रभेदों पर कवियों ने मूल ध्यान केंद्रित किया है।

केवल पद्यबद्ध अथवा सर्गबद्ध होने से ही कोई काव्य प्रबंध काव्य नहीं हो जाता। क्योंकि इतिहास, पुराण, दर्शन और शास्त्र के ग्रन्थ भी पद्यबद्ध तथा सर्गों में विभक्त होते हैं, किन्तु वे काव्य नहीं कहलाते। काव्य कहलाने के लिए उनका रसात्मक होना बहुत आवश्यक है। प्रबन्धात्मक कथाएँ भी यदि अनलंकृत, अरसात्मक या इतिवृत्तात्मक हों तो उन्हें काव्य नहीं कहा जा सकता। डा. शंभूनाथ सिंह के अनुसार "प्रबंध काव्य कथा काव्य के अधिक निकट है क्योंकि दोनों में अलंकृत शैली और रसात्मक कथा होती है, किन्तु इन दोनों काव्य रूपों में भी उद्देश्य, दृष्टिकोण और विषयवस्तु संबंधी मौलिक भेद होता है। इन दोनों काव्य रूपों में जितनी बाह्य: समानता दिखाई पड़ती है, उनकी अंतरात्मा में उतना ही अंतर भी है" रामचन्द्र शुक्ल ने प्रसंगात लिखा है "प्रबंध काव्य में मानव जीवन का पूर्ण दृश्य होता है। उसमें घटनाओं की संबद्ध श्रृंखला और स्वाभाविक क्रम के ठीक-ठीक निर्वाह के साथ हृदय को स्पर्श करने वाले उसे नाना भावों का रसात्मक अनुभव कराने वाले प्रसंगों का समावेश होना चाहिए। इतिवृत्त मात्र के निर्वाह से रसानुभव नहीं कराया जा सकता"। इस परिभाषा से प्रबंध काव्य और इतिवृत्तात्मक कथासाहित्य–धर्मकथा, सकलकथा, खंडकाव्य आदि का भेद तो स्पष्ट हो जाता है, पर प्रबंध काव्य और रसात्मक कथाकाव्य का मौलिक भेद स्पष्ट नहीं होता है। संस्कृत के आचार्यों में केवल रुद्रट ने इस भेद की ओर ध्यान दिया है और स्पष्ट रूप में प्रबंध के भेद–प्रबंध काव्य और कथा आख्यायिका निर्दिष्ट किए हैं और कथाकाव्य की रोमांसिकता, उसके प्रेमाख्यानक स्वरूप तथा उसके कथा शरीर के जटिल विधान की ओर संकेत कर दिया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रकार के रोमानी कथाकाव्य से भिन्न जो रसात्मक प्रबंध हों, उन्हें ही प्रबंध काव्य कहना चाहिए।

35.2.3 प्रबंध काव्य की विशेषताएँ

भारतीय काव्यशास्त्र में प्रबंध काव्य को परिभाषित करने का प्रयत्न प्रायः नहीं हुआ है लेकिन उसके स्वरूप के विश्लेषण का प्रयास किया गया है। सबसे पहले वामन ने मुक्तक को अनिबद्ध तथा प्रबन्ध को निबद्ध कहा है और यह विश्लेषण अत्यंत सार्थक है–"अनिबद्ध मुक्तक निबद्ध प्रबन्ध रूपमिति प्रसिद्धिः।" निबद्धता से तात्पर्य है कथा का बंधन और यह प्रबंध के अस्तित्व के लिए पहली शर्त है। कथा सूत्र में बँधे रहने के कारण छन्दों का पूर्वापर क्रम से निबद्ध रहना भी स्वतः सिद्ध हो जाता है इस प्रकार प्रबन्ध काव्य को निबद्ध मान लेने पर उसके मूलभूत तत्वों का उसमें अपने आप समाहार हो जाता है। भोज ने प्रबन्ध काव्य के स्वरूप का अपेक्षया विस्तार से विश्लेषण किया है, किन्तु प्रबन्ध काव्य को महाकाव्य मान लेने के कारण यह सारा विश्लेषण महाकाव्य का होकर रह गया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रबन्ध काव्य के लिए इतिवृत्त को स्वीकार करते हैं–"रसानुकूल परिस्थिति तक श्रोता को पहुँचाने के लिए बीच-बीच में घटनाओं के सामान्य कथन या उल्लेखमात्र को ही शुद्ध इतिवृत्त की गति इस ढंग से होनी चाहिए कि मार्ग में जीवन की ऐसी बहुत सी दशाएँ पड़ जाएँ जिनमें मनुष्य के हृदय में भिन्न-भिन्न भावों का स्फुरण होता है और जिनका सामान्य अनुभव प्रत्येक मनुष्य स्वभावतः कर सकता है" "जायसी ग्रंथावली" भूमिका। शुक्लजी ने इतिवृत्त के अतिरिक्त प्रबन्धकाव्यों में उसके विन्यास पर भी उतना ही बल दिया है। उन्हें, प्रबन्ध काव्य में कथा के वर्णन के प्रसंग में जीवन के विविध पक्षों आंतरिक एवं बाह्य–का चित्रण अभीष्ट है।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने कथा के साथ क्रमबद्धता भी संयुक्त कर दी है–"जिस रचना में कोई कथा क्रमबद्ध कही जाती है, वह प्रवन्ध काव्य कहलाती है।" डा. नगेन्द्र का कहना है कि "प्रबन्ध में घटनाओं का क्रमिक बंधन सबसे पहली चीज है" वस्तुतः प्रबन्ध काव्य का कथानक घटनाओं के समुदाय से ही निर्मित होता है और उनका संयोजन उचित पूर्वापर संबंध के अनुसार किया जाता है। वे इस काव्य रूप में कथा के अतिरिक्त महत्व को मानते हैं।

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी प्रबन्ध काव्य में कई तत्व मानते हैं–विस्तार, कथानक, चरित्र-चित्रण, अंतः सौन्दर्य एवं जीवन को पूर्णतः चित्रित करने की क्षमता आदि। पुनः डा. वासुदेवशरण अग्रवाल ने श्रेष्ठ प्रबन्ध काव्य के कई गुणों की गणना की है–"मार्मिक स्थलों की बहुलता, उदात्त ऐतिहासिक कथावस्तु, भाषा की विलक्षण शक्ति, जीवन के गंभीर सर्वांगीण अनुभव, दार्शनिक चिंतन।" स्पष्टतः ये विशेषताएं प्रबन्ध काव्य के श्रेष्ठतम रूप महाकाव्य में ही पूर्ण रूपेण पायी जाती हैं।

बोध प्रश्न 1

क) भारतीय काव्यशास्त्र में रचना बंध की दृष्टि से काव्य के दो भेद कौन से हैं।

....

....

ख) प्रबन्ध काव्य के स्वरूप के बारे में 8 पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

ग) प्रबंध काव्य में कथा की स्थिति क्या है? पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

घ) प्रबंध काव्य के संपूर्ण कौशल को कुंतक ने किस नाम से प्रस्तुत किया है (सही या गलत) का निशान लगाकर उत्तर दीजिए–

1 अलंकार

2 प्रबन्ध वक्रता

3 रस दशा

ङ) प्रबन्ध काव्य और मुक्तक काव्य में क्या अंतर है? पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

च) प्रबन्ध काव्य की विशेषताओं पर पाँच पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

35.3 प्रबन्ध काव्य के भेद

प्रबन्ध काव्य के दो भेद बतलाये जाते हैं—महाकाव्य और खंडकाव्य।

35.3.1 महाकाव्य के लक्षण

प्राचीन आलंकारिक दण्डी के अनुसार महाकाव्य वह है जिसका कथानक इतिहास या कथा से उद्भूत हो, जिसका नायक चतुर और उदात्त हो, जिसका उद्देश्य चतुर्वर्ग फल की प्राप्ति हो, जो अलंकृत भावों और रसों से भरा हुआ और बड़े आकार का, सर्गबद्ध और पंच संधियों से युक्त काव्य हो। स्पष्ट ही, दण्डी की परिभाषा में उनके लक्ष्यग्रन्थ महाभारत और रामायण नहीं, बल्कि अश्वघोष और कालिदास के महाकाव्य हैं। बाद में विश्वनाथ ने भी अपनी परिभाषा में महाकाव्य के बाह्य लक्षणों का ही अधिक निर्देश किया है, उसके मूल तत्वों पर आधारित स्थायी लक्षणों का नहीं। उन्होंने यह भी शर्त लगा दी कि महाकाव्य का नायक कुलीन क्षत्रिय या देवता होना चाहिए और महाकाव्य में आठ या आठ से अधिक सर्ग होने चाहिए। स्पष्ट ही, संस्कृत के आचार्यों में महाकाव्य की आत्मा को पहचाना और समझा।

पाश्चात्य आचार्यों में अरस्तू ने महाकाव्य के संबंध में सबसे अधिक विचार किया है। उनके अनुसार महाकाव्य वह काव्य रूप है, जिसकी कथा में अनुकरण का तत्व होता है, जिसका कथानक दु:खान्त नाटक के समान अन्विति युक्त और संपूर्ण घटना प्रसंग का वर्णन करने वाला होता है इसके अतिरिक्त उसमें कथानक का आदि, मध्य और अंत युक्त जीवन विकास दिखाया जाता है जिससे वह जीवित प्राणी की तरह पूर्ण प्रतीत होता है। महाकाव्य में आनन्द प्रदान करने की पूर्ण क्षमता होती है। उसका रूप गठन इतिहास से बहुत भिन्न होता है क्योंकि कवि महाकाव्य की सामग्री का इतिहास से इस प्रकार चयन करता है कि उसमें संबंधयुक्त अन्विति दिखलायी पड़ती है जो इतिहास में नहीं होती। स्पष्ट ही अरस्तू की महाकाव्य वाली परिभाषा विकसनशील महाकाव्यों के आधार पर निर्मित हुई है और भारतीय आचार्यों की परिभाषा की अपेक्षा अधिक व्यापक और श्रेष्ठ है। बाद में प्रसिद्ध फ्रांसीसी विचारक वाल्टेयर ने महाकाव्य के लिए केवल एक शर्त रखी है और वह है महाकाव्य में घटना का महती या गरिमामयी होना। उनके अनुसार संकीर्ण मानदंड से महाकाव्य का स्वरूप निर्णय नहीं हो सकता उन्होंने लिखा है—"ऐसे काव्यग्रंथ ही महाकाव्य नाम के अधिकारी हैं जिनमें किसी महती घटना का वर्णन होता है और जिन्हें समाज व्यवहारत: महाकाव्य मानने लगते हैं। चाहे उसकी घटना सरल हो या जटिल चाहे एक स्थान पर घटित होने वाली हो या उसका नायक संसारभर में भटकता फिरे, चाहे उसमें एक नायक हो या अनेक, चाहे उसका नायक अभागा हो या सौभाग्यशाली, भयंकर क्रोधी हो या धर्मात्मा, चाहे वह राजा हो या सेनापति या इनमें से कुछ भी न हो, चाहे उसके दृश्य महासागर के हों या धरती के, स्वर्ग के हों या नरक के इससे कुछ नहीं बनता—बिगड़ता।" अंग्रेजी के एक अन्य आलोचक एबर क्रोम्बी का कहना है कि "बड़े आकार के कारण ही कोई काव्य महाकाव्य नहीं हो जाता। जब उसकी शैली महाकाव्य की शैली होगी तभी उसे महाकाव्य माना जायगा और वह शैली कवि की कल्पना, विचारधारा तथा उनकी अभिव्यक्ति में जुड़ी रहती है। इस शैली के काव्य हमें ऐसे लोक में पहुंचा देते हैं जहाँ कुछ भी महत्वहीन और असारगर्भित नहीं होता"।

आधुनिक युग में तीन भारतीय विचारकों ने महाकाव्य की आत्मा को ठीक-ठीक समझा और समझाया है। वे तीन हैं सर्वश्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर, नन्ददुलारे वाजपेयी और

रामधारीसिंह दिनकर। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अनुसार वर्णन के गुण से जो काव्य पाठकों को उत्तेजित कर सकता है, करुणाभिभूत, चकित स्तंभित, कौतूहल से युक्त और अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष कर सकता है, वह महाकाव्य है और उसका रचयिता महाकवि। उनके अनुसार महाकाव्य में एक महत चरित्र होना चाहिए और उसकी महत चरित्र का एक महत कार्य और महत अनुष्ठान होना चाहिए। महाकाव्य की आत्मा का कवि ठाकुर से भी अधिक गहराई से साक्षात्कार किया है आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने। उनके अनुसार–"महाकाव्य की रचना जातीय संस्कृति के किसी महाप्रवाह, सभ्यता के उद्गम, सगम प्रलय, किसी महत चरित के विराट उत्कर्ष अथवा आत्मतत्व के किसी चिर अनुभूत रहस्य की प्रदर्शित करने के लिए की जाती है। महाकाव्य संबंधी इस मत का समर्थन कवि रामधारीसिंह "दिनकर" ने भी किया है। उनके अनुसार "महाकाव्य तभी लिखा जाता है जबकि युग की अनेक विचारधाराएँ वेग से बहती हुई किसी महासमुद्र में मिलना चाहती हैं। जब ऐसी अनेक धाराएँ वेगवत प्रवाह में होती हैं, तभी महाकाव्य की रचना का समय आता है और जो कवि उनके महामिलन के लिए सागर का निर्माण कर सकता है, वही महाकाव्य लिखने का अधिकारी होता है। महाकाव्य की रचना मनुष्य को विकल करने वाली अनेक भावधाराओं के बीच सामंजस्य लाने का प्रयास है, महाकाव्य की रचना समय के परस्पर विरोधी प्रश्नों के समाधान की चेष्टा है। जब परंपरा से आनेवाले महान प्रश्नों और भावों की अनुभूति में परिवर्तन होता है, तब मनुष्य का संस्कार भी परिवर्तित होने लगता है तथा इस परिवर्तित संस्कार को चित्रित करने के लिए ही महाकाव्य लिखे जाते हैं"।

35.3.2 खण्ड काव्य : परिभाषा और स्वरूप

खण्ड काव्य प्रबन्ध काव्य का ही एक विशेष रूप है। आचार्य रुद्रट ने सभी प्रबन्धों को महत और लघु इन दो भागों में विभक्त किया है। वह लघु काव्य ही खण्ड काव्य है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार किसी भाषा या उपभाषा में सर्गबद्ध एवं एक कथा का निरुपक पद्यग्रन्थ जिसमें सभी संधियाँ न हों, "काव्य" कहलाता है और काव्य के एक अंश का अनुसरण करनेवाला खण्डकाव्य होता है। हिन्दी में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने "वाड़्मय विमर्श" नामक ग्रन्थ में प्रबन्ध काव्य के तीन भेद किये हैं–महाकाव्य, एकार्थ काव्य और खण्डकाव्य उनके अनुसार महाकाव्य और खण्डकाव्य के बीच की कड़ी एकार्थ काव्य है जिसे विश्वनाथ ने केवल काव्य कहा है। उन्होंने खण्डकाव्य की परिभाषा यह बतायी है–"महाकाव्य के ही ढंग पर जिस काव्य की रचना होती है, पर जिसमें पूर्ण जीवन न ग्रहण करके खण्ड जीवन ही ग्रहण किया जाता है, उसे खण्डकाव्य कहते हैं। यह खंड जीवन इस प्रकार ग्रहण किया जाता है जिससे वह प्रस्तुत रचना के रूपमें स्वतःपूर्ण प्रतीत होता है"। (वाड़्मय विमर्श पृष्ठ 39) जिससे वह प्रस्तुत रचना के रूप में स्वतःपूर्ण अतीत होता है।

सामान्यतया आठ या आठ से अधिक सर्गों वाले प्रबन्धकाव्यों को महाकाव्य और आठ से कम सर्गों वाले काव्यों को खण्डकाव्य माना जाता है, परन्तु यह बहुत सुविचारित विभाजन नहीं है। असल में, खण्डकाव्य वे काव्य हैं जिनमें जीवन का खंडदृश्य चित्रित होता है और जो कथावस्तु की लघुता और उद्देश्य की सीमाओं के कारण बृहदाकार तथा महान नहीं बन पाते। लघुकाव्य या खंडकाव्य के संबंध में रुद्रट का यह कथन समुचित है कि उसमें चतुर्वर्ग फल में से किसी एक फल को उद्देश्य रूप में अपनाया जाता है।

बोध प्रश्न 2

क) प्रबंध काव्य के मुख्य भेद कौन से हैं?

....

....

....

....

....

ख) महाकाव्य के लक्षणों पर दस पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

ग) खंड काव्य के स्वरूप की चर्चा लगभग सात पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

35.4 महाकाव्य के दो प्रकार

महाकाव्य के दो प्रकार होते हैं एक है विकसनशील महाकाव्य और दूसरा है साहित्यिक अथवा अलंकृत महाकाव्य। सैंकड़ों वर्षों में अनेक अज्ञात कवियों की प्रतिभा के योग से विकसित होनेवाले महाकाव्य विकसनशील महाकाव्य कहलाते हैं। यूरोप के प्राचीनतम महाकाव्य "इलियड" और "ओडेसी" हैं, जो होमर कृत बताये जाते हैं, पर वस्तुत: जिनका मौखिक परंपरा में सैकड़ों वर्षों में विकास हुआ था। इंग्लैण्ड का "बियोबुल्फ" जर्मनी का "निबुलगेनलीड", फ्रांस का "सांग ऑफ दि रोलाँ" इसी प्रकार के कण्ठानुकण्ठ विकसित महाकाव्य हैं। पहली शताब्दी में वर्जिल ने होमर के महाकाव्यों के अनुकरण पर, किन्तु शास्त्रीय शैली में "इनीड" नामक महाकाव्य लिखा और परवर्ती कवियों ने प्रायः वर्जिल की शास्त्रीय शैली का ही अनुकरण किया। इसी तरह संस्कृत में "महाभारत" और "रामायण" तथा हिन्दी में "पृथ्वीराज रासो" विकसनशील महाकाव्य हैं, जिनके निर्माण में अनेक अज्ञात कवियों का योगदान रहा है और उन्होंने अनेक शताब्दियों में निरंतर विकसित होते हुए अपना वर्तमान रूप प्राप्त किया है। इस प्रकार मौखिक और लिखित परंपरा के कारण ही महाकाव्य के दो रूप हो गये हैं। डा. शंभुनाथसिंह ने ठीक ही लिखा है कि "समाजशास्त्रीय और ऐतिहासिक विकास क्रम की दृष्टि से महाकाव्य के विभिन्न रूपों और शैलियों का विकास समाज के विकास क्रम के अनुरूप हुआ है। विकसनशील महाकाव्य अनिवार्यतः प्रारम्भिक वीरयुग (हीरोइक एज) और सामंती वीर युग (एज ऑफ सिवेलरी) में ही विकसित हुए। विकासोन्मुख सामंत युग या सामंती साम्राज्य युग में शास्त्रीय या संस्कृत शैली के महाकाव्यों की रचना हुई"।

विकसनशील महाकाव्य रामायण और महाभारत

रामायण के रचयिता का नाम वाल्मीकि बतलाया जाता है। भारत के समूचे साहित्य में इस प्रकार का लोकप्रिय दूसरा जातीय ग्रंथ नहीं है। प्रत्येक युग के आचार्य, कवि और नाटककार इस महाकाव्य से प्रेरणा लेते रहे हैं। कालिदास और भवभूति की रचनाओं पर इसका बहुत प्रभाव है और चौदहवीं शताब्दी के बाद के लोकसाहित्य पर भी इसका जबर्दस्त प्रभाव है। लोकप्रिय होने के कारण उसमें निरंतर कुछ न कुछ प्रक्षेप होते रहे हैं और इस प्रकार इसका वर्तमान आकार चौबीस हजार श्लोकों का है।

महाभारत को केवल एक ग्रंथ या एक महाकाव्य कहने भर से पूरी तरह नहीं समझा जा सकता। जर्मन पंडित विंटरनित्ज ने कहा है कि महाभारत अपने आप में एक समग्र साहित्य है। महाभारत का अर्थ है भरत वंशवालों के युद्ध की कथा, लेकिन यह महाकाव्य केवल इस युद्ध की कहानी नहीं है। डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि "शत शत वर्षों तक मूल कहानी के इर्द गिर्द अनेक प्राचीनतर आख्यान और तत्ववाद जोड़े जाते रहे हैं। ये आख्यान मूल कहानी में इतने प्रकार से और इतने रूप में आ मिले हैं कि शायद यह निर्णय कभी नहीं हो सकेगा कि मूल कहानी क्या थी और उसमें कौन सी कहानी कब जोड़ी गई। असल में महाभारत उस युग की ऐतिहासिक, नैतिक, पौराणिक उपदेश मूलक और तत्ववाद संबंधी कथाओं का विशाल विश्वकोश है"।

35.5 संस्कृत के महाकाव्य (मुख्यतः कालिदास)

लौकिक संस्कृत में महाकाव्य की परंपरा का आरम्भ अश्वघोष के "सौन्दर्यनन्द" से होता है। यह महाकाव्य शांत रस प्रधान है और इसमें अभिव्यक्त जीवन दृष्टि वैराग्यपरक है, लेकिन संस्कृत में एकमात्र श्रेष्ठ महाकाव्य के रचयिता कालिदास हैं और उनका महाकाव्य है—"रघुवंश"। संस्कृत के आचार्यों ने और मुख्यतः विश्वनाथ ने महाकाव्यों के लक्षण का निरूपण रघुवंश के आधार पर किया है। सामाजिक विकास के क्रम में जब कुल की अवधारणा पूरी तरह प्रतिष्ठित हो गई और सारे सामाजिक और नैतिक मूल्य जब उसी के इर्द गिर्द गढ़े जाने लगे, रघुवंश उसी परिवेश की साहित्यिक अभिव्यक्ति है। यह विकसनशील सामंतवाद का भारतीय साहित्य में सर्वश्रेष्ठ स्मारक है। रघुवंश में जीवन के विविध रूपों का सहज उद्घाटन हुआ है। पूरे रघुवंश में इतिहास को महाकाव्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है जिससे बाध्य होकर विश्वनाथ कविराज को यह सिद्धांत प्रतिपादित करना पड़ा कि महाकाव्य के नायक एक वंश के अनेक राजा भी हो सकते हैं।

बाद में संस्कृत में अनेक आलंकारिक महाकाव्य लिखे गये थे लेकिन इन महाकाव्यों में महाकाव्य की आत्मा का अभाव है। ऐसे महाकाव्यों में भारवि के "किरातार्जुनीय" माघ की "शिशुपाल वध" श्रीहर्ष के "नैषधचरित" आदि की गिनती होती है। असल में इन महाकाव्यों में सभ्यता और संस्कृति के उत्कर्ष और पतन की न तो महागाथा लिखी गई है और न युग के महान प्रश्न कोई काव्यात्मक समाधान ही प्राप्त कर सके हैं। ये सब महाकाव्य वस्तुतः काव्य ही हैं।

35.6 हिन्दी महाकाव्य परंपरा

हिन्दी में दो विकसनशील महाकाव्य हैं—पृथ्वीराज रासो और परमाल रासो या आल्हखंड। ये दोनों महाकाव्य सामंती सभ्यता के अपकर्ष की महागाथा प्रस्तुत करते हैं।

पद्मावत

भक्ति आंदोलन हिन्दी साहित्य का स्वर्णकाल माना जाता है। इस काल में हिन्दी के दो महान कवियों द्वारा कम से कम दो श्रेष्ठ महाकाव्य रचे गए। वे हैं मलिक मुहम्मद जायसी कृत "पद्मावत" तथा गोस्वामी तुलसीदास कृत "रामचरितमानस"। पद्मावत की कथा चित्तौड़ के राजा रत्नसेन और सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती की प्रेम कहानी पर आधारित है और इसके उत्तरार्द्ध में चित्तौड़गढ़ पर अलाउद्दीन के आक्रमण की कहानी जोड़ दी गई है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार पदमावत का पूर्वार्द्ध काल्पनिक है और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक। इसका रूप विधान फारसी मसनवी तथा भारतीय-चरितकाव्य की परंपरा के घालमेल से निर्मित हुआ है।

रामचरितमानस

तुलसीदास का रामचरितमानस हिन्दी साहित्य का निर्विवाद रूप से सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। यह एक चरितकाव्य है जिसमें राम का संपूर्ण जीवन वर्णित हुआ है। भारतीय

साहित्यशास्त्र में महाकाव्य के जितने लक्षण दिये गये हैं, वे उसमें पूर्ण रूप से पाये जाते हैं। प्रबंध का सर्गबद्ध होना, उच्चकुल उत्पन्न धीरोदात्त नायक होना, श्रृंगार, शांत और वीर रसों में से किसी एक का अंगीरस शेष रसों का अंगभाव से आना। चतुर्पुरुषार्थ में से किसी एक का उसका लक्ष्य होना आदि सभी लक्षण उसमें मिलते हैं। उसी प्रकार पाश्चात्य महाकाव्यों की जो विभिन्न आवश्यकताएँ बतलायी गई हैं, यथा—उसकी कथा का उज्ज्वल अतीत से संबद्ध होना, अति प्राकृत शक्तियों का उसकी कथा में भाग लेना, कथा के अंत में किन्हीं आदर्शों की विजय का चित्रित होना आदि सभी रामचरितमानस में पायी जाती हैं। अतः सभी दृष्टियों से यह एक महाकाव्य है और संसार की महान कृतियों में इसे भी स्थान मिला है। असल में संस्कृत के आचार्यों ने महाकाव्य के जो लक्षण निरुपित किये हैं वे सतही हैं और उनसे महाकाव्य की आत्मा पकड़ में नहीं आती है। केशवदास की रामचन्द्रिका में आचार्यों द्वारा निरुपित महाकाव्य के सारे लक्षण मिलते हैं लेकिन उसका महाकाव्यत्व पूर्णतः संदेहास्पद है।

35.7 आधुनिक युग के महाकाव्य

खड़ीबोली काव्य में पहला महत्वपूर्ण काव्य अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" का "प्रियप्रवास" है। हिन्दी में इसकी चर्चा एक महाकाव्य के रूप में होती रही है, पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे केवल "बड़ा काव्य" कहा है। प्रियप्रवास में महाकाव्यात्मक समस्याओं और वस्तुबोध का अभाव है। अधिकतर यह काव्य वर्णनात्मक है। वर्णनात्मकता मात्र से कोई भी प्रबन्धकाव्य महाकाव्य नहीं हो सकता।

साकेत

खड़ी बोली का पहला श्रेष्ठ प्रबन्ध काव्य मैथिलीशरण गुप्त का "साकेत" है और एक महाकाव्य के रूप में "साकेत" की सीमाओं को रेखांकित करने के लिए ही आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने यह लिखा कि "महाकाव्य की रचना जातीय संस्कृति के किसी महाप्रवाहः सभ्यता के उद्गम, संगम, प्रलयः किसी महान चरित्र के विराट उत्कर्ष अथवा आत्मतत्व के किसी चिर अनुभूत रहस्य को प्रदर्शित करने के लिए की जाती है।" (हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, पृष्ठ 44) अनेक प्रकार के महत उद्देश्य महाकाव्य के विषय बन सकते हैं। साकेत के चरित्र विधान पर विचार करते हुए आचार्य वाजपेयी लिखते हैं कि अपनी व्यापक सहानुभूतियों के कारण जो सर्वथा मानवीय है, कवि की दृष्टि बनवासी राम पर ही नहीं तपस्वी भरत पर भी जाती है; और वीर लक्ष्मण पर ही नहीं वियोगिनी उर्मिला पर जाती है। किन्तु राम और सीता का चरित्र वीरचरित्र है, वह महाकाव्य के उपयुक्त है। सन्यासी भरत और वियुक्ता उर्मिला का चरित्र करुणापूर्ण है। इसके अतिरिक्त साकेत में कैकेयी के चरित्र में जो पूर्ण परिवर्तन किया गया है, उसमें भावना की नवीनता तो है।

मैथिलीशरण गुप्त जी ने अभिषेक की तैयारी, कैकेयी के कोपभवन, राम वनगमन, दशरथमरण, चित्रकूट प्रसंग आदि में आठ सर्ग खपाये हैं और काव्य का अधिकांश भाग लिख डाला है। यद्यपि ये घटनाएं कुछ ही दिनों में घटित हुईं। शेष सम्पूर्ण प्रबंध काव्य जिसमें राम के विशाल चौदह वर्षों के बनवास का कथानक है, चार सर्गों में ही समाप्त हो जाता है। प्रबन्ध योजना की यह बड़ी भारी त्रुटि है।

कामायनी

"कामायनी" मानव सभ्यता के विकास और मानव चेतना का महाकाव्य है। जयशंकर प्रसाद की "कामायनी" ही एक ऐसी रचना है जो सभ्यता और संस्कृति के कम से कम तीन महाप्रवाह के उद्भव, संगम और प्रलय को चित्रित करने के कारण महाकाव्य की कोटि में आती है। कामायनी के महाकाव्यत्व का विश्लेषण करते हुए श्री इलाचन्द्र जोशी ने लिखा है—प्रसादजी ने देवोत्तर सृष्टि के प्रथम उन्नायक मनु को विश्व महाकाव्य के नायक के रूप में सामने रखा है। मनु के भीतर हम वह विद्रोह, वह विस्फोट और वह ज्वाला पाते हैं जो तथाकथित भारतीय संस्कृति की सीमाओं में बंधी रचना में नहीं पायी जाती। प्राचीन ग्रीक नाटककार इस्काइलस के "प्रोमेथियस बाउंड" शैली के "प्रोमेथियस अनबाउंड" मिल्टन के "पेरेडाइज लॉस्ट" और गेटे के "फाउस्ट" के नायकों के भीतर उठनेवाली तूफानी भावतरंगों की सी हलचल हम काव्य के प्रारम्भ ही से मनु के भीतर पाते हैं। इस तरह की

भूकंपी हलचल किसी भी दूसरे भारतीय काव्य के नायक में देखने को नहीं मिलती"। "कामायनी" से बढ़कर इस बात का और कोई प्रमाण नहीं है कि श्रेष्ठ और महान कविता लिखने का कोई राजमार्ग नहीं होता है। जो भी कवि इस शिखर तक पहुँचना चाहेगा उसे रास्ता स्वयं बनाना पड़ेगा। यह एक ऐसा काव्य है, जिसमें निर्माण संबंधी जितनी नयी दिशाएँ मिलती हैं, उतनी हिन्दी के किसी और प्रबंधकाव्य में नहीं।

उर्वशी

श्री कुबेरनाथ राय के अनुसार दिनकर की उर्वशी एक जैविक महाकाव्य है। प्रसाद की "कामायनी" एवं दान्ते की "डिवाइन कॉमेडी" भी ऐसे ही महाकाव्य हैं। लेकिन ये सभी महाकाव्य हैं, परम्परागत लक्षणों से मुक्त हैं। इन रीतिमुक्त महाकाव्यों की अपनी निजी स्वतंत्र जीवन संहिता है जो इनके विकास के साथ विकसित हुई है ये अपने मॉडिल स्वयं हैं इनके भीतर ही सुडौलता की धुरी अपने आप विकसित होती है पढ़कर यही लगता है कि इसका कोई भी अंग बेडौल, ऊपर से जोड़ा गया, क्रम-विरुद्ध-सा नहीं है।

जैविक महाकाव्य की अवधारणा प्रख्यात विचारक और समीक्षक हर्बर्ट रीड ने दी थी। ऐसी रचनाएँ समय की कोख से जन्म लेती हैं और समय की रिक्तता को भरती भी हैं। उर्वशी के रचयिता दिनकर ने एक पुराणकथा की खूँटी पर काम की आधुनिक समस्याओं से जूझने की कोशिश की है। लेकिन, उर्वशी के वस्तुविधान की सीमाएँ स्पष्ट हैं। काम के परे भी जीवन और जगत के अनेक ऐसे संदर्भ हैं जो किसी महाकाव्य के रचयिता को उत्कोचित करते रहते हैं और उर्वशी के रचयिता ने इन संदर्भों से अपने को काट लिया है। उर्वशी में युग अभिव्यकत हुआ है लेकिन इस अभिव्यक्त की सीमाएँ स्वतः स्पष्ट हैं। उर्वशी ऐसा प्रबंधकाव्य या महाकाव्य नहीं है जिसमें युग का मोती पूरे का पूरा ढल सका हो।

35.8 हिन्दी में खंडकाव्य परम्परा

मध्यकाल में चार प्रकार के खण्डकाव्य पाये जाते हैं उनके नाम हैं– 1) महाकाव्यात्मक खण्डकाव्य, 2) सर्गबद्ध खण्डकाव्य, 3) सर्गहीन खण्डकाव्य, 4) नाट्य खण्डकाव्य।

महाकाव्यात्मक खण्डकाव्य

इस प्रकार के खण्डकाव्यों में महाकाव्य के अधिकांश लक्षण पाये जाते हैं, किन्तु कुछ महत्वपूर्ण गुणों के अभाव के कारण इन्हें महाकाव्य नहीं कहा जा सकता है। मध्यकाल में पृथ्वीराज राठौर रचित "बेलि क्रिमन रुकमणी री" महाराज रघुराज सिंह कृत "रुकिमणी परिणय" एवं जोधराज कृत "हम्मीर रासो" महाकाव्यात्मक खण्डकाव्य कहे जाने योग्य हैं।

सर्गबद्ध खण्डकाव्य

इस श्रेणी में आने जाने वाले खण्डकाव्य सर्गों में विभाजित हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं–अद्भुत रामायण (रामभट्ट), करूणाविरह (सेवादास पाण्डे), विरह विलास (रसनायक) प्रेमतरंगिनी (लक्ष्मीनारायण), प्रेमसागर (प्रेमदास), ध्रुवचरित (सोमनाथ) एवं उषाहरण (जीवन लाल नागर) आदि। इन खण्डकाव्यों में कवियों की दृष्टि प्रायः कथापरक रही है। यद्यपि वे कवि कथावर्णन की ओर अधिक सचेष्ट हैं फिर भी उन्हें मार्मिक स्थलों की पहचान हैं और वैसी स्थिति में उन्होंने बहुत जमकर न सही पर अच्छा प्रदर्शन किया है।

सर्गहीन खण्डकाव्य

इस प्रकार के खण्डकाव्यों में सर्ग नहीं दिये गये हैं। उनकी कथा निरंतर आगे बढ़ती रहती हैं। मध्यकाल में ऐसे खण्डकाव्यों की संख्या बहुत अधिक हैं। उदाहरण के लिए कुछ नाम दिये जा रहे हैं–रामजन्म (सूरजदास), जानकीमंगल (गोस्वामी तुलसीदास), रुकिमणी मंगल (नन्ददास), रासलीला (हरिदास), सुदामाचरित (नरोत्तमदास), हिम्मत बहादुर विरुदावली (पद्माकर), सत्यवती कथा (ईश्वरदास), एवं चित्ररेखा (जायसी) आदि।

नाट्य खण्डकाव्य

इस प्रकार के खण्डकाव्य अभिनय नहीं होते यद्यपि उनमें नाट्यकाव्य के कतिपय लक्षण

यथा संभाषण शैली, अंकों में विभाजन या दृश्य संकेत आदि होते हैं। नन्ददास का "भँवरगीत", लच्छीराम का "करुणाभरण नाटक", आनन्दकवि की दानलीला, वीर वाजपेयी का सुदामाचरित, गोपालकवि कृत ध्रुवचरित आदि कुछ प्रमुख नाट्य खण्डकाव्य हैं। ये सभी खण्डकाव्य संभाषण शैली में रचित हैं। वक्ताओं के नामोल्लेख अलग से किये गये हैं। भ्रमरगीत में बहुत दूर तक कथोपकथन और कुछ दूर तक स्वगत संभाषण भी मिलते हैं। करुणा भरण नाटक और सुदामाचरित क्रमशः सात और दस अंकों में विभाजित किये गये हैं। ये सभी वस्तु विधान की दृष्टि से खण्डकाव्य हैं और उनमें नाट्यकाव्य के जो लक्षण प्राप्त होते हैं, वे सतही हैं।

आधुनिक युग के खण्डकाव्य

आधुनिक कवियों में द्विवेदी काल के कवियों ने सुन्दर खण्डकाव्यों की रचना की है। "जयद्रथवध", "पंचवटी", "वनवैभव", "बकसंहार", "सिद्धराज", "विडिम्बा" और "नहुष" आदि मैथिलीशरणगुप्त के प्रमुख खण्डकाव्य हैं।

जयद्रथवध

मैथिलीशरण गुप्त की आरंभिक रचनाओं में "भारत भारती" के अतिरिक्त जयद्रथ वध की प्रसिद्धि सर्वाधिक रही। यह खण्डकाव्य हरिगीतिका छंद में रचित है। कथा का आधार महाभारत प्राचीन कथा को ज्यों का त्यों लेकर भी कवि ने अपनी खास प्रवाहपूर्ण शैली द्वारा नवजीवन प्रदान किया है। जयद्रथवध मैथिलीशरणगुप्त के कृतित्व के आरंभिक काल की रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ है। खड़ीबोली की यह पहली सरस रचना है।

पंचवटी

गुप्तकाव्य के विकासपथ में "पंचवटी" मील का एक पत्थर है इसका कथानक रामसाहित्य का चिरपरिचित आख्यान शूर्पणखा--प्रसंग है। शूर्पणखा राम पर मोहित होती है और उन्हीं का वरण करना चाहती है। असफल होने पर वह विकराल रूप धारण कर लेती है और अंततः लक्ष्मण उसके नाक और कान काट लेते हैं। मधुर, तरल हास्यविनोद ने इसे सजीवता प्रदान किया है। इसकी रचना से कवि के कृतित्व के प्रारंभिक काल की समाप्ति एवं मध्यकाल का प्रारंभ होता है।

हिडिम्बा

इस खण्डकाव्य में गुप्त जी ने भीम से हिडिम्बा के प्रेम प्रसंग का बहुत ही रोमानी वर्णन प्रस्तुत किया है। यह मैथिलीशरण गुप्त के उत्तरवर्ती खण्डकाव्यों में सर्वश्रेष्ठ है।

रामनरेश त्रिपाठी ने "पथिक", "मिलन" और "स्वप्न" नाम से तीन खण्डकाव्य लिखे और तीनों प्रवृत्ति की दृष्टि से द्विवेदी युग और छायावाद युग के संगम की रचनाएँ हैं।

पथिक

यह एक प्रेमाख्यानक खण्डकाव्य है। यह 1920 ई. में प्रकाशित हुआ था इस आख्यानक कृति का कथानक सूक्ष्म और मौलिक है। इसका नायक पथिक अपनी प्रिया से अतिशय प्रेम करता है। कालांतर में परिस्थितियों वश उसकी यह प्रेम भावना प्रकृति के प्रांगण से गुजरती हुई स्वराष्ट्र प्रेम की ओर उन्मुख हो जाती है। मनोरम प्रकृति चित्रण और राष्ट्रीय भावना का समावेश इस खण्डकाव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। भाषा सधी, मँजी खड़ीबोली है।

मिलन

यह भी एक प्रेमाख्यानक खण्डकाव्य है जिसमें कवि द्वारा निर्मित एक सूक्ष्म कहानी के द्वारा दांपत्य प्रेम, प्रकृति तथा देश भक्ति की भावनाओं का बड़ा सरस वर्णन किया गया है। खड़ीबोली के काव्यविकास के लिए रामनरेश त्रिपाठी की यह पहली कृति अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई है।

स्वप्न

त्रिपाठी का यह तीसरा आख्यानक खण्डकाव्य है। मिलन और पथिक की भाँति इसकी कहानी भी एक प्रेम कहानी है। इसका नायक वसन्त प्रारंभ में अपनी प्रिया में अत्यधिक अनुरक्त है। बाद में अपनी प्रिया द्वारा ही उद्बुद्ध किये जाने पर उसे अपने कर्त्तव्यों का

बोध होता है और यह शत्रुओं द्वारा आक्रांत स्वदेश की रक्षा करने के लिए निकल पड़ता है। इस काव्य में जगह-जगह प्रकृति का मनोरम चित्रण हुआ है। नायक वसन्त का चरित्र प्रियतमा और राष्ट्रप्रेम को लेकर चलने वाले अन्तर्द्वन्द्व के कारण बहुत सजीव बन पड़ा है।

छायावादी कवियों ने भी कुछ अच्छे खण्डकाव्यों की रचना की है। इन खण्डकाव्यों में कथानक बहुत सूक्ष्म है, कथाबंध का स्थान अब भावबंधों ने ले लिया है। इन खण्डकाव्यों में जयशंकर प्रसाद का "प्रेमपथिक" पंत की "ग्रंथि" और निराला का "तुलसीदास" आदि मुख्य हैं।

प्रेमपथिक

प्रेमपथिक पहला छायावादी खण्डकाव्य है। प्रेम अनंत है उसका ओरछोर नहीं है। उसकी परिणति पूर्ण त्याग में है। उसमें बड़ी स्वच्छता और सात्विकता है। इसका भावचित्रण तथा प्राकृतिक दृश्यावली कवि के हृदय के भोग से अपनी स्वतंत्र विशेषता रखती है। वाह्य प्रकृति की रमणीयता के साथ-साथ प्रेम की रमणीयता की यह छोटी सी आख्यायिका हिन्दी में एक नवीन भावधारा का आगमन सूचित करती है।

ग्रंथि

यह सुमित्रानंदन पंत का प्रेमाख्यानक खण्डकाव्य है। इसमें स्पष्ट रीति से मानवीय विरह का शोक संताप व्यक्त हुआ है। कवि यहाँ वियोग व्यथा में इतना तल्लीन हो गया है कि उसमें एक विलक्षण जड़ता आ गई है जो पंत जी की अन्य रचनाओं में बहुत कम दिखलायी देती है। इसकी कथा संक्षेप में यह है–झील में नाव डूबने पर एक युवक डूबकर बेहोश होता है और आँख खुलने पर देखता है कि एक सुन्दरी युवती उसका सिर अपने जाँध पर रखे हुए उसकी ओर देख रही है। इसके उपरांत दोनों में प्रेम व्यापार चलता है। पर अंत में समाज के बड़े लोग इस स्वेच्छाचार को न सहन करके उस युवती का ग्रंथिबंधन दूसरे पुरुष के साथ कर देते हैं। यही ग्रंथिबंधन इस खण्डकाव्य के नायक के हृदय में एक ऐसी विशाल ग्रंथि डाल देता है जो कभी खुलती ही नहीं। इसी कारण इस काव्य का नाम ग्रंथि पड़ा। समाज के द्वारा किस प्रकार स्वभावत: उआ हुआ प्रेम कुचल दिया जाता है इस कहानी द्वारा कवि को यही दिखाना था।

तुलसीदास

तुलसीदास निरालाजी का एकमात्र खण्डकाव्य है जो अंतर्मुखी प्रबंध के रूप में है। इसमें कथानायक गोस्वामी तुलसीदास हैं और उनके अंत:संघर्ष को कवि नें बहुत ही उदात्त ढंग से चित्रित किया है। इस खण्डकाव्य में कवि ने, जिस परिस्थिति में गोस्वामीजी उत्पन्न हुए, उसका बहुत ही चटकीला और रंगीन वर्णन करके चित्रकूट की प्राकृतिक शोभा का निरूपण किया है। कथाबंध की दृष्टि से यह रचना जितनी अंतर्मुखी है, भाषा की दृष्टि से उतनी ही दुरुह भी।

बोध प्रश्न 3

क) महाकाव्य के दो प्रकार कौन से हैं?

....

....

ख) दो विकासशील महाकाव्यों का नाम बताइए।

....

....

ग) हिन्दी के दो महाकाव्यों का नाम बताइए।

....

....

घ) आधुनिक युग के प्रमुख हिन्दी महाकाव्य कौन-कौन से हैं?

....

....

....

....

बोध प्रश्न 4

क) मध्यकाल में कितने प्रकार के खण्डकाव्य पाए जाते हैं?

....

....

....

....

ख) निम्नलिखित का लेखक कौन है

1 स्वप्न

2 उर्वशी

3 जयद्रथ वध

4 प्रिय प्रवास

5 पथिक

6 कनुप्रिया

35.9 नवीन प्रबंध चेतना

आधुनिक हिन्दी साहित्य की क्रांतिकारी चेतना का विद्रोही रूप छायावाद में दृष्टिगत होता है। इस काल में एक ऐसी प्रबंध क्षमता का जन्म हुआ जिसने प्रबन्ध के परम्परागत अनुशासनों को चुनौती देकर तोड़ दिया। जयशंकर प्रसाद की "कामायनी" किसी भी अर्थ में परम्परागत प्रबन्धात्मकता का नमूना नहीं है और न ही उसकी प्रबंध क्षमता को बाल्मीकि, कालिदास, तुलसीदास, हरिऔध या मैथिलीशरण गुप्त की प्रबन्ध कला की तरह परिभाषित किया जा सकता है। फिर यह कृति कथा काव्य और चरित काव्य की परम्परा से भी एकदम अलग है। और तो और "कामायनी" में इतिवृत्तात्मकता कहीं भी सुरक्षित नहीं है। कहना न होगा कि इतिवृत्त परम्परा के अन्तिम कवि मैथिलीशरण गुप्त ही ठहरते हैं। निराला की "सरोज स्मृति", तुलसीदास "पंचवटी प्रसंग", "राम की शक्ति पूजा" आदि परम्परागत प्रबंध का मॉडल ध्वस्त करती हैं। इन सभी में कवि-स्वभाव, कवि व्यक्तित्व और युग परिवेश की समस्याओं का गहरा हस्तक्षेप है। भारतीय काव्य शास्त्र में प्रबंध और नाटक के अनुशासन विधान काफी कड़े रहे हैं। इन अनुशासनों को स्वच्छन्दतावादी दृष्टि ने ध्वस्त किया। इसलिए आगे की प्रबंध कृतियों में भी परम्परागत अनुशासनबद्धता का अभाव है।

वास्तविकता यह है कि छायावाद से ही हिन्दी पद्य, विशेषकर प्रबन्धात्मक रचनाओं ने विकसित-उभरते हुए हिन्दी गद्य की चुनौती को झेला। यह चुनौती उसे प्रेमचन्द-गुलेरी के गद्य से मिली। इस गद्य ने पद्य के भीतर से प्रबंध या इतिवृत्त को खींच लिया। गद्य की इस शक्ति का पहला तगड़ा अहसास प्रसाद जी को हुआ क्योंकि प्रसाद तक आते-आते हिन्दी गद्य अपने फैलते विस्तार से कवियों को धमकाने लगा था। इस गद्य ने अखण्ड इतिवृत्त और विवरण-वर्णन को "कामायनी" से वहिष्कृत कर दिया। फलत: "कामायनी" की कथा झीने तन्तु जाल से प्रसाद को बुनने पड़ी। इतिवृत्त के निकल जाने से प्रबंध रचना की पुरानी बुनियाद पर भी चोट पड़ी। पुराने प्रबंध स्थापत्य के ढह जाने से नए प्रबंध की तलाश शुरू हुई। "कामांयनी" इसी प्रबन्ध की खोज की सर्वथा नई तलाश है। प्रसाद जी को गहरे स्तर पर अहसास था कि इतिवृत्त से एकदम मुक्त हो पाना संभव नहीं है, इसलिए कथा का आदिम आधार लिया—उसे रूपक में ढाला और आधुनिक अर्थ की निष्पत्ति की।

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, जिनकी काव्य दृष्टि और काव्य इतिहास की समझ और पकड़ अत्यंत गहरी थी, अपनी रचनाओं में परम्परागत प्रबंध की गूँज को नई शर्तों पर स्वीकार

कर सकते थे। उन्होंने लम्बी प्रबंध कविताओं का साँचा कथा के भीतर से निर्मित किया। "राम की शक्ति पूजा" और "तुलसीदास" में यही प्रबंध साँचा साफ दृष्टिगत होता है।

कथानक के आधार को कथ्य के विकास, प्रवाह और विचार-चिन्तन को नए अर्थों से प्रकाशित करने की रचनात्मक प्रेरणा रामधारी सिंह दिनकर ने "कुरुक्षेत्र" "रश्मिरथी" तथा "उर्वशी" जैसे प्रबंध काव्यों में व्यक्त की। "कुरुक्षेत्र" की वैचारिकता प्रधान कथा चेतना और तार्किक वाद-विवाद, संवाद की शैली पुरानी प्रबंध कला से मुक्ति की पहली शर्त की मानो पूर्ति है। दूसरे स्तर पर दिनकर ने "कुरुक्षेत्र" में ऐतिहासिक पौराणिक कथा को न दुहराकर नए चिन्तन को ही कथा की सर्जनात्मकता में ढाल दिया। युद्ध चिन्तन को कथा में इस कदर फैंट दिया कि कथा-तत्व गौण और चिन्तन-तत्व प्रधान हो गया। यही काम दिनकर जी ने रश्मिरथी और उर्वशी में किया। कथा के भाव-तत्व में ज्ञान-तत्व की गहरी अनुगूँज इन कृतियों की प्रबंध ध्वनि है।

छायावादोत्तर प्रबंध कविता ने नए चिन्तन को नए प्रबंध स्थापत्य में मूर्त्त करने का साहसी कदम उठाया। धर्मवीर भारती ने "कनुप्रिया" "अन्धायुग" नरेश मेहता ने "संशय की एक रात" "महाप्रस्थान" भवानीप्रसाद मिश्र ने "कालजयी" सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने "कुआनो नदी" गिरिजाकुमार माथुर ने "पृथ्वी पुत्र" जगदीशगुप्त ने "शम्बूक" भारत भूषण अग्रवाल ने "अग्निलीक" सुमित्रानंदन पंत ने "लोकायतन" कुंवरनारायण ने "आत्मजयी" आदि में नवीन प्रबंध कृतियों में नयी प्रबंध प्रतिभा स्थापित की।

नयी कविता और उससे पहले की लम्बी प्रबंधात्मक कविताएँ भी नयी दौड़ का प्रतिफलन हैं। इन कवियों का अनुभव है कि कथा प्रधान प्रबंध रचना अपने सम्पूर्ण आख्यानगत इतिवृत्त के साथ आज बासी पड़ गई है। जीवन का संघर्षपूर्ण अन्तः संगीत, जिसे पन्त जी ने "परिवर्तन" तथा प्रसाद जी ने "प्रलय की छाया" में सुना था, अब केन्द्र में आने लगा। अज्ञेय जी ने "असाध्य वीणा" में रचना प्रक्रिया के अर्थ सम्भार का प्रियवंद प्रस्तुत किया। रचना की वस्तु में तदाकार हुए बगैर रचनाकार को कुछ भी हासिल नहीं हो सकता। यही इस लम्बी प्रगीतात्मक प्रबंध कविता का संदेश है। नए युग-संघर्षों, तनावों, अन्तर्विरोधों तथा भयानक विडम्बनाओं को व्यक्त करने के लिए मुक्तिबोध ने अपनी लम्बी प्रबन्धात्मक नाटकीय कविता "अंधेरे में" में युग का लोहा पिघलाया और लुहार बन कर गर्म लोहे को या गर्म विचार को कविता की शक्ल दे डाली। शायद मुक्तिबोध परम्परागत इतिवृत्त के झंझट से परिचित थे और उससे मुक्त होकर ही 'वास्तव की विस्फारित प्रतिमाएँ' गढ़ सकते थे। फन्तासी में वे युग के यथार्थ को पिघलाकर-फैलाकर समेटते हैं। गद्य की चुनौती मुक्तिबोध भीतर और बाहर दोनों तरफ से सुनते हैं। इसलिए ज्ञानात्मक संवेदना में तोड़फोड़ के प्रयोग करते हैं। इसी राह पर आगे चल कर धूमिल "मोचीराम" और "पटकथा" रचते हैं। पूरी समसामयिक कविता सूत्र शैली में लम्बी प्रबन्धात्मक कविताओं की ओर लपक कर बढ़ जाती है।

दरअसल में ये सभी लम्बी प्रबंधात्मक कविताएँ अपने युग और इतिहास को, समय की विसंगति और विडम्बना को नए सिरे से नए काव्य मुहावरे में परिभाषित करती हैं। इन कविताओं का काव्य नायक कवि को स्वयं बनना पड़ा है या प्रतीक रूप में अन्य शैली में बात कहनी पड़ी है। पुराने प्रबंध की समस्त कथानक और शिल्प रूढ़ियाँ यहाँ गायब हो गई हैं। कथा रस का स्थान अब इन रचनाओं में युग चिन्ताओं ने ले लिया है। अब महाकाव्य के लिए लम्बे भारी आकार की जरूरत नहीं है छोटी गुणात्मक कलात्मक रचना भी महाकाव्योचित उदारता का दर्शन करा सकती है।

35.10 मूल्यांकन

प्रबंध काव्य के निरन्तर बदलते हुए साँचे इस बात का प्रमाण हैं कि युग चेतना प्रबंध दृष्टि में भारी परिवर्तन करती रही है। पुराना प्रबंधकार जीवन-जगत के व्यापारों को कथा प्रक्रिया में ढालकर सामने रखता था। युग मूल्यों और आदर्शों के मॉडल भी बाल्मीकि की "रामायण" या कालिदास के "रघुवंश" या तुलसीदास के "रामचरित मानस" में ढलते थे। रचनाकार लोक और शास्त्र की सभी जीवन्त परम्पराओं, विचारगतियों, जीवन दर्शनों, सांस्कृतिक संवेदन की लयों को प्रबंध के सुगठित ढाँचे में प्रस्तुत कर देता था। उसकी

काव्यरचना में कवि का दृष्टिकोण अन्तर्मुखी भावपरक न रहकर बहिर्मुखी और वस्तु परक रहता था। इसलिए पुराना प्रबंध विधान विषय प्रधान समाख्यानक काव्य (objective narrative) का सम्पूर्ण यथार्थ था। प्रबंध काव्य के सर्गबद्ध, चरित्रगत, शिल्पप्रधान, जीवन जगत के वैविध्य और विस्तार या व्यापकता के बिंदु काफी समाहत थे। कवि विषय पर अपने स्वानुभवों को केंद्रित करता था व्यक्ति पर नहीं। वह अन्तर्मन की निविड़ अतल गहराइयों में न डूबकर बाह्य जगत के असीम विस्तार में अपने आत्म की मुक्ति पाता था। उसका दृष्टिकोण वैयक्तिक न होकर वस्तुगत होता था। जीवन-जगत की पौराणिक ऐतिहासिक कथा में कार्य-व्यापार की घनता के साथ विषय की गरिमा और प्रतिपादन की भव्यता को स्थान मिलता था। इतना ही नहीं कथा के द्वारा कवि विशिष्ट जीवन दर्शन और मानव मूल्यों को सामने लाता था। यह दृष्टि हमें हिन्दी के दो आधुनिक महाकाव्यों—"प्रियप्रवास" तथा "साकेत"—तक में विद्यमान मिलती है।

"कामायनी" के सृजन में परम्परागत प्रबंध के पुराने अनुशासन चुनौती के स्तर पर टूटते हैं। कथा का झीना मिथिकल आधार, नायक की परम्परागत धीरोदात्त छवि का मनु में खण्डन तथा कथा को सर्गों में न बाँटकर भाव-केन्द्रों में प्रस्थापित करने की कला एक नया प्रबंध-स्थापत्य सामने आता है। कथा या इतिवृत्त का स्थूल आधार खंडित हो पाता है। धीरे-धीरे छायावादोत्तर प्रबंध प्रतिमा में कथा का स्थान "चिंतन" को मिल जाता है। फलतः वैचारिक प्रबंध की ओर रचना-दृष्टि मुड़ जाती है। एक ओर यही नवीन प्रबंध दृष्टि "कुरुक्षेत्र" जैसे विचार-प्रधान प्रबंध काव्य को जन्म देती है दूसरी ओर लम्बी नाटकीय प्रबंध कविताओं का नया साँच निर्मित करती है। ग.मा. मुक्तिबोध की लम्बी प्रबंध-कविता "अंधेरे में", अज्ञेय की "असाध्यवीणा", धूमिल की "पटकथा" और राजकमल चौधरी की "मुक्तिप्रसंग" आदि लम्बी कविताएँ नवीन प्रबंध चेतना का नया मॉडल सामने लाती हैं। नयी प्रबंध दृष्टि पुरानी प्रबंध दृष्टि से एकदम अलग हो गई है। इसे प्रबंध काव्य परम्परा का युग-परिवेश के प्रभावों दबावों से निर्मित नया प्रबंध रूप ही कहा जा सकता है।

बोध प्रश्न 5

क) नवीन प्रबंध चेतना की प्रमुख विशेषताओं पर दस पंक्तियाँ लिखिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

ख) छायावादोत्तर प्रबंध काव्य के क्षेत्र में साहसी कदम उठाने वाले 4 कवियों और उनकी कृतियों के नाम लिखिए।

....
....
....
....

35.11 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा कि प्रबंध काव्य श्रव्यकाव्य का एक भेद है। प्रबंध काव्य में अखण्ड कथात्मकता और अखण्ड रसात्मकता दोनों का होना आवश्यक है। प्रबन्ध काव्य

में समग्र जीवन दर्शन और जीवन सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के कारण विषय का फलक व्यापक होता है। साथ ही प्रबंध के अन्तर्गत वस्तु वर्णन और वस्तु तत्व की प्रधानता रहती है। संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश की महाकाव्य परम्परा का हिन्दी महाकाव्य परम्परा पर गहरा प्रभाव पड़ा है। हिन्दी के प्राचीन तथा मध्ययुगीन प्रबंध काव्यों विशेषकर महाकाव्यों पर चरितकाव्य परम्परा की धमक भी काफी है। हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य की प्रबंध चेतना पर परम्परागत प्रबंध के अनुशासन की पकड़ ढीली पड़ी है और पुरानी प्रबंध दृष्टि को पछाड़कर छायावाद तथा छायावादोत्तर प्रबंध चेतना मौलिकता नवीनता के साथ विकसित हुई है।

35.12 शब्दावली/संकल्पनाएँ

1 **विकसनशील महाकाव्य** : इसमें समाज के सामान्य विश्वासों, मूल्यों, परम्पराओं, अनुभवों, रीति रिवाजों का लेखा जोखा रहता है। इसकी रचना अनेक युगों में और अनेक हाथों से होती है।

2 **आख्यान** : ऐसी कथा जिसमें समाज के सामूहिक अनुभव मौजूद रहते हैं। जाति का सामूहिक अवचेतन। भीतर से झलकता है ये किसी कवि विशेष की कृति नहीं होते हैं। वेदों में पुरूरवा-उर्वशी आख्यान इसका उदाहरण है।

3 **महाकाव्य की सामग्री** : पौराणिक विश्वास (मिथ) निजन्धरी आख्यान (लिजेण्ड) इतिहास पुराण कथाएँ, समसामयिक घटनाएँ, प्राचीन ज्ञान भण्डार की परम्पराएँ तथा लोक गाथाएँ और लोक कथाएँ होती हैं।

4 **कथानक रूढ़ियाँ** : ये प्रबन्ध काव्यों में बहुतायत से रहती हैं। इनमें अलौकिक लोकोत्तर, अति प्राकृत और अति मानवीय (सुपरनेचुरल और सुपर ह्यूमन) तत्वों की बहुलता रहती है जैसे कथा कहने वाला देवता, पंछी या कोई मुनि होता आदि।

5 **चरित काव्य** : प्रबंध काव्य, कथा आख्यायिका तथा धर्मकथा आदि के लक्षणों से समन्वित रचना। इसमें "चरित" तथा "कथा" दोनों रहते हैं। इनमें साहसपूर्ण कार्यों और रोमांचक तत्वों की प्रधानता रहती है। हिन्दी में 'पृथ्वीराज रासो' में चरित काव्य के बहुत से तत्व पाए जाते हैं।

6 **आ. अभिनवगुप्त** : भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के व्याख्याताओं में सर्वप्रमुख आचार्य। इनकी कृतियाँ हैं "अभिनव भारती" "ध्वन्यालोक लोचन"।

7 **आ. वामन** : रीति सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक आचार्य। इनके ग्रंथ का नाम "काव्यालंकार सूत्रवृत्ति" है।

8 **आ. कुन्तक** : वक्रोक्ति सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक आचार्य। इनकी कृति का नाम "वक्रोक्ति जीवितम्" है।

9 **आ. अरस्तू** : यूनानी चिन्तक, प्लेटो का शिष्य, प्रसिद्ध पुस्तक "काव्य शास्त्र" ("पेरिपोइतिकेस") के निर्माता।

10 **सच्चा कवि** : वही है जिसे लोक हृदय की पहचान हो, जो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं के बीच से मनुष्य जाति के सामान्य हृदय को अलग करके देख सके। इस तरह लोक हृदय में लीन होने की दशा का नाम रस दशा है।

11 **प्रबंध ध्वनि** : प्रबंध काव्य का उद्देश्य या मूल अर्थ।

12 **आधिकारिक कथा** : कृति की प्रधान कथा। इस संबंध प्रबन्ध काव्य के प्रमुख कार्य या उद्देश्य से होता है।

13 **प्रासंगिक कथा** : प्रासंगिक कथा के दो भेद होते हैं—पताका और प्रकरी। पताका में प्रासंगिक कथा बड़ी होती है जैसे "रामचरित मानस" में सुग्रीव का आख्यान। "प्रकरी" का प्रासंगिक कथानक संक्षिप्त होता है जैसे "रामचरित मानस" में जटायु का प्रकरण।

35.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

क) प्रबंध काव्य और मुक्तक काव्य
ख) देखिए, भाग 35.2
ग) देखिए, भाग 35.2.1
घ) प्रबंध-वक्रता
ङ) देखिए, प्रबंध भाग 35.2.2
च) देखिए, भाग 35.2.3

बोध प्रश्न 2

क) महाकाव्य और खण्डकाव्य
ख) देखिए, भाग 35.3.1
ग) देखिए, भाग 35.3.2

बोध प्रश्न 3

क) विकसनशील महाकाव्य और साहित्यिक महाकाव्य
ख) रामायण और महाभारत
ग) रामचरित मानस और पद्मावत
घ) साकेत, कामायनी, उर्वशी

बोध प्रश्न 4

क) 1 महाकाव्यात्मक खण्ड काव्य
2 सर्गबद्ध खण्ड काव्य
3 सर्गहीन खण्ड काव्य
4 नाट्य खण्ड काव्य

ग) 1 रामनरेश त्रिपाठी
2 रामधारी सिंह दिनकर
3 मैथिलीशरणगुप्त
4 अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध
5 रामनरेश त्रिपाठी
6 धर्मवीर भारती

बोध प्रश्न 5

क) देखें भाग 35.9
ख) देखें भाग 35.9

इकाई 36 "कुरुक्षेत्र" (रामधारी सिंह दिनकर) का वाचन

इकाई की रूपरेखा

36.0 उद्देश्य

36.1 प्रस्तावना

36.2 कवि परिचय

36.2.1 जीवन परिचय

36.2.2 व्यक्तित्व

36.2.3 कृतित्व

36.3 कुरुक्षेत्र की सृजन प्रेरणा और युग परिवेश

36.4 "कुरुक्षेत्र" का कथासार

36.5 "कुरुक्षेत्र" का वाचन (दूसरा तथा तीसरा सर्ग)

36.6 संदर्भ सहित व्याख्या

36.7 सारांश

36.8 शब्दावली

36.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

36.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- रामधारी सिंह दिनकर के जीवन, व्यक्तित्व और रचनात्मक व्यक्तित्व की जानकारी दे सकेंगे,
- उस युग परिवेश और सृजन प्रेरणा की चर्चा कर सकेंगे, जिसने कुरुक्षेत्र की रचना की मनोभूमिका का सृजन किया,
- कुरुक्षेत्र का कथासार बता सकेंगे,
- कुरुक्षेत्र के दो रूपों (दूसरा और तीसरा) के पंद्यांशों की संदर्भ सहित व्याख्या कर सकेंगे।

36.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने प्रबंध काव्य के स्वरूप और विकास के बारे में ज्ञान प्राप्त किया। अब आप जान गए हैं कि प्रबंध काव्य क्या होता है तथा भारतीय और पश्चिमी आचार्यों ने इसके स्वरूप के बारे में क्या कहा है। आप यह भी समझ गए हैं कि प्रबंध काव्य के मोटे तौर पर दो भेद होते हैं महाकाव्य और खंडकाव्य। अब आपको यह मालूम है कि प्राचीन युग में प्रबंध काव्य का जो स्वरूप निर्धारित किया गया था वह आधुनिक युग तक आते-आते धीरे-धीरे कैसे परिवर्तित होता गया है। इस तरह महाकाव्य और खंडकाव्य के विकास के साथ-साथ उसके स्वरूप में हुए परिवर्तन को आप अच्छी तरह समझ गए हैं। इस इकाई में हम आपको आधुनिक युग के एक महत्वपूर्ण प्रबंध काव्य "कुरुक्षेत्र" के बारे में बताएँगे।

"कुरुक्षेत्र" रामधारी सिंह की रचना है इसका प्रकाशन सन् 1946 में हुआ था। जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है इस काव्य-कृति का संबंध "महाभारत" की कथा से है। किंतु "महाभारत" से संबंध होने के बावजूद यह "महाभारत" की कथा का गायन नहीं है। हो भी कैसे सकती थी? आधुनिक युग का रचनाकार जब किसी पौराणिक, ऐतिहासिक अथवा सांस्कृतिक प्रसंग को अपनी रचना का विषय बनाता है तो केवल कथा सुनाने मात्र के लिए

नहीं वरन् आज के जीवन में उसकी सार्थकता अथवा प्रासंगिकता की दृष्टि से उसे चुनता है। यह दृष्टि ही रचनाकार की अपनी समझ, अपने समाज से जुड़ाव और मौलिक दृष्टि की परिचालक होती है। कुरुक्षेत्र को पढ़ते समय हम इन बिन्दुओं पर विचार और विश्लेषण करेंगे। लेकिन इससे पहले कवि के बारे में कुछ जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। कवि के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचय के उपरांत उसके युग, परिवेश के बारे में चर्चा होगी तथा "कुरुक्षेत्र" का कथासार दिया जाएगा। पूरी रचना आपके पाठ्यक्रम में निर्धारित है। यानी आप से पूरी रचना के बारे में प्रश्न पूछे जाएँगे। लेकिन व्याख्या आपको दो सर्गों (सर्ग 2 और 3) से ही करनी होगी। यानी गहन अध्ययन और विश्लेषण के लिए केवल दो सर्ग हैं। शेष सर्ग प्रबंध रचना से परिचय, कवि दृष्टि की जानकारी, प्रतिपाद्य के विवेचन आदि की दृष्टि से पढ़ने और जानने होंगे। इस दृष्टि से इस खंड में केवल दो सर्ग ही प्रस्तुत हैं। पूरी रचना पढ़ने के लिए आप उसे स्वयं पुस्तकालय अथवा अन्यत्र कहीं से प्राप्त कर सकते हैं।

36.2 कवि परिचय

36.2.1 जीवन परिचय

रामधारी सिंह दिनकर का जन्म 30 सितंबर सन् 1908 को बिहार के मुंगेर जिले के सिमरिया नामक ग्राम में एक अत्यंत साधारण आर्थिक स्थिति वाले कृषक परिवार में हुआ था। ज़मीदारी शोषण और आर्थिक संघर्षों को झेलते परिवार की कठिनाइयाँ वैसे ही कम ही न थीं कि दो वर्ष बाद पिता का देहांत हो गया। तीन अबोध बालकों को माँ ने कठिन आर्थिक तंगी में पाला। इस तरह उनका बाल्यकाल भारतीय गाँव के उस जूझते-झेलते माहौल में बीता था जो गंगा नदी की भयानक बाढ़, दुर्भिक्ष महामारी और सामंती अत्याचारों का भुक्त भोगी साक्षी था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा गाँव से कुछ दूर पाठशाला में हुई थी। उसके बाद वे मोकामा घाट के एक विद्यालय में भर्ती कराए गए जहाँ वे रोज तीन से छह मील की पैदल दूरी तय करने के बाद स्टीमर से गंगा पार विद्यालय पहुँचते थे। सन् 1928 में उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास की। फिर उच्च शिक्षा के लिए पटना में दाखिला लिया। पटना विश्वविद्यालय से ही उन्होंने बी.ए. आनर्स (इतिहास) पास किया। विद्यार्थी जीवन में ही उनका परिचय संस्कृति, राष्ट्रीयता, स्वदेश और स्वभाषा आदि जैसे प्रश्नों से हो गया था। बारह वर्ष की आयु में गांधी और मौलाना शौकत अली से मिलने बरौनी स्टेशन वह कई मील पैदल चल कर गए थे। इस घटना ने उनकी किशोर चेतना को गहराई तक प्रभावित किया था। राष्ट्रीय चेतना की कविता लिखने की इच्छा उनके मन में पैदा हुई थी। सन् 1928 में मैट्रिक पास करने के बाद उन्हें मुजफ्फरपुर में आयोजित हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन देखने का अवसर मिला जिसमें तत्कालीन साहित्यिक परिवेश से उनका सीधा परिचय हुआ। सम्मेलन की अध्यक्षता श्री पदमसिंह शर्मा ने की थी। यहीं दिनकर को बालकृष्ण शर्मा नवीन तथा अन्य राष्ट्रीय कवियों के दर्शन तथा उनकी कविता सुनने को मिली। इस घटना ने उनको राष्ट्रीय चेतना की कविता लिखने की प्रेरणा दी थी। स्वयं कवि के अनुसार उनकी प्रथम रचना "प्रणभंग" मैथिलीशरण गुप्त के "जयद्रथ वध" के अनुकरण पर लिखी गई है। इस रचना को पर्याप्त सम्मान मिला। शुक्ल द्वारा "हिन्दी साहित्य के इतिहास" में इसका उल्लेख युवा कवि के लिए प्रेरणा का आधार बना।

बी.ए. पास करने के बाद दिनकर जी कुछ समय तक एक हाई स्कूल में प्राध्यापक रहे। फिर सन् 1934 में बिहार सरकार का सब रजिस्ट्रार का पद संभाला। 1928 में 1932 तक पटना में विद्यार्थी जीवन के दौरान उनका साहित्य और साहित्यकारों से गहन परिचय हुआ था। रामवृक्ष बेनीपुरी राहुल सांकृत्यायन पं. धुरेंद्र शास्त्री, गंगाशरण सिंह आदि से उनका संपर्क इसी दौरान हुआ। सब रजिस्ट्रार पद पर कार्य के दौरान उन्हें बिहार के गाँवों की विपिन्नता को और अधिक निकट से देखने का अवसर मिला। नौ वर्ष तक इस पद पर कार्य करने के पश्चात् उनका तबादला युद्ध प्रचार विभाग में हो गया। सन् 1950 में उन्होंने लंगट सिंह कालेज मुजफ्फरपुर में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष का पद सँभाला। सन् 1952 में राज्य सभा के सदस्य मनोनीत हुए और 1964 तक इस पद पर रहे। 1964 में भागलपुर विश्वविद्यालय में उपकुलपति नियुक्त हुए। किन्तु एक वर्ष बाद उपकुलपति पद से

त्यागपत्र दिया और भारत सरकार के हिन्दी सलाहकार नियुक्त होकर दिल्ली आ गए। तत्पश्चात् दिल्ली में ही रहे। उनका देहान्त 24 अप्रैल 1974 में मद्रास में हुआ। लगभग 4 देशों में फैले रचनाकाल में दिनकर की काव्य चेतना की राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा की चेतना का नाम दिया जाता है मैथिलीशरण गुप्त के बाद राष्ट्रकवि के रूप में सम्मान पाने वाले वे एक मात्र कवि हैं। राष्ट्रकवि के रूप में उन्होंने दुनिया के अनेक सम्मेलनों में उन्होंने भारत और भारतीय साहित्य का प्रतिनिधित्व किया।

सन् 1959 में दिनकर जी को पद्मभूषण की उपाधि से सम्मानित किया गया तथा सन् 1962 में भागलपुर विश्वविद्यालय ने उन्हें डी.लिट. की मानद उपाधि से सम्मानित किया।

36.2.2 कवि व्यक्तित्व

दिनकर के कविजीवन का आरम्भ तीसरे दशक से होता है. यद्यपि उनका प्रथम काव्य संग्रह 'रेणुका' सन् 1935 में छपा। दिनकर जी के कवि व्यक्तित्व की बनावट में जिन तत्वों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाही उनमें प्रमुख हैं भारतीय स्वाधीनता संग्राम, साम्राज्यवादी-पूँजीवादी शोषण से कराहता ग्रामीण कृषक वर्ग और छायावादयुगीन पृष्ठभूमि। वे छायावादोत्तर काल के प्रमुख कवियों से एक हैं और स्वयं उन्हीं के शब्दों में "छायावाद की ठीक पीठ पर आए।" अतः द्विवेदी युगीन और छायावादी काव्य की उपलब्धियाँ उन्हें विरासत में मिलीं। स्वयं उन्ही के शब्दों में, "पंत के सपने हमारे हाथ में आकर उतने वायवीय नहीं रहे, जितने कि वे छायावाद काल में थे किन्तु द्विवेदी युगीन अभिव्यक्ति की शुभ्रता हम लोगों के पास आते-आते कुछ रंगीन अवश्य हो गई। अभिव्यक्ति की स्वच्छंदता की विरासत हमें आप से आप प्राप्त हो गई। "इस तरह छायावादी कुहासे को काटने वाली शक्तियों में दिनकर की कविता की प्रवाहमयता और ओजस्विता का विशेष महत्व है। इसीलिए दिनकर और बच्चन के काव्य क्षेत्र में आगमन को छायावादोत्तर काल की एक महत्वपूर्ण घटना कहा जाता है। बच्चन की कविता में जहाँ वैयक्तिकता की प्रधानता है वहीं दिनकर की कविता में जीवन, समाज और परिचित परिवेश की। उन्हें हिन्दी कवियों की जिस धारा में रखा जा सकता है वह धारा भारतेंदु, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, सुभद्राकुमारी चौहान, माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा नवीन की राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य धारा है। उनकी कविता की बड़ी उपलब्धि यह है कि उन्होंने हिन्दी कविता को जन सामान्य के बीच प्रतिष्ठित किया है यहाँ कविता जनता में और जनता कविता में आ गई है। उनकी काव्य संवेदना के विकास में प्राचीन भारतीय संस्कृत साहित्य की परंपरा और आधुनिक बंगला साहित्य ने योगदान दिया था। इसके साथ ही उर्दू काव्य धारा विशेष रूप से काजी नज़रूल इस्लाम और जोश के क्रांतिकारी आक्रामक स्वर और गर्जन ने भी उनकी काव्य चेतना को प्रभावित किया है। राजनीतिक विचारधाराओं में वे कार्ल मार्क्स की प्रगतिशील क्रांतिकारी धारा से प्रभावित हैं। हाँलाकि वे राजनीतिक तथ्यात्मकता को पूर्णतया स्वीकार कर उसमें बँधने वाले कवि नहीं हैं। यही कारण है कि प्रगतिवादी, जनवादी और मानववादी विचारधाओं से पोषित होने के बावजूद वे उनमें आबद्ध नहीं हैं। गांधीवादी अहिंसा को उनका क्रांतिकारी आमूल परिवर्तनकारी स्वभाव स्वीकार नहीं करता किन्तु प्रगतिवादियों की खामियों को ललकारे बगैर भी नहीं रहता। मूलतः उनकी चेतना सामाजिक चेतना है जो अन्याय और अव्यवस्था के विरोध में खड़ी है और हर स्तर पर उस पर प्रहार करती चलती है। किसी एक विचारधारा विशेष से न बँधने के कारण दिनकर की विशेषता यह रही कि अपने चार दशकों में फैले रचनात्मक काल में वे समय और समाज से जुड़े और उसके प्रति प्रतिबद्ध रचनाकार रहे। यही कारण है कि वे किसी "वाद" के कवि न होकर राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के कवि हैं। साम्यवाद से प्रभावित होने के बावजूद राष्ट्रीय हितों को वे अंतर्राष्ट्रीय हितों के नीचे नजरअंदाज नहीं करते। 1945 में लिखी "दिल्ली और मास्को" कविता इसका प्रमाण हैं। इसी तरह गांधीवादी अहिंसा दर्शन के विरोधी होते हुए भी वे गांधी के प्रति अनिष्ठावान नहीं हैं गांधी जी की हत्या पर लिखी "बापू के प्रति" नामक कविता से जितने मर्मस्पर्शी शब्दों में इस देश की कृतघ्नता को धिक्कारते हैं उतना शायद ही किसी अन्य हिन्दी कवि ने धिक्कारा होगा।

'कुरुक्षेत्र' में वे अन्याय और अत्याचार को चुपचाप स्वीकार करने की बजाए उसका सशास्त्र उत्तर देने की बात कहते हैं तो आजादी के बाद 'रश्मिरथी' में सामाजिक समस्याओं का समाधान खोजते हैं। नवस्वतंत्र राष्ट्र के लिए सबसे अंह प्रश्न होता है मूल्यों का प्रश्न। "संस्कृति के चार अध्याय" में दिनकर भारतीय संस्कृति का नए सिरे से

मूल्यांकन करते हैं। लबे समय तक "क्रांति और विद्रोह" की कविता लिखने के बाद "उर्वशी" में वे कामाध्यात्म की ओर मुड़ते हैं। डा. रामविलास शर्मा के विचार में नयी कविता के रेगिस्तान में "उर्वशी" शीतल जल की धारा है।

लेकिन 1962 में देश पर चीनी आक्रमण होने पर कवि का पुराना तेवर लोट आता है और वह "परशुराम की प्रतीक्षा" की रचना करता है। कुरुक्षेत्र का युद्ध दर्शन यहाँ फिर दोहराया जाता है।

36.2.3 रचनाएँ

दिनकर ने कविता लेखन विद्यार्थी जीवन में ही शुरू कर दिया था और उनकी पहली रचना 1924 में जबलपुर के "छात्र सरोदर" नामक पत्र में छपी थी। उसके बाद कलकत्ता से प्रकाशित 'देश', 'महावीर', 'सेनापति' आदि में निरन्तर कविताएँ छपती रहीं। हालांकि उनकी प्रमुख रचनाओं का प्रकाशन 1935 में रेणुका के साथ शुरू हुआ। उन्होंने कुल मिलाकर 40 से अधिक पुस्तकें लिखीं जिनमें प्रबंध काव्य, मुक्तक काव्य, साहित्य और संस्कृति पर वैचारिक चिन्तन परक ग्रंथ, निबन्ध संस्करण आदि शामिल हैं। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं--

काव्य
रेणुका
हुंकार
सामधेनी
कुरुक्षेत्र
चक्रवाल
रश्मिरथी
उर्वशी
कोयला और कवित्व
परशुराम की प्रतीक्षा
हारे को हरिनाम

वैचारिक गद्य
संस्कृति के चार अध्याय
शुद्ध कविता की खोज
साहित्यमुखी
भारतीय एकता
राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता
हमारी सांस्कृतिक एकता
पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त

विविध
संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ (संस्मरण)
दिनकर की डायरी
मेरी यात्राएँ (संस्मरण)

संस्कृति के चार अध्याय को 1960 के साहित्य अकादमी पुरस्कार और उर्वशी को 1973 के ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

36.3 कुरुक्षेत्र की सृजन प्रेरणा और युग परिवेश

दिनकर के काव्य की सृजन प्रेरणा का आधार युग परिवेश की पुकार और ललकार में खोजा जा सकता है। दिनकर की काव्य मानसिकता का ऐतिहासिक सामाजिक संदर्भ भारतीय स्वाधीनता संग्राम की मुक्ति चेतना से जुड़ा हुआ है। स्वाधीनता संग्राम की मुक्ति चेतना ने भारतीय युवकों में परंपरावादी समाज की रूढ़ियों, साम्राज्यवादी शोषण के दमन चक्रों उपनिवेशवादी और पूँजीवादी शक्तियों को देश से खदेड़ कर बाहर करने के संकल्प का रूप ले लिया था। एशिया में नव जागरण का जो प्रकाश फैला उसने भारतीय मानस

को भी भीतर से आंदोलित किया। अपने कवि व्यक्तित्व के निर्माण काल से ही दिनकर एक ओर तो भारतेंदु, मैथिलीशरण गुप्त और माखनलाल चतुर्वेदी की क्रांतिकारी साहित्यिक परंपरा के संस्कारों को लेकर आए और दूसरी ओर उनके मन पर उपनिषद, महाभारत और गीता की कर्मवादी क्षात्रधर्म के सौंदर्य से भरी तेजस्वी परंपरा का प्रभाव पड़ा। मूलतः दिनकर कृष्ण की युद्ध दृष्टि वाली परंपरा से अपने को जोड़ते रहे। दो विश्व युद्धों की चेतना से स्थिति परिस्थिति की ऐसी टकराहट हुई कि दिनकर की विचारधारा में गांधीवादी जीवन दृष्टि और मूल्यों के प्रति द्विधा उत्पन्न हो गई। वह न गांधीवाद को त्याग सकते थे और न पूरी तरह उसे स्वीकार करने का ही साहस उनमें था। यह युग लाला हरदयाल की गदर पार्टी और सुभाष की निर्भय स्वतंत्र चेतना की अनुगूंज भी लिए था। राजनीतिक विचारधाराओं के क्षेत्र में वामपंथी विचारधारा विशेषकर मार्क्सवादी विचारधारा का दबदबा भी बढ़ रहा था। यह विचारधारा भी एक सीमा तक दिनकर के सृजन का प्रेरणास्रोत बनी। सन् 40 के आसपास स्वाधीनता आंदोलन में शक्ति का ज्वार फूट पड़ा। नए विचारों के प्रवक्ता जयप्रकाश नारायण, लोहिया और आचार्य नरेंद्रदेव बने। भारतीय समाजवादी पार्टी का एक अन्य विरोधी चेहरा उभर कर सामने आया। जयप्रकाश नारायण के विचारों की धमक दिनकर पर बहुत है। दिनकर का यह कथन—"कुरुक्षेत्र की रचना भगवान व्यास के अनुकरण पर नहीं हुई है और न ही महाभारत को दोहराना मेरा उद्देश्य था मुझे जो कुछ कहना था वह युधिष्ठिर और भीष्म का प्रसंग उठाए बिना भी कहा जा सकता था"—स्पष्ट करता है कि दिनकर युद्ध की समस्या से वैचारिक स्तर पर संघर्ष कर रहे थे। भारतीय इतिहास और पुराणों के सांस्कृतिक सामाजिक बोध ने कवि को युद्ध परंपरा का पुष्ट आधार दिया। इसलिए दिनकर के विचारों के स्रोत टॉलस्टाय और बर्ट्रेंड रसल में उतने नहीं हैं जितने कि हमारी मूल परंपरा के आंतरिक स्पंदन तंत्र में हैं। भक्ति की पृष्ठभूमि राष्ट्रभक्ति की पृष्ठभूमि बनती है और राष्ट्र भक्ति की इस पृष्ठभूमि को तिलक अपने विचारों से नई धार देते हैं। ध्यान रखना होगा कि तिलक का अर्थ एक व्यक्ति मात्र न होकर एक पूरी विचार परंपरा है। "हुंकार" और "प्रणभंग" में दिनकर ने स्वाधीनता संग्राम की अनुभव जन्य स्थितियों को आवेग और आवेश में ढाला था किन्तु कुरुक्षेत्र में विचार तत्व केन्द्रीय स्थिति रखता है। कुरुक्षेत्र के वर्ण्य विषय पर केवल महाभारत का ही प्रभाव नहीं हैं। बल्कि सामधेनी में संकलित कलिंग विजय नामक कविता का प्रभाव भी दिनकर ने स्वयं स्वीकार किया। दिनकर ने स्वयं लिखा है—"बात यों हुई कि पहले मुझे अशोक के निर्वेद ने आकर्षित किया और 'कलिंग विजय' नामक कविता लिखते-लिखते ही मुझे ऐसा लगा मानों युद्ध की समस्या मनुष्य की स्तरों समस्याओं की जड़ हो।" साहित्य का काम है देश और काल में बदलते हुए मनुष्य की उसके पूरे ऐतिहासिक संदर्भों, परंपराओं, दर्शन और विज्ञान के स्रोतों से जुड़ कर परिभाषित करना और इस काम के लिए जो मनुष्य दिनकर के सामने था वह युद्ध के प्रति निर्भय भाव से बढ़ रहा था इसका प्रमाण यह है कि दिनकर में 'कुरुक्षेत्र' में पौराणिकता का अतिक्रमण करते हुए अपने विचार के इस विशिष्ट पक्ष को रेखांकित किया है "भीष्म और युधिष्ठर का आलंबन लेकर मैंने इस पागल कर देने वाले प्रश्न को प्रायः उसी प्रकार उपस्थित किया है जैसा कि मैं उसे समझ सका हूँ। इसलिए मैं ज़रा भी दावा नहीं करता कि कुरुक्षेत्र के भीष्म और युधिष्ठिर ठीक-ठीक महाभारत के युधिष्ठिर और भीष्म हैं।" इस कथन से जाहिर है कि यह पागल कर देने वाला प्रश्न तत्कालीन परिवेश के भीतर से ही उभरा था और पराधीनता से मुक्ति की ओर बढ़ता हुआ जनमानस इस प्रश्न से सीधे जूझ रहा था। दिनकर गांधी, थोरो, टालस्टाय, रस्किन के पास भी जाते हैं किन्तु उनके संस्कार उस राष्ट्रीय विचारधारा से ज्यादा गहरे जुड़ते हैं जिसका निर्माण आजादी के आंदोलन ने किया था। यह कहना अधिक सार्थक है कि राष्ट्रीय कविता की जो परंपरा भारतेंदु और उनके युग में प्रस्फुटित हुई थी उसकी एक मूल्यवान परिणति दिनकर के साहित्य और चिंतन से हुई है। कहीं-कहीं कुरुक्षेत्र के विचारों पर अराजकतावाद की बहुत हल्की छाया अपना प्रतिबिंब छोड़ती है और भारतीय मानववादी विचारधारा उसे ठेल कर किनारे कर देती है। कहना न होगा कि दिनकर की सृजन प्रेरणा के स्रोत भारतीय ऐतिहासिक और सामाजिक मूल्य चेतना के क्रांतिकारी विचारों में साफ दिखाई देते हैं।

बोध प्रश्न 1

i) रामधारी सिंह दिनकर का जन्म किस हिन्दी भाषी राज्य में हुआ?

....

ii) विद्यार्थी जीवन में वह किन राजनीतिक नेताओं से प्रभावित हुए?

....

iii) साहित्यकारों से उनका प्रथम परिचय कहाँ और कब हुआ?

....

iv) उनकी किस रचना को साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिला?

....

v) वह भारत सरकार में हिन्दी से संबंधित किस पद पर रहे?

....

vi) उनकी प्रसिद्ध इतिहास और संस्कृति विषयक रचना का नाम बताइए।

....

vii) क्या वह किसी विचारधारा विशेष के प्रति प्रतिबद्ध हैं?

....

viii) उन पर किन साहित्यकारों का प्रभाव पड़ा?

....

....

ix) उनके प्रथम काव्य संग्रह का नाम और प्रकाशन काल बताइए।

....

x) "कुरुक्षेत्र" का प्रकाशन कब हुआ?

....

xi) उन दिनों विश्व राजनीति की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना क्या थी?

....

....

xii) "कुरुक्षेत्र" से पहले दिनकर ने किस रचना में युद्ध के प्रश्न पर विचार किया था?

....

....

36.4 कुरुक्षेत्र का कथासार

"कुरुक्षेत्र" के वाचन से पहले आपको इसकी कथा की जानकारी दे रहे हैं। वाचन से पहले इसे देने का उद्देश्य यह है कि आप वाचन के लिए निर्धारित दो सर्गों को भली भाँति समझ सकें। उनके पिछले और पहले संदर्भ को जान सकें। इसीलिए यहाँ कथासार सर्ग-वार दिया जा रहा है।

कुरुक्षेत्र सात सर्गों (अध्यायों) में विभाजित काव्य-रचना है। इसकी कथा का आधार महाभारत से ग्रहण किया गया है। महाभारत का युद्ध कुरुक्षेत्र की रणभूमि में हुआ था इसीलिए कुरुक्षेत्र शब्द का प्रतीकार्थ है युद्ध। लेकिन दिनकर ने अपने काव्य में महाभारत युद्ध का वृत्तांत प्रस्तुत नहीं किया है। बल्कि इसकी कथा कुरुक्षेत्र युद्ध में पांडवों की विजय के पश्चात् आरंभ होती है।

पहला सर्ग

विजयी पक्ष आनंद और उन्माद में मग्न है लेकिन तभी युधिष्ठिर का मन अनेक प्रश्नों और शंकाओं से घिर जाता है। वे विचार करते हैं कि युद्ध का परिणाम केवल आनंद और सुख ही नहीं है। इसका दूसरा पक्ष है जो अतिशय भयानक और हृदय-विदारक है। बालहीन माताओं, पितृहीन बालकों, पति-विहीन स्त्रियों के आर्त्तनाद के बीच विजय का उल्लास उन्हें अत्यंत नगण्य प्रतीत होता है। असंख्य वीरों के रक्त से सना और अनाथों के करुण क्रंदन से लिपटा राज सिंहासन सुख उन्हें अत्यधिक आत्म-ग्लानिपूर्ण लगता है। वह अनुभव करते हैं कि वीरगति पाकर चला जाने वाला दुर्योधन उनकी तुलना में भाग्यशाली था

क्योंकि उसे वह सब तो देखने की यंत्रणा नहीं झेलनी पड़ी जिसे युधिष्ठिर देख रहे हैं। बंधु-बांधवों का शवदाह देखने और उत्तरा का करुण विलाप सुनने की हृदय विदारक स्थितियों से युधिष्ठिर के मन में क्षोभ उत्पन्न होता है और वे महसूस करते हैं यह सारा विनाश केवल पाँच व्यक्तियों–पांडवों की असहिष्णुता का परिणाम है। यदि जैसी स्थिति थी वैसी में ही पांडव संतोष कर लेते तो यह भीषण रक्तपात न होता। ऐसे आत्मग्लानिपूर्ण भावों से उनका मन बहुत खिन्न हो उठा और वे भीष्म पितामह के पास जाते हैं।

द्वितीय सर्ग

भीष्म अजेय थे और उन्हें अपनी इच्छा से मृत्यु का वरण करने का वरदान प्राप्त था। अतः अर्जुन के वाणों से पूरा शरीर बेंध दिए जाने के बावजूद जब उन्होंने महसूस किया कि अभी मरने के लिए उपयुक्त समय नहीं हैं तो उन्होंने आई हुई मृत्यु से कह दिया कि कुछ समय प्रतीक्षा करो। इस प्रकार युद्ध समाप्त होने के बाद तक रणभूमि में शर-शैय्या पर पड़े थे। अधीर और व्याकुल युधिष्ठिर ने उनके पास पहुँच कर चरण स्पर्श करते हुए कहा कि महाभारत विफल हुआ। युद्ध के विनाशकारी परिणामों से उत्पन्न अपनी मनोव्यथा जब वह भीष्म को सुना चुके तो भीष्म ने उत्तर दिया कि धर्मराज का यह व्यवहार कायरतापूर्ण है, उनका यह सोचना गलत है कि युद्ध पांडवों के कारण हुआ। युद्ध तो अवश्यंभावी था जिसे वे रोक नहीं सकते थे। बहुत समय से इस संसार में विषाक्त वातावरण–स्वार्थ, राजनीतिक प्रवंचना, प्रतिशोध आदि की प्रबलता होती जा रही थी और जिस तरह प्रकृति में अतिशय गर्मी का विस्फोट तूफान में होता है उसी तरह मनुष्य समाज के विकारों की अग्नि का विस्फोट युद्ध में होता है। कुरुक्षेत्र का युद्ध यद्यपि कौरवों द्वारा पांडवों के अपमान और स्वत्व हरण के कारण हुआ लेकिन मात्र इतना ही इसका कारण न था, बल्कि देश भर के वातावरण में युद्ध के बीज फैल गए थे। अतः धर्मराज का यह विचार सर्वथा निर्मूल है कि युद्ध करके उन्होंने कोई पाप किया है। पाप और पुण्य के बीच कोई विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती। कोई काम अपने-आप में पाप या पुण्य नहीं होता क्योंकि उसके पीछे निहित भाव प्रधान होता है।

भीष्म का मत है कि त्याग, करुणा, क्षमा अहिंसा आदि महत्वपूर्ण है। लेकिन जब सामने से हिंसक वार होता हो तब वे काम नहीं आते क्योंकि "पाशविकता खड्ग जब लेती उठा/ आत्मबल का एक वश चलता नहीं।" इस बात की पुष्टि वह उदाहरण देकर करते हैं कि जब राम नें देखा कि वनों में ऋषिमुनियों की अस्थियों का ढेर लगा हुआ है तो स्थिति का सामना करने के लिए उन्होंने प्रण किया कि पृथ्वी से राक्षकों का अंत कर दूँगा।

तृतीय सर्ग

इस सर्ग में युद्ध और शांति के प्रश्न पर विचार किया गया है। भीष्म कहते हैं शांति तो सभी चाहते हैं किन्तु विवश होकर युद्ध करना पड़ता है। शांति दो तरह की हो सकती है एक तो वह जो अन्याय और शोषण पर आधारित हो जिसमें शोषित को अपना हक लेने का भी अधिकार न हो, दमन के खिलाफ अस्त्र उठाने की किसी की हिम्मत न हो। दूसरे प्रकार की शांति है प्रेम और न्याय पर आधारित अहिंसा। इसमें दूसरे प्रकार की शांति तो वरेण्य हो सकती किन्तु पहले प्रकार की नहीं। पहले प्रकार की स्थिति नें शांति की बात करना या त्याग, तप और क्षमा की बात करना वास्तव में कायरता है। अन्याय और असमानता पर आधारित शांति की बजाय क्रांति और प्रतिशोध बेहतर है। न्याय की स्थापना के लिए होने वाली हिंसा और युद्ध उचित हैं। इसलिए युद्ध का उत्तरदायी वह नहीं जो शोषित है बल्कि उत्तरदायी है वह जो अनीति और शोषण कर रहा है।

चतुर्थ सर्ग

भीष्म कहते हैं कि न्याय चुराने वाला ही रण को बुलाता है। इसलिए अपने अधिकार को पाने के लिए युद्ध करना अनुचित नहीं है। फिर लोगों में परस्पर अंहकार वैर इकाई और वैमनस्य बढ़ता जा रहा था। दुर्योधन द्वारा पांडवों के अधिकारों के हनन के अलावा भी महाभारत युद्ध के अनेक कारण थे। इन कारणों के ताप का विस्फोट महाभारत रूपी ज्वालामुखी की शक्ल में हुआ। राजसूय यज्ञ के पश्चात् ही महामुनि व्या ने इस कठिन समय के विषय में आगाह किया था। यज्ञ ने ईर्ष्या को बढ़ावा दिया।

इस सर्ग में भीष्म पितामह आत्म विश्लेषण करते हुए स्वयं को भी युद्ध के लिए जिम्मेदार ठहराते हैं। अपने मन में कर्त्तव्य के प्रति दृढ़ता और स्नेह के संघर्ष में वह सदैव कर्त्तव्य को ही विजयी बनाते रहे, अपने कोमल भावों की अवहेलना करते रहे। न्याय का पक्ष लेकर

कभी दुर्योधन को ललकारने और राजद्रोह की आवाज उठाने का प्रयास नहीं किया। यदि ऐसा किया होता तो संभवतः कुरुक्षेत्र युद्ध की नौबत न आती। किन्तु अब सब कुछ हो चुका है इसलिए उसे भूल कर नए युग का सूत्रपात करना चाहिए।

पंचम सर्ग

इस सर्ग के आरंभ में कवि ने द्वापर कालीन समाज की भीषण परिस्थितियों की तस्वीर प्रस्तुत की है। भीष्म पितामह से युद्ध के औचित्य के बारे में सुनकर भी युधिष्ठिर के मन की आत्मग्लानि समाप्त नहीं होती। उन्हें लगता है संपूर्ण विनाश का दृश्य मानों उन पर उपहास कर रहा है। वह सोचते हैं कि उनकी साधुवृत्ति एक दिखावा थी। वास्तव में उनके भीतर राज्य और वैभव की लिप्सा काम कर रही थी और अब जो राज्य उन्हें मिला है वह किसी पुण्य कर्म का फल नहीं है। उन्हें पश्चाताप होता है कि उन्हें यह बोध पहले क्यों नहीं हुआ कि युद्ध भोग और धन की इच्छा का परिणाम है। यदि पहले ऐसा बोध हो जाता तो वह युद्ध न करते। उन्हें लगता है कि राजसिंहासन का लोभ ही उनके सर्वनाश की जड़ है। अतः अब वह लोभ से ही युद्ध करने की ठान लेते हैं। उन्हें विश्वास है कि इस लड़ाई में वह अवश्य विजयी होंगे और नए धर्म का दिया जलाएँगे।

षष्ठ सर्ग

इस सर्ग में भीष्म या युधिष्ठिर के मुख से बोलने की बजाए कवि स्वयं युद्ध की समस्या पर विचार करता है। युद्ध की समस्या यहाँ द्वापर काल तक सीमित न होकर सनातन समस्या के रूप में उभरी है और आधुनिक विज्ञान के युग की परिस्थितियों के संदर्भ में भी इस पर विचार किया गया है। आरंभ में कवि ईश्वर से विनयपूर्वक प्रश्न पूछता है कि धर्म यानी कर्त्तव्य और दया का दीपक विश्व में कब जलेगा। कब पृथ्वी पर शांति की ज्योति प्रज्वलित होगी। शांति के प्रयास बहुत सी महान विभूतियों द्वारा किए जा चुके हैं। भीष्म, युधिष्ठिर, स्वयं भगवान, गौतम बुद्ध, अशोक, गांधी, ईसा मसीह आदि ने इसका प्रयास किया। इन सभी को इनके प्रयासों के लिए समुचित सम्मान भी मिला। किन्तु उनके शांति स्थापना के आदर्शों का स्थायी रूप से पालन नहीं हुआ।

आज मनुष्य ने काफी प्रगति की है। अपनी बुद्धि के बल पर उसने प्रकृति को जीत लिया है उसके रहस्यों का पता लगा लिया है। धरती, आकाश, समुद्र सभी पर उसकी गति है। लेकिन अफसोस यही है कि बुद्धि और हृदय का समान विस्तार नहीं हुआ है। प्रेम और बलिदान के भावों के व्यापक विस्तार की जरूरत है।

कवि फिर प्रश्न करता है कि विज्ञान के अन्वेषणों द्वारा मनुष्य क्या चाहता है? पृथ्वी के रहस्यों को जानने के बाद वह ग्रह नक्षत्रों के रहस्यों का पता लगाने में तो सक्रिय है किन्तु इस वैज्ञानिक प्रगति का लक्ष्य संसार में समरसता का प्रसार होना चाहिए युद्ध और संहार नहीं। वह फिर ईश्वर से प्रश्न करता हुआ कहता है कि साम्य की वे स्निग्ध और उदार रश्मियाँ कब इस संसार में बिखरेंगी जिनसे समरसता का प्रसार हो सकेगा।

सप्तम सर्ग

यह "कुरुक्षेत्र" का सबसे बड़ा सर्ग है। इसमें कवि विचार करता है कि व्यक्ति पाप की खाई में गिर कर भी यदि निकलने का प्रयास करता है तो वह महान है। वह मानता है कि प्रकाश का रास्ता अंधकार से होकर जाता है। भीष्म पितामह धर्मराज से कहते हैं कि कुरुक्षेत्र युद्ध में नर संहार का अर्थ मानवता का संहार या अंत नहीं है। इस दारुण दुख के बाद सुख-शांति के फूल खिलेंगे। वह आशा करते हैं कि द्वापर युग की समाप्ति पर जिस नए युग का आरंभ होगा उससे अवश्य ही मनुष्य की प्रगति होगी। वह धर्मराज से कहते हैं कि मानव कल्याण का मार्ग लेकर संसार में आगे बढ़ो। समाज में शांति की स्थापना तभी हो सकती है जब सब मनुष्यों को अपने अधिकार प्राप्त हो जाएँ। युद्ध रोकने के लिए शोषणकारी व्याघ्र से धरती को मुक्त करना जरूरी है। वह भाग्यवाद का खंडन करते हुए कहते हैं कि मनुष्य ने जो कुछ पाया है वह अपनी भुजाओं के बल पर ही पाया है। लेकिन यहाँ भाग्यवाद का नाम लेकर छल और प्रवंचना से कुछ लोग बहुत अधिक पाये हुए हैं और दूसरे वंचित हैं।

फिर भीष्म उस आरंभिक अवस्था की चर्चा करते हैं जब सभी मनुष्यों को अपना अधिकार सुलभ था और समाज समता पर आधारित था। अतः जीवन में सर्वत्र शांति थी। फिर व्यक्ति के मन में स्वार्थ का उदय हुआ और उसने अधिकारों का संचय आरंभ कर दिया।

इससे शांति भंग हुई और संघर्ष उत्पन्न हुआ परिणामस्वरूप राजतंत्र का जन्म हुआ। न्याय और व्यवस्था का यह प्रयास कुछ दिन तो कामयाब हुआ किन्तु कालांतर शासक स्वयं शोषक बन गए। जब तक यह शोषण समाप्त न होगा तब तक शांति संभव नहीं होगी। वह धर्मराज से कहते हैं कि संन्यास खोजना कायरता है। अतः उन्हें जनता को सुखी बनाने का प्रयास करना चाहिए। संन्यास से व्यक्ति संसार को नश्वर समझ कर चिंताओं में डूब जाता है। लेकिन व्यक्ति को सुख-दुख सहन करते हुए इस संसार को सरस और सुंदर बनाने का प्रयास करना चाहिए। संन्यासी तो संसार से पलायन करता है वह संसार के काम नहीं आता और कर्मठ मनुष्य का पथ संन्यास नहीं है। निर्वेद से आकुल मनुष्य की विरक्ति अकर्मण्यता को जन्म देती है यह विरक्ति मनुष्य को दुर्बल, दीन, श्रीहीन और निस्तेज बनाती है। केवल ज्ञानमयी निवृत्ति से मन की दुविधा नहीं फिर सकती। मनुष्य का शत्रु उसके अंतःकरण में ही विद्यमान होता है अन्यत्र नहीं। अतः उसे मन पर संयम रख कर मानवता के विकास के बारे में सोचना चाहिए और लोक-कल्याण के पथ पर अग्रसर होना चाहिए। पितामह धर्मराज को आशावान रहने की सलाह देते हैं और विश्वास व्यक्त करते हैं एक दिन पृथ्वी अवश्य ही आशंकर से मुक्त होगी। स्नेह और बलिदान की भावना के विस्तार के कारण पृथ्वी स्वर्ग के समान बन सकेगी।

36.5 'कुरुक्षेत्र' का वाचन (द्वितीय और तृतीय सर्ग)

द्वितीय सर्ग

आयी हुई मृत्यु से कहा **अजेय**[1] भीष्म ने कि
　　　　योग[2] नहीं जाने का अभी है, इसे जानकर
रुकी रहो पास कहीं, और स्वयं लेट गये
　　　　बाणों का शयन, बाण का ही **उपधान**[3] कर।
व्यास कहते हैं, रहे यों ही वे पड़े विमुक्त,
　　　　काल के करों से छीन **मुष्टि-गत**[4] प्राण कर,
और पंथ जोहती विनीत कहीं आसपास
　　　　हाथ जोड़ मृत्यु रही खड़ी **शास्ति**[5] मान कर।

श्रृंग[6] चढ़ जीवन के आर-पार हेरते-से
　　　　योग-लीन लेटे थी थे पितामह गम्भीर-से।
देखा धर्मराज ने, विभा प्रसन्न फैल रही
　　　　श्वेत **शिरोरूह**[7], **शर-ग्रथित**[8] शरीर से।
करते प्रणाम, छूते सिर से पवित्र पद,
　　　　उँगली को धोते हुए लोचनों के नीर से,
"हाय पितामह, महाभारत विफल हुआ"
　　　　चीख उठे धर्मराज व्याकुल, अधीर-से।

वीर-गति[9] पाकर **सुयोधन**[10] चला गया है,
　　　　छोड़ मेरे सामने **अशेष**[11] ध्वंस का प्रसार,
छोड़ मेरे हाथ में शरीर निज प्राणहीन,
　　　　व्योम में बजाता जय-दुन्दुभि-सा बार-बार,
और यह मृतक शरीर जो बचा है शेष,
　　　　चुप-चाप, मानो, पूछता है मुझसे पुकार—
"विजय का एक उपहार मैं बचा हूँ, बोलो,
　　　　जीत किसकी है और किसकी हुई है हार?"

1) अजेय–जिसे कोई जीत न सकता हो। 2) योग–चंद्र और सूर्य की विशेष स्थिति के कारण विशिष्ट काल। 3) उपधान–तकिया। 4) मुष्टि-गत–मुट्ठी में रखना। 5) शास्ति–आदेश। 6) श्रृंग–शिखर। 7) शिरोरूह–सिर के। 8) शर-ग्रथित–बाणों से बिंधे हुए। 9) वीर-गति–युद्ध करते हुए मृत्यु। 10) सुयोधन–दुर्योधन। 11) अशेष–संपूर्ण, अपार।

"हाय, पितामह, हार किसकी हुई है यह?
        ध्वंस-अवशेष[1] पर सिर **धुनता**[2] है कौन?
कौन भस्मराशि में विफल सुख ढूँढ़ता है?
        लपटों से मुकुट का **पट**[3] बुनता है कौन?
और बैठ मानव को रक्त-सरिता के तीर
        नियति[4] के व्यंग्य-भरे अर्थ गुनता है कौन?"
कौन देखता है शवदाह बन्धु-बान्धवों का?
        उत्तरा[5] का करुण विलाप सुनता है कौन?

"जानता कहीं जो परिणाम महाभारत का,
        तन-बल छोड़ मैं **मनोबल**[6] से लड़ता,
तप से, सहिष्णुता से, त्याग से सुयोधन को
        जीत, नयी नींव इतिहास की मैं धरता।
और कहीं वज्र गलता न मेरी आह से जो,
        मेरे तप से नहीं सुयोधन सुधरता;
तो भी हाय, यह रक्त-पात नहीं करता मैं,
        भाइयों के संग कहीं भीख माँग मरता।

"किन्तु, हाय, जिस दिन बोया गया युद्ध-बीज,
        साथ दिया मेरा नहीं मेरे दिव्य-ज्ञान ने;
उलट दी मति मेरी भीम की गदा ने और
        पार्थ[7] के **शरासन**[8] ने, अपनी कृपाण ने;
और जब अर्जुन को मोह हुआ रण-बीच,
        बुझती शिखा में दिया घृत भगवान ने;
सबकी सुबुद्धि पितामह, हाय, मारी गयी,
        सबको विनष्ट किया एक अभिमान ने।

"कृष्ण कहते हैं, युद्ध **अनघ**[9] है, किन्तु, मेरे
        प्राण जलते हैं पल-पल **परिताप**[10] से;
लगता मुझे है, क्यों मनुष्य बच पाता नहीं
        दह्यमान[11] इस **पुराचीन**[12] अभिशाप से!

प्रथम सर्ग

"हम वहाँ पर है, महाभारत जहाँ
दीखता है स्वप्न **अन्तःशून्य**[13]-सा,
जो घटित-सा तो कभी लगता, मगर,
अर्थ जिसका अब न कोई याद है।

आ गये हम पार, तुम उस पार हो;
यह पराजय या कि जय किसकी हुई?
व्यंग्य, पश्चात्ताप, **अन्तर्दाह**[14] का
अब विजय-उपहार भोगो चैन से।"

हर्ष का स्वर घूमता निस्सार-सा
लड़खड़ाता मर रहा कुरुक्षेत्र में,

---

1) ध्वंस-अवशेष—ध्वंस के बाद जो कुछ शेष बचा है। 2) सिर धुनना (मुहावरा)—पश्चाताप करना। 3) पट—कपड़ा डोरी। 4) नियति—भाग्य। 5) उत्तरा—अभिमन्यु की पत्नी। 6) मनोबल—मन की शक्ति। 7) पार्थ—अर्जुन। 8) शरासन—धनुष। 9) अनघ—पाप रहित। 10) परिताप—शोक, अत्याधिक दुख। 11) दह्यमान—विनाशकारी। 12) पुराचीन—प्राचीन। 13) अंतः शून्य—अंदर से शून्य यानि निरर्थक। 14) अंतर्दाह—हृदय की पीड़ा, वेदना।

मुहावरों का प्रयोग
मति उलट देना—विवेक खो देना
आग में घी डालना—अत्यधिक बढ़ाना
सुबुद्धि मारा जाना—बुद्धि का विनाश

औ' युधिष्ठिर सुन रहे अव्यक्त-सा
एक **रव**[1] मन का कि व्यापक शून्य का।

रक्त से सिच कर समर की मेदिनी
हो गयी है लाल नीचे कोस-भर,
और ऊपर रक्त की **खर**[2] धार में
तैरते हैं अंग रथ, गज, वाजि के।

किन्तु, इस विध्वंस के उपरान्त भी
शेष क्या है? व्यंग्य ही तो भाग्य का?
चाहता था प्राप्त मैं करना जिसे
तत्त्व वह **करगत हुआ**[3] या उड़ गया?

सत्य ही तो, **मुष्टिगत**[4] करना जिसे
चाहता था, शत्रुओं के साथ ही
उड़ गये वे तत्त्व, मेरे हाथ में
व्यंग्य, पश्चात्ताप केवल छोड़कर।

यह महाभारत वृथा निष्फल हुआ,
उफ! ज्वलित कितना **गरलमय**[5] व्यंग्य है?
पाँच ही असहिष्णु नर के द्वेष से
हो गया संहार पूरे वंश का।

द्रौपदी हो दिव्य-वस्त्रालंकृता,
और हम भोगें **अहम्मय**[6] राज्य यह,
पुत्र-पति-होना इसी से तो हुई,
कोटि माताएँ, करोड़ों नारियाँ।

"रक्त से छाने हुए इस राज्य को
वज्र हो कैसे सकूँगा भोग मैं?
आदमी के खून में यह है सना
और है इसमें लहु अभिमन्यु का"।

वज्र-सा कुछ टूटकर स्मृति से गिरा,
दब गये कौन्तेय दुर्वह भार से,
दब गयी वह बुद्धि जो अब तक रही
खोजती कुछ तत्व रण के भस्म में।

भर गया ऐसा हृदय दुख-दर्द-से,
फेन या बुदबुद नहीं उसमें उठा।
खींचकर उच्छ्वास बोले सिर्फ वे
"पार्थ, मैं जाता पितामह पास हूँ।"

और हर्ष-निनाद अन्तः शून्य-सा
लड़खड़ाता मर रहा था वायु में।

द्वितीय सर्ग

"**करूँ आत्मघात**[7] तो कलंक और घोर होगा,
नगर को छोड़ अतएव, वन जाऊँगा,
पशु-खग भी न देख पायें जहाँ, छिप किसी
कन्दरा[8] में बैठ, अश्रु -खुलके बहाऊँगा;

1) रव–शोर। 2) खर-तेज। 3) करगत होना–हाथ में आना। 4) मुष्टिगत करना–मुट्ठी में लेना। 5) गरलमय–विषमय। 6) अहम्मय–अहम् से पूर्ण। 7) आत्मघात–आत्महत्या। 8) कंदरा–गुफा।

जानता हूँ, पाप न धुलेगा वनवास से भी,
छिपा तो रहूँगा, दुःख कुछ तो भुलाऊँगा;
व्यंग्य से बिधेगा वहाँ जर्जर हृदय तो नहीं,
वन में कहीं तो धर्मराज न कहाऊँगा।"

और तब चुप हो रहे कौन्तेय,
संयमित करके किसी विध शोक **दुष्परिमेय**[1]
उस **जलद-सा**[2], एक **पारावार**[3]
हो भरा जिसमें लबालब, किंतु, जो लाचार
बरस तो सकता नहीं, रहता, मगर, बेचैन है।

भीष्म ने देखा गगन की ओर
मापते, मानो, युधिष्ठिर के हृदय का छोर,;
और बोले, 'हाय नर के भाग!
क्या कभी तू भी तिमिर के पार
उस महत् आदर्श के जग में सकेगा जाग,

एक नर के प्राण में जो हो उठा साकार है
आज दुख से, खेद से, **निर्वेद**[4] के आघात से?

औ' युधिष्ठिर से कहा, "तूफान देखा है कभी?
किस तरह आता **प्रलय का नाद**[5] वह करता हुआ

काल सा वन में द्रुमों को तोड़ता, झकझोरता,
और **मूलोच्छेद**[6] कर भू पर सुलाता क्रोध से

उन सहस्त्रों पादपों को जो कि क्षीणाधार हैं?
रूग्ण शाखाएँ द्रुमों की हरहरा कर टूटतीं,

टूट गिरते शावकों के साथ नीड़ विहंग के,
अंग भर जाते **वनानी**[7] के निहत तरु, गुल्म से,
छिन्न फूलों के दलों से, पक्षियों को देह से।

पर, शिराएँ जिस **महीरुह**[8] की **अतल**[9] में हैं गड़ी,
वह नहीं भयभीत होता क्रूर **झंझावात**[10] से,
शीश पर बहता हुआ तूफान जाता है चला,
नोचता कुछ पत्र या कुछ डालियों को तोड़ता।

किन्तु इसके बाद जो कुछ शेष रह जाता, उसे,
वन-विभ्रव के क्षय, बनानी के करूणा वैधव्य को

देखता जीवित महीरुह शोक से, निर्वेद से,
क्लान्त[11] पन्नों को झुकाये, **स्तब्ध**[12] मौनाकाश में,
सोचता, "है भेजती हमको प्रकृति तूफान क्यों?"

पर, नहीं यह ज्ञात उस जड़ वृक्ष को,
प्रकृति भी तो है अधीन **विमर्ष**[13] के।
यह **प्रभंजन**[14] शस्त्र है उसका नहीं,
किन्तु, है आवेगमय विस्फोट उसके प्राण का,
जो जमा होता प्रचंड **निदाघ**[15] से,
फूटना जिसका सहज अनिवार्य है।

1) दुष्परिमेय—असीमित। 2) जलद—बादल। 3) पारावार—समुद्र। 4) निर्वेद—दुख या खेद से उत्पन्न वैराग्य।
5) प्रलय का नाद—प्रलय के जल की तरह भंयकर शोर। 6) मूलोच्छेद—जड़ से उखाड़ना।
7) वनानी—वनदेवी। 8) महीरुह-विशाल वृक्ष। 9) अतल—तलहीन, अथाह। 10) झंझावात—अंधड़।
11) क्लांत—थका हुआ, मुरझाया हुआ। 12) स्तब्ध—निश्चेष्ट। 13) विमर्ष—व्याकुलता, क्षोभ।
14) प्रभंजन—तूफान। 15) निदाघ—गर्मी।

व्यंग्य से हृदय बिंधना (मुहावरा)—व्यंग्य वचनों से आहत होना।

यों ही, नरों में भी विकारों की शिखाएँ आग-सी,
एक से मिल एक जलती हैं प्रचण्ड वेग से,
तप्त होता क्षुद्र **अन्तर्व्योम**[1] पहले व्यक्ति का,
और तब उठता धधक समुदाय का आकाश भी,
क्षोभ, **दाहक**[2] घृणा से, गरल, द्वेष से।

भट्टियाँ इस भाँति जब तैयार होती हैं,
तभी युद्ध का **ज्वालामुखी**[3] है फूटता।

राजनीतिक उलझनों के व्याज से
या कि देशप्रेम का अवलम्ब से।

किन्तु, सबके मूल में रहता हलाहल है वही,
फैलता है जो घृणा से, स्वार्थमय विद्वेष से।

युद्ध को पहचानते सब लोग हैं,
जानते हैं, युद्ध का परिणाम अन्तिम ध्वंस है।
सत्य ही तो, कोटि का वध **पाँच**[4] के सुख के लिए!

किन्तु, मत समझो कि इस कुरुक्षेत्र में
पाँच के सुख ही सदैव प्रधान थे,
युद्ध में मारे हुओं के सामने
पाँच के सुख-दुख नहीं उद्देश्य केवल मात्र थे।

और भी थे भाव उनके हृदय में,
स्वार्थ के, **नरता**[5] कि जलते शौर्य के,
खींच कर जिसने उन्हें आगे किया,
हेतु उस आवेश का था और भी।

युद्ध का उन्माद **संक्रमशील**[6] है,
एक चिनगारी कहीं जागी अगर,

तुरन्त बह उठते पवन उनचास हैं,
दौड़ती, हँसती, उबलती आग चारों ओर से हैं।

और तब रहता कहाँ अवकाश है
तत्व चिन्तन का, गंभीर विचार का
युद्ध की लपटें चुनौती भेजतीं
प्राणमय नर में छिपे **शार्दूल**[7] को।

युद्ध की ललकार सुन प्रतिशोध से
दीप्ति हो अभिमान उठता बोल है,
चाहता नस तोड़ कर बहना लहू,
आ स्वयं तलवार जाती हाथ में।

रुग्ण होना चाहता कोई नहीं,
रोग लेकिन, आ गया जब पास हो,
तिक्त[8] ओषधि के सिवा उपचार क्या
शमित[9] होगा यह नहीं **मिष्टान्न**[10] से।

है **मृषा**[11] तेरे हृदय की **जल्पना**[12]
युद्ध करना पुण्य या दुष्पाय है।

---

1) अंतर्व्योम—हृदय (यह भाषा का लाक्षणिक प्रयोग है) अंतर+व्योम की संधि से बना अंतर्मन या हृदय का द्योतक है। 2) दाहक—जलाने वाली। 3) ज्वालामुखी—अग्नि, लावा आदि। 4) पाँच—पाँच पांडव। 5) नरता—पौरुष। 6) संक्रमशील—संक्रमण शील फैलने वाला। 7) शार्दूल—बाघ, चीता। 8) तिक्त—तीखी। 9) शमित—शांत। 10) मिष्टान्न—मिठाई। 11) मृषा—मिथ्या। 12) जल्पना—डींग मारना।

क्योंकि कोई कर्म है ऐसा नहीं
जो स्वयं ही पुण्य हो या पाप हो।

सत्य ही भगवान ने उस दिन कहा,
मुख्य है कर्ता-हृदय की भावना
मुख्य है यह भाव, जीवन-युद्ध में
भिन्न हम कितना रहे निज कर्म से।

औ समर तो और भी अपवाद है,
चाहता कोई नहीं इसको, मगर,
जूझना पड़ता सभी को, शत्रु जब
आ गया हो द्वार पर ललकारता।

है बहुत देखा-सुना मैंने मगर,
भेद खुल पाया ना धर्माधर्म का,
आज तक ऐसा कि रेखा खींच कर
बाँट दूँ मैं पुण्य को औ पाप को।

जानता हूँ किन्तु, जीने के लिए
चाहिए अंगार-जैसी वीरता,
पाप हो सकता नहीं वह युद्ध है
जो खड़ा होता ज्वलित **प्रतिशोध**[1] पर।

छीनता हो **स्वत्व**[2] कोई, और तू
त्याग-तप से काम ले यह पाप है।
पुण्य है **विच्छिन्न कर देना**[3] उसे
बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ हो।

बद्ध, **विदलित**[4] और साधनहीन को
है उचित अवलम्ब अपनी आह का
गिडगिड़ाकर किन्तु, माँगे भीख क्यों
वह पुरुष जिसकी भुजा में भक्ति हो?

युद्ध को तुम निन्द्य कहते हो मगर,
जब तलक हैं उठ रही चिनगारियाँ
भिन्न स्वार्थों के कुलिश-संघर्ष की,
युद्ध तब तक विश्व में अनिवार्य है।

और जो अनिवार्य है उसके लिए
खिन्न या **परितप्त**[5] होना व्यर्थ है।

तू नहीं लड़ता, न लड़ता, आग यह
फूटती निश्चय किसी भी **ब्याज**[6] से

पाण्डवों के भिक्षु होने से कभी
रुक न सकता था सहज विस्फोट यह
ध्वंस से सिर मारने को थे तुले
ग्रह-उपग्रह क्रुद्ध चारों ओर के।

धर्म का है एक और रहस्य भी,
अब छिपाऊँ क्यों भविष्यत से उसे
दो दिनों तक मैं मरण के भाल पर
हूँ खड़ा, पर जा रहा हूँ विश्व से।

1) प्रतिशोध–बदले की भावना। 2) स्वत्व–स्वतंत्रता, अधिकार, स्वामित्व। 3) विच्छिन्न करना–काट कर अलग कर देना। 4) विदलित–दला हुआ, टुकड़े-टुकड़े किया हुआ। 5) परितृप्त–संतुष्ट। 6) ब्याज–बहाना।

व्यक्ति का है धर्म तप, करुणा, क्षमा,
व्यक्ति की शोभा विनय भी, त्याग भी,
किन्तु उठता प्रश्न जब समुदाय का,
भूलना पड़ता हमें तप–त्याग हो।

जो **अखिल**[1] **कल्याणमय**[2] है व्यक्ति तेरे प्राण में,
कौरवों के नाश पर है रो रहा केवल वही,

किन्तु, उसके पास ही समुदायगत जो भाव हैं,
पूछ उनसे, क्या महाभारत नहीं अनिवार्य था।

जुए में सब कुछ हार कर पांडव बारह वर्ष के वनवास को गए।

हारकर धन-धाम पाण्डव भिक्षु बन चल दिये
पूंछ, तब कैसा लगा यह कृत्य उस समुदाय को
जो **अनय**[3] का था विरोध, पाण्डवों का मित्र था।

द्रौपदी वस्त्रहरण का प्रसंग।

और जब तूने, उलझकर व्यक्ति के **सद्धर्म**[4] में
क्लीव[5]-सा देखा किया लज्जा-हरण निज नारि का
द्रौपदी के साथ ही लज्जा हरी थी जा रही
उस बड़े समुदाय की जो पाण्डवों के साथ था।
और तूने कुछ नहीं **उपचार**[6] था उस दिन किया,
सो बता क्या पुण्य था या पुण्यमय था क्रोध वह
जल उठा था आग-सा जो लोचनों में भीम के?

भीम ने क्रुद्ध होकर अस्त्र उठाने का प्रयास किया।

कायरों-सी बात कर मुझको जला मत, आज तक
है रहा आदर्श मेरा वीरता, बलिदान ही
जाति-मन्दिर में जलाकर शूरता की आरती,
जा रहा हूँ विश्व से चढ़ युद्ध के ही यान पर।

त्याग, तप, भिक्षा? बहुत हूँ जानता मैं भी, मगर,
त्याग, तप, भिक्षा, विरागी योगियों के धर्म हैं,
याकि उसकी नीति जिसके हाथ में **शायक**[7] नहीं,
या **मृषा**[8] **पाषण्ड**[9] यह उस कापुरुष बलहीन का
जो सदा भयभीत रहता युद्ध से यह सोचकर
ग्लानिमय जीवन बहुत अच्छा, मरण अच्छा नहीं।

त्याग, तप करुणा, क्षमा से भींग कर
व्यक्ति का मन तो बली होता, मगर,
हिंस्र पशु जब घेर लेते हैं उसे,
काम आता है बलिष्ठ शरीर ही।

और तू कहता मनोबल है जिसे
शस्त्र हो सकता नहीं वह देह का,
क्षेत्र उसका वह मनोमय भूमि है
नर जहाँ लड़ता ज्वलन्त विकार से।

कौन केवल आत्मबल से जूझ कर
जीत सकता देह का संग्राम है?
पाशविकता[10] खड्ग जब लेती उठा,
आत्मबल का एक बस चलता नहीं।

1) अखिल–संपूर्ण। 2) कल्याणमय–भला काम करने वाला मंगलकारी। 3) अनय–अनीति, अन्याय। 4) सद्धर्म (सत्+धर्म)–अच्छा या उत्तम धर्म। 5) क्लीव–कापुरुष 6) उपचार–उपाय। 7) शायक–वाण, तलवार। 8) मृषा–मिथ्या। 9) पाषण्ड–पाखंड। 10) पाशविकता–पशुता।

जो **निरामय**[1] शक्ति है तप, त्याग में,
व्यक्ति का ही मन उसे है मानता,
योगियों की शक्ति से संसार में
हारता लेकिन, नहीं समुदाय है।

कानन[2] में देख अस्थि-पुंज **मुनिपुंगवों**[3] का
दैत्य-वध का था किया प्रण जब राम ने,
"मतिभ्रष्ट मानवों के **शोध**[4] का उपाय एक
शस्त्र ही है?" पूछा था **कोमलमना**[5] **वाम**[6] ने।
"नहीं प्रिये, सुधर मनुष्य सकता है तप,
त्याग से भी" उत्तर दिया था घनश्याम ने।*
"तप का परन्तु, वश चलता नहीं सदैव
पतित-समूह की कुवृत्तियों के सामने।"

राम कथा का प्रसंग–जब राम ने वन में उन ऋषि-मुनियों की अस्थियों का ढेर देखा जिन्हें दैत्यों ने मार डाला था तो उन्होंने प्रण किया कि पृथ्वी पर दैत्यों को समाप्त कर देंगे। ("निसचर हीन करौं मही भुज उठाय प्रन कीन्ह")

तृतीय सर्ग

समर **निंद्य**[7] है धर्मराज, पर
कहो शान्ति वह क्या है,
जो अनीति पर स्थित होकर भी,
बनी हुई सरला है?

सुख-समृद्धि का विपुल कोष
संचित कर कल, बल, छल से,
किसी **क्षुधित**[8] कर ग्रास छीन,
धन लूट किसी निर्बल से।

सब समेट, प्रहरी बिठला कर
कहती, "कुछ मत बोलो,
शान्ति-सुधा बह रही, न इसमें
गरल क्रान्ति का घोलो।

हिलो डुलो मत, हृदय-रक्त
अपना मुझको पीने दो;
अचल रहे साम्राज्य शान्ति का,
जियो और जीने दो।

सच है, सत्ता सिमट-सिमट
जिनके हाथों में आयी,
शान्तिभक्त वे साधु पुरुष
क्यों चाहें कभी लड़ाई?

[illegible] का **सम्यक्**[9]-रूप विभाजन
जहाँ नीति से, नय से
संभव नहीं, अशान्ति दबी हो
जहाँ खड्ग के भय से,

1) निरामय–निर्मल, निरोग। 2) कानन–वन। 3) पुंगव–श्रेष्ठ। 4) शोध–सुधार। 5) कोमलमना–उदार हृदय। 6) वाम–वामा, स्त्री (यहाँ पर राम की स्त्री यानी सीता)। 7) निंद्य–निंदनीय 8) क्षुधित–भूखे व्यक्ति। 9) सम्यक्–उपयुक्त।

* घनश्याम शब्द वैसे कृष्ण के लिए प्रयुक्त होता है किन्तु यहाँ राम के लिये प्रयुक्त हुआ है।

जहाँ पालते हों अनीति-पद्धति
को सत्ताधरी,
जहाँ सूत्रधार हों समाज के
अन्यायी, **अविचारी**[1];

नीतियुक्त प्रस्ताव सन्धि के
जहाँ न आदर पायें,
जहाँ सत्य कहनेवालों के
शीश उतारे जायें,

जहाँ खड्ग-बल एकमात्र
आधार बने शासन का,
दबे क्रोध से भभक रहा हो
हृदय जहाँ जन-जन का,
सहते-सहते अनय जहाँ
मर रहा मनुज का मन हो,
समझ कापुरुष अपने को
धिक्कार रहा जन-जन हो,

अहंकार के साथ घृणा का
जहाँ द्वन्द्व हो जारी,
ऊपर शान्ति, तलातल में
हो छिटक रही चिनगारी;

आगामी[2] विस्फोट काल के
मुख पर दमक रहा हो,
इंगित में अंगार विवश
भावों के चमक रहा हो,

पढ़कर भी संकेत सजग हों
किन्तु, न सत्ताधारी,
दुर्मति और अनल में दें
आहुतियाँ बारी-बारी,

कभी नये शोषण से, कभी
उपेक्षा, कभी दमन से,
अपमानों से कभी, कभी
शरवेधक[3] व्यंग्य-वचन से।

दबे हुए आवेग वहाँ यदि
उबल किसी दिन फूटें,
संयम छोड़, काल बन मानव
अन्यायी पर टूटें,

कहो, कौन **दायी**[4] होगा
उस दारुण[5] **जगद्दहन**[6] का?
अहंकार या घृणा? कौन
दोषी होगा उस रण का?

तुम **विषण्ण**[7] हो समझ,
हुआ जगदाह तुम्हारे कर से,
सोचो तो, क्या अग्नि समर की
बरसी थी अम्बर से?

---

1) अविचारी—विवेकहीन, उचित अनुचित का विचार न रखने वाला। 2) आगामी—भविष्य में होने वाला। 3) शरवेधक—बाण की तरह बेंधने वाला। 4) दायी—जिम्मेदार। 5) दारुण—भयंकर। 6) जगद्दहन—दुनिया में लगने वाली आग। 7) विषण्ण—दुखी।

अथवा अकस्मात् मिट्टी से
फूटी थीं यह ज्वाला?
या मंत्रों के बल से जन्मी
थी यह शिखा कराला[1]?

कुरुक्षेत्र के पूर्व नहीं क्या
समर लगा था चलने?
प्रतिहिंसा का दीप भयानक
हृदय-हृदय में बलने[2]?

शान्ति खोलकर खड्ग क्रान्ति का
जब वर्जन करती है,
तभी जान लो, किसी समर का
वह सर्जन करती है।

शान्ति नहीं तब तक जब तक
सुख-भाग न नर का सम हो,
नहीं किसी को बहुत अधिक हो,
नहीं किसी को कम हो।

ऐसी शान्ति राज्य करती है
तन पर नहीं, हृदय पर,
नर के ऊँचे विश्वासों पर,
श्रद्धा, भक्ति, प्रणय पर।

न्याय शान्ति का प्रथम न्यास है,
जब तक न्याय न आता,
जैसा भी हो, महल शान्ति का
सुदृढ़ नहीं रह पाता।

न्यायोचित अधिकार माँगने
से न मिलें तो लड़ के,
तेजस्वी छीनते समर को
जीत, या कि खुद मरके।

किसने कहा, पाप है समुचित
स्वत्व प्राप्ति हित लड़ना?
उठा न्याय का खड्ग समर में
अभय मारना-मरना?

क्षमा, दया, तप, तेज, मनोबल
की दे वृथा[3] दुहाई,
धर्मराज, व्यंजित करते तुम
मानव की कदराई[4]।

हिंसा की आघात तपस्या ने
कब, कहाँ सहा है?
देवों का दल सदा दानवों
से हारता रहा है।

कृत्रिम शान्ति सशंक आप
अपने से ही डरती है,
खड्ग छोड़ विश्वास किसी का
कभी नहीं करती है।

1) कराला–डरावने रूप वाली दुर्गा। 2) बलने–जलने। 3) वृथा–व्यर्थ। 4) कदराई–भय, पीछे हटना।

और जिन्हें इस शान्ति-व्यवस्था
में सुख-भोग सुलभ है,
उनके लिए शान्ति ही जीवन–
सार, सिद्धि दुर्लभ है।

पर, जिनकी अस्थियाँ चबाकर,
शोणित पीकर तन का,
जीती है यह शान्ति, दाह
समझो कुछ उनके मन का।

स्वत्व[1] माँगने से न मिलें,
संघात[2] पाप हो जायें,
बोलो धर्मराज, शोषित वे
जियें या कि मिट जायें।

मनःशक्ति प्यारी थी तुमको
यदि पौरुष ज्वलन से,
लोभ किया क्यों भरत-राज्य का?
फिर आये क्यों वन से?

दुर्योधन द्वारा रचे गए कुचक्रों का विवरण।

पिया भीम ने **विष*** **लाक्षागृह****
जला, हुए वनवासी,
केशकर्षिता[3] **प्रिया***** सभा सम्मुख
कहलायी दासी।

क्षमा, दया, तप, त्याग, मनोबल,
सबका लिया सहारा?
पर, नर-व्याघ्र सुयोधन तुमसे
कहो, कहाँ, कब हारा?

क्षमाशील हो **रिपु**[4] समक्ष
तुम हुए विनत जितना ही,
दुष्ट कौरवों ने तुमको
कायर समझा उतना ही।

अत्याचार सहन करने का
कुफल[5] यही होता है,
पौरुष का आतंक मनुज
कोमल होकर खोता है।

क्षमा शोभती उस भुजंग को
जिसके पास गरल हो,
उसको क्या, जो दन्तहीन,
विषरहित, विनीत, सरल हो?

रामकथा का प्रसंग। लंका पहुँचने के लिए समुद्र पार करने के लिए पुल बनाने की कथा।

तीन दिवस तक पन्थ माँगते
रघुपति सिन्धु-किनारे,
बैठे पढ़ते रहे छन्द
अनुनय के प्यारे-प्यारे।

1) स्वत्व–अधिकार। 2) संघात–आघात। 3) केशकर्षित–बाल पकड़ कर घसीट कर लायी गयी।
4) रिपु–शत्रु। 5) कुफल–दुष्परिणाम।

* बचपन में भीम को विष देने का प्रयास (दुर्योधन द्वारा)
** लाक्षागृह में पांडवों को जलाने का प्रयास (दुर्योधन द्वारा)
*** द्रौपदी को दुःशासन बाल पकड़ कर घसीटता हुआ राजसभा में लाया।

उत्तर में जब एक नाद भी
उठा नहीं सागर से,
उठी अधीर धधक पौरुष की
आग राम के शर से।

सिन्धु देह धर "**त्राहि-त्राहि**"[1]
करता आ गिरा शरण में
चरण पूज, दासता ग्रहण की,
बँधा मूढ़ बन्धन में।

सच पूछो, तो शर में ही
बसती है **दीप्ति**[2] विनय की,
सन्धि-वचन[3] **संपूज्य**[4] उसी का
जिसमें शक्ति विजय की।

रामकथा का प्रसंग। लंका जाने के लिए समुद्र पार करने के लिए पुल बनवाने की कथा।

सहनशीलता, क्षमा, दया को
तभी पूजता जग है,
बल का **दर्प**[5] चमकता उसके
पीछे जब जगमग है।

जहाँ नहीं सामर्थ्य **शोध**[6] की,
क्षमा वहाँ निष्फल है।
गरल घूँट पी जने का
मिस[7] है, वाणी का छल है।

फलक[8] क्षमा का ओढ़ छिपाते
जो अपनी कायरता,
वे क्या जानें ज्वलित-प्राण
नर की पौरुष-निर्भरता।

वे क्या जानें नर में वह क्या
असहनशील अनल है,
जो लगते ही स्पर्श हृदय से
सिर तक उठता बल है।

जिनकी भुजाओं की शिराएँ फड़कीं ही नहीं,
जिनके लहू में नहीं वेग है अनल का,
शिव का **पदोदक**[9] ही पेय जिनका है रहा,
चक्खा ही जिन्होंने नहीं स्वाद हलाहल का,
जिनके हृदय में कभी आग सुलगी ही नहीं,
ठेस लगते ही अहंकार नहीं छलका,
जिनको सहारा नहीं भुज के प्रताप का है,
बैठते भरोसा किये वे ही आत्मबल का।

उसकी सहिष्णुता, क्षमा का है महत्व ही क्या
करना ही आता नहीं जिसको प्रहार है
करुणा, क्षमा को छोड़ और क्या उपाय उसे
ले न सकता जो वैरियों से **प्रतीकार**[10] है

1) त्राहि-त्राहि करना–रक्षा के लिए दैन्य पूर्वक प्रार्थना करना। 2) दीप्ति–चमक, क्रांति।
3) संधि-वचन–संधि का प्रस्ताव। 4) संपूज्य–पूज्यनीय। 5) दर्प–गर्व। 6) शोध–प्रतिशोध।
7) मिस–बहाना। 8) फलक–ढाल। 9) पदोदक–चरणामृत। 10) प्रतीकार–(प्रतिकार का तद्भव रूप) –बदला।

गरल घूँट पी जाना (मुहावरा)–जहर का घूँट पीना, अन्याय को सहन करना, कटुवचन को सहन करना।

सहता प्रहार कोई विवश **कदर्य**[1] जीव
जिसकी नसों में नहीं पौरुष की धार है
करुणा, क्षमा हैं क्लीव-जाति के कलंक घोर,
क्षमता क्षमा की शूर वीरों का **सिंगार**[2] है।

प्रतिशोध से हैं होती शौर्य की शिखाएँ दीप्ति,
प्रतिशोध-हीनता नरों में महापाप है,
छोड़ **प्रतिवैर**[3] पीते मूल अपमान वे ही
जिनमें न शेष शूरता का **वह्नि-ताप**[4] है,
चोट खा सहिष्णु व' रहेगा किस भाँति, तीर
जिसके **निषंग**[5] में, करों में दृढ़ चाप है,
जेता[6] के विभूषण सहिष्णुता क्षमा है, किन्तु,
हारी हुई जाति की सहिष्णुता अभिशाप है।

सटता कहीं भी एक तृण जो शरीर से तो,
उठता कराल हो **फणीश**[7] फुफकार है

सुनता **गजेन्द्र**[8] की चिंघार जो वनों में कहीं,
भरता गुहा में ही **मृगेन्द्र**[9] हुंहुकार है,
शूल चुभते हैं, छूते आग है जलाती, भू को
लीलने को देखो, गर्जमान पारावार है,
जग में प्रदीप्त है इसी का तेज, प्रतिशोध
जड़ चेतनों का जन्मसिद्ध अधिकार है।

सेना साज हीन है **परस्व**[10] हरने की वृत्ति,
लोभ की लड़ाई **क्षात्रधर्म**[11] के विरुद्ध है,
वासना विषय से नहीं पुण्य उद्भूत होता,
वणिज[12] के हाथ की कृपाण ही अशुद्ध है
चोट खा परन्तु जब सिंह उठता है जाग,
उठता कराल प्रतिशोध हो प्रबुद्ध है,
पुण्य खिलता है **चन्द्रहास**[13] की विभा में तब,
पौरुष की जागृति कहानी धर्म युद्ध है।

धर्म है **हुताशन**[14] का धधक उठे तुरन्त,
कोई क्यों प्रचण्ड वेग वायु को बुलाता है
फूटेगा कराल कण्ठ ज्वाला मुखियों का ध्रुव
आनन[15] पर बैठ विश्व घूम क्यों मचाता है?

फूँक से जलायेगा अवश्य जगती को **व्याल**[16]
कोई क्यों खरोंच मार, उसको जगाता है
विद्युत **खगोल**[17] से अवश्य ही गिरेगी, कोई,
दीप्त अभिमान की क्यों ठोकर लगाता है।

युद्ध को बुलाता है अनीति-ध्वजधारी या कि
वह जो अनीति-भाल पै दे पाँव चलता
वह जो दबा है शोषणों के भीम शैल से या
वह जो खड़ा है मग्न हँसता-मचलता।
वह जो बन के शान्ति-व्यूह सुख लूटता या
वह जो अशान्त हो क्षुधानल से जलता
कौन है बुलाता युद्ध? जाल को बनाता?
या जो जाल तोड़ने को क्रुद्ध काल सा निकलता।

1) कदर्प–तुच्छ, क्षुद्र। 2) सिगार–"श्रृंगार" का तद्भव रूप। 3) प्रतिवैर–वैर का प्रतिकार, शत्रुता का बदला। 4) वह्नि–अग्नि। 5) निषंग–तरकश तूणीर। 6) जेता–विजेता, जीतने वाला। 7) फणीश–साँप। 8) गजेन्द्र–बड़ा हाथी। 9) मृगेन्द्र–शेर। 10) परस्व–दूसरे का अधिकार। 11) क्षात्रधर्म–क्षत्रिय का कर्त्तव्य (दूसरों की रक्षा, न्याय और सुशासन के लिए युद्ध करना)। 12) वणिज–व्यापारी, 'वणिज के हाथ की कृपाण'–लाभ के लोभ से उठाया गया शस्त्र। 13) चन्द्रहास–तलवार। 14) हुताशन–अग्नि। 15) आनन–मुख। 16) व्याल–सूर्य। 17) खगोल–आकाश मंडल।

पातकी[1] न होता है प्रबुद्ध दलितों का खड्ग
पातकी बताना उसे दर्शन की **भ्रान्ति है,**
शोषण की श्रृंखला के हेतु बनती जो शान्ति,
युद्ध है, यथार्थ में, व भीषण अशान्ति है।

सहना उसे हो मौन हार मनुजत्व की है,
ईश की अवज्ञा घोर, पौरुष की श्रान्ति है,
पातक मनुष्य का है मरण मनुष्यता का,
ऐसी श्रृंखला में **धर्म**[2] **विप्लव**[3] है, क्रान्ति है।

भूल रहे हो धर्मराज, तुम,
अभी हिंस्र **भूतल है,**
खड़ा **चतुर्दिक**[4] अहंकार है,
खड़ा चतुर्दिक **छल है।**

मैं भी हूँ सोचता, जगत से
कैसे उठे **जिघांसा**[5]
किस प्रकार फैले **पृथिवी**[6] पर
करुणा, प्रेम, अहिंसा।

जियें मनुज किस भाँति परस्पर
हो कर **भाई-भाई**
कैसे रुके **प्रदाह**[7] क्रोध का,
कैसे रुके लड़ाई।

पृथ्वी हो साम्राज्य स्नेह का,
जीवन **स्निग्ध**[8], सरल हो,
मनुज-प्रकृति[9] से विदा सदा को
दाहक द्वेष गरल हो।

बहे प्रेम की धार, मनुज को
वह **अनवरत**[10] भिगोये,
एक दूसरे के उर में नर
बीज प्रेम के बोये।

किन्तु हाय, आधे पथ तक ही
पहुंच सका यह जग है
अभी शान्ति का स्वप्न दूर
नभ में करता जगमग है।

भूले भटके ही, पृथ्वी पर
वह आदर्श उतरता,
किसी युधिष्ठिर के प्राणों में
ही स्वरूप है धरता।

किंतु, द्वेष के शिला दुर्ग से
बार-बार टकरा के,
रुद्ध मनुज के **मनोदेश**[11] के
लौह-द्वार को पा के।

घृणा, कलह, विद्वेष, विविध
तापों से आकुल हो कर,
हो जाता उड्डीन एक दो
का ही हृदय भिगो कर।

---

1) **पातकी-पापी।** 2) धर्म–कर्त्तव्य। 3) विप्लव–विद्रोह। 4) चतुर्दिक–चारों दिशाओं में। 5) जिघांसा–मार **डालने की इच्छा, प्रतिहिंसा।** 6) पृथिवी–"पृथ्वी" का तद्भव रूप। 7) प्रदाह–जलना। 8) स्निग्ध–दया और **प्रेम से युक्त।** 9) मनुज प्रकृति–मनुष्य का स्वभाव। 10) अनवरत–सदैव। 11) मनोदेश–मन रूपी देश।

क्योंकि युधिष्ठिर एक, सुयोधन
अगणित अभी यहाँ हैं,
बढ़े शान्ति की लता हाय,
वे पोषक द्रव्य कहाँ हैं?

शान्ति-बीन तब तक बजती है
नहीं सुनिश्चित सुर में,
स्वर की शुद्ध प्रतिध्वनि जब तक
उठे नहीं उर-उर में।

यह न बाह्य उपकरण, भार बन
जो आवे ऊपर से,
आत्मा की यह ज्योति, फूटती
सदा विमल **अन्तर**[1] से।

शान्ति नाम उस **रूचिर**[2] **सरणि**[3] का,
जिसे प्रेम पहचाने,
खड्ग-भीत तन ही न,
मनुज का मन भी जिसको माने।

शिवा[4] शान्ति की मूर्ति नहीं
बनती **कुलाल**[5] के गृह में,
सदा जन्म लेती वह घर के
मनःप्रांत[6] **निस्पृह**[7] में।

गरल-द्रोह विस्फोट हेतु का
करके सफल निवारण
मनुज प्रकृति ही करती शीतल
रूप शान्ति का धारण

जब होती **अवतीर्ण**[8] शान्ति यह,
भय न शेष रह जाता,
शंका **तिमिर**[9] ग्रस्त फिर कोई
नहीं देश रह जाता।

शान्ति सुशीतल शान्ति कहाँ
वह समता देने वाली?
देखो, आज विषमता की ही
वह करती रखवाली।

आनन, सरल, वचन मधुमय है,
तन पर शुभ्र वसन है,
बचो युधिष्ठर! इस नागिन का
विष से भरा दशन है।

यह रखती **परिपूर्ण**[10] नृपों से
जरासिंध की **कारा**[11],
शोणित[12] कभी, कभी पीती है
तप्त अश्रु की धारा।

---

1) अन्तर–हृदय। 2) रूचिर–मनोहर, सुंदर। 3) सरणि–मार्ग, पद्ध 4) शिवा–मंगल कारिणी, कल्याणकारी। 5) कुलाल–कुम्हार। शिवा–शांति–कल्याणकारी शांति। 6) मन:प्रांत–हृदय। 7) निस्पृह–निर्लोभ, वासना, रहित। 8) अवतीर्ण–अवतरित, व्युत्पन्न, प्रकट। 9) तिमिर–अंधकार। 10) परिपूर्ण–भरी हुई। 11) कारा–कारागार। 12) शोणित–खून।

ड्डीन हो जाना–उड़ जाना।

कुरुक्षेत्र में जली चिता जिसकी,
वह शान्ति नहीं थी,
अर्जुन की धन्वा[1] चढ़ बोली,
वह दुष्क्रान्ति[2] नहीं थी

थी परस्वग्रासिनी[3] भुजंगिनि, वह
जो जली समर में;
असहनशील शौर्य था, जो
बल[4] उठा पार्थ के शर में।

नहीं हुआ स्वीकार शान्ति को
जीना जब कुछ देकर,
टूटा पुरुष काल सा उस पर
प्राण हाथ में लेकर[5]।

पापी कौन? मनुज से उसका
न्याय चुकाने वाला?
याकि न्याय खोजते विघ्न का
शीश उड़ाने वाला[6]।

बोध प्रश्न 2

क) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर 4-5 पंक्तियों में दीजिए।

1 युद्ध समाप्ति के पश्चात् युधिष्ठिर को क्या महसूस होता है?

....

....

....

....

....

....

2 युधिष्ठिर युद्ध को पाप क्यों समझते हैं?

....

....

....

....

....

3 यदि पहले ही युद्ध के परिणाम के बारे में सोच पाते तो युधिष्ठिर क्या करते?

....

....

....

....

....

4 भीष्म पितामह के मत से युद्ध क्यों होता है?

....

1) धन्वा—धनुष। 2) दुष्क्रान्ति—अन्यायपूर्ण क्रान्ति। 3) परस्वग्रासिनी—दूसरों के अधिकार छीनने वाली। 4) बल—जल उठना। 5) प्राण हाथ में लेकर (मुहावरा)—हर तरह का जोखिम उठा कर। 6) शीश उड़ाना (मुहावरा)—हत्या करना, मार डालना।

....

....

....

5 युद्ध के विषय में पितामह का क्या मत है?

....

....

....

....

....

ख) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर सही (✓) या गलत (✗) का निशान लगा कर दीजिए।

i) युधिष्ठिर महाभारत युद्ध के विषय से प्रसन्न है। ( )

ii) उनके हृदय में पश्चाताप है। ( )

iii) भीष्म पितामह युधिष्ठिर से सहमत हैं। ( )

iv) युद्ध पांडवों के द्वेष के कारण हुआ। ( )

v) युद्ध के लिए केवल पांडव उत्तरदायी थे। ( )

vi) युद्ध के लिए भीष्म भी उत्तरदायी थे। ( )

vii) यदि भीष्म ने प्रयास किया होता तो युद्ध न होता। ( )

viii) अन्याय के विरुद्ध तलवार उठाना उचित है। ( )

ix) अन्याय को मौन होकर सहना उचित है। ( )

x) प्रतिशोध पाप कर्म है। ( )

xi) संन्यास लेना कर्म से पलायन है। ( )

xii) संन्यास कायरता की निशानी है। ( )

xiii) जब तक समाज में समानता नहीं होगी तब तक युद्ध होते रहेंगे। ( )

xiv) शोषित और दलित की क्रांति पाप नहीं है। ( )

xv) युद्ध का अंत करना है तो सभी के लिए समान सुख सुविधा उपलब्ध होनी चाहिए। ( )

36.6 संदर्भ सहित व्याख्या

उदाहरण 1

हाय, पितामह, हार किसकी हुई है यह?
ध्वंस-अवशेष पर सिर धुनता है कौन?
कौन भस्मराशि में विफल सुख ढूँढता है?
लपटों से मुकुट का पट बुनता है कौन?
और बैठे मानव की रक्त-सरिता के तीर
नियति के व्यंग्य-भरे अर्थ गुनता है कौन?
कौन देखता है शवदाह बंधु-बांधवों का?
उत्तरा का करुण विलाप सुनता है कौन?

संदर्भ

प्रस्तुत पंक्तियाँ श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' की काव्यकृति "कुरुक्षेत्र" से ली गई हैं। "कुरुक्षेत्र" में दिनकर ने युधिष्ठिर की युद्धोत्तर मनःस्थिति को प्रस्तुत करते हुए युद्ध की

समस्या पर विभिन्न पहलुओं से विचार किया है। भीष्म और युधिष्ठिर दोनों ही मानवतावादी दृष्टि का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। अंतर केवल इतना है कि एक हिंसा पर पश्चाताप कर रहा है और दूसरा क्रांति का समर्थक है।

संदर्भ

युधिष्ठिर संपूर्ण नरसंहार के लिए पांडवों को दोषी मानते हैं और इस बात के लिए आत्मग्लानि अनुभव करते हैं कि अपने विद्वेष के कारण पांडवों ने इतनी बड़ी असहिष्णुता का परिचय दिया। उन्हें अफसोस है कि जो विवेक उनमें अब जाग रहा है वह युद्ध से पहले नहीं जागा। व्यथित हृदय से वह भीष्म पितामह के पास जाते हैं और कहते हैं कि महाभारत विफल हुआ। इस विजय की कोई सार्थकता नहीं जो इतने भीषण रक्तपात से सनी है। यह कहा जाता है कि महाभारत युद्ध में पांडवों की विजय हुई है और कौरवों की हार किन्तु यह विजय कितनी पीड़ादायी है इसका उल्लेख युधिष्ठिर की प्रस्तुत पंक्तियाँ करती हैं।

व्याख्या

युधिष्ठिर भीष्म पितामह से कहते हैं कि वास्तव में यह हार किसकी हुयी है—कौरवों की या पांडवों की। भीषण विध्वंस के बाद जो कुछ शेष बचा है उसे देखना कितना कष्टदायी है। इस विनाश को देखकर पश्चाताप के सिवाए और कुछ मिलता ही नहीं। पश्चाताप करने वाले को विजयी कहा जा सकता है या पराजित? इस विजय में सुख नहीं है। सुख तलाशने पर भी विफलता ही मिल रही है क्योंकि सामने जो दृश्य दिखाई देता है वह जलती हुई या भस्म हुई चिताओं का है। इस विजय से प्राप्त राजमुकुट के तंतु चिता की लपटों से बुने हुए प्रतीत होते हैं और इसमें सुख की तलाश बुझी हुई चिताओं के ढेरों में सुख की विफल तलाश के समान हैं। यह विजयी व्यक्ति मानों मनुष्य के रक्त की नदी के किनारे बैठा है और भाग्य या अज्ञात नियामक शक्ति के व्यंग्यों को सहन कर रहा है। अपने भाई बंधुओं का और निकट संबंधियों का अंतिम संस्कार करता हुआ और शवदाह देखता हुआ तथा पुत्र वधु (अभिमन्यु की पत्नी) उत्तरा का करुण विलाप सुनता हुआ यह विजयी व्यक्ति (युधिष्ठिर) कैसे प्रसन्न हो सकता है। क्या यह वास्तव में उसकी जीत है या जीत के नाम पर उसकी घोर पराजय है।

विशेष

1) प्रस्तुत पंक्तियाँ मानवीय करुणा और सहानुभूति के भावों को बड़े ही मर्मस्पर्शी ढंग से प्रस्तुत करती हैं।

2) युद्ध में हुए विनाश और रक्तपात के आधार पर युद्ध की (उसमें प्राप्त विजय की) निरर्थकता सिद्ध करती है।

3) युधिष्ठिर की वेदना की अभिव्यक्ति बड़े ही सजीव चित्रों के माध्यम से की गई। लपटों से मुकुट पट बुनना, मानव की रक्त सरिता के तीर बैठ कर नियति के व्यंग्यभरे अर्थ गुनना आदि बड़े ही मर्मस्पर्शी बिंब हैं।

4) भाषा सहज, संप्रेषणीय तथा चित्रात्मक है। तत्सम शब्दों की बहुलता है सिर धुनना मुहावरे का भी प्रयोग हुआ है। आंतरिक मनोव्यथा को कवि प्रश्नाकुलता के माध्यम से अभिव्यक्ति देता है। आवेश और आवेग दोनों ही भाषा में सर्जनात्मक स्तर पर सक्रिय हैं। जगह-जगह रूपकों का इस्तेमाल है जैसे 'रक्त सरिता के तीर'।

5) इस कवित्त में स्वभावोक्ति अलंकार है क्योंकि यहाँ जीवन और जगत की सहज नीतियों का सीधा संकेत है।

उद्धरण 2

छीनता हो स्वत्व कोई, और तू
　　त्याग तप से काम ले, यह पाप है।
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे
　　बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ हो।

बद्ध विदलित और साधनहीन को
　　है उचित अवलंब अपनी आह का
गिड़गिड़ा कर किन्तु माँगे भीख क्यों
　　वह पुरुष जिसकी भुजा में शक्ति हो

संदर्भ

(पिछले उद्धरण की भाँति)

....

....

....

....

....

....

....

....

....

प्रसंग : युधिष्ठिर से यह सुनकर कि महाभारत युद्ध करके पांडवों ने बड़ा अनर्थ किया, भीष्म पितामह समझाते हैं कि युद्ध के लिए केवल पांडव ही उत्तरदायी नहीं थे। पूरे देश में ईर्ष्या, वैमनस्य, प्रतिशोध और कटुता का वातावरण फैल गया था। काफी लोग एक दूसरे से शत्रुता का भाव रखने लगे थे। इस तपते हुए परिवेश में चिनगारी कौरवों और पांडवों के द्वारा लगी। वह युधिष्ठिर को समझाते हैं कि यह सोचकर पश्चाताप करना व्यर्थ है कि युद्ध पाप कर्म है। क्योंकि कोई कार्य अपने आप में पुण्य या पाप नहीं होता। उसके पीछे निहित भाव अथवा उद्देश्य ही उसे पाप या पुण्य बना देते हैं। कोई युद्ध नहीं करना चाहता किन्तु यदि द्वार पर शत्रु आ जाए तो सभी को उससे जूझना पड़ता है। बहुत विचार करने के बावजूद वह महसूस करते हैं कि धर्म और अधर्म, पाप और पुण्य के बीच कोई विभाजन रेखा नहीं खीची जा सकती। इतना कहा जा सकता है कि सम्मानपूर्वक जीवन यापन के लिए मनुष्य में अंगारे जैसी वीरता अपेक्षित है। वह युधिष्ठिर से कहते हैं कि प्रहार के बदले में अथवा अन्याय के विरुद्ध किया गया युद्ध प्रतिकार नहीं हो सकता।

व्याख्या : कोई अन्य व्यक्ति जब तुम्हारा अधिकार या तुम्हारी स्वतंत्रता छीन रहा हो तब त्याग या तप से काम लेना पाप है क्योंकि ऐसा करके तुम उस व्यक्ति की दूसरे का अधिकार हनन की प्रवृत्ति को बढ़ावा देते हो। इसलिए अधिकार का हनन करने वाले हाथ को काट देना पुण्य है क्योंकि इससे समाज में दूसरों के स्वत्व हनन की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलने से रोका जा सकेगा।

परवश, दलित या साधनहीन, व्यक्ति यदि अत्याचार को आह भर कर सहन कर लेता है तो कोई अनुचित बात नहीं क्योंकि उसमें प्रतिशोध की क्षमता नहीं है लेकिन शक्तिवान व्यक्ति को दया की भीख माँगना या गिड़गिड़ाना शोभा नहीं देता। उसके लिए अन्याय का प्रतिकार ही उचित है।

विशेष

1) **प्रस्तुत पंक्तियों में दिनकर ने स्वतंत्रता और न्यायपूर्ण अधिकार की रक्षा के लिए युद्ध को उचित ठहराया है।**

2) **इससे दिनकर पर तिलक की विचारधारा का प्रभाव सिद्ध होता है। तिलक ने कहा था 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और उसे मैं लेकर रहूँगा'।**

3) **ये पंक्तियाँ दिनकर की प्रगतिशील जीवन दृष्टि की परिचायक हैं। वस्तुतः कुरुक्षेत्र का मूल प्रतिपाद्य यही जीवन दृष्टि है।**

4) **तत्सम शब्दावली के प्रयोग के बावजूद भाषा सहज और बोधगम्य है।**

5) गीता के कर्म दर्शन की परंपरा का इन पंक्तियों का काव्यानुवाद है।

6) कवि ने अहिंसावादी विचारधारा की पारिभाषिक शब्दावली अपनायी है जैसे 'त्याग' 'तप' आदि, लेकिन अहिंसावादी विचारधारा पर प्रहार किया है।

7) दिनकर के सामने उभरती हुई मार्क्सवादी विचारधारा की भी यहाँ अनुगूंज है।

उद्धरण 3

युद्ध को बुलाता है अनीति ध्वजधारो या कि
वह जो अनीति भाल पै दे पाँव चलता?
वह जो दबा है शोषणों के भीम शैल से या
वह जो खड़ा है मग्न हँसता मचलता?
वह जो बना के शांति व्यूह सुख लूटता या
वह जो अशांत हो क्षुधानल से जलता?
कौन बुलाता है युद्ध जाल को बनाता
या जो जाल तोड़ने को क्रुद्ध काल सा निकलता?

संदर्भ 3

....
....
....
....

(यथा पूर्व)

....
....
....
....

प्रसंग

....
....
....

(यथा पूर्व)

....
....
....
....

याख्या : भीष्म कहते हैं कि युद्ध के लिए वास्तव में उत्तरदायी वह व्यक्ति नहीं जो अनीति को समाप्त- रने का प्रयास करता है बल्कि इसके लिए उत्तरदायी वह है जो अनीति या अन्याय का ध्वज धारण करता यानि उनकी स्थापना करता है। जो व्यक्ति शोषणों के भारी पहाड़ के नीचे दबा है यानि शोषणों का कार है उसको युद्ध का जिम्मेदार नहीं कहा जा सकता । युद्ध का जिम्मेदार वह है जो दूसरों का शोषण ा है और स्वयं अपने इस नीच कर्म में मग्न और प्रसन्न है। युद्ध को बुलावा कौन देता है अन्याय पर व्यवस्था और शान्ति की स्थापना करके शांति का झूठा जाल रचकर सुख लूटने या इस व्यवस्था तर पिसता हुआ भूख की आग में जलता हुआ अशान्ति और क्रान्ति करने वाला। वास्तव में हम पर युद्ध का दायित्व डाल सकते हैं अनीति का जाल बुनने वाले पर या क्रोधित काल की भाँति करके इस जाल से निकलने वाले पर ?

विशेष

1) प्रस्तुत अवतरण में दिनकर ने अन्याय के विरुद्ध क्रांति को उचित और न्याय संगत ठहराया है। इस चिंतन पर मार्क्सवादी दृष्टि का प्रभाव है। जिसके अनुसार समाज में शोषण का अंत करने के लिए क्रांति आवश्यक है और इस क्रांति और युद्ध की जिम्मेदारी शोषक पर है शोषित पर नहीं।

2) संपूर्ण तर्क को प्रश्न शैली में प्रस्तुत किया गया है इससे यह काफी संगत और प्रभावपूर्ण बन गया है।

3) अनीति ध्वजधारी, अनीति जाल पर पाँव दे चलना, भीम शैल से दबा होना, क्षुधानल में जलना, क्रुद्ध काल सा निकलना आदि बड़े ही संश्लिष्ट बिंब हैं।

4) कवित्त छंद का प्रयोग है कवि ने वैचारिक स्तर पर युद्ध की नवीन मनोभूमिका के आधारों का तार्किक चित्र प्रस्तुत किया है।

5) शब्दावली प्राचीन युद्ध बोध की सांस्कृतिक शब्दावली है जिसके उपयोग से अनुभव और अनुभूति में संपन्नता के साथ प्रामाणिकता पैदा हुई। परंपरा और आधुनिकता का संतुलन स्थापित हुआ है।

उद्धरण 4

यह न वाह्य उपकरण, भार बन
जो आवे ऊपर से,
आत्मा की यह ज्योति, फूटती
सदा विमल अंतर से।
शांति नाम उस रुचिर सरणि का,
जिसे प्रेम पहचाने
खड्ग भी..ते तड ही न,
मनुज का मन भी जिसकी माने

संदर्भ

....

....

(यथा पूर्व)

....

....

....

प्रसंग : भीष्म पितामह युधिष्ठिर को बताते हैं कि युद्ध क्यों होता है शांति की स्थापना क्यों नहीं हो पाती। वह कहते हैं कि शांति की स्थापना तब हो सकती है जब उसके लिए अनुकूल वातावरण हो। किन्तु यह वातावरण स्थापित होना इसलिए कठिन है कि संसार में युधिष्ठिर की भाँति सोचने वाले व्यक्ति एकाध हैं जबकि दुर्योधन की मनोवृत्ति वाले लोग असंख्य हैं। शांति की वीणा तभी बजेगी जब प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में उसकी सही प्रतिध्वनि उठे यानि सब लोग शांति के लिए स्वच्छ मन से उत्सुक हैं। आगे वह बताते हैं कि शांति क्या है–

व्याख्या : शांति कोई बाहरी उपकरण नहीं है जिसका भार समाज पर ऊपर रखा जा सके। यह तो आत्मा की ज्योति है जो निर्मल हृदय से स्वतः प्रज्वलित होती है अर्थात् न्याय, सदाचार और नीति को अपनाने वालों के अंतर्मन से ही शांति स्थापना का भाव जागता है इससे ऊपर से आरोपित नहीं किया जा सकता।

शांति वह मनोहर मार्ग है जिसका आधार परस्पर प्रेम की भावना होता है। सच्ची शांति वही होती है जिसे मनुष्य तलवार से डर कर स्वीकार नहीं करता, वरन मनुष्य का हृदय उसे स्वतः वरण करना चाहता है।

विशेष

1) प्रस्तुत अवतरण में कवि ने शांति के वास्तविक रूप का उल्लेख किया है।

2) भाषा सरल और सुबोध है।

3) गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव इस भाव चित्र पर है। उपनिषद दर्शन के आत्मा आदि दार्शनिक शब्दों का नए संदर्भों में प्रयोग किया गया है मूलतः यह चिंतन भारतीय मानव की आंतरिक लय का सहज विकास है।

अभ्यास

नीचे दिए गए अवतरणों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए–

1 यों ही नरों में भी विकारों की शिखाएँ आगसी
एक से मिल एक जलती हैं प्रचंडावेग से
तप्त होता क्षुद्र अंतर्व्योम पहले व्यक्ति का,
और तब उठता धधक समुदाय का आकाश भी
क्षोभ से, दाहक घृणा से, गरल, ईर्ष्या, द्वेष से।

भट्ठियाँ इस भाँति जब तैयार होती हैं तभी
युद्ध का ज्वालामुखी है फूटता
राजनीतिक उलझनों के ब्याज से
या कि देश प्रेम का अवलंब से।

संदर्भ

कवि का नाम

....

....

रचना का नाम

....

....

रचना के विषय में

....

....

प्रसंग

किसका कथन है

....

....

किस संदर्भ में है

....

....

व्याख्या

....

....

....

....

....

....

2 और जिन्हें इस शांति व्यवस्था
में सुख भोग सुलभ है उनके
लिए शांति ही जीवन सार,
सिद्धि दुर्लभ है। पर जिनकी

अस्थियाँ चबाकर, शोषित
पीकर तन का, जीती है यह
शांति, दाह समझो कुछ उनके
मन का

संदर्भ

प्रसंग

व्याख्या

3 पातकी न होता है प्रबुद्ध दलितों का खड्ग
पातकी बताना उसे दर्शन की भ्रांति है,
शोषण की श्रृंखला के हेतु बनती जो शांति,
युद्ध है, यथार्थ में, व भीषण अशांति है,
सहना उसे हो मौन हार मनुजत्व की है,
ईश की अवज्ञा घेर, पौरुष की भ्रांति है,
पातक मनुष्य हैं मरण मनुष्यता का,
ऐसी श्रृंखला में धर्म विप्लव है क्रांति है।

संदर्भ

प्रसंग

....

....

....

व्याख्या

....

....

....

....

....

....

36.7 सारांश

इस इकाई में आपने रामधारी सिंह दिनकर के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व की जानकारी प्राप्त की। आपने उनकी प्रबंध रचना 'कुरुक्षेत्र' के दो सर्गों का वाचन किया। आपने उन परिस्थितियों तथा प्रेरणाओं के विषय में भी पढ़ा जो कुरुक्षेत्र की रचना के लिए काफी हद तक जिम्मेदार थीं। अब आप दिनकर के विषय में सामान्य जानकारी दे सकते हैं। यह बता सकते हैं कि कुरुक्षेत्र में दिनकर ने किस प्रसंग को उठाया और क्या कहा है। इस रचना का कथा सार आप बता सकते हैं तथा इसके अंशों की सप्रसंग व्याख्या कर सकते हैं।

36.8 शब्दावली

दुर्भिक्ष : अकाल।

शुभ्रता : स्वच्छता सफेदी।

36.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) बिहार

ii) गांधी और मौलाना शौकत अली

iii) मुजफ्फरपुर में आयोजित हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में

iv) संस्कृति के चार अंध्याय

v) भारत सरकार के हिन्दी सलाहकार

vi) संस्कृति के चार अध्याय

vii) पूरी तरह से नहीं

viii) भारतेंदु, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी

ix) रेणुका 1935

x) 1946

xi) द्वितीय विश्व युद्ध

xii) कलिंग विजय

बोध प्रश्न 2

उत्तरों के लिए सर्ग दो और तीन देखें

ख) i) ✗ , ii) ✓ , iii) ✗ , iv) ✗ , v) ✗ , vi) ✓ , vii) ✓ , viii) ✓ , ix) ✗ , x) ✗
xi) ✗ , xii) ✗ , xiii) ✗ , xiv) ✗ , xv) ✗

इकाई 37 "कुरुक्षेत्र" का वस्तुपक्ष

इकाई की रूपरेखा

37.0 उद्देश्य
37.1 प्रस्तावना
37.2 कथानक के स्रोत अथवा आधार
37.3 'कुरुक्षेत्र' का कथा-संयोजन
37.3.1 इतिहास और कल्पना का योग
37.3.2 वस्तु-व्यंजना
37.3.3 कथानक में नूतन उद्भावनाएँ
37.4 चरित्र-चित्रण
37.4.1 युधिष्ठिर
37.4.2 भीष्म
37.4.3 कुरुक्षेत्र के चरित्र-विधान की विशेषताएँ
37.5 प्रकृति और संवेदना
37.6 भाव-रस व्यंजना
37.7 सारांश
37.8 शब्दावली
37.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

37.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप बता सकेंगे कि:

- कुरुक्षेत्र के कथानक के स्रोत क्या हैं,
- कवि ने कथा-संयोजन किस प्रकार किया है,
- इतिहास में कल्पना का समावेश किस प्रकार और किस हद तक किया गया है,
- कथावस्तु की व्यंजना किस प्रकार हुई है तथा उसमें किन नवीनताओं का समावेश हुआ है,
- कुरुक्षेत्र के चरित्र-विधान की क्या विशेषताएँ हैं,
- इस काव्य में प्रकृति का निरुपण किस रूप में हुआ है,
- कुरुक्षेत्र में भाव-व्यंजना अथवा रसविधान की क्या स्थिति है।

37.1 प्रस्तावना

इस खंड की पिछली इकाइयों में आपने प्रबंध काव्य के स्वरूप और विकास के बारे में पढ़ा है तथा आधुनिक हिन्दी काव्य की एक महत्वपूर्ण प्रबंधरचना रामधारी सिंह दिनकर के 'कुरुक्षेत्र' का वाचन किया है। अब आप जानते हैं कि 'कुरुक्षेत्र' के माध्यम से दिनकर ने क्या कहा है और इस कृति की रचना किन परिस्थितियों, मनः स्थितियों तथा प्रेरणाओं का परिणाम है। 'कुरुक्षेत्र' के द्वितीय तथा तृतीय सर्ग का विस्तृत वाचन करने के साथ ही आप इसके संपूर्ण कथासार से भी परिचित हो चुके हैं। इकाई 37 में हम "कुरुक्षेत्र" के वस्तुपक्ष का विवेचन करेंगे। इसके अंतर्गत कथावस्तु व्यंजना नूतन उद्भावनाओं और वैचारिक दृष्टि संकेतों के साथ चरित्रों पर भी विचार किया जाएगा। इसके अतिरिक्त भाव सृष्टि, रस विधान, प्रकृति चित्रण, वैचारिक चेतना आदि की दृष्टि से "कुरुक्षेत्र" को जाँचने-परखने का प्रयास भी किया जाएगा।

37.2 कथानक के स्रोत अथवा आधार

हम पहले भी चर्चा कर चुके हैं कि 'कुरुक्षेत्र' के कथानक में महाभारत के युद्धोत्तर प्रसंगों का आधार ग्रहण किया गया है। युद्ध के उपरांत युधिष्ठिर के मन की खिन्नता, चिंता, अशांति और क्षोभ का प्रसंग महाभारत में कई पर्वों में फैला हुआ है। वह नारद से अपने हृदय की वेदना कहते हैं और पूरी स्थिति-परिस्थिति से हताश होकर वन जाने को तत्पर होते हैं। किन्तु चारों भाइयों तथा द्रौपदी के समझाने और कृष्ण के परामर्श से वह हस्तिनापुर आते हैं और उनका राज्याभिषेक होता है। श्री कृष्ण के आदेशानुसार वह पितामह के पास जाकर राज्य-धर्म का ज्ञान प्राप्त करते हैं और अनेक विषयों पर विस्तृत चर्चा होती है। पितामह के देहावसान के पश्चात् युधिष्ठिर फिर से मोहग्रस्त होकर शोक-संताप हो जाते हैं। व्यास और श्रीकृष्ण उन्हें हर तरह से समझाने का प्रयास करते हैं। ध्यान रखने की मूल बात यह है कि 'कुरुक्षेत्र' में दिनकर ने शांति पर्व और उद्योगपर्व के कथानक को ही आधार रूप में लिया गया है।

37.3 "कुरुक्षेत्र" का कथा संयोजन

"कुरुक्षेत्र" के कथावस्तु विकास पर ध्यान केंद्रित करते समय कुरुक्षेत्र की भूमिका के रूप में प्रस्तुत कवि के इस कथन पर गौर करना जरूरी है कि– "कुरुक्षेत्र" की रचना भगवान व्यास के अनुकरण पर नहीं हुई और न महाभारत को दोहराना मेरा उद्देश्य था। मुझे जो कुछ कहना था वह भीष्म और युधिष्ठिर का प्रसंग उठाए बिना भी कहा जा सकता था, किन्तु तब यह रचना शायद, प्रबंध के रूप में नहीं उतर कर मुक्तक बन कर रह गई होती। तो भी यह सच है कि इसे प्रबंध के रूप में लाने की मेरी कोई निश्चित योजना नहीं थी। बात यों थी कि पहले मुझे अशोक के निर्वेद ने आकर्षित किया और "कलिंग विजय" नामक कविता लिखते-लिखते मुझे ऐसा लगा, मानो युद्ध की समस्या मनुष्य की सारी समस्याओं की जड़ हो इसी समय द्वापर की ओर देखते हुए मैंने युधिष्ठिर को देखा जो "विजय" इस छोटे से शब्द को कुरुक्षेत्र में बिछी हुई लाशों से तोल रहे थे।

कवि के इस कथन से कई तथ्यों पर एक साथ प्रकाश पड़ता है पहली बात तो यह कि वे 'महाभारत' की कथा की पुनरावृत्ति के उद्देश्य से इस रचना की ओर प्रेरित नहीं हुए। दूसरे, युद्ध को लेकर वह विचारमंथन करना चाहते थे। तीसरे, उनके मन में प्रबंध काव्य की कोई पूर्वनिर्धारित निश्चित योजना नहीं थी। हालाँकि वह मानते हैं कि यदि अपनी बात को कहने के लिए भीष्म और युधिष्ठिर को पात्र स्वरूप में न चुना होता तो भी युद्ध-संबंधी सवालों को उठाया जा सकता था। किन्तु तब यह रचना मुक्तक काव्य के रूप में ही होती। इस तरह निश्चित योजना न होने के बावजूद वह इसमें कहीं न कहीं 'महाभारत' की कथा प्रतीकात्मक आधार ग्रहण करना चाहते हैं। इसलिए अतीत पर निगाह डालते हुए उन्हें धर्मराज युधिष्ठिर दिखाई दिए जो युद्ध की सार्थकता-निरर्थकता को लेकर बेचैन थे। इस तरह भारतीय संस्कृति का एक व्यापक परिदृश्य कवि की चेतना में उभरा और युद्ध जैसी मूलभूत समस्या पर विचार करने के लिए उसने इस व्यापक परिदृश्य को आधार रूप में चुना है।

युद्ध की समस्या मनुष्य की वास्तविक समस्या है। लेकिन जब यह बात किसी विख्यात प्रसंग को लेकर उठाई जाती है तो यह मूलभूत प्रश्न एक मूर्त शक्ल के रूप में खड़ा होता है और मूर्त की संप्रेषणीयता और प्रभाव अमूर्त की तुलना में ज्यादा स्पष्ट और गहरा होता है। यह तथ्य कवि के मन में कहीं न कहीं अवश्य रहा होगा इसीलिए उन्होंने सुविख्यात कथानक का आधार ग्रहण किया।

37.3.1 इतिहास और कल्पना का योग

अब प्रश्न यह उठता है कि ऐतिहासिक-सांस्कृतिक कथाप्रसंग को लेकर कवि ने उसके सुविख्यात स्वरूप को यथावत रखा है या उसमें अपनी कल्पना के अनुसार कुछ जोड़ा या छोड़ा है? जहाँ तक युधिष्ठिर के मन के क्षोभ और निर्वेद का प्रश्न है वह 'महाभारत' की

मनोभूमिका को ही प्रस्तुत करता है। किन्तु भीष्म पितामह द्वारा दिए गए उत्तर और समस्याओं द्वारा युद्ध का औचित्य सिद्ध किए जाने में कई पहलुओं से नवीनता का समावेश हुआ है। कृष्ण, व्यास, नारद, द्रौपदी तथा भाइयों के साथ हुई चर्चा को शामिल न करके सारी बात भीष्म के मुख से प्रस्तुत की गई है। नीति-अनीति, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, न्याय-अन्याय, शांति-क्रांति आदि के औचित्य और अनौचित्य का तार्किक उत्तर भीष्म के माध्यम से दिलाया गया है। कथा द्वापर काल से बाहर निकलती है और युद्ध के प्रश्न को सार्वकालिक परिवेश में रख कर देखा गया है। प्राचीन और वर्तमान यहाँ आकर एकाकार हो जाते हैं। पात्र पीछे छूट जाते हैं और कवि स्वयं बोलता है। वातावरण का जो व्यापक प्रभाव 'महाभारत' के परिप्रेक्ष्य में सृजित किया जा सकता था उसे सृजित करने के बाद कवि को जैसे लगा कि पात्रों के मुख से कहलाना ही पर्याप्त न होगा वैसे ही कवि स्वयं पाठकों के सम्मुख आ गया है। किन्तु जैसा कि स्वयं कवि ने आरंभ में कहा है "सर्वत्र इस बात को ध्यान में रखा है कि भीष्म और युधिष्ठिर के मुख से कोई ऐसी बात न निकल पाए, जो द्वापर के लिए सर्वथा अस्वाभाविक हो। हाँ इतनी स्वतंत्रता अवश्य ली है कि जहाँ भीष्म किसी बात का वर्णन कर रहे हों जो हमारे युग के अनुकूल पड़ती हो, उसका वर्णन नए और विशद रूप से कर लिया जाए।

इससे स्पष्ट है कि कवि इतिहास में कल्पना का समावेश उस हद तक करने का इच्छुक रहा है जहाँ तक काव्य को आधुनिक युग के संवेदन के लिए प्रासंगिक और युगानुकूल बनाया जा सके। जब द्वापर से बिल्कुल अलग प्रसंग में चर्चा हुई तो कवि स्वयं पाठकों के सामने आ गया जैसा कि छठे सर्ग में।

37.3.2 वस्तु-व्यंजना

'कुरुक्षेत्र' की वस्तु व्यंजना पर चर्चा करने से पहले कुछ बातें ध्यान में अवश्य रखनी होंगी। सर्वप्रथम तो कवि का यह कथन कि–"कुरुक्षेत्र" के प्रबंध की एकता उसमें वर्णित विचारों को लेकर है। इससे स्पष्ट है कि कुरुक्षेत्र घटनाप्रधान काव्य न होकर विचारप्रधान काव्य है। अतः घटनाओं की प्रधानता के अभाव में यहाँ कथाविकास में मूल तारतम्यता की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। कवि का मूल उद्देश्य यहाँ कथा का गायन न होकर विचार-विश्लेषण का प्रतिपादन है। इसलिए इस कृति में कथातत्व काफी क्षीण और सूक्ष्म है।

'कुरुक्षेत्र' प्रबंध की इतिवृत्तात्मकता, वर्णनात्मकता, विवरणात्मकता का इस तरह से निर्वाह नहीं करता जिस तरह से "रामचरितमानस" अथवा "पद्मावत" में एक आधिकारिक कथा चलती है और उसके साथ कई प्रासंगिक कथाएँ। इस प्रकार का पुराना ढंग 'कुरुक्षेत्र' में नहीं है। पूरा कथानक युधिष्ठिर और भीष्म के संवाद, वाद-विवाद, एकालाप और स्वयं कवि द्वारा प्रस्तुत विचारों में सिमटा हुआ है। अतः कथानक में आदि, मध्य और अंत की पारंपरिक संकल्पना यहाँ नहीं मिलती। यहाँ तो कवि ने युद्ध विषयक चिंतन को कथा में ढालने का प्रयास किया है। इसलिए यहाँ विवरण और इतिवृत्त की सरलता और जटिलता न हो कर वैचारिक तार्किकता की प्रधानता है। प्राचीन काल के प्रसंगों को आधार बनाकर उनके माध्यम से अत्याधुनिक विचारों और तर्कों की प्रस्तुति के लिए कवि को कथावस्तु का ताना-बाना विशिष्ट ढंग से बुनना पड़ा है। इसलिए 'कुरुक्षेत्र' के कथानक में एक तरह की संश्लिष्टता और प्रभावान्विति है। सर्वप्रथम तो कवि यह मानकर चलता है कि उसका पाठक 'महाभारत' की कथाओं और अन्य पौराणिक प्रसंगों से भली-भाँति परिचित है। युद्ध की समस्या पर गहन चिंतन इसके वस्तुविन्यास का प्रधान आधार है। अतः कथा युधिष्ठिर के मन की ग्लानि, चिंता, शोक, निर्वेद और उसके समाधान स्वरूप युद्ध के औचित्य विषयक तर्कों को लेकर निर्मित हुई है, लेकिन इस प्रधान कथा के साथ ही अनेक कथाएँ प्रसंगवश स्मृति में कौंधती हैं। द्रौपदी का अपमान, राजसूय यज्ञ, व्यास के वचन, भीम द्वारा दुःशासन वध और नर का रक्त पान, अवश्त्थामा के माथे की मणि का छीना जाना, भीष्म का कौमार्य व्रत आदि जैसी द्वापरकालीन कथाओं के साथ ही रामकथा के अनेक प्रसंग आते हैं जैसे राम का निशाचर वध का प्रण, लंका जाने के लिए समुद्र से विनय फिर क्रोध और अंत में सेतु निर्माण आदि। ये सभी प्रासंगिक कथाएँ स्मृति और उदाहरणों के रूप में चलती हैं। इसके अतिरिक्त विचारों की संश्लिष्टता को स्पष्ट करने के लिए कवि अनेक रूपकों की सृष्टि करता है जैसे युद्ध के भयानक विस्फोट की तुलना में तूफान का रूपक लेते हुए युधिष्ठिर से यह कहना–

"युधिष्ठिर क्या कभी तूफान देखा है

किस तरह आता प्रलय का नाद वह करता हुआ
काल सा वन में द्रुमों को तोड़ता झकझोरता''

इन रूपकों से कथा में वैचारिक-प्रभाव की सृष्टि की गई है। 'कुरुक्षेत्र' के वस्तुविन्यास में दिनकर ने इतिहास को अतिक्रांत करते हुए अनेक काल्पनिक प्रसंगों और प्रकरणों का समावेश किया है। भीष्म जैसे महाबली और अजेय युग-पुरुष से युद्ध के कारणों पर विचार करना, स्वयं आत्मविश्लेषण कराना, मानव सभ्यता के आरंभ और विकास के दौरान संघर्ष की उत्पत्ति और उसके समाधान की व्यवस्था पर विचार करना, आधुनिक युग की समस्याओं को उससे जोड़ देना आदि ऐसे ही कविकल्पित प्रसंग हैं जिनके माध्यम से कवि वैचारिक एकता के निर्वाह में सफल हो सका है। साथ ही इतिहास को नया अर्थ प्रदान करते हुए प्रकरण वक्रता की सृष्टि में सफल हुआ है।

वस्तु निर्वाह में भी कवि ने अपनी वैचारिकता के अनुकूल अपूर्व कौशल का परिचय दिया है। साथ ही कथावस्तु का आरंभ बड़े ही नाटकीय ढंग से हुआ है। विचार और विस्मय के साथ कृति आरम्भ होती है कि इतिहास के उस अध्याय पर कौन रो रहा है जिसमें नौजवानों के लहू का मोल लिखा है।

आरंभ में उठी प्रश्नाकुलता आखिर तक मौजूद रहती है पूरी कथा को प्रश्नों, शंकाओं, समस्याओं से बुना गया है। विजय, देश की लज्जा, अपमान का प्रतिशोध, धर्म, कर्त्तव्य, नीति, क्रांति आदि शब्दों के अर्थ ही जटिलताओं को सुलझाने में कवि आद्यंत व्यस्त रहा है। इसीलिए यह कथा युद्ध के संघर्षों अंतर्विरोधों और तनावों से निर्मित हुई है। सामने कुछ घटित नहीं हो रहा है लेकिन जो घट चुका है उससे जुड़े अनेकानेक प्रश्न हैं जो अपने जटिलतम रूप में सामने खड़े हैं।

नाटकीय आरंभ के साथ जो विषाद पूर्व ग्लानि और तनाव युधिष्ठिर के मन में पैदा होता है वह ''नियति के व्यंग्य भरे अर्थ'' गुनता हुआ संपूर्ण काव्यपरिवेश में फैल जाता है। युद्ध के परिणामस्वरूप उत्पन्न आर्त्तनाद से युधिष्ठिर के भीतर उठी आत्मवेदना उन्हें भागने को यह कहकर मजबूर करती है कि युद्ध इन पाँच पुरुषों के अभिमान और लोभवृत्ति का परिणाम था। युद्ध से पहले यदि कहीं वह इस भयंकर संहार की कल्पना तक कर पाते तो शांति को जिस कीमत पर मिलती खरीद लेते।

युधिष्ठिर की वेदना से उत्पन्न तनाव को भीष्म के तर्कों से एक सही दिशा-दृष्टि मिलती है। पर युद्ध के वास्तविक कारणों का पता चलता है और कथानक आगे बढ़ता है। तूफान के रूपक से समाज में व्याप्त युद्ध की आग का प्रत्यक्ष रूप सामने आता है। वैर, प्रतिशोध, घृणा, अत्याचार की जब सीमा टूट जाती है तो किसी न किसी रूप में युद्ध का विस्फोट होता है। इस तरह के वार्तालाप में युद्ध की अपरिहार्यता और उसकी निरर्थकता दोनों के पक्ष में अकाट्य तर्क काफी देर तक चलते हैं। भीष्म कायरता और अन्याय पर खड़ी शांति की भर्त्सना करते हैं छठे सर्ग में कथा वैज्ञानिक युग में प्रवेश कर जाती है। प्राचीन काल से लेकर आज तक बुद्ध, अशोक, ईसा मसीह, गांधी आदि द्वारा किए गए प्रयासों पर कवि विचार करता है और ईश्वर से प्रार्थना करता हुआ प्रश्न है कि कब मनुष्य अपनी पुरानी युद्ध की राह छोड़ेगा। मनुष्य की वैज्ञानिक प्रगति के महत्व को स्वीकार करता हुआ कवि यह चेतावनी देता है कि यदि विज्ञान विनाश के लिए तलवार का काम करता है तो उसे छोड़ दिया जाना चाहिए। उसका प्रयोग रचनात्मक कार्यों के लिए होना चाहिए सर्वनाश के लिए नहीं।

अंत में, भीष्म समझाते हैं कि रण का कोलाहल तभी शांत हो सकता है जब सभी मनुष्यों को सुख में समान हिस्सा मिले। इस तरह कथानक का अंत इस आशापूर्ण निष्कर्ष पर पहुँच कर होता है कि एक दिन मनुष्य अपनी भूल को पहचानेगा तथा स्नेह और बलिदान पर आधारित समतावादी समाज की स्थापना होगी। शंकाओं, तनावों, प्रश्नाकुलताओं का अंत उज्ज्वल भविष्य की आशा में होगा।

37.3.3 कथानक में नूतन उद्भावनाएँ

'कुरुक्षेत्र' के कथानक में नए संदर्भों और प्रसंगों का समावेश कवि ने दो प्रकार से किया है। कुछ उद्भावनाएँ तो एकदम प्रत्यक्ष रूप में सामने आई हैं और कुछ की प्रतिध्वनि अप्रत्यक्ष रूप से सुनाई देती हैं।

कुरुक्षेत्र के कथानक की प्रमुख नूतन उद्भावनाएँ हैं–

1) प्राचीन कथा को आधुनिक अर्थवत्ता से जोड़ना, 2) इतिहास का प्रयोग संवाद सेतु के रूप में करना, 3) पौराणिक ऐतिहासिक संदर्भों को वैज्ञानिक दृष्टि और दृश्य प्रदान करना, 4) उन्हें आधुनिक विचार से तर्क संपृक्त करना, 5) विशिष्ट घटनाओं को कालातीत रूप देना आदि।

इन उद्भावनाओं पर विचार करते हुए हमें कुरुक्षेत्र के रचनाकाल की युगीन पृष्ठभूमि और दिनकर की मनोभूमिका की बनावट को ध्यान में रखना होगा। बीसवीं शताब्दी विज्ञान की अनुपम उपलब्धियों के साथ ही उसकी चरम विनाशलीला को दो विश्वयुद्धों के रूप में देख चुकी थी। साम्राज्यवादी शक्तियों की लूट अन्याय और अत्याचार के साथ ही उसकी चेतना में हिरोशिमा और नागासाकी के आणविक युद्ध की स्मृति बिल्कुल ताजा थी। दूसरी ओर रूस की बोल्शेविक क्रांति और उसके परिणामस्वरूप पनपी साम्यवादी चेतना की लहर भी दुनिया भर में काफी तेजी से फैल रही थी। गांधी जी के अहिंसा दर्शन और तिलक के गीता पुष्ट कर्मयोग ने एक विशिष्ट ढंग से कर्म चेतना को उन्नत किया था जो राजनीतिक क्रांति के स्तर पर नरमदल और गरमदल के रूप में प्रकट हुई थी। कुरुक्षेत्र ने हमें इन युद्धों, आंदोलनों, वैचारिक द्वंद्वों और उनके परिणामों की स्पष्ट अनुगूँज मिलती है और इसी अनुगूँज को लाने के लिए कवि ने 'महाभारत' की कथा में नवीन उद्भावनाओं की सृष्टि की है। छठे सर्ग में कवि बुद्ध, अशोक, ईसामसीह, गांधी आदि के प्रति श्रद्धा के बावजूद मनुष्य द्वारा उनके मार्ग को छोड़े जाने की स्थिति पर विकल होता है। विज्ञानयुग के युद्ध के प्रति मनुष्य को आगाह करता हुआ मानवतावादी मूल्यों की पुकार करता है। भीष्म और युधिष्ठिर के माध्यम से वह गांधी और सुभाष के मतों को सामने रखता है। भीष्म के कथनों में जगह-जगह मार्क्स के साम्यवादी विचार-दर्शन की प्रतिध्वनि सुनाई देती है। इस तरह दिनकर क्षात्रधर्म को साम्य पर आधारित समाज की स्थापना के उद्देश्य से जोड़ते हैं। भावना और बुद्धि की टकराहट पूरे कथानक में चलती है। मनुष्य यहाँ अपने प्रश्नों से बिंधा खड़ा है। आरंभ से लेकर अंत तक युद्ध के प्रश्न को लेकर बौद्धिक मंथन ही इस कथावस्तु की विशेषता है।

बोध प्रश्न 1

1 क) 'कुरुक्षेत्र' में 'महाभारत' के किन पर्वों को कथा का आधार बनाया गया है?

....

....

....

....

....

....

ख) क्या 'कुरुक्षेत्र' की रचना 'महाभारत' के अनुकरण पर हुई है? यदि नहीं तो दिनकर का क्या उद्देश्य था?

....

....

....

....

....

....

ग) दिनकर ने यदि 'महाभारत' का प्रसंग न लिया होता तो उन्हें क्या कठिनाई होती?

....

....

....

....

घ) कल्पना का समावेश करते समय दिनकर ने किस बात का ध्यान रखा है?

....

....

....

....

....

....

2 'हाँ' या 'नहीं' में उत्तर दीजिए—

क) 'कुरुक्षेत्र' घटना प्रधान काव्य है। ( )

ख) 'कुरुक्षेत्र' में कथा तत्व काफी क्षीण है। ( )

ग) 'कुरुक्षेत्र' के कथानक में कई प्रासंगिक कथाएँ साथ-साथ चलती हैं। ( )

घ) 'कुरुक्षेत्र' का कथानक इतिवृत्त प्रधान है। ( )

ङ) 'कुरुक्षेत्र' का कवि यह मान कर चलता है कि पाठक 'महाभारत' की विभिन्न कथाओं से भलीभाँति परिचित है। ( )

3 रिक्त स्थानों की पूर्ति कोष्ठक में से सही शब्द चुन कर कीजिए—

क) 'कुरुक्षेत्र' के कथानक का आरंभ.............है। (घटना प्रधान/नाटकीय)

ख) 'कुरुक्षेत्र' में कवि युद्ध की तुलना............ करता हैं। (बाढ़/विस्फोट/तूफान)

ग) दिनकर विज्ञान का प्रयोग मानवता के............के लिए करने के पक्ष में है। (कल्याण/विध्वंस/ऐश्वर्य)

37.4 चरित्र चित्रण

आप पढ़ चुके है कि 'कुरुक्षेत्र' विचारप्रधान प्रबंध काव्य है उसमें घटनाओं को महत्व नहीं दिया गया है। फलत: इस कृति के कथातत्व का प्रभाव रचना के पात्रविधान पर पड़ा है। घटनाओं के अभाव में पात्रों के बाह्य कार्य व्यापार के स्थान पर उनके मन-मस्तिष्क को अधिक महत्व प्राप्त होता है। द्वंद्व की सृष्टि उनके कार्यों से अधिक उनके विचारों में होती है। ऐसी स्थिति में पात्रों की ज्यादा संख्या होने की संभावना भी नहीं रहती। जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित महाकाव्य "कामायनी" में केवल तीन-चार पात्र हैं। 'कुरुक्षेत्र' में भी ऐसा ही हुआ है। प्रत्यक्ष रूप से केवल दो पात्र उपस्थित हुए हैं युधिष्ठिर और भीष्म। इन्हीं के संवादों तथा स्वयं कवि के वक्तव्य के द्वारा कथा आगे बढ़ी है और वस्तुविन्यास का कलात्मक ढंग से विस्तार हुआ है। सूच्यरूप में 'महाभारत' के अन्य पात्रों पांडवों, कौरवों, धृतराष्ट्र, द्रोणाचार्य, अभिमन्यु, उत्तरा, गांधारी, कृष्ण आदि का उल्लेख भर किया गया है।

घटना प्रधानता के अभाव में पारंपरिक ढंग से नायक प्रतिनायक आदि की परिकल्पना भी 'कुरुक्षेत्र' में सुलभ नहीं है। भीष्म और युधिष्ठिर में किसे नायक कहा जाए यह बताना सर्वथा असंभव है। दोनों पात्र दो विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं और 'कुरुक्षेत्र' चिरन्तनयुद्ध की समस्या का। डॉ. नगेन्द्र का मत है कि—

"इस काव्य में कुरुक्षेत्र युद्ध का प्रतीक है............युधिष्ठिर अहिंसा के प्रतीक जो युद्ध को किसी भी परिस्थिति में उचित नहीं समझते और भीष्म न्याय भावना के प्रतीक हैं जो अन्याय के दमन के लिए युद्ध को उचित ही नहीं वरन् आवश्यक भी मानते हैं। वास्तव में, नायकत्व का प्रश्न काव्य में प्रच्छन्न ही रह जाता है" (विचार और विश्लेषण, पृ. 128)

जहाँ तक चरित्र के स्वतंत्र विकास का संबंध है वह भीष्म और युधिष्ठिर का भी नहीं हो सका है। क्योंकि दोनों दो विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करने के लिए सृजित किए गए हैं। अतः दोनों ही कवि के चिंतन के संवाहक बन कर आए हैं। अतः दोनों चरित्रों का विश्लेषण उपर्युक्त तथ्यों का ध्यान में रखते हुए करना होगा। आगे हम दोनों की चारित्रिक विशेषताओं का विवेचन करेंगे।

37.4.1 युधिष्ठिर

धर्मराज का पारंपरिक चरित्र 'कुरुक्षेत्र' में कायम रहा है। उनकी मनोदशा को कवि ने बड़े ही मर्मस्पर्शी ढंग से प्रस्तुत किया है। युधिष्ठिर की आत्मग्लानि, उनकी आत्म-भर्त्सना, दैन्य, क्षोभ, निराशा, व्याकुलता आदि बड़े ही प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त हुए हैं। उदाहरणार्थ युधिष्ठिर के निम्नलिखित का वचन उनकी व्यथा का बड़ा ही करुण चित्र उपस्थित करते हैं–

"हाय, पितामह, हार किसकी हुई है यह?
ध्वंसअवशेष पर सिर धुनता है कौन?
कौन भस्मराशि में विफल सुख ढूँढ़ता है?
लपटों से मुकुट का पट बुनता है कौन?

और बैठ मानव की रक्त सरिता के तीर
नियति के व्यंग्य भरे अर्थ गुनता है कौन?
कौन देखता है शवदाह बंधु बांधवों का?
उत्तरा का करुण विलाप सुनता है कौन?

यहाँ हम युधिष्ठिर को दया, करुणा, उदारता, सहिष्णुता, सहानुभूति आदि श्रेष्ठ मानवीय गुणों से संपन्न पाते हैं। दूसरों को दुखी देखकर वे विजयोल्लास में शामिल नहीं हो सकते जबकि उनके अन्य बंधुगण इसमें आत्मविभोर हैं।

उनकी परदुःख कातरता उन्हें आत्मग्लानि से भर देती है और वे सोचते हैं कि केवल पाँच असहिष्णु पांडवों के कारण इतना भीषण नरसंहार हुआ है। अपने इन सद्विवेकपूर्ण भावों के कारण ही उनका मन अंतर्द्वंद्वग्रस्त दिखाई देता है। गीता के कर्म दर्शन और वीरता के बीच क्या नीति पूर्ण है अथवा नहीं। इस बात को लेकर धर्मराज का मन द्वंद्वग्रस्त है–

"एक और सत्यमयी गीता भगवान की है,
एक ओर जीवन की विरति प्रबुद्ध है।

× × × ×

ध्वंस जन्य सुख? याकि, साश्रु दुःख शांतिजन्य?
ज्ञात नहीं कौन बात नीति के विरुद्ध है,
जानता नहीं मैं कुरुक्षेत्र में लिखा है पुण्य,
या महान पाप यहाँ फूटा बन युद्ध है"

आगे चल कर वह महसूस करते हैं कि युद्ध का कारण राजसिंहासन का लोभ है और वह इस लोभ से लड़ने के लिए संकल्पबद्ध हो जाते हैं। उन्हें आशा है कि लोभ के विरुद्ध इस संघर्ष में वे अवश्य विजयी होंगे।

युधिष्ठिर के करुणा, दया, प्रेम और लोक कल्याण के भावों के प्रति भीष्म के हृदय में भी सम्मान है। लेकिन वह मानते हैं कि यह भाव होना ही पर्याप्त नहीं है न्यायपूर्ण समानता की व्यवस्था भी आवश्यक है।

युधिष्ठिर के चरित्र में भावाकुलता, आवेश और चिंतनशीलता का आग्रह बहुत है। मूलतः यह यथार्थ चरित्र है जो आधुनिक युद्ध की विभीषिकाओं से पीड़ित और घबराए हुए मनुष्य का प्रतिनिधित्व करता है। युद्ध के सर्वनाश को देख कर जिसका हृदय विदीर्ण हो उठता है।

निष्कर्ष में कहा, जा सकता है कि युधिष्ठिर का चरित्र कवि के मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचायक है। उनके विचारों पर गांधी विचार-दर्शन का प्रभाव है।

37.4.2 भीष्म

'कुरुक्षेत्र' में प्रतिपादित युद्ध संबंधी वाद-विवाद में भीष्म युद्ध के पक्ष में बोलते हैं। भीष्म के चरित्र में उनके इतिहास प्रसिद्ध उदात्त व्यक्तित्व तथा कवि की आधुनिक दृष्टि का मेल है। उनसे पाठक का प्रथम परिचय ही अजेय, पराक्रमी, दृढ़ प्रतिज्ञ नीतिद्ध और तत्व ज्ञानी के रूप में कराया गया है। ये शरशैया पर अर्जुन के बाणों से नहीं, स्नेह से पराजित होकर लेटे हैं। वे धैर्य, आत्मसम्मान, न्याय, कर्मयोग और लोक कल्याण के मूल्यों का प्रतीक हैं और इन मूल्यों की रक्षा के लिए युद्ध को आवश्यक मानते हैं। उनका विचार है कि—

"चुराता न्याय जो रण को बुलाता भी वही है,
"जब तक मनुष्य का यह
सुख भाग नहीं सम होगा,
शमित न होगा कोलाहल
संघर्ष नहीं कम होगा।

कर्म सौन्दर्य को प्रधान मानने वाले भीष्म भाग्यवाद की भर्त्सना करते हैं। उनका मानना है कि भाग्यवाद के बहाने ही व्यक्ति अपना अहित कर लेता है और दूसरों का शोषण।

भाग्यवाद आवरण पाप का
और शस्त्र शोषण का।
जिससे रखता दबा एक जन
भाग दूसरे जन का।

संन्यास और विरक्ति को वह कार्य से बचने का तरीका समझते हैं। इसलिए उसे पलायन और कायरता का दुर्भाग्यपूर्ण दर्शन मानते हैं—

धर्मराज संन्यास खोजना
कायरता है मन की
है सच्चा मनुजत्व ग्रंथियाँ
सुलझाना जीवन की।

जिस तरह युद्ध से पहले कृष्ण ने अर्जुन को क्रर्मयोग का उपदेश दिया था उसी तरह अब भीष्म, युधिष्ठिर को समझाते हैं कि उन्हें संन्यास की बात छोड़कर जीवन में सक्रियकर्म सौन्दर्य की ओर प्रवृत्त होना चाहिए। यह कर्त्तव्य-मार्ग और लोक-कल्याण और परदुःखहरण का मार्ग है। मानवमात्र को सुखी बनाने के लिए पर्याप्त कष्ट झेलना ही मनुष्य की सच्ची वीरता है। इसलिए वह कहते हैं कि क्षमा, तप, त्याग उस वीर को ही शोभा देते हैं जो पराक्रमी है और प्रतिशोध लेने में सक्षम है। यथा—

'क्षमा शोभती उस भुजंग को
जिसके पास गरल है
उसको क्या, जो दंतहीन—
विषरहित विनीत सरल है।

अन्याय और शोषण पर आधारित शांति का भीष्म डटकर विरोध करते हैं और ऐसी शांति को भंग करना ही अपना कर्त्तव्य-कर्म समझते हैं—

पातकी न होता प्रबुद्ध दलितों का खड्ग
पातकी बताना उसे दर्शन की भ्रांति है"।

भीष्म पितामह के बहिर्मन के साथ-साथ उनके अंतर्मन का चित्र भी कवि ने खींचा है। वस्तुतः उनके व्यक्तित्व का यह स्वरूप दिनकर की नई अवधारणा है। 'कुरुक्षेत्र' के युद्ध के लिए वह कई प्रकार से अपने आप को उत्तरदायी मानते हैं। आजीवन कौमार्य का जो व्रत उन्होंने लिया था उसके कारण उनके व्यक्तित्व का कर्त्तव्य और नीति पक्ष प्रबल हो गया पर स्नेह पक्ष अपेक्षाकृत पिछड़ा रहा। इसलिए अब जीवन की संध्या बेला में वह सोचते हैं कि यदि उनके व्यक्तित्व का स्नेह पक्ष भी उतना ही प्रबल होता तो जीवन में उनके निर्णय और प्रतिक्रियाएँ संभवतया भिन्न होतीं। यहाँ आकर हम भीष्म के चरित्र में भी एक प्रकार का अंतर्द्वंद्व देखते हैं—

धर्मराज अपने कोमल
भावों की कर अवहेला
लगता है मैंने भी जग को
रण की ओर ढकेला

अथवा

ब्रह्मचर्य के दिन जो
रुद्ध हुई थी धारा,
कुरुक्षेत्र में फूट उसी ने
बनकर प्रेम पुकारा

नीति यानी कर्त्तव्य और स्नेह दोनों में से वह नीति को सदैव स्नेह से ऊपर रखते रहे और उस समय चुप रहे जब उन्हें पांडवों के पक्ष में बोलना चाहिए था। ऐसा इसलिए हुआ कि—

"बुद्धि शासिका थी जीवन की
अनुचर मात्र हृदय था"

हृदय और बुद्धि का संतुलन न होने पर एक पक्ष प्रबल हो जाता है और मनुष्य सहज व्यवहार के स्थान पर कृत्रिमता ओढ़ लेता है। जिसके परिणामस्वरूप 'कुरुक्षेत्र' की भाँति भीषण हो सकते हैं।

भीष्म के इस आत्मविश्लेषण ने उनके चरित्र को सहज मानवीयता प्रदत्त की है। जन कल्याण के लिए युद्ध और क्रांति के पक्षधर के रूप में वह उस आधुनिक मानवतावादी दृष्टि के परिचायक हैं जो समष्टि हित के लिए व्यष्टि सुखों के बलिदान को श्रेयस्कर मानती है।

भीष्म के चरित्र में आत्म गौरव और अंगार जैसी वीरता राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जीवन के आत्म सम्मान और आत्म विश्वास की परिचायक है। इसमें शौर्य और उदात्तगुणों का अदभुत योग है।

कहा जा सकता है कि भीष्म पितामह भारतीय क्रांतिकारी परंपरा के वैचारिक प्रतीक हैं। स्वाधीनता-संग्राम के दौरान क्रांतिकारी विचारधाराओं ने जिस युद्धदर्शन को जीवन के केंद्र में स्थापित किया है उस चेतना की संपूर्ण अभिव्यक्ति भीष्म के माध्यम से हुई है। वह कवि के अपने विचारों के संवाहक है। यहाँ कवि का व्यक्तित्व भीष्म में तदाकार हो गया है।

37.4.3 'कुरुक्षेत्र' के चरित्र विधान की विशेषताएं

'कुरुक्षेत्र' के दोनों पात्रों के ऐतिहासिक व्यक्तित्व में आधुनिक वैचारिक चेतना का समावेश बहुत ही कुशलता से हुआ है।

दिनकर ने चरित्रों के बाह्य व्यक्तित्व के निरुपण के साथ ही अंतर्मन को बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से खोलकर सामने रख दिया है। करुणा, पश्चाताप, ग्लानि, आत्ममंथन आत्मविवेक, आत्मविश्लेषण चिंतन-मनन आदि के द्वारा युधिष्ठिर और भीष्म के व्यक्तित्व को पर्त दर पर्त खोला गया है। चेतन और अवचेतन मन के और व्यक्ति के जीवन और कर्मों पर उनके प्रभाव को भी बड़ी तार्किकता से प्रस्तुत किया गया है।

ऐसी स्थिति के कारण पात्रों के चरित्र के वैयक्तिक और सामाजिक दोनों पक्ष गहराई से उद्घाटित हुए हैं।

चरित्रों में गांधी, सुभाष, मार्क्स ओर फ्रायड आदि के विचारों की अनुगूंज सुनाई देती है। भीष्म और युधिष्ठिर के वैचारिक टकराव में गांधी और सुभाष का वैचारिक संघर्ष उभर कर सामने आया है।

जहाँ एक ओर भीष्म के अंतर्मन और बहिर्व्यक्तित्व को संश्लिष्ट रूप प्रदान करने के लिए इतिहास, मनोविज्ञान और आधुनिक प्रगतिशील चिंतन को बड़े कौशल के साथ परस्पर गुंथा गया है। वहीं दूसरी ओर युधिष्ठिर की मन: स्थिति के माध्यम से आधुनिक मनुष्य की द्विधा, यातना, तनाव, चिंता और प्रश्नाकुलता को भी प्रकट किया गया है।

विशेषता यह है कि आधुनिक युग के अनुरूप बनने में इन दोनों पात्रों ने अपनी ऐतिहासिकता नहीं खोई है।

बोध प्रश्न 2

क) 'कुरुक्षेत्र' में पात्रों की संख्या ज्यादा क्यों नहीं हो सकती थी?

....

....

....

....

ख) क्या कुरुक्षेत्र में कोई नायक है? यदि नहीं तो क्यों?

....

....

....

....

ग) भीष्म के चरित्र में दिनकर ने किस नयी अवधारणा का समावेश किया है?

....

....

....

....

घ) कुरुक्षेत्र के पात्र विधान में किन विचार धाराओं की अनुगूँज सुनाई देती है?

....

....

....

....

2 युधिष्ठिर के चरित्र में निम्नलिखित में से कौन सी विशेषताएं नहीं हैं सही (✓) और गलत (X) का निशान लगा कर उतर दीजिए।

क) दया

ख) उदारता

ग) सहानुभूति

घ) असहिष्णुता

ङ) प्रश्नाकुलता

च) भावहीनता

37.5 प्रकृति एवं संवेदना

'कुरुक्षेत्र' की केंद्रीय संवेदना युद्ध की समस्या से संबंधित विचार मंथन की है। प्रकृति का समावेश कविता में नए विचारों की अभिवयक्ति, विश्लेषण और पुष्टि के रूप में ही हुआ है। पर मात्र प्रकृति निरूपण का यहाँ कोई अवसर नहीं है। यद्यपि एक स्वतंत्र सत्ता के रूप में प्रकृति की स्थिति को स्वीकार करते हुए उसके विविध रूपों को विभिन्न प्रकार से प्रस्तुत किया गया है। प्रकृति को विविध रूपकों के द्वारा कवि ने विशिष्ट स्थितियों और मन: स्थितियों के रूप में प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ उसके रौद्र और भीषण रूप के माध्यम से महायुद्ध की भीषणता को प्रकट किया गया है-

"औ" युधिष्ठिर से कहा—तूफान देखा है कभी?
किस तरह आता प्रलय का नाद वह करता हुआ,
काल सा वन में द्रुमों को तोड़ता, झकझोरता,

और मूलोच्छेद कर भू पर सुलाता क्रोध से
उन सहस्त्रों पादपों को जो कि क्षीणाधार हैं
रूग्ध शाखाएं द्रुमों की हरहरा कर टूटतीं,
टूट गिरते शावकों के साथ नीड़ विहंग के,
अंग भर जाते वनानी के निहित तरू, गुल्म से,
छिन्न फूलों के दलों से पक्षियों की देह से

पर शिराएँ जिस महीरूह की अतल में हैं गड़ीं
वह नहीं भयभीत होता क्रूर झंझावात से
शीष पर बढ़ता हुआ तूफान जाता है चला,
नोचता कुछ पत्र या कुछ डालियों को तोड़ता"

यहां कवि प्रकृति की घटनाओं के माध्यम से इस तथ्य को प्रकट करता है तूफान में वे सभी पेड़ पौधे जीव जंतु नष्ट हो जाते हैं जो कमजोर होते हैं। किंतु जिस वृक्ष की जड़ें गहरी हैं उसे तूफान नष्ट नहीं कर पाता। उसके कुछ पत्तों और शाखाओं को झकझोरने तोड़ने के सिवाए तूफान कुछ नहीं कर पाता। ये पंक्तियाँ डार्विन के शक्ति के सिद्धांत को प्रस्तुत करती हैं। दिनकर का संपूर्ण जीवन दर्शन शौर्य और पराक्रम का दर्शन है जिसमें शक्ति और कर्म सौन्दर्य की स्थापना को महत्व दिया गया है। प्रकृति का भी ऐसा ही दृश्य उपस्थित किया गया है। जिसमें तूफान के प्रचंड वेग को सहने के बाद वन के वैधव्य का दृश्य देखता हुआ वृक्ष विचार करता है कि प्रकृति तूफान क्यों भेजती है। उसकी स्थिति वैसी ही होती है जैसी युधिष्ठिर की। उसे नहीं पता कि वायुमंडल में अत्यधिक गर्मी हो जाने पर तूफान के रूप में उसका विस्फोट अनिवार्य होता है। इस तरह युद्ध के कारणों का सजीव चित्र प्राकृतिक तथ्य के उदाहरण के माध्यम से खींचा गया है।

लेकिन ऊपर जो डार्विन के शक्ति-सिद्धांत का जो उदाहरण है उसका आशय यह नहीं समझना चाहिए कि कवि प्रकृति के माध्यम से केवल सबल को ही जीने और भोगने का अधिकार सिद्ध करना चाहता। कवि का मानना है कि सम्मानपूर्वक जीने के लिए शक्ति और वीरता चाहिए।

दिनकर ने प्रगतिशील-सामाजिक स्वाधीनता की दृष्टि से प्रकृति चित्रण किया है। वह बराबर इस बात पर विचार करते रहते हैं कि प्रकृति का सहभाव ही मनुष्य की शक्ति है और प्रकृति पर विज्ञान के द्वारा विजय की तैयारी किसी बड़ी विपदा को आमन्त्रण। 'कुरुक्षेत्र' के छठे सर्ग में प्रकृति, मनुष्य और विज्ञान के संबंध की समस्या को उठाया गया है। दिनकर की मूल चिंता यह है कि विज्ञान की अग्नि से जलती हुई पृथ्वी के प्राण कोमलता और सरलता को कैसे सुरक्षित रख सकते हैं। जब तक मनुष्य की उद्‌दाम भोग लालसाएं अनियंत्रित रहेंगी। मानव के प्राणों में शीललता व्याप्त नहीं हो सकती।

कारण

"आप की दुनिया विचित्र नवीन
प्रकृति पर सर्वत्र है विजयी पुरुष आसीन
हैं बंधे नर के करों में वारि विद्युत माप
हुक्म पर चढ़ता उतरता है पवन का ताप
हैं नहीं बाकी कहीं व्यवधान
लांघ सकता नर सरित गिरिसिंधु एक समान"

छायावादी कृति "कामायनी" में प्रकृति के अत्याचारों से पीड़ित होकर विद्रोह करती है किंतु "कुरुक्षेत्र" में दिनकर प्रकृति की एक सर्व शक्तिमान सत्ता को ही स्वीकारते हैं। और इस भय से आग्रह करते हैं कि यदि मनुष्य ने प्रकृति को पूरी तरह से दासी बनाने की तैयारी की तो प्रकृति अपने विकराल रूपों में सामने आ सकती है। इसलिए दिनकर की स्मृति में आदिम प्रकृति की कौंध के चित्र काफी तादात में मिलते हैं जैसे–

चाँदनी की रागिनी कुछ और की मुस्कान
नींद में भूली हुई बहती नदी का गान
रंग में घुलता हुआ खिलती कली का राग
पत्तियों पर गूंजती कुछ ओस की आवाज"

दिनकर के इस तरह के प्रकृति चित्रों के आधार पर विद्वान यह मानते हैं कि छायावाद के समानांतर राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के अन्तर्गत दूसरा छायावाद चला था जिसके कवि हैं–बच्चन, दिनकर, माखनलाल चतुर्वेदी, भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा आदि। इन सभी

में राष्ट्रीय जागरण युग की देश-प्रेम-भावना ही प्रकृति प्रेम-भावना में बदल गई है। परिणामस्वरूप फूल, कली, रस, रूप, रंग के भाव इन कवियों की कविताओं में बहुतायत से आए हैं। और युद्ध का समर्थन करने पर भी इनकी मूल चिंता धरती की कोमलता (करुणा और रस) को हर कीमत पर रक्षित करने की रही। दिनकर से एक उदाहरण लीजिए—

"यह धरती फल फूल अन्न धन
रतन उगलने वाली
यह पालिका मृगव्य जीव की
अटवी सघन निराली

तुंग श्रृंग ये शैल कि जिनमें
हीरक रत्न भरे हैं।
ये समुद्र जिनमें मुक्ता
विद्रुम प्रवाल बिखरे हैं।

यह प्रकृति इसी अर्थ में वसुंधरा है कि मनुष्य के श्रम से रत्न उगलती है। प्रकृति के इस मातृत्व वैभव का वर्णन देशभक्ति और नवजागरण की चेतना का सीधा विस्फोट है एक अन्य उदाहरण लीजिए—

प्रकृति नहीं डर कर झुकती है
कभी भाग्य के बल से
सदा हारती वह मनुष्य के
उद्यम से श्रम जल से।

इस प्रकार दिनकर ने प्रकृति का संवेदनात्मक और प्रतीकात्मक दोनों रूपों में मुक्त हृदय से चित्रण किया है। शास्त्रीय भाषा में इसे आलंबन रूप में प्रकृति चित्रण भी कह सकते हैं। ध्यान रखने की बात यह है कि प्रकृति चित्रण मात्र कर देना दिनकर का उद्देश्य नहीं है उनका उद्देश्य है उपनिषद दर्शन से फूटी उस विचारधारा को प्रस्तुत करना जिसमें प्रकृति और उसके सौंदर्य की महिमा का अनेक रूपों में वर्णन है। इसलिए दिनकर विज्ञान के तांडव नृत्य से काँपते हैं—

प्रकृति की प्रच्छन्नता को जीत
सिंधु से आकाश तक सबकों किए भयभीत

× × ×

लक्ष्य क्या? उद्देश्य क्या? क्या अर्थ?
यह नहीं यदि ज्ञात तो विज्ञान की श्रम व्यर्थ
सुन रहा आकाश चढ़ ग्रह तारकों का नाद
एक छोटी बात ही पड़ती न तुझको याद

जाहिर है कि दिनकर प्रकृति को 'रौंद देने वाला' पश्चिमी दर्शन स्वीकार नहीं करते। वह उस भारतीय दर्शन की ओर झुकते हैं जिसका मूल आधार है भावुक हृदय लेकर ही मनुष्य प्रकृति रूपी मां से कुछ पा सकता है। इसे प्रकृति के प्रति स्वच्छंदतावादी दृष्टि ही कहा जा सकता है। प्रकृति की रम्यता में दिनकर का मनुष्य उन्मुक्त स्वच्छदता का दर्शन करता है। कारण वह स्वाधीनता की तलाश में प्रकृति की ओर आया है।

37.6 भाव-रस व्यंजना

"कुरुक्षेत्र" में परंपरागत पद्धति का रसविधान नहीं है। रस का पुराना दर्शन इसलिए भी खंडित हो गया है कि दिनकर भाव सांमजस्य की ओर नहीं बढ़ते। वह निरंतर तर्क और विचार के द्वैत में दहकते रहते हैं। आनंदवादी जीवन मूल्य 'कुरुक्षेत्र' में प्रवेश नहीं कर सके क्योंकि कवि बौद्धिक धरातल एक जटिल समस्या से झूझ रहा है। पहले तो "कुरुक्षेत्र" में विभाव, अनुभाव और संचारी भाव की स्थितियाँ ही पुष्ट नहीं है। इसलिए किसी भी रस को 'कुरुक्षेत्र' का अंगीरस मानना भ्रामक होगा। अंगीरस वह रस होता है। जो कथा के कलेवर में आदि से अंत तक अंखड रूप में विद्यमान रहता है और नायक की चित्तवृतियों का प्रतिफलन भी अंगीरस में ही होता है। 'कुरुक्षेत्र' में पहले तो यही निर्णय करना कठिन है कि इसका नायक कौन है? दूसरे इस कृति में रस के विभाव पक्ष की अंखडता का अभाव

है। तीसरी बात यह है कि कृति में अनुभावों और संचारी भावों के जहां-तहां विधान किए गए हैं। अद्भुत, हास्य और श्रृंगार का इसमें लगभग अभाव है और रौद्र, शांत करुण, भयानक वीभत्स, वीर आदि रसों में उत्पन्न होने वाले भाव मात्र भाव बन कर ही रह गए हैं। रस रूप में उनकी परिणति नहीं हो सकी। कहीं-कहीं जुगुप्सा, उत्साह और निर्वेद के भाव प्रबलता से उभरे हैं किंतु शास्त्रीय दृष्टि से यह कहना संभव नहीं है कि उत्साह नामक स्थायीभाव ने वीर रस की निष्पति की है या निर्वेद नामक स्थायी भाव ने शांत रस में पर्यावसान पाया है "कुरुक्षेत्र" में रससिद्धि इसलिए भी नहीं हो पायी कि यह रचना युद्ध समाप्त हो जाने के बाद के चिंतन का संवादात्मक खमीर बन जाती है। विचारों के अपने-अपने पक्ष हैं और घायल हृदयों के अपने-अपने समाधान। मूल बात यह है कि भीष्म और युधिष्ठिर दोनों के आधार से कवि ने अपने मन के दो पक्षों को ही व्यक्त किया है। इसलिए रस के लिए उदीपन का वातावरण पैदा करने का प्रयास ही नहीं किया गया। संपूर्ण काव्य में कोई घटना घटित ही नहीं होती। अतः विभाव-अनुभाव और संचारी भाव का संयोग रस के आखंड तंत्र में उपस्थित नहीं हो पाता। 'कुरुक्षेत्र' में करुणा और निर्वेद के छीटें पड़े हैं, संवादों में वीर रस के उत्साह की व्यंजना हुई है और शांत रस की भूमिका बनी है। किंतु ऐसी कोई भी स्थिति नहीं आई हैं जो संचारी भावों से आगे बढ़ पाती। निर्वेद, आवेग, विषाद, चिंता, ग्लानि आदि संचारियों की दिनकर ने मार्मिक व्यंजना की है। सारांश यह है कि 'कुरुक्षेत्र' में परंपरागत रस व्यंजना का अभाव है।

बोध प्रश्न 3

क) 'कुरुक्षेत्र' से ऐसी चार पंक्तियों को उद्धृत कीजिए जो प्रकृति के रौद्र और क्रुद्ध रूप को प्रस्तुत करती हो?

....

....

....

....

ख) — दिनकर, विज्ञान और प्रकृति के बीच कैसे संबंध के पक्षधर हैं।

....

....

....

....

ग) प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण में दिनकर की छायावादी कवियों से क्या समानता है?

....

....

....

....

घ) — 'कुरुक्षेत्र' में परंपरागत ढंग का रस विधान क्यों नहीं हुआ है?

....

....

....

....

37.7 सारांश

इस इकाई में आप "कुरुक्षेत्र" के वस्तु पक्ष का अध्ययन कर चुके हैं। अब आप जान गए हैं कि दिनकर ने "कुरुक्षेत्र" की कथा कहां से चुनी है? और क्यों चुनी है? वे कौन से प्रश्न और शंकाएं थीं जो उनके मन में घुमड़ रही थीं और जिनकी अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने युधिष्टिर और भीष्म जैसे सुप्रसिद्ध पात्रों को चुना। अब आप यह भी समझ गए हैं कि इस कथानक का संजोजन और निर्वाह किस प्रकार किया गया है इस जानकारी से अब आप भीष्म ओर युधिष्ठिर के चरित्र की विशेषताएं बता सकते हैं। "कुरुक्षेत्र" में प्रस्तुत प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण की जानकारी भी आप को मिल गई है अब आप यह जानते हैं कि इस दृष्टि में परंपरागत रस विधान का आश्रय नहीं लिया गया है। स्थायी भावों की तीव्र अभिव्यक्ति के बावजूद वे रसदशा तक नहीं पहुंच सके हैं।

37.8 शब्दावली

अंगीरस: कथा के प्रधान रस को अंगीरस कहते हैं। प्रायः अंगीरस का संबंध कथा के नायक से होता है। मूलतः जो भाव या रस कथा के कलेवर में सर्वाधिक व्याप्त होता है उसे ही अंगीरस कहते हैं।

विभाव पक्ष: यह काव्य का कारण पक्ष है जिसके अंतर्गत कथा का आधार और वैचारिक योजना दोनों ही समाविष्ट रहते हैं। शास्त्रीय शब्दावली में इसके अंतर्गत आलंबन और उद्दीपन दोनों ही भाव शामिल रहते हैं।

भाव सामंजस्य: विरोधी भावों में जब कवि, सौंदर्य की सृष्टि करता है तब उसे भाव सामंजस्य की स्थिति कहते हैं।

अनुभाव: आश्रय के शारीरिक विकारों को अनुभाव कहते हैं इन्हें सात्विक भाव भी कहा जाता है जिनकी संख्या आठ मानी गई है। मूलतः यह दो प्रकार के होते हैं यत्नज और अयत्नज।

संचारी भाव: जो भाव क्षण-क्षण में उठते या नष्ट होते हैं तथा जो स्थायी भावों का पोषण करते हैं उन संचरणशील भावों को संचारी भाव कहते हैं। इनका एक नाम व्यभिचारी भाव भी है।

स्थायी भाव: विरुद्ध या अविरुद्ध (मित्र-शत्रु) भाव जिसकी सत्ता को कभी नष्ट नहीं कर पाते उसे स्थायी भाव कहते हैं। स्थायी भाव अन्य भावों से पुष्ट होकर रसरूप में अभिव्यक्ति होते हैं। प्राचीन आचार्य रसों की संख्या 9 मानते थे तदनुसार उन्होंने 9 स्थायी भावों की कल्पना की जैसे वीररस का स्थायी भाव उत्साह शृंगार रस का स्थायी भाव रति आदि।

निर्वेद: यह शांत रस का स्थायी भाव है। निर्वेद, शास्त्र और दर्शन के पारायण से उत्पन्न सांसारिक विराग का संकेत देने वाला भाव है।

रससिद्धि: भाव के भोग का नाम है आनंद और आनंद के आस्वादन की परिपूर्णता ही रससिद्धि है।

जुगुप्सा: यह वीभत्स रस का स्थायी भाव है। सामान्यतः यह वर्णन की विद्रूपता और घृणास्पद स्थितियों के चित्रण से उत्पन्न होने की भाव स्थिति है।

प्रतिनायक: मूलतः प्रतिनायक, नायक का विरोधी होता है। यदि नायक धीरोदात्त हो तो प्रतिनायक धीरोद्धत जैसे रामकथा में राम नायक है और रावण प्रतिनायक।

37.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 क) शांति पर्व "ओर" उद्योग पर्व

ख) देखें भाग 37.3

ग) देखें भाग 37.3

घ) कवि ने ध्यान रखा है कि भीष्म और युधिष्ठिर के मुँह से कोई ऐसी बात न निकल जाए जो द्वापर युग के अनुकूल न हो।

2 क) नहीं ख) हां ग) नहीं घ) नहीं ङ) हां।

3, क) नाटकीय ख) तूफान ग) कल्याण

बोध प्रश्न 2

क) देखें भाग 37.4

ख) देखें भाग 37.4

ग) देखें भाग 37.4.2

घ) देखें भाग 37.4.3

बोध प्रश्न 3

क) देखें "कुरुक्षेत्र" का सर्ग 2 अथवा इस इकाई का भाग 37.5

ख) देखें भाग 37.5

ग) देखें भाग 37.5

घ) देखें भाग 37.6

इकाई 38 "कुरुक्षेत्र" का अभिव्यंजना शिल्प

इकाई की रूपरेखा

38.0 उद्देश्य
38.1 प्रस्तावना
38.2 काव्यरूप और नामकरण
38.3 काव्य-भाषा
38.4 बिंब, प्रतीक
38.5 अप्रस्तुत योजना
38.6 छंद एवं लय
38.7 सारांश
38.8 शब्दावली
38.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

38.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- कुरुक्षेत्र के काव्यरूप के बारे में चर्चा कर सकेंगे,
- इसकी काव्य-भाषागत विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे,
- इसके अप्रस्तुत विधान के बारे में बता सकेंगे,
- इसमें प्रयुक्त छंदों ओर लय का विश्लेषण कर सकेंगे।

38.1 प्रस्तावना

इस खंड की पिछली इकाइयों में आप "कुरुक्षेत्र" का वाचन कर चुके हैं तथा इसके वस्तु पक्ष यानी कथावस्तु, पात्र विधान, भाव-व्यंजना प्रकृति एवं संवेदना आदि की जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। इससे पहले आपने यह भी पढ़ा कि प्रबंध काव्य क्या होता है, इसका स्वरूप कैसा होता है तथा हिन्दी में प्रबंध काव्य का विकास किस प्रकार हुआ? आप यह जानते हैं कि प्राचीन प्रबंध संकल्पना आधुनिक युग में आकर काफी बदल गई है। युग जीवन और परिस्थितियों की माँग तथा संवेदना में आए बदलाव ने कवियों को इस दिशा में प्रयोग और नवीनता के लिए प्रेरित किया है। आप यह जानते हैं कि "कुरुक्षेत्र" की रचना परंपरागत प्रबंध विधान के अनुसार नहीं हुई है। पिछली इकाई में कथावस्तु, पात्र विधान, रस आदि की दृष्टि से "कुरुक्षेत्र" का विश्लेषण-परीक्षण करते समय आपने देखा कि उनकी योजना विषय एवं प्रसंग की जरूरतों के अनुसार की गई है। इस इकाई में हम कुरुक्षेत्र के अभिव्यंजना शिल्प पर विचार करेंगे। परम्परागत प्रबंध दृष्टि की बजाए नवीन प्रबंध चेतना के अनुरूप "कुरुक्षेत्र" के सृजन में कवि ने अपने शिल्प पक्ष को कैसे रचने-गढ़ने का प्रयास किया है, इस बात का विश्लेषण-मूल्यांकन हम इस इकाई में करेंगे।

आप जानते हैं कि अभिव्यंजना शिल्प का सर्वाधिक व्यापक उपकरण होता है—काव्य रूप क्योंकि समस्त काव्य कौशल इसी परिधान में लिपटा होता है। ध्यान देने की बात है कि प्रत्येक कथ्य अपना रूप अपने साथ लेकर आता है अर्थात् कथ्य की संवेदना, गंभीरता और स्वभाव के अनुरूप रूप अपेक्षित होता है। रचनाकार यदि इस अपेक्षा को पूरा कर लेता है यानी सही "रूप" की तलाश कर लेता है और उसका समुचित निर्वाह कर पाता है तो रचना अपने प्रभाव ओर संप्रेषणीयता में सफल होती है। शिल्प के अन्य उपादान—भाषा, बिंब, प्रतीक, अलंकार, छंद, लय आदि सभी इस रूप-विधान के उपकरण होते हैं जिनके समुचित संयोजन के माध्यम से रचना में अन्विति उत्पन्न होती है। इस इकाई में इन सभी पक्षों की दृष्टि से कुरुक्षेत्र पर विचार किया जाएगा।

38.2 कुरुक्षेत्र का काव्य-रूप और नामकरण

"कुरुक्षेत्र" के काव्य को लेकर आधुनिक हिन्दी आलोचना और आलोचनाशास्त्र में गहरा वाद-विवाद हुआ है। इसका मूल कारण यह है कि "कुरुक्षेत्र" परंपरागत प्रबंध काव्य के सभी अनुशासनों को चुनौती के स्तर पर तोड़ता है। इसका कथानक महाभारत पर आधारित है, किन्तु महाभारत की कथा का वर्णन दिनकर का लक्ष्य नहीं है। वस्तुतः "कुरुक्षेत्र" का मूल स्वर गंभीर वैचारिकता का है जिसके माध्यम से कवि मूल समस्या-युद्ध-पर अपने विचार केन्द्रित करता है।

कुरुक्षेत्र **निबद्ध काव्य** या प्रबंध काव्य या संदर्भ काव्य के प्राचीन अनुशासन को तोड़कर एक नए ढंग की रचना प्रक्रिया के अंतर्गत नवीन प्रबंध दृष्टि का निर्माण करता है। यह नवीन प्रबंध दृष्टि कथात्मक, इतिवृत्त प्रधान, वर्णनात्मक है या सूचनात्मक कथा निर्देशों से अलग है। विद्वानों ने उदाहरण दे कर समझाया है कि जिस अर्थ में हरिऔध के "प्रिय प्रवास", मैथिलीशरण गुप्त के "साकेत" को कथात्मक प्रबंध कहा गया है उस अर्थ में या उस प्रबंध दृष्टि से 'कुरुक्षेत्र' को प्रबंध काव्य नहीं कहा जा सकता। 'कुरुक्षेत्र' की प्रबंधात्मक नवीनता का बोध स्वयं दिनकर को है। वह स्वयं कुरुक्षेत्र के "निवेदन" के अंतर्गत इस तथ्य को रेखांकित करते हैं—

> "मुझे जो कुछ कहना था वह युधिष्ठिर और भीष्म का प्रसंग उठाए बिना भी कहा जा सकता था, किंतु, तब यह रचना शायद प्रबंध के रूप में नहीं उतर कर मुक्तक बन कर रह गई होती। तो भी यह सच है कि इसे प्रबंध के रूप में लाने की मेरी कोई निश्चित योजना नहीं थी।"

इस कथन से जाहिर है कि परंपरागत प्रबंध के अनुशासन इतने कड़े थे कि किसी कवि को प्रबंध काव्य लिखने के लिए एक निश्चित योजना का प्रारूप अपने मन में बुनना पड़ता था क्योंकि कथात्मकता, कलात्मकता और चरित्र योजना तीनों का सम्यक निर्वाह निश्चय ही एक कलात्मक दक्षता की माँग करता था, और ऐसा करने में कवि का ध्यान विचारों से हटकर कथा संयोजन पर प्रायः केन्द्रित हो जाता था। दिनकर कथा से हट कर विचार पर ध्यान केन्द्रित करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने संकेत दिया कि प्रबन्ध के रूप में लाने की उनकी कोई निश्चित योजना नहीं थी।

विशेष बात यह भी है कि यह काम सोचते-सोचते पूरा किया गया और सोचने का विषय या युद्ध जैसा पागल कर देने वाला प्रश्न। हर बार हर युद्ध एक नई स्थिति-परिस्थिति की मनोभूमिका का निर्माण करता है। युद्ध की इस नई मनोभूमिका में जब विज्ञान का प्रवेश हुआ तो समस्या ने चिंतन का नया रुख अपनाया। स्वयं दिनकर ने छठा सर्ग विज्ञान या वैज्ञानिक युद्ध के विचार पक्ष को लेकर लिखा, और यह सर्ग एक प्रकार से कुरुक्षेत्र की अंतर्योजना के भीतर "फिट" किया गया दिखाई देता है। फिट हुआ या नहीं यह अलग बहस का विषय है लेकिन दिनकर कहते हैं—

> "पूरा का पूरा छठा सर्ग ऐसा ही क्षेपक है जो इस काव्य से टूट कर अलग भी जी सकता है।"

इस कथन से यह ध्वनि साफ है कि कुरुक्षेत्र के सभी सर्ग लंबी वैचारिक कविताएं हैं जिन्हें विचार के अंतः संगठन के आधार पर सुनियोजित ढंग से प्रस्तुत कर दिया गया है। "कुरुक्षेत्र" के काव्य रूप की समस्या स्वयं रचनाकार को इतना मथ रही थी कि "निवेदन" के अंत में वह पुनः बोले—

> "अंत में, एक निवेदन और। कुरुक्षेत्र के प्रबंध की एकता उसमें वर्णित विचारों को लेकर है। दरअसल इस पुस्तक में प्रायः सोचता ही रहा हूं। भीष्म के सामने पहुँच कर कविता जैसे भूल सी गई हो। फिर भी, कुरुक्षेत्र न तो दर्शन है और न किसी ज्ञानी के प्रौढ़ मस्तिष्क का चमत्कार।"

कवि के इस कथन पर ध्यान केंद्रित करते ही कुछ तथ्य स्वतः उभरते हैं जैसे—

1) कुरुक्षेत्र के प्रबंध की एकता उसमें निहित संवादात्मक वैचारिकता पर आधारित है।

2) प्रबन्ध की एकता से तात्पर्य है—वैचारिक प्रभाव की सघनता और गहनता में व्याप्त आंतरिक अंतःसत्रता, क्योंकि आधुनिक प्रबंध दृष्टि इसी पर अपने को केंद्रित करती

है। यह दृष्टि एक प्रकार से प्रबंध प्रतिमान बन गई है।

3) पूरी कृति में सोचने का अर्थ है—ढर्रे से अलग हटकर मूल सत्य की तलाश। सत्यान्वेषण नई दृष्टि की शक्ति से कथा की पुरानी केंचुल को फाड़ देता है और कवि कथा का कच्चे माल की तरह इस्तेमाल करता है। यही काम दिनकर ने "कुरुक्षेत्र" में किया है।

4) कविता जैसे भूल सी गई हो का अर्थ है—काव्यात्मकता में निहित भावावेग, कल्पनातिरेक और रूप के अन्य ऐंद्रजालिक अवयवों का अभाव। "कुरुक्षेत्र" भाव केंद्रित न होकर एक ऐसी विचार केन्द्रित रचना है जिसमें युद्ध के तत्वदर्शन पर कवि एक दार्शनिक की तरह हर कोने से सूक्ष्म से सूक्ष्मतर विचार करते हैं। यही कारण है कि कुरुक्षेत्र मस्तिष्क के स्तर पर चढ़ कर बोलने वाली रचना है अर्थात् बौद्धिक ढंग का विचारात्मक प्रबंध काव्य है।

प्रश्न उठता है कि यदि "कुरुक्षेत्र" बौद्धिक ढंग का विचारात्मक प्रबन्ध काव्य है तो क्या इसे हम प्रबंध काव्य के अंतर्गत महाकाव्य, खंडकाव्य या एकार्थकाव्य जैसा कोई नाम दे सकते हैं क्योंकि आरंभ में "कुरुक्षेत्र" को "प्रगतिवादी विचारधारा का प्रतिनिधि महाकाव्य" तक घोषित किया गया। किन्तु जब महाकाव्य की नवीन अवधारणा पर ध्यान गया तो स्पष्ट हुआ कि यह रचना महाकाव्य नहीं कही जा सकती। इसे एक उच्च कोटि का खंड काव्य भी कह पाना कठिन पड़ता है क्योंकि नए खंड काव्य की परिभाषा पुराने खंड काव्य की परिभाषा से इस कदर अलग हो गई कि दोनों एक-दूसरे की तरफ मुँह करके भी खड़ी नहीं होती। नया खंड काव्य लंबी कविता का पर्याय हो गया है क्योंकि लंबी कविता विचार की सघनता और प्रसरणशीलता में अपने आकार को बढ़ा लेती है। किन्तु यदि उसकी वैचारिक अन्विति खंडित हो जाती है तो कृति अपने समग्र प्रभाव में मलिन पड़ जाती है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का यह कथन—"कुरुक्षेत्र में विचारात्मक अवयव का प्राधान्य है" महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें न तो कोई साँचे ढला कथानक है न कोई नियम निर्धारित नायक, न कोई रुचियों और अर्थप्रकृतियों का पूर्व निर्धारित जाल, न कोई ऐसी सर्गबद्ध योजना जो युद्ध दर्शन को मोड़ों और कोणों पर ला कर खड़ा करती हो। अपनी पूरी बनावट में यह रचना विचार काव्य की ओर झुकी है किंतु यह विचारकाव्य-एकार्थ काव्य का पर्यायवाची नहीं है। एकार्थ काव्य में चरितकाव्य के तत्व मिले होते थे और आख्यान (कथावृत्त) एक खास ढंग से व्यक्ति केंद्रित होता था। कुरुक्षेत्र न भीष्म पर केंद्रित रचना है न युधिष्ठिर पर। यह युद्ध को केन्द्र में कर के मानवीय समस्याओं और चिंताओं को नए कोण से उठाती है। यदि ऐसा न होता तो दिनकर को यह न कहना पड़ता कि कुरुक्षेत्र की रचना भगवान व्यास के अनुकरण पर नहीं हुई है। इसलिए नहीं हुई कि दिनकर युद्ध विषयक विचारों का एक पक्ष भीष्म पितामह के नाम से रखते हैं और दूसरा पक्ष युधिष्ठिर के माध्यम से। दोनों ही पक्ष प्रधान और महत्वपूर्ण हैं और दोनों ने ही मनुष्य को लगातार उद्वेलित और आंदोलित किया है। दिनकर ठीक कहते हैं—"आत्मा का संग्राम आत्मा और देह का संग्राम देह से जीता जाता है। यह कथा युद्धांत की है।" भीष्म और युधिष्ठिर दोनों एक युद्ध बाहर लड़ते हैं और एक युद्ध अपने मन के भीतर। किन्तु यात्राएँ भिन्न हैं। दिनकर ने इसीलिए प्रबंध का गठन वैचारिक अन्विति पर केंद्रित कर दिया है। डा. नगेन्द्र ने इसे—"चिंतन प्रभाव लंबी कविता" ठीक ही कहा है। कुरुक्षेत्र की प्रबंध ध्वनि दो विरोधी विचारधाराओं की एकता पर आधारित है। किन्तु दिनकर ने वैचारिक प्रबंध काव्य की नवीन प्रबंध प्रतिमा को खंडित नहीं होने दिया है।

कुरुक्षेत्र का नामकरण

किसी रचना के नामकरण की सार्थकता इस बात से तय होती है कि नाम रचना के बारे में क्या और कितना इंगित करता है? रचना जो कुछ कहती है उसे नाम कहाँ तक वहन करता है? इस दृष्टि से कभी-कभी तो रचनाकार अपनी कृति का नाम उसके प्रधान पात्र के नाम पर रख देता है जैसे "रामायण", "पद्मावत". "रत्नावली"। कभी कृति के प्रमुख घटनास्थल के नाम पर नामकरण कर दिया जाता है जैसे—"साकेत", "हल्दीघाटी"। कभी रचनाकार रचना की प्रमुख प्रवृत्ति या घटना को नाम के माध्यम से इंगित करता है जैसे—"प्रिय प्रवास", "वैदेही वनवास", "मिलन"। कभी रचनाकार रचना के नाम को काफी व्यापक और सांकेतिक अर्थ देना चाहता है और वह अपनी रचना को प्रतीकात्मक नाम देता है जैसे—"महाभारत", "भँवरगीत", "कामायनी",। प्रतीकात्मक नाम अपने अभिधार्थ के अलावा भी ऐसा बहुत कुछ संकेत करता है जिसे रचना प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष ढंग से उद्घाटित करती है।

"कुरुक्षेत्र" नाम पर विचार करने पर हमें इस नाम के कई पक्ष नजर आते हैं। सर्वप्रथम तो यह घटना और स्थान से संबद्ध नाम दिखाई देता है। यह महाभारत का युद्ध स्थल है। भीष्म पितामह कुरुक्षेत्र की रणभूमि में शर-शय्या पर लेटे हैं। युधिष्ठिर यहीं उनसे बात करने जाते हैं। अतः जिस प्रसंग को दिनकर ने लिया है उसकी घटनाओं और कार्यों से इसका सीधा संबंध है। लेकिन "कुरुक्षेत्र" नाम केवल इतने ही अर्थ का द्योतक नहीं है। चूंकि कवि युद्ध की सनातन समस्या से प्रश्नाकुल होकर काव्य सृजन कर रहा है अतः कुरुक्षेत्र यहाँ युद्ध मात्र का प्रतीक है साथ ही युद्ध से जुड़ी समस्त विभीषिकाओं, उसके परिणामों का प्रतीक भी है। इसके अतिरिक्त यह मनुष्य के भीतर विचारों और भावों की टकराहट और संघर्ष का, युधिष्ठिर के मन की प्रश्नाकुलता और द्वंद्व का, युद्ध के पक्ष और विपक्ष में उठने वाले विचारों के संघर्ष का प्रतीक है। इस तरह "कुरुक्षेत्र" नाम "साकेत" या "हल्दीघाटी" की भाँति स्थान विशेष मात्र का सूचक मात्र नहीं है। "कुरुक्षेत्र" का रूढ़ अर्थ और व्यंजित अर्थ दोनों ही यहां निहित हैं। मूलतः यह रचना युद्ध की समस्याओं को लेकर विचारों का कुरुक्षेत्र है। इस दृष्टि से यह नाम काफी सार्थक है।

बोध प्रश्न 1

क) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर सही (✓) या गलत (✗) का निशान लगाकर दीजिए।

i) 'कुरुक्षेत्र' एक परंपरागत प्रबंध काव्य है। ( )

ii) 'कुरुक्षेत्र' में दिनकर ने नवीन प्रकार की प्रबंधात्मकता की सृष्टि की है। ( )

iii) 'कुरुक्षेत्र' को प्रबंध रूप में लिखने की दिनकर ने प्रारंभ से ही योजना बनाई थी। ( )

iv) 'कुरुक्षेत्र' विचार प्रधान प्रबंध है। ( )

v) 'कुरुक्षेत्र' में कथा का निर्वाह विधिवत् किया गया है। ( )

ख) 'कुरुक्षेत्र' का काव्य-रूप क्या है? दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

ग) 'कुरुक्षेत्र' नाम की सार्थकता पर पाँच पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

....

38.3 कुरुक्षेत्र की काव्य भाषा

दिनकर की काव्य भाषा में सृजनात्मकता के कई स्तर और कई रूप एक साथ मिलते हैं। मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी के काव्य से प्रेरणा पाने के कारण दिनकर सीधी स्पष्ट और संप्रेषणीय भाषा का प्रयोग करते हैं। जिसे शुद्ध साहित्यिक भाषा कहा जाता है, जिसमें काव्यात्मकता के लिए शब्द छल अधिक होता है, उस काव्य भाषा को दिनकर कभी स्वीकार नहीं करते। छायावाद की शक्ति से परिचित होते हुए भी दिनकर छायावादी काव्य भाषा के आभिजात्य और उसके तिलस्म को चुनौती के स्तर पर तोड़ते और छोड़ते दिखाई देते हैं। दिनकर की काव्य भाषा का मूल आधार बोलचाल की खड़ी बोली है। किन्तु इस बोलचाल की भाषा को काव्य भाषा बनाते समय दिनकर विचार और बिंब का उस पर ऐसा प्रभाव डालते हैं कि अर्थ धूप की तरह साफ दृष्टिगत होता है।

"कुरुक्षेत्र" की काव्य भाषा की विशेषता यह है कि इस चिंतनात्मक काव्य में अधिकतर सीधी अभिव्यक्ति मिलती है और भाषिक संरचना ऐसी है कि हर शब्द अपने संदर्भ में सघन अर्थ की झनकार छोड़ता है। उर्दू कविता की एक विशेषता भी दिनकर की काव्य भाषा में मौजूद है और वह है जुबान पर चढ़कर बोलने वाली चुस्त-दुरुस्त मुहावरेदानी जैसे—

"पापी कौन मनुज से
उसका न्याय चुराने वाला
या कि न्याय छीनते जन का
शीश उड़ाने वाला"

"राज सुख लहू परे कीच का कमल है"

इसमें अर्थ की लाक्षणिकता पूरे विचार को प्रभावित करती है और चमत्कार से ज्यादा गहरी विचार सघनता का संकेत करती है।

"दिनकर" शब्दों की रगड़ से नए अर्थ संदर्भ रचते हैं और भाषा में विचारों की आग एक निश्चित ताप का अहसास कराती है। दिनकर ऐसा विशिष्ट शब्द विन्यास करते हैं कि काव्य भाषा अपने निर्धारित स्वरूप के भीतर आवेग प्रेरित शक्ति से भर जाती है और उसकी पूरी लय अर्थ-व्यंजना की सामर्थ्य ग्रहण कर लेती है। खड़ी बोली की सहज समृद्धि के लिए दिनकर और उनका काव्य सदैव ही याद किए जाएंगे क्योंकि कुरुक्षेत्र की काव्य भाषा अपनी अर्थ-व्यंजना शक्ति और शब्द भंडार की समृद्धि से विचार को विस्तार की ओर सहयोगी भाव से मोड़ती है। दिनकर की काव्य भाषा दृष्टि व्याकरण के रूढ़ नियमों में न बंधकर विचार के अनुकूल खुलतीं है और कविता की कथन भंगिमा में नए सौंदर्य की सृष्टि करती है, जैसे—

"करते प्रणाम छूते सिर से पवित्र पग
उंगली को धोते हुए लोचनों के नीर से,
हाय पितामह 'महाभारत विफल हुआ'
चीख उठे धर्मराज व्याकुल, अधीर से।"

यहाँ कवि ने चित्र-बहुल, बिंब-बहुल संस्कारी भाषा का प्रयोग किया है। प्रणाम करना, पवित्र पैरों पर सिर रखना जैसे भावों के सांस्कृतिक संवेदन को कवि ने जीवंतता के साथ अर्थ और क्रिया दोनों की गति को रक्षित रखते हुए प्रस्तुत किया है। भाषा में सांस्कृतिक बोध का अर्थ है कवि को काव्य भाषा परंपरा के स्वभाव और स्वरूप की पहचान। कहना न होगा यह पहचान दिनकर को अपने काव्य सृजन के शुरू से ही रही है। इसलिए जब वह किसी भी स्थिति को दिखाते हैं तो ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं कि उनके स्थान पर कोई दूसरा शब्द उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। इन शब्दों का अनुवाद असंभव प्रतीत होता है। शब्द अपने मूल अर्थ में पूरी स्थिति के संदर्भ को संजोए होते हैं जैसे ऊपर "हाय", "विफल", "चीख", "व्याकुल", "अधीर" आदि शब्दों का प्रयोग। द्विवेदी युग में गुप्त जी ने "हाय" जैसे शब्दों का प्रयोग कविता में एक खास ढंग से किया था, उसी ढंग का शब्द प्रयोग दिनकर भी अपनी काव्य भाषा में करते हैं। इसलिए दिनकर की काव्य भाषा खड़ी बोली काव्य परंपरा की जन-जीवन सजीवता का एक हिस्सा है।

कविता की भाषा का प्राण राग अर्थात् लयमान संगीत है। विचारों की भी अपनी एक लय होती है। दिनकर इस लय के लिए शुरू से ही प्रसिद्ध रहे हैं, इसलिए उनकी कविता मंचों, गोष्ठियों और जन जीवन के अन्य समूहगान उत्सवों में लोकप्रियता पाती रही है। एक प्रकार से दिनकर भाषा की अभिव्यंजना शक्ति का विकास और विस्तार करते हैं। प्रगतिवाद ने छायावादी काव्य भाषा के खिलाफ जो झंडा उठाया था उसका एक सार्थक परिणाम दिनकर की कृति कुरुक्षेत्र में दिखाई देता है। विराट और रौद्र रूपों के चित्रण में दिनकर भाषा की चित्रात्मकता और लाक्षणिकता का ध्यान रखते हैं। कवि प्रतिभा के बल पर नवीन शब्दों की गति को प्रश्नों, संकेतों, दहाड़ती इच्छाओं, पश्चाताप की भंगिमाओं आदि से सामने लाता है—

"कौन देखता है शवदाह बंध बांधवों का?
उत्तरा का करुण विलाप सुनता है कौन?"

यह बात इस ढंग से कही गई है कि पूरा कथन जैसे परिवेश में तन जाता है। कथन भंगिमा में दिनकर काफी माहिर कवि हैं। इसलिए वक्रोक्ति और व्यंजना दोनों ही उनकी भाषा में दूर तक अपना प्रभाव छोड़ती हैं। शब्दों को कवि ने जीवन के भीतर से खींचकर ग्रहण किया है इसलिए देश और काल के मध्य इनका आलोक मलिन नहीं पड़ता। जिस समय कुरुक्षेत्र छपा था (1946) उस समय भी इसकी भाषा की ताजगी और जीवंतता को विद्वानों ने सराहा था और इतना समय बीत जाने पर भी इस कृति की भाषा बासी या बुझी हुई दिखाई नहीं देती।

खड़ी बोली जागरण की चेतना थी। द्विवेदी युग जिस जागरण का प्रारम्भ था, छायावादी युग उस जागरण का विकसित चरण। छायावाद में खड़ी बोली सौंदर्य बोध और भाव गौरव से भर गई। प्रगतिवाद ने उसे राज सिंहासन से उतारकर जन सिंहासन की ओर प्रेरित किया। संयोग की बात यह है कि दिनकर, द्विवेदी युग छायावाद और प्रगतिवाद तीनों के समानांतर अपने काव्य सृजन को परिवर्तनकारी शक्तियों से जोड़ते हुए बढ़ाते रहे। भाषा का रीतिवाद (कृत्रिम कलाकारिता) दिनकर को कभी पसंद नहीं रहा। फलतः "कुरुक्षेत्र" जैसी सशक्त रचना में वह उन्मुक्त और कुशल शब्द-शिल्पी के उभरते रूप में उभरते हैं। कठिन से कठिन तत्सम शब्दों का प्रयोग करते हैं। किन्तु शब्द उनके विचारों में इतने रिले-मिले आते हैं कि सहसा उनकी कठिनता का बोध ही नहीं होता। कुरुक्षेत्र के आरंभ की ही एक पंक्ति है—

"जिसका हृदय उतना मलिन जितना कि **शीर्ष वलक्ष है**" इसी प्रकार दूसरे सर्ग में—

"हाथ जोड़े मृत्यु रही खड़ी **शास्ति मान** कर"
"बाणों का शयन बाण का ही **उपधान** पर"
"कृष्ण कहते हैं युद्ध **अनघ** है"
"अंग भर जाते वनानी के **निहत** तरुगुल्म से"

द्वितीय सर्ग में ही "महीरुह" "विमर्श" "प्रभंजन", "निदाघ". "अंतर्व्योम", "संक्रमशील", "शार्दूल", "मृषा", "जल्पना", "सत्व", "विदलित", आदि अनेक शब्द मिलते हैं किन्तु इनका प्रयोग इतनी सहजता और कवि कौशल के साथ किया गया है कि काव्य प्रवाह में न तो अवरोध उत्पन्न करता है न ही अर्थ गति में खटकन। यह तत्सम शब्दावली बोलचाल की लय और सहजता, तद्भव और देशज शब्दों के सहज प्रवाह की बनावट का अभिन्न अंग बन गयी है। एक प्रकार से 'कुरुक्षेत्र' की काव्य भाषा की चेतना में आगामी विकास के चिह्न दृष्टिगत होते हैं। नयी कविता ने बोलचाल की भाषा के खुलेपन को दोहराया है उसके बीज मानो दिनकर के "कुरुक्षेत्र" राश्मिरथी जैसे काव्यों में मिलने लगते हैं।

दिनकर ने उपलब्ध शब्दों का नव-संयोजन किया। तत्सम शब्दों को नूतन भावों से आलोकित किया और संयोजन इस नवीन भंगिमा के साथ किया कि उनमें अद्भुत अर्थ-व्यंजना आ गई। स्वर-संधि के आधार पर वह मुक्त छंद में भाषा को युद्ध के सघन वातावरण तथा क्रिया-व्यापारों से जोड़कर प्रस्तुत करने लगे। खड़ी बोली गद्य विकास भी दिनकर की काव्यभाषा में सीधी अनुगूँज छोड़ता है क्योंकि गद्य जीवन संग्राम की भाषा है। भीष्म पितामह की भाषा में प्रायः काव्यात्मकता कम गद्यात्मकता अधिक है। जैसे—

"कायरों सी बातकर मझको जला मत. आज तक

है रहा आदर्श मेरा वीरता बलिदान ही जाति
मंदिर में जला कर शूरता की आरती
जा रहा हूँ विश्व से चढ़ युद्ध के ही यान पर।"

दरअसल 'कुरुक्षेत्र' के सृजन तक हिन्दी का गद्य इतना प्रौढ़ और विकसित हो चुका था कि वह पद्य में भी विचार केंद्रित होकर अपने ही स्वाभाव से बात कहने को विवश था। परिणाम यह हुआ कि कुरुक्षेत्र की काव्य भाषा में गद्य की वैचारिकता ने प्रवेश किया है। यह चिंतन-मनन और विचारों के संग्राम की भाषा है।

दिनकर की पदावली में शक्ति संपन्न शैली का संचार है जिसका अनुभव 'कुरुक्षेत्र' को पढ़ने, काव्य वाचन करने या उसकी पदावली को बोलने मात्र से होता है। अभिव्यंजना में इस प्रकार की अकड़ और गरिमा का सामंजस्य है कि ओजस्विता अपने पूरे आलोक के साथ विद्यमान रहती है। लोक जीवन की भाषा की दिनकर उपेक्षा नहीं करते। यही कारण है कि चित्रात्मकता, नाद-सौंदर्य और कभी-कभी शब्द-वक्रता की नूतन सृष्टि सहज रूप से ही हो जाती है। माखनलाल चतुर्वेदी की काव्य भाषा का यह गुण दिनकर को लोक चिताअं से जोड़ता है। 'कुरुक्षेत्र' की भाषा में दिनकर जिस ढंग से सोचते रहे हैं उसकी धमक इस भाषा का आंतरिक अन्विति पर दिखाई देती है। विचारों में देश और काल के उफनते-उबलते संदर्भ गुँथे हैं।

इस काव्य भाषा की ध्वनि में अर्थ वक्रोक्ति का प्रयोग बहुतायत से हुआ है। इसीलिए दिनकर लय एवं गति को काव्यानुभूति में सश्लिष्ट करके सामने लाते हैं। लाकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग भी इस भाषा की अर्थ व्यंजना का विस्तार करता है–

"बचो युधिष्ठिर इस नागिन का **विष से भरा दशन** है"

"बुझा बद्धि का दीप वीर वर
आँख मूँद चलते हैं"

"**आग हथेली पर सुलगाकर**
सिर का हविशा चढ़ना"

दिनकर अंतर्मुखी प्रवृत्ति के कवि नहीं हैं इसलिए उनकी काव्य भाषा में कथन का सीधापन है और शब्द संयोजन का इस ढंग का है कि जन साधारण में वह अपने अर्थ का संप्रेषण कर सके। अभिधा शब्द शक्ति पर दिनकर को सीधा विश्वास है। लक्षणा-व्यंजना का प्रयोग कभी-कभार ही वह करते हैं। जहाँ कहीं लक्षणा का प्रयोग हुआ है वहीं काव्य में विदग्धता-समृद्धि, सजीवता तथा मूर्तिमत्ता का संचार होता है। जैसे–

"आनन सरल वचन मधुमय है
तन पर शुभ्र वसन हैं
बचो युधिष्ठिर इस नागिन का
विष से भरा दशन है।"

यहाँ संपूर्ण लक्षणा विरोधाभास से प्रस्तुत की गई है।

दिनकर की काव्य भाषा अभिधा पर आश्रित प्रत्यक्ष भाव और विचार की अभिव्यंजना की भाषा है। हर विचार को दिनकर ने चित्र या बिंब से प्रस्तुत किया है क्योंकि दिनकर अमूर्तता अस्पष्टता और दुरूहता को अपनी काव्य भाषा में फटकने तक नहीं देते।

लय और छंद के लिए व्याकरण और वर्तनी की छूट भी लेते हैं। जैसे–

"और जब तू ने उलझकर व्यक्ति के संदर्भ में
क्लीब-सा देखा किया लज्जा हरण

"ले न सकता जो **वैरियों से प्रतीकार**"

"किस प्रकार फैले **पृथिवी पर**
करुणा, प्रेम, अहिंसा"

"**निर्वोषा**, कुल-वधु एकवस्त्रा
को खींच महल से"

"बात पूछने को विवेक से
जभी वीरता नहीं जाती"

लेकिन यह छूट कविता के संपूर्ण प्रभाव में सकारात्मक भूमिका अदा करती है। यह भाषा की त्रुटि न हो कर उसकी सर्जनात्मक प्रयोग है।

बोध प्रश्न 2

क) "दिनकर" की काव्यभाषा निम्नलिखित में से किन कवियों से प्रेरणा पाती है? सही (✓)/गलत (X) का निशान लगाकर उत्तर दीजिए:

i) मैथिलीशरण गुप्त

ii) सुमित्रानन्दन पंत

iii) रामनरेश त्रिपाठी

iv) माखनलाल चतुर्वेदी

v) अज्ञेय

vi) जयशंकर प्रसाद

ख) हाँ या नहीं में लिखकर उत्तर दीजिए–

दिनकर की काव्य भाषा में

i) बोलचाल की भाषा की सहजता और खुलापन है।

ii) उर्दू की सी मुहावरेदानी है।

iii) छायावादी कवियों जैसा भाषा-आभिजात्य है।

vi) बिंब-बहुलता और चित्रात्मकता है।

v) कृत्रिम कलाकारी है।

vi) तत्सम शब्दों का खूब प्रयोग है।

vii) तद्भव और देशज शब्दावली का सहज सौंदर्य है।

viii) अस्पष्टता और दुरूहता है।

ग) "कुरुक्षेत्र" की काव्य भाषा में मुहावरों के प्रयोग के दो उदाहरण दीजिए–

....

....

....

....

....

घ) "कुरुक्षेत्र" में तत्सम शब्दों के दो उदाहरण काव्य पंक्तियाँ उद्धृत करके दीजिए–

....

....

....

....

....

....

ङ) रिक्त स्थानों की पूर्ति कोष्ठक में दिए गए शब्दों में सही शब्द चुनकर कीजिए–

i) दिनकर की काव्य भाषा प्रमुखतया.......... प्रधान है। (अभिधा/लक्षणा/व्यंजना)

ii) लय की सृष्टि के लिए दिनकर वर्तनी की..........लेते हैं। (छूट नहीं लेते/लेते हैं)

iii) "कुरुक्षेत्र" की भाषा में.............है। (ओजस्विता/स्वप्निलता)

38.4 बिंब और प्रतीक

बिंब और प्रतीक दिनकर के काव्य में विचार को मूर्त रूप में प्रस्तुत करने के लिए आए हैं। प्रतीक का काम भाषा में भाव गोपन से ज्यादा भाव प्रकाशन का होता है। कथन और संकेत के द्वारा उसका महत्व बढ़ गया है। कथ्य को दिनकर के प्रतीकों ने अनुभूतिधर्मी बना कर प्रस्तुत किया है। यह भी कहा जा सकता है कि प्रतीकं दिनकर की काव्य भाषा में अभिव्यंजना की एक पद्धति है। गहन लाक्षणिक शक्ति के कारण इन प्रतीकों की अर्थशक्ति अत्यंत विस्तृत एवं व्यापक है। पहले तो "कुरुक्षेत्र" नाम ही व्यापक प्रतीक है जिसमें "कुरुक्षेत्र" का रूढ़ अर्थ और कुरुक्षेत्र का लक्षण-व्यंजना पर आधारित अर्थ अथवा व्यंग्य अर्थ अपनी केंद्रीय चेतना के साथ निहित है। हम अपने भीतर और बाहर लगातार विचारों का कुरुक्षेत्र देखते महसूस करते रहते हैं। रूपक की भाषा में कहें तो भीष्म और युधिष्ठिर हमारे मन के ही दो पक्ष हैं। कोई भी रूपक कथन इसी अर्थ में प्रतीक कथा होती है कि वह सांकेतिक अर्थ की चित्रात्मक पद्धति को अपनाती है। किन्तु प्रतीक भाव चित्र और बिंब दोनों से भिन्न होते हैं। मानचित्र की भाँति प्रतीक आकृति के साम्य पर आधारित न हो कर प्रभाव के साम्य पर आधारित होता है। बिंब स्पष्ट और इंद्रिय ग्राह्य होता है किन्तु प्रतीक अगोचर अमूर्त सत्य की सांकेतिक लाक्षणिक व्यंजना करने के कारण प्रायः इंद्रिय ग्राह्य नहीं होते। इसी कारण बिंब की अपेक्षा प्रतीक में व्यंजना का आधार अधिक गहरा होता है। निरंतर प्रयोग की आवृत्ति से बिंब जब सूक्ष्म भाव संवेदन की शक्ति अर्जित कर लेता है तब वह प्रतीक बन जाता है। आरंभ में भीष्म शक्ति संकल्प और प्रतिज्ञा के बिंब रूप में उभरे होंगे किन्तु धीरे-धीरे भाव-संवेदन की शक्ति, ने उन्हें एक ऐसे प्रतीक का रूप दे दिया जो शक्ति, त्याग, तप, संकल्प आदि कई अर्थों की व्यंजना करने लगा। ऐसे ही महाभारत के धर्मराज और दिनकर के धर्मराज अपने प्रतीकत्व में एक होते हुए भी भिन्न हैं। धर्मराज अनुचित-अनैतिक कार्यों के प्रति विचारशील होकर अनेक कोणों से सोचने को विवश हैं। ऐसे लोग बहुत कम होते हैं जो युद्ध से ऊपर उठ कर सोचने-समझने की स्थिति में रहते हैं। प्रायः व्यक्ति अपने स्वार्थ में गर्क रहता है। महाभारत कथा ने अनेक प्रतीकांश संकेतों से आए हैं—द्रौपदी, भीम आदि।

एक प्रकार से दिनकर की काव्य भाषा में ही पूरी स्थिति को प्रतीक में ढाल देने की कला निहित है। कहीं सृजन के प्रतीक हैं तो कहीं ध्वंस के प्रतीक। काम श्रृंगार के प्रतीकों का दिनकर संकेत मात्र करते हैं जैसे—

"प्रगटी होती मधुर प्रेम की
　　　मुझ पर कहीं अमरता
स्यात् देश को कुरुक्षेत्र का
　　　दिन न देखना पड़ता।"

मधुर प्रेम की अमरता में स्थूलता के स्थान पर लक्षणामूलक प्रतीकात्मकता का व्यवहार हुआ है। यदि इस प्रतीक का विश्लेषण किया जाए तो यह पूरी स्थिति के भीतरी अंतर्दर्शन को खोलता है। दिनकर ने छायावादी कवियों की भाँति सादृश्य वाले प्रतीकों का प्रयोग कम किया है। उन प्रतीकों को चुना है जो वेदना, करुणा या प्रकृतिजन्य परिवेश को सामने लाते हैं। कभी-कभार अवचेतन मन के भावों और विचारों की साँकल भी कुरुक्षेत्र में खटकती है जैसे—

"वीरगति पाकर सुयोधन चला गया है
　　　छोड़ मेरे सामने अशेष ध्वंस का प्रसार
छोड़ मेरे हाथ में शरीर निज प्राणहीन
　　　व्योम में बजाता जय दुंदुभि सा बारबार"

कितने ही उदाहरण लिए जाएँ, हम पाएंगे कि "कुरुक्षेत्र" के अधिकांश कथन प्रतीकों में लिपटे हैं जैसे—

'श्रृंग चढ़ जीवन के आर पार देखना', 'श्वेत शिरोरुह से प्रसन्न विभा का फैलना', 'ध्वंस

अवशेष पर सिर धुनना', 'भस्म राशि में सुख-खोजना', 'लपटों से मुकुट के पट बुनना', 'नियति के व्यंग्य भरे अर्थ गुनना' आदि कृति की स्थितिगत तार्किकता में ठीक से पिरोये गए प्रतीक हैं।

"कुरुक्षेत्र" में प्रतीकों के कई रूप हैं। यहाँ नाम प्रतीक हैं, कार्य प्रतीक हैं साथ ही परंपरागत प्रतीकों का भी प्रयोग है। जलद, पारावार, तूफान, तिमिर, प्रलय आदि वे आदिम प्रतीक हैं जिन्हें भाषा लगातार ढोती चली आ रही है। विशेष बात यही है कि दिनकर बिंबमूलक प्रतीकों की ओर झुकाव रखते हैं। वे ऐसे प्रतीकों को नहीं गढ़ते जो अमूर्त और धूमिल हों। यह सच है कि प्रलय, अंधकार, कंदरा, शिखा, अभिमान, अभिशाप और युद्ध के तमाम आवेग भय प्रतीक दिनकर को पसंद हैं। परंपरागत प्रतीकों में भी वह अपना नया अभिप्रेत अर्थ भर सकते हैं। यह उनकी अद्भुत कवि शक्ति का प्रमाण है। कुरुक्षेत्र में ध्वंसमूलक विराट प्रतीकों का कुशल संयोजन दिनकर ने किया है। द्वितीय सर्ग के तूफान के रूपक में ऐसे बहुत से प्रतीक एक साथ आ गए हैं जो स्थिति की भीषणता उद्वेलन और आलोड़न को स्पष्ट करते हैं। यहाँ बिंबमूलक प्रतीक का उदाहरण है—

"औ' युधिष्ठिर से कहा, तूफान देखा है कभी?
किस तरह आता प्रलय का नाद वह करता हुआ?"

इस प्रकार के बिंबमूलक प्रतीकों की योजना दिनकर की काव्यकला का वैशिष्ट्य है। चित्रात्मक, मूर्त और मानस प्रत्यक्ष यह प्रतीक कला रहस्यवादी आवरण से एकदम मुक्त है। कुरुक्षेत्र के व्यंजनाधर्मी प्रतीक इसीलिए सूक्ष्म वैचारिक प्रतीक भी बने हैं कि वे विभिन्न मनोवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

दिनकर की कला चित्रभाषा के कारण समृद्ध भी है और समर्थ भी। उनकी अभिव्यंजना का अत्यंत महत्वपूर्ण उपकरण है शब्दचित्र। शब्द चित्रों की यह चित्रमयता ही बिंब विधान का एक अंतरंग एवं मूल तत्व है। यहाँ शब्द-चित्र (Image) भाव का पर्याय है जिसका मूल अर्थ है भाव या विचार को चित्रबद्ध करना, प्रतिबिंबित करना या मूर्त रूप प्रदान करना या प्रत्यक्ष रूप से उभारना। मनोवैज्ञानिक अर्थ में बिंब इंद्रिय बोध से संबंधित है क्योंकि बिंब-सृजन की प्रक्रिया में स्मृति और कल्पना के अनिवार्य संयोग की अपेक्षा रहती है। स्मृति का संबंध अंततः कल्पना से है। फलतः काव्यगत बिंब मूलतः कल्पना की सृष्टि है। कहा जा सकता है कि कल्पना ही मानस में बिंब को रूपायत करने वाली शक्ति है। एक मत यह भी है कि संपूर्ण कलाकृति कलाकार के मानस में अंकित एक संपूर्ण बिंब है। इस अर्थ में 'कुरुक्षेत्र' नामक कृति का बिंब युद्ध की चिरंतन समस्या से जूझते और युद्ध के अनेक पक्षों पर विचार करते हुए चिंतनशील मनुष्य का बिंब है, जिसकी अर्थ-व्यंजना की परिधि अत्यंत व्यापक है।

दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' में ऐसे परंपरागत और नवीन बिंबों की सृष्टि की है जिन्हें हमारी इंद्रियाँ सीधे ग्रहण करती हैं। प्रायः दिनकर जटिल बिंबों के स्थान पर सरल और तात्कालिक बिंबों की सृष्टि करते हैं। किन्तु इस इंद्रियानुभव में ऐतिहासिक अर्थ नष्ट नहीं होता। जैसे—"व्रतमुक्त केशी द्रौपदी" का बिंब या उसको "जाग्रत शिखर प्रतिशोध की" कहना आदि।

कथनों और संकेतों से दिनकर ऐसे बिंबों की सृष्टि करते हैं जो अपनी विराटता द्वारा काफी आतंकित करते हैं जैसे—

"सटता कहीं भी एक तृण जो शरीर से तो
उठता कराल हो फणीश फुफकार है
सुनता गजेन्द्र की चिंघार जो वनों में कहीं
भरता गुहा में ही मृगेन्द्र हुंकार है
शूल चमकते हैं, छूते आग हैं जलाती भू को
लीलने को देखो गर्जमान पारावार है"

फणीश का फुफकारना, गजेन्द्र का चिंघारना, मृगेन्द्र का हुंकार भरना, धरती को निगलने के लिए समुद्र का गरजना आदि विराट बिंब एक साथ आए हैं। इस तरह के बिंब दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' में बहुतायत से सृजित किए हैं जो पूरी की पूरी स्थिति को ही बिंब में बदल देते हैं जैसे—

"फूँक से जलाएगा अवश्य जगती को व्याल
कोई क्यों खरोंच मार उसको जगाता है
विद्युत खगोल से अवश्य ही गिरेगी कोई
दीप्त अभिमान को क्यों ठोकर लगाता है

दिनकर के काव्य में वैचारिक संवेदनशीलता बहुधा बिंब का पर्यायवाची बन गई है। उनके बिंब-विधान का अर्थ ऐंद्रियानुभवों की प्रमाणिकता का संकेत है। इस बिंब-विधान का प्रत्यक्ष संबंध चाक्षुष बिंब, श्रवण बिंब, स्पर्श, घ्राण और रस के बिंबों से है। असल में दिनकर की कविता में विचारों का ताप इतना ज्यादा है, गति इतनी तीव्र है कि बिना बिंब के उनका काम ही नहीं चलता। किन्तु ये बिंब कोरे वाग्विलास नहीं हैं, अपितु इनकी अनिवार्यता संवेदन को मूर्त करने के लिए हर जगह पर है। इन बिंबों में विविधता है और अर्थ प्रक्रिया को जीवंत करने की शक्ति है। दिनकर में वर्ण्य विषय के बिंब प्रस्तुत करने की क्षमता काफी विकसित है। छायावाद में ऐसी ही क्षमता निराला और पंत दोनों में दिखाई देती है।

दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' में अनुभवमूलक बिंबों का इतना सार्थक प्रयोग किया है कि इस काव्य की संपूर्ण अभिव्यंजना को बिंबमूलक कहना अनुचित न होगा। इस विशिष्टता के कारण इस काव्य की अभिव्यंजना में जहाँ एक ओर विचार शक्ति की मूर्तता और जीवतता के गुणों की अभिवृद्धि हुई है वहाँ दूसरी ओर इस प्रवृत्ति ने भाव की संप्रेषणीयता में प्रभावी भूमिका अदा की है। दिनकर के बिंब पाठक के मानस प्रतिपाद्य प्रभाव की समग्र प्रतिछवि को अंकित करते हैं। उनके बिंब विधान की सफलता का रहस्य जटिल और खंडित बिंब रचना में न होकर सहज संवेदनात्मक और कभी-कभी मिथिकल बिंबों के प्रयोग में निहित है। उनका अभिव्यंजना शिल्प मूलतः बिंबाश्रित है। प्रतीक उपकरण के रूप में आए हैं किन्तु वे स्वतंत्र रूप से काव्य के शिल्प की श्रीवृद्धि नहीं कर पाते। "कुरुक्षेत्र" को ठीक से देखने-समझने पर पता चलता है कि प्रतीक बिंब विधान के अंग रूप में ही आए हैं, इसलिए "कुरुक्षेत्र" की काव्यकला में बिंब योजना का विशेष महत्व है।

38.5 अप्रस्तुत योजना

काव्यगत अलंकारों के संदर्भ में प्रयुक्त "अप्रस्तुत" शब्द का एक पुराना और शास्त्रीय अर्थ है। सामान्यतः अप्रस्तुत शब्द उपमान का एक पर्याय है और उपमा अलंकार के चार अंगों में से एक अंग है। आचार्य शुक्ल ने अप्रस्तुत शब्द को उपमान के ही स्थानापन्न के रूप में प्रयुक्त किया है। अप्रस्तुत या उपमान का प्रयोग काव्य की अलंकरण सामग्री के अर्थ में होता है। अप्रस्तुत में वह सारी सामग्री समाहित हो जाती है जो कविता का अलंकरण करती है चाहे वह कथ्य हो, विशेषण हो, क्रिया हो, मुहावरा हो, बिंब हो, प्रतीक हो या कथन का कोई नूतन ढंग। कुछ भी हो सब उसमें समाविष्ट हो जाते हैं। इस दृष्टि से हम कुरुक्षेत्र के अप्रस्तुत विधान पर निगाह डालते हैं तो निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं–

- "कुरुक्षेत्र" में अप्रस्तुत विधान की योजना कृत्रिम चमत्कार के रूप में नहीं की गई है। दिनकर ने अप्रस्तुत विधान का प्रयोग अभिव्यंजना की अर्थ संप्रेषण शक्ति के विकास के लिये किया है।
- इस अप्रस्तुत विधान ने कुरुक्षेत्र की युद्ध समस्या को प्रस्तुत करने का नया मार्ग प्रस्तुत किया है। वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा जैसे शब्द और अर्थ पर आधारित अलंकारों से दिनकर अपने कथन की प्रभावशक्ति को बढ़ाते हैं।
- इस अप्रस्तुत योजना का एक कार्य यह भी है कि यह वचन भंगिमाओं की संभावनाओं के अनेक कोणों से उजागर करती है।
- यह अप्रस्तुत योजना प्रतिपाद्य के विचार संदर्भ को साकार करने के लिए अभिव्यंजना में एक ऐसा सौंदर्य पैदा करती है कि जिससे कृति का पूरा रूप विधान आलोकित हो उठता है।

अप्रस्तुत योजना का प्रमुख आधार प्रभाव साम्य है। यद्यपि साम्य के तीन रूप मिलते हैं–रूप-साम्य, गुण-साम्य, प्रभाव-साम्य। इन तीनों की सूक्ष्म छायाओं के अंतर्गत सभी

प्रकार के अलंकार आ जाते हैं। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, संदेह, स्मरण तथा मानवीकरण अलंकार आदि सभी रूप-गुण प्रभाव आदि के अंतर्गत समाहित मिलते हैं। दिनकर ने भाव या विचार को बिंब रूप में प्रस्तुत करने के लिए सादृश्यमूलक अलंकारों की शक्ति का भरपूर प्रयोग किया है। उपमानों के प्रयोग में दिनकर सावधान और समर्थ रचनाकार हैं। भीष्म पितामह का चित्र प्रस्तुत करते हुए वह कहते हैं—

"शरों की नोक पर लेटे हुए गजराज जैसे
थके टूटे गरुण से स्रस्त पन्नगराज जैसे"

वाणों की शैय्या पर लेटे पराक्रमी भीष्म पितामह की गजराज से तुलना का औचित्य तो है ही, साथ ही ऐसा बिंब बना है जो भीष्म के प्रताप को कल्पना में स्पष्ट करता है। यहीं पर गरुण भीष्म पितामह की संपूर्ण स्थिति को एक झटके से उजागर कर देता है। ऐसे ही "स्रस्त पन्नगराज" नाग वासुकि का फुफकार छोड़ता हुआ चित्र है। इस प्रकार कवि ने भीष्म को ऐरावत, गरुण और वासुकि के एक शक्ति क्रम से प्रस्तुत किया है। विशेष बात यह है कि स्थिति को स्पष्ट करने के लिए नवीन उपमान योजना का प्रयोग करते हैं जैसे—

"ईश जाने देश का लज्जा विषय
तत्व है कोई कि केवल आवरण
उस **हलाहल सी कुटिल** द्रोहाग्नि का
जो कि जलती आ रही चिरकाल से"

हलाहल सी कुटिलता के भाव को अमूर्तता में ले जाकर कवि ने अनुभव के आधार पर मूर्त किया है। इसी तरह दिनकर की उत्प्रेक्षाएँ काफी प्रभावी भूमिका को अदा करती हुई कविता के पूरे अर्थ प्रकाश को बढ़ा देती हैं जैसे—

"उस सत्य के आघात मे
हैं झनझना उठती शिखाएँ प्राण की असहाय सी
सहसा विपंची पर लगे कोई अपरिचित हाथ ज्यों
वह तिलमिला उठता मगर
है जानता इस चोट का उत्तर न उसके पास है।

प्राण की असहाय सी शिराओं का सहसा झनझनाना कवि को ऐसा प्रतीत होता है मानो किसी अपरिचित हाथ ने वीणा के तारों को झंकृत कर दिया। यह संपूर्ण स्थिति का गतिमय और प्रभाव-साम्य से भरा चित्र है। दिनकर को उत्प्रेक्षा अलंकार से एक विशेष किस्म का अनुराग है। 'कुरुक्षेत्र' में अनेक ऐसे उदाहरण हैं जो सिद्ध करते हैं कि अक्सर अपनी बात कहने के लिये उन्हें उत्प्रेक्षा का सहारा लेना पड़ता है। कई बार उत्प्रेक्षा दिखाई देती है, कई बार लुप्त होती है। मूल भाव की सघन स्थिति को प्रस्तुत करने वाली उत्प्रेक्षा है—

"और तब चुप हो रहे कौंतेय
संयमित करके किसी विध शोक दुष्परिमेय
उस जलद-सा एक पारावार
हो भरा जिसमें लबालब किन्तु हो लाचार
बरस तो सकता नहीं रहता मगर बेचैन"

विवशता का पूरा चित्रण कवि ने उस जलद सा या पारावार सा जो भरा हो लेकिन छलक न सकता हो (उसकी बेचैनी मानो उसे भीतर ही भीतर मथती हो) किया है। यह एक ऐसा गुण और क्रिया का बिंब है जो पूरे प्रभाव से हमारी चेतना को पकड़ता है।

विचार के विस्तार में दिनकर स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति अलंकारों से स्थिति को स्पष्ट करते हैं जैसे अनुभावों से यह बात कहना—

"रुग्ण होना चाहता कोई नहीं
रोग लेकिन आ गया जब पास हो
तिक्त औषिध के सिवा उपचार क्या?
शमित होगा वह नहीं मिष्टान्न से।"

इन पंक्तियों में स्वाभोक्ति अलंकार है क्योंकि इनमें स्थिति का प्रकृत वर्णन किया गया है।

किन्तु दिनकर वक्रोक्ति से बात कहने में चूकते नहीं हैं जैसे—

> "तप का परंतु वश चलता नहीं सदैव
> पतित समूह की कुवृत्तियों के सामने

यहाँ कवि ने तप पर या तपवादी विचारधारा पर सीधा व्यंग्य किया है। दिनकर लक्षणा से मानवीकरण अलंकार के भी मोहक संकेत जगाते हैं जैसे—

> "पाशविकता खड्ग जब लेती उठा
> आत्मबल का एक वश चलता नहीं"

पाशविकता का खड्ग उठाना मानवीय क्रियाओं का लक्षणा पर आधारित चित्र है। लेकिन यह चित्र विचार की पूरी गहराई के स्पर्श के साथ अनुभव और दृश्य बिंब में बदल देता है।

इस प्रकार दिनकर के कुरुक्षेत्र में अर्थालंकारों का प्राधान्य है। उत्प्रेक्षा, रूपक, मानवीकरण, अतिशयोक्ति, उल्लेख, अलंकार जगह-जगह भाव को स्पष्ट करने के लिए आए हैं। किन्तु प्रमुख बात यह है कि दिनकर अलंकारवादी चमत्कारवादी कवि नहीं हैं। मूल बात यह है कि उनके काव्य में प्रयुक्त अलंकार भावों की सजावट के लिए न होकर भावों की अभिव्यक्ति के विशेष साधन हैं। वे भाव के उत्कर्ष में विशेष भूमिका अदा करते हैं और दिनकर के विचारों को नवीन उपमानों से प्रस्तुत करने में सहायक हुए हैं। अनल में तपाए हुए कंचन के समान विचार की स्थिति को दिनकर उपमेय और उपमान से बराबर स्पष्ट करते चलते हैं और इस कर्म में उन्हें भलीभाँति सफलता मिली है।

38.6 छंद और लय

हिन्दी के आधुनिक काव्य में दिनकर अपनी कविता के लहजे (Tone) के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। उनके लहजे का न तो कोई अनुकरण कर सकता है और न ही उसे भुलाया जा सकता है। दिनकर का पूरा काव्य स्वभाव इस काव्य लहजे में निहित है और यह लहजा एक विशेष प्रकार की लय पर आधारित होकर भाव व्यापार को सक्रिय करता है। यह कहना गलत न होगा कि दिनकर के काव्य व्यापार की प्रमुख शक्ति काव्य लहजे पर आधारित लय है क्योंकि इस लय में बलाघात, स्वराघात, कालागति और याति-गति आदि भाव के उतार-चढ़ाव की सभी शक्तियाँ विद्यमान रहती हैं। दिनकर ने लय को गति प्रवाह एवं विराम की पारस्परिक स्थितियों के क्रमिक संघात से उत्पन्न किया है। इसलिए इस लय में एक नैसर्गिक शक्ति है जो हमारी संवेदना को भावानुकूल उद्दीप्त-प्रदीप्त करती रहती है।

दिनकर ने छंदशास्त्र के रूढ़ बंधनों को अस्वीकार करते हुए भी छंद की अंतरंग शक्ति को सम्मान दिया है। 'कुरुक्षेत्र' की काव्यात्मकता का लय-छंद से घनिष्ठ संबंध है। इसका कारण है कि दिनकर का कवि स्वभाव ही छंद में लयमान हुआ है। अपने विचारों की झंकारों को उन्होंने शब्दों के छंदबद्ध अनुशासन में सँजोया है। छंद और लय विधान के भाव और विचार की शक्ति को ताजगी और जीवंतता प्रदान की है।

ध्यान रखने की विशेष बात यह है कि कुरुक्षेत्र में दिनकर ने अधिकतर मात्रिक छंदों का प्रयोग किया है। काव्यात्मक अनुभूति की तीव्रता के लिए प्रायः मात्रिक छंद अपनी प्रकृति से ही अनुकूल होते हैं। शायद इस बात का अहसास दिनकर को है और वह मात्रिक छंदों का प्रयोग विशिष्ट गति और भाव ऊष्मा की शक्ति के साथ करते हैं। मध्यकालीन कविता के सर्वाधिक प्रिय छंद रहे हैं—कवित्त और सवैया। कवित्त तो एक प्रकार से हमारा जातीय छंद ही है। दिनकर ने सवैया छंदों के संगीतात्मक प्रवाहपरक ठाठ को पूरी तरह अपनाया है। 'कुरुक्षेत्र' में सुंदरी सवैया का एक उदाहरण लीजिए जिसमें आठ सगण होते हैं और अंत में गुरु होता है—

> "जब फूट पड़ी रण में यह आग तो कौन सा पाप नहीं किया तू ने?
> गुरु के वध के हित झूठ कहा सिर काट समाधि में ही लिया तू ने
> छल से कुरुराज की जाँघ को तोड़ नया रणधर्म चला दिया तू ने
> अरे पापी ममर्षु मनुष्य के वक्ष को चीर सहास लहू पिया तू ने।

इस प्रकार के छंद दिनकर की सहजता से ही सिद्ध हैं। "कुंदलता" नामक छंद का उदाहरण देखिए जिसमें आठ सगण हैं और अंत में दो लघु हों–

"कुछ के अपमान के साथ पितामह
विश्व विनाशक युद्ध को तोलिये
इनमें से विघातक पातक कौन
बड़ा है? रहस्य विचार के खोलिए,
मुझ दीन विपन्न को देख दयाद्र हो
देव नहीं निज सत्य से डोलिए
नर नाश का दायी था कौन? सुयोधन
या कि युधिष्ठिर का दल बोलिए।"

दिनकर ने "चक्रवाल" की भूमिका में लिखा है–"कविता लिखने वालों को पिंगल अवश्य पढ़ लेना चाहिए और तदनुसार पिंगल पर मैंने कुछ श्रम भी किया है।" (भूमिका पृ. 28) इस कथन से जाहिर है कि कविता, छंद और छंदशास्त्र (पिंगलशास्त्र) के संबंध पर गंभीरता से श्रम किया है और पाया है कि छंदकविता के कान होते हैं। इसका प्रमाण यह है कि मात्रिक छंदों में दिनकर सार नामक छंद को अधिक चुनते हैं। प्रसाद ने इस छंद को "कामायनी" में अभिरुचि से अपनाया था। दिनकर इसको "कुरुक्षेत्र' तृतीय, चतुर्थ और सप्तम आदि लंबे सर्गों में मनोयोग पूर्वक प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिए तीसरे सर्ग की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए–

सच है सत्ता सिमट-सिमट
जिनके हाथों में आई
शांतिभक्त वे साधु पुरुष
क्यों चाहें कभी लड़ाई?
हिला डुलो मत हृदय रक्त
अपना मुझको पीने दो
अचल रहे साम्राज्य शांति का
जियो और जीने दो।

"सार" छंद में 28 मात्राएँ होती हैं। सोलह बारह पर यति रहती है और अंत में दो गुरु होते हैं। दो गुरु होने का नियम सर्वत्र पालन नहीं किया जाता। किन्तु यदि दो गुरु हों तो संगीतात्मक नाद की मधुरता बढ़ जाती है।

दिनकर का सबसे प्रिय छंद है–"रूपमाला"। इस छंद का प्रयोग दिनकर मुक्त छंद की तरह करते हैं। इस ढंग से इसे लाते हैं कि मुक्त छंद और रूपमाला का अंतर प्रायः खो जाता है। इसका उदाहरण है–

यह मनुज जो ज्ञान का आगार
यह मनुज सृष्टि का श्रृंगार
नाम सुन भूला नहीं सोचो विचारो कृत्य
यह मनुज श्रृंगार सेवी वासना का भृत्य

रूपमाला छंद में 14–10 पर यति के साथ 24 मात्राएँ होती हैं और अंत में क्रमशः एक गुरु और एक लघु होता है।

दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' में छंदों की विविधता रखी है और इस छंद विविधता के मूल में भाव-विविधता ही दृष्टिगत होती है। "पीयूषवर्षा" छंद भी दिनकर ने अपनाया है। इसमें दस या नौ पर यति होती है और अंत में लघु गुरु होते हैं। जैसे–

है बहुत देखा सुना मैंने मगर,
भेद खुल पाया न धर्माधर्म का
आज तक मुझ पर कि रेखा खींचकर
बाँट दूँ मैं पुण्य को या पाप को।

22 मात्राओं वाले राधिका छंद का उदाहरण–

शरदे! विकल संक्रांति काल का नर मैं
कलिकाल भाल पर चढ़ा हुआ द्वापर मैं
संतप्त विश्व के लिए खोजता छाया
आशा में था इतिहास लोक तक आया"

'कुरुक्षेत्र' में दोहा और सरसी छंद तक का प्रयोग हुआ है। दोहे का एक उदाहरण है–

"अंत नहीं कर पंथ का कुरुक्षेत्र की धूल
आँसू बरसे तो यहीं खिलें शांति फूल"

कवि ने चतुर्थ सर्ग में आल्हा छंद या वीर छंद का भी प्रयोग किया है। इस छंद में क्रमशः 16-15 पर यति होती है–

ब्रह्मचर्यक व्रती धर्म के
महास्तंभ बल के आगार
परम विरागी पुरुष जिन्हें
पाकर भी पा न सका संसार

दिनकर प्राचीन छंद कवित्त या घनाक्षरी की शक्ति को खड़ी बोली की कविता में सर्वाधिक पहचानने वाले कवि हैं। यह छंद उनके काव्य गुरु मैथिलीशरण गुप्त में भी बहुतायत से प्रयुक्त हुआ है। घनाक्षरी या कवित्त छंद का मर्मस्पर्शी प्रयोगों से भरा एक उदाहरण देखिए–

"हाय पितामह यह हार किसकी हुई है यह?
ध्वंस अवशेष पर सिर धुनता है कौन?
कौन भस्म राशि में विफल सुख ढूँढ़ता है?
लपटों से मुकुट का पट बुनता है कौन?
और बैठ मानव की रक्त सरिता के तीर
नियति के व्यंग्य भरे अर्थ गुनता है कौन?
कौन देखता है शवदाह बंधु-बांधवों का
उत्तरा का करुण विलाप सुनता है कौन?

मुक्त छंद की लयपरक गति को कुरुक्षेत्र में बहुत सिद्ध हाथों से दिनकर ने प्रस्तुत किया है जैसे–

"हार कर धन-धाम पांडव भिक्षु बन जब चल दिए
पूछ तब कैसा लगा यह कृत्य उस समुदाय को
जो अनघ का था विरोधी पांडवों का मित्र था"

इस मुक्त छंद पर गद्य का दबाब है किन्तु अर्थ की लय दिनकर ने खंडित नहीं होनी दी है। मुक्त छंद का अर्थ छंद रहित होना नहीं है। इसका तो अर्थ ही है छंद बंधनों से मुक्त रहकर लय के अनुसार भाव का उपयोग। दिनकर मुक्त छंद की इस आंतरिक विशेषता से भलीभाँति परिचित रहे हैं। 'कुरुक्षेत्र' में संयोजित छंद योजना के आधार पर यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि इस काव्य की छंद योजना भाव के उत्कर्ष के अनुकूल और अत्यंत वैविध्यपरक है। परंपरागत शास्त्रीय छंदों का दिनकर ने तिरस्कार नहीं किया है बल्कि नए ढंग से प्रयोग किया है। कवित्त और मुक्त छंद दोनों ही इस कृति में एक साथ हैं। ऐसा लगता है दिनकर परंपरा और आधुनिकता दोनों के बीच सामंजस्य स्थापित कर रहे हैं। कुरुक्षेत्र के छंद विधान को लेकर ध्यान रखने की बात यह है कि खड़ी बोली हिन्दी के अनुकूल है मात्रिक छंद और दिनकर इसी छंद में प्रयोग और परंपरा की शक्ति से नूतन छंदों की सृष्टि करते हैं। उनके छंद भावों और विचारों की उत्थानपरक गतियों, मानवीय चित्तवृत्तियों, मनोभूमिकाओं के अनुकूल आचरण करते हैं। यह पूरा छंद विधान लय और ध्वनि पर केन्द्रित है। इस प्रकार दिनकर का छंद और लय विधान अभिव्यंजना शिल्प के सौंदर्य को निखारता हुआ दृष्टिगत होता है।

बोध प्रश्न 3

लगभग पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

क) "दिनकर" के बिंब विधान की विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

....

....

ख) निम्नलिखित पंक्तियों में दिनकर ने किस अलंकार का प्रयोग किया है—

"पाशविकता खड्ग जब लेगी उठा
आत्मबल का एक वश चलता नहीं।"

....

....

....

....

....

ग) 'कुरुक्षेत्र' में अधिकतर कैसे छंद प्रयुक्त हुए हैं?

....

....

....

....

....

घ) कुरुक्षेत्र में प्रयुक्त घनाक्षरी छंद का एक उदाहरण दीजिए।

....

....

....

....

....

38.7 सारांश

इस इकाई में आपने कुरुक्षेत्र के अभिव्यंजना शिल्प का अध्ययन किया। अब आप जान गए हैं कि "कुरुक्षेत्र" एक विचार प्रधान प्रबंधात्मक रचना है जिसमें प्रबंध के पुराने शिल्प को तोड़कर विचारों की एकता के निर्वाह को लक्ष्य बनाया गया है। इसके प्रबंध की एकता इसमें निहित विचारों में है। अब आप दिनकर की काव्य भाषा की विशेषताएँ समझ चुके हैं। आप जानते हैं कि किस प्रकार दिनकर ने कविता की भाषा को सहज बोलचाल की भाषा में ढालते हुए उसकी सांस्कारिकता कायम रखी है। किस तरह विचारों की जटिलता और परिवेश की सघनता को भाषा के सहज प्रवाह में ढालते हैं। दिनकर के सक्षम और सश्लिष्ट बिंब विधान और प्रतीकों का परिचय भी आपने प्राप्त किया है। आप जानते हैं कि किस प्रकार कवि ने पारंपरिक और नवीन प्रतीकों का समावेश करके भावों और विचारों

की चित्रात्मक व्यंजना की है। साथ ही आप दिनकर के काव्य में अलंकारों के सहज और सार्थक प्रयोग के बारे में भी पढ़ चुके हैं। आप जानते हैं कि अलंकार उनकी कविता का ऊपरी आवरण या सजावट नहीं उसकी आंतरिक अभिव्यक्ति का माध्यम है। "कुरुक्षेत्र" में प्रयुक्त छंदों के वैविध्य और लय की जानकारी भी आपने इस इकाई में प्राप्त की है। आपने देखा है कि दिनकर द्वारा मात्रिक छंदों के सफल प्रयोग ने हिन्दी के कवित, सवैया, रूपमाला आदि जैसे छंदों को खड़ी बोली काव्य के अनुकूल सिद्ध किया है।

38.8 शब्दावली

निबद्ध काव्य : प्रबंध काव्य

अंतर्योजना : आंतरिक तारतम्य

भावावेग : भाव की अतिशयता

ऐंद्रजालिक : जादुई

अन्विति : एकता

इंद्रियग्राह्य : इंद्रियों से महसूस किया जाने वाला

भाव-संवेदन : भाव का वास्तविक अनुभव

अगोचर : जो दिखाई न दे

वाग्विलास : वाणी का चातुर्य या शब्द चातुर्य

अर्थ-वक्रोक्ति : अर्थ की विदग्धता, अर्थ रमणीयता

ऐरावत : हाथियों का राजा हाथी

38.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

क) i) ✗ , ii) ✗ , iii) ✗ , iv) ✓ , v) ✗

ख) देखें भाग 38.3

ग) देखें भाग 38.3

बोध प्रश्न 2

क) i) ✗ , ii) ✗ , iii) ✓ , iv) ✓ , v) ✗ , vi) ✗

ख) i) हाँ, ii) हाँ, iii) नहीं, iv) हाँ, v) नहीं, vi) हाँ, vii) हाँ, viii) नहीं

ग) देखें, भाग 38.4 अथवा "कुरुक्षेत्र" का वाचन नामक इकाई 36।

घ) देखें, भाग 38.4 अथवा "कुरुक्षेत्र" का वाचन नामक इकाई 36।

ङ) i) अभिधा, ii) लेते हैं, iii) ओजस्विता

बोध प्रश्न 3

क) देखें, भाग 38.4

ख) मानवीकरण

ग) मात्रिक छंद

घ) देखें, भाग 38.6 अथवा इकाई 36 कुरुक्षेत्र का वाचन।

इकाई 39 "कुरुक्षेत्र" का प्रतिपाद्य

इकाई की रूपरेखा

39.0 उद्देश्य
39.1 प्रस्तावना
39.2 परिवेश
39.3 केंद्रीय समस्या
39.3.1 केंद्रीय समस्या का परिचय एवं महत्व निर्धारण
39.3.2 रचनाकार का दृष्टिकोण
39.3.3 केंद्रीय समस्या के प्रतिपादन में पात्रों की भूमिका
39.3.4 मूल्यांकन
39.4 अन्य समस्याएँ
39.4.1 विज्ञान का विनाशकारी प्रभाव
39.4.2 परमधर्म और आपद्धर्म का निर्धारण
39.4.3 बुद्धि और हृदय का संतुलन
39.4.4 मूल्यांकन
39.5 संदेश
39.5.1 संदेश का स्वरूप
39.5.2 संदेश की प्रासंगिकता
39.5.3 मूल्यांकन
39.6 सारांश
39.7 शब्दावली
39.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

39.0 उद्देश्य

पिछली इकाइयों में आपने कुरुक्षेत्र के वस्तु एवं शिल्प पक्ष का अध्ययन किया था। आशा है आप इस अध्ययन के द्वारा इस रचना को भली प्रकार समझ गये होंगे। यह इकाई कुरुक्षेत्र के प्रतिपाद्य से संबंधित है। इसमें आप आधुनिक काव्य-धारा के सुप्रसिद्ध कवि श्री रामधारी सिंह दिनकर की विशिष्ट काव्य-कृति कुरुक्षेत्र में उठायी गयी विशिष्ट समस्याओं का परिचय प्राप्त करते हुए उसके संदेश से परिचित हो सकेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- कुरुक्षेत्र के रचनाकाल की परिस्थितियों एवं प्रेरणा-भूमि को समझ सकेंगे,
- कृति की केन्द्रीय समस्या जो प्रतिपाद्य के मूल में विद्यमान है—का परिचय प्राप्त कर सकेंगे,
- केन्द्रीय समस्या से संबंध अनय विशिष्ट समस्याओं का निर्धारण कर सकेंगे,
- कृति के संदेश के स्वरूप और उसकी प्रासंगिकता का मूल्यांकन कर सकेंगे।

39.1 प्रस्तावना

कुरुक्षेत्र के वस्तु एवं शिल्प का अध्ययन करने के उपरांत अब आप यह जानना चाहेंगे कि इस कृति में कवि का रचनागत उद्देश्य क्या रहा है। क्योंकि किसी भी रचना का उद्देश्य उसकी समकालीन परिस्थितियों एवं रचनाकार की प्रेरणा-भूमि से आकार ग्रहण करता है। अतः आपकी यह भी जिज्ञासा होगी की कुरुक्षेत्र किन परिस्थितियों एवं प्रेरणाओं से प्रेरित होकर लिखा गया है। इस रचना की केन्द्रीय एवं अन्य विशिष्ट समस्याओं को समझ लेना आपके लिए इस कारण आवश्यक है क्योंकि इन्हीं से प्रतिपाद्य का स्वरूप निर्धारित होता है। रचनाकार ने 'कुरुक्षेत्र' के माध्यम से जो संदेश अपने पाठकों को देना चाहा है उसको

जानने की उत्सुकता भी आपमें स्वाभाविक है क्योंकि किसी भी रचना का प्रतिपाद्य प्रमुखतः उसके संदेश में ही अभिव्यक्त होता है। इस प्रकार इन सभी पक्षों के अध्ययन-विश्लेषण के उपरांत ही हम 'कुरुक्षेत्र' के प्रतिपाद्य को भली प्रकार समझ पाएँगे।

सबसे पहले आप यह जान लें कि प्रतिपाद्य किसे कहते हैं? प्रतिपाद्य का अर्थ है—कवि ने अपनी काव्य-कृति में किस उद्देश्य एवं संदेश को व्यक्त किया है। कृति में क्या कहा गया है, क्यों कहा गया है, इसी का अध्ययन हम प्रतिपाद्य के अंतर्गत करते हैं। प्रतिपाद्य को सही रूप में समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम रचना को सही रूप में समझें। उसमें निहित संदेश को भली प्रकार पहचानें। प्रस्तुत इकाई में हम इन्हीं बातों का ध्यान रखकर कुरुक्षेत्र के प्रतिपाद्य पर विचार करेंगे।

39.2 परिवेश

परिवेश का अर्थ है—वातावरण। जब हम किसी कृति के प्रतिपाद्य पर विचार करते हैं तब यह आवश्यक हो जाता है कि हम उस वातावरण अथवा परिस्थितियों का अध्ययन करें जिनसे प्रभावित होकर रचनाकार ने कृति का सृजन किया। इसके साथ ही उन प्रेरणाओं का अध्ययन भी आवश्यक है जिन्होंने कृति के सृजन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। क्योंकि परिवेश और प्रेरणाओं के माध्यम से ही रचनाकार अपने प्रतिपाद्य के स्वरूप और दिशा का निर्धारण करता है।

'कुरुक्षेत्र' का प्रकाशन सन् 1946 में हुआ। सन् 1941 से 'कुरुक्षेत्र' का लिखा जाना आरंभ हो गया था। कुरुक्षेत्र के परिवेश को समझने के लिए हमें यह समझना होगा कि यह वह समय है जब द्वितीय महायुद्ध की छाया संपूर्ण विश्व पर मँडरा रही थी। सन् 1939 ई. में यह महायुद्ध आरंभ हो चुका था। भयावह नरसंहार की इस आँधी ने साहित्यकारों को अपने-अपने ढंग से प्रभावित किया। दिनकर भी इस प्रभाव से अछूते नहीं रह सके। उन्होंने "रश्मि लोक" की भूमिका में लिखा—"कुरुक्षेत्र काव्य का आरंभ सन् 1941 में सीतामढ़ी में हुआ था, जहाँ मैं सब रजिस्ट्रार था और पूर्ण वह सन् 1946 ई. में पटने में हुआ, जहाँ मैं युद्ध-प्रचार विभाग में काम कर रहा था।" कुरुक्षेत्र की रचना के समय दिनकर का युद्ध प्रचारक विभाग में काम करना उन्हें युद्ध की समस्या से सीधे-सीधे जोड़ता है। एक ओर अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय वातावरण में युद्ध के प्रभाव की छायाएँ एवं दूसरी ओर दिनकर का स्वयं युद्धप्रचार विभाग में कार्यरत रहना निश्चय ही कुरुक्षेत्र के प्रतिपाद्य को आकार देने में अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। निश्चय ही परिवेश के इन दबावों ने दिनकर के समक्ष युद्ध की समस्या को तीव्रता से उभारा होगा। युद्ध क्यों होते हैं? क्या युद्ध के बिना भी विश्व की कल्पना की जा सकती है? मानव जाति के लिए विनाशकारी इन युद्धों के लिए कौन उत्तरदायी हैं? ऐसे प्रश्नों का मंथन ही कुरुक्षेत्र की रचना का आधार बना और इसमें कोई संदेह नहीं कि दिनकर के सम्मुख इन प्रश्नों की चुनौती का एक महत्वपूर्ण तात्कालिक कारण द्वितीय महायुद्ध की घटनाओं का विद्यमान रहना बना।

'कुरुक्षेत्र' के रचना-काल में हमारे देश का राजनीतिक परिवेश विशिष्ट रूप से घटनात्मक और हलचल भरा है। 'रश्मिलोक' में दिनकर लिखते हैं—"सन् 1941 में स्थिति यह थी कि गांधी जी आंदोलन छेड़ने में हिचकिचा रहे थे और युवक समझते थे कि आंदोलन छेड़ा भी गया, तो वह कुचल दिया जाएगा। इस स्थिति में मुझे वही चिंतन शुद्ध दिखायी दिया जो कुरुक्षेत्र में है। अहिंसा अगर परमधर्म है, तो हिंसा को आपद्धर्म मानना ही होगा।" वस्तुतः गांधी जी के अहिंसात्मक आंदोलन के प्रति पूरी श्रद्धा रखते हुए भी दिनकर पूरी तरह से कभी यह स्वीकार नहीं कर सके कि मात्र अहिंसा से ही पशु-बल का प्रतिकार संभव है। जलियाँवाला बाग हत्या काण्ड, रौलेट एक्ट आदि के द्वारा अंग्रेजों का अहिंसक आंदोलन का दबाया जाना दिनकर के सामने पूरी तरह प्रत्यक्ष था। एक ओर गांधी जी के विराट् चुम्बकीय व्यक्तित्व के प्रति अगाध श्रद्धा तथा दूसरी ओर उग्रवादी तथा क्रांतिकारी गतिविधियों की ओर उनका रुझान—इन दोनों परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली प्रवृत्तियों ने दिनकर के मन में आत्मबल और देहबल की सार्थकता को लेकर द्वन्द्व और दुविधा की स्थितियाँ उत्पन्न कर दी थीं। इस द्वन्द्व और दुविधा को प्रखर बनाने में उन मित्रों का भी योगदान रहा जो गांधी जी की अहिंसा को धर्म नहीं नीति मानते थे। इसका प्रभाव निश्चय ही कुरुक्षेत्र के प्रतिपाद्य पर व्यापक रूप में पड़ा।

'कुरुक्षेत्र' की रचना से ठीक पहले दिनकर ने "कलिंग-विजय" नामक एक कविता की रचना की थी। इस कविता में कवि ने कलिंग युद्ध के बाद अशोक के पश्चाताप के माध्यम से अहिंसा के प्रति अपना समर्थन व्यक्त किया है। दिनकर के शब्दों में—"कलिंग-विजय" कविता के बाद कवि का संपर्क रोजालक्जम बर्ग नामक प्रेतात्मा से हुआ जिन्होंने अहिंसा की कविता को सुनाने पर कवि को प्रताड़ित किया। इससे कवि का अहिंसा विषयक संदेह पुष्ट हुआ और उक्त प्रेतात्मा का उपदेश सुनकर उसने सीतामढ़ी लौटने पर पाँच कवित्त लिखे जिनके इर्दगिर्द कुरुक्षेत्र काव्य की रचना हुई।" यद्यपि प्रेतात्मा का यह प्रसंग तर्क की कसौटी पर विवादास्पद हो सकता है किन्तु इससे इतना तो स्पष्ट है कि दिनकर मानसिक रूप से अहिंसा के प्रति अपनी एकनिष्ठता के प्रति शंकालु होने लगे थे जिसकी परिणति कुरुक्षेत्र में भीष्म के माध्यम से की गयी है।

आपने कुरुक्षेत्र का अध्ययन करते हुए स्पष्ट रूप से यह अनुभव किया होगा कि इस कृति में द्वन्द्व की विशेष स्थिति है। एक ओर युद्ध और शांति का द्वन्द्व जहाँ कुरुक्षेत्र के प्रतिपाद्य को गंभीर बनाता है, वहाँ हिंसा-अहिंसा, आत्म बल-पशुबल, बुद्धि-हृदय, विज्ञान-कला आदि के द्वन्द्वों की स्थितियाँ इस काव्य को महत्व देती हैं। इस द्वन्द्वात्मकता के मूल में सच पूछिए तो वे परिस्थितियाँ विद्यमान हैं जिन्होंने दिनकर के हृदय में अनेक द्वन्द्व और प्रश्न जगा दिए थे। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी का यह मत पूरी तरह उचित है कि "वस्तुतः उस समय दिनकर के सारे मनोविज्ञान में ही एक ऐसी अस्तव्यस्तता थी, जिसकी छाप कुरुक्षेत्र पर स्पष्ट रूप से पड़ी।"

बोध प्रश्न 1

क) द्वितीय महायुद्ध ने कुरुक्षेत्र के प्रतिपाद्य को किस रूप में प्रभावित किया। चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

ख) सही उत्तर पर (✓) निशान लगाएँ:

दिनकर अहिंसा को कुरुक्षेत्र के रचना-काल में पूर्णतः स्वीकार नहीं कर पा रहे थे। क्योंकि:

i) उन्होंने "कलिंग-विजय" कविता में हिंसा को अपना समर्थन दिया था। ( )

ii) उन पर द्वितीय महायुद्ध का व्यापक प्रभाव पड़ा था। ( )

iii) वे उग्रवादी एवं क्रांतिकारी गतिविधियों से जुड़े अपने मित्रों की संगति से प्रेरणा पा रहे थे। ( )

39.3 केंद्रीय समस्या

39.3.1 केंद्रीय समस्या का परिचय एवं महत्व-निर्धारण

कुरुक्षेत्र की केंद्रीय समस्या युद्ध है। दिनकर ने युद्ध की समस्या को अपनी इस कृति का आधार बनाया है। आप परिवेश का अध्ययन करते हुए यह देख चुके हैं कि तत्कालीन परिस्थितियों एवं प्रेरणाओं के दबाव में दिनकर का मन युद्ध की समस्या को लेकर आंदोलित रहा। कवि मानता है कि पूर्ति के लिए अनैतिक साधनों के उपयोग में संकोच नहीं करेंगे, तब तक युद्ध की आशंकाओं से इंकार नहीं किया जा सकता। जब तक मनुष्य-मनुष्य के बीच विषमता अथवा असमानता विद्यमान है, युद्ध को टालना संभव नहीं है। सप्तम सर्ग में भीष्म स्पष्ट रूप से मानते हैं—

"जब तक मनुज मनुज का यह
सुख-भाग नहीं सम होगा,

शमित न होगा कोलाहल
संघर्ष नहीं कम होगा।"

दिनकर मानते हैं कि युद्ध न पाप है और न पुण्य। युद्ध को नैतिक या अनैतिक की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता। क्योंकि हमें युद्ध की नैतिकता या अनैतिकता का निर्धारण करने से पहले यह देखना होगा कि युद्ध का उद्देश्य क्या है? युद्ध का आयोजन करने वाली शक्तियाँ कर्तव्य भाव से प्रेरित होकर युद्ध में भाग ले रही हैं या कोई निजी स्वार्थ उन्हें युद्ध के लिए प्रवृत्त कर रहा है? निस्वार्थ भाव से कर्तव्य पालन के लिए छेड़ा गया युद्ध निश्चय ही पुण्य है।

इस प्रकार दिनकर ने कुरुक्षेत्र में युद्ध की जिस समस्या को उठाया है वह मानवता के इतिहास से आरंभ से अब तक संबद्ध रही है। इस समस्या को कवि ने महाभारत के उपरांत की स्थितियों से ग्रहण किया है। युद्ध के बाद नरसंहार के पश्चाताप से व्यथित युधिष्ठिर जहाँ शांति के पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं वहाँ भीष्म युद्ध के कारणों और स्थितियों पर विशद विचार करते हुए युद्ध की अनिवार्यता के पक्ष में अपना मत देते हैं। इन दोनों पक्षों के माध्यम से दिनकर ने युद्ध की समस्या को कुरुक्षेत्र के केन्द्र में रखकर प्रस्तुत किया है। आज मानव जाति के सम्मुख दो ही विकल्प हैं—उसे अपने अस्तित्व को बनाए रखना है या नष्ट हो जाना है। इस स्थिति के लिए युद्ध की आशंकाएँ प्रमुख रूप से उत्तरदायी हैं। दिनकर ने 1946 में कुरुक्षेत्र के माध्यम से युद्ध की जिस समस्या को प्रस्तुत किया है उसका महत्व निरंतर बढ़ता जा रहा है। आज हमें जिस युद्ध की आशंका है, अगर वह अपनी अंतिम परिणति में पहुँच गया तो मानवजाति के संपूर्ण विनाश से हम बच नहीं सकते। भीष्म के माध्यम से द्वितीय सर्ग में दिनकर युद्ध की भयावहता का अंकन इस रूप में करते हैं—

"युद्ध का उन्माद संक्रमण शील है,
एक चिनगारी कहीं जागी अगर,
तुरत बह उठते पवन उनचास है,
दौड़ती, हँसती, उबलती आग चारों ओर से।"

युद्ध की ये स्थितियाँ भविष्य में मनुष्य को न झेलनी पड़े यही दिनकर की मूलभूत चिन्ता है। इस चिन्ता को दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' में सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है।

39.3.2 रचनाकार का दृष्टिकोण

पिछले अध्ययन से आप यह जान गये हैं कि कुरुक्षेत्र में युद्ध की समस्या को आधार बनाया गया है किन्तु हमें यह भी जान लेना आवश्यक है कि युद्ध की इस समस्या के प्रति स्वयं रचनाकार क्या सोचता है? आइये, हम रचनाकार के दृष्टिकोण को समझें तथा कुछ ऐसे विचार-बिन्दु निर्धारित करें जो 'कुरुक्षेत्र' की इस केन्द्रीय समस्या के मूल्यांकन में सहायक हो सकें। कुरुक्षेत्र के आरंभ में "निवेदन" शीर्षक के अंतर्गत व्यक्त निम्नलिखित विचारों को ध्यान से देखें:

क) "युद्ध निन्दित और क्रूर कर्म है, किन्तु, उसका दायित्व किस पर होना चाहिए? उस पर जो अनीतियों का जाल बिछा कर प्रतिकार को आमंत्रण देता है? या उस पर, जो जाल को छिन्न-भिन्न कर देने के लिए आतुर हैं?"

ख) "कुरुक्षेत्र की रचना भगवान व्यास के अनुकरण पर नहीं हुई है और न महाभारत को दुहराना ही मेरा उद्देश्य था।"

ग) "कलिंग विजय' नामक कविता लिखते-लिखते मुझे ऐसा लगा, मानो, युद्ध की समस्या मनुष्य की सारी समस्याओं की जड़ हो।"

घ) "कुरुक्षेत्र न तो दर्शन है और न किसी ज्ञानी के प्रौढ़ मस्तिष्क का चमत्कार। यह तो अन्ततः, एक साधारण मनुष्य का शंकाकुल हृदय ही है, जो मस्तिष्क के स्तर पर चढ़कर बोल रहा है।"

उपर्युक्त उद्धरणों से (रचनाकार के दृष्टिकोण) हम निम्नलिखित निष्कर्ष निकाल सकते हैं—

i) दिनकर ने महाभारत के प्रसंग विशेष को इसलिए नहीं चुना कि वे महाभारत के उस प्रसंग को पुनः प्रस्तुत करना चाहते थे बल्कि इसलिए क्योंकि वे इस बहाने अपने युग को युद्ध की चिरन्तन समस्या के विभिन्न पहलुओं से अवगत कराना चाहते थे। दूसरे शब्दों में वे अतीत के माध्यम से वर्तमान को रेखांकित करना चाहते थे।

ii) वे युद्ध के विनाश के लिए उत्तरदायी व्यक्ति या सत्ता के निर्धारण पर विचार करना चाहते थे।

iii) दिनकर का यह मानना है कि मनुष्य की समस्याओं के मूल में युद्ध की समस्या विद्यमान है जिससे चाह कर भी पलायन नहीं किया जा सकता।

v) कुरुक्षेत्र में वैचारिकता अथवा तत्व चिन्तन खोजने वालों को निराशा होगी। एक सामान्य व्यक्ति के मन में युद्ध को लेकर जो संदेह उठते हैं वे कुरुक्षेत्र में मूलतः हृदय की भूमि पर टिके हैं किन्तु उनकी अभिव्यक्ति वैचारिक रूप में हुई है।

आप देखेंगे कि कुरुक्षेत्र में विद्यमान केन्द्रीय समस्या के प्रति कवि का दृष्टिकोण इस समस्या के मूल में जाने का रहा है। वे इस समस्या की तह में जाकर उसके समाधान की संभावनाएँ खोजना चाहते हैं। क्योंकि युद्ध की यह समस्या दिनकर के मन में अनेक प्रश्न और द्वन्द्व उठाती है, अतः युधिष्ठिर और भीष्म के माध्यम से युद्ध के निषेध और स्वीकार के रूप में जो पक्ष स्थापित करते हैं। दिनकर आत्मबल के समक्ष बाहुबल को किसी भी रूप में दुर्बल नहीं मानते। अतः भीष्म के चिन्तन में ही दिनकर का दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है।

39.3.3 केन्द्रीय समस्या के प्रतिपादन में पात्रों की भूमिका

दिनकर ने युधिष्ठिर और भीष्म के माध्यम से युद्ध की समस्या को मूर्त्त करने का प्रयास किया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इन दोनों पात्रों के माध्यम से इस समस्या का सुन्दर प्रतिपादन संभव हो सका है। संपूर्ण महाभारत में युधिष्ठिर का चरित्र शांत और शालीन रहा है। युद्ध के बाद उनके मन में भीषण नरसंहार को लेकर पश्चाताप का उदय होता है। वे भयानक रक्तपात को देख सिहर जाते हैं। उनका मन इन शब्दों में चीत्कार कर उठता है:-

"जानता कहीं जो परिणाम महाभारत का,
तन-बल छोड़ मैं मनोबल से लड़ता,
तप से, सहिष्णुता से, त्याग से सुयोधन को,
जीत, नयी नींव इतिहास की मैं धरता।
और कहीं वज्र गलता न मेरी आह से जो,
मेरे तप से नहीं दुर्योधन सुधरता,
तो भी हाय, यह रक्त-पात नहीं करता मैं,
भाइयों के संग कहीं भीख माँग मरता।"

युधिष्ठिर देह-बल को त्यागकर आत्म बल से दुर्योधन का प्रतिकार करना चाहते थे। वे मानवीय गुणों मे दानवी प्रवृत्तियों को जीतने के पक्षधर हैं। यदि इसमें वे असफल होते तब भी वे भाइयों के साथ भीख तक माँगने को तैयार थे। वस्तुतः युधिष्ठिर के रूप में दिनकर ने गांधीवादी दर्शन को प्रतिपादित करना चाहा है। गांधीवादी दर्शन भी आत्म बल से पशुबल का प्रतिकार करना चाहता है। वह युद्ध में हुए भीषण नर संहार और रक्तपात से प्राप्त राज्य को घृणा की दृष्टि से देखता है। युधिष्ठिर का भी यह दृढ़ अभिमत है—

"विजय कराल नागिनी-सी डँसती है मुझे,
इससे न जूझने को मेरे पास बल है,
ग्रहण करूँ मैं कैसे? बार-बार सोचता हूँ,
राज सुख लोहू भरे कीच का कमल है।"

युधिष्ठिर को अपनी विजय "कराल नागिनी-सी" डसती है क्योंकि वे इस विजय को प्राप्त करने वाले साधनों को उचित नहीं समझते। गांधी जी ने भी सदैव साधन और साध्य-दोनों के नैतिक होने की आवश्यकता पर बल दिया था। युधिष्ठिर, युद्ध की समस्या को नैतिकता और अनैतिकता के परंपरागत संदर्भों में रखकर देखते हैं। यही कारण है कि वे 'कुरुक्षेत्र' के प्रतिपाद्य के प्रतिपक्ष की भूमिका का निर्वाह करते हैं।

भीष्म युद्ध की इस समस्या पर वस्तुगत रूप से चिन्तन करते हैं। वे सर्वप्रथम युद्ध के मूलभूत कारण को रेखांकित करते हैं। उनका मत है कि मनुष्य के मन में निहित दुष्प्रवृत्तियाँ जब उग्र और प्रचण्ड हो उठती हैं तब क्षोभ, घृणा, ईर्ष्या और द्वेष के भाव मन को दूषित कर उसे युद्ध के लिए प्रेरित करते हैं और इसका परिणाम यह होता है कि यत्न के

पूर्व वह किन्हीं बहानों को गढ़ लेता है जो ऊपर से नैतिक दिखाई देते हैं किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि युद्ध के मूल में मनुष्य की स्वार्थ भावना से प्रेरित द्वेष-भाव अनिवार्य रूप से विद्यमान रहता है। और जब युद्ध का आरंभ हो जाता है तब उसके संक्रामक प्रभाव से कोई बच नहीं पाता—

> "युद्ध का उन्माद संक्रम शील है,
> एक चिनगारी कहीं जागी अगर,
> तुरत बह उठते पवन उनचास हैं,
> दौड़ती, हँसती, उबलती आग चारों ओर से।"

भीष्म का मानना है कि युद्ध पूरी तरह त्याज्य नहीं है। जिस प्रकार रोग ग्रस्त हो जाने के बाद कड़वी औषधि से ही उसका उपचार होता है उसी प्रकार मनुष्य-मनुष्य के बीच स्वार्थमय द्वेष की टकराहट के रोग का उपचार युद्ध की कड़वी औषधि से ही संभव हो पाता है। इसलिए युद्ध को पाप और पुण्य में विंभाजित करके देखना उचित नहीं। जहाँ पशुबल अन्याय और अत्याचार में प्रवृत्त हो वहाँ आत्मबल में सीमित हो जाना पाप ही कहा जाएगा—

> "कौन केवल आत्म बल से जूझकर
> जीत सकता देह का संग्राम है?
> पाशविकता खड्ग जब लेती उठा,
> आत्म बल का एक बस चलता नहीं।"

आत्म बल और शांति जब भी अन्याय और अत्याचार का प्रतिकार करने में असमर्थ हो जाती है तभी किसी भावी युद्ध की पृष्ठभूमि निर्मित हो जाती है—

> "शान्ति खोलकर खड्ग क्रांति का
> जब वर्जन करती है,
> तभी जान लो, किसी समर का,
> वह सर्जन करती है।"

भीष्म, शांति का तटस्थ मूल्यांकन करते हुए उसकी सीमाओं का सही रेखांकन करते हैं। शांति जब व्यक्ति या समाज के मूलभूत परिवर्तन में बाधा उत्पन्न करती है तब वही बाधा किसी न किसी युद्ध की पृष्ठभूमि बन जाती है। भीष्म की ये मान्यताएँ युद्ध की स्थिति का सही और सार्थक ढंग से मूल्यांकन करने में सक्षम हैं। वह वर्तमान की शोचनीय अवस्था से भविष्य के प्रति निराशा की कोई भावना नहीं रखते। मानवीय क्षमताओं के प्रति उन्हें असीम विश्वास है। मनुष्य की प्रचण्ड कर्म-शक्ति उसके व्यक्तित्व में निराशा नहीं आने देती जो संसार को नश्वर समझने वाले ज्ञानियों में प्रायः पायी जाती है:

> "अकर्मण्य पण्डित हो जाता,
> अमर नहीं रोने से,
> आयु न होती क्षीण किसी की
> कर्म-भार ढोने से।
> इतना भेद अवश्य युधिष्ठिर दोनों
> में होता है।
> हँसता एक मृत्ति पर, नभ में एक
> खड़ा रोता है।

इस प्रकार युधिष्ठिर और भीष्म के माध्यम से कवि ने 'कुरुक्षेत्र' की केन्द्रीय समस्या-युद्ध के प्रति अपना दृष्टिकोण अभिव्यक्त कर दिया है। युधिष्ठिर जहाँ गांधी के अहिंसावादी दर्शन को अपना समर्थन देते दिखायी देते हैं, वहाँ भीष्म गीता के कर्म-योग को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में निरुपित करते हैं। इन पात्रों के माध्यम से दिनकर ने युद्ध की समस्या को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है।

39.3.4 मूल्यांकन

आपने देखा कि युधिष्ठिर और भीष्म कुरुक्षेत्र की प्रमुख समस्या-युद्ध को किस प्रकार सजीव और सक्षम रूप में प्रस्तुत करते हैं। यहाँ अब हम यह जानने का प्रयत्न करेंगे कि दिनकर

ने युद्ध की जिस समस्या को कुरुक्षेत्र में आधार बनाया है उसे अपने पाठकों तक संप्रेषित कर पाने में वे किस हद तक सफल हो पाये हैं? इस समस्या के निरुपण में उन्होंने जिन तर्कों को अपना आधार बनाया है वे काव्यात्मक रूप से कितने प्रभावशाली सिद्ध हो पाए हैं? आपने पिछली सामग्री के अनुशीलन में यह देखा होगा कि दिनकर "कुरुक्षेत्र" को "साधारण मनुष्य का शंकाकुल हृदय" मानते हैं जो "मस्तिष्क के स्तर पर" अभिव्यक्त हुआ है। इसका आशय यह हुआ कि इस कृति का आधार तो विचार और चिन्तन ही है किन्तु उसमें ज्ञानी के तर्क युक्त प्रतिपादन की अपेक्षा सामान्य व्यक्ति की भावनाओं और विचारों का ही प्राधान्य है। इसमें कोई संदेह नहीं कि कुरुक्षेत्र में व्यक्ति की भावनात्मक अभिव्यक्ति की प्रधानता है। यही कारण है कि इस समस्या का निरुपण करते समय कवि जिस द्वन्द्व और मंथन से गुजरा है वह पाठक को भी उसी द्वंद्व और मंथन की भूमि तक पहुँचा देता है। दिनकर युद्ध की स्थिति को मानव-नियति से जोड़ते हैं और यह मानते हैं कि जब तक मनुष्य के मन में स्वार्थ की भावना विद्यमान है तब तक युद्ध की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का "आधुनिक साहित्य" में निरुपित यह कथ्य दिनकर की इस मान्यता के संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय हो जाता है—"दिनकर जी कहते हैं कि जब तक संसार में शांति और सद्भाव नहीं है, तब तक युद्ध होंगे ही, होने ही चाहिए, पर दूसरी ओर प्रश्न यह भी है कि जब तक युद्ध होते रहेंगे तब तक शांति और सद्भाव का विकास होगा कैसे?" वस्तुतः व्यक्ति की प्रवृत्तियाँ वातावरण से अछूती नहीं रह सकती। अतः जब युद्ध का परिवेश मानव की नियति है तब वह कैसे उदात्त भावों की साधना कर सकेगा? इसी प्रकार दिनकर ने कुरुक्षेत्र में अनेक बार देश-काल की सीमाओं का उल्लंघन किया है। इससे कुरुक्षेत्र में वातावरण की सहजता बनी नहीं रह पाई है। पाठक को ऐसा प्रतीत होता है मानों दिनकर स्वयं ही संपूर्ण वादविवाद के सूत्र संभाले भीष्म और युधिष्ठिर को पीछे ढकेल कर आगे आ जाते हैं। यह स्थिति कृति की ऐतिहासिक विश्वसनीयता को आघात पहुँचाती है, जिससे मूल समस्या का प्रभाव बिखर जाता है। फिर भी, इसमें कोई संदेह नहीं युद्ध की समस्या के प्रतिपादन में वे अपने पाठकों को आदि से अंत तक बाँधे रहने में सफल हुए हैं।

बोध प्रश्न 2

क) सही उत्तर पर लगाएँ।

दिनकर मानते हैं कि भविष्य में युद्धों की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता। क्योंकि :

i) मनुष्य स्वभावतः युद्ध-प्रिय है।

ii) मनुष्य में स्वार्थ और द्वेष की प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं।

iii) मनुष्य परिस्थितियों के आगे विवश है।

ख) कुरुक्षेत्र की केन्द्रीय समस्या के प्रतिपादन में महाभारत का आधार क्यों ग्रहण किया गया है? चार पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

ग) कुरुक्षेत्र में प्रतिपादित युद्ध की समस्या के संदर्भ में आप किस पात्र से अधिक प्रभावित हैं और क्यों? पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

घ) कुरुक्षेत्र में युद्ध की समस्या के प्रतिपादन से आप कहाँ तक सहमत हैं? दो पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

39.4 अन्य समस्याएँ

39.4.1 विज्ञान का विनाशकारी प्रभाव

कुरुक्षेत्र में युद्ध की समस्या के अतिरिक्त ऐसी विशिष्ट समस्याओं का भी निरूपण किया गया है जिनका मानव-भविष्य के साथ गहरा संबंध है। इनमें एक समस्या है–विज्ञान के बढ़ते हुए प्रभाव की "चक्रवाल" की भूमिका में दिनकर लिखते हैं– "जब से विज्ञान उत्पन्न हुआ, दयालु, श्रद्धालु, परोपकारी और दूसरों के निमित्त कष्ट सहने वाले व्यक्तियों की संख्या कम होती गयी है। इस वैज्ञानिक युग की विचित्रता यह है कि लंदन के घंटे की आवाज तो हमें रेडियो के द्वारा पटने में भी सुनायी पड़ती है, किन्तु पास-पडौस में कराहने वाले रोगी की आवाज हमारे कान नहीं सुन सकते।" विज्ञान की इस विडम्बना को दिनकर ने कुरुक्षेत्र में इस प्रकार निरुपित किया है–

"सावधान, मनुष्य! यदि विज्ञान है तलवार
तो इसे दे फेंक, तज कर मोह स्मृति के पार
हो चुका है सिद्ध, है तू शिशु अभी नादान,
फूल काँटों की तुझे कुछ भी नहीं पहचान।
खेल सकता तू नहीं ले हाथ में तलवार
काट लेगा अंग, तीखी है बड़ी यह धार।"

दिनकर विज्ञान का पूर्णतः निषेध करते हों, ऐसी बात नहीं। वे तो मानव मूल्यों से रहित विवेकहीन वैज्ञानिक विकास के विरोधी हैं। क्योंकि इसी मनुष्य के भविष्य पर प्रश्न चिह्न लग जाता है। बुद्धि की अतिवादिता से उत्पन्न यह विज्ञान मनुष्य का लक्ष्य नहीं। कुरुक्षेत्र के छठे सर्ग में उनका स्पष्ट मत है–

"रसवती भू के मनुज का श्रेय,
यह नहीं विज्ञान, विद्या बुद्धि यह आग्नेय
विश्व-दाहक, मृत्यु-वाहक, सृष्टि का संताप,
भ्रान्त पथ पर अंध बढ़ते ज्ञान का अभिशाप।"

वस्तुतः विज्ञान के इस बढ़ते प्रभाव ने जिस प्रकार मानव-मूल्यों और मानव-संवेदनाओं को सोख लिया है उससे चिन्तित कवि ने कुरुक्षेत्र में इस समस्या को इसलिए निरुपित किया है क्योंकि इस वैज्ञानिक विकास ने युद्ध की आशंकाओं को और भी गहरा दिया है। अणु आयुधों का निर्माण इसी विकास की भयावह परिणति है।

39.4.2 परम धर्म और आपद्धर्म का निर्धारण

दिनकर ने अहिंसा को परमधर्म और हिंसा को आपद्धर्म के रूप में निरुपित किया है। यद्यपि दोनों को सम्यक् महत्व दे पाना तथा समय की माँग के अनुसार उनका ग्रहण और विसर्जन मानवता के लिए एक समस्या है। हम अपनी संपूर्ण भारतीय परंपरा में कहीं भी हिंसा का समर्थन नहीं पाते। हमारा धर्म, दर्शन और संस्कृति अहिंसा का विशिष्ट मानव-मूल्य के रूप में स्वीकार करती है। गांधी जी के नेतृत्व में चलाया गया अहिंसात्मक आंदोलन स्वयं में मानव जाति के इतिहास में एक क्रांति माना जा सकता है। इन परिस्थितियों में हिंसा की स्वीकृति को सहज ग्राह्न नहीं कहा जा सकता। किन्तु दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' में अनेकशः हिंसा की पक्षधरता को स्वीकार किया है। उनका तर्क है कि जब तक व्यक्ति में पौरुष, बल और सामर्थ्य आदि गुण नहीं होंगे तब तक उसकी अहिंसा और क्षमा का कोई महत्व नहीं। तृतीय सर्ग में भीष्म कहते हैं–

क्षमा शोभती उस भुजंग को,
जिसके पास गरल हो।
"उसको क्या जो दंतहीन, विष रहित, विनीत सरल हो।"

कुरुक्षेत्र के भीष्म मानते हैं कि साधना और तपस्या सदैव पशुबल से पराजित होती आयीं है—

> "हिंसा का आघात तपस्या ने कब, कहाँ सहा है?
> देवों का दल सदा दानवों से हारता रहा है।"

इस प्रकार दिनकर ने भारतीय परंपरा का आदर करते हुए यद्यपि अहिंसा को परमधर्म के रूप में स्वीकार किया है किन्तु हिंसा को आपद्धर्म मानने से भी वे नहीं कतराते। वस्तुतः भीष्म के रूप में वे परमधर्म और आपद्धर्म के निर्धारण की समस्या का समाधान पा जाते हैं।

39.4.3 बुद्धि और हृदय का संतुलन

कुरुक्षेत्र में बुद्धि और हृदय के संतुलन की समस्या को व्यापक महत्व दिया गया है। आज इसे एक विडम्बना ही कहा जाएगा कि जिस अनुपात में व्यक्ति के मस्तिष्क का विकास हो रहा है उसी अनुपात में हृदय संकुचित होता जा रहा है। हृदय के संकुचित होते जाने का ही यह परिणाम है कि मानव-मन में ईर्ष्या, घृणा, द्वेष, स्वार्थ आदि भावनाएँ स्थान पाकर मनुष्य-मनुष्य के बीच संघर्ष की स्थितियाँ उत्पन्न कर रही हैं। 'कुरुक्षेत्र' के षष्ठ सर्ग में बुद्धि के इस बढ़ते हुए प्रभाव को इस प्रकार निरुपित किया गया है—

> "किन्तु, है बढ़ता गया मस्तिष्क ही निःशेष,
> छूट कर पीछे गया है रह हृदय का देश
> नर मनाता नित्य नूतन बुद्धि का त्यौहार,
> प्राण में करते दुःखी हो देवता चीत्कार"

यह सही है कि मस्तिष्क के निरंतर बढ़ते जाने—उसके माध्यम से नये-नये आविष्कार कर लेने को व्यक्ति त्यौहार के उल्लास से ग्रहण करता है किन्तु यह भी सच है कि अपने आकर्षण के जाल में फाँस कर यह बुद्धि उसी व्यक्ति को नयी-नयी उलझनों में उलझाकर उसके प्राण-रस को सोख लेती है। कुरुक्षेत्र के चौथे सर्ग में भीष्म कहते हैं—

> "बुद्धि फेंकती तुरत जाल निज
> मानव फँस जाता है
> नयी-नयी उलझनें लिए
> जीवन सम्मुख आता है।"

और फिर बुद्धि के अतिवादी विकास का सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह हुआ है कि मनुष्य के भीतर स्वाभिमान की जो आग धधकती है—निर्णय लेने की जो ललक विद्यमान रहती है—उसे वह कुण्ठित कर देती है। व्यक्ति कोई भी निर्णय करने से पहले जब बुद्धि की ऊहा-पोह से ग्रस्त हो जाता है तब न तो उसका स्वाभिमान प्रबुद्ध हो पाता है और न ही वह समयानुकूल निर्णय लेने में समर्थ होता है। भीष्म चौथे सर्ग में इस तथ्य को इन शब्दों में निरुपित करते हैं—

> "सदा नहीं मानापमान की बुद्धि उचित सुधि लेती,
> करती बहुत विचार, अग्नि की शिखा बुझा है देती।"

इस प्रकार कुरुक्षेत्र में दिनकर ने युद्ध की समस्या को रेखांकित करने के साथ-साथ विज्ञान के बढ़ते प्रभाव, परमधर्म और आपद्धर्म के निर्धारण तथा बुद्धि और हृदय के संतुलन की समस्या को भी सम्यक महत्व दिया है केन्द्रीय के प्रतिपादन के साथ-साथ उन्होंने अन्य समस्याओं के प्रस्तुतीकरण के द्वारा कवि ने अपने प्रतिपाद्य को विशदता और गंभीरता प्रदान की है।

39.4.4 मूल्यांकन

कुरुक्षेत्र की केन्द्रीय समस्या युद्ध के साथ-साथ दिनकर ने उन समस्याओं की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया है जो मानव-भविष्य पर प्रश्न चिह्न लगाती हैं। वस्तुतः इन समस्याओं के प्रतिपादन से कुरुक्षेत्र का फलक और भी व्यापक तथा प्रभावशाली हो गया है। दिनकर ने इन सभी समस्याओं को प्रस्तुत करने में भीष्म को अपना आधार बनाया है। यह उचित भी था क्योंकि भीष्म का व्यक्तित्व जितना हमारे युग के निकट है तथा दिनकर के अपने दृष्टिकोण से मेल खाता है उतना युधिष्ठिर का नहीं। यही कारण है कि दिनकर ने

इन सभी समस्याओं के केन्द्र में भीष्म को रखा है। इन समस्याओं के प्रतिपादन में उन्होंने इस बात का बराबर ध्यान रखा है कि वे रचना की केन्द्रीय समस्या से बराबर जुड़ी रहें। विज्ञान का बढ़ता प्रभाव युद्ध की समस्या से इसलिए जुड़ता है क्योंकि युद्ध संबंधी वैज्ञानिक आविष्कारों ने युद्ध को मानव-भविष्य के और भी निकट ला दिया है। अहिंसा और हिंसा में अवसर आने पर सही विकल्प न चुन पाना भी युद्ध को ही आमंत्रित करता है। तथा बुद्धि के अतिवादी विस्तार ने मनुष्य को स्वार्थमय और संवेदना शून्य बना दिया है जिससे अब हिंसा और रक्तपात से उसका हृदय विचलित नहीं होता। इस प्रकार इन समस्याओं के बहाने दिनकर ने युद्ध की समस्या के रंगों को और गाढ़ा किया है।

बोध प्रश्न 3

क) सही उत्तर पर (✓) निशान लगाएँ:

दिनकर विज्ञान के बढ़ते प्रभाव से इसलिए आशंकित हैं क्योंकि:

i) वह मनुष्य की विलासिता के साधनों में वृद्धि कर रहा है।

ii) उसने मनुष्य को सुविधाभोगी बना दिया है।

iii) उसने मनुष्य को सहानुभूति और संवेदना से शून्य कर दिया है।

ख) निम्नलिखित अवतरण को ध्यान से पढ़िए और आगे दिये गये प्रश्नों के उत्तर एक-एक पंक्ति में दीजिए:

"क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल हो
उसका क्या जो दंतहीन, विषहीन, विनीत सरल हो?"

i) विष से युक्त सर्प को ही क्षमा क्यों शोभा देती है?

....

ii) विषहीन सर्प के लिए क्षमा की सार्थकता क्यों नहीं है?

....

iii) इन पंक्तियों में "गरल" शब्द किस विशेषता की ओर संकेत करता है।

....

39.5 संदेश

39.5.1 संदेश का स्वरूप

आपने देखा कि दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' में अनेक महत्वपूर्ण समस्याओं का प्रतिपादन किया है किन्तु केवल समस्याओं का निरुपण ही प्रतिपाद्य को निर्धारित नहीं करता बल्कि हमें यह भी देखना होता है कि कवि ने अपनी रचना के माध्यम से समाज को क्या संदेश दिया है? महान कृतियों की यह विशेषता होती हैं कि वे मानवमात्र के लिए ऐसा उदात्त संदेश प्रस्तुत करती हैं जो उन्हें न केवल प्रेरणा देता है बल्कि भविष्य का पथ भी प्रस्तुत करता है। 'कुरुक्षेत्र' भी इसका अपवाद नहीं है। आइए हम देखें कि कुरुक्षेत्र के माध्यम से दिनकर ने समाज को क्या संदेश दिया है तथा उस संदेश का स्वरूप क्या है? आप सरलता से यह समझ जाएँगे कि कवि ने जो संदेश दिया है वह कहीं न कहीं कृति में निरुपित प्रमुख समस्याओं से भी कहीं न कहीं जुड़ा हुआ है।

दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' में युद्ध की समस्या पर व्यापक विचार करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि युद्ध का मूल कारण मनुष्य के मन में विद्यमान दुष्प्रवृत्तियाँ हैं। अतः यदि हमें युद्ध के निरंतर चले आते क्रम को समाप्त करना है तो इसके लिए हमें क्रोध, घृणा, द्वेष, ईर्ष्या आदि दुष्प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करनी होगी तभी यह संभव है कि भविष्य में मानव-जाति को किसी और युद्ध को न झेलना पड़े। क्योंकि ऐसा होना निकट भविष्य में संभव नहीं है अतः हमें पाप और पुण्य के विभाजन के बिना निर्भय होकर युद्ध की नियति को स्वीकार नहीं कर लेना चाहिए। और तब हमें देखना होगा कि आत्मबल और देहबल दोनों के संतुलन को साधा जाए। क्योंकि केवल आत्मबल जहाँ पशु-बल का प्रतिकार नहीं कर सकता वहाँ केवल देह-बल के द्वारा मनुष्य की पाशविक प्रवृत्तियों का विकास ही संभव

है। हमें इसीलिए अहिंसा को परमधर्म और हिंसा को आपद्धर्म के रूप में ग्रहण करना होगा। विज्ञान और बुद्धि के अतिवादी विकास से भी युद्ध की स्थितियाँ जन्म लेती हैं अतः हमें जहाँ विज्ञान कोमल-मूल्यों के साथ जोड़कर उसके अंधे विकास को अनुशासित करना होगा वहाँ बुद्धि को अपनी विकास यात्रा में हृदय को भी साथ लेकर चलना होगा। वर्तमान परिस्थितियों में हमें मानव-भविष्य के लिए जो कुछ भी निराशाजनक दिखायी देता है उससे मानवीय क्षमताओं पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। उसमें संघर्ष की जो अग्नि है वह निश्चय ही उसके भविष्य को उज्जवल और उज्जवल बनाएयी। भीष्म के माध्यम से मनुष्य की संघर्षशील प्रवृत्ति पर कवि ने इन शब्दों में अपनी आस्था व्यक्त की है–

> "रागानल के बीच पुरुष कंचन सा जलने वाला,
> तिमिर-सिन्धु में डूब रश्मि की ओर निकलने वाला,
> ऊपर उठने को कर्दभ से लड़ता हुआ कमल-सा,
> ऊब-डूब करता, उतराता घन में विधु-मण्डल सा"

हमें जीवन के चिरन्तन सत्य को खोजने में धरती के सत्य को भूल नहीं जाना चाहिए। कवि मानता है कि केवल मन तथा आत्मा तक सीमित रहने वाले स्वर्ग का कोई महत्व नहीं। क्योंकि वह कुछ रच नहीं पाता। अपने हाथों से कुछ रच पाने में जो संतोष है वह ऐसे स्वर्ग से कहीं बेहतर है। सप्तम सर्ग में भीष्म के माध्यम से धरती के सत्य के प्रति अपनी पक्षधरता की घोषणा कवि इन शब्दों में करता है–

> "ऊपर सब कुछ शून्य-शून्य है, कुछ भी नहीं गगन में,
> धर्मराज जो कुछ है, वह है मिट्टी में जीवन में।"

जब हमें अपनी अदम्य संघर्ष की चेतना को जागृत रखकर जीवन पथ पर आगे बढ़ेंगे तब मानव भविष्य की उज्जवलता के प्रति हमारा आशावादी दृष्टिकोण निश्चय ही आकार ग्रहण करेगा। दिनकर मानो भीष्म के माध्यम से सातवें सर्ग में हम सभी को संबोधित करते हुए मानव-भविष्य के प्रति अपना आस्थाँ भाव व्यक्त करते हैं।

> "आशा के प्रदीप को जलाये चलो धर्म राज
> एक दिन होगी मुक्त भूमि रण-भीति से।
> भावना मनुष्य की न राग में रहेगी लिप्त
> सेवित रहेगा नहीं जीवन अनीति से
> स्नेह-बलिदान होंगे माप नरता के एक
> धरती मनुष्य की बनेगी स्वर्ग प्रीति से।"

इस प्रकार कुरुक्षेत्र में समाज, राष्ट्र और मानव-जाति के लिए जो संदेश प्रस्तुत किया गया है वह निश्चय ही उदात्त और भव्य है, इसमें कोई संदेह नहीं।

39.5.2 संदेश की प्रासंगिकता

आपने कुरुक्षेत्र में प्रतिपादित संदेश का अनुशीलन करते हुए यह अनुभव किया होगा कि यहाँ भले ही कथा-प्रसंग को महाभारत से लिया गया हो किन्तु संदेश न केवल वर्तमान के लिए बल्कि अनागत भविष्य के लिए भी पूरी तरह प्रासंगिक है। कवि ने युद्ध की समस्या के माध्यम से अपने वर्तमान को उन अनेक समस्याओं और संदर्भों से जोड़ना चाहा है जो मनुष्य की नियति के साथ सीधे जुड़ी हुई हैं। कोई समस्या, संदर्भ या संदेश ऐसा नहीं है जो अपने युग से संबंधित न हो। इस संबंध में यह कहना अधिक उचित होगा कि अपनी सभी काव्य-कृतियों में दिनकर सर्वाधिक प्रासंगिक 'कुरुक्षेत्र' में ही सिद्ध हुए हैं।

39.5.3 मूल्यांकन

कुरुक्षेत्र में व्यक्त संदेश की प्रासंगिकता पर हमें कोई सन्देह नहीं किन्तु इस संदेश का मूल्यांकन एक अलग प्रश्न है। जब हम प्रासंगिकता पर बात करते हैं तो उसका आशय यह होता है कि आलोच्य विषय की हमारे अपने समय के लिए क्या उपादेयता है किन्तु जब आलोच्य विषय का मूल्यांकन किया जाता है तब हमें यह देखना होता है कि वह अपनी परिणति में प्रभावशाली हो पाया है अथवा नहीं? इसके लिए हमें आलोच्य विषय को तीन कसौटियों पर परखना चाहिए–

1 वह विषय काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत हो सका है या नहीं?

2 उसमें अपने कथ्य को संप्रेषित करने की क्षमता है या नहीं?

3. उसमें अपने पाठकों को प्रभावित करने की क्षमता किस अंश तक विद्यमान है?

कुरुक्षेत्र का सन्देश निश्चय ही काव्यात्मक अभिव्यक्ति पा सका है। किन्तु हमें यह ध्यान रखना होगा कि यह काव्यात्मक अभिव्यक्ति शिल्प के प्रति किसी अतिरिक्त सजगता के कारण नहीं बल्कि भावों और विचारों की प्रवाहपूर्ण एकता के कारण संभव हो पायी है। यही कारण है कि कुरुक्षेत्र का सन्देश सम्प्रेषण में कोई बाधा उत्पन्न नहीं करता। वह सहज ही अपने पाठकों के लिए ग्राह्य हो जाता है। जहाँ तक पाठकों को प्रभावित कर पाने की क्षमता की बात है, इस दृष्टि से भी कुरुक्षेत्र के सन्देश को पूरी तरह सफल माना जाएगा। भाषा की गतिशीलता, छान्दिक गति का अद्भुत प्रवाह, विचारों और भावों की प्राणवत्ता आदि गुणों ने निश्चय ही कुरुक्षेत्र के सन्देश को प्रभावशाली बना दिया है। इस प्रकार कुरुक्षेत्र का सन्देश पूरी तरह अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल है।

बोध प्रश्न 4

क) हाँ या नहीं में उत्तर दें:

i) कुरुक्षेत्र का सन्देश मूलतः युद्ध की समस्या पर आधारित है।

ii) विज्ञान और बुद्धि के अतिवादी विकास से मानव-भविष्य उज्जवल बनता है।

iii) वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए मानव भविष्य को अंधकारमय ही माना जाएगा।

iv) कुरुक्षेत्र का सन्देश बहुत अंशों तक अपनी प्रासंगिकता खो चुका है।

v) कुरुक्षेत्र के संदेश को भीष्म के माध्यम से ही क्यों अभिव्यक्त किया गया है?

39.6 सारांश

आपने इस इकाई को सावधानीपूर्वक पढ़ा होगा। आपने देखा कि किस प्रकार अपनी परिस्थितियों एवं युग-सन्दर्भों से प्रेरित होकर दिनकर ने प्रभावशाली रूप से कुरुक्षेत्र के प्रतिपाद्य को प्रस्तुत किया। इस पाठ को पढ़ने के बाद आप:

- प्रतिपाद्य के स्वरूप को निर्धारित कर सकते हैं।
- उन परिस्थितियों को जान गए हैं जिन्होंने प्रतिपाद्य को आकार दिया।
- कुरुक्षेत्र की केन्द्रीय समस्या युद्ध तथा अन्य विशिष्ट समस्याओं का परिचय प्राप्त कर सकते हैं।
- कुरुक्षेत्र में व्यक्त सन्देश का स्वरूप क्या है? उसकी प्रासंगिकता क्या है? इन प्रश्नों का समाधान पा गए हैं।

39.7 शब्दावली

प्रतिपाद्य : कृति के कथ्य में जो समस्याएँ उठा कर उनका जो समाधान और सन्देश निरुपित किया है—वह समन्वित रूप

एकनिष्ठता : किसी एक के प्रति निष्ठा या आस्था का भाव

संक्रमण : प्रभावित होना

आत्मबल : आत्मा की शक्ति

प्रतिकार : सामना करना

प्रतिपक्ष : विरोधी पक्ष

त्याज्य : त्यागने योग्य

तत्व चिन्तन : किसी विषय के मूल स्वरूप पर विचार

मंथन : मथने की क्रिया

केन्द्रीय समस्या : सबसे प्रमुख समस्या

ऐतिहासिक विश्वसनीयता : इतिहास से संबंधित तथ्यों की प्रामाणिकता

प्रासंगिकता : सार्थकता या उपादेयता

39.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

क) द्वितीय महायुद्ध की विनाशकारी घटनाओं ने दिनकर के मन को आन्दोलित किया। युद्ध की समस्या उनके चिन्तश का विषय बन गयी। उन्होंने 'कुरुक्षेत्र' में युधिष्ठिर और भीष्म के माध्यम से युद्ध की इसी समस्या को अपना विषय बनाया। वस्तुत: द्वितीय महायुद्ध ही कुरुक्षेत्र के प्रतिपाद्य का मूल आधार है।

ख) वे उग्रवादी एवं क्रांतिकारी गतिविधियों से जुड़े अपने मित्रों की संगति से प्रेरणा पाते रहे हैं।

बोध प्रश्न 2

क) (ii) मनुष्य में स्वार्थ और द्वेष की प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं।

ख) कुरुक्षेत्र की केन्द्रीय समस्या के प्रतिपादन में कवि ने 'महाभारत' का आधार इसलिए ग्रहण किया है कि कवि की दृष्टि में ऐसा न करने से यह कृति प्रबन्ध न रह कर मुक्तकों का संग्रह बन जाती। इसके साथ ही यदि कोई कवि किसी विशिष्ट समस्या को प्रतिपादित करना चाहता है तो उसे अपने अतीत का आशय लेना ही होता है। 'महाभारत' क्योंकि स्वयं युद्ध की समस्या पर आधारित था अत: दिनकर ने महाभारत का आधार ग्रहण किया।

ग) कुरुक्षेत्र में प्रतिपादित युद्ध की समस्या के प्रतिपादन में दो ही पात्र भाग लेते हैं–युधिष्ठिर एवं भीष्म इनमें भी भीष्म सबसे अधिक प्रभावित करते हैं। क्योंकि युद्ध के संबंध में उनका चिन्तन मौलिक एवं यथार्थपरक है। इसके साथ ही भीष्म का चिन्तन दिनकर के चिन्तन के काफी निकट है। वे अपने चिन्तन में युद्ध की समस्या को प्रभावी रूप में उठाते हैं और समस्या के सभी पक्षों पर तेजस्वी रूप में अपने दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करते हैं। भीष्म का व्यक्तित्व महाभारत में भी युधिष्ठिर की अपेक्षा अधिक गरिमामय है। यह धारणा भी पाठक के मन में भीष्म के प्रति विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करती है।

घ) कुरुक्षेत्र में युद्ध की समस्या को उसके सभी पक्षों के साथ जीवन्त रूप में उठाया गया है। हम इससे पूरी तरह सहमत हैं।

बोध प्रश्न 3

क) i) उसने मनुष्य को सहानुभूति और संवेदना से शून्य कर दिया है।

ख) i) क्योंकि वही क्षमा के साथ दण्ड देने की भी क्षमता रखता है।
ii) क्योंकि उसमें विष न होने से क्षमा करना उसकी विवशता होगी।
iii) "गरल" दंश की शक्ति के अर्थ को व्यंजित करता है।

ग) i) हाँ, ii) नहीं, iii) नहीं, iv) नहीं, v) नहीं।

बोध प्रश्न 4

क) क्योंकि भीष्म के माध्यम से ही इस कृति के सम्पूर्ण प्रतिपाद्य को आकार दिया गया है। इसके साथ ही कवि अपने दृष्टिकोण को भीष्म के माध्यम से ही अभिव्यक्त कर सकता है क्योंकि वह संदेश, पौरुष, शौर्य, नीति और न्याय पर आधारित है।

इस खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

श्री रामधारी सिंह दिनकर, **कुरुक्षेत्र** राजपाल एंड संस, दिल्ली।

डॉ. नगेन्द्र, **आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ**, नेशनल पब्लिशिंग, दिल्ली।

डॉ. विजेन्द्र नारायण सिंह, **विनकर : एक पुनर्मूल्यांकन**, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद।

डॉ. जयसिंह "नीरद", **दिनकर के काव्य में परम्परा और आधुनिकता**, अनुराधा प्रकाशन, मेरठ।

डॉ. सावित्री सिन्हा, **युग चरण विनकर**, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

सं. डॉ. सावित्री सिन्हा, **विनकर**, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली।

श्री कांतिमोहन शर्मा, **कुरुक्षेत्र मीमांसा**, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली, पटना।

सं. धीरेन्द्र वर्मा, **हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1**, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी।

डॉ. नगेन्द्र, **भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा**, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

शम्भू नाथ सिंह, **हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास**, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी।

नंददुलारे वाजपेयी, **आधुनिक साहित्य**, प्रयाग साहित्य मन्दिर।

रामचन्द्र शुक्ल, **हिन्दी साहित्य का इतिहास**, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।